# धम्मपद

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 221

---

(धम्मपद 219 और 220) <<<< पिछला|| धम्मपद221 ||अगला >>>> (धम्मपद222)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

कोधं जहे विप्पजहेय मनम
समन्वयम्(1) सब्बामटिक्कमेय्या
तं नामरूपस्मिं असज्ज्मानं
अकिंचनम्(2) नानुपतन्ति दुक्खा।

---

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दु:ख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

---

1. सम्योजनम्: एक बंधन। मनुष्य की वासना के दस बंधन हैं जो मनुष्य को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं; ये बंधन मार्ग अंतर्दृष्टि के विभिन्न चरणों में टूट जाते हैं।
2. अकिंचनम्: किंचन (अपवित्रता) से मुक्त: तीन किंचन हैं कामवासना, द्वेष और अज्ञान।

---

बुद्ध द्वारा कुष्ठ रोगी के उपचार की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (221) कहा। एक बार थेरा अनुराद्ध कपिलवस्तु गए। वहाँ के मठ में ठहरते समय, उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। थेरा अनुराद्ध ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भवन बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। थेरा अनुराद्ध ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी भवन निर्माण में सहायता करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को भवन निर्माण के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा। जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, और उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बरनास के राजा की प्रधान रानी थीं। संयोग से, राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और प्रधान रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से गौ-हेज की फलियों से बना खुजलीदार पाउडर नर्तकी के पलंग, कंबल आदि में डलवा दिया। फिर, उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में, उस पर थोड़ा सा खुजलीदार पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली हो रही थी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से तड़प रही थी। असहनीय खुजली के कारण वह दौड़कर अपने कमरे और बिस्तर पर चली गई, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।

उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में आकर मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दु:ख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

---

प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित कई लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमारी रोहिणी की कहानी
निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य अनुराधा कपिलवस्तु आए। जब वे वहाँ के मठ में ठहरे हुए थे, तो उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। पूज्य अनुराधा ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भोजन कक्ष बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। पूज्य अनुराधा ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी हॉल के निर्माण में मदद करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को निर्माण कार्य के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बारानासी के राजा की मुख्य रानी थीं। राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और मुख्य रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से नर्तकी के पलंग और कंबल में खुजली का पाउडर डलवा दिया। फिर उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में उस पर खुजली का पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली होने लगी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से पीड़ित हो गई। असहनीय खुजली से परेशान होकर वह अपने कमरे और बिस्तर की ओर भागी, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी। प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित अनेक लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 221)
कोढं जहे मनं विप्पजहेय सब्बं संनोजानं अतिक्कमेय्या
नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं तं दुक्खा न अनुपातन्ति
कोढ़ां [ कोढ़ा ]: क्रोध; जहे : त्यागना; मनं [ मन ]: अभिमान; विप्पजहेय्या : पूरी तरह से त्याग दो; सब्बाṃ [ सब्बा ]: सभी; संनोजनं [ संनोजाना ]: बेड़ियाँ; अतिक्कमेय्या : छुटकारा पाना; नामरूपस्मिः [ नामरूपस्मि ]: नाम और रूप में; असज्जमानाम् [ असज्जमाना ]: अनासक्त; अकिंचानाṃ [ अकिंचना ]: उपांगों से मुक्त; तं : उस व्यक्ति पर; दुक्खा न अनुपातन्ति : कष्ट और दुःख नहीं आते
क्रोध का त्याग करो। अहंकार को पूरी तरह छोड़ दो। सभी आसक्तियों से मुक्त हो जाओ। जो व्यक्ति नाम और रूप से आकर्षित नहीं होता और आसक्तियों से मुक्त होता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 221)
क्रोध : क्रोध। व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सभी भावनाओं में क्रोध सबसे बुरा है। क्रोध का सामना क्रोध से करने पर वह दस गुना बढ़ जाता है, लेकिन यदि शांत भाव से उसका सामना किया जाए तो वह अक्सर शीघ्र ही शर्मिंदगी की भावना में तब्दील हो जाता है, जो उससे कहीं अधिक प्रबल होती है। यह सभी भावनाओं में सबसे अतार्किक है। तीव्र क्रोध के क्षण में मनुष्य वास्तव में मनुष्य

नहीं रह जाता; वह एक विनाशकारी पशु बन जाता है। दूसरों के साथ हुए अन्याय पर क्रोध करना भी सही समाधान की ओर ले जाने वाली मानसिक स्थिति नहीं है। लेकिन स्वयं से निपटने में, क्रोध की यह मनोदशा शांत विश्लेषण के आगे टिक नहीं सकती। स्पष्ट है कि ये दोनों मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और प्रारंभ में, यदि क्रोध पहले से ही एक आदत बन चुका है, तो वह अन्य सभी चीजों को दरकिनार कर सकता है। लेकिन अभ्यास से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, और हम खुद को देखकर कह सकते हैं, "कौन नाराज़ है? इस गुस्से का कारण क्या है?" गुस्सा जल्द ही शांत हो जाता है और अक्सर कारण जानने की कोशिश में भुला दिया जाता है। बाद में, यह जानकर कि हमने गुस्से के हावी होने पर होने वाली संभावित मूर्खतापूर्ण कार्रवाई से खुद को बचा लिया, हमें खुशी होती है कि हमने ऐसा आत्म-संयम बरता।

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> धम्मपद

अंतर्वस्तु

परिचय

धम्मपद (पाली में, जिसका अर्थ है धर्म का मार्ग । प्राकृत में धम्मपद और संस्कृत में धर्मपद ) बौद्ध धर्म का एक धार्मिक ग्रंथ है, जिसमें 26 श्रेणियों में 423 श्लोक हैं। परंपरा के अनुसार, ये विभिन्न अवसरों पर बुद्ध से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर हैं, जिनमें से अधिकांश नैतिकता से संबंधित हैं। पांचवीं शताब्दी में बुद्धघोष द्वारा लिखी गई टीका में 305 कहानियां शामिल हैं जो इन श्लोकों को संदर्भ प्रदान करती हैं। धम्मपद पाली त्रिपिटक का एक लोकप्रिय भाग है और इसे थेरवाद साहित्य के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक माना जाता है। हालांकि पाली संस्करण सबसे अधिक प्रसिद्ध है, खरोष्ठी में लिखा गया एक गांधारी संस्करण और संस्कृत में लिखा गया एक संबंधित ग्रंथ जिसे उदानावर्ग के नाम से जाना जाता है, भी खोजा गया है।

धम्मपद का विस्तृत संस्करण संक्षिप्त संस्करण के नीचे दिया गया है। यहाँ प्रस्तुत सच्ची कहानियाँ/घटनाएँ धम्मपद को समझने में आसान, अर्थपूर्ण और आनंददायक बनाती हैं। इससे भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धम्म को समझने में बहुत सहायता मिलेगी।

धम्मपद ग्रंथ (विस्तृत कथाओं सहित)

धम्मपद श्लोक 41 - पुतिगत्ततिसत्तेरा वत्थु - दुर्गंधयुक्त शरीर वाले थेरा (वृद्ध) तिस्सा की कथा
धम्मपद श्लोक 42 - नंदगोपालक वत्थु - चरवाहे नंदा की कहानी
धम्मपद श्लोक 43 - सोरेय्या वत्थु - धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या की कहानी

अध्याय 4. पुप्फहग्ग: फूल (44-59)
धम्मपद छंद 44 और 45 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 46 - मरिकममत्थानिका भिक्खु वत्थु - उस भिक्खु (भिक्षु) की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है
धम्मपद श्लोक 47 - वितातुभ वत्थु - कोसल के राजा के पुत्र वितातुभा की कहानी
धम्मपद श्लोक 48 - पतिपूजिकाकुमारी वत्थु - पतिपूजिका कुमारी की कहानी
धम्मपद श्लोक 49 - मैकचरियाकोसियासेट्ठी वत्थु - कंजूस अमीर आदमी कोसिया की कहानी
धम्मपद श्लोक 50 - पवेय्या अजीवक वत्थु - तपस्वी पवेय्या की कथा
धम्मपद छंद 51 और 52 - चट्टापानी उपासक वत्थु - एक सामान्य शिष्य चट्टापानी की कहानी
धम्मपद श्लोक 53 - विशाखा वत्थु - विशाखा की कहानी
धम्मपद श्लोक 54 और 55 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कथा
धम्मपद श्लोक 56 - महाकस्सपत्थेरा वत्थु - थेरा (ज्येष्ठ) महाकस्सप की कहानी
धम्मपद श्लोक 57 - गोधिकत्थेरापरिनिब्बाना वत्थु - थेरा (बुजुर्ग) गोधिका की कहानी
धम्मपद छंद 58 और 59 - गार्हादिन्ना वत्थु - गार्हादिन्ना की कहानी

अध्याय 5. बालवग्गा: मूर्ख(60-75)
धम्मपद श्लोक 60 - अन्नतारपुरिसा वत्थु - एक व्यक्ति की कहानी
धम्मपद श्लोक 61 - महाकस्सप सद्धिविहारिका वत्थु - थेरा (बड़े भिक्षु) महाकस्सप के एक निवासी शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 62 - आनंदसेट्ठि वत्थु - अमीर आदमी आनंद की कहानी
धम्मपद श्लोक 63 - गंथिभेदाकोरा वत्थु - दो जेबकतरों की कहानी
धम्मपद श्लोक 64 - उदयित्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) उदयी की कहानी
धम्मपद श्लोक 65 - तिम्सापवेय्याभिक्खु वत्थु - पवेय्याका के तीस भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 66 - सुप्पबुद्धकुट्टी वत्थु - सुप्पबुद्ध, कोढ़ी की कहानी
धम्मपद श्लोक 67 - कसाका वत्थु - एक किसान की कहानी
धम्मपद श्लोक 68 - सुमनमालाकारा वत्थु - पुष्प विक्रेता सुमना की कहानी
धम्मपद श्लोक 69 - उप्पलवन्नाथेरी वत्थु - थेरी (बड़ी भिक्षुणी) उप्पलवन्ना की कहानी
धम्मपद श्लोक 70 - जम्बुकत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) जंबुका की कहानी
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वस्तु - अहिपेटा की कहानी (मनुष्य के सिर वाला सर्प जैसा भूत)
धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुतापेटा वत्थु - सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)
धम्मपद श्लोक 73 और 74 - चित्तगहपति वस्तु - गृहस्थ चित्त की कथा
धम्मपद श्लोक 75 - वनवसिटिससासामनेरा वत्थु - वन मठ के समानेरा (बुजुर्ग भिक्षु) तिस्सा की कहानी

अध्याय 6. पंडितवग्ग: ज्ञानी (76-89)
धम्मपद श्लोक 76 - राधाथेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) राधा की कहानी
धम्मपद श्लोक 77 - अस्साजीपुनब्बासुका वत्थु - कहानी या भिक्खु (भिक्षु) असाजी और पुनब्बासुका
धम्मपद श्लोक 78 - चन्नत्थेरा वत्थु - थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) चन्ना की कथा
धम्मपद श्लोक 79 - महाकप्पिनत्थेरा वत्थु - थेरा (बुजुर्ग भिक्षु) महाकप्पिन की कहानी
धम्मपद श्लोक 80 - पंडितसामनेरा वत्थु - समानेरा (बुजुर्ग भिक्षु) पंडिता की कहानी
धम्मपद श्लोक 81 - लकुंडकभद्दियाथेरा वत्थु - थेरा लकुंडका भद्दिया की कहानी
धम्मपद श्लोक 82 - कनामाता वत्थु - कनामता की कहानी
धम्मपद श्लोक 83 - पंचसताभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

धम्मपद श्लोक 84 - धम्मिकत्थेरा वत्थु - थेरा धम्मिका की कहानी
धम्मपद छंद 85 और 86 - धम्मस्सवन वत्थु - धम्म श्रोताओं की कहानी
धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

अध्याय 7. अरहंतवग्गा: अरहंत (90-99)
धम्मपद श्लोक 90 - जीवकपन्हा वत्थु - जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 91 - महाकस्सपत्थेरा वत्थु - थेरा महाकस्सप की कहानी
धम्मपद श्लोक 92 - बेलात्थसिसत्तेरा वत्थु - थेरा बेलात्थसिस की कथा
धम्मपद श्लोक 93 - अनुरुद्धथेरा वत्थु - थेरा अनुरुद्ध की कथा
धम्मपद श्लोक 94 - महाकाकायनत्थेरा वत्थु - थेरा महाकाकायन की कहानी
धम्मपद श्लोक 95 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 96 - कोसाम्बिवसिटिससथेरसमानेरा वत्थु - कोसंबी के एक समानेरा की कहानी
धम्मपद श्लोक 97 - सारिपुत्तथेरा वत्थु - थेरा सारिपुत्त की कहानी
धम्मपद छंद 98 - खदिरवानियारेवत्तथेरा वत्थु - थेरा रेवता की कहानी
धम्मपद श्लोक 99 - अन्नतारा इत्थि वत्थु - एक महिला की कहानी

अध्याय 8. सहस्सवग्ग: हज़ार (100-115)
धम्मपद श्लोक 100 - तम्बादथिका कोरघटका वत्थु - तम्बादथिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 101 - बहियादारुसीरिया वत्थु - बहियादारुसीरिया की कहानी
धम्मपद छंद 102 और 103 - कुंडलकेशिथेरी वत्थु - थेरी कुंडलकेशी की कहानी
धम्मपद छंद 104 और 105 - अनाथपुच्चकब्राह्मण वत्थु - ब्राह्मण अनाथपुच्चक की कहानी
धम्मपद श्लोक 106 - सारिपुत्तथेरस्सा मातुल ब्राह्मण वत्थु - थेरा सारिपुत्त के चाचा की कहानी
धम्मपद श्लोक 107 - सारिपुत्तथेरस्सा भगिनेय वत्थु - थेरा सारिपुत्त के भतीजे की कहानी
धम्मपद श्लोक 108 - सारिपुत्तथेरसा सहायक ब्राह्मण वत्थु - थेरा सारिपुत्त के मित्र की कहानी
धम्मपद श्लोक 109 - आयुवधनकुमार वत्थु - आयुवधनकुमार की कहानी
धम्मपद श्लोक 110 - समकिक्कासामनेरा वत्थु - समानेरा समकिक्का की कहानी
धम्मपद श्लोक 111 - खानु कोंडन्नाथेरा वत्थु - खानु-कोंडन्ना की कहानी
धम्मपद श्लोक 112 - सप्पादासत्थेरा वत्थु - थेरा सप्पादास की कहानी
धम्मपद श्लोक 113 - पटाकराथेरी वत्थु - थेरी पटाकारा की कहानी
धम्मपद श्लोक 114 - किसागोतामी वत्थु - थेरी किसागोटामी की कहानी
धम्मपद श्लोक 115 - बहुपुत्तिकत्थेरी वत्थु - थेरी बहुपुटिका की कहानी

अध्याय 9. पापावग्गा: बुराई (116-128)
धम्मपद श्लोक 116 - कुलेकाशतक वत्थु - कुलेकशतक की कहानी
धम्मपद श्लोक 117 - सेय्यासकत्थेरा वत्थु - थेरा सेय्यासाका की कहानी
धम्मपद श्लोक 118 - लजदेवाधिता वत्थु - लजदेवाधिता की कहानी
धम्मपद छंद 119 और 120 - अनाथपिंडिकासेट्ठि वत्थु - अनाथपिंडिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 121 - असन्नतापरिक्खरा वत्थु - एक लापरवाह भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 122 - बिलालापादकसेट्ठि वत्थु - बिलालापादका की कहानी
धम्मपद श्लोक 123 - महाधनवनिजा वत्थु - महाधन की कहानी
धम्मपद श्लोक 124 - कुक्कुटमित्तनेसादा वत्थु - कुक्कुटमित्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 125 - कोकासुनाखालुद्दका वत्थु - कोका द हंट्समैन की कहानी
धम्मपद श्लोक 126 - मणिकारकुलुपाका तिसत्थेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 127 - तयोजन वस्तु - तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 128 - सुप्पबुद्धसाक्य वत्थु - राजा सुप्पबुद्ध की कहानी

अध्याय 10. दंडवग्ग: हिंसा (129-145)
धम्मपद श्लोक 129 - छब्बग्गिया भिक्खु वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी
धम्मपद श्लोक 130 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु - छह भिक्षुओं के समूह की कहानी
धम्मपद श्लोक 131 और 132 - संबहुला कुमारक वत्थु - अनेक युवकों की कहानी
धम्मपद छंद 133 और 134 - कोंडाधनत्थेरा वत्थु - थेरा कोंडाधन की कहानी
धम्मपद श्लोक 135 - उपोसाथिका इत्थिनं वत्थु - नैतिक उपदेशों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 136 - अजगरपेटा वत्थु - अजगर पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते हुए शरीर वाला अजगर जैसा भूत)
धम्मपद छंद 137, 138, 139 और 140 - महा मोग्गलनत्थेरा वत्थु - थेरा महा मोग्गलन की कहानी
धम्मपद श्लोक 141 - बहुभांडिका भिक्खु वत्थु - भिक्खु बहुभांडिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 142 - संतति महामत्त वत्थु - संतति मंत्री की कहानी
धम्मपद छंद 143 और 144 - पायलटिकातिसत्थेरा वत्थु - थेरा पिलोतिकतिस्सा की कथा
धम्मपद श्लोक 145 - सुखसामनेरा वत्थु - समानेरा की कहानी(2) सुखा

अध्याय 11. जरावग्ग: वृद्धावस्था (146-156)
धम्मपद श्लोक 146 - विशाखया सहायिकानं वत्थु - विशाखा के साथियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 147 - सिरिमा वत्थु - सिरिमा की कहानी
धम्मपद श्लोक 148 - उत्तरथेरि वत्थु - थेरी उत्तरा की कहानी
धम्मपद श्लोक 149 - सम्बहुला अधिमानिकाभिक्खु वत्थु - आधिमानिक भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 150 - जनपदकल्याणी रूपानन्दथेरी वत्थु - थेरी रूपानंद की कहानी (जनपदकल्याणी)
धम्मपद श्लोक 151 - मल्लिकादेवी वत्थु - रानी मल्लिका की कहानी
धम्मपद श्लोक 152 - लालूदायी थेरा वत्थु - थेरा लालूदायी (या थेरा कलुदायी) की कहानी
धम्मपद श्लोक 153 और 154(1) - उदान वत्थु - "बुद्ध के उल्लासपूर्ण वचनों" से संबंधित कथा
धम्मपद छंद 155 और 156 - महाधनसेट्ठिपुत्त वत्थु - महाधन के पुत्र की कहानी

अध्याय 12. अत्तवग्ग : आत्मा (157-166)
धम्मपद श्लोक 157 - बोधिराजकुमार वत्थु - बोधिराजकुमार की कहानी
धम्मपद श्लोक 158 - उपनन्दसाक्यपुत्तत्थेरा वत्थु - थेरा उपनन्द शाक्यपुत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 159 - पदनिकतिसत्थेरा वत्थु - थेरा पधानिकतिसा की कहानी
धम्मपद श्लोक 160 - कुमारकस्सपमातुत्थेरी वत्थु - कुमारकस्सप की माता की कहानी
धम्मपद श्लोक 161 - महाकाल उपासक वत्थु - महाकाल उपासक की कहानी
धम्मपद श्लोक 162 - देवदत्त वत्थु - देवदत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 163 - समघभेदापरिसक्कन वत्थु - क्रम में विवाद की कहानी
धम्मपद श्लोक 164 - कलत्थेरा वत्थु - थेरा कला की कहानी
धम्मपद श्लोक 165 - कुलकला उपासक वत्थु - कुलकला उपासक की कहानी
धम्मपद छंद 166 - अट्टादत्तथेरा वत्थु - थेरा अट्टादत्ता की कहानी

अध्याय 13. लोकवग्गा: विश्व (167-178)
धम्मपद श्लोक 167 - दहरभिक्खु वत्थु - एक युवा भिक्षु की कहानी
धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु - राजा शुद्धोदन की कहानी
धम्मपद श्लोक 170 - पंचसताविपासकभिक्खु वत्थु - पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 171 - अभयराजकुमार वत्थु - राजकुमार अभय की कहानी
धम्मपद श्लोक 172 - सम्मज्जनत्थेरा वत्थु - थेरा सम्मज्जन की कहानी
धम्मपद श्लोक 173 - अंगुलिमालत्थेरा वत्थु - थेरा अंगुलिमाल की कहानी

धम्मपद श्लोक 174 - पेसाकारधिता वत्थु - बुनकर-लड़की की कहानी
धम्मपद श्लोक 175 - तिमसभिक्खु वत्थु - तीस भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 176 - सिंकमानविका वत्थु - सिंकमानविका की कहानी
धम्मपद श्लोक 177 - असादिसादना वस्तु - अद्वितीय भिक्षादान की कथा
धम्मपद श्लोक 178 - अनाथपिंडिकापुत्तकला वत्थु - अनाथपिंडिका के पुत्र काला की कहानी

अध्याय 14. बुद्धवग्ग: बुद्ध (179-196)
धम्मपद छंद 179 और 180 - मराधितारा वत्थु - मारा की तीन बेटियों की कहानी (यानी शैतान/शैतान की)
धम्मपद श्लोक 181 - देवोरोहण वत्थु - बुद्ध के तावतिंसा देवलोक से वापसी की कथा
धम्मपद श्लोक 182 - एरकपट्टनागराज वत्थु - नागा राजा एरकपट्ट की कहानी
धम्मपद श्लोक 183, 184 और 185 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद छंद 186 और 187 - अनाभिरताभिक्खु वत्थु - एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी
धम्मपद श्लोक 188 से 192 - अग्गिदत्तब्राह्मण वत्थु - अग्गिदत्त की कहानी
धम्मपद श्लोक 193 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु - थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 194 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 195 और 196 - कस्सापादसबालासा सुवन्नासेटिया वत्थु - कस्पा बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी

अध्याय 15. सुखवग्गा: ख़ुशी (197-208)
धम्मपद श्लोक 197, 198 और 199 - नाटिकलाहवुपासमना वत्थु - बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कथा
धम्मपद श्लोक 200 - मारा वस्तु - मारा की कथा (मृत्यु/रोग/बुराई/भौतिक सुख/धन का स्वामी, अर्थात् शैतान)
धम्मपद श्लोक 201 - कोसलरान्नो परजाया वत्थु - कोसल के राजा की हार की कहानी
धम्मपद श्लोक 202 - अन्नतारकुलदारिका वत्थु - एक युवा दुल्हन की कहानी
धम्मपद श्लोक 203 - एक उपासक वत्थु - एक साधारण शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 204 - पसेनादिकोसल वत्थु - कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) की कहानी
धम्मपद श्लोक 205 - तिस्साथेरा वत्थु - थेरा तिस्सा की कहानी
धम्मपद श्लोक 206, 207 और 208 - सक्का वत्थु - सक्का (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) की कथा

अध्याय 16. पियावग्ग: स्नेह (209-220)
धम्मपद छंद 209, 210 और 211 - तयोजनापबजिता वत्थु - तीन तपस्वियों की कहानी
धम्मपद श्लोक 212 - अन्नतारकुटुम्बिका वत्थु - एक अमीर गृहस्थ की कहानी
धम्मपद श्लोक 213 - विशाखा वत्थु - विशाखा की कहानी
धम्मपद श्लोक 214 - लिच्छवी वत्थु - लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
धम्मपद श्लोक 215 - अनिथिगंधाकुमार वत्थु - अनिथिगंधा कुमारा की कहानी
धम्मपद श्लोक 216 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु - एक ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 217 - पंचसतादारक वत्थु - पांच सौ लड़कों की कहानी
धम्मपद श्लोक 218 - एका अनागामीथेरा वत्थु - एक अनागामी थेरा की कहानी
धम्मपद छंद 219 और 220 - नंदिया वत्थु - नंदिया की कहानी

अध्याय 17. कोधवग्ग: क्रोध (221-234)
धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु - बुद्ध द्वारा ठीक किये गये एक कोढ़ी की कहानी
धम्मपद श्लोक 222 - अन्नतारभिक्खु वत्थु - एक भिक्खु (भिक्षु) की कहानी
धम्मपद श्लोक 223 - उत्तरा उपासिका वत्थु - उत्तरा द ले-शिष्य की कहानी
धम्मपद श्लोक 224 - महामोग्गलनपन्हा वत्थु - थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
धम्मपद श्लोक 225 - बुद्धपितुब्रह्मण वस्तु - उस ब्राह्मण की कथा जो 'बुद्ध के पिता' थे
धम्मपद श्लोक 226 - पुन्नदासी वत्थु - दासी लड़की पुन्ना की कहानी

धम्मपद छंद 292 और 293 - भद्दियानं भिक्खुणं वत्थु - बद्दिया भिक्खु की कहानी
धम्मपद छंद 294 और 295 - लकुंदका भद्दिया वत्थु - थेरा भद्दिया की कहानी, लघु कथा
धम्मपद छंद 296 से 301 - दारुसकाटिकपुत्त वत्थु - एक लकड़हारे के बेटे की कहानी
धम्मपद श्लोक 302 - वज्जीपुत्तकभिक्खु वत्थु - वज्जियों के देश के भिक्षु की कथा
धम्मपद श्लोक 303 - चित्तगहपति वस्तु - गृहस्थ चित्त की कथा
धम्मपद श्लोक 304 - कुलसुभद्दा वत्थु - कुलसुभद्दा की कहानी
धम्मपद श्लोक 305 - एकविहारित्थेरा वत्थु - एकांतवास करने वाले थेरा की कथा

अध्याय 22. निरयवग्गा: नरक (306-319)
धम्मपद श्लोक 306 - सुंदरीपरिबबजिका वत्थु - भटकती महिला तपस्वी सुंदरी की कहानी
धम्मपद श्लोक 307 - दुच्चरितफलपिलिता वत्थु - उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा
धम्मपद श्लोक 308 - वग्गुमुदतिरिया भिक्खु वत्थु - वग्गुमुद नदी के किनारे रहने वाले भिक्षुओं की कथा
धम्मपद श्लोक 309 और 310 - खेमकसेत्थिपुत्त वत्थु - धनी व्यक्ति के पुत्र खेमक की कथा
धम्मपद छंद 311, 312 और 313 - दुब्बाकाभिक्खु वत्थु - जिद्दी भिक्खु की कहानी
धम्मपद श्लोक 314 - इस्सापकाता इत्थी वत्थु - ईर्ष्यालु स्वभाव की एक महिला की कहानी
धम्मपद श्लोक 315 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद श्लोक 316 और 317 - निगंथ वस्तु - निगंथ तपस्वियों की कथा
धम्मपद श्लोक 318 और 319 - तित्तियसवक वत्थु - गैर-बौद्ध तपस्वियों के शिष्यों की कहानी

अध्याय 23. नागवग्गा: हाथी (320-333)
धम्मपद श्लोक 320, 321 और 322 - अत्तदंत वस्तु - स्वयं को वश में करने की कथा
धम्मपद श्लोक 323 - हत्थाकारियापुब्बाका भिक्खु वत्थु - उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था
धम्मपद श्लोक 324 - परिजिन्ना ब्राह्मणपुत्त वत्थु - एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी
धम्मपद श्लोक 325 - पसेनादिकोसल वत्थु - कोशल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) की कहानी
धम्मपद श्लोक 326 - सानुसामनेरा वत्थु - समानेरा सानु की कहानी
धम्मपद श्लोक 327 - पवेय्याकाहत्थी वत्थु - पवेय्याका नामक हाथी की कहानी
धम्मपद छंद 328, 329 और 330 - संबहुलाभिक्खु वत्थु - कई भिक्षुओं की कहानी
धम्मपद छंद 331, 332 और 333 - मारा वथु - मारा की कहानी (अर्थात शैतान/शैतान बुद्ध को राजा के रूप में शासन करने के लिए प्रलोभित करता है)

अध्याय 24. तन्हावग्ग: लालसा (334-359)
धम्मपद छंद 334, 335, 336 और 337 - कपिलमच्चा वत्थु - कपिला मछली की कहानी
धम्मपद श्लोक 338 से 343 - सुकरपोटिका वत्थु - एक युवा सूअर की कहानी
धम्मपद श्लोक 344 - विभनताभिक्खु वत्थु - एक पूर्व भिक्खु की कहानी
धम्मपद छंद 345 और 346 - बंधननगर वत्थु - कारावास पर कहानी
धम्मपद श्लोक 347 - खेमथेरी वत्थु - थेरी खेमा की कहानी
धम्मपद श्लोक 348 - उगसेना वस्तु - उगसेना की कथा
धम्मपद श्लोक 349 और 350 - चुलधनुग्गहा पंडित वत्थु - कुशल धनुर्धर चुलधनुग्गहा की कथा
धम्मपद छंद 351 और 352 - मारा वत्थु - मारा की कहानी (यानी शैतान/शैतान)
धम्मपद श्लोक 353 - उपकजीवक वत्थु - उपक की कहानी
धम्मपद श्लोक 354 - सक्कपन्हा वत्थु - सक्का (देवों/स्वर्गदूतों के राजा शक्र या इंद्र) द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
धम्मपद श्लोक 355 - अपुट्टकसेट्ठी वत्थु - एक निःसंतान अमीर आदमी की कहानी
धम्मपद छंद 356, 357, 358 और 359 - अंकुरा वत्थु - देव (देवदूत) अंकुरा की कहानी

अध्याय 25. भिक्खुवग्ग: भिक्षु (360-382)
धम्मपद छंद 360 और 361 - पंचभिक्खु वत्थु - पांच भिक्षुओं की कहानी

———————————————————————

धम्मपद ग्रंथ (संक्षिप्त संस्करण)



तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 1

———————————————————————

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

———————————————————————

धम्मपद1 ।अगला >>>> धम्मपद श्लोक 2 - मत्थकुंडली वत्थु

———————————————————————

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 1 - चक्खुपालत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण

मनोपुबंगमा धम्म(1)
मनोसेत्था मनोमाया
मनसा चे पदुत्थेन
भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति
चक्खं वा वहतो पदं॥

श्लोक 1 : सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है; उनका प्रधान मन है; वे मन से निर्मित हैं। यदि कोई बुरे मन से बोलता या कार्य करता है, तो 'दु:ख'(3) उसका पीछा करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पहिया बैल के खुर के निशान का अनुसरण करता है जो गाड़ी खींचता है।

---

1. मनोपुबंगम धम्म: सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है, इस अर्थ में कि मन सबसे अधिक प्रभावी है, और यह अन्य तीन मानसिक घटनाओं, अर्थात् वेदना (भावना), अनुभूति (बोध) और मानसिक रचनाएँ या मानसिक सहवर्ती (संस्कार) का कारण है। इन तीनों का अग्रदूत मन या चेतना (विन्नाना) है, क्योंकि यद्यपि ये मन के साथ ही उत्पन्न होती हैं, फिर भी मन के बिना ये उत्पन्न नहीं हो सकतीं। (टीका)
2. मनसा चे पदुत्थेन (श्लोक 1) और मनसी चे पसान्नेन (श्लोक 2): यहाँ मनसा का अर्थ है इरादा या संकल्प (चेतना); संकल्प ही व्यक्ति को अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों को करने के लिए प्रेरित करता है। यह संकल्प और इसके फलस्वरूप होने वाले कर्म ही कर्म हैं; और कर्म हमेशा परिणाम उत्पन्न करते हैं। चक्खुपाला का अंधापन (श्लोक 1) पिछले जन्म में उसके बुरे इरादे से किए गए कर्मों का परिणाम था और मत्थकुंडली का तावतिंसा लोक में सुखी अस्तित्व (श्लोक 2) बुद्ध के प्रति उसकी मनोपसाद (मनोपसाद) का परिणाम था।
3. दु:ख: इस संदर्भ में दु:ख का अर्थ है पीड़ा, शारीरिक या मानसिक पीड़ा, दुर्भाग्य, असंतोष, बुरे परिणाम आदि, और यदि मानव जगत में जन्म हुआ हो तो अस्तित्व के निचले स्तरों में या मानव समाज के निचले तबकों में पुनर्जन्म।

---

थेरा चक्खुपाला की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (1) का उच्चारण चक्खुपाला नामक एक अंधे थेरा के संदर्भ में किया।

एक बार थेरा चक्खुपाला जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। एक रात, ध्यान करते हुए इधर-उधर टहलते समय, थेरा का पैर गलती से कुछ कीड़ों पर पड़ गया। सुबह, थेरा से मिलने आए कुछ भिक्षुओं ने मरे हुए कीड़े देखे। उन्होंने थेरा के प्रति बुरा भाव रखा और बुद्ध को इसकी सूचना दी। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने थेरा को कीड़े मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने कहा,

"जिस प्रकार आपने उसे हत्या करते नहीं देखा, उसी प्रकार उसने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। इसके अलावा, चूंकि थेरा पहले ही अरहतत्व प्राप्त कर चुका था, इसलिए उसका हत्या करने का कोई इरादा नहीं हो सकता था और अतः वह पूर्णतः निर्दोष था।"

जब बुद्ध से पूछा गया कि अर्हत होते हुए भी चक्खुपाला अंधा क्यों था, तो उन्होंने निम्नलिखित कहानी सुनाई:

चक्खुपाला अपने पिछले जन्मों में से एक में चिकित्सक था। एक बार उसने जानबूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने उससे वादा किया था कि अगर उसकी आँखें पूरी तरह ठीक हो जाएँगी तो वह अपने बच्चों सहित उसकी दासी बन जाएगी। उसे और उसके बच्चों को दास बनने का डर था, इसलिए उसने चिकित्सक से झूठ बोला। उसने कहा कि उसकी आँखें खराब हो रही हैं, जबकि वास्तव में वे पूरी तरह ठीक हो चुकी थीं। चिकित्सक समझ गया कि वह उसे धोखा दे रही है, इसलिए उसने बदला लेने के लिए उसे एक और मरहम दिया, जिससे वह पूरी तरह अंधी हो गई। इस बुरे कर्म के फलस्वरूप चिकित्सक को अपने बाद के जन्मों में कई बार अपनी दृष्टि खोनी पड़ी।

तब बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा-

श्लोक 1 -
सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है;
उनका प्रधान मन है; वे मन से ही उत्पन्न होती हैं।
यदि कोई बुरे मन से बोलता या कार्य करता है, तो 'दुःख' उसका पीछा करता है,
ठीक वैसे ही जैसे गाड़ी खींचने वाले बैल के खुर के निशान का पहिया पीछा करता है।
प्रवचन के अंत में, तीस हजार भिक्षुओं ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि (पतिसंभिदा) के साथ-साथ अरहतत्व प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मनोपुब्बंगमा धम्म मनोसेटा मनोमय l
मनसा सी पदुत्थेन भासति वा करोति वा l
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कण्व वहतो पदं ‖ 1 ‖
1. मन सभी ज्ञानों से पहले आता है, मन ही उनका मूल है, मन से ही वे सब उत्पन्न होते हैं। यदि कोई दूषित मन से बोले या कार्य करे तो दुःख उत्पन्न होता है, जैसे बैल के खुर से पहिया चलता है।
भिक्षु चक्खुपाला की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अंधे भिक्षु चक्खुपाल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार भिक्षु चक्खुपाला जेतवन मठ में बुद्ध को प्रणाम करने आए। एक रात, ध्यान करते हुए टहलते समय, भिक्षु का पैर गलती से कुछ कीड़ों पर पड़ गया। सुबह, उनसे मिलने आए कुछ भिक्षुओं ने मरे हुए कीड़े देखे। उन्होंने भिक्षु के प्रति दुर्भावना व्यक्त की और बुद्ध को इसकी सूचना दी। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने भिक्षु को कीड़े मारते हुए देखा था। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने कहा, "जिस प्रकार तुमने उन्हें मारते हुए नहीं देखा, उसी प्रकार उन्होंने भी उन जीवित कीड़ों को नहीं देखा था। इसके अलावा, चूंकि भिक्षु अर्हत पद प्राप्त कर चुके थे, इसलिए उनका मारने का कोई इरादा नहीं हो सकता था, अतः वे निर्दोष थे।" जब बुद्ध ने पूछा कि अर्हत होने के बावजूद चक्खुपाला अंधे क्यों थे, तो उन्होंने निम्नलिखित कहानी सुनाई:
चक्खुपाल अपने पिछले जन्मों में से एक में चिकित्सक थे। एक बार उन्होंने जानबूझकर एक महिला रोगी को अंधा कर दिया था। उस महिला ने वादा किया था कि अगर उसकी आँखें पूरी तरह ठीक हो जाएँगी तो वह अपने बच्चों सहित उनकी दासी बन जाएगी। खुद और अपने बच्चों के दास बनने के डर से उसने चिकित्सक से झूठ बोला। उसने कहा कि उसकी आँखें खराब हो रही हैं, जबकि वास्तव में वे पूरी तरह ठीक हो चुकी थीं। चिकित्सक को पता चल गया कि वह उसे धोखा दे रही है, इसलिए उसने बदला लेने के लिए उसे एक और मरहम दिया, जिससे वह पूरी तरह अंधी हो गई। इस बुरे कर्म के फलस्वरूप चिकित्सक को अपने बाद के जन्मों में कई बार अपनी दृष्टि खोनी पड़ी।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 1)
धम्म मनोपुब्बंगमा मनोसेठ मनोमाया
सीई पदुत्थेन मनसा भासति वा करोति वा ततो द
उक्खं अन्वेति वहतो पदं चक्कं इव।
धम्मा : अनुभव; मनोपुब्बंगमा : विचार पहले आता है; मनोसेट्ठा : विचार प्रमुख है; चे : इसलिए, यदि, पदुट्ठेन : (साथ) दूषित; मनसा : विचार; भासति : (कोई) बोलता है; करोति वा : या कार्य करता है; ततो : इसके कारण, दुःखं [ दुक्खा ]: पीड़ा; नं : वह व्यक्ति; अन्वेति : अनुसरण करता है; वहतो पदं [ पद ]: भार ढोने वाले पशु का खुर; चक्कं इव : जैसे गाड़ी का पहिया।
हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं, वह सब विचारों से शुरू होता है। हमारे शब्द और कर्म विचारों से ही उत्पन्न होते हैं। यदि हम बुरे विचारों से प्रेरित होकर बोलते या कार्य करते हैं, तो अप्रिय परिस्थितियाँ और अनुभव अवश्य ही उत्पन्न होते हैं। हम जहाँ भी जाते हैं, बुरे विचार अपने साथ लेकर चलते हैं, जिससे बुरी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। जब तक हम अपने बुरे विचारों से बंधे रहते हैं, तब तक हम इस पीड़ा से मुक्ति नहीं पा सकते। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे बैलगाड़ी का पहिया बैल के खुरों का पीछा करता है। बैलगाड़ी का पहिया, बैल के भारी भार के साथ, बैल का पीछा करता रहता है। बैल इस भारी भार से बंधा हुआ है और इसे छोड़ नहीं सकता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 1)
धम्मपद के पहले दो श्लोक बौद्ध धर्म की एक महत्वपूर्ण अवधारणा को प्रकट करते हैं। जहाँ अधिकांश धर्मों में यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि संसार की रचना 'ईश्वर' नामक एक अलौकिक सत्ता द्वारा की गई है, वहीं बौद्ध धर्म सिखाता है कि हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं (संसार और आत्मा दोनों), वह विचार या इंद्रिय बोध और अवधारणा की संज्ञानात्मक प्रक्रिया द्वारा निर्मित होता है। यह इस बात को भी सिद्ध करता है कि बौद्ध धर्म पर लिखने वाले लेखकों का यह कथन गलत है कि बुद्ध ने संसार की उत्पत्ति के विषय में

मौन रखा था। अंगुत्तरा निकाय के रोहितास्सा सूत्र में बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं कि संसार, संसार की उत्पत्ति, संसार का अंत और संसार के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग, सब कुछ इसी एक दैत्य लंबे शरीर में, इसकी बोध और अवधारणाओं सहित समाहित है।
मनो शब्द का सामान्य अनुवाद 'मन' के रूप में किया जाता है। लेकिन बुद्ध ने मन-पदार्थ विवाद में एक घटनात्मक दृष्टिकोण अपनाया, जिसने इतिहास भर के दार्शनिकों को उलझन में डाल दिया था। बुद्ध ने 'मन' और 'शरीर' की द्वैतता को अस्वीकार कर दिया। बुद्ध संयुत्त निकाय के सब्बा सूत्र में बताते हैं कि हम जिस भी चीज़ के बारे में बात कर सकते हैं, वह 'इंद्रिय अनुभव' है, जिसमें छठी इंद्रिय के रूप में विचार या अवधारणा भी शामिल है। नाम और रूप , जिनका सामान्य अनुवाद 'मन' और 'शरीर' के रूप में किया जाता है, दो ऐसी 'सत्ताएँ' नहीं हैं जो एक-दूसरे के संबंध में सह-अस्तित्व में हों। वे केवल 'अनुभव' नामक एकल 'क्रिया' को देखने के दो तरीके हैं। नाम (नामकरण) 'अनुभव' है जिसे व्यक्तिपरक रूप से 'किसी वस्तु की पहचान करने की मानसिक प्रक्रिया' ( रूप काये अधिवाचन सम्पस्सा ) के रूप में देखा जाता है।
रूप (प्रकटता) एक 'अनुभव' है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप से एक 'सत्ता' के रूप में देखा जाता है, जिसे पहचान की मानसिक प्रक्रिया ( नाम काये पथिघ सम्पस्सा ) के माध्यम से अनुभव और समझा जाता है। मनो का तात्पर्य 'विचार' या अवधारणा निर्माण की मानसिक प्रक्रिया से है, जो विभिन्न इंद्रियों द्वारा प्राप्त विभिन्न बोधों को एकीकृत करती है और उनसे अर्थ निकालती है। यह अर्थपूर्ण समग्र 'अनुभव' ही धम्म है , जिसे व्यक्तिपरक रूप से 'सत्ता की पहचान' ( नाम ) और वस्तुनिष्ठ रूप से 'पहचानी गई सत्ता' ( रूप ) के रूप में देखा जाता है। धम्म, जो कि "अनुभव की यह अर्थपूर्ण समग्रता" है, सामान्यतः सुखद या अप्रिय परिस्थिति ( लोक धम्म ) के रूप में देखी जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 2

---

(धम्मपद 1) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 3,4)

---

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 2 - मत्थकुंडली वत्थु

डॉ म्या टिन, एमएवर्जन

मनोपुबंगमा धम्म
मनोसेत्था मनोमाया
मनसा चे पसन्नेन
भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति
छायाव अनपायनी॥

श्लोक 2 : सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन है; उनका प्रधान मन है; वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख (सुख) परछाई की तरह उसका पीछा करता है, जो कभी उसका साथ नहीं छोड़ता।

---

1. सुखम्/सुख: इस संदर्भ में, सुख, संतुष्टि, सौभाग्य आदि, और सुखी अस्तित्व के तीन उच्चतर स्तरों में पुनर्जन्म।

---

मथकुंडली की कहानी

श्रावस्ती के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (2) का उच्चारण युवा ब्राह्मण मत्थकुंडली के संदर्भ में किया। मत्थकुंडली एक युवा ब्राह्मण था, जिसके पिता आदिन्नपुब्बक अत्यंत कंजूस थे और कभी दान नहीं करते थे। यहाँ तक कि अपने इकलौते पुत्र के लिए सोने के आभूषण भी उन्होंने कारीगरी का खर्च बचाने के लिए स्वयं बनाए थे। जब उनका पुत्र बीमार पड़ा, तो किसी चिकित्सक से परामर्श नहीं लिया गया, जब तक कि बहुत देर नहीं हो गई। जब उन्हें पता चला कि उनका पुत्र मर रहा है, तो उन्होंने युवक को घर के बाहर बरामदे में ले जाने का आदेश दिया, ताकि उनके घर आने वाले लोग उनकी संपत्ति न देख सकें।

उस सुबह, बुद्ध करुणा की गहरी ध्यान साधना से जल्दी उठकर अपने ज्ञान के जाल में मत्थकुंडली को बरामदे में लेटे हुए देखा। इसलिए जब वे अपने शिष्यों के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो वे ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के द्वार के पास खड़े हो गए। बुद्ध ने घर के अंदर की ओर मुख किए हुए युवक का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकाश की एक किरण भेजी। युवक ने बुद्ध को देखा; और क्योंकि वह बहुत दुर्बल था, वह केवल मन ही मन अपनी आस्था व्यक्त कर सका। लेकिन इतना ही पर्याप्त था। जब उसने बुद्ध के प्रति भक्ति भाव से भरे हृदय के साथ प्राण त्यागे, तो उसका पुनर्जन्म तावतिंसा स्वर्गलोक में हुआ।
अपने स्वर्गलोक से युवा मत्थकुंडली ने अपने पिता को श्मशान में शोक मनाते हुए देखकर, उनके पूर्वज स्वरूप में दर्शन दिए। उन्होंने अपने पिता को तावतिंसा लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया और उनसे बुद्ध को भोज पर आमंत्रित करने का आग्रह किया। आदिन्नपुब्बक के घर में यह प्रश्न उठा कि क्या कोई व्यक्ति केवल मन ही मन बुद्ध में गहरी आस्था रखने से, दान किए बिना या नैतिक नियमों का पालन किए बिना, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सकता है या नहीं। तब बुद्ध ने इच्छा की कि मत्थकुंडली स्वयं प्रकट हों; मत्थकुंडली शीघ्र ही दिव्य आभूषणों से सुसज्जित होकर प्रकट हुए और उन्होंने तावतिंसा लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया। तभी श्रोता आश्वस्त हुए कि ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के पुत्र ने केवल बुद्ध के प्रति अपना मन समर्पित करके ही अपार यश प्राप्त किया था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
श्लोक 2: सभी मानसिक घटनाओं का अग्रदूत मन होता है;
उनका सर्वोपरि अंग बुद्धि है; वे बुद्धि से निर्मित हैं।
यदि कोई शुद्ध मन से बोले या कार्य करे तो सुख उसका अनुसरण करता है।
एक ऐसी परछाई की तरह जो उसका कभी पीछा नहीं छोड़ती।

प्रवचन के अंत में मथकुंडली और उनके पिता आदिन्नपुब्बक ने सोतापत्ति मार्ग और सोतापत्ति फल की प्राप्ति की। आदिन्नपुब्बक ने अपनी लगभग सारी संपत्ति बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार में दान कर दी।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मट्टकुंडली की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा ब्राह्मण, मट्टकुंडली के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
मट्टकुंडली एक युवा ब्राह्मण थे, जिनके पिता आदिन्नपुब्बक अत्यंत कंजूस थे और कभी दान नहीं देते थे। यहाँ तक कि अपने इकलौते बेटे के लिए सोने के आभूषण भी उन्होंने कारीगरी का खर्च बचाने के लिए स्वयं बनाए थे। जब उनका बेटा बीमार पड़ा, तो किसी चिकित्सक से परामर्श नहीं लिया गया, जब तक कि बहुत देर हो चुकी थी। जब उन्हें पता चला कि उनका बेटा मर रहा है, तो उन्होंने युवक को घर के बाहर बरामदे में ले जाने का आदेश दिया, ताकि उनके घर आने वाले लोग उनकी संपत्ति न देख सकें।
उस सुबह, बुद्ध करुणा की गहन ध्यान अवस्था से जल्दी उठकर अपने ज्ञान के जाल में मट्टकुंडली को बरामदे में लेटे हुए देखा। इसलिए जब वे अपने शिष्यों के साथ भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो वे ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के द्वार के पास खड़े हो गए। बुद्ध ने घर के अंदर की ओर मुख किए हुए युवक का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रकाश की एक किरण भेजी। युवक ने बुद्ध को देखा; और क्योंकि वह बहुत दुर्बल था, वह केवल मन ही मन अपनी आस्था व्यक्त कर सका। लेकिन इतना ही पर्याप्त था। जब उसने बुद्ध के प्रति भक्ति भाव से प्राण त्यागे, तो उसका पुनर्जन्म तावतिंसा लोक में हुआ।
अपने स्वर्गलोक से युवा मट्टकुंडली ने अपने पिता को श्मशान में शोक मनाते हुए देखकर, अपने पुराने रूप में उनके सामने प्रकट हुए। उन्होंने अपने पिता को तावतिंस लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया और उनसे बुद्ध को भोजन पर आमंत्रित करने का आग्रह किया। आदिन्नपुब्बक के घर में यह प्रश्न उठा कि क्या कोई व्यक्ति केवल बुद्ध में गहरी आस्था का भाव रखने मात्र से, दान किए बिना या नैतिक नियमों का पालन किए बिना, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म ले सकता है या नहीं। तब बुद्ध ने मट्टकुंडली को स्वयं प्रकट होने का निमंत्रण दिया; मट्टकुंडली अपने दिव्य आभूषणों में प्रकट हुए और उन्हें तावतिंस लोक में अपने पुनर्जन्म के बारे में बताया। तभी श्रोताओं को यह विश्वास हो गया कि ब्राह्मण आदिन्नपुब्बक के पुत्र ने केवल बुद्ध के प्रति अपना मन समर्पित करके ही बहुत यश प्राप्त कर लिया था।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 2)
धम्म मनोपुब्बंगमा मनो सेठ मनोमया
सीई पसन्नेन मनसा भासति वा करोति वा ततो
सुखं नं अन्वेति अनापायिनि छाया इव
धम्मा : अनुभव; मनोपुब्बंगमा : विचार पहले आता है; मनोसेठा : विचार सर्वोपरि है; मनोमय : वे मन से बने हैं; चे : इसलिए, यदि; पसन्नेना : (शुद्ध) विचार के साथ; मनसा : विचार; भासति : (कोई) बोलता है; करोति वा : या कार्य करता है; ततो : इसके कारण; सुखं [ सुख ]: सुख; नं : वह व्यक्ति; अन्वेति : अनुसरण करता है; अनपायिनी : त्याग नहीं करता; छाया इव : छाया के समान।

मनुष्य को जो भी अनुभव होता है, वह उसके विचारों से उत्पन्न होता है। यदि उसके विचार अच्छे हैं, तो उसके शब्द और कर्म भी अच्छे होंगे। अच्छे विचारों, शब्दों और कर्मों का फल सुख होता है। यह सुख अच्छे विचारों वाले व्यक्ति का कभी साथ नहीं छोड़ता। सुख सदा उसके साथ रहता है, जैसे उसकी परछाई कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 2)

हम अपने जीवन की परिस्थितियों को किस प्रकार अनुभव करते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उन्हें कैसे समझते हैं। यदि हम उन्हें गलत तरीके से समझते हैं, तो हमें दुख का अनुभव होता है। यदि हम उन्हें सही तरीके से समझते हैं, तो हमें सुख का अनुभव होता है। दूसरे शब्दों में, हमारा सुख या दुख हमारे सोचने के तरीके पर निर्भर करता है।

विचार भविष्य के संदर्भ में भी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। यदि हम द्वेष रखते हैं और द्वेषपूर्ण बातें करते हैं या कार्य करते हैं, तो लोग हमसे घृणा करने लगेंगे। हमें समाज और कानून द्वारा दंडित किया जाएगा। मृत्यु के बाद, हमारा पुनर्जन्म भी दुख के लोक में होगा। यहाँ, 'विचार' का तात्पर्य कर्म (क्रिया) से है और 'अनुभव' का तात्पर्य परिणाम (परिणाम) से है ।

अंततः इन दो श्लोकों का संदेश यह है: “गलत सोचो तो दुख भोगो। सही सोचो तो सुख पाओ।” बुद्ध ने इन दो श्लोकों का उच्चारण अच्छे और बुरे कर्मों के अपरिहार्य परिणाम ( विपाक ) को दर्शाने के लिए किया था। मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है, चाहे वह अतीत में बोया हो या वर्तमान में। जो बोता है, वही वर्तमान और भविष्य में काटता है। मनुष्य स्वयं अपने सुख और दुख के लिए उत्तरदायी है। वह स्वयं अपना नरक और स्वर्ग बनाता है। वह अपने भाग्य का निर्माता है। जो बनाता है, वही बिगाड़ भी सकता है। बौद्ध धर्म कर्म और फल के नियम को समझकर और उसका उपयोग करके दुख से मुक्ति का मार्ग सिखाता है। बौद्ध धर्म अत्यंत यथार्थवादी और आशावादी है। अज्ञात अलौकिक शक्तियों पर अंधाधुंध निर्भर रहने और सुख की आशा करने के बजाय, बौद्ध धर्म वास्तविकता के माध्यम से सुख का सच्चा मार्ग खोजता है।

धम्मपद छंद 3 और 4 - तिसत्थेरा वत्थु

सम्युत्त निकया

अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 3 और 4

---

(धम्मपद 2) <<<< पिछला।अगला >>>> (धम्मपद 5)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 3 और 4 - तिसत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण

3. अक्कोच्ची माम अवधी माम
अजिनी मां अहसि मे,
ये च तं उपनयहन्ति।
वीरं तेसं न सम्मति॥

4. अक्कोच्ची माम अवधी माम
अजिनी मां, अहसि मे,
ये च तं न उपनयहंन्ति।
वेरं तेसुपससम्मति॥

श्लोक 3 : "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मेरा सामान चुरा लिया;"... ऐसे विचार रखने वालों की शत्रुता को शांत नहीं किया जा सकता।

श्लोक 4 : "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मेरा सामान चुरा लिया;"... ऐसे विचार न रखने वालों की शत्रुता को शांत किया जा सकता है।

---

थेरा टिस्सा की कहानी

सावत्थी में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (3) और (4) का उच्चारण किया। एक समय बुद्ध की मौसी के पुत्र तिस्सा बुद्ध के साथ रह रहे थे। उन्होंने वृद्धावस्था में ही भिक्षु का पद ग्रहण किया था, परन्तु वे स्वयं को वरिष्ठ भिक्षु समझते थे और जब कोई भिक्षु उनसे सेवा करने की अनुमति मांगता तो वे अत्यंत प्रसन्न होते थे। दूसरी ओर, वे कनिष्ठ भिक्षुओं के कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ थे; इसके अतिरिक्त, वे अक्सर कनिष्ठ भिक्षुओं से झगड़ा करते थे। यदि कोई उनके व्यवहार के कारण उन्हें डांटता तो वे रोते-बिलखते, अत्यंत असंतुष्ट और व्याकुल होकर बुद्ध के पास शिकायत लेकर जाते। अन्य भिक्षु भी उनके पीछे-पीछे बुद्ध के समक्ष जाते। बुद्ध ने उनसे कहा कि वे शत्रुता के विचार न रखें, क्योंकि शत्रुता का अंत केवल शत्रुता न रखने से ही संभव है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 3: "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया, उसने मुझ पर विजय प्राप्त की,"
उसने मेरा सामान चुरा लिया;
ऐसे विचार रखने वालों की शत्रुता को शांत नहीं किया जा सकता।
श्लोक 4: "उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा बर्ताव किया, उसने मुझ पर विजय प्राप्त की,"
उसने मेरा सामान चुरा लिया;
ऐसे विचार न रखने वालों की शत्रुता को शांत किया जा सकता है।

प्रवचन के अंत में, एक लाख भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु तिस्सा की कहानी
सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। तिस्सा, बुद्ध की मौसी का पुत्र था, जो एक समय बुद्ध के साथ रह रहा था। उसने वृद्धावस्था में ही भिक्षु का जीवन व्यतीत किया था, परन्तु वह वरिष्ठ भिक्षु होने का दिखावा करता था और जब कोई भिक्षु उससे सेवा करने की अनुमति मांगता था तो वह अत्यंत प्रसन्न होता था। दूसरी ओर, वह कनिष्ठ भिक्षुओं के कर्तव्यों का निर्वाह करने में विफल रहा; इसके अलावा, वह अक्सर कनिष्ठ भिक्षुओं से झगड़ा करता था। यदि कोई उसके व्यवहार के कारण उसे फटकारता, तो वह अत्यंत असंतुष्ट और व्यथित होकर रोते हुए बुद्ध के पास शिकायत लेकर जाता था।
एक बार गुरु ने उनसे पूछा, “तिस्सा, तुम इतने उदास और दुखी होकर, आँखों में आँसू लिए, रोते हुए मेरे पास क्यों आए हो?” दूसरे भिक्षुओं ने आपस में चर्चा की थी, “अगर वह अकेला जाएगा, तो परेशानी खड़ी कर सकता है।” इसलिए वे भी उसके साथ गए, गुरु को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। तिस्सा ने गुरु के प्रश्न का उत्तर दिया, “आदरणीय, ये भिक्षु मुझे गाली दे रहे हैं।” गुरु ने पूछा, “परन्तु तुम कहाँ बैठे थे?” “मठ के केंद्र में, राजकीय सभागार में, आदरणीय।” “क्या तुमने इन भिक्षुओं को आते हुए देखा?” “जी हाँ, आदरणीय, मैंने उन्हें देखा।” “क्या तुम उठकर उनसे मिलने गए?” “नहीं, आदरणीय, मैं नहीं गया।” “क्या तुमने उनके मठ के बर्तन लेने की पेशकश की?” “नहीं, आदरणीय, मैंने उन्हें लेने की पेशकश नहीं की।” “तिस्सा, ऐसा मत करो। केवल तुम ही दोषी हो; उनसे क्षमा मांगो।” “मैं उनसे क्षमा नहीं मांगूंगा, आदरणीय।”
भिक्षुओं ने गुरु से कहा, “हे पूज्यवर, यह तो बहुत हठी भिक्षु है।” गुरु ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इसने हठ दिखाया है; यह पिछले जन्म में भी हठी था।” “हे पूज्यवर, हम तो इसके वर्तमान हठ के बारे में सब जानते हैं; लेकिन पिछले जन्म में इसने क्या किया था?” “तो फिर, भिक्षुओं, सुनो,” गुरु ने कहा। ऐसा कहकर उन्होंने आगे की कहानी सुनाई।
एक समय की बात है, बनारस में एक राजा का शासन था। देवाला नामक एक तपस्वी, जो हिमालय में आठ महीने बिताकर वर्षा ऋतु के चार महीनों में नमक और सिरका लेने के लिए शहर के पास रहना चाहता था, हिमालय से लौटा। शहर के द्वार पर दो लड़कों को देखकर उसने उनसे पूछा, “इस शहर में आने वाले साधु रात कहाँ बिताते हैं?” लड़कों ने कहा, “हे पूज्यवर, कुम्हार के महल में।” तो देवाला कुम्हार के महल में गया, द्वार पर रुका और बोला, “हे भगव, यदि आपको यह स्वीकार्य हो, तो मैं आपके महल में एक रात बिताना चाहूँगा।” कुम्हार ने महल उसे सौंपते हुए कहा, “रात में महल में कोई काम नहीं होता है, और महल बड़ा है; हे पूज्यवर, आप यहाँ आराम से रात बिता सकते हैं।” देवाला के महल में प्रवेश करते ही बैठ गया कि हिमालय से लौट रहे नारद नामक एक अन्य तपस्वी ने कुम्हार से एक रात ठहरने की जगह माँगी। कुम्हार ने मन ही मन सोचा, "जो तपस्वी पहले आया है, वह शायद उसके साथ रात बिताना चाहे या न चाहे; इसलिए मैं स्वयं को इस जिम्मेदारी से मुक्त कर लेता हूँ।"
तब उन्होंने अभी-अभी आए तपस्वी से कहा, “आदरणीय गुरुदेव, यदि पहले आए तपस्वी को यह स्वीकार्य हो, तो आप यहाँ रात बिता सकते हैं।” तब नारद देवल के पास गए और बोले, “गुरुदेव, यदि आपको यह स्वीकार्य हो, तो मैं यहाँ एक रात बिताना चाहूँगा।” देवल ने उत्तर दिया, “यह हॉल बड़ा है; इसलिए अंदर आइए और एक तरफ रात बिताइए।” तब नारद अंदर गए और उनसे पहले आए तपस्वी के बगल में बैठ गए। दोनों ने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया।
जब सोने का समय हुआ, तो नारद ने ध्यान से देखा कि देवला कहाँ लेटे हैं और द्वार कहाँ है, और फिर वे भी लेट गए। लेकिन जब देवला लेटे, तो वे अपनी उचित जगह पर लेटने के बजाय सीधे द्वार के सामने लेट गए। इसका परिणाम यह हुआ कि जब नारद रात को बाहर गए, तो उन्होंने देवला की जटाओं पर पैर रख दिया। तब देवला चिल्लाए, “मेरी जटाओं पर कौन पैर रख रहा है?” नारद ने उत्तर दिया, “गुरुजी, मैं ही हूँ।” देवला ने कहा, “झूठे तपस्वी, आप जंगल से आकर मेरी जटाओं पर पैर रख रहे हैं।” नारद ने कहा, “गुरुजी, मुझे नहीं पता था कि आप यहाँ लेटे हैं; कृपया मुझे क्षमा करें।” तब नारद बाहर चले गए, देवला को रोते हुए छोड़कर, मानो उनका हृदय टूट जाएगा। देवला ने मन ही मन सोचा, “जब वह अंदर आएगा, तब भी मैं उसे अपने ऊपर पैर नहीं रखने दूँगा।” इसलिए वे मुड़े और

लेट गए, अपना सिर वहाँ रखा जहाँ उनके पैर पहले थे। जब नारद अंदर आए, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "पहली बार मैंने गुरु को चोट पहुँचाई थी; इस बार मैं उनके चरणों में से होकर गुजरूँगा।" इसका परिणाम यह हुआ कि जब नारद अंदर आए, तो उन्होंने देवल की गर्दन पर पैर रख दिया। तब देवल चिल्लाए, "यह कौन है?" नारद ने उत्तर दिया, "मैं हूँ, गुरुजी।" "झूठे तपस्वी," देवल ने कहा, "पहली बार तुमने मेरी जटाओं पर पैर रखा था। इस बार मेरी गर्दन पर पैर रखो। मैं तुम्हें श्राप दूँगा।" "गुरुजी, मेरी कोई गलती नहीं है। मुझे नहीं पता था कि आप इस स्थिति में लेटे हुए हैं। जब मैं अंदर आया तो मैंने मन ही मन सोचा, 'पहली बार मैंने गुरु को चोट पहुँचाई थी; इस बार मैं उनके चरणों में से होकर गुजरूँगा।' कृपया मुझे क्षमा करें।" "झूठे तपस्वी, मैं तुम्हें श्राप दूँगा।" "ऐसा मत करो, गुरुजी।" लेकिन देवल ने नारद की बातों पर ध्यान न देते हुए उन्हें श्राप दिया और कहा, "सूर्योदय के समय तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जाए।"
अब नारद ने देखा कि श्राप उनके तपस्वी भाई पर ही पड़ेगा, तो उन्हें उन पर दया आई और उन्होंने अपनी ध्यान शक्ति का प्रयोग करके सूर्योदय को रोक दिया। जब सूर्योदय नहीं हुआ, तो राजा को हस्तक्षेप करना पड़ा और देवला से क्षमा मांगने को कहा। देवला ने इनकार कर दिया। तब नारद ने देवला से कहा, "गुरुजी, मैं अपनी ध्यान शक्ति का प्रयोग करके सूर्योदय कराऊंगा। सूर्योदय के समय कृपया अपने सिर पर मिट्टी का एक ढेला रखें और पानी में डूबकर अलग-अलग स्थानों से निकलते हुए आगे बढ़ें।" जैसे ही सूर्य की किरणें उनके सिर पर रखे मिट्टी के ढेले पर पड़ीं, वह सात टुकड़ों में टूट गया। इसके बाद देवला पानी में डुबकी लगाकर एक अलग स्थान से निकले और भाग गए। बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा, "भिक्षुओं, उस समय राजा आनंद थे, देवला तिस्सा थे और नारद मैं स्वयं था, जब वह हठी थे।"
बुद्ध ने उन्हें शत्रुता के विचार न रखने की सलाह दी, क्योंकि इसे केवल मित्रता के विचारों से ही शांत किया जा सकता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 3)

मां अक्कोच्चि मां अवधी मां अजिनी में अहासी
ये तं उपनयहंति तेसं वेरं न सम्मति

मं : मुझे; अक्कोच्चि : (उसने) अपमान किया; मं : मुझे; अवधी : (उसने) हमला किया; मं : मुझे; अजिनी (उसने) पराजित किया; अहास : (उसने) लूटा; मे : मेरा (सामान); ये : वे लोग; तं : ऐसे विचार; उपनयहन्ति : बार-बार आते रहते हैं; तेसं [ तेस ]: उनके; वेरं [ वेर ]: शत्रुता; न संमति : कभी समाप्त नहीं होती।

जब कोई व्यक्ति यह मानता है कि उसका अपमान हुआ है, उस पर हमला हुआ है, उसे हराया गया है या उससे लूटपाट हुई है, तो उसका क्रोध लगातार बढ़ता जाता है। ऐसे व्यक्ति का क्रोध शांत होने का कोई रास्ता नहीं होता। वह जितनी बार अपनी काल्पनिक परेशानी के बारे में सोचता है, बदला लेने की उसकी इच्छा उतनी ही प्रबल होती जाती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 4) मां अक्कोच्चि मां अवधी मां अजिनी में अहासि
ये तं न उपनयहंति तेसं वेरं सम्मति ।

मं : मुझे; अक्कोच्चि : (उसने) अपमान किया; मं : मुझे; अवधी : (उसने) हमला किया; मं : मुझे; अजिनी : (उसने) पराजित किया; अहास : (उसने) लूटा; मे : मेरा (सामान); ये : वे लोग; तं : ऐसे विचार; न उपनयहन्ति : निरंतर नहीं लौटते; तेसं [ तेस ] : उनके; वेरं [ वेर ] : शत्रुता; संमति : समाप्त हो जाती है।

मानव समाज में रहते हुए, लोग अक्सर आपस में झगड़ते रहते हैं। ऐसे झगड़ों के दौरान, लोग अक्सर दूसरों द्वारा किए गए अन्याय के बारे में सोचते रहते हैं। इससे उनका गुस्सा बढ़ता जाता है। लेकिन जो लोग दूसरों को माफ कर देते हैं और उनके साथ हुए अन्याय को भूल जाते हैं, उनका गुस्सा जल्दी ही शांत हो जाता है। तब उन्हें शांति मिलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 3-4)

श्लोकों का यह युग्म उस मनोवैज्ञानिक सिद्धांत को प्रकट करता है जो भावनात्मक नियंत्रण का मूल आधार है। भावना शरीर की उत्तेजना है जो एक विचार से शुरू होती है। एक विचार एक मानसिक चित्र बनाता है, जिसे अगर मन में रखा जाए तो उससे संबंधित भावना उत्पन्न होती है। भावना तभी शांत होती है जब इस मानसिक चित्र को त्याग दिया जाता है और उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। बुद्ध ने अपने अनुयायियों को निरंतर यही सलाह दी कि वे प्रतिशोध न लें बल्कि हर समय और हर जगह, यहाँ तक कि उकसावे की स्थिति में भी, धैर्य का अभ्यास करें। बुद्ध उन लोगों की प्रशंसा करते हैं जो प्रतिशोध लेने की शक्ति होने के बावजूद दूसरों के अन्याय को सहन करते हैं। स्वयं धम्मपद में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो दर्शाते हैं कि बुद्ध ने किस प्रकार धैर्य का अभ्यास किया, यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की गई, उन्हें गालियाँ दी गईं और उन पर हमले किए गए। धैर्य कमजोरी या हार मानने का संकेत नहीं है, बल्कि महान पुरुषों और महिलाओं की अटूट शक्ति है। धैर्य का रहस्य मानसिक चित्र को बदलना या किसी स्थिति की व्याख्या करने के तरीके को बदलना है। इसका एक उदाहरण शांतिवादी जातक में दिया गया है, जहाँ संत शांतिवादी अपने पूर्व जन्म में बुद्ध गौतम थे। संत लगातार यही विचार दोहराते रहे, "राजा की दीर्घायु हो, वह हर हानि से मुक्त रहे," जबकि उस क्रूर राजा ने उनकी सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए उनके अंगों को काटकर उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया।

---

(धम्मपद 3,4) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 6)

---

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 5 - कलायक्खिनी वत्थु

---

डॉ म्या टिन, एमए संस्करण

न हि वेरेन वेराणि
सम्मन्तिध कुदाचनं।
एवरेण च सम्मन्ति,
एसो धम्मो सनन्तनो॥

श्लोक 5 : इस संसार में घृणा को घृणा से शांत नहीं किया जा सकता। यह केवल करुणा से शांत होती है। यही शाश्वत सत्य (धम्म) है।

---

1. एसो धम्मो सनन्तनो : यह " पोरानको धम्मो " के समान है, जो बुद्ध और उनके शिष्यों द्वारा अपनाया गया सिद्धांत है। उपदेश यह है कि घृणा का उत्तर घृणा से न दें, बल्कि प्रेम और दया (घृणा का अभाव) द्वारा घृणा पर विजय प्राप्त करें।

---

कलायक्खिनी की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (5) का उच्चारण किया, जो एक निश्चित महिला के संदर्भ में था जो बांझ थी, और उसकी प्रतिद्वंद्वी।

एक समय की बात है, एक गृहस्थ रहता था जिसकी पत्नी बांझ थी; बाद में उसने दूसरी पत्नी से विवाह किया। दोनों के बीच तब झगड़ा शुरू हुआ जब पहली पत्नी ने दूसरी पत्नी का गर्भपात करा दिया, जिसकी प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई। बाद के जन्मों में दोनों ने एक मुर्गी और एक बिल्ली, एक हिरणी और एक तेंदुआ, और अंत में श्रावस्ती के एक कुलीन व्यक्ति की पुत्री और काली नामक एक राक्षसी के रूप में पुनर्जन्म लिया। राक्षसी (कलयक्खिनी) बच्चे वाली स्त्री का पीछा कर रही थी, तभी स्त्री को पता चला कि बुद्ध पास ही जेतवन मठ में धार्मिक प्रवचन दे रहे हैं। वह उनके पास भागी और अपने बेटे को उनके चरणों में सुरक्षा के लिए रख दिया। मठ के संरक्षक देवता ने राक्षसी को द्वार पर ही रोक दिया और उसे प्रवेश नहीं दिया। बाद में उसे बुलाया गया और बुद्ध ने स्त्री और राक्षसी दोनों को फटकारा। बुद्ध ने उन्हें एक ही पति की प्रतिद्वंद्वी पत्नियों के रूप में, एक बिल्ली और एक मुर्गी के रूप में, और एक हिरणी और एक तेंदुआ के रूप में उनके पिछले झगड़ों के बारे में बताया। उन्हें यह समझाया गया कि नफरत केवल और अधिक नफरत को जन्म दे सकती है, और इसे केवल मित्रता, समझ और सद्भावना के माध्यम से ही समाप्त किया जा सकता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 5: इस संसार में घृणा से घृणा कभी शांत नहीं होती।
यह केवल प्रेम और दया से ही शांत होता है। यही शाश्वत सत्य (धम्म) है।

प्रवचन के अंत में, राक्षसी को सोतापत्ती फल प्राप्ति में स्थापित किया गया और लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी का अंत हो गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कालियाकखिनी की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक बांझ स्त्री और दूसरी संतान उत्पन्न करने में सक्षम स्त्री के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, एक गृहस्थ रहता था जिसकी पत्नी बांझ थी। संतान न होने और पति एवं सास के दुर्व्यवहार के भय से उसने अपने पति का विवाह दूसरी स्त्री से करवा दिया। परन्तु दो बार, जैसे ही बांझ पत्नी को पता चला कि दूसरी पत्नी गर्भवती है, उसने उसे औषधि मिलाकर भोजन दे दिया जिससे उसका गर्भपात हो गया। तीसरी बार गर्भवती होने पर, उसने बांझ पत्नी को बिना बताए यह बात गुप्त रखी। परन्तु जब दूसरी पत्नी को पता चला, तो उसने फिर से गर्भपात करवा दिया। अंततः दूसरी पत्नी की प्रसव के दौरान मृत्यु हो गई। मरने से पहले, उस दुर्भाग्यशाली स्त्री के मन में घृणा भर गई और उसने बांझ पत्नी और उसकी संतान से बदला लेने की कसम खाई। इस प्रकार दोनों के बीच दुश्मनी शुरू हो गई।

अपने बाद के जन्मों में, दोनों ने एक मुर्गी और एक बिल्ली, एक हिरणी और एक तेंदुआ, और अंत में सावत्थी के एक रईस की बेटी और एक दुष्ट आत्मा के रूप में पुनर्जन्म लिया। एक दिन वह (काली यक्षिणी) रईस की बेटी और उसके बच्चे का पीछा कर रही थी। जब इस स्त्री ने सुना कि बुद्ध जेतवन मठ में धार्मिक प्रवचन दे रहे हैं, तो वह उनके पास दौड़कर गई और अपने बेटे को उनकी रक्षा के लिए उनके चरणों में रख दिया। दुष्ट आत्मा को मठ में प्रवेश करने से रोक दिया गया। बाद में उसे बुलाया गया और बुद्ध ने स्त्री और दुष्ट आत्मा दोनों को उपदेश दिया। बुद्ध ने उन्हें प्रतिद्वंद्वी पत्नियों के रूप में उनके पिछले झगड़ों और एक-दूसरे के प्रति घृणा के बारे में बताया। उन्हें समझाया गया कि घृणा केवल घृणा को जन्म देती है, और यह केवल मित्रता, समझ और सद्भावना के माध्यम से ही समाप्त हो सकती है। दोनों को अपनी गलती का एहसास हुआ, और बुद्ध के उपदेश पर उन्होंने एक-दूसरे से सुलह कर ली।

तब बुद्ध ने उस स्त्री से अपने पुत्र को दुष्ट आत्मा के हवाले करने का अनुरोध किया। अपने पुत्र की सुरक्षा को लेकर चिंतित होकर वह हिचकिचाई, लेकिन बुद्ध के प्रति अपनी भक्ति और विश्वास के कारण उसने अपने पुत्र को सौंप दिया।

दुष्ट आत्मा ने बच्चे का गर्मजोशी से स्वागत किया। अपने बेटे की तरह बच्चे को प्यार से चूमने और सहलाने के बाद, उसने बच्चे को उसकी माँ को वापस सौंप दिया। परिणामस्वरूप, घृणा का कोई अस्तित्व नहीं रहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 5)

इधा वेरेण वेराणि कुदाकनं न हि सम्मन्ति
अवेरेना च सम्मन्ति एसा सनन्तनो धम्मो

इधा : इस संसार में; वेरानी : घृणा (शत्रुता); वेरेना : घृणा के माध्यम से; कुदाकनम् [ कुदाकाण ]: किसी भी समय नहीं; न हि सम्मन्ति : शांत नहीं हुआ; एवेरेना सीए : केवल गैर-घृणा से; सम्मन्ति : शांत हो जाते हैं; ईएसए : यह (है); सनंतनो [ सनंतना ]: चिरयुवा; धम्मो [ धम्म ]: बुद्धि।

जो लोग घृणा को घृणा से जीतने का प्रयास करते हैं, वे उन योद्धाओं के समान हैं जो हथियारबंद दुश्मनों को हराने के लिए हथियार उठाते हैं। इससे घृणा का अंत नहीं होता, बल्कि उसे बढ़ने का अवसर मिलता है। परन्तु, प्राचीन ज्ञान घृणा पर विजय पाने की एक भिन्न, शाश्वत रणनीति का समर्थन करता है। यह शाश्वत ज्ञान है घृणा का सामना अघृणा से करना। घृणा को घृणा से जीतने का प्रयास कभी सफल नहीं होता। परन्तु, अघृणा से घृणा पर विजय पाने की विधि शाश्वत रूप से प्रभावी है। इसीलिए इस विधि को शाश्वत ज्ञान कहा जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 5)

इस श्लोक में निहित सिद्धांत स्पष्ट है। झगड़े करने से कलह समाप्त नहीं हो सकती। युद्ध को और युद्धों से समाप्त नहीं किया जा सकता। शत्रुता का बदला शत्रुता से नहीं लिया जा सकता। क्रोध, शत्रुता, झगड़े और युद्धों का त्याग करने से ही इन बुराइयों को रोका जा सकता है। मित्रता, क्षमा और विस्मरण के माध्यम से ही शत्रुता का अंत होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 6

---

(धम्मपद 5) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 7,8)

---

अंतर्वस्तु

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 6 - कोसंबका वत्थु

———————————————————————

परे च न विजानन्ति
मयामेत् यममसे।
ये च तत् विजानन्ति,
ततो सम्मन्ति मेधागा॥

———————————————————————

श्लोक 6 : बुद्धिमानों के सिवा अन्य लोग यह नहीं समझते कि "हम सबको इस संसार में मरना है" (और इस बात को न समझते हुए वे आपस में झगड़ते रहते हैं)। बुद्धिमान इसे समझते हैं और इस प्रकार उनके झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————

1. परे च ना विजयनन्ति: 'परे' का अर्थ है 'अन्य'; इस संदर्भ में, बुद्धिमानों के अतिरिक्त अन्य लोग। ये लोग यह नहीं समझते कि उन्हें मरना है, और ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वे कभी मरने वाले ही न हों और लगातार झगड़ते रहते हैं। इसलिए, उन्हें कभी-कभी अज्ञानी या मूर्ख, या प्रेम और सम्मान के अयोग्य कहा जाता है।
2. मायामेत्था यमामासे: शाब्दिक अर्थ, "हमें यहाँ मरना होगा," जिसका अर्थ है कि हम, इस दुनिया के निवासी, मरेंगे; या सभी मनुष्य नश्वर हैं।
3. ये च तत्थ विजानन्ति: जो समझते हैं, यानी बुद्धिमान, उनके मामले में। बुद्धिमान समझते हैं (या महसूस करते हैं) कि सभी मनुष्य नश्वर हैं।

———————————————————————

कोसंबी भिक्षुओं की कहानी

सावत्थी में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (6) कहा।
कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए थे। एक समूह विनय के गुरु का अनुसरण करता था और दूसरा धम्म के शिक्षक का, और वे अक्सर आपस में झगड़ते रहते थे। बुद्ध भी उन्हें झगड़ने से नहीं रोक सके; इसलिए उन्होंने उन्हें छोड़ दिया और वर्षा ऋतु के दौरान पलिलेय्यक वन के पास रक्खिता वन में अकेले ही वर्षा ऋतु व्यतीत की। वहाँ हाथी पलिलेय्य बुद्ध की सेवा करता था।
कोसंबी के शिष्यों को जब बुद्ध के प्रस्थान का कारण पता चला, तो उन्होंने शेष भिक्षुओं को भेंट देने से इनकार कर दिया। इससे उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनके बीच सुलह हो गई। फिर भी, जब तक भिक्षु बुद्ध के समक्ष अपनी गलती स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक शिष्य उनके साथ पहले जैसा सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे। लेकिन बुद्ध के प्रस्थान पर जाने और वर्षाकाल के मध्य में होने के कारण, कोसंबी के भिक्षुओं ने वर्षाकाल दुख और कठिनाइयों में बिताया।
वर्षावास के अंत में, पूज्य आनंद और पाँच सौ भिक्षु बुद्ध के पास पहुँचे और अन्नथापिंडिका और अन्य गृहस्थ शिष्यों का संदेश दिया, जिसमें उनसे वापस लौटने का आग्रह किया गया था। कुछ समय बाद बुद्ध श्रावस्ती स्थित जेतवन मठ लौट आए। भिक्षु उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे, उनके चरणों में गिर पड़े और अपनी गलती स्वीकार की। बुद्ध ने उन्हें अवज्ञा करने के लिए फटकारा। उन्होंने उनसे कहा कि वे याद रखें कि एक दिन उन सभी को मरना है, इसलिए उन्हें अपने झगड़े बंद करने चाहिए और ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे कि वे कभी नहीं मरेंगे।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 6 : बुद्धिमानों के सिवा अन्य लोग यह नहीं समझते कि "हम सबको इस संसार में मरना है" (और इस बात को न समझते हुए वे आपस में झगड़ते रहते हैं)। बुद्धिमान इसे समझते हैं और इस प्रकार उनके झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, उपस्थित सभी भिक्षु सोतापत्ति फल की अवस्था में स्थापित हो गए।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसंबी भिक्षुओं की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था। कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए थे। एक समूह विनय के गुरु का अनुसरण करता था और दूसरा धम्म के शिक्षक का। एक बार वे विनय के एक छोटे से नियम को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। बुद्ध भी उन्हें झगड़ने से नहीं रोक सके; इसलिए वे उन्हें छोड़कर मानसून के मौसम में वर्षावास (धार्मिक विश्राम) के दौरान परिलय्यक वन के पास रक्खिता वन में एकांतवास में रहे। वहाँ हाथी परिलय्य बुद्ध की सेवा करता था।

कोसंबी के शिष्यों को जब बुद्ध के प्रस्थान का कारण पता चला, तो उन्होंने शेष भिक्षुओं को भेंट देने से इनकार कर दिया। इससे उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनके बीच सुलह हो गई। फिर भी, जब तक वे बुद्ध के समक्ष अपनी गलती स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक शिष्य उनके साथ पहले जैसा सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे। लेकिन बुद्ध के प्रस्थान में वर्षाकाल चल रहा था; इसलिए कोसंबी के भिक्षुओं ने वर्षाकाल दुख और कठिनाइयों में बिताया।

वर्षावास के अंत में, पूज्य आनंद और कई भिक्षु बुद्ध के पास पहुँचे और अनाथपिंडिका और अन्य शिष्यों का संदेश दिया, जिसमें उनसे वापस लौटने का आग्रह किया गया था। कुछ समय बाद बुद्ध सावत्थी स्थित जेतवन मठ लौट आए। भिक्षु उनके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे, उनके चरणों में गिर पड़े और अपनी गलती स्वीकार की। बुद्ध ने उन्हें अवज्ञा करने के लिए फटकारा। उन्होंने उनसे कहा कि वे याद रखें कि एक दिन उन सभी को मरना है, इसलिए उन्हें अपने झगड़े बंद कर देने चाहिए और ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए जैसे कि वे कभी नहीं मरेंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 6)

एत्थ परे मायं यममसे न च विजानन्ति तथा
ये च विजान्ति ततो मेधागा सम्मन्ति ।

एत्था : इस स्थान पर; पारे : वे अन्य; मायां [ माया ]: हम; यममसे : मर जाओ; न विजानन्ति : नहीं जानता; तथाः यहाँ; तु सीए : कुछ; विजयन्ति : जानो (इसे); ततो : उसके कारण (जागरूकता); मेधागा : संघर्ष और विवाद; सम्मन्ति : शांत हो जाओ।

हममें से अधिकांश लोग नश्वरता और मृत्यु की वास्तविकता का सामना करने को तैयार नहीं हैं। हम इस तथ्य को भूल जाते हैं कि हमारा जीवन क्षणभंगुर है, और इसी कारण हम आपस में झगड़ते हैं, मानो हम हमेशा जीवित रहने वाले हों। लेकिन, यदि हम मृत्यु की वास्तविकता का सामना कर लें, तो हमारे झगड़े समाप्त हो जाएंगे। तब हमें यह एहसास होगा कि जब हम स्वयं मरने के लिए बाध्य हैं, तो लड़ना मूर्खता है। भावनाओं से उत्तेजित होकर हमारे विचार धुंधले हो जाते हैं, जिससे हम जीवन के सत्य को नहीं देख पाते। लेकिन जब हम सत्य को देख लेते हैं, तो हमारे विचार भावनाओं से मुक्त हो जाते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 6)

बौद्ध धर्म का सार मृत्यु और अनित्यता की वास्तविकता का सामना करना है। हम इसलिए व्यथित होते हैं क्योंकि हम भावनाओं के वश में होकर वास्तविकता से दूर भागते हैं। भावनाएँ वास्तविकता के विपरीत होती हैं; इसलिए वास्तविकता के द्वारा उनका पतन होना तय है। मृत्यु की वास्तविकता का सामना करने पर न केवल क्रोध बल्कि सभी स्वार्थी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यह एक ऐसा व्यावहारिक विचार है जो सभी दुःखों का अंत कर देता है। जो लोग बौद्ध धर्म के इस मार्ग से वास्तविकता का सामना नहीं करते, वे व्यथित और क्रोधित बने रहते हैं और फलस्वरूप व्यथित होते हैं।

आम तौर पर लोग इस बात से अनजान होते हैं कि एक दिन मृत्यु उन्हें भी आड़े आ जाएगी। वे इस सार्वभौमिक सत्य के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं। भिक्षु और गृहस्थ, दोनों ही मृत्यु के प्रति अनभिज्ञ होकर और स्वयं को अमर समझते हुए, अक्सर सद्गुणों के विकास में लापरवाही बरतते हैं। वे कलह और वाद-विवाद में उलझे रहते हैं और अक्सर निराश हो जाते हैं, उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। कभी-कभी वे भविष्य में किसी कार्य को भव्य रूप से करने की आशा में उसे टाल देते हैं, और अंत में कुछ भी करने में असमर्थ रह जाते हैं। इसलिए, प्रतिदिन मृत्यु पर चिंतन करना उचित है।

मृत्यु के प्रति सजग रहना बौद्ध धर्म में जीवन के वास्तविक स्वरूप को समझने का केंद्रबिंदु है। इस संसार में विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे लोग हैं जो मृत्यु शब्द से ही घृणा करते हैं, चिंतन करना तो दूर की बात है। दीर्घायु, स्वास्थ्य, यौवन और समृद्धि के मोह में चूर होकर वे इस तथ्य को पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे मृत्यु के अधीन हैं। पांचों इंद्रियों के क्षणभंगुर सुखों में डूबे हुए वे इस संसार में केवल भौतिक सुख की ही खोज करते हैं, भविष्य के जीवन की पूर्ण उपेक्षा करते हैं और मन, शरीर और वाणी के द्वारा दुराचार में लिप्त रहते हैं। वे इस क्षणिक और अस्थिर जीवन को स्थायी और शाश्वत मानते हैं। ऐसे अंध और अज्ञानी लोगों में असंतोष की भावना जगाने, माता-पिता और बच्चों के वियोग तथा धन-संपत्ति से वियोग के कारण होने वाले दुःख को कम करने, सभी प्राणियों में अनित्यता का सिद्धांत स्थापित करने और इस प्रकार उन्हें जीवन की असंतुष्टि का बोध कराने तथा उन्हें शाश्वत शांति की प्राप्ति की ओर निर्देशित करने के लिए ही बुद्ध ने ये उपदेश दिए थे।

जो व्यक्ति बुद्ध के उपदेशों को नहीं समझ पाया है, वह दीर्घायु के प्रति आसक्त होकर स्वयं को अमर समझता है, भले ही वह अपने आसपास अनेकों मृत्यु देखता हो; वह उत्तम स्वास्थ्य के प्रति आसक्त होकर स्वयं को रोगमुक्त समझता है, भले ही वह अपने आसपास

असंख्य रोगग्रस्त व्यक्तियों को देखता हो; वह यौवन के प्रति आसक्त होकर स्वयं को वृद्धावस्था से अछूता समझता है; वह धन और समृद्धि के प्रति आसक्त होकर असंख्य व्यक्तियों को धन की हानि से निर्धन होते देखता है; और वह एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचता कि वह स्वयं भी ऐसी ही स्थिति में आ सकता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 7 और 8

---

(धम्मपद 6) <<<< पिछला।अगला >>>> (धम्मपद 9,10)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 7 और 8 - महालत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

सुभानुपास्सिम विहरन्तम
इंद्रयेसु अस्नवुतं,
भोजने च अमत्तञ्चुं।
कुसीतं हीनवीर्यं,
तं वे पसहति मारो,
वातो रुखखव दुब्बलं॥

असुभानुपस्सिम विहरन्तम
इंद्रयेसु सुसंवुतं,
भोजने च मत्तञ्चुन।
साधं अर्धवीर्यं,
तं वे नप्पसहति मारो,
वातो सेलम्व पब्बतं॥

---

श्लोक 7 : जो व्यक्ति अपने मन को सुखदायक वस्तुओं पर रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित है, अपने भोजन में अति करता है, और आलसी और ऊर्जाहीन है, वह निश्चित रूप से मारा (3) से अभिभूत हो जाएगा, जैसे तूफानी हवाएँ एक कमजोर पेड़ को उखाड़ देती हैं।

---

श्लोक 8 : जो व्यक्ति अपने मन को (शरीर की) अशुद्धियों पर केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अच्छी तरह से नियंत्रित है और विश्वास और ऊर्जा से परिपूर्ण है, वह निश्चित रूप से मारा से अभिभूत नहीं होगा, जैसे तूफानी हवाएं चट्टान के पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

---

1. मारो/मारा: मृत्यु, यौन सुख, भौतिक धन और रोग का देवदूत; अर्थात् शैतान। साथ ही वे दोष/लक्षण जो निर्वाण की प्राप्ति में बाधक हैं।
2. सद्धम/सद्ध: भाष्य के अनुसार,

(क) बुद्ध, धम्म (सिद्धांत) और संघ (बौद्ध धार्मिक व्यवस्था) में अटूट (अडिग) आस्था और
(ख) कर्म (कार्य) और उसके परिणामों में आस्था या विश्वास।
3. 1 का संदर्भ लें।

———————————————————————————

थेरा महाकाल की कहानी
सेताब्य नगर के आसपास निवास करते हुए, बुद्ध ने महाकाल और उनके भाई चुलकाला के संदर्भ में इस ग्रंथ के श्लोक (7) और (8) कहे। महाकाल और चुलकाला सेताब्य नगर के दो व्यापारी भाई थे। एक बार अपने माल के साथ यात्रा करते समय, उन्हें बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन को सुनने का अवसर मिला। प्रवचन सुनने के बाद महाकाल ने बुद्ध से भिक्षु संघ में प्रवेश का अनुरोध किया। चुलकाला भी संघ में शामिल हो गए, लेकिन उनका इरादा संघ से बाहर निकलकर अपने भाई को भी अपने साथ बाहर ले जाना था। महाकाल श्मशान (शोसानिका धुतिंग) में गंभीर तपस्या करते थे और क्षय एवं अनित्यता पर गहन ध्यान लगाते थे। अंततः उन्हें अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और वे अरहतत्व की प्राप्ति हुई।
बाद में, बुद्ध और उनके शिष्य, जिनमें उनके भाई भी शामिल थे, संयोगवश सेताब्या के पास सिम्सपा के जंगल में ठहरे हुए थे। वहाँ ठहरते समय, चुलकाला की पूर्व पत्नियों ने बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने घर आमंत्रित किया। चुलकाला स्वयं बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए बैठने की व्यवस्था करने के लिए आगे गया। वहाँ पहुँचने पर, चुलकाला की पूर्व पत्नियों ने उन्हें गृहस्थ वस्त्र पहना दिए। अगले दिन, महाकाल की पत्नियों ने बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने घर आमंत्रित किया, इस उम्मीद में कि वे महाकाल के साथ वही करेंगी जो चुलकाला की पत्नियों ने चुलकाला के साथ किया था। भोजन के बाद उन्होंने बुद्ध से अनुरोध किया कि महाकाल को कुछ देर रुकने दें ताकि वे "आभार व्यक्त" (अनुमोदन) कर सकें। इस प्रकार बुद्ध और अन्य शिष्य चले गए।
गाँव के द्वार पर पहुँचकर भिक्षुओं ने अपनी असंतुष्टि और आशंका व्यक्त की। वे असंतुष्ट थे क्योंकि महाकाल को पीछे रहने की अनुमति दी गई थी और उन्हें डर था कि चुलकाला की तरह, उनके भाई महाकाल को भी उनकी पूर्व पत्नियों द्वारा संघ छोड़ने के लिए विवश कर दिया जाएगा। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया कि दोनों भाई एक समान नहीं थे। चुलकाला इंद्रिय सुखों में लिप्त था और आलसी एवं दुर्बल था; वह एक कमजोर वृक्ष के समान था। दूसरी ओर, महाकाल परिश्रमी, दृढ़ और बुद्ध, धम्म और संघ में अपनी आस्था में मजबूत था; वह चट्टान के पर्वत के समान था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 7 : जो व्यक्ति सुखदायक वस्तुओं पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, भोजन में अति करता है, और आलसी और ऊर्जाहीन है, वह निश्चित रूप से मारा के प्रकोप से अभिभूत हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार जैसे तूफानी हवाएं एक कमजोर पेड़ को उखाड़ देती हैं।

———————————————————————————

श्लोक 8 : जो व्यक्ति अपने मन को (शरीर की) अशुद्धियों पर केंद्रित रखता है, जो अपनी इंद्रियों पर अच्छी तरह से नियंत्रित है और विश्वास और ऊर्जा से परिपूर्ण है, वह निश्चित रूप से मारा से अभिभूत नहीं होगा, जैसे तूफानी हवाएं चट्टान के पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

———————————————————————————

इसी बीच, महाकाल की पूर्व पत्नियों ने उन्हें घेर लिया और उनके पीले वस्त्र उतारने का प्रयास किया। थेरा ने उनकी मंशा भांपते हुए खड़े होकर अपनी अलौकिक शक्तियों से आकाश में उड़ान भरी और घर की छत को भेदते हुए ऊपर पहुँच गए। वे बुद्ध के चरणों में ठीक उसी क्षण उतरे जब गुरु अपने उपरोक्त दो श्लोकों का उच्चारण समाप्त कर रहे थे। उसी समय, वहाँ एकत्रित सभी भिक्षु सोतापत्ति फल की प्राप्ति कर चुके थे।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु महाकाल की कहानी
सेतव्य नगर के आसपास निवास करते हुए, बुद्ध ने महाकाल और उनके भाई चूलकाला के संदर्भ में ये श्लोक कहे। चूलकाला, मज्झिमा काल और महाकाल सेतव्य में रहने वाले तीन गृहस्थ थे, जो भाई थे। चूलकाला और महाकाल, जो क्रमशः बड़े और छोटे थे, पाँच सौ रथों के अपने काफिले के साथ विदेश यात्रा करते थे और बेचने के लिए सामान लाते थे, और मज्झिमा काल उनके द्वारा लाए गए सामान को बेचते थे। एक बार दोनों भाई अपने पाँच सौ रथों में विभिन्न प्रकार का सामान लेकर सावत्थी के लिए रवाना हुए, और सावत्थी और

जेतवन के बीच विश्राम करके अपने रथों को खोल दिया। शाम को महाकाल ने सावत्थी के निवासी श्रेष्ठ शिष्यों को हाथों में मालाएँ और इत्र लिए धर्म का प्रवचन सुनने जाते हुए देखा। "वे कहाँ जा रहे हैं?" उसने पूछा। जब उसे उत्तर मिला कि वे धर्म का प्रवचन सुनने जा रहे हैं, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैं भी जाऊँगा।" इसलिए उसने अपने सबसे छोटे भाई से कहा, "प्रिय भाई, रथों की रखवाली करना; मैं धर्म का प्रवचन सुनने जा रहा हूँ।" इतना कहकर वह गया और बुद्ध को प्रणाम किया तथा सभा के बाहरी घेरे में बैठ गया।
उस दिन गुरु ने महाकाल की मनस्थिति को ध्यान में रखते हुए क्रमबद्ध तरीके से धर्म का उपदेश दिया और दुखों के समूह पर सूत्र तथा अन्य सूत्रों का हवाला देते हुए इंद्रिय सुखों के पाप, मूर्खता और अशुद्धता पर प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद महाकाल गुरु के अधीन भिक्षु बन गए। चूलक ने भी भिक्षु का पद ग्रहण किया। परन्तु चूलक के मन में यह विचार था, "कुछ समय बाद मैं संसार में लौटकर अपने भाई को भी साथ ले जाऊँगा।"
कुछ समय बाद महाकाल ने दीक्षा ली और गुरु के पास जाकर उनसे पूछा, "इस धर्म में कितने कर्तव्य हैं?" गुरु ने उन्हें बताया कि दो ही कर्तव्य हैं। महाकाल ने कहा, "आदरणीय, क्योंकि मैंने वृद्धावस्था में भिक्षु का संस्कार ग्रहण किया है, इसलिए मैं अध्ययन का कर्तव्य तो नहीं निभा पाऊंगा, परन्तु ध्यान का कर्तव्य निभा सकता हूं।" अतः उन्होंने गुरु से श्मशान में ध्यान का अभ्यास करने का आग्रह किया, जो अर्हतत्व की ओर ले जाता है। पहले पहर के अंत में, जब सभी सो रहे थे, वे श्मशान गए; और भोर होते ही, किसी के उठने से पहले, वे मठ लौट आए। अब एक प्रतिष्ठित युवती एक बीमारी से ग्रसित हो गई, और जिस क्षण बीमारी ने उसे जकड़ा, उसी क्षण शाम को, वृद्धावस्था या कमजोरी के किसी लक्षण के बिना, उसकी मृत्यु हो गई। शाम को उसके रिश्तेदार और मित्र उसके शरीर को श्मशान में लकड़ी, तेल और अन्य आवश्यक सामग्री के साथ लाए और श्मशान के रखवाले से कहा, "इस शरीर को जला दें।" और श्मशान घाट के रखवाले को सामान्य शुल्क देकर, उन्होंने शव उसे सौंप दिया और चले गए। जब श्मशान घाट के रखवाले ने स्त्री का वस्त्र हटाया और उसके सुंदर सुनहरे रंग के शरीर को देखा, तो उसने तुरंत मन में सोचा, "यह शव परम पूज्य को अर्पित करने के लिए ध्यान का एक उपयुक्त विषय है।" अतः वह पूज्य के पास गई, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "मेरे पास ध्यान का एक बहुत अच्छा विषय है; कृपया इसे देखें, पूज्य।" पूज्य ने कहा, "ठीक है।" अतः वे गए और शव को ढके हुए वस्त्र को हटवाया और पैरों के तलवों से लेकर बालों के सिरों तक शरीर का निरीक्षण किया। फिर उन्होंने कहा, "इस सुंदर सुनहरे रंग के शरीर को अग्नि में डाल दो, और जैसे ही अग्नि की लपटें इसे पकड़ लें, कृपया मुझे बता देना।" ऐसा कहकर वे अपने स्थान पर गए और बैठ गए। श्मशान घाट के रखवाले ने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था और जाकर पूज्य को सूचित किया। पूज्य आए और शरीर का निरीक्षण किया। जहां ज्वालाओं ने शरीर को छुआ था, वहां उसका शरीर चित्तीदार गाय के रंग जैसा हो गया था; पैर बाहर निकले हुए और लटके हुए थे; हाथ पीछे की ओर मुड़े हुए थे; माथे पर चमड़ी नहीं थी। पूज्य महाराज ने मन ही मन सोचा, "यह शरीर, जो अभी देखने वालों को पवित्र वचन भुला देता था, अब क्षय की अवस्था में पहुँच गया है, अब मृत्यु की अवस्था में पहुँच गया है।" और अपने रात्रि कक्ष में जाकर वे बैठ गए, क्षय और मृत्यु को स्पष्ट रूप से समझते हुए। महाकाल ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त की और अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया।
जब महाकाल ने अरहत्त्व प्राप्त किया, तब बुद्ध भिक्षुओं के समूह से घिरे हुए, स्थान-स्थान यात्रा करते हुए सेतव्य पहुंचे और सिम्सपा वन में प्रवेश किया। चूलकाला की पत्नियों ने बुद्ध के आगमन की सूचना सुनकर मन ही मन सोचा, "अब हम अपने पति को वापस पा लेंगी।" अतः वे गईं और बुद्ध को आमंत्रित किया। अब जब बुद्ध के आगमन की अपेक्षा होती है, तो यह प्रथा है कि एक भिक्षु पहले जाकर सूचना देता है। जब चूलकाला भिक्षा देने की तैयारी के लिए घर लौटे, तो उनकी पत्नियों ने उनके वस्त्र फाड़ दिए। महाकाल की आठों पत्नियों ने भी सोचा कि वे अपने पति को वस्त्र त्यागने के लिए मना लेंगी। एक दिन, उन्होंने बुद्ध और शिष्यों के लिए भिक्षादान का आयोजन किया और बुद्ध से अनुरोध किया कि वे महाकाल को भिक्षादान के बाद धन्यवाद मंत्र का उच्चारण करने के लिए वहीं छोड़ दें। बुद्ध उन्हें उनके पूर्व निवास पर छोड़कर अन्य शिष्यों के साथ चले गए।
जब बुद्ध गाँव के द्वार पर पहुँचे, तो भिक्षुओं का समूह नाराज़ हो गया और कहने लगा, "बुद्ध ने ऐसा कैसे कर दिया! क्या उन्होंने जानबूझकर किया या अनजाने में? कल चूलकाला आए थे और उनका संन्यास समाप्त हो गया था। लेकिन आज एक दूसरे भिक्षु आए और ऐसा कुछ नहीं हुआ।" बुद्ध ने महाकाल को वापस भेज दिया और अपने मार्ग पर आगे बढ़ गए। भिक्षुओं ने कहा, "भिक्षु महाकाल गुणी और धर्मनिष्ठ हैं। क्या वे उनके संन्यास का अंत कर देंगे?" महाकाल की पत्नियों ने उन्हें गृहस्थ बनाने का प्रयास किया, लेकिन वे अपनी मानसिक शक्ति से अरहत के रूप में वायु में विलीन हो गए और बुद्ध के सामने प्रकट हुए जब वे इन दो श्लोकों का पाठ कर रहे थे। भिक्षु महाकाल ने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने अन्य भिक्षुओं से कहा कि अरहत महाकाल की तुलना भिक्षु चूलकाला से करना उनकी गलती थी।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 7)
सुभानुपासिं विहरन्तं इंद्रियेसु असवुतुं
भोजनमहि च अमत्तन्नुं कुसीतां हिनावीर्यं
तं वे पसहति मारो वातो दुब्बलं रुक्खं इव

सुभानुपस्सिं [ सुभानुपस्सिं ]: इंद्रिय सुखों के आकर्षण में लीन रहने वाला; विहारन्तं [ विहारन्त ]: जो रहता है; इंद्रियेसु : इंद्रियों में; असंवुतं [ असंवुत ]: लापरवाह; भोजनंहि च : भोजन में भी; अमतञ्ञु [ अमतञ्ञु ]: अतिभोगी; कुसीतं [ कुसीत ]: आलसी; हीनवीरियं [ हीनवीरिय ]: प्रयास करने में कमजोर; तं : वह व्यक्ति; मारो : 'मारा' (शैतान के समतुल्य) के रूप में मानवीकृत भावना; वे : वास्तव में; पसहति : हावी हो जाता है; वातो : हवा; दुब्बलं [ दुब्बल ]: कमजोर; रुक्खं [ रुक्खा ]: वृक्ष; इव : के समान।

जो लोग इंद्रिय सुखों के आकर्षण में लिप्त रहते हैं, अपनी इंद्रियों को अनियंत्रित रखते हैं और अत्यधिक खान-पान रखते हैं, वे आलसी और दृढ़ संकल्प तथा इच्छाशक्ति में कमजोर होते हैं। भावनाएँ ऐसे व्यक्तियों पर उसी आसानी से हावी हो जाती हैं जैसे हवा एक कमजोर पेड़ को गिरा देती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 8)

असुभानुपासिं विहारं इंद्रियेसु सुसंवुतां
भोजनमहि च मत्तन्नुं सद्धं अरद्ध वीर्यं
मारो तं वे नप्पासहति वातो सेलं पब्बतं इव ।

असुभानुपासिं [ असुभानुपासि ]: कामुक आनंद की अनाकर्षकता पर ध्यान देना; विहारान्तम् [ विहारान्त ]: वह जो रहता है; इंद्रियेसु : इंद्रियों में; सुसंवुताम् [ सुसावुता ]: अच्छी तरह से संरक्षित; भोजनमहि च : भोजन में भी; मत्तान्नुṃ [ मत्तान्नु ]: मध्यम; सद्धं [ सद्ध ]: समर्पित; अरद्ध वीर्यं [ वीर्य ]: प्रयास में मजबूत; तं : वह व्यक्ति; मारो : भावनाओं को 'मारा' ('शैतान' के समतुल्य) के रूप में व्यक्त किया गया; नप्पासहति : प्रबल नहीं होता; वातो : वायु; सेलं पब्बताम् [ पब्बाता ]: चट्टानी पर्वत; इवा : पसंद है।

जो लोग इंद्रिय सुखों की अनाकर्षकता पर ध्यान देते हैं, अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हैं और खान-पान में संयम बरतते हैं, वे शिक्षा और निरंतर विधिवत अभ्यास के प्रति समर्पित रहते हैं। ऐसे व्यक्ति भावनाओं से उसी प्रकार प्रभावित नहीं होते जैसे कोई चट्टानी पर्वत हवा से नहीं हिलता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 7-8)

जो लोग आशावाद की झूठी धारणा रखते हैं और सोचते हैं कि जीवन कांटों से रहित फूलों की सेज है, वे जीवन के सुखद पक्ष पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं और अप्रिय पक्ष को अनदेखा कर देते हैं। परिणामस्वरूप, वे चीजों से आसक्त हो जाते हैं और उन्हें "यह मेरा है" या "यह मैं ही हूँ" कहने लगते हैं। जब वे चीजें जिनसे वे जुड़े हुए हैं, बदल जाती हैं और उनसे अलग हो जाती हैं, तो वे विलाप करते हैं कि जो "उनका" है और जो "वे स्वयं" हैं, वह टूट रहा है और मर रहा है। जो लोग जीवन के अप्रिय पक्ष, गुलाबों में छिपे कांटों को देखते हैं, उनकी आसक्तियाँ कमजोर हो जाती हैं। ऐसा होने पर, आसक्त वस्तुओं से परिवर्तन और वियोग से उन्हें अधिक दुख या शोक नहीं होता।

असुभानुपस्सना का अर्थ पीड़ा के उस कष्ट पर चिंतन करना नहीं है जिससे घृणा या अरुचि उत्पन्न होती है। उसे घृणा की अनुभूति ( पठिघ सन्ज्ञा ) कहा जाता है, जिससे बचना चाहिए। इसका सही अर्थ इंद्रिय सुख के बुरे पक्ष पर चिंतन करना है, जिसे लोग अक्सर अनदेखा करना पसंद करते हैं और ऐसा करने से वे दुख में पड़ जाते हैं, ठीक उसी दुख से जिससे वे बचने की कोशिश कर रहे हैं। सच्चा आशावाद जीवन का एकतरफा दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि जीवन की समस्याओं का समाधान देखने की क्षमता है। यही बौद्ध धर्म का आशावाद है।

ये दो श्लोक सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति त्यागकर जीवन में सुख प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। पहला कदम है यथार्थवादी चिंतन करना। इंद्रियों पर नियंत्रण रखना, सुखद और अप्रिय परिस्थितियों में इच्छा और घृणा से प्रतिक्रिया करना छोड़ना सीखना है। खान-पान की आदतों पर नियंत्रण रखना और आलस्य पर विजय प्राप्त करना, सही चीजों पर ध्यान केंद्रित करने और इस प्रकार भावनात्मक आसक्तियों से मन को मुक्त करने के लिए आवश्यक है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 9 और 10

---

(धम्मपद 7, 8) <<<< पिछला|अगला >>>> (धम्मपद 11, 12)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 9 और 10 - देवदत्त वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
अनिक्कसावो कसावं
यो वत्थं परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन,
न सो कसावमर्हति॥

यो च वन्तकसावस्स
सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन,
स वे कसावमर्हति॥

---

श्लोक 9 : जो नैतिक दोषों (किलेसस) से मुक्त नहीं है और फिर भी पीला वस्त्र पहनता है, जो अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रखता और सत्य नहीं बोलता, वह पीले वस्त्र के योग्य नहीं है।

---

श्लोक 10 : जिसने सभी नैतिक दोषों (किलेसस) को त्याग दिया है, जो नैतिक उपदेशों में दृढ़ है, संयम से युक्त है और सत्य बोलता है, वह वास्तव में पीले वस्त्र के योग्य है।

---

1. कसवम् या कसवम् वत्थम्: बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा धारण किया जाने वाला पीला या लालिमा लिए पीला वस्त्र। उपरोक्त श्लोकों में शब्दों का एक क्रीड़ा है; 'अनिक्कसवो' का अर्थ है, नैतिक दोषों से मुक्त नहीं और इसलिए कलंकित; और कसवम्, किसी कसैले रस में रंगे पीले वस्त्र पर कलंक लगा हुआ है।
2. वंतकसव'अस्सा: शाब्दिक अर्थ है, सभी नैतिक विकारों को उगल दिया है; इसका अर्थ है, चार पथ ज्ञान (मग्ग नाना) के माध्यम से सभी नैतिक विकारों को त्याग दिया है।

---

देवदत्त की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (9) और (10) का उच्चारण किया।
एक बार दो प्रमुख शिष्य, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना, सावत्थी से राजगृह गए। वहाँ राजगृह के लोगों ने उन्हें और उनके एक हजार अनुयायियों को सुबह के भोज में आमंत्रित किया। उस अवसर पर किसी ने एक लाख मूल्य का एक वस्त्र दान समारोह के आयोजकों को सौंप दिया। उन्होंने उन्हें निर्देश दिया कि यदि धन की कमी हो तो वे इसे बेच दें और उससे प्राप्त राशि का उपयोग समारोह के लिए करें, या यदि कोई कमी न हो तो इसे किसी भी भिक्षु को दान कर दें जिसे वे उचित समझें। संयोगवश, किसी चीज की कमी नहीं थी और वस्त्र किसी थेर को दान किया जाना था। चूंकि दोनों प्रमुख शिष्य राजगृह में कभी-कभार ही आते थे, इसलिए वस्त्र देवदत्त को दान किया गया, जो राजगृह के स्थायी निवासी थे।
देवदत्त ने तुरंत उस कपड़े से वस्त्र बनवाए और उन्हें पहनकर शान से घूमने लगे। तभी राजगृह से एक भिक्षु सावत्थी में बुद्ध को प्रणाम करने आया और उसने देवदत्त और एक लाख रुपये के कपड़े से बने वस्त्र के बारे में बताया। बुद्ध ने कहा कि यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ऐसे वस्त्र पहन रहे हैं जिनके वे योग्य नहीं हैं। फिर बुद्ध ने आगे यह कथा सुनाई।
देवदत्त अपने पिछले जन्मों में से एक में हाथी शिकारी था। उस समय, एक विशेष जंगल में बड़ी संख्या में हाथी रहते थे। एक दिन, शिकारी ने देखा कि ये हाथी पच्चेकबुद्धों को देखकर घुटने टेक देते हैं। यह देखकर, शिकारी ने एक पीले वस्त्र का ऊपरी भाग चुरा लिया और उससे अपना शरीर और हाथ ढक लिए। फिर, हाथ में भाला लिए, वह हाथियों के नियमित मार्ग पर उनका इंतजार करने लगा। हाथी आए और उसे पच्चेकबुद्ध समझकर घुटने टेककर प्रणाम करने लगे। वे आसानी से शिकारी के शिकार बन गए। इस प्रकार, उसने कई दिनों तक प्रतिदिन एक-एक करके पंक्ति के अंतिम हाथी को मार डाला।
उस समय बोधिसत्व (भविष्य के बुद्ध) झुंड के नेता थे। अपने अनुयायियों की घटती संख्या को देखकर उन्होंने जाँच-पड़ताल करने का निर्णय लिया और अपने झुंड के अंत में चले गए। वे सतर्क थे, इसलिए भाले से बच गए। उन्होंने शिकारी को अपनी सूंड से पकड़ लिया और उसे ज़मीन पर पटकने ही वाले थे कि उन्होंने पीले वस्त्र देखे। पीले वस्त्र को देखकर वे रुक गए और शिकारी की जान बख्श दी।

पीले वस्त्र की आड़ में हत्या करने का प्रयास करने और इस प्रकार का घिनौना कृत्य करने के लिए शिकारी को फटकार लगाई गई। शिकारी स्पष्ट रूप से पीले वस्त्र पहनने के योग्य नहीं था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 9 : जो नैतिक दोषों (किलेसस) से मुक्त नहीं है और फिर भी पीला वस्त्र पहनता है, जो अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रखता और सत्य नहीं बोलता, वह पीले वस्त्र के योग्य नहीं है।

---

श्लोक 10 : जिसने सभी नैतिक दोषों (किलेसस) को त्याग दिया है, जो नैतिक उपदेशों में दृढ़ है, संयम से युक्त है और सत्य बोलता है, वह वास्तव में पीले वस्त्र के योग्य है।

---

प्रवचन के अंत में, कई भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की स्थापना की।
पच्चेकबुद्ध : वे व्यक्ति जो बुद्ध की तरह चार आर्य सत्यों में आत्मप्रबुद्ध हैं और सभी नैतिक विकारों (किलेषों) को जड़ से उखाड़ चुके हैं। हालांकि, वे दूसरों को शिक्षा नहीं दे सकते। पच्चेकबुद्ध बुद्ध शासन (शिक्षा) के अभाव में प्रकट होते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
देवदत्त की कहानी
सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। एक अवसर पर, दो प्रमुख शिष्य, प्रत्येक अपने साथ पाँच सौ भिक्षुओं का दल लेकर, बुद्ध से विदा लेकर जेतवन से राजगृह गए। राजगृह के निवासियों ने दो-तीन के समूहों में और बड़े समूहों में आगंतुकों को दान देने की प्रथा के अनुसार दान दिया। एक दिन पूज्य सारिपुत्त ने धन्यवाद भाषण देते हुए कहा, “हे गृहस्थों, एक व्यक्ति स्वयं दान देता है, परन्तु दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित नहीं करता; उसे भविष्य में धन का आशीर्वाद तो मिलता है, परन्तु दासों का आशीर्वाद नहीं। दूसरा व्यक्ति अपने पड़ोसी को दान देने के लिए प्रेरित करता है, परन्तु स्वयं दान नहीं देता; उसे भविष्य में दासों का आशीर्वाद तो मिलता है, परन्तु धन का आशीर्वाद नहीं। तीसरा व्यक्ति न तो स्वयं दान देता है और न ही दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करता है; उसे भविष्य में खट्टी-मीठी रोटी भी नहीं मिलती, परन्तु वह निर्धन और दरिद्र रहता है। चौथा व्यक्ति स्वयं भी दान देता है और अपने पड़ोसी को भी दान देने के लिए प्रेरित करता है; उसे भविष्य में सौ जन्मों में, हजार जन्मों में, एक लाख जन्मों में धन और दासों दोनों का आशीर्वाद मिलता है।” इस प्रकार पूज्य सारिपुत्त ने धर्म का उपदेश दिया।
एक व्यक्ति ने पूज्यवर को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित करते हुए कहा, “पूज्यवर, कल मेरे आतिथ्य सत्कार को स्वीकार कीजिए।” भिक्षादान के लिए किसी ने एक लाख रुपये मूल्य का एक वस्त्र भिक्षादान समारोह के आयोजकों को सौंप दिया। उन्होंने उन्हें निर्देश दिया कि यदि धन की कमी हो तो वे इसे बेच दें और उससे प्राप्त राशि का उपयोग समारोह के लिए करें, या यदि कोई कमी न हो तो इसे किसी भी भिक्षु को दे दें जिसे वे उचित समझें। संयोगवश किसी चीज की कमी नहीं थी और वस्त्र किसी भिक्षु को ही दिया जाना था। चूंकि दो मुख्य शिष्य राजगृह में कभी-कभार ही आते थे, इसलिए वस्त्र देवदत्त को दिया गया, जो राजगृह के स्थायी निवासी थे।
बात कुछ इस तरह हुई। कुछ लोगों ने कहा, “इसे पूज्य सारिपुत्त को दे देते हैं।” दूसरों ने कहा, “पूज्य सारिपुत्त आते-जाते रहते हैं। लेकिन देवदत्त हमारे निरंतर साथी हैं, त्योहारों और आम दिनों में भी, और पानी के घड़े की तरह हमेशा तत्पर रहते हैं। इसलिए इसे उन्हें दे देते हैं।” लंबी चर्चा के बाद चार लोगों के बहुमत से देवदत्त को वस्त्र देने का निर्णय लिया गया। तो उन्होंने देवदत्त को वस्त्र दे दिया। देवदत्त ने उसे दो भागों में काटा, उसे सिला, रंगा, एक भाग को अंतर्वस्त्र और दूसरे को अंतर्वस्त्र के रूप में पहना और उसे पहनकर घूमने लगे। जब लोगों ने उन्हें नया वस्त्र पहने देखा, तो उन्होंने कहा, “यह वस्त्र देवदत्त को शोभा नहीं देता, बल्कि पूज्य सारिपुत्त को शोभा देता है। देवदत्त ऐसे अंतर्वस्त्र और अंतर्वस्त्र पहनकर घूम रहे हैं जो उन्हें शोभा नहीं देते।” बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब देवदत्त ने ऐसे वस्त्र पहने हैं जो उन्हें शोभा नहीं देते; पिछले जन्म में भी उन्होंने ऐसे वस्त्र पहने थे जो उन्हें शोभा नहीं देते थे।” ऐसा कहकर उन्होंने आगे बताया।
बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर राज करते थे, तब वहाँ एक हाथी शिकारी रहता था जो हाथियों को मारकर अपना जीवन यापन करता था। एक जंगल में कई हजार हाथी चरते थे। एक दिन जब वे जंगल गए, तो उन्हें कुछ एकांत बुद्ध दिखाई दिए। उस दिन से वे आते-जाते समय एकांत बुद्ध के सामने घुटने टेककर प्रणाम करते थे और फिर आगे बढ़ते थे।
एक दिन हाथी शिकारी ने उनकी हरकतें देखीं। उसने सोचा, “मुझे भी तुरंत पीले वस्त्र धारण कर लेने चाहिए।” इसलिए वह एक ऐसे तालाब के पास गया जहाँ एक साधु बुद्ध स्नान कर रहे थे, और जब वे किनारे पर अपने वस्त्र रखे हुए थे, तो उसने उनके वस्त्र चुरा लिए। फिर वह हाथियों के आने-जाने वाले रास्ते पर भाला हाथ में लिए और सिर पर वस्त्र ओढ़े बैठ गया। हाथियों ने उसे देखा और उसे साधु

बुद्ध समझकर प्रणाम किया और फिर अपने रास्ते चले गए। सबसे अंत में आने वाले हाथी को उसने भाले से मार डाला। उसके दांत और अन्य मूल्यवान अंग लेकर और मृत जानवर के शेष भाग को जमीन में गाड़कर वह चला गया।

बाद में, भविष्य के बुद्ध, जिनका हाथी के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, हाथियों के सरदार और झुंड के स्वामी बन गए। उस समय भी हाथी शिकारी पहले की तरह ही रणनीति अपना रहा था। बुद्ध ने अपने दल की संख्या में कमी देखी और पूछा, "ये हाथी कहाँ जाते हैं कि झुंड इतना छोटा हो गया है?" "हमें नहीं पता, स्वामी।" बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "वे जहाँ भी जाते हों, मेरी अनुमति के बिना नहीं जाते होंगे।" तभी उनके मन में संदेह आया, "पीले वस्त्र ओढ़े एक विशेष स्थान पर बैठा हुआ व्यक्ति ही परेशानी का कारण होगा; उस पर नज़र रखनी होगी।"

इसलिए हाथियों के झुंड के सरदार ने बाकी हाथियों को आगे भेज दिया और खुद बहुत धीरे-धीरे पीछे-पीछे चलने लगा। जब बाकी हाथियों ने प्रणाम करके आगे बढ़ गए, तो हाथी शिकारी ने बुद्ध को आते देखा। उसने तुरंत अपना वस्त्र समेटा और भाला फेंक दिया। बुद्ध ने पास आते ही ध्यान से देखा और भाले से बचने के लिए पीछे हट गए। बुद्ध ने सोचा, "यही वह व्यक्ति है जिसने मेरे हाथियों को मारा है," और तुरंत उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़े। लेकिन हाथी शिकारी एक पेड़ के पीछे छिप गया और नीचे झुक गया। बुद्ध ने सोचा, "मैं अपनी सूंड से शिकारी और पेड़ दोनों को घेर लूँगा, शिकारी को पकड़ लूँगा और उसे ज़मीन पर पटक दूँगा।" ठीक उसी क्षण शिकारी ने अपना पीला वस्त्र उतार दिया और हाथी को दिखा दिया। जब बुद्ध ने उसे देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मैंने इस व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध किया, तो हज़ारों बुद्धों, निजी बुद्धों और अरहतों का मेरे प्रति आदर अवश्य ही नष्ट हो जाएगा।" इसलिए उन्होंने धैर्य बनाए रखा। फिर उसने शिकारी से पूछा, "क्या तुमने ही मेरे इन सभी रिश्तेदारों को मारा है?" "जी, स्वामी," शिकारी ने उत्तर दिया। "तुमने इतना बुरा काम क्यों किया? तुमने ऐसे वस्त्र पहने हैं जो वासनाओं से मुक्त लोगों को शोभा देते हैं, परन्तु तुम्हें शोभा नहीं देते। ऐसा करके तुमने घोर पाप किया है।" इतना कहकर उसने उसे अंतिम बार फिर फटकारा। "तुमने जो किया है वह उचित नहीं है," उसने कहा।

जब बुद्ध ने यह उपदेश समाप्त किया, तो उन्होंने जातक के पात्रों की पहचान इस प्रकार की, "उस समय हाथी का शिकारी देवदत्त था, और उसे फटकारने वाला महान हाथी मैं स्वयं था। भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि देवदत्त ने ऐसा वस्त्र धारण किया है जो उसके लिए अशोभनीय था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 9)

अनिक्कसावो दमास्स्केन एपेटो यो कसावम्

वत्थं परिदहेस्सति सो कसावं न अरहति

अनिक्कसावो [ अनिक्कसाव ]: अशुद्धियों के दाग से अछूता; दमसच्चेन : भावनात्मक नियंत्रण और वास्तविकता की जागरूकता; अपेतो [ अपेता ]: रहित; यो : कोई व्यक्ति; कासावं वत्थं [ वत्थ ]: दागदार वस्त्र; परिदहेस्सति : पहनता है; इसलिए : वह व्यक्ति; कासावं [ कासाव ]: दागदार वस्त्र; न अरहति : योग्य नहीं है।

एक भिक्षु दोषों से ग्रसित हो सकता है, आत्म-संयम और वास्तविकता की जागरूकता से वंचित हो सकता है। ऐसा भिक्षु, भले ही वह 'रंजित वस्त्र' (जंगली पौधों से प्राप्त रंगों से विशेष रूप से रंगा हुआ भिक्षु का वस्त्र) धारण करे, वह ऐसे संत वस्त्र के योग्य नहीं है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 10)

यो च वन्तकसवस्सा सिलेसु सुसामहितो

दमास्स्केन सो उपेतो स वे कसावं अरहति

यो च : यदि कोई व्यक्ति; वन्तकसावस्स : दोषों के दाग से मुक्त; सीलेसु : सुव्यवस्थित; सुसमाहितो [ सुसमाहित ] : जो भीतर से शांत हो; दमसच्चेन : भावनात्मक नियंत्रण और वास्तविकता की जागरूकता से युक्त; उपेतो [ उपेत ] : संपन्न; सो : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; कासावं [ कासाव ] : दागदार वस्त्र; अरहति : योग्य है।

जो कोई भी 'रंजित वस्त्र' धारण करता है, जो दोषों से मुक्त है, जिसका आचरण अच्छा है और जो मन से शांत है, जिसकी भावनाएं वश में हैं और जो वास्तविकता से अवगत है, ऐसा व्यक्ति पवित्र 'रंजित वस्त्र' के योग्य है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 9-10)

बौद्ध धर्म में 'रंजित वस्त्र' पवित्रता का प्रतीक है। वे इस विशेष रूप से तैयार किए गए भिक्षु वस्त्र को पवित्र और पूजनीय मानते हैं। बौद्ध इस वस्त्र को धारण करने वाले व्यक्ति के प्रति श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं। यह वस्त्र संघ का प्रतीक है , जो बौद्ध धर्म की पवित्र त्रिमूर्ति - बुद्ध , धम्म और संघ - का एक भाग है ।

जब कोई व्यक्ति बौद्ध भिक्षु के रूप में दीक्षा लेता है, तो उसे यह अहसास होता है कि वह सांसारिक जगत से ऊपर उठकर एक पवित्र व्यक्ति बन गया है। यह अहसास तब और भी प्रबल हो जाता है जब आम लोग उसके सामने नतमस्तक होते हैं। यह नई 'आत्म-छवि' नवदीक्षित व्यक्ति को पवित्रता का नया जीवन शुरू करने में मदद करती है। आम लोग भी भिक्षु के दर्शन और आराधना से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसलिए, भिक्षु के प्रति यह श्रद्धा बौद्ध धर्म की साधना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

इसीलिए अपवित्रता से दूषित व्यक्ति पीले वस्त्र के योग्य नहीं है। अपवित्र होने पर इसे पहनना अपवित्रता है। यह पवित्र वस्त्र का अपमान है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 11 और 12

---

(धम्मपद 9, 10) <<<< पिछला ॥ श्लोक 11 और 12 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 13, 14)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 11 और 12 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

सारे च असारदास्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति,
मिच्छासंकप्पगोचरा॥

सारञ्च सारतो ञत्वा,
असारञ्च सारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति,
सम्मासंकप्पगोचरा॥

---

श्लोक 11 : वे असत्य को सत्य मान लेते हैं; वे सत्य को असत्य मान लेते हैं; ऐसे लोग कभी सत्य तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उनके विचार गलत हैं।

---

श्लोक 12 : वे सत्य को सत्य मानते हैं; वे असत्य को असत्य मानते हैं; ऐसे लोग सत्य तक पहुँचते हैं, क्योंकि वे सही दृष्टिकोण रखते हैं।

---

1. असारे: शाब्दिक अर्थ, सारहीन; टीका के अनुसार, गलत दृष्टिकोण, अर्थात् असत्य।
2. सारे: शाब्दिक अर्थ, सार; टीका के अनुसार, सही दृष्टिकोण, अर्थात् सत्य।
3. सिरम: सत्य — टीका के अनुसार, धम्म का सार। धम्म के सार में शील (नैतिकता के नैतिक उपदेश), समाधि (एकाग्रता), पन्ना (ज्ञान), विमुक्ति (मुक्ति), विमुक्ति-नानदासन (मुक्ति का ज्ञान और अंतर्दृष्टि), हरमत्था (परम सत्य) और निर्वाण शामिल हैं।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी

राजगाह में वेलुवाना नामक बांस के जंगल में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (11) और (12) का उच्चारण किया, जो मुख्य शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना (पूर्व में उपतिस्सा और कोलिता) के पूर्व शिक्षक संजय के संदर्भ में थे।

उपतिस्सा और कोलिता, राजगृह के पास स्थित दो गांवों के दो युवक थे। एक नाटक देखते हुए उन्हें वस्तुओं की निरर्थकता का अहसास हुआ और उन्होंने मुक्ति का मार्ग खोजने का निश्चय किया। सर्वप्रथम वे राजगृह में विचरण करने वाले तपस्वी संजय के पास गए, परन्तु

उनकी शिक्षाओं से संतुष्ट नहीं हुए। अतः वे जंबूद्वीप के चारों ओर घूमे और सच्चे धर्म की खोज में असफल होकर अपने जन्मस्थान लौट आए। इस बिंदु पर उन्हें यह समझ आया कि जिसने सच्चे धर्म को पा लिया है, उसे दूसरों को भी इसके बारे में बताना चाहिए।
एक दिन उपतिस्सा की मुलाकात थेरा असाजी से हुई और उन्होंने उनसे धम्म का सार सीखा। थेरा ने "ये धम्म हेतुप्पभव" से शुरू होने वाला श्लोक कहा, जिसका अर्थ है, "वे घटनाएँ जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं"। श्लोक सुनकर उपतिस्सा सोतापत्ति मार्ग और फल में स्थापित हो गए। फिर, जैसा उन्होंने वादा किया था, वे अपने मित्र कोलिता के पास गए, उन्हें बताया कि उन्होंने, उपतिस्सा ने, अमरता की अवस्था प्राप्त कर ली है और अपने मित्र को वही श्लोक दोहराया। कोलिता भी श्लोक के अंत में सोतापत्ति फल में स्थापित हो गए। दोनों को अपने पूर्व गुरु की याद आई और वे संजय के पास गए और उनसे कहा, "हमें वह व्यक्ति मिल गया है जो अमरता का मार्ग दिखा सकता है; बुद्ध संसार में प्रकट हुए हैं; धम्म प्रकट हुआ है; संघ प्रकट हुआ है... आइए, हम गुरु के पास चलें।" उन्हें आशा थी कि उनके पूर्व गुरु उनके साथ बुद्ध के पास जाएंगे और प्रवचन सुनकर वे भी मार्ग और फल को जान लेंगे। लेकिन संजय ने इनकार कर दिया।
इस प्रकार उपतिस्सा और कोलिता अपने ढाई सौ अनुयायियों के साथ वेलुवन स्थित बुद्ध के पास गए। वहाँ उनका दीक्षा संस्कार हुआ और वे भिक्षु संघ में शामिल हो गए। रूपासारी के पुत्र उपतिस्सा को थेरा सारिपुत्त के नाम से जाना जाने लगा; मोग्गली के पुत्र कोलिता को थेरा महा मोग्गलाना के नाम से जाना जाने लगा। दीक्षा के सातवें दिन महा मोग्गलाना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। थेरा सारिपुत्त ने दीक्षा के पखवाड़े भर बाद यही पद प्राप्त किया। उसी दिन बुद्ध ने उन्हें अपना दो प्रमुख शिष्य (अग्ग-सवक) बनाया।
फिर दोनों प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध को बताया कि वे गिरग्गा उत्सव में कैसे गए, थेरा असाजी से उनकी मुलाकात कैसे हुई और उन्हें सोतापत्ति का फल कैसे प्राप्त हुआ। उन्होंने बुद्ध को अपने पूर्व गुरु संजय के बारे में भी बताया, जिन्होंने उनके साथ जाने से इनकार कर दिया था। संजय ने कहा था, "इतने सारे शिष्यों का गुरु होने के नाते, मेरा उनका शिष्य बनना ऐसा होगा जैसे घड़ा पीने का प्याला बन जाए। इसके अलावा, बुद्धिमान तो कुछ ही होते हैं और अधिकांश मूर्ख होते हैं; बुद्धिमान बुद्धिमान गौतम के पास जाएं, मूर्ख तो फिर भी मेरे पास ही आएंगे। आप अपने-अपने मार्ग पर चलें, मेरे शिष्यों।"
इस प्रकार, जैसा कि बुद्ध ने बताया, संजय का झूठा अभिमान उसे सत्य को सत्य के रूप में देखने से रोक रहा था; वह असत्य को सत्य के रूप में देख रहा था और कभी भी वास्तविक सत्य तक नहीं पहुंच पाएगा।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 11 : वे असत्य को सत्य मान लेते हैं; वे सत्य को असत्य मान लेते हैं; ऐसे लोग कभी सत्य तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि उनके विचार गलत हैं।

---

श्लोक 12 : वे सत्य को सत्य और असत्य को असत्य मानते हैं; ऐसे लोग सत्य तक पहुँचते हैं, क्योंकि वे सही दृष्टिकोण रखते हैं। प्रवचन के अंत में, बहुत से लोग सोतापत्ति फल प्राप्ति में स्थापित हुए।

---

प्रवचन के अंत में, कई लोग सोतापत्ति फल प्राप्ति में स्थापित हो गए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भिक्षु सारिपुत्त की कहानी
राजगृह में स्थित वेलुवाना नामक बांस के उपवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इन श्लोकों का उल्लेख संजय के संदर्भ में किया था, जो उनके प्रमुख शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना (पूर्व में उपतिस्सा और कोलिता) के पूर्व शिक्षक थे।
बुद्ध के जन्म से पहले, राजगृह से कुछ ही दूरी पर उपतिस्सा और कोलिता नामक दो ब्राह्मण गाँव थे। एक दिन उपतिस्सा गाँव में रहने वाली रूपासरी नामक ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती हुई; और उसी दिन कोलिता गाँव में रहने वाली मोग्गली नामक ब्राह्मण की पत्नी भी गर्भवती हुई। कहा जाता है कि सात पीढ़ियों से ये दोनों परिवार मित्रता के बंधन में बंधे हुए थे; उन्होंने एक ही दिन दोनों गर्भवती माताओं के लिए गर्भ संरक्षण अनुष्ठान किया। दस चंद्र माह बीतने पर, दोनों स्त्रियों ने पुत्रों को जन्म दिया।
बच्चों के नामकरण के लिए निर्धारित दिन पर, उन्होंने सारी नामक ब्राह्मण स्त्री के पुत्र का नाम उपतिस्सा रखा, क्योंकि वह उपतिस्सा गाँव के प्रमुख परिवार का पुत्र था; दूसरे पुत्र का नाम कोलिता रखा गया, क्योंकि वह कोलिता गाँव के प्रमुख परिवार का पुत्र था। बड़े होने पर, दोनों पुत्रों ने सभी कलाओं और विज्ञानों में सर्वोच्च दक्षता प्राप्त की। जब भी युवक उपतिस्सा नदी या उद्यान में आनंद लेने जाता था, तो उसके साथ पाँच सौ सोने की पालकी होती थीं; युवक कोलिता के साथ पाँच सौ रथ होते थे जिन्हें शुद्ध नस्ल के घोड़े खींचते थे। दोनों युवकों के साथ पाँच-पाँच सौ लड़कों का दल होता था।

राजगृह में हर साल एक उत्सव मनाया जाता है जिसे पर्वत शिखर उत्सव के नाम से जाना जाता है। दो युवकों के लिए एक जगह पर पलंग लगाया गया और वे साथ बैठकर दृश्य देखते रहे। जब हंसने का अवसर होता, तो वे हंसते; जब रोने का अवसर होता, तो वे रोते; जब दान देने का समय होता, तो वे दान देते। इस प्रकार उन्होंने कई दिनों तक उत्सव देखा। लेकिन एक दिन, जब वे समझदार हो गए, तो वे उस समय नहीं हंसे जब वे हंस सकते थे, जैसे पहले दिनों में वे नहीं रोए थे जब वे रो सकते थे, और जब उनसे दान मांगा गया तो उन्होंने दान नहीं दिया।

हमें बताया जाता है कि दोनों युवकों के मन में यह विचार आया, "हम इसे क्यों देखें? सौ वर्ष बीतने से पहले ही ये सब लोग यहाँ से चले जाएँगे और फिर कभी दिखाई नहीं देंगे। हमें तो मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए।" इस विचार को मन में बिठाकर वे बैठ गए। तब कोलिता ने उपतिस्सा से कहा, "मित्र उपतिस्सा, तुम पहले की तरह प्रसन्न और आनंदित नहीं लग रहे हो। बल्कि तुम उदासी से ग्रस्त हो। तुम्हारे मन में क्या है?" "मित्र कोलिता, मैं सोच रहा हूँ, 'इन लोगों को देखने से कोई स्थायी संतोष नहीं मिलता; यह सब व्यर्थ है; मुझे तो स्वयं मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए।' लेकिन तुम उदास क्यों हो?" कोलिता ने भी यही कहा। जब उपतिस्सा को पता चला कि कोलिता के विचार उसके अपने विचारों से मिलते हैं, तो उसने कहा, "हम दोनों के मन में एक ही विचार आया है। हम दोनों को ही मोक्ष का मार्ग खोजना चाहिए और साथ ही संसार से संन्यास लेना चाहिए। हम किस गुरु के मार्गदर्शन में संसार से संन्यास लेंगे?"

उसी समय संजय नामक एक विचरणशील तपस्वी अपने साथ कई अन्य विचरणशील तपस्वियों को लेकर राजगृह नगर में प्रवेश किया। उपतिस्सा और कोलिता ने कहा, "हम संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बनेंगे।" अतः उन्होंने पाँच सौ सेवकों को यह कहकर विदा कर दिया, "पालक और रथ लेकर जाओ," और शेष पाँच सौ सेवकों के साथ संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बन गए। जिस दिन से इन दोनों युवकों ने संसार त्यागकर संजय के अधीन भिक्षु बने, उसी दिन से संजय यश और समृद्धि के शिखर पर पहुँच गए। कुछ ही दिनों में वे संजय के उपदेशों की सीमा पार कर गए। इसलिए उन्होंने संजय से पूछा, "गुरुजी, क्या यही वह सारा धार्मिक सत्य है जो आप जानते हैं, या इसके अतिरिक्त भी कुछ है?" संजय ने उत्तर दिया, "यही सब कुछ है; तुम सब कुछ जानते हो।"

उपतिस्सा और कोलिता ने जो प्रश्न पूछे, उनका उत्तर अन्य लोग भी नहीं दे सके; परन्तु अन्य लोगों ने जितने भी प्रश्न पूछे, उपतिस्सा और कोलिता ने उन सबका उत्तर दिया। इस प्रकार वे गुलाब-अरबी की भूमि पर यात्रा करते रहे; फिर वे वापस लौट आए और अपने-अपने घर आ गए। विदा होने से पहले उपतिस्सा ने कोलिता से कहा, "मित्र कोलिता, हम दोनों में से जो भी पहले मृत्यु को प्राप्त करे, वह दूसरे को सूचित करे।" यह समझौता करके वे विदा हो गए।

एक दिन, घुमंतू तपस्वी उपतिस्सा ने भिक्षु असाजी को देखा। उपतिस्सा ने उनसे कहा, "भाई, आपकी इंद्रियाँ शांत और निर्मल हैं; आपकी त्वचा का रंग निर्मल और साफ है। भाई, आपने संसार का त्याग किसके लिए किया? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?" "भाई, मैं अभी नौसिखिया ही हूँ; मुझे भिक्षु बने अभी कुछ ही समय हुआ है; लेकिन हाल ही में मैंने बुद्ध के सिद्धांत और अनुशासन को अपनाया है।" तपस्वी ने कहा, "मैं उपतिस्सा हूँ; आप अपनी क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा बोलिए; मैं आपके अर्थ को सौ या हजार तरीकों से समझ लूँगा।" भिक्षु असाजी की बात सुनकर उपतिस्सा को उच्चतर ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद उपतिस्सा अपने मित्र कोलिता से मिले और उन्हें बताया कि उन्होंने अमरत्व प्राप्त कर लिया है। उन्होंने वही श्लोक पढ़ा जो असाजी ने पढ़ा था। कोलिता को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ। उन्होंने बुद्ध से मिलने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि उन्हें अपने पूर्व गुरु संजय को भी साथ चलने के लिए कहना चाहिए। "आप जा सकते हैं; "मैं नहीं आ सकता," संजय ने कहा। "पहले मैं लोगों के गुरु के रूप में घूम-घूम कर उन्हें सिखाता रहा हूँ। मेरे लिए फिर से शिष्य बनना कतई बेतुका होगा।"

"गुरुजी, ऐसा मत कीजिए," उपतिस्सा ने कहा। "गुरुजी, बुद्ध के संसार में प्रकट होने के क्षण से ही लोग उनकी आराधना करते आए हैं। आइए हम भी वहीं चलें। अब आप क्या करने का इरादा रखते हैं?" संजय ने उत्तर दिया, "मित्रों, इस संसार में मूर्ख अधिक हैं या बुद्धिमान?" "गुरुजी, मूर्ख तो बहुत हैं, बुद्धिमान अल्प हैं।" संजय ने कहा, "तो फिर मित्रों, बुद्धिमान लोग बुद्धिमान भिक्षु गौतम के पास जाएँ और मूर्ख लोग मेरे पास आएँ।" उपतिस्सा और कोलिता चले गए। संजय के समूह के लगभग ढाई सौ विचरण करने वाले तपस्वी भी उन दोनों मित्रों के साथ शामिल हो गए।

फिर कोलिता और उपतिस्सा ने बुद्ध को देखा और उनके प्रमुख शिष्य बन गए। उपतिस्सा सारिपुत्त कहलाए और कोलिता मोग्गलाना कहलाए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि संजय बुद्ध से मिलने नहीं आ रहे हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 11)

असारे सारामातिनो सारे च असारदास्सिनो

मिच्चसंकप्पगोचरा ते सारं न अधिगच्छन्ति

asāre : जो मूल्य नहीं हैं; सारमतिनो ( sāramatino )

[पाठभेद: सारमतिना ( sāramatina )]: यदि उन्हें मूल्य माना जाए; sāre ca : और जो मूल्य हैं; असारदस्सिनो ( asāradassino ) [पाठभेद: असारदस्सिना ( asāradassina ) )] यदि उन्हें मूल्य न माना जाए; micchāsaṅkappagocarā : गलत आकांक्षाओं में लिप्त; te : वे (अज्ञानी लोग); sāraṃ [ sāra ]: मूल्यों के लिए; na adhigacchanti : प्राप्त नहीं करते।

आध्यात्मिक उन्नति में रुचि रखने वाले व्यक्ति को आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। यह सत्य है कि भौतिक वस्तुएँ भी आवश्यक हैं। परन्तु आध्यात्मिक उन्नति के लिए भौतिक वस्तुओं को ही प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए। यदि लोग भौतिक मूल्यों को ही प्राथमिकता देंगे तो वे किसी भी आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त नहीं कर सकते।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 12)

सारं शरतो च असारं असारतो च नात्वा सम्मा
संकप्पा गोचरा ते सारं अधिगच्छन्ति ।

सारं [ सारा ]: सच्चे मूल्य; सारतो च : सच्चे मूल्यों के रूप में; असारं [ असार ]: जो मूल्य नहीं हैं; असारतो च : मान नहीं; णत्वा : समझकर; सम्मा संकप्पा गोकारा : सही आकांक्षाओं से धन्य; ते : वे (बुद्धिमान व्यक्ति); सारं [ सारा ]: सच्चे मूल्य; अधिगच्छन्ति : प्राप्त करें.

जो बुद्धिमान व्यक्ति आध्यात्मिक उपलब्धियों की ओर ले जाने वाले सच्चे मूल्यों को पहचान सकता है, वह आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त करने में सक्षम होता है। ऐसा व्यक्ति सही दृष्टिकोण वाला होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 11-12)

ये दो श्लोक आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक 'मूल्यबोध' के महत्व पर बल देते हैं। हमारा मूल्यबोध ही हमारे जीवन को दिशा देता है। हमारे जीवन की पवित्रता और समृद्धि हमारे मूल्यबोध पर निर्भर करती है। वास्तव में, श्रेष्ठता और हीनता का हमारा निर्णय, हमारी खुशी और उपलब्धि का बोध भी इसी मूल्यबोध पर आधारित है।

जिन लोगों को मूल्यों की गलत समझ होती है, उनकी आकांक्षाएं भी गलत होती हैं, और वे जीवन की सच्ची समृद्धि कभी प्राप्त नहीं कर पाते।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 13 और 14

---

(धम्मपद 11, 12) <<<< पिछला || श्लोक 13 और 14 || अगला >>>> (धम्मपद 15)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 13 और 14 - नंदत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा अगरम दुच्चन्नम
vutthi samativijjhati
evam abhavitam cittam
rago samativijjhati.

यथा अगरम सुचन्नम
vutthi na samativijjhati
evam subhavitam cittam
rago na samativijjhati.

---

श्लोक 13 : जैसे बारिश खराब छत वाले घर में घुस जाती है, वैसे ही, राग (काम) उस मन में प्रवेश कर जाता है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में विकसित नहीं हुआ है।

---

श्लोक 14 : जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छत वाले घर में प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार, शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में अच्छी तरह से विकसित मन में राग प्रवेश नहीं कर सकता।

---

थेरा नंदा की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अपने चचेरे भाई थेरा नंदा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (13) और (14) का उच्चारण किया।

एक बार बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में निवास कर रहे थे, तभी उनके पिता राजा सुद्धोदन ने बार-बार दूत भेजकर बुद्ध से कपिलवस्तु नगर आने का अनुरोध किया। तदनुसार, बुद्ध बीस हजार अरहतों के साथ कपिलवस्तु की यात्रा पर निकले। कपिलवस्तु पहुँचकर उन्होंने अपने सगे-संबंधियों की सभा में वेस्सन्तरा जातक कथा सुनाई। दूसरे दिन, वे नगर में प्रवेश कर गए, जहाँ उन्होंने "उत्तित्ते नप्पमज्जेय्या ..." (अर्थात, उठो और ध्यान रखो ...") श्लोक का पाठ करके अपने पिता को सोतापत्ति पुण्य की प्राप्ति कराई। महल पहुँचकर बुद्ध ने "धम्मं चरे सुचरितं ..." (अर्थात, धम्म का अभ्यास करो ...") श्लोक का पाठ करके राजा को शकदागामी पुण्य की प्राप्ति कराई। भोजन के बाद उन्होंने राहुल की माता के गुणों का वर्णन करते हुए चंदकिन्नरी जातक कथा सुनाई।

तीसरे दिन, बुद्ध के चचेरे भाई राजकुमार नंदा का विवाह समारोह था। बुद्ध भिक्षा मांगने गए और उन्होंने भिक्षापात्र राजकुमार नंदा को सौंप दिया। फिर वे भिक्षापात्र वापस लिए बिना ही चले गए। इसलिए राजकुमार को भिक्षापात्र लिए हुए बुद्ध के पीछे जाना पड़ा। दुल्हन, राजकुमारी जनपदकल्याणी ने राजकुमार को बुद्ध के पीछे जाते देख दौड़कर राजकुमार से जल्दी लौटने की गुहार लगाई। मठ में राजकुमार को भिक्षु के रूप में संघ में शामिल कर लिया गया।

बाद में, बुद्ध सावत्थी के जेत उद्यान में अनाथपिंडिका द्वारा निर्मित मठ में रहने लगे। वहाँ रहते हुए नंदा असंतुष्ट और उदासीन थे तथा उन्हें भिक्षु जीवन में कोई आनंद नहीं मिला। वे गृहस्थ जीवन में लौटना चाहते थे क्योंकि उन्हें राजकुमारी जनपदकल्याणी के वे शब्द बार-बार याद आते थे जिनमें उन्होंने उनसे शीघ्र लौटने का आग्रह किया था।

यह जानकर, बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से नंदा को तावतिंस लोक की सुंदर देवियाँ दिखाईं, जो राजकुमारी जनपदकल्याणी से कहीं अधिक सुंदर थीं। उन्होंने नंदा से वादा किया कि यदि वह धर्म के अभ्यास में दृढ़ परिश्रम करें, तो वे उन्हें नंदा के लिए प्राप्त करवा देंगे। अन्य भिक्षुओं ने नंदा का उपहास करते हुए कहा कि वह सुंदर स्त्रियों के लिए धर्म का अभ्यास करने वाले भाड़े के भिक्षु के समान हैं। नंदा को बहुत पीड़ा और शर्मिंदगी हुई। इसलिए, एकांत में उन्होंने धर्म के अभ्यास में बहुत परिश्रम किया और अंततः अर्हतत्व प्राप्त किया। अर्हत बनने पर उनका मन सभी आसक्तियों से पूर्णतः मुक्त हो गया, और बुद्ध भी नंदा से किए गए अपने वादे से मुक्त हो गए। यह सब बुद्ध ने प्रारंभ से ही देख लिया था।

अन्य भिक्षुओं को जब पता चला कि नंदा भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं हैं, तो उन्होंने उनसे फिर पूछा कि उनका हालचाल क्या है। जब उन्होंने उत्तर दिया कि गृहस्थ जीवन से उनका कोई लगाव नहीं रह गया है, तो उन्हें लगा कि नंदा सच नहीं बोल रहे हैं। इसलिए उन्होंने बुद्ध को इस बारे में बताया और साथ ही अपनी शंका भी व्यक्त की। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि पहले नंदा का स्वभाव एक टूटी छत वाले घर जैसा था, परन्तु अब वह एक अच्छी छत वाले घर जैसा हो गया है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 13 : जैसे बारिश खराब छत वाले घर में घुस जाती है, वैसे ही, राग (काम) उस मन में प्रवेश कर जाता है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में विकसित नहीं हुआ है।

---

श्लोक 14 : जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छत वाले घर में प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार, शांति और अंतर्दृष्टि विकास (समाथा और विपश्यना) में अच्छी तरह से विकसित मन में राग प्रवेश नहीं कर सकता।

---

सकादगामी फल : सकादगामी फल, 'फल' या 'फल प्राप्ति'। यह सकादगामी मार्ग के तुरंत बाद आता है, जो दूसरा मार्ग या ज्ञानोदय का दूसरा चरण है, जिसे अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु नंदा की कहानी

सावत्थी के जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अपने चचेरे भाई भिक्षु नंदा के संदर्भ में ये श्लोक कहे। पूज्य कालुदायी यह जानते हुए कि बुद्ध के अपने पिता से मिलने जाने का उचित समय है, उन्होंने यात्रा की सुंदरता का वर्णन किया और बुद्ध को उनके अनेक अरहतों के दल सहित कपिलपुरा ले गए। वहाँ, अपने सगे-संबंधियों के साथ, बुद्ध ने वर्षा की बूँद को पाठ के रूप में ग्रहण करते हुए वेस्सन्तरा जातक की कथा सुनाई। अगले दिन वे भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश किया। "मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए और असावधानी का जीवन नहीं जीना चाहिए" श्लोक का पाठ करके उन्होंने अपने पिता को धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित किया; और "मनुष्य को धार्मिक जीवन जीना चाहिए" श्लोक का पाठ करके उन्होंने महा प्रजापति को धर्म परिवर्तन के फल में और अपने पिता को द्वितीय मार्ग के फल में स्थापित किया।

अगले दिन, जब राजकुमार नंदा के अभिषेक, गृह प्रवेश और विवाह की रस्में चल रही थीं, तब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए घर में आए, अपना भिक्षापात्र राजकुमार नंदा के हाथों में रखा और उन्हें शुभकामनाएँ दीं। फिर, वे अपने आसन से उठकर राजकुमार के हाथों से भिक्षापात्र लिए बिना ही चले गए। बुद्ध के प्रति श्रद्धावश राजकुमार नंदा ने यह कहने का साहस नहीं किया, "आदरणीय, अपना भिक्षापात्र ग्रहण कीजिए," बल्कि मन ही मन सोचा, "वे सीढ़ियों के शीर्ष पर अपना भिक्षापात्र ग्रहण करेंगे।" लेकिन जब बुद्ध सीढ़ियों के शीर्ष पर पहुँचे, तब भी उन्होंने अपना भिक्षापात्र ग्रहण नहीं किया। नंदा ने सोचा, "वे सीढ़ियों के नीचे अपना भिक्षापात्र ग्रहण करेंगे।" लेकिन बुद्ध ने वहाँ भी अपना भिक्षापात्र ग्रहण नहीं किया। नंदा अपनी दुल्हन के पास लौटने के लिए बहुत उत्सुक थे, और अपनी इच्छा के विरुद्ध भी बुद्ध के पीछे-पीछे चले गए। लेकिन बुद्ध के प्रति उनकी श्रद्धा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने "अपना प्याला ग्रहण करो" कहने का साहस नहीं किया, बल्कि बुद्ध का अनुसरण करते हुए मन ही मन सोचते रहे, "वह अपना प्याला यहाँ लेंगे! वह अपना प्याला वहाँ लेंगे! वह अपना प्याला वहाँ लेंगे!"

उसी क्षण उन्होंने नन्द की दुल्हन जनपदा कल्याणी, जो देश की सबसे सुंदर स्त्री थीं, को यह संदेश दिया, "महामहिम, बुद्ध राजकुमार नन्द को अपने साथ ले गए हैं; उनका इरादा आपको उनसे वंचित करना है।" तब जनपदा कल्याणी, आँखों में आँसू लिए और आधे-अधूरे कंघी किए बालों के साथ, जितनी तेज़ी से हो सकती थी, राजकुमार नन्द के पीछे दौड़ीं और उनसे कहा, "हे महाराज, कृपया शीघ्र लौट आइए।" उनके शब्दों से नन्द का हृदय काँप उठा; परन्तु बुद्ध ने अपना पान-पात्र उठाए बिना ही उन्हें मठ ले गए और उनसे कहा, "नन्द, क्या तुम भिक्षु बनना चाहोगे?" बुद्ध के प्रति राजकुमार नन्द का आदर इतना अधिक था कि उन्होंने "मैं भिक्षु नहीं बनना चाहता" कहने के बजाय कहा, "हाँ, मैं भिक्षु बनना चाहता हूँ।" बुद्ध ने कहा, "तो फिर, नन्द को भिक्षु बना दीजिए।" इस प्रकार, बुद्ध के कपिलपुरा पहुंचने के तीसरे दिन उन्होंने नंदा को भिक्षु बना दिया।

जब बुद्ध जेतवन में निवास कर रहे थे, तब पूज्य नंदा असंतुष्ट होकर भिक्षुओं को अपनी पीड़ा बताते हुए बोले, "भाइयों, मैं असंतुष्ट हूँ। मैं अभी धार्मिक जीवन जी रहा हूँ, परन्तु अब और अधिक धार्मिक जीवन जीना मेरे लिए संभव नहीं है। मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता हूँ।"

इस घटना के बारे में सुनकर भगवान ने पूज्य नंदा को बुलवाया और उनसे कहा, "नंदा, क्या यह बात सच है कि आपने भिक्षुओं के एक बड़े समूह से इस प्रकार कहा, 'भाइयों, मैं असंतुष्ट हूँ; मैं अभी धार्मिक जीवन जी रहा हूँ, लेकिन मैं अब और धार्मिक जीवन नहीं जी सकता; मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता हूँ'?" "जी, यह बिल्कुल सच है।" "परन्तु, नंदा, आप अपने वर्तमान धार्मिक जीवन से क्यों असंतुष्ट हैं? आप अब और धार्मिक जीवन क्यों नहीं जी सकते? आप उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में क्यों लौटना चाहते हैं?" "जी, जब मैं अपने घर से निकला, तो मेरी प्रिय पत्नी जनपदा-कल्याणी, जिनके बाल आधे कंघी किए हुए थे, ने मुझसे विदा लेते हुए कहा, 'महोदय, कृपया शीघ्र लौट आइए।'" हे पूज्यवर, मैं उसका बार-बार स्मरण करने के कारण ही अपने वर्तमान धार्मिक जीवन से असंतुष्ट हूँ; मैं अब और धार्मिक जीवन नहीं जी सकता; मैं उच्च उपदेशों को त्यागकर निम्न जीवन, गृहस्थ जीवन में लौटने का इरादा रखता हूँ।" तब भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदा का हाथ पकड़कर उन्हें तैंतीस लोकों में ले गए। रास्ते में बुद्ध ने पूज्य नंदा को एक जले हुए खेत में, एक जले हुए ठूंठ पर बैठी एक लालची बंदरिया दिखाई, जिसके कान, नाक और पूंछ आग में जलकर नष्ट हो गए थे।

जब वे तैंतीस लोकों में पहुँचे, तो उन्होंने पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं की ओर इशारा किया जो देवताओं के राजा सक्का की सेवा में आई थीं। बुद्ध ने पूज्य नंदा को ये दोनों दृश्य दिखाकर उनसे यह प्रश्न पूछा, "नंदा, आप किसे अधिक सुंदर, आकर्षक और दर्शनीय मानते हैं, आपकी श्रेष्ठ पत्नी जनपदा-कल्याणी को या इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को?"

" हे पूज्यवर ," नंदा ने उत्तर दिया , " जिस प्रकार यह लालची बंदरिया, जिसके कान, नाक और पूंछ कट चुके हैं , जनपदा-कल्याणी से इतनी ही हीन है , हे पूज्यवर , उसी प्रकार मेरी श्रेष्ठ पत्नी जनपदा-कल्याणी इन पांच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं से हीन है ।"

"नंदा, हिम्मत रखो!" भगवान ने उत्तर दिया। "मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ कि तुम इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीत लोगे।" आदरणीय नंदा ने कहा, "हे भगवान, यदि बुद्ध मुझे इन पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीतने का आश्वासन देते हैं, तो आदरणीय महोदय, मुझे एक धार्मिक व्यक्ति का उच्च जीवन जीने में अत्यंत आनंद आएगा।"
आदरणीय नंदा, यद्यपि उनके साथी भिक्षु उन्हें अप्सराओं की खोज में लगे रहने के कारण तिरस्कृत करते थे, फिर भी एकांत में रहकर, संसार से विमुख होकर, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, थोड़े ही समय में, इस जीवन में ही, धार्मिक जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। उन्होंने यह जान लिया था: "जन्म का अंत हो गया, पवित्र जीवन जी लिया गया, कर्तव्य पूरा हो गया: मैं अब इस संसार का नहीं हूँ।" और अरहतों में एक और आदरणीय वृद्ध भी थे।
रात के समय पूज्य नंदा बुद्ध के पास आए और बोले, "पूज्यवर, मैं बुद्ध को उस वचन से मुक्त करता हूँ जो उन्होंने मुझे पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराओं को जीतने का आश्वासन देते हुए दिया था।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "नंदा, मैंने स्वयं अपने मन से तुम्हारे मन को वश में कर लिया है।" भिक्षु कहने लगे, "पहले वे कहते थे, 'मैं असंतुष्ट हूँ,' लेकिन अब कहते हैं, 'मैं किसी भी प्रकार से गृहस्थ जीवन के प्रति इच्छुक नहीं हूँ।'" और वे तुरंत जाकर बुद्ध को यह बात बता दी।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 13)
दुच्चन्नं अग्रं वुथि यथा समति विज्जति
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्जति
डुच्चन्नं [ डुच्चन्ना ]: बुरी तरह से छप्परदार; अग्रं [ अग्र ]: घर; वुठ्ठी : बारिश; यथा : इस प्रकार; समति विज्जति : प्रवेश करता है; एवम् : उस ढंग से; अभावितम् [ अभाविता ]: असंस्कृत; चित्तं [ चित्त ]: स्वभाव; रागो : जुनून; समतिविज्जति : प्रवेश करता है।
घर की छत अच्छी तरह से बनी होनी चाहिए, यह अत्यंत आवश्यक है। यदि छत कमजोर हो, तो बारिश का पानी घर में रिस जाता है। जिस प्रकार खराब छत से बारिश का पानी अंदर आ जाता है, उसी प्रकार असभ्य स्वभाव भी वासनाओं के प्रति संवेदनशील होता है। असभ्य स्वभाव आसानी से कामवासनाओं से प्रभावित हो जाता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 14)
सुच्चन्नं अग्रं वुथि यथा न समति विज्जति
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समति विज्जति
सुचन्नं [ सुचन्ना ]: अच्छी तरह से छप्परदार; अग्रं [ अगर ]: निवास, घर; वुठ्ठी : वर्षा; यथा : इस प्रकार; न समति विज्जति : प्रवेश नहीं करता; एवम् : उसी प्रकार; सुभावितम् [ सुभाविता ]: सुसंस्कृत; चित्तं [ चित्त ]: स्वभाव; रागो : जुनून; न समति विज्जति : प्रवेश नहीं करता।
जब घर की छत अच्छी तरह से छप्पर से ढकी होती है, तो बारिश से उसे कोई नुकसान नहीं होता, क्योंकि बारिश का पानी उसमें से रिस नहीं पाता। ठीक उसी प्रकार, सुसंस्कृत स्वभाव भी वासना को हावी नहीं होने देता। इसलिए, सुसंस्कृत स्वभाव वासनाओं से प्रभावित नहीं हो सकता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 13-14)
बौद्ध धर्म पर लिखने वाले लेखक ' चित्त ' और ' मनो ' शब्दों का अनुवाद अक्सर इस तरह करते हैं मानो वे समानार्थी और एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हों। दोनों शब्दों का सामान्य अर्थ 'मन' ही होता है। बौद्ध धर्म 'मन' नामक किसी सत्ता या 'मन-शरीर' द्वैत को मान्यता नहीं देता। हालांकि, बौद्ध धर्म मनो-शारीरिक गतिविधि की संज्ञानात्मक ( मनो ) और भावात्मक ( चित्त ) प्रक्रियाओं को मान्यता देता है, जिन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से शारीरिक और व्यक्तिपरक रूप से मानसिक माना जा सकता है। इन श्लोकों में ' चित्त ' शब्द भावात्मक प्रक्रिया को भी संदर्भित कर सकता है, जिसे अधिक उपयुक्त रूप से 'स्वभाव' कहा जा सकता है।
' भावना ' शब्द का सामान्यतः अनुवाद 'ध्यान' के रूप में भी किया जाता है। लेकिन ' भावना ' शब्द का अधिक सार्थक अनुवाद 'संस्कृति' है। भावना वह संस्कृति और विकास है जो अच्छे व्यवहार और सुख की ओर ले जाने वाली संज्ञानात्मक और भावात्मक प्रक्रियाओं को विकसित करती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 15

———————————————————————

(धम्मपद 13, 14) <<<< पिछला ॥ श्लोक 15 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 16)

———————————————————————

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 15 - कुंडसुकरिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Idha socati pecca socati
papakari ubhayattha socati
so socati so vihannati
disva kammakilitthamattano.

---

श्लोक 15 : वह यहाँ शोक करता है, परलोक में भी शोक करता है; पापी दोनों जन्मों में शोक करता है। वह अपने कर्मों की बुराई देखकर शोक करता है और पीड़ा भोगता है।

---

कुंडासुकारिका की कहानी
राजगाह में वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सूअर का मांस बेचने वाले चुंडा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (15) कहा।
एक समय की बात है, वेलुवाना मठ से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में चुंडा नाम का एक अत्यंत क्रूर और निर्दयी सुअर काटने वाला रहता था। चुंडा पचपन वर्षों से अधिक समय से सुअर काटने का काम कर रहा था; इस पूरे समय में उसने एक भी पुण्य कर्म नहीं किया था। मरने से पहले वह इतनी पीड़ा में था कि वह लगातार कराहता और चीखता रहा और सात दिनों तक सूअर की तरह अपने हाथों और घुटनों के बल रेंगता रहा। वास्तव में, मरने से पहले भी वह निरय* की स्थिति में था। सातवें दिन उस सुअर काटने वाले की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। इस प्रकार, दुष्ट को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है; वह इस लोक में भी और परलोक में भी भोगता है।
इस संदर्भ में बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 15 : वह यहाँ शोक करता है, परलोक में भी शोक करता है; पापी दोनों जन्मों में शोक करता है। वह अपने कर्मों की बुराई देखकर शोक करता है और पीड़ा भोगता है।

---

निरय या नरक : निरंतर पीड़ा का स्थान, जिसकी तुलना कभी-कभी नरक से की जाती है; लेकिन यह नरक से भिन्न है क्योंकि निरय में पीड़ा नरक की तरह शाश्वत नहीं होती। अविचि निरय सभी निरयों में सबसे भयानक है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुंडासुकारिका की कहानी
राजगृह के वेलुवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने सूअर का मांस बेचने वाले चुंडा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
यद्यपि बुद्ध पास के एक मठ में निवास कर रहे थे, फिर भी चुंडा ने एक दिन भी उन्हें मुट्ठी भर फूल या एक चम्मच चावल भेंट करके उनका सम्मान नहीं किया, और न ही उसने इसके अलावा कोई पुण्य कार्य किया।
एक दिन वह पागलपन के दौरे से घिर गया, और जब तक वह जीवित रहा, उसके सामने दुख के क्षेत्र की अग्नि भड़क उठी।
जब सूअर का मांस बेचने वाले कुंडा के समक्ष दुख के लोक की पीड़ा प्रकट हुई, तो उसका व्यवहार उसके पिछले कर्मों के अनुरूप बदल गया। घर में रहते हुए भी वह सूअर की तरह गुर्राने लगा और हाथों-पैरों के बल रेंगने लगा, पहले घर के आगे और फिर पीछे की ओर।

उसके घरवालों ने उसे काबू में कर लिया और उसका मुंह बंद कर दिया। लेकिन उनके तमाम प्रयासों के बावजूद (क्योंकि किसी के पिछले कर्मों का फल मिलना असंभव है), वह लगातार सूअर की तरह गुर्राते हुए इधर-उधर रेंगता रहा।

आस-पास के सात घरों में कोई भी सो नहीं सका। उसके घरवाले मृत्यु के भय से भयभीत होकर, उसे बाहर जाने से रोकने में असमर्थ होने के कारण, घर के दरवाजों पर ताला लगा दिया ताकि वह बाहर न निकल सके। इस प्रकार सात दिनों तक कष्ट सहने के बाद, उसकी मृत्यु हो गई और उसने दुख के लोक में पुनर्जन्म लिया।

कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, सूअर काटने वाले चुंडा के घर का दरवाजा सात दिनों से बंद है और सात दिनों से सूअरों को काटा जा रहा है; निस्संदेह वह कुछ मेहमानों का स्वागत करना चाहता है। ऐसा क्रूर और बर्बर प्राणी पहले कभी नहीं देखा गया।"

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, इसने सात दिनों से सूअर नहीं मारे हैं। इसके कर्मों का फल इसे भुगतना पड़ा है। जीवित रहते हुए भी, इसे दुखलोक की पीड़ा सता रही थी। इस पीड़ा के कारण यह सात दिनों तक अपने घर में इधर-उधर रेंगता रहा, सूअर की तरह गुर्राता और चीखता रहा। आज इसकी मृत्यु हो गई और यह नरक में पुनर्जन्म लिया।" बुद्ध के ऐसा कहने पर भिक्षुओं ने कहा, "हे प्रभु, इस संसार में इतना कष्ट सहने के बाद, यह फिर से दुखलोक गया और वहाँ इसका पुनर्जन्म हुआ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 15)

पापकारी इधा सोकाति पेक्का सोकाति उभयत्था सोकाति

सो अत्तनो किलिट्ठं कम्मं दिस्व सोकति सो विहानति

पापकारी : दुष्ट कर्ता; इधा : इस संसार में; सोकाती : दुःख; पेक्का : अगली दुनिया में; सोकाती : दुःख; उभयत्था : दोनों लोकों में; सोकाती : दुःख; इसलिए वह; अट्टानो [ अट्टाना ]: उसका अपना; किलिट्ठं कम्मं [ कम्म ]: दोषपूर्ण कार्य; दिस्वा : देखा हुआ; सोकाती : दुःख; इसलिए वह; विहानति : परेशान है .

चुंडा की कहानी धम्मपद के पहले श्लोक (1:1) के कथन की पुष्टि करती है कि बुराई का परिणाम केवल बुराई ही होता है। साथ ही, बुरे कर्मों के कुछ परिणाम इसी जीवन में भुगतने पड़ते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 15)

बुरे कर्म करने वाले लोग कर्म करते समय उनके परिणामों से अनभिज्ञ होते हैं। इसलिए, परिणाम देखकर वे पश्चाताप करते हैं। इससे उन्हें दुख होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य को हमेशा अपने कर्मों के परिणाम भुगतने ही पड़ें, बिना किसी आशा के। यदि ऐसा है, तो धार्मिक जीवन जीने का कोई लाभ नहीं है, और न ही मुक्ति के लिए प्रयास करने का कोई अवसर है।

इन दो श्लोकों में परलोक के दुख और सुख का भी संकेत मिलता है। बौद्ध धर्म में यह मान्यता नहीं है कि पृथ्वी पर जीवन ही एकमात्र जीवन है और मनुष्य ही एकमात्र प्राणी हैं। अस्तित्व के विभिन्न स्तर हैं और प्राणी असंख्य हैं। मृत्यु के बाद व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य के रूप में, निम्नतर अवस्था में या दिव्य लोक में जन्म ले सकता है। परलोक में तथाकथित प्राणी न तो अपने पूर्ववर्ती के समान होता है (क्योंकि वह परिवर्तित हो चुका होता है) और न ही पूर्णतः भिन्न (क्योंकि वह जीवन की एक ही धारा है)। बौद्ध धर्म प्राणी की एकरूपता का खंडन करता है, परन्तु प्रक्रिया की एकरूपता को स्वीकार करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 16

---

(धम्मपद 15) <<<< पिछला ॥ श्लोक 16 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 17)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 16 - धम्मिका-उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Idha modati pecca modati

katapunno ubhayattha modati
so modati so pamodati
disva kammavisuddhimattano.

---

श्लोक 16 : वह यहाँ भी प्रसन्न होता है, परलोक में भी प्रसन्न होता है; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की पवित्रता देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है।

---

धम्मिका उपासक की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य धम्मिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (16) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में धम्मिका नाम का एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो गुणी और दान-पुण्य का बहुत शौकीन था। वह नियमित रूप से और विशेष अवसरों पर भिक्षुओं को उदारतापूर्वक भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करता था। वास्तव में, वह सावत्थी में रहने वाले बुद्ध के पाँच सौ गुणी गृहस्थ शिष्यों का नेता था। धम्मिका के सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं, और वे सभी अपने पिता की तरह गुणी और दान-पुण्य के प्रति समर्पित थे। जब धम्मिका अत्यंत बीमार होकर मृत्युशय्या पर थे, तो उन्होंने संघ से उनके पास आकर उनके पास पवित्र ग्रंथों का पाठ करने का अनुरोध किया। जब भिक्षु महा सतिपथाना सूत्र का पाठ कर रहे थे, तभी छह अलग-अलग लोकों से छह सजे-धजे रथ उन्हें अपने-अपने लोकों में आमंत्रित करने के लिए आए। धम्मिका ने उनसे सूत्र के पाठ में बाधा न पड़ने के कारण कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा। भिक्षुओं ने यह सोचकर कि उन्हें रुकने के लिए कहा जा रहा है, पाठ रोक दिया और वहाँ से चले गए।

कुछ समय बाद, धम्मिका ने अपने बच्चों को अपने लिए इंतज़ार कर रहे छह सजे-धजे रथों के बारे में बताया। उसी क्षण उन्होंने तुषिता लोक से रथ चुनने का निर्णय लिया और अपने एक बच्चे से उस पर एक माला डालने को कहा। फिर उनका प्राण त्याग गया और वे तुषिता लोक में पुनर्जन्म लिए। इस प्रकार, पुण्य पुरुष इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 16 : वह यहाँ भी प्रसन्न होता है, परलोक में भी प्रसन्न होता है; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की पवित्रता देखकर अत्यंत प्रसन्न होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धम्मिका उपासक की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य धम्मिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, सावत्थी में धम्मिका नाम का एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो गुणी और दान-पुण्य का बहुत शौकीन था। वह नियमित रूप से और विशेष अवसरों पर भी भिक्षुओं को उदारतापूर्वक भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करता था। वास्तव में, वह सावत्थी में रहने वाले बुद्ध के पाँच सौ गुणी गृहस्थ शिष्यों का नेता था। धम्मिका के सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं, और वे सभी अपने पिता की तरह गुणी और दान-पुण्य के प्रति समर्पित थे। जब धम्मिका अत्यंत बीमार होकर मृत्युशय्या पर थे, तो उन्होंने संघ से अपने पास आकर पवित्र ग्रंथों का पाठ करने का अनुरोध किया। जब भिक्षु महासतिपट्टन सूत्र का पाठ कर रहे थे, तभी छह अलग-अलग लोकों से छह सजे-धजे रथ उन्हें अपने-अपने लोकों में आमंत्रित करने के लिए आ गए। धम्मिका ने उनसे सूत्र के पाठ में बाधा न पड़ने के कारण कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा। भिक्षुओं ने यह सोचकर कि उन्हें रुकने के लिए कहा जा रहा है, पाठ रोक दिया और वहाँ से चले गए।

कुछ देर बाद, धम्मिका ने अपने बच्चों को अपने लिए इंतज़ार कर रहे छह सजे-धजे रथों के बारे में बताया। उसी समय उन्होंने तुषिता लोक के रथ को चुनने का निश्चय किया और अपने एक बच्चे से उस पर फूलों की माला डालने को कहा। तदनुसार, गृहस्थ के बच्चों ने फूलों की माला डाली, और वह रथ के खंभे से चिपक गई और हवा में लटक गई। लोगों ने हवा में लटकी फूलों की माला देखी, लेकिन रथ को नहीं देखा। धम्मिका ने कहा, "क्या तुम यह फूलों की माला देख रहे हो?" "हाँ, हम इसे देख रहे हैं।" "यह माला उस रथ से लटकी है जो तुषिता देवताओं के लोक से आया है। मैं तुषिता देवताओं के लोक जा रहा हूँ; विचलित मत होना। यदि तुम मेरे साथ पुनर्जन्म लेना चाहते हो, तो मेरे जैसे ही पुण्य कर्म करो।" फिर उनका देहांत हो गया और वे तुषिता लोक में पुनर्जन्म लिए। इस प्रकार, पुण्य पुरुष इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होता है। जब वे भिक्षु मठ पहुँचे, तो बुद्ध ने उनसे पूछा, "भिक्षुओं, क्या गृहस्थ शिष्य ने धम्म सुना?" "जी हां, पूज्यवर। लेकिन पाठ के बीच में ही वे 'रुको! रुको!' कहकर हमें रोक दिया। फिर उनके पुत्र-पुत्रियां रोने लगे,

जिसके बाद हम वहां से चले गए।" "भिक्षुओं, वे आपसे बात नहीं कर रहे थे। देवताओं के छह लोकों से छह देवता छह भव्य रूप से सजे रथों में आए और उन्होंने उस गृहस्थ शिष्य को अपने साथ चलने के लिए बुलाया; लेकिन गृहस्थ शिष्य, धम्म में व्यवधान न चाहते हुए, उनसे बात करने लगा।" क्या यह सच है, पूज्यवर?" "यह सच है, भिक्षुओं।" "पूज्यवर, उनका अभी-अभी पुनर्जन्म कहां हुआ?" "तुषिता देवताओं के लोक में, भिक्षुओं।"

"आदरणीय, हाल ही में वे यहाँ अपने सगे-संबंधियों के बीच आनंदमय जीवन व्यतीत कर रहे थे, और अभी-अभी वे फिर से आनंदमय स्थान पर गए और वहाँ उनका पुनर्जन्म हुआ।" "जी हाँ, भिक्षुओं। जो सचेत रहते हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या भिक्षु, दोनों स्थानों में समान रूप से आनंदित होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 16)

कटपुन्नो इधा मोदति पेक्का मोदति उभयत्था मोदति
सो अत्तानो कम्म विशुद्धि दिस्व मोदति सो पमोदति

कटपुन्नो [ कटपुन्न ]: वह जिसने अच्छे कर्म किए हैं; इधा : इस संसार में ही; मोदाति : आनन्दित; पेक्का : बाद के जीवन में; मोदाति : आनन्दित; उभयत्था : दोनों लोकों में; मोदाति : (वह) आनन्दित होता है; इसलिए वह; अट्टानो [ अट्टाना ]: उसका अपना; कम्म विशुद्धि [ विशुद्धि ]: कार्यों की शुद्धता; दिस्वा: देखकर; मोदाति : आनन्दित; इसलिए वह; पमोदति : पूरी तरह से आनंदमय है।

एक बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे कर्म करता है। उन अच्छे कर्मों को करने से वह इस संसार में आनंदित होता है। वह परलोक में भी आनंदित होता है। अपने सद्‌गुणों की पवित्रता देखकर वह प्रसन्न होता है। अपने कर्मों की अच्छाई देखकर वह अत्यंत आनंदित होता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 16)

कतपुण्यो : धम्मिका अपने जीवनकाल में बहुत अच्छे कर्म करने के कारण मृत्यु शैय्या पर अत्यंत प्रसन्न थे। जो व्यक्ति अपने जीवन भर के सदाचारी आचरण को देखते हुए, फलस्वरूप मृत्यु के बाद सुखद जन्म की आशा रखता है, उसे कतपुण्यो कहा जा सकता है ।

मोदति : आनंदित होना। यह उस व्यक्ति की मनःस्थिति है जिसने जीवन भर अच्छे आचरण का सदुपयोग किया हो। इस श्लोक में वर्णित गृहस्थ शिष्य धम्मिका के रूप में वह अपने जीवन के अंत में आनंद का अनुभव कर सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 17

---

(धम्मपद 16) <<<< पिछला ॥ श्लोक 17 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 18)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 17 - देवदत्त वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

इधा तप्पाती पेक्का तप्पाती
papakari ubhayattha tappati
papam me katanti tappati
भय्यो तप्पति दुग्गतिम्(1) गतो।

---

श्लोक 17 : यहाँ उसे पीड़ा दी जाती है, परलोक में भी उसे पीड़ा दी जाती है; पापी दोनों जन्मों में पीड़ा भोगता है। वह पीड़ा भोगता है और विलाप करता है: "मैंने बुराई की है।" जब वह निम्न लोकों (अपय) में पुनर्जन्म लेता है तो उसे और भी अधिक पीड़ा होती है।

---

1. दुग्गतिम्/दुग्गति: अप्रिय गंतव्य, चार निम्न लोक (अपय)। देवदत्त के मामले में, अविचि निरय, सबसे निचला निरय (यातना का स्थान)।

―――――――――――――――――――――――――――――

देवदत्त की कहानी

श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (17) कहा।

एक समय देवदत्त कोसंबी में बुद्ध के साथ रह रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि बुद्ध को बहुत आदर और सम्मान प्राप्त हो रहा है, साथ ही उन्हें भेंट भी दी जा रही है। उन्हें बुद्ध से ईर्ष्या हुई और वे भिक्षु संघ के प्रमुख बनने की इच्छा रखने लगे। एक दिन, जब बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में उपदेश दे रहे थे, तब देवदत्त बुद्ध के पास गए और यह कहकर कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, उन्होंने संघ का कार्यभार उन्हें सौंपने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और उन्हें फटकारते हुए कहा कि वे दूसरों की थूक चाटने वाले हैं। इसके बाद बुद्ध ने संघ को देवदत्त के संबंध में एक घोषणा (पकसानिया कम्मा(2)) करने का आदेश दिया।

देवदत्त को बहुत दुख हुआ और उसने बुद्ध से बदला लेने की कसम खाई। उसने तीन बार बुद्ध को मारने का प्रयास किया: पहली बार कुछ धनुर्धारियों को भेजकर; दूसरी बार गिज्जकुटा पर्वत पर चढ़कर बुद्ध पर एक बड़ा पत्थर लुढ़काकर; और तीसरी बार नलगिरि हाथी को बुद्ध पर हमला करने के लिए उकसाकर। भाड़े के हत्यारे सोतापत्ति फल प्राप्ति के बाद बुद्ध को बिना कोई नुकसान पहुंचाए लौट गए। देवदत्त द्वारा लुढ़काए गए पत्थर से बुद्ध के पैर के अंगूठे पर मामूली चोट आई, और जब नलगिरि हाथी ने बुद्ध पर हमला किया, तो बुद्ध ने उसे शांत कर दिया। इस प्रकार देवदत्त बुद्ध को मारने में असफल रहा, और उसने एक और चाल चली। उसने कुछ नए भिक्षुओं को अपने साथ गयासिसा ले जाकर भिक्षु संघ को भंग करने का प्रयास किया; हालांकि, उनमें से अधिकांश को थेरा सारिपुत्त और थेरा महा मोग्गलाना वापस ले आए।

बाद में देवदत्त बीमार पड़ गए। नौ महीने तक बीमार रहने के बाद उन्होंने अपने शिष्यों से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और फिर जेतवन मठ की यात्रा की। देवदत्त के आने की खबर सुनकर बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा कि देवदत्त को उनसे मिलने का अवसर कभी नहीं मिलेगा।

जब देवदत्त और उनके साथी जेतवन मठ परिसर में स्थित तालाब पर पहुँचे, तो पालकी को तालाब के किनारे रखकर वे स्नान करने चले गए। देवदत्त भी अपनी पालकी से उठे और अपने दोनों पैर ज़मीन पर रखे। तुरंत ही उनके पैर धरती में धंस गए और वे धीरे-धीरे समा गए। देवदत्त को बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला क्योंकि उन्होंने बुद्ध के प्रति बुरे कर्म किए थे। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविचि निरय में हुआ, जो एक ऐसा स्थान है जहाँ उन्हें लगातार और तीव्र यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

―――――――――――――――――――――――――――――

श्लोक 17 : यहाँ उसे पीड़ा दी जाती है, परलोक में भी उसे पीड़ा दी जाती है; पापी दोनों जन्मों में पीड़ा भोगता है। वह पीड़ा भोगता है और विलाप करता है: "मैंने बुराई की है।" जब वह निम्न लोकों (अपय) में पुनर्जन्म लेता है तो उसे और भी अधिक पीड़ा होती है।

―――――――――――――――――――――――――――――

(2) पकासानिया कम्मा : संघ के किसी सदस्य के संबंध में की गई घोषणा का कार्य, जिसमें यह घोषित किया जाता है कि उसका आचरण पहले एक प्रकार का था और अब दूसरे प्रकार का है, इसलिए आगे से उसके सभी शारीरिक और मौखिक कार्य केवल उसके हैं और उनका बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं के आदेश) से कोई लेना-देना नहीं है।

―――――――――――――――――――――――――――――

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

देवदत्त की कहानी

सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय देवदत्त कोसंबी में बुद्ध के साथ रह रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि बुद्ध को बहुत आदर और सम्मान प्राप्त हो रहा है, साथ ही उन्हें भेंट भी दी जा रही है। उन्हें बुद्ध से ईर्ष्या हुई और वे भिक्षु संघ के प्रमुख बनने की इच्छा रखने लगे। एक दिन, जब बुद्ध राजगृह के वेलुवन मठ में उपदेश दे रहे थे, तब देवदत्त बुद्ध के पास आए और बुद्ध की वृद्धावस्था का हवाला देते हुए संघ का नेतृत्व उन्हें सौंपने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और उन्हें फटकारते हुए कहा कि वे इस जिम्मेदारी के योग्य नहीं हैं। इसके बाद बुद्ध ने संघ को देवदत्त के संबंध में एक घोषणा (पकसानिय कर्म) करने का आदेश दिया।

देवदत्त को बहुत दुख हुआ और उसने बुद्ध से बदला लेने की कसम खाई। उसने तीन बार बुद्ध को मारने का प्रयास किया: पहली बार कुछ धनुर्धारियों का इस्तेमाल करके; दूसरी बार गिज्जकूट पर्वत पर चढ़कर बुद्ध पर एक बड़ा पत्थर लुढ़काकर; और तीसरी बार नलगिरि हाथी को बुद्ध पर हमला करने के लिए उकसाकर। लेकिन भाड़े के हत्यारों ने बुद्ध पर हमला करने के बजाय उनके शिष्य बन गए। देवदत्त द्वारा लुढ़काए गए पत्थर से बुद्ध के पैर के अंगूठे पर मामूली चोट आई, और जब नलगिरि हाथी बुद्ध पर झपटा, तो बुद्ध ने उसे शांत कर दिया। इस प्रकार देवदत्त बुद्ध को मारने में असफल रहा, और उसने एक और चाल चली। उसने कुछ नए भिक्षुओं को

अपने साथ गयासीसा ले जाकर भिक्षु संघ को भंग करने का प्रयास किया; हालांकि, उनमें से अधिकांश को मुख्य शिष्यों सारिपुत्त और महा मोग्गलाना वापस ले आए।
देवदत्त बीमार पड़ गए। देवदत्त की बीमारी नौ महीने तक चली; अंत में, बुद्ध के दर्शन की इच्छा से उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, “मैं बुद्ध के दर्शन करना चाहता हूँ; कृपया मेरे लिए उनसे मिलने का प्रबंध करें।” शिष्यों ने उत्तर दिया, “जब आप स्वस्थ थे, तब आप बुद्ध के शत्रु थे; हम आपको उनके पास नहीं ले जाएँगे।” देवदत्त ने कहा, “मुझे नष्ट मत करो; मैंने वास्तव में बुद्ध के प्रति घृणा रखी है, परन्तु बुद्ध ने मेरे प्रति एक बाल के बराबर भी घृणा नहीं रखी।” और वास्तव में हत्यारे देवदत्त, लुटेरे अंगुलिमाला, धनपाल और राहुल, सभी के प्रति उनका स्वभाव एक समान था। अंत में, देवदत्त बुद्ध के दर्शन करना चाहते थे। परन्तु जब देवदत्त अपनी पालकी से उतरे तो उनके पैर धरती में धंस गए। इस प्रकार वे धरती में समा गए और अविची नरक में चले गए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 17)
पापकारी इधा तप्पति पेक्का तप्पति उभयत्थ तप्पति मे
पापं कटं इति तप्पति दुग्गतिं गतो भयो तप्पति
पापकारी : दुष्ट कर्ता; इधा : इस संसार में; तप्पति : पश्चाताप करता है; पेक्का : अगली दुनिया में; तप्पति : पश्चाताप करता है; उभयत्था : दोनों स्थानों पर; तप्पति : पश्चाताप करता है; मैं : मेरे द्वारा; पापं [ पापा ]: गलतियाँ; कतं इति : किया गया है; तप्पति : पश्चाताप करता है; दुग्गतीं गतो : जीवन में दु:खदायी स्थिति में चले जाने के बाद; भिय्यो [ भिय्या ]: अत्यधिक; तप्पति : पश्चाताप करता है.
जो लोग बुराई करते हैं, जो कुकर्मों में लिप्त रहते हैं, उन्हें इस जन्म और परलोक दोनों में मानसिक पीड़ा भोगनी पड़ती है। मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में जन्म लेने वाला बुराई करने वाला व्यक्ति "मैंने बुरे कर्म किए हैं" के विचार से स्वयं को और अधिक पीड़ा देता रहता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 17)
दुग्गती : जो लोग बुरे मार्ग पर चलते हैं, वे मृत्यु के बाद दुखमय अवस्थाओं में जन्म लेते हैं। चूंकि ये अवस्थाएं पीड़ितों को कष्ट देती हैं, इसलिए इन्हें दुग्गती कहा जाता है। इन दुखमय अवस्थाओं के विपरीत सुगती आनंदमय अवस्थाएं हैं। जो लोग सद्गुणों का पालन करते हैं, वे अंततः ऐसी ही अवस्थाओं में पुनर्जन्म लेते हैं।
इधा तप्पति : यहाँ उन लोगों के पश्चाताप का जिक्र है जो अपने किए गए बुरे कर्मों को मानसिक पीड़ा के साथ याद करते हैं। तप्पति का अनुवाद 'जलन' के रूप में किया जा सकता है। बुरे कर्म की याद आत्म-पीड़ा को जन्म देती है, जो एक प्रकार की जलन है। देवदत्त इसी स्थिति में थे।
पेक्का : परलोक में: एक बार व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर, वह परलोक नामक एक अन्य अवस्था में जन्म लेता है। वह पृथ्वी पर रहते हुए अर्जित किए गए अच्छे या बुरे कर्मों का फल भोगता है। अतः, पेक्का का तात्पर्य परलोक में उसके साथ होने वाली घटनाओं से है।
विशेष टिप्पणी : देवदत्त के भविष्य के जीवन को लेकर अनेक प्रश्न उठते हैं। पारंपरिक टीकाओं में कहा गया है: एक परंपरा के अनुसार, जब बुद्ध ने देखा कि मामला इतना बिगड़ गया है, तो उन्होंने देवदत्त को भिक्षु बना दिया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि उन्हें यह ज्ञान हुआ, “यदि वह गृहस्थ ही रहे और भिक्षु संघ में शामिल न हो, तो अपने घोर अपराधों के कारण उसके लिए भविष्य के जीवन के प्रति विश्वास रखना असंभव होगा; परन्तु यदि वह भिक्षु बन जाए, तो चाहे उसने कितने ही जघन्य अपराध किए हों, उसके लिए भविष्य के जीवन के प्रति विश्वास रखना संभव होगा।” इस परंपरा के अनुसार, सुदूर भविष्य में वह अत्तिस्सारा नामक एक एकांत बुद्ध ( पच्चेक बुद्ध ) बनेंगे।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 18

---

(धम्मपद 17) <<<< पिछला ‖ श्लोक 18 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 19,20)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 18 - सुमनादेवी वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
इधा नंदती पेक्का नंदती
katapunno ubhayattha nandati
पुन्नम मे कटंति नंदति
भय्यो नन्दति सुग्गतिम्(1) गतो।

———————————————————————

श्लोक 18 : वह यहाँ सुखी है, परलोक में भी सुखी रहेगा; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में सुखी रहता है। वह प्रसन्नतापूर्वक कहता है, “मैंने पुण्य कर्म किए हैं।” उच्च लोक (सुग्गति) में पुनर्जन्म लेने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

———————————————————————

1. सुगत्तिम/सुग्गति: सुखी अस्तित्व।

———————————————————————

सुमनादेवी की कहानी
(कहानी का विस्तृत संस्करण यहां पढ़ें)
श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की सबसे छोटी बेटी सुमनादेवी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (18) कहा।
सावत्थी में, अनाथपिंडिका और विशाखा के घरों में प्रतिदिन दो हजार भिक्षुओं को भोजन कराया जाता था। विशाखा के घर में भिक्षा-भोजन का कार्य उनकी पोती द्वारा संचालित किया जाता था। अनाथपिंडिका के घर में यह कार्य पहले सबसे बड़ी पुत्री, फिर दूसरी पुत्री और अंत में सबसे छोटी पुत्री सुमनदेवी द्वारा संचालित किया जाता था। दोनों बड़ी बहनों ने भिक्षुओं को भोजन कराते समय धर्म का प्रवचन सुनकर सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। सुमनदेवी ने तो और भी श्रेष्ठ कार्य किया और उन्होंने सकदागामी पुण्य प्राप्त किया।
बाद में, सुमनादेवी बीमार पड़ गईं और अपनी मृत्यु शैया पर उन्होंने अपने पिता को बुलाया। उनके पिता आए और उन्होंने उन्हें "छोटे भाई" (कनित्थ भाटिका) कहकर संबोधित किया और कुछ ही समय बाद उनका निधन हो गया। उनके संबोधन के इस तरीके ने उनके पिता को आश्चर्यचकित कर दिया और उन्हें बेचैनी और अवसाद से भर दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि उनकी बेटी मृत्यु के समय बेहोश थी और होश में नहीं थी। इसलिए, उन्होंने बुद्ध से संपर्क किया और उन्हें अपनी बेटी सुमनादेवी के बारे में बताया। तब बुद्ध ने उस धनी व्यक्ति को बताया कि उनकी बेटी मृत्यु के समय होश में थी और पूरी तरह से आत्म-नियंत्रित थी। बुद्ध ने यह भी समझाया कि सुमनादेवी ने अपने पिता को "छोटे भाई" कहकर इसलिए संबोधित किया क्योंकि मार्ग और फल की उनकी प्राप्ति उनके पिता की तुलना में कहीं अधिक थी। वह सकदगम थीं जबकि उनके पिता केवल सोतापन्न थे। अनाथपिंडिका को यह भी बताया गया कि सुमनादेवी का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 18 : वह यहाँ सुखी है, परलोक में भी सुखी रहेगा; पुण्य कर्म करने वाला दोनों जन्मों में सुखी रहता है। वह प्रसन्नतापूर्वक कहता है, "मैंने पुण्य कर्म किए हैं।" उच्च लोक (सुग्गति) में पुनर्जन्म लेने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सुमनादेवी की कहानी
सावत्थी में स्थित जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की सबसे छोटी पुत्री सुमनादेवी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
प्रतिदिन, दो हज़ार भिक्षु सावत्थी स्थित अनाथपिंडिका के घर में भोजन करते थे, और इतनी ही संख्या में भिक्षु प्रख्यात महिला शिष्या विशाखा के घर में भोजन करते थे। अनाथपिंडिका ने अपनी सबसे बड़ी पुत्री महा सुभद्दा को नियुक्त किया; सुभद्दा ने भिक्षुओं का उचित आदर किया, धर्म का पालन किया और फलस्वरूप धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया; बाद में उनका विवाह हुआ और वे अपने पति के परिवार के साथ रहने चली गईं। फिर उन्होंने चुल्ला सुभद्दा को नियुक्त किया, जिन्होंने अपनी बड़ी बहन का अनुसरण करते हुए धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और बाद में उनका विवाह हुआ और वे अपने पति के परिवार के साथ रहने चली गईं। अंत में उन्होंने अपनी सबसे छोटी पुत्री सुमना को नियुक्त किया। सुमना ने द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त किया, लेकिन अविवाहित रहीं। अनाथपिंडिका भोजन कक्ष में थे जब उन्हें अपनी पुत्री का संदेश मिला, लेकिन वे तुरंत उनके पास गए और बोले, “क्या बात है, प्रिय पुत्री सुमना?” सुमना ने उनसे कहा, “क्या कहते हो, प्यारे छोटे भाई?” “तुम अस्पष्ट बातें कर रही हो, प्यारी बेटी।” “मैं अस्पष्ट बातें नहीं कर रही हूँ,

छोटे भाई।" "क्या तुम डरी हुई हो, प्यारी बेटी?" "मैं नहीं डरी हुई हूँ, छोटे भाई।" उन्होंने आगे कुछ नहीं कहा और तुरंत ही उनकी मृत्यु हो गई।

यद्यपि कोषाध्यक्ष को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हो चुका था, फिर भी वह अपने भीतर उत्पन्न दुःख को सहन नहीं कर सका। अतः, अपनी पुत्री के शव का अंतिम संस्कार करने के बाद वह रोते हुए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थ, तुम इतने दुखी और शोकाकुल होकर, आँखों में आँसू लिए, मेरे पास क्यों आए हो?" "आदरणीय, मेरी पुत्री सुमना का निधन हो गया है।" "तो फिर क्यों रो रहे हो? क्या मृत्यु सभी के लिए निश्चित नहीं है?" "मैं जानता हूँ, आदरणीय। परन्तु मेरी पुत्री इतनी नम्र और इतनी कर्तव्यनिष्ठ थी। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बात का है कि जब उसका निधन हुआ, तब वह होश में नहीं थी।"

"परन्तु आपकी सबसे छोटी पुत्री ने क्या कहा, हे महामहिम?" "आदरणीय, मैंने उसे 'प्रिय सुमना' कहकर संबोधित किया, और उसने उत्तर दिया, 'आप क्या कहते हैं, हे महामहिम छोटे भाई?' तब मैंने उससे कहा, 'तुम अस्पष्ट बातें कर रही हो, प्रिय पुत्री।' 'मैं अस्पष्ट बातें नहीं कर रही हूँ, महामहिम छोटे भाई।' 'क्या तुम डरी हुई हो, प्रिय पुत्री?' 'मैं नहीं डरी हूँ, महामहिम छोटे भाई।' उसने आगे कुछ नहीं कहा और तुरंत ही उसकी मृत्यु हो गई।" भगवान ने अनाथपिंडिका से कहा, "हे महामहिम, आपकी पुत्री ने अस्पष्ट बातें नहीं कीं।" "परन्तु उसने ऐसा क्यों कहा?" "केवल इसलिए कि आप उसके सबसे छोटे भाई थे, हे गृहस्थ, आपकी पुत्री मार्ग और फल में परिपक्व थी, क्योंकि आपने तो केवल रूपांतरण का फल प्राप्त किया है, जबकि आपकी पुत्री ने मार्ग और फल प्राप्त कर लिए थे, इसीलिए उसने ऐसा कहा।" "क्या यही कारण था, हे महामहिम?" "यही कारण था, हे गृहस्थ।"

"हे पूज्यवर, अब उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ है?" "हे गृहस्थ, तुषिता देवताओं के लोक में।" "हे पूज्यवर, जब मेरी पुत्री अपने सगे-संबंधियों के बीच यहाँ रही, तो वह आनंदित होकर घूमती रही, और जब वह यहाँ से गई, तो उसका पुनर्जन्म देवलोक में हुआ।" तब बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, ऐसा ही होता है। जो सचेत रहते हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या धार्मिक, वे इस लोक में और परलोक में भी आनंदित होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 18)

कटपुन्नो इधा नंदति पेक्का नंदति उभयत्था नंदति
मे पुन्नं कतं इति नंदति सुग्गतिं गतो भयो नंदति

katapuñño [ katapuñña ]: जिसने पुण्य कर्म किए हैं; idha : इस लोक में; nandati प्रसन्न होता है; pecca : परलोक में; nandati : प्रसन्न होता है; ubhayattha : दोनों लोकों में; nandati : प्रसन्न होता है; me : मेरे द्वारा; puññaṃ kataṃ [ kata ]: अच्छे कर्म किए गए हैं; iti : इस तरह; nandati : (वह) प्रसन्न होता है; suggatiṃ gato : सुखी अवस्था में पहुँचकर; bhiyyo [ bhiyya ]: अत्यंत; nandati : प्रसन्न होता है।

अच्छे और पुण्य कर्म करने वाला व्यक्ति इस संसार में आनंदित होता है। मृत्यु के बाद सुखद अवस्था में पहुँचकर वह अत्यंत प्रसन्न होता है। इस प्रकार वह इस संसार में और परलोक में भी आनंदित होता है। दोनों लोकों में वह अपने पुण्य कर्मों को जानकर प्रसन्न होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 18)

भिय्यो : अत्यंत। पुण्यात्मा लोग इस जीवन में तो आनंदित होते ही हैं, पर स्वर्ग में मिलने वाले परलोक में और भी अधिक आनंदित होते हैं। वे अपने द्वारा किए गए अच्छे कर्मों को याद करके भी प्रसन्न होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 19 व 20

———————————————————————

(धम्मपद 18) <<<< पिछला ॥ श्लोक 19 और 20 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 21, 22, 23)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 19 और 20 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Bahumpi ce samhita bhasamano
na takkaro hoti naro pamatto
gopova gavo ganayam paresam
na bhagava samannassa hoti.

Appampi ce samhita bhasamano
धम्मस्सा होती अनुधम्मकारी
raganca dosanca pahaya moham
सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो(1)
anupadiyano idha va haram va
sa bhagava samannassa hoti(2)

---

श्लोक 19 : यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का बहुत पाठ करता है, परन्तु यदि वह लापरवाह है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, तो वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों के मवेशियों की गिनती करता है, उसे भिक्षु के जीवन के लाभों में कोई हिस्सा नहीं मिलता (अर्थात्, मग्ग-फल)।

---

श्लोक 20 : यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का थोड़ा सा ही पाठ करता है, परन्तु धर्म के अनुसार अभ्यास करता है, वासना, द्वेष और अज्ञान को मिटाता है, धर्म को स्पष्ट रूप से समझता है, उसका मन नैतिक विकारों से मुक्त होता है और वह इस संसार या परलोक से आसक्त नहीं रहता, वह भिक्षु के जीवन के लाभों का भागीदार होता है (अर्थात, मग्गा-फल)।

---

1. सुविमुत्तचित्तो: नैतिक विकारों से मुक्त मन; यह धम्म के पूर्ण अभ्यास और स्पष्ट समझ के माध्यम से प्राप्त किया गया है।
2. स भगव समन्नस्स होति: शाब्दिक अर्थ है, एक समना (भिक्षु) के जीवन के लाभों को साझा करता है। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में इसका अर्थ है, "मग्ग-फल के लाभों को साझा करता है।"

---

दो दोस्तों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (19) और (20) का उच्चारण दो भिक्षुओं के संदर्भ में किया जो मित्र थे।
एक समय की बात है, दो कुलीन परिवार के मित्र थे, जो सावत्थी के दो भिक्षु थे। उनमें से एक ने त्रिपिटक का अध्ययन किया और पवित्र ग्रंथों के पाठ और उपदेश में अत्यंत निपुण थे। उन्होंने पाँच सौ भिक्षुओं को शिक्षा दी और अठारह भिक्षु समूहों के गुरु बन गए। दूसरे भिक्षु ने गहन परिश्रम और लगन से अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हुए अरहतत्व तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि प्राप्त की।
एक बार जब दूसरे भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने जेतवन मठ आए, तो दोनों भिक्षुओं की मुलाकात हुई। त्रिपिटक के गुरु को यह ज्ञान नहीं था कि दूसरा भिक्षु अर्हत बन चुका है। उन्होंने दूसरे भिक्षु को नीचा समझा, यह सोचकर कि यह वृद्ध भिक्षु पवित्र ग्रंथों का बहुत कम ज्ञान रखता है, यहाँ तक कि पाँच निकायों में से एक या तीन पिटकों में से एक का भी नहीं। इसलिए उन्होंने दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछकर उसे शर्मिंदा करने का सोचा। बुद्ध उनके इस अनुचित इरादे को जानते थे और यह भी जानते थे कि अपने इतने श्रेष्ठ शिष्य को कष्ट देने के परिणामस्वरूप, उस विद्वान भिक्षु को निम्न लोक में पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।
इसलिए, करुणावश बुद्ध ने दो भिक्षुओं से मिलने जाकर विद्वान को दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछने से रोका। स्वयं बुद्ध ने ही प्रश्न पूछे। उन्होंने त्रिपिटक के गुरु से ध्यान और मार्ग से संबंधित प्रश्न पूछे; परन्तु वे उनका उत्तर नहीं दे सके क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने उपदेशों का अभ्यास नहीं किया था। दूसरे भिक्षु ने, धम्म का अभ्यास करके और अर्हतत्व प्राप्त करके, सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। बुद्ध ने धम्म का अभ्यास करने वाले (अर्थात् विपस्सक) की प्रशंसा की, परन्तु विद्वान (अर्थात् गंथिक) की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहा।
वहाँ रहने वाले शिष्यों को समझ नहीं आ रहा था कि बुद्ध ने वृद्ध भिक्षु की प्रशंसा क्यों की, जबकि उनके विद्वान गुरु की नहीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें समझाया। जो विद्वान बहुत कुछ जानता है, परन्तु धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, वह ग्वाले के समान है जो मजदूरी के लिए गायों की देखभाल करता है, जबकि जो धम्म के अनुसार अभ्यास करता है, वह उस स्वामी के समान है जो गायों के पाँचों प्रकार के

फल-सब्जियों का आनंद लेता है (3)। इस प्रकार, विद्वान केवल अपने शिष्यों द्वारा दी गई सेवाओं का ही आनंद लेता है, मग्ग-फल के लाभों का नहीं। दूसरा भिक्षु, यद्यपि वह कम जानता है और पवित्र ग्रंथों का थोड़ा ही पाठ करता है, धम्म के सार को स्पष्ट रूप से समझकर और लगन एवं परिश्रम से अभ्यास करके, अनुधम्मचारी (4) है, जिसने कामवासना, द्वेष और अज्ञान को नष्ट कर दिया है। उसका मन नैतिक विकारों और इस दुनिया के साथ-साथ अगली दुनिया से भी सभी आसक्तियों से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, जिससे वह वास्तव में मग्गा-फल के लाभों का भागीदार बनता है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 19: यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का बहुत पाठ करता है, परन्तु यदि वह लापरवाह है और धम्म के अनुसार अभ्यास नहीं करता, तो वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरों के मवेशियों की गिनती करता है, उसे भिक्षु के जीवन के लाभों में कोई हिस्सा नहीं मिलता (अर्थात्, मग्ग-फल)।

---

श्लोक 20: यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों (त्रिपिटक) का थोड़ा सा ही पाठ करता है, परन्तु धर्म के अनुसार अभ्यास करता है, वासना, द्वेष और अज्ञान को मिटाता है, धर्म को स्पष्ट रूप से समझता है, उसका मन नैतिक विकारों से मुक्त होता है और वह इस संसार या परलोक से आसक्त नहीं रहता, वह भिक्षु के जीवन के लाभों को साझा करता है (अर्थात, मग्गा-फल)।

---

(3) दूध, मलाई, मक्खन, छाछ और घी।
(4) अनुधम्मचारी : वह व्यक्ति जो धम्म के अनुरूप अभ्यास करता है।
अध्याय एक का अंत: जोड़े (यमकावग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दो दोस्तों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने दो मित्र भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
सावत्थी में दो कुलीन परिवार के युवक रहते थे जो घनिष्ठ मित्र थे। एक बार वे मठ गए, गुरु का प्रवचन सुना, संसार के सुखों का त्याग किया, बुद्ध के धर्म में अपना मन समर्पित किया और भिक्षु बन गए। पाँच वर्ष तक गुरुओं और शिक्षकों के साथ रहने के बाद, वे गुरु के पास गए और उनसे उनके धर्म के कर्तव्यों के बारे में पूछा। ध्यान और अध्ययन के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन सुनने के बाद, उनमें से एक ने कहा, "हे पूज्यवर, क्योंकि मैंने वृद्धावस्था में भिक्षु का पद ग्रहण किया है, इसलिए मैं अध्ययन का कर्तव्य पूरा नहीं कर पाऊँगा, परन्तु ध्यान का कर्तव्य पूरा कर सकता हूँ।" अतः उन्होंने गुरु से अरहतत्व तक ध्यान का उपदेश लिया और अथक परिश्रम से अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति की। लेकिन दूसरे ने कहा, "मैं अध्ययन के कर्तव्य का पालन करूँगा," और धीरे-धीरे त्रिपिटक , बुद्ध के वचन, को प्राप्त किया, और जहाँ भी वे गए, उन्होंने धर्म का प्रचार किया और उसका पाठ किया। वे पाँच सौ भिक्षुओं को धर्म का पाठ सुनाते हुए स्थान-स्थान पर गए, और अठारह बड़े भिक्षु समुदायों के गुरु थे।
अब भिक्षुओं का एक समूह, गुरु से ध्यान विधि का सूत्र प्राप्त करके, वरिष्ठ भिक्षु के निवास स्थान पर गया और उनके उपदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करके अरहतत्व प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने पूज्य भिक्षु को प्रणाम किया और कहा, "हम गुरु के दर्शन करना चाहते हैं।" पूज्य भिक्षु ने कहा, "जाओ, भाइयों, मेरे नाम से बुद्ध को प्रणाम करो, और अस्सी प्रमुख पूज्य भिक्षुओं को भी प्रणाम करो, और मेरे साथी वरिष्ठ भिक्षु को भी यह कहते हुए प्रणाम करो, 'हमारे गुरु आपको प्रणाम करते हैं।'" अतः वे भिक्षु मठ गए और बुद्ध और पूज्य भिक्षुओं को यह कहते हुए प्रणाम किया, "पूज्य भिक्षु, हमारे गुरु आपको प्रणाम करते हैं।" जब उन्होंने अपने गुरु के साथी वरिष्ठ भिक्षु को प्रणाम किया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "यह कौन है?" भिक्षुओं ने कहा, "यह आपके साथी भिक्षु हैं, पूज्य भिक्षु।"
छोटे भिक्षु ने कहा, "पर तुमने उससे क्या सीखा है? दीघ निकाय और अन्य निकायों में से, क्या तुमने एक भी निकाय सीखा है? तीनों पिटकों में से, क्या तुमने एक भी पिटक सीखा है?" और उसने मन ही मन सोचा, "यह भिक्षु चार श्लोकों वाला एक भी श्लोक नहीं जानता। भिक्षु बनते ही, वह कूड़े के ढेर से कपड़े लेकर जंगल में चला गया और अपने आस-पास बहुत से शिष्यों को इकट्ठा कर लिया। जब वह लौटेगा, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं उससे कुछ प्रश्न पूछूँ।" कुछ समय बाद, बड़ा भिक्षु बुद्ध से मिलने आया और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र अपने साथी भिक्षु के पास छोड़कर, बुद्ध और अस्सी प्रमुख पूज्य भिक्षुओं को प्रणाम करने गया, और फिर अपने साथी भिक्षु के निवास स्थान पर लौट आया। छोटे भिक्षु ने उसका विधिपूर्वक आदर किया, उसे अपने समान आकार का आसन दिया, और फिर बैठते हुए मन ही मन सोचने लगा, "मैं उससे एक प्रश्न पूछूँगा।"

उस क्षण बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "यदि यह भिक्षु मेरे पुत्र को नाराज़ करेगा, तो वह नरक में पुनर्जन्म लेगा।" अतः उस पर दया करते हुए, मठ में चक्कर लगाने का बहाना करके, वे उस स्थान पर गए जहाँ वे दोनों भिक्षु बैठे थे और पहले से तैयार बुद्ध आसन पर बैठ गए। (क्योंकि भिक्षु जहाँ भी बैठते हैं, वे पहले बुद्ध आसन तैयार करते हैं, और ऐसा करने के बाद ही स्वयं बैठते हैं।)

अतः बुद्ध अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए। बैठते ही उन्होंने अध्ययन का दायित्व ग्रहण करने वाले भिक्षु से प्रथम समाधि के विषय में एक प्रश्न पूछा। जब उस युवा भिक्षु ने सही उत्तर दिया, तो गुरु ने द्वितीय समाधि से आरंभ करते हुए उनसे अष्टम सिद्धियों और सजीव एवं निराकार जगत के विषय में प्रश्न पूछे, जिनका उन्होंने सही उत्तर दिया। फिर गुरु ने उनसे रूपांतरण मार्ग के विषय में प्रश्न पूछा; वे उसका उत्तर नहीं दे सके। तब बुद्ध ने अरहत भिक्षु से प्रश्न पूछा, और उन्होंने तुरंत सही उत्तर दे दिया।

"शाबाश, शाबाश, भिक्षु!" गुरु ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा। फिर गुरु ने शेष मार्गों के बारे में क्रम से प्रश्न पूछे। अध्ययन का दायित्व ग्रहण करने वाला भिक्षु एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका, जबकि अरहतत्व प्राप्त भिक्षु ने उनके द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया। चारों बार बुद्ध ने उसकी प्रशंसा की। यह सुनकर पृथ्वी के देवताओं से लेकर ब्रह्मालोक के देवताओं तक, नागों और गरुड़ों सहित सभी देवताओं ने जयजयकार की।

यह तालियाँ सुनकर, युवा भिक्षु के शिष्य और साथी भिक्षु बुद्ध से नाराज़ हो गए और कहने लगे, "बुद्ध ने ऐसा क्यों किया? उन्होंने चारों अवसरों पर उस बूढ़े भिक्षु की प्रशंसा की, जिसे कुछ भी नहीं पता। लेकिन हमारे गुरु, जिन्हें समस्त शास्त्र याद है और जो पाँच सौ भिक्षुओं के प्रमुख हैं, उनकी उन्होंने ज़रा भी प्रशंसा नहीं की।" गुरु ने उनसे पूछा, "भिक्षुओं, तुम क्या कह रहे हो?" जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, मेरे धर्म में तुम्हारे गुरु उस व्यक्ति के समान हैं जो मज़दूरी पर गाय चराता है। परन्तु मेरा पुत्र उस स्वामी के समान है जो गाय के पाँचों उत्पादों का अपनी इच्छा से आनंद लेता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 19)

पमत्तो नरो सहितं बहुं भासामानो अपि सीई
तक्कारो न होति परेसं गावो गणयं गोपो इव समानास्सा भगवान न होति ।

पमट्टो [ पमट्टा ]: आलसी; नारो : व्यक्ति; साहित्यं [ साहित्य ]: बुद्ध का वचन; बहुं [ बाहु ]: व्यापक रूप से; भासामानो [ भासामान ]: पाठ करता है; एपीआई : यद्यपि; सीई : अभी तक; तक्कारो [ तक्कारा ]: तदनुसार व्यवहार करना; न होती : नहीं बनता; परेसां [ परेसा ]: दूसरों का; गावो : मवेशी; गणयं [ ganaya ]: रक्षा करना; गोपो इवा : चरवाहे जैसा; समन्नस्सा : त्याग किया हुआ जीवन; भगवान न होति : का हिस्सा नहीं है.

कुछ लोग बुद्ध के वचनों को भली-भांति जानते हैं और उन्हें दोहरा भी सकते हैं। परन्तु घोर उपेक्षा के कारण वे उन पर अमल नहीं करते। फलस्वरूप वे किसी भी धार्मिक उपलब्धि को प्राप्त नहीं कर पाते। उन्हें संन्यासी जीवन का फल नहीं मिलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी दूसरे के पशुओं की देखभाल करने वाले चरवाहे का जीवन। चरवाहा सुबह पशुओं को चरागाह ले जाता है और शाम को उन्हें मालिक के घर वापस ले आता है। उसे केवल मजदूरी मिलती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 20)

सहितं अप्पं अपि भासामानो सी धम्मस्सा
अनुधम्मचारी होति रागं च दोसं च मोहं
च पहाया सो सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो इधा
वा हुरं वा अनुपादियानो समानास्सा भगव होति ।

सहितं ( sahitaṃ ) [मूल रूप: सहित ( sahita )] बुद्ध का वचन; appaṃ api : थोड़ा सा भी; bhāsamāno [ bhāsamāna ]: दोहराना; ce : यदि; dhammassa : शिक्षा का; anudhammacārī hoti : शिक्षा के अनुसार जीवन यापन करना; rāgaṃ ca : वासना; dosaṃ ca : दुर्भावना ; mohaṃ ca : भ्रम; pahāya : त्याग करना; so : वह; sammappajāno [ sammappajāna ]: गहन समझ रखने वाला; suvimuttacitto [ suvimuttacitta ]: भावनाओं से मुक्त; idha vā : या तो यहाँ; huraṃ vā : या परलोक में; anupādiyāno [ anupādiyāna ]: आसक्ति न रखने वाला; sāmaññassa : त्यागी जीवन का; bhāgavā hoti : भाग लेता है।

सत्य का सच्चा साधक भले ही बुद्ध के वचनों का कम ही उच्चारण करे। वह धार्मिक ग्रंथों का विस्तृत पाठ न कर पाए, परन्तु यदि वह बुद्ध की शिक्षाओं का निष्ठापूर्वक पालन करे, उनके अनुसार जीवन व्यतीत करे, वासना, द्वेष और भ्रम से मुक्त हो, गहन अनुभव प्राप्त कर ले और सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति से मुक्त हो, तो वह संन्यासी का जीवन व्यतीत करने वाला है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 19-20)

सहितं : शाब्दिक अर्थ है कोई भी साहित्य। लेकिन इस संदर्भ में, विशेष रूप से बौद्ध साहित्य का उल्लेख है। बुद्ध के वचन तीन पिटकों में समाहित हैं। यह श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि यदि सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति पाठ किए गए वचनों का अभ्यास करने के लिए तैयार नहीं है, तो केवल बुद्ध के वचनों का पाठ करने से उसके धार्मिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आएगा। धार्मिक जीवन

की पूर्णता तभी सुनिश्चित होती है जब व्यक्ति बुद्ध के वचनों के अनुसार अपना जीवन व्यवस्थित करे। केवल बुद्ध के वचनों का पाठ करने वाले व्यक्ति का प्रयास उतना ही व्यर्थ है जितना कि उस ग्वाले का जो दूसरों के पशुओं को गिनने में समय व्यतीत करता है जबकि दूध और अन्य उत्पाद उसका मालिक ही भोग रहा होता है। यह श्लोक ऐसे व्यक्ति की बात कर रहा है जो बौद्ध साहित्य का बहुत ज्ञानी था, परन्तु उसमें कही गई बातों का अभ्यास नहीं करता था।
सुविमुत्त चित्तो : भावों से मुक्त। जो व्यक्ति आसक्ति और मोह से मुक्त हो जाता है, वह पूर्ण भावात्मक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है।
अनुपदियानो : वह व्यक्ति जिसने इस दुनिया और अगली दुनिया से आसक्ति और लगाव रखने की आदत को त्याग दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 21,22 एवं 23

———————————————————————

(धम्मपद 19, 20) <<<< पिछला ॥ श्लोक 21, 22 और 23 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 24)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 21, 22 और 23 - सामवती वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमादो अमत्पदं,
पमादो मच्छुनो पदं।
अप्पमत्ता न मयंती,
ये पमत्ता यथा मता॥

एवं विसेस्तो नत्वा,
अप्पमादमहि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति,
अरियनं गोचरे रता॥

ते झायिनो सततिका,
निच्चं दळहपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बानं,
योगखेमं अनुत्तरं॥

———————————————————————

श्लोक 21 : सजगता ही अमरता (निर्वाण) का मार्ग है; असावधानी मृत्यु का मार्ग है। जो सजग रहते हैं वे मरते नहीं; जो सजग नहीं रहते वे मानो पहले से ही मरे हुए हैं।

———————————————————————

श्लोक 22 : इसे पूर्णतः समझकर, सजग बुद्धिमान लोग सजग होने में आनंदित होते हैं और आर्यों के क्षेत्र में प्रसन्नता पाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 23 : ज्ञानी, जो निरंतर शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हैं, सदा सचेत रहते हैं और दृढ़ता से प्रयास करते हैं, वे निर्वाण प्राप्त करते हैं: निर्वाण, जो योग के बंधनों से मुक्त है; निर्वाण, अतुलनीय!

———————————————————————

1. अप्पमदा: टीका के अनुसार, इसमें त्रिपिटक में बुद्ध के वचनों के सभी अर्थ समाहित हैं, इसलिए अप्पमदा का अर्थ पुण्य कर्म करते समय सदा सचेत रहना है; महासतिपट्ठाना सूत्र में बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप, विशेष रूप से "अप्पमदो आमतपदम्" का अर्थ "अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास की साधना ही निर्वाण का मार्ग है" के रूप में लगाया जाना चाहिए।
2. आमत: शाब्दिक अर्थ, मृत्यु रहित, अमर; इसका अर्थ शाश्वत जीवन या अमरता नहीं है। टीका कहती है: "आमत का अर्थ है निर्वाण। यह सत्य है कि निर्वाण को 'आमत' कहा जाता है क्योंकि इसमें वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, क्योंकि इसमें जन्म नहीं होता।"
3. पमादो मच्चुनो पदं शाब्दिक अर्थ: असावधानी मृत्यु का मार्ग है। टीका के अनुसार, असावधान व्यक्ति पुनर्जन्म से मुक्त नहीं हो सकता; पुनर्जन्म होने पर उसे वृद्ध होना और मरना ही पड़ता है; अतः असावधानी मृत्यु का कारण है।
4. अप्पमत्ता न मियंति: जो सचेत रहते हैं, वे मरते नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे बूढ़े नहीं होते या मरते नहीं। टीका के अनुसार, सचेत रहने वाले सचेत लक्षणों का विकास करते हैं (अर्थात, अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हैं); वे शीघ्र ही मार्ग-फल (अर्थात निर्वाण) को प्राप्त कर लेते हैं और पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहते। इसलिए, चाहे वे वास्तव में जीवित हों या मृत, उन्हें अमर माना जाता है।
5. ये पमत्त यथा मत: मानो मृत। टीका के अनुसार, जो सचेत नहीं होते वे मृत के समान होते हैं; क्योंकि वे कभी दान देने या नैतिक नियमों का पालन करने आदि के बारे में नहीं सोचते, और भिक्षुओं के मामले में, क्योंकि वे अपने गुरुओं और उपदेशकों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते, न ही वे शांति और अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करते हैं।
6. अरियानम गोचरे रता: शाब्दिक अर्थ, "आर्यों के क्षेत्र में आनंद पाता है।" टीका के अनुसार, आर्यों का क्षेत्र ज्ञान के सैंतीस कारकों (बोधिपक्खिया) और नौ पारलौकिक तत्वों, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण से मिलकर बना है।
7. झियिनो: शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले।
8. फुसन्ति धीरा निब्बानं: ज्ञानी लोग निर्वाण को प्राप्त करते हैं। शाब्दिक अर्थ है, फुसति का अर्थ है, स्पर्श करना, पहुंचना। टीका के अनुसार, यह प्राप्ति संपर्क या अनुभव के माध्यम से होती है, जो या तो अंतर्दृष्टि (मग्ग-नाना) या फल प्राप्ति (फल) के माध्यम से हो सकती है। इस संदर्भ में, फल प्राप्ति के माध्यम से संपर्क का उल्लेख है।
9. योगक्खेमम: निर्वाण का एक गुण। शाब्दिक अर्थ है, पुनर्जन्म के चक्र में बंधे चार बंधनों से मुक्त या सुरक्षित होना। ये चार बंधन या योग हैं: इंद्रिय सुख (काम), अस्तित्व (भव), गलत धारणा (दित्थी) और चार आर्य सत्यों का अज्ञान (अविज्जा)।

---

समवती की कहानी

कोसंबी के पास घोसिता मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (21), (22) और (23) का उच्चारण किया, जो कोसंबी के राजा उदेना की प्रमुख रानियों में से एक, समवती के संदर्भ में थे।

समावती के महल में पाँच सौ दासियाँ रहती थीं; उनके साथ खुज्जुत्तारा नाम की एक दासी भी थी। खुज्जुत्तारा को प्रतिदिन सुमना नामक पुष्प विक्रेता से समावती के लिए फूल खरीदने पड़ते थे। एक बार खुज्जुत्तारा को सुमना के घर पर बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन सुनने का अवसर मिला और उन्होंने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्होंने बुद्ध के प्रवचन समावती और पाँच सौ दासियों को सुनाए और उन्होंने भी सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस दिन से खुज्जुत्तारा को कोई भी घरेलू काम नहीं करना पड़ा, बल्कि उन्होंने समावती की माता और गुरु की भूमिका निभाई। वह बुद्ध के प्रवचन सुनती और समावती और उनकी दासियों को सुनाती थीं। समय के साथ, खुज्जुत्तारा ने त्रिपिटक में महारत हासिल कर ली।

समावती और उसकी दासियाँ बुद्ध के दर्शन और उन्हें प्रणाम करने की बहुत इच्छा रखती थीं; लेकिन उन्हें डर था कि राजा उनसे नाराज़ हो सकते हैं। इसलिए, उन्होंने अपने महल की दीवारों में छेद करके, प्रतिदिन बुद्ध को तीन धनी पुरुषों, घोषक, कुक्कुट और पवारिया के घरों में जाते समय दर्शन करती थीं।

उस समय, राजा उदेना की एक और प्रमुख रानी थी जिसका नाम मगंदिया था। वह एक ब्राह्मण मगंदिया की पुत्री थी। एक दिन बुद्ध को देखकर उस ब्राह्मण ने सोचा कि बुद्ध ही उसकी अत्यंत सुंदर पुत्री के योग्य हैं। इसलिए, वह जल्दी से अपनी पत्नी और पुत्री को लेने गया और अपनी पुत्री का विवाह बुद्ध से करने का प्रस्ताव रखा। बुद्ध ने उसका प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा, "मारा की पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा को देखने के बाद भी, मेरे मन में कामुक सुखों की कोई इच्छा नहीं हुई; आख़िर यह क्या है जो मूत्र और गंदगी से भरी है और जिसे मैं अपने पैर से भी छूना पसंद नहीं करता।"

बुद्ध के ये शब्द सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अनागामी मार्ग और फल प्राप्त कर लिए। उन्होंने अपनी पुत्री को उसके मामा की देखरेख में सौंप दिया और स्वयं संघ में शामिल हो गए। अंततः, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध को प्रारंभ से ही ज्ञात था कि ब्राह्मण और उनकी पत्नी को उसी दिन अनागामी फल प्राप्त होना नियत था, इसीलिए उन्होंने ब्राह्मण को उपरोक्त प्रकार से उत्तर दिया। यद्यपि पुत्री मगंदिया बहुत क्रोधित और व्यथित हो गईं और उन्होंने अवसर मिलते ही बदला लेने की प्रतिज्ञा की।

बाद में, उसके चाचा ने मगंदिया को राजा उदेना के समक्ष प्रस्तुत किया और वह उनकी प्रमुख रानियों में से एक बन गई। मगंदिया को कोसंबी में बुद्ध के आगमन और समवती और उसकी दासियों द्वारा अपने निवास कक्ष की दीवारों में बने छेदों से बुद्ध को प्रणाम करने की सूचना मिली। इसलिए, उसने बुद्ध से बदला लेने और समवती और उसकी दासियों को, जो बुद्ध की परम भक्त थीं, हानि पहुँचाने की योजना बनाई। मगंदिया ने राजा को बताया कि समवती और उसकी दासियों ने अपने निवास कक्ष की दीवारों में छेद किए हैं और उनके बाहरी लोगों से संपर्क हैं और वे राजा के प्रति वफादार नहीं हैं। राजा उदेना ने दीवारों में छेद देखे, लेकिन सच्चाई जानने पर उन्हें क्रोध नहीं आया।

लेकिन मगंदिया राजा को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करती रही कि समवती उसके प्रति वफादार नहीं है और उसे जान से मारने की कोशिश कर रही है। एक बार, यह जानते हुए कि राजा कुछ दिनों में समवती से मिलने आ रहे हैं और अपने साथ अपना वीणा भी लाएंगे, मगंदिया ने वीणा में एक सांप डाल दिया और छेद को फूलों के गुच्छे से बंद कर दिया। मगंदिया ने राजा उदेना को यह कहकर रोकने की कोशिश की कि उसे कुछ आशंका है और वह उसकी सुरक्षा को लेकर चिंतित है, और फिर वह उसके पीछे-पीछे समवती के कक्ष तक चली गई। समवती के घर पहुँचकर मगंदिया ने वीणा के छेद से फूलों का गुच्छा निकाल दिया। सांप फुफकारता हुआ बाहर आया और पलंग पर कुंडली मारकर बैठ गया। जब राजा ने सांप को देखा तो उसने मगंदिया की बात पर विश्वास कर लिया कि समवती उसे जान से मारने की कोशिश कर रही है। राजा क्रोधित हो गया। उसने समवती को खड़े होने और उसकी सभी दासियों को उसके पीछे कतार में खड़े होने का आदेश दिया। फिर उसने अपने धनुष पर विष में डूबा हुआ बाण लगाया और बाण चला दिया। लेकिन समवती और उनकी दासियों के मन में राजा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी और सद्भावना (मेट्टा) के बल पर तीर वापस लौट आया, जबकि राजा द्वारा चलाया गया तीर आमतौर पर चट्टान को भी भेद देता था। तब राजा को समवती की निर्दोषता का एहसास हुआ और उन्होंने उन्हें बुद्ध और उनके शिष्यों को महल में भिक्षा भोजन और प्रवचन देने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी।

मगंदिया को जब अपनी कोई भी योजना सफल नहीं हुई, तो उसने एक अंतिम और अचूक योजना बनाई। उसने अपने मामा को संदेश भेजा और उन्हें निर्देश दिए कि वे समवती के घर जाकर उस भवन को सभी महिलाओं समेत जला दें। जब घर जल रहा था, समवती और उनकी पाँच सौ दासियाँ ध्यान करती रहीं। इस प्रकार, उनमें से कुछ को शकदागामी पुण्य प्राप्त हुआ और शेष को अनागामी पुण्य प्राप्त हुआ।

आग लगने की खबर फैलते ही राजा तुरंत घटनास्थल पर पहुंचे, लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। उन्हें शक था कि यह सब मगंदिया के उकसावे पर हुआ है, लेकिन उन्होंने अपना शक ज़ाहिर नहीं किया। इसके बजाय उन्होंने कहा, "जब समवती जीवित थीं, तब मैं डर और सतर्कता से रहता था, क्योंकि मुझे लगता था कि वह मुझे नुकसान पहुंचा सकती हैं; अब मेरा मन शांत है। यह किसने किया होगा? यह ज़रूर किसी ऐसे व्यक्ति ने किया होगा जो मुझसे बहुत प्यार करता है।" यह सुनकर मगंदिया ने तुरंत मान लिया कि उसने ही अपने मामा को ऐसा करने का निर्देश दिया था। इस पर राजा ने उससे बहुत प्रसन्नता जताते हुए कहा कि वह उस पर एक बड़ा उपकार करेंगे और उसके सभी रिश्तेदारों का सम्मान करेंगे। इसलिए, रिश्तेदारों को बुलवाया गया और वे खुशी-खुशी आ गए। महल पहुंचते ही राजा के आदेश पर मगंदिया समेत उन सभी को पकड़कर महल के प्रांगण में जला दिया गया।

जब बुद्ध को इन दो घटनाओं के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि जो लोग सचेत रहते हैं वे मरते नहीं हैं; लेकिन जो लोग लापरवाह होते हैं वे जीते जी भी मरे हुए के समान होते हैं।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 21 : सजगता ही अमरता (निर्वाण) का मार्ग है; असावधानी मृत्यु का मार्ग है। जो सजग रहते हैं वे मरते नहीं; जो सजग नहीं रहते वे मानो पहले से ही मरे हुए हैं।

---

श्लोक 22 : इसे पूर्णतः समझकर, सजग बुद्धिमान लोग सजग होने में आनंदित होते हैं और आर्यों के क्षेत्र में प्रसन्नता पाते हैं।

---

श्लोक 23 : बुद्धिमान, निरंतर शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करते हुए, सदा सचेत और दृढ़ प्रयास करते हुए, निर्वाण को प्राप्त करते हैं: निर्वाण, जो योगखेम(10) है; निर्वाण, अतुलनीय!

---

(10) योगखेम के बंधन चार हैं, अर्थात् इंद्रिय सुख (काम), अस्तित्व (भव), गलत विश्वास (दित्थी) और चार आर्य सत्यों का अज्ञान (अर्थात अविज्जा)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सामावती की कहानी

कोसंबी के पास स्थित घोषिता मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के राजा उदेना की प्रमुख रानियों में से एक, सामावती के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

भद्दावती नगर में भद्दावतीया नामक एक कोषाध्यक्ष रहता था, जो कोषाध्यक्ष घोषक का मित्र था, यद्यपि घोषक ने उसे कभी नहीं देखा था। घोषक ने भद्दावती नगर से आए व्यापारियों से भद्दावतीया की धन-दौलत और उम्र के बारे में सुना था, और उससे मित्रता करने की इच्छा से उसे एक उपहार भेजा था। इस प्रकार, यद्यपि दोनों ने एक-दूसरे को नहीं देखा था, फिर भी वे मित्रवत जीवन व्यतीत करते थे।

कुछ समय बाद कोषाध्यक्ष भद्दावतिया के घर में आंतों का रोग फैल गया। इस रोग के फैलने पर सबसे पहले मक्खियाँ मरती हैं; उसके बाद क्रम से कीड़े-मकोड़े, चूहे, घरेलू मुर्गे, सूअर, मवेशी, दास (पुरुष और महिला दोनों), और अंत में घर के सभी सदस्य मरते हैं। केवल वही लोग बच पाते हैं जो दीवार तोड़कर भाग जाते हैं। उस समय कोषाध्यक्ष भद्दावतिया, उनकी पत्नी और पुत्री इसी प्रकार भाग निकले और कोषाध्यक्ष घोषक से मिलने के लिए कोसंबी की ओर चल पड़े। रास्ते में ही उनका भोजन-सामान खत्म हो गया और हवा, धूप और भूख-प्यास से उनका शरीर कमजोर हो गया। बड़ी मुश्किल से कोसंबी पहुँचकर उन्होंने एक रमणीय स्थान पर एक तालाब में स्नान किया और फिर नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में ठहर गए।

तब कोषाध्यक्ष ने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, इस रास्ते से आने वाले लोग तो बच्चे को जन्म देने वाली माँ के प्रति भी शिष्टता नहीं दिखाते। मेरा एक मित्र है, जिसके बारे में लोग कहते हैं कि वह प्रतिदिन एक हजार सिक्के अंधों, गरीबों और अन्य दुर्भाग्यशाली लोगों को दान देता है। हम अपनी बेटी को वहाँ भेजेंगे, उससे हमारे लिए भोजन मंगवाएँगे, हम एक-दो दिन यहीं रुकेंगे और तरोताज़ा हो जाएँगे, फिर हम अपने मित्र से मिलने जाएँगे।" "ठीक है, पतिदेव," उसने उत्तर दिया, और वे वहीं विश्राम गृह में रहने लगे।

अगले दिन, जब भोजन का समय हुआ और अंधे, गरीब और अन्य दुर्भाग्यशाली लोग भोजन लेने गए, तो माता-पिता ने अपनी बेटी को यह कहते हुए भेजा, "बेटी, हमारे लिए भोजन ले आओ।" धनी परिवार की बेटी, दुर्भाग्य से आहत होकर, अपनी शर्म छुपाते हुए, एक कटोरा लेकर गरीबों के पास भोजन लेने गई। उससे पूछा गया, "तुम्हें कितने भाग चाहिए?" उसने उत्तर दिया, "तीन।" तो उन्होंने उसे तीन भाग दिए। वह भोजन लेकर अपने माता-पिता के पास लौट आई, और तीनों एक साथ भोजन करने बैठ गए। माता-पिता ने कोषाध्यक्ष से कहा, "स्वामी, विपत्ति प्रतिष्ठित परिवारों पर भी आती है। हमारी चिंता किए बिना भोजन कीजिए।" बहुत समझाने-बुझाने के बाद, वे उसे भोजन करने के लिए राजी कर पाईं। लेकिन भोजन करने के बाद, वह भोजन पचा नहीं सका, और सूर्योदय होते ही उसकी मृत्यु हो गई। माता-पिता रोए, विलाप किया और शोक मनाया।

अगले दिन वह छोटी बच्ची दूसरी बार भोजन लेने गई। "तुम्हें कितने भाग चाहिए?" "दो।" वह भोजन लेकर अपनी माँ के पास लौटी और बहुत मिन्नतें करने के बाद उसे खाने के लिए राजी कर लिया। माँ उसकी विनती मानकर खाने के लिए तैयार हो गई, लेकिन उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई। अकेली रह गई वह बच्ची अपने ऊपर आई विपत्ति पर रोती-बिलखती और विलाप करती रही। अगले दिन, भूख से बेहाल होकर वह भोजन पाने के लिए भिखारियों के बीच रोते हुए गई। "बेटी, तुम्हें कितने भाग चाहिए?" "एक," उसका उत्तर था।

मिट्टा नाम के एक गृहस्थ ने याद किया कि उसे तीन दिन का भोजन मिल चुका है, तो उसने उससे कहा, "नश्वर स्त्री, मर जा। आज आखिरकार तुझे अपने पेट की क्षमता का पता चल गया।" एक प्रतिष्ठित परिवार की यह विनम्र और डरपोक पुत्री को ऐसा लगा जैसे उसके सीने में तलवार चुभ गई हो, या जैसे किसी घाव पर नमकीन पानी छिड़क दिया गया हो। उसने तुरंत उत्तर दिया, "महोदय, आपका क्या तात्पर्य है?" "परसों तुमने तीन भाग खाए, कल दो, आज तुम केवल एक खा रही हो। तो आज तुम्हें अपने पेट की क्षमता का पता चल गया।" "महोदय, यह मत सोचिए कि मैंने ये अपने लिए खाए।" "तो फिर तुमने क्यों खाए?" "महोदय, परसों हम तीन थे, कल हम दो थे, आज मैं अकेली रह गई हूँ।" "ऐसा कैसे?" उसने पूछा।

फिर उसने उसे शुरू से पूरी कहानी सुनाई। उसकी कहानी सुनते-सुनते वह अपने आँसू नहीं रोक पाया, बल्कि भीतर उमड़ते गहरे दुख के आगे व्याकुल हो गया। अंत में उसने उससे कहा, "मेरी प्यारी बेटी, अगर ऐसा है तो चिंता मत करो। अब तक तुम कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की बेटी रही हो, लेकिन आज से तुम मेरी अपनी बेटी हो।" और उसने उसके सिर पर चुंबन किया, उसे अपने घर ले गया और उसे अपनी सबसे बड़ी बेटी के रूप में गोद ले लिया।

एक दिन उसने भोजन कक्ष में तेज़ और चीख-पुकार सुनी, तो उसने अपने पालक पिता से कहा, "पिताजी, आप दान देते समय इन लोगों को शांत क्यों नहीं रखते?" "यह असंभव है, प्यारी बेटी।" "पिताजी, यह बिल्कुल संभव है।" "तुम यह कैसे करोगी, प्यारी बेटी?" "पिताजी, भोजन कक्ष के चारों ओर बाड़ लगा दीजिए और दो द्वार लगा दीजिए, जिनसे लोग अंदर-बाहर आ-जा सकें, लेकिन एक बार में केवल एक ही व्यक्ति के आने-जाने की जगह हो। फिर लोगों को एक द्वार से अंदर और दूसरे से बाहर जाने का निर्देश दीजिए। ऐसा करने से वे शांतिपूर्वक और चुपचाप दान ग्रहण कर लेंगे।" जब गृहस्थ ने उसकी योजना सुनी तो उसने कहा, "वाह, बढ़िया उपाय है, प्यारी बेटी," और उसने वैसा ही किया जैसा उसने सुझाव दिया था। उस समय तक उसका नाम सामा था, लेकिन बाड़ बनवाने के कारण

उसे सामावती नाम मिला। उस समय से भोजन कक्ष में कोई शोर-शराबा नहीं रहा।

कोषाध्यक्ष घोषका को भोजन कक्ष में यह शोर सुनने की आदत हो गई थी और उन्हें यह शोर अच्छा भी लगता था; क्योंकि इससे उन्हें हमेशा यह ख्याल आता था, "यह शोर तो मेरे भोजन कक्ष का है।" लेकिन दो-तीन दिन तक कोई शोर न सुनकर उन्होंने गृहस्थ मिट्टा से पूछा, जो एक दिन उनसे मिलने आए थे, "क्या अंधों, गरीबों और अन्य दुर्भाग्यशाली लोगों को दान दिया जा रहा है?" "जी जी।" "तो फिर ऐसा कैसे हुआ कि पिछले दो-तीन दिनों से मुझे कोई आवाज नहीं सुनाई दी?" "मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि अब लोग बिना शोर किए दान ग्रहण कर रहे हैं।" "आपने पहले ऐसा क्यों नहीं किया?" "मुझे पता नहीं था कि कैसे करना है।" "आपको अभी कैसे पता चला?" "मेरी बेटी ने मुझे बताया कि कैसे करना है।" "क्या आपकी कोई बेटी है जिसे मैंने कभी नहीं देखा?" तब गृहस्थ ने उन्हें कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की पूरी कहानी सुनाई, जिसमें महामारी फैलने से लेकर उस युवती को अपनी सबसे बड़ी बेटी के रूप में गोद लेने तक की कहानी थी।
तब कोषाध्यक्ष ने उससे कहा, "यदि ऐसा है, तो तुमने मुझे क्यों नहीं बताया? मेरे मित्र की पुत्री तो मेरी अपनी पुत्री है।" इसलिए उसने उसे बुलवाया और पूछा, "प्यारी बेटी, क्या तुम कोषाध्यक्ष की पुत्री हो?" "जी हाँ, मैं हूँ।" "तो फिर चिंता मत करो; तुम मेरी अपनी पुत्री हो।" फिर उसने उसके सिर पर चुंबन किया, उसे पाँच सौ स्त्रियाँ अपने दल में दीं और उसे अपनी सबसे बड़ी पुत्री के रूप में गोद ले लिया।
एक दिन इस नगर में एक उत्सव की घोषणा हुई। इस उत्सव में प्रतिष्ठित परिवारों की वे बेटियाँ, जो सामान्यतः बाहर नहीं जातीं, अपने दल-पत्नियों के साथ पैदल चलकर नदी में स्नान करने जाती हैं। तदनुसार, उस दिन सामावती भी अपनी पाँच सौ स्त्रियों के साथ महल के प्रांगण से होकर नदी में स्नान करने गईं। राजा उदेना अपनी खिड़की पर खड़े होकर उन्हें देख रहे थे। उन्होंने पूछा, "ये चंचल लड़कियाँ किसकी हैं?" सामावती ने उत्तर दिया, "महाराज, ये किसी की चंचल लड़कियाँ नहीं हैं।" "तो फिर ये किसकी बेटियाँ हैं?" सामावती ने उत्तर दिया, "महाराज, ये कोषाध्यक्ष भद्दावतिया की पुत्री हैं और इनका नाम सामावती है।" तब राजा ने सामावती और उनके दल-पत्नियों को राजमहल में ले जाकर उन्हें महारानी का पद प्रदान किया।
एक और कन्या को राजा की प्रधान पत्नी का पद प्राप्त हुआ। वह मागंदिया थीं, जिन्हें उनके पिता द्वारा पति के रूप में बुद्ध से विवाह का प्रस्ताव रखे जाने पर बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया था। प्रधान पत्नी बनने के बाद उन्होंने पाया कि दूसरी प्रधान पत्नी सामावती बुद्ध की कट्टर अनुयायी थीं। उन्होंने बुद्ध से बदला लेने और सामावती और उनकी दासियों को हानि पहुँचाने की योजना बनाई। मागंदिया ने राजा को बताया कि सामावती और उनकी दासियों ने अपने निवास स्थान की दीवारों में छेद कर दिए हैं और वे उनके प्रति बेवफ़ाई कर रही हैं। राजा उदेना ने दीवारों में छेद देखे, लेकिन जब उन्हें पूरी बात समझाई गई तो वे क्रोधित नहीं हुए।
मागंदिया राजा को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता रहा कि सामावती उसे जान से मारना चाहती है। एक बार, मागंदिया ने एक वीणा में एक साँप डाल दिया और छेद को फूलों के गुच्छे से ढक दिया। साँप फुफकारते हुए बाहर निकला। राजा क्रोधित हो गया। उसने सामावती को खड़े होने और उसकी सभी दासियों को उसके पीछे पंक्तिबद्ध होने का आदेश दिया। फिर उसने अपने धनुष पर विष में डूबा हुआ बाण लगाया और बाण चलाया। लेकिन सामावती और उसकी दासियों के मन में राजा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी और सद्भावना के बल पर बाण लक्ष्य पर नहीं लगा। राजा को सामावती की निर्दोषता का एहसास हुआ और उसने उसे बुद्ध और उनके शिष्यों को महल में भिक्षा देने और धार्मिक प्रवचन देने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति दी।
मागंदिया ने जब देखा कि उसकी कोई भी योजना सफल नहीं हुई है, तो उसने एक अंतिम, अचूक योजना बनाई। उसने अपने मामा को संदेश भेजा और उन्हें निर्देश दिए कि वे सामावती के महल में जाकर सभी महिलाओं सहित महल को जला दें। आध्यात्मिक साधना में उन्नत होने के कारण सामावती और उनकी दासियाँ खतरे के बावजूद ध्यान करती रहीं। आग में जलकर सभी की मृत्यु हो गई।
राजा को शक था कि यह सब मागंदिया के उकसावे पर हुआ है, लेकिन उसने अपना शक ज़ाहिर नहीं किया। इसके बजाय, राजा ने उससे बहुत प्रसन्नता जताते हुए कहा कि वह उस पर बड़ी कृपा करेगा और उसके सभी रिश्तेदारों का सम्मान करेगा। इसलिए, रिश्तेदारों को बुलवाया गया और वे खुशी-खुशी आ गए। महल पहुँचते ही, मागंदिया समेत उन सभी को पकड़ लिया गया और महल के प्रांगण में ही मौत के घाट उतार दिया गया।
जब बुद्ध को इन दो घटनाओं के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि जो सचेत रहते हैं वे मरते नहीं हैं; परन्तु जो लापरवाह रहते हैं वे जीते जी भी मरे हुए के समान होते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 21)
अप्पमादो अमतपदं पमादो मैक्कुणो पदं
अप्पमत्ता न मियांति ये पमत्ता यथा माता
appamādo [ appamāda ]: विवेक; amatapadaṃ [ amatapada ]: अमरता का मार्ग है; pamādo [ pamāda ]: पागलपन; maccuno padaṃ [ pada ]: मृत्यु का मार्ग है; appamattā : जो समझदार हैं; na mīyanti : मरते नहीं; ye : जो; pamattā : पागल हैं; matā yathā : (वे) मृतकों के समान हैं।

अमरत्व का मार्ग निरंतर अनुभव की जागरूकता है। अमरत्व का अर्थ ऐसी शारीरिक अवस्था नहीं है जहाँ शरीर का नाश न हो। जब कोई व्यक्ति अनुभव की प्रक्रियाओं के प्रति पूर्णतः जागरूक हो जाता है, तो वह अस्तित्व की निरंतरता से मुक्त हो जाता है। जिन लोगों में यह जागरूकता नहीं होती, वे शारीरिक रूप से जीवित होते हुए भी मृत के समान होते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 22)

झायिनो सातातिका निकं दल्हपरक्कमा ते दिहरा
योगक्खेमं अनुत्तरं निब्बाणं फुसन्ति

झायिनो [ झायिना ]: ध्यानमग्न; सततिका : निरंतर प्रयास में; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; दल्हापरक्कमा : दृढ़; ते दिहरा : वे बुद्धिमान व्यक्ति; योगक्खेमं [ योगक्खेम ]: बंधनों से मुक्त; अनुत्तरं [ अनुत्तर ]: नायाब; निब्बाणम् [ निब्बाण ]: शांति; फुसन्ति : स्पर्श करें.

वे ज्ञानी व्यक्ति जो निरंतर ध्यान का अभ्यास करते हैं, उस स्तर की समझ प्राप्त कर लेते हैं जिससे वे निर्वाण का अनुभव कर पाते हैं। वे ज्ञानी व्यक्ति जो निरंतर, दृढ़ता और स्थिरता से ध्यान में लगे रहते हैं, निर्वाण का अनुभव करते हैं, जो सभी बंधनों से मुक्ति का सर्वोच्च रूप है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 23)

एतं विसेसातो नात्वा अप्पमादं हि पंडिता
अप्पमादे पमोदंती अरियानां गोकरे रता

etaṃ : यह; visesato [ visesata ]: विशेष रूप से; ñatvā : पहचानते हुए; appamādaṃ hi : सचेतनता में स्थापित; paṇḍitā : ज्ञानी; appamāde : सचेतनता में; pamodanti : आनंद लेना; ariyānaṃ [ ariyāna ]: श्रेष्ठ लोगों का; gocare : उचित आचरण; ratā : आनंद लेना।

जो लोग वास्तव में बुद्धिमान होते हैं, वे विवेक की आवश्यकता के प्रति विशेष रूप से सजग होते हैं। वे विवेक में आनंद पाते हैं। वे विवेक की खोज में प्रसन्न होते हैं क्योंकि यह अलौकिक क्षेत्र है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 21-23)

अप्पमादा : यह शब्द बुद्ध की शिक्षाओं में अनेक संदर्भों में पाया जाता है। यहाँ तक कि उनके अंतिम शब्दों में भी इसका उल्लेख मिलता है। अप्पमादा का सटीक अर्थ है "समझदारी", यानी पागलपन का अभाव, जो बौद्ध धर्म के अनुसार सामान्य ( पुथुज्जन ) अवस्था नहीं बल्कि अलौकिक ( आर्य ) अवस्था है। बुद्ध का इस शब्द से तात्पर्य निरंतर सतर्कता और अनुभव की प्रक्रिया के प्रति गहरी जागरूकता से था। प्रशिक्षुओं को सलाह दी गई थी कि वे अस्तित्व ( भाव ) में लीन होने से बचने के लिए भीतर के अनुभव के प्रति निरंतर जागरूक रहें । इसलिए यह सतर्कता उन्नत प्रशिक्षु और प्रबुद्ध व्यक्ति की मन की एक निरंतर अवस्था है।

अमाता : निर्वाण, बौद्धों का अंतिम लक्ष्य। जैसा कि इस सकारात्मक शब्द से स्पष्ट है, निर्वाण का अर्थ विनाश या शून्यता की अवस्था नहीं है, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। यह वह स्थायी, अमर, अलौकिक अवस्था है जिसे सांसारिक शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

न मीयन्ति : मृत्यु न हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे अमर हैं। कोई भी प्राणी अमर नहीं है, यहाँ तक कि बुद्ध या अरहंत भी नहीं। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि सजग, जो निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, पुनर्जन्म नहीं लेते, इसलिए उनकी मृत्यु नहीं होती। असजग लोगों को मृत माना जाता है क्योंकि वे अच्छे कर्म करने के लिए तत्पर नहीं होते और जन्म-मृत्यु के चक्र में बंधे रहते हैं।

निर्वाण : नि + वान , शाब्दिक अर्थ: भोग से मुक्ति। यह एक अलौकिक अवस्था है जिसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इसे मनोभावों का नाश होना भी कहा जाता है, लेकिन यह शून्यता की अवस्था नहीं है। यह मनोभावों के पूर्ण उन्मूलन से उत्पन्न होने वाली शाश्वत आनंदमयी अवस्था है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 24

---

(धम्मपद 21, 22, 23) <<<< पिछला ‖ श्लोक 24 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 25)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 24 - कुम्भघोषकासेट्ठि वत्थु

———————————————————————

00:04
41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
उत्थानावतो सतिमातो
sucikammassa nisammakarino
सन्नातस्सा धम्मजीवनो
अप्पमत्तस्सा यसो भिवद्दति।

———————————————————————

श्लोक 24 : यदि कोई व्यक्ति ऊर्जावान, सचेत, अपने विचार, वचन और कर्म में शुद्ध हो, और यदि वह सब कुछ सावधानी और विचारपूर्वक करे, अपनी इंद्रियों को संयमित रखे, धर्म के अनुसार जीविका कमाए और असावधान न हो, तो उस सचेत व्यक्ति की प्रसिद्धि और धन में निरंतर वृद्धि होती है।

———————————————————————

कुंभघोषक नामक बैंकर की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बैंकर कुंभघोषक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (24) कहा।

एक समय राजगृह नगर में प्लेग की महामारी फैल गई। नगर के धनाढ्य व्यक्ति के घर में नौकर-चाकर इस बीमारी से मर गए; धनाढ्य व्यक्ति और उनकी पत्नी भी इस बीमारी की चपेट में आ गए। जब दोनों बीमार पड़ गए, तो उन्होंने अपने छोटे बेटे कुंभघोषक को घर छोड़कर भाग जाने और लंबे समय बाद लौटने के लिए कहा। उन्होंने उसे यह भी बताया कि फलाँ स्थान पर उन्होंने चालीस करोड़ रुपये का खजाना गाड़ रखा है। बेटा नगर छोड़कर बारह वर्ष तक जंगल में रहा और फिर नगर लौट आया।

उस समय तक वह काफी बड़ा हो चुका था और शहर में कोई भी उसे पहचान नहीं पाया। वह उस जगह गया जहाँ खजाना छिपा था और पाया कि वह पूरी तरह सुरक्षित था। लेकिन उसने सोचा और महसूस किया कि कोई भी उसे पहचान नहीं पाएगा और अगर वह दफन खजाने को खोदकर निकाल ले और उसका इस्तेमाल करे तो लोग सोचेंगे कि एक गरीब नौजवान को गलती से दफन खजाना मिल गया है और वे इसकी सूचना राजा को दे देंगे। ऐसे में उसकी संपत्ति जब्त हो जाएगी और उसे पीटा जा सकता है या कैद किया जा सकता है। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि अभी खजाना खोदने का समय नहीं आया है और इस बीच उसे अपनी जीविका के लिए काम ढूंढना होगा। पुराने कपड़े पहने कुंभघोषक काम की तलाश में निकल पड़ा। उसे सुबह जल्दी लोगों को जगाने और भोजन तैयार करने, बैलगाड़ी लाने और बैलों को जोतने आदि की घोषणा करने का काम दिया गया।

एक सुबह राजा बिम्बिसार ने उसकी आवाज़ सुनी। राजा, जो आवाज़ों को पहचानने में माहिर थे, ने कहा, "यह किसी धनी व्यक्ति की आवाज़ है।" राजा की यह टिप्पणी सुनकर एक दासी ने किसी को जाँच के लिए भेजा। उसने बताया कि वह युवक केवल मज़दूरों का एक मज़दूर था। इस सूचना के बावजूद राजा ने अगले दो दिनों तक यही बात दोहराई। फिर से पूछताछ की गई, लेकिन परिणाम वही रहा। दासी को यह बहुत अजीब लगा, इसलिए उसने राजा से स्वयं जाकर जाँच करने की अनुमति माँगी।

देहाती वेश धारण करके दासी और उसकी बेटी मजदूरों के ठिकाने की ओर चल पड़ीं। उन्होंने यात्री होने का दावा करते हुए आश्रय मांगा और कुंभघोषक के घर में उन्हें केवल एक रात के लिए ठहराया गया। हालांकि, वे वहां अपना प्रवास बढ़ाने में कामयाब रहीं। इसी दौरान राजा ने दो बार घोषणा की कि मजदूरों के इलाके में एक विशेष समारोह आयोजित किया जाना चाहिए और प्रत्येक परिवार को योगदान देना होगा। कुंभघोषक के पास ऐसे अवसर के लिए नकद राशि नहीं थी। इसलिए उन्हें अपने खजाने से कुछ सिक्के (कहपन) निकालने पड़े। जब ये सिक्के दासी को सौंपे गए, तो उसने उन्हें अपने पैसों से बदल दिया और राजा को भेज दिए। कुछ समय बाद, उसने राजा को संदेश भेजा कि वह कुछ लोगों को भेजकर कुंभघोषक को दरबार में बुलाए। कुंभघोषक बड़ी अनिच्छा से उन लोगों के साथ चला गया। दासी और उसकी बेटी भी उनसे पहले महल चली गईं।

महल में राजा ने कुंभघोषक को सच बोलने को कहा और आश्वासन दिया कि उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा। तब कुंभघोषक ने स्वीकार किया कि वे सिक्के उसके थे और वह राजगृह नगर के उस धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र था जिसकी बारह वर्ष पूर्व प्लेग महामारी में मृत्यु हो गई थी। उसने खजाने के छिपे होने का स्थान भी बताया। इसके बाद, सारा छिपा हुआ खजाना महल में लाया गया; राजा ने उसे धनाढ्य बना दिया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया।

इसके बाद, राजा कुंभघोषक को अपने साथ लेकर वेलुवन मठ में बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि कैसे वह युवक धनी होते हुए भी मजदूरों के यहाँ मजदूरी करके अपना जीवन यापन कर रहा था, और कैसे उन्होंने उस युवक को एक बैंकर नियुक्त किया था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 24 : यदि कोई व्यक्ति ऊर्जावान, सचेत, अपने विचार, वचन और कर्म में शुद्ध हो, और यदि वह प्रत्येक कार्य सावधानी और विचारपूर्वक करे, अपनी इंद्रियों को संयमित रखे, धर्म के अनुसार जीविका अर्जित करे और असावधान न हो, तो उस सचेत व्यक्ति की प्रसिद्धि और धन में निरंतर वृद्धि होती है।

---

प्रवचन के अंत में, कुंभघोषक ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

वेलुवन मठ में निवास करने वाले कुंभघोषक की कथा:

बुद्ध ने कुंभघोषक नामक साहूकार के संदर्भ में यह श्लोक कहा। एक समय राजगृह नगर में प्लेग की महामारी फैल गई। नगर के साहूकार के घर में नौकर इस बीमारी से मर गए; साहूकार और उनकी पत्नी भी इस बीमारी की चपेट में आ गए। जब वे दोनों इस बीमारी से संक्रमित हो गए, तो उन्होंने अपने छोटे बेटे कुंभघोषक को घर छोड़कर भाग जाने और लंबे समय बाद ही लौटने को कहा। उन्होंने उसे यह भी बताया कि फलाँ स्थान पर उन्होंने एक बहुमूल्य खजाना छिपा रखा है। बेटा नगर छोड़कर बारह वर्ष तक जंगल में रहा और फिर नगर लौट आया। तब तक वह काफी बड़ा हो चुका था और नगर में कोई भी उसे पहचान नहीं पाया। वह उस स्थान पर गया जहाँ खजाना छिपा था और उसे सुरक्षित पाया। लेकिन उसने सोच-समझकर यह महसूस किया कि उसे पहचानने वाला कोई नहीं है और अगर वह दफन खजाने को खोदकर निकाल ले और उसका इस्तेमाल करे तो लोग सोचेंगे कि एक गरीब नौजवान को गलती से दफन खजाना मिल गया है और वे इसकी सूचना राजा को दे देंगे। ऐसे में उसकी संपत्ति जब्त हो जाएगी और उसे पीटा जा सकता है या कैद में डाला जा सकता है। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि अभी खजाना खोदने का समय नहीं आया है और इस बीच उसे जीविका कमाने के लिए काम ढूंढना होगा। पुराने कपड़े पहने कुंभघोषक काम की तलाश में निकल पड़ा। उसे सुबह जल्दी लोगों को जगाने और भोजन तैयार करने, गाड़ियां लाने और बैलों को जोतने का समय बताने का काम दिया गया।

एक सुबह, राजा बिम्बिसार ने उसकी आवाज़ सुनी। राजा, जो आवाज़ों को पहचानने में माहिर थे, ने कहा, "यह किसी धनी व्यक्ति की आवाज़ है।" राजा की यह टिप्पणी सुनकर एक दासी ने किसी को जाँच के लिए भेजा। उसने बताया कि वह युवक केवल मजदूरों का एक मज़दूर था। इस सूचना के बावजूद, राजा ने अगले दो दिनों तक यही बात दोहराई। फिर से पूछताछ की गई, लेकिन परिणाम वही रहा। दासी को यह बहुत अजीब लगा, इसलिए उसने राजा से स्वयं जाकर जाँच करने की अनुमति माँगी। साधारण लोगों का वेश धारण करके, दासी और उसकी बेटी मजदूरों के स्थान पर गईं। उन्होंने यात्री होने का दावा करते हुए आश्रय माँगा और कुंभघोषक के घर में उन्हें केवल एक रात के लिए ठहराया गया। हालाँकि, वे वहाँ अपना प्रवास बढ़ाने में कामयाब रहीं। इस दौरान, राजा ने दो बार घोषणा की कि मजदूरों के इलाके में एक विशेष समारोह आयोजित किया जाना चाहिए और प्रत्येक परिवार को योगदान देना होगा। कुंभघोषक के पास ऐसे अवसर के लिए नकद राशि नहीं थी। इसलिए उन्हें अपने खजाने से कुछ सोने के सिक्के निकालने पड़े। जब ये सिक्के दासी को सौंपे गए, तो उसने उन्हें अपने पैसों से बदल दिया और राजा को भेज दिए। कुछ समय बाद, उसने राजा को संदेश भेजा कि वह कुछ लोगों को भेजकर कुंभघोषक को दरबार में बुलाए। कुंभघोषक अनिच्छा से उन लोगों के साथ चला गया। दासी और उसकी बेटी भी उनसे पहले महल में चली गईं।

महल में राजा ने कुंभघोषक से सच बोलने को कहा और उसे आश्वासन दिया कि इस कारण उसे कोई हानि नहीं होगी। कुंभघोषक ने स्वीकार किया कि वे कहापन (सोने के सिक्के) उसके थे और वह राजगृह नगर के धनाढ्य का पुत्र था, जिसकी बारह वर्ष पूर्व प्लेग महामारी में मृत्यु हो गई थी। उसने खजाने के छिपे होने का स्थान भी बताया। इसके बाद, सारा छिपा हुआ खजाना महल में लाया गया; राजा ने उसे धनाढ्य नियुक्त किया और अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। बाद में, कुंभघोषक को अपने साथ लेकर राजा वेलुवन मठ में बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि कैसे वह युवक धनी होते हुए भी मजदूरों के यहाँ मजदूरी करके अपना जीवन यापन कर रहा था और कैसे उन्होंने उसे धनाढ्य नियुक्त किया था।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 24)

उत्थानवतो सातिमतो सुसीकमम्मास निसम्मकारिनो

सन्नतस्सा च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्सा यसो अभिवधति

उत्थानावतो [ उठहनावता ]: दृढ़; सतिमातो [ सतिमाता ]: चौकस; सुसीकम्मास्सा : कार्य और व्यवहार में शुद्ध; निसम्माकारिनो [ nisammakārina ]: सभी गतिविधियों में सावधान; सन्नतास्सा : अच्छी तरह से संयमित; सीए : और; धम्मजिविनो [ धम्मजिविना ]: धार्मिक जीवन जीना; अप्पमट्टस्सा : जागरूक व्यक्ति; यशो : महिमा; अभिवधति : बहुत बढ़ जाती है।

यदि कोई व्यक्ति दृढ़ है, उसका ध्यान अंतर्मुखी है, उसके शारीरिक और आध्यात्मिक कर्म निष्कलंक हैं, वह संयमी है, और वह शिक्षा के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहा है तथा समझदार है, तो उसकी महिमा बढ़ेगी।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 24)
उत्थानवतो : वह व्यक्ति जो सजग और ऊर्जावान हो, और सुस्त न हो। वह सत्य की खोज के मार्ग पर बिना थके और दृढ़ धैर्य के साथ निरंतर चलता रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 25

---

(धम्मपद 24) <<<< पिछला ॥ श्लोक 25 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 26, 27)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 25 - कुलपंथका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

उत्थानेना' पपामदेन
सम्यमेना दमेना च
dipam kayiratha medhav(1)
yam ogho(2) nabhikirati.

---

श्लोक 25 : परिश्रम, सजगता, अनुशासन (नैतिक उपदेशों के संबंध में) और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण के द्वारा, बुद्धिमान व्यक्ति अपने आप को एक ऐसा द्वीप बना ले जिसे कोई बाढ़ बहा न सके।

---

1. dipam kayiratha medhavi = द्वीप + बनाना + बुद्धिमान, जिसका अर्थ है कि बुद्धिमान व्यक्ति एक द्वीप बनाए। इस संदर्भ में 'द्वीप' अरहतत्व का प्रतीक है। अरहतत्व को यहाँ द्वीप से जोड़ा गया है क्योंकि यह व्यक्ति को संसार (पुनर्जन्मों के चक्र) के तूफानी जल से मुक्ति दिलाता है।
2. ओघो: बाढ़ या जलप्रपात। इसका प्रयोग मानवता को अभिभूत करने वाली बुराइयों या वासनाओं के लिए लाक्षणिक रूप से किया जाता है।

---

चुलपंथका की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजगृह के एक बैंकर के पोते चुलपंथक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (25) कहा।
बैंकर के दो पोते थे, जिनका नाम महापंथक और चुलपंथक था। महापंथक, जो बड़ा था, अपने दादा के साथ धार्मिक प्रवचन सुनने जाया करता था। बाद में, महापंथक बौद्ध धर्म में शामिल हो गया और समय के साथ अर्हत बन गया। चुलपंथक ने अपने भाई का अनुसरण किया और भिक्षु बन गया। लेकिन, चूंकि पिछले जन्म में कश्यप बुद्ध के समय में चुलपंथक ने एक बहुत ही मंदबुद्धि भिक्षु का उपहास किया था, इसलिए वह इस जन्म में भी मंदबुद्धि ही पैदा हुआ। वह चार महीनों में एक श्लोक भी याद नहीं कर सका। महापंथक अपने छोटे भाई से बहुत निराश था और उसने उससे यह भी कहा कि वह संघ के योग्य नहीं है।
लगभग उसी समय, जीवक बुद्ध और वहाँ के भिक्षुओं को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने आया। महापंथक, जो उस समय भिक्षुओं को भोजन के निमंत्रण देने का प्रभारी था, ने चुलपंथक का नाम सूची से हटा दिया। जब चुलपंथक को इस बात का पता चला तो

वह बहुत निराश हुआ और उसने गृहस्थ जीवन में लौटने का निश्चय किया। उसका इरादा जानकर, बुद्ध उसे अपने साथ ले गए और उसे गंधकुटी हॉल के सामने बैठाया। फिर उन्होंने चुलपंथक को एक साफ कपड़ा दिया और उसे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठने और उसे रगड़ने के लिए कहा। साथ ही उसे "राजोहरणम" शब्द का जाप करने के लिए कहा, जिसका अर्थ है "अशुद्धता ग्रहण करना"। इसके बाद बुद्ध भिक्षुओं के साथ जीवक के निवास पर गए।

इसी बीच, चुलपंथक कपड़े के टुकड़े को रगड़ते रहे और लगातार "राजोहरणम्" का जाप करते रहे। देखते ही देखते कपड़ा गंदा हो गया। कपड़े की इस स्थिति को देखकर चुलपंथक को सभी वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हो गया। जीवक के घर से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से चुलपंथक की प्रगति के बारे में जाना। उन्होंने अपना प्रकाश इस प्रकार भेजा कि (चुलपंथक को) बुद्ध उनके सामने बैठे हुए दिखाई दिए और बोले:

"केवल कपड़ा ही धूल से गंदा नहीं होता; भीतर भी राग, द्वेष और मोह की धूल विद्यमान रहती है, अर्थात् चार आर्य सत्यों का अज्ञान। इन्हें दूर करके ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।" चुलपंथक को यह संदेश समझ में आ गया और उन्होंने निरंतर ध्यान किया तथा थोड़े ही समय में विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार चुलपंथक का मंदबुद्धिपन दूर हो गया।

जीवक के घर पर, वे दान के प्रतीक के रूप में आहुति जल डालने ही वाले थे कि बुद्ध ने कटोरे को अपने हाथ से ढक लिया और पूछा कि क्या मठ में कोई भिक्षु बचा है। जब उत्तर मिला कि कोई नहीं है, तो बुद्ध ने कहा कि एक भिक्षु है और उन्हें मठ से चुलपंथक को लाने का निर्देश दिया। जब जीवक के घर से दूत मठ पहुँचा, तो उसने वहाँ एक भिक्षु को नहीं, बल्कि एक हजार एक जैसे भिक्षुओं को पाया। उन सभी को चुलपंथक ने बनाया था, जिसके पास अब अलौकिक शक्तियाँ थीं। दूत चकित रह गया और वह वापस लौटकर जीवक को सारी बात बता दी। दूत को दूसरी बार मठ भेजा गया और उसे निर्देश दिया गया कि वह कहे कि बुद्ध ने चुलपंथक नाम के भिक्षु को बुलाया है। लेकिन जब उसने संदेश दिया, तो हजार आवाजों ने उत्तर दिया, "मैं चुलपंथक हूँ।" फिर से चकित होकर, वह दूसरी बार वापस लौट गया। फिर उसे तीसरी बार मठ भेजा गया। इस बार उन्हें उस भिक्षु को पकड़ने का निर्देश दिया गया जिसने सबसे पहले खुद को चुलपंथक बताया था। जैसे ही उन्होंने उस भिक्षु को पकड़ा, बाकी सभी गायब हो गए, और चुलपंथक दूत के साथ जीवक के घर गए। भोजन के बाद, बुद्ध के निर्देशानुसार, चुलपंथक ने युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए आत्मविश्वास और साहस के साथ धार्मिक प्रवचन दिया।

बाद में, जब भिक्षुओं के बीच चुलपंथक का विषय उठा, तो बुद्ध ने कहा कि जो व्यक्ति अपने प्रयास में परिश्रमी और दृढ़ रहता है, वह निश्चित रूप से अर्हतत्व प्राप्त करेगा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 25 : परिश्रम, सजगता, अनुशासन (नैतिक उपदेशों के संबंध में) और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण के द्वारा, बुद्धिमान व्यक्ति अपने आप को एक ऐसा द्वीप बना ले जिसे कोई बाढ़ बहा न सके।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चूलपंथक की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजगृह के एक धनाढ्य के पोते चूलपंथक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। धनाढ्य के दो पोते थे, महापंथक और चूलपंथक। महापंथक, जो बड़े थे, अपने दादा के साथ धार्मिक प्रवचन सुनने जाया करते थे। बाद में, महापंथक ने बौद्ध धर्म अपना लिया और जल्द ही अर्हत बन गए। चूलपंथक ने भी अपने भाई का अनुसरण करते हुए भिक्षु बन गए, लेकिन चार महीने में एक श्लोक भी याद नहीं कर सके। लगभग उसी समय, जीवक मठ में बुद्ध और वहां रहने वाले भिक्षुओं को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित करने आए। महापंथक, जो उस समय भिक्षुओं को भोजन के निमंत्रण देने का प्रभारी था, ने चूलपंथक का नाम सूची से हटा दिया। जब चूलपंथक को इस बात का पता चला तो वे बहुत निराश हुए और उन्होंने गृहस्थ जीवन में लौटने का निश्चय किया। बुद्ध ने चूलपंथक का इरादा जान लिया और उसे अपने साथ ले जाकर गंधकुटी हॉल के सामने बैठा दिया। फिर उन्होंने चूलपंथक को एक साफ सफेद कपड़ा दिया और उसे पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठने और उस कपड़े को हाथ से रगड़ने को कहा। साथ ही, उसे "राजोहरणम्" शब्द का जाप करना था, जिसका अर्थ है "अशुद्धता दूर करना"। इसके बाद बुद्ध भिक्षुओं के साथ जीवक के निवास स्थान पर चले गए।

इसी बीच, चूलपंथक कपड़े के टुकड़े को रगड़ते रहे और लगातार "राजोहरणम्" का जाप करते रहे। देखते ही देखते कपड़ा गंदा हो गया। कपड़े की इस हालत को देखकर चूलपंथक को समस्त वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति का ज्ञान हो गया। जीवक के घर से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से चूलपंथक की प्रगति के बारे में जाना। उन्होंने अपना प्रकाश भेजा जिससे चूलपंथक को ऐसा लगा जैसे वे उनके सामने बैठे हों और बोले: "केवल कपड़ा ही धूल से गंदा नहीं होता; भीतर भी धूल होती है। केवल उस धूल को दूर करके ही मनुष्य अपने

लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।" चूलपंथक को यह संदेश समझ आ गया और उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जीवक के घर में, रिवाज के अनुसार भोजन परोसने से पहले जल चढ़ाने ही वाले थे कि बुद्ध ने कटोरे को अपने हाथ से ढक लिया और पूछा कि क्या मठ में कोई भिक्षु बचा है। जब यह उत्तर दिया गया कि कोई नहीं है, तो बुद्ध ने कहा कि एक है, और उन्हें मठ से चूलपंथक को लाने का निर्देश दिया। जब जीवक के घर से दूत मठ पहुँचा, तो उसने वहाँ एक नहीं, बल्कि एक हजार एक जैसे भिक्षुओं को पाया। उन सभी को चूलपंथक ने बनाया था, जिसके पास अब अलौकिक शक्तियाँ थीं। दूत चकित रह गया और वह वापस लौटकर जीवक को सारी बात बता दी। दूत को दूसरी बार मठ भेजा गया और उसे निर्देश दिया गया कि वह कहे कि बुद्ध ने चूलपंथक नाम के भिक्षु को बुलाया है। लेकिन जब उसने यह संदेश दिया, तो हजार आवाजों ने उत्तर दिया, "मैं चूलपंथक हूँ।" फिर से चकित होकर, वह दूसरी बार वापस लौट गया। फिर उसे तीसरी बार मठ भेजा गया। इस बार, उसे उस भिक्षु को लाने का निर्देश दिया गया जिसने सबसे पहले कहा था कि वह चूलपंथक है। जैसे ही उसने उस भिक्षु को पकड़ा, बाकी सब गायब हो गए, और चूलपंथक दूत के साथ जीवक के घर गया। भोजन के बाद, बुद्ध के निर्देशानुसार, चूलपंथक ने एक युवा शेर की तरह दहाड़ते हुए, आत्मविश्वास और साहस के साथ धार्मिक प्रवचन दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 25)

उत्थानेन अप्पमादेन सन्न्यामेन दमेना च
मेधावी दीपं कयिरथ यं ओघो न अभिकिरति

उत्ठानेन : (स्थिरता से युक्त); अप्पमादेन : सचेतनता से युक्त; सन्ञ्ञमेना : संयम से युक्त; दमेना : इंद्रियों पर नियंत्रण से युक्त; च : और; मेधावी : बुद्धिमान व्यक्ति; दीपं [ दीप ]: एक द्वीप; कयिरथ : बनाता है; यं : जिसे; ओघो : बाढ़; न अभिकीरति : डुबो नहीं पाएगी।

नोट : यह खेदजनक है कि अधिकांश अंग्रेजी अनुवाद दीघ निकाय के महापरिनिब्बान सूत्र जैसे संदर्भों में दीप शब्द का अनुवाद 'दीपक' के रूप में करते हैं। दीप शब्द के दो अर्थ हैं: 1) दीपक; 2) द्वीप। उपरोक्त श्लोक में, "द्वीप" अधिक उपयुक्त अर्थ है।

संपूर्ण संसार विकारों से भरा पड़ा है। जीवन की इंद्रिय सुख-सुविधाएँ एक विशाल और प्रचंड बाढ़ के समान हैं। परन्तु ज्ञानी व्यक्ति अपने लिए एक ऐसा द्वीप बना लेता है जिसे वह विशाल बाढ़ भी बहा नहीं सकती। यह द्वीप दृढ़ता, सजगता, संयम और अनुशासन से निर्मित होता है। एक बार उस द्वीप पर दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाने पर ज्ञानी व्यक्ति को वह बाढ़ भी बहा नहीं सकती।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 25)

मेधावी : बुद्धिमान वे लोग होते हैं जिनमें सही अंतर्दृष्टि विद्यमान होती है।

दीपं : ऊँचे तल पर स्थित द्वीप बाढ़ से अछूता रहता है, भले ही उसके आसपास की निचली भूमि जलमग्न हो जाए। ऐसा द्वीप सभी के लिए शरणस्थल बन जाता है। उसी प्रकार, अंतर्दृष्टि प्राप्त करने वाले ज्ञानी व्यक्ति को अरहंतत्व प्राप्त करके स्वयं को एक द्वीप बना लेना चाहिए, ताकि वह इंद्रिय-इच्छाओं ( काम ), झूठे विश्वासों ( दिट्ठी ), अस्तित्व की लालसा ( भव ) और अज्ञान ( अविज्जा ) की चार बाढ़ों में न डूब जाए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 26 और 27

---

(धम्मपद 25) <<<< पिछला ॥ श्लोक 26, 27 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 28)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 26 और 27 - बालनक्खट्टसंगुत्था वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamadamanuyuñjanti

bala dummedhino jana(1)
appamadañca medhavi
धनम सेत्थमवा रक्खति.

Ma pamadamanuyuñjetha
मा कामरतिसन्तवम
appamatto hi jhayanto
pappoti vipulam sukham.

---

श्लोक 26 : मूर्ख और अज्ञानी लोग लापरवाही में लिप्त रहते हैं; जबकि बुद्धिमान लोग सजगता को अनमोल रत्न के समान संजोते हैं।

---

श्लोक 27 : इसलिए, किसी को भी लापरवाह नहीं होना चाहिए और न ही इंद्रिय सुखों का आदी होना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से सचेतनता में स्थापित हो जाता है, वह परम सुख का अनुभव करता है (अर्थात निर्वाण प्राप्त करता है)।

---

1. बल दुम्मेधिनो जन: मूर्ख और अज्ञानी। कहानी में वर्णित मूर्ख वे उपद्रवी थे जो बलनाक्खत्ता उत्सव के दौरान बेतहाशा मौज-मस्ती और अव्यवस्था में लिप्त थे। वे न तो दूसरों के प्रति सचेत थे और न ही इस लोक और परलोक में अपने लिए आने वाले परिणामों के प्रति।

---

बालनखट्टा महोत्सव की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बलनाक्खत्ता उत्सव के संबंध में इस पुस्तक के श्लोक (26) और (27) का उच्चारण किया।
एक समय सावत्थी में बलनाक्खत्ता उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव के दौरान, कई मूर्ख युवक अपने शरीर पर राख और गोबर मलकर शहर में इधर-उधर घूमते, चिल्लाते और लोगों को परेशान करते थे। वे दूसरों के दरवाजों पर भी रुक जाते और पैसे मिलने पर ही जाते थे।
उस समय श्रावस्ती में बुद्ध के बहुत से गृहस्थ शिष्य रहते थे। इन मूर्ख युवकों के कारण उन्होंने बुद्ध को संदेश भेजा और उनसे सात दिनों तक मठ में ही रहने और शहर में प्रवेश न करने का अनुरोध किया। उन्होंने मठ में भिक्षा के लिए भोजन भेजा और स्वयं अपने-अपने घरों में ही रहे। आठवें दिन, जब उत्सव समाप्त हुआ, तो बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा और अन्य भेंटों के लिए शहर में आमंत्रित किया गया। उत्सव के दौरान इन मूर्ख युवकों के अभद्र और शर्मनाक व्यवहार के बारे में सुनकर बुद्ध ने टिप्पणी की कि निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करना मूर्खों और अज्ञानियों का स्वभाव है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 26 : मूर्ख और अज्ञानी लोग लापरवाही में लिप्त रहते हैं; जबकि बुद्धिमान लोग सजगता को अनमोल रत्न के समान संजोते हैं।

---

श्लोक 27 : इसलिए, किसी को भी लापरवाह नहीं होना चाहिए और न ही इंद्रिय सुखों का आदी होना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से सचेतनता में स्थापित हो जाता है, वह परम सुख का अनुभव करता है (अर्थात निर्वाण प्राप्त करता है)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बाला नक्खट्टा महोत्सव की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बाल नक्खत्त उत्सव - मूर्खों के उत्सव - के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक निश्चित तिथि को सावत्थी में मूर्खों का एक त्योहार मनाया जाता था, और इस मूर्खतापूर्ण त्योहार के अवसर पर, लोग अपने शरीर पर राख और गोबर मलते थे और सात दिनों की अवधि तक तरह-तरह की अश्लील बातें करते फिरते थे।
उस समय लोग अपने रिश्तेदारों, मित्रों या भिक्षुओं से मिलने पर उनका सम्मान नहीं करते थे, बल्कि दरवाज़े पर खड़े होकर उन्हें अभद्र भाषा से अपमानित करते थे। जो लोग अभद्र भाषा सहन नहीं कर पाते थे, वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार आगंतुकों को आधा पैसा, पच्चीस पैसे या एक पैसा देते थे, और आगंतुक वह पैसा लेकर उनके घरों से चले जाते थे।

उस समय सावत्थी में पंद्रह लाख श्रेष्ठ शिष्य थे, और उन्होंने गुरु को संदेश भेजा, “हे पूज्यवर, बुद्ध से निवेदन है कि वे सात दिनों तक भिक्षुओं के समूह के साथ नगर में प्रवेश न करें; वे मठ में ही निवास करें।” और सात दिनों तक श्रेष्ठ शिष्यों ने मठ में भिक्षुओं के समूह के लिए भोजन तैयार करवाया और उन्हें भेजा, परन्तु वे स्वयं अपने घरों से बाहर नहीं निकले।

लेकिन आठवें दिन, जब उत्सव समाप्त हो गया, तो उन्होंने भिक्षुओं के समूह को अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित किया, उन्हें शहर में ले गए और भरपूर भेंटें दीं। एक तरफ आदरपूर्वक बैठकर उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, हमने पिछले सात दिन कष्टपूर्वक बिताए हैं। मूर्ख लोगों की अभद्र बातें सुनकर हमारे कान फटने वाले थे। किसी ने किसी का आदर नहीं किया, और इसी कारण हमने आपको शहर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी। हम स्वयं भी घर से बाहर नहीं निकले।”

बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर उत्तर दिया, “बुद्धिहीन मनुष्य इस प्रकार आचरण करते हैं। परन्तु बुद्धिवान मनुष्य सजगता को अपना सबसे बड़ा खजाना मानते हैं और ऐसा करके अंततः निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 26)

बाला दुमेधिनो जना पमादं अनुयुञ्जन्ति

मेधावी च अप्पमादं सेठं धनं इव रक्खति

बाला : वास्तविक मूल्यों से अनभिज्ञ; दुम्मेधिनो जना : मूर्ख लोग; पमादं अनुयुंजन्ति : असावधानी में लिप्त; मेधावी च : बुद्धिमानों के लिए; अप्पमादं [ अप्पमाद ]: सजगता; सेठं धनं इव : एक महान खजाने के समान; रक्खति : संजोना।

जो मूर्ख और विवेकहीन होते हैं, वे असावधानी में लिप्त रहते हैं। परन्तु बुद्धिमान लोग सजगता को एक अनमोल खजाना मानते हैं। मूर्ख लोग इंद्रिय सुख में लिप्त रहते हैं। वे ऐसे कार्यों में लगे रहते हैं जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए बिलकुल भी अनुकूल नहीं होते। सांसारिक लाभ प्राप्त करने के लिए लोगों को धन की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार, उच्च आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमें कुछ धन की आवश्यकता होती है, और वह धन सजगता है सजगता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 26)

बाला : यह एक वर्गीकरण है जो बुद्ध की शिक्षाओं के अधिकांश क्षेत्रों में पाया जाता है। इस शब्द से जिस व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है, उसे आम तौर पर अज्ञानी या मूर्ख समझा जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा व्यक्ति कला और शिल्प में निपुण नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ऐसा व्यक्ति वास्तविकता के प्रति पर्याप्त रूप से सजग नहीं है — वह चीजों के वास्तविक स्वरूप को समझने में सक्षम नहीं है। आध्यात्मिक विकास के संदर्भ में, ऐसे व्यक्ति का व्यवहार कभी-कभी बचकाना या अपरिपक्व माना जाता है। वह अत्यधिक आत्म-भोग और इंद्रिय सुखों की खोज में लिप्त रहता है। वह धर्मी, सद्गुणी बनने या अच्छे आचरण का जीवन जीने का प्रयास नहीं करता। उसे यह नहीं पता कि इस संसार और परलोक के लिए उसके लिए क्या लाभकारी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दावली में, इसका अर्थ है "भावनात्मक रूप से अपरिपक्व व्यक्ति"।

pamādaṃ anuyuñjanti : “ पमाद ” शब्द का शाब्दिक अर्थ है वह “बुनियादी पागलपन” जिससे सभी अज्ञानी लोग पीड़ित होते हैं। यह भावनाओं में बह जाना और वास्तविकता से बेखबर हो जाना है। यह भावनात्मक नियंत्रण का अभाव है। यह भावनात्मक अपरिपक्वता के समान ही है। इसे “न्यूरोसिस” भी कहा जा सकता है। हम यहाँ इसका अनुवाद सचेतनता के विपरीत, अचेतनता या अनमनोदशा के रूप में करते हैं।

सेट्ठं धनं इव : यह अभिव्यक्ति सचेतन लोगों के लिए है। वे अपनी सचेतनता की रक्षा उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई अनमोल खजाने की रक्षा करता है। जो लोग इंद्रिय-प्रधान होते हैं, वे धन को सांसारिक सुखों का साधन मानते हैं। इसलिए, उनके लिए सांसारिक धन ही एकमात्र महत्वपूर्ण खजाना होता है। प्राचीन टीकाओं में सांसारिक खजानों को सात बताया गया है। वे हैं सोना, चांदी, मोती, रत्न, नीलमणि, शंख और शिला रत्न। परन्तु सत्य की खोज करने वालों के लिए खजाने हैं सचेतनता और दृढ़ता। ये आध्यात्मिक अनुभूति के सर्वोच्च फल प्राप्त करने का साधन सुनिश्चित करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 27)

पमादं मा अनुयुन्जेथा कामरतिसंथवं

मा ( अनुयुन्जेथा ) अप्पमत्तो हि झायन्तो विपुलं सुखं पप्पोति

पमादां [ पमादा ]: लापरवाही; मा : मत करो; अनुयुन्जेथा : लिप्त; कामरातिसंथावम् [ कामरातिसंथाव ]: कामुक सुख; मा : बचना; अप्पमत्तो हाय : जागरूक व्यक्ति; झायंतो [ झायंता ]: ध्यानमग्न; विपुलं सुखं [ सुखा ]: उच्च-आनंद; पप्पोति : पहुँचता है।

लापरवाही में लिप्त न हों। किसी भी प्रकार के इंद्रिय सुखों की लालसा से बचें। सजग व्यक्ति का मन शांत होता है। वह परम आनंद की प्राप्ति करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 26)

कामरति संथवं : इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य इंद्रिय सुखों में लिप्त होना है। श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि इस प्रकार का लिप्त होना चेतना में शिथिलता और सत्य की खोज के प्रति उत्साह में कमी लाता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार के आसक्ति के आगे न

झुकें। अतः मुख्य बल तन्हा से बचने की आवश्यकता पर है , जिसका शाब्दिक अर्थ "प्यास" है। यही "प्यास", इच्छा, लोभ, लालसा, जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, सभी प्रकार के दुखों और अस्तित्व ( भाव ) की निरंतरता को जन्म देती है। परन्तु इसे प्रथम कारण नहीं मानना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म के अनुसार कोई प्रथम कारण संभव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। अतः "प्यास" दु:ख की उत्पत्ति का प्रथम या एकमात्र कारण नहीं है। परन्तु यह दु:ख की उत्पत्ति का एक आवश्यक कारण अवश्य है। "प्यास" शब्द में केवल इंद्रिय सुख, धन और शक्ति की इच्छा और आसक्ति ही नहीं, बल्कि विचारों, आदर्शों, मतों, सिद्धांतों, धारणाओं और विश्वासों की इच्छा और आसक्ति भी शामिल है। बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार, संसार में होने वाली सभी परेशानियाँ और कलह, परिवारों में होने वाले छोटे-मोटे व्यक्तिगत झगड़ों से लेकर देशों और राष्ट्रों के बीच होने वाले बड़े युद्धों तक, इसी "प्यास" से उत्पन्न होती हैं। इस दृष्टिकोण से, सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं की जड़ इसी स्वार्थी 'प्यास' में निहित है। महान राजनेता जो अंतरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने का प्रयास करते हैं और युद्ध और शांति की चर्चा केवल आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में करते हैं, वे सतही बातों को ही छूते हैं और समस्या की वास्तविक जड़ तक कभी नहीं पहुँचते। जैसा कि बुद्ध ने रट्टपाल से कहा था: "संसार अभाव और लालसा से ग्रस्त है और 'प्यास' का गुलाम है।"

कामरति को कामुक आवेग के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। आधुनिक भाषा में, इसे "आवेगी आवेग" कहा जा सकता है। बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षु, दुख का मूल क्या है? यह वह लालसा है जो बार-बार पुनर्जन्म का कारण बनती है और सुख और कामवासना से बंधी हुई, कभी यहाँ, कभी वहाँ, सदा नए आनंद की खोज करती है।" कामुक आवेग के साथ-साथ अस्तित्व की इच्छा या अस्तित्वहीनता की इच्छा भी जुड़ी होती है। इस जीवन-प्रवंचना के विषय में कहा गया है: "हे भिक्षुओं, जीवन-प्रवंचना की ऐसी कोई उत्पत्ति नहीं देखी जा सकती जिसके पहले यह न हो और जिसके बाद यह उत्पन्न हो। परन्तु यह अवश्य देखा जा सकता है कि जीवन-प्रवंचना की अपनी विशिष्ट परिस्थिति होती है। हे भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि जीवन-प्रवंचना की भी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जो इसे पोषित करती हैं और इसके बिना नहीं रह सकतीं। और वह क्या है? उत्तर है, 'अज्ञान'—जीवन-प्रवंचना और अज्ञान को ही 'सुखद और दु:खपूर्ण नियतियों (जीवन के पथों) के प्रमुख कारण' कहा जाता है।"

कामच्छंद का अर्थ है इंद्रिय सुखदायक विषयों जैसे रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श के प्रति आसक्ति। इसे भी संसार के बंधनों में से एक माना जाता है। एक सामान्य व्यक्ति इन आकर्षक इंद्रिय विषयों से प्रलोभित हो ही जाता है। आत्म-संयम के अभाव से वासनाओं का उत्पन्न होना अपरिहार्य है। एकाग्रता, जो ध्यान के पाँच गुणों में से एक है, इस अवरोध को दूर करती है। सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह क्षीण हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूर्णतः समाप्त हो जाती है। रूप राग और अरूप राग (सृष्टि और निराकार जगत के प्रति आसक्ति) जैसी सूक्ष्म आसक्ति केवल अरहत्त्व प्राप्त करने पर ही समाप्त होती है।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ इंद्रिय-इच्छाओं के उन्मूलन की ओर अग्रसर होती हैं।

उस वस्तु की घृणास्पदता को महसूस करते हुए,

घृणा पर निरंतर ध्यान लगाना,

इंद्रिय-संयम,

भोजन में संयम,

अच्छी दोस्ती, और

लाभदायक बातचीत।

एक अन्य टिप्पणी इस प्रकार है: भावना पर निर्भर तृष्णा उत्पन्न होती है, जो अज्ञान की तरह ही "आश्रित उत्पत्ति" का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इस पाली शब्द के कुछ अर्थ आसक्ति, प्यास और मोह हैं। यह द्वितीय आर्य सत्य का एक पहलू है — तृष्णा तीन प्रकार की होती है — अर्थात्, इंद्रिय सुखों की तृष्णा, शाश्वतवाद के दृष्टिकोण से जुड़ी तृष्णा, अर्थात् यह सोचकर सुखों का आनंद लेना कि वे अविनाशी हैं, और शून्यवाद के दृष्टिकोण से जुड़ी तृष्णा, अर्थात् यह सोचकर सुखों का आनंद लेना कि मृत्यु के बाद सब कुछ नष्ट हो जाता है। अंतिम भौतिकवादी दृष्टिकोण है। इन्हें क्रमशः सजीव और निराकार लोकों के प्रति आसक्ति के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है। आमतौर पर इन दोनों शब्दों को अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की तृष्णा के रूप में व्यक्त किया जाता है। छह इंद्रिय विषयों जैसे रूप, ध्वनि आदि के अनुरूप छह प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं। जब इन्हें आंतरिक और बाह्य माना जाता है तो ये बारह हो जाती हैं। जब इन्हें भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के रूप में देखा जाता है तो इनकी संख्या छत्तीस होती है। उपरोक्त तीन प्रकार की लालसाओं से गुणा करने पर इनकी संख्या एक सौ आठ हो जाती है। सांसारिक व्यक्ति के लिए इंद्रिय सुखों की लालसा विकसित होना स्वाभाविक है। इंद्रिय-इच्छाओं पर विजय पाना अत्यंत कठिन है। जीवन चक्र के दो प्रमुख कारक अज्ञान और लालसा हैं, जो प्रतीत्यसमुत्पाद के दो मुख्य कारण हैं। अज्ञान को भूतकाल का कारण बताया गया है जो वर्तमान को प्रभावित करता है; और लालसा को वर्तमान का कारण बताया गया है जो भविष्य को प्रभावित करता है। लालसा पर ही आसक्ति का भाव निहित है, जो तीव्र लालसा है। लालसा अंधेरे में किसी वस्तु को चुराने के लिए टटोलने के समान है। आसक्ति वस्तु की वास्तविक चोरी के समान है। आसक्ति

आसक्ति और भ्रम दोनों के कारण उत्पन्न होती है। यह "मैं" और "मेरा" जैसी झूठी धारणाओं को जन्म देती है। आसक्ति चार प्रकार की होती है - इंद्रिय सुख, झूठे विचार, रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का पालन और आत्मा का सिद्धांत।
मा पमादं अनुयुंजेत : यह सत्य की खोज करने वालों के लिए एक उपदेश है। यदि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें कभी भी अपनी एकाग्रता भंग नहीं करनी चाहिए। उन्हें ऐसे कार्यों में संलग्न नहीं होना चाहिए जो सांसारिकता को बढ़ावा देते हों और सांसारिक सुखों को प्रोत्साहित करते हों। एकाग्रता का अभाव उचित ध्यान में बाधक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 28

———————————————————————

(धम्मपद 26, 27) <<<< पिछला ll श्लोक 28 ll अगला >>>> (धम्मपद 29)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 28 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamadam appamadena
yada nudati pandito
pannapasadamaruyha
asoko sokinim pajam
pabbatatthova bhumatthe
dhiro(1) bale(2) avekkhati.

———————————————————————

श्लोक 28 : ज्ञानी व्यक्ति ध्यान के द्वारा लापरवाही को दूर करता है; वह ज्ञान के शिखर पर चढ़ता है और दुःख से मुक्त होकर दुःखित प्राणियों को देखता है। जैसे पर्वत की चोटी पर बैठा व्यक्ति नीचे मैदान में रहने वालों को देखता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति (अरहत) मूर्ख और अज्ञानी (सांसारिक) लोगों को देखता है।

———————————————————————

1. धीरो: बुद्धिमान; इस संदर्भ में, अरहत। 2. बिले: मूर्ख; इस संदर्भ में, सांसारिक।

———————————————————————

थेरा महाकस्सपा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (28) कहा।
एक बार, जब थेरा महाकस्सपा पिप्पली गुफा में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने अपना समय प्रकाश की मानसिक छवि (आलोक कसीना) विकसित करने और दिव्य दृष्टि के माध्यम से सचेत और लापरवाह प्राणियों, साथ ही मरने वाले और जन्म लेने वाले प्राणियों का पता लगाने का प्रयास करने में व्यतीत किया।
अपने मठ से, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि थेरा महाकस्सपा क्या कर रहे हैं और उन्हें आगाह करना चाहते थे कि वे अपना समय व्यर्थ कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपना प्रकाश भेजा और थेरा के सामने बैठकर उन्हें इस प्रकार समझाया: "मेरे पुत्र कस्सपा, प्राणियों के जन्म और मृत्यु की संख्या अनगिनत है और गिनी नहीं जा सकती। इन्हें गिनना तुम्हारा काम नहीं है; यह केवल बुद्धों का काम है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 28 - ज्ञानी व्यक्ति ध्यान के द्वारा लापरवाही को दूर करता है; वह ज्ञान के शिखर पर पहुँचता है और दुःख से मुक्त होकर दुःखित प्राणियों को देखता है। जैसे पर्वत की चोटी पर बैठा व्यक्ति नीचे मैदान में रहने वालों को देखता है, वैसे ही ज्ञानी व्यक्ति (अरहत) मूर्ख और अज्ञानी (सांसारिक) लोगों को देखता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु महाकस्सपा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, जब बुद्ध पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए परिक्रमा की और भिक्षा मांगने के बाद लौटकर नाश्ता करने के बाद वे बैठ गए और अपनी मानसिक शक्तियों का उपयोग करते हुए अलौकिक दृष्टि से जल में, पृथ्वी पर, पहाड़ों में और अन्यत्र सभी जीवित प्राणियों का अवलोकन किया, चाहे वे लापरवाह हों या सावधान, और वे सभी अस्तित्व में आ रहे हों और अस्तित्व से विलीन हो रहे हों।

जेतवन में विराजमान बुद्ध ने असाधारण दृष्टि का प्रयोग करते हुए मन ही मन चिंतन किया, "आज मेरा पुत्र कस्सपा किस कार्य में लगा हुआ है?" उन्हें तुरंत यह ज्ञान प्राप्त हुआ, "वह जीवों के उत्थान और पतन का चिंतन कर रहा है।" उन्होंने कहा, "जीवों के उत्थान और पतन का ज्ञान तुम पूर्णतः नहीं समझ सकते। जीव माता-पिता की जानकारी के बिना एक जन्म से दूसरे जन्म में विचरण करते हैं और माता के गर्भ में नया जन्म प्राप्त करते हैं, और इस ज्ञान को पूर्णतः नहीं समझा जा सकता। कस्सपा, इन्हें जानना तुम्हारी क्षमता से परे है, क्योंकि तुम्हारी क्षमता बहुत सीमित है। केवल बुद्धों के ही सामर्थ्य में जीवों के उत्थान और पतन को उनकी संपूर्णता में जानना और देखना है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की, मानो वे कस्सपा के सामने आमने-सामने बैठे हों।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 28)

पण्डितो यदा अप्पमादेन पमादं नुदति धीरो

पन्नपसादं अरुयहा असोको सोकिनिं पजं

पब्बतथो भुम्मते इव बाले अवेक्खति

paṇḍito [ paṇḍita ]: ज्ञानी व्यक्ति; yadā : जब; appa mādena : ध्यान के माध्यम से; pamādaṃ [ pamāda ]: आलस्य; nudati : दूर करता है; dhīro [ dhīra ]: ज्ञानी व्यक्ति; paññāpāsādaṃ [ paññāpāsāda ]: ज्ञान का मीनार; āruyha : आरोही; asoko [ asoka ]: शोकरहित; sokiniṃ [ sokini ]: शोकग्रस्त; pajaṃ [ paja ]: जनसमूह; avekkhati : सर्वेक्षण करता है; pabbataṭṭho iva : पर्वत की चोटी पर बैठे व्यक्ति के समान; bhummaṭṭhe : जमीन पर रहने वाले; बाले : अज्ञानी : अवेक्खति : सर्वेक्षण।

बुद्धिमान व्यक्ति सदा सचेत रहता है। इसी सजगता के कारण वह आलसी लोगों के मार्ग को त्याग देता है। बुद्धिमान व्यक्ति ज्ञान के शिखर पर चढ़ता है। उस शिखर पर पहुँचने के बाद वह शोकग्रस्त जनसमूह को निर्मल दृष्टि से देख पाता है। वह उदासीन और तटस्थ भाव से इन जनसमूहों को ऐसे देखता है जैसे कोई पर्वत शिखर पर खड़ा व्यक्ति नीचे की भूमि का अवलोकन कर रहा हो।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 28)

शोकिन् पजं : यह सामान्य जनसमूहों—सांसारिक पुरुषों और महिलाओं—की विशेषता को स्थापित करता है। उन सभी को 'दुखी' बताया गया है। दुःख, पीड़ा, सामान्य जीवन की एक अपरिहार्य अवस्था है। केवल सबसे उन्नत ज्ञानवान पुरुष ही जीवन की इस अवस्था से ऊपर उठ सकते हैं। दुःख, पीड़ा को बुद्ध ने एक सार्वभौमिक सत्य बताया है। जन्म दुःख है, क्षय दुःख है, रोग दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय से जुड़ाव दुःख है, सुखद से अलगाव दुःख है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुःख है। संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुःख हैं। बुद्ध दुःख की बात कहकर जीवन में सुख का खंडन नहीं करते। इसके विपरीत, वे गृहस्थों और भिक्षुओं दोनों के लिए भौतिक और आध्यात्मिक, सुख के विभिन्न रूपों को स्वीकार करते हैं। बुद्ध की शिक्षाओं में सुखों की एक सूची है, जैसे पारिवारिक जीवन का सुख, संन्यासी जीवन का सुख, इंद्रिय सुखों का सुख और त्याग का सुख, आसक्ति का सुख और अनासक्ति का सुख, शारीरिक सुख और मानसिक सुख आदि। लेकिन ये सभी दुख में शामिल हैं। यहां तक कि उच्च ध्यान के अभ्यास से प्राप्त होने वाली अत्यंत शुद्ध आध्यात्मिक समाधि अवस्थाएं भी दुख में शामिल हैं।

दुख की अवधारणा को तीन पहलुओं से देखा जा सकता है: (i) सामान्य दुख, (ii) परिवर्तन से उत्पन्न दुख और (iii) परिस्थितिजन्य दुख। जीवन में सभी प्रकार के दुख जैसे जन्म, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, अप्रिय व्यक्तियों और परिस्थितियों का साथ, प्रियजनों और सुखद परिस्थितियों से वियोग, इच्छा की प्राप्ति न होना, शोक, विलाप, पीड़ा — ये सभी शारीरिक और मानसिक दुख, जिन्हें सार्वभौमिक रूप से दुख या पीड़ा माना जाता है, सामान्य दुख में शामिल हैं। जीवन में सुख की अनुभूति, सुख की स्थिति स्थायी नहीं होती, शाश्वत नहीं होती। यह समय-समय पर बदलती रहती है। जब यह बदलती है, तो यह पीड़ा, दुख और दुःख उत्पन्न करती है। यह उतार-चढ़ाव

परिवर्तन से उत्पन्न दुख में शामिल है। ऊपर वर्णित दुख के दोनों रूपों को समझना आसान है। कोई भी इन पर विवाद नहीं करेगा। प्रथम आर्य सत्य का यह पहलू अधिक लोकप्रिय है क्योंकि यह समझने में आसान है। यह हमारे दैनिक जीवन का सामान्य अनुभव है। लेकिन दुख का तीसरा रूप, जो बद्ध अवस्थाओं के रूप में प्रकट होता है, प्रथम आर्य सत्य का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक पहलू है, और इसके लिए 'प्राणी', 'व्यक्ति' या 'मैं' के रूप में हम जिसे समझते हैं, उसकी विश्लेषणात्मक व्याख्या की आवश्यकता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार, जिसे हम 'प्राणी', 'व्यक्ति' या 'मैं' कहते हैं, वह केवल निरंतर परिवर्तनशील भौतिक और मानसिक शक्तियों या ऊर्जाओं का संयोजन है, जिसे पाँच समूहों या समुच्चयों में विभाजित किया जा सकता है।

धीरो बाले अवेक्खति : शोक रहित अरहंत अपनी दिव्य दृष्टि से अज्ञानी लोगों पर दया भाव से देखते हैं, जो बार-बार जन्म लेने के कारण दु:ख से मुक्त नहीं होते।

जब एक समझदार व्यक्ति सावधानी से लापरवाही का त्याग करता है, तो वह दु:ख से मुक्त होकर ज्ञान के महल में चढ़ जाता है और दु:खित लोगों को उसी प्रकार देखता है जैसे एक बुद्धिमान पर्वतारोही अज्ञानी जमीनी लोगों को देखता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 29

———————————————————————

(धम्मपद 28) <<<< पिछला ॥ श्लोक 29 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 30)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 29 - द्वेसहयाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Appamatto pamattesu
सुत्तेसु बहुजागारो
abalassa mva sighasso
hitva yati sumedhaso(1)

———————————————————————

श्लोक 29 : लापरवाहों के बीच सचेत, ऊंघते लोगों के बीच अत्यधिक सतर्क, बुद्धिमान व्यक्ति तेज दौड़ने वाले घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और आलसी लोगों को पीछे छोड़ देता है।

———————————————————————

1. सुमेधसो: ज्ञानी व्यक्ति: ज्ञानी व्यक्ति निरंतर प्रगति करता है जब तक कि वह मार्ग, फल और निर्वाण को प्राप्त नहीं कर लेता, और लापरवाह लोगों को पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) में पीछे छोड़ देता है।

———————————————————————

दो साथी भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (29) को दो भिक्षुओं के संदर्भ में पढ़ाया, जो मित्र थे।

दो भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद जंगल में स्थित एक मठ में शरण ली। उनमें से एक भिक्षु लापरवाही बरतते हुए रात के पहले पहर में अग्नि के पास बैठकर और युवा भिक्षुओं से बातें करते हुए समय व्यतीत करता रहा। दूसरा भिक्षु पूरी निष्ठा से भिक्षु के कर्तव्यों का पालन करता रहा। वह पहले पहर में ध्यान में चलता रहा, दूसरे पहर में विश्राम करता रहा और फिर रात के अंतिम पहर में ध्यान करता रहा। इस प्रकार, लगन और जागरूकता के कारण दूसरे भिक्षु ने थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

वर्षा ऋतु (वस्सा) के अंत में, दोनों भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने गए। बुद्ध ने उनसे पूछा कि उन्होंने वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान अपना समय कैसे व्यतीत किया। इस पर आलसी और लापरवाह भिक्षु ने उत्तर दिया कि दूसरा भिक्षु अपना समय यूं ही लेटे-लेटे और सोते हुए बिता रहा था। बुद्ध ने पूछा, "पर तुम्हारा क्या?" उसने उत्तर दिया कि वह आमतौर पर रात के पहले पहर में आग के पास बैठकर खुद को सेंकता था और फिर बिना सोए ही उठ बैठा रहता था। लेकिन बुद्ध भली-भांति जानते थे कि दोनों भिक्षुओं ने अपना समय कैसे व्यतीत किया था, इसलिए उन्होंने आलसी भिक्षु से कहा, "यद्यपि तुम आलसी और लापरवाह हो, फिर भी तुम स्वयं को परिश्रमी और सजग बताते हो; परन्तु तुमने दूसरे भिक्षु को आलसी और लापरवाह प्रतीत कराया है, जबकि वह परिश्रमी और सजग है। तुम मेरे पुत्र की तुलना में एक कमजोर और सुस्त घोड़े के समान हो, जो एक बलवान और फुर्तीले घोड़े के समान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 29 : लापरवाहों के बीच सचेत, ऊंघते लोगों के बीच अत्यधिक सतर्क, बुद्धिमान व्यक्ति तेज दौड़ने वाले घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और आलसी लोगों को पीछे छोड़ देता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दो साथी भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने दो भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो मित्र थे।
ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और वन में एक आश्रम में चले गए। सुबह सवेरे उनमें से एक ने लकड़ियाँ लाकर कोयले का पात्र तैयार किया और पहले पहर में प्रशिक्षुओं और नौसिखियों के साथ बैठकर बातचीत की। दूसरा, एक सजग भिक्षु, ध्यान में लीन था और उसने अपने मित्र को समझाया, "भाई, ऐसा मत करो। क्योंकि जो भिक्षु लापरवाह होता है, वह चारों प्रकार के दुखों के लिए ऐसे तत्पर रहता है मानो वे उसका अपना घर हों। दोहरे व्यवहार से बुद्धों की कृपा प्राप्त नहीं की जा सकती।" जब आलसी भिक्षु ने उसकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया, तो उत्साही भिक्षु ने कहा, "यह भिक्षु बात सुनना सहन नहीं कर सकता।" अपने साथी को अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरित करने में असफल रहने पर, उत्साही भिक्षु ने सजग रहते हुए अपना ध्यान फिर से शुरू कर दिया।
आलसी भिक्षु ने पहले पहर में प्राणपान करने के बाद मठ में प्रवेश किया, ठीक उसी समय जब उसका मित्र अपनी सैर पूरी करके अपनी कुटिया में प्रवेश कर रहा था। आलसी भिक्षु ने उत्साही भिक्षु से कहा, "हे आलसी, तुम तो जंगल में लेटने और सोने के उद्देश्य से गए थे। बुद्धों से ध्यान का विषय प्राप्त करके, क्या तुम्हें उठकर ध्यान में नहीं लगना चाहिए?" ऐसा कहकर वह अपने निवास स्थान में गया, लेट गया और सो गया। परन्तु उसका मित्र पहले पहर में इधर-उधर टहलने और दूसरे पहर में विश्राम करने के बाद अंतिम पहर में उठा और ध्यान में लग गया। इस प्रकार सचेतन जीवन व्यतीत करते हुए, उसने अल्पकाल में ही अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर लिया। परन्तु दूसरा भिक्षु पूर्णतः असावधानी में ही व्यतीत करता रहा।
जब दोनों भिक्षुओं का निवास समाप्त हो गया, तो वे बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और पूछा, "मुझे विश्वास है कि आपने सजग जीवन व्यतीत किया है और ध्यान के अभ्यास में पूरी निष्ठा से लगे हुए हैं। मुझे विश्वास है कि आप धार्मिक जीवन के लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं।" लापरवाह भिक्षु ने उत्तर दिया, "आदरणीय, यह भिक्षु कैसे सजग कहा जा सकता है? जब से यह आपके पास से गया है, तब से इसने लेटने और सोने के अलावा कुछ नहीं किया है।" "लेकिन आप, भिक्षु?" "आदरणीय, मैं सुबह जल्दी लकड़ियाँ लाया और चूल्हा तैयार किया, और पहले पहर में बैठकर स्वयं को सेंकता रहा, लेकिन मैंने अपना समय सोने में व्यतीत नहीं किया।" तब बुद्ध ने आलसी भिक्षु से कहा, "तुम जिसने अपना समय असजगता में व्यतीत किया है, कहते हो, 'मैं सजग हूँ।'" तुम लापरवाही को सावधानी समझ बैठे हो। मेरे बेटे की तुलना में तुम एक कमजोर और सुस्त घोड़े के समान हो; परन्तु वह तुम्हारी तुलना में एक फुर्तीले घोड़े के समान है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 29)
पमत्तेसु अप्पमत्तो सुत्तेसु बहुजागारो
सुमेधासो सिघसो अबलास्सां इव हित्वा याति ।
पमात्तेसु : बेपरवाह लोगों के बीच; अप्पमत्तो [ अप्पमत्त ]: ध्यान रखने वाला; सुत्तेसु : उन लोगों के बीच जो सो रहे हैं; बहुजागारो [ बहुजागारा ]: व्यापक जागृति; सुमेधासो [ सुमेधासा ]: गहरे ज्ञान वाला निष्कलंक व्यक्ति; सिघासो [ सिघास्सा ]: एक तेज़ घोड़ा; अबलास्सं इव : एक कमजोर घोड़े के रूप में; हित्वा : पीछे छोड़कर; यति : बहुत आगे बढ़ता है।
अत्यंत बुद्धिमान और गहन ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति सदा सजग और सचेत रहता है। अतः वह गहरी नींद में सो रहे लोगों के बीच जागृत व्यक्ति के समान होता है। सर्वोच्च अंतर्दृष्टि प्राप्त वह बुद्धिमान व्यक्ति आध्यात्मिकता में उन सभी साधारण लोगों से आगे निकल जाता है, जैसे एक तेज घोड़ा आसानी से कमजोर घोड़े को पीछे छोड़ देता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 29)
हित्वा यति : पीछे छोड़ देता है; पराजित करता है; आगे निकल जाता है। ये इस श्लोक के मुख्य विचार हैं। इस श्लोक में निहित अवधारणा यह है कि जो सचेत और जागरूक होते हैं, वे सुस्त और लापरवाह लोगों से आगे निकल जाते हैं। इस विचार को बल देने के लिए कई दृष्टांत दिए गए हैं। नींद से वंचित व्यक्ति पूरी तरह जागृत रहता है जबकि अन्य लोग सोते रहते हैं। लंगड़ा घोड़ा फुर्तीले घोड़े से आगे निकल जाता है। इस प्रकार सचेत व्यक्ति उन लोगों से आगे निकल जाता है जो लापरवाह और सुस्त होते हैं। इस तरह बुद्धिमान लोग अपने से कम बुद्धिमान, मूर्ख और कमतर लोगों से आसानी से आगे निकल जाते हैं। सत्य की खोज करने वालों में जो अपनी खोज में दृढ़ रहते हैं, वे आध्यात्मिक उपलब्धियों में दूसरों से आगे निकल जाते हैं। वे सांसारिक कार्यों को भी त्याग देते हैं।
लापरवाहों के बीच सावधान, सोए हुओं के बीच पूरी तरह जागृत, बुद्धिमान व्यक्ति एक तेज घोड़े की तरह आगे बढ़ता है, और एक कमजोर व्यक्ति को पीछे छोड़ देता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 30

———————————————————————

(धम्मपद 29) <<<< पिछला ॥ श्लोक 30 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 31)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 30 - माघ वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
अप्पामदेन(1) मगहावा
देवनम सेत्थतम गतो
appamadam pasamanti
pamado garahito sada.

———————————————————————

श्लोक 30 : सजगता (पुण्य कर्म करने में) के कारण माघा देवताओं का राजा बना। सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, परन्तु लापरवाही की सदा निंदा की जाती है।

———————————————————————

1. अप्पमदेन: सजगता के द्वारा; अर्थात् पुण्य कर्म करते समय सजगता। उपरोक्त कथा में, मचला गाँव के युवक माघा ने भूमि की सफाई और सड़कें बनाने के द्वारा इंद्र या सक्का, देवताओं के राजा के रूप में पुनर्जन्म लिया। (देव दिव्य प्राणी/देवदूत हैं।)

———————————————————————

माघ की कहानी
वेसाली के पास कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (30) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का के संदर्भ में था।
एक बार महाली नामक एक लिच्छवी राजकुमार बुद्ध द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचन को सुनने आया। प्रवचन सक्कपन्हा सूत्रंत था। बुद्ध ने सक्का के बारे में बड़े ही सजीव और प्रशंसात्मक शब्दों में बात की; इसलिए महाली ने सोचा कि बुद्ध सक्का से व्यक्तिगत रूप से मिले होंगे। यह सुनिश्चित करने के लिए, उसने बुद्ध से पूछा, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाली, मैं सक्का को जानता हूँ; मैं यह भी जानता हूँ कि किस कारण से वह सक्का बना।" फिर उन्होंने महाली को बताया कि देवताओं के राजा सक्का, पिछले जन्म में माघा नामक एक

युवक थे, जो मचला गाँव में रहते थे। युवक माघा और उनके बत्तीस साथी सड़कें और विश्रामगृह बनवाते थे। माघा ने सात दायित्वों का पालन करने का भी वचन लिया था। ये सात दायित्व हैं कि वे अपने पूरे जीवन में, (1) अपने माता-पिता का भरण-पोषण करेंगे; (2) बड़ों का आदर करेंगे; (3) वाक्पटु रहेंगे; (4) चुगली नहीं करेंगे; (5) लालची नहीं होंगे, बल्कि उदार होंगे; (6) वह सच बोलेगा; और (7) वह अपना आपा खोने से खुद को रोकेगा।

उस जन्म में उनके अच्छे कर्मों और सही आचरण के कारण ही माघा का पुनर्जन्म सक्का के रूप में हुआ, जो देवों (देवदूतों) का राजा था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 30 : सजगता (पुण्य कर्म करने में) के कारण माघा देवताओं का राजा बना। सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, परन्तु लापरवाही की सदा निंदा की जाती है।

---

प्रवचन के अंत में महाली ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

माघ की कहानी

वैशाली के पास कूटागार मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवताओं के राजा सक्का के संदर्भ में यह श्लोक कहा। वैशाली में रहने वाले महाली नामक एक लिच्छवी राजकुमार ने बुद्ध को सक्का का प्रश्न नामक सूत्र का पाठ करते हुए सुना और मन ही मन सोचा, "परमप्रबुद्ध बुद्ध ने सक्का की महान महिमा का वर्णन किया है। क्या बुद्ध ने सक्का को देखा है? या उन्होंने सक्का को नहीं देखा है? क्या बुद्ध सक्का से परिचित हैं? या वे सक्का से परिचित नहीं हैं? मैं उनसे पूछूंगा।" अतः लिच्छवी राजकुमार महाली बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद, लिच्छवी राजकुमार महाली ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय, क्या आपने देवताओं के राजा सक्का को देखा है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हां, महाली, मैंने देवताओं के राजा सक्का को देखा है।" "हे पूज्यवर, यह निश्चित रूप से सक्का की नकली प्रतिमा रही होगी; क्योंकि, हे पूज्यवर, देवताओं के राजा सक्का को देखना एक कठिन बात है।" "फिर भी, महाली, मैं सक्का को जानता हूँ; मैं जानता हूँ कि किन गुणों ने उन्हें सक्का बनाया; मैं जानता हूँ कि किन गुणों के अभ्यास से सक्का ने सक्का पद प्राप्त किया।"

महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिनका नाम माघ था; इसलिए उन्हें माघवा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने दान दिया था; इसलिए उन्हें पुरिन्ददा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने नियमित रूप से दान दिया था; इसलिए उन्हें सक्का कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जिन्होंने निवास स्थान दिया था; इसलिए उन्हें वासवा कहा जाता है। महाली, अपने पूर्व जन्म में देवताओं के राजा सक्का एक मनुष्य थे, जो एक पल में हज़ारों बातें सोच सकते थे; इसलिए उन्हें सहस्सक्खा कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का की पत्नी सुजाता नाम की एक असुर कन्या थी; इसलिए उन्हें सुजम्पति कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का का प्रभुत्व है। तैंतीस देवताओं के स्वामी और स्वामी होने के कारण ही उन्हें देवताओं का राजा कहा जाता है। महाली, देवताओं के राजा सक्का ने अपने पिछले जन्म में मनुष्य रूप में सात व्रत धारण किए और उनका पालन किया। इन सात व्रतों का पालन करने के कारण ही सक्का ने सक्का पद प्राप्त किया।

"वे सात व्रत क्या थे? 'जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने माता-पिता का सहारा बनूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं अपने बड़ों का आदर करूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं मधुर वाणी बोलूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं कभी चुगली न करूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं गृहस्थ जीवन व्यतीत करूँ, मेरा हृदय लोभ से मुक्त हो, मैं अपनी संपत्ति का त्याग करने में उदार हो, मैं खुले हाथों से दान दूँ, मेरी प्रार्थनाओं को ध्यान से सुनूँ और दान बाँटने में प्रसन्न रहूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं सत्य बोलूँ। जब तक मैं जीवित रहूँ, मैं क्रोध से मुक्त रहूँ। यदि मेरे भीतर क्रोध उत्पन्न हो, तो मैं उसे शीघ्र ही शांत कर दूँ।' महाली, देवताओं के राजा सक्क ने अपने पूर्वज में इन सात व्रतों को ग्रहण किया और उनका पालन किया। इन सात व्रतों को ग्रहण करने और उनका पालन करने के कारण ही सक्क ने सक्कत्व प्राप्त किया।" बुद्ध ने कहा, "पिछले जन्म में सक्का ने माघा के रूप में जन्म लिया था। उस जन्म में उन्होंने तीस साथियों के साथ मिलकर जनमानस के लाभ के लिए सड़कें और विश्राम स्थल बनवाए। उनके अथक प्रयासों ने उन्हें देवताओं के राजा के उच्च पद तक पहुँचाया और उन्होंने यह श्लोक सुनाया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 30)

मघावा अप्पमादेन देवानां सेठतं गतो

अप्पमादं पसंसन्ति पमादो सदा गरहितो ।

मघावा : माघ (माणवक); अप्पमाडेना : सचेतनता के माध्यम से; देवानां [ देवाना ]: देवताओं का; सेठहताम् [ सेठहता ]: नेतृत्व; गातो : पहुंच गया; अप्पमादं [ अप्पमादा ]: सचेतनता; पसंशन्ति : बुद्धिमान प्रशंसा करते हैं; पमाडो [ पमाडा ]: आलस्य; सदा : सदैव; गराहितो [ गराहिता ]: निंदा की जाती है।

ब्राह्मण युवक माघा ने अपनी सजगता के कारण देवताओं के मुखिया के रूप में जन्म लिया। इसलिए सजगता की सदा प्रशंसा की जाती है, और आलस्य और असावधानी की सदा निंदा की जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 30)

pamādo garahito sadā : जो पीछे रह जाते हैं, वे निंदनीय होते हैं क्योंकि आलसी लोग अपने सांसारिक या आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते। बेशक, अज्ञानता की हमेशा निंदा की जाती है, श्रेष्ठ लोगों द्वारा इसकी आलोचना की जाती है। क्यों? क्योंकि यह सभी विपत्तियों का मूल कारण है। हर विपत्ति, चाहे वह मानवीय विपत्ति हो या दुख की स्थिति में जन्म, वास्तव में अज्ञानता पर आधारित होती है।

मघवा : मघवा, देवताओं के राजा सक्का का पर्यायवाची है। मघमानावक जातक में वर्णित है कि सुदूर अतीत में एक जनहितैषी व्यक्ति, जिसने अपने मित्रों के सहयोग से अपना पूरा जीवन कल्याणकारी कार्यों में व्यतीत किया, अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप सक्का के रूप में जन्म लिया।

देव : शाब्दिक अर्थ, क्रीड़ा करने वाले या प्रकाशमान, सूक्ष्म भौतिक शरीर वाले प्राणियों का एक वर्ग है जो नग्न आंखों से अदृश्य होते हैं। वे स्वर्गीय लोकों में निवास करते हैं। पृथ्वी पर भी कुछ देवता होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 31

---

(धम्मपद 30) <<<< पिछला ॥ श्लोक 31 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 32)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 31 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदारतो भिक्खु(1)
pamade bhayadassi(2) va
samyojanam anum thulam
daham aggiva gacchati.

---

श्लोक 31 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह आग की तरह आगे बढ़ता है, सभी बंधनों को जलाकर भस्म कर देता है, चाहे वे बड़े हों या छोटे।

---

1. अप्पमदारतो भिक्खु: वह भिक्षु जो ध्यान में आनंद लेता है, अर्थात् शांति और अंतर्दृष्टि के विकास के अभ्यास में। 2. पमदे भयदस्सी: लापरवाही में खतरा देखना, अर्थात् ऐसी लापरवाही जो पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) में निरंतर अस्तित्व की ओर ले जाए।

---

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (31) कहा।

एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, ध्यान करने के लिए वन में प्रस्थान किया। उन्होंने बहुत प्रयास किया, फिर भी उनकी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं हुई। परिणामस्वरूप, वे अत्यंत निराश और हताश हो गए। इसलिए, बुद्ध से और अधिक विशिष्ट निर्देश प्राप्त करने की इच्छा से वे जेतवन मठ की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक भयंकर आग दिखाई दी। वे दौड़कर एक पर्वत की चोटी पर चढ़ गए और वहाँ से आग को देखने लगे। जैसे-जैसे आग फैलती गई, उन्हें अचानक यह विचार आया कि जिस प्रकार आग सब कुछ जला देती है, उसी प्रकार मार्ग अंतर्दृष्टि भी जीवन के सभी बंधनों, चाहे वे बड़े हों या छोटे, को जला देगी।

इसी बीच, जेतवन मठ के गंधकुटी हॉल से बुद्ध भिक्षु के विचारों से अवगत हो गए। उन्होंने अपना प्रकाश प्रसारित किया और भिक्षु के सामने प्रकट होकर उनसे बात की। उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र, तुम सही मार्ग पर हो; इसे जारी रखो। सभी प्राणियों को मार्ग अंतर्दृष्टि से जीवन के सभी बंधनों को जला देना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 31 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह आग की तरह आगे बढ़ता है, सभी बंधनों को जलाकर भस्म कर देता है, चाहे वे बड़े हों या छोटे।

---

प्रवचन के अंत में उस भिक्षु ने उसी क्षण अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, एक भिक्षु ने गुरु से अर्हतत्व प्राप्त करने वाला ध्यान विषय प्राप्त किया और वन में एकांतवास किया। उसने भरसक प्रयास किया, फिर भी वह अर्हतत्व प्राप्त नहीं कर सका। तब उसने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध से प्रार्थना करूँगा कि वे मुझे मेरी आवश्यकताओं के अनुरूप एक बेहतर ध्यान विषय प्रदान करें।" अतः वह अपने निवास स्थान से निकलकर बुद्ध के पास लौटने के लिए चल पड़ा। रास्ते में उसने एक भयंकर जंगल में आग देखी। इसलिए वह एक बंजर पर्वत की चोटी पर चढ़कर बैठ गया। जैसे ही उसने आग को जंगल को भस्म करते देखा, उसने अपने मन को इस विचार पर केंद्रित किया, "जिस प्रकार यह आग आगे बढ़कर सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म कर रही है, उसी प्रकार मुझे भी श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञान की अग्नि से सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।"

बुद्ध अपने सुगंधित कक्ष में बैठे हुए ही अपने विचारों के प्रवाह से अवगत हुए और बोले, "भिक्षु, यह बिल्कुल सत्य है। जिस प्रकार अग्नि सभी छोटी-बड़ी बाधाओं को भस्म कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान की अग्नि से सभी प्राणियों में उत्पन्न होने वाली छोटी-बड़ी आसक्तियों को भस्म करना और पूर्णतः नष्ट करना आवश्यक है।" और अपने एक प्रकाशमान स्वरूप को प्रकट करते हुए, मानो उस भिक्षु के सामने आमने-सामने बैठे हुए, उन्होंने एक श्लोक सुनाया।

श्लोक के अंत में, वह भिक्षु वहीं बैठे-बैठे ही समस्त आसक्तियों का भस्म कर अरहतत्व तथा अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर लिया। फिर तुरंत वायु में विचरण करते हुए वह बुद्ध के पास पहुंचा और बुद्ध के स्वर्णमय शरीर की स्तुति और महिमा का गुणगान किया। और उन्हें प्रणाम करने के बाद वह वहां से विदा हो गया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 31)

अप्पमादारतो पमादे भयदस्सी वा भिक्खु अनुन

थूलं संनोजानं अग्गि इव दहं गच्छति ।

appamādarato [ appamādarata ]: ध्यान में आनंद लेना; pamāde : अचेतना में; bhayadassi vā : भय देखना; bhikkhu : भिक्षु; aṇuṃ thūlaṃ [ thūla ]: सूक्ष्म और विशाल; saññojanaṃ [ saññojana ]: बंधन; aggī iva : आग की तरह; dahaṃ [ daha ]: जला देता है; gacchati : अपना मार्ग बनाता है (निब्बान)।

सत्य के साधक के रूप में, भिक्षु अचेतना से भयभीत रहता है क्योंकि वह जानता है कि यदि व्यक्ति अचेतन हो जाए, तो वह संसार के अंतहीन दुखों में लीन हो जाएगा। इसलिए, वह लगन और सचेतनता से आगे बढ़ता है और सांसारिक बंधनों को तोड़ता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 31)

सन्नोजनं : बंधन। दस बंधन हैं जो प्राणियों को जीवन चक्र से बांधते हैं, अर्थात्: (i) व्यक्तित्व संबंधी दृष्टिकोण, (ii) अनिश्चितता या विभाजित मन, (iii) विमुख अनुशासन, (iv) इंद्रिय-संबंधी जुनून, (v) घृणा, (vi) रूप के प्रति आसक्ति, (vii) निराकार के प्रति आसक्ति, (viii) निर्णय, (ix) चिंता, (x) अचेतनता। इनमें से पहले पांच को 'निम्न बंधन' कहा जाता है, क्योंकि ये इंद्रिय-संबंधी जगत से बांधते हैं। बाद के पांच को 'उच्च बंधन' कहा जाता है, क्योंकि ये उच्चतर जगतों से बांधते हैं, अर्थात् साकार और निराकार जगत से।
जो (i) से (iii) तक के बंधनों से मुक्त है , वह सोतापन्न है , अर्थात् निर्वाण की धारा में प्रवेश कर चुका है। जो इन तीन बंधनों के अतिरिक्त (iv) और (v) के स्थूल रूप पर विजय प्राप्त कर चुका है, उसे सकादागामी कहा जाता है , अर्थात् (इस इंद्रियलोक में) एक बार लौटने वाला। जो (i) से (v) तक के बंधनों से पूर्णतः मुक्त है, वह अनागामी है , अर्थात् (इंद्रियलोक में) न लौटने वाला। जो सभी दस बंधनों से मुक्त है, उसे अरहत कहा जाता है, अर्थात् पूर्णतः पवित्र।
pamāde bhayadassi vā : वह अचेतनता को भय का कारण मानता है। जो भय उसे दिखाई देता है, उसका संबंध जीवन के चक्र से है। वह जानता है कि यदि वह आध्यात्मिक उन्नति के प्रयास में शिथिलता बरतेगा, तो उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में उलझना पड़ेगा। अतः वह असावधानी को इन सभी कष्टों का मूल कारण मानता है। यही कारण है कि वह सजगता के अभाव में भय देखता है।
अप्पमादा रातो : सजगता में आनंद लेना। सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक अपने लक्ष्य की खोज में सफल हो सकता है। यदि उसका अमरता में आनंद समाप्त हो जाए, तो वह निर्वाण की ओर अपने मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाएगा। इसलिए भिक्षु—सत्य की खोज करने वाले—को ऐसे व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है जो मन की सजगता में आनंद लेता है।
भिक्षु : बुद्ध के पूर्णतः दीक्षित शिष्य को भिक्षु कहा जाता है। भिक्षु के लिए सबसे उपयुक्त शब्द " भिक्षु " हो सकता है । वह पुजारी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ नहीं होता। वह जीवन भर के लिए कोई प्रतिज्ञा नहीं लेता, परन्तु अपने द्वारा स्वेच्छा से चुने गए नियमों का पालन करता है। वह स्वेच्छा से निर्धनता और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है। यदि वह पवित्र जीवन जीने में असमर्थ हो, तो वह किसी भी समय भिक्षु वस्त्र त्याग सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 32

---

(धम्मपद 31) <<<< पिछला ‖ श्लोक 32 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 33, 34)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 32 - निगमवसित्सत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदारतो भिक्खु
pamade bhayadassi va
abhabbo parihanaya(1)
nibbanasseva santike.

---

श्लोक 32 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह कभी भटकता नहीं; वह वास्तव में निर्वाण के बहुत करीब है।

---

1. abhabbo parihanaya: इससे विमुख न हो पाना; यहाँ इसका अर्थ है, शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास और उससे प्राप्त लाभों, अर्थात् मार्ग और फल से विमुख न हो पाना। (टीका)

---

थेरा निगमवासितिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा निगमवसितिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (32) कहा।

निगमवसितिस्सा का जन्म और पालन-पोषण सावत्थी के पास एक छोटे से बाज़ार कस्बे में हुआ था। भिक्षु बनने के बाद उन्होंने बहुत ही सादा जीवन व्यतीत किया, उनकी ज़रूरतें बहुत कम थीं। भिक्षा के लिए वे अपने रिश्तेदारों के गाँव जाते और जो कुछ भी उन्हें दिया जाता, उसे ग्रहण करते थे। वे बड़े समारोहों से दूर रहते थे। यहाँ तक कि जब अनाथपिंडिका और कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) ने बड़े पैमाने पर दान-पुण्य किया, तब भी निगमवसितिस्सा वहाँ नहीं गए।

कुछ भिक्षुओं ने थेरा के बारे में बातें करना शुरू कर दिया कि वे अपने रिश्तेदारों के करीब रहते थे और अनाथपिंडिका और राजा पसेनादि (प्रसेनजित) जैसे लोगों द्वारा भव्य दान-पुण्य किए जाने पर भी वे कहीं नहीं जाते थे। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने थेरा को बुलवाया और उनसे पूछा। थेरा ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि यह सच है कि वे अक्सर अपने गाँव जाते थे, लेकिन केवल भिक्षा लेने के लिए। जब उन्हें पर्याप्त भोजन मिल जाता था, तो वे आगे नहीं जाते थे और उन्हें इस बात की परवाह नहीं होती थी कि भोजन स्वादिष्ट है या नहीं। इस पर, बुद्ध ने उन्हें दोष देने के बजाय, अन्य भिक्षुओं के सामने उनके आचरण की प्रशंसा की। उन्होंने यह भी कहा कि कम इच्छाओं के साथ संतुष्ट जीवन जीना बुद्ध और आर्यों के आचरण के अनुरूप है, और सभी भिक्षुओं को वास्तव में छोटे से कस्बे के थेरा तिस्सा के समान होना चाहिए। इस संदर्भ में, उन्होंने तोतों के राजा की कहानी भी सुनाई।

एक समय की बात है, गंगा नदी के किनारे अंजीर के पेड़ों के एक बाग में तोतों का राजा अपने कई अनुयायियों के साथ रहता था। जब फल खत्म हो गए, तो सभी तोते बाग छोड़कर चले गए, सिवाय तोतों के राजा के, जो अपने निवास स्थान वाले पेड़ पर जो कुछ भी बचा था, चाहे वह टहनी हो, पत्ती हो या छाल, उसी से संतुष्ट था। यह जानकर और तोतों के राजा के सद्गुणों की परीक्षा लेने के लिए, सक्का ने अपनी अलौकिक शक्ति से उस पेड़ को सुखा दिया। फिर, हंसों का रूप धारण करके, सक्का और उसकी रानी सुजाता तोतों के राजा के पास आए और उससे पूछा कि उसने अन्य तोतों की तरह उस सूखे पेड़ को क्यों नहीं छोड़ा और उन पेड़ों पर क्यों नहीं गया जिन पर अभी भी फल लगे हुए थे। तोतों के राजा ने उत्तर दिया, "कृपा के प्रति कृतज्ञता के कारण मैंने उसे नहीं छोड़ा और जब तक मुझे अपने जीवनयापन के लिए पर्याप्त भोजन मिलता रहेगा, मैं उसे नहीं छोड़ूंगा। इस पेड़ को छोड़ना मेरे लिए कृतघ्नता होगी, भले ही वह निर्जीव हो।"

इस उत्तर से अत्यंत प्रभावित होकर सक्का ने अपना असली रूप प्रकट किया। उन्होंने गंगा से जल लेकर सूखे अंजीर के वृक्ष पर डाला और वह तुरंत ही पुनर्जीवित हो उठा; उसकी शाखाएँ हरी-भरी हो गईं और वह फलों से लदा हुआ था। इस प्रकार, बुद्धिमान प्राणी भी पशुओं की तरह लालची नहीं होते; वे जो कुछ भी उपलब्ध होता है, उसी से संतुष्ट रहते हैं।

कहानी में तोते का राजा स्वयं बुद्ध थे; सक्का अनुराधा थे।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 32 : जो भिक्षु ध्यान में आनंद लेता है और लापरवाही में खतरा देखता है, वह नहीं भटकेगा (2), वह वास्तव में निर्वाण के बहुत करीब है।

---

प्रवचन के अंत में, थेरा तिस्सा ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) विमुख नहीं होगा: इसका अर्थ है, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास से विमुख नहीं होगा और मग्गा और फल्ला प्राप्त करने का आश्वासन है।

अध्याय दो का अंत: सजगता (अप्पमदावग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु निगमा वासी तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु निगमा वासी तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक बाजार नगर में जन्मे और पले-बढ़े एक उच्च कोटि के युवक ने संसार त्याग कर बुद्ध धर्म में भिक्षु का जीवन व्यतीत किया। पूर्ण दीक्षा लेने पर वे बाजार नगर के तिस्सा या निगम तिस्सा के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे संयमी, संतुष्ट, पवित्र और दृढ़ निश्चयी माने जाते थे। वे अपने रिश्तेदारों के गांव में भिक्षा मांगने के लिए नियमित रूप से चक्कर लगाते थे। हालांकि पास के शहर सावत्थी में अनाथपिंडिका और अन्य शिष्य प्रचुर मात्रा में दान दे रहे थे और पसेनदी कोसल अतुलनीय दान दे रहे थे, फिर भी वे कभी सावत्थी नहीं गए।

एक दिन भिक्षुओं ने उनके बारे में बातें करना शुरू किया और गुरु से कहा, "यह भिक्षु निगम तिस्सा, जो व्यस्त और सक्रिय हैं, अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में रहते हैं। यद्यपि अनाथपिंडिका और अन्य शिष्य प्रचुर मात्रा में दान देते हैं और पसेनदी कोसल अतुलनीय उपहार देते हैं, फिर भी वे कभी सावत्थी नहीं आते।" बुद्ध ने निगम तिस्सा को बुलवाया और उनसे पूछा, "भिक्षु, क्या यह बात सच है कि आप ऐसा कर रहे हैं?" तिस्सा ने उत्तर दिया, "आदरणीय, यह सच नहीं है कि मैं अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में रहता हूँ। मैं इन लोगों से उतना ही भोजन प्राप्त करता हूँ जितना मैं खा सकता हूँ। लेकिन अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक भोजन, चाहे वह मोटा हो या महीन, प्राप्त करने के बाद, मैं यह सोचकर मठ नहीं लौटता कि 'भोजन की तलाश क्यों करूँ?' मैं अपने सगे-संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध में नहीं रहता, आदरणीय।" भिक्षु के स्वभाव को जानकर बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, "शाबाश, शाबाश, भिक्षु!" फिर उन्होंने उनसे कहा, "हे भिक्षु, मुझ जैसे गुरु को पाकर आपका मितव्ययी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि मितव्ययिता मेरा स्वभाव और मेरी आदत है।" और भिक्षुओं के अनुरोध पर उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं।

बहुत समय पहले की बात है, हिमालय में गंगा नदी के किनारे अंजीर के पेड़ों के एक विशेष बाग में कई हजार तोते रहते थे। उनमें से एक तोते का राजा, जब उसके पेड़ के फल सूख गए, तो उसने जो कुछ भी बचा हुआ पाया, चाहे वह टहनी हो, पत्ती हो या छाल, सब खा लिया, गंगा का पानी पिया और अत्यंत प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर वहीं रहने लगा। वास्तव में वह इतना प्रसन्न एवं संतुष्ट था कि सक्का का निवास स्थान कांपने लगा।

सक्का ने तोते की प्रसन्नता और संतुष्टि को देखकर उससे मुलाकात की और पूरे जंगल को हरा-भरा और समृद्ध बना दिया। बुद्ध ने बताया कि पिछले जन्म में भी वह संतुष्ट और सुखी था और ऐसा भिक्षु कभी भी निर्वाण के निकट से विमुख नहीं होगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 32)

अप्पमादारतो पमादे भयदस्सी वा भिक्खु
अभब्बो परिहानाय निब्बानस संतिके एव

appamādarato [ appamādarata ]: ध्यान में आनंद लेना; pamāde : आलस्य में; bhayadassi vā : भय देखना; bhikkhu : भिक्षु; abhabbo parihānāya : पीछे हटने में असमर्थ; nibbānassa : निर्वाण का; santike eva : वास्तव में आसपास है।

सत्य के साधक के रूप में भिक्षु को सचेतनता की कमी में भय दिखाई देता है। वह निश्चित रूप से उन आध्यात्मिक ऊँचाइयों से पीछे नहीं हटेगा जिन्हें वह पहले ही प्राप्त कर चुका है। वह हमेशा निर्वाण के निकट रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 32)

निर्वाण : निर्वाण का उल्लेख करते हुए बुद्ध कहते हैं, "हे भिक्षुओं, अजन्मा, अविकसित और अनिर्धारित अवस्था विद्यमान है। यदि अजन्मा, अविकसित और अनिर्धारित अवस्था न होती, तो जन्म लेने वाले, विकसित होने वाले और निर्धारित अवस्थाओं के लिए कोई मुक्ति नहीं होती, इसलिए जन्म लेने वाले, विकसित होने वाले और निर्धारित अवस्थाओं के लिए मुक्ति है।" "यहाँ ठोस, तरल, ऊष्मा और गति के चार तत्वों का कोई स्थान नहीं है; लंबाई और चौड़ाई, सूक्ष्म और स्थूल, अच्छा और बुरा, नाम और रूप की धारणाएँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं; न यह लोक, न दूसरा लोक, न आना, न जाना, न रुकना, न जन्म, न मृत्यु, न इंद्रिय-विषय पाए जाते हैं।" क्योंकि निर्वाण को इस प्रकार नकारात्मक शब्दों में व्यक्त किया गया है, इसलिए बहुत से लोगों को यह गलत धारणा है कि यह नकारात्मक है और आत्म-विनाश को व्यक्त करता है। निर्वाण निश्चित रूप से आत्म-विनाश नहीं है, क्योंकि यहाँ आत्म-विनाश करने के लिए कोई आत्म ही नहीं है। यदि कुछ है भी, तो यह अस्तित्व की प्रक्रिया का ही विनाश है, संसार में सशर्त निरंतरता का विनाश है , स्थायित्व और पहचान के भ्रम या भ्रांति के साथ, मैं और मेरा के एक चौंकाने वाले अहंकार के साथ।

abhabbo parihānāya : पतन के योग्य नहीं। ऐसा (सचेत) भिक्षु न तो समाथा और विपश्यना की ध्यान प्रक्रियाओं से और न ही मार्ग और फलों से विचलित होता है—अर्थात, जो प्राप्त कर चुका है उससे विचलित नहीं होता, और जो अभी प्राप्त नहीं हुआ है उसे प्राप्त करेगा।

## **अध्याय 3. चित्तवग्ग: मन** (33-43)

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 33 और 34

---

(धम्मपद 32) <<<< पिछला ॥ श्लोक 33, 34 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 35)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 33 और 34 - मेघियाथेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Phandanam capalam cittam
दुराक्खम(1) दुन्निवरायम(2)
ujum karoti(3) medhavi
usukarova tejanam.

Varijova thale khitto
okamokata ubbhato
pariphandatidam cittam
maradheyyam pahatave.

---

श्लोक 33 : मन उत्तेजित और अस्थिर होता है; इसे नियंत्रित करना और संयमित करना कठिन है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को उसी प्रकार स्थिर रखता है जैसे तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है।

---

श्लोक 34 : जैसे मछली को उसके जलीय घर से निकालकर सूखी जमीन पर फेंके जाने पर वह कांपती है, वैसे ही मन भी इंद्रिय जगत से बाहर निकाले जाने पर कांपता है ताकि वह मारा के क्षेत्र (अर्थात क्लेशा वट, नैतिक विकारों के चक्र) से बच सके।

---

1. दुराक्खम: ध्यान करते समय मन को एक ही वस्तु पर स्थिर रखना कठिन होता है।
2. दुन्निवरयम: मन को कामुक सुखों की ओर भटकने से रोकना कठिन है।
3. उजुम करोति: सीधा करता है: (क) तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है, (ख) ज्ञानी व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास (समाथा और विपश्यना) के माध्यम से अपने कामुक, अनियंत्रित मन को प्रशिक्षित करता है।

---

थेरा मेघिया की कहानी

कालिका पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा मेघिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (33) और (34) का उच्चारण किया।

उस समय थेरा मेघिया बुद्ध की सेवा में थे। एक बार भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, थेरा ने एक सुंदर और रमणीय आमों का बाग देखा, जो उन्हें ध्यान के लिए आदर्श स्थान लगा। उन्होंने बुद्ध से वहां जाने की अनुमति मांगी, लेकिन चूंकि बुद्ध उस समय अकेले थे, इसलिए उन्हें कुछ अन्य भिक्षुओं के आने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। थेरा को जाने की जल्दी थी, इसलिए उन्होंने बार-बार विनती की, अंततः बुद्ध ने उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार जाने की अनुमति दे दी।

इस प्रकार, थेरा मेघिया आम के बाग में गए, एक पेड़ की तलहटी में बैठ गए और ध्यान का अभ्यास किया। वे दिन भर वहीं रहे, परन्तु उनका मन भटकता रहा और उन्हें कोई प्रगति नहीं मिली। वे शाम को लौटे और बुद्ध को बताया कि कैसे वे हर समय इंद्रियों से जुड़े विचारों, द्वेष और क्रूरता (काम वितक्का, ब्यापाद वितक्का और विहिंसा वितक्का) से घिरे रहे।

इसलिए बुद्ध ने उनसे कहा कि चूंकि मन आसानी से उत्तेजित और चंचल होता है, इसलिए व्यक्ति को अपने मन को नियंत्रित करना चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 33 : मन उत्तेजित और अस्थिर होता है; इसे नियंत्रित करना और संयमित करना कठिन है। बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को उसी प्रकार स्थिर रखता है जैसे तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है।

---

श्लोक 34 : जैसे मछली को उसके जलीय घर से निकालकर सूखी जमीन पर फेंके जाने पर वह कांपती है, वैसे ही मन भी इंद्रिय जगत से बाहर निकाले जाने पर कांपता है ताकि वह मारा के क्षेत्र (अर्थात क्लेशा वट, नैतिक विकारों के चक्र) से बच सके।

---

प्रवचन के अंत में, थेरा मेघिया ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय मेघिया की कहानी
चालिका पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य मेघिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार, काम, घृणा और मोह जैसे तीन बुरे विचारों से आसक्ति के कारण, पूज्य मेघिया इस आम के बाग में साधना नहीं कर पाए और बुद्ध के पास लौट आए। बुद्ध ने उनसे कहा, “मेघिया, तुमने घोर पाप किया है। मैंने तुम्हें रुकने के लिए कहा था, ‘मैं अब अकेला हूँ, मेघिया। किसी दूसरे भिक्षु के आने तक प्रतीक्षा करो।’ लेकिन मेरे अनुरोध के बावजूद तुम चले गए। किसी भिक्षु को मुझे अकेला छोड़कर नहीं जाना चाहिए जब मैं उसे रुकने के लिए कहूँ। किसी भिक्षु को अपने विचारों के वश में नहीं रहना चाहिए। विचार चंचल होते हैं, और मनुष्य को उन्हें हमेशा अपने वश में रखना चाहिए।”
श्लोकों के समापन पर मेघिया धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित हो गए और कई अन्य भिक्षु दूसरे और तीसरे मार्ग के फलों में स्थापित हो गए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 33)
फंदनं चपलं दुरक्खं दुन्निवरायम्
चित्तं मेधावी उजुं करोति उसुकारो तेजानं इव
फंदनां [ फंदाना ]: स्पंदित, स्पंदित; कैपालाम् [ कैपाला ]: चंचल, अस्थिर; दुरक्खाँ [ दुरक्खा ]: रक्षा करना कठिन; दुन्निवरायम् [ दुन्निवराय ]: रोकना कठिन; चित्तं [ चित्त ]: मन; मेधावी : बुद्धिमान; उजुं करोति : सीधा करता है; उसुकारो इव : फ्लेचर की तरह; तेजानां [ तेजाना ]: एक तीर-शाफ़्ट
धम्मपद में तीरंदाज़ की कारीगरी के कई संदर्भ मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध ने उस प्रक्रिया का अवलोकन किया था जिसके द्वारा एक तीरंदाज़ साधारण लकड़ी को एक कुशल बाण में बदल देता है। मन को अनुशासित करना भी इसी प्रक्रिया के समानांतर माना जाता है। इस श्लोक में बुद्ध कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति चंचल मन को, जिस पर नियंत्रण रखना कठिन होता है, उसी प्रकार स्थिर और दृढ़ करता है, जैसे एक तीरंदाज़ बाण को सीधा करता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 34)
ओकामोकाटा उब्भतो थले खित्तो वारिजो इव इदम
चित्तं परिफंदति मरधेयं पहतवे
ओकामोकता : अपने जलमय निवास से; उभतो [ उभता ]: बाहर निकाला गया; थाले : सूखी भूमि पर; खित्टो [ खित्ता ]: फेंका गया; वारिजो इव : मछली की तरह; इदं चित्तं [ चित्त ]: यह मन; परिफंदति : कांपता है; मारधेय्यं [ मारधेय्य ]: मृत्यु का लोक; पाहतवे : त्यागना; परिफंदति : फड़फड़ाता और कांपता है
जब कोई व्यक्ति मारा (बुराई) के क्षेत्र को त्यागने का प्रयास करता है, तो उसका मन उस मछली की तरह कांपने लगता है जिसे पानी से निकालकर जमीन पर फेंक दिया गया हो।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 33-34)
चित्तम् : इस शब्द का सामान्य अनुवाद मन या चेतना के रूप में किया जाता है और इसे तथाकथित अस्तित्व का सार माना जाता है, जो मनुष्य की जटिल कार्यप्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका अधिक उपयुक्त अनुवाद 'मानसिक अवस्था' या उससे भी बेहतर 'भावनात्मक अवस्था' है। यही चित्त है जो या तो दूषित होता है या शुद्ध होता है, और जो स्वयं का सबसे बड़ा शत्रु और सबसे बड़ा मित्र होता है। पश्चिमी दर्शन में चित्त को 'आत्मा' के समतुल्य माना जाता है। हालाँकि, बौद्ध धर्म में 'आत्मा' को एक स्थायी इकाई के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है। चित्त , जो इसका स्थान लेता है, व्यक्ति की भावनात्मक अवस्था को संदर्भित करता है, जो एक इकाई नहीं

बल्कि एक लौ की तरह परिवर्तनशील गतिविधि है। कभी भावनाएँ उत्तेजित होती हैं और कभी चित्त शांत होता है (भावनाएँ अनुपस्थित होती हैं)। हम इसका अनुवाद 'स्वभाव' या 'प्रवृत्ति' के रूप में भी कर सकते हैं। बौद्ध धर्म के लेखक इसे गलती से 'मन' या 'चेतना' कहते हैं। लेकिन यहाँ जिस बात का तात्पर्य है, वह मानसिक प्रक्रिया के संज्ञानात्मक पहलुओं के बजाय 'भावनात्मक' पहलू हैं। जब कोई व्यक्ति गहरी नींद में होता है और स्वप्नहीन अवस्था में होता है, तो वह एक ऐसी मानसिक अवस्था का अनुभव करता है जो सक्रिय की तुलना में निष्क्रिय अधिक होती है। यह गर्भाधान और मृत्यु के समय अनुभव की जाने वाली मानसिक अवस्था के समान है। बौद्ध दर्शन में इस प्रकार की मानसिक अवस्था को भावांग चित्त कहा जाता है , जिसका अर्थ है अस्तित्व की स्थिति के लिए स्वाभाविक मानसिक अवस्था। प्रत्येक क्षण उत्पन्न और नष्ट होने वाली यह अवस्था एक धारा की तरह बहती रहती है, जो लगातार दो क्षणों तक एक जैसी नहीं रहती। हम इस प्रकार की मानसिक अवस्था का अनुभव न केवल स्वप्नहीन अवस्था में बल्कि जागृत अवस्था में भी करते हैं। अपने जीवनकाल में हम भावांग मानसिक अवस्थाओं का अनुभव अन्य किसी भी प्रकार की मानसिक अवस्था की तुलना में अधिक करते हैं। इसलिए भावांग मन की स्वाभाविक अवस्था बन जाती है।

कुछ विद्वान भावंगा को अवचेतन मन से जोड़ते हैं। दर्शनशास्त्र के शब्दकोश के अनुसार, अवचेतन मन 'मन का वह भाग है जो कुछ मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों के अनुसार चेतना की सीमा से नीचे विद्यमान होता है।' कुछ पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के मत के अनुसार, अवचेतन मन और चेतना सह-अस्तित्व में होते हैं।

लेकिन भवांगा एक उप-तल नहीं है। यह एफ.डब्ल्यू. मायर की अवचेतन चेतना से भी मेल नहीं खाता।

भावंगा शब्द का यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि यह मन की वह विश्राम अवस्था है जो किसी व्यक्ति के जीवन-क्रम का स्वाभाविक हिस्सा है। इसीलिए भावंगा के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'जीवन-क्रम' सुझाया गया है । लेकिन इसका बेहतर अनुवाद 'विश्राम मानसिक अवस्था' हो सकता है।

भावंग अवस्था, जिसका अनुभव व्यक्ति तब तक करता है जब तक वह बाह्य उद्दीपनों से बाधित नहीं होता, एक क्षण के लिए विचार-दर्शन करती है और इंद्रियों को उत्तेजित करने वाले उद्दीपन से समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि आँख उत्तेजित होती है। तब भावंग चेतना की धारा रुक जाती है और इंद्रिय-प्रधान चेतना (जिसका कार्य ध्यान को वस्तु की ओर मोड़ना है) उत्पन्न होती है और समाप्त हो जाती है। इसके तुरंत बाद, एक दृश्य बोध उत्पन्न होता है जो वस्तु को देखता है, लेकिन उसके बारे में और अधिक नहीं जानता। इस इंद्रिय क्रिया के बाद देखी गई वस्तु को ग्रहण करने का क्षण आता है। इसके बाद खोजी विचार-दर्शन उत्पन्न होता है जो क्षण भर के लिए देखी गई वस्तु की जाँच करता है। इसके बाद निर्णायक विचार-दर्शन आता है। इसी पर मनोवैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण अगली अवस्था जवाना निर्भर करती है। इसी अवस्था में किसी कर्म का न्याय किया जाता है, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक, जब विवेक का प्रयोग किया जाता है और वह अपनी भूमिका निभाता है। कर्म इसी अवस्था में किया जाता है।

सही निर्णय लेने पर यह नैतिक हो जाता है; गलत निर्णय लेने पर अनैतिक। मन में प्रस्तुत वस्तु चाहे वांछनीय हो या अवांछनीय, जवन प्रक्रिया को नैतिक या अनैतिक बनाना संभव है। उदाहरण के लिए, यदि कोई शत्रु से मिलता है, तो क्रोध स्वतः उत्पन्न होगा। इसके विपरीत, एक बुद्धिमान व्यक्ति आत्म-संयम से उसके प्रति प्रेम का भाव प्रकट कर सकता है।

इसीलिए बुद्ध ने कहा था:

स्वयं से बुराई की जाती है।<br>
स्वयं से ही मनुष्य अपवित्र होता है।<br>
स्वयं से कोई बुराई नहीं होती।<br>
स्वयं से ही व्यक्ति शुद्ध होता है।<br>
अपवित्रता और पवित्रता दोनों ही व्यक्ति पर निर्भर करती हैं।<br>
किसी एक व्यक्ति के द्वारा दूसरा व्यक्ति शुद्ध नहीं होता।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि परिवेश, परिस्थितियाँ, आदतें और इसी प्रकार के कारक हमारे विचारों को प्रभावित करते हैं। ऐसे अवसरों पर इच्छाशक्ति गौण हो जाती है। फिर भी, हमारे पास इन बाह्य शक्तियों पर विजय प्राप्त करने और अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति का प्रयोग करके नैतिक और अनैतिक विचार उत्पन्न करने की संभावना मौजूद है। कोई बाहरी तत्व एक कारण हो सकता है, लेकिन अंततः होने वाले कार्यों के लिए हम स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होते हैं।

जवाना के लिए उपयुक्त प्रतिपादन सुझाना अत्यंत कठिन है ।

कुछ लोग धारणा का सुझाव देते हैं। आवेग को एक वैकल्पिक व्याख्या के रूप में सुझाया गया है, जो धारणा की तुलना में कम संतोषजनक प्रतीत होती है। यहाँ पाली शब्द को ही बरकरार रखा गया है।

जवाना का शाब्दिक अर्थ है दौड़ना। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि चिंतन प्रक्रिया के दौरान यह लगातार सात चिंतन-क्षणों तक, या मृत्यु के समय, एक ही विषय पर पाँच चिंतन-क्षणों तक दौड़ता है। इन सभी चिंतन-क्षणों में उत्पन्न होने वाली मानसिक अवस्थाएँ समान होती हैं, परन्तु संभाव्य बल भिन्न होता है।

समय के अत्यंत सूक्ष्म भाग में घटित होने वाली यह संपूर्ण विचार प्रक्रिया दो विचार-क्षणों तक चलने वाली चेतना के साथ समाप्त हो जाती है। इस प्रकार सत्रह विचार-क्षणों की समाप्ति पर एक विचार प्रक्रिया पूर्ण होती है। यह किसी वस्तु के अनुभव में निहित विचार प्रक्रिया का विश्लेषण है।

बौद्ध धर्म प्रणाली में उच्च आध्यात्मिक उपलब्धि की खोज में एक आवश्यक तत्व मन की वास्तविक प्रकृति - चित्तानुपस्सना - पर चिंतन करना है ।

' चित्तनुपस्सना ' का अर्थ है मन का चिंतन। मन इतना जटिल और सूक्ष्म है कि आधुनिक विज्ञान भी इसके वास्तविक स्वरूप को पूरी तरह समझ नहीं पाया है। लेकिन बुद्ध ने अपने मन का विकास करके मन के वास्तविक स्वरूप को समझ लिया था। मन का विकास एकाग्रता की ओर ले जाता है। इस प्रकार विकसित मन को सहजता से पारलौकिक ज्ञान की ओर मोड़ा जा सकता है। हालांकि, ऐसी अवस्था को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। मन एक विषय पर स्थिर नहीं रहता, वह हमेशा भटकता रहता है। जब मन को वश में करने का प्रयास किया जाता है, तो वह पानी से निकाली गई मछली की तरह छटपटाता है। इसलिए मन को वश में करने के लिए अत्यंत प्रयास करना चाहिए।

अभिधम्म के अनुसार मन के 121 प्रकार होते हैं। इस ध्यान ( चित्तानुपस्सना ) में मन के 16 पहलुओं का वर्णन किया गया है। वे इस प्रकार हैं:

सारगा ,
वितरगा ,
सडोसा ,
विटाडोसा ,
समोहा ,
वीतमोह ,
सांखित्त
विक्खिट्टा ,
महाग्गता ,
अमाहग्गटा ,
सौत्तरा ,
अनुत्तरा ,
समाहिता ,
असमाहिता ,
विमुत्ता
अविमुत्ता .

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 35

---

(धम्मपद 33.34) <<<< पिछला ॥ श्लोक 35 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 36)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 35 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Dunnig-gahassa lahuno
यत्थकमणिपतिनो(1)

चित्तस्सा दामथो साधु
चित्तम दंतम सुखवहम(2).

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

श्लोक 35 : मन को वश में करना कठिन है; यह तेज़ी से और सहजता से जहाँ चाहे वहाँ चला जाता है। मन को वश में रखना अच्छा है, क्योंकि वश में किया हुआ मन सुख लाता है।

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

1. यत्थकमणिपतिनो: यह जहाँ चाहे विचरण करता है, बिना किसी नियंत्रण के किसी भी इंद्रिय विषय पर ठहर जाता है। 2. सुखवहम: यह सुख, सौभाग्य, संतुष्टि आदि लाता है, और साथ ही मार्ग, फल और निर्वाण भी प्रदान करता है। (टीका)

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (35) कहा।

एक बार साठ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद पर्वत की तलहटी में स्थित मतिका गाँव में शरण ली। वहाँ गाँव के मुखिया की माता मतिकामाता ने उन्हें भिक्षा दी और उनके लिए एक मठ भी बनवाया ताकि वे बरसात के मौसम में गाँव में रह सकें। एक दिन उन्होंने भिक्षुओं के समूह से ध्यान की विधि सिखाने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उन्हें शरीर के बत्तीस तत्वों पर ध्यान करना सिखाया, जिससे शरीर के क्षय और विघटन की चेतना प्राप्त होती है। मतिकामाता ने लगन से अभ्यास किया और भिक्षुओं से पहले ही तीनों मार्ग और फल, विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और सांसारिक अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं।

मग्ग और फल के आनंद से जागृत होकर उन्होंने दिव्य दृष्टि (दिब्बाचक्खु) से देखा कि भिक्षुओं ने अभी तक किसी भी मग्ग को प्राप्त नहीं किया था। उन्होंने यह भी जाना कि उन भिक्षुओं में अर्हतत्व प्राप्त करने की पर्याप्त क्षमता थी, लेकिन उन्हें उचित भोजन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने उनके लिए उत्तम और उत्तम भोजन तैयार किया। उचित भोजन और सही प्रयास से भिक्षुओं ने सही एकाग्रता विकसित की और अंततः अर्हतत्व प्राप्त किया।

बरसात के मौसम के अंत में, भिक्षु जेतवन मठ लौट आए, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे सभी स्वस्थ हैं और सुख-सुविधाओं में हैं तथा उन्हें भोजन की चिंता नहीं है। उन्होंने मतिकामाता का भी उल्लेख किया, जो उनके विचारों को जानती थीं और उन्होंने उनकी इच्छा के अनुसार भोजन तैयार किया और उन्हें परोसा।

एक भिक्षु ने मतिकामाता के बारे में लोगों को बात करते हुए सुना और उसने भी उस गाँव जाने का निश्चय किया। इसलिए, बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वह गाँव के मठ में पहुँचा। वहाँ उसने पाया कि उसकी हर मनोकामना मतिकामाता ने पूरी कर दी थी। जब उसने मतिकामाता को बुलाया, तो वह स्वयं मठ में आई और अपने साथ उत्तम भोजन लाई। भोजन ग्रहण करने के बाद उसने मतिकामाता से पूछा कि क्या वह दूसरों के मन की बात जान सकती है, लेकिन मतिकामाता ने प्रश्न को टालते हुए उत्तर दिया, "जो लोग दूसरों के मन की बात जान सकते हैं, वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं।" तब भिक्षु ने सोचा, "यदि मैं भी किसी साधारण सांसारिक व्यक्ति की तरह कोई अशुद्ध विचार मन में लाऊँ, तो मतिकामाता को अवश्य पता चल जाएगा।" इसलिए वह मतिकामाता से भयभीत हो गया और जेतवन मठ लौटने का निश्चय किया। उसने बुद्ध से कहा कि वह मतिका गाँव में नहीं रह सकता क्योंकि उसे डर है कि मतिकामाता उसके मन में अशुद्ध विचार देख लेगी। तब बुद्ध ने उससे केवल एक बात का ध्यान रखने को कहा; वह यह कि वह अपने मन को वश में रखे। बुद्ध ने भिक्षु को मतिका ग्राम के मठ में लौटने और केवल अपने ध्यान के विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। भिक्षु वापस चला गया। गृहस्थ भक्त ने उसे भी पहले की तरह ही अच्छा भोजन कराया, ताकि वह चिंतामुक्त होकर ध्यान कर सके। थोड़े ही समय में उसने भी अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

इस भिक्षु के संदर्भ में बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा:

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

श्लोक 35 : मन को वश में करना कठिन है; यह तेज़ी से और सहजता से जहाँ चाहे वहाँ चला जाता है। मन को वश में रखना अच्छा है, क्योंकि वश में किया हुआ मन सुख लाता है।

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

प्रवचन के अंत में, उपस्थित लोगों में से कई ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

―――――――――――――――――――――――――――――――――――――

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार साठ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद पर्वत की तलहटी में स्थित मातिका गाँव में शरण ली। वहाँ गाँव के मुखिया की माता मातिकामाता ने उन्हें भिक्षा दी और उनके लिए एक मठ भी बनवाया ताकि वे बरसात के मौसम में गाँव में रह सकें। एक दिन उन्होंने भिक्षुओं से ध्यान विधि सिखाने का अनुरोध किया। भिक्षुओं ने उन्हें शरीर के बत्तीस तत्वों पर ध्यान करना सिखाया, जिससे शरीर के क्षय और विघटन की चेतना प्राप्त होती है। मातिकामाता ने लगन से अभ्यास किया और भिक्षुओं से पहले ही तीनों मार्ग (मार्ग) और फल (फल) प्राप्त कर लिए, साथ ही विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि और सांसारिक अलौकिक शक्तियाँ भी प्राप्त कर लीं।
मार्ग और फल के आनंद से जागृत होकर उन्होंने दिव्य दृष्टि ( दिब्बाचक्खु ) से देखा कि भिक्षुओं ने अभी तक कोई भी मार्ग प्राप्त नहीं किया था। उन्होंने यह भी जाना कि उन भिक्षुओं में अर्हतत्व प्राप्त करने की पर्याप्त क्षमता थी, परन्तु उन्हें उचित भोजन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने उनके लिए उत्तम और उत्तम भोजन तैयार किया। उचित भोजन और उचित प्रयास से भिक्षुओं में सही एकाग्रता विकसित हुई और अंततः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
बरसात के मौसम के अंत में, भिक्षु जेतवन मठ लौट आए, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे सभी स्वस्थ हैं और सुख-सुविधाओं में हैं तथा उन्हें भोजन की चिंता नहीं है। उन्होंने मतिकामाता का भी उल्लेख किया, जो उनके विचारों से अवगत थीं और उन्होंने उनकी इच्छा के अनुसार भोजन तैयार किया और उन्हें प्रदान किया।
एक भिक्षु ने मातिकामाता के बारे में उनकी बातें सुनकर निर्णय लिया कि वह भी उस गाँव में जाएगा। इसलिए, बुद्ध से एक ध्यान विषय लेकर वह गाँव के मठ में पहुँचा। वहाँ उसने पाया कि उसकी हर मनोकामना मातिकामाता, जो एक गृहस्थ भक्त थी, द्वारा पूरी की जा रही थी। जब उसने मातिकामाता को बुलाया, तो वह स्वयं मठ में आई और अपने साथ उत्तम भोजन लाई। भोजन ग्रहण करने के बाद, उसने मातिकामाता से पूछा कि क्या वह दूसरों के मन की बातें जान सकती है, लेकिन मातिकामाता ने उसके प्रश्न को टाल दिया और उत्तर दिया, "जो लोग दूसरों के मन की बातें जान सकते हैं, वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं।" तब भिक्षु ने सोचा, "यदि मैं भी एक साधारण सांसारिक व्यक्ति की तरह कोई अशुद्ध विचार रखूँ, तो मातिकामाता को अवश्य पता चल जाएगा।" इसलिए वह मातिकामाता से भयभीत हो गया और जेतवन मठ लौटने का निर्णय लिया। उसने बुद्ध से कहा कि वह मातिका गाँव में नहीं रह सकता क्योंकि उसे डर था कि मातिकामाता उसके मन में अशुद्ध विचार देख लेगी। तब बुद्ध ने उससे केवल एक बात का ध्यान रखने को कहा; यानी, अपने मन पर नियंत्रण रखना। बुद्ध ने भिक्षु को मतिका गाँव के मठ में लौटने और केवल अपने ध्यान के विषय पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा। भिक्षु वापस चला गया। गृहस्थ भक्त ने उसे अच्छा भोजन कराया, जैसा कि उसने पहले भी दूसरों को कराया था, ताकि वह चिंतामुक्त होकर ध्यान कर सके। थोड़े ही समय में, उसने भी अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 35)
दुनिग्गाहास्सा लहुनो यत्था कमनिपाटिनो सीतास्स
दमथो साधु ; दन्तं चित्तं सुखवहम्
दुञ्निगगहस्स : नियंत्रित करना कठिन; लहुनो [ लहुना ]: तीव्र; यत्था कामणिपातिनो [ कामणिपातिना ]: अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी लक्ष्य पर केंद्रित; चित्तस्स : मन का; दमथो [ दमथा ]: वश में करना; साधु : (अच्छा) है; दन्तं [ दन्त ]: वश में किया हुआ; चित्तं [ चित्त ]: मन; सुखावं [ सुखावह ]: आनंद लाता है।
मन अत्यंत सूक्ष्म होता है और इसे देखना मुश्किल होता है। यह जिस लक्ष्य को चाहे, उस पर मोहित हो जाता है। बुद्धिमान लोग मन की रक्षा करते हैं। संरक्षित मन आनंद प्रदान करता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 35)
दुञ्निग्गहस्स , यत्थकामणिपातिनो : नियंत्रित करना कठिन; जहाँ चाहे और जिस चाहे ध्यान केंद्रित करने वाला। ये दो मन के गुण बताए गए हैं। मन इतना चंचल और फुर्तीला है कि उसे वश में करना बहुत मुश्किल है। इसकी चंचलता के कारण इसे तब तक नियंत्रित नहीं किया जा सकता जब तक कि व्यक्ति असाधारण रूप से अनुशासित न हो। इस श्लोक में मन के जिस दूसरे गुण का उल्लेख किया गया है, वह है किसी भी चीज़ पर ध्यान केंद्रित करने की इसकी क्षमता। यह भी मन का एक ऐसा गुण है जो इसे नियंत्रण में रखना अत्यंत कठिन बनाता है। हमारी भावनाएँ अवैयक्तिक प्रक्रियाएँ हैं। वे हमारे कर्मों का परिणाम नहीं हैं। इसीलिए उन्हें नियंत्रित करना कठिन है। केवल उनसे स्वयं को अलग करके ही उन्हें रोका जा सकता है। उनसे स्वयं को अलग करके हम उन्हें बल देते हैं। उनके आने-जाने का शांत अवलोकन करने से वे थम जाती हैं। उनसे लड़कर उन्हें रोका नहीं जा सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 36

———————————————————————

(धम्मपद 35) <<<< पिछला ॥ श्लोक 36 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 37)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 36 - उक्कन्थितभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सुदुद्दसम सुनीपुनम
यत्थकमणिपतिनाम
चित्तम रक्केथा मेधावी
चित्तं गुटं सुखवहम्।

---

श्लोक 36 : मन को देखना बहुत कठिन है, यह अत्यंत कोमल और सूक्ष्म है; यह जहाँ चाहे वहाँ विचरण करता है और ठहर जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति को अपने मन की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सचेत मन सुख लाता है।

---

एक असंतुष्ट भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (36) का उच्चारण किया, जो एक युवा असंतुष्ट भिक्षु के संदर्भ में था जो एक बैंकर का पुत्र था।
एक समय की बात है, सावत्थी में एक बैंकर का पुत्र रहता था। इस युवक ने अपने घर भिक्षा मांगने आने वाले भिक्षु से पूछा कि जीवन के दुखों से मुक्ति पाने के लिए उसे क्या करना चाहिए। भिक्षु ने उसे अपनी संपत्ति को तीन भागों में बांटने का निर्देश दिया; एक भाग व्यापार के लिए, एक भाग परिवार के भरण-पोषण के लिए और एक भाग दान के लिए। उसने निर्देशानुसार कार्य किया और फिर पूछा कि आगे क्या करना चाहिए। तब उसे आगे निर्देश दिए गए; पहला, तीन रत्नों (1) की शरण लेना और पांच नियमों का पालन करना; दूसरा, दस नियमों का पालन करना; और तीसरा, संसार का त्याग करके बौद्ध धर्म में प्रवेश करना। युवक ने इन सभी निर्देशों का पालन किया और भिक्षु बन गया।
भिक्षु के रूप में, उन्हें एक गुरु से अभिधम्म(2) और दूसरे गुरु से विनय की शिक्षा मिली। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करते हुए, उन्हें लगा कि सीखने के लिए बहुत कुछ है, अनुशासन के नियम बहुत कठोर और अधिक हैं, यहाँ तक कि हाथ फैलाने की भी स्वतंत्रता नहीं है। उन्होंने सोचा कि गृहस्थ जीवन में लौट जाना बेहतर होगा। संदेह और असंतोष के कारण वे दुखी हो गए और अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगे; वे दुबले-पतले और कमजोर भी हो गए। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने उस युवा भिक्षु से कहा, "यदि तुम केवल अपने मन को वश में कर लो, तो तुम्हें और कुछ वश में करने की आवश्यकता नहीं होगी; इसलिए अपने मन की रक्षा करो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 36 : मन को देखना बहुत कठिन है, यह अत्यंत कोमल और सूक्ष्म है; यह जहाँ चाहे वहाँ विचरण करता है और ठहर जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति को अपने मन की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि सचेत मन सुख लाता है।

---

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु और कई अन्य लोगों ने अर्हतत्व प्राप्त किया।
(1) तीन रत्न: तीन रत्न बुद्ध, धम्म और संघ हैं (अर्थात बुद्ध, बुद्ध की शिक्षा और बौद्ध धार्मिक व्यवस्था)।
(2) अभिधम्म: पिटक का तीसरा महान विभाजन जिसमें परम वास्तविकताओं के बारे में बुद्ध की दार्शनिक व्याख्या शामिल है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक असंतुष्ट भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक असंतुष्ट युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो एक बैंकर का पुत्र था।
जब बुद्ध सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब एक धनाढ्य व्यक्ति का पुत्र भिक्षा मांगने आए एक बुजुर्ग के पास पहुंचा और उनसे कहा, “आदरणीय, मैं दुखों से मुक्ति पाना चाहता हूं। कृपया मुझे कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे मुझे दुखों से मुक्ति मिल सके।” बुजुर्ग ने उत्तर दिया, “भाई, आपको शांति मिले। यदि आप दुखों से मुक्ति चाहते हैं, तो भिक्षा दें, पखवाड़े भर भोजन दें, वर्षा ऋतु में आवास दें, बर्तन और वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं दान करें। अपनी संपत्ति को तीन भागों में बांटें: एक भाग से अपना व्यवसाय चलाएं; दूसरे भाग से पुत्र और पत्नी का भरण-पोषण करें; और तीसरे भाग को बुद्ध धर्म के अनुसार भिक्षा में दान करें।”
“बहुत अच्छा, पूज्यवर,” बैंकर के पुत्र ने कहा और निर्धारित क्रम में सब कुछ किया। यह करने के बाद, वह अपने गुरु के पास लौटा और उनसे पूछा, “पूज्यवर, क्या मुझे कुछ और करना चाहिए?” “भाई, तीन शरण और पाँच नियम अपना लो।” बैंकर के पुत्र ने ऐसा ही किया और फिर पूछा कि क्या उसे कुछ और करना चाहिए? “जी हाँ,” गुरु ने उत्तर दिया, “दस नियम अपना लो।” “बहुत अच्छा, पूज्यवर,” बैंकर के पुत्र ने कहा और दस नियम अपना लिए। इस प्रकार एक के बाद एक पुण्य कर्म करने के कारण, उन्हें अनुपब्बा कहा जाने लगा। उन्होंने फिर गुरु से पूछा, “पूज्यवर, क्या मुझे कुछ और करना चाहिए?” गुरु ने उत्तर दिया, “जी हाँ, संन्यासी बन जाओ।” बैंकर के पुत्र ने तुरंत संसार त्याग दिया और संन्यासी बन गए।
अब उनके पास अभिधम्म में पारंगत एक शिक्षक और विनय में पारंगत एक गुरु थे। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद, जब भी वे अपने गुरु के पास जाते, गुरु अभिधम्म में पाए जाने वाले प्रश्न दोहराते, “बुद्ध धर्म में यह करना वैध है, वह करना अवैध है।” और जब भी वे अपने गुरु के पास जाते, गुरु विनय में पाए जाने वाले प्रश्न दोहराते, “बुद्ध धर्म में यह करना वैध है, वह करना अवैध है; यह उचित है, यह अनुचित है।” कुछ समय बाद उन्होंने मन ही मन सोचा, “अरे, यह कितना थकाऊ कार्य है! मैं दुख से मुक्ति पाने के लिए भिक्षु बना था, लेकिन यहाँ तो हाथ फैलाने की भी जगह नहीं है। यद्यपि गृहस्थ जीवन जीने से भी दुख से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। मुझे एक बार फिर गृहस्थ बन जाना चाहिए।”
बुद्ध ने कहा, “भिक्षु, क्या तुम असंतुष्ट हो?” “जी, पूज्यवर, मैं दुखों से मुक्ति पाने के लिए भिक्षु बना। परन्तु यहाँ तो मेरे हाथ फैलाने की भी जगह नहीं है। गृहस्थ बनकर तो मुझे दुखों से मुक्ति मिल सकती है।” बुद्ध ने आगे कहा, “भिक्षु, यदि तुम एक बात की रक्षा कर सको, तो बाकी बातों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होगी।” “वह क्या है, पूज्यवर?” “क्या तुम अपने विचारों की रक्षा कर सकते हो?” “हाँ, पूज्यवर।” “तो फिर केवल अपने विचारों की ही रक्षा करो।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 36)
सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपतिनं
चित्तं मेधावी रक्खेथा चित्तं गुट्टं सुखवाहं
सुदुद्दसम् [ sududdasa ]: जिसे देखना अत्यंत कठिन है; सुनिपुनम् [ sunipuna ]: अत्यंत सूक्ष्म; यत्थ कामणिपातिनम् [ kāmanipātina ]: जिस भी लक्ष्य पर चाहे ध्यान केंद्रित करने वाला; चित्तम् [ citta ]: मन; मेधावी : बुद्धिमान; रक्खेथ : रक्षा करने वाला; गुट्त्तम् चित्तम् [ citta ]: संरक्षित मन; सुखावः [ sukhāvaha ]: आनंद लाने वाला
मन इतनी तेजी से घूमता है कि उसे पूरी तरह वश में करना मुश्किल है। यह बहुत चंचल है। यह अपनी मर्जी से किसी भी चीज पर ध्यान केंद्रित कर लेता है। मन को वश में करना अच्छा है और इससे बहुत लाभ होता है। वश में किया हुआ मन आनंद की प्राप्ति कराता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 36)
सुदुद्दसं सुनीपुनं : मन के दो गुण। मन का एक प्रमुख गुण यह है कि इसे देखना अत्यंत कठिन है। यद्यपि यह अनेक प्रकार की गतिविधियों में सक्षम है, फिर भी इसे देखा नहीं जा सकता। यह अदृश्य रूप से विचरण करता है। यह बिना देखे ही प्रेरित करता है, राजी करता है और प्रोत्साहित करता है। इस श्लोक में मन के दूसरे गुण का उल्लेख किया गया है कि यह अत्यंत सूक्ष्म है। इसी कारण मन को न तो देखा जा सकता है और न ही किसी भी प्रकार से वश में किया जा सकता है। श्लोक इस तथ्य पर बल देता है कि सुख उसी को प्राप्त होता है जो इस अगोचर और सूक्ष्म सत्ता—मन—की रक्षा करने में सक्षम होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 37

———————————————————————

(धम्मपद 36) <<<< पिछला || श्लोक 37 || अगला >>>> (धम्मपद 38, 39)

———————————————————————

अंतर्वस्तु
1धम्मपद श्लोक 37 - समग्रक्खितत्थेरा वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 37 - समग्रक्खितत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Durangamam ekacaram(1)
asariram guhasayam(2)
ये चित्तम सम्यमिसन्ति
mokkhanti marabandhana.

———————————————————————

श्लोक 37 : मन दूर-दूर तक भटकता है और अकेला ही विचरण करता है; यह भौतिक नहीं है; यह हृदय की गुफा (कक्ष) में स्थित है। जो अपने मन को वश में रखते हैं, वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

———————————————————————

1. एकाचारम्: अकेले चलना, अकेले घूमना, इसका अर्थ है एक समय में एक ही विचार मन में आना, यानी एक विचार तभी उत्पन्न होता है जब दूसरा समाप्त हो जाता है। 2. गुहासयम: शाब्दिक अर्थ है गुफा में लेटना या सोना; मन हृदय (हृदयवत्थु) की गुफा (कक्ष) में निरंतर रहता और उठता है, जो चेतना का केंद्र है।

———————————————————————

थेरा संघरक्खिता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा संघरक्षित के भतीजे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (37) कहा।
एक समय की बात है, सावत्थी में संघरक्षित नाम के एक वरिष्ठ भिक्षु रहते थे। जब उनकी बहन ने एक पुत्र को जन्म दिया, तो उन्होंने उसका नाम थेरा के नाम पर रखा और वह संघरक्षित भगिनेय के नाम से प्रसिद्ध हो गया। समय आने पर, उनके भतीजे संघरक्षित को भी संघ में प्रवेश मिल गया। जब युवा भिक्षु एक गाँव के मठ में रह रहे थे, तब उन्हें वस्त्रों के दो जोड़े भेंट किए गए, और उन्होंने उनमें से एक अपने मामा, थेरा को भेंट करने का इरादा किया।
वर्षा ऋतु (तीन महीने) के अंत में, वह अपने चाचा को प्रणाम करने गए और उन्हें अपना वस्त्र भेंट किया। लेकिन चाचा ने यह कहते हुए वस्त्र लेने से इनकार कर दिया कि उनके पास पर्याप्त है। बार-बार अनुरोध करने पर भी, भिक्षु ने नहीं माना। युवा भिक्षु निराश हो गए और सोचने लगे कि चूंकि उनके चाचा उनके साथ आवश्यक वस्तुएँ साझा करने को तैयार नहीं हैं, इसलिए उनके लिए संघ छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करना ही बेहतर होगा।
उस पल से उसका मन भटकने लगा और विचारों की एक श्रृंखला उमड़ पड़ी। उसने सोचा कि मठ छोड़ने के बाद वह अपना चोगा बेचकर एक बकरी खरीदेगा; वह बकरी जल्दी ही बच्चे पैदा कर देगी और जल्द ही उसके पास शादी करने लायक पैसे हो जाएंगे; उसकी पत्नी एक बेटे को जन्म देगी। वह अपनी पत्नी और बच्चे को एक छोटी गाड़ी में बिठाकर मठ में अपने चाचा से मिलने जाएगा। रास्ते में वह कहेगा कि वह बच्चे को गोद में उठा लेगा; पत्नी उससे कहेगी कि वह गाड़ी चलाए और बच्चे की चिंता न करे। वह ज़िद करेगा और उससे बच्चा छीन लेगा; दोनों के बीच बच्चा गाड़ी के रास्ते पर गिर जाएगा और पहिया उसके ऊपर से निकल जाएगा। वह अपनी पत्नी पर इतना क्रोधित होगा कि उसे लाठी से मारेगा।
उस समय वह ताड़ के पंखे से थेरा को हवा कर रहा था और अनजाने में ही पंखे से थेरा के सिर पर प्रहार कर दिया। थेरा, युवा भिक्षु के मन की बात जानते हुए, बोले, "तुम अपनी पत्नी को नहीं पीट सके, तो एक बूढ़े भिक्षु को क्यों पीटा?" युवा संघरक्षित बूढ़े भिक्षु के शब्दों से बहुत आश्चर्यचकित और शर्मिंदा हुआ; वह अत्यंत भयभीत भी हो गया। इसलिए वह भाग गया। मठ के युवा भिक्षुओं और नौसिखियों ने उसका पीछा किया और अंततः उसे बुद्ध के समक्ष ले आए।
जब बुद्ध को पूरी घटना के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा कि मन में दूर स्थित वस्तु के बारे में भी सोचने की क्षमता होती है, और व्यक्ति को वासना, द्वेष और अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 37 : मन दूर-दूर तक भटकता है और अकेला ही विचरण करता है; यह भौतिक नहीं है; यह हृदय की गुफा (कक्ष) में स्थित है। जो अपने मन को वश में रखते हैं, वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

---

प्रवचन के अंत में युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु संघरक्षित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु संघरक्षित के भतीजे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय सावत्थी में संघरक्षित नाम के एक वरिष्ठ भिक्षु रहते थे। जब उनकी बहन ने पुत्र को जन्म दिया, तो उन्होंने उसका नाम भिक्षु के नाम पर रखा और वह संघरक्षित भागिनेय के नाम से प्रसिद्ध हुए। समय आने पर उनके भतीजे संघरक्षित संघ में शामिल हो गए। जब युवा भिक्षु एक गाँव के मठ में रह रहे थे, तब उन्हें दो वस्त्र भेंट किए गए, और उन्होंने उनमें से एक अपने मामा, भिक्षु संघरक्षित को भेंट करने का इरादा किया। वर्षा ऋतु के अंत में वे अपने मामा को प्रणाम करने गए और उन्हें वस्त्र भेंट किए। लेकिन मामा ने यह कहकर वस्त्र लेने से इनकार कर दिया कि उनके पास पर्याप्त वस्त्र हैं। बार-बार अनुरोध करने पर भी भिक्षु ने वस्त्र स्वीकार नहीं किए। युवा भिक्षु निराश हो गए और सोचने लगे कि चूंकि उनके मामा उनसे अपनी ज़रूरत की चीज़ें साझा करने को इतने अनिच्छुक हैं, इसलिए उनके लिए संघ छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करना ही बेहतर होगा।

उस पल से उसका मन भटकने लगा और विचारों की एक श्रृंखला उमड़ने लगी। उसने सोचा कि संघ छोड़ने के बाद वह अपना वस्त्र बेचकर एक बकरी खरीदेगा; बकरी जल्दी ही बच्चे पैदा करेगी और जल्द ही उसके पास इतनी दौलत हो जाएगी कि वह शादी कर सके; उसकी पत्नी एक बेटे को जन्म देगी। वह अपनी पत्नी और बच्चे को एक छोटी गाड़ी में बिठाकर मठ में अपने मामा से मिलने जाएगा। रास्ते में वह कहेगा कि वह बच्चे को गोद में उठा लेगा; पत्नी उससे कहेगी कि वह गाड़ी चलाए और बच्चे की चिंता न करे। वह ज़िद करेगा और उससे बच्चा छीन लेगा; दोनों के बीच बच्चा गाड़ी के रास्ते पर गिर जाएगा और पहिया उसके ऊपर से निकल जाएगा। वह अपनी पत्नी पर इतना क्रोधित होगा कि उसे लाठी से मारेगा।

उस समय वह भिक्षु को ताड़ के पंखे से हवा कर रहा था और अनजाने में ही उसने पंखे से भिक्षु के सिर पर प्रहार कर दिया। भिक्षु ने युवा भिक्षु के मन की बात समझकर कहा, "तुम अपनी पत्नी को नहीं पीट सके, तो एक बूढ़े भिक्षु को क्यों पीटा?" युवा संघरक्षित बूढ़े भिक्षु के शब्दों से बहुत आश्चर्यचकित और शर्मिंदा हुआ; वह अत्यंत भयभीत भी हो गया। इसलिए वह भाग गया। मठ के युवा भिक्षुओं और नौसिखियों ने उसका पीछा किया, उसे पकड़ लिया और अंततः उसे बुद्ध के समक्ष ले आए।

जब बुद्ध ने अपने अनुभव के बारे में बताया, तो उन्होंने कहा कि मन दूर स्थित वस्तु के बारे में भी सोच सकता है, और व्यक्ति को वासना, द्वेष और अज्ञान के बंधन से मुक्ति पाने के लिए दृढ़ प्रयास करना चाहिए। प्रवचन के अंत में बुद्ध द्वारा इस श्लोक का पाठ करने के बाद, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 37)

दूरंगमं एकाचरण अशरीरं गुहाशयं चित्तं

ये सन्नामेस्सान्ति ( ते ) मरबंधना मोक्खन्ति

दूरंगमम् [ दूरंगम ]: विशाल दूरी तय करना; एकचरम् [ एकचर ]: अकेले चलना; असरीरम् [ असरीर ]: देहहीन; गुहासयम् [ गुहासय ]: गुप्त निवास; चित्तम् [ चित्त ]: मन; ये : यदि कोई; सन्ञ्ञमस्सन्ति : (रोके); ( ते ) मारबंधना : उन्हें मृत्यु के बंधनों से; मोक्खंति : मुक्त किया जाता है

मन विशाल दूरी तय करने में सक्षम है—ऊपर या नीचे, उत्तर या दक्षिण, पूर्व या पश्चिम—किसी भी दिशा में। यह अतीत या भविष्य में जा सकता है। यह बिल्कुल अकेला विचरण करता है। इसका कोई प्रत्यक्ष रूप नहीं है। यदि कोई व्यक्ति मन को पूर्णतः नियंत्रित कर ले, तो वह मृत्यु के बंधनों से मुक्त हो जाएगा।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 37)

दूरंगमं एकचरं असरीरं गुहासयं : दूर यात्रा करना, एकांत में रहना, देहहीन होना, गुप्त रहना। ये इस श्लोक में वर्णित मन के चार और गुण हैं। दूर यात्रा करने का अर्थ है कि यह विचार के आरंभिक विषय से बहुत दूर भटक सकता है। एकांत में रहने का अर्थ है कि यह एक समय में केवल एक ही विषय पर विचार कर सकता है। देहहीन होने का अर्थ है कि यह कोई ऐसी इकाई नहीं है जो स्थान घेरती हो, क्योंकि यह केवल एक क्रिया है जिसे भौतिक या मानसिक रूप से देखा जा सकता है। गुप्त रहने का अर्थ है कि यह अमूर्त है।

---

(धम्मपद 37) <<<< पिछला ॥ श्लोक 38, 39 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 40)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 38 और 39 - चित्तहत्थत्थेरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

अनवत्थिताचित्तस्सा
saddhammam avijanato
pariplavapasadassa
panna na paripurati.

Anavassutacittassa
ananvahatacetaso
punnapapapahinassa(1)
natthi jagarato(2) bhayam.

---

श्लोक 38 : यदि मनुष्य का मन अस्थिर है, यदि वह सच्चे धम्म से अनभिज्ञ है, और यदि उसका विश्वास डगमगा रहा है, तो उसका ज्ञान कभी भी परिपूर्ण नहीं होगा।

---

श्लोक 39 : यदि मनुष्य का मन वासना से मुक्त हो, यदि वह द्वेष से मुक्त हो, यदि उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया हो, और यदि वह सतर्क हो, तो ऐसे मनुष्य के लिए कोई खतरा नहीं है।

---

थेरा चित्तहत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चित्तहत्था के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (38) और (39) का उच्चारण किया।

सावत्थी का एक व्यक्ति जंगल में अपने खोए हुए बैल को ढूंढते-ढूंढते बहुत भूखा हो गया और एक गाँव के मठ में गया, जहाँ उसे सुबह के भोजन का बचा हुआ हिस्सा दिया गया। भोजन करते समय उसके मन में यह विचार आया कि वह प्रतिदिन इतनी मेहनत करने के बावजूद इतना अच्छा भोजन नहीं पा सकता और भिक्षु बनना शायद एक अच्छा विचार होगा। इसलिए उसने भिक्षुओं से संघ में प्रवेश करने का अनुरोध किया। मठ में उसने भिक्षु के कर्तव्यों का पालन किया और भोजन की प्रचुरता के कारण उसका वजन शीघ्र ही बढ़ गया। कुछ समय बाद, वह भिक्षा मांगने से ऊब गया और गृहस्थ जीवन में लौट आया। कुछ दिनों बाद, उसे घर का जीवन बहुत कठिन लगा और वह दूसरी बार भिक्षु बनने के लिए मठ में वापस चला गया। दूसरी बार भी उसने संघ छोड़ दिया और गृहस्थ जीवन में लौट आया। फिर वह तीसरी बार मठ में गया और उसे भी छोड़ दिया। यह स्थानांतरण प्रक्रिया छह बार दोहराई गई, और चूंकि वह केवल अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता था, इसलिए उसे थेरा चित्तहत्था के नाम से जाना जाता था।

घर और मठ के बीच आने-जाने के दौरान उनकी पत्नी गर्भवती हो गईं। एक दिन, घर पर अपने आखिरी प्रवास के दौरान, वे संयोगवश उस समय शयनकक्ष में गए जब उनकी पत्नी सो रही थीं। वे लगभग नग्न थीं क्योंकि उनके कपड़े आंशिक रूप से उतर गए थे। वे नाक और मुंह से ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे ले रही थीं और उनके मुंह से लार टपक रही थी। इस प्रकार, खुले मुंह और फूले हुए पेट के साथ, वे एक शव की तरह दिख रही थीं। उन्हें इस प्रकार देखकर, उन्हें तुरंत शरीर की क्षणभंगुर और अप्रिय प्रकृति का अहसास हुआ, और उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं कई बार भिक्षु बन चुका हूँ और केवल इसी स्त्री के कारण मैं भिक्षु नहीं रह पाया।" अतः, पीले वस्त्र को अपने साथ लेकर वे सातवीं बार मठ के लिए घर से निकल पड़े। रास्ते में वे "अस्थिरता" और "अप्रियता" (अनिच्चा और दुःख) शब्दों को दोहराते रहे और इस प्रकार मठ के मार्ग में ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया।

मठ पहुँचने पर उन्होंने भिक्षुओं से संघ में प्रवेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने इनकार कर दिया और कहा, "हम आपको भिक्षु के रूप में प्रवेश नहीं दे सकते। आप इतनी बार अपना सिर मुंडवा चुके हैं कि आपका सिर पत्थर की तरह घिस गया है।" फिर भी, उन्होंने उनसे एक बार फिर संघ में प्रवेश देने की विनती की और वे मान गए। कुछ ही दिनों में, भिक्षु चित्तहत्था ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। अन्य भिक्षुओं ने उन्हें मठ में लंबे समय तक रहते देखकर आश्चर्यचकित होकर उनसे इसका कारण पूछा। इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "मैं तब घर गया था जब मुझमें आसक्ति थी, लेकिन अब वह आसक्ति दूर हो गई है।" भिक्षुओं ने उनकी बात पर विश्वास न करते हुए बुद्ध के पास जाकर उन्हें यह बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "थेरा चित्तहत्था सत्य कह रहे थे; वे पहले घर और मठ के बीच आते-जाते रहते थे क्योंकि उस समय उनका मन स्थिर नहीं था और वे धम्म को नहीं समझते थे। लेकिन इस समय, थेरा चित्तहत्था पहले से ही एक अरहत हैं; उन्होंने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 38 : यदि मनुष्य का मन अस्थिर है, यदि वह सच्चे धम्म से अनभिज्ञ है, और यदि उसका विश्वास डगमगा रहा है, तो उसका ज्ञान कभी भी परिपूर्ण नहीं होगा।

---

श्लोक 39 : यदि मनुष्य का मन वासना से मुक्त हो, यदि वह द्वेष से मुक्त हो, यदि उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया हो, और यदि वह सतर्क हो, तो ऐसे मनुष्य के लिए कोई खतरा नहीं है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु चित्तहत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चित्तहत्था नामक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे: एक प्रतिष्ठित परिवार का एक युवक, जो सावत्थी में रहता था और चरवाहा था, अपने खोए हुए बैल को खोजने के लिए जंगल में गया। दोपहर के समय, उसने बैल को देखा और अपने चरवाहों को खुला छोड़ दिया। भूख और प्यास से व्याकुल होकर उसने मन ही मन सोचा, "मैं इन श्रेष्ठ भिक्षुओं से कुछ न कुछ भोजन अवश्य प्राप्त कर लूँगा।" अतः वह मठ में प्रवेश किया, भिक्षुओं के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़ा हो गया। उस समय, भोजन कर चुके भिक्षुओं का बचा हुआ भोजन कूड़ा फेंकने वाले पात्र में रखा था। जब भिक्षुओं ने उस युवक को भूख से व्याकुल देखा, तो उन्होंने उससे कहा, "यह भोजन है; इसे लो और खा लो।" (जब कोई बुद्ध संसार में निवास करते हैं, तो चावल की दलिया और विभिन्न प्रकार की चटनी हमेशा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहती है)। इसलिए उस युवक ने अपनी आवश्यकतानुसार भोजन ग्रहण किया, पानी पिया, हाथ धोए और फिर भिक्षुओं को प्रणाम करके पूछा, "आदरणीय, क्या आप आज किसी के निमंत्रण पर गए थे?" "नहीं, मेरे शिष्य; भिक्षु हमेशा इसी प्रकार भोजन ग्रहण करते हैं।"

युवक ने मन ही मन सोचा, "हम चाहे कितने ही व्यस्त और सक्रिय क्यों न हों, दिन-रात लगातार काम करते रहें, फिर भी हमें इतना स्वादिष्ट दलिया कभी नहीं मिलता। परन्तु ये भिक्षु, अपने ही कथन के अनुसार, इसे निरंतर खाते हैं। मैं अब और गृहस्थ क्यों रहूँ? मैं भिक्षु बनूँगा।" तदनुसार, वह भिक्षुओं के पास गया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। भिक्षुओं ने उससे कहा, "बहुत अच्छा, गृहस्थ शिष्य," और उसे संघ में शामिल कर लिया। पूर्ण प्रतिज्ञा लेने के बाद, उसने सभी प्रमुख और लघु कर्तव्यों का पालन किया; और कुछ ही दिनों में, बुद्ध के उपदेशों से प्राप्त होने वाले प्रचुर दानों में भाग लेकर, वह धनवान और सुखी हो गया।

तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "भिक्षा मांगने से प्राप्त भोजन पर क्यों गुजारा करूं? मैं फिर से गृहस्थ जीवन व्यतीत करूंगा।" अतः वे वापस अपने घर लौट आए। कुछ ही दिनों तक घर में काम करने के बाद उनका शरीर दुबला-पतला और दुर्बल हो गया। तब उन्होंने मन ही मन कहा, "यह कष्ट और क्यों सहन करूं? मैं भिक्षु बन जाऊंगा।" अतः वे वापस लौट आए और पुनः दीक्षा ली। परन्तु कुछ दिन भिक्षु जीवन व्यतीत करने के बाद, फिर से असंतुष्ट होकर वे गृहस्थ जीवन में लौट आए।

"मैं अब और गृहस्थ जीवन क्यों जीऊँ? मैं भिक्षु बनूँगा।" ऐसा कहकर वे भिक्षुओं के पास गए, प्रणाम किया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। क्योंकि वे उनके साथ रहे थे, भिक्षुओं ने उन्हें एक बार फिर संघ में शामिल कर लिया। इस प्रकार वे लगातार छह बार

संघ में प्रवेश करते और फिर उसे छोड़ देते रहे। भिक्षुओं ने आपस में कहा, "यह व्यक्ति अपने विचारों के वश में रहता है।" इसलिए उन्होंने उन्हें विचार-नियंत्रित, वरिष्ठ चित्तहत्था नाम दिया।

जब वह इस तरह बार-बार आ-जा रहा था, उसकी पत्नी गर्भवती हो गई। सातवीं बार जब वह जंगल से अपने कृषि उपकरण लेकर लौटा, तो घर जाकर उसने अपने उपकरण एक तरफ रख दिए और अपने कमरे में प्रवेश करते हुए मन ही मन कहा, "मैं फिर से अपना पीला वस्त्र पहन लूँगा।" संयोगवश, उस समय उसकी पत्नी बिस्तर पर सो रही थी। उसके अंतर्वस्त्र उतर चुके थे, उसके मुँह से लार बह रही थी, वह खर्राटे ले रही थी, उसका मुँह खुला हुआ था; वह उसे एक सूजी हुई लाश जैसी लग रही थी। यह सोचकर कि "इस संसार में सब कुछ क्षणभंगुर है, दुख से भरा है," उसने मन ही मन कहा, "यह सोचकर दुख होता है कि उसकी वजह से, इतने समय से भिक्षु रहते हुए भी, मैं अपने संन्यासी जीवन में स्थिर नहीं रह पाया!" तुरंत ही, उसने अपना पीला वस्त्र उठाया और घर से बाहर भागा, भागते हुए उसने वस्त्र को अपने पेट के चारों ओर लपेट लिया।

अब उसकी सास उसी घर में उसके साथ रहती थी। जब उसने उसे इस तरह जाते देखा, तो मन ही मन बोली, "यह भगोड़ा, जो अभी-अभी जंगल से लौटा है, घर से भाग रहा है, भागते हुए अपने पीले वस्त्र को लपेटे हुए, और मठ की ओर जा रहा है। इसका क्या मतलब है?" घर में प्रवेश करके अपनी बेटी को सोते हुए देखकर वह तुरंत समझ गई, "क्योंकि उसने उसे सोते हुए देखा, इसलिए उसे घृणा हुई और वह चला गया।" तो उसने अपनी बेटी को जगाकर कहा, "उठो, तुम्हारे पति ने तुम्हें सोते हुए देखा, घृणा हुई और चला गया। अब से वह तुम्हारा पति नहीं रहेगा।" "जाओ माँ। क्या फर्क पड़ता है कि वह गया है या नहीं? वह कुछ ही दिनों में वापस आ जाएगा।"

चित्तहत्था ने "इस संसार में जो कुछ भी है, वह क्षणभंगुर है, दुखों से घिरा है" इन शब्दों को दोहराते हुए अपनी यात्रा जारी रखी और इस प्रकार उन्होंने पश्चात्ताप का फल ( सोतापत्ति फल ) प्राप्त किया। अपनी यात्रा जारी रखते हुए वे भिक्षुओं के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और संघ में शामिल होने का निवेदन किया। भिक्षुओं ने कहा, "नहीं, हम आपको संघ में शामिल नहीं कर सकते। आपको भिक्षु क्यों बनना चाहिए? आपका सिर चक्की के समान है।" "हे पूज्यवर, मुझे केवल एक बार संघ में शामिल कर लीजिए।" क्योंकि उन्होंने उनकी सहायता की थी, इसलिए उन्होंने उन्हें संघ में शामिल कर लिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने अलौकिक शक्तियों के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

तब उन्होंने उनसे कहा, "भाई चित्तहत्था, निःसंदेह आप ही तय करेंगे कि आपके जाने का समय कब आएगा; आप इस बार यहाँ बहुत समय तक रहे हैं।" "आदरणीय, जब मैं संसार से आसक्त था, तब मैं चला गया था; परन्तु अब मैंने संसार से आसक्ति त्याग दी है; अब मेरी जाने की कोई इच्छा नहीं है।" भिक्षु बुद्ध के पास गए और बोले, "आदरणीय, हमने इस भिक्षु से ऐसा कहा, और उसने उत्तर में हमें ऐसा कहा। वह असत्य बोलता है, असत्य बातें कहता है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हाँ, भिक्षुओं, जब मेरे पुत्र का मन अस्थिर था, जब वह अच्छे धर्म को नहीं जानता था, तब वह आया-गया। परन्तु अब उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 38)

अनावतहिताचित्तस्सद्धम्मं अविजानतो

परिप्लव पसादस्स पन्नना न परिपूरति

अनवथिताचित्तस्स : अस्थिर मन का; सद्धम्मम् [ सद्धम्म ]: सच्चा सिद्धांत; अविजानतो [ अविजानता ]: से अनभिज्ञ; परिप्लावा पसादस्सा : उत्साह बढ़ाने का; पन्ना : बुद्धि; न परिपूरति : नहीं बढ़ता

यदि किसी व्यक्ति का मन लगातार विचलित होता रहता है, और यदि वह व्यक्ति सिद्धांत को नहीं जानता है, यदि किसी व्यक्ति का उत्साह लगातार घटता-बढ़ता रहता है या कम होता रहता है, तो ऐसे व्यक्ति की बुद्धि में वृद्धि नहीं होती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 39)

अनवसुता चित्तस्स अनन्वाहहतसेटसो

पुन्नपापापहिनास्सा जागरतो भयं नत्थि

अनवसुता चित्तस्स : (उसके लिए) जिसका मन जुनून से शांत है; अननवहतसेटसो [ अननवहतसेटस ]: घृणा से अप्रभावित मन; पुन्नपापापहिनास्सा : अच्छे और बुरे दोनों से परे चला गया; जागरतो [ जागरता ]: पूरी तरह जागना; भयं नत्थि : भय का अस्तित्व नहीं है

जिस व्यक्ति का मन वासनाओं से मंद नहीं होता, जो द्वेष से अप्रभावित रहता है और जो अच्छाई और बुराई दोनों से ऊपर उठ चुका होता है, उसे कोई भय नहीं होता क्योंकि वह पूर्णतः जागरूक होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 38-39)

अनवट्ठितचित्तस्स : अस्थिर या असंतुलित मन वाले व्यक्ति के लिए। आम लोगों का मन अस्थिर होता है। उनका मन स्थिर नहीं होता और परिणामस्वरूप उनमें एकाग्रता की कमी होती है। ऐसे मन वाले व्यक्ति को मुक्ति के मार्ग पर प्रगति करना कठिन लगता है।

saddhammaṃ avijānato : वह व्यक्ति जो बुद्ध की सुस्पष्ट शिक्षाओं से अवगत नहीं है।

परिप्लव पसादस्स : अस्थिर भक्ति के साथ। जिस व्यक्ति की भक्ति और विश्वास अस्थिर होते हैं, वह स्थिर प्रगति नहीं कर पाएगा।

अनवस्सुत चित्तस्स : यह एक सकारात्मक गुण है। यहाँ उस व्यक्ति की बात हो रही है जिसका मन कामवासना से दूषित नहीं होता। इसका तात्पर्य इंद्रियों की प्रतिक्रियाओं (अर्थात दृष्टि, ध्वनि, गंध आदि के प्रति प्रतिक्रिया) के माध्यम से दूषित पदार्थों के प्रवाह से है।

ananvāhatacetaso : वह व्यक्ति जिसका मन (लोभ, घृणा आदि) से अप्रभावित रहता है। मन पूर्णतः अक्षुण्ण होने के कारण वह इसका उपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए कर सकता है।

नत्थी जागरतो भयम् : जो पूरी तरह से जागृत है, उसे कोई भय नहीं होता। वह हमेशा सतर्क रहता है और मन को प्रभावित करने वाली अशुद्धियों पर ध्यान देता है। इसी सतर्कता के कारण जागृत व्यक्ति बिल्कुल भी भयभीत नहीं होता। यह गलत नहीं समझना चाहिए कि अरहंत सोते नहीं हैं। चाहे वे सो रहे हों या जाग रहे हों, उन्हें निश्चिंत या सतर्क माना जाता है, क्योंकि पाँच प्रेरक गुण — सद्धा , ऊर्जा , सती , एकाग्रता और ज्ञान — उनमें सदा विद्यमान रहते हैं ।

पुण्यपापपहीनस : वह व्यक्ति जो अच्छे और बुरे कर्मों की धारणाओं से परे होता है और उन्हें कर्मों के प्रति कोई विशेष आसक्ति नहीं होती। यह नैतिक समता की उच्च अवस्था को दर्शाता है, क्योंकि यह अहंकार रहित अनासक्ति का संकेत है। देने के कार्य से, प्राप्त करने वाले से या उपहार से कोई आसक्ति नहीं होती। हालांकि, अरहतों ने जीवन को पुष्ट करने वाले और पुनर्जन्म उत्पन्न करने वाले सभी कर्मों को पार कर लिया है, इसलिए उन्हें 'गुण और दोष से परे' कहा जाता है।

एक अरहंत यानी पूर्ण संत के कर्म न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे , क्योंकि वे अच्छे और बुरे दोनों से परे होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे निष्क्रिय होते हैं। वे सक्रिय होते हैं, परन्तु उनकी सक्रियता निस्वार्थ होती है और उनका उद्देश्य दूसरों को उस मार्ग पर चलने में सहायता करना होता है जिस पर वे स्वयं चले हैं। उनके कर्म, जिन्हें सामान्यतः अच्छा माना जाता है, कर्मिक फल उत्पन्न करने में स्वयं के लिए सृजनात्मक शक्ति से रहित होते हैं। यद्यपि वे अपने पूर्व कर्मों के फल से मुक्त नहीं होते। वे कोई नए कर्मिक कर्म संचित नहीं करते। अरहंत के रूप में उनके द्वारा किए गए सभी कर्म क्रियाशील ( क्रिया ) कहलाते हैं और कर्म नहीं माने जाते। वे नैतिक रूप से अप्रभावी होते हैं। चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझते हुए, उन्होंने अंततः कारण और प्रभाव की ब्रह्मांडीय श्रृंखला को तोड़ दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 40

---

(धम्मपद 38, 39) <<<< पिछला ॥ श्लोक 40 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 41)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 40 - पंचासताभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

कुम्भुपमं कायमिममं विदित्वा
nagarupam cittamidam thapetva
योधेथा मरम पन्ना वुधेना
जितांका रक्खे अनिवेसानो सिया(1).

---

श्लोक 40 : यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान (नाजुक) है, मन को किलेबंद नगर के समान सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान के हथियार से मार का युद्ध करना चाहिए। (मार को परास्त करने के बाद) मन की रक्षा करते रहना चाहिए और जो कुछ प्राप्त हुआ है (अर्थात ध्यान से प्राप्त हुई तल्लीनता और शांति) उससे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

---

1. अनिवेसानो सिया: आसक्त न होना; इस संदर्भ में ध्यान के माध्यम से प्राप्त होने वाली ज्ञान परमानंद और शांति से आसक्त न होना, बल्कि अरहतत्व की प्राप्ति तक अंतर्दृष्टि ध्यान अभ्यासों के साथ आगे बढ़ना।

---

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (40) कहा।

श्रावस्ती से पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, श्रावस्ती से सौ योजन (2) की दूरी तय की और एक विशाल वन में पहुँचे, जो ध्यान साधना के लिए उपयुक्त स्थान था। उस वन में रहने वाले वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने सोचा कि यदि वे भिक्षु वन में ठहरेंगे, तो उनके लिए अपने परिवार के साथ वृक्षों पर रहना उचित नहीं होगा। इसलिए वे वृक्षों से नीचे उतरे, यह सोचकर कि भिक्षु वहाँ केवल एक रात के लिए रुकेंगे। लेकिन भिक्षु पखवाड़े भर तक वहीं रहे; तब उन्हें यह विचार आया कि भिक्षु वर्षा ऋतु (3 महीने का बरसाती मौसम) के अंत तक वहीं रह सकते हैं। ऐसी स्थिति में, उन्हें और उनके परिवार को लंबे समय तक जमीन पर रहना पड़ेगा। इसलिए, उन्होंने भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य बनाकर भिक्षुओं को डराने का निश्चय किया। वे बिना सिर के शरीरों के साथ, और बिना शरीर के सिरों के साथ प्रकट हुए। भिक्षु बहुत व्याकुल हुए और उस स्थान को छोड़कर बुद्ध के पास लौट आए, जहाँ उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। उनका वृत्तांत सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वे पहले बिना किसी हथियार के गए थे और उन्हें उचित हथियार लेकर वापस जाना चाहिए। ऐसा कहकर, बुद्ध ने उन्हें संपूर्ण मेट्टा सूत्र ( एसएन 46.54 मेट्टा सूत्र  : प्रेम-करुणा पर प्रवचन) का उपदेश दिया, जिसकी शुरुआत निम्नलिखित श्लोक से होती है:

Karaniyamattha kusalena
यंता संतम पदम अभिसमेच्च
Sakko uju ca suhuju ca
Suvaco c'assa mudu anatimani.

उपरोक्त श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है: "जो व्यक्ति अच्छे और लाभकारी गुणों (सांसारिक एवं अलौकिक दोनों) को प्राप्त करने में कुशल है, और पूर्ण शांति (निर्वाण) प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए: उसे कुशल, ईमानदार, पूर्णतः ईमानदार, आज्ञाकारी, सौम्य और अहंकार से मुक्त होना चाहिए।"

भिक्षुओं को निर्देश दिया गया था कि वे वन के बाहरी इलाके में पहुँचते ही सूत्र का पाठ करें और मठ में प्रवेश करते समय भी उसी सूतरन का पाठ करते रहें। भिक्षु वन में लौट आए और उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया। वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने भिक्षुओं से प्रेम और दया प्राप्त कर उनका सहर्ष स्वागत किया और उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाई। अब कोई भूतिया आवाजें या भयावह दृश्य दिखाई नहीं दे रहे थे। इस प्रकार शांति में आकर भिक्षुओं ने शरीर का ध्यान किया और उसकी नश्वर और क्षणभंगुर प्रकृति को जान लिया।

जेतवन मठ से, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से भिक्षुओं की प्रगति के बारे में जाना और अपनी आभा भेजकर उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जैसा कि आपने अनुभव किया है, शरीर वास्तव में क्षणभंगुर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 40 : यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान (नाजुक) है, मन को किलेबंद नगर के समान सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान के हथियार से मार का युद्ध करना चाहिए। (मार को परास्त करने के बाद) मन की रक्षा करते रहना चाहिए और जो कुछ प्राप्त हुआ है (अर्थात ध्यान से प्राप्त हुई तल्लीनता और शांति) उससे आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) योज़ाना: लगभग बारह मील की लंबाई का माप।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी से पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद, सावत्थी से सौ मील की दूरी तय की और एक विशाल वन में पहुँचे, जो ध्यान साधना के लिए उपयुक्त स्थान था। उस वन में रहने वाले वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने सोचा कि यदि वे भिक्षु वन में ठहरेंगे, तो उनके लिए अपने परिवार के साथ रहना उचित नहीं होगा। इसलिए, उन्होंने यह सोचकर वृक्षों से नीचे उतर आए कि भिक्षु

केवल एक रात के लिए ही वहाँ रुकेंगे। लेकिन भिक्षु पखवाड़े भर तक वहीं रहे; तब उन्हें यह विचार आया कि भिक्षु वर्षाकाल तक वहीं ठहर सकते हैं। ऐसी स्थिति में, उन्हें और उनके परिवार को लंबे समय तक धरती पर रहना पड़ेगा। इसलिए, उन्होंने भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य दिखाकर भिक्षुओं को डराने का निश्चय किया। वे बिना सिर के शरीर और बिना शरीर के सिर के साथ प्रकट हुए। भिक्षु बहुत भयभीत हुए और उस स्थान को छोड़कर बुद्ध के पास लौट आए, जहाँ उन्होंने उन्हें सब कुछ बताया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वे पहले बिना किसी सुरक्षा के गए थे और उन्हें उचित सुरक्षा के साथ वापस जाना चाहिए।
ऐसा कहकर, बुद्ध ने उन्हें प्रेम-दया (मेट्टा सुत्त) का विस्तृत उपदेश दिया, जिसकी शुरुआत निम्नलिखित श्लोक से होती है:
करणीयमत्थ कुसलेना - यं तं संतं पदं अभिसमेच्च
सक्को उजु च सूजू च—सुवाको चसा मुदु अनातिमानी ।
“जो व्यक्ति अच्छे और लाभकारी गुणों (सांसारिक और अलौकिक दोनों) को प्राप्त करने में कुशल है, और पूर्ण शांति (निर्वाण) प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए: उसे कुशल, ईमानदार, पूर्णतः ईमानदार, आज्ञाकारी, सौम्य और अहंकार से मुक्त होना चाहिए।”
भिक्षुओं को निर्देश दिया गया था कि वे वन के बाहरी इलाके में पहुँचते ही सूत्र का पाठ करें और मठ में प्रवेश करते समय भी उसका पाठ करते रहें। भिक्षु वन में लौट आए और उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया। वृक्षों के संरक्षक आत्माओं ने भिक्षुओं से प्रेम और दया प्राप्त कर उनका स्वागत किया और उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचाई। अब कोई भूतिया आवाजें और डरावने दृश्य नहीं थे। इस प्रकार शांति में आकर भिक्षुओं ने शरीर का ध्यान किया और उसकी क्षणभंगुर और अनित्य प्रकृति को जान लिया। जेतवन मठ से, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से भिक्षुओं की प्रगति के बारे में जाना और अपना प्रकाश भेजकर उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। उन्होंने उनसे कहा, “भिक्षुओं, जैसा कि आपने अनुभव किया है, शरीर वास्तव में क्षणभंगुर और मिट्टी के घड़े के समान नाजुक है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 40)
इमं कायं कुम्भुपमं विदित्वा , इदं चित्तं
नागारूपं थपेत्वा पन्न्यायुधेन मरं
योधेथा जितां च रक्खे अनिवेशनो सिया
imaṃ kāyaṃ [ kāya ]: यह शरीर; kumbhūpamaṃ viditvā : मिट्टी के बर्तन के समान देखना; idaṃ cittaṃ [ citta ]: यह मन; nagarūpamaṃ [ nagarūpama ]: एक संरक्षित नगर के समान; ṭhapetvā : विचार करना; paññāyudhena : ज्ञान के हथियार से; Māraṃ [ Māra ]: बुराई की शक्तियाँ; yodhetha : आक्रमण; jitaṃ [ jita ]: जिसे जीत लिया गया है; rakkhe : रक्षा भी करना; anivesano [ anivesana ]: निवास स्थान का कोई साधक नहीं; siyā : होना
शरीर को असुरक्षित, नाज़ुक, दुर्बल और आसानी से नष्ट होने वाला मानना यथार्थवादी है। वास्तव में, इसे मिट्टी का पात्र समझना चाहिए। मन को एक नगर के समान समझना चाहिए। नगर की रक्षा के लिए निरंतर सचेत रहना आवश्यक है। बुराई की शक्तियों से बुद्धि के हथियार से लड़ना चाहिए। युद्ध के बाद, जब आपको विजय प्राप्त हो जाए, तो नश्वर अस्तित्व से आसक्त होकर जीवन व्यतीत करें।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 40)
कुंभभूपम : मिट्टी के बर्तन के समान। भिक्षुओं को मानव शरीर को मिट्टी के बर्तन के समान समझने के लिए कहा जाता है—जो नाजुक और अत्यंत संवेदनशील होता है।
चित्तं नगररूपं : मन को एक सुरक्षित किले के समान समझो। किले की विशेषता यह है कि इसके भीतर सभी बहुमूल्य खजाने सुरक्षित और संरक्षित रहते हैं। यदि यह असुरक्षित हो तो कोई भी बाहरी व्यक्ति प्रवेश कर लूटपाट कर सकता है। इस पर भी दोष आ सकते हैं।
yodhetha Māraṃ paññāyudhena : बुद्धि के हथियार से बुराई का विरोध करो। जब बुराई की शक्तियाँ मन पर आक्रमण करती हैं—जिसकी रक्षा करनी है—तो प्रतिवाद का एकमात्र हथियार बुद्धि है, जो वास्तविक अर्थों में चीजों की प्रकृति की पूर्ण जागरूकता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 41

———————————————————————

(धम्मपद 40) <<<< पिछला ॥ श्लोक 41 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 42)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 41 - पुतिगत्तिस्सत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Aciram vata' yam kayo
pathavim adhisessati
chuddho apetavinnano
निरत्तमवा कलिंगरम.

---

श्लोक 41 : हाय, जल्द ही यह शरीर, चेतना से वंचित होकर, पृथ्वी पर एक बेकार लकड़ी के लट्ठे की तरह पड़ा रहेगा।

---

दुर्गंधयुक्त शरीर वाले थेरा (बुजुर्ग) तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (41) कहा।
बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद, थेरा तिस्सा लगन से ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, तभी वे एक बीमारी से ग्रसित हो गए। उनके पूरे शरीर पर छोटे-छोटे फोड़े निकल आए और वे बड़े घावों में तब्दील हो गए। जब ये घाव फूटे, तो उनके ऊपरी और निचले वस्त्र चिपचिपे और मवाद व रक्त से सने हुए हो गए, और उनका पूरा शरीर दुर्गंधित हो गया। इसी कारण वे पुतिगत्ततिस्सा, यानी दुर्गंधित शरीर वाले थेरा तिस्सा के नाम से प्रसिद्ध हुए।
जब बुद्ध ने अपनी बुद्धि के प्रकाश से ब्रह्मांड का अवलोकन किया, तो उन्हें थेरा के दर्शन हुए। उन्होंने थेरा की दयनीय अवस्था देखी, जिन्हें उनके शिष्यों ने उनके दुर्गंधयुक्त शरीर के कारण त्याग दिया था। उसी समय, उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि तिस्सा शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त करेंगे। अतः बुद्ध थेरा के निवास स्थान के निकट स्थित अग्निगृह में गए। वहाँ उन्होंने कुछ जल उबाला और फिर थेरा के पास जाकर पलंग का किनारा पकड़ लिया। तभी शिष्य थेरा के चारों ओर एकत्रित हुए और बुद्ध के निर्देशानुसार उन्हें अग्निगृह में ले गए, जहाँ उनका स्नान कराया गया। स्नान के दौरान उनके ऊपरी और निचले वस्त्र धोकर सुखाए गए। स्नान के बाद थेरा का शरीर और मन तरोताजा हो गया और शीघ्र ही उनमें एकाग्रता की एकाग्रता विकसित हो गई। पलंग के सिरहाने खड़े होकर बुद्ध ने उनसे कहा कि यह शरीर जब निर्जीव हो जाएगा तो लकड़ी के लट्ठे के समान बेकार हो जाएगा और पृथ्वी पर ही पड़ा रहेगा।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 41 : हाय, जल्द ही यह शरीर, चेतना से वंचित होकर, पृथ्वी पर एक बेकार लकड़ी के लट्ठे की तरह पड़ा रहेगा।

---

प्रवचन के अंत में थेरा टिस्सा ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अरहतत्व प्राप्त किया और शीघ्र ही उनका निधन हो गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दुर्गंधयुक्त शरीर वाले भिक्षु तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद, भिक्षु तिस्सा लगन से ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, तभी वे एक बीमारी से ग्रसित हो गए। उनके शरीर पर छोटे-छोटे फोड़े निकल आए और वे बड़े घावों में तब्दील हो गए। जब ये घाव फूटे, तो उनके ऊपरी और निचले वस्त्र चिपचिपे और शरीर के तरल पदार्थों से सने हुए हो गए, और उनके शरीर से दुर्गंध आने लगी। इसी कारण वे पुतिगत्ततिस्सा, यानी दुर्गंधयुक्त शरीर वाले भिक्षु तिस्सा के नाम से जाने गए।
बुद्ध दिन में दो बार संसार का अवलोकन करना कभी नहीं भूलते थे। भोर में वे संसार के किनारे से सुगंधित कक्ष की ओर देखते हुए संसार का अवलोकन करते थे। इसी समय पूज्य पूतिगत्त तिस्सा बुद्ध की दृष्टि में प्रकट हुए।

बुद्ध यह जानते हुए कि भिक्षु तिस्सा अर्हत पदवी प्राप्त करने के योग्य हैं, मन ही मन सोचने लगे, "इस भिक्षु को इसके साथियों ने त्याग दिया है; इस समय मेरे सिवा इसका कोई सहारा नहीं है।" तदनुसार, बुद्ध सुगंधित कक्ष से निकलकर, मठ का चक्कर लगाने का बहाना करते हुए, उस कक्ष में गए जहाँ अग्नि रखी थी। उन्होंने चूल्हे को धोया, उसे अंगीठी पर रखा, अग्नि-कक्ष में पानी के उबलने की प्रतीक्षा की, और जब उन्हें पता चला कि पानी गर्म हो गया है, तो वे उस पलंग के किनारे को पकड़ने गए जहाँ वह भिक्षु लेटा हुआ था।
उस समय भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, कृपया यहाँ से चले जाइए; हम इन्हें आपके लिए बाहर ले जाएँगे।" ऐसा कहकर उन्होंने पलंग उठाया और तिस्सा को अग्नि-कक्ष में ले गए। बुद्ध ने भिक्षुओं को तिस्सा का ऊपरी वस्त्र लेने, उसे गर्म पानी से अच्छी तरह धोने और धूप में सुखाने के लिए रखने का आदेश दिया। फिर वे गए और तिस्सा के पास खड़े होकर उनके शरीर को गर्म पानी से गीला किया और उन्हें स्नान कराया।
स्नान के बाद उनका ऊपरी वस्त्र सूख गया था। बुद्ध ने उन्हें उनका ऊपरी वस्त्र पहनाया और उनके अंतर्वस्त्र को गर्म पानी से अच्छी तरह धोकर धूप में सुखाने के लिए रख दिया। जैसे ही उनके शरीर से पानी सूख गया, उनका अंतर्वस्त्र भी सूख गया। तब तिस्सा ने अपना अंतर्वस्त्र पहना और तरोताज़ा शरीर और शांत मन से पलते पर लेट गए। बुद्ध तिस्सा के तकिये के पास खड़े हुए और उनसे कहा, "हे भिक्षु, चेतना तुमसे विमुख हो जाएगी, तुम्हारा शरीर निष्फल हो जाएगा और एक लकड़ी के लट्ठे की तरह ज़मीन पर पड़ा रहेगा।" प्रवचन के अंत में भिक्षु तिस्सा ने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ अर्हतत्व प्राप्त किया और शीघ्र ही उनका देहांत हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 41)
अयं कायो वात अचिरं अपेतविन्नाणो चुधो
निरत्थं कलिंगरं इव पथविं अधिस्सति
अयं कायो : यह शरीर; वात : निश्चित रूप से; असिरं [ असिरा ]: जल्द ही; एपेटाविनानो [ एपेटाविनाना ]: चेतना से रहित हो जाएगा; चुड्डो [ चुड्डा ]: त्याग दिया गया; इवा : जैसे; निरत्थम् [ nirattha ]: बेकार; कलिंगराँ [ कलिंगारा ]: एक सड़ा हुआ लट्ठा; पथविः [ पथवि ]: ज़मीन पर; अधिससति : झूठ
जल्द ही, यह शरीर, चेतनाहीन होकर, एक सड़े हुए बेकार लट्ठे की तरह धरती पर पड़ा रहेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 41)
अचिरं वत : बहुत जल्द, निःसंदेह। यह श्लोक मानव शरीर की स्थिति का वर्णन करता है। यह निश्चित रूप से शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।
चूद्धो : फेंक दिया जाएगा। चाहे मित्र और रिश्तेदार किसी व्यक्ति से कितना भी प्यार करें, जब वह जीवित होता है, तो उसके मरने पर शरीर को फेंक दिया जाता है।
निरत्थं कलिंगरं : त्यागा हुआ शरीर सड़ी हुई लकड़ी के लट्ठे के समान पड़ा रहेगा। यह किसी के काम का नहीं रहेगा। चेतना के चले जाने पर, जीवन के बिना, हमारा शरीर निष्फल हो जाता है। यह लकड़ी के लट्ठे से भी बदतर है, क्योंकि शरीर का कोई उपयोग नहीं किया जा सकता, जबकि लकड़ी के लट्ठे का किसी न किसी रूप में उपयोग किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 42

———————————————————————

(धम्मपद 41) <<<< पिछला ॥ श्लोक 42 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 43)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 42 - नंदगोपालक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Diso(1) disam yam tam kariya
veri va pana verinam
मिच्छपनिहितम चित्तम
papiyo nam tato kare.

---

श्लोक 42 : एक चोर दूसरे चोर को हानि पहुँचा सकता है; एक शत्रु दूसरे शत्रु को हानि पहुँचा सकता है; परन्तु गलत दिशा में निर्देशित मन स्वयं को कहीं अधिक हानि पहुँचा सकता है।(2)

---

1. दिसो: शाब्दिक अर्थ; शत्रु; इस संदर्भ में चोर। (टीका) 2. टीका के अनुसार, दस गुना बुराई के मार्ग पर गलत ढंग से लगा हुआ मन न केवल इस जीवन में, बल्कि अपाया में एक लाख भविष्य के जन्मों में भी विनाश और तबाही का कारण बनेगा।

---

चरवाहे नंदा की कहानी
कोसल राज्य के एक गाँव की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने चरवाहे नंदा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (42) कहा।
नंदा एक चरवाहा था जो अनाथपिंडिका की गायों की देखभाल करता था। हालांकि वह सिर्फ एक चरवाहा था, फिर भी उसकी अपनी कुछ आमदनी थी। कभी-कभी वह अनाथपिंडिका के घर जाता था और वहां उसकी मुलाकात बुद्ध से होती थी और वह उनके प्रवचन सुनता था। नंदा ने बुद्ध से अपने घर आने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध ने यह कहकर नंदा के घर तुरंत जाने से इनकार कर दिया कि अभी समय नहीं आया है।
कुछ समय बाद, अपने अनुयायियों के साथ यात्रा करते हुए, बुद्ध नंदा से मिलने के लिए अपने मार्ग से हट गए, क्योंकि वे जानते थे कि नंदा के लिए उनकी शिक्षाओं को उचित रूप से ग्रहण करने का समय आ गया है। नंदा ने बुद्ध और उनके अनुयायियों का आदरपूर्वक स्वागत किया; उन्होंने सात दिनों तक उन्हें दूध और दूध से बने उत्पाद तथा अन्य उत्तम भोजन परोसा। अंतिम दिन, बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को सुनने के बाद, नंदा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। उस दिन जब बुद्ध विदा हो रहे थे, नंदा ने बुद्ध का कुंड लेकर कुछ दूर तक उनका अनुसरण किया, प्रणाम किया और घर लौटने के लिए वापस मुड़ गए।
उसी क्षण, नंदा के एक पुराने शत्रु शिकारी ने उन्हें मार गिराया। बुद्ध के पीछे चल रहे भिक्षुओं ने नंदा को मृत पड़ा देखा। उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, आपके यहाँ आने के कारण, नंदा, जिन्होंने आपको बड़ी भेंट चढ़ाई थी और आपके साथ घर लौट रहे थे, घर लौटते समय मारे गए।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, चाहे मैं यहाँ आता या न आता, मृत्यु से उनका बचना असंभव था, क्योंकि भटका हुआ मन शत्रु या चोर से भी अधिक हानि पहुँचा सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 42 : एक चोर दूसरे चोर को नुकसान पहुंचा सकता है; एक शत्रु दूसरे शत्रु को नुकसान पहुंचा सकता है; लेकिन गलत दिशा में निर्देशित मन स्वयं को कहीं अधिक नुकसान पहुंचा सकता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
चरवाहे नंदा की कहानी
कोसल राज्य के एक गाँव की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने चरवाहे नंदा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
नंदा एक चरवाहा था जो अनाथपिंडिका की गायों की देखभाल करता था। हालांकि वह सिर्फ एक चरवाहा था, फिर भी उसकी अपनी कुछ आमदनी थी। कभी-कभी वह अनाथपिंडिका के घर जाता था और वहां उसकी मुलाकात बुद्ध से होती थी और वह उनके प्रवचन सुनता था। नंदा ने बुद्ध से अपने घर आने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध ने यह कहकर नंदा के घर तुरंत जाने से इनकार कर दिया कि अभी समय नहीं आया है।
कुछ समय बाद, अपने अनुयायियों के साथ यात्रा करते हुए, बुद्ध नंदा से मिलने के लिए अपने मार्ग से हट गए, क्योंकि वे जानते थे कि नंदा के लिए उनकी शिक्षाओं को उचित रूप से ग्रहण करने का समय आ गया है। नंदा ने बुद्ध और उनके अनुयायियों का आदरपूर्वक स्वागत किया; उन्होंने सात दिनों तक उन्हें दूध, दूध से बने उत्पाद और अन्य उत्तम भोजन परोसा। अंतिम दिन, बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को सुनने के बाद, नंदा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। उस दिन जब बुद्ध विदा हो रहे थे, नंदा ने बुद्ध का कुंड उठाया और कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए, प्रणाम किया और घर लौटने के लिए वापस मुड़ गए।

उसी क्षण, एक शिकारी द्वारा चलाए गए एक भटकते तीर ने उन्हें मार डाला। बाद में, बुद्ध के पीछे चल रहे भिक्षुओं ने नंदा को मृत पड़ा देखा। उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, आपके यहाँ आने के कारण, नंदा, जिन्होंने आपको बड़ी भेंट चढ़ाई थी और आपके साथ घर लौट रहे थे, घर लौटते समय मारे गए।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, चाहे मैं यहाँ आया होता या नहीं, उनके पूर्व कर्मों के कारण मृत्यु से उनका बचना असंभव था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 42)

दिसो दिसां यम तं काइरा वेरी वा पना वेरिनम

मिच्च पनिहितं चित्तं नं ततो पापियो करे

दिसो : एक लुटेरा; दिसा : उसी तरह के डाकू को; तं : उसे जो भी हानि पहुँचाता है; कायिरा : पहुँचाता है; वेरी वा पना : एक द्वेषी; वेरिनं : किसी द्वेषी व्यक्ति को (कुछ हानि पहुँचाता है); मिच्छा पणिहितं : गुमराह; चित्तं : मन; नं : उसे; ततो पापीयो : उससे भी बुरा अपराध; करे : करता है

जब एक डाकू दूसरे डाकू को देखता है, तो वह उस पर हमला कर देता है। ठीक उसी तरह, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को देखता है जिससे वह घृणा करता है, तो वह भी उसे नुकसान पहुँचाता है। लेकिन गलत तरीके से इस्तेमाल किया गया दिमाग, दिमाग के मालिक के साथ जो करता है, वह एक डाकू द्वारा दूसरे डाकू के साथ या एक घृणा करने वाले द्वारा दूसरे घृणा करने वाले के साथ किए गए व्यवहार से कहीं अधिक बुरा होता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 42)

दिसो दिसं : एक डाकू दूसरे डाकू के साथ जो करता है, वही होता है। इसी प्रकार, एक शत्रु दूसरे शत्रु को हानि पहुँचा सकता है। इस श्लोक का समग्र अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति को उसके कुप्रबंधित मन से होने वाली हानि, एक डाकू द्वारा दूसरे प्रतिद्वंद्वी डाकू को पहुँचाई गई हानि या दो शत्रुओं द्वारा आपस में की गई हानि से कहीं अधिक गंभीर होती है। अविकसित मन ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु होता है।

मिच्छा पणिहितं : गलत दिशा में निर्देशित। मन को सही दिशा में निर्देशित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में परिणाम सुखद होता है। जब ऐसा होता है, तो सही दिशा में निर्देशित मन सबसे अच्छा मित्र सिद्ध होता है। लेकिन, जब मन को गलत दिशा दी जाती है, तो यह किसी शत्रु से भी अधिक हानि पहुँचा सकता है।

micchā paṇihitaṃ cittaṃ : इसका तात्पर्य यह है कि मन स्वयं ही इतना अधिक नुकसान पहुंचा सकता है जितना एक शत्रु दूसरे शत्रु को नहीं पहुंचा सकता। इस प्रकार, बिगड़ा हुआ मन स्वयं का शत्रु होता है—बाहरी शत्रु से कहीं अधिक बुरा।

गलत दिशा में निर्देशित मन : अर्थात्, दस प्रकार की बुराइयों की ओर निर्देशित मन—अर्थात्, 1. हत्या, 2. चोरी, 3. यौन दुराचार, 4. झूठ बोलना, 5. निंदा करना, 6. कठोर वाणी, 7. व्यर्थ की बातें, 8. लोभ, 9. द्वेष और 10. झूठी मान्यता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 43

___

(धम्मपद 42) <<<< पिछला ॥ श्लोक 43 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 44, 45)

___

धम्मपद श्लोक 43 - सोरेय्या वत्थु

___

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tam mata pita kayira

anne vapi ca nataka

सम्मपनिहितम् चित्तम्

seyyaso(1)naim tato kare.

___

श्लोक 43 : न तो माता, न पिता, न ही कोई अन्य रिश्तेदार किसी के कल्याण के लिए उससे अधिक कर सकता है जितना कि एक सही दिशा में निर्देशित मन कर सकता है।

---

1. सेय्यासो: अभी भी बेहतर; यहाँ इसका अर्थ है कहीं बेहतर सेवा; क्योंकि यह (सही दिशा में निर्देशित मन) किसी व्यक्ति और देव (देवदूत) के कल्याण और यहाँ तक कि निर्वाण की प्राप्ति की ओर भी ले जा सकता है।

---

एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सोरेय्या नगर के एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरेय्या के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (43) कहा। एक बार सोरय्या अपने एक मित्र और कुछ सेवकों के साथ एक आलीशान रथ में स्नान करने जा रहे थे। उसी समय थेरा महाकच्चयन नगर के बाहर अपने वस्त्र ठीक कर रहे थे, क्योंकि वे सोरय्या के नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे। युवक सोरय्या ने थेरा का सुनहरा रंग देखकर सोचा, "काश ये थेरा मेरे पति होते, या मेरी पत्नी का रंग भी इनके जैसा होता।" जैसे ही यह इच्छा उनके मन में उठी, उनका लिंग परिवर्तन हो गया और वे स्त्री बन गए। अत्यंत लज्जित होकर वे रथ से उतर गए और तक्षशिला की ओर भाग गए। उनके साथी उन्हें ढूंढते रहे, लेकिन वे उन्हें नहीं पा सके।

सोरेय्या, जो अब एक महिला बन चुकी थी, ने तक्षशिला जा रहे कुछ लोगों को अपनी अंगूठी भेंट कर दी ताकि वे उसे अपने साथ रथ में ले जा सकें। तक्षशिला पहुँचने पर, उसके साथियों ने तक्षशिला के एक धनी युवक को उस महिला के बारे में बताया जो उनके साथ आई थी। उस धनी युवक ने उसे बेहद सुंदर और अपने लिए उपयुक्त उम्र की पाकर उससे विवाह कर लिया। इस विवाह से दो पुत्रों का जन्म हुआ; सोरेय्या के पहले विवाह से भी दो पुत्र थे।

एक दिन, सोरय्या नगर से एक धनी व्यक्ति का पुत्र पाँच सौ रथों के साथ तक्षशिला आया। सोरय्या देवी ने उसे अपना पुराना मित्र समझकर उसे बुलवाया। सोरय्या नगर का वह व्यक्ति आमंत्रित किए जाने पर आश्चर्यचकित हुआ, क्योंकि वह आमंत्रित महिला को नहीं जानता था। उसने सोरय्या देवी से कहा कि वह उन्हें नहीं जानता और पूछा कि क्या वह उसे जानती हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह उन्हें जानती हैं और सोरय्या नगर में अपने परिवार और अन्य लोगों के स्वास्थ्य के बारे में भी पूछा। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने उन्हें उस धनी व्यक्ति के पुत्र के बारे में बताया जो स्नान करने जाते समय रहस्यमय तरीके से गायब हो गया था। तब सोरय्या देवी ने अपनी पहचान प्रकट की और सारी घटना बताई - थेरा महाकच्चायन के बारे में गलत धारणाओं के बारे में, लिंग परिवर्तन के बारे में और तक्षशिला के उस धनी युवक से अपने विवाह के बारे में। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने सोरय्या देवी को थेरा से क्षमा मांगने की सलाह दी। तदनुसार, थेरा महाकच्चायना को सोरय्या के घर आमंत्रित किया गया और उन्हें भिक्षा दी गई। भोजन के बाद, सोरय्या नामक महिला को थेरा के समक्ष लाया गया, और सोरय्या के उस व्यक्ति ने थेरा को बताया कि वह महिला एक समय सोरय्या नगर के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। उसने थेरा को समझाया कि कैसे सोरय्या ने आदरणीय थेरा के प्रति अपने गलत विचारों के कारण स्त्री का रूप धारण कर लिया था। सोरय्या ने तब थेरा महाकच्चायना से विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगी। तब थेरा ने कहा, "उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" ये शब्द कहते ही वह स्त्री वापस पुरुष में परिवर्तित हो गई। सोरय्या ने तब विचार किया कि कैसे एक ही जन्म में और एक ही शरीर में उनका लिंग परिवर्तन हुआ और कैसे उनके पुत्रों का जन्म हुआ, आदि। इन सब बातों से अत्यंत व्याकुल और घृणास्पद होकर, उन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागने का निर्णय लिया और थेरा के अधीन संघ में शामिल हो गए।

उसके बाद उनसे अक्सर पूछा जाता था, "आप किसे अधिक प्रेम करते हैं, अपने दो पुत्रों को जो आपने पुरुष के रूप में प्राप्त किए या अपने दो पुत्रों को जो आपने पत्नी के रूप में प्राप्त किए?" वे उत्तर देते थे कि गर्भ से जन्मे पुत्रों के प्रति उनका प्रेम अधिक है। यह प्रश्न उनसे इतनी बार पूछा गया कि वे बहुत व्याकुल और लज्जित हुए। इसलिए वे एकांतवास में रहे और लगन से शरीर के क्षय और विघटन का चिंतन किया। शीघ्र ही उन्होंने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब उनसे वही पुराना प्रश्न दोबारा पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें किसी विशेष से स्नेह नहीं है। अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर सोचा कि वे झूठ बोल रहे होंगे। जब सोरय्या द्वारा दिए गए भिन्न उत्तर के बारे में बताया गया, तो बुद्ध ने कहा, "मेरा पुत्र झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य बोल रहा है। उसका उत्तर अब भिन्न है क्योंकि उसने अब अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है और इसलिए अब उसे किसी विशेष से स्नेह नहीं है। अपने सुचारु मन से मेरे पुत्र ने अपने भीतर ऐसा कल्याण उत्पन्न किया है जो न तो पिता और न ही माता उसे प्रदान कर सकते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 43 : न तो माता, न पिता, न ही कोई अन्य रिश्तेदार किसी के कल्याण के लिए उससे अधिक कर सकता है जितना कि एक सही दिशा में निर्देशित मन कर सकता है।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।
अध्याय तीन का अंत: मन (चित्तवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सोरेय्या की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सोरय्या नगर के एक धनी व्यक्ति के पुत्र सोरय्या के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार सोरय्या अपने एक मित्र और कुछ सेवकों के साथ रथ में स्नान करने जा रहे थे। उसी समय, भिक्षु महाकच्चायन नगर के बाहर अपने वस्त्र ठीक कर रहे थे, क्योंकि वे सोरय्या नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे। युवक सोरय्या ने भिक्षु का युवा रूप देखकर सोचा, "काश, ये भिक्षु मेरी पत्नी होते, ताकि मेरी पत्नी का रूप भी इनके जैसा होता।" जैसे ही यह इच्छा उनके मन में उठी, उनका लिंग परिवर्तन हो गया और वे स्त्री बन गए। अत्यंत लज्जित होकर वे रथ से उतर गए और तक्षशिला की ओर भाग गए। उनके साथियों ने उन्हें ढूंढा, लेकिन वे उन्हें नहीं पा सके। सोरय्या, जो अब स्त्री बन चुके थे, ने तक्षशिला जा रहे कुछ लोगों को अपनी अंगूठी भेंट कर दी, ताकि वे उन्हें अपने रथ में साथ ले जा सकें। तक्षशिला पहुँचने पर, उसके साथियों ने तक्षशिला के एक धनी युवक को अपने साथ आई महिला के बारे में बताया। उस धनी युवक ने उसे बेहद सुंदर और अपने लिए उपयुक्त उम्र की पाकर उससे विवाह कर लिया। इस विवाह से दो पुत्रों का जन्म हुआ; सोरेय्या के पिछले विवाह से भी दो पुत्र थे।
एक दिन, सोरय्या नगर से एक धनी व्यक्ति का पुत्र पाँच सौ रथों के काफिले के साथ तक्षशिला आया। सोरय्या देवी ने उसे अपना पुराना मित्र समझकर उसे बुलवाया। सोरय्या नगर का वह व्यक्ति आमंत्रित किए जाने पर आश्चर्यचकित हुआ, क्योंकि वह आमंत्रित महिला को नहीं जानता था। उसने सोरय्या देवी से कहा कि वह उन्हें नहीं जानता और पूछा कि क्या वह उसे जानती हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह उसे जानती हैं और सोरय्या नगर में अपने परिवार और अन्य लोगों के स्वास्थ्य के बारे में भी पूछा। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने उन्हें उस धनी व्यक्ति के पुत्र के बारे में बताया जो स्नान करने जाते समय रहस्यमय तरीके से गायब हो गया था। तब सोरय्या देवी ने अपनी पहचान प्रकट की और सारी घटना बताई - भिक्षु महाकच्चायन के बारे में गलत विचार, लिंग परिवर्तन और तक्षशिला के उस धनी युवक से विवाह। सोरय्या नगर के उस व्यक्ति ने सोरय्या देवी को भिक्षु से क्षमा मांगने की सलाह दी। तदनुसार, भिक्षु महाकच्चायन को सोरय्या के घर आमंत्रित किया गया और उन्हें भिक्षा दी गई। भोजन के बाद, सोरय्या को भिक्षु के समक्ष लाया गया, और सोरय्या के उस व्यक्ति ने भिक्षु को बताया कि वह महिला एक समय सोरय्या के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। उसने भिक्षु को समझाया कि कैसे सोरय्या ने आदरणीय भिक्षु के प्रति अपने गलत विचारों के कारण स्त्री का रूप धारण कर लिया था। सोरय्या ने आदरपूर्वक भिक्षु महाकच्चायन से क्षमा मांगी। भिक्षु ने कहा, "उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" ये शब्द कहते ही वह स्त्री वापस पुरुष में परिवर्तित हो गई। सोरय्या ने तब चिंतन किया कि कैसे एक ही जन्म में और एक ही शरीर में उनका लिंग परिवर्तन हुआ और कैसे उनके पुत्रों का जन्म हुआ। इन सब बातों से अत्यंत व्याकुल और घृणास्पद होकर, उन्होंने गृहस्थ जीवन त्यागने का निर्णय लिया और भिक्षु के अधीन संघ में शामिल हो गए।
उसके बाद उनसे अक्सर पूछा जाता था, "आप किसे ज़्यादा प्यार करते हैं, अपने उन दो बेटों को जो आपने पुरुष के रूप में पैदा किए या उन दो को जो आपने स्त्री के रूप में पैदा किए?" वे जवाब देते थे कि स्त्री के रूप में पैदा हुए बेटों के लिए उनका प्यार ज़्यादा है। यह सवाल उनसे इतनी बार पूछा गया कि वे बहुत परेशान और शर्मिंदा हो गए। इसलिए वे एकांत में रहने लगे और लगन से शरीर के क्षय और विघटन का चिंतन करने लगे। जल्द ही उन्होंने विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि के साथ-साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब उनसे वही पुराना सवाल दोबारा पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया कि उन्हें किसी एक से विशेष लगाव नहीं है। उन्हें सुनकर दूसरे भिक्षुओं को लगा कि वे झूठ बोल रहे हैं। जब सोरय्या के अलग जवाब देने की खबर फैली तो बुद्ध ने कहा, "मेरा बेटा झूठ नहीं बोल रहा, वह सच बोल रहा है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 43)
तं माता न काइरा , पिता अपि च अण्णे नाताका वा
सम्मा पनिहितं चित्तं नं ततो सेयसो करे
तं : वह कृपा; माता : किसी की माता; न कयिरा : नहीं करेगा; पिता: भी नहीं करेगा; अपि च : इसके अतिरिक्त; अञ्ञे : अन्य; ञातका वा : या रिश्तेदार; सम्मा पणिहितं [ पणिहित ]: सुशासित; चित्तं [ चित्त ]: मन; नं : उस व्यक्ति के लिए; ततो सेय्यासो [ सेय्यासा ]: उससे कहीं बेहतर कुछ; करे : किसी के लिए करेगा।
सही दिशा में किए गए विचार किसी व्यक्ति की मदद उसके पिता या माता से भी बेहतर तरीके से कर सकते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 43)

सम्मा पणिहितं चित्तं : स्थिर मन। माता-पिता अत्यंत प्रेम करते हैं। वे सांसारिक सुख-सुविधाएँ उदारतापूर्वक दे सकते हैं। परन्तु जब उच्चतर जीवन के फल — मोक्ष और अमरत्व की प्राप्ति — की बात आती है, तो केवल स्थिर मन ही सहायता कर सकता है। क्योंकि अमरत्व का अनुभव स्वयं ही करना होता है। विकसित मन ही हमारा सबसे अच्छा मित्र है।

सुनियोजित मन : अर्थात्, दस प्रकार के पुण्य कर्मों ( कुशल कर्मों ) की ओर निर्देशित मन — अर्थात्,

उदारता,
नैतिकता,
ध्यान,
श्रद्धा,
सेवा,
योग्यता का हस्तांतरण,
दूसरों के गुणों पर प्रसन्नता व्यक्त करना,
इस सिद्धांत को सुनकर,
सिद्धांत की व्याख्या करते हुए, और
अपने सही विचारों को सुदृढ़ करना।

अध्याय 4. पुप्फहग्ग: फूल (44-59)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 44 और 45

---

(धम्मपद 43) <<<< पिछला ॥ श्लोक 44 और 45 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 46)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 44 और 45 - पंचसताभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Ko imam pathavim vicessati
yamalokanca imam sadevakam
को धम्मपदम सुदेसिटम(1)
kusalo pupphamiva pacessati.

Sekho(2) pathavim vicessati
yamalokanca imam sadevakam
sekho dhammapadam sudesitam
kusalo pupphamiva pacessati.

---

श्लोक 44 : इस पृथ्वी (अर्थात् इस शरीर), यमलोक (अर्थात् चार अपायों) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की जांच कौन करेगा? कौन सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) की जांच उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है?

---

श्लोक 45 : आर्य शेख2 इस पृथ्वी (अर्थात शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपाय) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक का भी अध्ययन करेगा। आर्य शेख सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) का अध्ययन उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है।

---

1. धम्मपदं सुदेसीतम: सद्‌गुण का सुशिक्षित मार्ग; यहाँ इसका अर्थ है ज्ञानोदय के सैंतीस कारक (बोधिपक्खीय धम्म)।

2. सेखो/सेखपुग्गला: विद्यार्थी या वह व्यक्ति जो अभी धम्म का अध्ययन/अभ्यास कर रहा है और मार्ग में प्रवेश कर चुका है, परन्तु अभी तक अरहत नहीं बना है। यह शब्द पहले सात अरहतों के लिए प्रयोग किया जाता है, जबकि आठवां या अरहत असेखो होता है।

---

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (44) और (45) का उच्चारण किया।

पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करके जेतवन मठ लौट आए। शाम को जब भिक्षु यात्रा के बारे में, विशेषकर भूमि की स्थिति के बारे में, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, या मिट्टी चिकनी थी या रेतीली, लाल थी या काली, आदि पर चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध उनके पास आए। उनकी बातचीत का विषय जानकर उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जिस पृथ्वी की आप चर्चा कर रहे हैं वह शरीर से अलग है; वास्तव में, अपने शरीर की जांच करना और (ध्यान अभ्यास के लिए) तैयारी करना बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 44 : इस पृथ्वी (अर्थात इस शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपायों) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की जांच कौन करेगा? धर्म के सुशिक्षित मार्ग (धम्मपद) की जांच कौन करेगा, जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है?

---

श्लोक 45 : आर्य शेख (2) इस पृथ्वी (अर्थात शरीर), यमलोक (अर्थात चार अपाय) और मनुष्यलोक के साथ-साथ देवलोक की भी जांच करेगा। आर्य शेख सुशिक्षित धर्ममार्ग (धम्मपद) की जांच उसी प्रकार करेगा जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों का चयन करता है।

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करने के बाद जेतवन मठ लौट आए। शाम को जब भिक्षु यात्रा के बारे में, विशेषकर भूमि की स्थिति के बारे में, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, या मिट्टी की थी या रेत की, लाल थी या काली, तब उनके पास बुद्ध आए। उनकी बातचीत का विषय जानकर उन्होंने उनसे कहा, “भिक्षुओं, जिस पृथ्वी की आप बात कर रहे हैं वह शरीर से अलग है; वास्तव में, अपने शरीर की जांच करना और ध्यान साधना के लिए तैयारी करना बेहतर है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 44)

को इमं पथविं विजेस्सति इमं सदेवकं यमलोकं

सीए को सुदेसिटं धम्मपदं कुसालो पुप्पहं इव पसेस्सति

को : जो; इमं पथविं [ पठवि ]: इस पृथ्वी को; विजस्सति : देखता है, समझता है; इमं यमलोकं च : और यमलोक को; सदेवकं [ सदेवक ]: स्वर्गलोकों के साथ; को : जो; सुदेशितं [ सुदेशित ]: अच्छी तरह से घोषित; धम्मपदं [ धम्मपद ]: धम्म से संतुष्ट; कुसलो पुप्पं इव : कुशल मालाकार की तरह फूलों को; को : जो; पेस्सति : इकट्ठा करता है, संभालता है

माला बनाने में माहिर व्यक्ति फूलों का चयन, तोड़कर और उन्हें मालाओं में सजाकर उनका विश्लेषण करेगा। उसी प्रकार, जीवन के स्वरूप का गहन अध्ययन कौन करेगा? संसार में जीवन के वास्तविक स्वरूप को, साथ ही पाताल लोक और स्वर्ग के लोकों को कौन समझ पाएगा? फूलों को कुशलतापूर्वक तोड़कर और सजाकर, माला बनाने वाले उस कुशल कारीगर की तरह, सुस्पष्ट सिद्धांत को कौन समझ पाएगा और उसका गहन विश्लेषण कर पाएगा?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 45)

सेखो पथविं विजेस्सति इमं सदेवकम्

यमलोकं च सेखो सुदेसीतं धम्मपदं

कुसालो पुप्फां इव पसेस्सति

सेखो [ सेखा ]: सीखने वाला; पथविं विजस्सति : पृथ्वी को देखता है; यमलोकं च : यमलोक को भी; सदेवकं इमं : देवताओं के लोक के साथ; सेखो [ सेखा ]: सीखने वाला; सुदेशितं [ सुदेशित ]: सुस्पष्ट; धम्मपदं [ धम्मपद ]: सिद्धांत के क्षेत्रों को (समझता है); कुसलो [ कुसल ]: माला बनाने वाले कुशल कारीगर की तरह; पुप्पं इव : फूल चुनता है; पेस्सति : देखता है

पिछले श्लोक में यह प्रश्न उठाया गया था कि सुस्पष्ट उपदेश को कौन समझेगा? वर्तमान श्लोक इसका उत्तर देता है: विद्यार्थी, शिक्षार्थी, जिज्ञासु, शिष्य, अनुशासित व्यक्ति। वह उपदेश को उसी प्रकार समझेगा, जैसे कुशल मालाकार फूलों को पहचानकर उन्हें सजाता है। शिक्षार्थी, जिज्ञासु और विद्यार्थी ही यमलोक, स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक को समझेंगे। वे उपदेश के विभिन्न पहलुओं को उसी प्रकार समझेंगे और निर्धारित करेंगे, जैसे कुशल मालाकार फूलों को चुनकर मालाओं में पिरोता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 44-45)

सीखो : एक 'उत्कृष्ट विद्यार्थी', उच्च प्रशिक्षण प्राप्त शिष्य, अर्थात् तीन प्रकार के प्रशिक्षणों का अनुसरण करने वाला, उन सात प्रकार के श्रेष्ठ शिष्यों में से एक है जो चार अलौकिक मार्गों या तीन निम्नतम फलों में से किसी एक को प्राप्त कर चुके हैं, जबकि चौथे फल, या अरहत्त-फल से युक्त व्यक्ति को 'प्रशिक्षण से परे' कहा जाता है। सांसारिक व्यक्ति को 'न तो श्रेष्ठ विद्यार्थी और न ही विद्या में सिद्ध' कहा जाता है।

लोक : 'विश्व', संपूर्ण ब्रह्मांड को समाहित करने वाले अस्तित्व के तीन क्षेत्रों को दर्शाता है, अर्थात्: (i) इंद्रिय जगत, या पाँच इंद्रियों का जगत; (ii) रूप जगत, जो चार रूपात्मक अवशोषणों के अनुरूप है; (iii) निराकार जगत, जो चार निराकार अवशोषणों के अनुरूप है।

विजयसति = अत्तनो ञानेन विजयनिस्ति = कौन अपनी बुद्धि से जानेगा? (टीका)।

स्वयं : अर्थात्, वह व्यक्ति जो स्वयं को वैसे ही समझेगा जैसा वह वास्तव में है।

सुगति : अर्थात्, मानव लोक और छह दिव्य लोक। इन सातों को आनंदमय अवस्थाएँ माना जाता है।

देव : शाब्दिक अर्थ है, क्रीड़ा करने वाले या चमकने वाले। ये ऐसे प्राणी हैं जो अपने पिछले अच्छे कर्मों के फल का अनुभव करते हुए आनंद लेते हैं। वे भी मृत्यु के अधीन हैं।

इंद्रिय जगत में नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, दानवलोक, मानवलोक और छह निम्न स्वर्गीय लोक शामिल हैं। सजीव जगत में देखने और सुनने की शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, जो अन्य इंद्रियों के साथ चार समाधि अवस्थाओं में अस्थायी रूप से निलंबित हो जाती हैं। निराकार जगत में किसी भी प्रकार का देहधारण नहीं होता; वहाँ केवल चार स्कंध ( खंड ) विद्यमान होते हैं।

यद्यपि सूत्रों में लोक शब्द का प्रयोग उन तीन लोकों के लिए नहीं किया गया है, बल्कि केवल भाव शब्द , 'अस्तित्व' के लिए किया गया है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि तीन लोकों के बारे में शिक्षा बौद्ध धर्मग्रंथों के सबसे प्रारंभिक, अर्थात् सूत्र काल से संबंधित है, जैसा कि कई प्रासंगिक अंशों से पता चलता है।

यमलोक : यम का लोक। यम मृत्यु का प्रतीक है — यम लगभग मारा का पर्यायवाची है।

मारा : बौद्ध धर्म में 'प्रलोभक' का प्रतीक। उन्हें अक्सर 'बुरा मारा' या नमुचि ('मुक्तिदाता नहीं', मुक्ति का विरोधी) कहा जाता है। वे ग्रंथों में एक वास्तविक व्यक्ति (देवता के रूप में) और बुराई, वासनाओं, सांसारिक जीवन और मृत्यु के मानवीकरण दोनों रूपों में प्रकट होते हैं।

बाद के पाली साहित्य में अक्सर 'पांच गुना मारा' की बात की जाती है:

मारा एक देवता के रूप में;

अशुद्धियों का मारा;

समुच्चयों का मारा;

कर्म-निर्माणों का मार; और

मारा मृत्यु के रूप में।

अधिकांशतः 'मारा' को मृत्यु के समतुल्य माना जाता है। सामान्य अर्थ में, 'मृत्यु' का तात्पर्य 'एक जीवनकाल तक सीमित प्राणिक शक्ति का लुप्त होना, और इसके साथ ही 'मनुष्य, पशु, व्यक्तित्व, अहं' आदि कहलाने वाली मनो-शारीरिक जीवन प्रक्रिया का लुप्त होना' है। हालांकि, कड़ाई से कहें तो, मृत्यु प्रत्येक भौतिक-मानसिक संयोजन का क्षणिक उद्‌भव, विघटन और लुप्त होना है। अस्तित्व की इस क्षणिक प्रकृति के बारे में कहा जाता है:

पूर्ण अर्थ में, प्राणियों का जीवन बहुत ही क्षणिक होता है, चेतना के एक क्षण तक ही सीमित। जैसे गाड़ी का पहिया, चाहे चल रहा हो या रुका हुआ हो, हर समय अपनी परिधि के एक ही बिंदु पर टिका रहता है: ठीक वैसे ही किसी जीव का जीवन चेतना के एक क्षण तक ही सीमित रहता है। जैसे ही वह क्षण समाप्त होता है, प्राणी का भी अंत हो जाता है। क्योंकि कहा जाता है: 'भूतकाल की चेतना में प्राणी

जीवित रहा, परन्तु अब जीवित नहीं है, न भविष्य में जीवित रहेगा। भविष्य के क्षण में प्राणी अभी तक जीवित नहीं रहा, न अभी जीवित है, परन्तु भविष्य में जीवित रहेगा। वर्तमान क्षण में प्राणी जीवित नहीं रहा, वह अभी जीवित है, परन्तु भविष्य में जीवित नहीं रहेगा।'

दूसरे अर्थ में, अरहत या पूर्णतः पवित्र व्यक्ति के मनो-शारीरिक जीवन चक्र का उनके निधन के क्षण में समाप्त होना, अंतिम और परम मृत्यु कहा जा सकता है, क्योंकि उस क्षण तक मनो-शारीरिक जीवन चक्र अभी भी जारी था।

सामान्य अर्थों में मृत्यु, वृद्धावस्था के साथ मिलकर, आश्रित उत्पत्ति के सूत्र में बारहवीं कड़ी का निर्माण करती है।

बौद्ध धर्म के अनुसार, मृत्यु किसी भी व्यक्ति के मनो-शारीरिक जीवन का अंत है। यह जीवन शक्ति, अर्थात् मानसिक और शारीरिक जीवन, ऊष्मा और चेतना का क्षीण होना है। मृत्यु किसी प्राणी का पूर्ण विनाश नहीं है, क्योंकि यद्यपि एक विशेष जीवनकाल समाप्त हो जाता है, वह शक्ति जो अब तक उसे संचालित करती रही है, नष्ट नहीं होती।

जैसे बिजली का बल्ब अदृश्य विद्युत ऊर्जा का प्रत्यक्ष दृश्य रूप है, वैसे ही हम अदृश्य कर्म ऊर्जा के प्रत्यक्ष रूप हैं। बल्ब टूट सकता है और रोशनी बुझ सकती है, लेकिन करंट बना रहता है और दूसरे बल्ब में रोशनी फिर से उत्पन्न हो सकती है। ठीक इसी तरह, कर्म शक्ति शरीर के नष्ट होने से अप्रभावित रहती है और वर्तमान चेतना के नष्ट होने से अगले जन्म में एक नई चेतना का जन्म होता है। लेकिन कोई भी अपरिवर्तनीय या स्थायी चीज़ वर्तमान से भविष्य में 'स्थानांतरित' नहीं होती।

उपरोक्त स्थिति में, मृत्यु से पूर्व अनुभव किया गया विचार नैतिक होने के कारण, पुनर्जन्म-चेतना मानव माता-पिता के उपयुक्त शुक्राणु और अंडाणु कोशिका को अपने पदार्थ के रूप में ग्रहण करती है। पुनर्जन्म-चेतना तब भावांग अवस्था में प्रवेश करती है। मृत्यु के समय, समय के संदर्भ में प्रवाह की निरंतरता अटूट रहती है और चेतना के प्रवाह में कोई व्यवधान नहीं होता है।

सदेवकम् : दिव्य प्राणियों का लोक। इन्हें प्रकाशमान कहा जाता है। ये स्वर्गीय प्राणी, देवता हैं; ऐसे प्राणी जो सुखमय लोकों में निवास करते हैं और जो सामान्यतः मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। यद्यपि, सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, वे भी पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र से मुक्त नहीं होते, और इस प्रकार दुख से भी मुक्त नहीं होते। स्वर्गीय प्राणियों के अनेक वर्ग हैं।

कुसालो : इस संदर्भ में यह अभिव्यक्ति विशेषज्ञता को संदर्भित करती है। लेकिन बौद्ध साहित्य में, कुसाला शब्द के अनेक अर्थ हैं। कुसाला का अर्थ है 'कर्मिक रूप से लाभकारी' या 'लाभदायक', सुखदायक और नैतिक रूप से अच्छा (कुशल)। टीकाओं के अनुसार, इस शब्द के भावार्थ हैं: अच्छे स्वास्थ्य वाला, निष्कलंक, अनुकूल कर्म फल देने वाला, कुशल। यह ध्यान देने योग्य है कि टीकाएँ चेतना की अवस्थाओं के संदर्भ में 'कुशल' अर्थ को शामिल नहीं करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से: 'कर्मिक रूप से लाभकारी' वे सभी कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक कारक हैं, जो दो या तीन लाभकारी मूलों, अर्थात् लोभहीनता और घृणाहीनता, और कुछ मामलों में भ्रमहीनता से युक्त होते हैं। चेतना की ऐसी अवस्थाओं को 'कर्मिक रूप से लाभकारी' माना जाता है क्योंकि वे अनुकूल कर्म फल का कारण होती हैं और सुखी भाग्य या पुनर्जन्म के बीज धारण करती हैं। इस व्याख्या से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं: (i) इच्छाशक्ति ही चेतना की किसी अवस्था या कर्म को 'अच्छा' या 'बुरा' बनाती है; (ii) बौद्ध धर्म में नैतिक मापदंड तीन शुभ या नैतिक मूलों की उपस्थिति या अनुपस्थिति है। उपरोक्त व्याख्याएँ सांसारिक शुभ चेतना से संबंधित हैं। अलौकिक शुभ अवस्थाएँ, अर्थात् पवित्रता के चार मार्ग, केवल उनसे संबंधित चार फल ही देते हैं; वे कर्म नहीं बनाते, न ही वे पुनर्जन्म की ओर ले जाते हैं, और यह बात अरहत के अच्छे कर्मों और उनकी ध्यान अवस्थाओं पर भी लागू होती है, जो सभी कर्मिक रूप से निष्क्रिय हैं।

धम्मपद की टीका में कहा गया है कि यह शब्द ज्ञानोदय के सैंतीस कारकों पर लागू होता है। वे इस प्रकार हैं:

(i) ध्यान के चार आधार — अर्थात्, 1. शरीर का चिंतन, 2. भावनाओं का चिंतन, 3. मन की अवस्थाओं का चिंतन, और 4. धर्मों का चिंतन;

(ii) चार सर्वोच्च प्रयास — अर्थात्, 1. अउत्पन्न बुराई को रोकने का प्रयास, 2. पहले से उत्पन्न बुराई को त्यागने का प्रयास, 3. अउत्पन्न अच्छाई को विकसित करने का प्रयास, और 4. पहले से उत्पन्न अच्छाई को बढ़ावा देने का प्रयास;

iii) सिद्धि के चार साधन — अर्थात्, इच्छाशक्ति, ऊर्जा, विचार और बुद्धि; (iv) पाँच शक्तियाँ — अर्थात्, आत्मविश्वास, ऊर्जा, जागरूकता, एकाग्रता और बुद्धि;

(v) पाँच बल, जिनके नाम इंद्रियों के समान हैं;

(vi) ज्ञानोदय के सात घटक—अर्थात्, सजगता, वास्तविकता की खोज, ऊर्जा, आनंद, शांति, एकाग्रता और समभाव;

(vi) अष्टांग मार्ग — अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

यमलोक : यम के लोक । यमलोक से तात्पर्य चार दुखद अवस्थाओं से है — नरक, पशुलोक, पतरसलोक और असुरलोक । बौद्ध धर्म के अनुसार नरक स्थायी नहीं है। यह अन्य लोकों की तरह ही दुख की एक अवस्था है जहाँ प्राणी अपने पिछले बुरे कर्मों के फल भोगते हैं।

vijessati ( attano ñāṇena vijānissati ): जो अपनी बुद्धि से जानेगा।

---

(धम्मपद 44, 45) <<<< पिछला || श्लोक 46 || अगला >>>> (धम्मपद 47)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 46 - मरीचिकम्मत्तनिका भिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

फेप्नुपमम्(1) कायमिमम विदित्वा
मरीचिधम्मम(2) अभिसंबुधानो
चेतवना मरासा पापुफ्फकानि(3)
अदस्सानम मैक्कुराजस्सा गच्चे(4)

---

श्लोक 46 : जो यह जानता है कि यह शरीर झाग के समान क्षणभंगुर है, और यह समझता है कि यह मृगतृष्णा के समान सारहीन है, वह मारा के फूल (अर्थात, तीन प्रकार के वट या चक्र) काटेगा, और मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल हो जाएगा।

---

1. फेपनुपमम: झाग की तरह; इसका अर्थ है कि यह शरीर झाग की तरह नाशवान और क्षणभंगुर है।
2. मरीचिधम्मम: शाब्दिक अर्थ, मृगतृष्णा + प्रकृति; मृगतृष्णा की प्रकृति, अर्थात् मृगतृष्णा की तरह सारहीन।
3. मारस पपुप्पकनी: मार के फूल या पुष्पयुक्त बाण। मार के ये फूल या बाण तिवत्तम या तीन प्रकार के वत्तम (चक्रों) का प्रतिनिधित्व करते हैं, अर्थात् किलेसवत्तम (नैतिक विकारों का चक्र), कम्मवत्तम (इच्छाजन्य क्रिया का चक्र) और विपकवत्तम (परिणामों का चक्र)। टीका के अनुसार, आर्य मग्गा नाना की तलवार से काटे जाने पर यह श्रृंखला या चक्र टूट जाता है।
4. adassanam maccurajassa gacche: इस संदर्भ में, मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल होने का अर्थ है निर्वाण की प्राप्ति।

---

उस भिक्षु की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (46) का उच्चारण एक भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में शरण ली। उसने बहुत प्रयास किया, फिर भी उसे ध्यान में कोई खास प्रगति नहीं हुई; इसलिए उसने आगे के मार्गदर्शन के लिए बुद्ध के पास लौटने का निश्चय किया। लौटते समय उसे एक मृग-तृष्णा दिखाई दी, जो वास्तव में जल की एक चादर का भ्रम मात्र थी। उसी क्षण उसे यह अहसास हुआ कि शरीर भी मृग-तृष्णा की तरह क्षणभंगुर है। इस प्रकार शरीर की क्षणभंगुरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए वह अचिरवती नदी के किनारे आ गया। नदी के निकट एक वृक्ष के नीचे बैठकर, नदी में उठते बड़े-बड़े झागों को देखकर, उसे शरीर की अनित्यता का अहसास हुआ।

जल्द ही, बुद्ध उनके दर्शन में प्रकट हुए और उनसे कहा, "मेरे पुत्र, जैसा कि तुमने अनुभव किया है, यह शरीर झाग की तरह क्षणभंगुर और मृगतृष्णा की तरह सारहीन है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 46 : जो यह जानता है कि यह शरीर झाग के समान क्षणभंगुर है, और यह समझता है कि यह मृगतृष्णा के समान सारहीन है, वह मारा के फूल (अर्थात, तीन प्रकार के वात या चक्र) काटेगा, और मृत्यु के राजा की दृष्टि से ओझल हो जाएगा।

---

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो शरीर को मृगतृष्णा के रूप में देखता है

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशिष्ट भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त किया और ध्यान साधना के उद्देश्य से वन में प्रवेश किया। परन्तु जब तमाम प्रयासों और संघर्षों के बाद भी वह अर्हतत्व प्राप्त नहीं कर सका, तो उसने मन ही मन कहा, “मैं बुद्ध से प्रार्थना करूंगा कि वे मुझे ध्यान का ऐसा विषय दें जो मेरी आवश्यकताओं के अनुरूप हो।” यही विचार मन में रखकर वह बुद्ध के पास लौटने के लिए चल पड़ा।

रास्ते में उन्हें एक मृगजल दिखाई दिया। उन्होंने मन ही मन कहा, “जिस प्रकार यह मृगजल, ग्रीष्म ऋतु में दूर से देखने पर सजीव प्रतीत होता है, पर निकट आने पर लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार यह अस्तित्व भी जन्म और मृत्यु के कारण सजीव है।” मृगजल पर ध्यान केंद्रित करके उन्होंने उसका चिंतन किया। यात्रा की थकान से लौटकर उन्होंने अचिरावती नदी में स्नान किया और नदी किनारे एक झरने के पास एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। चट्टानों से टकराकर पानी के तेज बहाव से फूटते सफेद जल को देखते हुए उन्होंने मन ही मन कहा, “जिस प्रकार इस अस्तित्व का जन्म हुआ, उसी प्रकार यह नष्ट हो जाता है।” और इसी को उन्होंने अपने चिंतन का विषय बना लिया।

अपने सुगंधित कक्ष में बैठे बुद्ध ने वृद्ध भिक्षु को देखकर कहा, “भिक्षु, ऐसा ही है। यह अस्तित्व झाग के बुलबुले या मृगतृष्णा के समान है। ठीक इसी प्रकार यह उत्पन्न होता है और ठीक इसी प्रकार इसका अंत हो जाता है।” और ऐसा कहकर बुद्ध ने श्लोक का उच्चारण किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 46)

इमां कयां फेनुपमं विदित्वा मरीचि धम्मं अभिसंबुधानो

मरास्सा पापुफ्फकानि चेतवना मक्कुराजस्सा अदासनं गच्चे

imaṃ : यह; kāyaṃ [ kāya ]: शरीर; pheṇūpamaṃ [ pheṇūpama ]: झाग के समान है; viditvā : जानना; marīci dhammaṃ [ dhamma ]: मृगतृष्णा के समान भी है; abhisambudhāno [ abhisambudhāna ]: पूर्णतः समझना; Mārassa : मृत्यु से संबंधित; papupphakāni : पुष्प बाण; chetvāna : नष्ट करने वाला; maccurājassa : राजा-मृत्यु का; adassanaṃ [ adassana ]: दृष्टि से परे; gacche : अपना मार्ग बनाओ।

हमारा यह शरीर झाग, बुलबुले या फेन के समान है। यह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जीवन का स्वरूप मृगतृष्णा, भ्रम के समान है। इसलिए, इन असत्यताओं का त्याग करना आवश्यक है। इसके लिए, मारा के उन पुष्प-बाणों को नष्ट करना होगा जिनसे वह पुरुषों और महिलाओं को प्रलोभित करता है। सत्य की खोज करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह मारा के क्षेत्र से परे, उन क्षेत्रों में जाए जिन्हें वह देख नहीं सकता। मारा केवल मृत्यु के क्षेत्र को जानता है। सत्य की खोज करने वाला उस क्षेत्र से परे 'अमर' (निर्वाण) की ओर जाता है - एक ऐसा क्षेत्र जिसे मारा ने कभी नहीं देखा।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 46)

फेणुपम : झाग के समान। शरीर की तुलना झाग और बुलबुले से की जाती है, क्योंकि शरीर भी झाग और बुलबुले की तरह शीघ्र ही विघटित हो जाता है। अनेक उदाहरणों में, मानव शरीर की क्षणभंगुरता की तुलना बुलबुले के विघटन से की जाती है।

marīci dhammaṃ abhisambudhāno : जीवन की मायावी प्रकृति और क्षणभंगुरता के प्रति गहरी जागरूकता। बुलबुला और मृगतृष्णा, दोनों मिलकर जीवन की क्षणभंगुरता और मायावी प्रकृति पर बल देते हैं।

काया का शाब्दिक अर्थ है 'समूह', 'शरीर'। यह भौतिक शरीर या मानसिक शरीर दोनों को संदर्भित कर सकता है। बाद वाले मामले में, यह चार मानसिक समूहों (भावना, बोध, मानसिक संरचनाएँ, चेतना) का सामूहिक नाम हो सकता है या केवल भावना, बोध और कुछ मानसिक संरचनाओं का। तीसरे समाधि के रूढ़िवादी वर्णन में भी काया का यही अर्थ है, "और वह अपने मन या मानसिक संरचना में आनंद का अनुभव करता है, और आठ मोक्षों की प्राप्ति का; "अपने मन या अपने शरीर में आठ मोक्षों की प्राप्ति कर चुका है"। काया पाँचवीं इंद्रिय, शरीर-अंग भी है।

मरीचि धम्मं : मृगतृष्णा का स्वरूप। धम्म के अनेक अर्थ हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है 'वाहक', संरचना (या किसी वस्तु का स्वरूप), नियम, नियम, सिद्धांत; न्याय, धर्म; गुण; वस्तु, मन का विषय; 'घटना'। इन सभी अर्थों में 'धम्म' शब्द ग्रंथों में मिलता है। धम्मपद की टीका में इस शब्द के चार अनुप्रयोग दिए गए हैं: गुण, सद्गुण, उपदेश, पाठ, आत्माहीनता, जैसे "सभी धम्म, घटनाएँ, निराकार हैं, आदि"। पारंपरिक टीका में देसना के स्थान पर हेतु (स्थिति) शब्द का प्रयोग किया गया है । इस प्रकार, नियम के विश्लेषणात्मक ज्ञान को स्थिति के ज्ञान के रूप में समझाया गया है। बुद्ध द्वारा खोजे और घोषित किए गए मुक्तिदायक नियम के रूप में धम्म को चार आर्य सत्यों में समाहित किया गया है। यह तीन रत्नों में से एक और दस स्मरणों में से एक है।

धम्म, मन के विषय के रूप में, भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्यकाल में कुछ भी हो सकता है, शारीरिक या मानसिक, सशर्त या गैर-सशक्त, वास्तविक या काल्पनिक।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 47

---

(धम्मपद 46) <<<< पिछला || श्लोक 47 || अगला >>>> (धम्मपद 48)

---

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 47 - वितातुभा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Pupphani heva pacinantam
ब्यासत्तमनसम नरम
suttam gamam mahoghova
maccu adaya gacchati.

---

श्लोक 47 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में मग्न रहता है, उसे मृत्यु अपने साथ ले जाती है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

---

कोसल के राजा के पुत्र वितातुभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के पुत्र वितातुभा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (47) कहा।

कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) शाक्यों वंश में विवाह करने की इच्छा रखते हुए, कपिलवस्तु में कुछ दूतों को एक शाक्यों राजकुमारी का विवाह निवेदन करने के लिए भेजा। राजा पसेनादि को नाराज न करने के उद्देश्य से, शाक्यों राजकुमारों ने उनकी विनती स्वीकार कर ली, लेकिन शाक्यों राजकुमारी के बजाय उन्होंने राजा महानामा और एक दासी की संतान, एक अत्यंत सुंदर कन्या को भेजा। राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने उस कन्या को अपनी प्रमुख रानियों में से एक बनाया और बाद में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम विटतुभा रखा गया। जब राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ, तो उसे राजा महानामा और शाक्यों राजकुमारों से मिलने भेजा गया। वहाँ उसका आतिथ्य सत्कार किया गया, लेकिन विटतुभा से छोटे सभी शाक्यों राजकुमारों को एक गाँव में भेज दिया गया था, ताकि उन्हें विटतुभा का सम्मान न करना पड़े। कपिलवस्तु में कुछ दिन ठहरने के बाद, विटतुभा और उसके साथी अपने घर के लिए रवाना हो गए। उनके जाने के तुरंत बाद, एक दासी उस स्थान को दूध से धो रही थी जहाँ वितातुभा बैठे थे; वह उन्हें कोसते हुए चिल्ला रही थी, "यही वह स्थान है जहाँ उस दासी का पुत्र बैठा था।" उसी क्षण, वितातुभा के दल का एक सदस्य वहाँ छोड़ी हुई कोई वस्तु लेने लौटा और उसने दासी की बातें सुन लीं। दासी ने उसे यह भी बताया कि वितातुभा की माता, वासभखत्तिया, महानामा की एक दासी की पुत्री थी।

जब वितातुभा को उपरोक्त घटना के बारे में बताया गया, तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और उसने घोषणा की कि एक दिन वह शाक्यों वंश का पूर्ण विनाश कर देगा। अपने वचन के अनुरूप, वितातुभा के राजा बनने पर उसने शाक्यों वंश पर आक्रमण किया और महानामा के कुछ साथियों और अन्य लोगों को छोड़कर सभी का नरसंहार कर दिया। घर लौटते समय, वितातुभा और उसकी सेना ने अचिरवती नदी के रेतीले किनारे पर डेरा डाला। उसी रात देश के ऊपरी हिस्सों में भारी बारिश होने के कारण नदी उफान पर आ गई और उग्र रूप से बहने लगी, जिससे वितातुभा और उसकी सेना समुद्र में बह गई।

इन दो दुखद घटनाओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि उनके रिश्तेदार, शाक्य राजकुमारों ने अपने पिछले जन्मों में से एक में नदी में विष डाल दिया था जिससे मछलियाँ मर गईं। इसी कर्म के फलस्वरूप शाक्य राजकुमारों को सामूहिक रूप से मरना पड़ा। फिर, विततुभ और उसकी सेना की घटना का उल्लेख करते हुए बुद्ध ने कहा, "जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव के सभी ग्रामीणों को बहा ले जाती है, वैसे ही मृत्यु उन सभी प्राणियों को अपने साथ ले जाती है जो इंद्रिय सुखों की लालसा रखते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 47 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में मग्न रहता है, उसे मृत्यु अपने साथ ले जाती है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ी बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विदूदभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी के पुत्र विदूदभा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कोसल के राजा पसेनादि, शाक्यन वंश में विवाह करने की इच्छा रखते हुए, कपिलवस्तु में कुछ दूतों को भेजकर शाक्यन राजकुमारियों में से एक का विवाह निवेदन किया। राजा पसेनादि को नाराज न करने के उद्देश्य से, शाक्यन राजकुमारों ने उनकी विनती स्वीकार कर ली, लेकिन शाक्यन राजकुमारी के स्थान पर उन्होंने राजा महानामा की एक दासी से जन्मी एक अत्यंत सुंदर कन्या को भेजा। राजा पसेनादि ने उस कन्या को अपनी प्रमुख रानियों में से एक बनाया और बाद में उसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम विदूदभ रखा गया। जब राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ, तो उसे राजा महानामा और शाक्यन राजकुमारों से मिलने भेजा गया। वहाँ उनका कुछ सत्कार हुआ, लेकिन विदूधभ से छोटे सभी शाक्य राजकुमारों को एक गाँव भेज दिया गया था, ताकि उन्हें विदूधभ का सम्मान न करना पड़े। कपिलवस्तु में कुछ दिन ठहरने के बाद, विदूधभ और उनके लोग घर के लिए रवाना हो गए। उनके जाने के तुरंत बाद, एक दासी उस स्थान पर दूध से स्नान कर रही थी जहाँ विदूधभ बैठे थे; वह उन्हें कोसते हुए चिल्ला रही थी, "यह वह स्थान है जहाँ उस दासी का पुत्र बैठा था..."। उसी क्षण, विदूधभ के दल का एक सदस्य वहाँ छोड़ी हुई कोई वस्तु लेने लौटा और उसने दासी की बातें सुन लीं। दासी ने उसे यह भी बताया कि विदूधभ की माता, वासभखत्तिया, महानामा की एक दासी की पुत्री थी।

जब विदूदभा को उपरोक्त घटना के बारे में बताया गया, तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और उसने घोषणा की कि एक दिन वह शाक्यन वंश का पूर्ण विनाश कर देगा। अपने वचन के अनुरूप, विदूदभा के राजा बनने पर उसने शाक्यन वंश पर आक्रमण किया और महानामा के कुछ साथियों और अन्य लोगों को छोड़कर सभी का नरसंहार कर दिया। लौटते समय, विदूदभा और उसकी सेना ने अचिरवती नदी के रेतीले तट पर डेरा डाला। उसी रात देश के ऊपरी हिस्सों में भारी बारिश होने के कारण नदी उफान पर आ गई और उग्र रूप से बहने लगी, जिससे विदूदभा और उसकी पूरी सेना बह गई।

इन दो दुखद घटनाओं के बारे में सुनकर, बुद्ध ने भिक्षुओं को समझाया कि उनके रिश्तेदार, शाक्यन राजकुमारों ने अपने पिछले जन्मों में से एक में नदी में विष डाल दिया था जिससे मछलियाँ मर गईं। इसी कर्म के फलस्वरूप शाक्यन राजकुमारों की मृत्यु हुई थी। फिर, विदूधभ और उसकी सेना से संबंधित घटना का उल्लेख करते हुए, बुद्ध ने श्लोक का पाठ किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 47)

इह पुप्फानि पचिनंतं इव ब्यासत्त मनसं नरं

सुत्तं गमं महोघो इव मक्कु अदाय गच्छति

इहा : यहाँ; पुप्फानि : बगीचे में फूल; पचिनन्तं इव : जैसे कोई तोड़ता है; ब्यासत्त मनसाम् [ मनसा ]: मन इंद्रियों के सुखों से चिपका हुआ है; नारां [ नारा ]: आदमी; सुत्तं गमं [ गामा ]: गहरी नींद में सोए हुए गांव की तरह; महोघो इवा : एक महान बाढ़ से; मक्कू : मौत; आदाय गच्छति : दूर कर देता है

सांसारिक वस्तुओं से मोहित वे पुरुष और स्त्रियाँ, सुखों का चयन उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई माला बनाने वाला बगीचे में अपनी पसंद के फूल चुनता है। परन्तु धीरे-धीरे और चुपचाप, मृत्यु उन्हें उसी प्रकार घेर लेती है जैसे रात में बाढ़ सोए हुए गाँव को बहा ले जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 47)
पुप्पानिङ्वे पचिनन्तं : फूल इकट्ठा करना। यहाँ माला बनाने वाले का चित्र जारी है। उत्साही माला बनाने वाला एक बगीचे में अपनी ज़रूरत के फूलों के चयन में लीन है। उसका मुख्य और सर्वोपरि कार्य फूलों को इकट्ठा करना है। वह अन्य सभी विचारों को त्यागकर यही करता है। ठीक इसी प्रकार, इंद्रिय सुखों की खोज करने वाले भी अन्य सभी चीजों को त्यागकर केवल उन्हीं सुखों पर ध्यान केंद्रित करते हैं।
सुत्तं गामं : एक सोया हुआ गाँव। जो लोग केवल इंद्रिय सुखों में लीन रहते हैं, वे एक सोए हुए गाँव के निवासियों के समान होते हैं। वे अपने ऊपर मंडरा रहे बाहरी खतरों से अनभिज्ञ होते हैं।
महोगो इव मच्चु आदाय गच्छति : मृत्यु आती है और उन्हें बाढ़ की तरह बहा ले जाती है। सोता हुआ गाँव आने वाली बाढ़ से अनभिज्ञ होता है और अंत में सभी ग्रामीण बाढ़ के पानी में बहकर मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। जो लोग अपनी इंद्रियों को भोग रहे होते हैं, वे भी अपने ऊपर मंडरा रहे बाहरी खतरों से अनभिज्ञ होते हैं। जो लोग इंद्रिय सुखों में लिप्त होते हैं, वे मृत्यु के हाथों बह जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 48

---

(धम्मपद 47) <<<< पिछला ॥ श्लोक 48 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 49)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 48 - पतिपूजिकाकुमारी वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Pupphani heva pacinantam
bysssasattamanasam naram
अतित्तन्नेवा कामेसु
antako kurute vasam.

---

श्लोक 48 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है और उनमें तृप्त नहीं होता, वह मृत्यु के वश में हो जाता है।

---

पतिपुजिका कुमारी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पतिपुजिका कुमारी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (48) कहा।
पतिपुजिका कुमारी सावत्थी की रहने वाली थीं। उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था और उनके चार पुत्र थे। वे एक गुणी और उदार महिला थीं, जो भिक्षुओं को भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करने में प्रसन्न रहती थीं। वे अक्सर मठ जाकर परिसर की सफाई करतीं, बर्तनों में पानी भरतीं और अन्य सेवा कार्य करतीं। पतिपुजिका को जतिसार ज्ञान प्राप्त था, जिसके द्वारा उन्हें याद था कि अपने पिछले जन्म में वे तावतिंसा देवलोक में मालभारी की अनेक पत्नियों में से एक थीं। उन्हें यह भी याद था कि जब वे सभी देवदूत उद्यान में आनंद ले रहे थे और फूल तोड़ रहे थे, तब उनका देहांत हो गया था। इसलिए, जब भी वे भिक्षुओं को दान करतीं या कोई अन्य पुण्य कर्म करतीं, तो वे प्रार्थना करतीं कि उन्हें तावतिंसा लोक में अपने पिछले पति मालभारी की पत्नी के रूप में पुनर्जन्म मिले।
एक दिन, पतिपुजिका बीमार पड़ गईं और उसी शाम उनका देहांत हो गया। उनकी हार्दिक इच्छा के अनुसार, उनका पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में मालभारी की पत्नी के रूप में हुआ। मनुष्यलोक में सौ वर्ष तावतिंसा लोक में एक दिन के बराबर होते हैं, इसलिए मालभारी और उनकी अन्य पत्नियाँ अभी भी बगीचे में आनंद ले रही थीं और उन्हें पतिपुजिका की कमी का एहसास भी नहीं हुआ। जब वह उनके पास लौटीं, तो मालभारी ने उनसे पूछा कि वह पूरी सुबह कहाँ थीं। तब उन्होंने उन्हें तावतिंसा से अपने देहांत, मनुष्यलोक में अपने

पुनर्जन्म, एक पुरुष से अपने विवाह और चार पुत्रों को जन्म देने, वहाँ से अपने देहांत और अंत में तावतिंसा में अपनी वापसी के बारे में बताया।

जब भिक्षुओं को पतिपुजिका की मृत्यु का पता चला, तो वे गहरे शोक में डूब गए। वे बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि पतिपुजिका, जो सुबह-सुबह उन्हें भिक्षा दे रहे थे, शाम को देहांत हो गए। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि प्राणियों का जीवन बहुत छोटा होता है; और इंद्रिय सुखों में तृप्ति होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने वश में कर लेती है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 48 : जैसे कोई व्यक्ति फूलों को चुन-चुनकर खाता है, वैसे ही जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त रहता है और उनमें तृप्त नहीं होता, वह मृत्यु के वश में हो जाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पतिपूजिका कुमारी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पतिपूजिका कुमारी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पतिपूजिका कुमारी, सावत्थी की एक महिला थीं। उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था और उनके चार पुत्र थे। वे एक गुणी और उदार महिला थीं, जो भिक्षुओं को भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान करने में प्रसन्न रहती थीं। वे अक्सर मठ जाकर परिसर की सफाई करती थीं, बर्तनों में पानी भरती थीं और अन्य सेवाएँ करती थीं। पतिपूजिका को जातीय ज्ञान (पूर्व जन्मों का स्मरण) प्राप्त था, जिसके द्वारा उन्हें याद था कि अपने पिछले जन्म में वे तावतिंस देवलोक में मालाभारी की अनेक पत्नियों में से एक थीं। उन्हें यह भी याद था कि जब वे सभी बगीचे में फूल तोड़ते हुए आनंद ले रही थीं, तब उनका देहांत हुआ था। इसलिए, जब भी वह भिक्षुओं को भेंट चढ़ाती या कोई अन्य पुण्य कर्म करती, तो वह प्रार्थना करती कि उसका पुनर्जन्म तावतिंस लोक में उसके पूर्व पति, मालाभारी की पत्नी के रूप में हो।

एक दिन, पतिपूजिका बीमार पड़ गईं और उसी शाम उनका देहांत हो गया। उनकी हार्दिक इच्छा के अनुसार, उनका पुनर्जन्म तावतिंस देवलोक में मालाभारी की पत्नी के रूप में हुआ। मनुष्यलोक में सौ वर्ष तावतिंस लोक में एक दिन के बराबर होते हैं, इसलिए मालाभारी और उनकी अन्य पत्नियाँ अभी भी उद्यान में आनंद ले रही थीं और उन्हें पतिपूजिका की मृत्यु का पता भी नहीं चला। जब वह उनके पास लौटीं, तो मालाभारी ने उनसे पूछा कि वह पूरी सुबह कहाँ थीं। तब उन्होंने उन्हें तावतिंस से अपने देहांत, मनुष्यलोक में अपने पुनर्जन्म, एक पुरुष से अपने विवाह और चार पुत्रों को जन्म देने, वहाँ से अपने देहांत और अंत में तावतिंस में अपनी वापसी के बारे में बताया।

जब भिक्षुओं को पतिपूजिका की मृत्यु का पता चला, तो वे गहरे शोक में डूब गए। वे बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि पतिपूजिका, जो सुबह-सुबह उन्हें भिक्षा दे रही थीं, शाम को चल बसीं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि प्राणियों का जीवन बहुत छोटा होता है; और इंद्रिय सुखों की तृप्ति से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने वश में कर लेती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 48)

इह पुप्फानि पचिनंतं इव ब्यासत्त मनसां

नारं कामेसु अतित्तं एव अंतको वसं कुरुते

इहा : यहाँ; पुप्पानि : फूल (बगीचे में); पचिनंतं इव : तोड़ने वाले की तरह; ब्यासत्त मनसं [ मनसा ]: इंद्रियों के सुखों में लीन मन; नरं [ नर ]: मनुष्य; कामेसु : इंद्रिय सुखों में; अतित्तं एव : जब तक तृप्त न हो; अंतको [ अंतक ]: मृत्यु (अंतर); वसं कुरुते : अपने वश में कर लेता है

सांसारिक सुखों के पीछे भागने वाले लोग उस मालाकार के समान हैं जो बगीचे में अपनी पसंद के अनुसार फूल चुन-चुनकर निकालते हैं। इंद्रियों के सुखों में लिप्त रहने वाले लोग संतुष्ट नहीं होते। वे और अधिक की खोज करते हैं। इसी अंतहीन सुख-सुविधाओं के कारण वे अंतःक, यानी मृत्यु के वश में आ जाते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 48)

अंतको : शाब्दिक अर्थ है अंत-निर्माता। यह मारा (मृत्यु) का एक अन्य विशेषण है। इस श्लोक में, अंत-निर्माता को उन लोगों को अपने वश में करने वाला बताया गया है जो इंद्रिय सुखों में लीन होकर अन्य सभी चीजों को त्याग देते हैं। काम : इसका अर्थ हो सकता है: 1) व्यक्तिपरक इंद्रिय-इच्छा; 2) वस्तुनिष्ठ इंद्रिय; पाँच इंद्रिय-विषय।

व्यक्तिपरक इंद्रिय-इच्छा पाँचों इंद्रिय-विषयों की ओर निर्देशित होती है और यह पाँच बाधाओं में से एक 'इंद्रिय-इच्छा', दस बंधनों में से एक 'इंद्रिय-वासना', तीन लालसाओं में से एक 'इंद्रिय-लालसा' और तीन कुकर्मों में से एक 'इंद्रिय-विचार' के समानार्थक है। इंद्रिय-इच्छा भी एक दोष और आसक्ति है।

"इंद्रियों के पाँच सूत्र हैं; दृश्य वस्तुएँ, जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जो वांछनीय, प्रिय, सुखद, प्यारी, कामुक और मोहक होती हैं; ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... शरीर की अनुभूतियाँ जो शरीर से देखी जा सकती हैं, जो वांछनीय होती हैं..."
काम के इन दो प्रकारों को इस प्रकार भी कहा जाता है: मानसिक दोष के रूप में काम , और इंद्रिय सुख के आधार के रूप में काम। अंततः अनावर्ती अवस्था में इंद्रिय-इच्छा का नाश हो जाता है। इंद्रिय-इच्छा के खतरे और कष्टों का वर्णन ग्रंथों में अक्सर मिलता है, जिनमें इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य को इंद्रियों के संसार से बांधने वाले अंग या विषय नहीं, बल्कि इच्छा है।

(धम्मपद 48) <<<< पिछला ॥ श्लोक 49 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 50)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 49 - मैकचरियाकोसियासेट्ठि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Yathipi bhamaro puppham
वन्नगंधमेहेतयम
paleti rasamadaya
evam game muni care.

———————————————————————

श्लोक 49 : जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से रस इकट्ठा करती है और फूल को, उसके रंग को या उसकी सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उड़ जाती है, उसी प्रकार भिक्षु को भी गांव में निवास करना चाहिए और कार्य करना चाहिए (ग्रामीणों की आस्था, उदारता या धन को प्रभावित किए बिना)।

———————————————————————

कोसिया की कहानी, एक कंजूस अमीर आदमी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (49) का उच्चारण मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना और कंजूस धनी व्यक्ति कोसिया के संदर्भ में किया।
राजगाह के पास स्थित सक्कारा गाँव में कोसिया नाम का एक कंजूस अमीर आदमी रहता था, जो अपनी किसी भी चीज़ का छोटा सा हिस्सा भी देने से कतराता था। एक दिन, दूसरों के साथ कुछ भी बाँटने से बचने के लिए, वह अमीर आदमी और उसकी पत्नी अपने घर की सबसे ऊपरी मंजिल पर पैनकेक बना रहे थे, जहाँ उन्हें कोई देख न सके।
उस दिन सुबह-सुबह, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से धनी पुरुष और उसकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों शीघ्र ही सोतापत्ति पुण्य प्राप्त कर लेंगे। इसलिए उन्होंने अपने मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना को धनी पुरुष के घर भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे दंपति को दोपहर के भोजन के समय तक जेतवन मठ ले आएं। मुख्य शिष्य अपनी अलौकिक शक्ति से पल भर में कोसिया के घर पहुँच गए और खिड़की पर खड़े हो गए। धनी पुरुष ने उन्हें देखा और जाने के लिए कहा; पूज्य महा मोग्गलाना बिना कुछ कहे वहीं खड़े रहे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से कहा, "एक छोटी सी रोटी बनाओ और भिक्षु को दे दो।" उसने थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला, और रोटी पूरे तवे में भर गई। कोसिया को लगा कि उसकी पत्नी ने शायद ज्यादा आटा डाल दिया है, इसलिए उसने भी थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला; उसकी रोटी भी फूलकर बड़ी हो गई। हुआ यूं कि चाहे वे कितना भी कम आटा डालें, उनसे छोटे पैनकेक नहीं बन पा रहे थे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से टोकरी में से एक पैनकेक भिक्षु को देने को कहा। जब उसने टोकरी से पैनकेक निकालने की कोशिश की, तो वह नहीं निकला क्योंकि सारे पैनकेक आपस में चिपक गए थे और अलग नहीं हो पा रहे थे। तब तक कोसिया की पैनकेक खाने की इच्छा पूरी तरह खत्म हो चुकी थी और उसने पैनकेक की पूरी टोकरी महा मोग्गलाना को दे दी। तब मुख्य शिष्य ने धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दान के विषय में प्रवचन दिया। उन्होंने दंपति को यह भी बताया कि बुद्ध राजगृह से पैंतालीस योजन दूर, सावत्थी के जेतवन मठ में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। महा मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्ति

से कोसिया और उसकी पत्नी को पैनकेक की टोकरी सहित बुद्ध के समक्ष ले गए। वहाँ उन्होंने बुद्ध और पाँच सौ भिक्षुओं को पैनकेक अर्पित किए। भोजन के अंत में, बुद्ध ने दान पर प्रवचन दिया, और कोसिया और उनकी पत्नी दोनों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

अगली शाम, जब भिक्षु महा मोग्गलाना की स्तुति में बातें कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षुओं, तुम्हें भी महा मोग्गलाना की तरह गाँव में निवास करना चाहिए और गाँव वालों की भेंटों को स्वीकार करना चाहिए, उनकी आस्था और उदारता या उनके धन को प्रभावित किए बिना।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 49 : जिस प्रकार मधुमक्खी फूलों से रस इकट्ठा करती है और फूल को, उसके रंग को या उसकी सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उड़ जाती है, उसी प्रकार भिक्षु को भी गांव में निवास करना चाहिए और कार्य करना चाहिए (ग्रामीणों की आस्था, उदारता या धन को प्रभावित किए बिना)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोसिया की कहानी, एक कंजूस अमीर आदमी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य महा मोग्गलाना और कंजूस धनी कोसिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

राजगृह के पास स्थित सक्कारा गाँव में कोसिया नाम का एक कंजूस अमीर आदमी रहता था, जो अपनी किसी भी चीज़ का छोटा सा हिस्सा भी देने से कतराता था। एक दिन, दूसरों के साथ कुछ भी बाँटने से बचने के लिए, वह अमीर आदमी और उसकी पत्नी अपने घर की सबसे ऊपरी मंजिल पर पैनकेक बना रहे थे, जहाँ उन्हें कोई देख न सके।

उस दिन सुबह-सुबह, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों शीघ्र ही सोतापत्ति का फल प्राप्त करेंगे। अतः उन्होंने महा मोग्गलाना को धनी व्यक्ति के घर भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे दंपति को दोपहर के भोजन के समय तक जेतवन मठ ले आएं। अपनी अलौकिक शक्ति से वे पल भर में कोसिया के घर पहुँच गए और खिड़की पर खड़े हो गए।

धनी व्यक्ति ने उसे देखा और जाने के लिए कहा। वह चुपचाप वहीं खड़ा रहा, कुछ बोला नहीं। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से कहा, "एक छोटा सा पैनकेक बनाओ और भिक्षु को दे दो।" उसने थोड़ा सा आटा लिया और उसे तवे में डाला, और पैनकेक पूरे तवे में भर गया। कोसिया को लगा कि उसकी पत्नी ने शायद ज्यादा आटा डाल दिया है, इसलिए उसने भी चुटकी भर आटा लिया और तवे में डाला; उसका पैनकेक भी फूलकर बड़ा हो गया। हुआ यूं कि वे चाहे जितना भी आटा डालें, छोटे पैनकेक नहीं बन पा रहे थे। अंत में, कोसिया ने अपनी पत्नी से टोकरी में से एक पैनकेक भिक्षु को देने के लिए कहा।

जब उसने टोकरी से एक पैनकेक निकालने की कोशिश की, तो वह नहीं निकला क्योंकि सारे पैनकेक आपस में चिपक गए थे और अलग नहीं हो पा रहे थे। तब तक कोसिया की पैनकेक खाने की इच्छा पूरी तरह खत्म हो चुकी थी और उसने पैनकेक की पूरी टोकरी महा मोग्गलाना को अर्पित कर दी। तब प्रमुख शिष्य ने धनी व्यक्ति और उसकी पत्नी को दान पर प्रवचन दिया। उन्होंने दंपति को यह भी बताया कि बुद्ध राजगृह से पैंतालीस योजन दूर, सावत्थी के जेतवन मठ में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं। महा मोग्गलाना ने अपनी अलौकिक शक्ति से कोसिया और उसकी पत्नी को पैनकेक की टोकरी सहित बुद्ध के समक्ष ले गए। वहाँ उन्होंने बुद्ध और पाँच सौ भिक्षुओं को पैनकेक अर्पित किए। भोजन के अंत में, बुद्ध ने दान पर प्रवचन दिया, और कोसिया और उसकी पत्नी दोनों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

अगली शाम, जब भिक्षु महा मोग्गलाना की प्रशंसा में बातें कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षुओं, तुम्हें भी महा मोग्गलाना की तरह गाँव में रहना और व्यवहार करना चाहिए, गाँव वालों की भेंटों को स्वीकार करना चाहिए और उनकी आस्था, उदारता या धन को प्रभावित नहीं करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 49)

यथा अपि भमरो पुष्पं वनगंधं अहेथयं

रसं अदाय पलेति एवं मुनि गेम केयर

यथा अपि : जैसे; भमारो [ भमार ]: मधुमक्खी; पुप्पं [ पुप्पहा ]: फूल; वण्णगंधं [ वण्णगंध ]: रंग और सुगंध; अहेठयं [ अहेठय ]: बिना हानि पहुँचाए; रसं [ रस ]: अमृत; आदाय : लेना; पलेति : फल उत्पन्न करना; एवं मुनि : इस मार्ग से मौन ऋषि; गामे केयर : गाँव में घूमना चाहिए

मधुमक्खी फूलों के रंग या सुगंध को नुकसान पहुंचाए बिना उनसे शहद निकालती है और ऐसा करके पेड़ को खूब फलने-फूलने में मदद करती है। इसी प्रकार, मौन ऋषि गांव में घूम-घूम कर किसी को जरा भी हानि नहीं पहुंचाते और ऐसा करके लोगों को पुण्य और सुख प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 49)
गामे मुनि चरे : मौन ऋषि गाँव में भिक्षा मांगने के लिए घर-घर जाते हैं, प्रत्येक घर से केवल मुट्ठी भर दान लेते हैं, और वह भी केवल स्वेच्छापूर्वक और आदरपूर्वक दिए गए दान से। भ्रमणशील तपस्वी और अन्य सभी धार्मिक भिक्षु अपनी आवश्यकताओं के लिए गाँव पर निर्भर हैं। परन्तु, गुणी मौन ऋषि यह सुनिश्चित करते हैं कि गाँव का किसी भी प्रकार से शोषण न हो। मधुमक्खी फूलों से शहद निकालते समय उन्हें बिना किसी क्षति पहुँचाए परागित करती है। भिक्षा मांगते समय मौन ऋषि लोगों का आध्यात्मिक रूप से भी उपकार करते हैं। वे अपने साधना से जो पुण्य अर्जित करते हैं, उसे उन लोगों के साथ बाँटते हैं जो उनके जीवनयापन में सहायक होते हैं। दानदाताओं को बहुत पुण्य प्राप्त होता है जो उन्हें इस जीवन में और परलोक में सुख प्रदान करता है। एक बौद्ध भिक्षु, भले ही वह समाज से विरक्त हो, केवल अपने लाभ के लिए नहीं कार्य करता, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। वह सभी के कल्याण के लिए कार्य करता है। यह श्लोक हमें इस तथ्य की याद दिलाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 50

———————————————————

(धम्मपद 49) <<<< पिछला ‖ श्लोक 50 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 51)

———————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 50 - पवेय्या आजीवक वत्थु

———————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Na paresam vilomani
na paresam katakatam
अत्नावा अवेक्खेय्या
katani akatani ca.

———————————————————

श्लोक 50 : मनुष्य को दूसरों के दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए, न ही उनके अच्छे या बुरे कर्मों पर। उसे केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि उसने स्वयं अच्छे या बुरे कर्म किए हैं या नहीं।

———————————————————

तपस्वी पावेय्या की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तपस्वी पावेय्या और एक धनी महिला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (50) कहा।
श्रावस्ती की एक धनी महिला ने पावेय्या नामक एक तपस्वी को पुत्र के रूप में गोद लिया था और उसकी देखभाल करती थी। जब उसने अपने पड़ोसियों को बुद्ध की प्रशंसा करते सुना, तो उसकी बहुत इच्छा हुई कि वह उन्हें अपने घर आमंत्रित करे और भिक्षा भोजन कराए। इसलिए, बुद्ध को आमंत्रित किया गया और उत्तम भोजन परोसा गया। जब बुद्ध प्रशंसा कर रहे थे (अनुमोदन), तो पावेय्या, जो बगल के कमरे में थे, क्रोधित हो उठे। उन्होंने बुद्ध की पूजा करने के लिए महिला को दोषी ठहराया और शाप दिया। महिला ने उन्हें शाप देते और चिल्लाते हुए सुना और इतना शर्मिंदा हुई कि वह बुद्ध की बातों पर ध्यान नहीं दे सकी। बुद्ध ने उनसे कहा कि वे उन शापों और धमकियों की परवाह न करें, बल्कि केवल अपने अच्छे और बुरे कर्मों पर ध्यान दें।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 50 : मनुष्य को दूसरों के दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए, न ही उनके अच्छे या बुरे कर्मों पर। उसे केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि उसने स्वयं अच्छे या बुरे कर्म किए हैं या नहीं।

---

प्रवचन के अंत में धनी महिला ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तपस्वी पावेय्या की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तपस्वी पावेय्या और एक धनी महिला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उनकी एक सबसे करीबी पड़ोसी, जो बुद्ध का धम्म प्रवचन सुनने गई थीं, लौटकर बुद्ध के गुणों की अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुए बोलीं, "अरे, धम्म प्रवचन कितना अद्‌भुत है!" जब उस स्त्री ने अपने पड़ोसियों को बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा करते सुना, तो उसकी भी मठ जाकर धम्म प्रवचन सुनने की इच्छा हुई। इसलिए उसने नग्न तपस्वी से कहा, "हे महाराज, मैं बुद्ध का प्रवचन सुनने जाना चाहती हूँ।" लेकिन जितनी बार उसने यह निवेदन किया, नग्न तपस्वी ने उसे जाने से मना करते हुए कहा, "मत जाओ।" स्त्री ने मन ही मन सोचा, "चूँकि यह नग्न तपस्वी मुझे मठ जाकर धम्म प्रवचन सुनने की अनुमति नहीं दे रहा है, तो मैं बुद्ध को अपने घर आमंत्रित करूँगी और यहीं प्रवचन सुनूँगी।"

इसलिए, जब शाम हुई, तो उसने अपने बेटे को बुलाया और उसे बुद्ध के पास भेजकर कहा, "जाओ, बुद्ध को कल मेरे यहाँ आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने का निमंत्रण दो।" लड़का चल पड़ा, लेकिन पहले नग्न तपस्वी के निवास स्थान पर गया, उन्हें प्रणाम किया और बैठ गया।

लड़के ने नग्न तपस्वी के निर्देशों को सुना और फिर बुद्ध के पास जाकर उन्हें निमंत्रण दिया। जब उसने नग्न तपस्वी के निर्देशों के अनुसार सब कुछ कर लिया, तो वह उनके पास लौट आया। नग्न तपस्वी ने पूछा, "तुमने क्या किया?" लड़के ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, आपने जो कुछ भी करने को कहा, मैंने सब किया।" "तुमने बहुत अच्छा किया। अब हम दोनों उनके लिए तैयार किया गया स्वादिष्ट भोजन करेंगे।" अगले दिन, सुबह-सुबह, नग्न तपस्वी लड़के को साथ लेकर उस घर में गए और दोनों पीछे के कमरे में बैठ गए।

पड़ोसियों ने उस घर पर गोबर का लेप लगाया, उसे लाजा फूल सहित पांच प्रकार के फूलों से सजाया और एक बहुमूल्य आसन तैयार किया, ताकि बुद्ध उसमें बैठ सकें।

बुद्ध ने सुबह-सुबह ही प्याला और वस्त्र लेकर सीधे महान गृहस्थ शिष्या के घर गए। जब बुद्ध ने अपना भोजन समाप्त कर लिया, तो शिष्या ने धम्म सुना और बुद्ध की प्रशंसा करते हुए कहा, "बहुत खूब! बहुत खूब!"

नग्न तपस्वी ने गृहस्थ शिष्य से कहा, "इस व्यक्ति की इस प्रकार प्रशंसा करके तुम पाप कर रहे हो।" और उसने गृहस्थ शिष्य और बुद्ध दोनों को हर तरह से अपशब्द कहे और फिर भाग गया। बुद्ध ने उससे पूछा, "हे गृहस्थ शिष्य, क्या तुम मेरे प्रवचन पर ध्यान नहीं लगा पा रही हो?" उसने उत्तर दिया, "हे आदरणीय गुरु, इस नग्न तपस्वी के अपमानजनक शब्दों से मेरा मन पूरी तरह व्याकुल है।" बुद्ध ने कहा, "ऐसे विधर्मी की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए; केवल अपने कर्मों और अकर्मों पर ध्यान देना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 50)

परेसं विलोमनि न , परेसं कटकटं न ,

अत्तनो एव कतानि अकतानि च अवेक्खेया

परेसां [ परेसा ]: दूसरों का; विलोमनि : दोष-निष्कर्ष; ना : मत (सम्मान); परेसां [ परेसा ]: दूसरों का; कटकटाम् [ कटकटा ]: किए गए और न किए गए कार्य; ना : परवाह मत करो; अत्तानो ईवा : केवल अपना; कतानि अकतानि च : चूक और कमीशन; अवेक्खेय्या : ध्यान से जांचें (जांचें)

दूसरों में दोष मत ढूंढो। दूसरों के कार्यों की चिंता मत करो। बल्कि, अपने भीतर झांककर देखो कि तुमने स्वयं क्या किया है और क्या नहीं किया है। बुराई करना छोड़ो; अच्छाई करो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 50)

परेसं कतकं : दूसरों के कर्म और अपकृत्य। यह श्लोक अधिकांश मनुष्यों की एक कमजोरी की पड़ताल करता है। वे दूसरों के दोषों को तो ध्यान से देखते हैं, लेकिन अपने दोषों को नहीं। यह केवल आम लोगों तक ही सीमित नहीं है। भिक्षु भी दूसरों के दोषों को देखने की इस आदत का पालन करते हैं। दूसरों को देखने का यह रवैया आध्यात्मिक विकास में बाधक है, क्योंकि यह आत्मनिरीक्षण को रोकता है, जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

---

(धम्मपद 50) <<<< पिछला ॥ श्लोक 51 और 52 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 53)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 51 और 52 - चट्टपानी उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathapi ruciram puppham
वन्नवंतम अगंधकम
evam subhasita vaca
aphala hoti akubbato.

Yathapi ruciram puppham
vannavantam sagandhakam
evam subhasita vaca
saphala hoti kubbato.

---

श्लोक 51 : जिस प्रकार सुगंधहीन सुंदर फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ नहीं दे सकता, उसी प्रकार बुद्ध के सुशोभित वचन भी उस व्यक्ति को लाभ नहीं पहुंचा सकते जो धम्म का अभ्यास नहीं करता।

---

श्लोक 52 : जिस प्रकार एक सुंदर और सुगंधित फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ देता है, उसी प्रकार बुद्ध के सुविचारित वचन भी धम्म का अभ्यास करने वाले को लाभ पहुंचाते हैं।

---

चट्टापानी की कहानी, एक गृहस्थ शिष्य

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (51) और (52) का उच्चारण गृहस्थ शिष्य चट्टापानी और कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) की दो रानियों के संदर्भ में किया।

सावत्थी में चट्टपाणि नामक एक गृहस्थ शिष्य रहते थे, जो अनागामी (1) थे। एक बार चट्टपाणि जेतवन मठ में बुद्ध के साथ श्रद्धापूर्वक और ध्यानपूर्वक धार्मिक प्रवचन सुन रहे थे, तभी राजा पसेनदी (प्रसेनजित) भी बुद्ध के पास आ गए। चट्टपाणि खड़े नहीं हुए क्योंकि उनका मानना था कि खड़े होने का अर्थ यह हो सकता है कि वे राजा का सम्मान तो कर रहे हैं, लेकिन बुद्ध का उचित सम्मान नहीं कर रहे हैं। राजा ने इसे अपमान समझा और बहुत आहत हुए। बुद्ध राजा की भावनाओं को भलीभांति जानते थे; इसलिए उन्होंने चट्टपाणि की प्रशंसा की, जो धम्म में पारंगत थे और अनागामी फल भी प्राप्त कर चुके थे। यह सुनकर राजा प्रभावित हुए और चट्टपाणि के प्रति उनका स्नेह जागा।

जब राजा अगली बार चट्टपाणि से मिले, तो उन्होंने कहा, "आप इतने विद्वान हैं; क्या आप कृपया महल में आकर मेरी दोनों रानियों को धम्म की शिक्षा दे सकते हैं?" चट्टपाणि ने मना कर दिया, लेकिन उन्होंने सुझाव दिया कि राजा को इस कार्य के लिए बुद्ध से एक भिक्षु नियुक्त करने का अनुरोध करना चाहिए। इसलिए, राजा ने इस संबंध में बुद्ध से संपर्क किया, और बुद्ध ने पूज्य आनंद को नियमित रूप से महल में जाकर रानी मल्लिका और रानी वासभक्तिया को धम्म की शिक्षा देने का निर्देश दिया। कुछ समय बाद, बुद्ध ने पूज्य आनंद से दोनों रानियों की प्रगति के बारे में पूछा। पूज्य आनंद ने उत्तर दिया कि यद्यपि मल्लिका गंभीरता से धम्म का अध्ययन कर रही थीं, वासभक्तिया उचित ध्यान नहीं दे रही थीं। यह सुनकर बुद्ध ने कहा कि धम्म केवल उन्हीं के लिए लाभकारी हो सकता है जो इसे उचित सम्मान और ध्यान के साथ गंभीरता से सीखते हैं और फिर जो सिखाया गया है उसका लगन से अभ्यास करते हैं।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 51 : जिस प्रकार सुगंधहीन सुंदर फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ नहीं दे सकता, उसी प्रकार बुद्ध के सुशोभित वचन भी उस व्यक्ति को लाभ नहीं पहुंचा सकते जो धम्म का अभ्यास नहीं करता।

———————————————————————

श्लोक 52 : जिस प्रकार एक सुंदर और सुगंधित फूल पहनने वाले को अपनी सुगंध का लाभ देता है, उसी प्रकार बुद्ध के सुविचारित वचन भी धम्म का अभ्यास करने वाले को लाभ पहुंचाते हैं।

———————————————————————

(1) अनागामी: वह जिसने तीसरा मार्ग (पथ/प्राप्ति) प्राप्त कर लिया है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
चट्टपानी की कहानी, एक गृहस्थ शिष्य
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी की दो रानियों और उनके गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि के संदर्भ में ये श्लोक कहे। सावत्थी में चट्टपाणि नामक एक गृहस्थ शिष्य रहता था, जो त्रिपिटक का ज्ञाता था और द्वितीय मार्ग का फल भोग रहा था। एक सुबह, उपवास रखते हुए, वह बुद्ध को प्रणाम करने गया। द्वितीय मार्ग का फल भोगने वाले और श्रेष्ठ शिष्य अपने पूर्व व्रत के कारण उपवास के दायित्वों को नहीं मानते। ऐसे व्यक्ति केवल मार्ग के फल के कारण ही पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं और दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा, "महान राजा, कुम्हार घटिकार दिन में केवल एक बार भोजन करता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, गुणी और धर्मनिष्ठ है।" अतः, स्वाभाविक रूप से, द्वितीय मार्ग का फल भोगने वाले दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं और पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।
छत्तपाणि ने भी व्रत रखते हुए बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर धम्म का प्रवचन सुना। उसी समय राजा पसेनादि कोसल भी बुद्ध को प्रणाम करने आए। जब छत्तपाणि ने उन्हें आते देखा, तो वे सोचने लगे, "क्या मुझे उठकर उनका अभिवादन करना चाहिए या नहीं?" उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला, "चूंकि मैं बुद्ध के समक्ष बैठा हूँ, इसलिए उनके प्रांत के राजा को देखकर मुझे उठने की आवश्यकता नहीं है। भले ही वे क्रोधित हो जाएँ, मैं नहीं उठूँगा। क्योंकि यदि मैं राजा को देखकर उठूँगा, तो राजा का सम्मान होगा, बुद्ध का नहीं। इसलिए मैं नहीं उठूँगा।" अतः छत्तपाणि नहीं उठे। (बुद्धिमान लोग उच्च पदस्थ व्यक्तियों के समक्ष किसी व्यक्ति को बैठे देखकर कभी क्रोधित नहीं होते।)
लेकिन जब राजा पसेनादि ने देखा कि चट्टपाणि नहीं उठे, तो उनका हृदय क्रोध से भर गया। फिर भी, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें क्रोधित देखकर कहा, "महाराज, यह गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं, जो धम्म को जानते हैं, त्रिपिटक के ज्ञाता हैं और सुख-दुख दोनों में संतुष्ट रहते हैं।" इस प्रकार बुद्ध ने गृहस्थ शिष्य के अच्छे गुणों की प्रशंसा की। बुद्ध द्वारा गृहस्थ शिष्य की प्रशंसा सुनकर राजा का हृदय कोमल हो गया।
एक दिन नाश्ते के बाद, राजा अपने महल की ऊपरी मंजिल पर खड़े थे, तभी उन्होंने देखा कि उनके गृहस्थ शिष्य चट्टपाणि हाथ में छाता और पैरों में चप्पल लिए महल के प्रांगण से गुजर रहे हैं। राजा ने तुरंत उन्हें अपने समक्ष बुलावा भेजा। चट्टपाणि ने अपना छाता और चप्पल एक तरफ रख दिए, राजा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए। राजा ने चट्टपाणि से कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, तुमने अपना छाता और चप्पल क्यों एक तरफ रख दिए?" "जब मैंने सुना कि 'राजा आपको बुला रहे हैं,' तो मैंने उनके समक्ष आने से पहले अपना छाता और चप्पल एक तरफ रख दिए।" "तो स्पष्ट है कि आज तुम्हें पता चल गया कि मैं राजा हूँ।" "मुझे हमेशा से पता था कि आप राजा हैं।" "यदि ऐसा है, तो उस दिन जब आप बुद्ध के समक्ष बैठे थे और मुझे देखा था, तो आप क्यों नहीं उठे?"
"महाराज, जब मैं बुद्ध के समक्ष बैठा था, तो उनके ही प्रांत के राजा को देखकर उठना बुद्ध का अनादर करना होता। इसलिए मैं नहीं उठा।" "ठीक है, जो हुआ सो हुआ। मुझे बताया गया है कि आप वर्तमान और परलोक से संबंधित विषयों में पारंगत हैं; आप त्रिपिटक

के ज्ञाता हैं। हमारे स्त्री-कक्ष में धम्म का पाठ कीजिए।" "महाराज, मैं नहीं कर सकता।" "क्यों नहीं?" "राजा का घर घोर निंदा के अधीन होता है। महाराज, इस मामले में उचित और अनुचित दोनों ही गंभीर मामले हैं।" "ऐसा मत कहिए। उस दिन जब आपने मुझे देखा, तब आपने न उठना ही उचित समझा। जले पर नमक न छिड़किए।" "महाराज, गृहस्थों के लिए भिक्षुओं के कार्य करना निंदनीय कार्य है। किसी भिक्षु को बुलाइए और उनसे धम्म का पाठ करने को कहिए।"

राजा ने उन्हें यह कहकर विदा किया, "ठीक है महाराज, आप जा सकते हैं।" ऐसा करने के बाद, उन्होंने बुद्ध के पास एक दूत भेजा और उनसे निवेदन किया, "हे पूज्यवर, मेरी पत्नियाँ मल्लिका और वासभखत्तिया कहती हैं, 'हम धम्म में पारंगत होना चाहती हैं।' इसलिए कृपया पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नियमित रूप से मेरे घर आएँ और धम्म का उपदेश दें।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, मेरे लिए नियमित रूप से किसी एक स्थान पर जाना संभव नहीं है।" ऐसे में, हे पूज्यवर, किसी भिक्षु को भेजिए।" बुद्ध ने यह कार्य पूज्य आनंद को सौंपा। और पूज्य आनंद नियमित रूप से आकर उन रानियों को धम्म का पाठ करते थे। दोनों रानियों में से, मल्लिका ने अच्छी तरह से सीखा, नियमित रूप से अभ्यास किया और अपने गुरु के निर्देशों का पालन किया। परन्तु वासभखत्तिया ने न तो अच्छी तरह से सीखा, न ही नियमित रूप से अभ्यास किया और न ही उन्हें प्राप्त शिक्षा में पारंगत हो सकी।

एक दिन बुद्ध ने पूज्य आनंद से पूछा, "आनंद, क्या आपकी महिला शिष्याएँ धर्म में पारंगत हैं?" "जी हाँ, पूज्य।" "उनमें से कौन सर्वथा सीखती है?" "मल्लिका सर्वथा सीखती है, निष्ठापूर्वक अभ्यास करती है और प्राप्त शिक्षा को सर्वथा समझ सकती है। परन्तु आपकी सगोत्री न तो सर्वथा सीखती है, न निष्ठापूर्वक अभ्यास करती है और न ही प्राप्त शिक्षा को सर्वथा समझ सकती है।" जब बुद्ध ने भिक्षु का उत्तर सुना, तो उन्होंने कहा, "आनंद, मैंने जिस धर्म का उपदेश दिया है, वह सुनने, सीखने, अभ्यास करने और प्रचार करने में निष्ठावान न रहने वाले के लिए निरर्थक है, जैसे रंग वाला फूल जिसमें सुगंध न हो। परन्तु जो धर्म को सुनने, सीखने, अभ्यास करने और प्रचार करने में निष्ठावान रहता है, उसे प्रचुर फल और अनेक प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 51)

रुचिरं वनवन्तं सगन्धकं पुष्पं यथा अपि
एवं सुभाषित वाचा अकुब्बतो सफला होति

रुचिरां [ रुचिरा ]: आकर्षक, आकर्षक; वनवन्तम् [ वनवन्त ]: चमकीले रंग का; सगन्धकम् [ सगन्धक ]: सुगंध से रहित; पुप्फाम् [ पुप्फा ]: फूल; यथा अपि एवम् : और इसी प्रकार; सुभाषिता वाचा : अच्छी तरह से व्यक्त शब्द; अकुब्बतो [ अकुब्बाता ]: गैर-व्यवसायी का ; अफला होती है : किसी काम के नहीं

एक फूल कितना भी सुंदर और आकर्षक क्यों न हो। उसका रंग कितना भी चमकीला क्यों न हो। लेकिन अगर उसमें सुगंध न हो, तो वह किसी काम का नहीं। ठीक वैसे ही, जो व्यक्ति अपने शब्दों पर अमल नहीं करता, उसके अच्छे शब्द भी व्यर्थ साबित होते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 52)

रुचिरं वनवन्तं सगन्धकं पुष्पं यथा अपि ,
एवं सुभाषित वाचा सकुब्बतो सफला होति

रुचिरां [ रुचिरा ]: आकर्षक, आकर्षक; वनवन्तम् [ वनवन्त ]: चमकीले रंग का; सगन्धकम् [ सगन्धक ]: सुगंध से भरपूर (सुगंधित); पुप्फाम् [ पुप्फा ]: फूल; यथा अपि एवम् : ऐसे ही; सुभाषित वाचा : अच्छी तरह बोला गया शब्द; सकुब्बतो [ सकुब्बता ]: अभ्यासकर्ता को; सफला होती : लाभ होता है

एक फूल बेहद आकर्षक, मोहक और चमकीले रंग का हो सकता है। इसके अलावा, वह सुगंध से भरपूर भी हो सकता है। ठीक वैसे ही, वह व्यक्ति जो अच्छी तरह बोलता है और अपने कहे अनुसार व्यवहार करता है, वह भी प्रभावशाली होता है। उसके शब्द असरदार होते हैं और उनका सम्मान किया जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 51-52)

गंधकम् : सुगंध रहित। फूल का सार उसकी मधुर सुगंध में निहित है। फूल देखने में आकर्षक हो सकता है, रंग-बिरंगा और चमकीला हो सकता है, लेकिन अगर उसमें सुगंध न हो तो वह फूल कहलाने में विफल हो जाता है। यहाँ उदाहरण बुद्ध के वचनों से दिया गया है — ऐसे व्यक्ति द्वारा बोले गए वचन जो स्वयं उनका अभ्यास नहीं करता। वचन चमकीला और रंगों से परिपूर्ण है, लेकिन उसकी मधुर सुगंध अभ्यास से ही आती है।

सगंधकम् : सुगंधित। यदि कोई फूल रंग-बिरंगा हो, देखने में सुंदर हो और उसकी सुगंध मनमोहक हो, तो उसने फूल के रूप में अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। बुद्ध के वचन के साथ भी ऐसा ही है। अभ्यास करने पर ही उसमें मधुर सुगंध आती है।

अकुब्बतो , सकुब्बतो : ये दो शब्द बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप पर ज़ोर देते हैं। बुद्ध का मार्ग केवल आस्था का धर्म नहीं है। यदि ऐसा होता, तो मुक्ति के लिए केवल बाहरी देवी-देवताओं या उद्धारकों पर निर्भर रहना पड़ता। परन्तु बुद्ध के वचन के संदर्भ में, सबसे आवश्यक है अभ्यास। बुद्ध के वचन की 'सुंदरता' या 'मधुरता' अभ्यास से ही आती है। यदि कोई व्यक्ति केवल बुद्ध के वचन का

उच्चारण करे, परन्तु उसका अभ्यास न करे — यदि वह अकुब्बतो है — तो वह एक चमकीले रंग के फूल के समान है जिसमें सुगंध नहीं है। परन्तु यदि वह सकुब्बतो है — बुद्ध के वचन का अभ्यास करने वाला व्यक्ति — तो वह एक आदर्श फूल बन जाता है — रंग और रूप में सुंदर, और अपनी मधुर सुगंध में भी।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 53

———————————————————————

(धम्मपद 51, 52) <<<< पिछला ‖ श्लोक 53 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 54, 55)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 53 - विशाखा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

यथापी पुप्परसिम्हा
kayira malagune bahu
evam jatena maccena
kattabbam kusalam bahum(1).

———————————————————————

श्लोक 53 : जैसे एक कुशल फूल विक्रेता फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बना सकता है, वैसे ही जन्म और मृत्यु के अधीन व्यक्ति (धन से, विश्वास और उदारता से) बहुत अच्छा काम कर सकता है।

———————————————————————

1. kattabbam kusalam bahum: बहुत से अच्छे कार्य किए जा सकते हैं। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है कि धन से, विश्वास और उदारता से अनेक पुण्य कर्म किए जाने चाहिए।

———————————————————————

विशाखा की कहानी

सावत्थी में पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दाता विशाखा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (53) कहा।

विशाखा, भद्दिया के एक धनी व्यक्ति दानंचया और उनकी पत्नी सुमनदेवी की पुत्री और राजा बिम्बिसार के राज्य के पाँच अत्यंत धनी व्यक्तियों में से एक मेंडक की पोती थीं। जब विशाखा सात वर्ष की थीं, तब बुद्ध भद्दिया की यात्रा पर आए। उस अवसर पर, धनी व्यक्ति मेंडक विशाखा और उनके पाँच सौ साथियों को बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने साथ ले गए। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, विशाखा, उनके दादा और उनके सभी पाँच सौ साथियों ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।

जब विशाखा बालिग हुई, तो उसका विवाह श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति मिगारा के पुत्र पुन्नवादाहन से हुआ। एक दिन, जब मिगारा भोजन कर रहे थे, एक भिक्षु उनके घर भिक्षा मांगने आया; लेकिन मिगारा ने भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया। यह देखकर विशाखा ने भिक्षु से कहा, "महोदय, मुझे क्षमा करें, मेरे ससुर केवल बचा हुआ भोजन खाते हैं।" यह सुनकर मिगारा क्रोधित हो गए और उन्हें अपने घर से चले जाने को कहा। लेकिन विशाखा ने कहा कि वह नहीं जाएंगी, और वह अपने पिता द्वारा भेजे गए आठ धनी बुजुर्ग

पुरुषों को बुलवाएंगी जो उनके साथ आए थे और उन्हें सलाह देने आए थे। यह निर्णय उन्हें करना था कि वह दोषी हैं या नहीं। जब बुजुर्ग आए, तो मिगारा ने उनसे कहा, "जब मैं सोने के कटोरे में दूध के साथ चावल खा रहा था, तब विशाखा ने कहा कि मैं केवल गंदगी और मैल खा रहा हूँ। इस अपराध के लिए, मैं उसे घर से निकाल रहा हूँ।" तब विशाखा ने आगे कहा: "जब मैंने अपने ससुर को भिक्षा मांगने खड़े भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा करते देखा, तो मैंने मन ही मन सोचा कि मेरे ससुर इस जन्म में कोई पुण्य कर्म नहीं कर रहे हैं। वे केवल अपने पिछले अच्छे कर्मों का फल भोग रहे हैं। इसलिए मैंने कहा, 'मेरे ससुर तो केवल बचा हुआ भोजन खाते हैं।' महोदय, अब आप क्या सोचते हैं, क्या मैं दोषी हूँ?" बड़ों ने निर्णय लिया कि विशाखा दोषी नहीं हैं। तब विशाखा ने कहा कि उन्हें बुद्ध की शिक्षाओं में पूर्ण और अटूट आस्था है, इसलिए वे वहाँ नहीं रह सकतीं जहाँ भिक्षुओं का स्वागत न हो; और यह भी कि यदि उन्हें भिक्षुओं को भिक्षा देने और अन्य भेंट चढ़ाने के लिए घर में आमंत्रित करने की अनुमति नहीं दी गई, तो वे घर छोड़ देंगी। अतः उन्हें बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर में आमंत्रित करने की अनुमति दी गई।

अगले दिन, बुद्ध और उनके शिष्यों को विशाखा के घर आमंत्रित किया गया। जब भिक्षा देने का समय हुआ, तो विशाखा ने अपने ससुर को संदेश भेजा कि वे भी भिक्षा देने में शामिल हों; लेकिन वे नहीं आए। भोजन समाप्त होने के बाद, उन्होंने फिर से संदेश भेजा, इस बार अपने ससुर से अनुरोध किया कि वे बुद्ध के प्रवचन को सुनने में उनके साथ शामिल हों। उनके ससुर ने सोचा कि उन्हें दूसरी बार मना नहीं करना चाहिए। लेकिन उनके तपस्वी गुरु, निगंथों ने उन्हें जाने नहीं दिया; हालांकि, उन्होंने उन्हें पर्दे के पीछे से सुनने की अनुमति दे दी। बुद्ध का प्रवचन सुनने के बाद मिगारा ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। वे बुद्ध और अपनी बहू के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे। इतनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, उन्होंने घोषणा की कि अब से विशाखा उनके लिए माता के समान होंगी, और विशाखा मिगारामता के नाम से जानी जाने लगीं।

विशाखा के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, और उनके सभी पुत्र-पुत्रियों और नाती-पोतों के भी दस-दस पुत्र और दस-दस पुत्रियाँ थीं। विशाखा के पास एक अत्यंत मूल्यवान रत्नजड़ित वस्त्र था, जो उनके पिता ने उन्हें विवाह उपहार में दिया था। एक दिन, विशाखा अपने दल के साथ जेतवन मठ गईं। मठ पहुँचने पर उन्होंने पाया कि उनका रत्नजड़ित वस्त्र बहुत भारी था। इसलिए उन्होंने उसे उतारकर अपनी शॉल में लपेट लिया और दासी को उसे संभाल कर रखने के लिए दे दिया। दासी उसे अनमने ढंग से मठ में ही छोड़ गई। पूज्य आनंद की यह प्रथा थी कि वे अपने किसी भी शिष्य द्वारा छोड़ी गई वस्तु का ध्यान रखते थे। विशाखा ने दासी को मठ वापस भेजते हुए कहा, "जाओ और रत्नजड़ित वस्त्र को ढूँढ़ो, लेकिन यदि पूज्य आनंद ने उसे पहले ही ढूँढ़ लिया हो और कहीं रख दिया हो तो उसे वापस मत लाना; मैं यह रत्नजड़ित वस्त्र पूज्य आनंद को दान करती हूँ।" लेकिन पूज्य आनंद ने उनका दान स्वीकार नहीं किया। इसलिए विशाखा ने रत्नजड़ित लबादा बेचकर उससे प्राप्त धन दान करने का निर्णय लिया। लेकिन कोई भी उस रत्नजड़ित लबादे को खरीदने में सक्षम नहीं था। इसलिए विशाखा ने उसे नौ करोड़ एक लाख में वापस खरीद लिया। इस धन से उन्होंने शहर के पूर्वी भाग में एक मठ बनवाया; यह मठ बाद में पुब्बाराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अभिषेक संस्कार के बाद उसने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बुलाया और उस रात उन्हें बताया कि उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हो गई हैं और अब उसकी कोई इच्छा नहीं बची है। फिर उसने हर्षोल्लास के पाँच श्लोक गाते हुए मठ के चारों ओर चक्कर लगाया। कुछ भिक्षुओं ने उसे गाते हुए सुना और बुद्ध को बताया कि विशाखा पहले जैसी नहीं रही और वह मठ के चारों ओर गाते हुए चक्कर लगा रही है। उन्होंने बुद्ध से पूछा, "क्या वह पागल हो गई है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "आज विशाखा की पिछले और वर्तमान जन्मों की सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गई थीं और इस उपलब्धि के कारण वह अत्यंत प्रसन्न और संतुष्ट थीं; विशाखा केवल हर्षोल्लास के कुछ श्लोकों का पाठ कर रही थीं; वह निश्चित रूप से भ्रमित नहीं थीं। विशाखा अपने सभी पिछले जन्मों में हमेशा उदार दानदाता और बुद्धों के सिद्धांतों की प्रबल समर्थक रही थीं। वह अच्छे कर्म करने के लिए अत्यंत इच्छुक थीं और उन्होंने अपने पिछले जन्मों में बहुत अच्छे कार्य किए थे, ठीक उसी प्रकार जैसे एक कुशल फूलवाला फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बनाता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 53 : जैसे एक कुशल फूल विक्रेता फूलों के संग्रह से कई मालाएँ बना सकता है, वैसे ही जन्म और मृत्यु के अधीन व्यक्ति (धन से, विश्वास और उदारता से) बहुत अच्छा काम कर सकता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा की कहानी

सावत्थी के पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ की प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। विशाखा, भद्दिया के एक धनी व्यक्ति धनंजय और उनकी पत्नी सुमनादेवी की पुत्री और राजा बिम्बिसार के राज्य के पाँच अत्यंत धनी व्यक्तियों में से एक मेन्दक की पोती थीं। जब विशाखा सात वर्ष की थीं, तब बुद्ध भद्दिया आए थे। उस अवसर पर, धनी व्यक्ति मेन्दक विशाखा और उनके पाँच सौ साथियों को अपने साथ बुद्ध को प्रणाम करने के लिए ले गए थे। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, विशाखा,

उनके दादा और उनके सभी पाँच सौ साथियों ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया। जब विशाखा बालिग हुईं, तो उनका विवाह सावत्थी के एक धनी व्यक्ति मिगारा के पुत्र पुन्णवद्धन से हुआ। एक दिन, जब मिगारा भोजन कर रहे थे, एक भिक्षु उनके घर भिक्षा मांगने आया; लेकिन मिगारा ने भिक्षु को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया। यह देखकर विशाखा ने भिक्षु से कहा, "महोदय, मुझे खेद है, मेरे ससुर जी केवल बचा हुआ भोजन ही खाते हैं।" यह सुनकर मिगारा क्रोधित हो गया और विशाखा को अपना घर छोड़ने को कहा। परन्तु विशाखा ने कहा कि वह नहीं जाएगी और अपने पिता द्वारा भेजे गए आठ धनी वृद्ध पुरुषों को बुलवाएगी, जो उसके साथ आए थे और उसे सलाह देने आए थे। उन्हें ही तय करना था कि वह दोषी है या नहीं। जब वृद्ध आए, तो मिगारा ने उन्हें सारी कहानी सुनाई। वृद्धों ने फैसला किया कि विशाखा दोषी नहीं है। तब विशाखा ने कहा कि वह बुद्ध की शिक्षाओं में पूर्ण और अटूट आस्था रखती है, इसलिए वह ऐसी जगह नहीं रह सकती जहाँ भिक्षुओं का स्वागत न हो; और यह भी कि यदि उसे भिक्षुओं को घर में भिक्षा देने और अन्य भेंट चढ़ाने के लिए आमंत्रित करने की अनुमति नहीं दी गई, तो वह घर छोड़ देगी। अतः उसे बुद्ध और उनके भिक्षुओं को घर में आमंत्रित करने की अनुमति दे दी गई।

अगले दिन, बुद्ध और उनके शिष्यों को विशाखा के घर आमंत्रित किया गया। जब भिक्षा देने का समय हुआ, तो उन्होंने अपने ससुर को संदेश भेजा कि वे भी उनके साथ भोजन करें; लेकिन वे नहीं आए। भोजन समाप्त होने के बाद, उन्होंने फिर से संदेश भेजा, इस बार अपने ससुर से अनुरोध किया कि वे बुद्ध के प्रवचन को सुनने के लिए उनके साथ आएं। उनके ससुर ने सोचा कि उन्हें दूसरी बार मना नहीं करना चाहिए। लेकिन उनके तपस्वी गुरु, निगंठों ने उन्हें जाने नहीं दिया, हालांकि उन्होंने उन्हें पर्दे के पीछे से सुनने की अनुमति दी। बुद्ध का प्रवचन सुनने के बाद मिगार ने सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त किया। वे बुद्ध और अपनी बहू के प्रति अत्यंत कृतज्ञ थे। कृतज्ञ होकर उन्होंने घोषणा की कि अब से विशाखा उनके लिए माता के समान होंगी, और विशाखा मिगारमाता के नाम से जानी जाने लगीं। विशाखा के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं, और उनके प्रत्येक संतान और नाती-पोती के दस पुत्र और दस पुत्रियाँ थीं। विशाखा के पास एक अत्यंत मूल्यवान रत्नजड़ित आभूषण था जो उनके पिता ने उन्हें विवाह उपहार के रूप में दिया था। एक दिन, विशाखा अपने दल के साथ जेतवन मठ गईं। मठ पहुँचने पर, उन्होंने पाया कि उनका रत्नजड़ित आभूषण बहुत भारी है। इसलिए, उन्होंने उसे उतारकर अपनी शॉल में लपेट लिया और दासी को पकड़ने के लिए दे दिया। दासी ने अनमने ढंग से उसे मठ में ही छोड़ दिया। पूज्य आनंद की यह प्रथा थी कि वे अपने किसी भी शिष्य द्वारा छोड़ी गई वस्तुओं की देखभाल करते थे। विशाखा ने दासी को मठ में वापस भेजते हुए कहा, "जाओ और रत्नजड़ित आभूषण ढूंढो, लेकिन यदि पूज्य आनंद ने उसे पहले ही ढूंढ लिया हो और कहीं सुरक्षित रख दिया हो तो उसे वापस मत लाना; मैं यह रत्नजड़ित आभूषण पूज्य आनंद को दान करती हूँ।" लेकिन पूज्य आनंद ने उनका दान स्वीकार नहीं किया। इसलिए विशाखा ने उसे बेचकर उससे प्राप्त राशि दान करने का निर्णय लिया।

लेकिन उस आभूषण को खरीदने की सामर्थ्य रखने वाला कोई नहीं था। इसलिए विशाखा ने उसे नौ अरब एक लाख में वापस खरीद लिया। इस धन से उन्होंने शहर के पूर्वी भाग में एक मठ बनवाया; यह मठ बाद में पुब्बाराम के नाम से जाना जाने लगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 53)

यथा अपि पुप्फरसिम्हा बहु मालगुने कयिरा ,

एवं जतेन मैक्केना बहुं कुसलं कट्टाबं

यथा अपि : जैसे; पुप्परसिम्हा : अनेक फूलों से; बहु : अनेक; मालागुणे : मालाएँ; कयिरा : उत्पन्न करता है; एवं : इसी प्रकार; जातेन मच्चेन : इस संसार में जन्म लेने वाले मनुष्य द्वारा; बहुं [ बहु ]: अनेक; कुसलं [ कुसल ]: पुण्य कर्म; कट्टब्बं [ कट्टब्ब ]: किए जाने चाहिए

एक कुशल मालाकार अनेक प्रकार के फूल लेकर उनसे अलग-अलग लताओं और रंगों से सजी मालाएँ बनाता है। ठीक इसी प्रकार, इस संसार में जन्म लेने वाले सभी लोगों को अपने जीवन में अनेक प्रकार के अच्छे, सार्थक और पुण्य कर्म करने चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 53)

इस श्लोक में माला बनाने वाले की कारीगरी की तुलना सदाचारी जीवन जीने वालों से की गई है। जीवन के कार्यों की तुलना फूलों के समूह से की गई है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन फूलों को सँवारकर अच्छे कर्मों की माला बनाए। यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि जीवन सोने के लिए गुलाबों का बिस्तर नहीं है, बल्कि फूलों का बिस्तर है जिसमें सुंदर फूल खिलते हैं। जीवन का उद्देश्य इन फूलों से सुंदर मालाएँ बनाना है जो संसार को सुशोभित करें। हमारे क्षणिक, नश्वर जीवन का सर्वोत्तम उपयोग अच्छे कर्म करना है जो सभी को सुख प्रदान करें। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि बौद्ध निराशावादी नहीं हैं जो गुलाबों में काँटों का लगातार विलाप करते रहते हैं। वे संसार में जो अच्छा है उसका सर्वोत्तम उपयोग करते हैं, ताकि संसार को और भी बेहतर बनाया जा सके।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 54 और 55

---

(धम्मपद 53) <<<< पिछला ॥ श्लोक 54 और 55 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 56)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 54 और 55 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na pupphagandho pativatameti
na candanam tagara mallika va
satanca gandho pativatameti
सब्बा दिसा सप्पुरिसो1पावयति।

Cadanam tagaram vapi
uppalam atha vassiki
etesam gandhajatanam
silagandho anuttaro.

---

श्लोक 54 : फूलों की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जा सकती; न चंदन की, न रोडोडेंड्रोन (तगरा) की, न चमेली (मल्लिका) की; केवल अच्छे लोगों की प्रतिष्ठा ही हवा के विपरीत जा सकती है। सप्पुरिस (नेक लोगों) की प्रतिष्ठा सभी दिशाओं में फैलती है।

---

श्लोक 55 : चंदन, रोडोडेंड्रोन, कमल और चमेली (वस्सिका)3 की सुगंध है; परन्तु सद्गुण की सुगंध सभी सुगंधों से श्रेष्ठ है।

---

1. सप्पुरिसो/सप्पुरिसा: अच्छे और धर्मपरायण लोग; गुणी व्यक्ति। गुणी लोग श्रेष्ठ (आर्य) और गुणी सांसारिक (कल्याण पुथुज्जन) होते हैं।
2. मल्लिका: अरबी चमेली।
3. vassika: स्पेनिश जैस्मिन।

---

आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए एक प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (54) और (55) का उच्चारण किया।

एक शाम जब पूज्य आनंद एकांत में बैठे थे, तब उनके मन में सुगंधों और इत्रों से संबंधित एक प्रश्न आया और वे सोचने लगे: "लकड़ी की सुगंध, फूलों की सुगंध और जड़ों की सुगंध, ये सभी हवा के साथ फैलती हैं, विपरीत दिशा में नहीं। क्या ऐसी कोई सुगंध नहीं है जो हवा के साथ और विपरीत दिशा में भी फैल सके? क्या ऐसी कोई सुगंध नहीं है जो संसार के हर कोने में व्याप्त हो सके?" इस प्रश्न का उत्तर स्वयं दिए बिना, पूज्य आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे उत्तर मांगा। बुद्ध ने कहा, "आनंद, मान लीजिए कि कोई ऐसा व्यक्ति है जो तीन रत्नों (बुद्ध, धम्म, संघ) की शरण लेता है, जो पांच नैतिक नियमों का पालन करता है, जो उदार है और लोभहीन है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी और प्रशंसा के योग्य है। उस गुणी व्यक्ति की ख्याति दूर-दूर तक फैलेगी, और भिक्षु, ब्राह्मण और गृहस्थ सभी उसकी प्रशंसा करेंगे, चाहे वह कहीं भी रहे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 54 : फूलों की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जा सकती; न चंदन की, न रोडोडेंड्रोन (तगरा) की, न चमेली (मल्लिका) की; केवल अच्छे लोगों की प्रतिष्ठा ही हवा के विपरीत जा सकती है। सप्पुरिस (नेक लोगों) की प्रतिष्ठा सभी दिशाओं में फैलती है।

———————————————————————————

श्लोक 55 : चंदन, रोडोडेंड्रोन, कमल और चमेली (वस्सिका) की सुगंध तो होती ही है; परन्तु सद्‌गुण की सुगंध सब सुगंधों से श्रेष्ठ होती है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए एक प्रश्न के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक शाम, ध्यान में लीन होकर, पूज्य आनंद ने निम्नलिखित विचार पर मनन किया: "बुद्ध में तीन उत्कृष्ट सुगंध हैं; अर्थात् चंदन की सुगंध, जड़ों की सुगंध और फूलों की सुगंध। परन्तु ये तीनों सुगंधें केवल हवा के साथ ही चलती हैं। क्या कोई ऐसा पदार्थ संभव है जिसकी सुगंध हवा के विपरीत चलती हो, या क्या कोई ऐसा पदार्थ संभव है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में चलती हो?" तब उनके मन में यह विचार आया: 'इस प्रश्न का उत्तर स्वयं खोजने का क्या लाभ? मैं बुद्ध से ही पूछूंगा, और केवल बुद्ध से ही।' तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा। कहानी इस प्रकार है:

एक शाम पूज्य आनंद गहन ध्यान से उठे और बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, तीन ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी सुगंध केवल हवा के साथ चलती है, विपरीत दिशा में नहीं। वे कौन सी वस्तुएँ हैं? जड़ों की सुगंध, चंदन की सुगंध और फूलों की सुगंध। ये तीन ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी सुगंध केवल हवा के साथ चलती है, विपरीत दिशा में नहीं। लेकिन, पूज्यवर, क्या कोई ऐसी वस्तु भी है जिसकी सुगंध हवा के साथ और विपरीत दिशा में दोनों दिशाओं में चलती हो?"

इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "आनंद, एक ऐसा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ बहती है, एक ऐसा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है।" "परन्तु, पूज्यवर, वह कौन सा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ बहती है, वह कौन सा पदार्थ है जिसकी सुगंध हवा के साथ और हवा के विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है?" "आनंद, यदि इस संसार के किसी गाँव या कस्बे में कोई व्यक्ति बुद्ध की शरण लेता है, धम्म की शरण लेता है, संघ की शरण लेता है; यदि वह जीवन लेने से, बिना दी हुई वस्तु लेने से, देह के पापों में लिप्त होने से और झूठ बोलने से परहेज करता है, और शराब या मादक पदार्थों के सेवन से होने वाली लापरवाही से बचता है; यदि वह गुणी है; यदि वह लोभ के दाग से मुक्त हृदय से धार्मिकतापूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है; यदि वह उदार और दानशील है, यदि वह खुले हाथों से दान करता है, यदि वह दान देने में आनंद लेता है, यदि वह निवेदनों पर ध्यान देता है, यदि वह भिक्षा बाँटने में आनंद लेता है, तो संसार के सभी भागों में भिक्षु उसकी प्रशंसा करते हैं। यदि अमुक गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री बुद्ध की शरण लेता है... यदि वह भिक्षा बाँटने में आनंद लेता है, तो देवता और आत्माएँ उसकी प्रशंसा करते हैं। यदि अमुक गाँव या कस्बे में कोई पुरुष या स्त्री शरण लेता है... बुद्ध की शरण में शरण लेना... यदि वह भिक्षा वितरण में आनंद लेता है, तो हे आनंद, ऐसे कर्म ही वह सार हैं जिनकी सुगंध हवा के साथ और विपरीत दोनों दिशाओं में बहती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 54)

पुप्फगन्धो पतिवतं न एति चंदनं तगार मल्लिका वा न

पतिवतं एति शतं गंधो च पतिवतं एति सप्पुरिसो सब्बादिसा पवति

पुप्फगन्धो [ पुप्फगन्ध ]: फूलों की सुगंध; पटिवातं [ पटिवाता ]: हवा के विपरीत; न एति : नहीं बहती; चंदनं [ चंदन ]: चंदन; तगरं [ तगर ]: लैवेंडर; मल्लिका वा : या चमेली; न : (हवा के विपरीत नहीं बहती); सतं [ सत ]: (लेकिन बुद्ध जैसे महान व्यक्तियों की); गंधो [ गन्ध ]: (सद्‌गुणों की) मीठी सुगंध; च पटिवातं एति : हवा के विपरीत बहती है; सप्पुरिसो [ सप्पुरिसा ]: गुणी व्यक्ति; सब्बादिसा पवाति : सभी दिशाओं में बहती है

दुनिया में कई सुगंधित फूल और खुशबूदार वस्तुएं मौजूद हैं। लेकिन, इन सबकी सुगंध हवा की दिशा में ही फैलती है। चाहे इनकी सुगंध कितनी भी तीव्र क्यों न हो, हवा के विपरीत दिशा में नहीं फैलती। इसके विपरीत, आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति के सद्‌गुणों की सुगंध हर दिशा में फैलती है और सार्वभौमिक रूप से अनुभव की जाती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 55)

चंदनं तगारं वा अपि उप्पलं अथ वासिकी

एतेसं गंधजातं सिलगंधो अनुत्तरो

कैंडानां [ कैंडाना ]: चंदन की लकड़ी; तगारं [ तगारा ]: लैवेंडर; वा अपि : भी; उप्पलां [ उप्पला ]: जल लिली; अथः और पुनः; वासिकी : चमेली; एतेसं गंधजातनं [ गंधजातन ]: इन सभी सुगंधों में से; सिलगंधो [ सिलगंध ]: पुण्य की मीठी गंध; अनुत्तरो [ anuttar ]: सर्वोच्च है

चंदन, लैवेंडर, कमल और चमेली से सुगंध निकलती है। इन सभी सुगंधों में सद्‌गुण की मधुर सुगंध सबसे श्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि सद्‌गुण की सुगंध सर्वत्र प्रिय है। इसके अलावा, सद्‌गुण की सुगंध हवा के विपरीत दिशा में भी फैलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 54-55)

[ आनंद पर एक टिप्पणी :]

श्लोक 54 और 55 बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कहे थे। बौद्ध धर्म के इतिहास में पूज्य आनंद का एक महत्वपूर्ण स्थान है। बुद्ध द्वारा दिए गए अधिकांश उपदेश पूज्य आनंद द्वारा ही लिखे गए थे। प्रथम सभा में बुद्ध के वचनों की पुष्टि के लिए एकत्रित भिक्षुओं की सभा को उन्होंने ही ये उपदेश सुनाए थे। बौद्ध धर्मग्रंथों में अधिकांश उपदेशों की शुरुआत में बार-बार आने वाला वाक्यांश ' एवं मे सुतं ' (मैंने ऐसा सुना है) इस बात का संकेत है कि ये उपदेश पूज्य आनंद द्वारा उसी रूप में सुनाए गए थे, जैसे उन्होंने बुद्ध के प्रथम प्रवचन के समय सुना था।

आदरणीय आनंद बुद्ध के निजी सेवक थे। वर्तमान में बौद्ध धर्म के नाम से जाना जाने वाला उपदेश मुख्यतः आदरणीय आनंद द्वारा बुद्ध के निरंतर साथी के रूप में एकत्रित उपदेशों का ही परिणाम है। आदरणीय आनंद को कभी-कभी 'बुद्ध वाणी का संजोया' भी कहा जाता है। आदरणीय आनंद को यह उच्च पदवी कैसे प्राप्त हुई, इसका विस्तृत वर्णन बौद्ध साहित्य में मिलता है। बुद्ध के पूर्व बीस वर्षों के उपदेशों के दौरान उनका कोई नियमित सेवक नहीं था। कई भिक्षु बुद्ध की सेवा करते थे और उनके साथ भिक्षा मांगने के लिए अतिरिक्त वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर यात्रा करते थे। इस प्रकार सेवा करने वाले भिक्षु नागसमाला, नागिता, उपवान, सुनक्खत्त, चुंडा, सागत, राधा और मेघिया थे।

एक दिन, जब बुद्ध पूज्य नागसमाला के साथ एक लंबी यात्रा पर निकले और एक चौराहे पर पहुँचे, तो भिक्षु ने एक मार्ग अपनाने का सुझाव दिया, जबकि बुद्ध ने दूसरा मार्ग सुझाया। भिक्षु ने बुद्ध की बात नहीं मानी और अपने चुने हुए मार्ग पर जाने से पहले बुद्ध के कुंड और वस्त्रों को जमीन पर रखने ही वाला था। बुद्ध ने कुंड और वस्त्रों को जमीन पर रखने से पहले ही उसे वापस माँग लिया और दूसरे मार्ग पर चल दिए। अपने चुने हुए मार्ग पर जाने वाले भिक्षु का कुंड और वस्त्र लूट लिए गए और लुटेरों ने उसके सिर पर वार किया। वह खून से लथपथ सिर के साथ बुद्ध के पास लौटा, जहाँ बुद्ध ने उसे उसकी अवज्ञा का स्मरण कराया और सांत्वना दी।

एक अन्य दिन, जब बुद्ध पूज्य मेघिया के साथ जंतु गाँव जा रहे थे, तब मेघिया ने एक आम के बाग में जाकर ध्यान करने का निर्णय लिया और बुद्ध को अपना कुंड और वस्त्र सौंप दिए। बुद्ध ने उन्हें तीन बार ऐसा न करने की सलाह दी, फिर भी वे अपने मार्ग पर चलते रहे। वे बुद्ध के पास लौट आए और अपने ध्यान में हुई असफलता को स्वीकार किया। जब बुद्ध सावत्थी आए और जेतवन मठ में ठहरे, तो उन्होंने भिक्षुओं की सभा के समक्ष इन भिक्षुओं के आचरण से अपनी असंतुष्टि व्यक्त की और बढ़ती उम्र के कारण एक नियमित परिचारक रखने का सुझाव दिया। उस समय बुद्ध की आयु पचपन वर्ष से अधिक थी।

पूज्य सारिपुत्त तुरंत खड़े हो गए, बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध के नियमित निजी सेवक बनने की पेशकश की। बुद्ध ने उनकी पेशकश को अस्वीकार कर दिया क्योंकि बुद्ध के प्रमुख शिष्य के रूप में उनकी सेवाओं की आवश्यकता कहीं और थी। अन्य प्रमुख शिष्यों ने भी अपनी सेवाएं देने की पेशकश की, लेकिन बुद्ध ने उन्हें भी स्वीकार नहीं किया। तब भिक्षुओं ने पूज्य आनंद को, जो अब तक मौन थे, बुद्ध के निजी सेवक बनने की पेशकश करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि, वे स्वयं बुद्ध द्वारा नामित किए जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बुद्ध ने कहा, "आनंद को दूसरों द्वारा प्रेरित होने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वेच्छा से मेरी सेवा करेगा।"

आदरणीय आनंद ने आठ शर्तों के अधीन बुद्ध की नियमित सेवा करने का वचन दिया। वे शर्तें इस प्रकार थीं: (1) उन्हें बुद्ध द्वारा प्राप्त उत्तम वस्त्र नहीं दिए जाने चाहिए; (2) उन्हें बुद्ध द्वारा प्राप्त स्वादिष्ट भोजन नहीं दिया जाना चाहिए; (3) उन्हें बुद्ध के सुगंधित कक्ष में नहीं ठहराया जाना चाहिए; (4) उन्हें निमंत्रण पर भिक्षा स्वीकार करने के लिए बुद्ध के साथ जाने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए; (5) बुद्ध उनके द्वारा स्वीकार किए गए निमंत्रणों को स्वीकार करेंगे; (6) दूर-दूर से बुद्ध के दर्शन करने आने वाले आगंतुकों को उनके साथ अंदर जाने की अनुमति दी जानी चाहिए; (7) उन्हें किसी भी संदेह के स्पष्टीकरण के लिए बुद्ध से परामर्श करने की अनुमति दी जानी चाहिए; और (8) उन्हें बुद्ध द्वारा उनकी अनुपस्थिति में दिए गए उपदेशों के बारे में बताया जाना चाहिए।

बुद्ध द्वारा इन आठ शर्तों को स्वीकार करने के बाद, पूज्य आनंद बुद्ध के नियमित सेवक बन गए। तब से वे बुद्ध की सेवा करने लगे और उन्हें गर्म और ठंडा पानी तथा तीन प्रकार के दंत चिकित्सा उपकरण उपलब्ध कराते रहे। वे बुद्ध के शरीर की मालिश करते थे और रात भर लकड़ी की मशाल लेकर जागते रहते थे, ताकि बुद्ध उन्हें किसी भी समय बुला सकें। वे प्रतिदिन सुगंधित कक्ष के नौ चक्कर लगाते थे। वे स्वयं ही सुगंधित कक्ष की सफाई और झाड़ू लगाते थे। बुद्ध के पराकाष्ठा बनकर वे उनकी सेवा करते रहे और उनके परछाई की तरह उनके साथ चलते रहे, जब तक कि उनका देहांत नहीं हो गया।

हालाँकि, पूज्य आनंद बुद्ध के जीवनकाल में अर्हत्व प्राप्त नहीं कर सके। वे बुद्ध के देहांत के कुछ सप्ताह बाद अर्हंत बने और पूज्य महा कस्सपा के निमंत्रण पर राजगृह में आयोजित पाँच सौ अर्हंतों की प्रथम सभा में एक प्रमुख व्यक्ति थे, जहाँ उन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं का पाठ किया। इसलिए, कई सूत्र ' एवं मे सुतं ' से शुरू होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 56

---

(धम्मपद 54, 55) <<<< पिछला ‖ श्लोक 56 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 57)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 56 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Appamatto ayam gandho
yayam tagaracandani
yo ca silavatam gandho
vati devesu uttamo.

---

श्लोक 56 : रोडोडेंड्रोन और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है; परन्तु गुणी व्यक्ति की सुगंध (प्रतिष्ठा) सबसे प्रबल होती है; यह देवों के निवासों तक भी फैलती है।

---

थेरा (वरिष्ठ) महाकस्सपा की कहानी

राजगृह में वेलुवना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक 56 कहा था।

निरोधसमापत्ती(1) से मुक्त होकर, थेरा महाकस्सपा भिक्षा मांगने के लिए राजगृह नगर के एक गरीब इलाके में गए। उनका उद्देश्य एक गरीब व्यक्ति को निरोधसमापत्ती से अभी-अभी निकले व्यक्ति को भिक्षा देने के फलस्वरूप पुण्य कमाने का अवसर प्रदान करना था। देवताओं के राजा सक्का, थेरा महाकस्सपा को भिक्षा देने का अवसर पाकर, एक गरीब बूढ़े बुनकर का रूप धारण करके अपनी पत्नी सुजाता के साथ राजगृह आए। सुजाता एक बूढ़ी स्त्री के रूप में उनके द्वार पर खड़ी थीं; उस गरीब बूढ़े बुनकर ने थेरा से कटोरा लिया और उसे चावल और करी से भर लिया, और करी की स्वादिष्ट सुगंध पूरे नगर में फैल गई। तब थेरा को यह आभास हुआ कि यह व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य नहीं है, और उन्हें बोध हुआ कि यह स्वयं सक्का ही हैं। सक्का ने यह बात स्वीकार करते हुए कहा कि वह भी गरीब है क्योंकि बुद्धों के समय में उसे किसी को कुछ भी दान करने का अवसर नहीं मिला था। ऐसा कहकर सक्का और उसकी पत्नी सुजाता ने उन्हें उचित सम्मान देकर थेरा छोड़ दिया।

बुद्ध ने अपने मठ से सक्का और सुजाता को जाते हुए देखा और भिक्षुओं को बताया कि सक्का ने थेरा महाकस्सपा को भिक्षा दी है। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि सक्का को कैसे पता चला कि थेरा महाकस्सपा अभी-अभी निरोधसमापत्ति से बाहर आए हैं और उनके लिए भिक्षा देने का यह सही और शुभ समय है। यह प्रश्न बुद्ध के समक्ष रखा गया, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र थेरा महाकस्सपा जैसे गुणी व्यक्ति की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है; यह देवलोक तक भी पहुँचती है। उनकी इस ख्याति के कारण ही सक्का स्वयं उन्हें भिक्षा देने आए हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 56 : रोडोडेंड्रोन और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है; परन्तु गुणी व्यक्ति की सुगंध (प्रतिष्ठा) सबसे प्रबल होती है; यह देवों के निवासों तक भी फैलती है।

---

(1) निरोधसमापत्ति: निरोध की प्राप्ति के बाद निरंतर गहरी मानसिक तल्लीनता (समाधि/सम्मोहन), अर्थात् चार मानसिक खंडों का अस्थायी रूप से रुक जाना।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु महाकस्सपा की कहानी

राजगृह के वेलुवना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन पूज्य कस्सपा सात दिनों की ध्यान साधना से उठे और राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए निरंतर परिक्रमा करने के इरादे से चल पड़े। उसी समय देवताओं के राजा सक्का की पाँच सौ गुलाबी पैरों वाली अप्सराएँ भी जागृत हुईं और पूज्य कस्सपा को देने के इरादे से पाँच सौ भाग भिक्षा तैयार करने लगीं। भिक्षा लेकर वे रास्ते में रुक गईं और पूज्य कस्सपा से कहा, "पूज्यवर, यह भिक्षा स्वीकार कीजिए; हम पर एक कृपा कीजिए।" पूज्य कस्सपा ने उत्तर दिया, "तुम सब चली जाओ। मेरा इरादा गरीबों की सहायता करने का है।"

सक्का स्वयं पूज्य भिक्षु को दान देना चाहता था। इसलिए उसने वृद्धावस्था से क्षीण हो चुके एक बूढ़े बुनकर का वेश धारण किया, एक ऐसा बूढ़ा जिसके दांत टूटे हुए थे, बाल सफेद थे और शरीर झुका हुआ और टूटा हुआ था। उसने अप्सरा वेलबोर्न को भी उसी तरह की एक बूढ़ी स्त्री में रूपांतरित कर दिया और अलौकिक शक्ति से बुनकरों की एक गली बनाकर सूत कातने बैठ गया। पूज्य भिक्षु नगर की ओर चल पड़े, मन ही मन सोच रहे थे, "मैं गरीबों पर कृपा करूंगा।" नगर के बाहर इस गली को देखकर उन्होंने चारों ओर देखा और उन दो व्यक्तियों को देखा। उस समय सक्का सूत कात रहा था और वेलबोर्न शटल चला रही थी। जब भिक्षु महाकस्सपा द्वार पर आए, तो सक्का ने पूज्य भिक्षु का कटोरा लेकर कहा, "पूज्य भिक्षु, भोजन मोटा हो या महीन, इस पर ध्यान न दें, बल्कि हम पर कृपा करें।"

तुरंत ही, तरह-तरह की चटनी और करी से भरपूर भिक्षापात्र की सुगंध से राजगृह नगर पूरी तरह महक उठा। पूज्यवर ने मन ही मन सोचा, 'यह व्यक्ति तो कमज़ोर है, पर इसकी भिक्षा सक्का के भोजन के समान शक्तिशाली है। यह कौन हो सकता है?' जब उन्होंने देखा कि यह सक्का ही हैं, तो उन्होंने कहा, 'आपने गरीबों को पुण्य कमाने का अवसर छीनकर घोर अन्याय किया है। आज मुझे भिक्षा देकर कोई भी गरीब व्यक्ति सेनापति या कोषाध्यक्ष का पद प्राप्त कर सकता है। क्या मुझसे भी गरीब कोई है, पूज्यवर?' 'आप देवताओं के लोक में इतनी शान-शौकत का आनंद लेते हुए गरीब कैसे हो गए?'

"आदरणीय, यह स्पष्टीकरण है। बुद्ध के संसार में प्रकट होने से पहले मैंने पुण्य कर्म किए थे। बुद्ध के संसार में प्रकट होने पर समान पद के तीन देवताओं का पुनर्जन्म हुआ, जिन्होंने पुण्य कर्मों के कारण मुझसे भी अधिक यश प्राप्त किया। जब ये देवता मेरे समक्ष कहते हैं, 'चलो उत्सव मनाते हैं,' और दासियों को लेकर सड़क पर जाते हैं, तो मैं तुरंत अपने घर में प्रवेश कर जाता हूँ। उनके व्यक्तित्व का यश मेरे व्यक्तित्व पर आभास करा देता है, परन्तु मेरे व्यक्तित्व का यश उनके व्यक्तित्व पर आभास नहीं करा पाता। आदरणीय, मुझसे अधिक निर्धन कौन है?" "यदि यह सत्य है, तो अब से मुझे भिक्षा देकर धोखा देने का प्रयास न करें।" "क्या मैंने आपको छल से भिक्षा देकर पुण्य अर्जित किया है या नहीं?" "हाँ, आपने पुण्य अर्जित किया है।" "यदि यह सत्य है, आदरणीय, तो पुण्य कर्म करना मेरा परम कर्तव्य है।" ऐसा कहकर सक्का ने आदरणीय को प्रणाम किया और सुजाता के साथ आदरणीय की परिक्रमा की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 56)

यो अयं तगारा चंदनि अयं गंधो अप्पमट्टो ,

शीलवतं यो च गंधो उत्तमो देवेसु वती

यो अयं : यह जो भी है; तगर चंदनी : लैवेंडर और चंदन से जुड़ी सुगंध; अयं : वह (सुगंध); अप्पमत्तो [ अप्पमत्त ]: केवल थोड़ी सी है; सीलवतं [ सीलवत ]: गुणी लोगों की; यो च गंधो [ गंध ]: यदि कोई मीठी सुगंध है; उत्तमो [ उत्तम ]: वह सर्वोच्च है; देवेसु : देवताओं या स्वर्ग लोकों के बीच; वात्ति : (यह) फैलती है

तगारा और चंदन की सुगंध बहुत हल्की होती है। क्यों? क्योंकि यह इसी संसार तक सीमित है। ऐसी सुगंध केवल पृथ्वी पर ही फैल सकती है। इस प्रकार यह बहुत हल्की सुगंध है। लेकिन, इसके विपरीत, सद्गुण की मीठी सुगंध सर्वोच्च है, क्योंकि यह न केवल पृथ्वी पर फैलती है, बल्कि उच्चतम स्वर्ग तक भी पहुँचती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 56)

गंधो [ गंध ]: इत्र; सुगंध। कई श्लोकों में बुद्ध ने चंदन, लैवेंडर और चमेली जैसी पारंपरिक सुगंधों के विपरीत सद्गुण की सुगंध की तुलना की है। सद्गुण की मधुर सुगंध के सामने इन पारंपरिक सुगंधों की सुगंध बहुत कम है। यह उपमा बौद्धों की भक्तिमय रस्मों में भी प्रचलित है, जहाँ बुद्ध के सद्गुणों के सम्मान में उनकी वेदी पर धूप चढ़ाई जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 57

---

(धम्मपद56) <<<< पिछला‖ धम्मपद57 ‖अगला >>>> (धम्मपद 58 और 59)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 57 - गोधिकत्थेरापरिनिब्बान वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Tesam sampannasilanam
अप्पामदविहारिनम
सम्मदन्ना विमुत्तनम
Maro maggam na vindati.

---

श्लोक 57 : मारा उन लोगों द्वारा अपनाए गए मार्ग को नहीं खोज सकता जो सद्गुणों से संपन्न हैं, जो सचेत रूप से जीवन जीते हैं और सही ज्ञान द्वारा नैतिक विकारों से मुक्त हो चुके हैं।(1)

---

1. नैतिक विकारों को दूर करने वाले अरहत पुनर्जन्म के अधीन नहीं होते; इसलिए मारा, अपनी सारी शक्ति के बावजूद, यह पता नहीं लगा सकता कि ऐसे अरहत मृत्यु के बाद कहाँ जाते हैं।

---

थेरा (वृद्ध) गोधिका की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा गोधिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (57) कहा।

एक बार थेरा गोधिका मगध के इसिगिली पर्वत की तलहटी में एक शिलाखंड पर शांति और अंतर्दृष्टि विकास का गहन अभ्यास कर रहे थे। जब उन्होंने एकाग्र एकाग्रता (ध्यान) प्राप्त कर ली, तो वे अत्यंत बीमार पड़ गए; इससे उनके अभ्यास की प्रभावशीलता कम हो गई। बीमारी के बावजूद, उन्होंने निरंतर प्रयास जारी रखा; लेकिन हर बार जब वे कुछ प्रगति कर रहे होते, तो वे बीमारी से घिर जाते। इस प्रकार उन्हें छह बार यह कष्ट सहना पड़ा। अंततः, उन्होंने ठान लिया कि वे सभी बाधाओं को पार करके अर्हतत्व प्राप्त करेंगे, चाहे उन्हें मरना ही क्यों न पड़े। इसलिए, बिना विश्राम किए उन्होंने निरंतर लगन से अभ्यास जारी रखा; अंत में उन्होंने अपना गला काटकर प्राण त्यागने का निश्चय किया; मृत्यु के क्षण में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया।

जब मारा को पता चला कि थेरा गोधिका का निधन हो गया है, तो उसने यह जानने की कोशिश की कि थेरा का पुनर्जन्म कहाँ हुआ होगा, लेकिन वह उन्हें ढूंढ नहीं पाया। इसलिए, एक युवक का रूप धारण करके, मारा बुद्ध के पास गया और उनसे थेरा गोधिका के बारे में पूछा। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "थेरा गोधिका के गंतव्य के बारे में जानना तुम्हारे लिए व्यर्थ होगा; क्योंकि नैतिक दोषों से मुक्त होकर वे अरहत बन गए थे। हे मारा, तुम जैसे व्यक्ति, अपनी सारी शक्ति के बावजूद, यह पता नहीं लगा पाओगे कि ऐसे अरहत मृत्यु के बाद कहाँ जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 57 : जो लोग सद्गुणों से संपन्न हैं, जो सचेत रूप से जीवन जीते हैं और सही ज्ञान द्वारा नैतिक विकारों से मुक्त हो चुके हैं, उनके द्वारा अपनाए गए मार्ग को मारा नहीं खोज सकता।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय गोधिका की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य गोधिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब पूज्य गोधिका माउंट इसिगिली के ब्लैक रॉक में निवास कर रहे थे, तब वे सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी थे, ध्यान के अभ्यास से उन्होंने 'मन की शांति' प्राप्त कर ली थी। लेकिन कर्तव्यपरायणता के कारण उन्हें एक विशेष रोग हो गया और वे 'अज्ञान' की मानसिक शांति से विमुख हो गए। दूसरी बार, तीसरी बार और कुल मिलाकर छह बार वे मानसिक शांति की अवस्था में प्रवेश करते और उससे विमुख हो जाते। सातवीं बार जब वे मानसिक शांति की अवस्था में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं छह बार मानसिक शांति की अवस्था से विमुख हो चुका हूँ। जो मानसिक शांति की अवस्था से विमुख हो जाता है, उसका भविष्य अनिश्चित है। अब समय आ गया है कि मैं उस्तरे का प्रयोग करूँ।"

तदनुसार, उन्होंने अपने बाल मुंडवाने वाला उस्तरा उठाया और अपने पलंग पर लेट गए, मानो वे अपना प्राण त्यागना चाहते हों। मारा ने उनका इरादा भांप लिया और मन ही मन सोचा, "यह भिक्षु उस्तरे का प्रयोग करना चाहता है। जो इस प्रकार उस्तरे का प्रयोग करते हैं, वे जीवन के प्रति उदासीन होते हैं। ऐसे पुरुष, पारलौकिकता प्राप्त करके, अर्हतत्व पाते हैं। परन्तु यदि मैं उसे ऐसा करने से रोकने का प्रयास करूँ, तो वह मेरी बातों पर ध्यान नहीं देगा। इसलिए मैं बुद्ध से उसे रोकने का आग्रह करूँगा।" उसी क्षण पूज्य भिक्षु ने अपनी छुरी निकाली। बुद्ध ने मारा को देखकर कहा, "स्थिर रहने वाले ऐसे ही होते हैं, और वे जीवन की लालसा नहीं करते। गोधिका ने तृष्णा को जड़ से उखाड़ फेंका है और निर्वाण प्राप्त किया है।" अब बुद्ध, अनेक भिक्षुओं के साथ, उस स्थान पर गए जहाँ पूज्य भिक्षु लेटे थे और अपनी छुरी का प्रयोग किया। उस समय, दुष्ट मारा, धुएँ के स्तंभ या अंधकार के समूह की तरह, पूज्य गुरु की चेतना को चारों दिशाओं में खोज रहा था। वह सोच रहा था, "उनकी पुनर्जन्म-चेतना कहाँ स्थिर हो गई है?" बुद्ध ने भिक्षुओं को धुएँ के स्तंभ और अंधकार के समूह की ओर इशारा करते हुए कहा, "भिक्षुओं, यह दुष्ट मारा है, जो उत्तम युवक गोधिका की चेतना को खोज रहा है। वह सोच रहा है, 'उत्तम युवक गोधिका की चेतना कहाँ स्थिर हो गई है?' परन्तु, भिक्षुओं, उत्तम युवक गोधिका की चेतना स्थिर नहीं हुई है। क्योंकि, भिक्षुओं, उत्तम युवक गोधिका निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।" पूज्य गुरु की चेतना के स्थिर होने का स्थान न पाकर मारा बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "गोधिका कहाँ चले गए हैं?"

बुद्ध ने मारा से कहा, "गोधिका ने व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंका है और निर्वाण प्राप्त कर लिया है।" फिर बुद्ध ने कहा, "हे दुष्ट, उस स्थान से तुम्हारा क्या लेना-देना है जहाँ उत्तम युवक गोधिका की चेतना स्थिर हो गई है? तुम्हारे जैसे सौ-हजार भी उसे कभी नहीं पा सकते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 57)

सम्पन्नशीलानं अप्पमदाविहारिनं सम्मदन्न
विमुत्तनं तेसं मग्गं मारो न विंदति

सम्पन्नसिलानां [ sampannsīlāna ]: व्यवहार में उत्तम; अप्पमदविहारिनं [ अप्पमदविहारिन ]: सचेत रहना; सम्मदन्या : पूरी तरह से जानने वाला; विमुत्तनं [ विमुत्तन ]: दोषों से मुक्त; टेसां [ टेसा ]: (का) उन महान लोगों का; मग्गां [ मग्गा ]: निशान, वह रास्ता जो उन्होंने अपनाया; मारो : दुष्ट (शैतान); न विन्दति : (नहीं खोजता) या ढूंढ़ता है

उन श्रेष्ठ पुरुषों का, जो आचरण में परिपूर्ण हैं, निरंतर सजग रहते हैं, और अपने भीतर के अनुभव से पूर्णतः अवगत हैं, दुष्ट मारा उनके भाग्य को नहीं जानता। मारा केवल आलसी मृतकों का ही पता लगा सकता है। वह अमरत्व प्राप्त कर चुके लोगों का पता नहीं लगा सकता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 57)

सम्मदञ्ञाविमुत्तनं : 'अज्ञान' के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करना। इसका तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो अपने भीतर के अनुभव के प्रति पूर्णतः सजग होकर 'मुक्ति' ( विमुक्ति ) प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति पंच प्रकार की मुक्ति प्राप्त करता है। ये हैं: उन्मूलन द्वारा मुक्ति; विपरीत तत्वों के अभ्यास द्वारा मुक्ति; वियोग द्वारा मुक्ति; स्थाईकरण द्वारा मुक्ति; और वियोग द्वारा मुक्ति।

अञ्ञा का वास्तविक अर्थ है 'अज्ञान'। यद्यपि इसका सामान्य अनुवाद ज्ञान के रूप में किया जाता है, यह अवधारणाओं को ग्रहण करना नहीं है। यह अवधारणाओं से मुक्ति है। यह विषय दृष्टि और ज्ञान के विषयों से जुड़ाव का अंत है। यह ज्ञात वस्तु के प्रति जागरूकता के बजाय जानने की प्रक्रिया के प्रति जागरूकता है, जो तृप्ति का कारण बनती है। यह मानसिक शांति है। इसे 'ज्ञान का अंत' ( विञ्ञस्स निरोध ) कहा जाता है। इसे 'अव्यक्त ज्ञान' ( अनिदासन विज्ञान ) भी कहा जाता है। सभी विषय ज्ञान मार के वश में आते हैं। इस विषय ज्ञान से मुक्ति को मार नहीं जानता।

मारो : बौद्ध धर्म में ' मारा ' की पाँच अवधारणाएँ हैं :

स्वयं मृत्यु ( maccu māra );

पांच समुच्चय ( खंड मारा );

अशुद्धियाँ ( kilesa māra );

मानसिक निर्माण ( संखारा मारा );

एक देवता जिसे मारा कहा जाता है, जो हमेशा संसार में आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डालने का प्रयास करता है ( देवपुत्त मारा )। इस विशेष श्लोक और कहानी में, 'मारा' शब्द का प्रयोग 'मारा' नामक इस दुष्ट शक्ति के लिए किया गया है।



———————————————————————

(धम्मपद57) <<<< पिछला|| धम्मपद 58 और 59 ||अगला >>>> (धम्मपद60)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 58 और 59 - गारहदिन्ना वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा शंकरधनस्मिम्
ujjhitasmim mahapathe
padumam tattha jayetha
सुचिगंधम मनोरमम।

एवम शंकरभूतेषु(1)
andhabhute puthujjane(2)
atirocati pannaya
sammasambuddhasavako.

———————————————————————

श्लोक 58-59 : जैसे सड़क पर फेंके गए कूड़े के ढेर पर एक सुगंधित और सुंदर कमल का फूल उग सकता है, वैसे ही प्राणियों के कूड़े के ढेर से बुद्ध का एक शिष्य प्रकट हो सकता है, जो अपनी बुद्धि से अंधे (अज्ञानी) सांसारिक लोगों से बहुत ऊपर प्रकाशमान होता है।

———————————————————————

1. शंकरभूतेषु: प्राणियों का कूड़ा-कचरा ढेर।
2. andhabhute puthujjane: अंधे सांसारिक। सांसारिक लोग अंधों के समान हैं क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी है।

———————————————————————

गराहादिन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (58) और (59) का उच्चारण किया, जिसमें गरहदिन्ना नामक एक धनी व्यक्ति और कमल के फूलों के चमत्कार का उल्लेख किया गया है।

श्रावस्ती में सिरिगुत्त और गरहदिन्ना नाम के दो मित्र रहते थे। सिरिगुत्त बुद्ध के अनुयायी थे और गरहदिन्ना निगंथों के अनुयायी थे, जो बौद्धों के शत्रु थे। निगंथों के कहने पर गरहदिन्ना अक्सर सिरिगुत्त से कहते थे, "बुद्ध का अनुसरण करने से तुम्हें क्या लाभ होता है? आओ, मेरे गुरुओं के अनुयायी बनो।" बार-बार ऐसा कहे जाने पर सिरिगुत्त ने गरहदिन्ना से पूछा, "बताओ, तुम्हारे गुरु क्या जानते हैं?"

इस पर गरहदिन्ना ने उत्तर दिया कि उनके गुरु सब कुछ जानते हैं; अपनी महान शक्ति से वे भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के साथ-साथ दूसरों के मन के विचार भी जानते हैं। इसलिए, सिरिगुत्त ने निगंथों को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया।

सिरिगुट्टा निगंथों के बारे में सच्चाई जानना चाहता था, कि क्या सचमुच उनमें दूसरों के मन की बात जानने की शक्ति थी। इसलिए उसने एक लंबी, गहरी खाई खोदी और उसे मल-मूत्र से भर दिया। फिर खाई के ऊपर अस्थिर ढंग से कुर्सियाँ रखी गईं; और बड़े-बड़े खाली बर्तन लाकर कपड़े और केले के पत्तों से ढक दिए गए ताकि वे चावल और करी से भरे हुए प्रतीत हों। जब निगंथ आए, तो उनसे एक-एक करके अंदर आने, अपनी-अपनी सीटों के पास खड़े होने और एक साथ बैठने का अनुरोध किया गया। जैसे ही वे सब बैठे, पतली रस्सियाँ टूट गईं और निगंथ गंदी खाई में गिर गए। तब सिरिगुट्टा ने उनका मज़ाक उड़ाते हुए कहा, "तुम भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल क्यों नहीं जानते? तुम दूसरों के मन की बात क्यों नहीं जानते?" तब सभी निगंथ डर के मारे भाग गए।

गराहादिन्ना स्वाभाविक रूप से सिरिगुट्टा पर क्रोधित हो गया और दो सप्ताह तक उससे बात करने से इनकार कर दिया। फिर उसने सिरिगुट्टा से बदला लेने का निश्चय किया। उसने ऐसा दिखाया कि अब उसका क्रोध शांत हो गया है, और एक दिन सिरिगुट्टा से कहा कि वह उसकी ओर से बुद्ध और उनके पाँच सौ शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित करे। इस प्रकार सिरिगुट्टा बुद्ध के पास गया और उन्हें गराहादिन्ना के घर आमंत्रित किया। उसी समय उसने बुद्ध को बताया कि उसने गराहादिन्ना के गुरु निगंथों के साथ क्या किया था। उसने यह आशंका भी व्यक्त की कि यह निमंत्रण प्रतिशोध हो सकता है, इसलिए इसे उचित विचार-विमर्श के बाद ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

बुद्ध ने अपनी असाधारण शक्ति से यह जान लिया था कि यही वह अवसर है जब दोनों मित्र सोतापत्ति फल प्राप्त करेंगे, इसलिए उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। गरहदिन्ना ने एक खाई खोदी, उसमें धधकते कोयले भर दिए और उसे चटाइयों से ढक दिया। उन्होंने कुछ खाली बर्तन भी कपड़े और केले के पत्तों से ढक कर रख दिए ताकि वे चावल और करी से भरे हुए प्रतीत हों। अगले दिन, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ एक कतार में आए। जब बुद्ध ने खाई के ऊपर बिछी चटाई पर कदम रखा, तो चटाई और धधकते कोयले चमत्कारिक रूप से गायब हो गए, और पाँच सौ कमल के फूल, जिनमें से प्रत्येक बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था, बुद्ध और उनके शिष्यों के बैठने के लिए उग आए।

इस चमत्कार को देखकर गरहदिन्ना बहुत घबरा गया और उसने श्रीगुत्त से अस्पष्ट स्वर में कहा, "हे मित्र, मेरी सहायता कीजिए। प्रतिशोध की भावना में मैंने सचमुच बहुत बड़ा पाप किया है। मेरे बुरे इरादों का आपके गुरु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मेरी रसोई के सारे बर्तन खाली हैं। कृपया मेरी मदद कीजिए।" तब श्रीगुत्त ने गरहदिन्ना को जाकर बर्तन देखने को कहा। जब गरहदिन्ना ने सारे बर्तन भोजन से भरे हुए पाए तो वह चकित रह गया और साथ ही बहुत राहत और प्रसन्नता भी महसूस की। इस प्रकार वह भोजन बुद्ध और उनके शिष्यों को अर्पित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने इस पुण्य कर्म के लिए आभार व्यक्त किया और फिर कहा, "अज्ञानी सांसारिक लोग, जो ज्ञानहीन हैं, बुद्ध, धम्म और संघ के अद्वितीय गुणों को नहीं जानते, इसलिए वे अंधों के समान हैं; परन्तु ज्ञानी, जो ज्ञानी हैं, दृष्टिहीन लोगों के समान हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 58-59 : जैसे सड़क पर फेंके गए कूड़े के ढेर पर एक सुगंधित और सुंदर कमल का फूल उग सकता है, वैसे ही प्राणियों के कूड़े के ढेर से बुद्ध का एक शिष्य प्रकट हो सकता है, जो अपनी बुद्धि से अंधे (अज्ञानी) सांसारिक लोगों से बहुत ऊपर प्रकाशमान होता है।

---

प्रवचन के अंत में, गरहदिन्ना और सिरिगुट्टा दोनों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

अध्याय चार का अंत: फूल (पुप्फवग्गा)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गराहादिन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने गरहदिन्ना नामक एक धनी व्यक्ति और कमल के फूलों के चमत्कार के संदर्भ में ये श्लोक कहे। एक समय सावत्थी में दो मित्र रहते थे, सिरिगुत्त और गरहदिन्ना। सिरिगुत्त बुद्ध के गृहस्थ शिष्य थे, जबकि गरहदिन्ना निगंठ संन्यासियों के अनुयायी थे। निगंठ संन्यासी गरहदिन्ना से बार-बार कहते थे, “अपने मित्र सिरिगुत्त के पास जाओ और कहो, ‘तुम गौतम भिक्षु के पास क्यों जाते हो? उनसे तुम्हें क्या लाभ की उम्मीद है?’ क्यों न तुम उन्हें समझाओ कि वे हमारे पास आएं और हमें दान दें?”

गरहदिन्ना ने उनकी बात सुनी, बार-बार सिरिगुत्त के पास गए, और जहाँ भी वे उन्हें खड़े या बैठे पाते, उनसे इस प्रकार कहते, “मित्र, गौतम भिक्षु से तुम्हें क्या लाभ है? उनसे मिलने से तुम्हें क्या लाभ की उम्मीद है? क्या तुम्हें मेरे अपने श्रेष्ठ गुरुओं के पास जाकर उन्हें दान नहीं देना चाहिए?”

सिरिगुट्टा ने अपने मित्र की बातें सुनीं और कई दिनों तक चुप रहे। लेकिन एक दिन उनका धैर्य टूट गया और उन्होंने गरहदिन्ना से कहा, "मित्र, तुम लगातार मेरे पास आते हो और जहाँ भी मुझे खड़े या बैठे पाते हो, मुझसे यही कहते हो, 'भिक्षु गौतम के पास जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? मेरे परम गुरुओं के पास जाओ और उन्हें दान दो।' अब मुझे बस इस प्रश्न का उत्तर दो, 'तुम्हारे परम गुरु क्या जानते हैं?'" "हे महोदय, ऐसा मत कहिए! मेरे परम गुरुओं को सब कुछ ज्ञात है। वे भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब कुछ जानते हैं। वे सबके विचार, वचन और कर्म जानते हैं। वे हर उस बात को जानते हैं जो हो सकती है और जो नहीं हो सकती।" "ऐसा कहना गलत होगा।" "हाँ, मैं कह रहा हूँ।" "यदि यह सच है, तो तुमने मुझे इतने समय तक इससे अनभिज्ञ रखकर घोर पाप किया है। आज तक मुझे तुम्हारे परम गुरुओं के पास मौजूद ज्ञान की अलौकिक शक्ति के बारे में पता नहीं चला। जाइए, महोदय, और मेरे नाम से अपने परम गुरुओं को आमंत्रित कीजिए।"

गराहादिन्ना नग्न तपस्वियों के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और कहा, "मेरे मित्र सिरिगुट्टा आपको कल आमंत्रित करते हैं।" "क्या सिरिगुट्टा ने अपने बारे में आपसे कुछ कहा?" "जी हां, महाराज।" वे प्रसन्न और प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "हमारा काम हो गया। सिरिगुट्टा के हम पर पूर्ण विश्वास करने के क्षण से हमें क्या लाभ नहीं होगा?"

सिरिगुट्टा का निवास स्थान बड़ा था, और दो घरों के बीच एक लंबी खाली जगह थी। इसलिए उसने यहाँ एक लंबी खाई खुदवाई और उसे गोबर और कीचड़ से भरवा दिया। खाई के दोनों सिरों पर उसने खंभे गाड़वाए और उनसे रस्सियाँ बाँध दीं। उसने कुंदें इस प्रकार लगवाईं कि उनके आगे के पैर ज़मीन पर और पीछे के पैर रस्सियों पर टिके हों, ताकि विधर्मी बैठते ही पीछे की ओर लुढ़क कर सिर के बल खाई में गिर जाएँ। ताकि खाई का कोई निशान दिखाई न दे, उसने कुंदों पर चादरें बिछवा दीं। उसने कई बड़े मिट्टी के बर्तनों को साफ धुलवाकर उनके मुँह केले के पत्तों और कपड़े के टुकड़ों से ढकवा दिया। ये बर्तन, भले ही खाली थे, उसने घर के पीछे रखवा दिए और उन पर चावल की दलिया, उबले चावल के टुकड़े, घी, ताड़ की चीनी और केक के टुकड़े लगा दिए।

सुबह सवेरे गराहादिन्ना जल्दी से सिरिगुट्टा के घर गए और उनसे पूछा, "क्या मेरे आदरणीय गुरुओं के लिए भोजन तैयार है?" "जी हां, मित्र, भोजन तैयार है।" "पर वह कहां है?" गराहादिन्ना ने जवाब दिया, "इन सभी मिट्टी के बर्तनों में चावल की दलिया है, इन सभी में उबले हुए चावल हैं, इन सभी में घी, ताड़ी, केक और अन्य प्रकार के व्यंजन हैं। बैठने की व्यवस्था भी की गई है।" गराहादिन्ना ने कहा, "बहुत अच्छा," और वे चले गए।

गराहादिन्ना के जाते ही पाँच सौ नग्न तपस्वी आ गए। सिरिगुट्टा घर से बाहर आए, नग्न तपस्वियों को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर, आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए मन ही मन सोचने लगे, "तो आप भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब कुछ जानते हैं! कम से कम आपका समर्थक तो यही कहता है। यदि आप सचमुच यह सब जानते हैं, तो मेरे घर में प्रवेश न करें। क्योंकि यदि आप मेरे घर में प्रवेश भी करते हैं, तो आपके लिए न तो चावल की दलिया तैयार है, न उबले हुए चावल, न ही किसी अन्य प्रकार का भोजन। यदि आप यह सब नहीं जानते और फिर भी मेरे घर में प्रवेश करते हैं, तो मैं आपको गोबर से भरे गड्ढे में फेंकवा दूँगा और फिर आपको लाठियों से पिटवाऊँगा।" ऐसा विचार करने के बाद, उन्होंने अपने साथियों को यह आदेश दिया, "जब आप देखें कि वे बैठने वाले हैं, तो पीछे की ओर अपनी जगह ले लें और सीटों पर बिछी चादरों को खींच लें, कहीं ऐसा न हो कि वे गंदगी से सन जाएँ।" सिरिगुट्टा के विचारानुसार, नग्न तपस्वियों को इस बात का पता नहीं था कि क्या योजना बनाई गई थी। वे खाई में गिर गए और अपमानित हुए।

बदला लेने की योजना बनाकर गरहदिन्ना ने बुद्ध को आमंत्रित किया। बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ गरहदिन्ना के घर गए और द्वार के सामने खड़े हो गए। गरहदिन्ना घर से बाहर आया, पाँच विश्राम करने वाले भिक्षुओं को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए मन ही मन सोचने लगा, "हे पूज्यवर, आप भूत, वर्तमान और भविष्य सब जानते हैं! आप सोलह अलग-अलग तरीकों से सभी प्राणियों के विचारों को समझते हैं! कम से कम आपके समर्थक तो यही कहते हैं। यदि आप सचमुच यह सब जानते हैं, तो मेरे घर में प्रवेश न करें। क्योंकि यदि आप मेरे घर में प्रवेश भी करेंगे, तो आपको न तो चावल की दलिया मिलेगी, न उबले हुए चावल, न ही किसी अन्य प्रकार का भोजन। इसके बजाय मैं आपको कोयले की भट्टी में फेंकवा दूँगा और आपका अपमान करूँगा।"

लेकिन, उनके विचार के विपरीत, एक चमत्कार हुआ। बैलगाड़ी के पहियों जितने बड़े कमल के फूल उग आए और कोयले की भट्टी को चीर डाला। "मैं क्या करूँ?" गरहदिन्ना ने सिरिगुट्टा से पूछा। "क्या तुमने अभी-अभी मुझे कुछ मिट्टी के बर्तन दिखाकर यह नहीं कहा था, 'ये सभी बर्तन चावल की दलिया से भरे हैं; ये सभी उबले हुए चावल से भरे हैं,' इत्यादि?" "मैंने जो कहा वह गलत था, गुरुजी। बर्तन खाली हैं।" "कोई बात नहीं। जाओ, उन बर्तनों में चावल की दलिया और अन्य प्रकार के भोजन देखो।" उसी क्षण, जिन बर्तनों पर उन्होंने "चावल की दलिया" शब्द बोला था, वे चावल की दलिया से भर गए, जिन बर्तनों पर उन्होंने "उबले हुए चावल" शब्द बोला था, वे उबले हुए चावल से भर गए, और ऐसा ही अन्य बर्तनों के साथ भी हुआ।

जब गरहदिन्ना ने यह चमत्कार देखा, तो वे आनंद और प्रसन्नता से भर उठे और उनका हृदय आस्था से ओतप्रोत हो गया। उन्होंने अत्यंत श्रद्धा के साथ बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं की सभा में सेवा की। भोजन समाप्त होने पर, गरहदिन्ना ने यह संकेत देते हुए कि वे चाहते हैं कि बुद्ध धन्यवाद के शब्द कहें, अपना कटोरा ले लिया। इस प्रकार गरहदिन्ना बुद्ध के सच्चे शिष्य बन गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 58)

यथा संकराधनास्मि महापथे उज्जितस्मि

तत्थ सुचिगन्धं मनोरमं पदुमं जायतः

यथा : जैसे; संकारधानास्मिं [ संकारधानास्मि ]: कूड़े के ढेर में; महापथे उज्जितस्मिं [ उज्जितस्मि ]: राजमार्ग के किनारे फेंका हुआ; तत्थ : वहाँ; सुचिगंधं [ सुचिगंध ]: सुगंधित; मनोरमं [ मनोरम ]: आकर्षक; पद्मं [ पदुम ]: कमल; जायत : उग सकता है

कोई व्यक्ति सड़क के किनारे कूड़ा फेंक सकता है। उस कूड़े के ढेर में एक सुगंधित कमल उग सकता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 59)

एवं संकरभूतेषु सम्मा संबुद्धसावको

अंधभूते पुथुज्जने पन्याय अतिरोचति

एवं : इसी प्रकार; संकारभूतेसु : जो लोग कदाचार बन गए हैं उनमें; सम्मा सम्बुद्धसावको [ सम्बुद्धसावका ]: बुद्ध का शिष्य; अंधभूते पुथुज्जने : अंधे सांसारिक लोगों में; पञ्जाय : ज्ञान के माध्यम से; अतिरोचति : अत्यधिक चमकता है

उसी प्रकार, विभिन्न प्रकार के मूर्ख लोगों से बने कूड़े के ढेर में, बुद्ध का शिष्य अन्य सभी से ऊपर चमकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 58-59)

पदुमं तत्थ जायेत : कमल का उदय होना सर्वथा संभव है। नीच और पतित लोगों में से असाधारण व्यक्ति का उदय, बुद्ध के उपदेशों का एक आवर्ती विषय है। सांसारिक बंधनों से विजय प्राप्त करने वाले ज्ञानी व्यक्ति, जो साधारण लोगों में से उत्पन्न हुए हों, कमल के समान माने जाते हैं। कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी कमल कीचड़ से अछूता रहता है। इन श्लोकों में, ज्ञानी सत्य-साधक की तुलना सड़क किनारे कूड़े के ढेर से निकले कमल से की गई है। कीचड़ से उत्पन्न होने पर भी कमल सुंदर और सुगंधित होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे भ्रष्ट लोगों में से उत्पन्न संत व्यक्ति।

अतिरोकाति पन्नाय : ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति अत्यधिक प्रकाशमान होता है। बौद्ध धर्म में किसी को भी दोषी नहीं ठहराया जाता, क्योंकि महानता सबसे साधारण दिखने वाले व्यक्ति में भी छिपी होती है, ठीक वैसे ही जैसे कीचड़ भरे तालाबों से कमल खिलते हैं।

अध्याय 5. बालवग्गा: मूर्ख(60-75)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 60

---

(धम्मपद 58 और 59) <<<< पिछला|| धम्मपद60 ||अगला >>>> (धम्मपद61)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 60 - अन्नतारपुरिसा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

दिघा जगरतो रत्ती(1)

digham santassa yojanam(2)

दिघो बलना संसारो
saddhammam avijanatam.

―――――――――――――――――――――――――

श्लोक 60 : जागते रहने वाले के लिए रात लंबी होती है; थके हुए यात्री के लिए एक योजन की यात्रा लंबी होती है; सच्चे धम्म (बुद्ध की शिक्षा) से अनभिज्ञ मूर्ख के लिए संसार (पुनर्जन्मों का चक्र) लंबा होता है।

―――――――――――――――――――――――――

1. बलवग्ग: मूर्ख पर अध्याय। बल, पंडित का विलोम है; इसका अर्थ है वे लोग जो अज्ञानी, मूर्ख और मानसिक रूप से मंदबुद्धि हैं। वे सही ढंग से सोच या कार्य नहीं कर सकते।
2. योजना: लंबाई मापने की एक इकाई, लगभग बारह मील।

―――――――――――――――――――――――――

एक व्यक्ति की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (60) का उच्चारण एक निश्चित युवक और कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में किया।
एक दिन राजा पसेनादि नगर में टहलते हुए निकले तो उनकी नज़र एक सुंदर युवती पर पड़ी जो अपने घर की खिड़की पर खड़ी थी। उन्हें देखते ही वह उस पर मोहित हो गए। उन्होंने युवती को पाने के उपाय खोजने शुरू किए। जब उन्हें पता चला कि वह विवाहित है, तो उन्होंने उसके पति को बुलवाया और उसे महल में सेवा करने के लिए नियुक्त कर लिया। बाद में, राजा ने पति को एक असंभव कार्य सौंपा। युवक को सावत्थी से बारह मील दूर एक स्थान पर जाना था, नागों के देश से कुमुद कमल के फूल और अरुणावती नामक लाल मिट्टी लानी थी और उसी शाम राजा के स्नान के समय सावत्थी वापस लौटना था। राजा की मंशा यह थी कि यदि पति समय पर वापस नहीं लौटा तो उसे मार डाला जाए और युवती को अपने साथ ले जाया जाए।
अपनी पत्नी से जल्दी से भोजन का पैकेट लेकर वह युवक अपने काम पर निकल पड़ा। रास्ते में उसने अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा। उसने कुछ चावल पानी में फेंके और ज़ोर से कहा, "हे इस नदी में निवास करने वाले रक्षक आत्माओं और ड्रैगनों! राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने मुझे उनके लिए कुछ कुमुदा कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाने का आदेश दिया है। मैंने आज अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा; मैंने नदी की मछलियों को भी भोजन कराया; अब मैं आज किए गए अपने अच्छे कर्मों का फल आपके साथ बाँट रहा हूँ। कृपया मेरे लिए कुमुदा कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाएँ।" उसकी यह बात सुनकर ड्रैगनों के राजा ने एक बूढ़े व्यक्ति का रूप धारण किया और कमल और लाल मिट्टी लाकर दे दी।
उस शाम, राजा पसेनादी को डर था कि कहीं उसका युवक समय रहते वापस न आ जाए, इसलिए उन्होंने नगर के द्वार जल्दी बंद करवा दिए। द्वार बंद देखकर युवक ने लाल मिट्टी नगर की दीवार पर रख दी और उस पर फूल चिपका दिए। फिर उसने ऊँचे स्वर में कहा, "हे नागरिकों! साक्षी बनो! मैंने आज राजा के आदेशानुसार अपना कार्य समय पर पूरा कर दिया है। राजा पसेनादी बिना किसी कारण के मुझे मारना चाहते हैं।" इसके बाद, युवक जेतवन मठ की ओर चल पड़ा ताकि वहाँ के शांत वातावरण में शरण लेकर शांति पा सके।
इस बीच, कामुक इच्छाओं से ग्रस्त राजा पसेनादि को नींद नहीं आ रही थी और वे सोचते रहे कि सुबह पति से कैसे छुटकारा पाकर पत्नी को प्राप्त करें। आधी रात के करीब, उन्होंने कुछ अजीबोगरीब आवाजें सुनीं; दरअसल, ये लोहकुंभी निरय में व्यस्त चार व्यक्तियों की दुखभरी आवाजें थीं। उन विचित्र आवाजों को सुनकर राजा भयभीत हो गए। रानी मल्लिका की सलाह पर वे सुबह-सुबह बुद्ध के पास गए। जब बुद्ध को राजा द्वारा रात में सुनी गई चार आवाजों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने राजा को समझाया कि ये चार प्राणियों की आवाजें थीं, जो कश्यप बुद्ध के समय में धनी पुरुषों के पुत्र थे, और अब वे लोहकुंभी निरय में व्यस्त हैं क्योंकि उन्होंने अन्य लोगों की पत्नियों के साथ यौन दुराचार किया था। तब राजा को अपने कर्म की नीचता और दंड की गंभीरता का एहसास हुआ। इसलिए, उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि वे अब किसी अन्य पुरुष की पत्नी की लालसा नहीं करेंगे। "आखिरकार, दूसरे पुरुष की पत्नी के प्रति मेरी तीव्र इच्छा के कारण ही मैं व्याकुल रहा और पूरी रात सो नहीं सका," उसने विचार किया। तब राजा पसेनादि (प्रसेनजित) ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, अब मुझे पता चला कि जो सो नहीं पाता उसके लिए रात कितनी लंबी होती है।" पास ही खड़े उस युवक ने भी कहा, "आदरणीय महोदय, क्योंकि मैंने कल एक योजन की पूरी दूरी तय की थी, इसलिए मैं भी जानता हूँ कि थके हुए व्यक्ति के लिए एक योजन की यात्रा कितनी लंबी होती है।"
उनके दोनों कथनों को मिलाकर, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

―――――――――――――――――――――――――

श्लोक 60 : जागते रहने वाले के लिए रात लंबी होती है; थके हुए यात्री के लिए एक योजन की यात्रा लंबी होती है; सच्चे धम्म (बुद्ध के मार्ग) से अनभिज्ञ मूर्ख के लिए संसार (पुनर्जन्मों का चक्र) लंबा होता है।

―――――――――――――――――――――――――

प्रवचन के अंत में, युवक ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक खास व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक विशेष युवक और कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन राजा पसेनादि नगर में टहलते हुए निकले तो उनकी नज़र एक सुंदर युवती पर पड़ी जो अपने घर की खिड़की पर खड़ी थी। उन्हें देखते ही वह उस पर मोहित हो गए। उन्होंने उसे पाने के उपाय खोजने शुरू किए। जब उन्हें पता चला कि वह विवाहित है, तो उन्होंने उसके पति को बुलवाया और उसे महल में सेवा करने के लिए नियुक्त कर लिया। बाद में, राजा ने पति को एक असंभव कार्य सौंपा। उस युवक को सावत्थी से एक योजन (बारह मील) दूर एक स्थान पर जाना था, नागों की भूमि से कुछ कुमुडु (कमल) के फूल और कुछ लाल मिट्टी लानी थी और उसी शाम सावत्थी पहुँचकर राजा के स्नान के समय पर वहाँ पहुँचना था। राजा की मंशा थी कि यदि पति समय पर वापस नहीं लौटा तो उसे मार डाला जाए और उसकी पत्नी को अपने साथ ले जाया जाए। अपनी पत्नी से भोजन का एक पैकेट लेकर युवक जल्दी से अपने कार्य पर निकल पड़ा। रास्ते में उसने अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा और कुछ चावल पानी में फेंकते हुए ज़ोर से कहा, "हे इस नदी में निवास करने वाले रक्षक आत्माओं और नागों! राजा पसेनादि ने मुझे उनके लिए कुछ कुमुदु फूल और अरुणावती (लाल मिट्टी) लाने का आदेश दिया है। मैंने आज अपना भोजन एक यात्री के साथ बाँटा है; मैंने नदी की मछलियों को भी भोजन कराया है; अब मैं आज किए गए अपने अच्छे कर्मों का फल आपके साथ बाँट रहा हूँ। कृपया मेरे लिए कुमुदु कमल और अरुणावती लाल मिट्टी लाएँ।" यह सुनकर नागों के राजा ने एक बूढ़े व्यक्ति का रूप धारण किया और कमल और लाल मिट्टी लाकर दिए।

उस शाम, राजा पसेनादी को डर था कि कहीं उसका युवक समय पर न पहुँच जाए, इसलिए उन्होंने नगर के द्वार जल्दी बंद करवा दिए। युवक ने द्वार बंद देखकर लाल मिट्टी को नगर की दीवार पर रख दिया और उस पर फूल चिपका दिए। फिर उसने ऊँचे स्वर में कहा, "हे नागरिकों! मैंने आज राजा के आदेशानुसार अपना कार्य समय पर पूरा कर लिया है। राजा पसेनादी बिना किसी कारण के मुझे मारना चाहते हैं।" इसके बाद, युवक जेतवन मठ की ओर चल पड़ा ताकि वहाँ के शांत वातावरण में शरण लेकर शांति पा सके।

इसी बीच, कामुक इच्छाओं से ग्रस्त राजा पसेनादि को नींद नहीं आ रही थी और वे सोचते रहे कि सुबह पति से कैसे छुटकारा पाकर पत्नी को प्राप्त करें। आधी रात के करीब, उन्होंने कुछ अजीबोगरीब आवाजें सुनीं; दरअसल, ये लोहकुंभी निरय में व्यस्त चार व्यक्तियों की शोकपूर्ण आवाजें थीं। उन आवाजों को सुनकर राजा भयभीत हो गए। सुबह तड़के, रानी मल्लिका की सलाह पर वे बुद्ध से परामर्श करने के लिए जेतवन मठ गए। जब बुद्ध को राजा द्वारा रात में सुनी गई चार आवाजों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने राजा को समझाया कि ये चार व्यक्तियों की आवाजें थीं, जो कश्यप बुद्ध के समय में धनी पुरुषों के पुत्र थे, और अब वे लोहकुंभी निरय में व्यस्त हैं क्योंकि उन्होंने अन्य लोगों की पत्नियों के साथ यौन दुराचार किया था। तब राजा को अपने कर्म की बुराई और उसके दंड की गंभीरता का एहसास हुआ। इसलिए, उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि वे अब किसी अन्य पुरुष की पत्नी की लालसा नहीं करेंगे। "आखिरकार, दूसरे पुरुष की पत्नी के प्रति मेरी तीव्र इच्छा के कारण ही मैं व्याकुल था और सो नहीं पा रहा था," उसने विचार किया। तब राजा पसेनादि ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय, अब मुझे पता चला कि जो सो नहीं पाता उसके लिए रात कितनी लंबी होती है।" पास ही खड़ा वह युवक आगे आया और बोला, "आदरणीय, क्योंकि मैंने कल एक योजन की पूरी दूरी तय की थी, इसलिए मैं भी जानता हूँ कि थके हुए व्यक्ति के लिए एक योजन की यात्रा कितनी लंबी होती है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 60)

जागरतो रति दीघा संतस्स योजना दीघं

सद्धम्मं अविजानातम बलानां संसारो दिघो

जागरतो [ जागरता ]: नींद हराम करने के लिए; रत्ती दीघा : रात लंबी है; संतासा : थके हुए को; योजनं दीघं [ दीघा ]: मील लंबा है; सद्धम्मम् [ सद्धम्म ]: सिद्धांत; अविजानताम् [ अविजानता ]: अज्ञानी; बालानां [ बालाना ]: अपरिपक्व व्यक्तियों के लिए; संसारो [ संसार ]: अस्तित्व का चक्र; दीघो [ दीघा ]: लंबा है

जिसे नींद नहीं आती, उसे रात बहुत लंबी लगती है। थके हुए व्यक्ति को सफर भी लंबा लगता है। अज्ञानी, धर्म के ज्ञान से रहित व्यक्ति को जीवन चक्र बहुत लंबा लगता है, क्योंकि उसे इसे छोटा करने का तरीका नहीं पता होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 60)

संसार : प्राणियों का जन्म-मृत्यु का निरंतर चक्र, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का दुष्चक्र, जिसे बौद्ध धर्म के अनुयायी समाप्त करना चाहते हैं। बौद्ध पुनर्जन्म को जीवन की निरंतरता नहीं, बल्कि मृत्यु का निरंतर चक्र मानते हैं। हम केवल मरने के लिए ही पुनर्जन्म लेते हैं। 'शाश्वत जीवन' एक भ्रम है। जीवन जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के अलावा कुछ नहीं है। बौद्ध धर्म में इसकी निरंतरता स्वीकार्य नहीं है।

बौद्ध धर्म का लक्ष्य 'अमरता' या 'मृत्युहीनता' है, जो एकमात्र संभव वास्तविकता है और 'शाश्वत जीवन' से बिल्कुल भिन्न है। अमरता, जो निर्वाण है, पुनर्जन्म से नहीं, बल्कि उसके रुकने से प्राप्त होती है। यह अस्तित्व का अंत नहीं है; क्योंकि अस्तित्व केवल एक भ्रम है। यह अस्तित्व के भ्रम को दूर करना और उससे आसक्ति का त्याग करना है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 61

---

(धम्मपद 60) <<<< पिछला || धम्मपद 61 || अगला >>>> (धम्मपद 62)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 61 - महाकस्सप सद्धिविहारिका वत्थु

---

### डॉ म्या टिन संस्करण

Carance nadhigaccheyya
सेय्याम सदिसमत्तानो
ekacariaram dalham kayira
natthi bale sahayata.

---

श्लोक 61 : यदि कोई व्यक्ति साथी की तलाश में हो और उसे अपने से बेहतर या अपने बराबर का साथी न मिले, तो उसे दृढ़ निश्चय के साथ अकेले ही आगे बढ़ना चाहिए; मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं हो सकती।

---

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) महाकस्सपा के एक निवासी शिष्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के एक निवासी शिष्य के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (61) कहा।

जब थेरा महाकस्सपा राजगृह के पास निवास कर रहे थे, तब उनके साथ दो युवा भिक्षु रहते थे। उनमें से एक थेरा का आदरपूर्वक सम्मान करता था, आज्ञाकारी था और उनके प्रति कर्तव्यनिष्ठ था, परन्तु दूसरा ऐसा नहीं था। जब वृद्ध थेरा ने दूसरे को उसके कर्तव्य में लापरवाही के लिए फटकारा, तो वह बहुत क्रोधित हुआ। एक बार वह थेरा के एक गृहस्थ शिष्य के घर गया और उनसे झूठ बोला कि थेरा बीमार हैं। इस प्रकार, उसने थेरा के लिए उनसे कुछ उत्तम भोजन प्राप्त किया; परन्तु उसने वह भोजन रास्ते में ही खा लिया। जब थेरा ने उसे इसके लिए फटकारा, तो वह अत्यंत क्रोधित हुआ। अगले दिन, जब थेरा भिक्षा मांगने निकले थे, तो वह मूर्ख युवा भिक्षु पीछे रह गया, उसने बर्तन तोड़ दिए और मठ में आग लगा दी।

जब राजगृह के एक भिक्षु ने बुद्ध को इस बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा कि थेरा महाकस्सपा के लिए एक मूर्ख साथी के साथ रहने की बजाय अकेले रहना कहीं बेहतर होता।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 61 : यदि कोई व्यक्ति साथी की तलाश में हो और उसे अपने से बेहतर या अपने बराबर का साथी न मिले, तो उसे दृढ़ निश्चय के साथ अकेले ही आगे बढ़ना चाहिए; मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं हो सकती।

---

प्रवचन के अंत में, राजगृह के भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महाकस्सपा के एक शिष्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के एक शिष्य के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब पूज्य कश्यप पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, तब उनके दो शिष्य उनसे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इनमें से एक शिष्य अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करता था, परन्तु दूसरा अक्सर अपने कर्तव्यों से जी चुराता था और दूसरे के किए गए काम का श्रेय खुद लेने की कोशिश करता था। उदाहरण के लिए, निष्ठावान शिष्य चेहरा धोने के लिए पानी और दाँत साफ करने वाली लकड़ी निकाल कर रखता था। यह जानकर, अविज्ञ शिष्य पूज्य कश्यप के पास जाकर कहता, "पूज्यवर, चेहरा धोने के लिए पानी और दाँत साफ करने वाली लकड़ी निकाल कर रखी है। जाइए, चेहरा धो लीजिए।" जब पैर धोने और स्नान के लिए पानी तैयार करने का समय आता, तब भी वह यही तरीका अपनाता था।

उस निष्ठावान शिष्य ने मन ही मन सोचा, "यह तो हमेशा अपना काम टालता रहता है और मेरे काम का श्रेय लेने की कोशिश करता है। अच्छा! मैं भी कुछ करूंगा।" एक दिन, जब वह अनिष्ठ शिष्य भोजन के बाद सो रहा था, उसने स्नान के लिए पानी गर्म किया, उसे एक घड़े में डाला और उसे पीछे वाले कमरे में रख दिया, केवल एक छोटे बर्तन में पानी उबलता हुआ छोड़ दिया। शाम को अनिष्ठ शिष्य जागा और उसने भाप निकलते देखी। उसने सोचा, "उसने पानी गर्म करके स्नानघर में रख दिया होगा।" तो वह जल्दी से पूज्य गुरु के पास गया, प्रणाम किया और कहा, "पूज्य गुरु, स्नानघर में पानी रखा हुआ है; जाइए और स्नान कीजिए।" ऐसा कहकर वह पूज्य गुरु के साथ स्नानघर गया। लेकिन जब पूज्य गुरु ने पानी नहीं देखा, तो उन्होंने कहा, "भाई, पानी कहाँ है?" युवक उस कमरे में गया जहाँ चूल्हा रखा था, और घड़े से घड़े में पानी डाला, तो पाया कि वह खाली था। "देखो, इस बदमाश ने क्या कर दिया!" वह चौंककर बोला, "उसने अंगीठी पर खाली बॉयलर रख दिया और फिर चला गया—पता नहीं कहाँ? मुझे लगा कि बाथरूम में पानी है और मैंने जाकर पूज्यवर को यही बताया।" निराश होकर वह पानी का घड़ा लेकर नदी किनारे स्नान करने चला गया।

आदरणीय कस्सपा ने सोचा, 'इतने समय से यह युवक अपने कर्तव्यों से जी चुरा रहा है और अपने साथी शिष्य द्वारा किए गए काम का श्रेय खुद लेने की कोशिश कर रहा है।' अगले दिन उसने आदरणीय कस्सपा के साथ उनके दौरों पर जाने से इनकार कर दिया। इसलिए आदरणीय कस्सपा अपने दूसरे शिष्य को अपने साथ एक स्थान पर ले गए।

जब वह अनुपस्थित था, तब वह विश्वासघाती शिष्य एक गृहस्थ के घर गया जो पूज्य भिक्षु का समर्थक था। गृहस्थ ने उससे पूछा, "भिक्षु कहाँ हैं?" भिक्षु की तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए वे मठ में ही रुके हुए हैं। "तो फिर उन्हें क्या चाहिए, पूज्य?" युवक ने यह जताते हुए कहा कि भिक्षु ने उसे ऐसा भोजन माँगने को कहा है, "उन्हें ऐसा भोजन दीजिए।" तदनुसार, उन्होंने वैसा ही भोजन तैयार किया जैसा उसने माँगा था और उसे दे दिया। उसने भोजन लिया, वापस आते समय खाया और मठ लौट आया।

अब पूज्य गुरु को उनके समर्थक से पाँच वस्त्र प्राप्त हुए, और उन्होंने इन्हें अपने साथ आए युवक को दे दिया। नौसिखिए ने उन्हें रंगकर अपने लिए अंतर्वस्त्र और अंतर्वस्त्र बना लिए। पूज्य गुरु ने शिष्य को उसके व्यवहार के लिए फटकारा। शिष्य ने इस सलाह को अनसुना कर दिया। अगले दिन, उसने मठ में आग लगा दी और भाग गया। जब उसकी मृत्यु हुई, तो उसका पुनर्जन्म अविची के महान नरक में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 61)

कैरं अत्तनो सेयं सदिसं सी ना अधिगच्छेया

एककारियं दहहं कयिरा बाले सहायता नत्थि

कैराँ [ कैरा ]: साथी के रूप में; अट्टानो [ अट्टाना ]: स्वयं के लिए, सेय्यं [ सेय्या ]: एक बड़ा; सदिसं [ सदिसा ]: बराबर पर; सीई ना अधिगच्छेया : नहीं पाया जाता है ; एककारियं [ एककारिया ]: अकेले रहना; दहहं कयिरा : किया जाना चाहिए; बाले सहायता : मूर्खों के साथ संगति; नत्थी : नहीं है

लोगों को साथी की आवश्यकता होती है। लेकिन यदि कोई ऐसा व्यक्ति न मिले जो स्वयं से बेहतर हो, या कम से कम अपने बराबर का हो, तो मूर्ख लोगों की संगति में रहने से बेहतर है कि अकेले ही रहें। मूर्खों की संगति से कोई लाभ नहीं होता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 61)

सहायता : संगति; साथ रहना। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि अपरिपक्व लोगों की संगति नहीं रखनी चाहिए। अपरिपक्व लोगों की संगति सांसारिक प्रगति के लिए भी अनुकूल नहीं है, आध्यात्मिक प्रगति की तो बात ही छोड़ दीजिए।

व्याख्या के अनुसार, यह शब्द उच्च नैतिकता, अंतर्दृष्टि, मार्ग और संतत्व के फलों को दर्शाता है। मूर्खों में ऐसे गुण नहीं पाए जाते।

करुणावश, उनकी भलाई के लिए काम करने हेतु, कोई मूर्खों के साथ संगति कर सकता है, लेकिन उनसे दूषित नहीं होना चाहिए।

---

(धम्मपद 61) <<<< पिछला || धम्मपद 62 || अगला >>>> (धम्मपद 63)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 62 - आनंदसेट्ठि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

पुत्ता(1) मत्थि धनं मा' त्थि
iti balo vihannati
atta hi attano natthi
kuto putta kuto dhanam.

---

श्लोक 62 : "मेरे पुत्र हैं, मेरे पास धन है"; इस (मोह) भावना से मूर्ख व्याकुल रहता है। वास्तव में, वह स्वयं अपना नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कैसे हो सकते हैं?

---

1. पुट्टा: पुत्रों का अर्थ पुत्र और पुत्री दोनों होता है।

---

आनंद, धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आनंद नामक एक कंजूस धनी व्यक्ति के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (62) कहा।

सावत्थी में आनंद नाम का एक बहुत धनी व्यक्ति रहता था। उसके पास अस्सी करोड़ रुपये की संपत्ति थी, फिर भी वह दान देने में बहुत कंजूस था। वह अपने पुत्र मूलासिरी से अक्सर कहता था, "यह मत सोचो कि तुम्हारे पास जो धन है वह बहुत अधिक है। अपने पास जो कुछ भी है उसमें से कुछ भी दान मत करो, क्योंकि तुम्हें उसे बढ़ाना होगा। अन्यथा तुम्हारा धन क्षीण हो जाएगा।" इस धनी व्यक्ति ने अपने घर में सोने के पाँच घड़े गाड़ रखे थे और अपने पुत्र को उनका स्थान बताए बिना ही उसकी मृत्यु हो गई।

आनंद, जो एक धनी व्यक्ति था, का पुनर्जन्म सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित भिखारियों के एक गाँव में हुआ। उसकी माँ के गर्भवती होने के समय से ही भिखारियों की आमदनी कम हो गई थी; गाँव वालों को लगा कि उनमें से कोई दुष्ट और अभागा ज़रूर होगा। उन्होंने समूह बनाकर और एक-एक करके लोगों को छाँटकर यह निष्कर्ष निकाला कि गर्भवती भिखारी महिला ही अभागी होगी। इस प्रकार, उसे गाँव से निकाल दिया गया। जब उसका बेटा पैदा हुआ, तो वह बेहद बदसूरत और घिनौना निकला। अगर वह अकेले भीख मांगने जाती, तो उसे पहले की तरह ही पैसे मिलते, लेकिन अगर वह अपने बेटे के साथ जाती, तो उसे कुछ नहीं मिलता। इसलिए, जब लड़का अकेले भीख मांगने लायक हो गया, तो उसकी माँ ने उसके हाथ में एक थाली थमाकर उसे वहीं छोड़ दिया। सावत्थी में भटकते हुए, उसे अपना पुराना घर और अपना पिछला जीवन याद आया। इसलिए वह घर में चला गया। जब उसके बेटे मुलासिरी के बेटों ने उसे देखा, तो वे उसके बदसूरत रूप को देखकर डर गए और रोने लगे। तब नौकरों ने उसे पीटा और घर से बाहर निकाल दिया।

भिक्षा मांगने निकले बुद्ध ने यह घटना देखी और पूज्य आनंद से मूलासिरि को बुलाने को कहा। जब मूलासिरि आए, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यह युवक उनके पिछले जन्म में उनके अपने पिता थे। लेकिन मूलासिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए, बुद्ध ने उस भिखारी को अपने पांच सोने के घड़े दफनाने की जगह दिखाने को कहा। तब जाकर मूलासिरि ने सच्चाई को स्वीकार किया और उस समय से वे बुद्ध के समर्पित गृहस्थ शिष्य बन गए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 62: "मेरे पुत्र हैं, मेरे पास धन है"; इस (मोह) भावना से मूर्ख व्याकुल रहता है। वास्तव में, वह स्वयं अपना नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कैसे हो सकते हैं?

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आनंद, धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आनंद नामक एक कंजूस धनी व्यक्ति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी में आनंद नाम का एक बहुत धनी व्यक्ति रहता था। उसके पास अस्सी अरब की संपत्ति थी, फिर भी वह दान देने में बहुत कंजूस था। वह अपने पुत्र मूलसिरि से अक्सर कहता था, ‘‘यह मत सोचो कि तुम्हारे पास जो धन है वह बहुत अधिक है। अपने धन में से कुछ भी दान मत करो, क्योंकि तुम्हें उसे बढ़ाना होगा। अन्यथा, तुम्हारा धन कम हो जाएगा।’’ इस धनी व्यक्ति ने अपने घर में सोने के पाँच घड़े गाड़ रखे थे और अपने पुत्र को उनका स्थान बताए बिना ही उसकी मृत्यु हो गई।

धनवान आनंद का पुनर्जन्म श्रावस्ती से कुछ ही दूरी पर स्थित एक भिखारियों के गाँव में हुआ। उनकी माता के गर्भ में आने के समय से ही भिखारियों की आमदनी कम होने लगी थी; गाँव वालों को लगा कि उनमें से कोई दुष्ट और अभागा है। उन्होंने समूह बनाकर और एक-एक करके लोगों को छाँटकर यह निष्कर्ष निकाला कि गर्भवती भिखारी महिला ही अभागी है। इस प्रकार, उसे गाँव से निकाल दिया गया। जब उसका पुत्र जन्मा, तो वह अत्यंत कुरूप और घृणित निकला। उसके हाथ, पैर, आँखें, कान, नाक और मुँह अपनी जगह पर नहीं थे। इतना भयानक दिखने वाला वह व्यक्ति मिट्टी के भूत जैसा लगता था। इसके बावजूद, उसकी माता ने उसे नहीं छोड़ा, क्योंकि एक माँ का अपने गर्भ में पल रहे बच्चे के लिए प्रेम महान होता है। यदि वह अकेले भीख मांगने जाती, तो उसे पहले की तरह ही भीख मिलती, लेकिन यदि वह अपने पुत्र के साथ जाती, तो उसे कुछ नहीं मिलता। जब लड़का स्वयं बाहर जाने लायक हो गया, तो उसकी माँ ने उसके हाथ में एक थाली थमा दी और उसे यह कहते हुए छोड़ दिया, ‘‘प्यारे बेटे, तुम्हारी वजह से हम बहुत कष्ट में आ गए हैं। अब हम तुम्हारा भरण-पोषण नहीं कर सकते। इस शहर में गरीबों और यात्रियों के लिए भोजन की व्यवस्था है। तुम भीख मांगकर अपना गुजारा कर लो।’’ जब वह सावत्थी में भटक रहा था, तो उसे अपना पुराना घर और अपना पिछला जीवन याद आ गया। इसलिए वह घर में चला गया। जब उसके पुत्र मूलसिरि के पुत्रों ने उसे देखा, तो वे उसके बदसूरत रूप से डर गए और रोने लगे। तब नौकरों ने उसे पीटा और घर से बाहर निकाल दिया।

भिक्षा मांगने निकले बुद्ध ने यह घटना देखी और पूज्य आनंद से मूलसिरि को बुलाने को कहा। जब मूलसिरि आए, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यह युवक उनके पिछले जन्म में उनके अपने पिता थे। लेकिन मूलसिरि को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए, बुद्ध ने उस भिखारी को अपने पांच सोने के घड़े दफनाने की जगह दिखाने को कहा। तब जाकर मूलसिरि ने सच्चाई को स्वीकार किया और तब से वे बुद्ध के समर्पित गृहस्थ शिष्य बन गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 62)

मे पुत्त अत्थि मे धनं अत्थि इति बालो विहानति

अत्ता हि अत्तनो नत्थि पुत्ता कुटो धनं कुतो

मुझे : मैं; पुत्र : मेरे पुत्र हैं; मुझे : मैं; धन : मेरे पास धन है; इति : इस तरह; बालो : मूर्ख; विह्ञति : चिंताएँ; अत्ता हि : स्वयं; अत्तनो नत्थि : किसी के पास नहीं है; पुत्र : पुत्र; कुतो : यह कैसे हो सकता है; धन : धन ; कुतो : यह कैसे हो सकता है।

मूर्ख को चिंता होती है, ‘‘मेरे बेटे हैं,’’ ‘‘मेरे पास धन है।’’ जब उसका स्व स्वयं का नहीं है, तो वह कैसे दावा कर सकता है, ‘‘मेरे बेटे हैं’’ या ‘‘मेरे पास धन है’’?

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 62)

अत्ता हि अत्तनो नत्थि : मूर्ख लोग यह सोचकर खुद पर कर लगाते हैं कि उनके पुत्र हैं, उनके पास धन है। परन्तु वास्तव में, उनका 'स्व' उनका अपना नहीं है। यदि उनका 'स्व' उनका अपना होता, तो वे उसे अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रित कर सकते थे। परन्तु वे बूढ़े हो जाते हैं; वे क्षीण हो जाते हैं; वे बीमार पड़ जाते हैं; उनके साथ अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, तो वे कैसे सोच सकते हैं कि वे स्वयं के स्वामी हैं?

अनाज, धन, चांदी, सोना और जो भी संपत्ति है; गुलाम, कारीगर, नौकर और उन पर आश्रित सभी लोग—

जाते समय इन सभी चीजों को त्यागना पड़ता है। लेकिन कर्म, वचन या विचार से जो कुछ भी किया जाए—

वह केवल उसी का है; वह केवल उसी को अपने साथ ले जाता है और वह केवल अविभाज्य परछाई की तरह उसका पीछा करता है।

सभी प्राणी मरते हैं। जीवन का अंत मृत्यु में होता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है, चाहे वे पुण्य कर्म करें या पाप। पाप कर्म करने वाले दुखमय लोक में जाते हैं और पुण्य कर्म करने वाले आनंदमय लोक में पहुँचते हैं। इसलिए, सदा अच्छे कर्म करते रहें, जो परलोक में जीवन के लिए भंडार का काम करते हैं। पुण्य कर्म परलोक में प्राणियों के लिए बड़ा सहारा होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 63

---

(धम्मपद 62) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 63 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 64)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 63 - गंथिभेदाकोरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Ya balo mannati balyam
panditovapi tena so
balo ca panditamani
sa ve baloti vuccati.

---

श्लोक 63 : जो मूर्ख जानता है कि वह मूर्ख है, वह इसी कारण बुद्धिमान हो सकता है; परन्तु जो मूर्ख यह सोचता है कि वह बुद्धिमान है, वह वास्तव में मूर्ख ही कहलाता है।

---

दो जेबकतरों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने दो जेबकतरों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (63) का उच्चारण किया।

एक बार दो जेबकतरे उन गृहस्थ शिष्यों के समूह में शामिल हो गए जो जेतवन मठ जा रहे थे, जहाँ बुद्ध प्रवचन दे रहे थे। उनमें से एक ने प्रवचन ध्यान से सुना और शीघ्र ही सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया। परन्तु दूसरा चोर प्रवचन पर ध्यान नहीं दे रहा था क्योंकि उसका इरादा केवल चोरी करने का था; और वह एक गृहस्थ शिष्य से थोड़ी सी धनराशि छीनने में सफल रहा। प्रवचन के बाद वे वापस लौटे और दूसरे चोर के घर भोजन किया, वही चोर जिसने कुछ धनराशि चुराई थी। दूसरे चोर की पत्नी ने पहले चोर को ताना मारा, "तुम तो बड़े बुद्धिमान हो, तुम्हारे घर में तो पकाने के लिए कुछ है ही नहीं।" यह सुनकर पहले चोर ने मन ही मन सोचा, "यह औरत कितनी मूर्ख है जो खुद को बहुत चालाक समझती है।" फिर, कुछ रिश्तेदारों के साथ, वह बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई।

बुद्ध ने उस व्यक्ति से छंदों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 63 : जो मूर्ख जानता है कि वह मूर्ख है, वह इसी कारण बुद्धिमान हो सकता है; परन्तु जो मूर्ख यह सोचता है कि वह बुद्धिमान है, वह वास्तव में मूर्ख ही कहलाता है।

---

प्रवचन के अंत में, उस व्यक्ति के सभी रिश्तेदारों ने सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

दो जेबकतरों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने दो जेबकतरों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, ये दो भाग्यशाली साथी बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए एक विशाल जनसमूह के साथ जेतवन गए। उनमें से एक ने प्रवचन सुना, जबकि दूसरा कुछ चुराने का अवसर तलाश रहा था। प्रवचन सुनते-सुनते पहले ने 'धारा में प्रवेश' कर लिया; दूसरे को एक व्यक्ति की कमरबंद में पाँच सिक्के बंधे मिले और उसने उन्हें चुरा लिया। चोर ने अपने घर में हमेशा की तरह खाना पकाया, लेकिन उसके साथी के घर में खाना नहीं पकाया गया। उसके साथी चोर और उसकी पत्नी ने उसका उपहास करते हुए कहा, "तुम इतने अधिक बुद्धिमान हो कि अपने घर में नियमित भोजन करने के लिए भी पर्याप्त धन नहीं जुटा सकते।" धारा में प्रवेश करने वाले ने मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति मूर्ख है, इसलिए यह नहीं सोचता कि वह मूर्ख है।" और अपने परिजनों के साथ जेतवन जाकर उसने बुद्ध को घटना का वर्णन किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 63)

बालो यो बाल्यं मन्नति तेन सो पण्डितो वा अपि ,
बालो च पंडितमणि सो वे बालो इति वुकाति

बालो [ बाला ]: मूर्ख; यो बाल्यं [ बालिया ]: किसी की मूर्खता; मान्यता : जानता है; तेन : उस ज्ञान के बल पर; इसलिए : वह; पंडितो वा अपि : बुद्धिमान भी है; बालो च : यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति; पंडितमणि : स्वयं को बुद्धिमान समझता है; तो : वह; वे : वास्तव में; बालो इति वच्चति : मूर्ख कहलाता है

यदि कोई मूर्ख व्यक्ति अपनी मूर्खता का बोध कर ले, तो उस बोध के कारण उसे बुद्धिमान कहा जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, यदि कोई मूर्ख व्यक्ति यह सोचने लगे कि वह बुद्धिमान है, तो उसे मूर्ख कहा जा सकता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 63)

यो बालो मान्ञति बाल्यं : यदि कोई मूर्ख व्यक्ति जानता है कि वह मूर्ख है। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि सच्ची बुद्धि वास्तविकता के ज्ञान में निहित है। यदि कोई व्यक्ति अपनी मूर्खता से अवगत है, तो वह जागरूकता ही उसे बुद्धिमान बनाती है। सच्ची बुद्धि का आधार चीजों का सही ज्ञान है, जैसा कि वे वास्तव में हैं। जो लोग मूर्ख हैं, लेकिन यह मानते हैं कि वे बुद्धिमान हैं, वे वास्तव में मूर्ख हैं क्योंकि यह मूलतः झूठी जागरूकता उनके संपूर्ण चिंतन को प्रभावित करती है।

बालो : मूर्ख व्यक्ति। मूर्खता भ्रम ( मोह ) और अज्ञान ( अविज्जा ) का परिणाम है। अज्ञान ही संसार में समस्त बुराई और दुख का मूल कारण है, जो मनुष्य के मानसिक नेत्रों को ढक लेता है और उसे अपने वास्तविक स्वरूप को देखने से रोकता है। यह उस भ्रम को अपने साथ लिए रहता है जो प्राणियों को जीवन को स्थायी, सुखी, व्यक्तिगत और वांछनीय प्रतीत कराकर उन्हें भ्रमित करता है। यह उन्हें यह देखने से रोकता है कि वास्तविकता में सब कुछ क्षणभंगुर है, दुख के योग्य है, 'मैं' और 'मेरा' से रहित है और मूलतः अवांछनीय है। अज्ञान ( अविज्जा ) को "चार सत्यों का ज्ञान न होना" के रूप में परिभाषित किया गया है; अर्थात्, दुख, उसका उद्गम, उसका निवारण और उसके निवारण का मार्ग।

अविज्जा समस्त बुराई और दुख का आधार है, इसलिए यह प्रतीत्यसमुत्पाद के सूत्र में सर्वप्रथम स्थान पर है। अविज्जा को 'सभी चीजों का अकारण कारण' नहीं माना जाना चाहिए। इसका भी एक कारण है। इसका कारण इस प्रकार बताया गया है: ' आसव की उत्पत्ति के साथ ही अविज्जा की उत्पत्ति होती है ।' बुद्ध ने कहा, " अविज्जा की ऐसी कोई प्रथम उत्पत्ति नहीं देखी जा सकती, जिसके पहले अविज्जा का अस्तित्व न हो और जिसके बाद वह अस्तित्व में आई हो। परन्तु यह अवश्य देखा जा सकता है कि अविज्जा की अपनी विशिष्ट अवस्था होती है।"

चूंकि अरहतत्व या पूर्णता की प्राप्ति तक अज्ञान ( अविज्जा ) अत्यंत सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है, इसलिए इसे उन दस बंधनों में अंतिम माना जाता है जो प्राणियों को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं। जिस प्रकार लोभ और घृणा, बुराई के पहले दो मूल कारण, अज्ञान में निहित हैं और फलस्वरूप मन की सभी अस्वस्थ अवस्थाएँ इससे अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं, उसी प्रकार मोह ( मोह ) बुराई के तीन मूल कारणों में सबसे हठी है।

अविज्जा उन आसवों (प्रभावों) में से एक है जो व्यवहार को प्रेरित करते हैं। इसे अक्सर अवरोधक कहा जाता है, लेकिन यह पांच अवरोधकों की सामान्य सूची में शामिल नहीं होता है ।

दुःख के सत्य, उसके कारण, उसके अंत और उसके अंत के मार्ग के प्रति अनभिज्ञता ( अविज्जा ) ही जीवन चक्र ( संसार ) को गतिमान करने का मुख्य कारण है। दूसरे शब्दों में, यह चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में न जानना, या स्वयं को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानना है। यह सही समझ को धूमिल कर देता है।

बुद्ध कहते हैं, " अविज्जा वह अंधकार है जो हमें पुनर्जन्म के इस चक्र में फंसाए रखता है।" जब अज्ञानता नष्ट होकर जागरूकता में परिवर्तित हो जाती है, तो "कारण-कार्य का क्रम" टूट जाता है, जैसा कि बुद्धों और अरहतों के मामले में हुआ। इतिवुत्तक में बुद्ध कहते हैं, "जिन्होंने अविज्जा का नाश कर दिया है और अविज्जा के घने अंधकार को भेद दिया है , वे संसार के चक्र में फिर कभी नहीं भटकेंगे ।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 64

---

(धम्मपद 63) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 64 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 65)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 64 - उदयित्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yavajivampi ce balo
पंडितम पायिरुपासति
na so dhammam vijanati
dabbi suparasam yatha.

---

श्लोक 64 : एक मूर्ख, चाहे वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ रहे, धम्म को नहीं समझता, ठीक वैसे ही जैसे एक करछुल सूप का स्वाद नहीं जानता।

---

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) उदयी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (64) का उच्चारण किया, जो एक ढोंगी भिक्षु थेरा उदयी के संदर्भ में था। थेरा उदयी अक्सर उस चबूतरे पर जाकर बैठते थे जहाँ से विद्वान थेरा प्रवचन देते थे। एक बार, कुछ आगंतुक भिक्षुओं ने, उन्हें एक बहुत विद्वान थेरा समझकर, उनसे पाँच स्कंधों (खंधों) के विषय में कुछ प्रश्न पूछे। थेरा उदयी उत्तर नहीं दे सके, क्योंकि उन्हें धम्म का कोई ज्ञान नहीं था। आगंतुक भिक्षु यह देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित हुए कि बुद्ध के साथ एक ही मठ में रहने वाला व्यक्ति खंधों और आयतनों (इंद्रिय-आधार और इंद्रिय-विषय) के बारे में इतना कम जानता है।

बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 64 : मूर्ख व्यक्ति, चाहे वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ रहे, धम्म को नहीं समझ पाता, ठीक वैसे ही जैसे चम्मच को सूप का स्वाद नहीं पता होता।

प्रवचन के अंत में, सभी उपस्थित भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदायिक उदयि की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आदरणीय उदयि नामक एक अभिमानी भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। कथा यह है कि जब भिक्षु सत्य-महल से बाहर निकलते थे, तो आदरणीय उदयि अंदर जाकर धम्म आसन पर बैठ जाते थे। एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उन्हें वहाँ देखा और मन ही मन सोचा, “यह अवश्य ही बुद्ध होंगे,” और उनसे तत्वों और अन्य विषयों के बारे में कुछ प्रश्न पूछे। यह जानकर कि उन्हें इनमें से किसी भी विषय का ज्ञान नहीं है, उन्होंने उपहासपूर्वक कहा, “यह कौन भिक्षु है जो बुद्ध के साथ एक ही मठ में रहता है? यह तो तत्वों, तत्वों और इंद्रियों के षडयंत्रों के बारे में भी नहीं जानता।” अतः उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 64)

बालो सी यावजीवं अपि पण्डितं पयिरूपसति ,
सो धम्मं न विजानाति यथा दब्बि सुपारसं ।

बालो : अज्ञानी व्यक्ति; चे : यदि; यावजीवं अपि : जीवन भर भी; पंडितं [ पंडित ]: ज्ञानी व्यक्ति; पयिरुपासति : घनिष्ठ रूप से संगति करता है; इसलिए : वह; धम्म [ धम्म ]: जीवन का मार्ग; न विजानति : नहीं सीखेगा; यथा : जैसे; डब्बी : चम्मच; सूप का स्वाद (नहीं जानेगा)

एक मूर्ख व्यक्ति, भले ही वह जीवन भर किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ घनिष्ठ रूप से रहे, अनुभव की प्रकृति से अवगत नहीं हो पाएगा, ठीक उसी तरह जैसे एक चम्मच को सूप का स्वाद नहीं पता होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 64)

डब्बी : चम्मच। बुद्ध ने इस श्लोक में अपने विचार को बहुत ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है। डब्बी — चम्मच, व्यंजनों को हिलाता है। अपने काम के दौरान चम्मच सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों के संपर्क में आता है। चम्मच बाएँ-दाएँ, ऊपर-नीचे घूमता है, भोजन को इधर-उधर पलटता है। चम्मच मीठे, खट्टे, कसैले आदि सभी प्रकार के व्यंजनों के लिए ऐसा करता रहता है। चम्मच युगों तक चलता रहता है जब तक कि वह नष्ट न हो जाए। लेकिन बुद्ध का कहना है कि उसके बाद चम्मच को भोजन का स्वाद नहीं पता रहता। यह एक मूर्ख व्यक्ति के साथ होने वाले उस व्यवहार को दर्शाने के लिए एक सटीक उदाहरण है जो जीवन भर बुद्धिमानों के साथ रहता है। उसे उस संगति से जरा सा भी लाभ नहीं मिलता।

धम्म : धम्म शब्द (जिसका अर्थ है "अनुभव") के अनेक अर्थ हैं। बौद्ध धर्म में इसका प्रमुख अर्थ 'बुद्ध का वचन' है। बुद्ध ने संसार को अपने 'अनुभव' के बारे में बताया। जिस प्रक्रिया से संसार को इस 'अनुभव' के बारे में पता चला, वह बुद्ध का वचन था, जिसे बुद्धधम्म कहा जाता है और जिसका बौद्ध धर्मग्रंथों में विस्तृत वर्णन है। ज्ञान प्राप्ति के तुरंत बाद, वे एकांत ध्यान में लीन हो गए। उस समय उनके मन में निम्नलिखित विचार आया,

"यह 'अनुभव', जिसे मैंने प्राप्त किया है, वास्तव में गहन, बोधगम्य, शांत, उदात्त, तर्क के दायरे से परे, सूक्ष्म और बुद्धिमानों के लिए ही समझने योग्य है। ये प्राणी भौतिक सुखों से आसक्त हैं। यह कारण-संबंधी 'आश्रित उत्पत्ति' एक ऐसा विषय है जिसे समझना कठिन है। और यह निर्वाण—बद्धताओं का निवारण, सभी वासनाओं का त्याग, व्यथा का नाश, अनासक्ति और अंत—भी एक ऐसा विषय है जिसे आसानी से समझा नहीं जा सकता। यदि मैं इस 'अनुभव' (धम्म) का उपदेश दूं, तो अन्य लोग मुझे नहीं समझ पाएंगे। यह मेरे लिए केवल कष्टदायक होगा, यह मेरे लिए थकावट होगी।"

तब बुद्ध को ये अद्भुत श्लोक सूझे, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे: "मैंने बड़ी कठिनाई से धम्म को समझा है। अब इसका प्रचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह धम्म कामवासना और घृणा से ग्रस्त लोगों को आसानी से समझ में नहीं आता। अंधकार में डूबे, कामवासना से ग्रस्त जनसमूह इस धम्म को नहीं देख पाते, जो धारा के विपरीत है, जो समझना आसान नहीं है, गहरा है, बोध करना कठिन है और सूक्ष्म है।"

जब बुद्ध ने इस प्रकार विचार किया, तो वे धम्म की व्याख्या करने के लिए इच्छुक नहीं थे।

तब ब्रह्मा सहमपति (जिन्हें ब्राह्मण जगत का सृष्टिकर्ता मानते हैं) ने बुद्ध के विचारों को पढ़ा और यह भय मानते हुए कि धम्म का उपदेश न सुनने से जगत का नाश हो जाएगा, उनके पास जाकर उनसे धम्म का उपदेश देने का आग्रह किया: "हे प्रभु, बुद्ध धम्म का उपदेश दें! बुद्ध धम्म का उपदेश दें! कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी नहीं है, जो धम्म का उपदेश न सुनकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धम्म को समझेंगे।"

इसके अलावा, उन्होंने कहा, "प्राचीन काल में मगध में एक अपवित्र धम्म उत्पन्न हुआ, जो भ्रष्ट लोगों द्वारा विचारित था। अमरता के इस द्वार को खोलें। वे निष्कलंक धम्म को सुनें! जैसे कोई चट्टानी पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर अपने आसपास के लोगों को देखता है, वैसे ही सर्वदर्शी, ज्ञानी, जो धम्म के इस महल में आरोहित हैं, दुःख रहित, उन लोगों को देखें जो दुःख में डूबे हुए हैं और जन्म-मृत्यु के चक्र में जकड़े हुए हैं!"

"हे वीर, युद्ध के विजेता, कारवां के नेता, ऋणमुक्त, उठो और संसार में प्रस्थान करो! बुद्ध धर्म का उपदेश दें! धर्म को समझने वाले अवश्य ही होंगे।"

जब ब्राह्मण ने ऐसा कहा, तो भगवान ने उनसे इस प्रकार कहा, "हे ब्रह्मा, मेरे मन में यह विचार आया — 'यह धर्म जिसे मैंने समझा है, कामवासना और घृणा से ग्रस्त लोगों को आसानी से समझ में नहीं आता। अंधकार में डूबे, कामवासना से ग्रस्त जनसमूह इस धर्म को नहीं देख पाते, जो धारा के विपरीत है, जो गूढ़, गहन, समझने में कठिन और सूक्ष्म है।' ऐसा चिंतन करते हुए, मेरा मन निष्क्रियता की ओर और धर्म का उपदेश न देने की ओर मुड़ गया।"

ब्रह्मा सहमपति ने दूसरी बार बुद्ध से प्रार्थना की और उन्होंने वही उत्तर दिया। जब उन्होंने तीसरी बार बुद्ध से प्रार्थना की, तो बुद्ध ने प्राणियों पर दया करते हुए अपनी बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। अवलोकन करते हुए उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम और अधिक धूल थी, जिनकी बुद्धि तीव्र और मंद थी, जिनमें अच्छे और बुरे गुण थे, जो आसानी से और आसानी से सिखाए जा सकते थे और जिन्हें सिखाना कठिन था, और कुछ ऐसे भी थे जो बुराई से भयभीत थे और परलोक में विश्वास रखते थे। जैसे नीले, लाल या सफेद कमल के तालाब में, कुछ कमल पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी में ही फलते-

फूलते हैं; कुछ पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी की सतह पर रहते हैं; कुछ अन्य पानी में जन्म लेते हैं, पानी में बढ़ते हैं और पानी से बाहर निकलकर पानी से अछूते खड़े रहते हैं। फिर भी, जब बुद्ध ने अपनी बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम और अधिक धूल थी, जिनकी बुद्धि तीव्र और मंद थी, जिनमें अच्छे और बुरे गुण थे, ऐसे प्राणी जिन्हें सिखाना आसान और कठिन था, और कुछ ऐसे भी थे जो बुराई से भयभीत थे और परलोक में विश्वास रखते थे। यह देखकर, उन्होंने सभी दुखी प्राणियों के प्रति करुणावश अपने उपदेश का प्रचार करना शुरू किया। बुद्ध के सिद्धांत की शुरुआत इसी प्रकार हुई। धम्म का मूल अर्थ है अनुभव का वह सत्य जिसे उन्होंने सभी प्राणियों के कल्याण के लिए प्रकट किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 65

---

(धम्मपद 64) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 65 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 66)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 65 - तिम्सापवेय्याभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Muhuttamapi ce vinnu
पंडितम पायिरुपासति
khippam dhammam vijanati
jivha suparasam yatha.

---

श्लोक 65 : एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ केवल एक क्षण के लिए ही रहे, धम्म को शीघ्र ही समझ लेता है, ठीक वैसे ही जैसे जीभ सूप का स्वाद पहचान लेती है।

---

पावेय्याका से तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पावेय्याक के तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (65) कहा।

एक बार पावेय्याका के तीस युवक जंगल में एक वेश्या के साथ मौज-मस्ती कर रहे थे, तभी वेश्या ने उनके कुछ कीमती आभूषण चुरा लिए और भाग गई। जंगल में उसकी तलाश करते हुए उन्हें रास्ते में बुद्ध मिले। बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया, जिससे युवकों को सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त हुआ और वे सभी बुद्ध के संघ में शामिल हो गए और उनके साथ जेतवन मठ चले गए। मठ में रहते हुए उन्होंने कठोर तपस्या (धुतंग) का पालन किया। बाद में, जब बुद्ध ने अनामतग्ग सूत्र (अनगिनत जन्मों पर प्रवचन) दिया, तो उन सभी भिक्षुओं को अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

जब अन्य भिक्षुओं ने टिप्पणी की कि पावेय्यक भिक्षु बहुत जल्दी अरहतत्व प्राप्त कर लेते हैं, तो बुद्ध ने उन्हें श्लोकों में इस प्रकार उत्तर दिया:

---

श्लोक 65 : एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ केवल एक क्षण के लिए ही रहे, धम्म को शीघ्र ही समझ लेता है, ठीक वैसे ही जैसे जीभ सूप का स्वाद पहचान लेती है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पाठेय्यका के तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पाठेय्यक के तीस भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कप्पासिक वन में बुद्ध ने तीस भिक्षुओं को धम्म का उपदेश दिया। एक बार पाठेय्यक के तीस युवक एक जंगल में एक वेश्या के साथ मौज-मस्ती कर रहे थे। तभी उस वेश्या ने उनके कुछ कीमती आभूषण चुरा लिए और भाग गई। जंगल में उसकी तलाश करते हुए वे बुद्ध से मिले। उस समय उन सभी ने बुद्ध के आदेश, "आओ, भिक्षुओं!" का पालन किया और उन्हें अलौकिक शक्ति द्वारा निर्मित कुंड और वस्त्र प्राप्त हुए। तेरह शुद्ध साधनाओं को अपनाकर वे बहुत समय बाद बुद्ध के पास लौटे, उनके अनादि के प्रवचन सुने और अपने स्थान से उठने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

सत्य के हॉल में भिक्षुओं के बीच चर्चा शुरू हुई: "इन भिक्षुओं ने कितनी कम देर में धम्म को जान लिया!" यह सुनकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इन तीस साथियों ने पाप किया है। उन्होंने पिछले जन्म में भी यही किया था। लेकिन पूज्य तुंडिला जातक में तुंडिला के धार्मिक उपदेश सुनकर, उन्होंने बहुत जल्दी धम्म को जान लिया और पाँचों नियमों का पालन किया। केवल इसी कर्म से अर्जित पुण्य के कारण वे अपने आसन पर बैठे-बैठे ही अर्हतत्व प्राप्त कर गए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 65)

विण्णु सी मुहुत्तं अपि पण्डितं पयिरुपसति
खिप्पं धम्मं विजानाति यथा जीव सुपारसं

viññū : बुद्धिमान; ce muhuttaṃ api : क्षण भर के लिए भी; paṇḍitaṃ [ paṇḍita ]: परिपक्व बुद्धि वाला व्यक्ति; payirupāsati : सहभागी; khippaṃ [ khippa ]: तुरंत; dhammaṃ [ dhamma ]: सिद्धांत; vijānāti : सीखता है; yathā : जैसे ही; jivhā : जीभ; sūparasaṃ [ sūparasa ]: विभिन्न व्यंजनों का स्वाद लेता है

यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ क्षण भर के लिए भी संगति करे, तो वह शीघ्र ही शिक्षा को समझ जाएगा। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे जीभ सूप के सूक्ष्म स्वादों को पहचान लेती है। इस श्लोक को पिछले श्लोक से तुलना करके और भी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। पिछले श्लोक में चम्मच का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि चम्मच लगातार स्वादिष्ट भोजन परोसता रहता है, फिर भी वह भोजन के स्वाद को नहीं समझ पाता, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति बुद्धिमान व्यक्ति की संगति में भी शिक्षा को नहीं समझ पाता। एक बुद्धिमान व्यक्ति, भले ही वह किसी बुद्धिमान व्यक्ति के साथ क्षण भर के लिए ही संगति करे, शीघ्र ही धम्म को समझ जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जीभ सूप के स्वाद को पहचान लेती है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 65)

jivhā sūparasaṃ yathā : जैसे जीभ भोजन का स्वाद पहचानती है। भोजन के स्वाद का उपमा यहाँ भी जारी है। भोजन का स्वाद एक सार्वभौमिक मानवीय अनुभव है। इसलिए भोजन के स्वाद से जुड़ी छवि को सार्वभौमिक रूप से सराहा जा सकता है। इस श्लोक में बुद्ध ज्ञानी व्यक्ति की तुलना जीभ से करते हैं। जीभ बहुत से भोजन के संपर्क में रहती है, लेकिन वह बड़ी तत्परता से विभिन्न स्वादों पर चर्चा कर सकती है, इसके बिल्कुल विपरीत चम्मच भोजन का स्वाद नहीं जानता, भले ही वह अपना पूरा जीवन भोजन में बिताता है। जीभ की तरह ही, ज्ञानी व्यक्ति गुणी व्यक्ति के संपर्क में आते ही उसके 'स्वाद' को पहचान लेता है।

विष्णु : वह जो विज्ञान (ज्ञान) धारण करता है। यहाँ विज्ञान का अर्थ बुद्धि है। ज्ञान पाँच स्कंधों में से एक है; चार पोषक तत्वों में से एक है; आश्रित उत्पत्ति की तीसरी कड़ी है; तत्वों के छह भागों में से पाँचवाँ भाग है। पाँच स्कंधों में से एक के रूप में देखा जाए तो यह अन्य तीन मानसिक स्कंधों (भावना, बोध और रचना) से अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है और वस्तु का बुनियादी ज्ञान प्रदान करता है, जबकि अन्य तीन अधिक विशिष्ट कार्य करते हैं। इसका नैतिक और कर्मिक स्वरूप, और इसकी तीव्रता और स्पष्टता की कम या अधिक मात्रा, मुख्य रूप से इससे जुड़ी मानसिक रचनाओं द्वारा निर्धारित होती है। अस्तित्व के अन्य स्कंधों की तरह, चेतना एक परिवर्तनशील अवस्था है और एक स्थायी मन-पदार्थ नहीं है; न ही यह एक पारलौकिक सत्ता या आत्मा है। ग्रंथों में इसके लिए अक्सर अनित्यता, दुख और अनात्म जैसे तीन गुणों का प्रयोग किया जाता है। बुद्ध ने अक्सर इस बात पर जोर दिया कि "परिस्थितियों के बिना चेतना का कोई उद्भव नहीं होता": और इसके स्वरूप के बारे में ये सभी कथन चेतना के संपूर्ण दायरे के लिए सही हैं, चाहे वह भूतकाल की हो, भविष्य की हो या वर्तमान में उत्पन्न हुई हो, स्थूल हो या सूक्ष्म, स्वयं में हो या बाह्य, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट।

छह इंद्रियों के अनुसार, इसे छह प्रकारों में विभाजित किया गया है, जैसे कि नेत्र-चेतना (या दृश्य चेतना), आदि। इन छह प्रकार की चेतनाओं की आश्रित उत्पत्ति के बारे में कहा गया है, "दृश्य वस्तु, प्रकाश और ध्यान के द्वारा नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। श्रव्य वस्तु, कान-मार्ग और ध्यान के द्वारा कान-चेतना उत्पन्न होती है। गंध वस्तु, वायु और ध्यान के द्वारा नाक-चेतना उत्पन्न होती है। स्वाद वस्तु, नमी और ध्यान के द्वारा जीभ-चेतना उत्पन्न होती है। शरीर, शारीरिक प्रभाव, पृथ्वी तत्व और ध्यान के द्वारा शरीर-चेतना उत्पन्न होती है। अवचेतन मन, मन-विषय और ध्यान के द्वारा मन-चेतना उत्पन्न होती है।" अभिधम्म साहित्य चेतना के अस्सी-नौ वर्गों को अलग करता है, जो कर्मिक रूप से या तो शुभ, अशुभ या तटस्थ होते हैं, और या तो इंद्रिय-क्षेत्र, सूक्ष्म-भौतिक या अभौतिक क्षेत्र से संबंधित होते हैं, या अलौकिक चेतना से संबंधित होते हैं।

---

(धम्मपद 65) <<<< पिछला || धम्मपद 66 || अगला >>>> (धम्मपद 67)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 66 - सुप्पबुद्धकुट्ठि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Caranti bala dummedha
अमित्तेनेवा अट्टाना
करोन्ता पापकम कम्मम
yam hoti katukapphalam.

---

श्लोक 66 : स्वयं को ही शत्रु मानकर, बुद्धिहीन मूर्ख बुरे कर्म करते फिरते हैं, जिनका फल कड़वा होता है।

---

कोढ़ी सुप्पबुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (66) का उच्चारण किया, जो कि सुप्पबुद्ध, एक कुष्ठ रोगी के संदर्भ में था।

सुप्पबुद्ध, जो कुष्ठ रोगी थे, भीड़ के पीछे बैठकर बुद्ध के प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे और इसी दौरान उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। जब भीड़ तितर-बितर हो गई, तो वे बुद्ध के पीछे-पीछे मठ गए क्योंकि वे बुद्ध को अपने सोतापत्ति फल प्राप्ति के बारे में बताना चाहते थे। देवों के राजा सक्का (इंद्र), कुष्ठ रोगी की बुद्ध, धम्म और संघ में आस्था की परीक्षा लेने के लिए उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "तुम तो बस एक गरीब आदमी हो, भीख मांगकर जीवन यापन करते हो, तुम्हारा कोई सहारा नहीं है। अगर तुम बुद्ध, धम्म और संघ को नकार दो और कहो कि तुम्हें इनकी कोई आवश्यकता नहीं है, तो मैं तुम्हें अपार धन दे सकता हूँ।" इस पर सुप्पबुद्ध ने उत्तर दिया। मैं निःसंदेह गरीब नहीं हूँ, ऐसा कोई नहीं जिस पर भरोसा न कर सकूँ। मैं धनी हूँ; मुझमें आर्यों के सात गुण हैं; मुझमें आस्था (सद्धा), नैतिकता (शील), बुराई करने से लज्जा (हिरी), बुराई करने से भय (ओत्तप्पा), विद्या (शूल), उदारता (काग) और ज्ञान (पन्न) है। फिर, सक्का, सुप्पबुद्ध से पहले बुद्ध के पास गया और उसने अपने और सुप्पबुद्ध के बीच हुई बातचीत बताई। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि सौ या हज़ार सक्काओं के लिए भी सुप्पबुद्ध को बुद्ध, धम्म और संघ से दूर करना आसान नहीं होगा। इसके तुरंत बाद, सुप्पबुद्ध मठ पहुँचे और बुद्ध को अपनी सोतापत्ति प्राप्ति की सूचना दी। जेतवन मठ से लौटते समय, सुप्पबुद्ध को एक क्रोधित गाय ने सींग मारकर मार डाला, जो वास्तव में एक राक्षसी थी जिसने गाय का रूप धारण किया था। यह राक्षसी कोई और नहीं बल्कि वही वेश्या थी जिसे सुप्पबुद्ध ने अपने पिछले जन्मों में से एक में मार डाला था और जिसने उससे बदला लेने की कसम खाई थी।

जब सुप्पबुद्ध की मृत्यु का समाचार जेतवन मठ में पहुँचा, तो भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि सुप्पबुद्ध का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि सुप्पबुद्ध का पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में हुआ है। बुद्ध ने उन्हें यह भी समझाया कि सुप्पबुद्ध कुष्ठ रोगी के रूप में पैदा हुए थे क्योंकि अपने पिछले जन्मों में से एक में उन्होंने एक पच्चेकबुद्ध पर थूका था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 66 : स्वयं को ही शत्रु मानकर, बुद्धिहीन मूर्ख बुरे कर्म करते फिरते हैं, जिनका फल कड़वा होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोढ़ी सुप्पबुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध के संदर्भ में दिया था। कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध की कहानी उदाना ग्रंथ में मिलती है।

उस समय कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध, सभा के बाहरी घेरे में बैठे हुए, बुद्ध का धर्मोपदेश सुन रहे थे और उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया। वे बुद्ध को अपने प्राप्त आशीर्वाद के बारे में बताना चाहते थे, लेकिन सभा के बीच में जाने का साहस न होने के कारण, उन्होंने तब तक प्रतीक्षा की जब तक कि सभी लोग बुद्ध को प्रणाम करके उनके साथ थोड़ी दूर चलकर वापस नहीं लौट गए। फिर वे मठ चले गए।

उस क्षण देवताओं के राजा सक्का ने मन ही मन सोचा, "वह कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध बुद्ध धर्म में प्राप्त आशीर्वाद का प्रचार करना चाहता है। मैं उसकी परीक्षा लूँगा।" अतः वह वायु में स्थिर होकर उसके पास गया और उससे इस प्रकार बोला, "सुप्पबुद्ध, तुम एक गरीब व्यक्ति हो, दुखों से ग्रस्त हो। मैं तुम्हें असीम धन दूँगा यदि तुम कहो, 'बुद्ध बुद्ध नहीं हैं, शिक्षा धर्म नहीं है, संघ संघ नहीं है। मुझे बुद्ध से तृप्ति हो गई है, मुझे धर्म से तृप्ति हो गई है, मुझे संघ से तृप्ति हो गई है।'" कुष्ठ रोगी ने उससे पूछा, "आप कौन हैं?" "मैं सक्का हूँ।" "मूर्ख, निर्लज्ज, तू मुझसे बात करने के योग्य नहीं है। तू कहता है कि मैं गरीब और पीड़ित हूँ। इसके विपरीत, मैंने सुख और अपार धन प्राप्त किया है: सात प्रकार के सम्माननीय धन। इन धन भंडारों के स्वामी को बुद्ध या संन्यासी गरीब नहीं कहते।" जब सक्का ने उसे ऐसा कहते सुना, तो वह उसे वहीं छोड़कर बुद्ध के पास गया और उन्हें अपने सारे प्रश्न और उत्तर बताए। बुद्ध ने उससे कहा, "सक्का, सौ सोने के सिक्कों से भी, हज़ार से भी, कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध को यह मनवाना संभव नहीं है कि 'बुद्ध, बुद्ध नहीं हैं, धम्म, धम्म नहीं है, संघ, संघ नहीं है।'"

अतः कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध बुद्ध के पास गए और बुद्ध ने उनका स्वागत किया। उन्होंने बुद्ध को अपने आशीर्वाद के बारे में बताया और अपने आसन से उठकर चल दिए। कुछ दूर जाने से पहले ही एक बछिया ने उन्हें मार डाला। कहा जाता है कि यह बछिया एक दुष्ट आत्मा थी, जिसने सौ जन्मों में गाय का रूप धारण किया था और गाय के रूप में उसने चार युवकों को मार डाला था: पुक्कूसाति, एक उच्च पदस्थ युवक; बाहिया दारुचिरिया; तांबदाठिका, एक डाकू; और कुष्ठ रोगी सुप्पबुद्ध।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 66)

बाला दुमेधा यं कटुकप्फलं होति ( तं ) पापकं

कम्मं करोन्ता अमितेन इव अत्ताना कैरन्ति

बाला : अपरिपक्व लोग; दुमेधा : मूर्ख लोग; यं कटुकप्फलं होति : जो अशुभ फल लाता है; पापकं कम्मं [ कम्म ]: (वह) बुरा कार्य; करौंटा : कर रहा हूँ; अमितेना इव : शत्रु के समान; अत्तना : स्वयं के प्रति; कारंती : जियो.

वे नासमझ और मूर्ख लोग ऐसा व्यवहार करते हैं जो उनके लिए ही हानिकारक होता है। उनके पापपूर्ण कर्मों का फल कड़वा होता है। वे स्वयं अपने शत्रु हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 66)

बाला दुम्मेधा : बुद्धिहीन मूर्ख लोग। ये दोनों शब्द लगभग समानार्थी हैं। लेकिन विवेक की कमी अज्ञान के अर्थ को और भी गहरा कर देती है। कुछ ग्रंथों में विवेक की तुलना पर्वत शिखर पर बिजली गिरने से की गई है। बिजली की वह चमक पर्वत की चोटी पर सब कुछ नष्ट कर देती है। उसी प्रकार, बुद्धिमान लोग सभी दोषों को नष्ट करने में सक्षम होते हैं। लेकिन अज्ञानी और विवेकहीन व्यक्ति दोषों को जड़ से उखाड़ने की क्षमता नहीं रखते। बुद्धिहीन मूर्ख लोग ऐसे बुरे कर्म करते हैं जिनका उन्हें हानिकारक परिणाम भुगतना पड़ता है। वे स्वयं अपने शत्रु बन रहे हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 67

---

(धम्मपद 66) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 67 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 68)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 67 - कस्सक वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Na tam kammam katam sadhu
यम कत्वा अनुतप्पति
yassa assumukho rodam
vipakam patisevati.

———————————————————————————

श्लोक 67 : वह कर्म अच्छा नहीं है, यदि उसे करने के लिए पश्चाताप करना पड़े, और यदि उस कर्म के फलस्वरूप आँसू भरी आँखों से रोना पड़े।

———————————————————————————

एक किसान की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (67) का उच्चारण किया, जो विष संभालने वाले किसान के संदर्भ में था।
एक दिन, कुछ चोर एक अमीर आदमी के घर से कुछ कीमती सामान और नकदी चुराकर एक खेत में आए। वहाँ उन्होंने चोरी का माल आपस में बाँट लिया और चले गए; लेकिन एक चोर से एक हजार रुपये की नकदी वाला एक पैकेट गिर गया, जो किसी का ध्यान आकर्षित किए बिना वहीं छूट गया।
उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन करते हुए देखा कि उस खेत के पास खेती कर रहा एक किसान उसी दिन सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। अतः बुद्ध पूज्य आनंद के साथ वहाँ गए। किसान ने बुद्ध को देखकर उन्हें प्रणाम किया और खेत जोतना जारी रखा। बुद्ध ने धन की थैली देखकर पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, उस विषैले साँप को देखो!" आनंद ने उत्तर दिया, "पूज्यवर, जी हाँ, यह वास्तव में एक विषैला साँप है!" तब बुद्ध और पूज्य आनंद दोनों अपने-अपने मार्ग पर चल पड़े।
उनकी आवाज़ सुनकर किसान यह पता लगाने गया कि क्या सचमुच कोई साँप है और उसे पैसों का पैकेट मिल गया। उसने कुदाल उठाई और उसे एक जगह छिपा दिया। चोरों का पीछा करते हुए खेत के मालिक आए और किसान के पदचिह्नों का पीछा करते हुए पैसों का पैकेट पा लिया। उन्होंने किसान को पीटा और राजा के पास ले गए, जिसने अपने आदमियों को किसान को मारने का आदेश दिया। जब उसे श्मशान ले जाया जा रहा था, जहाँ उसे मारा जाना था, किसान बार-बार दोहराता रहा, "आनंद, उस ज़हरीले साँप को देखो। आदरणीय महाराज, मैं साँप को देख रहा हूँ; यह सचमुच एक बहुत ज़हरीला साँप है!" जब राजा के आदमियों ने बुद्ध और आदरणीय आनंद के बीच उपरोक्त संवाद को बार-बार दोहराते हुए सुना, तो वे चकित हो गए और उसे राजा के पास ले गए। राजा ने अनुमान लगाया कि किसान बुद्ध को साक्षी मानकर प्रार्थना कर रहा है; इसलिए उसे बुद्ध के समक्ष ले जाया गया। सुबह की सारी बातें बुद्ध से सुनने के बाद राजा ने कहा, "अगर बुद्ध उसकी निर्दोषता के साक्षी न होते, तो वह मारा जाता।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिसका उसे बाद में पछतावा हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 67 : वह कर्म अच्छा नहीं है, यदि उसे करने के लिए पश्चाताप करना पड़े, और यदि उस कर्म के फलस्वरूप आँसू भरी आँखों से रोना पड़े।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में, किसान को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक किसान की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने विष का काम करने वाले एक किसान के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक किसान सावत्थी से कुछ ही दूरी पर एक खेत जोत रहा था। एक दिन कुछ चोरों ने एक धनी व्यक्ति के घर में चोरी की। चोरों में से एक ने अपने साथियों को चकमा दिया और चुपके से एक हजार सिक्कों से भरा पर्स अपने वस्त्र की तह में छिपा लिया। जैसे ही चोर अपना हिस्सा लेकर जाने लगा, पर्स उसके वस्त्र की तह से गिर गया, लेकिन उसे इसका पता भी नहीं चला।

उस दिन, सुबह-सुबह, बुद्ध ने दुनिया का अवलोकन किया, और यह देखकर कि एक किसान उनकी दृष्टि में आ गया है, उन्होंने मन ही मन विचार किया कि आगे क्या होगा।

सुबह तड़के किसान खेत जोतने गया। बुद्ध भी पूज्य आनंद के साथ वहाँ मौजूद थे। बुद्ध को देखकर किसान ने उन्हें प्रणाम किया और फिर खेत जोतने लगा। बुद्ध ने उससे कुछ नहीं कहा। जब वह उस स्थान पर गया जहाँ पर्स गिरा था, तो उसे देखकर उसने पूज्य आनंद से कहा, "देखो, आनंद, एक विषैला साँप!" "जी, पूज्य, एक घातक विषैला साँप!" किसान ने उनकी बातचीत सुनी और मन ही मन कहा, "मैं इस साँप को मार डालूँगा।" ऐसा कहते हुए उसने एक कुदाल उठाई, उस स्थान पर गया और पर्स पाया। उसने सोचा, "बुद्ध ने अवश्य ही इसी पर्स का जिक्र किया होगा।" उसे ठीक से समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे, इसलिए उसने पर्स को एक तरफ रख दिया, उस पर धूल डाली और खेत जोतने लगा।

बाद में लोगों को चोरी का पता चला और वे चोरों का पीछा करते हुए खेत तक पहुँच गए। जहाँ उन्होंने लूटा हुआ माल बाँटा था, वहाँ पहुँचकर उन्होंने किसान के पैरों के निशान देखे। उसके पदचिह्नों का पीछा करते हुए वे उस जगह तक पहुँचे जहाँ बटुआ दबा हुआ था। वहाँ उन्होंने मिट्टी हटाकर बटुआ उठा लिया। फिर उन्होंने किसान को खूब खरी-खोटी सुनाई और कहा, "तुमने घर लूटा और अब खेत जोत रहे हो!" उसे खूब पीटने के बाद वे उसे पकड़कर राजा के सामने पेश कर उसकी निंदा करने लगे।

जब राजा को घटना का पता चला, तो उसने किसान को मृत्युदंड देने का आदेश दिया। किसान चलते-चलते राजा के आदमियों द्वारा कोड़ों से पीटा जा रहा था, लेकिन वह बार-बार यही दोहराता रहा, "देखो, आनंद, एक विषैला साँप!" "मैं देख रहा हूँ, पूज्यवर, एक घातक विषैला साँप!" उसने एक शब्द भी नहीं बोला। राजा के आदमियों ने उससे पूछा, "तुम बुद्ध और पूज्य आनंद के वचन दोहरा रहे हो। इसका क्या अर्थ है?" किसान ने उत्तर दिया, "मैं राजा से मिलने की अनुमति मिलने पर बताऊंगा।"

उसने राजा से कहा, "महाराज, मैं चोर नहीं हूँ।" किसान ने उसे पूरी कहानी बताई। राजा किसान को बुद्ध के पास ले गए और उनसे इस बारे में पूछा। बुद्ध ने कहा, "जी महाराज, मैंने वहाँ जाकर यही कहा था। एक बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए जिसका उसे बाद में पश्चाताप करना पड़े।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 67)

यं कत्वा अनुतपति यस्सा विपकं अस्सुमुखो

रोदं पतिसेवती , तं कम्मं कटं न साधु

यं : कुछ क्रियाएं; कट्वा : किया हुआ; अनुतप्पति : किसी को पछतावा होता है; यस्सा : कुछ कार्यों का; विपाकम् [ विपाक ]: परिणाम; असुमुखो [ असुमुखा ]: आंसुओं से लथपथ चेहरे के साथ; रोदां [ रोड़ा ]: और रोना; पतिसेवती : कष्ट सहना पड़ता है; तं कम्मं [ कम्म ]: उस प्रकार की क्रिया; कतं न साधु : किया जाना अच्छा नहीं है

ऐसे कार्यों से बचना ही अच्छा है जिनसे बाद में पछतावा हो। पछतावा होने पर रोना आता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 67)

अससुमुखो रोदं : आँसुओं से भीगे चेहरे के साथ रोना। इसे किसी कर्म के फल के रूप में दर्शाया गया है, जिसके लिए पश्चाताप होता है। यहाँ चेतावनी यह है कि ऐसे कर्मों से बचें जिनसे बाद में पछतावा हो।

अनुतप्पति : पश्चाताप करना। पश्चाताप को ऐसे कर्म का परिणाम माना जाता है जो बाद के परिणामों के बारे में बिल्कुल भी जानकारी के बिना किया गया हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 68

———————————————————

(धम्मपद 67) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 68 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 69)

———————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 68 - सुमनमालाकारा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Tanca kammam katam sadhu
यम कटवा नानूतप्पति
yassa patito sumano
vipikam patisevati.

---

श्लोक 68 : वह कर्म अच्छा है यदि उसे करने के लिए पश्चाताप न करना पड़े, और यदि उस कर्म के परिणाम से प्रसन्न और संतुष्ट हो।

---

फूल बेचने वाली सुमाना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (68) का उच्चारण सुमना पुष्प विक्रेता के संदर्भ में किया।
सुमना नाम के एक फूल विक्रेता को राजगृह के राजा बिम्बिसार को प्रतिदिन सुबह चमेली के फूल पहुँचाने होते थे। एक दिन, जब वह राजा के महल जा रहा था, तो उसने बुद्ध को देखा, जिनके चारों ओर प्रकाश की किरणें फैल रही थीं, और वे कई भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए नगर में आ रहे थे। बुद्ध को उनकी तेजस्वी महिमा में देखकर, फूल विक्रेता सुमना के मन में उन्हें फूल अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। उसी क्षण उसने निश्चय किया कि चाहे राजा उसे देश से निकाल दें या मार डालें, वह उस दिन राजा को फूल नहीं अर्पित करेगा। इसलिए, उसने बुद्ध के अगल-बगल, पीछे और सिर के ऊपर फूल फेंक दिए। फूल हवा में लटके रहे; सिर के ऊपर वाले फूलों ने फूलों का एक छत्र बना लिया और पीछे और अगल-बगल वाले फूलों ने फूलों की दीवारें बना लीं। ये फूल बुद्ध के साथ-साथ चलते रहे और बुद्ध के रुकने पर रुक गए। जब बुद्ध फूलों की दीवारों और फूलों के छत्र से घिरे हुए, अपने शरीर से निकलती छह रंगों की किरणों के साथ, एक विशाल दल के साथ आगे बढ़े, तो राजगृह के अंदर और बाहर के हजारों लोग बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने घरों से बाहर आ गए। सुमन का पूरा शरीर आनंदमय संतोष (पीति) से परिपूर्ण था।
फूल विक्रेता सुमना की पत्नी राजा के पास गई और कहा कि उस दिन राजा को फूल न देने में उसका कोई हाथ नहीं है। राजा स्वयं सोतापन्न थे, इसलिए उन्हें फूल पाकर बहुत प्रसन्न हुए। वे इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए बाहर आए और बुद्ध को प्रणाम किया। राजा ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा भी दी। भोजन के बाद, बुद्ध जेतवन मठ में लौट गए और राजा कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए। महल में वापस आकर राजा बिम्बिसार ने सुमना को बुलवाया और उन्हें आठ हाथी, आठ घोड़े, आठ पुरुष दास, आठ स्त्री दास, आठ कन्याएँ और आठ हजार नकद पुरस्कार की पेशकश की।
जेतवन मठ में, पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा कि सुमन को उस दिन किए गए अपने पुण्य कर्म से क्या लाभ होगा। बुद्ध ने उत्तर दिया कि सुमन ने अपने जीवन की परवाह किए बिना बुद्ध को दान दिया है, इसलिए वह अगले एक लाख लोकों तक चार निम्न लोकों (अपय) में जन्म नहीं लेगा और अंततः वह पच्चेकबुद्ध बन जाएगा। इसके बाद, जब बुद्ध गंधकुटी (सुगंधकटी) में प्रवेश कर रहे थे, तो फूल स्वतः ही गिरने लगे।
उस रात, नियमित प्रवचन के अंत में, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 68 : वह कर्म अच्छा है यदि उसे करने के लिए पश्चाताप न करना पड़े, और यदि उस कर्म के परिणाम से प्रसन्न और संतुष्ट हो।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
फूल बेचने वाली सुमाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने फूल बेचने वाली सुमना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सुमना नाम के एक फूल विक्रेता को राजगृह के राजा बिम्बिसार को प्रतिदिन सुबह चमेली के फूल पहुँचाने होते थे। एक दिन, जब वह राजा के महल जा रहा था, तो उसने बुद्ध को प्रकाश की किरणों से जगमगाते प्रभामंडल के साथ कई भिक्षुओं के साथ नगर में भिक्षा ग्रहण करने आते देखा। बुद्ध को उनकी तेजस्वी महिमा में देखकर, फूल विक्रेता सुमना के मन में उन्हें फूल अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। उसी क्षण उसने निश्चय किया कि चाहे राजा उसे देश से निकाल दे या मार डाले, वह उस दिन राजा को फूल नहीं अर्पित करेगा। इसलिए, उसने बुद्ध के अगल-बगल, पीछे और सिर के ऊपर फूल फेंक दिए। फूल हवा में लटके रहे; सिर के ऊपर वाले फूलों ने फूलों का एक छत्र बना लिया और पीछे और अगल-बगल वाले फूलों ने फूलों की दीवारें बना लीं। ये फूल बुद्ध के साथ-साथ चलते रहे और बुद्ध के रुकने पर रुक गए। जब बुद्ध फूलों की दीवारों और फूलों के छत्र से घिरे हुए, अपने शरीर से निकलती छह रंगों की किरणों के साथ, एक विशाल दल के साथ आगे बढ़े, तो राजगृह के अंदर और बाहर हजारों लोग बुद्ध को प्रणाम करने के लिए अपने घरों से बाहर आ गए। सुमन का पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि ( पत्ति ) से परिपूर्ण था।

फूल विक्रेता सुमना की पत्नी राजा के पास गई और कहा कि उस दिन राजा को फूल न देने में उसका कोई हाथ नहीं है। राजा स्वयं एक सोतापन्न थे, इसलिए उन्हें फूल पाकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे इस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए बाहर आए और बुद्ध को प्रणाम किया। राजा ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी। राजा ने भिक्षुओं के समूह को उत्तम भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने धन्यवाद दिया और पहले की तरह चारों ओर से फूलों से घिरे हुए और जयजयकार करते हुए लोगों की विशाल भीड़ के साथ मठ की ओर चल पड़े।

राजा बुद्ध के साथ थोड़ी दूर तक गए और फिर लौट आए। उन्होंने पुष्पदाता को बुलवाया और उससे पूछा, "बुद्ध का आदर करते समय तुमने क्या कहा था?" पुष्पदाता ने उत्तर दिया, "महाराज, मैंने उनके चरणों में प्राण त्याग दिए और उनका आदर करते हुए कहा, 'राजा चाहे तो मुझे मार डालें या अपने राज्य से निकाल दें।'" राजा ने कहा, "तुम महान पुरुष हो।" ऐसा कहकर उन्होंने बुद्ध को आठ हाथी, आठ घोड़े, आठ पुरुष दास, आठ स्त्री दास, आठ शानदार आभूषणों के समूह, आठ हजार सिक्के, राजमहल से ली गई आठ सुशोभित स्त्रियाँ और आठ उत्तम गाँव भेंट किए। राजा ने बुद्ध को ये आठ गुना उपहार दिए।

आदरणीय आनंद मन ही मन सोचने लगे, "सुबह से ही दिनभर जयजयकार और प्रशंसा की आवाजें गूंजती रही हैं। इस पुष्पदाता को क्या फल मिलेगा?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, इसने अपना प्राण मुझे समर्पित कर दिए और मेरा आदर किया। इसलिए, क्योंकि इसे मुझ पर असीम विश्वास है, यह कष्ट भोगने के लिए विवश नहीं होगा, बल्कि अपने अच्छे कर्मों का फल देवताओं और मनुष्यों के लोक में प्राप्त करेगा। एक दिन यह एकांतवासी बुद्ध सुमन बनेगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 68)

यं कत्वा न अनुतप्पति यस्सा विपाकं पतितो

सुमनो पतिसेवती तं च कम्मं कटं साधु

यं [ या ]: कोई कार्य; कत्वा : करने के बाद; ना अनुतप्पति : पश्चाताप न करना; यस्सा : उस कार्य का; विपाकं [ विपाक ]: परिणाम; पतितो [ पतित ]: प्रसन्नता से; सुमन [ सुमन ]: प्रसन्न मन से; पतिसेवति : आनंद लेना; तं : उस प्रकार का कार्य; च कम्मं कतं साधु : निश्चय ही करना अच्छा है

ऐसे कर्म करना अच्छा है जिनसे बाद में पश्चाताप न हो। हमें ऐसे कर्म करने चाहिए जिनसे सुखद परिणाम प्राप्त हों।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 68)

patīto sumano : प्रसन्नतापूर्वक और सुखद मन से। इस उदाहरण में, अच्छे कर्मों का परिणाम बताया गया है, जिससे पश्चाताप नहीं होता। कर्म करने वाले ने अपने कर्मों के परिणाम के बारे में पहले से ही सोच-विचार कर लिया था। इसी सोच-विचार के साथ उसने केवल वही कर्म किए हैं जिनसे पश्चाताप न हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 69

---

(धम्मपद 68) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 69 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 70)

---

अंतर्वस्तु

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 69 - उप्पलवन्नाथेरी वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Madhumva mannati balo
yava papam na paccati
yada ca paccati papam
atha dukkham nigacchati.

---

श्लोक 69 : जब तक बुराई का फल नहीं मिलता, मूर्ख उसे शहद के समान मीठा समझता है; परन्तु जब उसकी बुराई का फल मिलता है, तो मूर्ख को उसका दंड भुगतना पड़ता है।

---

थेरी (बड़ी नन) उप्पलवन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उप्पलावन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (69) कहा।
सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की एक युवती रहती थी। वह इतनी सुंदर थी, उसका रूप नीले कमल के फूल के समान कोमल और मधुर था, इसलिए उसे "उप्पलावन्ना" यानी नीला कमल कहा जाता था। उसकी सुंदरता दूर-दूर तक फैल गई और कई लोग उससे प्रेम करने के इच्छुक थे: राजकुमार, धनी पुरुष और अन्य। लेकिन उसने भिक्षुणी बनना बेहतर समझा। एक दिन, दीपक जलाने के बाद, उसने अपना ध्यान लौ पर केंद्रित किया और अग्नि कसीना (एकाग्रता का केंद्र) पर ध्यान लगाते हुए शीघ्र ही उसे मार्ग अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और अंततः उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
कुछ समय बाद, वह अंधावन नामक अंधकारमय वन में चली गईं और एकांतवास में रहने लगीं। जब थेरी उप्पलावन्ना भिक्षा मांगने गई हुई थीं, तभी उनके मामा का पुत्र नंदा उनके मठ में आया और उनके पलंग के नीचे छिप गया। नंदा को उप्पलावन्ना से उनके भिक्षुणी बनने से पहले ही प्रेम हो गया था; उसका इरादा स्पष्ट रूप से उन्हें जबरदस्ती अपने साथ ले जाना था। जब उप्पलावन्ना लौटीं तो उन्होंने नंदा को देखा और कहा, "अरे मूर्ख! कोई हानि मत करो, मुझे परेशान मत करो।" लेकिन वह नहीं रुका। अपनी इच्छा पूरी करने के बाद, वह उन्हें छोड़कर चला गया। जैसे ही उसने ज़मीन पर कदम रखा, धरती फट गई और वह उसमें समा गया।
यह सुनकर बुद्ध ने श्लोक में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 69 : जब तक बुराई का फल नहीं मिलता, मूर्ख उसे शहद के समान मीठा समझता है; परन्तु जब उसकी बुराई का फल मिलता है, तो मूर्ख को उसका दंड भुगतना पड़ता है।

---

प्रवचन के अंत में, कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।
इसके बाद बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) को बुलवाया और उन्हें जंगलों में रहने वाली भिक्षुणियों को कामुक वासना में लिप्त गैर-जिम्मेदार व्यक्तियों से होने वाले खतरों के बारे में बताया। राजा ने तब यह वादा किया कि वे भिक्षुणियों के लिए मठ केवल शहरों में या शहरों के निकट ही बनवाएंगे।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन उप्पलवन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नुन उप्पलावण्णा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की एक युवती रहती थी। वह इतनी सुंदर थी, उसका रूप नीले कमल के समान कोमल और मधुर था, इसलिए उसे "उप्पलावण्णा" कहा जाता था। उसकी सुंदरता की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई और कई लोग उससे प्रेम करने के लिए उत्सुक थे: राजकुमार, धनी पुरुष और अन्य। तब उसके पिता, जो एक व्यापारी थे, ने मन ही मन सोचा, "मैं

सबकी इच्छा पूरी नहीं कर पाऊंगा, लेकिन मुझे इस समस्या का कोई हल निकालना होगा।" अब वह निर्वाण प्राप्त करने से पहले अपने अंतिम जन्म में थी, इसलिए उसके पिता के शब्द उसके लिए सौ गुना शुद्ध तेल के समान थे। इसलिए उसने कहा, "प्रिय पिता, मैं भिक्षुणी बन जाऊंगी।" तो उन्होंने उसके सम्मान में बहुमूल्य उपहार तैयार किए और उसे भिक्षुणियों के समुदाय में ले गए, जहाँ उसका प्रवेश हो गया।

एक दिन करुणा कक्ष के ताले खोलने और बंद करने की बारी उसकी आई। दीपक जलाने और कक्ष की सफाई करने के बाद, उसका ध्यान दीपक की लौ पर केंद्रित हो गया। उसने लौ पर एकाग्रचित्त किया। अग्नि तत्व पर एकाग्रचित्त होकर वह समाधि की अवस्था में प्रवेश कर गई। उसने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

कुछ समय बाद, वह अंधकार वन (अंधावन) में चली गईं और एकांतवास में रहने लगीं। जब भिक्षुणी उप्पलावण्णा भिक्षा मांगने निकली थीं, तभी उनके मामा का पुत्र नंदा उनके मठ में आया और उनके सोफे के नीचे छिप गया। नंदा को उप्पलावण्णा से उनके भिक्षुणी बनने से पहले ही प्रेम हो गया था; उसका इरादा स्पष्ट रूप से उन्हें जबरदस्ती अपने साथ ले जाना था।

लौटकर भिक्षुणी उप्पलावण्णा कुटिया में दाखिल हुईं, दरवाजा बंद किया और पलंग पर बैठ गईं। अंधेरे में उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा था क्योंकि वे अभी-अभी धूप से आई थीं। उनके बैठते ही युवक सोफे के नीचे से रेंगकर निकला और ऊपर चढ़ गया। भिक्षुणी चिल्लाईं, "मूर्ख, मुझे बर्बाद मत करो!" लेकिन युवक ने उनके प्रतिरोध को वश में कर लिया, उन पर अपनी इच्छा पूरी की और चला गया। मानो उसकी दुष्टता सहन न कर पाने के कारण धरती फट पड़ी और वह उसमें समा गया और अविची के नरक में पुनर्जन्म लिया।

भिक्षुणी ने अन्य भिक्षुणियों को घटना बताई, भिक्षुणियों ने भिक्षुओं को बताया, और भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया। यह सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया, "भिक्षुओं, जो भी मूर्ख पाप करता है, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी, या पुरुष हो या स्त्री, वह उतने ही आनंद और प्रसन्नता से पाप करता है, मानो वह शहद, चीनी या किसी अन्य मीठे पदार्थ का सेवन कर रहा हो।" फिर उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को विकारों से मुक्त कर लिया है, वे न तो प्रेम के सुखों को पसंद करते हैं और न ही अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। क्योंकि, जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूंद उस पर टिकती नहीं है, बल्कि रेंगकर गिर जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रेम विकारों से मुक्त व्यक्ति के हृदय से नहीं चिपकता।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 69)

पापं याव न पच्चति बालो मधु इव मन्नति
यदा च पापं पच्चति अथ बालो दुक्खं निगच्छति

पापं [ पाप ]: बुराई; यव न पच्चति : जब तक परिणाम न मिलने लगें; बालो : अज्ञानी; मधु इव : शहद के समान; मन्ञति : विचार करता है; यदा च : जब; पापं [ पाप ]: बुराई; पच्चति : परिपक्व होती है; अथ : उस समय; बालो : अज्ञानी; दुःखं [ दुक्खा ]: कष्ट सहने के लिए; निगच्छति : आती है

जब कोई पापपूर्ण कार्य किया जाता है, तो अज्ञानी व्यक्ति को उसमें शहद के समान आनंद आता है। परन्तु कष्ट तब आता है जब उसके बुरे परिणाम सामने आने लगते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 69)

पापं : अशुभ कर्म। कभी-कभी इस प्रकार के कर्म को अकुशल कहा जाता है । अकुशल का अर्थ है अशुभता। ये वे कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक भाव हैं, जो लोभ, घृणा या मात्र भ्रम से ग्रस्त होते हैं; और ये सभी घटनाएँ अशुभ कर्म परिणामों का कारण बनती हैं और इनमें दुखद भाग्य या पुनर्जन्म के बीज निहित होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 70

———————————————————————

(धम्मपद 69) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 70 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 71)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 70 - जम्बुकत्थेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
मसे मसे कुसग्गेना
बालो भुंजेय्या भोजनम
ना सो संखतधम्मनम
kalam agghati solasim.

———————————————————————————

श्लोक 70 : यद्यपि मूर्ख (तपस्या में रहने वाला) महीने दर महीने घास के तिनके की नोक से भी कम मात्रा में भोजन करता है, तो भी वह सत्य को समझने वालों (अर्थात आर्यों) के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

———————————————————————————

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) जंबुका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा जंबुका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (70) कहा।

जांबुका सावत्थी के एक धनी व्यक्ति का पुत्र था। अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण वह अत्यंत विचित्र आदतों के साथ पैदा हुआ था। बचपन में वह बिना बिस्तर के ज़मीन पर सोना चाहता था और चावल के बजाय अपना मल खाता था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने उसे नग्न तपस्वियों, अजीवकों के पास भेज दिया। जब उन तपस्वियों को उसकी इन विचित्र खान-पान की आदतों के बारे में पता चला, तो उन्होंने उसे भगा दिया। रात में वह मानव मल खाता था और दिन में एक पैर पर खड़ा होकर मुँह खुला रखता था। वह कहता था कि वह अपना मुँह खुला इसलिए रखता है क्योंकि वह केवल हवा पर जीवित रहता है और एक पैर पर इसलिए खड़ा रहता है क्योंकि अन्यथा पृथ्वी उसे सहन नहीं कर पाएगी। "मैं कभी बैठता नहीं, मैं कभी सोता नहीं," वह शेखी बघारता था और इसी कारण उसे जांबुका, यानी 'सियार' के नाम से जाना जाता था।

बहुत से लोग उस पर विश्वास करते थे और कुछ लोग उसके पास उत्तम भोजन का अर्पण लेकर आते थे। तब जंबुका मना कर देता और कहता, "मैं हवा के सिवा कुछ नहीं खाता।" जब लोग उस पर दबाव डालते, तो वह घास के तिनके की नोक से थोड़ा सा भोजन लेकर कहता, "अब जाओ, इस थोड़े से भोजन से ही तुम्हें पर्याप्त पुण्य मिलेगा।" इस प्रकार, जंबुका पचपन वर्ष तक नग्न अवस्था में, केवल मल-मूत्र खाकर जीवित रहा।

एक दिन बुद्ध को दिव्य दर्शन हुआ कि जंबुका कुछ ही समय में अर्हत पद प्राप्त करने वाले हैं। अतः, शाम को बुद्ध जंबुका के निवास स्थान पर गए और उनसे रात बिताने के लिए स्थान पूछा। जंबुका ने उन्हें उस शिलाशि से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पर्वत-गुफा की ओर इशारा किया, जिस पर वे स्वयं निवास कर रहे थे। रात के पहले, दूसरे और तीसरे पहर में चतुमहाराजिका देव, सक्का और महाब्रह्मा (प्रथम देवदूत) बारी-बारी से बुद्ध को प्रणाम करने आए। तीनों ही अवसरों पर वन प्रकाशमान हुआ और जंबुका ने तीन बार प्रकाश देखा। सुबह वे बुद्ध के पास गए और प्रकाश के बारे में पूछा।

जब जंबुका को बताया गया कि देव (देवदूत), सक्का और महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) बुद्ध को प्रणाम करने आए हैं, तो वह बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध से बोला, "आप वास्तव में एक असाधारण महान व्यक्ति होंगे, तभी तो देव, सक्का और महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) आपको प्रणाम करने आए हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैंने पचपन वर्षों तक कठोर तपस्या की है, केवल हवा खाकर और एक पैर पर खड़े होकर जीवन व्यतीत किया है, फिर भी न तो देव, न सक्का और न ही महाब्रह्मा (प्रधान देवदूत) कभी मेरे पास आए हैं।" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे जंबुका! तुम दूसरों को धोखा देते रहे हो, पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं जानता हूँ कि पचपन वर्षों से तुम मल खा रहे हो और जमीन पर सो रहे हो।"

इसके अलावा, बुद्ध ने जंबुका को समझाया कि कैसे अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, जंबुका ने एक थेरा को अपने साथ एक गृहस्थ शिष्य के घर जाने से रोका था, जहाँ भिक्षा दी जा रही थी, और कैसे उसने उस थेरा के लिए भेजा गया भोजन भी फेंक दिया था। इन्हीं बुरे कर्मों के कारण जंबुका को मल-मूत्र खाना पड़ा और ज़मीन पर सोना पड़ा। यह वृत्तांत सुनकर जंबुका भयभीत और आतंकित हो गया, और उसने अपने बुरे कर्मों और दूसरों को धोखा देने के लिए पश्चाताप किया। वह घुटनों के बल बैठ गया और बुद्ध ने उसे ओढ़ने के लिए एक कपड़ा दिया। फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया; प्रवचन के अंत में जंबुका ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उसी क्षण बौद्ध संघ में शामिल हो गया।

इसके तुरंत बाद, अंग और मगध से जंबुका के शिष्य वहाँ पहुँचे और बुद्ध के साथ अपने गुरु को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। तब थेरा जंबुका ने अपने शिष्यों को समझाया कि उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश कर लिया है और अब वे केवल बुद्ध के शिष्य हैं। बुद्ध ने उनसे कहा कि यद्यपि उनके गुरु ने बहुत कम भोजन करके संयमी जीवन व्यतीत किया है, फिर भी यह उनके वर्तमान अभ्यास और उपलब्धियों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 70 : यद्यपि मूर्ख (तपस्या में रहने वाला) महीने दर महीने घास के तिनके की नोक से भी कम मात्रा में भोजन करता है, तो भी वह सत्य को समझने वालों (अर्थात आर्यों) के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु जंबुका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य जंबुका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जांबुका, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति का पुत्र था। अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण वह अत्यंत विचित्र आदतों के साथ पैदा हुआ था। बचपन में वह बिना किसी उचित पलंग के ज़मीन पर सोना चाहता था और चावल के बजाय अपना मल खाता था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने उसे नग्न तपस्वियों , यानी आजीवकों के पास भेज दिया। जब उन तपस्वियों को उसकी इन विचित्र खान-पान की आदतों के बारे में पता चला, तो उन्होंने उसे भगा दिया। वह रातों में मानव मल खाता था और दिन में एक पैर पर खड़ा होकर अपना मुँह खुला रखता था। वह कहता था कि वह अपना मुँह खुला इसलिए रखता है क्योंकि वह केवल हवा पर जीवित रहता है और एक पैर पर इसलिए खड़ा रहता है क्योंकि अन्यथा पृथ्वी उसे सहन नहीं कर पाएगी। वह शेखी बघारता था, "मैं कभी बैठता नहीं, मैं कभी सोता नहीं," और इसी कारण वह जांबुका, यानी सियार के नाम से जाना जाने लगा।

बहुत से लोग उस पर विश्वास करते थे और कुछ लोग उसके पास उत्तम भोजन का अर्पण लेकर आते थे। तब जंबुका मना कर देता और कहता, "मैं हवा के सिवा कुछ नहीं खाता।" जब कोई उस पर दबाव डालता, तो वह घास के तिनके की नोक से थोड़ा सा भोजन लेकर कहता, "अब जाओ, इस थोड़े से भोजन से ही तुम्हें पर्याप्त पुण्य मिलेगा।" इस प्रकार, जंबुका पचपन वर्ष तक नग्न अवस्था में, केवल मल-मूत्र खाकर जीवित रहा।

एक दिन बुद्ध को दिव्य दर्शन हुआ कि जंबुका कुछ ही समय में अर्हत पद प्राप्त करने वाले हैं। अतः, शाम को बुद्ध जंबुका के निवास स्थान पर गए और उनसे रात बिताने के लिए स्थान पूछा। जंबुका ने उन्हें उस शिलाशि से कुछ ही दूरी पर स्थित एक पर्वत-गुफा की ओर इशारा किया, जिस पर वे स्वयं ठहरे हुए थे। रात के पहले, दूसरे और तीसरे पहर में चातुम्महाराजिका देव, सक्का और महाब्रह्म बारी-बारी से बुद्ध को प्रणाम करने आए। तीनों ही अवसरों पर वन प्रकाशमान था और जंबुका ने तीन बार प्रकाश देखा। सुबह वे बुद्ध के पास गए और प्रकाश के बारे में पूछा।

जब जंबुका को देवताओं, सक्का और महाब्रह्मों के बुद्ध को प्रणाम करने आने के बारे में बताया गया, तो वह बहुत प्रभावित हुआ और बुद्ध से बोला, "आप वाकई बहुत अद्भुत व्यक्ति होंगे, तभी तो देवता, सक्का और महाब्रह्म आपके दर्शन करने आए हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैंने पचपन वर्षों तक कठोर तपस्या की है, केवल हवा खाकर और एक पैर पर खड़े होकर जीवन व्यतीत किया है, फिर भी न तो कोई देवता, न सक्का और न ही महाब्रह्म कभी मेरे पास आए।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे जंबुका! तुम दूसरों को धोखा देते रहे हो, पर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं जानता हूँ कि पचपन वर्षों से तुम मल खा रहे हो और जमीन पर सो रहे हो।"

यह सुनकर जंबुका भयभीत और आतंकित हो गया, और उसने अपने बुरे कर्मों और दूसरों को धोखा देने के लिए पश्चाताप किया। वह घुटनों के बल बैठ गया और बुद्ध ने उसे पहनने के लिए एक कपड़ा दिया। फिर बुद्ध ने प्रवचन देना शुरू किया; जिसके अंत में जंबुका ने अर्हतत्व प्राप्त किया और बौद्ध संघ में शामिल हो गया।

इसके तुरंत बाद, अंग और मगध से जंबुका के शिष्य वहाँ पहुँचे और अपने गुरु को बुद्ध के साथ देखकर आश्चर्यचकित रह गए। पूज्य जंबुका ने अपने शिष्यों को समझाया कि उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश कर लिया है और अब वे केवल बुद्ध के शिष्य हैं। बुद्ध ने उनसे कहा कि यद्यपि उनके गुरु ने बहुत कम भोजन करके संयमी जीवन व्यतीत किया है, फिर भी यह उनके वर्तमान अभ्यास और उपलब्धियों के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 70)

बालो मासे मासे कुसग्गेन भोजनं भुञ्जेथा

सो सङ्खतधम्मनां सोऽसिं कलं न अग्घति

बालो : अज्ञानी व्यक्ति; मासे मासे : महीने में एक बार; कुसग्गेना : घास के ब्लेड की नोक से; भोजनं [ bhojana ]: भोजन; भुन्जेठा : खाता है; तो : (लेकिन) वह; संखतधम्मनाम् [ संखतधम्मन ]: बिना शर्त की प्राप्ति का; सोससीं कलां [ कला ]: कम से कम एक-सोलहवां; न अग्घति : योग्य नहीं है

एक मूर्ख व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। एक कठोर तपस्वी की तरह, वह महीने में केवल एक बार घास के तिनके के सिरे से भोजन का एक छोटा सा टुकड़ा खाता है। फिर भी, ऐसा गुमराह तपस्वी मुक्ति के उतने ही करीब होगा जितना वह शुरुआत में था। इन सब के बावजूद, वह उस अरहंत के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं है जिसने निर्गुण मोक्ष प्राप्त कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 70)

कुसग्गेन भोजनं : चाहे घास के तिनके के सिरे से भी भोजन का एक छोटा सा टुकड़ा ग्रहण किया जाए। यह श्लोक उन लोगों के लिए है जो अत्यधिक तपस्या और आत्म-यातना का अभ्यास करते हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों के आरंभिक भाग में ही सत्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में तपस्या को नकार दिया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 71

———————————————————————————

(धम्मपद 70) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 71 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 72)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेता वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na hi papam katam kammam
sajju khiramva muccati
dahantam balarnanveti
bhasmacchannova pavako.

———————————————————————————

श्लोक 71 : बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे ताजा निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है और उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है।

———————————————————————————

अहिपेटा (मानव सिर वाला सर्प जैसा भूत) की कहानी (1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

एक बार प्रधान शिष्य महा मोग्गलाना, थेरा लक्खाना के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने गए थे। वहाँ उन्होंने कुछ देखा और मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। जब वे मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना को बताया कि वे इसलिए मुस्कुराए क्योंकि उन्होंने एक पेटा-भूत देखा था जिसका सिर मनुष्य का और शरीर साँप का था। बुद्ध ने तब कहा कि उन्होंने स्वयं उसी पेटा-भूत को बुद्धत्व प्राप्ति के दिन देखा था। बुद्ध ने यह भी बताया कि बहुत समय पहले एक पच्चेकबुद्ध थे, जिनका बहुत सम्मान होता था। उनके मठ जाने वाले

लोगों को एक खेत से होकर गुजरना पड़ता था। खेत के मालिक को डर था कि मठ आने-जाने वाले लोगों की अधिकता से उसका खेत क्षतिग्रस्त हो जाएगा, इसलिए उसने खेत में आग लगा दी। परिणामस्वरूप, पच्चेकबुद्ध को कहीं और जाना पड़ा। पच्चेकबुद्ध के शिष्य, ज़मींदार से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने पच्चेकबुद्ध को पीट-पीटकर मार डाला। अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। वर्तमान जीवन में वे कर्मों के शेष फल (पेत-भूत) भोग रहे थे।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, लेकिन वह हमेशा बुरे कर्म करने वाले का पीछा करता है। बुरे कर्म के परिणामों से कोई बच नहीं सकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 71 : बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे ताजा निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है और उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है।

---

1. अहिपेटा = अहि + पेटा; अहि = सर्प + पेटा = पेटा-भूत, एक सदा भूखा रहने वाला प्रेत। इस उदाहरण में, एक ऐसा भूत जिसका सिर मनुष्य का और शरीर सर्प का है (संस्कृत/हिंदी में पेटा = प्रेत)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नाग-भूत की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, जटाधारी हज़ार तपस्वियों के बीच, पूज्य लक्खना और पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के इरादे से गिद्ध शिखर से उतरे। पूज्य मोग्गलाना ने एक नाग-भूत को देखकर मुस्कुराया। तब पूज्य लक्खना ने उनसे उनकी मुस्कान का कारण पूछते हुए कहा, "भाई, अभी यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होने पर ही मुझसे पूछिएगा।" राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद जब वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर बैठ गए, तब पूज्य लक्खाना ने पूज्य मोग्गलाना से पूछा, "भाई मोग्गलाना, जब आप गिद्ध शिखर से उतर रहे थे, तब आप मुस्कुराए थे; और जब मैंने आपसे आपकी मुस्कान का कारण पूछा, तो आपने कहा, 'बुद्ध के समक्ष आने तक प्रतीक्षा करें, फिर मुझसे पूछें।' अब मुझे इसका कारण बताइए।"

भिक्षु ने कहा, "भाई, मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा। वह कुछ इस तरह दिखता था: उसका सिर मनुष्य के सिर जैसा था और बाकी शरीर नाग जैसा। वह नाग-भूत कहलाता था। उसकी लंबाई पच्चीस मील थी। उसके सिर से ज्वालाएँ निकलकर उसकी पूंछ तक जाती थीं; उसकी पूंछ से भी ज्वालाएँ निकलकर उसके सिर तक जाती थीं। उसके सिर से निकलती आग की लपटें उसके शरीर के दोनों ओर फैलती थीं; उसके किनारों से निकलती आग की लपटें उसके शरीर पर उतरती थीं। कहते हैं कि दो भूत होते हैं जिनकी लंबाई पच्चीस मील होती है, बाकी की लंबाई तीन-चौथाई मील होती है। लेकिन इस नाग-भूत और इस कौवे-भूत की लंबाई पच्चीस मील थी।"

मोग्गलाना ने एक कौवे के भूत को देखा और उससे उसके पूर्व कर्मों के बारे में पूछा। भूत ने कहा, "अपने पिछले जन्म में मैंने पूजनीय लोगों के लिए रखे भोजन के तीन निवाले खा लिए थे। उस कुकर्म के फलस्वरूप, जब मेरी मृत्यु हुई, तो मुझे अविची नरक में कष्ट भोगना पड़ा और उसके बाद, क्योंकि मेरे बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए मेरा पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर कौवे के भूत के रूप में हुआ। अब, अपने कर्मों के कारण, मैं यह कष्ट भोग रहा हूँ।"

नाग-भूत की कहानी भी सुनाई जाती थी। बनारस का एक निवासी सड़क के किनारे खेत जोत रहा था। जो लोग एकाकी बुद्ध के दर्शन करने उसके खेत से गुजरते थे, वे उसके खेत को रौंद देते थे। किसान ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं पाया। अंत में, जब एकाकी बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश कर गए, तो किसान ने अपने खाने-पीने के सारे बर्तन तोड़ दिए और घास-फूस से बने अपने आश्रय में आग लगा दी। तब लोगों ने चिल्लाकर कहा, "इसे पकड़ो!" उन्होंने उसे मार डाला। उसका जन्म अविची नरक में हुआ और बाद में, गिद्ध शिखर पर नाग-भूत के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ।

इस पर भिक्षु ने कहा, "मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा।" तुरंत बुद्ध उठे और मोग्गलाना के कथन की सत्यता की गवाही देते हुए कहा, "भिक्षुओं, मोग्गलाना जो कहते हैं वह सत्य है। मैंने स्वयं इस भूत को उस दिन देखा था जिस दिन मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था। परन्तु दूसरों पर दया करते हुए मैंने यह नहीं कहा, 'जो मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे, उनका यही हश्र होगा।'"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 71)

खिरं इव कटं पापं कम्मं सज्जु न हि मुक्कति

भस्माच्चन्नो पावको इव दहं तं बलं अन्वेति

khīraṃ iva : दूध की तरह; kataṃ pāpaṃ kammaṃ [ kamma ]: किए गए बुरे कर्म; sajju : निकालते ही तुरंत; na hi muccati : निश्चित रूप से नहीं फटता; bhasmacchanno pāvako iva : राख से ढकी आग की चिंगारियों की तरह; ḍahaṃ [ ḍaha ]: जलता हुआ; taṃ bālaṃ [ bāla ]: वह बुरा करने वाला; anveti : पीछा करता है

जब कोई अज्ञानी व्यक्ति पाप करता है, तो उसका बुरा परिणाम तुरंत नहीं निकलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाय के थन से निकाला गया ताजा दूध तुरंत नहीं फटता। किया गया पाप राख से ढकी चिंगारियों की तरह छिपा रहता है और पापी का पीछा करता रहता है और उसे जलाता रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 71)

दूध निकालते ही तुरंत नहीं फटता । फटने से पहले उसे कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पाप कर्म के साथ भी ऐसा ही होता है। इसके बुरे परिणाम बाद में ही दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि यह प्रक्रिया लंबी होती है, इसलिए पापी को अपने कर्म का बुरा प्रभाव तुरंत दिखाई नहीं देता। इसी कारण वह भविष्य में होने वाले हानिकारक परिणामों को देखे बिना ही पाप करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 72

———————————————————————

(धम्मपद71) <<<< पिछला|| धम्मपद72 ||अगला >>>> (धम्मपद 73 और 74)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 72 - सत्थिकुतपेता वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

यवदेव अनत्थया
nattam balassa jayati
hanti balassa sukkamsam(1)
मुद्धमस्सा(2) विपतायम.

———————————————————————

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके गुण और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

———————————————————————

1. सुक्कमसा: सुक्क + अंश: सुक्क का अर्थ है सफेद, उज्ज्वल, शुद्ध या अच्छा; अंश का अर्थ है अंश। टीका के अनुसार, सुक्कमसा का अर्थ है गुण।

2. मुद्धः सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

———————————————————————

सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सत्तिकुतापेटा नामक एक पेटा-भूत के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (72) का उच्चारण किया।

मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना के साथ भिक्षा मांगने के दौरान इस विशाल पेटा-भूत को देखा। इस संदर्भ में बुद्ध ने समझाया कि सत्तिकुतापेट अपने पिछले जन्मों में से एक में वस्तुओं पर पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था। एक दिन उसने अपने गुरु से अपनी इस कुशलता को आजमाने की अनुमति मांगी। उसके गुरु ने उसे गाय या मनुष्य पर पत्थर न फेंकने के लिए कहा, क्योंकि ऐसा करने पर उसे मालिक या रिश्तेदार को हर्जाना देना पड़ेगा, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति को निशाना बनाने के लिए कहा जिसका कोई मालिक या संरक्षक न हो।

पच्चेकबुद्ध को देखकर, बुद्धिहीन मूर्खों ने सोचा कि पच्चेकबुद्ध का कोई रिश्तेदार या संरक्षक न होने के कारण वे एक आदर्श निशाना होंगे। इसलिए उन्होंने भिक्षा मांगने निकले पच्चेकबुद्ध पर पत्थर फेंका। पत्थर एक कान से अंदर गया और दूसरे से निकल गया। पच्चेकबुद्ध मठ पहुँचते ही दम तोड़ गए। पत्थर फेंकने वाले को पच्चेकबुद्ध के शिष्यों ने मार डाला और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। बाद में, उसका पुनर्जन्म एक पाद-भूत के रूप में हुआ और तब से वह अपने बुरे कर्मों के बुरे परिणामों (कर्म) की शेष अवधि भोग रहा है। पाद-भूत के रूप में उसके विशाल सिर पर लगातार गर्म हथौड़ों की चोट हो रही है।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "मूर्ख के लिए उसका कौशल या ज्ञान किसी काम का नहीं होता; यह केवल उसे नुकसान ही पहुंचा सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके गुण और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

———————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सठिकूत-पेटा की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सठिकूत नामक एक सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, बनारस में एक अपाहिज रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। वह शहर के द्वार पर एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर पत्थर फेंकता और पेड़ के पत्ते तोड़ता था। शहर के लड़के उससे कहते, “हमारे लिए हाथी बना दो, हमारे लिए घोड़ा बना दो;” और वह उनके कहने पर हर जानवर बना देता। बदले में उन्हें उसे कठोर और नरम दोनों तरह का भोजन मिलता था। एक दिन, जब राजा मनोरंजन उद्यान जा रहे थे, तो वे इस स्थान पर आए। लड़के अपाहिज को बरगद की शाखाओं के बीच छोड़कर भाग गए। दोपहर हो चुकी थी जब राजा रुके और पेड़ की जड़ों के बीच चले गए, और उनका शरीर बरगद की छाया में लिपट गया।

“इसका क्या मतलब है?” उसने ऊपर देखते हुए कहा। हाथियों और घोड़ों की आकृतियों में तराशे हुए पत्तों को देखकर उसने पूछा, “यह किसका काम है?” जब उसे पता चला कि यह लंगड़े का काम है, तो उसने उसे बुलवाया। लंगड़े की सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे आठ गुना उपहार और शहर के उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में स्थित चार बड़े और सुंदर गाँव भेंट किए।

अब एक व्यक्ति ने उस अपंग व्यक्ति की सांसारिक समृद्धि को देखकर मन ही मन सोचा, “जन्मजात अपंग इस व्यक्ति ने इस कला के माध्यम से अपार समृद्धि प्राप्त कर ली है। मुझे भी यह कला सीखनी चाहिए।” और उसने सीख ली।

उस समय सुनेत्ता नामक एक एकांत बुद्ध नगर के निकट पत्तों और घास से बने एक आश्रम में निवास करते थे। जब उस व्यक्ति ने उन्हें भिक्षा मांगने के उद्देश्य से नगर के द्वार से प्रवेश करते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “इस व्यक्ति का न तो माता है और न ही पिता। यदि मैं इसे मारूँ, तो मुझे कोई दंड नहीं भुगतना पड़ेगा; मैं अपनी कुशलता का परीक्षण करने के लिए इसे ही मारूँगा।” अतः उसने एकांत बुद्ध के दाहिने कान पर पत्थर का निशाना साधा और उसे फेंक दिया। पत्थर एकांत बुद्ध के दाहिने कान में प्रवेश कर बाएँ कान से निकल गया। एकांत बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई, वे भिक्षा मांगने में असमर्थ रहे और वायु में उड़ते हुए अपने पत्तों के आश्रम में लौटकर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

लोगों ने कहा, “यह दुष्ट व्यक्ति कहता है कि उसने निजी बुद्ध को मारा है। इसे पकड़ो!” और तुरंत ही उन्होंने उसे पीट-पीटकर वहीं मार डाला। उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। जब तक यह विशाल पृथ्वी एक मील ऊपर नहीं उठी, तब तक वह यातना भोगता रहा। इसके बाद, क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, उसका पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर एक हथौड़े के भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 72)

बलास्सा नात्तं अनत्थया यव एव जयति ,

बलास्सा मुद्धं विपातयं अस्सा सुक्कंसं हन्ति

बलास्सा : अज्ञानी द्वारा; नत्तं [ नत्त ]: क्या सीखा जाता है; अनत्थय याव एव : केवल उसकी हानि के लिए; जयति : (है) अनुकूल; बलास्सा : अज्ञानी व्यक्ति का; मुद्धं [ मुद्धा ]: सिर; विपतयं [ विपतय ]: कट जाता है; अस्सा सुक्कनसं [ सुक्कांसा ]: उसमें जो भी अच्छा है; हन्ति : नष्ट कर देता है

अज्ञानी व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, वह हानिदायक होता है। यह उसके स्वयं के पतन का कारण बनता है। गलत ज्ञान से सीखने वाले की क्षमता नष्ट हो जाती है और वह वास्तविक ज्ञान के मामले में निष्कलंक हो जाता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 72)
ñattaṃ : ज्ञान। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि मूर्ख व्यक्ति का ज्ञान भी उसके विनाश का कारण बनता है। ज्ञान के लिए अन्य गुणों की आवश्यकता होती है, जैसे कि उसका उपयोग करने की क्षमता ताकि स्वयं को और दूसरों को कोई हानि न हो। मूर्ख लोग भले ही कुछ कौशल प्राप्त कर लें, लेकिन उनमें उसका सही उपयोग करने की बुद्धि नहीं होती।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 73 और 74

———————————————————————

(धम्मपद 72) <<<< पिछला || धम्मपद 73 और 74 || अगला >>>> (धम्मपद 75)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 73 और 74 - चित्तागहापति वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Asantam bhavanamiccheyya
purekkharanca bhikkhusu
avasesu ca issariyam
pujam parakulesu(1) ca.

Mameva kata mannantu
gihi(2) pabbajita ubho
mamevativasa assu
kiccakiccesu kismici
iti balassa sankappo
iccha mano ca vaddhati.

———————————————————————

श्लोक 73: मूर्ख भिक्षु उन गुणों के लिए प्रशंसा चाहता है जो उसमें नहीं हैं, भिक्षुओं के बीच वरीयता, मठों में अधिकार और उन लोगों से आदर चाहता है जो उससे संबंधित नहीं हैं।

———————————————————————

श्लोक 74: "गृहस्थ और भिक्षु दोनों को यह सोचना चाहिए कि सब कुछ मेरी वजह से होता है; उन्हें सभी मामलों में, चाहे छोटे हों या बड़े, मेरी आज्ञा माननी चाहिए।" मूर्ख के ऐसे विचार होने से उसका लोभ और अहंकार बढ़ता है।

———————————————————————

1. परकुलेसु: परिवार के बाहर के लोग; (पर = बाहर या अन्य)।
2. गीहि: गहपति, गृहस्थ का संक्षिप्त रूप।

---

गृहस्थ चित्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सुधम्म और गृहस्थ चित्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (73) और (74) का उच्चारण किया।

गृहस्थ चित्त की मुलाकात एक बार पंचवग्गी (प्रथम पांच भिक्षुओं) के समूह में से एक थेरा महानामा से हुई, जो भिक्षा मांगने निकले थे। चित्त ने थेरा को अपने घर आमंत्रित किया। वहां उन्होंने थेरा को भिक्षा भोजन दिया और उनके प्रवचन को सुनने के बाद चित्त ने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में चित्त ने अपने आम के बाग में एक मठ बनवाया। वहां वे मठ में आने वाले सभी भिक्षुओं की जरूरतों का ध्यान रखते थे और भिक्षु सुधम्म को वहां का निवासी भिक्षु नियुक्त किया।

एक दिन बुद्ध के दो प्रमुख शिष्य, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना, मठ में आए और पूज्य सारिपुत्त के प्रवचन को सुनकर चित्त ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया। फिर उन्होंने अगले दिन दोनों प्रमुख शिष्यों को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने थेरा सुधम्म को भी आमंत्रित किया, लेकिन थेरा सुधम्म ने क्रोधित होकर मना कर दिया और कहा, "आप मुझे पहले ही आमंत्रित कर रहे हैं, बाकी दोनों को नहीं।" चित्त ने फिर से आमंत्रित किया, लेकिन फिर भी मना कर दिया गया। फिर भी, थेरा सुधम्म अगले दिन सुबह चित्त के घर गए। लेकिन जब उन्हें घर में प्रवेश करने के लिए कहा गया, तो थेरा सुधम्म ने मना कर दिया और कहा कि वे बैठेंगे नहीं क्योंकि वे भिक्षा मांगने जा रहे हैं। लेकिन जब उन्होंने दोनों प्रमुख शिष्यों को अर्पित की जाने वाली वस्तुएँ देखीं, तो उन्हें इतनी ईर्ष्या हुई कि वे अपना क्रोध रोक नहीं पाए। उसने चित्त को अपशब्द कहे और बोला, "मैं अब तुम्हारे मठ में और नहीं रहना चाहता," और गुस्से में घर से निकल गया।

वहाँ से वह बुद्ध के पास गया और सारी घटना बताई। बुद्ध ने उससे कहा, “तुमने एक ऐसे गृहस्थ शिष्य का अपमान किया है जो आस्थावान और उदार है। बेहतर होगा कि तुम उसके पास वापस जाओ और अपनी गलती स्वीकार करो।” सुधम्म ने बुद्ध के कहे अनुसार ही किया, लेकिन चित्त शांत नहीं हुआ; इसलिए वह दूसरी बार बुद्ध के पास लौटा। बुद्ध यह जानते हुए कि इस समय तक सुधम्म का अहंकार कम हो चुका था, बोले, “मेरे पुत्र, एक अच्छे भिक्षु को आसक्ति नहीं रखनी चाहिए; एक अच्छे भिक्षु को घमंडी नहीं होना चाहिए और यह नहीं कहना चाहिए कि 'यह मेरा मठ है, यह मेरा स्थान है, ये मेरे गृहस्थ शिष्य हैं,' इत्यादि, क्योंकि ऐसे विचारों वाले व्यक्ति में लोभ और अहंकार बढ़ता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 73 : मूर्ख भिक्षु उन गुणों के लिए प्रशंसा चाहता है जो उसमें नहीं हैं, भिक्षुओं के बीच वरीयता, मठों में अधिकार और उन लोगों से आदर चाहता है जो उससे संबंधित नहीं हैं।

---

श्लोक 74 : "गृहस्थ और भिक्षु दोनों को यह सोचना चाहिए कि सब कुछ मेरी वजह से होता है; उन्हें सभी मामलों में, चाहे छोटे हों या बड़े, मेरी आज्ञा माननी चाहिए।" मूर्ख के ऐसे विचार होने से उसका लोभ और अहंकार बढ़ता है।

---

प्रवचन के अंत में, सुधम्म चित्त के घर गए, और इस बार उनका मेल-मिलाप हो गया; और कुछ ही दिनों में, सुधम्म ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गृहस्थ चित्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सुधम्म और गृहस्थ चित्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

मच्चिकासण्ड नगर में रहने वाले चित्त नामक एक गृहस्थ ने पाँच भिक्षुओं के समूह में से एक पूज्य महानामा को भिक्षा माँगते हुए देखा। उनके आचरण से प्रसन्न होकर चित्त ने उनका भिक्षापात्र ग्रहण किया, उन्हें अपने घर में आमंत्रित किया, भोजन कराया और भोजन के बाद धर्मोपदेश सुनकर धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया। अब चित्त, जो अडिग आस्था से परिपूर्ण थे, अपने भोग उद्यान अंबठक उपवन को संघ का निवास स्थान बनाना चाहते थे। उन्होंने पूज्य महानामा के दाहिने हाथ में जल डाला और उपवन को संघ की ओर गतिमान कर दिया। जैसे ही उन्होंने “बुद्ध धर्म दृढ़ता से स्थापित हो गया है” कहा, पृथ्वी सागर की सीमा तक काँप उठी। महान कोषाध्यक्ष ने उपवन में एक भव्य मठ का निर्माण करवाया और उसके बाद से चारों दिशाओं से आने वाले भिक्षुओं के लिए उसके द्वार खुले रहे। मच्छिकासंद में आदरणीय सुधम्मा भी रहते थे।

कुछ समय बाद, चित्त के अच्छे गुणों की अफवाह सुनकर दोनों प्रमुख शिष्यों ने उन्हें प्रणाम करने का निश्चय किया और मच्छिकासंढ गए। गृहस्थ चित्त ने उनके आने की सूचना पाकर आधा मील की दूरी तय करके उनका स्वागत किया, उन्हें मठ तक ले गए, उनका अभिनंदन किया, आगंतुकों के लिए सामान्य रस्में निभाईं और फिर बुद्ध से यह निवेदन किया, "हे पूज्यवर, हम धम्म पर एक संक्षिप्त प्रवचन सुनना चाहते हैं।" पूज्यवर ने उत्तर दिया, "हे गृहस्थ शिष्य, हम यात्रा से थक गए हैं; फिर भी थोड़ी देर सुनिए।" चित्त ने केवल बुद्ध के धम्म प्रवचन को सुनकर ही द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त कर लिया। फिर उन्होंने दोनों प्रमुख शिष्यों को प्रणाम किया और उन्हें अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित करते हुए कहा, "हे पूज्यवर, कृपया कल अपने हजार भिक्षुओं के साथ मेरे घर में भोजन करें।" फिर उन्होंने अपने निवास स्थान पर रहने वाले भिक्षु, पूज्य सुधम्म की ओर रुख किया और उन्हें आमंत्रित करते हुए कहा, "पूज्यवर, आप भी कल पूज्यवरों के साथ आइए।" यह सोचकर कि "उन्होंने मुझे सबसे आखिर में आमंत्रित किया है," सुधम्म क्रोधित हो गए और उन्होंने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया; और यद्यपि चित्त ने बार-बार निमंत्रण दोहराया, फिर भी उन्होंने इनकार कर दिया। गृहस्थ शिष्य ने कहा, "कृपया उपस्थित रहिए, पूज्यवर," और बाहर चले गए। अगले दिन उन्होंने अपने निवास स्थान पर भव्य प्रसाद तैयार किया। सुबह-सुबह पूज्य सुधम्म ने मन ही मन सोचा, "गृहस्थ ने मुख्य शिष्यों के लिए किस प्रकार का भोजन तैयार किया है? मैं जाकर देखूँ।" अतः सुबह-सुबह वे पान और वस्त्र लेकर अपने घर चले गए।

"कृपया बैठ जाइए, आदरणीय," गृहस्थ ने कहा। "मैं नहीं बैठूंगा," सुधम्म ने उत्तर दिया; "मैं भिक्षा मांगने जा रहा हूँ।" आदरणीय ने प्रमुख शिष्यों के लिए तैयार प्रसाद को देखा और गृहस्थ को भोजन की विविधता पर चिढ़ाने के लिए कहा, "गृहस्थ, आपका भोजन बहुत उत्तम है, लेकिन आपने एक चीज छोड़ दी है।" "वह क्या है, आदरणीय?" "तिल की रोटी, गृहस्थ।" इस पर गृहस्थ ने उन्हें कौवे से तुलना करते हुए फटकारा। इससे क्रोधित होकर आदरणीय ने कहा, "यह आपका निवास स्थान है, गृहस्थ; मैं चला जाऊंगा।" गृहस्थ ने तीन बार आदरणीय को रोकने का प्रयास किया, लेकिन हर बार उन्होंने इनकार कर दिया। अंततः वे घर छोड़कर बुद्ध के पास गए और चित्त और अपने बीच हुई बातचीत बताई। बुद्ध ने कहा, "तुम जैसे तुच्छ व्यक्ति ने एक निष्ठावान, विश्वासी शिष्य का अपमान किया है।" इस प्रकार सारा दोष भिक्षु पर डालकर बुद्ध ने उसे शिष्य से क्षमा मांगने के लिए वापस भेज दिया। पूज्य भिक्षु चित्त के पास गए और बोले, "गृहस्थ, यह सब मेरी गलती थी; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।" लेकिन गृहस्थ ने उन्हें क्षमा करने से इनकार कर दिया और कहा, "मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूंगा।"

क्षमा न मिलने पर क्रोधित होकर वह बुद्ध के पास लौट आया। बुद्ध जानते थे कि गृहस्थ सुधम्म को क्षमा कर देंगे, फिर भी उन्होंने सोचा, "यह पूज्यवर अपने अहंकार में हठी है; अब इसे तीस कोठ जाकर वापस आने दो।" और इसलिए, क्षमा प्राप्त करने का तरीका बताए बिना ही उन्होंने उसे विदा कर दिया। पूज्यवर अपने अहंकार को चूर-चूर करके लौट आया। तब बुद्ध ने पूज्यवर को एक साथी दिया और उससे कहा, "इस साथी के साथ जाओ और गृहस्थवर से क्षमा मांगो।" बुद्ध ने कहा, "एक धार्मिक व्यक्ति को अहंकार या द्वेष में नहीं पड़ना चाहिए, यह सोचकर कि 'यह निवास मेरा है, यह पुरुष गृहस्थ शिष्य मेरा है, यह स्त्री गृहस्थ शिष्य मेरी है।' क्योंकि यदि वह ऐसा करता है, तो द्वेष, अहंकार और अन्य बुराइयाँ बढ़ जाती हैं।"

यह उपदेश सुनकर पूज्य सुधम्म ने बुद्ध को प्रणाम किया, अपने आसन से उठे, बुद्ध की परिक्रमा की और फिर अपने साथी भिक्षु के साथ उस गृहस्थ शिष्य के पास गए, अपने दोष का प्रायश्चित किया और उससे क्षमा मांगी। गृहस्थ शिष्य ने उन्हें क्षमा कर दिया और बदले में उनसे क्षमा मांगते हुए कहा, "हे पूज्य, मैं आपको क्षमा करता हूँ; यदि मुझसे कोई गलती हुई हो, तो कृपया मुझे भी क्षमा कर दीजिए।" पूज्य सुधम्म ने बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश का दृढ़तापूर्वक पालन किया और कुछ ही दिनों में अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

उस गृहस्थ शिष्य ने मन ही मन सोचा, "बुद्ध के दर्शन किए बिना ही मुझे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हो गया है; उनके दर्शन किए बिना ही मुझे द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त हो गया है। मुझे बुद्ध के दर्शन अवश्य करने चाहिए।" अतः उसने पाँच सौ गाड़ियाँ तिल, चावल, घी, चीनी, वस्त्र, चादर और अन्य भेंटों से भरकर तैयार करवाईं। उसने बुद्ध से दर्शन किए और एक माह बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। एक माह बाद, पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा, "पूज्यवर, क्या आपके दर्शन करने मात्र से ही उन्हें ये सभी सम्मान प्राप्त हुए?" बुद्ध ने कहा, "आनंद, ऐसा व्यक्ति चाहे जिस स्थान पर भी जाए, उसे लाभ और सम्मान ही प्राप्त होता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 73)

असतं भवनं इच्छेय्य , भिक्खुसु शुद्धखरञ्च

अवसेसु च इस्सारियं परकुलेसु पूजा च

asataṃ bhāvanaṃ iccheyya : उन गुणों के लिए मान्यता प्राप्त करने का शौकीन जो उसमें नहीं हैं; bhikkhūsu : भिक्षुओं के बीच; purekkhārañca : नेतृत्व; āvāsesu ca : निवास; issariyaṃ [ issariya ] : श्रेष्ठता; parakulesu : अन्य परिवारों द्वारा; pūjā ca : स्वीकृति, मान्यता और प्रसन्नता (इच्छाएँ)

वह उस चीज़ के लिए पहचाने जाने का शौकीन है जो वह वास्तव में नहीं है। वह अपने साथियों के बीच श्रेष्ठता की लालसा रखता है। वह आवास संबंधी मामलों में प्राथमिकता पाने के लिए तरसता है। वह अन्य परिवारों से उपहार और वस्तुएँ प्राप्त करने के विचार से भी मोहित है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 74)

गहि पब्बजिता उभो मम एव कतं अन्नन्तु ,
किंस्मिसि किक्काकिचेसु मम एव अतिवसा अस्सु
“ इति बलास्सा संकप्पो इच्छा मनो च वन्धति

गिहि : आम आदमी; पब्बाजिता : भिक्षुओं; उभो : ये दोनों समूह; मामा ईवा : अकेले मेरे द्वारा; कतं अन्नन्तु : किया हुआ जानना चाहिए; किसमिसी : जो भी हो; किक्काकिसेसु : गतिविधियाँ छोटी या बड़ी; मामा ईवा : मैं अकेला; अतिवास अस्सु : का पालन किया जाना चाहिए; आईटीआई : इस तरह; बालासा : अज्ञानी का; संकप्पो [ संकप्पा ]: सोच है; इच्छा : लालसा; मनो च : और अभिमान (श्रेष्ठता की भावना); वधति : वृद्धि

अज्ञानी व्यक्ति की मानसिकता यह होती है: “आम लोग और धर्मगुरु दोनों जान लें कि यह सब मैंने अकेले किया है। चाहे काम छोटा हो या बड़ा, उसमें केवल मेरा ही नेतृत्व होना चाहिए। सबको मेरा अनुसरण करना चाहिए।” अज्ञानी व्यक्ति का यह घमंड लालसा, अनियंत्रित इच्छा और निराधार अभिमान को जन्म देता है, जिससे श्रेष्ठता का झूठा एहसास पैदा होता है। ये सब धीरे-धीरे बढ़ने लगते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 73-74)

असतं भावनां इच्चेय्या पुरेक्खारांच : यश और श्रेष्ठता। ये दो श्लोक पूरी तरह से मठवासी जीवन में अनुभव किए जाने वाले अहंकार के विभिन्न रूपों पर आधारित हैं। ये रूप मुख्य रूप से उन भिक्षुओं और तपस्वियों को प्रभावित करते हैं जो आध्यात्मिक प्रगति में अधिक उन्नत नहीं हैं। चूंकि उन्होंने मठवासी जीवन के वास्तविक मूल्यों को संजोना शुरू नहीं किया है, इसलिए वे दिखावटी उपहारों, भेंटों, प्रतिष्ठापूर्ण नेतृत्व आदि के प्रति आसक्त रहते हैं। ये अहंकारी गतिविधियाँ उन लोगों की तुच्छ गतिविधियाँ हैं जो अभी भी आध्यात्मिक उन्नति की शुरुआत में हैं। ये अज्ञानी लोग अपने द्वारा छोड़े गए गृहस्थ जीवन की इन संपत्तियों को प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं। अनुचरों से घिरे रहना, विशेष उपहार प्राप्त करने के लिए चुने जाना, ये सब उनके लिए महत्वपूर्ण हैं। यदि उन्हें उपेक्षित महसूस होता है तो वे आहत होते हैं। वे अपने परिवार के अलावा अन्य परिवारों से भी आवश्यकताओं की लालसा करने लगते हैं, ताकि वे अपने प्रशंसकों का दायरा बढ़ा सकें। ये मनोवृत्तियाँ उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियों को धूमिल करती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 75

---

(धम्मपद 73 और 74) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 75 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 76)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 75 - वनवसिटिससामनेरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Anna hi labhupanisa
अन्ना निब्बानगामिनी
एवमेतम अभिनया

भिक्खु बुद्धस्सा सवाको
sakkaram nabhinandeyya
vivekamanubruhaye(1).

---

श्लोक 75 : वास्तव में, सांसारिक लाभ की ओर ले जाने वाला मार्ग एक है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा है। इसे पूर्णतः समझते हुए, भिक्षु, बुद्ध के शिष्य को सांसारिक लाभ और मान-सम्मान में प्रसन्न नहीं होना चाहिए, बल्कि एकांत, वैराग्य और निर्वाण की प्राप्ति में स्वयं को समर्पित करना चाहिए।

---

1. विवेकमानुब्रुहये (विवेकम + अनुब्रुहये): विवेक - एकांतवास। टीका के अनुसार, विवेक तीन प्रकार के होते हैं: कायविवेक (शरीर का एकांतवास या एकांतवास); चित्तविवेक (मन का मानवीय भावनाओं से विरक्ति) और उपाधिविवेक (निर्वाण)।

---

वन मठ के समनेरा (वरिष्ठ भिक्षु) तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (75) का उच्चारण किया, जो कि समनेरा तिस्सा के संदर्भ में था, जो एक वन मठ में रहता था।

तिस्सा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उनके पिता अपने घर में प्रधान शिष्य सारिपुत्त को भिक्षा देते थे, इसलिए तिस्सा बचपन से ही कई बार प्रधान शिष्य से मिलते रहे थे। सात वर्ष की आयु में वे प्रधान शिष्य सारिपुत्त के शिष्य (समनेर) बन गए। जब वे जेतवन मठ में रह रहे थे, तो उनके कई मित्र और रिश्तेदार उनसे मिलने आते थे और उपहार व भेंट लाते थे। समनेर को ये मुलाकातें बहुत थकाऊ लगती थीं; इसलिए बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर वे वन मठ के लिए निकल पड़े। जब भी कोई ग्रामीण उन्हें कुछ भेंट करता, तिस्सा बस इतना कहते, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," ("सुखित होथा, दुःख मुच्चथा"), और अपने रास्ते चले जाते। वन मठ में रहते हुए उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और तीन महीने के अंत में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

वर्षा ऋतु (तीन महीने) के बाद, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना और अन्य वरिष्ठ शिष्यों के साथ बुद्ध की अनुमति से समनेरा तिस्सा गए। सभी ग्रामीण पूज्य सारिपुत्त और उनके चार हजार भिक्षुओं के समूह का स्वागत करने के लिए बाहर आए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से प्रवचन देने का अनुरोध किया, लेकिन मुख्य शिष्य ने मना कर दिया; इसके बजाय, उन्होंने अपने शिष्य तिस्सा को ग्रामीणों को प्रवचन देने का निर्देश दिया। हालांकि, ग्रामीणों ने कहा कि उनके गुरु तिस्सा केवल "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों" कह सकते हैं, और मुख्य शिष्य से उनके स्थान पर किसी अन्य भिक्षु को नियुक्त करने का अनुरोध किया। लेकिन पूज्य सारिपुत्त ने जोर दिया कि तिस्सा को ही धम्म पर प्रवचन देना चाहिए, और तिस्सा से कहा, "तिस्सा, इन लोगों से धम्म के बारे में बात करो और उन्हें दिखाओ कि सुख कैसे प्राप्त किया जाए और जीवन के दुखों से कैसे मुक्ति पाई जाए।"

इस प्रकार, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, समनेरा तिस्सा प्रवचन देने के लिए मंच पर गए। उन्होंने श्रोताओं को स्कंधों (खंडों), इंद्रिय आधारों (आयतनों), बोधिपक्खीय धम्म (शिक्षा के निरंतरता के तत्व), अर्हतत्व और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग आदि का अर्थ समझाया। अंत में उन्होंने कहा, "इस प्रकार, जो अर्हतत्व प्राप्त कर लेते हैं वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाते हैं और उन्हें पूर्ण शांति प्राप्त होती है; शेष सभी पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहते हैं।"

पूज्य सारिपुत्त ने तिस्सा द्वारा धम्म की इतनी अच्छी व्याख्या करने के लिए उनकी प्रशंसा की। जब उन्होंने अपनी व्याख्या समाप्त की, तब भोर होने वाली थी और सभी ग्रामीण बहुत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ इस बात से आश्चर्यचकित थे कि समनेरा तिस्सा को धम्म का इतना ज्ञान है, लेकिन वे उनसे असंतुष्ट भी थे क्योंकि पहले उन्होंने उनसे धम्म के बारे में बहुत कम बात की थी; अन्य समनेरा को इतना विद्वान पाकर प्रसन्न और संतुष्ट थे और उन्हें लगा कि वे उनके बीच रहकर बहुत भाग्यशाली हैं।

बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से जेतवन मठ से ग्रामीणों के इन दो समूहों को देखा और उनके सामने प्रकट हुए। गाँव में आने का उनका उद्देश्य पहले समूह के ग्रामीणों के बीच फैली गलतफहमी को दूर करना था। बुद्ध उस समय पहुँचे जब ग्रामीण भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन तैयार कर रहे थे। इस प्रकार, उन्हें बुद्ध को भी भिक्षा भोजन अर्पित करने का अवसर मिला। भोजन के बाद, बुद्ध ने ग्रामीणों को संबोधित करते हुए कहा, "हे गृहस्थ शिष्यों, आप सभी बहुत भाग्यशाली हैं कि समनेरा तिस्सा आपके बीच हैं। उनकी उपस्थिति के कारण ही मैं स्वयं, मेरे प्रमुख शिष्य, वरिष्ठ शिष्य और कई अन्य भिक्षु आज आप लोगों से मिलने आए हैं।" इन शब्दों से उन्हें यह एहसास हुआ कि समनेरा तिस्सा का होना उनके लिए कितना सौभाग्य की बात है और वे संतुष्ट हो गए। इसके बाद बुद्ध ने ग्रामीणों और भिक्षुओं को प्रवचन दिया, जिसके परिणामस्वरूप, उनमें से कई ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

प्रवचन के बाद बुद्ध जेतवन मठ लौट आए। शाम को भिक्षुओं ने बुद्ध से तिस्सा की प्रशंसा करते हुए कहा, "हे पूज्यवर, समनेरा तिस्सा ने एक बहुत कठिन कार्य किया; श्रावस्ती में उनके पास सभी प्रकार के उपहार और भेंट प्रचुर मात्रा में थे, फिर भी उन्होंने इन सभी को त्यागकर वन मठ में तपस्या करने का निर्णय लिया।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, भिक्षु चाहे नगर में हो या ग्राम में, उसे उपहारों और भेंटों के लिए नहीं जीना चाहिए। यदि भिक्षु सभी सुख-सुविधाओं और सांसारिक लाभों का त्याग करके एकांत में लगन से धर्म का अभ्यास करे, तो वह निश्चित रूप से अर्हतत्व प्राप्त करेगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 75 : वास्तव में, सांसारिक लाभ की ओर ले जाने वाला मार्ग एक है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग दूसरा है। इसे पूर्णतः समझते हुए, भिक्षु, बुद्ध के शिष्य को सांसारिक लाभ और मान-सम्मान में प्रसन्न नहीं होना चाहिए, बल्कि एकांत, वैराग्य और निर्वाण की प्राप्ति में स्वयं को समर्पित करना चाहिए।

---

अध्याय पाँच का अंत: मूर्ख (बलवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
वन मठ के नवोदित भिक्षु तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वन मठ में रहने वाले एक नवोदित भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
तिस्सा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। उनके पिता अपने घर में मुख्य शिष्य सारिपुत्त को भिक्षा देते थे, इसलिए तिस्सा बचपन से ही कई बार मुख्य शिष्य सारिपुत्त से मिलते रहे थे। सात वर्ष की आयु में वे मुख्य शिष्य सारिपुत्त के शिष्य बन गए। जब वे जेतवन मठ में रह रहे थे, तो उनके कई मित्र और रिश्तेदार उनसे मिलने आते थे और उपहार व भेंट लाते थे। इन मुलाकातों से उन्हें बहुत थकान होती थी; इसलिए बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर वे वन मठ चले गए। जब भी कोई ग्रामीण उन्हें कुछ भेंट करता, तिस्सा बस इतना कहते, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," ("सुखिता होथा, दुःखा मुच्चथा"), और अपने रास्ते चले जाते। वन मठ में रहते हुए उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और तीन महीने के अंत में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ।
वर्षा ऋतु के बाद, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना और अन्य वरिष्ठ शिष्यों के साथ, बुद्ध की अनुमति से नवोदित भिक्षु तिस्सा से मिलने गए। सभी ग्रामीण पूज्य सारिपुत्त और उनके साथ आए कई भिक्षुओं का स्वागत करने के लिए बाहर आ गए। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से प्रवचन देने का अनुरोध किया, लेकिन मुख्य शिष्य ने मना कर दिया; इसके बजाय, उन्होंने अपने शिष्य तिस्सा को ग्रामीणों को प्रवचन देने का निर्देश दिया। हालांकि, ग्रामीणों ने कहा कि उनके गुरु तिस्सा केवल इतना ही कह सकते हैं, "आप सुखी हों, आप जीवन के दुखों से मुक्त हों," और मुख्य शिष्य से उनके स्थान पर किसी अन्य भिक्षु को नियुक्त करने का अनुरोध किया। लेकिन पूज्य सारिपुत्त ने जोर दिया कि तिस्सा को धम्म पर प्रवचन देना चाहिए, और तिस्सा से कहा, "तिस्सा, इन लोगों से धम्म के बारे में बात करो और उन्हें दिखाओ कि सुख कैसे प्राप्त किया जाए और जीवन के दुखों से कैसे मुक्ति पाई जाए।"
इस प्रकार, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए, नवोदित भिक्षु तिस्सा प्रवचन देने के लिए मंच पर चढ़े। उन्होंने श्रोताओं को खन्धस , आयतन और आयतन के आधार , बोधिपक्खिया , अर्हतत्व और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग आदि का अर्थ समझाया । अंत में उन्होंने कहा, "इस प्रकार, जो अर्हतत्व प्राप्त कर लेते हैं वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाते हैं और उन्हें पूर्ण शांति प्राप्त होती है; शेष सभी पुनर्जन्मों के चक्र में भटकते रहते हैं।"
पूज्य सारिपुत्त ने तिस्सा द्वारा धम्म की इतनी अच्छी व्याख्या करने के लिए उनकी प्रशंसा की। जब उन्होंने अपनी व्याख्या समाप्त की, तब भोर होने वाली थी और सभी ग्रामीण बहुत प्रभावित हुए। उनमें से कुछ आश्चर्यचकित थे कि नवोदित भिक्षु तिस्सा को धम्म का इतना ज्ञान कैसे था, जबकि पहले वे उनसे धम्म के बारे में बहुत कम बात करते थे; अन्य लोग नवोदित भिक्षु को इतना विद्वान पाकर प्रसन्न और संतुष्ट थे और उन्हें लगा कि वे भाग्यशाली हैं कि वे उनके बीच हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 75)
लाभुपनिसा अन्न हि निब्बानागामिनी
बुद्धस्स सावको भिक्खु एतं अभिनयाय
साकारं न अभिनन्देय विवेकं अनुबृहये
लाभभूपनिसा : सांसारिक लाभ कमाने की रणनीति; अञ्ञा ही : एक है; निब्बानगामिनी : मुक्ति का मार्ग; अञ्ञा ही : (निश्चित रूप से) एक और है; एवं बुद्धस्स सावको [ सावका ]: इस प्रकार बुद्ध के शिष्य; भिक्षु : भिक्षु; एतं : यह विषय; अभिञ्ञाय : अच्छी तरह से सराहना करते हुए; सक्कारं [ सक्कार ]: अनुचित आराधना और उपहारों का अर्पण; न अभिनन्देय्य : नहीं करना चाहिए; विवेकं [ विवेक ]: शांति; अनुब्रुहये : का अनुसरण करना चाहिए

सांसारिक और भौतिक उन्नति और लाभ का एक ही मार्ग है। परन्तु निर्वाण का मार्ग इससे बिलकुल भिन्न है। बुद्ध के शिष्य भिक्षु को इस अंतर का भलीभांति ज्ञान होना चाहिए। उसे उन सांसारिक वरदानों में आनंद नहीं लेना चाहिए जिनसे वह आकर्षित हो रहा है। इसके विपरीत, उसे एकांत की खोज करनी चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 75)

विवेक : वैराग्य, एकांतवास। निद्देसा के अनुसार, यह तीन प्रकार का होता है:

शारीरिक वैराग्य, अर्थात् आकर्षक इंद्रिय-संबंधी वस्तुओं से मुक्त होकर एकांत में रहना;

मानसिक वैराग्य, अर्थात् इंद्रियजन्य चीजों से आंतरिक वैराग्य;

अस्तित्व के आधारभूत ढांचे से अलगाव।

प्रथम समाधि के वर्णन में, 'इंद्रिय सुखों से विरक्त' शब्द 'शारीरिक विरक्ति' को संदर्भित करते हैं, 'कर्मिक रूप से अस्वास्थ्यकर चीजों से विरक्त' शब्द 'मानसिक विरक्ति' को संदर्भित करते हैं; 'विरक्ति से उत्पन्न' शब्द पांच बाधाओं की अनुपस्थिति को संदर्भित करते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 76

————————————————————————

(धम्मपद 75) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 76 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 77)

————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 76 - राधाथेरा वत्थु

————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

निधिनम्वा पवत्तरम

yam passe vajjadassinam
nig-gayhavadim medhavim
tadisam panditam bhaje
tadisam bhajamanassa
seyyo hoti na papiyo.

————————————————————————

श्लोक 76 : हमें उस बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए जो हमारी गलतियों के लिए हमें फटकारता है, ठीक वैसे ही जैसे हम किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने के लिए किसी मार्गदर्शक का अनुसरण करते हैं। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करने वाले को लाभ ही होगा, हानि नहीं।

————————————————————————

थेरा (वरिष्ठ भिक्षुणी) राधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (76) का उच्चारण थेरा राधा के संदर्भ में किया, जो एक समय में एक गरीब बूढ़ी ब्राह्मण थीं।

राधा एक गरीब ब्राह्मण थे जो मठ में रहकर भिक्षुओं की छोटी-मोटी सेवाएँ करते थे। उनकी सेवाओं के बदले उन्हें भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती थीं, लेकिन भिक्षु बनने की प्रबल इच्छा होने के बावजूद उन्हें संघ में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया।

एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में एक वृद्ध ब्राह्मण दिखाई दिया और वे समझ गए कि वह अर्हत पद के पात्र हैं। इसलिए बुद्ध उस वृद्ध व्यक्ति के पास गए और उनसे जाना कि मठ के भिक्षु उन्हें संघ में शामिल नहीं करना चाहते। अतः बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, "क्या यहाँ कोई ऐसा भिक्षु है जिसे इस वृद्ध व्यक्ति द्वारा किए गए किसी उपकार की याद हो?" इस प्रश्न के उत्तर में पूज्य सारिपुत्त ने कहा, "पूज्यवर, मुझे वह घटना याद है जब इस वृद्ध व्यक्ति ने मुझे एक चम्मच चावल खिलाया था।" बुद्ध ने कहा, "यदि ऐसा है, तो क्या आपको अपने उपकारी को जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं करनी चाहिए?" तब पूज्य सारिपुत्त उस वृद्ध व्यक्ति को भिक्षु बनाने के लिए सहमत हो गए और उन्हें विधिवत संघ में प्रवेश दे दिया गया। पूज्य सारिपुत्त ने वृद्ध भिक्षु का मार्गदर्शन किया और वृद्ध भिक्षु ने उनके मार्गदर्शन का पूर्णतया पालन किया। कुछ ही दिनों में वृद्ध भिक्षु ने अर्हत पद प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध अगली बार भिक्षुओं से मिलने आए, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वृद्ध भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के मार्गदर्शन का कितनी सख्ती से पालन करते हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि भिक्षु को राधा की तरह मार्गदर्शन के प्रति ग्रहणशील होना चाहिए और किसी भी गलती या कमी के लिए फटकार मिलने पर उसे नाराज नहीं होना चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 76 : हमें उस बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए जो हमारी गलतियों के लिए हमें फटकारता है, ठीक वैसे ही जैसे हम किसी छिपे हुए खजाने तक पहुँचने के लिए किसी मार्गदर्शक का अनुसरण करते हैं। ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करने वाले को लाभ ही होगा, हानि नहीं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय राधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षु राधा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो एक समय में एक गरीब वृद्ध ब्राह्मण थे।

राधा एक गरीब ब्राह्मण थे जो मठ में रहकर भिक्षुओं की छोटी-मोटी सेवाएँ करते थे। उनकी सेवाओं के बदले उन्हें भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ दी जाती थीं, लेकिन उन्हें संघ में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया, हालाँकि उनकी भिक्षु बनने की प्रबल इच्छा थी।

एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में एक गरीब ब्राह्मण दिखाई दिया और वे समझ गए कि वह अर्हत पद के योग्य है। इसलिए बुद्ध उस वृद्ध व्यक्ति के पास गए और उनसे जाना कि मठ के भिक्षु उन्हें संघ में शामिल नहीं करना चाहते। अतः बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उनसे पूछा, “क्या यहाँ कोई ऐसा भिक्षु है जिसे इस वृद्ध व्यक्ति द्वारा किए गए किसी उपकार की याद हो?” इस प्रश्न के उत्तर में पूज्य सारिपुत्त ने कहा, “पूज्यवर, मुझे वह घटना याद है जब इस वृद्ध व्यक्ति ने मुझे एक चम्मच चावल खिलाया था।” बुद्ध ने कहा, “यदि ऐसा है, तो क्या तुम्हें अपने उपकारी को जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाने में सहायता नहीं करनी चाहिए?” तब पूज्य सारिपुत्त उस वृद्ध व्यक्ति को भिक्षु बनाने के लिए सहमत हो गए और उन्हें विधिवत संघ में शामिल कर लिया गया। पूज्य सारिपुत्त ने उस वृद्ध भिक्षु का मार्गदर्शन किया और उन्होंने उनके मार्गदर्शन का कड़ाई से पालन किया। कुछ ही दिनों के भीतर, वृद्ध भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त कर लिया।

जब बुद्ध अगली बार भिक्षुओं से मिलने आए, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वृद्ध भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के मार्गदर्शन का कितनी सख्ती से पालन करते हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि एक भिक्षु को राधा के समान मार्गदर्शन के प्रति ग्रहणशील होना चाहिए और किसी भी गलती या कमी के लिए फटकार मिलने पर उसे नाराज नहीं होना चाहिए।

बुद्ध ने कहा, “आर्यनीय सारिपुत्त अपने पिछले जन्म में वह एकाकी हाथी थे जिन्होंने अपने पैर के उपचार में उनकी सेवा के सम्मान में अपने पुत्र, शुद्ध सफेद हाथी को बढ़ई को भेंट किया था।” आदरणीय सारिपुत्त के बारे में ऐसा कहने के बाद, उन्होंने आदरणीय राधा के संदर्भ में कहा, “भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु को कोई दोष बताया जाए, तो उसे राधा की तरह अनुशासन का पालन करना चाहिए और जब उसे चेतावनी दी जाए, तो उसे नाराज नहीं होना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 76)

वज्जादस्सीनं निग-गहवादिं मेधाविं यं

निधिनं पवत्तरं इव पस्से तदिसं पंडितं

भजे तदिसं भजमानस्स सय्यो होति पापियो न

वज्जदास्सिना : जो त्रुटियों को इंगित करता है; निग्गयहवादि : जो रचनात्मक रूप से नसीहत करता है; मेधाविं : बुद्धिमान ; यं : जो; निधिनं पवत्तरं इव : खजाने को प्रकट करने वाले के समान; पासे : खोजता है; तादिसं : ऐसा ; पंडितं : एक बुद्धिमान व्यक्ति; भजे : संगति करनी चाहिए; तादिसं : ऐसा व्यक्ति; भजमानस : संगति करने वाले व्यक्ति को; सेय्यो : अच्छा; होति : होगा; पापीयो [ पापिया ]: बुराई; ना : घटित नहीं होगा

यदि किसी को कोई ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति मिल जाए जो उसकी गलतियों को उजागर करे और उसे सख्ती से सुधारे, तो उसे ज्ञान के खजाने का दयालु स्रोत समझना चाहिए। उसकी संगति अवश्य तलाशनी चाहिए। ऐसी संगति से मनुष्य बेहतर इंसान बनता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 76)

vajjadassinaṃ nig-gayhavādiṃ : दोष निकालने वाला; निंदा करने वाला। ये दो गुण रचनात्मक आलोचना करने वाले व्यक्ति के लक्षण बताए गए हैं। कुछ लोग दोष निकालते हैं और निंदा करते हैं, जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति का अपमान करना होता है। लेकिन इस श्लोक में रचनात्मक आलोचकों की बात हो रही है। वे बेशक दोष निकालते हैं और निंदा करते हैं, लेकिन उनका उद्देश्य अलग होता है। वे इन कार्यों को 'खजाने प्रकट करने वालों' की तरह करते हैं। भला कौन 'खजाने प्रकट करने वाले' को अपमान करने वाला कह सकता है? ऐसा मार्गदर्शक सीखने वाले को अपने भीतर छिपे व्यक्तित्व के खजानों को स्वयं जानने में सक्षम बनाएगा और उसे उचित आचरण में निपुण बनाएगा, जिससे वह मोक्ष के मार्ग पर संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ सके।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 77

———————————————————————

(धम्मपद 76) <<<< पिछला || धम्मपद 77 || अगला >>>> (धम्मपद 78)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 77 - अस्सजिपुनब्बासुका वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Ovadeyya'nusaseyya(1)
asabbha ca nivaraye
satam hi so piyo hoti
asatam hoti appiyo.

———————————————————————

श्लोक 77 : बुद्धिमान व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना चाहिए; उसे सलाह देनी चाहिए और दूसरों को गलत काम करने से रोकना चाहिए; ऐसा व्यक्ति अच्छे लोगों को प्रिय होता है; उसे केवल बुरे लोग नापसंद करते हैं।

———————————————————————

1. अनुसय्य: पहले से सलाह देना; बार-बार सलाह देना।

———————————————————————

भिक्षु असाजी और पुनब्बासुका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने भिक्षु असाजी और पुनब्बासुका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (77) कहा।

भिक्षु असाजी और पुनाबासुका और उनके पाँच सौ शिष्य कितागिरी गाँव में रह रहे थे। वहाँ रहते हुए वे फूल और फलदार पेड़ लगाकर जीविका कमाते थे, इस प्रकार वे भिक्षुओं के लिए निर्धारित मूलभूत नियमों का उल्लंघन कर रहे थे।

इन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने अपने दो प्रमुख शिष्यों सारिपुत्त और महा मोग्गलाना को उन्हें आगे दुराचार करने से रोकने के लिए भेजा। बुद्ध ने अपने दोनों प्रमुख शिष्यों से कहा, "उन भिक्षुओं से कहो कि वे दुराचार करके गृहस्थ शिष्यों की आस्था और उदारता को नष्ट न करें और यदि कोई अवज्ञा करे तो उसे मठ से निकाल दें। जैसा मैंने कहा है वैसा करने में संकोच न करो, क्योंकि केवल मूर्ख ही अच्छी सलाह और बुराई करने से मना किए जाने को नापसंद करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 77 : बुद्धिमान व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना चाहिए; उसे सलाह देनी चाहिए और दूसरों को गलत काम करने से रोकना चाहिए; ऐसा व्यक्ति अच्छे लोगों को प्रिय होता है; उसे केवल बुरे लोग नापसंद करते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पूज्य असाजी और पुनाबासुका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य असाजी और पुनाबसका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

हमें बताया गया है कि ये भिक्षु मुख्य शिष्यों के दो शिष्य थे, लेकिन इसके बावजूद वे निर्लज्ज और दुष्ट थे। जब वे अपने कई भिक्षुओं के दल के साथ कितागिरि में रह रहे थे, तब उन्होंने फूलदार वृक्ष लगाए और लगवाए, और इसके अलावा वे हर प्रकार के दुराचार में लिप्त थे। उन्होंने घरों में धावा बोला और वहीं से अपने जीवनयापन के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त की। उन्होंने मठ को उन भले भिक्षुओं के लिए निर्जन बना दिया।

उनके कार्यों के बारे में सुनकर बुद्ध ने उन्हें संघ से निष्कासित करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने अपने दो प्रमुख शिष्यों और उनके अनुयायियों को बुलाया और उनसे कहा, “जो तुम्हारे आदेशों का पालन नहीं करते, उन्हें संघ से निष्कासित कर दो, और जो आज्ञाकारी हैं, उन्हें उपदेश और शिक्षा दो। उपदेश और शिक्षा देने वाला बुद्धिहीन लोगों द्वारा घृणा किया जाता है, परन्तु बुद्धिमानों द्वारा प्रेम और सम्मान किया जाता है।” और फिर उन्होंने उन्हें संघ में शामिल करके धम्म का उपदेश दिया।

सारिपुत्त और मोग्गलाना वहाँ गए और उन भिक्षुओं को उपदेश और शिक्षा दी। उनमें से कुछ ने पूज्य भिक्षुओं के उपदेशों को स्वीकार कर अपने व्यवहार में सुधार किया, कुछ गृहस्थ जीवन में लौट आए जबकि कुछ को संघ से निष्कासित कर दिया गया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 77)

ovadeyya anusāseyya asabbhā ca nivāraye

तो हि सातं पियो होति असतं अप्पियो होति

ओवादेय्य : (यदि कोई अच्छा मित्र) निंदा करता है; अनुसासेय्या : चेतावनी देता है; असभा च : असामाजिक कार्यों से बचाता है; निवाराये : रक्षा करता है; सो हि : वह अच्छा मित्र; सतं [ सत ]: गुणी लोगों के लिए; पियो होति : आकर्षक है; असतं [ असत ]: दुष्ट लोगों के लिए; अप्पियो होति : घृणित है

वह बुद्धिमान और नेक व्यक्ति जो फटकार लगाता है, चेतावनी देता है और किसी व्यक्ति को असामाजिक व्यवहार में पड़ने से रोकता है, वह गुणी व्यक्तियों द्वारा पसंद किया जाता है और दुष्ट व्यक्तियों द्वारा नापसंद किया जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 77)

ओवादेय्या , अनुसासेय्या : निंदा और चेतावनी। कुछ टीकाओं में, ओवाद और अनुसाना के बीच अंतर स्पष्ट रूप से बताया गया है। 'निंदा' ( ओवाद ) को किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए कार्यों के आधार पर अच्छे और बुरे के बारे में बताने के रूप में वर्णित किया गया है। किसी व्यक्ति को यह बताना कि भविष्य में ऐसा या वैसा करने पर क्या परिणाम हो सकते हैं, उसे ' अनुसाना ' (चेतावनी) कहा जाता है। 'निंदा' ( ओवाद ) तब की जाती है जब व्यक्ति निंदा करने वाले के सामने शारीरिक रूप से उपस्थित होता है। लेकिन, यदि दोनों व्यक्ति शारीरिक रूप से उपस्थित नहीं हैं, और एक व्यक्ति का संदेश दूसरे तक पहुँचाया जाता है, तो उसे 'चेतावनी' ( अनुसाना ) कहा जाता है। फिर से, केवल एक बार कहना ' ओवाद ' (निंदा) है। बार-बार कहना ' अनुसाना' (चेतावनी) है।

असभ्भा च निवारये : असामाजिक कार्यों से रोकता है; असामाजिक कार्यों से विरक्त करता है। यह कुकर्मों से विरक्त रहना है: हत्या, चोरी और यौन दुराचार। यह सभी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव पैदा करता है; केवल प्रदत्त वस्तुओं को ग्रहण करना; और शुद्ध एवं पवित्र जीवन जीना सिखाता है। ऐसे नैतिक आचरण से व्यक्ति दूसरों को निर्भीकता, सुरक्षा और शांति प्रदान करता है। समस्त नैतिकता, या उत्तम जीवन, प्रेम और करुणा पर आधारित है। इन दो प्रमुख गुणों के बिना व्यक्ति को नैतिक पुरुष नहीं कहा जा सकता। प्रेम और

करुणा से रहित मौखिक और शारीरिक कर्मों को अच्छा और हितकारी नहीं माना जा सकता। निःसंदेह, प्रेम और निर्मल अंतरात्मा के साथ कोई हत्या, चोरी आदि नहीं कर सकता, बल्कि यह तभी संभव है जब व्यक्ति क्रूरता, लोभ और अज्ञानता के विचारों से प्रेरित हो।
मानसिक अनुशासन का एक निश्चित स्तर बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि अनियंत्रित मन हमेशा शब्दों या कर्मों से बुराई करने के बहाने ढूंढता है। 'जब विचार अनियंत्रित होते हैं, तो शारीरिक क्रिया भी अनियंत्रित हो जाती है; यही बात वाणी और मानसिक क्रिया पर भी लागू होती है।'
आचरण से चरित्र का निर्माण होता है। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को अच्छे चरित्र का उपहार नहीं दे सकता। प्रत्येक व्यक्ति को चिंतन, मनन, सावधानी, प्रयास, जागरूकता और आत्मनिरीक्षण के द्वारा इसे विकसित करना पड़ता है। जिस प्रकार किसी कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है, उसी प्रकार अच्छे आचरण की कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए, जिस पर एक अच्छा और मजबूत चरित्र निर्भर करता है, परिश्रम और सतर्कता आवश्यक है।
चरित्र निर्माण में सबसे पहली आवश्यक चीज है आत्म-संयम का अभ्यास। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति इंद्रिय सुखों में लिप्त हो जाता है, तो उसका अच्छा सामाजिक आचरण और चरित्र नष्ट हो जाता है — इस बात पर धर्म और मनोविज्ञान के सभी शिक्षक सहमत हैं। जो लोग सुखों में डूबे रहते हैं और आनंद लेने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होते हैं, उन्हें तब तक उचित शिक्षा नहीं मिल सकती जब तक वे अपनी गलतियों को स्वीकार करना न सीख लें।
उच्च नैतिक आचरण के विषय में बुद्ध ने इस प्रकार सलाह दी:
“बुराई को त्यागा जा सकता है। यदि बुराई को त्यागना संभव न होता, तो मैं ऐसा न कहता। चूंकि ऐसा किया जा सकता है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ: 'बुराई को त्याग दो।'”
बुद्ध आगे कहते हैं,
“अच्छाई को विकसित किया जा सकता है। यदि अच्छाई को विकसित करना संभव न होता, तो मैं ऐसा न कहता। चूंकि यह संभव है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ: 'अच्छाई को विकसित करो।'”
एक अच्छे सलाहकार को इसी प्रकार का मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए ताकि व्यक्ति अस्वीकार्य, अनैतिक और असामाजिक ( असभा ) व्यवहार से दूर रहे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 78

———————————————————————

(धम्मपद 77) <<<< पिछला || धम्मपद 78 || अगला >>>> (धम्मपद 79)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 78 - चन्नत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na bhaje papake mitte
na bhaje purisadhame
भजेथा मिट्टे कल्याणे
bhajetha purisuttame.

---

श्लोक 78 : बुरे मित्रों और नीच लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। अच्छे मित्रों और नेक लोगों की संगति करनी चाहिए।

---

1. नमयंति: किसी व्यक्ति के हृदय या इच्छा को झुकाना। तीर बनाने वालों के मामले में, तीरों को सीधा करना; बढ़ई के मामले में, लकड़ी को काटकर, चीरकर और चिकना करके लोगों की ज़रूरतों के अनुसार वस्तुएँ बनाना।

---

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) चन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (78) कहा।

चन्ना वह सेवक था जो राजकुमार सिद्धार्थ के साथ तब गया था जब उन्होंने संसार त्याग कर घोड़े पर सवार होकर महल छोड़ा था। जब राजकुमार ने बुद्धत्व प्राप्त किया, तो चन्ना भी भिक्षु बन गया। भिक्षु बनने के बाद, बुद्ध से घनिष्ठ संबंध होने के कारण वह बहुत अहंकारी और अभिमानी हो गया था। चन्ना अक्सर कहता था, "मैं अपने गुरु के साथ तब गया था जब वे महल छोड़कर वन गए थे। उस समय मैं ही अपने गुरु का एकमात्र साथी था और कोई और नहीं था। लेकिन अब, सारिपुत्त और मोग्गलाना कह रहे हैं, 'हम प्रमुख शिष्य हैं,' और इतरा रहे हैं।"

जब बुद्ध ने उसे बुलवाया और उसके व्यवहार के लिए फटकारा, तो वह चुप रहा और दोनों मुख्य शिष्यों को अपशब्द कहना और उनका उपहास करना जारी रखा। इसलिए बुद्ध ने उसे तीन बार बुलवाया और फटकारा; फिर भी वह नहीं बदला। तब बुद्ध ने फिर से चन्ना को बुलवाया और कहा, "चन्ना, ये दोनों श्रेष्ठ भिक्षु तुम्हारे अच्छे मित्र हैं; तुम्हें इनके साथ संगति करनी चाहिए और इनके साथ अच्छे संबंध रखने चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 78 : बुरे मित्रों और नीच लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। अच्छे मित्रों और नेक लोगों की संगति करनी चाहिए।

---

बुद्ध द्वारा बार-बार चेतावनी और सलाह दिए जाने के बावजूद, चन्ना ने अपनी मनमानी की और भिक्षुओं को डांटना-पीटना और गाली देना जारी रखा। यह जानकर बुद्ध ने कहा कि चन्ना उनके जीवनकाल में नहीं बदलेगा, लेकिन उनके परनिर्वाण के बाद वह अवश्य बदल जाएगा। अपने परनिर्वाण की पूर्व संध्या पर, बुद्ध ने थेरा आनंद को अपने पास बुलाया और उन्हें चन्ना को ब्रह्मदंड देने का निर्देश दिया; अर्थात् भिक्षुओं को उसे पूरी तरह से अनदेखा करना था और उससे कोई वास्ता नहीं रखना था।

बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद, चन्ना ने थेरा आनंद से दंड के बारे में जानकर अपने किए पर गहरा पश्चाताप किया और तीन बार बेहोश हो गए। फिर उन्होंने भिक्षुओं के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और क्षमा मांगी। उसी क्षण से उनके व्यवहार और दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। उन्होंने ध्यान साधना में भी भिक्षुओं के निर्देशों का पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय चन्ना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य चन्ना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

चन्ना वह सेवक था जो राजकुमार सिद्धार्थ के साथ तब गया था जब उन्होंने संसार त्याग कर घोड़े पर सवार होकर महल छोड़ा था। जब राजकुमार ने बुद्धत्व प्राप्त किया, तो चन्ना भी भिक्षु बन गया। भिक्षु बनने के बाद, बुद्ध के साथ अपने घनिष्ठ संबंध के कारण वह बहुत अहंकारी और अभिमानी हो गया था। चन्ना अक्सर कहता था, "मैं अपने गुरु के साथ तब गया था जब वे महल छोड़कर वन गए थे। उस समय मैं ही अपने गुरु का एकमात्र साथी था और कोई और नहीं था। लेकिन अब, सारिपुत्त और मोग्गलाना कह रहे हैं, 'हम प्रमुख शिष्य हैं,' और इतरा रहे हैं।"

जब बुद्ध ने उसे बुलवाया और उसके व्यवहार के लिए फटकारा, तो वह चुप रहा और अपने दोनों प्रमुख शिष्यों को गाली-गलौज और ताना मारना जारी रखा। इसलिए बुद्ध ने उसे तीन बार बुलवाया और फटकारा; फिर भी वह नहीं बदला। तब बुद्ध ने फिर से चन्ना को बुलवाया और कहा, "चन्ना, ये दोनों श्रेष्ठ भिक्षु तुम्हारे अच्छे मित्र हैं; तुम्हें इनके साथ संगति करनी चाहिए और इनके साथ अच्छे संबंध रखने चाहिए।"

बुद्ध द्वारा बार-बार चेतावनी और सलाह दिए जाने के बावजूद, चन्ना ने अपनी मनमानी की और भिक्षुओं को डांटना और गाली देना जारी रखा। यह जानकर बुद्ध ने कहा कि चन्ना उनके जीवनकाल में नहीं बदलेगा, लेकिन उनके निधन ( परिनिर्वाण ) के बाद वह अवश्य बदल जाएगा। उनके परिनिर्वाण की पूर्व संध्या पर , बुद्ध ने पूज्य आनंद को अपने पास बुलाया और उन्हें ब्रह्म-दंड देने का निर्देश दिया।

चन्ना को ( ब्रह्मदण्ड ) दिया गया; अर्थात् भिक्षुओं ने उसे पूरी तरह से अनदेखा कर दिया और उससे कोई संबंध नहीं रखा। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद , चन्ना को भिक्षुओं से दंड के बारे में पता चला, तो उसे अपने किए पर गहरा पश्चाताप हुआ और वह तीन बार बेहोश हो गया। फिर उसने भिक्षुओं के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और क्षमा मांगी। उस क्षण से, उसने अपने तौर-तरीके और दृष्टिकोण बदल दिए। उसने ध्यान साधना में भी भिक्षुओं के निर्देशों का पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 78)

पापाके मिटे ना भजे . पुरिसाधमे न भजे

कलायने मित्ते भजेथा . पुरीसुत्तमे भजेथा

पापके मित्ते : बुरे मित्र; न भजे : संगति न करें; पुरिसाधमे : दुष्ट दुष्ट लोग; न भजे : संगति न रखें; कलायने मित्ते : अच्छे मित्र; भजेत : संगति रखें; पुरिसुत्तमे : श्रेष्ठ कुलीन लोग; भजेत : संगति रखें

बुरे आचरण वाले लोगों से संगति न रखें। दुष्ट, नीच और बुरे लोगों की संगति से दूर रहें। योग्य मित्रों के साथ रहें। श्रेष्ठ गुणों और सद्‌गुणों वाले, नेक व्यक्तियों की संगति में रहें जो आपको उत्थान प्रदान कर सकें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 78)

मित्र : दोस्त। बौद्ध साहित्य में मित्र की अवधारणा का व्यापक विश्लेषण किया गया है। टीका में सात प्रकार के मित्रों का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं:

पाण सखा : वे लोग जो केवल शराबखानों में ही दोस्ताना व्यवहार करते हैं;

sammiya sammiyo [ sammiya ]: वे लोग जो आपसे मिलने पर ही मित्रवत व्यवहार करते हैं;

atthesu jātesu : वे लोग जो केवल तभी मित्रवत होते हैं जब कोई काम हाथ में हो;

उपकारक : वे मित्र जो वास्तव में जरूरत के समय मित्र होते हैं;

समान सुख दुःख : जो हर समय आपके साथ रहते हैं, चाहे आप बीमार हों या स्वस्थ;

अत्थक्कयी : वे अच्छे मित्र जो आपको प्रगति के मार्ग पर ले जाते हैं, बुराई से रोकते हैं;

अनुकम्पाका : वे अच्छे मित्र होते हैं जो आपकी पीड़ा में दुखी होते हैं, लेकिन आपकी सफलता पर अत्यंत प्रसन्न होते हैं। वे दूसरों को आपकी कमियां निकालने से रोकते हैं और आपकी प्रशंसा करने वालों की प्रशंसा करते हैं।

एक अच्छा मित्र कल्याण मित्र होता है। पाप मित्र वह होता है जो आपको बुराई की ओर ले जाता है।

सिगालोवादा सूत्र (गृहस्थ सिगाल को सलाह) में आठ (8) प्रकार के मित्रों का वर्णन है। इनमें से चार (4) अच्छे मित्र हैं। वे हैं

उपकारक मित्र — एक ऐसा मित्र जो जरूरत के समय आपकी मदद करता है;

समान सुख दुख मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपके लिए अपना प्राण भी देने को तैयार हो;

अत्थाक्खायी मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपको बुराई से बचाता है;

अनुकम्पाका मित्र — एक ऐसा मित्र जो आपकी प्रगति देखकर प्रसन्न होता है और आपकी प्रशंसा करने वालों की सराहना करता है।

चार (4) बुरे दोस्त भी हैं। वे हैं

अन्नादत्तुहारा — एक ऐसा मित्र जो आपसे लाभ कमाने के लिए उत्सुक हो;

वाचीपरमा — एक ऐसा मित्र जो केवल शब्दों में ही सहायता करता है

अनुप्पियाभाणी — एक ऐसी मित्र जो आपके अच्छे और बुरे दोनों कार्यों को स्वीकार करती है।

अपाय सहाय — एक ऐसा मित्र जो आपको मादक पेय पदार्थों के सेवन जैसे बुरे कृत्यों की ओर ले जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 79

———————————————————————

(धम्मपद 78) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 79 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 80)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 79 - महाकप्पिनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
धम्मपिति सुखम सेती
vippasannena cetasa
ariyappavedite dhamme
sada ramati pandito.

---

श्लोक 79 : जो धम्म (सत्य/धर्म) का पान करता है, वह शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है; ज्ञानी व्यक्ति हमेशा आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम्म (बोधिपक्खीय धम्म) में आनंदित रहता है।

---

थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) महाकप्पिना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकप्पिना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (79) कहा।
महाकप्पिना कुक्कुतावती के राजा थे। उनकी रानी का नाम अनोजा था; उनके साथ एक हजार मंत्री भी थे जो देश का शासन चलाते थे। एक दिन राजा अपने एक हजार मंत्रियों के साथ उद्यान में निकले। वहाँ उनकी मुलाकात सावत्थी के कुछ व्यापारियों से हुई। इन व्यापारियों से बुद्ध, धम्म और संघ के बारे में जानकर राजा और उनके मंत्री तुरंत सावत्थी के लिए रवाना हो गए।
उस दिन जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन हुआ कि महाकप्पिन और उनके मंत्री सावत्थी की ओर आ रहे हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि वे अर्हत पद के पात्र हैं। बुद्ध उनसे मिलने के लिए सावत्थी से एक सौ बीस योजन दूर एक स्थान पर गए। वहाँ वे चंदभागा नदी के किनारे एक बरगद के वृक्ष के नीचे उनकी प्रतीक्षा करने लगे। राजा महाकप्पिन और उनके मंत्री उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बुद्ध उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने बुद्ध को अपने शरीर से निकलती हुई छह रंगों की किरणों के साथ देखा, तो वे बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद राजा और उनके सभी मंत्रियों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया और बुद्ध से संघ में शामिल होने की अनुमति माँगी। बुद्ध ने उनके अतीत पर विचार किया और पाया कि उन्होंने पिछले जन्म में पीले वस्त्रों का अर्पण किया था, तो उन्होंने उनसे कहा, "एहि भिक्खु", और वे सभी भिक्षु बन गए।
इसी बीच, रानी अनोजा को राजा के श्रावस्ती प्रस्थान का पता चला, तो उन्होंने एक हजार मंत्रियों की पत्नियों को बुलवाया और उनके साथ राजा के पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे भी उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ बुद्ध विराजमान थे और बुद्ध को छह रंगों के प्रभामंडल से युक्त देखकर उन्हें प्रणाम किया। इस दौरान, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से राजा और उनके मंत्रियों को अदृश्य कर दिया था ताकि उनकी पत्नियाँ उन्हें न देख सकें। इसलिए रानी ने राजा और उनके मंत्रियों के बारे में पूछा। बुद्ध ने रानी और उनके साथियों से कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा और बताया कि राजा शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ आ जाएँगे। फिर बुद्ध ने एक और प्रवचन दिया; इस प्रवचन के अंत में राजा और उनके मंत्रियों को अर्हतत्व प्राप्त हुआ; रानी और मंत्रियों की पत्नियों को सोतापत्ति फल प्राप्त हुआ। उसी क्षण, रानी और उनके साथियों ने नवदीक्षित भिक्षुओं को देखा और उन्हें अपने पूर्व पतियों के रूप में पहचान लिया।
उन स्त्रियों ने बुद्ध से भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने की अनुमति भी मांगी; इसलिए उन्हें श्रावस्ती जाने का निर्देश दिया गया। वहां उन्होंने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद बुद्ध एक हजार भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए।
जेतवन मठ में, थेरा महाकप्पिना रात या दिन में विश्राम करते समय अक्सर कहते थे, "ओह, कितना आनंद है!" (अहो सुखम)। भिक्षुओं ने उन्हें दिन में कई बार ऐसा कहते हुए सुनकर बुद्ध को इसके बारे में बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र कप्पिना ने धम्म का स्वाद चखकर शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत किया है; वह निर्वाण के संदर्भ में बार-बार ये हर्ष के शब्द कह रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 79 : जो धम्म (सत्य/धर्म) का पान करता है, वह शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है; ज्ञानी व्यक्ति हमेशा आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम्म (बोधिपक्खीय धम्म) में आनंदित रहता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महाकप्पिना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकप्पिना के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

महाकप्पिन कुक्कुटवती के राजा थे। उनकी रानी का नाम अनोजा था; उनके पास एक हजार मंत्री थे जो देश पर शासन करने में उनकी सहायता करते थे। एक दिन, राजा अपने मंत्रियों के साथ उद्यान में थे। वहाँ उनकी मुलाकात सावत्थी के कुछ व्यापारियों से हुई। इन व्यापारियों से त्रिरत्न के बारे में जानकर राजा और उनके मंत्री तुरंत सावत्थी के लिए रवाना हो गए।

उस दिन, जब बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन हुआ कि महाकप्पिन और उनके मंत्री सावत्थी की ओर आ रहे हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि वे अर्हतत्व के पात्र हैं। बुद्ध उनसे मिलने के लिए सावत्थी से एक सौ बीस योजन दूर एक स्थान पर गए। वहाँ वे चंदभागा नदी के किनारे एक बरगद के वृक्ष के नीचे उनकी प्रतीक्षा करने लगे। राजा महाकप्पिन और उनके मंत्री उस स्थान पर पहुँचे जहाँ बुद्ध उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने बुद्ध को अपने शरीर से निकलती हुई छह रंगों की किरणों के साथ देखा, तो वे बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया। प्रवचन सुनने के बाद राजा और उनके सभी मंत्रियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया और उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने की अनुमति माँगी। बुद्ध ने उनके अतीत पर विचार करते हुए पाया कि उन्होंने पिछले जन्म में पीले वस्त्रों का अर्पण किया था और उनसे कहा, "हे भिक्षु" (जिसका अर्थ है "यहाँ आओ भिक्षु"), और वे सभी भिक्षु बन गए।

इसी बीच, रानी अनोजा को राजा के सावत्थी जाने का पता चला, तो उन्होंने एक हजार मंत्रियों की पत्नियों को बुलवाया और उनके साथ राजा के पीछे-पीछे चल पड़ीं। वे भी उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ बुद्ध विराजमान थे और बुद्ध को छह रंगों के प्रभामंडल के साथ देखकर उन्हें प्रणाम किया। इस दौरान, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से राजा और उनके मंत्रियों को अदृश्य कर दिया था ताकि उनकी पत्नियाँ उन्हें न देख सकें। इसलिए रानी ने राजा और उनके मंत्रियों के बारे में पूछा। बुद्ध ने रानी और उनके साथियों से कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा और बताया कि राजा शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ आ जाएँगे। फिर बुद्ध ने एक और प्रवचन दिया, जिसके अंत में राजा और उनके मंत्रियों को अर्हतत्व प्राप्त हुआ और रानी और मंत्रियों की पत्नियों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ। उसी क्षण, रानी और उनके साथियों ने नए भिक्षुओं को देखा और उन्हें अपने पूर्व पतियों के रूप में पहचान लिया। उन महिलाओं ने बुद्ध से संघ में प्रवेश करने की अनुमति भी माँगी, इसलिए उन्हें सावत्थी जाने का निर्देश दिया गया। वहाँ उन्होंने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हो गया। इसके बाद बुद्ध एक हजार भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए।

जेतवन मठ में, भिक्षु महाकप्पिना रात या दिन में विश्राम करते समय अक्सर कहते थे, “ओह, कितना आनंद!” (“ अहो सुखम !”)। भिक्षुओं ने उन्हें दिन में कई बार ऐसा कहते हुए सुनकर बुद्ध को इसके बारे में बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “मेरे पुत्र कप्पिना ने धम्म का स्वाद चख लिया है और वे शांत मन से सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; वे निर्वाण के संदर्भ में बार-बार ये उल्लासपूर्ण शब्द कह रहे हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 79)

धम्मपिति विप्पसन्नेन चेतसा सुखं सेति

पण्डितो अरिअप्पावेदिते धम्मे सदा रमति

धम्मपीति : वे जो वास्तव में “शिक्षा” में आनंदित होते हैं; विप्पसन्नेन चेतसा : मन की स्पष्टता के साथ; सुखं सेति : सुखी जीवन व्यतीत करते हैं; पंडितो [ पंडित ]: ज्ञानी व्यक्ति; अरियाप्पवेदिते : “परमात्माओं” द्वारा अनुभव किया गया; धम्मे : वास्तविकता में; सदा रमति : सदा आनंदित रहते हैं

जो व्यक्ति “शिक्षा” में आनंदित रहता है, वह शुद्ध मन से सुखी जीवन व्यतीत करता है। ज्ञानी लोग सदा “दिव्यजनों” ( अरिया ) के अनुभव का आनंद लेते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री

धम्मपीति सुखं सेति : जो धम्म के सार को आत्मसात करता है, वह सुखी जीवन जीता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करते हैं और उन्हें व्यवहारिक रूप से अपनाते हैं, वे सुखी जीवन जीते हैं। ' पीति' शब्द का अर्थ है ग्रहण करना। लेकिन यहाँ ग्रहण करने का तात्पर्य है शिक्षा को अपने जीवन में समाहित करना।

आर्य , जिसका अर्थ है 'जो वासनाओं से दूर हो', मूल रूप से एक नस्लीय शब्द था। बौद्ध धर्म में यह चरित्र की श्रेष्ठता को दर्शाता है और इसे हमेशा बुद्धों और अरहंतों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 80

---

(धम्मपद 79) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 80 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 81)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 80 - पण्डितसामनेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Udakam hi nayanti nettika
usukara namayanti tejanam
darum namayanti tacchaka
attanam damayanti pandita.

---

श्लोक 80 : किसान (शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता) पानी को चैनल करते हैं; तीर बनाने वाले तीर को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान स्वयं को वश में करते हैं।

---

समनेरा (वरिष्ठ भिक्षु) पंडित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा पंडित के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (80) कहा।

पंडित श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति के छोटे पुत्र थे। वे सात वर्ष की आयु में समनेर बन गए। समनेर बनने के आठवें दिन, जब वे थेरा सारिपुत्त के साथ भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्होंने कुछ किसानों को अपने खेतों में पानी डालते देखा और थेरा से पूछा, "क्या निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है?" थेरा ने उत्तर दिया, "हाँ, इसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है।" आगे बढ़ते हुए, समनेर ने कुछ तीर बनाने वालों को आग से अपने तीर गर्म करते और उन्हें सीधा करते देखा। आगे चलकर, उन्होंने कुछ बढ़ईयों को लकड़ी काटते, चीरते और चिकना करते देखा, जिससे वे गाड़ी के पहिए जैसी चीजें बना रहे थे। तब उन्होंने सोचा, "यदि निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है, यदि निर्जीव टेढ़े बांस को सीधा किया जा सकता है, और यदि निर्जीव लकड़ी से उपयोगी वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, तो मैं, जो सजीव हूँ, अपने मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास क्यों नहीं कर सकता?"

उसी क्षण उन्होंने थेरा से अनुमति मांगी और मठ में अपने कमरे में लौट आए। वहां उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से शरीर का चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास किया। सक्का और देवों (देवदूतों) ने भी मठ और उसके परिसर को शांत और स्थिर रखकर उनके ध्यान में सहायता की। भोजन से पहले समनेरा पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया।

उस समय थेरा सारिपुत्त समनेरा के लिए भोजन लेकर आए थे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि समनेरा पंडित ने अनागामी साधना प्राप्त कर ली है और यह भी कि यदि वे ध्यान का अभ्यास जारी रखें तो शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे। अतः बुद्ध ने सारिपुत्त को उस कमरे में प्रवेश करने से रोकने का निर्णय लिया जहाँ समनेरा थे। बुद्ध द्वार पर गए और सारिपुत्त से कुछ प्रश्न पूछकर उन्हें व्यस्त रखा। बातचीत के दौरान ही समनेरा ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, समनेरा ने दीक्षा लेने के आठवें दिन अर्हतत्व प्राप्त किया।

इस संदर्भ में बुद्ध ने मठ के भिक्षुओं से कहा, "जब कोई लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देव (देवदूत) भी उसकी रक्षा करते हैं और पहरा देते हैं; मैंने स्वयं थेरा सारिपुत्त को द्वार पर इसलिए लगाया है ताकि समनेरा पंडित को कोई बाधा न हो। समनेरा पंडित किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, तीर बनाने वालों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को वश में कर धम्म का अभ्यास करते हैं; वे अब अरहत बन गए हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 80 : किसान (शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता) पानी को चैनल करते हैं; तीर बनाने वाले तीर को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान स्वयं को वश में करते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवोदित भिक्षु पंडित की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नवोदित भिक्षु पंडित के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पंडित, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के छोटे पुत्र थे। सात वर्ष की आयु में उन्होंने संन्यासी दीक्षा ली। संन्यासी बनने के आठवें दिन, जब वे पूज्य सारिपुत्त के साथ भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्होंने कुछ किसानों को अपने खेतों में पानी डालते देखा और पूज्य सारिपुत्त से पूछा, "क्या निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है?" पूज्य सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "हाँ, इसे इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है।" आगे बढ़ते हुए, पंडित ने कुछ बाणकारों को आग से बाण गर्म करते और उन्हें सीधा करते देखा। कुछ और आगे जाकर, उन्होंने कुछ बढ़ईयों को लकड़ी काटकर, चीरकर और चिकना करके गाड़ी के पहिए जैसी चीजें बनाते देखा। तब उन्होंने मनन किया, "यदि निर्जीव जल को इच्छानुसार कहीं भी ले जाया जा सकता है, यदि निर्जीव टेढ़े बांस को सीधा किया जा सकता है, और यदि निर्जीव लकड़ी से उपयोगी वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, तो मैं, जो सजीव हूँ, अपने मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास क्यों नहीं कर सकता?"

उसी क्षण उन्होंने पूज्य गुरु से अनुमति मांगी और मठ में अपने कमरे में लौट आए। वहां उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से शरीर का चिंतन किया। सक्का और देवताओं ने भी मठ और उसके परिसर को शांत और स्थिर रखकर उनकी ध्यान साधना में सहायता की। दोपहर के भोजन से पहले ही नवोदित भिक्षु पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया।

उस समय पूज्य सारिपुत्त नवोदित भिक्षु के लिए भोजन लेकर आए थे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि नवोदित भिक्षु पंडित ने अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया है और यह भी कि यदि वे निरंतर ध्यान करते रहें तो शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे। अतः बुद्ध ने सारिपुत्त को उस कमरे में प्रवेश करने से रोकने का निश्चय किया जहाँ नवोदित भिक्षु थे। बुद्ध द्वार पर गए और सारिपुत्त से कुछ प्रश्न पूछकर उन्हें व्यस्त रखा। बातचीत के दौरान ही नवोदित भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, नवोदित भिक्षु ने नवोदित होने के आठवें दिन अर्हतत्व प्राप्त किया।

इस संदर्भ में बुद्ध ने मठ के भिक्षुओं से कहा, "जब कोई लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देवता भी उसकी रक्षा करते हैं और पहरा देते हैं; मैंने स्वयं पूज्य सारिपुत्त को द्वार पर इसलिए तैनात रखा है ताकि नवोदित भिक्षु पंडित को कोई बाधा न पहुंचे। नवोदित भिक्षु किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, तीरंदाजों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को वश में कर धम्म का अभ्यास करता है; वह अब अरहत बन गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 80)

नेत्तिका हि उदकं नयन्ति उसुकारा तेजानां नमयन्ति

तच्चका दारुं नामयंती पंडिता अत्तानं दमयंती

nettikā : सिंचाई करने वाले; hi : निश्चित रूप से; udakaṃ [ udaka ]: पानी; nayanti : ले जाना (जहाँ भी वे चाहें); usukārā : तीर बनाने वाले; tejanaṃ [ tejana ]: तीर के बाण; namayanti : आकार देना और मोड़ना; tacchakā : बढ़ई; dāruṃ [ dāru ]: लकड़ी ; namayanti : आकार देना और रूप देना; paṇḍitā : ज्ञानी; attānaṃ [ attāna ]: अपने मन (स्वयं) को नियंत्रित करना; damayanti : वश में करना और रोकना

जल प्रबंधन करने वाला किसान जल को इच्छित स्थान पर निर्देशित करने में कुशल होता है। तीरंदाज बड़ी कुशलता से लकड़ी के टुकड़े पर काम करके एक सीधा तीर का डंडा बनाता है। बढ़ई लकड़ी का एक टुकड़ा चुनता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे जो चाहे बनाता है। ठीक इसी प्रकार, बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन पर कार्य करते हैं और उसे अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रित करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 80)

नेत्तिका , उसुकारा , तच्छका : सिंचाई करने वाले, तीर बनाने वाले, बढ़ई। इस श्लोक में विशेषज्ञों की एक पूरी श्रृंखला का उल्लेख किया गया है। ये सभी विभिन्न कार्यों में निपुण हैं। शिल्पकारों की ये तीनों श्रेणियां निर्जीव वस्तुओं को नियंत्रित और वश में करती हैं: एक अपनी इच्छा अनुसार पानी को निर्देशित करता है; तीर बनाने वाला लकड़ी को तेज गति से उड़ने वाले तीर का आकार देता है और बढ़ई अपनी पसंद की लकड़ी से मनचाही वस्तुएं बनाता है। लेकिन सत्य की खोज करने वाला अपने मन को आकार देता है, जो उपरोक्त तीनों से कहीं अधिक कठिन है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 81

---

(धम्मपद 80) <<<< पिछला ll धम्मपद 81 ll अगला >>>> (धम्मपद 82)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 81 - लकुंडकभद्दियत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Selo yatha ekaghano
vatena na samirati
evam nindapasamsasu
na saminjanti pandita

---

श्लोक 81 : जैसे चट्टान का पहाड़ हवा से अविचलित रहता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

---

थेरा लकुंदका भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा भद्दिया के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (81) कहा।

भद्दिया जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं में से एक थे। अपने छोटे कद के कारण अन्य भिक्षु उन्हें लकुंदक (बौना) कहकर पुकारते थे। लकुंदक भद्दिया बहुत ही सौम्य स्वभाव के थे; यहाँ तक कि युवा भिक्षु भी अक्सर उनकी नाक या कान खींचकर या उनके सिर पर थपथपाकर उन्हें चिढ़ाते थे। वे अक्सर मज़ाक में कहते थे, "चाचा जी, आप कैसे हैं? क्या आप खुश हैं या यहाँ भिक्षु जीवन से ऊब गए हैं?", इत्यादि। लकुंदक भद्दिया कभी क्रोधित नहीं होते थे, न ही उन्हें अपशब्द कहते थे; वास्तव में, वे अपने मन में भी उनसे क्रोधित नहीं होते थे।

जब बुद्ध को लकुंदक भद्दिया के धैर्य के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "अरहत कभी क्रोधित नहीं होते, उन्हें कठोर शब्दों में बोलने या दूसरों के बारे में बुरा सोचने की इच्छा नहीं होती। वे ठोस चट्टान के पर्वत के समान हैं; जैसे ठोस चट्टान अविचलित रहती है, वैसे ही अरहत निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 81 : जैसे चट्टान का पहाड़ हवा से अविचलित रहता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय लकुंटक भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

भद्दिया जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं में से एक थे। अपने छोटे कद के कारण अन्य भिक्षु उन्हें लकुंटक (बौना) कहकर पुकारते थे। लकुंटक भद्दिया बहुत ही सौम्य स्वभाव के थे; यहाँ तक कि युवा भिक्षु भी अक्सर उनकी नाक या कान खींचकर या उनके सिर पर थपथपाकर उन्हें चिढ़ाते थे। वे अक्सर मजाक में कहते थे, “चाचा जी, आप कैसे हैं? क्या आप खुश हैं या यहाँ भिक्षु जीवन से ऊब गए हैं?” लकुंटक भद्दिया कभी क्रोधित नहीं होते थे, न ही उन्हें अपशब्द कहते थे; वास्तव में, वे मन ही मन उनसे क्रोधित नहीं होते थे।

जब बुद्ध को लकुंटक भद्दिया के धैर्य के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, “एक अर्हत कभी क्रोधित नहीं होता, उसे कठोर शब्दों में बोलने या दूसरों के बारे में बुरा सोचने की इच्छा नहीं होती। वह ठोस चट्टान के पर्वत के समान है; जैसे ठोस चट्टान अविचलित रहती है, वैसे ही अर्हत निंदा या प्रशंसा से विचलित नहीं होता।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 81)

यथा एकघनो सेलो वतेन न समिरति
एवं पंडिता निंदा पसांससु
यथा : ठीक उसी प्रकार; एकघनो [ एकघना ]: ठोस; सेलो : चट्टान; वातेन : हवा से; न समीरति : अविचलित; एवं : उसी प्रकार; पंडिता : ज्ञानी; निंदा पसंसासु : प्रशंसा और निंदा दोनों में; न समिंजन्ति : अविचलित रहते हैं
बुद्धिमान व्यक्ति प्रशंसा और अपमान दोनों से अविचलित और स्थिर रहते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति जीवन के सभी उतार-चढ़ावों में अडिग रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे ठोस चट्टान हवा के झोंकों को भी सहन कर लेती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 81)
निंदा पसंसासु : प्रशंसा और निंदा दोनों में। आम लोग जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित हो जाते हैं। जब कुछ गलत होता है, तो वे उदास हो जाते हैं। जब सब कुछ ठीक होता है, तो वे उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन, बुद्धिमान लोग किसी भी परिस्थिति में अविचलित रहते हैं।
ऐसा कहा जाता है कि आम तौर पर लोगों को आठ प्रकार के उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ता है। पाली भाषा में इनका वर्णन इस प्रकार है:
लाभो अलाभो , अयासो , यशोका ,
(लाभ, हानि, उपेक्षा और ध्यान)
निंदा , पसांस , सुखं , च दुक्खम
अपमान, प्रशंसा, सुख और दुख
Ete aniccā manujesu dhammā
ये अस्थिर मानवीय अनुभव
Asassatī viparinama dhammā
ये जीवन के क्षणिक, परिवर्तनशील उतार-चढ़ाव हैं।
भाग्य के आठ प्रकार होते हैं, अच्छे और बुरे, जो लोगों को प्रभावित करते हैं:
लाभ : लाभ;
अलाभा : हानि;
अयासो [ अयासा ]: उपेक्षा;
यासो ध्यान;
निंदा : अपमान;
पसंसा : प्रशंसा;
सुख : आनंद; और
दु:ख : दर्द।
इन आठों को जीवन के आठ उतार-चढ़ाव ( अठ लोक धम्म ) के रूप में वर्णित किया गया है। आम लोग इन उतार-चढ़ावों से विचलित हो जाते हैं, लेकिन ज्ञानी लोग इनसे अविचलित रहते हैं। ज्ञानी लोग संसार के परिवर्तनशील स्वरूप से अवगत होते हैं; इसके फलस्वरूप वे इससे अविचलित रहते हैं। इस श्लोक में, इस मानसिक स्थिरता की तुलना उस चट्टान की स्थिरता से की गई है जो हवा से भी अविचलित रहती है।
ऐसे उतार-चढ़ावों के बावजूद ज्ञानी व्यक्तियों की जागरूकता और उनका अविचल मन इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:
Eteva ñatvā satimā sumedho
(यह जानकर, ऋषि का मन)
अवेक्खति विपरिनाम धम्म
बदलते अनुभव का बारीकी से अवलोकन करता है
इत्थस्सा धम्म न मर्थेति चित्तं ।
उसका मन सुखद अनुभवों से आकर्षित नहीं होता।
अनित्थतो न पतिघातमेति
जो बात उसे पसंद नहीं आती, उससे उसे घृणा नहीं होती।
(बुद्धिमान व्यक्ति इन उतार-चढ़ावों पर ध्यानपूर्वक विचार करता है और यह समझता है कि ये परिवर्तनशील हैं। उसका मन सौभाग्य से विचलित नहीं होता, न ही दुर्भाग्य से निराश होता है।) यही क्षणभंगुरता का ज्ञान उसे शांत रहने में सहायक होता है।

अरहत लकुंटक भद्दिया पर विशेष टिप्पणी: कद में छोटे होते हुए भी उनकी वाणी अत्यंत मधुर थी। आठ महा अरहतों में उनकी वाणी सर्वोपरि थी। सभी वरदानों में वाणी का वरदान सबसे अनमोल है। उनकी उत्कृष्ट वाणी बुद्ध की वाणी के बाद आती है, जिसकी तुलना हिमालय के कुराविका (भारतीय बुलबुल) नामक पक्षी के मधुर गायन से की जाती है, जो मधुर आवाज वाला पक्षियों का राजा है। उनका छोटा कद, जिसके कारण उन्हें लकुंटक नाम मिला, उनके पिछले कर्मों का परिणाम था।
अरहत लकुंटक भद्दिया की वाणी अत्यंत मूल्यवान थी। भद्दिया सूत्र में बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि कुबड़ा और बदसूरत होने के बावजूद वे अत्यंत प्रतिभाशाली और उच्च कोटि के चरित्र वाले थे। बुद्ध ने अपनी वाणी के कारण लकुंटक भद्दिया को संघ में सर्वोपरि घोषित किया।

उनकी आवाज संगीत से गूंज रही थी।
पुरुषों को धम्म के मार्ग पर लाना,
चिकित्सा द्वारा मन को ठीक करना,
हालांकि वह देखने में बहुत छोटा और कमजोर था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 82

---

(धम्मपद 81) <<<< पिछला ll धम्मपद 82 ll अगला >>>> (धम्मपद 83)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 82 - कनामाता वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathapi rahado gambhiro
vippasanno anavilo
evam dhammani sutvana
vippasidanti pandita.

---

श्लोक 82 : जैसे कोई झील गहरी, निर्मल और शांत होती है, वैसे ही धम्म की शिक्षा सुनने के बाद ज्ञानी लोग शांत हो जाते हैं।

---

कनामाता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने काना की माता कानामाता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (82) कहा।
कनामाता बुद्ध की एक समर्पित गृहस्थ शिष्या थीं। उनकी पुत्री काना का विवाह दूसरे गाँव के एक व्यक्ति से हुआ था। काना कुछ समय से अपनी माँ के घर गई हुई थीं, इसलिए उनके पति ने उन्हें घर वापस आने का संदेश भेजा। उनकी माँ ने उनसे एक दिन और रुकने को कहा क्योंकि वे अपने पति के लिए मिठाई भेजना चाहती थीं। अगले दिन, कनामाता ने मिठाई बनाई, लेकिन जब चार भिक्षु भिक्षा मांगने उनके दरवाजे पर खड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें भी कुछ मिठाई दे दी। उन चारों भिक्षुओं ने अन्य भिक्षुओं को कनामाता के घर की मिठाई के बारे में बताया और वे भी कनामाता के दरवाजे पर खड़े हो गए। बुद्ध और उनके शिष्यों की भक्त होने के नाते, कनामाता ने एक-एक करके आने वाले भिक्षुओं को मिठाई दी। नतीजा यह हुआ कि अंत में काना के लिए कुछ भी नहीं बचा और वह उस दिन घर नहीं गईं। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ; काना की माँ ने मिठाई बनाई, भिक्षु उसके दरवाजे पर खड़े थे, काना ने अपनी मिठाई भिक्षुओं को दे दी, बेटी के लिए घर ले जाने के लिए कुछ भी नहीं बचा, और बेटी घर नहीं गई। तीसरे दिन, तीसरी बार, उसके पति ने उसे संदेश भेजा, जो एक तरह से अल्टीमेटम भी था, जिसमें लिखा था कि अगर वह अगले दिन घर नहीं लौटी, तो वह दूसरी पत्नी ले आएगा। लेकिन

अगले दिन भी काना घर नहीं जा सकी क्योंकि उसकी माँ ने अपनी सारी मिठाई भिक्षुओं को दे दी थी। तब काना के पति ने दूसरी पत्नी ले ली और काना भिक्षुओं के प्रति बहुत कटु हो गई। वह सभी भिक्षुओं को इतना बुरा-भला कहती थी कि भिक्षु कानामाता के घर से दूर रहने लगे।

बुद्ध ने काना के बारे में सुना और कानामाता के घर गए; वहाँ कानामाता ने उन्हें चावल का दलिया दिया। भोजन के बाद, बुद्ध ने काना को बुलवाया और उनसे पूछा, "क्या मेरे भिक्षुओं ने वह लिया जो उन्हें दिया गया था या वह जो उन्हें नहीं दिया गया था?" काना ने उत्तर दिया कि भिक्षुओं ने केवल वही लिया जो उन्हें दिया गया था, और फिर कहा, "वे गलत नहीं थे; केवल मैं ही गलत थी।" इस प्रकार, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध को प्रणाम भी किया। फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया। प्रवचन के अंत में, काना ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।

मठ लौटते समय, बुद्ध की मुलाकात कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) से हुई। जब राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) ने काना और भिक्षुओं के प्रति उसके कठोर रवैये के बारे में सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या वे उसे धम्म का उपदेश दे पाए हैं और उसे सत्य (धम्म) का दर्शन करा पाए हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हाँ, मैंने उसे धम्म का उपदेश दिया है और उसे अगले जन्म में समृद्ध भी बनाया है।" तब राजा ने बुद्ध से वादा किया कि वे काना को इसी जन्म में समृद्ध बना देंगे। राजा ने अपने आदमियों को पालकी के साथ काना को लाने के लिए भेजा। जब वह पहुँची, तो राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, "जो कोई भी मेरी पुत्री काना को आराम से रख सके, वह उसे ले जा सकता है।" मंत्रियों में से एक ने स्वेच्छा से काना को अपनी पुत्री के रूप में गोद लेने की पेशकश की, उसे अपनी सारी संपत्ति दे दी और उससे कहा, "तुम जितना चाहो दान कर सकती हो।" प्रतिदिन, काना नगर के चारों द्वारों पर भिक्षुओं को दान देती थी। जब बुद्ध को काना द्वारा उदारतापूर्वक दान देने के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, काना का जो मन धुंधला और भ्रमित था, मेरे शब्दों से वह स्पष्ट और शांत हो गया।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 82 : जैसे कोई झील गहरी, निर्मल और शांत होती है, वैसे ही धम्म की शिक्षा सुनने के बाद ज्ञानी लोग शांत हो जाते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने काना की माता (कानामाता) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कानामता बुद्ध की एक समर्पित गृहस्थ शिष्या थीं। उनकी पुत्री काना का विवाह दूसरे गाँव के एक पुरुष से हुआ था। काना कुछ समय से अपनी माँ के घर गई हुई थीं, इसलिए उनके पति ने उन्हें घर वापस आने का संदेश भेजा। उनकी माँ ने उनसे एक दिन और रुकने को कहा क्योंकि वह अपने पति के लिए मिठाई ले जाना चाहती थीं। अगले दिन, कानामता ने मिठाई बनाई, लेकिन जब चार भिक्षु भिक्षा मांगने उनके दरवाजे पर खड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें भी कुछ मिठाई दे दी। उन चारों भिक्षुओं ने अन्य भिक्षुओं को कानामता के घर की मिठाई के बारे में बताया और वे भी उनके दरवाजे पर आकर खड़े हो गए। बुद्ध और उनके शिष्यों की भक्त होने के नाते, कानामता ने आने वाले भिक्षुओं को एक-एक करके अपनी मिठाई दे दी। नतीजा यह हुआ कि अंत में काना के लिए कुछ भी नहीं बचा और वह उस दिन घर नहीं गईं। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ; काना की माता ने कुछ मिठाई बनाई, भिक्षु उसके दरवाजे पर खड़े थे, उसने अपनी मिठाई भिक्षुओं को दे दी, बेटी के लिए घर ले जाने के लिए कुछ भी नहीं बचा, और बेटी घर नहीं गई। तीसरे दिन, तीसरी बार, उसके पति ने उसे संदेश भेजा, जो एक तरह से अल्टीमेटम भी था, जिसमें लिखा था कि अगर वह अगले दिन घर नहीं लौटी, तो वह दूसरी पत्नी ले आएगा। लेकिन अगले दिन भी, काना घर नहीं जा सकी क्योंकि उसकी माता ने अपनी सारी मिठाई भिक्षुओं को दे दी थी। तब काना के पति ने दूसरी पत्नी ले ली और काना भिक्षुओं के प्रति बहुत कटु हो गई। वह सभी भिक्षुओं को इतना बुरा-भला कहती थी कि भिक्षु कानामाता के घर से दूर रहने लगे।

बुद्ध ने काना के बारे में सुना और कानामता के घर गए; वहाँ कानामता ने उन्हें चावल का दलिया परोसा। भोजन के बाद, बुद्ध ने काना को बुलवाया और उनसे पूछा, "क्या मेरे भिक्षुओं ने वह लिया जो उन्हें दिया गया था या वह जो उन्हें नहीं दिया गया था?" काना ने उत्तर दिया कि भिक्षुओं ने केवल वही लिया जो उन्हें दिया गया था, और फिर कहा, "वे दोषी नहीं थे; केवल मैं ही दोषी थी।" इस प्रकार, उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की और बुद्ध को प्रणाम भी किया। इसके बाद बुद्ध ने प्रवचन दिया। प्रवचन के अंत में, काना ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया।

मठ लौटते समय बुद्ध की मुलाकात कोसल के राजा पसीनादि से हुई। जब उन्हें काना और भिक्षुओं के प्रति उसके कठोर रवैये के बारे में बताया गया, तो राजा पसीनादि ने बुद्ध से पूछा कि क्या वे उसे धर्म का उपदेश दे पाए हैं और उसे सत्य (धर्म) का दर्शन करा पाए हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हाँ, मैंने उसे धर्म का उपदेश दिया है और उसे अगले जन्म में समृद्ध भी बनाया है।" तब राजा ने बुद्ध से वादा किया कि वह काना को इसी जन्म में समृद्ध बना देगा। राजा ने अपने आदमियों को पालकी के साथ काना को लाने के लिए भेजा। जब वह पहुँची, तो राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, "जो कोई भी मेरी पुत्री काना को आराम से रख सके, वह उसे ले जा सकता है।" मंत्रियों में से एक ने

स्वेच्छा से काना को अपनी पुत्री के रूप में गोद लिया, उसे अपनी सारी संपत्ति दे दी और उससे कहा, “तुम जितना चाहो दान कर सकती हो।” प्रतिदिन, काना नगर के चारों द्वारों पर भिक्षुओं को दान देती थी। जब बुद्ध को काना द्वारा उदारतापूर्वक दान देने के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, काना का जो मन भ्रमित था, वह मेरे शब्दों से स्पष्ट और शांत हो गया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 82)

यथा अपि गंभीरो रहदो विप्पसन्नो अनाविलो
एवं पंडिता धम्मानि सुत्वान् विप्पसीदंति

यथा अपि : जैसे; गंभीरो [ गंभीर ]: गहरा; रहदो [ रहदा ]: सागर; विप्पसन्नो [ विप्पसन्न ]: एकदम साफ; अनावीलो [ अनाविला ]: और अशांत नहीं; एवं : उसी प्रकार; पंडिता : ज्ञानी; धम्मनि : शिक्षा; सुत्वन : सुनकर; विप्पसीदन्ति : मानसिक रूप से शुद्ध हो जाते हैं

अत्यंत गहरे महासागर शांत, स्थिर और अशांत होते हैं। ठीक उसी प्रकार, बुद्ध के वचनों को सुनने वाले ज्ञानी व्यक्ति गहन जागरूकता प्राप्त करते हैं और अत्यंत शांत और स्थिर हो जाते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 82)

रहदो गम्भीरो : गहरा सागर। इस श्लोक में बुद्ध के वचन सुनने वालों द्वारा अनुभव की गई मन की पवित्रता की तुलना गहरे सागर के जल की स्पष्टता से की गई है। बुद्ध के वचन सुनने का सौभाग्य न प्राप्त करने वाले आम लोग मन से अशुद्ध, व्याकुल और परेशान रहते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 83

---

(धम्मपद 82) <<<< पिछला || धम्मपद 83 || अगला >>>> (धम्मपद 84)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 83 - पंचासताभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

सब्बत्था ये सप्पुरिसा कजन्ति
na kamakama lapayanti santo
सुखेन फुत्थ अथ वा दुखेन
न उच्चवचं पंडिता दशयन्ति।

---

श्लोक 83 : निःसंदेह, गुणी लोग सब कुछ त्याग देते हैं (अर्थात पाँच खंधों आदि से आसक्ति); गुणी (शाब्दिक रूप से, शांत) लोग कामुक इच्छाओं से बात नहीं करते; सुख या दुःख का सामना करते समय, बुद्धिमान लोग उल्लास या अवसाद नहीं दिखाते।

---

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (83) कहा।

वेरंजा के एक ब्राह्मण के अनुरोध पर, बुद्ध एक बार पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वेरंजा में ठहरे थे। वेरंजा में रहते हुए, ब्राह्मण उनकी देखभाल करने में चूक गया। उस समय वेरंजा के लोग अकाल का सामना कर रहे थे, इसलिए जब भिक्षु भिक्षा मांगने निकले, तो वे उन्हें

बहुत कम दान दे सके। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद, भिक्षु निराश नहीं हुए; वे घोड़े बेचने वालों द्वारा प्रतिदिन दिए जाने वाले थोड़े से सूखे अनाज से ही संतुष्ट थे। वास समाप्त होने पर, वेरंजा के ब्राह्मण को सूचित करने के बाद, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए। श्रावस्ती के लोगों ने उनका स्वागत विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन से किया।

भिक्षुओं के साथ रहने वाले कुछ लोग, भिक्षुओं द्वारा छोड़े गए भोजन को खाकर, लालच से भरपेट खाते रहे और भोजन के बाद सो गए। जागने पर वे चिल्लाने, गाने और नाचने लगे, जिससे काफी उपद्रव मच गया। जब बुद्ध शाम को भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें उन उपद्रवी लोगों के व्यवहार के बारे में बताया और कहा, "जब हम सभी वेरंजा में कठिनाई और अकाल का सामना कर रहे थे, तब ये लोग, जो बचे हुए भोजन पर गुजारा कर रहे थे, काफी सभ्य और अच्छे व्यवहार वाले थे। अब जब उनके पास पर्याप्त भोजन है, तो वे चिल्ला रहे हैं, गा रहे हैं और नाच रहे हैं, जिससे काफी उपद्रव मच गया है। हालांकि, भिक्षु यहां भी वैसे ही व्यवहार कर रहे हैं जैसे वे वेरंजा में करते थे।"

बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मूर्खों का स्वभाव होता है कि जब चीजें बिगड़ती हैं तो वे दुखी और निराश हो जाते हैं, और जब चीजें अच्छी होती हैं तो वे प्रसन्न और उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन बुद्धिमान लोग जीवन के उतार-चढ़ाव को सहन कर सकते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 83 : निःसंदेह, गुणी लोग सब कुछ त्याग देते हैं (अर्थात पाँच खंधों आदि से आसक्ति); गुणी (शाब्दिक रूप से, शांत) लोग कामुक इच्छाओं से बात नहीं करते; सुख या दुःख का सामना करते समय, बुद्धिमान लोग उल्लास या अवसाद नहीं दिखाते।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कानामता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

वेरांजा के एक ब्राह्मण के अनुरोध पर, बुद्ध एक बार भिक्षुओं के एक समूह के साथ वेरांजा में ठहरे थे। वेरांजा में रहने के दौरान, ब्राह्मण उनकी देखभाल करने में चूक गए। वेरांजा के लोग, जो उस समय अकाल का सामना कर रहे थे, भिक्षुओं को भिक्षा मांगने के लिए भेजे जाने पर बहुत कम दान दे सके। इन सभी कठिनाइयों के बावजूद, भिक्षु निराश नहीं हुए; वे घोड़ों के व्यापारियों द्वारा प्रतिदिन दिए जाने वाले थोड़े से सूखे अनाज से ही संतुष्ट थे। वर्षा ऋतु के अंत में, वेरांजा के ब्राह्मण को सूचित करने के बाद, बुद्ध भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ लौट आए। श्रावस्ती के लोगों ने उनका स्वागत विभिन्न प्रकार के उत्तम भोजन से किया।

भिक्षुओं के साथ रहने वाले कुछ लोग, भिक्षुओं द्वारा छोड़े गए भोजन को खाकर, लालच से भरपेट खाते रहे और भोजन के बाद सो गए। जागने पर वे चिल्लाने, गाने और नाचने लगे, जिससे काफी उपद्रव हुआ। जब बुद्ध शाम को भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें उन उपद्रवी लोगों के व्यवहार के बारे में बताया और कहा, "ये लोग जो बचे हुए भोजन पर गुजारा कर रहे हैं, वे तब काफी सभ्य और अच्छे व्यवहार वाले थे जब हम सभी वेरांजा में कठिनाई और अकाल का सामना कर रहे थे। अब जब उनके पास पर्याप्त भोजन है, तो वे चिल्ला रहे हैं, गा रहे हैं और नाच रहे हैं, जिससे काफी उपद्रव हो रहा है। हालांकि, भिक्षु यहां भी वैसे ही व्यवहार करते हैं जैसे वे वेरांजा में करते थे।"

बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मूर्खों का स्वभाव होता है कि जब चीजें बिगड़ती हैं तो वे दुखी और निराश हो जाते हैं, और जब चीजें अच्छी होती हैं तो वे प्रसन्न और उत्साहित हो जाते हैं। लेकिन बुद्धिमान लोग जीवन के उतार-चढ़ाव को सहन कर सकते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 83)

सप्पुरिसा वे सब्बत्था कजंति संतो कामकामा न लपयन्ति

सुखेन पुट्ठा अथवा दुखेन पंडिता उच्छवचं न दासयंती

सप्पुरिसा : श्रेष्ठ जन; वे सब्त : निश्चय ही सभी बातों में; चजंति : अनासक्त; संतो : श्रेष्ठ जन; कामकामा : इंद्रिय सुख की इच्छा रखने वाले; न लपयन्ति : बात नहीं करते; सुखेन : सुख से; फुत्था : प्रभावित; अथवा: अन्यथा; दुःखेन : दुःख से (प्रभावित); पंडिता : बुद्धिमान जन; उच्चावच : उतार -चढ़ाव; न दसयंति : प्रदर्शित नहीं करते

नेक और बुद्धिमान व्यक्ति संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं होते। अनुशासित व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं, भौतिक लाभों या इंद्रिय सुखों की इच्छा से बात नहीं करते। चाहे उन पर भाग्य का कोई भी प्रभाव पड़े, वे शांत रहते हैं, न तो निराश होते हैं और न ही प्रसन्न।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 83)

सुखेन दुःखेन : ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख दोनों में अविचलित रहते हैं। सुख और दुःख एक दूसरे के विपरीत हैं। ये मनुष्य को प्रभावित करने वाले सबसे शक्तिशाली कारक हैं। जिसे आसानी से सहन किया जा सकता है वह सुख है , और जिसे सहन करना कठिन है वह दुःख है । साधारण सुख किसी इच्छा की पूर्ति है। जैसे ही वांछित वस्तु प्राप्त होती है, हम किसी अन्य प्रकार के सुख की कामना करने

लगते हैं। हमारी स्वार्थी इच्छाएँ इतनी अतृप्त होती हैं। इंद्रिय सुखों का आनंद लेना ही एक सामान्य व्यक्ति के लिए सर्वोच्च और एकमात्र सुख है। निस्संदेह, ऐसे इंद्रिय सुखों की प्रत्याशा, पूर्ति और स्मरण में क्षणिक सुख होता है, जिसे इंद्रियवादी अत्यधिक महत्व देता है, लेकिन ये क्षणभंगुर और अस्थायी होते हैं।

सच्ची खुशी भीतर ही पाई जाती है, और इसे धन, शक्ति, सम्मान या विजय के संदर्भ में परिभाषित नहीं किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 84

---

(धम्मपद83) <<<< पिछला॥ धम्मपद84 ॥अगला >>>> (धम्मपद 85 और 86)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 84 - धम्मिकत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na attahetu na parassa hetu
न पुत्तमिच्छे न धनं न रत्थम्
न इच्छेया अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
सा सिलवा पन्नवा धम्मिको सिया।

---

श्लोक 84 : वह अपने लिए या दूसरों के लिए कोई बुराई नहीं करता; न ही वह बुराई करके पुत्र-पुत्रियों, धन-दौलत या राज्य की कामना करता है; न ही वह अनुचित साधनों से सफलता की कामना करता है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी, बुद्धिमान और न्यायप्रिय है।

---

थेरा धम्मिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा धम्मिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (84) कहा।

धम्मिका अपनी पत्नी के साथ सावत्थी में रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी से कहा कि वे भिक्षु बनना चाहते हैं; उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करने की विनती की। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उन्होंने फिर से अपनी पत्नी से जाने की अनुमति मांगी; फिर से, उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के चलने-फिरने लायक होने तक प्रतीक्षा करने की विनती की। तब धम्मिका ने मन ही मन सोचा, "मेरे लिए संघ में शामिल होने के लिए पत्नी की स्वीकृति मांगना व्यर्थ होगा; मैं अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयास करूंगा।" दृढ़ निश्चय करके, वे भिक्षु बनने के लिए अपना घर छोड़कर चले गए। उन्होंने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही अर्हत (1) बन गए।

कुछ वर्षों बाद, वे अपने पुत्र और पत्नी को धम्म का उपदेश देने के लिए अपने घर गए। उनके पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ। तब पत्नी ने सोचा, "अब जब मेरे पति और पुत्र दोनों घर छोड़कर चले गए हैं, तो मुझे भी घर छोड़ देना चाहिए।" इसी विचार के साथ उन्होंने घर छोड़ दिया और भिक्षुणी बन गईं; अंततः उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

भिक्षुओं की सभा में बुद्ध को बताया गया कि धम्मिका कैसे भिक्षु बने और अर्हतत्व प्राप्त किया, और कैसे उनके माध्यम से उनके पुत्र और उनकी पत्नी ने भी अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, एक बुद्धिमान व्यक्ति बुराई करके धन और समृद्धि की कामना नहीं करता, चाहे वह अपने लिए हो या दूसरों के लिए। वह केवल धम्म को समझकर और धम्म के अनुसार जीवन जीकर पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) से अपनी मुक्ति के लिए कर्म करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 84 : वह अपने लिए या दूसरों के लिए कोई बुराई नहीं करता; न ही वह बुराई करके पुत्र-पुत्रियों, धन-दौलत या राज्य की कामना करता है; न ही वह अनुचित साधनों से सफलता की कामना करता है; ऐसा व्यक्ति वास्तव में गुणी, बुद्धिमान और न्यायप्रिय है।

---

1. अरहतः पूर्णतः प्रबुद्ध, वह व्यक्ति जो कभी पुनर्जन्म नहीं लेगा और शाश्वत आनंद (अमरता, सर्वव्यापकता और अनंत आनंद) में रहते हुए निर्वाण की अवस्था के दूसरे तट पर जाएगा।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय धम्मिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य धम्मिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

धम्मिका अपनी पत्नी के साथ सावत्थी में रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी से कहा कि वे भिक्षु बनना चाहते हैं; उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के जन्म के बाद तक प्रतीक्षा करने की विनती की। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उन्होंने फिर से अपनी पत्नी से जाने की अनुमति मांगी; फिर से उनकी पत्नी ने उनसे बच्चे के चलने-फिरने लायक होने तक प्रतीक्षा करने की विनती की। तब धम्मिका ने मन ही मन सोचा, "संघ में शामिल होने के लिए पत्नी की स्वीकृति मांगना व्यर्थ होगा; मैं स्वयं अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करूंगा।" दृढ़ निश्चय करके वे भिक्षु बनने के लिए घर छोड़कर चले गए। उन्होंने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही अर्हत बन गए।

कुछ वर्षों बाद, वे अपने पुत्र और पत्नी को धम्म का उपदेश देने के लिए अपने घर गए। उनके पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ। तब पत्नी ने सोचा, "चूंकि मेरे पति और पुत्र दोनों घर छोड़कर चले गए हैं, तो मुझे भी घर छोड़ देना चाहिए।" इसी विचार के साथ उन्होंने घर छोड़ दिया और भिक्षुणी बन गईं; अंततः उन्हें भी अर्हतत्व प्राप्त हुआ।

भिक्षुओं की सभा में बुद्ध को बताया गया कि धम्मिका कैसे भिक्षु बने और अर्हतत्व प्राप्त किया, और कैसे उनके माध्यम से उनके पुत्र और उनकी पत्नी ने भी अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, एक बुद्धिमान व्यक्ति बुराई करके धन और समृद्धि की कामना नहीं करता, चाहे वह अपने लिए हो या दूसरों के लिए। वह केवल धर्म की शिक्षाओं को समझकर और धर्म के अनुसार जीवन जीकर अपने स्वयं के पुनर्जन्म के चक्र (संसार) से मुक्ति के लिए कर्म करता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 84)

अत्तहेतु न परस्सा हेतु न पुत्तं न धनं
न रथं न इच्छे अधम्मेना अत्तनो समिद्धिं
ना इच्चेया सो सिलावा पन्नवा धम्मिको सिया

अतहेतु : अपने हित के लिए, ना : वह नहीं करता; परस हेतु : दूसरों के हित के लिए; ना : वह नहीं करता; ना पुत्र : कोई पुत्र नहीं; ना धन : कोई धन नहीं; ना रट्ठ : कोई राज्य नहीं; इच्छा : वह चाहता है; अत्तनो समिद्धि : अपनी समृद्धि; अधम्मेना : अवास्तविक रूप से; ना इच्छाय्य : वह (लाभ पाने की) इच्छा नहीं करता; सो : ऐसा व्यक्ति; सेलावा : सुव्यवहारित; पञ्ञवा : मर्मस्पर्शी; धम्मिको : यथार्थवादी ; सिया : हो जाता है

वह न तो अपने लाभ के लिए, न ही दूसरों के लाभ के लिए संतान, धन या राज्य की इच्छा रखता है। न ही वह आत्मप्रशंसा की लालसा रखता है। इस प्रकार वह यथार्थवादी, मर्मस्पर्शी और सुव्यवस्थित है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 84)

यह श्लोक इस आम सवाल का उचित जवाब देता है, "राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी, संतान, माता-पिता और राज्य का त्याग क्यों किया, यदि अपने स्वार्थ के लिए नहीं तो?" यह श्लोक हमें याद दिलाता है कि वह अपने या किसी और के स्वार्थ के लिए अवास्तविक कार्य नहीं करेंगे।

संसार के स्वरूप, उसकी अस्थिरता, दुःख और निर्जीवता की सही समझ के कारण ही उन्होंने घर छोड़ा था। साथ ही, उन्होंने सांसारिक ज्ञान को तुच्छ नहीं समझा। उन्होंने अपने सेवकों से भी ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने की इच्छा नहीं दिखाई। उनका ज्ञान हमेशा दूसरों के लिए उपलब्ध था, और उन्होंने उसे निःसंकोच साझा किया। उन्होंने दूसरों को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने भ्रमों के पीछे भागना छोड़ दिया। उन्होंने यथार्थवादी जीवन जीना शुरू किया; न केवल अपने लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी एक उदाहरण बनने के लिए।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 85 और 86

---

(धम्मपद 84) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 85 और 86 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 87, 88 और 89)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 85 और 86 - धम्मस्सावना वत्थु

---

### डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पाका ते मनुस्सेसु
ये जना परागमिनो
अथयम इतरा पजा
तिरामेवनुधावती(1)

Ye ca kho sammadakkhate
dhamme dhammanuvattano
te jana paramessanti(2)
maccudheyyam(3) suduttaram.

---

श्लोक 85 : मनुष्य में से कुछ ही दूसरे किनारे (निब्बान) तक पहुँचते हैं; बाकी सब तो बस इसी किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

---

श्लोक 86 : परन्तु जो लोग सुस्पष्ट धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के क्षेत्र (अर्थात संसार) को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँचेंगे, यद्यपि इसे पार करना बहुत कठिन है।

---

1. तिरामएवनुधावती: तिराम + एव + अनुधावती: किनारा + केवल यही + ऊपर-नीचे दौड़ना: टीका के अनुसार इस संदर्भ में 'केवल यही किनारा' का अर्थ है सक्कयादित्थी (अहंकार विश्वास)।
2. paramessanti: param + essanti: दूसरा किनारा + पहुँचेगा। निर्वाण के लिए लाक्षणिक रूप से दूसरे या विपरीत किनारे का प्रयोग किया गया है।
3. मच्चुधेय्यम: मृत्यु का क्षेत्र (या संसार, पुनर्जन्मों का चक्र)।

---

धम्म श्रोताओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (85) और (86) का उच्चारण किया, जो श्रावस्ती में एक धार्मिक प्रवचन सुनने आए लोगों की सभा के संदर्भ में था।

एक बार, सावत्थी के कुछ लोगों ने सामूहिक रूप से भिक्षुओं को विशेष भेंट दी और उन्होंने अपने इलाके में कुछ भिक्षुओं से रात भर प्रवचन दिलवाए। श्रोताओं में से कई लोग रात भर जाग नहीं सके और जल्दी अपने घर लौट गए; कुछ लोग रात भर बैठे रहे, लेकिन अधिकतर समय वे ऊंघते और अधनी नींद में थे। प्रवचनों को ध्यान से सुनने वाले केवल कुछ ही लोग थे।

भोर होते ही जब भिक्षुओं ने बुद्ध को पिछली रात की घटना के बारे में बताया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "अधिकांश लोग इस संसार से आसक्त हैं; केवल कुछ ही लोग दूसरे तट (निर्वाण) तक पहुँच पाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 85 : मनुष्य में से कुछ ही दूसरे किनारे (निब्बान) तक पहुँचते हैं; बाकी सब तो बस इसी किनारे पर इधर-उधर भागते रहते हैं।

---

श्लोक 86 : परन्तु जो लोग सुस्पष्ट धम्म के अनुसार अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के क्षेत्र (अर्थात संसार) को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँचेंगे, यद्यपि इसे पार करना बहुत कठिन है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धम्म श्रोताओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक सावत्थी में धार्मिक प्रवचन सुनने आए लोगों के एक समूह के संदर्भ में कहे थे। एक बार सावत्थी के लोगों के एक समूह ने भिक्षुओं को सामूहिक रूप से विशेष भेंट दी और उन्होंने कुछ भिक्षुओं को अपने क्षेत्र में रात भर प्रवचन देने की व्यवस्था की। श्रोताओं में से कई लोग रात भर जाग नहीं सके और जल्दी अपने घर लौट गए; कुछ लोग रात भर बैठे रहे, लेकिन अधिकतर समय वे ऊंघते और अधमरे थे। प्रवचन को ध्यानपूर्वक सुनने वाले केवल कुछ ही लोग थे।

भोर होते ही, जब भिक्षुओं ने बुद्ध को पिछली रात की घटनाओं के बारे में बताया, तो उन्होंने उत्तर दिया, "अधिकांश लोग इस संसार से आसक्त हैं; केवल कुछ ही लोग दूसरे तट ( निर्वाण ) तक पहुँच पाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 85)

मनुस्सेसु ये जना पैरागामिनो ते अप्पाका

अथा इतर अयं पजा तिरं एव अनुधावति

मनुष्यसु : आम लोगों में से; ये जना : वे जो; पारगामिनो [ पारगामिन ]: दूसरे किनारे पर पार करते हैं; ति : वे; अप्पका : (हैं) केवल कुछ; अथा : लेकिन; इतरा : दूसरे; अयं पजा : ये जनसमूह; तीरं एव : इसी किनारे पर; अनुधावती : चलते रहते हैं

जो लोग दूसरी ओर जाना चाहते हैं, उनमें से केवल कुछ ही सफल हो पाते हैं। बाकी जो पीछे रह जाते हैं, वे इसी किनारे पर दौड़ते रहते हैं। जो जनसमूह मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता, वह संसार के चक्र में फंसा रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 86)

ये च खो सम्मदक्खते धम्मे धम्मनुवत्तिनो

ते जना सुदत्तारं मक्कुधेयं परं एस्संति

तु कै खो : जो भी; सम्मदक्खते : अच्छी तरह से व्यक्त में; धम्मे : पढ़ाना; धम्मनुवत्तिनो [ धम्मनुवत्तिना ]: जो शिक्षण के अनुसार रहते हैं; ते जना : वे लोग; सुदत्ताराम् [ सुदत्तारा ]: पार करना कठिन; मक्कुधेयं [ मक्कुधेय ]: मृत्यु का क्षेत्र; परं एस्संति : पार करो

जिन लोकों पर मारा का अधिकार है, उन्हें पार करना कठिन है। केवल वे ही लोग जो बुद्ध की सुस्पष्ट शिक्षाओं में बताए गए मार्ग का पूरी निष्ठा से अनुसरण करते हैं, इन कठिन लोकों को पार कर सकेंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 85-86)

धम्मे धम्मानुवत्तिनो : बुद्ध की शिक्षा और उस शिक्षा का अभ्यास करने वाले। बुद्ध ने सबसे पहले पांच तपस्वियों को अपनी शिक्षा का उपदेश दिया और अपना पहला प्रवचन दिया - "सत्य के चक्र का घूमना"। इस प्रकार प्रबुद्ध बुद्ध ने धम्म का प्रचार किया और अद्वितीय "सत्य के चक्र" को गतिमान किया। धम्म के प्रचार के साथ ही, और पांच तपस्वियों के धर्म परिवर्तन के साथ, इसिपताना का हिरण पार्क बुद्ध के धर्मोपदेश और संघ, भिक्षुओं के समुदाय, दीक्षित शिष्यों का जन्मस्थान बन गया। बुद्ध ने अपने शिष्यों, सिद्ध पुरुषों ( अरहतों) को संबोधित किया।), और कहा: "हे भिक्षुओं, मैं सभी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गया हूँ। तुम भी मानवीय और दैवीय बंधनों से मुक्त हो गए हो। अब जाओ और अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के लाभ, कल्याण और सुख के लिए भ्रमण करो। तुममें से दो एक ही दिशा में न जाएँ। उस धम्म का प्रचार करो जो आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम है, जिसका अर्थ और अक्षर दोनों पूर्णतः परिपूर्ण हैं। पवित्र जीवन का, पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन का प्रचार करो। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में थोड़ी सी भी धूल नहीं है, जो धम्म न सुनकर नष्ट हो जाएँगे। कुछ ऐसे प्राणी हैं जो धम्म को समझेंगे। मैं भी उरुवेला, सेनानिगम जाऊँगा, धम्म का उपदेश देने के लिए।" इस प्रकार बुद्ध ने अपने उदात्त मिशन का आरंभ किया जो उनके जीवन के अंत तक चला। अपने शिष्यों के साथ वे जंबूद्वीप के राजमार्गों और गलियों में विचरण करते रहे, जो गुलाब सेब की भूमि (भारत का दूसरा नाम) है, और सभी को अपने भीतर समाहित कर लिया। उनकी असीम करुणा और ज्ञान की आभा हर जगह व्याप्त है। बुद्ध ने धम्म का उपदेश देते समय जाति, गोत्र या वर्ग का कोई भेद नहीं किया। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से आए पुरुष और महिलाएं—अमीर और गरीब; निम्नतम और उच्चतम; साक्षर और निरक्षर; ब्राह्मण और अछूत, राजकुमार और कंगाल, संत और अपराधी—बुद्ध को सुनते थे, उनकी शरण लेते थे और शांति और ज्ञान के मार्ग को दिखाने वाले उनके मार्ग का अनुसरण करते थे। यह मार्ग सभी के लिए खुला है। उनका धम्म सभी के लिए था। जाति, जो भारत के ब्राह्मणों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थी, बुद्ध के लिए पूरी तरह से महत्वहीन थी, जिन्होंने इस नीच व्यवस्था की कड़ी निंदा की। बुद्ध ने सभी जातियों और वर्गों के लोगों को संघ में स्वतंत्र रूप से प्रवेश

दिया, जब उन्हें पता चला कि वे पवित्र जीवन जीने के योग्य हैं, और उनमें से कुछ ने बाद में संघ में अपनी विशिष्टता साबित की। बुद्ध एकमात्र समकालीन शिक्षक थे जिन्होंने जाति और वर्ग के भेदों से अब तक अलग हुए लोगों को पारस्परिक सहिष्णुता और सद्भाव में जोड़ने का प्रयास किया। बुद्ध ने भारत में महिलाओं की स्थिति को भी ऊंचा उठाया। सामान्यतः, बुद्ध के समय में ब्राह्मणवादी प्रभाव के कारण महिलाओं को अधिक मान्यता नहीं दी जाती थी। कभी-कभी उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था, हालांकि दर्शनशास्त्र आदि विषयों में उनकी विद्वत्ता के कुछ ही उदाहरण मिलते थे। अपनी उदारता में, बुद्ध ने महिलाओं के साथ सम्मानपूर्वक और विनम्रता से व्यवहार किया और उन्हें भी शांति, पवित्रता और धार्मिकता का मार्ग दिखाया। बुद्ध ने इतिहास में पहली बार भिक्षुणियों ( भिक्खुनी शासन ) की स्थापना की; क्योंकि इससे पहले ऐसा कोई संघ नहीं था जहां महिलाएं ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर सकें। जीवन के सभी क्षेत्रों से महिलाएं इस संघ में शामिल हुईं। इन कई महान भिक्षुणियों के जीवन, मोक्ष की प्राप्ति के लिए उनके अथक प्रयासों और मन की मुक्ति पर उनके आनंदमय गीतों का सजीव वर्णन 'बहनों के भजन' ( थेरीगाथा ) में मिलता है।

गांव-गांव और कस्बे-कस्बे की यात्रा करते हुए, अनेकों लोगों को उपदेश देते, ज्ञान प्रदान करते और प्रसन्न करते हुए, बुद्ध ने देखा कि कैसे अंधविश्वासी लोग, अज्ञानता में डूबे हुए, अपने देवताओं की पूजा में पशुओं का वध करते हैं।

उन्होंने उनसे बात की:

जीवन, जिसे सब ले सकते हैं लेकिन कोई दे नहीं सकता,
वह जीवन जिसे सभी प्राणी प्यार करते हैं और बनाए रखने का प्रयास करते हैं।
अद्भुत, प्रिय और सभी के लिए सुखद,
यहां तक कि सबसे कंजूस लोगों के लिए भी...

बुद्ध ने कभी भी कलह और द्वेष को बढ़ावा नहीं दिया। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने एक बार कहा था: "भिक्षुओं, मैं संसार से झगड़ा नहीं करता, संसार मुझसे झगड़ा करता है। धम्म का प्रचारक संसार में किसी से झगड़ा नहीं करता।"

बुद्ध के लिए धम्म का अभ्यास अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए, बौद्धों को धम्मानुवत्ती (धर्म का अभ्यास करने वाले) होना चाहिए। बुद्ध के धम्म (धर्म) द्वारा इंगित आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यावहारिक पहलू सबसे आवश्यक हैं।

सच्ची शांति और सुख पाने का कोई शॉर्टकट नहीं है। जैसा कि बुद्ध ने अनेक उपदेशों में बताया है, यही एकमात्र मार्ग है जो सुखमय जीवन के शिखर तक ले जाता है, जो मानसिक जगत के निम्नतम स्तरों से उच्चतर स्तरों तक जाता है। यह एक क्रमिक प्रशिक्षण है, वाणी, कर्म और विचार का प्रशिक्षण जो सच्ची बुद्धि की प्राप्ति कराता है और अंततः पूर्ण ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति में परिणत होता है। यह मार्ग सभी के लिए है, जाति, वर्ग या धर्म से परे, एक ऐसा मार्ग जिसे जागृत जीवन के प्रत्येक क्षण में संजोना चाहिए।

इस शिक्षा को इंगित करने में बुद्ध का एकमात्र उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया गया है: "बुद्ध प्रबुद्ध हैं, वे ज्ञान प्राप्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध शांत हैं, वे शांत करने के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध पार कर चुके हैं, वे पार करने के लिए धम्म का उपदेश देते हैं; बुद्ध निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, वे निर्वाण प्राप्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हैं ।"

बुद्ध जिस उद्देश्य से धम्म का उपदेश देते हैं, वह यही है, इसलिए यह स्पष्ट है कि उस मार्ग के श्रोता या अनुयायी का उद्देश्य भी यही होना चाहिए, और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए, एक दयालु और समझदार चिकित्सक का उद्देश्य उसके पास इलाज के लिए आने वाले रोगियों को ठीक करना होना चाहिए, और जैसा कि हम जानते हैं, रोगी का एकमात्र उद्देश्य यथाशीघ्र स्वस्थ होना होता है। यही एक बीमार व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य होता है।

हमें यह भी समझना चाहिए कि यद्यपि मार्गदर्शन, चेतावनी और निर्देश उपलब्ध हैं, फिर भी धम्म का वास्तविक अभ्यास, यानी मार्ग पर चलना, हमारे ऊपर निर्भर है। हमें सभी बाधाओं को पार करते हुए, पूर्ण उत्साह के साथ सही मार्ग पर चलना चाहिए—वही मार्ग जिस पर सभी युगों के बुद्धों ने चलकर दर्शन दिए हैं।

पारगमन के विचार को समझाने के लिए, बुद्ध ने एक बेड़ा की उपमा का प्रयोग किया: "भिक्षुओं, मैं एक बेड़ा की उपमा का प्रयोग करते हुए धम्म का उपदेश देता हूँ जो पारगमन के लिए बनाया गया है, न कि धारण करने के लिए।"

करुणामय गुरु बुद्ध अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन वे एक विरासत छोड़ गए हैं - परम धम्म। धम्म कोई आविष्कार नहीं, बल्कि एक खोज है। यह एक शाश्वत नियम है; यह हर जगह, हर पुरुष और स्त्री में, चाहे वह बौद्ध हो या गैर-बौद्ध, पूर्वी हो या पश्चिमी, विद्यमान है। धम्म का कोई बंधन नहीं, यह समय, स्थान या जाति की सीमाओं से परे है। यह समस्त काल के लिए है। जो भी धम्म का अनुसरण करता है, वह इसके प्रकाश को देखता है, स्वयं इसका अनुभव करता है। इसे दूसरों तक पहुँचाया नहीं जा सकता, क्योंकि इसका आत्म-साक्षात्कार आवश्यक है।

कर्म , सही मायने में, अच्छे और बुरे कर्मों और उनसे जुड़े मानसिक कारकों को दर्शाता है, जो पुनर्जन्म का कारण बनते हैं और प्राणियों के भाग्य को निर्धारित करते हैं। ये कर्मिक इच्छाएँ शरीर, वाणी और मन द्वारा अच्छे या बुरे कर्मों के रूप में प्रकट होती हैं। इस प्रकार, बौद्ध शब्द कर्म किसी भी प्रकार से कर्मों के परिणाम को नहीं दर्शाता है, और निश्चित रूप से मनुष्य के भाग्य को भी नहीं, या शायद पूरे

राष्ट्रों के भाग्य को भी नहीं (जिसे सामूहिक कर्म कहा जाता है), जो कि दुनिया के कुछ हिस्सों में व्यापक रूप से फैली हुई गलत धारणाएँ हैं। बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षुओं, मैं कर्म को इच्छाशक्ति कहता हूँ, क्योंकि इच्छाशक्ति के द्वारा ही मनुष्य शरीर, वाणी या मन से कर्म करता है। हे भिक्षुओं, कर्म का फल नरक में मिलता है। कर्म का फल पशु जगत में मिलता है। कर्म का फल मनुष्य जगत में मिलता है। कर्म का फल स्वर्ग जगत में मिलता है। कर्म का फल तीन प्रकार का होता है : जन्म के दौरान मिलता है, अगले जन्म में मिलता है और उसके बाद के जन्मों में मिलता है।"

अस्वास्थ्यकर कर्मों के तीन मूल कारण हैं: लोभ, घृणा और भ्रम; जबकि स्वास्थ्यकर कर्मों के मूल कारण हैं: निस्वार्थता, घृणाहीनता (सद्भावना) और भ्रमहीनता।

"लोभ कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है , घृणा कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है , भ्रम कर्मों के उत्पन्न होने की एक शर्त है। "

"अवांछनीय कर्म तीन प्रकार के होते हैं, जो लोभ, घृणा या भ्रम से प्रेरित होते हैं।"

"हत्या, चोरी, अवैध यौन संबंध, झूठ बोलना, निंदा करना, अभद्र भाषा बोलना, मूर्खतापूर्ण बातें करना, यदि इनका अभ्यास किया जाए, इन्हें जारी रखा जाए और बार-बार किया जाए, तो ये नरक में, या पशुओं के बीच, या प्रेतों के बीच पुनर्जन्म का कारण बनते हैं।" "जो हत्या करता है और क्रूरता करता है, वह या तो नरक में जाता है, या यदि मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेता है, तो अल्प आयु का होगा। जो दूसरों को सताता है, वह रोगग्रस्त होगा। क्रोधित व्यक्ति बदसूरत दिखेगा, ईर्ष्यालु व्यक्ति प्रभावहीन होगा, कंजूस व्यक्ति गरीब होगा, हठी व्यक्ति नीच कुल का होगा, आलसी व्यक्ति ज्ञानहीन होगा। इसके विपरीत, मनुष्य स्वर्ग में या मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेगा, वह दीर्घायु होगा, सुंदर, प्रभावशाली, कुलीन कुल का और ज्ञानी होगा।"

"अपने कर्मों के स्वामी और उन्हीं कर्मों के उत्तराधिकारी प्राणी होते हैं । कर्म ही वह गर्भ है जिससे उनका जन्म होता है, कर्म ही उनका मित्र और आश्रय है। वे चाहे जो भी कर्म करें, चाहे अच्छा हो या बुरा, वे उसी के उत्तराधिकारी होंगे।"

किलेसा : दोष — मन को दूषित करने वाले, अस्वास्थ्यकर गुण। "दस प्रकार के दोष हैं, जिन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि वे स्वयं दूषित हैं, और क्योंकि वे अपने साथ जुड़े मानसिक कारकों को भी दूषित करते हैं।"

वे हैं:

लालच;

घृणा;

भ्रम;

अहंकार;

अनुमानित विचार;

संशयपूर्ण शंका;

मानसिक सुस्ती;

बेचैनी;

निर्लज्जता;

नैतिक भय या अचेतना का अभाव।

विपाक : कर्म-परिणाम — कोई भी कर्मिक (नैतिक) रूप से तटस्थ मानसिक घटना (जैसे, शारीरिक सुखदायक या कष्टदायक अनुभूति, इंद्रिय-चेतना आदि), जो इस जन्म या पिछले जन्म में शरीर, वाणी या मन द्वारा किए गए शुभ या अशुभ स्वैच्छिक कर्म का परिणाम है। यह मानना पूर्णतः गलत है कि बौद्ध धर्म के अनुसार, सब कुछ पिछले कर्म का परिणाम है। उदाहरण के लिए, पूर्व कर्म का परिणाम कोई भी कर्मिक रूप से शुभ या अशुभ स्वैच्छिक कर्म ( कर्म ) वास्तव में स्वयं कर्म नहीं है ।

कर्म से उत्पन्न भौतिक वस्तुओं को कभी भी कर्म-विपाक नहीं कहा जाता है , क्योंकि यह शब्द केवल मानसिक घटनाओं पर ही लागू किया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 87,88,89

———————————————————————

(धम्मपद 85 और 86) <<<< पिछला || धम्मपद 87, 88 और 89 || अगला >>>> (धम्मपद 90)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु

1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 87, 88 और 89 - पंचसता अगंतुकाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Kanham dhammam vippahaya
sukkam bhavetha pandito
oka anokamagamma(1)
viveke(2) yattha duramam.

तात्रभिरातिमिच्चेय्या
hitva kame akincano(3)
परियोदपेय्य अत्तनम
cittaklesehi(4) pandito.

Yesam sambodhiyangesu(5)
सम्मा चित्तम सुभावितम
adanapatinissagge
anupadaya ye rata
खिनासावा(6) जुटिमंतो(7)
te loke parinibbuta(8)

---

श्लोक 87 और 88 : ज्ञानवान व्यक्ति, भोग-विलास के घर को छोड़कर, निर्वाण को अपना लक्ष्य बनाकर, अंधकारमय और बुरे मार्गों को त्यागकर शुद्ध और अच्छे मार्गों का अनुसरण करे। उसे एकांत, वैराग्य और निर्वाण में अत्यंत आनंद की खोज करनी चाहिए, जिसका आनंद साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत कठिन होता है। उसे इंद्रिय सुखों का भी त्याग करना चाहिए और किसी भी चीज से आसक्त न रहकर, अपने मन की सभी अशुद्धियों को दूर करना चाहिए।

---

श्लोक 89 : वे लोग जिनका मन ज्ञान के सात कारकों (बोझ्झंग) में सुविकसित है, सभी व्यथाओं से मुक्त होकर, आसक्ति के त्याग में आनंदित होते हैं। ऐसे पुरुष, सभी नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त होकर और (अरहत्त मग्नाना के प्रकाश से) बलवान होकर, इस संसार में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं (अर्थात, खंड स्कंधों के शेष रहते हुए)।

---

1. ओका अनाकमगम्मा; शाब्दिक अर्थ: घर छोड़कर बेघर हो जाना। इस संदर्भ में इसका अर्थ है लालसा के स्थान को त्यागकर निर्वाण को लक्ष्य बनाना।
2. विवेक: एकांत, वैराग्य, निर्वाण।
3. अकिंचानो: शाब्दिक अर्थ, कुछ भी न होना; किसी चीज से आसक्त न होना। (किंचानो शब्द में वासना, द्वेष, अज्ञान आदि जैसे किसी भी प्रकार के दोष या अशुद्धता शामिल हो सकती है; इसका अर्थ संसार से आसक्ति या लगाव भी है।)
4. cittaklesehi: citta kilesa: मन की अशुद्धियाँ.
5. संबोधियांगेसु: संबोज्जंग: ज्ञानोदय के कारक या मग्गा अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तें।
6. खिनासव: वह व्यक्ति जिसमें मानवीय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं; एक अरहत।
7. जुटिमंता: अरहट्टा मग्गानाना की शक्ति से संपन्न।
8. ते लोके परिनिब्बुता: पंच स्कंधों के क्षेत्र में, यानी इस संसार में निर्वाण की प्राप्ति। परन्तु टीका के अनुसार, इस संदर्भ में सउपादिशेष और अनुपदादिशेष दोनों प्रकार के निर्वाण का अर्थ है। सउपादिशेष या क्लेष निर्वाण वह निर्वाण है जिसमें स्कंध समूह शेष रहते हैं; यह

अरहत द्वारा अरहतत्व प्राप्त करने पर प्राप्त होता है। अनुपदादिशेष या स्कंध निर्वाण वह निर्वाण है जिसमें स्कंध समूह शेष नहीं रहते। यह अरहत की मृत्यु पर प्राप्त होता है।

---

पांच सौ तीर्थयात्री भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ आगंतुक भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (87), (88) और (89) कहे।

वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु के तीन महीने) कोसल में बिताने वाले पांच सौ भिक्षु वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु) के अंत में जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए।

बुद्ध ने उनके विभिन्न स्वभावों के अनुरूप निम्नलिखित तीन श्लोक कहे:

---

श्लोक 87 और 88 : ज्ञानवान व्यक्ति, भोग-विलास के घर को छोड़कर, निर्वाण को अपना लक्ष्य बनाकर, अंधकारमय और बुरे मार्गों को त्यागकर शुद्ध और अच्छे मार्गों का अनुसरण करे। उसे एकांत, वैराग्य और निर्वाण में अत्यंत आनंद की खोज करनी चाहिए, जिसका आनंद साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत कठिन होता है। उसे इंद्रिय सुखों का भी त्याग करना चाहिए और किसी भी चीज से आसक्त न रहकर, अपने मन की सभी अशुद्धियों को दूर करना चाहिए।

---

श्लोक 89 : वे लोग जिनका मन ज्ञान के सात कारकों (बोझंग) में सुविकसित है, सभी व्यथाओं से मुक्त होकर, आसक्ति के त्याग में आनंदित होते हैं। ऐसे पुरुष, सभी नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त होकर और (अरहत्त मग्नाना के प्रकाश से) बलवान होकर, इस संसार में निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं (अर्थात, खंड स्कंधों के शेष रहते हुए)।

---

अध्याय छह का अंत: ज्ञानी (पंडितवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ आगंतुक भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ आगंतुक भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कोसल राज्य में वर्षा ऋतु बिता चुके पचास भिक्षु वर्षा ऋतु की समाप्ति पर बुद्ध के दर्शन के उद्देश्य से जेतवन आए; और बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, आदरपूर्वक एक ओर बैठ गए। बुद्ध ने उनके अनुभवों की कथा सुनने के बाद श्लोकों का पाठ करके उन्हें धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 87)

पण्डितो यत्थ विवेके दुरम् ओका अनोखा आगम्मा

कान्हां धम्मं विप्पहया सुक्कं भवेथा

पंडितो [ पंडित ]: ज्ञानी; यत्थ विवेके : उस मुक्ति में; दूरमं [ दूरम ]: रुचि लेना कठिन; ओका : घर से; अनोकं आगम्म : बेघर होना (समना का जीवन); काण्हं धम्मं [ धम्म ]: दूषित विचार; विप्पहाय : पूरी तरह से त्याग देना; सुक्कं भावेथा : पवित्रता का विकास करना (मुक्ति के लिए सहायक)

ज्ञानी व्यक्ति उन दूषित विचारों और संदिग्ध आचरणों का पूर्णतः त्याग कर, सांसारिक जीवन के परिचित सुखों से विमुख होकर संन्यासी के अपरिचित जीवन मार्ग पर अग्रसर होता है। वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक सद्‌गुणों का अभ्यास करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 88)

अकिंचनो पंडितो कामे हित्वा तत्र अभिरतिम्

इच्चेया चित्तक्लेसेहि अत्तनं परियोदपेय

akiñcano [ akiñcana ]: संपत्ति रहित (अनासक्त); paṇḍito [ paṇḍita ]: ज्ञानी व्यक्ति; kāme hitvā : इंद्रिय सुखों का त्याग करने वाला; tatrā : उस (मुक्ति) में; abhiratiṃ [ abhirati ]: रुचि रखने वाला; iccheyya : (और) इच्छा रखने वाला; cittaklesehi : मानसिक विकारों से मुक्त; attānaṃ pariyodapeyya : स्वयं को शुद्ध करने वाला

वह मुक्ति में रुचि रखता है। वह सभी इंद्रिय सुखों का त्याग कर देता है। इस प्रकार, वह किसी भी संपत्ति से रहित हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति अपने मन को उन दोषों से शुद्ध करने की प्रक्रिया में लग जाता है जो मन को दूषित करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 89)

येसं चित्तं सम्बोधिअंगेसु सम्मा सुभावितं

ये अनुपादाय अदाना पतिनिस्सागे रता
जूतीमंतो ते खिनासावा लोके परिणिबुता

yesaṃ [ yesa ]: उन (दोषरहित लोगों) में से; cittaṃ [ citta ]: मन; sambodhiaṅgesu : ज्ञान प्राप्ति के लिए अनुकूल कारकों में; sammā subhāvitaṃ [ subhāvita ]: सुशिक्षित और विकसित; ye : वे; anupādāya : किसी भी चीज से आसक्ति न रखने वाले; ādāna paṭinissagge : आसक्ति का त्याग करने वाले; ratā : रुचि रखने वाले; jutīmanto [ jutīmanta ]: प्रकाशमान; te khiṇāsavā : जो प्रभाव से रहित हैं; loke : इस संसार में; parinibbutā : निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।

कुछ ऐसे ज्ञानी व्यक्ति होते हैं जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए सहायक तत्वों का पूर्णतया अभ्यास किया होता है। वे किसी भी चीज से भावनात्मक या मानसिक रूप से आसक्त नहीं होते। वे लोभ और व्याकुलता की प्रवृत्ति के विरोधी होते हैं। वे अनासक्ति में आनंदित होते हैं। वे तेजस्वी, जो पूर्णतः दोषरहित होते हैं, इसी संसार में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 87-89)

pariyodapeyya attānaṃ cittaklesehi paṇḍito : ज्ञानी व्यक्ति मन को दूषित करने वाले दोषों से शुद्ध करता है। यह मन को परिष्कृत करने की संपूर्ण प्रक्रिया का सार है, जिससे यह अमरत्व की खोज का एक उपयुक्त साधन बन सके। मन को दूषित करने वाले दोषों में प्रमुख पाँच प्रकार की बाधाएँ हैं।

निवारण : बाधा डालना। इस संदर्भ में, इसका अर्थ है आध्यात्मिक ऊंचाइयों की प्राप्ति में बाधक व्यवहार को रोकना। वे कारक जो मुक्ति और उच्चतर अवस्थाओं के मार्ग पर प्रगति में बाधा डालते हैं, निवारण कहलाते हैं ।

इन बाधाओं के पाँच प्रकार हैं:

कामुक इच्छाएँ,
बैर,
आलस्य और सुस्ती,
बेचैनी और चिंता, और
संदेह।

(1) कामुक इच्छाएँ

इंद्रियजन्य इच्छाएँ या सुखदायक इंद्रिय-विषयों जैसे रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श के प्रति आसक्ति। इसे भी उन बंधनों में से एक माना जाता है जो व्यक्ति को संसार से बांधते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति इंद्रियों को लुभाने वाली चीजों से आकर्षित हो ही जाता है । आत्म-संयम की कमी से वासनाओं का उत्पन्न होना अपरिहार्य है । एकाग्रता से इस अवरोध को रोका जा सकता है , जो ध्यान के पांच गुणों में से एक है । सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह कम हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाती है । रूप राग और अरूप राग ( सृष्टि और निराकार जगत से आसक्ति ) जैसी सूक्ष्म आसक्ति केवल अरहतत्व प्राप्त करने पर ही दूर होती है ।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ इंद्रिय-इच्छाओं के उन्मूलन की ओर अग्रसर होती हैं।

उस वस्तु की घृणास्पदता को महसूस करते हुए,
घृणा पर निरंतर ध्यान लगाना,
इंद्रिय-संयम,
भोजन में संयम,
अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।

(2) दुर्भावना या घृणा।

वांछनीय वस्तु आसक्ति उत्पन्न करती है, जबकि अवांछनीय वस्तु घृणा उत्पन्न करती है। ये दो महान अग्नियां हैं जो पूरे संसार को जलाती हैं। अज्ञान की सहायता से ये दोनों अग्नियां संसार के समस्त दुखों का कारण बनती हैं। दुर्भावना को पीति या आनंद द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो ध्यान के कारकों में से एक है। सकदागामी अवस्था प्राप्त करने पर यह दुर्भावना क्षीण हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाती है ।

निम्नलिखित छह स्थितियाँ दुर्भावना के उन्मूलन में सहायक होती हैं।

वस्तु को सद्भावनापूर्ण विचारों से देखते हुए,
प्रेम और करुणा ( मेट्टा ) पर निरंतर ध्यान करना,
यह सोचना कि कर्म स्वयं का है,
उस दृष्टिकोण का पालन करना,

अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।
(3) आलस्य
आलस्य को मन की एक अस्वस्थ अवस्था और मिद्धा को मानसिक अवस्थाओं की अस्वस्थता रहित अवस्था बताया गया है। एक सुस्त मन 'पेड़ से लटके चमगादड़ की तरह, या डंडी से चिपके गुड़ की तरह, या फैलाने के लिए बहुत सख्त मक्खन के टुकड़े की तरह' होता है। आलस्य और सुस्ती को शारीरिक आलस्य के रूप में नहीं समझना चाहिए, क्योंकि जिन अरहतों ने इन दोनों अवस्थाओं को नष्ट कर दिया है, वे भी शारीरिक थकान का अनुभव करते हैं। ये दोनों मानसिक जड़ता को बढ़ावा देते हैं और परिश्रम के विरुद्ध हैं। ये ध्यान तत्व द्वारा नियंत्रित होते हैं और अरहतत्व प्राप्त करने पर समाप्त हो जाते हैं।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ आलस्य और सुस्ती के उन्मूलन में सहायक होती हैं:
भोजन में संयम के उद्देश्य पर चिंतन,
शारीरिक मुद्राओं में परिवर्तन,
प्रकाश के विषय पर चिंतन;
खुले में रहना,
अच्छी दोस्ती और
लाभदायक बातचीत।
(4) बेचैनी और चिंता
मन की बेचैनी या उत्तेजना। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो सभी प्रकार की अनैतिक चेतना से जुड़ी होती है। आमतौर पर बुराई किसी उत्तेजना या बेचैनी के साथ की जाती है। चिंता या तो किए गए बुरे कार्य पर पश्चाताप है या अधूरे अच्छे कार्य पर। अपने बुरे कार्य पर पश्चाताप करने से उसके अपरिहार्य परिणामों से मुक्ति नहीं मिलती। सर्वोत्तम पश्चाताप उस बुरे कार्य को न दोहराने का संकल्प है। ये दोनों ही बाधाएं ध्यान , सुख या प्रसन्नता के कारक से दूर हो जाती हैं। अरहतत्व प्राप्त करने पर बेचैनी दूर हो जाती है और अनागामी अवस्था प्राप्त करने पर चिंता दूर हो जाती है ।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ इन दोनों अवस्थाओं के उन्मूलन में सहायक होती हैं:
विद्वत्ता या ज्ञान,
प्रश्न पूछना या चर्चा करना,
विनय पद्धति की प्रकृति को समझना ,
वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ संगति,
अच्छी दोस्ती और
लाभदायक बातचीत।
5) संदेह या अनिर्णय।
वह अवस्था जिसमें ज्ञान का उपचार नहीं है। इसे उलझन भरे विचारों के कारण होने वाली बेचैनी के रूप में भी समझाया गया है। यहाँ इसका प्रयोग बुद्ध आदि के प्रति संदेह के अर्थ में नहीं किया गया है, क्योंकि गैर-बौद्ध भी विचिचिः को नियंत्रित करते हैं और ध्यान प्राप्त करते हैं। विचिचिः एक बंधन के रूप में बुद्ध आदि के प्रति संदेह है, परन्तु एक बाधा के रूप में यह किसी विशेष कार्य में अस्थिरता को दर्शाता है। विचिचिः की व्याख्या किसी भी बात को निश्चित रूप से तय न कर पाने की असमर्थता के रूप में की गई है। दूसरे शब्दों में, यह अनिर्णय है।
यह अवस्था चिंतन कारक — विचार , निरंतर अभ्यास — द्वारा बाधित होती है। सोतापत्ति प्राप्त होने पर यह समाप्त हो जाती है ।
निम्नलिखित छह स्थितियाँ इसके उन्मूलन में सहायक होती हैं:
धम्म और विनय का ज्ञान,
चर्चा या प्रश्नोत्तर,
विनय अनुशासन की प्रकृति की समझ ,
अत्यधिक आत्मविश्वास,
अच्छी दोस्ती, और
लाभदायक बातचीत।
[ निर्वाण पर एक और टिप्पणी: मन के लिए बाधाएँ, जो हमारी मानसिक दृष्टि को अंधा कर देती हैं ।]
इनके साक्षात स्वरूप हम एकाग्रचित्त और पूर्ण एकाग्रता प्राप्त नहीं कर पाते और सत्य को स्पष्ट रूप से नहीं पहचान पाते। ये हैं: इंद्रिय-संबंधी इच्छा, द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और संशय, और संदेह।

इन उपमाओं में, कामुक इच्छा की तुलना अनेक रंगों से मिश्रित जल से, द्वेष की तुलना उबलते जल से, आलस्य और सुस्ती की तुलना काई से ढके जल से, बेचैनी और संशय की तुलना वायु से प्रचंड जल से, और संशयपूर्ण संदेह की तुलना मैले और कीचड़युक्त जल से की गई है। जैसे ऐसे जल में व्यक्ति अपना प्रतिबिंब नहीं देख पाता, वैसे ही इन पाँच मानसिक बाधाओं की उपस्थिति में व्यक्ति न तो अपना लाभ स्पष्ट रूप से देख पाता है, न ही दूसरों का, और न ही दोनों का। प्रथम समाधि में प्रवेश करने पर पाँच बाधाओं के अस्थायी निलंबन के संबंध में, सूत्र पाठ इस प्रकार है:

"उसने कामुक इच्छाओं का त्याग कर दिया है; वह कामुक इच्छाओं से मुक्त हृदय से निवास करता है; वह अपने हृदय को इच्छाओं से शुद्ध करता है।"

"उसने द्वेष को त्याग दिया है; वह द्वेष रहित हृदय से निवास करता है, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है, वह अपने हृदय को द्वेष से शुद्ध करता है।"

"उसने आलस्य और सुस्ती को त्याग दिया है; वह आलस्य और सुस्ती से मुक्त रहता है; प्रकाश से प्रेम करते हुए, सजग मन से, निर्मल चेतना से, वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है।"

"उसने बेचैनी और शंकाओं को त्याग दिया है; शांत मन से, शांति से भरे हृदय से रहते हुए, वह अपने मन को बेचैनी और शंकाओं से शुद्ध करता है।"

"उसने संशयपूर्ण संदेह को त्याग दिया है; संदेह से मुक्त होकर, अच्छाई में पूर्ण विश्वास रखते हुए, वह अपने हृदय को संदेह से शुद्ध करता है।"

"उसने इन पाँच बाधाओं को दूर कर दिया है और मन के इन अपंग करने वाले दोषों को जान लिया है। और इंद्रिय-संबंधी भावनाओं से दूर, अस्वास्थ्यकर चीजों से दूर, वह प्रथम समाधि में प्रवेश करता है।"

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इन पाँच बाधाओं पर ध्यान केंद्रित करके काबू पाना केवल एक अस्थायी निवारण है, जिसे 'दमन द्वारा विजय' कहा जाता है। चार अलौकिक मार्गों में प्रवेश करने पर ये बाधाएँ हमेशा के लिए लुप्त हो जाती हैं, अर्थात् सोतापन्न अवस्था में पहुँचने पर संशयपूर्ण संदेह; अनागामी अवस्था में पहुँचने पर कामुक इच्छा, द्वेष और मानसिक चिंता ; और अरहत अवस्था में पहुँचने पर आलस्य, सुस्ती और बेचैनी ।

संबोधि अंगेसु : ज्ञान प्राप्ति के लिए सहायक कारक। ये सात कारक हैं जो ज्ञान प्राप्ति में सहायक होते हैं। इन्हें भोज्ज्ण कहा जाता है । सत्य की खोज करने वाले का ज्ञान प्राप्ति के इन सात कारकों के प्रति दृष्टिकोण नीचे दिया गया है:

सत्य की खोज करने वाला भली-भांति जानता है कि 'मुझमें सजगता का ज्ञान तत्व है', और जब यह तत्व मौजूद नहीं होता, तब भी वह जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अनुत्पन्न सजगता का ज्ञान तत्व कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न सजगता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्ति कैसे होती है। जब धम्मविचय (वास्तविकता की खोज) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तब वह भली-भांति जानता है कि 'मुझमें वास्तविकता की खोज का ज्ञान तत्व है'; जब यह मौजूद नहीं होता, तब भी वह जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि वास्तविकता की खोज का ज्ञान तत्व कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न सजगता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्ति कैसे होती है।

जब ऊर्जा ( वीर्य ) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भलीभांति जानता है कि 'मेरे पास ऊर्जा का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तो वह भलीभांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भलीभांति जानता है कि अनुत्पन्न ऊर्जा के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है। जब आनंद ( पीति ) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भलीभांति जानता है कि 'मेरे पास आनंद का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तो वह भलीभांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भलीभांति जानता है कि अनुत्पन्न आनंद के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट आनंद के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

जब शांति का ज्ञान तत्व ( पासद्धि ) मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मेरे पास शांति का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता है, तो वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अजन्मे शांति के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट शांति के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा पूर्णता कैसे प्राप्त होती है।

जब समाधि (एकाग्रता का ज्ञान तत्व ) मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मेरे पास एकाग्रता का ज्ञान तत्व है', और जब यह मौजूद नहीं होता है, तो वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अजन्मे एकाग्रता के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट एकाग्रता के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

जब समभाव ( उपेक्खा ) का ज्ञान तत्व मौजूद होता है, तो व्यक्ति भली-भांति जानता है कि 'मुझमें समभाव का ज्ञान तत्व मौजूद है', और जब यह मौजूद नहीं होता, तब भी वह भली-भांति जानता है कि यह अनुपस्थित है; वह भली-भांति जानता है कि अनप्रकट समभाव के ज्ञान तत्व का उद्भव कैसे होता है, और प्रकट समभाव के ज्ञान तत्व की ध्यान द्वारा सिद्धि कैसे होती है।

इस प्रकार सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति धम्मों का चिंतन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, और इस संसार में किसी भी चीज से आसक्ति नहीं रखता।

इस प्रकार एक शिष्य ज्ञान प्राप्ति के सात कारकों के संदर्भ में धर्मों का चिंतन करते हुए जीवन व्यतीत करता है।

बोज्झंग : 'ज्ञान प्राप्ति के सात कारक' हैं: सजगता, नियमों का अध्ययन, ऊर्जा, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव। "क्योंकि ये ज्ञान प्राप्ति की ओर ले जाते हैं, इसलिए इन्हें ज्ञान प्राप्ति के कारक कहा जाता है।"

इन सात कारकों को त्रिविध ज्ञान प्राप्त करने का साधन माना जाता है।

इन्हें ध्यान की चार आधारशिलाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। बुद्ध ने कहा:

(1) "हे भिक्षुओं, जब भी कोई भिक्षु सांसारिक लोभ और दुःख को वश में करके, परिश्रमपूर्वक, स्पष्ट रूप से सचेत होकर, सचेतन होकर शरीर ( काय ), वेदना , चित्त और मन के विषयों ( धम्म ) का चिंतन करता है, उस समय उसकी चेतना स्थिर और अविचलित रहती है; और जब भी उसकी चेतना स्थिर और अविचलित रहती है, उस समय वह ज्ञान के कारक 'चेतना' ( सति-संबोज्झंग ) को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है, और इस प्रकार ज्ञान का यह कारक पूर्णता तक पहुँच जाता है।

(2) "जब भी वह सचेतनता से रहते हुए बुद्धिमानी से विधि का अन्वेषण, परीक्षण और चिंतन करता है, तो उस समय वह 'विध्वंस-विचार' ( धम्म-विचार ) नामक ज्ञान के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।"

(3) "जब भी, बुद्धिमानी से जांच करते हुए उसकी ऊर्जा दृढ़ और अविचलित होती है, उस समय उसने ज्ञानोदय की ऊर्जा ( विरिया ) का कारक प्राप्त कर लिया होता है और विकसित कर रहा होता है।

(4) "जब भी उसमें, ऊर्जा में दृढ़ रहते हुए, ऐसी अवस्था में अलौकिक परमानंद उत्पन्न होता है, तो वह ज्ञानोदय परमानंद ( पीति ) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।"

(5) "जब भी, मन में समाधि की अवस्था में, उसका शरीर और मन इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं कि वह ज्ञानोदय की शांति ( पासद्धि ) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।"

(6) "जब भी, अपने शरीर में शांत और प्रसन्न रहते हुए, उसका मन एकाग्र हो जाता है, तो वह ज्ञानोदय एकाग्रता ( समाधि ) के कारक को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।"

(7) "जब भी वह ऐसे समय में अपने एकाग्र मन को पूर्ण उदासीनता से देखता है, तो वह ज्ञान के कारक 'समभाव' ( उपेक्खा ) को प्राप्त कर लेता है और विकसित कर रहा होता है।"

कन्हं धम्मं : दूषित विचार और प्रथाएँ — वे गतिविधियाँ और मान्यताएँ जो मुक्ति की प्राप्ति के लिए अनुकूल नहीं हैं।

okā amokaṃ : सांसारिक जीवन के ज्ञात सुख-सुविधाओं से बेघर जीवन की ओर।

tatrābhiratimiccheyya : उसमें आनंद लेता है (जो मुक्ति है)।

akiñcano : सब कुछ त्याग देना और संपत्तिहीन हो जाना।

चित्तकलेसेही : वे दोष जो मन को दूषित करते हैं।

ādānapatinissagge : लालच करने की प्रवृत्ति से बचना।

loke parinibbute : उन्होंने इसी जीवन (इस संसार) में मुक्ति प्राप्त कर ली है।

परिनिर्वाण : निर्वाण में प्रवेश। बौद्ध साहित्य में यह अभिव्यक्ति विशेष रूप से बुद्ध के निधन से जुड़ी है, हालांकि इसका प्रयोग किसी भी अरहत के संदर्भ में किया जा सकता है। यह पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति को भी संदर्भित करता है। बौद्ध धर्मग्रंथों में बुद्ध के परिनिर्वाण का विस्तृत वर्णन है। बुद्ध के अंतिम क्षणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है: बुद्ध ने प्रथम समाधि ( झान ) प्राप्त की। इससे बाहर निकलकर उन्होंने क्रमशः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ समाधि प्राप्त की। चतुर्थ समाधि से बाहर निकलकर उन्होंने आकाशणंचायतन (आकाश की अनंतता का क्षेत्र) प्राप्त किया। इससे बाहर निकलकर उन्होंने चेतना की अनंतता ( विञ्ञणंचायतन ) का क्षेत्र प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने शून्यता के क्षेत्र ( आकिंचन्यातना ) को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र' ( नेव सञ्ञा नासाञ्ञायतना ) को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'बोध और संवेदनाओं की समाप्ति' ( सञ्ञावेदयित-निरोध ) को प्राप्त किया ।

फिर बुद्ध ने 'बोध और संवेदनाओं के अंत' से निकलकर 'न बोध और न बोध के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'शून्यता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'चेतना की अनंतता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने 'अंतरिक्ष की अनंतता के क्षेत्र' को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने चौथी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने तीसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने दूसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने तीसरी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने चौथी समाधि प्राप्त की। इससे निकलकर और तुरंत बाद, बुद्ध का अंत हो गया।

अध्याय 7. अरहंतवग्गा: अरहंत (90-99)
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 90

---

(धम्मपद 87, 88 और 89) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 90 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 91)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 90 - जीवकपन्हा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
गतद्धिनो(1) विसोकास्सा
vippamuttassa sabbadhi
सब्बागंथप्पहिनासा(2)
parilaho na vijjati.

---

श्लोक 90 : जिस अरहत की यात्रा समाप्त हो गई है, जो दुःख और सभी (जैसे कि खन्ध समुच्चय) से मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को नष्ट कर दिया है, उसके लिए अब कोई दुःख नहीं है।

---

1. गतद्धिनो: यात्रा समाप्त हो गई है। यहाँ 'यात्रा' का अर्थ पुनर्जन्मों का चक्र (संसार) है।
2. सब्बगंथप्पहिनास्सा: वह व्यक्ति जिसने सभी बंधनों को तोड़ दिया हो। यहाँ 'बंधन' का अर्थ है लोभ, दुर्भावना और गलत दृष्टिकोण।

---

जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी
जीवक के आम के बाग वाले मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने जीवक द्वारा बुद्ध से पूछे गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (90) कहा।
एक बार देवदत्त ने गिज्जकूट पर्वत (गिद्ध शिखर) की चोटी से एक बड़ा पत्थर धकेलकर बुद्ध को जान से मारने का प्रयास किया। पत्थर पर्वत के किनारे एक चट्टान से टकराया और उसका एक टुकड़ा बुद्ध के पैर के अंगूठे में जा लगा। बुद्ध को जीवक के आम के बाग में स्थित मठ में ले जाया गया। वहाँ, प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक ने बुद्ध की देखभाल की; उन्होंने बुद्ध के अंगूठे पर दवा लगाई और पट्टी बाँध दी। जीवक फिर शहर में एक अन्य रोगी को देखने चले गए, लेकिन शाम को लौटकर पट्टी हटाने का वादा किया। जब जीवक उस रात लौटे, तो शहर के द्वार पहले ही बंद हो चुके थे और वे उस रात बुद्ध से मिलने नहीं आ सके। वे बहुत दुखी थे क्योंकि यदि समय पर पट्टी नहीं हटाई जाती, तो पूरा शरीर बहुत गर्म हो जाता और बुद्ध बहुत बीमार पड़ जाते।
लगभग इसी समय, बुद्ध ने थेरा आनंद से अपने पैर के अंगूठे से पट्टी हटाने को कहा और पाया कि घाव पूरी तरह से ठीक हो गया था। अगले दिन सुबह जीवक मठ में आया और बुद्ध से पूछा कि क्या उन्हें पिछली रात बहुत दर्द और पीड़ा हुई थी। बुद्ध ने उत्तर दिया, "जीवक! जब से मैंने बुद्धत्व प्राप्त किया है, तब से मुझे कोई दर्द या पीड़ा नहीं हुई है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 90 : जिस अरहत की यात्रा समाप्त हो गई है, जो दुःख और सभी (जैसे कि खन्ध समुच्चय) से मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को नष्ट कर दिया है, उसके लिए अब कोई दुःख नहीं है।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

जीवक द्वारा पूछे गए प्रश्न की कहानी

जीवक के आम के बागों वाले मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जीवक द्वारा बुद्ध से पूछे गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार देवदत्त ने अजातसत्तु के साथ मिलकर गिद्ध शिखर पर चढ़ाई की और दुष्टतावश मन ही मन "मैं बुद्ध को मार डालूँगा" कहते हुए एक चट्टान फेंकी। दो पर्वतीय चट्टानों ने चट्टान को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया; परन्तु एक टुकड़ा बुद्ध के चरणों में जा लगा जिससे रक्त बहने लगा। बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई और भिक्षु उन्हें मद्दकुच्ची ले गए। जीवक के आम के बाग में जाने की इच्छा से बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "मुझे वहाँ ले चलो।" तब भिक्षु बुद्ध को ले गए और उन्हें जीवक के आम के बाग में पहुँचा दिया। जब जीवक ने यह खबर सुनी, तो वे तुरंत बुद्ध के पास गए और घाव पर मरहम लगाया। फिर उन्होंने घाव पर पट्टी बाँधी और बुद्ध से कहा, "आदरणीय, शहर में मेरा एक रोगी है। जैसे ही मैं उससे मिल कर वापस आऊँगा। मेरे लौटने तक यह पट्टी ऐसे ही रहने दें।" ऐसा कहकर जीवक अपने रोगी का उपचार करने चला गया। परन्तु जब वह लौटा तो द्वार बंद था, इसलिए वह अंदर नहीं जा सका। तब उसके मन में यह विचार आया, "मैंने एक गंभीर गलती कर दी है। मैंने बुद्ध के पैर पर कसैला पदार्थ लगाया और उनके घाव पर पट्टी बाँध दी, ठीक वैसे ही जैसे मैं किसी अन्य मनुष्य के घाव पर बाँधता। अब पट्टी हटाने का समय आ गया है। क्योंकि यदि पट्टी रात भर खुली रही तो बुद्ध को बहुत पीड़ा होगी।"

उसी क्षण बुद्ध ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, जीवक शाम को देर से लौटा और द्वार से प्रवेश नहीं कर सका। उसके मन में यह विचार आया, 'अब पट्टी हटाने का समय आ गया है।' इसलिए पट्टी हटा दीजिए।" इसके बाद वह निशान पेड़ की छाल की तरह गायब हो गया। भोर होते ही जीवक बुद्ध के पास पहुंचा और पूछा, "पूज्यवर, क्या आपको तीव्र पीड़ा हुई?" बुद्ध ने कहा, "जीवक, बुद्ध के लिए समस्त पीड़ा का अंत हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे जब वे ज्ञान के सिंहासन पर बैठे थे।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 90)

गताद्धिनो विशोकस्सा सब्बाधि विप्पमुत्तस्सा

सब्बगंथप्पाहिनास्सा परिधाहो न विज्जति

गतद्धिनो [ गतद्धिना ]: जो लोग यात्रा के अंत पर हैं; विस्कोकासा : दुःखरहित; सब्बाधि : सभी चीजों में; विप्पामुत्तस्सा : पूर्णतः मुक्त; सब्बगंथप्पाहिनास्सा : खुद को सभी बंधनों से पूरी तरह मुक्त कर लिया है; परिषाहो [ परिषाहा ]: चिंता; न विज्जति : (उनमें) नहीं होता

वे अपनी यात्रा के अंत पर हैं — मुक्ति की उनकी खोज सफल हो चुकी है। वे शोकमुक्त हैं और उनका मन पूर्णतः मुक्त है। उन्होंने सभी बंधनों से मुक्ति पा ली है और अब कोई बंधन उन्हें बांध नहीं सकता। उनमें कोई चिंता नहीं है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 90)

गतद्धिनो : वह व्यक्ति जिसने पूर्णतः मार्ग तय कर लिया हो, जिसने संपूर्ण यात्रा कर ली हो—वही अरहत कहलाता है। मनुष्य दो प्रकार के मार्ग अपना सकता है। एक है वन्य जीवन का मार्ग। दूसरा है जीवन चक्रों का मार्ग—जो संसार कहलाता है । वन्य जीवन पाँच प्रकार का होता है। पहला है डाकुओं का वन्य जीवन, जहाँ लूटपाट और हत्या करने वाले डाकुओं का वर्चस्व होता है। दूसरा है जंगली पशुओं का वन्य जीवन, जहाँ क्रूर पशु अपना प्रभुत्व जमाते हैं। तीसरा है जलहीन वन्य जीवन, जहाँ पीने या धोने के लिए पानी नहीं होता। चौथा है अमानवीय और उपमानवीय जीवों का वन्य जीवन, जहाँ राक्षसों और दानवों का वर्चस्व होता है। पाँचवाँ है खाद्यहीन वन्य जीवन, जहाँ खाने योग्य कोई वस्तु नहीं मिलती। परन्तु जब अरहतों को गतद्धिनो —वे जिन्होंने मार्ग तय कर लिया हो—के रूप में वर्णित किया जाता है, तो इसका तात्पर्य जीवन चक्रों के मार्ग से है। अरहतों ने संसार के माध्यम से अपनी यात्रा पूरी कर ली है ।

जिसने सभी बंधनों का त्याग कर दिया है, उसे sabba ganthappahīnassa । बंधन चार प्रकार के होते हैं। वे इस प्रकार हैं:

अभिज्जा : लोभ: दूसरों की संपत्ति की लालसा करना;

व्यापाद : दुर्भावना; दूसरों के प्रति घृणा, आक्रोश और क्रोध;

सिलब्बता-परमासा : पराभिषेकित अनुशासन;

idam saccābhiniveso [ saccābhinivesa ]: वह पूर्वाग्रह कि जो मैं मानता हूँ वह पूरी तरह सत्य है और बाकी सब असत्य हैं।

ये चार बंधन व्यक्ति को बार-बार होने वाले अस्तित्व ( संसार ) से जकड़ कर रखते हैं।

जीवक : बुद्ध के निजी चिकित्सक। बुद्ध ने जीवक के लिए यह श्लोक कहा था। जन्म के तुरंत बाद जीवक को उसकी माता, जो एक वेश्या थी, ने ताबूत में रखकर सड़क किनारे कूड़े के ढेर पर फेंक दिया था। राजा बिम्बिसार के पुत्र राजकुमार अभय, जो संयोगवश उस रास्ते से गुजर रहे थे, ने असहाय शिशु को कौवों से घिरा हुआ देखा और यह जानकर कि वह जीवित है ( जीवती ), उसे दाइयों की देखभाल में सौंप दिया। जीवित पाए जाने के कारण उसका नाम जीवक रखा गया। एक राजकुमार द्वारा गोद लिए जाने पर, उसे कोमारभच्च कहा जाने लगा। बड़े होकर वह एक कुशल चिकित्सक और सर्जन बने। ग्रंथों में लिखा है कि उन्होंने एक करोड़पति के दो

सफल ऑपरेशन किए थे, जो गंभीर सिरदर्द से पीड़ित थे। वह दिन में तीन बार बुद्ध की सेवा करते थे। इस घटना में जब देवदत्त द्वारा फेंके गए पत्थर के टुकड़े से बुद्ध के पैर में चोट लग गई, तो जीवक ने ही उनकी सेवा की और उन्हें ठीक किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 91

———————————————————————————

(धम्मपद 90) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 91 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 92)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 91 - महाकस्सापत्थेरा वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Uyyunjanti satimanto
na nikete ramanti te
हम्सवा पल्ललम हित्वा
okamokam jahanti te.

———————————————————————————

श्लोक 91 : सचेतन लोग (शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में) लगन से प्रयास करते हैं; वे घर में (अर्थात् इंद्रिय सुखों के जीवन में) आनंद नहीं लेते; जैसे हंस (हंस) कीचड़ भरे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही वे सभी गृहस्थी जीवन (अर्थात् सभी लालसाओं) का त्याग कर देते हैं।

———————————————————————————

थेरा महाकस्सपा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकस्सपा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (91) कहा।

एक बार बुद्ध ने वर्षा ऋतु (तीन महीने) राजगृह में कई भिक्षुओं के साथ बिताई। वर्षा ऋतु समाप्त होने से लगभग दो सप्ताह पहले, बुद्ध ने भिक्षुओं को सूचित किया कि वे जल्द ही राजगृह छोड़कर जा रहे हैं और उन्हें प्रस्थान की तैयारी करने को कहा। कुछ भिक्षुओं ने नए वस्त्र सिले और रंगे, कुछ ने पुराने वस्त्र धोए। जब कुछ भिक्षुओं ने महाकस्सपा को अपने वस्त्र धोते देखा, तो उन्होंने सोचा, "राजगृह के अंदर और बाहर इतने सारे लोग हैं जो थेरा महाकस्सपा से प्रेम और सम्मान करते हैं और उनकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं; क्या यह संभव है कि थेरा अपने गृहस्थ भक्तों को यहाँ छोड़कर बुद्ध के साथ कहीं और चले जाएँ?"

पंद्रह दिनों के अंत में, अपने प्रस्थान की पूर्व संध्या पर, बुद्ध ने सोचा कि भिक्षादान समारोह, भिक्षुओं का दीक्षा संस्कार, अंत्येष्टि आदि जैसे कुछ अवसर आ सकते हैं, इसलिए सभी भिक्षुओं का प्रस्थान करना उचित नहीं होगा। अतः उन्होंने निर्णय लिया कि कुछ भिक्षुओं को वेलुवन मठ में ही रहना चाहिए और इसके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति थेरा महाकस्सपा होंगे। फलस्वरूप, थेरा महाकस्सपा कुछ कनिष्ठ भिक्षुओं के साथ राजगृह में ही रहे।

तब दूसरे भिक्षुओं ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "महाकस्सपा बुद्ध के साथ नहीं गए, जैसा कि हमने भविष्यवाणी की थी!" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और उनसे कहा, "भिक्षुओं! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मेरा पुत्र कस्सपा राजगृह के अपने गृहस्थ शिष्यों और उनके द्वारा दी

गई वस्तुओं से आसक्त है? तुम घोर भ्रम में हो। मेरा पुत्र कस्सपा मेरे मार्गदर्शन में यहाँ रहता है; वह यहाँ किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 91 : सचेतन लोग (शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में) लगन से प्रयास करते हैं; वे घर में (अर्थात् इंद्रिय सुखों के जीवन में) आनंद नहीं लेते; जैसे हंस (हंस) कीचड़ भरे तालाब को त्याग देते हैं, वैसे ही वे सभी गृहस्थी जीवन (अर्थात् सभी लालसाओं) का त्याग कर देते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महाकस्सपा की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, वर्षा ऋतु के दौरान राजगृह में निवास करने के बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं से यह घोषणा की, "पखवाड़े भर बाद मैं भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर जाऊंगा।" लेकिन जब भिक्षु अपने प्याले गर्म कर रहे थे और अपने वस्त्रों को रंग रहे थे, तब पूज्य महाकस्सपा ने अपने वस्त्र धोए। भिक्षु इससे नाराज हो गए और बोले, "पूज्य महाकस्सपा अपने वस्त्र क्यों धो रहे हैं? इस नगर में और इसके बाहर एक सौ अस्सी करोड़ लोग रहते हैं। इनमें से जितने लोग पूज्य महाकस्सपा के रिश्तेदार नहीं हैं, उतने ही उनके समर्थक हैं; और जितने लोग उनके समर्थक नहीं हैं, उतने ही उनके रिश्तेदार हैं। ये सभी लोग पूज्य महाकस्सपा को चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करके उनका आदर और सम्मान करते हैं। यदि वे इन सभी सेवाओं को ठुकरा दें, तो वे कहाँ जाएँगे? यदि वे जा भी जाएँ, तो वे मापमादा गुफा से आगे नहीं जा पाएँगे।" (मापमादा गुफा का नाम इस प्रकार पड़ा: जब भी बुद्ध इस गुफा में पहुँचते थे, तो वे वापस जाने वाले भिक्षुओं से कहते थे, "अब आप वापस जा सकते हैं; लापरवाह मत बनो — मा पमज्जित्था ।" इस प्रकार इस गुफा का नाम मापमादा गुफा पड़ गया।)

इसी प्रकार, बुद्ध ने अपनी तीर्थयात्रा पर निकलते समय सोचा, "इस नगर के भीतर और बाहर एक सौ अस्सी मिलियन लोग निवास करते हैं, और सार्वजनिक उत्सवों या आपदाओं के समय भिक्षुओं को वहाँ जाना पड़ता है। इसलिए मठ को खाली छोड़ना संभव नहीं है। लेकिन क्या मैं उन सभी को वापस लौटने का निर्देश दूँ?" तब उनके मन में यह विचार आया, "ये लोग या तो महाकस्सपा के रिश्तेदार हैं या उनके सेवक; इसलिए मुझे महाकस्सपा को ही वापस लौटने का निर्देश देना चाहिए।" तदनुसार उन्होंने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "महाकस्सपा, मठ को खाली छोड़ना संभव नहीं है, क्योंकि सार्वजनिक उत्सवों या आपदाओं के समय भिक्षुओं की आवश्यकता होती है; इसलिए अपने दल को साथ लेकर वापस लौट जाइए।" "बहुत अच्छा, पूज्य," पूज्य महाकस्सपा ने उत्तर दिया और अपने दल को साथ लेकर वापस लौट गए।

भिक्षुओं को यह सुनकर ठेस पहुंची और उन्होंने कहा, "भाइयों, क्या आपने ध्यान दिया? क्या हमने अभी-अभी यह नहीं कहा था, 'महाकस्सपा अपने वस्त्र क्यों धो रहे हैं? वे बुद्ध के साथ नहीं जाएंगे।' सब कुछ वैसा ही हुआ जैसा हमने कहा था।" जब बुद्ध ने भिक्षुओं की बातें सुनीं, तो वे मुड़े, स्थिर खड़े हो गए और बोले, "भिक्षुओं, यह आप क्या कह रहे हैं?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "हम पूज्य महाकस्सपा के बारे में बात कर रहे हैं, पूज्य।" फिर उन्होंने अपनी बातचीत शब्दशः दोहराई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर उत्तर दिया, "भिक्षुओं, आप कहते हैं, 'महाकस्सपा अपने घर-परिवार और अपनी आवश्यकताओं से आसक्त हैं।' वास्तव में, वे इसलिए वापस लौटे क्योंकि वे मेरी आज्ञा का पालन करना चाहते थे। क्योंकि पिछले जन्म में उन्होंने एक गंभीर इच्छा की थी और चंद्रमा के समान आसक्ति से मुक्त हो गए थे। उन्होंने यह गंभीर इच्छा की थी, 'मुझे अपने समर्थकों के घरों तक पहुंचने की अनुमति मिले।'" महाकस्सपा को घर-परिवार या किसी वस्तु से कोई लगाव नहीं है। महाकस्सपा से आरंभ करके, मैंने सभी को चंद्रमा के समान मार्ग का उपदेश दिया, जो चुने हुए लोगों का मार्ग है। मेरे पुत्र को कहीं भी कोई लगाव नहीं है, बल्कि वह एक राजसी हंस के समान है जो किसी झील में उतरता है, तैरता है और वहीं ठहर जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 91)

सतीमंतो उय्युञ्जन्ति ते निकेते न रमन्ति

ते पल्ललं हित्वा हंसा इव ओकामोकं जहांति

satīmanto [ jahanti satīmanta ]: वे सचेतन; uyyuñjanti : निरंतर अभ्यास करते हैं; te : वे; nikete : आसक्ति में; na ramanti : रुचि नहीं लेते; te pallalaṃ hitvā iva : जैसे झील छोड़ देना; haṃsā : हंस; okamokaṃ [ okamoka ]: सभी स्थायी निवास; jahanti : छोड़ देना (त्याग देना)

सचेत रहने वाले लोग अपनी एकाग्रता को हमेशा बनाए रखने का प्रयास करते हैं। वे निवास या बस्तियों से बिल्कुल भी आसक्त नहीं होते। सभी स्थायी जीवन स्थलों को त्यागकर वे हंसों की तरह मन की स्वतंत्रता में उड़ जाते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 91)

सतीमन्तो : वे जो सजग हैं। सति का अर्थ है ध्यान, निरंतर सतर्कता। आत्मनिरीक्षण संबंधी सजगता, पाँच आध्यात्मिक शक्तियों और गुणों में से एक है, ज्ञानोदय के सात कारकों में से एक है, और अष्टांगिक मार्ग की सातवीं कड़ी है, और अपने व्यापक अर्थ में, उन मानसिक कारकों में से एक है जो कर्मिक रूप से सभी लाभकारी और कर्म-जनित उच्चतर मानसिक अवस्थाओं से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं।
अरहंत : अरहंत 'मैं' और 'मेरा' की अवधारणा से मुक्त होकर किसी विशेष स्थान से लगाव रखे बिना जहाँ चाहें वहाँ विचरण करते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 92

---

(धम्मपद 91) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 92 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 93)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 92 - बेलत्थसिसत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yesam sannicayo(1 natthi
ये परिन्नतभोजन(2)
सुन्नतो(3) अनिमित्टो(4) सीए
vimokkho(5) yesam gocaro
akaseva sakuntnam
gati tesam durannaya(6).

---

श्लोक 92 : अरहत किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते; भोजन ग्रहण करते समय वे उस पर अच्छी तरह विचार करते हैं (अर्थात तीनों परिणतियों के अनुसार)। उनका उद्देश्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण प्राप्त करना है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में पक्षियों के मार्ग की तरह, उनके गंतव्य का पता नहीं लगाया जा सकता।

---

1. सन्निकयो: संचय करना। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है कर्म और उसके प्रभावों का संचय करना या चारों आवश्यकताओं में से किसी एक का संचय करना।
2. परिन्नतभोजन: तीन परिन्नों के अनुसार भोजन ग्रहण करना। टीका के अनुसार, भिक्षु को भोजन के संबंध में तीन परिन्नों का पालन करना चाहिए, अर्थात् (क) नटपरिन्न, ग्रहण किए जा रहे भोजन की सही प्रकृति का ज्ञान होना, (ख) तिरनापरिन्न, भौतिक भोजन की नीचता के प्रति आश्वस्त होना, और (ग) ग्रहणपरिन्न, भोजन से प्राप्त सभी सुखों का त्याग करना।
3. सुन्नत: शून्य। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है भोग-विलास से मुक्त होना। यह निर्वाण का एक विशेषण है।
4. अनिमित्तम्: चिह्नहीन। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है लालसा, द्वेष और अज्ञान का कोई चिह्न न होना। यह निर्वाण का एक विशेषण भी है।
5. विमोक्खो: अस्तित्व से मुक्ति; निर्वाण।
6. गति तेसम दुरन्नया: उनके गंतव्य का पता नहीं लगाया जा सकता क्योंकि अरहतों ने व्यथा को मिटा दिया है और वे पुनर्जन्म के अधीन नहीं हैं।

---

थेरा बेलात्थासिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा बेलात्थासिसा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (92) कहा।

थेरा बेलात्थासिसा गाँव में भिक्षा मांगने के बाद रास्ते में रुके और वहीं भोजन किया। भोजन करने के बाद वे और भोजन इकट्ठा करने के लिए भिक्षा मांगने निकल पड़े। जब उनके पास पर्याप्त भोजन इकट्ठा हो गया, तो वे मठ लौट आए, चावल सुखाकर जमा कर लिया। इस प्रकार, उन्हें प्रतिदिन भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं रही; वे दो-तीन दिन ध्यान में लीन रहे। ध्यान से उठने के बाद उन्होंने जमा किए हुए सूखे चावल को पानी में भिगोकर खाया। अन्य भिक्षुणियों को इस कारण थेरा के प्रति दुर्भावना हुई और उन्होंने बुद्ध को उनके चावल जमा करने की सूचना दी। तब से भिक्षुओं द्वारा भोजन जमा करना निषिद्ध है।

थेरा बेलात्थासिस के मामले में, चूंकि उन्होंने जमाखोरी पर नियम बनने से पहले चावल का भंडारण किया था और उन्होंने ऐसा भोजन के लालच से नहीं, बल्कि केवल ध्यान अभ्यास के लिए समय बचाने के लिए किया था, इसलिए बुद्ध ने घोषणा की कि थेरा पूरी तरह से निर्दोष थे और उन्हें दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 92 : अरहत किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते; भोजन ग्रहण करते समय वे उस पर अच्छी तरह विचार करते हैं (अर्थात तीनों परिणतों के अनुसार)। (7) उनका उद्देश्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। उनका गंतव्य, आकाश में पक्षियों के मार्ग की तरह, अज्ञात है।

---

(7) परिन्नतभोजन: तीन परिन्नों के अनुसार भोजन ग्रहण करना। टीका के अनुसार, भिक्षु को भोजन के संबंध में तीन परिन्न रखने चाहिए, अर्थात् (क) नटपरिन्न, ग्रहण किए जा रहे भोजन की सही प्रकृति का ज्ञान होना, (ख) तिरनापरिन्न, भौतिक भोजन की नीचता के प्रति आश्वस्त होना, और (ग) ग्रहणपरिन्न, भोजन से प्राप्त सभी सुखों का त्याग करना।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय बेलात्थिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य बेल्लात्थिसा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय बेल्लाथिसीसा ने गाँव में भिक्षा मांगने के बाद रास्ते में रुककर भोजन किया। भोजन करने के बाद वे और भोजन इकट्ठा करने के लिए भिक्षा मांगने निकल पड़े। जब उनके पास पर्याप्त भोजन एकत्रित हो गया, तो वे मठ लौट आए, चावल सुखाकर जमा कर लिया। इस प्रकार, उन्हें प्रतिदिन भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं रही; वे दो-तीन दिन तक ध्यान में लीन रहे। ध्यान से उठने के बाद उन्होंने जमा किए हुए सूखे चावल को पानी में भिगोकर खाया। अन्य भिक्षुओं को इस कारण थेरा के प्रति दुर्भावना हुई और उन्होंने बुद्ध को उनके चावल जमा करने की सूचना दी। तब से भिक्षुओं द्वारा भोजन जमा करना निषिद्ध है।

पूज्य बेल्लाथिसीसा के संबंध में, चूंकि उन्होंने जमाखोरी पर नियम बनने से पहले चावल का भंडारण किया था और चूंकि उन्होंने ऐसा भोजन के लालच से नहीं, बल्कि केवल ध्यान अभ्यास के लिए समय बचाने के लिए किया था, इसलिए बुद्ध ने घोषणा की कि थेरा पूरी तरह से निर्दोष थे और उन्हें दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 92)

येसं सन्निकयो नत्थि ये परिण्णतभोजन

यस्सा सुननतो अनिमितो विमोक्खो सीए गोकारो

तेसं गति आकाशे सकुन्तनं इव दुन्नेया

हाँṃ [ हाँ ]: उन (मुक्त व्यक्तियों) के लिए; सन्निकायो नत्थि : कोई संग्रह नहीं है; तु : वे; परिण्त्याभोजन : भोजन की प्रकृति की समझ से भरपूर ; यस्सा : किससे; सुननतो [ सुननता ]: ख़ालीपन; अनिमित्तो [ अनिमित्ता ]: वस्तुहीनता; विमोक्खो [ विमोक्खा ]: मन की स्वतंत्रता; सीए गोकारो [ गोकारा ]: क्षेत्र हैं; तेसं गति : उनका ठिकाना; आकाशे सकुन्तनं इव : आकाश में पक्षियों की तरह; दुरन्नया : समझना या जानना कठिन है

इस पूर्ण समझ के साथ कि प्रकृति खाली और वस्तुहीन है, मन लालसा से मुक्त हो जाता है और उड़ते हुए पक्षियों के पथ की तरह अपने ठिकाने का कोई निशान नहीं छोड़ता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 92)

सन्निकयो नत्थि : संचय नहीं। विकसित पुरुष—संत पुरुष—किसी भी चीज़ का संचय नहीं करते। यह कथन दो प्रकार से सत्य है। यह स्पष्ट है कि वे सांसारिक आवश्यकताओं और भौतिक वस्तुओं का संचय नहीं करते। वे न तो नए पुण्य अर्जित करते हैं और न ही पाप।

वे नए कर्म भी अर्जित नहीं करते। इसी कारण उनका पुनर्जन्म नहीं होता। एक अर्हत पुण्य कर्म कर सकता है, लेकिन उस कर्म के लिए उसे कोई नया पुण्य अर्जित नहीं होता।

अरहत : यह श्लोक अरहत के विशेष गुणों पर प्रकाश डालता है। तो फिर, अरहत कौन हैं? वे हैं जो मार्ग का अनुसरण करते हैं और अनुभूति की सर्वोच्च अवस्था ( अरहत्ता ) तक पहुँचते हैं, जो दुखों से अंतिम मुक्ति है।

मुझ जैसे विजेता वास्तव में वे ही हैं, जिन्होंने विकारों का अंत किया है।

अरहतों ने सूक्ष्मतम आसक्तियों सहित सभी आसक्तियों का त्याग कर दिया है। इसलिए, एक अरहत का मन केवल शून्यता, वस्तुहीनता और विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता में विचरण करता है।

बुद्ध ने अपने शिष्यों को स्वयं और अपने शिष्यों अरहतों के बीच का अंतर स्पष्ट कर दिया था। बुद्ध ने घोषणा की थी कि दोषों से मुक्ति और परम मोक्ष के मामले में वे उनके समर्थ हैं।

हे शिष्यों, बुद्ध अरहत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं।

जो व्यक्ति किसी अनकहे मार्ग का प्रचार करता है, वही मार्ग का ज्ञाता, मार्ग का बोध करने वाला और मार्ग में निपुण होता है। अब उनके शिष्य उनके पदचिन्हों पर चलने वाले यात्री हैं। यही वह विशिष्टता है, वह विशेष गुण है जो अर्हत बुद्ध को, जो पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, अंतर्दृष्टि से मुक्त शिष्य से अलग करता है। संस्कृत में अर्हत का अर्थ है 'पूर्णतम', 'योग्य': ये उपाधियाँ केवल बुद्ध और उनके सिद्ध शिष्यों के लिए ही प्रयुक्त होती हैं। जैसा कि ग्रंथों में वर्णित है, इस शब्द का पहला प्रयोग बुद्ध ने स्वयं किया था। यह तब की बात है जब बुद्ध पाँच तपस्वियों को अपना प्रथम उपदेश देने के लिए गया से वाराणसी जा रहे थे। रास्ते में, गया से कुछ ही दूरी पर, बुद्ध की मुलाकात उपक नामक एक तपस्वी से हुई, जो गुरु के शांत स्वरूप से प्रभावित होकर उनसे पूछने लगा: 'आपके गुरु कौन हैं? आप किसकी शिक्षा का पालन करते हैं?'

बुद्ध ने श्लोकों में उत्तर देते हुए कहा:

'मैं निःसंदेह संसार का अरहत हूँ, मैं अतुलनीय शिक्षक हूँ...'

उन्होंने पांच तपस्वियों को संबोधित करते हुए दूसरी बार इस शब्द का प्रयोग किया: 'मैं एक अरहत हूं, एक तथागत हूं, पूर्णतः प्रबुद्ध हूं।'

यह शब्द केवल उन्हीं के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्होंने सभी दोषों को पूर्णतः नष्ट कर दिया हो। इस अर्थ में, बुद्ध संसार के प्रथम अरहत थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं उपका को बताया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 93

---

(धम्मपद 92) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 93 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 94)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 93 - अनुरुद्धथेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassasa va parikkhina
ahare ca anissito
सुन्नतो अनिमितो सीए
vimokkho yassa gocaro
akaseva sakuntanam
padam tassa durannayam.

---

श्लोक 93 : अरहत नैतिक आसक्तियों से मुक्त है; वह भोजन से आसक्त नहीं है। उसका लक्ष्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में उड़ते पक्षियों की तरह उसका मार्ग भी अज्ञात है।

---

थेरा अनुराधा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (93) कहा।

एक दिन थेरा अनुरुद्ध अपने पुराने वस्त्र के गंदे और फटे होने के कारण कूड़े के ढेर में से कुछ कपड़े के टुकड़े ढूंढ रहे थे ताकि उनसे एक नया वस्त्र बना सकें। उनकी पिछली जन्म की पत्नी जलिनी, जो अब देवलोक में थीं, ने उन्हें देखा। यह जानकर कि वे कपड़ा ढूंढ रहे हैं, उन्होंने अच्छे देवलोक के तीन टुकड़े लिए और उन्हें कूड़े के ढेर में इस तरह रख दिया कि वे मुश्किल से दिखाई दें। थेरा को वे कपड़े के टुकड़े मिल गए और वे उन्हें मठ ले गए। जब वे वस्त्र बना रहे थे, तभी बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यों और वरिष्ठ शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे और उन्होंने भी वस्त्र सिलने में मदद की।

इसी बीच, जलिनी एक युवती का रूप धारण करके गाँव में आई और उसे बुद्ध और उनके शिष्यों के आगमन के बारे में पता चला, साथ ही यह भी कि वे थेरा अनुराधा की किस प्रकार सहायता कर रहे थे। उसने ग्रामीणों से मठ में स्वादिष्ट भोजन भेजने का आग्रह किया, जिसके परिणामस्वरूप सभी के लिए पर्याप्त से अधिक भोजन उपलब्ध हो गया। अन्य भिक्षुओं ने इतनी अधिक मात्रा में भोजन देखकर थेरा को दोषी ठहराया और कहा, "थेरा अनुराधा को अपने रिश्तेदारों और शिष्यों से केवल पर्याप्त भोजन भेजने के लिए कहना चाहिए था; शायद वह केवल अपने भक्तों की संख्या का प्रदर्शन करना चाहते थे।" उन भिक्षुओं से बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह मत सोचो कि मेरे पुत्र अनुराधा ने अपने रिश्तेदारों और शिष्यों से चावल का दलिया और अन्य भोजन भेजने के लिए कहा है। मेरे पुत्र थेरा ने कुछ भी नहीं माँगा; अरहत भोजन और वस्त्र जैसी बातों पर चर्चा नहीं करते। आज सुबह मठ में जो अतिरिक्त भोजन लाया गया है, वह किसी मनुष्य के कारण नहीं बल्कि एक दिव्य प्राणी की प्रेरणा से है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 93 : अरहत नैतिक आसक्तियों से मुक्त है; वह भोजन से आसक्त नहीं है। उसका लक्ष्य अस्तित्व से मुक्ति, अर्थात् निर्वाण है, जो शून्य और निराकार है। आकाश में उड़ते पक्षियों की तरह उसका मार्ग भी अज्ञात है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अनुरुद्ध की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, पूज्यवर, जिनके वस्त्र फटे-पुराने हो गए थे, कूड़े के ढेरों और इसी तरह के अन्य स्थानों पर वस्त्रों की तलाश कर रहे थे। पूज्यवर के तीसरे पूर्व जन्म में उनकी एक पत्नी थीं, जिनका पुनर्जन्म तैंतीस लोकों में देवी जालिनी के रूप में हुआ था। जब देवी ने पूज्यवर को वस्त्रों की तलाश करते देखा, तो उन्होंने उनकी सहायता करने का निश्चय किया। इसलिए उन्होंने तेरह हाथ लंबे और चार हाथ चौड़े तीन दिव्य वस्त्र लिए और मन ही मन सोचा, "यदि मैं इन वस्त्रों को इस प्रकार प्रदर्शित करूँगी, तो पूज्यवर इन्हें नहीं लेंगे," और वे उस ढेर के सामने एक कूड़े के ढेर पर गईं जहाँ पूज्यवर वस्त्रों की तलाश कर रहे थे और उन्हें इस प्रकार बिछा दिया कि केवल उनके किनारे ही दिखाई दे रहे थे।

वस्त्र लेकर वे अपने मार्ग पर चल दिए। जिस दिन उन्हें अपने वस्त्र सिलने थे, उस दिन बुद्ध अपने अनेक भिक्षुओं के दल के साथ मठ गए और बैठ गए; अस्सी प्रमुख भिक्षु भी वहीं बैठ गए। वस्त्र सिलने के लिए, पूज्य कस्सपा महान भिक्षु चरणों में, पूज्य सारिपुत्त मध्य में और पूज्य आनंद शीर्ष पर बैठे। भिक्षुओं के समूह ने धागा काता, बुद्ध ने सुई में धागा डाला और पूज्य मोग्गलाना इधर-उधर घूमकर अन्य आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराते रहे।

देवी ने गाँव में प्रवेश किया और निवासियों को दान देने के लिए प्रेरित करते हुए कहा, "वे मेरे परम पूज्य अनुराधा के लिए वस्त्र बना रहे हैं। बुद्ध अपने अस्सी प्रमुख शिष्यों से घिरे हुए और अपने अनेक भिक्षुओं के दल के साथ मठ में गए हैं और वहाँ विराजमान हैं। चावल की दलिया और अन्य भोजन लेकर मठ जाओ।" भोजन के दौरान पूज्य मोग्गलाना गुलाब-सेब के बड़े-बड़े टुकड़े लाए, लेकिन भिक्षु उन्हें खा नहीं सके। सक्का ने उस स्थान के चारों ओर एक घेरा बनाया जहाँ वस्त्र बनाए जा रहे थे; धरती मानो लाख से रंगी हुई थी; भोजन करने वाले भिक्षुओं के लिए नरम और कठोर भोजन का एक बड़ा ढेर बचा हुआ था।

भिक्षु नाराज हो गए और बोले, "इतने कम भिक्षुओं के लिए इतनी अधिक मात्रा में भोजन क्यों दिया गया है?" जब उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई, तो उन्होंने कहा, "लेकिन, भिक्षुओं, क्या आप यह सोचते हैं कि यह अनुराधा के किसी आदेश से लाया गया है?" "जी, पूज्यवर; हम यही सोचते हैं।" "भिक्षुओं, मेरे पुत्र अनुराधा इस प्रकार बातें नहीं करते। जो भिक्षु विकारों से मुक्त हो चुके हैं, वे

आवश्यकताओं के बारे में बात करने में अपना समय व्यतीत नहीं करते; बल्कि, यह भोजन एक देवी की अलौकिक शक्ति से उत्पन्न हुआ है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 93)

यस्सा आसव परिक्खिण अहारे च अनिसिटो यस्सा
सुननतो अनिमितो सीए विमोक्खो गोकारो तासा
पदं आकाशे सकुन्तनं इव दुर्न्नयम्

यस्सा : किसका; आसव : कलंक; परिक्खिना : थका हुआ (चला गया); आहारे च : भोजन में भी; अनिसिटो [ अनिसिटा ]: संलग्न नहीं; यस्सा : किससे; सुननतो [ सुननता ]: ख़ालीपन; एनिमिट्टो सीए : और ऑब्जेक्टलेसनेस; विमोक्खो गोकारो [ गोकारा ]: मुक्ति उनका क्षेत्र है; तस्स पदं [ पद ]: उनका मार्ग; आकाशे : आकाश में; सकुन्तनं इव : पक्षियों के समान; दूरन्नयं [ durannaya ]: देखा नहीं जा सकता

यदि कोई व्यक्ति आंतरिक या बाह्य, उन सभी प्रभावों से पूरी तरह मुक्त हो जाए जो मानवीय व्यवहार को प्रेरित करते हैं, और भोजन से भी आसक्त न हो, तो ऐसा व्यक्ति अपना ध्यान शून्यता, उद्देश्यहीनता और विचारों की स्वतंत्रता पर केंद्रित करता है। ऐसे संतों का मार्ग आकाश में उड़ते पक्षियों के मार्ग की तरह ही जटिल होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 93)

आसवा : आमतौर पर इसे दोष, प्रवाह, दूषित पदार्थ, भ्रष्टता, मादक पदार्थ, पूर्वाग्रह के रूप में अनुवादित किया जाता है। हम इस शब्द (द + स अव = प्रवाह) का अनुवाद व्यवहार को प्रेरित करने वाले प्रभाव के रूप में करते हैं। सूत्रों में चार प्रभावों का उल्लेख है: 1) कामुक इच्छाओं की ओर झुकाव ( कामासव ); 2) अस्तित्व की ओर झुकाव ( भवासव ); 3) विश्वासों की ओर झुकाव ( दित्थासव ); और 4) अज्ञानता की ओर झुकाव ( अविज्जासव )। सूत्रों में तीन प्रभावों की एक सूची भी मिलती है, जिसमें विचारों की ओर झुकाव को छोड़ दिया गया है। यह चार-भाग का विभाजन 'बाढ़' और 'जुए' के नाम से भी मिलता है।

जल-प्रवेश के मार्ग से विचारों का प्रभाव नष्ट होता है; अनासक्ति के मार्ग से इंद्रिय-इच्छाओं का प्रभाव नष्ट होता है; अरहतत्व के मार्ग से अस्तित्व और अज्ञान का प्रभाव नष्ट होता है। बुद्ध अंतर्दृष्टि, इंद्रिय-नियंत्रण, संयम और जीवन की आवश्यकताओं के बुद्धिमानीपूर्ण उपयोग के माध्यम से इन प्रभावों पर विजय प्राप्त करने के तरीके बताते हैं।

खीनासाव , जिसका अर्थ है जिसके प्रभाव नष्ट हो गए हों, या जो प्रभाव-मुक्त हो, अरहत या पवित्र व्यक्ति का एक नाम है। अरहतत्व की अवस्था को अक्सर आसवक्खय कहा जाता है , जिसका अर्थ है 'प्रभावों का नाश'। श्रोताओं द्वारा अरहतत्व की प्राप्ति के साथ समाप्त होने वाले सूत्र अक्सर इन शब्दों के साथ समाप्त होते हैं, "इस उच्चारण के दौरान, भिक्षुओं के हृदय आसक्ति न रहने के कारण प्रभावों से मुक्त हो गए।"

आसव शब्द का अर्थ आवेग, प्रेरणा, विवशता, प्रेरणा या प्रभाव हो सकता है। यह तन्हा शब्द के समान है, जिसका सामान्य अनुवाद लालसा के रूप में किया जाता है। तन्हा भी तीन प्रकार की होती है: काम तन्हा ; अस्तित्व की प्यास ; और अस्तित्वहीनता की प्यास ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 94

---

(धम्मपद 93) <<<< पिछला || धम्मपद 94 || अगला >>>> (धम्मपद 95)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 94 - महाकच्चयनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yasindriyani samathangatani

assa yatha sarathina sudanta
pahinamanassa anasavassa
देवपि तस्स पिहायन्ति तडिनो(1)।

---

श्लोक 94 : वह अरहत जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़ों की तरह शांत हैं, जो अहंकार और नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त है - ऐसा अरहत देवताओं को भी प्रिय होता है।

---

1. तदिनो: वह व्यक्ति जो शांत और स्थिर हो या जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित न हो (लोकधम्म)।

---

थेरा महाकाकायन की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महाकच्चयन के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (94) का उच्चारण किया।
पूर्णिमा के दिन, जो वर्षा ऋतु का अंत भी था, सक्का अपने साथ कई देवदूतों को लेकर बुद्ध को प्रणाम करने आए। बुद्ध उस समय विशाखा द्वारा निर्मित पुब्बाराम मठ में निवास कर रहे थे। उस समय बुद्ध की सेवा में मुख्य शिष्य और सभी वरिष्ठ भिक्षु उपस्थित थे। थेरा महाकच्चयन, जिन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने अवंती में बिताए थे, अभी तक नहीं आए थे, इसलिए उनके लिए एक आसन खाली रखा गया था। सक्का ने बुद्ध को फूल, धूप और इत्र चढ़ाकर प्रणाम किया। खाली आसन देखकर उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि काश थेरा महाकच्चयन भी आ जाएं ताकि वे उन्हें भी प्रणाम कर सकें। उसी क्षण महाकच्चयन आ गए; सक्का अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने भी उन्हें फूल, धूप और इत्र चढ़ाकर प्रणाम किया।
भिक्षु सक्का द्वारा महाकच्चयन को प्रणाम करने से विस्मित थे, परन्तु कुछ भिक्षुओं को लगा कि सक्का महाकच्चयन के प्रति पक्षपात कर रहा है। उन्हें बुद्ध ने कहा, "जो अपनी इंद्रियों पर संयम रखता है, वह मनुष्यों और देवताओं दोनों का प्रिय होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 94 : वह अरहत जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा अच्छी तरह से वश में किए गए घोड़ों की तरह शांत हैं, जो अहंकार और नैतिक मादक पदार्थों से मुक्त है - ऐसा अरहत देवताओं को भी प्रिय होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महाकच्चायन की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महाकच्चायन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, अंतिम पर्व के अवसर पर, बुद्ध मिगार की माता के भवन के भूतल पर, प्रख्यात गृहस्थ शिष्यों के समूह से घिरे हुए बैठे थे। उस समय पूज्य कच्चायन अवंती देश में निवास करते थे। यद्यपि पूज्य कच्चायन को बहुत दूर से आना पड़ता था, फिर भी वे नियमित रूप से धम्म प्रवचनों में भाग लेते थे। इसलिए, जब पूज्य शिष्य बैठते थे, तो वे हमेशा पूज्य कच्चायन के लिए एक स्थान खाली छोड़ देते थे।
देवताओं के राजा सक्का अपने दिव्य दल के साथ दोनों लोकों से बुद्ध के पास आए और दिव्य सुगंधों और मालाओं से उनका सम्मान किया। पूज्य कच्चायन को न देखकर उन्होंने मन ही मन सोचा, “मेरे परम पूज्य बुद्ध कहीं क्यों नहीं दिखाई दे रहे? यदि वे आ जाएँ तो अच्छा होगा।” उसी क्षण पूज्य बुद्ध आ गए और अपने उचित स्थान पर बैठे हुए दिखाई दिए। सक्का ने जब पूज्य बुद्ध को देखा, तो उन्होंने उनके टखनों को कसकर पकड़ लिया और कहा, “यह सचमुच अच्छा है कि मेरे परम पूज्य बुद्ध आ गए हैं; मेरे परम पूज्य बुद्ध का आना ही तो मेरी कामना थी।” ऐसा कहकर उन्होंने दोनों हाथों से पूज्य बुद्ध के चरणों का मालिश किया, उन्हें सुगंधों और मालाओं से सम्मानित किया और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए।
भिक्षु नाराज हो गए और बोले, “सक्का आदर करने में व्यक्तियों का सम्मान करता है। उसने अन्य प्रमुख शिष्यों को ऐसा सम्मान नहीं दिया। पूज्य कच्चायन को देखते ही उसने उनके टखने पकड़ लिए और कहा, 'यह सचमुच अच्छा है कि मेरे पूज्य गुरु आए हैं; मेरे पूज्य गुरु का आना ही मेरी कामना थी।' ऐसा कहकर उसने दोनों हाथों से पूज्य गुरु के चरणों को मला, उन्हें इत्र और मालाओं से सम्मानित किया और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ खड़े हो गए।” बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, “भिक्षुओं, जो भिक्षु मेरे पुत्र कच्चायन की तरह अपनी इंद्रियों को वश में रखते हैं, वे देवताओं और मनुष्यों दोनों के प्रिय होते हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 94)
यस्सा इंद्रियाणि सारथिना सुदंता अस्स यथा समथं गतानि

पाहिणमानस्स अनासवस्स ताडिनो तस्स देवा अपि पिहयन्ति
यस्स : जिनके; इंद्रियानि : इंद्रियां; सारथिना : सारथी द्वारा नियंत्रित; सुदंता : अच्छी तरह से वश में; अस्स यथा : घोड़ों के समान; समथं [ समथ ]: शांति; गतानि : प्राप्त कर चुके; पहीनमानस्स : निर्णय त्याग दिया; अनासवस्स : निष्कलंक; तादिनो [ तादिन ]: मानसिक रूप से स्थिर; तस्स : उनकी (दृष्टि); देवा अपि: देवता भी; पिहयंति : (प्रसन्न होते हैं)।
जिनकी इंद्रियां एक प्रशिक्षित घुड़सवार द्वारा प्रशिक्षित घोड़े की तरह शांत हो जाती हैं, जिन्होंने पूर्णतः निर्णय लेने की क्षमता का त्याग कर दिया है, जो प्रभावों से मुक्त हैं, ऐसे मानसिक रूप से स्थिर व्यक्तियों को देखकर देवता भी प्रसन्न होते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 94)
इंद्रियनि । "इंद्रिय" सूत्रों में वर्णित छह इंद्रियों का नाम है। वे हैं:
आँख: चक्खु ;
कान: सोटा ;
नाक: घना ;
जीभ : जिव्हा
शरीर: काया ;
विचार: मानो ।
तादिनो : स्थिर; भीतर और बाहर के प्रभावों से अप्रभावित। बुद्ध चारों प्रकार से स्थिर हैं क्योंकि उन्होंने संसार में अपनी भ्रमण यात्रा समाप्त कर दी है।
इस मामले में वह चार तरीकों से स्थिर रहता है:
भगवा कामोघम तिन्नो [ तिन्ना ]: बुद्ध ने इच्छाओं की बाढ़ को पार कर लिया है।
भगवा भावोघम तिन्नो [ तिन्ना ]: बुद्ध ने अस्तित्व की बाढ़ को पार कर लिया है;
भगवा अविज्जोघम तिन्नो [ तिन्ना ]: बुद्ध ने अज्ञानता की बाढ़ को पार कर लिया है।
इन और अन्य अनेक कारणों से बुद्ध स्थिर, दृढ़ ( तादि ) हैं।
किसी व्यक्ति की स्थिरता वह भावनात्मक स्थिरता है जो देखी, सुनी, सूंघी, चखी या छुई गई चीजों पर प्रतिक्रिया न करने से आती है। प्रतिक्रिया चीजों को अच्छा या बुरा, सुखद या अप्रिय मानने से शुरू होती है। इंद्रियों को वश में रखना ( इन्द्रिय संवर ) प्रतिक्रिया को रोकता है। प्रतिक्रिया न करने पर इंद्रियां शांत हो जाती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 95

---

(धम्मपद 94) <<<< पिछला || धम्मपद 95 || अगला >>>> (धम्मपद 96)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 95 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Pathavisamo no virujjhati
indakhilupamo tadi subbato
rahadova apetakaddamo(1)
संसार ना भवन्ति तदिनो.

---

श्लोक 95 : पृथ्वी के समान, अरहत धैर्यवान होते हैं और क्रोधित नहीं होते; द्वार के चौखट के समान दृढ़ होते हैं; जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होते; कीचड़ रहित झील के समान शांत और शुद्ध होते हैं। ऐसे अरहत को पुनर्जन्म नहीं मिलेगा।

---

1. अपेतकद्दमो: कीचड़ से मुक्त। झील का पानी कीचड़ से मुक्त होने के कारण निर्दूषित होता है; अरहत भी दोषों से मुक्त होने के कारण शांत और शुद्ध होता है।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (95) का उच्चारण मुख्य शिष्य सारिपुत्त और एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया।

वर्षा ऋतु का अंत हो रहा था; थेरा सारिपुत्त अपने कुछ अनुयायियों के साथ यात्रा पर निकलने वाले थे। एक युवा भिक्षु, जो थेरा से कुछ द्वेष रखता था, बुद्ध के पास आया और झूठा आरोप लगाया कि थेरा सारिपुत्त ने उसका अपमान किया और उसे पीटा। इसलिए बुद्ध ने थेरा को बुलवाया और उनसे पूछताछ की, जिस पर थेरा सारिपुत्त ने इस प्रकार उत्तर दिया: “आदरणीय महोदय! एक भिक्षु, जो दृढ़ता से अपने मन को शरीर पर रखता है, एक साथी भिक्षु के साथ अन्याय करने के बाद बिना क्षमा मांगे यात्रा पर कैसे निकल सकता है? मैं पृथ्वी के समान हूँ, जिसे फूल डालने से कोई प्रसन्नता नहीं होती, न ही कूड़ा-करकट और मल-मूत्र डालने से कोई दुःख होता है। मैं पायदान, भिखारी, टूटे सींग वाले बैल के समान भी हूँ; मुझे भी शरीर की अशुद्धता से घृणा होती है और मैं अब उससे आसक्त नहीं हूँ।”

जब थेरा सारिपुत्त ने ऐसा कहा, तो युवा भिक्षु बहुत दुखी हुआ और फूट-फूटकर रोने लगा। उसने स्वीकार किया कि उसने मुख्य शिष्य सारिपुत्त के बारे में झूठ बोला था। तब बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त को सलाह दी कि वे युवा भिक्षु की क्षमा स्वीकार कर लें, अन्यथा उन पर भारी दंड पड़ेगा और उनका सिर कुचल दिया जाएगा। युवा भिक्षु ने अपनी गलती स्वीकार की और विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगी। थेरा सारिपुत्त ने युवा भिक्षु को क्षमा कर दिया और उनसे भी क्षमा मांगी कि यदि उन्होंने भी कोई गलती की हो।

वहाँ उपस्थित सभी लोग थेरा सारिपुत्त की प्रशंसा में बोले, और बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त के समान भिक्षु में क्रोध या द्वेष नहीं होता। पृथ्वी और द्वार के चौखट के समान, वे धैर्यवान, सहनशील और दृढ़ होते हैं; कीचड़ रहित झील के समान, वे शांत और पवित्र होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 95 : पृथ्वी के समान, अरहत धैर्यवान होते हैं और क्रोधित नहीं होते; द्वार के चौखट के समान दृढ़ होते हैं; जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होते; कीचड़ रहित झील के समान शांत और शुद्ध होते हैं। ऐसे अरहत को पुनर्जन्म नहीं मिलेगा।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मुख्य शिष्य सारिपुत्त और एक युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, वर्षा ऋतु के समापन पर, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षा मांगने के लिए तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा से बुद्ध से विदा ली, उन्हें प्रणाम किया और अपने दल के साथ प्रस्थान किया। कई अन्य भिक्षुओं ने भी पूज्य सारिपुत्त से विदा ली। भिक्षुओं को विदा करते समय पूज्य सारिपुत्त ने उन सभी भिक्षुओं के व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम का उल्लेख किया, जिन्हें उनके व्यक्तिगत और पारिवारिक नामों से जाना जाता था। एक भिक्षु, जिसका कोई व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम नहीं था, ने कहा, “काश, पूज्य सारिपुत्त मुझे भी मेरे व्यक्तिगत और पारिवारिक नाम से संबोधित करते।” लेकिन भिक्षुओं की विशाल भीड़ में, पूज्य सारिपुत्त ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब भिक्षु ने मन ही मन कहा, “वे मुझे अन्य भिक्षुओं की तरह संबोधित नहीं करते,” और तुरंत पूज्य सारिपुत्त के प्रति द्वेष भाव धारण कर लिया।

इसके अलावा, पूज्य सारिपुत्त के वस्त्र का किनारा भिक्षु के शरीर से छू गया, जिससे पूज्य सारिपुत्त के प्रति भिक्षु की घृणा और भी बढ़ गई। इसलिए, जैसे ही उसे पता चला कि पूज्य सारिपुत्त मठ के प्रवेश द्वार से आगे निकल गए हैं, वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, “पूज्यवर, पूज्य सारिपुत्त ने, निःसंदेह यह सोचते हुए कि 'मैं आपका प्रमुख शिष्य हूँ,' मुझे एक ऐसा प्रहार किया जिससे मेरा कान लगभग घायल हो गया। ऐसा करने के बाद, मुझसे क्षमा मांगे बिना ही, वह भिक्षायात्रा पर निकल पड़े।” बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को बुलवाया।

आदरणीय सारिपुत्त अन्य भिक्षुओं के साथ आए, बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। जब बुद्ध ने उनसे घटना के बारे में पूछा, तो उस आदरणीय ने "मैंने उस भिक्षु को नहीं मारा" कहने के बजाय अपने सद्गुणों का वर्णन किया।

जब पूज्य सारिपुत्त ने अपने गुणों का बखान किया, तो उस भिक्षु के पूरे शरीर में पश्चाताप की अनुभूति हुई जिसने उन पर अन्यायपूर्वक निंदा की थी। वह तुरंत बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा, अपनी निंदा स्वीकार की और अपने अपराध का प्रायश्चित किया। बुद्ध ने पूज्य

सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, “सारिपुत्त, इस भ्रमित व्यक्ति को क्षमा कर दीजिए, अन्यथा उसका सिर सात टुकड़ों में फट जाएगा।” तब पूज्य सारिपुत्त भिक्षु के सामने झुक गए और आदर की मुद्रा में हाथ जोड़कर उनसे कहा, “पूज्यवर, मैं इस पूज्य भिक्षु को क्षमा करता हूँ। यदि मैंने किसी भी प्रकार से उनका अपमान किया हो, तो वे भी मुझे क्षमा कर दें।” तब भिक्षुओं ने कहा, “देखिए, भाइयों, पूज्य सारिपुत्त की असाधारण अच्छाई! वे इस झूठे, निंदा करने वाले भिक्षु के प्रति न तो क्रोध रखते हैं और न ही घृणा। इसके बजाय, वे उनके सामने झुकते हैं, आदर की मुद्रा में हाथ जोड़ते हैं और उनसे क्षमा मांगते हैं।” जब बुद्ध ने भिक्षुओं की बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, आप लोग क्या कह रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, सारिपुत्त और उनके जैसे लोगों के लिए क्रोध या घृणा रखना असंभव है। सारिपुत्त का मन विशाल पृथ्वी के समान, एक दहलीज के समान, शांत जल के तालाब के समान है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 95)

सुब्बतो पथविसामो नो विरुज्जति इंदखिलुपमो तदि
रहदो इव अपेटाकद्दमो ताडिनो संसार न भवन्ति

सबबेटो [ सबबेटा ]: अच्छी तरह से संचालित; पृथ्वी के समान पथविसामो ; नो विरुज्जति : किसी का विरोध नहीं करता; इंदखिलुपमो [ इंदखिलुपमा ]: एक किले की मीनार की तरह; ताड़ी : स्थिर; रहदो इव : समुद्र के समान; एपेटाकद्दमो [ एपेटाकद्दमा ]: कीचड़ से रहित; टैडिनो [ टैडीना ]: स्थिर; संसार : (उसके लिए) अस्तित्व में भटक रहा है; न भवन्ति : नहीं होता

श्रेष्ठ अरहत चाहे उनके साथ कुछ भी किया जाए, कभी क्रोधित नहीं होते। वे नगर द्वारों की रक्षा करने वाले स्तंभों के समान दृढ़ और अविचल होते हैं। वे निर्मल सागर और झीलों के समान निर्मल और शांत होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति जीवन के चक्र में भटकना छोड़ देते हैं ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 95)

इंदखीला : या तो सक्का के स्तंभ के समान दृढ़ और ऊँचा स्तंभ, या किसी किले या शहर के प्रवेश द्वार पर स्थित मुख्य मीनार। टीकाकारों का कहना है कि ये इंदखीलाएँ शहर के अंदर या बाहर सजावट के रूप में खड़ी की जाने वाली मजबूत मीनारें होती हैं। आमतौर पर ये ईंटों या टिकाऊ लकड़ी से बनी होती हैं और अष्टकोणीय आकार की होती हैं। स्तंभ का आधा भाग जमीन में धंसा होता है, इसीलिए इसका प्रयोग ' इंदखीला के समान दृढ़ और स्थिर ' के रूप में किया जाता है।

तादिनो : तादि वह है जिसे न तो वांछनीय वस्तुओं से आसक्ति होती है और न ही अवांछनीय वस्तुओं से घृणा। न ही वह किसी चीज से चिपका रहता है। आठ सांसारिक स्थितियों—लाभ और हानि, यश और अपयश, निंदा और प्रशंसा, सुख और दुःख—के बीच भी अरहंत अविचलित रहता है, न तो आसक्ति प्रकट करता है और न ही घृणा, न ही उल्लास और न ही अवसाद।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 96

---

(धम्मपद 95) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 96 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 97)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 96 - कोसाम्बिवसिटिससत्थेरसामनेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Santam tassa manam hoti
सांता वाका सीए कम्मा सीए
सम्मदन्ना विमुत्तस्सा
upasantassa tadino.

---

श्लोक 96 : एक अर्हत अपने मन में शांत, अपनी वाणी में शांत और अपने कर्मों में भी शांत होता है; धम्म को सही मायने में जानने वाला ऐसा अर्हत नैतिक दोषों से मुक्त होता है और जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होता।

---

कोसंबी की एक समनेरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (96) का उच्चारण किया, जो कोसंबी से थेरा तिस्सा के शिष्य समनेरा के संदर्भ में था।

एक बार, सात वर्षीय एक लड़के को उसके पिता के अनुरोध पर समनेर बनाया गया। सिर मुंडवाने से पहले लड़के को ध्यान का एक विषय दिया गया। जब उसका सिर मुंडवाया जा रहा था, तब भी लड़के का मन पूरी तरह से ध्यान के विषय पर केंद्रित था; परिणामस्वरूप, सिर मुंडवाने के तुरंत बाद ही उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

कुछ समय बाद, थेरा तिस्सा, समनेरा के साथ, बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी के लिए रवाना हुए। रास्ते में, उन्होंने एक रात एक गाँव के मठ में बिताई। थेरा सो गए, लेकिन युवा समनेरा पूरी रात वृद्ध थेरा के पलंग के पास बैठे रहे। सुबह तड़के, वृद्ध थेरा ने युवा समनेरा को जगाने का सोचा। इसलिए उन्होंने ताड़ के पत्ते के पंखे से समनेरा को जगाया, और गलती से पंखे के हैंडल से समनेरा की आँख पर चोट लग गई। समनेरा ने एक हाथ से अपनी आँख ढँक ली और थेरा के लिए चेहरा धोने और मुँह साफ करने के लिए पानी लाने, मठ का फर्श साफ करने आदि जैसे अपने कर्तव्यों को पूरा करने लगे। जब युवा समनेरा ने एक हाथ से थेरा को पानी दिया, तो थेरा ने उन्हें डाँटा और कहा कि उन्हें दोनों हाथों से वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिए। तभी थेरा को पता चला कि समनेरा की आँख कैसे चली गई। उसी क्षण उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने एक सच्चे नेक व्यक्ति के साथ अन्याय किया है। अत्यंत दुखी और अपमानित महसूस करते हुए, उन्होंने समनेरा से क्षमा मांगी। लेकिन समनेरा ने कहा कि यह न तो थेरा की गलती थी, न ही उनकी अपनी गलती, बल्कि यह केवल कर्मों का फल था, इसलिए थेरा को इस पर दुखी नहीं होना चाहिए। लेकिन थेरा इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से उबर नहीं पाए।

फिर उन्होंने श्रावस्ती की ओर अपनी यात्रा जारी रखी और जेतवन मठ पहुंचे, जहां बुद्ध निवास कर रहे थे। तब थेरा ने बुद्ध को बताया कि उनके साथ आया युवा समनेरा अब तक मिले सभी लोगों में सबसे श्रेष्ठ था, और उन्होंने रास्ते में घटी सारी बातें बताईं। बुद्ध ने उनकी बात सुनी और उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, एक अरहत किसी पर क्रोधित नहीं होता; वह अपनी इंद्रियों पर संयम रखता है और पूर्णतः शांत और स्थिर रहता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 96 : एक अर्हत अपने मन में शांत, अपनी वाणी में शांत और अपने कर्मों में भी शांत होता है; धम्म को सही मायने में जानने वाला ऐसा अर्हत नैतिक दोषों से मुक्त होता है और जीवन के उतार-चढ़ाव से विचलित नहीं होता।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोसंबी के एक नवोदित भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसंबी के पूज्य तिस्सा के एक शिष्य, एक नवोदित भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कोसंबी में रहने वाले एक प्रतिष्ठित परिवार के युवक ने संसार त्याग कर बुद्ध धर्म में भिक्षु बनने का निश्चय किया। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद वे पूज्य कोसंबीवासी तिस्सा के नाम से जाने गए। वर्षा ऋतु के दौरान कोसंबी में निवास करने के बाद, उनके एक अनुयायी ने तीन वस्त्रों का एक समूह और घी एवं ताड़ की चीनी की भेंट लाकर उनके चरणों में अर्पित की। उन्होंने कहा, "पूज्यवर, यदि यह सच है कि आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई शिष्य नहीं है, तो मेरा पुत्र आपका शिष्य बनेगा।" पूज्यवर ने सहर्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस गृहस्थ शिष्य ने अपने सात वर्षीय पुत्र को पूज्यवर के पास लाकर उन्हें सौंप दिया और कहा, "कृपा करके इसे संघ में ग्रहण करें।" पूज्यवर ने बालक के बालों को भिण्ड किया, उसे शरीर के पाँच स्थिर अंगों पर ध्यान करना सिखाया और उसे संघ में ग्रहण कर लिया। जैसे ही उस्तरा उनके बालों को छूआ, उन्हें अर्हतत्व और अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो गईं। पूज्य गुरु ने उस युवक को संघ में शामिल करने के बाद कोसंबी में दो सप्ताह तक निवास किया। फिर बुद्ध से मिलने का निश्चय करके उन्होंने उस शिष्य को आवश्यक सामग्री लेने का निर्देश दिया और अपनी यात्रा पर निकल पड़े। रास्ते में वे एक मठ में पहुँचे। उस शिष्य ने पूज्य गुरु के लिए आवास की व्यवस्था की और उसकी देखभाल की। जब वे इस कार्य में लगे थे, अंधेरा हो गया और वे स्वयं के लिए आवास की व्यवस्था नहीं कर सके। अतः गुरु के पलंग के पास पालथी मारकर वे रात भर बैठे रहे।

आदरणीय गुरुजी भोर में उठे और मन ही मन बोले, "मुझे नौसिखिए को बाहर भेजना चाहिए।" अतः उन्होंने पलंग के पास रखा पंखा उठाया, ताड़ के पत्ते के सिरे से नौसिखिए की चटाई पर प्रहार किया और फिर पंखा हवा में उछालते हुए कहा, "नौसिखिए, बाहर जाइए।" पंखे का डंडा नौसिखिए की आँख में लगा और उसकी आँख तुरंत अंधी हो गई। नौसिखिए ने पूछा, "आदरणीय गुरुजी, आपने क्या

कहा?" उत्तर मिला, "उठिए और बाहर जाइए।" नौसिखिए ने यह कहने के बजाय कि "आदरणीय गुरुजी, मेरी आँख अंधी हो गई है," एक हाथ से अपनी आँख ढँक ली और बाहर चला गया। इतना ही नहीं, जब नौसिखिए के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने का समय आया, तो उसने न तो यह कहा कि "मेरी आँख अंधी हो गई है," और न ही वह बैठा रहा, बल्कि एक हाथ से अपनी आँख ढँक कर और दूसरे हाथ में झाड़ू लेकर उसने शौचालय और स्नानघर की सफाई की, और फिर चेहरा धोने के लिए पानी रखकर आदरणीय गुरुजी की कोठरी की सफाई की।

जब वह भिक्षु पूज्य भिक्षु को दाँत निकालने वाली छड़ी भेंट करने के लिए आगे बढ़ा, तो उसने भिक्षु को शुरू से पूरी कहानी सुनाई। जब पूज्य भिक्षु ने उसकी कहानी सुनी, तो वे अत्यंत व्यथित हुए। भिक्षु ने पूज्य भिक्षु को सांत्वना देने का प्रयास किया, लेकिन पूज्य भिक्षु वश में नहीं आए। पश्चाताप से व्याकुल होकर वे भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने उससे पूछा, "भिक्षु, क्या सब कुछ सचमुच ठीक है?" पूज्य भिक्षु ने उत्तर दिया, "मैं तो ठीक हूँ। लेकिन यहाँ एक भिक्षु है जिसके गुण मैंने आज तक देखे किसी भी गुण से कहीं बढ़कर हैं।" पूज्य भिक्षु ने उसे पूरी कहानी सुनाई। "पूज्य भिक्षु, जब मैंने उनसे क्षमा मांगी, तो उन्होंने कहा, 'इस मामले में न तो आपकी कोई गलती है और न ही मेरी।'" बुद्ध ने पूज्य भिक्षु से कहा, "भिक्षु, जो भिक्षु अपने पापों से मुक्त हो जाते हैं, वे किसी के प्रति न तो क्रोध रखते हैं और न ही घृणा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 96)

सम्मा अनन्याय विमुत्तस्स उपसंतस्स तादिनो
तस्स मनं संतं होति वाचा च संता कम्मं च

सम्मा : सामंजस्यपूर्ण; अनन्या : "अनजान" द्वारा; विमुत्तस्सा : मुक्त; उपसंतास्सा : भीतर से शांत; ताडिनो [ तादीना ]: स्थिर व्यक्ति; तस्स मनः [ मन ]: मन; संतं होति : शांत है; वाचा च : उसकी वाणी भी; कम्मं च : उसके कार्य भी; संता : (शांत हो गए हैं)

एक श्रेष्ठ अरहत, जो 'अज्ञान' से मुक्त हो चुका है, परिस्थितियों के बदलते प्रभाव से शांत और अविचलित रहता है। उसका मन शांत होता है। उसके शब्द शांत होते हैं। उसके कर्म शांत होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 96)

संत : शांत। संत अरहत वास्तव में शांत होते हैं। वे शांत इसलिए होते हैं क्योंकि उन्होंने पूर्ण 'अज्ञान' या ज्ञान से मुक्ति प्राप्त कर ली होती है, क्योंकि उन्होंने उस शांति का स्तर प्राप्त कर लिया होता है जो विचलित नहीं होती। चूंकि मन सभी गतिविधियों का स्रोत है, इसलिए उनके शब्द शांत होते हैं। चूंकि उनका मन और शब्द शांत होते हैं, इसलिए उनके कर्म भी शांत होते हैं। अतः वे व्यक्तित्व में पूर्ण रूप से शांत होते हैं। यह उन्हें पूर्ण शांति - उपसंत (भीतरी शांति) की स्थिति तक ले जाता है। 'अज्ञान' का अर्थ है कि व्यक्ति अतीत या वर्तमान के आधार पर परिस्थितियों के बारे में राय नहीं बनाता है। जब व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, तो वह अविचलित रहता है और शांत रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 97

———————————————————————

(धम्मपद 96) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 97 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 98)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 97 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Assadho akatannu ca
sandhicchedo ca yo naro;
hatavakaso vantaso(1)
sa ve uttamaporiso.

---

श्लोक 97. जो भोला नहीं है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने पुनर्जन्म के चक्र से खुद को मुक्त कर लिया है, जिसने अच्छे और बुरे कर्मों के सभी परिणामों को नष्ट कर दिया है, जिसने सभी लालसाओं का त्याग कर दिया है, वही वास्तव में सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है (अर्थात् एक अरहत)।

---

1. वंतासो: वह व्यक्ति जिसने सभी प्रकार की लालसाओं का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, वह व्यक्ति जिसने सभी प्रकार की लालसाओं को बाहर निकाल दिया है)।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (97) कहा।

एक गाँव से तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने के लिए जेतवन मठ में आए थे। बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए उन्होंने सारिपुत्त को बुलवाया और उन भिक्षुओं की उपस्थिति में पूछा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, क्या तुम यह स्वीकार करते हो कि इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "आदरणीय महोदय, इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त करने के विषय में, मैं इसे इसलिए स्वीकार नहीं करता क्योंकि मुझे आप पर विश्वास है; यह तो केवल वे लोग हैं जिन्होंने स्वयं निर्वाण प्राप्त नहीं किया है, जो दूसरों से यह तथ्य स्वीकार करते हैं।" सारिपुत्त का उत्तर भिक्षुओं को ठीक से समझ नहीं आया; उन्होंने सोचा, "सारिपुत्त ने अभी तक अपने गलत विचारों को नहीं छोड़ा है; अभी भी उसे बुद्ध पर विश्वास नहीं है।"

तब बुद्ध ने उन्हें सारिपुत्त के उत्तर का सही अर्थ समझाया। "भिक्षुओं, सारिपुत्त का उत्तर बस इतना है कि वह इस तथ्य को स्वीकार करता है कि इंद्रियों पर ध्यान करने से निर्वाण प्राप्त होता है, लेकिन उसकी यह स्वीकृति उसकी स्वयं की अनुभूति के कारण है, न कि केवल इसलिए कि मैंने या किसी और ने ऐसा कहा है। सारिपुत्त को मुझ पर विश्वास है; उसे अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों पर भी विश्वास है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 97 : जो भोला नहीं है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने पुनर्जन्म के चक्र से नाता तोड़ लिया है, जिसने अच्छे और बुरे कर्मों के सभी परिणामों को नष्ट कर दिया है, जिसने सभी लालसाओं का त्याग कर दिया है, वही वास्तव में सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है (अर्थात् एक अरहत)।

---

प्रवचन के अंत में, उन सभी भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन तीस वनवासी बुद्ध के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और बैठ गए। बुद्ध ने देखा कि उनमें अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं, इसलिए उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "सारिपुत्त, क्या आप मानते हैं कि आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ा होता है और अमरता में ही समाप्त होता है?" इस प्रकार बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त से पाँच नैतिक गुणों के संदर्भ में प्रश्न किया।

पूज्यवर ने कहा, "पूज्यवर, मैं इस विषय में बुद्ध की इस आस्था पर नहीं चलता कि आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ जाता है और अमरता में ही समाप्त हो जाता है। परन्तु पूज्यवर, जो लोग अमरता को नहीं जानते, न ही उसे देख पाए हैं, न ही उसका अनुभव कर पाए हैं, न ही उसे तर्क शक्ति से ग्रहण कर पाए हैं, ऐसे लोगों को इस विषय में दूसरों की आस्था पर चलना ही होगा; अर्थात्, आस्था का गुण, जब विकसित और विस्तृत हो जाता है, तो अमरता से जुड़ जाता है और अमरता में ही समाप्त हो जाता है।" इस प्रकार पूज्यवर ने उनके प्रश्न का उत्तर दिया।

जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो वे आपस में चर्चा करने लगे: "पूज्य सारिपुत्त ने कभी भी झूठे विचारों का त्याग नहीं किया। आज भी वे परम प्रबुद्ध व्यक्ति पर भी विश्वास करने से इनकार करते हैं।" जब बुद्ध ने यह सुना, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, तुम ऐसा क्यों कहते हो? क्योंकि मैंने सारिपुत्त से यह प्रश्न पूछा था, 'सारिपुत्त, क्या तुम मानते हो कि पाँच नैतिक गुणों को विकसित किए बिना, शांति और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त किए बिना, मनुष्य के लिए मार्ग और फल प्राप्त करना संभव है?' और उन्होंने मुझे इस प्रकार उत्तर दिया,

‘ऐसा कोई नहीं है जो इस प्रकार मार्ग और फल प्राप्त कर सके।’ तब मैंने उनसे पूछा, ‘क्या तुम यह नहीं मानते कि दान और अच्छे कर्मों का फल पकता है? क्या तुम बुद्धों और अन्य के गुणों में विश्वास नहीं करते?’” लेकिन वास्तव में, सारिपुत्त दूसरों के विश्वासों पर नहीं चलते, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही उन मानसिक अवस्थाओं को प्राप्त कर लिया है, जिनकी ओर मार्ग और फल ले जाते हैं, और यह सब उन्होंने समाधिमय ध्यान से उत्पन्न आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि की शक्ति से प्राप्त किया है। इसलिए वे निंदा के पात्र नहीं हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 97)

यो नरो असद्दो अकातान्नु कै संधिचेदो
हतावकासो वन्तसो च , सो वे उत्तमपोरिसो

यो नारो : एक व्यक्ति; असद्धो [ असद्धा ]: झूठे विचारों पर विश्वास न करने वाला; अकताञ्ञु : निर्वाण से अवगत; च संधिच्छेदो [ संधिच्छेदा ]: सभी संबंधों को त्यागने वाला; हतावकसो [ हतावकसा ]: सभी अवसरों को नष्ट करने वाला; वन्तसो [ वंतासा ]: सभी इच्छाओं का त्याग करने वाला; सो : वह; वे : बिना किसी संदेह के; उत्तमपोरिसो [ उत्तमपोरिसा ]: एक महान व्यक्ति है

उन्हें स्वयं के सिवा किसी और पर विश्वास नहीं है। वे अमरता—अप्रतिबंधित अवस्था—के साक्षी हैं। वे सांसारिक बंधनों को तोड़ चुके हैं, इसलिए वे सभी सांसारिक संबंधों से मुक्त हैं। उन्होंने पुनर्जन्म के सभी अवसरों को नष्ट कर दिया है। उन्होंने सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया है। इन सभी कारणों से वे—अरहत—वास्तव में एक महान व्यक्ति हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 97)

असद्धो : अविश्वासी; वह अपने और बुद्ध के विचारों पर इतना दृढ़ विश्वास रखता है कि उसे किसी और पर विश्वास करने की आवश्यकता ही नहीं होती।

akataññū : शाब्दिक रूप से, 'कृतघ्न'; परन्तु, इस संदर्भ में, 'बिना शर्त के प्रति जागरूक — अर्थात् निर्वाण '।

संधिच्छेदो : यह शब्द आमतौर पर सेंधमार को दिया जाता है, क्योंकि वह घरों में घुसपैठ करता है। लेकिन, यहाँ इसका अर्थ है सभी सांसारिक संबंधों को तोड़ देना।

hatāvakāso : वह व्यक्ति जिसने सभी अवसरों का त्याग कर दिया हो। लेकिन यहाँ इसका अर्थ पुनर्जन्म के अवसरों का त्याग करना है।

विशेष टिप्पणी : इस श्लोक में प्रयुक्त सभी अभिव्यक्तियों का अर्थ ऐसे व्यक्तियों पर लगाया जा सकता है जो श्रेष्ठ नहीं हैं, बल्कि पतित हैं। परन्तु, इन अभिव्यक्तियों का सकारात्मक, आध्यात्मिक रूप से लाभकारी अर्थों में व्याख्या करना, न कि नकारात्मक, अत्यंत रोचक है। दूसरे शब्दों में, बुद्ध ने इस श्लोक में सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त उन अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया है जिनका अर्थ नीच आचरण वाले लोगों से है। परन्तु, बुद्ध द्वारा इन शब्दों को दिए गए अर्थों के कारण, ये पतित शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 98

---

(धम्मपद 97) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 98 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 99)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 98 - खदिरवानियारेवत्तथेरा वत्थु

---

### डॉ म्या टिन संस्करण

Game va yadi varanne
ninne va yadi va thale
yattha arahanto viharanti
tam bhumiramaneyyakam.

---

श्लोक 98 : गाँव में हो या जंगल में, घाटी में हो या पहाड़ी पर, जहाँ कहीं भी अरहत निवास करते हैं, वह स्थान रमणीय होता है।

---

थेरा रेवता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (98) का उच्चारण किया, जिसमें बबूल (खदिरा) वन के थेरा रेवता का उल्लेख है।

रेवता, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई थे। सारिपुत्त के भाई-बहनों में वे इकलौते थे जिन्होंने घर छोड़कर बेघर जीवन नहीं अपनाया था। उनके माता-पिता उनकी शादी को लेकर बहुत चिंतित थे। रेवता जब केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता ने उनकी शादी एक युवती से तय कर दी। विवाह समारोह में उनकी मुलाकात एक सौ बीस वर्ष की एक वृद्ध महिला से हुई और उन्हें यह अहसास हुआ कि सभी प्राणी वृद्धावस्था और क्षय के अधीन हैं। इसलिए वे घर से भागकर सीधे एक मठ में चले गए, जहाँ तीस भिक्षु थे। थेरा सारिपुत्त ने पहले ही उन भिक्षुओं से अनुरोध किया था कि यदि उनका भाई उनके पास आए तो उसे समनेर बना दिया जाए। तदनुसार, उन्हें समनेर बना दिया गया और थेरा सारिपुत्त को इसकी सूचना दे दी गई।

समनेरा रेवता ने उन भिक्षुओं से ध्यान का एक विषय लिया और मठ से तीस योजन दूर एक बबूल के जंगल में चले गए। वर्षा ऋतु के अंत में, समनेरा ने अर्हत पद प्राप्त किया। तब थेरा सारिपुत्त ने बुद्ध से अपने भाई से मिलने की अनुमति मांगी, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे स्वयं वहां जाएंगे। इसलिए बुद्ध, थेरा सारिपुत्त, थेरा सिवली और पांच सौ अन्य भिक्षुओं के साथ समनेरा रेवता से मिलने के लिए निकल पड़े।

यात्रा लंबी थी, मार्ग ऊबड़-खाबड़ था और इलाका निर्जन था; लेकिन देवदूतों ने बुद्ध और भिक्षुओं की हर ज़रूरत का ध्यान रखा। हर योजन के अंतराल पर एक मठ और भोजन उपलब्ध कराया जाता था, और वे प्रतिदिन एक योजन की गति से यात्रा करते थे। रेवता को जब बुद्ध के आगमन का पता चला, तो उन्होंने भी उनके स्वागत की व्यवस्था की। उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध के लिए एक विशेष मठ और अन्य भिक्षुओं के लिए पाँच सौ मठ बनवाए, और उनके पूरे प्रवास के दौरान उन्हें सुख-सुविधाओं से युक्त रखा।

वापसी यात्रा में, उन्होंने पहले की ही गति से यात्रा की और महीने के अंत में श्रावस्ती माह के पूर्वी छोर पर स्थित पुब्बाराम मठ में पहुँचे। वहाँ से वे विशाखा के घर गए, जिन्होंने उन्हें भिक्षा दी। भोजन के बाद, विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि क्या बबूल के जंगल में स्थित रेवता का स्थान सुखद है।

और बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार उत्तर दिया:

---

श्लोक 98 : गाँव में हो या जंगल में, घाटी में हो या पहाड़ी पर, जहाँ कहीं भी अरहत निवास करते हैं, वह स्थान रमणीय होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय रेवता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बबूल ( खदिरा ) वन के पूज्य रेवता के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

रेवता, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के सबसे छोटे भाई थे। सारिपुत्त के भाई-बहनों में वे इकलौते थे जिन्होंने घर छोड़कर बेघर जीवन नहीं अपनाया था। उनके माता-पिता उनकी शादी के लिए बहुत उत्सुक थे। रेवता जब केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता ने उनकी शादी एक युवती से तय कर दी। विवाह समारोह में उनकी मुलाकात एक सौ बीस वर्ष की एक बुजुर्ग महिला से हुई और उन्हें यह अहसास हुआ कि सभी प्राणी वृद्धावस्था और क्षय के अधीन हैं। इसलिए वे घर से भागकर सीधे एक मठ में चले गए, जहाँ तीस भिक्षु थे। पूज्य सारिपुत्त ने पहले ही उन भिक्षुओं से अनुरोध किया था कि यदि उनका भाई उनके पास आए तो उसे भिक्षु बना दिया जाए। तदनुसार, उन्हें भिक्षु बना दिया गया और पूज्य सारिपुत्त को इसकी सूचना दे दी गई।

भिक्षु रेवता ने उन भिक्षुओं से ध्यान का एक विषय लिया और मठ से तीस योजन दूर स्थित बबूल के जंगल की ओर चल दिए। वर्षा ऋतु के अंत में, नवोदित भिक्षु ने अर्हत पद प्राप्त किया। तब पूज्य सारिपुत्त ने बुद्ध से अपने भाई से मिलने की अनुमति मांगी, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे स्वयं वहां जाएंगे। इसलिए बुद्ध, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य सिवली और कई अन्य भिक्षुओं के साथ, सामनेर (नवोदित) रेवता से मिलने के लिए निकल पड़े।

यात्रा लंबी थी, मार्ग ऊबड़-खाबड़ था और इलाका निर्जन था; फिर भी देवताओं ने बुद्ध और भिक्षुओं की हर ज़रूरत का ध्यान रखा। हर योजन (लीग) के अंतराल पर एक मठ और भोजन उपलब्ध कराया जाता था, और वे प्रतिदिन एक योजन की गति से यात्रा करते थे। रेवता को जब बुद्ध के आगमन का पता चला, तो उन्होंने भी उनके स्वागत की व्यवस्था की। उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति से बुद्ध के

लिए एक विशेष मठ और अन्य भिक्षुओं के लिए पाँच सौ मठ बनवाए, और उनके पूरे प्रवास के दौरान उन्हें सुख-सुविधाओं से युक्त रखा।

वापसी यात्रा में, उन्होंने पहले की ही गति से यात्रा की और महीने के अंत में श्रावस्ती माह के पूर्वी छोर पर स्थित पुब्बाराम मठ पहुँचे। वहाँ से वे विशाखा के घर गए, जिन्होंने उन्हें भिक्षा भोजन दिया। भोजन के बाद, विशाखा ने बुद्ध से पूछा कि क्या बबूल के जंगल में स्थित रेवता का स्थान सुखद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 98)

गेम वा यदि अरण्ये वा निन्ने वा यदि थले वा ,

यत्थ अरहतो विहारन्ति , तं भूमिं रमणेयकं

गामे वा : चाहे गाँव में हो; यदि : कहीं और; अरञ्ञे वा : चाहे जंगल में हो; निन्ने वा : घाटी में भी हो; यदि : कहीं और; थाले वा : चाहे मैदान में हो; यत्था : किसी भी स्थान पर; अरहतो [ अरहत ]: श्रेष्ठ जन; विहरन्ति : निवास करते हैं; तं भूमि [ भूमि ]: वह विशेष स्थान; रामणेय्यक [ रामणेय्यक ]: आकर्षक है

चाहे गांव हो, जंगल हो, घाटी हो या मैदान, जहां कहीं भी अरहत—महान संत—निवास करते हैं, वह स्थान अत्यंत आकर्षक होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 98)

अरहत : श्रेष्ठ जन; विकसित जन। इन्हें आर्य-पुग्गला (श्रेष्ठ जन) भी कहा जाता है। आर्य-पुग्गला वे हैं जिन्होंने पवित्रता के आठ चरणों में से एक को प्राप्त कर लिया है, अर्थात् चार अलौकिक मार्ग ( मग्ग ) और इन मार्गों के चार अलौकिक फल ( फल )।

चार जोड़े हैं:—

वह व्यक्ति जो धारा-जीत के मार्ग को पहचानता है;

वह व्यक्ति जो धारा-जीत की सफलता का एहसास करता है;

जो एक बार वापसी के मार्ग को समझ लेता है;

वह व्यक्ति जो एक बार वापसी के फल को साकार करता है;

जो व्यक्ति वापसी के मार्ग को समझ लेता है;

जो व्यक्ति वापसी न होने के सिद्धांत की पूर्णता को साकार कर लेता है;

जो पवित्रता के मार्ग को जान लेता है;

जो पवित्रता की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

संक्षेप में, चार श्रेष्ठ व्यक्ति हैं: धारा-विजेता, एक बार लौटने वाला, न लौटने वाला और पवित्र। कुछ ग्रंथों में गोत्रभू को नौवां श्रेष्ठ व्यक्ति बताया गया है। अभिधम्म के अनुसार, अलौकिक मार्ग, या केवल मार्ग ( मग्ग ), उस क्षण का नाम है जब व्यक्ति चार पवित्र अवस्थाओं में से किसी एक में प्रवेश करता है — निर्वाण इसका लक्ष्य है — जो अस्तित्व की अनित्यता, दुख और निराकारता की अंतर्दृष्टि से उत्पन्न होता है, और जीवन एवं स्वभाव को रूपांतरित करता है। फल से तात्पर्य चेतना के उन क्षणों से है, जो मार्ग के फलस्वरूप तुरंत बाद आते हैं, और जो कुछ परिस्थितियों में जीवनकाल में अनगिनत बार दोहराए जा सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 99

———————————————————————

(धम्मपद 98) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 99 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 100)

———————————————————————

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 99 - अन्नतारा इत्थि वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
रामानियानी अरन्नानी
yaittha na ramati jano
vitaraga ramissanti
na te kamagavesino.

---

श्लोक 99 : वन रमणीय हैं, परन्तु सांसारिक लोगों को उनमें आनंद नहीं मिलता; केवल वे ही जो कामवासना से मुक्त हैं, उनमें आनंद पाते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करते।

---

एक महिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (99) का उच्चारण संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री के संदर्भ में किया।
एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद एक पुराने बगीचे में ध्यान का अभ्यास किया। एक संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री बगीचे में आई और भिक्षु को देखकर उसका ध्यान आकर्षित करने और उसे बहकाने का प्रयास किया। भिक्षु भयभीत हो गया; उसी समय, उसका पूरा शरीर एक प्रकार की सुखद संतुष्टि से भर गया। बुद्ध ने उसे अपने मठ से देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से उस पर प्रकाश की किरणें भेजीं, जिससे भिक्षु को यह संदेश प्राप्त हुआ, "हे मेरे पुत्र, जहाँ सांसारिक लोग इंद्रिय सुखों की खोज करते हैं, वह भिक्षुओं के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है; भिक्षुओं को उन जंगलों में आनंद लेना चाहिए जहाँ सांसारिक लोगों को कोई सुख नहीं मिलता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 99 : वन रमणीय हैं, परन्तु सांसारिक लोगों को उनमें आनंद नहीं मिलता; केवल वे ही जो कामवासना से मुक्त हैं, उनमें आनंद पाते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करते।

---

अध्याय सात का अंत: अरहत (अरहंतवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक महिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक संदिग्ध चरित्र वाली स्त्री के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। बताया जाता है कि एक भिक्षु, जो भिक्षापात्र से अपना जीवन यापन करता था, ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और ध्यान करने के उद्देश्य से एक जीर्ण-शीर्ण उद्यान में चला गया। तभी एक वेश्या ने एक पुरुष से मिलने का समय तय किया और कहा, “मैं फलाँ स्थान पर जाऊँगी और आप मुझसे वहाँ मिलें।” स्त्री तो समय पर पहुँची, पर पुरुष नहीं आया। कुछ समय तक वह उस रास्ते को व्यर्थ ही देखती रही जहाँ से उसे आने की उम्मीद थी। अंत में, अपने समय पर न आने से निराश होकर, वह इधर-उधर भटकती रही और अंततः उद्यान में चली गई। वहाँ उसने भिक्षु को पालथी मारकर बैठे देखा। इधर-उधर देखते हुए और किसी को न देखकर, उसने मन ही मन कहा, “यहाँ एक पुरुष है; मैं उसके विचारों को भ्रमित कर दूँगी।” अतः भिक्षु के सामने खड़ी होकर, उसने कई बार अपने अंतर्वस्त्र को उतारा और फिर से पहना, अपने बालों को खोला और फिर से बाँधा, और ताली बजाकर हँसी। पूज्यवर उत्तेजित हो गए; वास्तव में उनका पूरा शरीर उत्तेजना से भर गया। "इसका क्या मतलब है?" उन्होंने सोचा।
बुद्ध ने मन ही मन सोचा, “एक भिक्षु ने मुझसे ध्यान का विषय प्राप्त किया और ध्यान करने चला गया। उसका ध्यान कैसा चल रहा है?” उस स्त्री को देखकर, उसके बुरे आचरण को देखकर और यह जानकर कि उसका बुरा आचरण पूज्य भिक्षु को व्याकुल कर रहा है, वे अपने सुगंधित कक्ष में बैठे-बैठे ही बोले, “भिक्षुओं, जहाँ वासनाओं के पीछे भागने वाले रहते हैं, वहाँ आनंद नहीं होता। परन्तु जहाँ

वासनाओं से मुक्त रहने वाले रहते हैं, वह स्थान आनंद से परिपूर्ण होता है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपना एक प्रकाशमान स्वरूप प्रकट किया और पूज्य भिक्षु को धम्म का उपदेश देते हुए यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 99)

यथा जानो न रमति रामायणी अरण्यनि
वीतरागा रमिस्सान्ति ते कामगावेसिनो न

यत्था : वे स्थान; जनो : सांसारिक जन; न रमती : उनमें आनंद न लें; रमणीयनि अरञ्ञानि : (ऐसे) आकर्षक वन; वीतरगा : वासनाहीन; रमिस्सन्ति : उनमें आनंद लें; ते : वे स्थान; कामगवेसिनो [ कामागवेसिन ]: इंद्रिय सुखों के अनुयायी; न : उनमें आनंद न लें वे आकर्षक वन जो सांसारिक जनमानस के मन को मोहित नहीं करते और जिनमें उन्हें आनंद नहीं मिलता, वे भावहीन लोगों को आकर्षित करते हैं। अरहत वनों में आनंद लेते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों के पीछे नहीं भागते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 99)

वितरागो : भावहीन: अरहत। अरहत मूलतः भावहीन होता है। अरहत, शाब्दिक रूप से, एक योग्य व्यक्ति, पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह नए कर्मों का संचय नहीं करता। उसके प्रजनन के सभी बीज नष्ट हो चुके होते हैं। अरहत को यह अहसास होता है कि जो पूरा होना था वह हो चुका है, दुख का भारी बोझ अंततः उतर गया है, और सभी प्रकार की लालसा और अज्ञान के सभी रूप पूर्णतः नष्ट हो गए हैं। सुखी तीर्थयात्री अब स्वर्ग से भी ऊपर की ऊंचाइयों पर खड़ा है, अनियंत्रित भावनाओं और संसार के दोषों से बहुत दूर, निर्वाण के अवर्णनीय आनंद का अनुभव कर रहा है। पुनर्जन्म अब उस पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता क्योंकि नए कर्मों से अब कोई प्रजनन बीज उत्पन्न नहीं होते। अरहत को असेख कहा जाता है , वह व्यक्ति जो प्रशिक्षण से नहीं गुजरता, क्योंकि उसने पवित्र जीवन जी लिया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। सोतापत्ति अवस्था से अरहत पथ अवस्था तक के अन्य संतों को सेख कहा जाता है क्योंकि वे अभी भी प्रशिक्षण से गुजरते हैं। अरहत इस जीवन में भी अपनी इच्छा अनुसार लंबे समय तक निर्वाणिक आनंद का अनुभव कर सकते थे। पाली भाषा में इसे निरोध-समापत्ति कहते हैं ।

अध्याय 8. सहस्सवग्ग: हज़ार (100-115)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 100

---

(धम्मपद99) <<<< पिछला ॥ धम्मपद100 ॥ अगला >>>> (धम्मपद101)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 100 - तम्बादथिका कोरघटका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sahassamapi ce vaca
अनत्थपादसंहिता
एकम अत्थपदम सेयो
yam sutva upasammati.

---

श्लोक 100 : निरर्थक और निर्वाण की प्राप्ति से असंबद्ध हजार शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

---

तांबडथिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (100) का उच्चारण किया, जो चोरों के जल्लाद ताम्बदथिका के संदर्भ में था।

तांबदथिका ने राजा की सेवा में पचपन वर्षों तक चोरों के जल्लाद के रूप में कार्य किया; वे हाल ही में इस पद से सेवानिवृत्त हुए थे। एक दिन, अपने घर पर चावल का दलिया तैयार करने के बाद, वे नदी में स्नान करने गए; उनका इरादा था कि लौटते समय वे विशेष रूप से तैयार किया गया चावल का दलिया पी लेंगे। जैसे ही वे चावल का दलिया पीने वाले थे, थेरा सारिपुत्त, जो एकाग्रता (ध्यान समापत्ति) में तल्लीन होकर उठे थे, भिक्षा मांगने के लिए उनके दरवाजे पर खड़े थे। थेरा को देखकर तांबदथिका ने मन ही मन सोचा, "मैंने अपने पूरे जीवन चोरों को मृत्युदंड दिया है; अब मुझे यह भोजन थेरा को अर्पित करना चाहिए।" अतः उन्होंने थेरा सारिपुत्त को अंदर आने का निमंत्रण दिया और आदरपूर्वक चावल का दलिया उन्हें अर्पित किया।

भोजन के बाद, थेरा ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, लेकिन ताम्बदथिका ध्यान नहीं दे पा रहे थे, क्योंकि वे अपने जल्लाद के रूप में बीते जीवन की यादों में इतने व्याकुल थे। जब थेरा को यह पता चला, तो उन्होंने चतुराई से ताम्बदथिका से पूछा कि क्या उन्होंने चोरों को अपनी इच्छा से मारा था या उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया गया था। ताम्बदथिका ने उत्तर दिया कि उन्हें राजा द्वारा मारने का आदेश दिया गया था और उनकी हत्या करने की कोई इच्छा नहीं थी। तब थेरा ने पूछा, "यदि ऐसा है, तो क्या आप दोषी हैं या नहीं?" ताम्बदथिका ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि वे बुरे कर्मों के लिए जिम्मेदार नहीं थे, इसलिए वे दोषी नहीं थे। अतः वे शांत हो गए और थेरा से अपना प्रवचन जारी रखने का अनुरोध किया। जब उन्होंने ध्यानपूर्वक धम्म सुना, तो वे सोतापत्ति मार्ग प्राप्त करने के बहुत करीब पहुँच गए और अनुलोम नाना तक पहुँच गए। (1) प्रवचन के बाद, ताम्बदथिका कुछ दूर तक थेरा सारिपुत्त के साथ गए और फिर घर लौट आए। घर लौटते समय एक गाय (वास्तव में गाय के वेश में एक राक्षस) ने उसे सींग मारकर मौत के घाट उतार दिया।

जब बुद्ध संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें ताम्बदथिका की मृत्यु के बारे में बताया। जब उनसे पूछा गया कि ताम्बदथिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यद्यपि ताम्बदथिका ने अपने पूरे जीवन में बुरे कर्म किए थे, फिर भी थेरा सारिपुत्त से धम्म सुनकर उसे ज्ञान प्राप्त हो गया और मरने से पहले ही उसने अनुलोम नाना प्राप्त कर लिया था, इसलिए उसका पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि एक इतना बुरा कर्म करने वाला व्यक्ति केवल एक बार धम्म सुनकर इतना बड़ा लाभ कैसे प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ने उन्हें बताया कि प्रवचन की लंबाई मायने नहीं रखती, क्योंकि अर्थ का एक शब्द भी बहुत लाभ दे सकता है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 100 : निरर्थक और निर्वाण की प्राप्ति से असंबद्ध हजार शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

---

(1)अनुलोम नाना: विपश्यना अंतर्दृष्टि जो योगी की नामरूप प्रक्रिया को मग्गा अंतर्दृष्टि के लिए पूरी तरह से अनुकूलित करती है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ताम्बदाथिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चोरों के जल्लाद ताम्बदाठिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

तांबदाथिका ने पचपन वर्षों तक राजा की सेवा चोरों के जल्लाद के रूप में की। वृद्धावस्था में वह एक ही वार में किसी का सिर नहीं काट सकता था। जिस दिन वह पद से सेवानिवृत्त हुआ, उसने अपने लिए मीठी दूध की दलिया बनाने का आदेश दिया। पुराने वस्त्र, चमेली के फूल और इत्र लेकर वह नदी पर स्नान करने गया। स्नान करने के बाद उसने पुराने वस्त्र पहने, मालाओं से खुद को सजाया, अंगों पर तेल लगाया और घर आकर बैठ गया। उसके सामने ताजा घी से बनी मीठी दूध की दलिया और हाथ धोने के लिए पानी रखा गया। उसी समय पूज्य सारिपुत्त पूर्व जल्लाद के घर के द्वार पर प्रकट हुए। सारिपुत्त ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। उन्हें अपने घर में ले जाकर, उन्हें बैठने के लिए जगह दी, उनके कटोरे में मीठी दूध की दलिया डाली, उस पर ताजा घी छिड़का और उनके पास खड़े होकर उन्हें पंखा झुलाने लगे।

भोजन के बाद, भिक्षु ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया, लेकिन ताम्बदाथिका ध्यान नहीं दे पा रहे थे, क्योंकि वे अपने जल्लाद के रूप में बीते जीवन की यादों में इतने व्याकुल थे। जब भिक्षु को यह पता चला, तो उन्होंने चतुराई से ताम्बदाथिका से पूछा कि क्या उन्होंने चोरों को अपनी इच्छा से मारा था या उन्हें ऐसा करने का आदेश दिया गया था। ताम्बदाथिका ने उत्तर दिया कि राजा ने उन्हें मारने का आदेश दिया था और उनकी मारने की कोई इच्छा नहीं थी। तब भिक्षु ने पूछा, "यदि ऐसा है, तो क्या आप दोषी हैं या नहीं?" ताम्बदाथिका ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि वे बुरे कर्मों के लिए जिम्मेदार नहीं थे, इसलिए वे दोषी नहीं थे। इसलिए वे शांत हो गए और भिक्षु से अपना उपदेश जारी रखने का अनुरोध किया। जब उन्होंने ध्यानपूर्वक धम्म का उपदेश सुना, तो वे सोतापत्ति मार्ग को प्राप्त करने के बहुत करीब पहुँच गए और अनुलोम ज्ञान (सत्य ज्ञान के प्रति अनुकूलन) तक पहुँच गए। प्रवचन के बाद, ताम्बदाथिका कुछ दूर तक पूज्य सारिपुत्त के साथ गए और फिर घर लौट आए। घर लौटते समय एक गाय (वास्तव में गाय के वेश में एक राक्षस) ने उन्हें सींग मारकर मार डाला।

जब बुद्ध संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में आए, तो उन्होंने उन्हें ताम्बदाथिका की मृत्यु के बारे में बताया। जब उनसे पूछा गया कि ताम्बदाथिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि यद्यपि ताम्बदाथिका ने अपने पूरे जीवन में बुरे कर्म किए थे, फिर भी पूज्य सारिपुत्त से धम्म का ज्ञान प्राप्त करने और मरने से पहले ही अनुलोम ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण उनका पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि एक दुष्ट व्यक्ति को केवल एक बार धम्म सुनने से इतना बड़ा लाभ कैसे मिल सकता है। बुद्ध ने उन्हें बताया कि प्रवचन की लंबाई मायने नहीं रखती, क्योंकि अर्थ का एक शब्द भी बहुत लाभ दे सकता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 100)

अनत्थपादसंहिता वाचा सी सहस्सं अपि
यं सुत्वा उपसम्मति एकं अत्थपदं सेय्यो

अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन और व्यर्थ अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; वाचा : शब्द; चे : यहां तक कि; सहस्सं अपि : हजारों (मूल्यहीन); यं : यदि; सुत्वा : इसे सुनकर; उपसम्मति : व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं अत्थपादं [ अत्थपाद ]: ऐसा एक सार्थक शब्द; सेय्यो [ सेय्य ]: श्रेष्ठ है

हजारों शब्दों से भरे भावों का कोई मूल्य नहीं होता। एक सार्थक शब्द कहीं अधिक मूल्यवान होता है, यदि उसे सुनकर मन को शांति मिलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 100)

वाचा अनत्थपादसंहिता : निरर्थक शब्दों से भरा प्रवचन। यहाँ उन शब्दों का तात्पर्य है जो उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक नहीं हैं। पारंपरिक टीकाओं में आकाश, पर्वत, वन, गाँव, नगर, बस्तियाँ, महासागर, चंद्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, जलक्रीड़ा, भोज, सभाओं आदि का वर्णन साधकों के लिए चर्चा हेतु अनुपयुक्त माना जाता है। इन्हें व्यर्थ और आध्यात्मिक साधना में सहायक नहीं समझा जाता। बत्तीस विषय निरर्थक प्रवचनों की श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार, राजकथा (राजाओं से संबंधित विषय), चोरकथा (चोरों से संबंधित विषय), महामच्चकथा (प्रशासकों से संबंधित विषय), सेना (बल), भय (भय), युद्ध (युद्ध) जैसे विषय उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों की खोज करने वालों के लिए चर्चा हेतु अनुपयुक्त माने जाते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 101

———————————————————————————

(धम्मपद 100) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 101 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 102 और 103)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 101 - बहियादारुचिरिय वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Sahassamapi ce gatha
अनत्थपादसंहिता
एकम गथापदम सेयो
yam sutva upasammati.

———————————————————————————

श्लोक 101 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध हजार श्लोकों से बेहतर एक श्लोक है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

———————————————————————————

बहियादारुचिरिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने बहियादरुचिरिया के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (101) कहा।

व्यापारियों का एक समूह नाव में समुद्र में गया; उनकी नाव समुद्र में टूट गई और एक को छोड़कर सभी मारे गए। एकमात्र जीवित व्यक्ति ने एक तख्ता पकड़ लिया और अंततः सुप्पारका बंदरगाह पर पहुँच गया। चूंकि वह नग्न था, उसने तख्ते को अपने शरीर से बांध लिया, एक कटोरा लिया और ऐसी जगह बैठ गया जहाँ लोग उसे देख सकें। राहगीरों ने उसे चावल और दलिया दिया; कुछ ने उसे अरहत समझकर उसकी प्रशंसा की। कुछ लोग उसके लिए कपड़े लाए, लेकिन उसने यह सोचकर इनकार कर दिया कि कपड़े पहनने से लोग उसे कम देंगे। इसके अलावा, चूंकि कुछ लोगों ने उसे अरहत कहा था, इसलिए उसने गलती से यह मान लिया कि वह वास्तव में अरहत है। इस प्रकार, गलत विचारों वाले उस व्यक्ति के रूप में, जिसने लकड़ी का टुकड़ा वस्त्र के रूप में पहना था, उसे बहियादरुचिरिया के नाम से जाना जाने लगा।

लगभग इसी समय, महाब्रह्मा, जो उनके पिछले जन्मों में से एक में उनके मित्र थे, ने उन्हें भटकते हुए देखा और महसूस किया कि बाहिया को सही मार्ग पर लाना उनका कर्तव्य है। इसलिए, महाब्रह्मा (महान देवदूत) रात में उनके पास आए और उनसे कहा, "बाहिया, तुम अभी तक अरहत नहीं हो, और इससे भी बड़ी बात यह है कि तुममें वे गुण नहीं हैं जो किसी को अरहत बनाते हैं।" बाहिया ने महाब्रह्मा (महान देवदूत) की ओर देखा और कहा, "हाँ, मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं अरहत नहीं हूँ, जैसा कि आपने कहा है। अब मुझे एहसास हो गया है कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है। लेकिन क्या इस संसार में कोई और है जो अरहत है?" तब महाब्रह्मा (महान देवदूत) ने उन्हें बताया कि श्रावस्ती गौतम बुद्ध निवास करते हैं, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी अरहत हैं।

बाहिया को अपने अपराध की गंभीरता का एहसास हुआ और वे अत्यंत व्याकुल होकर श्रावस्ती तक दौड़ पड़े। महाब्रह्मा (महान देवदूत) ने अपनी अलौकिक शक्ति से उनकी सहायता की, जिससे एक सौ बीस योजन की पूरी दूरी उन्होंने एक ही रात में तय कर ली। बाहिया ने बुद्ध को अन्य भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने जाते हुए पाया और आदरपूर्वक उनके पीछे चल दिए। उन्होंने बुद्ध से धर्म का उपदेश देने की विनती की, लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे भिक्षा मांगने गए हैं, इसलिए अभी धार्मिक प्रवचन का समय नहीं है। बाहिया ने फिर विनती की, "आदरणीय गुरुदेव, आपके और मेरे जीवन को कितना खतरा है, यह कोई नहीं जान सकता, इसलिए कृपया मुझे धर्म के विषय में बताएं।" बुद्ध जानते थे कि बाहिया ने एक सौ बीस योजन की यात्रा एक ही रात में पूरी कर ली है और बुद्ध को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हैं। इसीलिए बुद्ध तुरंत धर्म के विषय में बात नहीं करना चाहते थे, बल्कि चाहते थे कि बाहिया शांत हो जाएं ताकि वे धर्म को ठीक से समझ सकें। फिर भी, बाहिया लगातार विनती करते रहे। अतः, सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने बाहिया से कहा, "बाहिया, जब तुम कोई वस्तु देखो, तो केवल उस दृश्य वस्तु के प्रति सचेत रहो; जब तुम कोई ध्वनि सुनो, तो केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत रहो; जब तुम किसी चीज को सूंघो, चखो या स्पर्श करो, तो केवल उसकी गंध, स्वाद या स्पर्श के प्रति सचेत रहो; और जब तुम किसी भी चीज के बारे में सोचो, तो केवल उस विचार के प्रति सचेत रहो।"

उपरोक्त प्रवचन सुनने के बाद, बाहिया ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उन्होंने संघ में शामिल होने के लिए बुद्ध से अनुमति मांगी। बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के वस्त्र, कुंड और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लाने को कहा। उन्हें लाने जाते समय, एक गाय ने उन्हें सींगों से मार डाला, जो वास्तव में गाय के रूप में एक राक्षसी थी। जब बुद्ध और अन्य भिक्षु भोजन करके बाहर आए, तो उन्होंने बाहिया को कूड़े के ढेर पर मृत पाया। बुद्ध के निर्देशानुसार, भिक्षुओं ने बाहिया के शरीर का दाह संस्कार किया और उनकी अस्थियों को एक स्तूप में स्थापित किया।

जेतवन मठ में लौटकर बुद्ध ने भिक्षुओं को बताया कि बाहिया ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। उन्होंने यह भी बताया कि मार्ग अंतर्दृष्टि (अभिन्न) प्राप्त करने में गति के संदर्भ में बाहिया सबसे तेज और सर्वश्रेष्ठ (एतदग्गम) हैं। बुद्ध के इस कथन से भिक्षु चकित रह गए और उन्होंने उनसे पूछा कि बाहिया कब और कैसे अर्हत बने। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बाहिया ने अर्हतत्व तब प्राप्त किया जब वे भिक्षाटन के दौरान मार्ग में मेरे द्वारा दिए गए उपदेशों को सुन रहे थे।" भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि कोई केवल कुछ वाक्यों को सुनकर अर्हतत्व कैसे प्राप्त कर सकता है। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बताया कि यदि कोई बात किसी के लिए लाभकारी हो तो शब्दों की संख्या या भाषण की लंबाई मायने नहीं रखती।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 101 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध हजार श्लोकों से बेहतर एक श्लोक है, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बहियादारुचिरिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बाहियादारुचिरिया के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

व्यापारियों का एक समूह नाव में समुद्र में गया; उनकी नाव समुद्र में टूट गई और एक को छोड़कर सभी मारे गए। एकमात्र जीवित व्यक्ति ने एक तख्ता पकड़ लिया और अंततः सुप्पारका बंदरगाह पर पहुँच गया। चूंकि वह नग्न था, उसने अपने शरीर पर छाल का एक

टुकड़ा बाँध लिया, एक कटोरा लिया और ऐसी जगह बैठ गया जहाँ लोग उसे देख सकें। राहगीरों ने उसे चावल और दलिया दिया; कुछ ने उसे संत समझा और उसका सम्मान किया। कुछ लोग उसके लिए कपड़े लाए, लेकिन उसने यह सोचकर इनकार कर दिया कि कपड़े पहनने से लोग उसका कम सम्मान करेंगे। इसके अलावा, चूंकि कुछ लोगों ने उसे अरहत कहा, इसलिए उसने गलती से यह मान लिया कि वह वास्तव में अरहत है। इस प्रकार, छाल के टुकड़े को वस्त्र के रूप में धारण करने वाले उस व्यक्ति को, जिसके विचार गलत थे, बाहियादारुचिरिया के नाम से जाना जाने लगा। महाब्रह्म रात में उनके पास आए और उनसे कहा, "बाहिया, तुम अभी तक अरहत नहीं हो, और इससे भी बड़ी बात यह है कि तुममें वे गुण नहीं हैं जो किसी को अरहत बनाते हैं।" बाहिया ने महाब्रह्म की ओर देखा और कहा, "जी हाँ, मैं मानता हूँ कि मैं अरहत नहीं हूँ, जैसा कि आपने कहा है। अब मुझे एहसास हो गया है कि मैंने बहुत बड़ी गलती की है। लेकिन क्या इस संसार में कोई और है जो अरहत (सिद्ध पुरुष) है?" तब महाब्रह्म ने उन्हें बताया कि श्रावस्ती में गौतम बुद्ध नामक एक गुरु रहते हैं, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी अरहत हैं।

बाहिया ने बुद्ध को अन्य भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने जाते हुए देखा और आदरपूर्वक उनके पीछे-पीछे चले। उन्होंने बुद्ध से धर्म का उपदेश देने की विनती की, पर बुद्ध ने कहा कि वे भिक्षा मांगने गए हैं, इसलिए अभी धार्मिक प्रवचन का समय नहीं है। बाहिया ने फिर विनती की, "हे पूज्यवर, आपके या मेरे जीवन को कितना खतरा है, यह कोई नहीं जान सकता, इसलिए कृपया मुझे धर्म के विषय में उपदेश दीजिए।" बुद्ध जानते थे कि बाहिया ने एक रात में एक सौ बीस योजन की यात्रा की है और बुद्ध को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हैं। इसीलिए बुद्ध तुरंत धर्म के विषय में उपदेश नहीं देना चाहते थे, बल्कि चाहते थे कि बाहिया शांत हो जाएं ताकि वे धर्म को ठीक से समझ सकें। फिर भी बाहिया लगातार विनती करते रहे। अतः, सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने बाहिया से कहा, "बाहिया, जब तुम कोई वस्तु देखो, तो केवल उस दृश्य वस्तु के प्रति सचेत रहो; जब तुम कोई ध्वनि सुनो, तो केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत रहो; जब तुम किसी चीज को सूंघो, चखो या स्पर्श करो, तो केवल उसकी गंध, स्वाद या स्पर्श के प्रति सचेत रहो; और जब तुम किसी भी चीज के बारे में सोचो, तो केवल उस विचार के प्रति सचेत रहो।"

उपरोक्त प्रवचन सुनने के बाद, बाहिया ने अर्हतत्व प्राप्त किया और उन्होंने संघ में शामिल होने के लिए बुद्ध से अनुमति मांगी। बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के वस्त्र, कुंड और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लाने को कहा। उन्हें लाने जाते समय, एक गाय ने उन्हें सींग मारकर मार डाला, जो वास्तव में गाय के रूप में एक दुष्ट स्त्री थी। जब बुद्ध और अन्य भिक्षु भोजन करने के बाद बाहर आए, तो उन्होंने बाहिया को कूड़े के ढेर पर मृत पाया। बुद्ध के निर्देशानुसार, भिक्षुओं ने बाहिया के शरीर का दाह संस्कार किया और उनकी अस्थियों को एक स्तूप में स्थापित किया। जेतवन मठ में वापस आकर, बुद्ध ने भिक्षुओं को बताया कि बाहिया ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। उन्होंने यह भी बताया कि मार्ग अंतर्दृष्टि ( अभिज्ञा ) प्राप्त करने में गति के मामले में बाहिया सबसे तेज और सर्वश्रेष्ठ ( एतदग्गं ) थे। बुद्ध के इस कथन से भिक्षु व्याकुल हो गए और उन्होंने उनसे पूछा कि बाहिया कब और कैसे अरहत बने? इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "बाहिया ने भिक्षाटन के दौरान मार्ग में मेरे उपदेश सुनते हुए अरहतत्व प्राप्त किया।" भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ कि कोई धर्म के कुछ ही वाक्य सुनकर कैसे अरहतत्व प्राप्त कर सकता है। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि यदि कोई बात किसी के लिए लाभकारी हो तो शब्दों की संख्या या भाषण की लंबाई मायने नहीं रखती।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 101)

अनत्थपादसंहिता गाथा सी सहस्सं अपि

यं सुत्वा उपसम्मति एकं गथापादं सेय्यो

अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; गाथा : छंद; सीई : सम; सहस्सां अपि : हजारों (लायक नहीं हैं); यं : जो यदि, सुत्व : सुनकर; उपसम्मति : व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं गाथापादं [ गाथापद ]: केवल एक ही ऐसा सार्थक छंद; सेय्यो [ सेय्या ]: नेक है

हजारों छंदों से भरी कविता का कोई मूल्य नहीं है यदि उसका कोई उपयोगी अर्थ न हो। ज्ञान से भरपूर एक ही छंद अधिक मूल्यवान है, यदि उसे सुनकर मन को शांति मिलती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 101)

गाथा : छंद; पद्य। पाली भाषा में रचित एक कविता, जिसमें आमतौर पर चार पंक्तियाँ होती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 102,103

---

(धम्मपद 101) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 102 और 103 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 104 और 105)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 102 और 103 - कुंडलकेशिथेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yo ca gatha satam bhase
अनत्थपादसंहिता
एकम धम्मपदम सेयो
yam sutva upasammati.

Yo sahassam sahassena
संगामे मानुसे जिने
ekanca jeyyamattanam
sa ve sangamajuttamo.

---

श्लोक 102 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध सौ श्लोकों के पाठ से श्रेष्ठ है शिक्षा (धम्म) का एक श्लोक पढ़ना, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाता है।

---

श्लोक 103 : एक व्यक्ति युद्ध में दस लाख लोगों को जीत सकता है, परन्तु जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सबसे बड़ा विजेता है।

---

थेरी कुंडलकेसी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी कुंडलकेसी के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (102) और (103) का उच्चारण किया।
कुंडलकेसी राजगृह के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह एकांत जीवन व्यतीत करती थी; लेकिन एक दिन, उसने एक चोर को मौत के घाट उतारने के लिए ले जाते हुए देखा और उसे उससे तुरंत प्रेम हो गया। उसके माता-पिता को चोर की रिहाई के लिए पैसे देने पड़े, और उन्होंने कुंडलकेसी का विवाह उससे कर दिया। यद्यपि वह अपने पति से बहुत प्रेम करती थी, लेकिन उसका पति एक चोर था, जो केवल उसकी संपत्ति और गहनों की ओर आकर्षित था। एक दिन, उसने कुंडलकेसी को अपने सभी गहने पहनने के लिए फुसलाया और उसे एक पहाड़ पर ले गया, यह कहते हुए कि वह पहाड़ के संरक्षक देवता को कुछ भेंट चढ़ाना चाहता है क्योंकि उस संरक्षक देवता ने उसकी जान बचाई थी जब वह मरने वाला था। कुंडलकेसी अपने पति के साथ चली गई, लेकिन जब वे अपने गंतव्य पर पहुँचे, तो चोर ने खुलासा किया कि वह उसे मारना चाहता है और उसके गहने छीनना चाहता है। उसने उससे विनती की कि वह उसके गहने तो ले ले, लेकिन उसकी जान बख्श दे, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। तब उसे एहसास हुआ कि अगर उसने अपने पति से छुटकारा नहीं पाया, तो उसके बचने का कोई रास्ता नहीं होगा। उसने महसूस किया कि उसे सतर्क और चतुर होना होगा। इसलिए उसने अपने पति से कहा कि चूंकि अब उनके साथ केवल कुछ ही पल बचे हैं, इसलिए वह अंतिम बार उन्हें सम्मान देना चाहती है। ऐसा कहकर और उस व्यक्ति के चारों ओर आदरपूर्वक घूमते हुए, उसने उसे चट्टान से धक्का दे दिया, जिससे वह अचानक गिर पड़ा।
इसके बाद, घर लौटने की उनकी कोई इच्छा नहीं रही। उन्होंने अपने सारे गहने एक पेड़ पर टांग दिए और बिना किसी दिशा का पता लगाए अपने रास्ते पर चल पड़ीं। संयोगवश वे कुछ परिब्बजिकाओं (महिला तपस्वियों) के स्थान पर पहुँच गईं और स्वयं परिब्बजिका बन गईं। परिब्बजिकाओं ने उन्हें अपने सभी एक हजार प्रश्न सिखाए; बुद्धिमान होने के कारण उन्होंने थोड़े ही समय में उन सभी को समझ लिया। फिर उनके गुरुओं ने उनसे कहा कि वे संसार में जाएँ और यदि उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो उनके सभी प्रश्नों का उत्तर दे सके, तो वे उसकी शिष्या बन जाएँ। कुंडलकेसी जंबुद्वीप के कोने-कोने में घूमीं और खुलेआम सभी को चुनौती दी कि वे उनसे प्रतिस्पर्धा करें। इसी कारण वे "जंबुकपरिब्बजिका" के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

एक बार वह सावत्थी आई। भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले उन्होंने रेत का एक टीला बनाया और उस पर युजेनिया की एक शाखा गाड़ दी, जो उनका सभी को चुनौती स्वीकार करने का आमंत्रण देने का सामान्य संकेत था। थेरा सारिपुत्त ने उनकी चुनौती स्वीकार की। कुंडलकेसी ने उनसे एक हजार प्रश्न पूछे और थेरा सारिपुत्त ने उन सभी के उत्तर दिए। जब उनकी बारी आई, तो उन्होंने उनसे केवल यही पूछा, "वह एक क्या है? (एकम नाम किम)?" कुंडलकेसी उत्तर नहीं दे सकीं, इसलिए उन्होंने थेरा सारिपुत्त से प्रश्न का उत्तर सिखाने का अनुरोध किया। थेरा सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि उन्हें पहले भिक्षुणी बनना चाहिए; इसलिए वह थेरी कुंडलकेसी नाम से भिक्षुणी बन गईं। कुछ ही दिनों में वह अरहत बन गईं।

इसके तुरंत बाद, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "क्या यह संभव है कि भिक्षुणी कुंडलकेसी केवल थोड़ा सा धम्म सुनकर ही अरहत बन गईं?" उन्होंने यह भी बताया कि परिबजिका बनने से पहले इस महिला ने अपने चोर पति से लड़ाई की थी और उस पर विजय प्राप्त की थी। तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 102 : निर्वाण की प्राप्ति से निरर्थक और असंबद्ध सौ श्लोकों के पाठ से श्रेष्ठ है शिक्षा (धम्म) का एक श्लोक पढ़ना, यदि उसे सुनकर मन शांत हो जाता है।

———————————————————————

श्लोक 103 : एक व्यक्ति युद्ध में दस लाख लोगों को जीत सकता है, परन्तु जो स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सबसे बड़ा विजेता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून कुण्डलकेसी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नुन कुंडलकेसी के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

राजगृह के एक धनी व्यापारी की इकलौती बेटी थी, जिसकी उम्र लगभग सोलह वर्ष थी और वह अत्यंत सुंदर और आकर्षक थी। उसके माता-पिता ने उसे सात मंजिला महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर शाही ठाठ-बाठ वाले एक कमरे में रखा था और उसकी सेवा के लिए केवल एक दासी रखी थी। एक दिन एक प्रतिष्ठित युवक को चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। उसके हाथ पीछे बांध दिए गए और उसे फांसी के स्थान पर ले जाया गया, रास्ते में हर चौराहे पर उसे कोड़े मारे गए। व्यापारी की बेटी ने भीड़ का शोर सुना, मन ही मन सोचा, "यह क्या है?" महल की छत से नीचे देखा और उसे देखा। देखते ही वह उससे प्रेम करने लगी। वास्तव में, उसके लिए उसकी तड़प इतनी तीव्र थी कि वह बिस्तर पर पड़ गई और खाना-पीना छोड़ दिया। उसकी माँ ने उससे पूछा, "मेरी प्यारी बेटी, इसका क्या मतलब है? अगर मुझे वह युवक मिल जाए, जिसे चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया और जिसे सड़कों पर घसीटा गया, तो जीवन जीने लायक होगा; अगर नहीं, तो जीवन जीने लायक नहीं है।" मैं यहीं और अभी मर जाऊंगी।" बेटी को शांत करने में असमर्थ माँ ने पिता को बताया; लेकिन पिता भी अपनी बेटी को शांत नहीं कर पाए। "अब क्या किया जाए?" उन्होंने सोचा। उन्होंने उस राजा के अधिकारी को, जिसने डाकू को पकड़ा था और जो उसे फांसी के स्थान पर ले जा रहा था, एक हजार सिक्के भेजे और कहा, "यह पैसा ले लो और डाकू को मेरे पास भेज दो।" "ठीक है!" राजा के अधिकारी ने कहा। उसने पैसा लिया, डाकू को रिहा कर दिया, एक अन्य व्यक्ति को मृत्युदंड दिया और राजा को संदेश भेजा, "महाराज, डाकू को फांसी दे दी गई है।"

व्यापारी ने अपनी बेटी का विवाह डाकू से कर दिया। उसने अपने पति का दिल जीतने का निश्चय किया और तब से वह अपने सारे आभूषणों से सजी-धजी अपने हाथों से अपने पति के लिए भोजन बनाने लगी। कुछ दिनों बाद डाकू ने मन ही मन सोचा, "मैं इस स्त्री को कब मार डालूँ, उसके गहने छीनकर बेच दूँ और फिर किसी सराय में भोजन कर सकूँ? यही तो एकमात्र तरीका है!" वह बिस्तर पर लेट गया और खाना खाने से मना कर दिया। वह उसके पास आई और पूछा, "क्या तुम्हें दर्द हो रहा है?" "बिल्कुल नहीं, पत्नी।" "तो शायद मेरे माता-पिता तुमसे नाराज़ हैं?" "वे मुझसे नाराज़ नहीं हैं, पत्नी।" "तो फिर क्या बात है?" "पत्नी, जिस दिन मुझे बाँधकर गलियों में घुमाया गया था, उस दिन मैंने डाकुओं की चट्टान पर रहने वाले देवता से मन्नत माँगकर और भेंट चढ़ाकर अपनी जान बचाई थी; उसी की अलौकिक शक्ति से मैंने तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त किया। मैं सोच रहा था कि मैं देवता को भेंट चढ़ाने की अपनी मन्नत कैसे पूरी करूँ।" "पतिदेव, चिंता मत करो; मैं भेंट का प्रबंध कर लूंगी; बताओ क्या चाहिए।" "शहद से सुगंधित चावल का दलिया; और लाजा फूल समेत पाँच प्रकार के फूल।" "ठीक है, पतिदेव, मैं भेंट तैयार कर देती हूँ।" पूरी भेंट तैयार करने के बाद उसने अपने पति से कहा, "चलो, पतिदेव, चलें।" "ठीक है, पत्नी; अपने रिश्तेदारों को यहीं रहने दो; अपने कीमती वस्त्र पहन लो और अपने बहुमूल्य आभूषणों से खुद को सजा लो, और हम खुशी-खुशी हंसते-हंसते और आनंद लेते हुए चलेंगे।" उसने वैसा ही किया जैसा उसे कहा गया था। लेकिन जब वे अपने गंतव्य पर पहुँचे, तो उसने उससे कहा, "मुझे भेंट की कोई आवश्यकता नहीं है; भेंट के साथ तुम्हें यहाँ लाकर मैंने तुम्हें धोखा दिया।" "तो फिर मुझे यहाँ क्यों लाए, पतिदेव?" "तुम्हें मारने, तुम्हारे आभूषण छीनने और भाग जाने के लिए।" मृत्यु के भय से भयभीत होकर उसने उससे कहा, "पतिदेव, मेरे आभूषण और मेरा शरीर दोनों आपके हैं; आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?" वह बार-बार

उससे विनती करती रही, “ऐसा मत करो;” लेकिन उसका एकमात्र जवाब था, “मैं तुम्हें मार डालूंगा।” “आखिर मुझे मारकर तुम्हें क्या मिलेगा? ये गहने ले लो और मेरी जान बख्श दो।”

उसने मन ही मन सोचा, “अरे, ये तो कितना बुरा काम है! लेकिन, ज्ञान को पकाकर खाने के लिए नहीं बनाया गया है, बल्कि इसलिए बनाया गया है ताकि लोग कोई भी कदम उठाने से पहले सोच-समझ लें। मैं इससे निपटने का कोई तरीका ज़रूर ढूँढूँगी।” और उसने उससे कहा, “पतिदेव, जब उन्होंने आपको चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड़ा और गलियों में घुमाया, तो मैंने अपने माता-पिता को बताया, और उन्होंने आपको छुड़ाने के लिए हज़ारों सिक्के खर्च किए, और आपको अपने घर में जगह दी, और तब से मैं आपकी उपकारक रही हूँ; आज मुझे आपको प्रणाम करने की कृपा कीजिए।” “ठीक है, पत्नी,” उसने कहा, उसे प्रणाम करने की कृपा दी, और फिर चट्टान के किनारे पर खड़ा हो गया। उसने उसे अपने दाहिनी ओर रखते हुए उसके चारों ओर तीन बार परिक्रमा की, और चारों ओर से उसे प्रणाम किया। फिर उसने उससे कहा, “पतिदेव, यह आखिरी बार है जब मैं आपको देख रही हूँ। अब से आप मुझे फिर कभी नहीं देखेंगे, और न ही मैं आपको कभी देख पाऊँगी।” और उसने उसे आगे और पीछे से गले लगाया। फिर, उसके पीछे रहते हुए, जब वह चट्टान के किनारे के पास बेखबर खड़ा था, उसने एक हाथ उसके कंधे पर और दूसरा उसकी कमर पर रखा और उसे चट्टान से नीचे फेंक दिया। इस प्रकार डाकू पहाड़ की खाई में जा गिरा और तल पर पहुँचते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। डाकू को चट्टान से नीचे फेंकने के बाद, वह ननों के एक आश्रम में पहुँची। उसने आदरपूर्वक प्रणाम किया और कहा, “बहन, मुझे अपने मठ में नन के रूप में स्वीकार कर लीजिए।” तो उन्होंने उसे नन के रूप में स्वीकार कर लिया।

जब उन्होंने धर्म के हज़ार सिद्धांतों में महारत हासिल कर ली, तो उनसे कहा गया, “तुमने निपुणता प्राप्त कर ली है; अब जंबुद्वीप के कोने-कोने में जाओ और किसी ऐसे व्यक्ति को खोजो जो तुम्हारे साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा कर सके।” तब, उनके हाथों में गुलाब-एप्पल की एक शाखा देकर, उन्होंने उन्हें इन शब्दों के साथ विदा किया, “जाओ, बहन; यदि कोई गृहस्थ तुम्हारे साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा कर सके, तो उसकी दासी बन जाओ; यदि कोई भिक्षु प्रतिस्पर्धा कर सके, तो उसके संघ में भिक्षुणी के रूप में प्रवेश करो।” कोई भी उनके साथ प्रश्न-उत्तर में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सका; वास्तव में, उन्होंने ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली कि जब भी लोग यह घोषणा सुनते, “देखो, गुलाब-एप्पल वाली भिक्षुणी आ रही है,” तो वे भाग जाते।

भिक्षा मांगने के लिए किसी कस्बे या गाँव में प्रवेश करने से पहले, वह गाँव के द्वार के सामने रेत का ढेर लगाती और वहाँ अपनी गुलाब-बहु की शाखा रोपती। फिर वह चुनौती देती, “जो मुझसे प्रश्न-उत्तर में बहस कर सके, वह इस गुलाब-बहु की शाखा को अपने पैरों तले रौंद दे।” ऐसा कहकर वह गाँव में प्रवेश करती। कोई भी उस स्थान से आगे जाने का साहस नहीं करता था। जब एक शाखा सूख जाती, तो वह दूसरी ले आती। इसी तरह घूमते हुए वह सावत्थी पहुँची, नगर के द्वार के सामने शाखा रोपी, हमेशा की तरह चुनौती दी और भिक्षा मांगने के लिए अंदर चली गई। कई लड़के शाखा के चारों ओर जमा हो गए और यह देखने के लिए प्रतीक्षा करने लगे कि क्या होता है। तब पूज्य सारिपुत्त ने कहा, “आगे बढ़ो, लड़कों, इस शाखा को अपने पैरों तले रौंद दो।”

जब नन लौटी, तो उसने पूछा, “आदरणीय, क्या आपने उनसे मेरी शाखा को पैरों तले रौंदने के लिए कहा था?” “जी बहन।” “तो फिर, मेरे साथ प्रश्न और उत्तर मिलाइए।” “ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगा।”

भिक्षुणी ने पूज्य गुरु से कहा, “पूज्य गुरु, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ।” “पूछो, बहन।” इस प्रकार उसने उनसे धर्म के हज़ार सिद्धांतों के बारे में पूछा। भिक्षुणी द्वारा पूछे गए प्रत्येक प्रश्न का पूज्य गुरु ने सही उत्तर दिया। फिर उन्होंने उससे कहा, “मैं तुमसे केवल एक प्रश्न पूछूँगा; क्या तुम मुझे उत्तर दोगी?” “पूछो, पूज्य गुरु।” तब पूज्य गुरु ने उससे पूछा, “वह एक क्या है?” उसने मन ही मन कहा, “यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर मुझे आना चाहिए,” लेकिन उत्तर न जानते हुए उसने पूज्य गुरु से पूछा, “वह क्या है, पूज्य गुरु?” “यह बुद्ध का प्रश्न है, बहन।” “मुझे भी उत्तर बताइए, पूज्य गुरु।” “यदि तुम हमारे संघ में प्रवेश करोगी, तो मैं तुम्हें उत्तर बता दूँगा।” “ठीक है, मुझे संघ में प्रवेश दे दीजिए।” पूज्य गुरु ने भिक्षुणियों को संदेश भेजा और उसे संघ में प्रवेश दिलवा दिया। संघ में प्रवेश करने के बाद, उन्होंने इसे अपना पूर्ण संकल्प बना लिया, कुण्डलकेसी नाम धारण किया और कुछ ही दिनों में अलौकिक शक्तियों से संपन्न अरहत बन गईं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 102)

यो च अनत्थपादसंहिता गाथा शतं भसे
यं सुत्वा उपसम्मति एकं धम्मपदं सेय्यो

यो सीए : यदि कोई; अनत्थपादसंहिता : अर्थहीन अभिव्यक्तियों से भरा हुआ; गाथा सताम् [ सता ]: सौ श्लोक; भासे : सुनाना था; यं सुत्व : यदि कोई सुन रहा हो; उपसम्मति . एक व्यक्ति शांत हो जाता है; एकं : एक भी; धम्मपदं [ धम्मपद ]: धम्म शब्द; सेय्यो [ सेय्या ]: नेक है।

कोई व्यक्ति निरर्थक अभिव्यक्तियों से भरे सैकड़ों श्लोकों का पाठ कर सकता है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति ज्ञान से भरपूर, शांतिदायक श्लोक की एक पंक्ति का पाठ करे, तो वह कहीं अधिक मूल्यवान और श्रेष्ठ होगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 103)
यो सङ्गमे सहस्सेन सहस्सं मानुसे जिने ,
च एकं अत्तनं जेय्य स वे संगमजुत्तमो ।
यो : यदि कोई; संगामे : युद्ध में; सहस्सेना सहस्सं [ सहस्स ]: हजारों-हजारों (लाखों); मानुसे : पुरुष; जिने : विजय प्राप्त करें; च एकं अत्तनं [ अत्तन ]: यदि स्वयं (जो केवल एक है); जेय्या : विजय प्राप्त करें; सो : वह; वे : वास्तव में; संगामजुत्तमो [ संगामजुत्तमा ]: युद्धों का सबसे बड़ा विजेता है।
कोई व्यक्ति हजार लड़ाइयों में हजार लोगों को जीत सकता है। लेकिन जो व्यक्ति केवल एक व्यक्ति को जीत लेता है, यानी स्वयं को, वही सबसे बड़ा विजेता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 102-103)
अत्तानं : स्वयं का स्व। इस श्लोक में स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाले व्यक्ति की सर्वोच्च विजय स्थापित की गई है। स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति केवल एक ही व्यक्ति—स्वयं—पर विजय प्राप्त करता है। परन्तु यह विजय युद्ध में हजारों को जीतने से कहीं अधिक महान है। इसका तात्पर्य यह है कि युद्ध में हजारों को हराना, अपने अज्ञान पर विजय प्राप्त करने की तुलना में अपेक्षाकृत आसान है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 104,105

---

(धम्मपद 102 और 103) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 104 और 105 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 106)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 104 और 105 - अनत्थपुच्चकब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Atta have jitam seyyo
ya cayam itara paja
अत्तदन्तस्सा पोसासा
niccam sannatacarino.

Neva devo na gandhabbo
na Maro saha Brahmuna
जितम अपजितम कायिरा
tatharupassa jantuno.

---

श्लोक 104 एवं 105 : दूसरों पर विजय प्राप्त करने से बेहतर है स्वयं पर विजय प्राप्त करना। न तो कोई देवता, न गंधर्व, न ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित कोई भी उस व्यक्ति की विजय को पराजित कर सकता है जो स्वयं पर संयम रखता है।

---

ब्राह्मण अनत्थपुच्छक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण अनत्थपुच्छक के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (104) और (105) का उच्चारण किया।

एक बार अनत्थपुच्छक नाम का एक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय गुरुदेव, मुझे लगता है कि आप केवल लाभकारी प्रथाओं को ही जानते हैं, लाभकारी प्रथाओं को नहीं।” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि वे लाभकारी और हानिकारक प्रथाओं को भी जानते हैं। तब बुद्ध ने धन की हानि करने वाली छह प्रथाओं का वर्णन किया; वे हैं: (1) सूर्योदय तक सोना, (2) आदतन आलस्य, (3) क्रूरता, (4) मादक पदार्थों का सेवन जिससे नशा और लापरवाही होती है, (5) देर रात सड़कों पर अकेले घूमना, और (6) यौन दुराचार।

इसके बाद, बुद्ध ने ब्राह्मण से पूछा कि वह अपना जीवन यापन कैसे करता है, और ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वह जुआ खेलकर अपना जीवन यापन करता है। फिर बुद्ध ने उससे पूछा कि क्या वह जीतता है या हारता है। जब ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वह कभी हारता है और कभी जीतता है, तो बुद्ध ने उससे कहा, "जुआ के खेल में जीतना नैतिक विकारों पर विजय प्राप्त करने के आगे कुछ भी नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 104 एवं 105 : दूसरों पर विजय प्राप्त करने से बेहतर है स्वयं पर विजय प्राप्त करना। न तो कोई देवता, न गंधर्व, न ही ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) सहित कोई भी उस व्यक्ति की विजय को पराजित कर सकता है जो स्वयं पर संयम रखता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण अनत्थपुच्छक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ब्राह्मण अनत्थपुच्छक के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार अनत्थपुच्छक नाम का एक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और उनसे कहा, “आदरणीय बुद्ध, मुझे लगता है कि आप केवल लाभकारी प्रथाओं को ही जानते हैं, लाभकारी प्रथाओं को नहीं।” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया कि वे लाभकारी और हानिकारक प्रथाओं को भी जानते हैं।

फिर बुद्ध ने धन की हानि करने वाले छह कार्यों का वर्णन किया; वे इस प्रकार हैं:

सूर्योदय होने तक सोते रहना।

आदतन आलस्य,

क्रूरता,

मादक पदार्थों का सेवन जिससे नशा और लापरवाही होती है,

अजीब समय पर सड़कों पर अकेले टहलना, और

यौन दुराचार।

जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो उसने बुद्ध की प्रशंसा करते हुए कहा, "बहुत खूब, बहुत खूब, हे जनसमूह के गुरु, जनसमूह के नेता! आप वास्तव में लाभ और हानि दोनों को जानते हैं।" "जी, ब्राह्मण, हानि को मुझसे बेहतर कोई नहीं जानता।" तब बुद्ध ने मन ही मन विचार किया कि ब्राह्मण को ऐसा करने के लिए क्या प्रेरित कर रहा है, और उससे पूछा, "ब्राह्मण, तुम अपना जीवन यापन कैसे करते हो?" "जुए से, पूज्यवर।" "पर कौन जीतता है, तुम या दूसरा आदमी?" "कभी मैं जीतता हूँ और कभी दूसरा आदमी।" तब बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, दूसरे को हराने वाले की जीत तुच्छ बात है; ऐसी जीत में कोई श्रेष्ठ लाभ नहीं है। परन्तु जो अपने पापों पर विजय प्राप्त कर स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ विजय प्राप्त करता है, क्योंकि ऐसी विजय को कोई हार में नहीं बदल सकता।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 104)

अत्ता जितां हवे सेय्यो , या च अयं इतर पजा

अत्तदन्तस्सा निक्कं सन्नताकारिनो पोसासा ।

अत्ता : स्वयं का स्वंय; जिताम् [ जिता ]: जीत लिया गया; है सेयो [ सेय्या ]: वास्तव में महान है; या च अयं इतर पजा : यदि अन्य लोगों पर विजय प्राप्त की जाती है (वह महान नहीं है); सीए अत्तदंतस्सा : आत्म-विजेता; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; सन्नाटाकारिनो [ सन्नाटाकारिना ]: व्यवहार में संयमित है; पोसासा : उस प्रकार के व्यक्ति का।

स्वयं पर विजय प्राप्त करना दूसरों पर विजय प्राप्त करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। स्वयं पर विजय प्राप्त करने वाले की जीत कभी हार में नहीं बदल सकती। वह एक संयमी और अनुशासित व्यक्ति बना रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 105)

तथारूपस्सा जंतुनो जितां देवो ,

न एव अपजितं कयिरा गंधब्बो

na Brahmunā saha Māro na

tathārūpassa jantuno [ jantuna ]: उस प्रकार के व्यक्ति का; jitaṃ [ jita ]: विजय; devo : देवदूत या देवता; na eva apajitaṃ kayirā : हार में परिवर्तित नहीं किया जा सकता; gandhabbo [ gandhabba ]: आत्मा; Brahmunā : सृष्टिकर्ता; saha : और; Māra : शैतान; na : हार में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार की विजय को न तो कोई देवता, न कोई आत्मा, न कोई मारा (राक्षस) और न ही कोई ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) पराजित कर सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 104-105)

गंधब्बो : दिव्य प्राणियों का एक समूह जो गायन, नृत्य और आनंद में लीन रहता है। इस श्लोक में कहा गया है कि एक गंधब्बो भी आत्मविजयी की विजय को पराजय में नहीं बदल सकता। पारंपरिक टीकाओं के अनुसार, गंधब्बो ' चातुर्महाराजिका ' नामक स्वर्ग में निवास करते हैं - जो स्वर्ग के चार महान राज्य हैं। वे संगीत और नृत्य में आनंद लेते हैं।

एक पारंपरिक श्लोक में उनके समूहों को इस प्रकार सूचीबद्ध किया गया है:

Hā , hū hūs citgraratho ,

Hanso , vishavāvasus tathā

Gomāyustumburu nandi ,

Reva mādrusca te smrutā .

"उन्हें हा-हा , हू , चित्ररथ , हंस , विश्ववसु , गोमय , तुम्बुरु और नंदी जैसे नामों से जाना जाता है ।"

प्राचीन ग्रंथ ' वह्नी पुराण ' (अग्नि की आराधना) में इन्हें ग्यारह समूहों में विभाजित किया गया है।

इन सभी गंधबों को दो मुख्य समूहों में विभाजित किया गया है:

मातर्व गान्धर्व (जो इस युग में अपने पूर्व कर्मों के कारण उस अवस्था में जन्म लेते हैं);

देव गंधर्व (वे लोग जो पूर्व युगों में पुण्य कर्मों के कारण उस अवस्था में जन्म लेते हैं)।

अत्तदन्तस्स पोस्स्स : उस व्यक्ति को जिसने अपने आप पर विजय प्राप्त कर ली हो। बौद्ध चिंतन में, व्यक्ति की पहचान के लिए कभी-कभी अत्ता (आत्मा या स्वयं) का उल्लेख किया जाता है। लेकिन, आत्माहीनता या निस्वार्थता ( अनत्ता ) की अवधारणा बौद्ध चिंतन का एक केंद्रीय सिद्धांत है। इस अवधारणा पर विस्तृत व्याख्या इस प्रकार है: मन और पदार्थ के अलावा, जो इस तथाकथित अस्तित्व का निर्माण करते हैं, बौद्ध धर्म अमर आत्मा या शाश्वत अहंकार के अस्तित्व का दावा नहीं करता है, जिसे मनुष्य ने किसी रहस्यमय स्रोत से रहस्यमय तरीके से प्राप्त किया हो। एक शाश्वत आत्मा अनिवार्य रूप से बिना किसी परिवर्तन के हमेशा एक जैसी ही रहती है। यदि आत्मा, जिसे मनुष्य का सार माना जाता है, शाश्वत है, तो न तो उत्थान हो सकता है और न ही पतन। न ही कोई यह समझा सकता है कि 'विभिन्न आत्माएँ प्रारंभ में इतनी भिन्न-भिन्न क्यों होती हैं।' शाश्वत स्वर्ग में अनंत आनंद और शाश्वत नरक में अंतहीन पीड़ा के अस्तित्व को उचित ठहराने के लिए, अमर आत्मा की परिकल्पना करना नितांत आवश्यक है।

एक दार्शनिक लिखते हैं, “यह कहा जाना चाहिए कि आत्मा और शरीर के बीच का पुराना भेद समाप्त हो चुका है, क्योंकि न केवल 'पदार्थ' ने अपनी ठोसता खो दी है, बल्कि मन ने अपनी आध्यात्मिकता भी खो दी है। मनोविज्ञान अभी वैज्ञानिक रूप धारण करना शुरू कर रहा है। मनोविज्ञान की वर्तमान स्थिति में, अमरता में विश्वास को विज्ञान से कोई समर्थन नहीं मिल सकता।”

ब्रह्मांड की पहेली के विद्वान लेखक के अनुसार:

यह धार्मिक प्रमाण कि एक व्यक्तिगत सृष्टिकर्ता ने मनुष्य में अमर आत्मा (जिसे सामान्यतः दैवीय आत्मा का अंश माना जाता है) का संचार किया है, एक सरासर मिथक है। यह ब्रह्मांडीय प्रमाण कि 'संसार की नैतिक व्यवस्था' मानव आत्मा की शाश्वतता की मांग करती है, एक निराधार हठधर्मिता है। यह प्रयोजनवादी प्रमाण कि मनुष्य का 'उच्चतर भाग्य' मृत्यु के बाद उसकी अपूर्ण, सांसारिक आत्मा के पूर्णीकरण से जुड़ा है, एक झूठे मानववाद पर आधारित है। यह नैतिक प्रमाण कि सांसारिक अस्तित्व की कमियों और अतृप्त इच्छाओं को अनंत काल के पार 'प्रतिपूरणीय न्याय' द्वारा पूरा किया जाना चाहिए, एक पवित्र इच्छा से अधिक कुछ नहीं है। यह नृवंशविज्ञान संबंधी प्रमाण कि अमरता में विश्वास, ईश्वर में विश्वास की तरह, एक सहज सत्य है, जो समस्त मानवता के लिए समान है, वास्तव में एक त्रुटि है। यह सत्तामीमांसा संबंधी प्रमाण कि आत्मा, एक सरल, अमूर्त और अविभाज्य इकाई होने के कारण, मृत्यु के क्षय में शामिल नहीं हो सकती, मानसिक घटनाओं के एक पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण पर आधारित है; यह एक आध्यात्मिक भ्रांति है। ये सभी और इसी तरह के अन्य प्रमाण 'अथाहवाद के प्रमाण' संकटग्रस्त स्थिति में हैं; पिछले कुछ दशकों की वैज्ञानिक आलोचना ने उन्हें पूरी तरह से निष्फल कर दिया है। यदि इस जीवन से अगले जीवन में आत्मा या प्राण के रूप में कुछ भी नहीं जाता, तो फिर पुनर्जन्म किसका होता है? इस प्रश्न में यह मान लिया गया है कि पुनर्जन्म लेने के लिए कुछ न कुछ है। कुछ शताब्दियों पहले यह तर्क दिया गया था - "कोजिटो, एर्गो सम" (मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ)। सत्य है, लेकिन पहले यह सिद्ध करना होगा कि सोचने के लिए एक "मैं" है। हम कहते हैं कि

सूर्य पूर्व से उगता है और पश्चिम में अस्त होता है, हालाँकि हम जानते हैं कि वास्तव में ऐसा नहीं है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि कोई व्यक्ति एक ही स्थान पर दो बार प्रहार नहीं कर सकता, भले ही देखने में ऐसा लगे। सब कुछ इतनी जल्दी बदल जाता है। क्योंकि हम दो क्षणों में एक समान नहीं होते।

बौद्ध धर्म के अनुयायी एक दार्शनिक की इस बात से सहमत हैं कि, "स्पष्ट रूप से कोई न कोई कारण है जिसके चलते मैं वही व्यक्ति हूं जो मैं कल था, और इससे भी अधिक स्पष्ट उदाहरण लें तो, यदि मैं एक ही समय में किसी व्यक्ति को देखता हूं और उसे बोलते हुए सुनता हूं, तो कोई न कोई अर्थ है जिसके चलते मैं देखता और सुनता हूं।"

ब्रह्मा : इन श्लोकों में कहा गया है कि किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त आत्मविजय को न तो गंधर्व और न ही ब्रह्मा नष्ट कर सकते हैं । ब्रह्मा , ब्रह्मकायिक-देव हैं ।

ब्रह्म-कायिक-देव : ब्रह्मलोक के स्वर्गीय प्राणी सूक्ष्म भौतिक जगत के तीन प्रथम लोकों ( रूपलोक ) में निवास करते हैं, जो प्रथम समाधि ( झान ) के अनुरूप हैं। उनके सर्वोच्च शासक को महाब्रह्मा कहा जाता है । व्यंग्यात्मक विनोद के साथ वे कहते हैं: 'मैं ब्रह्मा हूं, महाब्रह्मा, सर्वोच्च, अजेय, सर्वज्ञ, शासक, भगवान, सृष्टिकर्ता, निर्माता, परिपूर्ण, संरक्षक, नियंत्रक, समस्त का पिता हूं।'

ब्रह्मलोक : व्यापक अर्थ में 'ब्रह्मलोक' सूक्ष्म भौतिक ( रूपलोक ) और अभौतिक जगत ( अरूपलोक ) का नाम है; हालांकि, संकीर्ण अर्थ में, यह केवल सूक्ष्म भौतिक जगत के पहले तीन स्वर्गों के लिए ही प्रयुक्त होता है।

ब्रह्मा देवताओं के हैं।

देव (शाब्दिक अर्थ: प्रकाशमान; लैटिन शब्द deus से संबंधित ), स्वर्गीय प्राणी, देवता, दिव्य प्राणी; वे प्राणी हैं जो सुखमय लोकों में निवास करते हैं और जो आमतौर पर मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। हालांकि, वे सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में बंधे होते हैं, और इस प्रकार जीवन के चक्र से मुक्त नहीं होते, और दुख से भी मुक्त नहीं होते।

दिव्य प्राणियों के कई वर्ग हैं।

I. कामुक क्षेत्र ( कामवाकर या काम-लोक) के स्वर्गीय प्राणियों की 5 श्रेणियां हैं: चातुर्महाराजिकादेव , तावतिंसा , यम , तुसिता , निम्माना-रति , परनिम्मिता-वासवत्ती ।

II. सूक्ष्म भौतिक जगत ( रूपावचरा या रूपलोक ) के दिव्य प्राणी निम्नलिखित हैं:

(1) ब्रह्म-पारिसाज्ज , ब्रह्म-पुरोहित , महा-ब्रह्म । इन तीन वर्गों में से वे लोग पुनर्जन्म लेंगे जिन्हें प्रथम समाधि ( झान ) का दुर्बल, मध्यम या पूर्ण अनुभव होगा।

(2) परित्ताबा , अप्पमानाभ , आहस्सर । यहाँ द्वितीय समाधि का अनुभव रखने वाले पुनर्जन्म लेंगे।

(3) परित्त-सुभा , अप्पमान-सुभा , सुभा किण्ण (या किण्ण )। यहाँ तृतीय समाधि का अनुभव रखने वाले पुनर्जन्म लेंगे।

(4) वेहप्पला , असञ्ञ-सत्त , शुद्धावास । प्रथम दो वर्गों में से वे पुनर्जन्म लेंगे जिन्हें चतुर्थ समाधि का अनुभव है, परन्तु तृतीय वर्ग में केवल अनागामी ही पुनर्जन्म लेंगे ।

तृतीय. अभौतिक क्षेत्र ( अरुपावचर या अरूप-लोक ) के स्वर्गीय प्राणियों के 4 ग्रेड हैं: असीमित अंतरिक्ष के क्षेत्र के स्वर्गीय प्राणी ( आकासनचायतन्युपगा-देव ), असीमित चेतना के ( विनानाचायतन्युपगा-देवा , शून्यता का ( अकिंचान्यातनुपगा-देवा ), न तो-धारणा-न ही गैर-धारणा ( नेवासना-नासान्यातानुपगा-देवा )। यहां 4 अभौतिक क्षेत्रों ( अरूपायतन ) का अनुभव रखने वाले लोग पुनर्जन्म लेंगे ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 106

———————————————————————

(धम्मपद 104 और 105) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 106 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 107)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 106 - सारिपुत्तथेरस्सा मातुल ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Mase mase sahassena(1)
यो वजेथा सतम समम
ekanca bhivatattanam
मुहत्तमपी पूजाये
sa yeva pujana seyyo
yance vassasatam hutam.

———————————————————————

श्लोक 106 : सौ वर्षों तक माह दर माह, कोई व्यक्ति हजार कहपना (सिक्कों) के मूल्य का दान (साधारण लोगों को) दे सकता है; फिर भी यदि कोई क्षण भर के लिए भी अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करने वाले भिक्षु को प्रणाम करे, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक (साधारण लोगों को) दान देने से बेहतर है।

———————————————————————

1. सहस्स: एक हजार; इस संदर्भ में, एक हजार कहपना (सिक्के)। एक कहपना सिक्का तांबे, चांदी या सोने का हो सकता है।

———————————————————————

थेरा सारिपुत्त के चाचा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (106) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जो थेरा सारिपुत्त के मामा थे।
एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने मामा ब्राह्मण से पूछा कि क्या वे कोई पुण्य कर्म कर रहे हैं। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि वे निगंथ तपस्वियों को प्रति माह एक हजार कहपन (सिक्के) के बराबर दान देते हैं, इस आशा में कि अगले जन्म में उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त होगा। तब थेरा सारिपुत्त ने उन्हें समझाया कि उनके गुरुओं ने उन्हें झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक का मार्ग नहीं जानते। ऐसा कहकर वे अपने मामा ब्राह्मण को बुद्ध के पास ले गए और उनसे धर्म की व्याख्या करने का अनुरोध किया, जिससे निश्चित रूप से ब्रह्मलोक प्राप्त होगा।
बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "हे ब्राह्मण, अपने गुरुओं को एक हजार कहपना (सिक्के) दान करने की बजाय किसी भिक्षु को एक चम्मच भिक्षा देना कहीं बेहतर होगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 106 : सौ वर्षों तक माह दर माह, कोई व्यक्ति हजार कहपना (सिक्कों) के मूल्य का दान (साधारण लोगों को) दे सकता है; फिर भी यदि कोई क्षण भर के लिए भी अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास करने वाले भिक्षु को प्रणाम करे, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक (साधारण लोगों को) दान देने से बेहतर है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के मामा ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय सारिपुत्त के चाचा की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ब्राह्मण के संदर्भ में कहा था, जो पूज्य सारिपुत्त के मामा थे।
एक बार पूज्य सारिपुत्त अपने मामा के पास गए और बोले, "ब्राह्मण, क्या आप कभी कोई अच्छा कर्म करते हैं?" "जी, मैं करता हूँ।"
"आप क्या करते हैं?" "मैं हर महीने एक हजार सिक्कों के बराबर दान देता हूँ।"
"आप यह पैसा किसे देते हैं?" "नग्न तपस्वियों को, पूज्यवर।"
"और इससे आपको क्या लाभ होने की आशा है?" "मुझे ब्रह्मलोक प्राप्त होने की आशा है।"
"लेकिन क्या यही ब्रह्मालोक तक पहुँचने का मार्ग है?" "जी हाँ, पूज्यवर।"
"आपको यह किसने बताया?" "मेरे शिक्षकों ने मुझे यह बताया, पूज्यवर।"

“ब्राह्मण, न तो तुम और न ही तुम्हारे गुरु ब्रह्मलोक का मार्ग जानते हैं। केवल बुद्ध ही उस मार्ग को जानते हैं। मेरे साथ आओ, मैं उनसे तुम्हें ब्रह्मलोक का मार्ग बताऊँगा।”
अतः पूज्य सारिपुत्त अपने चाचा को साथ लेकर बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताते हुए कहा, “पूज्यवर, इस ब्राह्मण ने ऐसा-ऐसा कहा है। कृपा करके उसे ब्रह्मलोक का मार्ग बता दीजिए।”
बुद्ध ने पूछा, “ब्राह्मण, क्या आपकी रिपोर्ट सही है?” “जी हां, पूज्यवर।”
“हे ब्राह्मण, यदि तुम इस प्रकार सौ वर्षों तक दान करते रहो, तो भी किसी आस्तिक के लिए एक क्षण के लिए ही मेरे शिष्य पर दृष्टि डालना या उसे एक चम्मच उबले हुए चावल देना कहीं अधिक फलदायी होगा।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 106)
यो मासे मासे सहस्सेन सततं समं यजेथा
भवितत्तनं एकं च मुहुतं अपि पूज्ये सीई
वससातं यं हुतां स पूजना येव सेय्यो
यो : यदि कोई: मसे मसे : महीने दर महीने; सहस्सेना : हजार के खर्च पर; सतं समं [ सम ]: सौ वर्षों तक; यजेत : भिक्षा देता है: भावितत्तानं [ भावितत्तान ]: (परन्तु यदि कोई व्यक्ति) संयमित और अनुशासित मन से; एकं : एक महान अरहत; च मुहत्तं अपि : क्षण भर के लिए भी; पूजये : आराधना करता है; चे वस्ससतं [ वस्ससत ]: पूरे सौ वर्षों तक; यं हुतं [ हुत ]: अग्नि पूजा करता है; सा पूजा येव : केवल वही आराधना; सेय्यो [ सेय्य ]: श्रेष्ठ है।
कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक हर महीने बलिदान दे सकता है; लेकिन एक क्षण के लिए ही सही, आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति को दिया गया सम्मान सौ वर्षों तक किए गए बलिदानों से कहीं अधिक होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 106)
हुतं : अनुनय; अर्पण। यह शब्द सामान्यतः गैर-बौद्धों द्वारा किए जाने वाले बलिदानों को दर्शाता है। बुद्ध के समय में अग्नि पूजा को हुत कहा जाता था। प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य में अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिए अग्नि में घी डालने को हुत कहा गया है ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 107

———————————————————————

(धम्मपद 106) <<<< पिछला || धम्मपद 107 || अगला >>>> (धम्मपद 108)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 107 - सारिपुत्तत्थेरस्सा भगिनेय वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jantu
aggim paricare vane
ekanca bhavitattanam
मुहत्तमपी पूजाये
sa yeva pujana seyyo
yance vassasatam hutam.

———————————————————————

श्लोक 107 : मनुष्य सौ वर्षों तक वन में पवित्र अग्नि की देखभाल कर सकता है, फिर भी यदि एक क्षण के लिए भी कोई उस भिक्षु को प्रणाम करे जिसने अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास किया है, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक अग्नि-पूजा में बलिदान करने से बेहतर है।

---

थेरा सारिपुत्त के भतीजे की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के भतीजे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (107) कहा।

एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने ब्राह्मण भतीजे से पूछा कि क्या वह कोई पुण्य कर्म कर रहा है। उसके भतीजे ने उत्तर दिया कि वह हर महीने अग्नि-पूजा में एक बकरे की बलि देता है, इस आशा में कि अगले जन्म में वह ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) में प्रवेश करेगा। तब थेरा सारिपुत्त ने उसे समझाया कि उसके गुरुओं ने उसे झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग नहीं जानते।

फिर वह अपने भतीजे, उस युवा ब्राह्मण को बुद्ध के पास ले गया। वहाँ बुद्ध ने उसे वह धम्म सिखाया जो ब्राह्मण जगत की ओर ले जाता है और ब्राह्मण से कहा, "हे युवा ब्राह्मण, एक क्षण के लिए भिक्षुओं को प्रणाम करना सौ वर्षों तक अग्नि पूजा में यज्ञ करने से कहीं बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 107 : मनुष्य सौ वर्षों तक वन में पवित्र अग्नि की देखभाल कर सकता है, फिर भी यदि एक क्षण के लिए भी कोई उस भिक्षु को प्रणाम करे जिसने अंतर्दृष्टि विकास का अभ्यास किया है, तो यह प्रणाम वास्तव में सौ वर्षों तक अग्नि-पूजा में बलिदान करने से बेहतर है।

---

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के भतीजे ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त के भतीजे की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के भतीजे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पूज्यवर अपने भतीजे के पास गए और बोले, “ब्राह्मण, क्या तुम कभी कोई अच्छा कर्म करते हो?” “जी हाँ, पूज्यवर।”

“तुम क्या करते हो?” “मैं हर महीने एक जानवर की बलि देता हूँ और बलि की अग्नि की देखभाल करता हूँ।”

“तुम ऐसा किसलिए करते हो?” “वे कहते हैं कि यही ब्रह्मलोक जाने का मार्ग है।”

“आपको यह किसने बताया?” “मेरे शिक्षकों ने, आदरणीय।”

“न तो तुम और न ही तुम्हारे गुरु ब्रह्मलोक का मार्ग जानते हैं। चलो, बुद्ध के पास चलते हैं।”

अतः पूज्य सारिपुत्त अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए, उन्हें घटना की जानकारी दी और उनसे कहा, “पूज्यवर, इस व्यक्ति को ब्रह्मलोक का मार्ग बताइए।”

बुद्ध ने कहा, “ब्राह्मण, क्या तुम्हारी रिपोर्ट सही है?” “जी हां, पूज्यवर।”

“हे ब्राह्मण, यदि तुम इस प्रकार सौ वर्षों तक यज्ञ की अग्नि की देखभाल करो, तो भी तुम्हारे इस कार्य का पुण्य मेरे शिष्य को एक क्षण के लिए भी दिए गए सम्मान के बराबर नहीं होगा।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 107)

यो जंतु वने सी वससातं अग्गिं परिचरे भवितत्तनं एकं

मुहुत्तं अपि पूजये वससातं यं हुतां स पूजन एव सेय्यो

यो जंतु : कुछ व्यक्तिगत; फलक : जंगल में; सीई : यदि; वाससाताम् [ वाससाता ]: सौ वर्षों तक; एग्गी परिकारे : अग्नि की पूजा करता है; भावितत्तनं [ भावितत्तन ]: स्वयं में अनुशासित और संयमित; एकं : एक महान अरहत; मुहुत्तं अपि : केवल एक क्षण के लिए; पूजये : आराधना करता है; वाससाताम् [ वाससाता ]: सौ वर्षों तक; यं हुतां [ हुता ]: यदि अग्नि पूजा आयोजित की गई हो; सा पूजन एव : वह एकमात्र आराधना; सेय्यो [ सेय्या ]: श्रेष्ठ है

कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक वन में अग्नि पूजा कर सकता है। फिर भी, जो व्यक्ति एक क्षण के लिए भी संयमी, अनुशासित अरहंत की आराधना करता है, उसके लिए उस क्षण की आराधना सौ वर्षों की अग्नि पूजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ होती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 107)

aggiṃ paricare vane : यदि कोई वन में रहकर अग्नि को यज्ञ करे। पूज्य सारिपुत्त के मामा, उनके भतीजे और उनके मित्र से संबंधित दो कथाओं में, जिनसे श्लोक उत्पन्न हुए, बुद्ध के समय की वैदिक हिंदू प्रथाओं द्वारा स्वीकृत यज्ञों का उल्लेख किया गया है। इस

श्लोक में, मुख्य शिष्य सारिपुत्त के भतीजे को बताया गया है कि यदि वह इस अनुष्ठान के माध्यम से उच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है, तो वन में रहकर अग्नि-देव को यज्ञ करना व्यर्थ है। बुद्ध की शिक्षा, जो आंतरिक पवित्रता और निष्कलंक आचरण पर बलि देती है, ने समकालीन उन प्रणालियों के विरुद्ध एक मजबूत प्रभाव डाला जो अग्नि-पूजा जैसी बाहरी प्रथाओं के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करना चाहती थीं। इस श्लोक के उदाहरण में, अग्नि-पूजा वन में होती है। अग्नि-उपासक ने अपने गृहस्थ जीवन का त्याग कर वन में जाकर अग्नि-पूजा को अपना संपूर्ण जीवन बना लिया है। उसने अग्नि पूजा की इस रस्म को इतना महत्व इसलिए दिया है क्योंकि वह आश्वस्त है कि केवल यही रस्म उसे ब्रह्मा के लोक में जीवन सुनिश्चित करेगी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 108

———————————————————————

(धम्मपद 107) <<<< पिछला || धम्मपद 108 || अगला >>>> (धम्मपद 109)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 108 - सारिपुत्तथेरस्सा सहायक ब्राह्मण वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यमकिन्सि यित्थं वा हुतम वा लोके
समवच्चरं यजेथा पुन्नापेक्खो
sabbampi tam na catubhagameti
abhivadana ujjugatesu seyyo.

———————————————————————

श्लोक 108 : इस संसार में, पुण्य कमाने के उद्देश्य से व्यक्ति वर्ष भर छोटे-बड़े बलिदान कर सकता है; ये सभी बलिदान सही मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की उपासना से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं हैं।

———————————————————————

थेरा सारिपुत्त के मित्र की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के एक मित्र के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (108) कहा।

एक बार थेरा सारिपुत्त ने अपने एक मित्र ब्राह्मण से पूछा कि क्या वह कोई पुण्य कर्म कर रहा है, तो उसने उत्तर दिया कि वह अगले जन्म में ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) में जाने की आशा में बड़े पैमाने पर यज्ञ कर रहा है। थेरा सारिपुत्त ने उसे बताया कि उसके गुरुओं ने उसे झूठी आशाएँ दी हैं और वे स्वयं ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग नहीं जानते। तब वह अपने मित्र को बुद्ध के पास ले गए, जिन्होंने उसे ब्रह्मलोक (प्रधान देवदूत) का मार्ग दिखाया। थेरा सारिपुत्त के मित्र से बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, वर्ष भर छोटे-बड़े यज्ञ करने से श्रेष्ठ है कि वह क्षण भर के लिए ही आर्यों की उपासना करे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 108 : इस संसार में, पुण्य कमाने के उद्देश्य से व्यक्ति वर्ष भर छोटे-बड़े बलिदान कर सकता है; ये सभी बलिदान सही मार्ग पर चलने वाले श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की उपासना से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं हैं।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त के मित्र की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के एक मित्र के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पूज्यवर उनके पास गए और उनसे पूछा, "ब्राह्मण, क्या तुम कभी कोई पुण्य कर्म करते हो?" "जी हाँ, पूज्यवर।"
"आप क्या करते हैं?" "मैं बलि चढ़ाता हूँ।" (हमें बताया जाता है कि उस समय, भारी धनराशि खर्च करके बलि चढ़ाने का रिवाज था।)
उस आदरणीय गुरु ने अपने साथी से इस प्रकार पूछताछ करने के बाद, उसे बुद्ध के पास ले जाकर घटना के बारे में बताया और उनसे कहा, "आदरणीय गुरु, इस व्यक्ति को ब्रह्मलोक का मार्ग बताइए।"
बुद्ध ने उससे पूछा, "ब्राह्मण, क्या तुम्हारी जानकारी सही है?" "हाँ," ब्राह्मण ने उत्तर दिया।
"हे ब्राह्मण, यदि तुम एक वर्ष तक बलि चढ़ाओ, तो भी क्या तुम्हारा यह कार्य उस व्यक्ति के कार्य के चतुर्थ भाग के बराबर नहीं होगा जो विश्वासपूर्वक हृदय से लोगों को दान देता है, या जो सद्‌भावपूर्वक मेरे शिष्यों को आदर अर्पित करता है?"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 108)
लोके पुनापेखो यां किंचि यिट्ठं वा हुतां वा संवच्चरं यजेथा
तं सब्बं अपि न चतुभागं न एति उज्जुगतसु अभिवदना सेय्यो
लोके : इस संसार में; पुन्ञपेखो [ पुन्ञपेखा ]: भलाई चाहने वाला; यं किंची यिट्ठं वा : यहां तक कि छोटा दान भी; हुतं वा : बड़ा दान; संवच्छरं [ संवच्छर ]: पूरे वर्ष के लिए; यजेत : भेंट; तं सब्बं अपि : वह सब जो; चतुभागं न एति : एक चौथाई भी नहीं होता; उज्जुगतेसु : सीधे चलने वाला व्यक्ति (अरहत); अभिवादना : प्रणाम करने वाला; सेय्यो [ सेय्य ]: जो बड़ा है
इस संसार में पुण्य कमाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति धार्मिक त्योहारों के दौरान दान-पुण्य कर सकता है। या फिर वह पूरे वर्ष भर विस्तृत यज्ञ कर सकता है। परन्तु इन सभी कर्मों से प्राप्त पुण्य, सीधे मार्ग पर चलने वाले अरहत की आराधना करने से प्राप्त पुण्य के एक चौथाई के बराबर भी नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 108)
ब्रह्मा : इस अध्याय के कई श्लोकों में ब्रह्मा का उल्लेख है। इन श्लोकों के उच्चारण के पीछे की कथाएँ भी उन लोगों से संबंधित हैं जिन्होंने ब्रह्मालोक की प्राप्ति के उद्देश्य से विभिन्न रीति-रिवाजों का पालन किया। ब्रह्मा और ब्रह्मालोक की अवधारणा के प्रति बौद्धों का क्या दृष्टिकोण है? धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र (बुद्ध का प्रथम उपदेश - धर्मचक्र का घूमना) में ब्रह्मालोक का उल्लेख है।
यह सुनकर, देव चतुम्माहारजिका, तावतिंस, यम, तुषिता, निम्मानरती, परनिम्मितवासवत्ती और ब्रह्मा परिषज्ज, ब्रह्मा पुरोहित, महा ब्रह्मा, परित्ताभ, अप्पमानसुभ, आभासर, परित्तासुभ, अप्पमानसुभ, सुभकिन्न वेहप्पला, अवीहा, अतप्पा, सुदस्सा, सुदस्सी और अकनिट्ठ ने भी उसी हर्षोल्लास से जयजयकार की। इस प्रकार, ठीक उसी क्षण, यह जयजयकार ब्रह्मलोक तक फैल गई। ये दस हजार विश्व-प्रणालियाँ कांप उठीं, हिल उठीं और ज़ोर से थरथराने लगीं।
बौद्ध साहित्य में ब्रह्मा का उल्लेख बार-बार मिलता है; परन्तु बौद्ध धर्म में मोक्ष देवताओं को बलि चढ़ाने से नहीं प्राप्त होता। ब्रह्मालोक को सृष्टिकर्ता देवता (महा ब्रह्मा) का निवास स्थान माना जाता है। भूरिदत्त जातक (जन्म कथा) में ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता देवता मानने के विचार का व्यंग्यपूर्वक खंडन किया गया है।
जातक कथा (जन्म कथा) इस प्रकार प्रश्न उठाती है :
"जिसकी आंखें हैं वह इस घिनौने दृश्य को देख सकता है, ब्रह्मा अपने प्राणियों को सही राह पर क्यों नहीं लाते?"
हालांकि महा ब्रह्मा नामक एक दिव्य सत्ता है, जो स्वयं को सृष्टिकर्ता मानती है, और जिसे ब्राह्मण सृष्टिकर्ता मानते हैं, और बौद्ध धर्म में भी मान्यता प्राप्त है, लेकिन बौद्ध यह नहीं मानते कि वह संसार का सृष्टिकर्ता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 109

---

(धम्मपद 108) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 109 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 110)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 109 - अयुवद्धनकुमार वत्थु

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
अभिवादनसिलिसा
niccam vuddhapacayino
cattaro dhamma vaddhanti
ayu vanno sukham balam.

---

श्लोक 109 : जो व्यक्ति अपने से बड़े और गुणी लोगों का सदा आदर और सम्मान करता है, उसे चार लाभ, अर्थात् दीर्घायु, सौंदर्य, सुख और बल प्राप्त होंगे।

---

आयुवधनकुमार की कहानी
दिघलंगिका के पास एक ग्राम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आयुवद्धनकुमार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (109) कहा।
एक समय की बात है, दो संन्यासी अड़तालीस वर्षों तक एक साथ तपस्या करते रहे। बाद में, उनमें से एक ने संन्यास छोड़कर विवाह कर लिया। पुत्र के जन्म के बाद, परिवार ने वृद्ध संन्यासी से मुलाकात की और उन्हें प्रणाम किया। संन्यासी ने माता-पिता से कहा, "आप दीर्घायु हों," लेकिन उन्होंने बच्चे से कुछ नहीं कहा। माता-पिता आश्चर्यचकित हुए और उन्होंने संन्यासी से उनकी चुप्पी का कारण पूछा। संन्यासी ने उन्हें बताया कि बच्चा केवल सात दिन और जीवित रहेगा और उन्हें उसकी मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं पता, लेकिन गौतम बुद्ध को शायद इसका उपाय पता हो।
इसलिए माता-पिता बच्चे को बुद्ध के पास ले गए; जब उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, तो बुद्ध ने केवल माता-पिता से ही कहा, "आपकी दीर्घायु हो", बच्चे से नहीं। बुद्ध ने बच्चे की आसन्न मृत्यु की भविष्यवाणी भी की। उसकी मृत्यु को रोकने के लिए, माता-पिता को घर के प्रवेश द्वार पर एक मंडप बनाने और बच्चे को मंडप में एक पलंग पर लिटाने के लिए कहा गया। फिर कुछ भिक्षुओं को वहाँ सात दिनों तक परित्त (1) का पाठ करने के लिए भेजा गया। सातवें दिन स्वयं बुद्ध उस मंडप में आए; ब्रह्मांड के सभी हिस्सों से देव (देवदूत) भी आए। उस समय राक्षस अवरुद्धक प्रवेश द्वार पर बच्चे को ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन जैसे ही अधिक शक्तिशाली देव (देवदूत) आए, राक्षस को पीछे हटना पड़ा और उनके लिए जगह बनानी पड़ी, इसलिए उसे बच्चे से दो योजन दूर रहना पड़ा। पूरी रात परित्त का पाठ जारी रहा, इस प्रकार बच्चे की रक्षा हुई। अगले दिन, बच्चे को पलंग से उठाया गया और बुद्ध को प्रणाम कराया गया। इस बार बुद्ध ने बालक से कहा, "तुम दीर्घायु हो।" जब बालक से पूछा गया कि वह कितने वर्ष जीवित रहेगा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया कि वह एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहेगा। अतः बालक का नाम आयुवद्धन रखा गया।
जब बालक बड़ा हुआ, तो वह पाँच सौ साथी भक्तों के साथ देश-विदेश घूमने लगा। एक दिन वे जेतवन मठ पहुँचे, और भिक्षुओं ने उसे पहचानकर बुद्ध से पूछा, "क्या प्राणियों के लिए दीर्घायु प्राप्त करने का कोई उपाय है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "बड़ों और बुद्धिमान एवं गुणी लोगों का आदर और सम्मान करने से न केवल दीर्घायु प्राप्त होती है, बल्कि सौंदर्य, सुख और शक्ति भी प्राप्त होती है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 109 : जो व्यक्ति अपने से बड़े और गुणी लोगों का सदा आदर और सम्मान करता है, उसे चार लाभ, अर्थात् दीर्घायु, सौंदर्य, सुख और बल प्राप्त होंगे।

---

प्रवचन के अंत में, आयुवद्धन और उनके पांच सौ साथियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
(1) परित्त: धार्मिक श्लोक जो आमतौर पर हानिकारक प्रभावों से सुरक्षा के लिए पढ़े जाते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आयुवद्धनकुमार की कहानी
दीघलंघिका के पास एक ग्राम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आयुवद्धनकुमार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, दो संन्यासी अड़तालीस वर्षों तक साथ-साथ रहकर धार्मिक तपस्या करते रहे। बाद में, उनमें से एक ने संन्यास छोड़कर विवाह कर लिया। पुत्र के जन्म के बाद, परिवार ने वृद्ध संन्यासी से मिलने जाकर उन्हें प्रणाम किया। संन्यासी ने माता-पिता से

कहा, "आप दीर्घायु हों।" परन्तु उन्होंने बच्चे से कुछ नहीं कहा। माता-पिता व्याकुल हो गए और उन्होंने संन्यासी से उनकी चुप्पी का कारण पूछा। संन्यासी ने उन्हें बताया कि बच्चा केवल सात दिन और जीवित रहेगा और उन्हें उसकी मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं पता, परन्तु शायद बुद्ध को इसका उपाय पता हो।

इसलिए माता-पिता बच्चे को बुद्ध के पास ले गए; जब उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, तो बुद्ध ने केवल माता-पिता से ही कहा, "आपकी दीर्घायु हो", बच्चे से नहीं। बुद्ध ने बच्चे की आसन्न मृत्यु की भविष्यवाणी भी की। उसकी मृत्यु को रोकने के लिए, माता-पिता को घर के प्रवेश द्वार पर एक मंडप बनाने और बच्चे को मंडप में एक पलंग पर लिटाने के लिए कहा गया। फिर कुछ भिक्षुओं को वहाँ सात दिनों तक परित्त (सुरक्षात्मक मंत्र) का पाठ करने के लिए भेजा गया। सातवें दिन स्वयं बुद्ध उस मंडप में आए; ब्रह्मांड के सभी हिस्सों से देवता भी आए। उस समय दुष्ट आत्मा अवरुद्धक प्रवेश द्वार पर बच्चे को ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन जैसे ही अधिक शक्तिशाली देवता आए, दुष्ट आत्मा को पीछे हटना पड़ा और उनके लिए जगह बनानी पड़ी, इसलिए उसे बच्चे से दो मील दूर रहना पड़ा। पूरी रात परित्त का पाठ जारी रहा, इस प्रकार बच्चे की रक्षा हुई। अगले दिन, बच्चे को पलंग से उठाया गया और बुद्ध को प्रणाम कराया गया। इस बार बुद्ध ने बालक से कहा, "तुम दीर्घायु हो।" जब बालक से पूछा गया कि वह कितने वर्ष जीवित रहेगा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया कि वह एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहेगा। अतः बालक का नाम आयुवद्धन रखा गया।

जब बालक बड़ा हुआ, तो वह पाँच सौ साथी भक्तों के साथ देश-विदेश घूमने लगा। एक दिन वे जेतवन मठ पहुँचे और भिक्षुओं ने उसे पहचानकर बुद्ध से पूछा, "क्या मनुष्यों के लिए दीर्घायु प्राप्त करने का कोई उपाय है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "बड़ों और बुद्धिमान एवं गुणी लोगों का आदर और सम्मान करने से न केवल दीर्घायु प्राप्त होती है, बल्कि सौंदर्य, सुख और शक्ति भी प्राप्त होती है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 109)

अभिवदना सिलिसा निक्कं वधापचानो आयु
वनो सुखं बलं चत्तारो धम्म वन्धन्ति

अभिवदना सिलिसा : उन लोगों में से जिन्हें आदर और आदर देने की आदत है; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; vaḍḍhāpacāino [ vaḍḍhāpacāina ]: जो लोग दिमाग से विकसित और परिपक्व हैं; आयु : जीवन की लंबाई; वन्नो [ वन्ना ]: रंग; सुखं [ सुखा ]: आराम; बलं [ बाला ]: ताकत; कत्तारो धम्म : चार चीजें; वन्धन्ति : वृद्धि

यदि कोई व्यक्ति निरंतर परिपक्व और परिपक्व व्यक्तियों का आदर और सम्मान करने का अभ्यास करे, तो उसके जीवन में चार प्रकार से सुधार होता है। उसकी आयु शीघ्र बढ़ती है। उसका रंग निखरता है। उसका स्वास्थ्य और सुख-सुविधाएं बेहतर होती हैं। उसकी ऊर्जा और सहनशक्ति में भी वृद्धि होती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 109)

वड्धपाचैनो : विकसित और परिपक्व। यह श्लोक आध्यात्मिक रूप से विकसित लोगों के सम्मान के गुण का गुणगान करता है। पारंपरिक व्याख्याओं के अनुसार, चार श्रेणियां हैं जिन्हें 'परिपक्व' माना जाना चाहिए और सम्मान के योग्य समझा जाना चाहिए।

ये चार श्रेणियां इस प्रकार हैं:

(1) जातिवुद्ध : नस्ल के संदर्भ में परिपक्व या उच्चतर। कुछ जनसमूहों में यह परंपरा है कि नस्ल की कुछ श्रेणियों को श्रेष्ठ माना जाना चाहिए। हालाँकि बौद्ध धर्म में श्रेष्ठता का यह रूप स्वीकार नहीं किया जाता है, फिर भी टीकाएँ इसके अस्तित्व को स्वीकार करती हैं;

(2) गोत्ता वुद्धा : जाति या कुल श्रेष्ठता के कारण सम्मान के योग्य। कुछ प्रणालियों में इस प्रकार की श्रेष्ठता स्वीकार की जाती है, लेकिन बौद्ध प्रणाली में नहीं;

(3) वयो वुद्धा : उम्र के आधार पर श्रेष्ठता। अधिकांश संस्कृतियों में सम्मान का यह रूप मान्य है। उम्र में छोटे लोग हमेशा उम्र में उनसे बड़े लोगों का सम्मान करते हैं;

(4) गुण गुण : चरित्र में श्रेष्ठ। बौद्ध संघ पदानुक्रम में यही व्यवस्था प्रचलित है। बौद्ध प्रणाली में सभी गृहस्थ सभी बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान करते हैं क्योंकि वे जीवन के कुछ श्रेष्ठ सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, भले ही बौद्ध भिक्षु ने कुछ ही समय पहले दीक्षा ली हो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 110

---

(धम्मपद 109) <<<< पिछला || धम्मपद 110 || अगला >>>> (धम्मपद 111)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 110 - समकिक्कासामनेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vo ca vassasatam jive
dussilo asamahito
ekaham jivitam seyyo
silavantassa jhayino.

---

श्लोक 110 : अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण न रखने वाले अनैतिक व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले गुणी व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

---

समनेरा समकिक्का की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा समकिच्चा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (110) कहा।

एक बार तीस भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर एक बड़े गाँव की ओर प्रस्थान किया। उस समय एक घने जंगल में पाँच सौ लुटेरे छिपे हुए थे और वे जंगल के रक्षक देवताओं को मानव मांस और रक्त का अर्पण करना चाहते थे। इसलिए वे गाँव के मठ में आए और मांग की कि उनमें से एक भिक्षु को रक्षक देवताओं को बलि के लिए सौंप दिया जाए। सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे तक, सभी भिक्षुओं ने स्वेच्छा से जाने की पेशकश की। भिक्षुओं के साथ समकिच्चा नाम का एक युवा समनेर भी था, जिसे थेरा सारिपुत्त ने उनके साथ भेजा था। यह समनेर केवल सात वर्ष का था, लेकिन उसने पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था। समकिच्चा ने कहा कि उसके गुरु थेरा सारिपुत्त ने इस खतरे को पहले से जानते हुए जानबूझकर उसे भिक्षुओं के साथ भेजा था और उसे ही लुटेरों के साथ जाना चाहिए। ऐसा कहकर वह लुटेरों के साथ चल पड़ा। भिक्षुओं को युवा समनेर को जाने देने का बहुत पछतावा हुआ। लुटेरों ने यज्ञ की तैयारी की; जब सब कुछ तैयार हो गया, तो उनका सरदार समनेर के पास आया, जो उस समय ध्यानमग्न होकर बैठा हुआ था। लुटेरों के सरदार ने अपनी तलवार उठाई और युवा समनेर पर ज़ोरदार प्रहार किया, लेकिन तलवार का ब्लेड मांस को काटे बिना ही मुड़ गया। उसने ब्लेड को सीधा किया और फिर प्रहार किया; इस बार, वह समनेर को बिना कोई क्षति पहुँचाए, मूठ तक ऊपर की ओर मुड़ गया। इस विचित्र घटना को देखकर लुटेरों के सरदार ने अपनी तलवार गिरा दी, समनेर के चरणों में घुटने टेक दिए और क्षमा मांगी। सभी पाँच सौ लुटेरे चकित और भयभीत हो गए; उन्होंने पश्चाताप किया और समकिच्च से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी। उन्होंने उनकी विनती मान ली।

युवा समनेरा पाँच सौ नए भिक्षुओं के साथ गाँव के मठ में लौट आए और उन्हें देखकर तीस भिक्षुओं को बहुत राहत और प्रसन्नता हुई। फिर समकिच्चा और पाँच सौ भिक्षु अपने गुरु थेरा सारिपुत्त को जेतवन मठ में प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े। थेरा सारिपुत्त के दर्शन करने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने गए। जब उन्हें सारी घटना बताई गई, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यदि तुम चोरी-चकारी और हर प्रकार के बुरे कर्म करोगे, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा, चाहे तुम सौ वर्ष ही क्यों न जियो। एक दिन भी सदाचारी जीवन जीना सौ वर्ष के दुराचारी जीवन से कहीं बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 110 : अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण न रखने वाले अनैतिक व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करने वाले गुणी व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

---

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवदीक्षित भिक्षु संकिच्चा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नवोदित भिक्षु संकिच्चा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार तीस भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का एक-एक विषय लिया और सावत्थी से एक सौ बीस योजन (लीग) दूर स्थित एक बड़े गाँव के लिए प्रस्थान किया। उस समय, एक घने जंगल में पाँच सौ लुटेरे छिपे हुए थे और वे जंगल के रक्षक देवताओं को मानव मांस और रक्त का अर्पण करना चाहते थे। इसलिए वे गाँव के मठ में आए और मांग की कि उनके भिक्षुओं में से एक को रक्षक देवताओं को बलि के लिए सौंप दिया जाए। सबसे बड़े से लेकर सबसे छोटे तक, सभी भिक्षुओं ने स्वेच्छा से जाने की पेशकश की। भिक्षुओं के साथ संकिच्चा नाम का एक युवा नवोदित भिक्षु भी था, जिसे पूज्य सारिपुत्त ने उनके साथ भेजा था। यह नवोदित भिक्षु केवल सात वर्ष का था, लेकिन उसने पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था। संकिच्चा ने कहा कि उनके गुरु पूज्य सारिपुत्त ने इस खतरे को पहले से जानते हुए जानबूझकर उन्हें भिक्षुओं के साथ भेजा था और उन्हें ही लुटेरों के साथ जाना चाहिए। ऐसा कहकर वह डाकुओं के साथ चल पड़ा। भिक्षुओं को उस नवोदित भिक्षु को जाने देने का बहुत पछतावा हुआ। डाकुओं ने यज्ञ की तैयारी की; जब सब कुछ तैयार हो गया, तो उनका सरदार उस नवोदित भिक्षु के पास आया, जो उस समय ध्यान में लीन बैठा था। डाकुओं के सरदार ने अपनी तलवार उठाई और उस नवोदित भिक्षु पर ज़ोरदार प्रहार किया, लेकिन तलवार की धार बिना मांस काटे ही मुड़ गई। उसने तलवार सीधी की और फिर प्रहार किया; इस बार, तलवार बिना नवोदित भिक्षु को चोट पहुँचाए, मूठ तक ऊपर की ओर मुड़ गई। यह विचित्र घटना देखकर डाकुओं के सरदार ने अपनी तलवार गिरा दी, नवोदित भिक्षु के चरणों में घुटने टेक दिए और क्षमा मांगी। सभी पाँच सौ डाकू चकित और भयभीत हो गए; उन्होंने पश्चाताप किया और संकिच्च से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी। उन्होंने उनकी विनती मान ली।

ऐसा करने के बाद, उन्होंने उन्हें दस उपदेशों में स्थापित किया और उन्हें अपने साथ लेकर चल पड़े। वे पाँच सौ भिक्षुओं के दल के साथ उनके निवास स्थान पर गए। जब उन्होंने उन्हें देखा, तो उन्हें मन की शांति मिली।

फिर संकिच्चा और पाँच सौ भिक्षु अपने गुरु पूज्य सारिपुत्त को जेतवन मठ में प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े। पूज्य सारिपुत्त से मिलने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने गए। जब उन्हें सारी घटना बताई गई, तो बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षुओं, यदि तुम चोरी-चकारी करोगे और हर प्रकार के बुरे कर्म करोगे, तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा, चाहे तुम सौ वर्ष ही क्यों न जियो। एक दिन भी सदाचारी जीवन जीना सौ वर्ष के दुराचारी जीवन से कहीं बेहतर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 110)

दुस्सिलो असामहितो यो च वससातं जिवे
सिलवन्तस्सा झाणो एकहं जीवितं सेय्यो

दुस्सीलो [ दुस्सीला ]: वह व्यक्ति जो सद्गुणों से रहित हो; असामहितो [ असामहित ]: असंतुलित मन वाला; यो : वह; च : चाहे सौ वर्ष भी जीवित रहे ; सीलावंतस : सद्गुणी ; झैनो [ झैन ]: जो ध्यानमग्न हो; एकाह [ एकाह ] : केवल एक दिन का; जीवित [ जीवित ]: जीवन; सेय्यो [ सेय्य ] : महान हो

एक दिन जो एक सद्गुणी और ध्यानमग्न व्यक्ति के रूप में बिताया जाता है, वह सौ वर्षों के उस जीवन से कहीं अधिक मूल्यवान होता है जो एक सद्गुणहीन और असंतुलित मन वाले व्यक्ति के रूप में बिताया जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 110)

झाइनो : वह व्यक्ति जो झान (ध्यान) का अभ्यास करता है। झान (मानसिक शांति) से तात्पर्य "रूप क्षेत्र" की चार ध्यान अवस्थाओं से है। ये अवस्थाएँ मानसिक शुद्धि की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त होती हैं, जिसके दौरान पाँच प्रकार की इंद्रिय-क्रियाओं और पाँच प्रकार के विक्षोभों (मन को व्याकुल करने वाली भावनात्मक गड़बड़ियों) का धीरे-धीरे, यद्यपि अस्थायी रूप से, शांत होना होता है। मन की अवस्था पूर्ण सतर्कता और स्पष्टता की होती है। शांति की यह उच्च अवस्था सामान्यतः शांति ध्यान के चालीस विषयों में से एक या अधिक के अभ्यास से विकसित होती है। शांति के चार निराकार स्तर भी हैं जिन्हें 'निराकार क्षेत्र' ( अरूप आयतन ) कहा जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 111

———————————————————————————

(धम्मपद 110) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 111 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 112)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 111 - खनु कोंडन्नत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yo ca vassasatam jive
duppanno asamahito
ekaham jivitam seyyo
pannavantassa jhayino.

---

श्लोक 111 : एक अज्ञानी व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, एक बुद्धिमान व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करता है।

---

खानू-कोंडन्ना की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने खानु कोंडन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (111) कहा।
थेरा कोंडन्ना ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद, ध्यान साधना के लिए जंगल में चले गए और वहाँ उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ। बुद्ध को प्रणाम करने लौटते समय, वे बहुत थक गए थे, इसलिए रास्ते में रुक गए। वे एक बड़े पत्थर के शिलाखंड पर बैठ गए और ध्यान में लीन हो गए। उसी समय, एक बड़े गाँव को लूटकर पाँच सौ लुटेरे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ थेरा थे। उन्हें पेड़ का ठूंठ समझकर, उन्होंने लूटे हुए सामान के गट्ठे थेरा के शरीर पर और उसके चारों ओर रख दिए। जब सुबह हुई, तो उन्हें एहसास हुआ कि जिसे वे पेड़ का ठूंठ समझ रहे थे, वह वास्तव में एक जीवित प्राणी था। तब उन्हें लगा कि वह कोई राक्षस है और वे डरकर भाग गए।
थेरा ने उन्हें बताया कि वे केवल एक भिक्षु हैं, राक्षस नहीं, और उन्हें भयभीत न होने के लिए कहा। लुटेरे उनकी बातों से भयभीत हो गए और उन्होंने थेरा के साथ किए गए अन्याय के लिए क्षमा मांगी। इसके तुरंत बाद, सभी लुटेरों ने थेरा से उन्हें संघ में शामिल करने का अनुरोध किया। उसी समय से, थेरा कोंडन्ना को "खानु कोंडन्ना" (वृक्ष-ठूंठ कोंडन्ना) के नाम से जाना जाने लगा।
नए भिक्षुओं के साथ थेरा बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "सौ वर्ष तक अज्ञान में रहकर मूर्खतापूर्ण कार्य करना व्यर्थ है; अब जब तुमने सत्य को देख लिया है और ज्ञानी हो गए हो, तो एक दिन के लिए ज्ञानी के रूप में जीना कहीं अधिक सार्थक है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 111 : एक अज्ञानी व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, एक बुद्धिमान व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
खानु-कोण्डञ्ञा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने खानु कोण्डञ्ञ के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
ऐसा प्रतीत होता है कि इस पूज्यवर ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त किया और वन में निवास करते हुए अर्हतत्व प्राप्त किया। बुद्ध को अपनी इस उपलब्धि की सूचना देने की इच्छा से वे वन से लौटने के लिए निकल पड़े। रास्ते में थककर वे मार्ग छोड़कर एक समतल पत्थर पर बैठ गए और समाधि में लीन हो गए। उसी समय पाँच सौ चोरों का एक गिरोह एक गाँव को लूट रहा था। उन्होंने अपने-अपने शरीर की ताकत के अनुसार आकार-प्रकार के बोरों में लूटा हुआ माल भरा, बोरों को अपने सिर पर रखा और उन्हें लेकर दूर तक चले। थककर वे आपस में कहने लगे, "हम बहुत दूर आ गए हैं; चलो इस समतल पत्थर पर विश्राम करते हैं।" ऐसा कहकर वे मार्ग छोड़कर पत्थर के पास गए और पूज्यवर को पेड़ का ठूंठ समझ बैठे। एक चोर ने अपना बोरा पूज्यवर के सिर पर रख दिया और दूसरे ने अपना बोरा उनके शरीर के पास रख दिया। एक-एक करके पाँच सौ चोरों ने अपने बोरे उनके चारों ओर घेरा बनाकर रख दिए और लेटकर सो गए।
भोर होते ही वे उठे और अपने बोरे उठा लिए। पूज्यवर को देखकर, उन्हें दुष्ट आत्मा समझकर वे भागने लगे। पूज्यवर ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ शिष्यों, डरो मत; मैं एक भिक्षु हूँ।" तब वे उनके चरणों में गिर पड़े और क्षमा माँगते हुए बोले, "हमें क्षमा करें, पूज्यवर; हमने

आपको पेड़ का ठूंठ समझ लिया था।" चोरों के सरगना ने कहा, "मैं पूज्यवर के अधीन भिक्षु बनना चाहता हूँ।" बाकी सबने कहा, "हम भी भिक्षु बनेंगे।" और सभी चोरों ने एकमत होकर पूज्यवर से उन्हें भिक्षु बनाने का अनुरोध किया। पूज्यवर ने उन सभी को भिक्षु बना दिया, ठीक वैसे ही जैसे नौसिखिए संकिच्चा को बनाया था। उस समय से वह ठूंठ कोण्डाञ्ञ, खानु-कोण्डाञ्ञ के नाम से जाने जाने लगे।

उन भिक्षुओं के साथ वह बुद्ध के पास गया। जब बुद्ध ने उससे पूछा, "कोण्डा, क्या तुम्हें शिष्य मिले हैं?" तो उसने उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने पूछा, "भिक्षुओं, क्या यह सच है?" "जी जी, पूज्यवर; हमने पहले कभी ऐसी जादुई शक्ति का प्रदर्शन नहीं देखा था, इसलिए हम भिक्षु बन गए हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, तुम्हारे लिए सौ वर्ष तक ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्य करते रहने की बजाय, अभी-अभी प्राप्त ज्ञान का अभ्यास करने में एक दिन भी जीना बेहतर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 111)

दुप्पन्नो असामहितो यो च वाससातम् जिवे
पन्नवंतस्स झैनो एकहं जीवितं सेय्यो

दुप्पञ्ञो [ दुप्पञ्ञा ]: नासमझ; असामहितो: मन से अस्थिर और चंचल; यो : कोई व्यक्ति; च : भले ही, वस्सासतं जीवे : सौ वर्ष तक जीवित रहे; पञ्ञवन्तस्स : बुद्धि से संपन्न व्यक्ति का; झैनो [ झैना ]: मानसिक रूप से अनुशासित; एकाहं [ एकाह ]: केवल एक दिन का; जीवतं [ जीवत ]: जीवन; सेय्यो [ सेय्य ]: अधिक है

एक बुद्धिमान व्यक्ति का एक दिन का जीवन, जो वास्तविकता से अवगत है, उस व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से भी अधिक मूल्यवान है जो ज्ञान और अंतर्दृष्टि से रहित है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

झाइनो : वह व्यक्ति जो ज्ञान का अभ्यास करता है । बुद्ध ने ज्ञान का वर्णन इस प्रकार किया है:

(1) इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, अस्वस्थ मन की अवस्थाओं से विरक्त होकर, भिक्षु प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है , जो अनुमान ( वितक्का ) और पूछताछ ( विचार ) के साथ होता है, और वैराग्य से उत्पन्न आनंद ( पीति ) और सुख ( सुख ) से भरा होता है।

(2) अनुमान और पूछताछ के शांत होने के बाद, और आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त करने के बाद, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है , जो मन की स्थिरता से उत्पन्न होता है, और आनंद ( पीति ) और सुख ( सुख ) से भरा होता है।

(3) आनंद के लुप्त हो जाने के बाद वह समभाव, सजगता और स्पष्ट चेतना में निवास करता है; और वह अपने भीतर उस भावना का अनुभव करता है जिसके बारे में वरन्ग कहते हैं, 'समभाव और सजग मन वाला मनुष्य सुखी है'; इस प्रकार वह तृतीय समाधि में प्रवेश करता है।

(4) सुख और दुख का त्याग करने के बाद, और पूर्व के सुख और दुःख के लुप्त होने के कारण, वह सुख और दुख से परे की अवस्था में, चौथी समाधि में प्रवेश करता है, जो समभाव ( उपेक्खा ) और ध्यान से शुद्ध होती है।

(5) हालाँकि, पदार्थ की धारणाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, और इंद्रिय-प्रतिक्रियाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देने के द्वारा, 'अंतरिक्ष असीम है' के विचार से, वह असीम अंतरिक्ष ( आकाशणंचायतन ) के क्षेत्र में पहुँच जाता है और उसमें निवास करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 112

---

(धम्मपद 111) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 112 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 113)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 112 - सप्पादसत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yo ca vassasatam jive
kusito(1) hinaviriyo
ekaham jivitam seyyo
viriyamarabhato dalham.

---

श्लोक 112 : आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में उत्साहपूर्वक और परिश्रमपूर्वक प्रयास करता है।

---

1. कुसितो: एक आलसी व्यक्ति; टीका के अनुसार, एक आलसी व्यक्ति वह है जो अपना समय केवल बुरे विचारों में व्यतीत करता है।

---

थेरा सप्पदासा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सप्पदासा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (112) कहा।
एक बार एक भिक्षु अपने भिक्षु जीवन से प्रसन्न नहीं थे; साथ ही उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि गृहस्थ जीवन में लौटना उनके लिए अनुचित और अपमानजनक होगा। अतः उन्होंने मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझा। इसी विचार में एक बार उन्होंने अपना हाथ एक घड़े में डाला जिसमें एक साँप था, परन्तु साँप ने उन्हें नहीं काटा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पिछले जन्म में साँप उनका दास था और भिक्षु उसके स्वामी थे। इसी घटना के कारण भिक्षु थेरा सप्पदासा के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक अन्य अवसर पर थेरा सप्पदासा ने अपना गला काटने के लिए एक तेज धार उठाई; परन्तु जैसे ही उन्होंने तेज धार को अपने गले पर रखा, उन्होंने अपने पूरे भिक्षु जीवन में किए गए नैतिक आचरण की पवित्रता पर चिंतन किया और उनका पूरा शरीर परमानंद और सुख से भर गया। फिर उन्होंने अपनी दया को त्यागकर अपना ध्यान अंतर्दृष्टि ज्ञान के विकास की ओर लगाया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया तथा वे मठ लौट आए।
मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे कहाँ थे और अपने साथ चाकू क्यों लाए थे। जब उन्होंने उन्हें अपने आत्महत्या के इरादे के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा मूल इरादा इस चाकू से अपना गला काटने का था, लेकिन अब मैंने अंतर्दृष्टि ज्ञान के चाकू से सभी नैतिक दोषों को काट डाला है।" भिक्षुओं को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और पूछा, "आदरणीय, यह भिक्षु दावा करता है कि जब वह अपने गले पर चाकू रखकर आत्महत्या करने जा रहा था, तभी उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। क्या इतने कम समय में अर्हत मार्ग प्राप्त करना संभव है?" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! हाँ, यह संभव है; जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में उत्साही और परिश्रमी होता है, वह पल भर में अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है। भिक्षु ध्यान में चलते हुए, अपना पैर जमीन पर रखने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 112 : आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति के जीवन के सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में उत्साहपूर्वक और परिश्रमपूर्वक प्रयास करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय सप्पदासा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सप्पदासा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार एक भिक्षु अपने संन्यासी जीवन से प्रसन्न नहीं थे; साथ ही उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि गृहस्थ जीवन में लौटना उनके लिए अनुचित और अपमानजनक होगा। अतः उन्होंने मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझा। ऐसा सोचते हुए एक बार उन्होंने अपना हाथ एक घड़े में डाला जिसमें एक साँप था, परन्तु साँप ने उन्हें नहीं काटा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पिछले जन्म में साँप दास था और भिक्षु उसके स्वामी थे। इसी घटना के कारण भिक्षु पूज्य सप्पदासा के नाम से प्रसिद्ध हुए। एक अन्य अवसर पर पूज्य सप्पदासा ने अपना गला काटने के लिए एक तरकश उठाया; परन्तु जैसे ही उन्होंने तरकश को अपने गले पर रखा, उन्होंने अपने पूरे संन्यासी जीवन के नैतिक आचरण की पवित्रता पर चिंतन किया और उनका पूरा शरीर परमानंद और सुख से भर गया। फिर उन्होंने पीति से विरक्त होकर अपना मन अंतर्दृष्टि ज्ञान के विकास में लगाया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया तथा वे मठ लौट आए।

मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे कहाँ थे और अपने साथ चाकू क्यों लाए थे। जब उन्होंने उन्हें अपने आत्महत्या के इरादे के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा इरादा पहले इस चाकू से अपना गला काटने का था, लेकिन अब मैंने अंतर्दृष्टि ज्ञान के चाकू से सभी नैतिक दोषों को काट डाला है।" भिक्षुओं को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और पूछा, "आदरणीय, यह भिक्षु दावा करता है कि जब वह चाकू अपने गले पर रखकर आत्महत्या करने जा रहा था, तभी उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। क्या इतने कम समय में अर्हत मार्ग प्राप्त करना संभव है ?" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! हाँ, यह संभव है; जो व्यक्ति शांति और अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में उत्साही और परिश्रमी होता है, वह पल भर में अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है। ध्यान में चलते हुए भिक्षु अपना पैर जमीन पर रखने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर सकता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 112)

कुसीतो हिनावीरियो यो च वससातं जिवे
दहहं वीर्यं अरभतो एकहं जीवितं सय्यो

कुसिटो [ कुसिटा ]: आलसी; हिनावीर्यो [ हिनावीर्य ]: पहल के बिना, सुस्त; यो : एक व्यक्ति; सीए : यदि; वाससाताम् [ वाससाता ]: सौ वर्ष; जिवे : जीना था; दहः वीर्यं [ वीर्य ]: प्रयास से भरपूर; अराभातो [ अराभता ]: जो विकसित होता है; एकहं जीवितम् [ जीवित ]: एक दिन का जीवन भी; सेय्यो [ सेय्या ]: नेक है

परिश्रम करने में सक्षम एक बुद्धिमान व्यक्ति का एक दिन का जीवन, आलसी, प्रयास करने में असमर्थ और पहल करने में असमर्थ व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से भी अधिक श्रेष्ठ है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 112)

वीरयं : प्रयास; विशेष रूप से आध्यात्मिक प्रयास। प्रज्ञा (ज्ञान) से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है वीरय (दृढ़ता)। यहाँ वीरय का अर्थ शारीरिक शक्ति नहीं है, यद्यपि यह एक गुण है, बल्कि मानसिक शक्ति या चरित्र की दृढ़ता है, जो कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इसे मन को शुद्ध करने के निरंतर प्रयास के रूप में परिभाषित किया गया है। इस सद्गुण में दृढ़ता से स्थापित होकर, बोधिसत्व वीरय का विकास करते हैं और इसे अपने प्रमुख गुणों में से एक बनाते हैं।

महाजनक जातक में बोधिसत्व के वीर जीवन का स्पष्ट वर्णन मिलता है । खुले समुद्र में सात दिनों तक जहाज़ टूटने के बाद भी वे निरंतर संघर्ष करते रहे और अंत में बचाए जाने तक आशा नहीं छोड़ी। असफलताओं को वे सफलता की सीढ़ी मानते हैं, विरोध से उनका परिश्रम दुगना हो जाता है और खतरे उनके साहस को बढ़ाते हैं। कठिनाइयों को चीरते हुए, जो दुर्बलों का उत्साह भंग कर देती हैं, और बाधाओं को पार करते हुए, जो साधारणों का मनोबल तोड़ देती हैं, वे सीधे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हैं। और लक्ष्य प्राप्त होने तक वे कभी नहीं रुकते। मारा ने बोधिसत्व को अपनी खोज छोड़ने की सलाह दी थी, तब उन्होंने कहा, "वासनाओं से युद्ध करते हुए मृत्यु मुझे पराजित जीवन से अधिक सम्मानजनक लगती है।" जिस प्रकार उनका ज्ञान सदा दूसरों की सेवा में लगा रहता है, उसी प्रकार उनकी ऊर्जा भी। व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति के संकीर्ण मार्ग पर चलने के बजाय, वे इसे सार्वभौमिक सुख की ओर ले जाने वाले कार्यों के खुले मार्ग में लगाते हैं। वे निरंतर और अथक परिश्रम से दूसरों के लिए कार्य करते हैं, प्रतिफल या पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करते। वह अपनी पूरी क्षमता से दूसरों की सेवा करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

कुछ दृष्टियों से, लक्ष्य की प्राप्ति में प्राणा से भी अधिक वीरय की भूमिका होती है । जो व्यक्ति अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करता है, उसका सही प्रयास ( सम्मा वायामा या वीरय ) बुरी अवस्थाओं के उत्पन्न होने से रोकता है, उत्पन्न हुई अवस्थाओं को दूर करता है, अच्छी अवस्थाओं को विकसित करता है और पहले से उत्पन्न अच्छी अवस्थाओं को बनाए रखता है और उनका विकास करता है। यह ज्ञानोदय के सात कारकों ( वीरय सम्बोज्झंग ) में से एक है। यह सिद्धि के चार साधनों ( वीरियिद्धिपाद ) में से एक है। वीरय ही सही प्रयास के चार गुणों ( सम्मप्पधान ) का कार्य करता है। यह पाँच शक्तियों ( वीरय बल ) में से एक है और पाँच नियंत्रक शक्तियों ( वीरियिन्द्रिय ) में से एक है।

अत: वीरया को नौ कार्यों को संपन्न करने वाले अधिकारी के रूप में देखा जा सकता है। मन के विकास के लिए किया गया यह निरंतर प्रयास ही सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य करता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 113

---

(धम्मपद 112) <<<< पिछला || धम्मपद 113 || अगला >>>> (धम्मपद 114)

---

अंतर्वस्तु

1धम्मपद श्लोक 113 - पाटकरथेरी वथु
1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 113 - पटाकरथेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
apassam udayabbayam(1)
ekaham jivitam seyyo
passato(2) udayabbayam.

---

श्लोक 113 : पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को न समझने वाले व्यक्ति के जीवन में सौ वर्षों से बेहतर, पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को समझने वाले व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

---

1. उदयब्बायम्: पंच स्कंधों (खंडों) का उद्भव और विघटन। उदयब्बायम् अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास के माध्यम से प्राप्त ज्ञान है, जो पंच स्कंधों की अनित्यता को दर्शाता है। (यह व्यक्ति के भीतर इंद्रिय सुख/इच्छाओं और उनसे संबंधित संवेदनाओं और विचारों के उद्भव और विघटन से संबंधित है।)
2. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

---

थेरी पटाकारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पताकारा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (113) कहा।

पटाकारा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह अत्यंत सुंदर थी और उसके माता-पिता उसकी बहुत रक्षा करते थे। लेकिन एक दिन, वह परिवार के एक युवक सेवक के साथ भाग गई और एक गाँव में एक गरीब आदमी की पत्नी बनकर रहने लगी। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई और प्रसव का समय निकट आने पर उसने अपने पति से सावत्थी में अपने माता-पिता के पास लौटने की अनुमति मांगी, लेकिन उसके पति ने उसे मना कर दिया। इसलिए, एक दिन, जब उसका पति घर से बाहर था, वह अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे गया और रास्ते में उससे मिलकर उसे वापस चलने के लिए मनाने लगा; लेकिन उसने इनकार कर दिया। संयोगवश, प्रसव का समय निकट आने पर, उसे झाड़ियों में ही एक पुत्र को जन्म देना पड़ा। पुत्र के जन्म के बाद वह अपने पति के साथ घर लौट आई।

फिर वह दोबारा गर्भवती हुई और प्रसव का समय नजदीक आने पर अपने बेटे को साथ लेकर वह सावत्थी में अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे-पीछे आया और रास्ते में उससे मिल गया; लेकिन प्रसव का समय तेजी से नजदीक आ रहा था और तेज बारिश भी हो रही थी। पति ने प्रसव के लिए उपयुक्त जगह की तलाश की और जब वह जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा साफ कर रहा था, तभी उसे एक जहरीले सांप ने काट लिया और उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। पताकारा अपने पति का इंतजार करती रही और उसके लौटने की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने दूसरे बेटे को जन्म दिया। सुबह उसने अपने पति को ढूंढा, लेकिन उसे केवल उसका शव मिला। मन ही मन यह कहते हुए कि उसके पति की मृत्यु उसी के कारण हुई है, वह अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी।

रात भर लगातार बारिश होने के कारण अचिरवती नदी उफान पर थी; इसलिए दोनों बेटों को लेकर नदी पार करना उसके लिए असंभव था। बड़े बेटे को नदी के इस किनारे पर छोड़कर, वह अपने एक दिन के बेटे को लेकर नदी पार कर गई और उसे दूसरे किनारे पर छोड़ दिया। फिर वह बड़े बेटे को लेने वापस आई। जब वह अभी नदी के बीच में ही थी, तभी एक बड़ा बाज छोटे बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर उसके ऊपर मंडराने लगा। उसने चिल्लाकर पक्षी को भगाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ था; बच्चा बाज के साथ उड़

गया। इसी बीच, बड़े बेटे ने नदी के बीच से अपनी माँ की आवाज़ सुनी और सोचा कि वह उसे बुला रही है। इसलिए वह अपनी माँ के पास जाने के लिए नदी में उतर गया और तेज़ धारा में बह गया। इस प्रकार, पताकारा ने अपने दोनों बेटों के साथ-साथ अपने पति को भी खो दिया।

तो वह फूट-फूटकर रोने लगी और विलाप करने लगी, "एक बेटा बाज़ लेकर चला गया, दूसरा बेटा तेज़ धारा में बह गया, मेरे पति भी ज़हरीले साँप के काटने से मर गए!" तभी उसकी नज़र सावत्थी के एक आदमी पर पड़ी और उसने रोते हुए अपने माता-पिता के बारे में पूछा। उस आदमी ने बताया कि पिछली रात सावत्थी में आए भयंकर तूफान के कारण उसके माता-पिता का घर गिर गया था और उसके माता-पिता समेत उसके तीनों भाई मर गए थे और उन सभी का एक ही चिता पर अंतिम संस्कार कर दिया गया था। यह दुखद खबर सुनकर पटाकारा पागलों की तरह व्यवहार करने लगी। उसे इस बात का भी एहसास नहीं हुआ कि उसके कपड़े उतर गए हैं और वह अधनंगी हो गई है। वह गलियों में घूम-घूमकर अपना दुख बयां करने लगी।

जब बुद्ध जेतवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब उन्होंने दूर से पताकारा को देखा; इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वह सभा में आएँ। भीड़ ने उन्हें आते देख रोकने की कोशिश की और कहा, "पागल औरत को अंदर मत आने दो।" लेकिन बुद्ध ने उन्हें अंदर आने से मना किया। जब पताकारा उनके पास पहुँचकर उनकी बात सुनने लगीं, तो उन्होंने उन्हें सावधान रहने और शांत रहने को कहा। फिर उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने अपना वस्त्र नहीं पहना है और वे लज्जित होकर बैठ गईं। किसी ने उन्हें एक कपड़ा दिया और उन्होंने उसे ओढ़ लिया। फिर उन्होंने बुद्ध को बताया कि कैसे उन्होंने अपने पुत्रों, पति, भाइयों और माता-पिता को खो दिया था।

बुद्ध ने उनसे कहा, "पटाचारा, भयभीत मत हो; तुम अब उस व्यक्ति के पास आई हो जो तुम्हारी रक्षा और मार्गदर्शन कर सकता है। इस संसार चक्र में तुमने अपने पुत्रों, पतियों, माता-पिता और भाइयों की मृत्यु के कारण जितने आँसू बहाए हैं, वे असंख्य हैं; वे चारों सागरों के जल से भी अधिक हैं।" इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें अनगिनत जन्मों से संबंधित अनामतग्ग सूत्र का उपदेश दिया, जिससे उन्हें राहत मिली। फिर बुद्ध ने आगे कहा कि जो लोग चले गए हैं, उनके बारे में अधिक नहीं सोचना चाहिए, बल्कि स्वयं को शुद्ध करना चाहिए और निर्वाण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। बुद्ध के इस उपदेश को सुनकर पटाचारा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

फिर, पताकारा भिक्षुणी बन गईं। एक दिन, वह जलपात्र से अपने पैर धो रही थीं। पहली बार जब उन्होंने जल डाला, तो वह थोड़ी दूर बहकर गायब हो गया; फिर उन्होंने दूसरी बार जल डाला और वह थोड़ा और आगे गया, लेकिन तीसरी बार जब उन्होंने जल डाला तो वह सबसे दूर तक गया। जब उन्होंने जल के बहाव और गायब होने की इस प्रक्रिया को लगातार तीन बार देखा, तो उन्हें प्राणियों के जीवन की तीनों अवस्थाओं का स्पष्ट ज्ञान हो गया। जेतवन मठ से बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें देखा और अपनी ज्योति प्रकट करते हुए स्वयं उनके सामने आ गए। उन्होंने उनसे कहा, "पताकारा, अब तुम सही मार्ग पर हो, और अब तुम्हें स्कंधों (खंडों) का सही ज्ञान हो गया है। जो व्यक्ति स्कंधों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को नहीं समझता, वह सौ वर्ष तक भी जीवित रहे तो भी व्यर्थ है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 113 : पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को न समझने वाले व्यक्ति के जीवन में सौ वर्षों से बेहतर, पाँचों स्कंधों के उत्पन्न होने और नष्ट होने को समझने वाले व्यक्ति के जीवन का एक दिन है।

---

प्रवचन के अंत में, पताकारा ने अरहतत्व (अंतिम ज्ञानोदय/निर्वाण अवस्था) प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून पटाकारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पताचारा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पताचारा, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थी। वह अत्यंत सुंदर थी और उसके माता-पिता उसकी बहुत रक्षा करते थे। लेकिन एक दिन, वह परिवार के एक युवक सेवक के साथ भाग गई और एक गाँव में एक गरीब आदमी की पत्नी बनकर रहने लगी। कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई और प्रसव का समय निकट आने पर उसने अपने पति से सावत्थी में अपने माता-पिता के पास लौटने की अनुमति मांगी, लेकिन उसके पति ने उसे मना कर दिया। इसलिए, एक दिन, जब उसका पति घर से बाहर था, वह अपने माता-पिता के घर के लिए निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे गया और रास्ते में उससे मिलकर उसे वापस चलने के लिए मनाने लगा; लेकिन उसने इनकार कर दिया। संयोगवश, प्रसव का समय निकट आने पर, उसे झाड़ियों में ही एक पुत्र को जन्म देना पड़ा। पुत्र के जन्म के बाद वह अपने पति के साथ घर लौट आई।

फिर वह दोबारा गर्भवती हुई और प्रसव का समय नजदीक आते ही अपने बेटे को साथ लेकर वह सावत्थी में अपने माता-पिता के घर के लिए चल पड़ी। उसका पति उसके पीछे-पीछे आया और रास्ते में उससे मिल गया; लेकिन प्रसव का समय तेजी से नजदीक आ रहा था और तेज बारिश भी हो रही थी। पति ने प्रसव के लिए उपयुक्त जगह की तलाश की और जब वह जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा साफ

कर रहा था, तभी उसे एक जहरीले सांप ने काट लिया और उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। पताचारा अपने पति की प्रतीक्षा करती रही और उसके लौटने की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने दूसरे बेटे को जन्म दिया। सुबह उसने अपने पति को ढूंढा, लेकिन उसे केवल उसका मृत शरीर मिला। मन ही मन यह कहते हुए कि उसके पति की मृत्यु उसी के कारण हुई है, वह अपने माता-पिता के घर की ओर चल पड़ी। क्योंकि पूरी रात लगातार बारिश होती रही थी, अचिरवती नदी उफान पर थी; इसलिए दोनों बेटों को लेकर नदी पार करना उसके लिए संभव नहीं था। बड़े बेटे को नदी के इस किनारे छोड़कर, वह अपने एक दिन के बेटे को लेकर नदी पार कर गई और उसे दूसरे किनारे पर छोड़ दिया। फिर वह बड़े बेटे को लेने वापस आई। जब वह अभी नदी के बीच में ही थी, तभी एक बड़ा बाज़ छोटे बच्चे को मांस का टुकड़ा समझकर उसके ऊपर मंडराने लगा। उसने चिल्लाकर पक्षी को भगाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ था; बच्चा बाज़ के साथ उड़ गया। इसी बीच, बड़े बेटे ने नदी के बीच से अपनी माँ की आवाज़ सुनी और सोचा कि वह उसे बुला रही है। इसलिए वह अपनी माँ के पास जाने के लिए नदी में उतर गया और तेज़ धारा में बह गया। इस प्रकार पताचारा ने अपने दोनों बेटों के साथ-साथ अपने पति को भी खो दिया। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने और विलाप करने लगी, "एक बेटा बाज़ के साथ उड़ गया, दूसरा बेटा धारा में बह गया, मेरे पति भी ज़हरीले साँप के काटने से मर गए!" तभी उसने सावत्थी के एक आदमी को देखा और आँसू बहाते हुए अपने माता-पिता के बारे में पूछा। उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि पिछली रात सावत्थी में आए भयंकर तूफान के कारण उसके माता-पिता का घर गिर गया था और उसके माता-पिता सहित तीनों भाई मर गए थे, और उन सभी का एक ही चिता पर अंतिम संस्कार कर दिया गया था। यह दुखद समाचार सुनकर पताचारा बुरी तरह पागल हो गई। उसे इस बात का भी एहसास नहीं हुआ कि उसके कपड़े उतर गए हैं और वह अधनंगी है। वह सड़कों पर इधर-उधर भटकती हुई चिल्लाने लगी, "हाय! मेरा क्या हुआ!"

जब बुद्ध जेतवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब उन्होंने दूर से पताचारा को देखा; इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वह सभा में आएं। भीड़ ने उन्हें आते देख रोकने की कोशिश की और कहा, "पागल स्त्री को अंदर मत आने दो।" लेकिन बुद्ध ने उन्हें अंदर आने से मना किया। जब पताचारा उनके पास आईं और उनकी बात सुनने लगीं, तो उन्होंने उन्हें सावधान रहने और शांत रहने को कहा। फिर उन्हें एहसास हुआ कि उन्होंने अपना वस्त्र नहीं पहना है और वे लज्जित होकर बैठ गईं। किसी ने उन्हें एक कपड़ा दिया और उन्होंने उसे ओढ़ लिया। फिर उन्होंने बुद्ध को बताया कि कैसे उन्होंने अपने पुत्रों, पति, भाइयों और माता-पिता को खो दिया था। बाद में वे भिक्षुणी बन गईं और मोक्ष प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 113)

उदयबयं अप्सं यो च वससातं जिवे ( ततो )

उदयबयं पस्सतो कुसीतो हिनावीरियो एकहं जीवितं सेय्यो

udayabayaṃ [ udayabaya ]: उत्थान और पतन; अपस्सं [ अप्स्सा ]: नहीं देखता; यो सीए : एक व्यक्ति; वाससाताम् [ वाससाता ]: सौ वर्ष; जिवे : जीना था; उदयबबयं [ उदयबबया ]: उद्भव और गायब होना; पासाटो [ पासाटा ]: वह जो देखता है; एकाहम् [ एकहा ]: एक दिन का भी; जीवितम् [ जीवित ]: जीवन; सेय्यो [ सेय्या ]: नेक है

अनुभव की गई वस्तुओं के उद्भव और विनाश को समझने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन, वस्तुओं के उद्भव और विनाश की प्रक्रिया को न समझने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवनकाल से कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

उदयब्बयं : अनुभव की पंचांग समग्रता ( पंच खंड ) का अस्तित्व में आना: (1) रूप; (2) संवेदना; (3) बोध; (4) अवधारणा और (5) संज्ञान।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 114

---

(धम्मपद 113) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 114 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 115)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 114 - किसागोतामि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Yo ca vassasatam jive
अपस्सम् अमातम पदम्
ekaham jivitam seyyo
passato(1) amatam padam.

---

श्लोक 114 : जो व्यक्ति अमरता (निर्वाण) को नहीं जानता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर उस व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो अमरता (निर्वाण) को जानता है।

---

1. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

---

थेरी किसागोतमी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने किसगोतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (114) कहा।
किसगोतमी श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थीं; अपने दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें किसगोतमी के नाम से जाना जाता था। किसगोतमी का विवाह एक धनी युवक से हुआ और उनका एक पुत्र हुआ। बालक की बचपन में ही मृत्यु हो गई और किसगोतमी गहरे शोक में डूब गईं। अपने पुत्र के शव को लेकर वह हर उस व्यक्ति से औषधि माँगने लगीं जिससे वह अपने पुत्र को पुनर्जीवित कर सकें। लोग उन्हें पागल समझने लगे। लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति ने उनकी इस अवस्था को देखकर सोचा कि उन्हें उनकी सहायता करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "तुम्हें बुद्ध के पास जाना चाहिए, उनके पास वह औषधि है जो तुम चाहती हो; उनके पास जाओ।" इस प्रकार, वह बुद्ध के पास गईं और उनसे अपने मृत पुत्र को पुनर्जीवित करने वाली औषधि माँगी।
बुद्ध ने उसे ऐसे घर से सरसों के बीज लाने को कहा जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। अपने मृत शिशु को गोद में लिए किसागोतमी घर-घर जाकर सरसों के बीज माँगने लगी। हर कोई उसकी मदद करने को तैयार था, लेकिन उसे एक भी ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब उसे एहसास हुआ कि उसका परिवार ही अकेला ऐसा परिवार नहीं है जिसने मृत्यु का सामना किया है, बल्कि जीवितों से कहीं अधिक लोग मृत हैं। यह एहसास होते ही उसके मृत पुत्र के प्रति उसका भाव बदल गया; अब वह अपने पुत्र के मृत शरीर से आसक्त नहीं थी।
वह शव को जंगल में छोड़कर बुद्ध के पास लौट आई और बताया कि उसे ऐसा कोई घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब बुद्ध ने कहा, "गौतमी, तुमने सोचा था कि पुत्र खोने वाली तुम अकेली हो। जैसा कि अब तुम्हें ज्ञान हो गया है, मृत्यु सभी प्राणियों के लिए आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने साथ ले जाती है।" यह सुनकर किसागोतमी ने सभी तत्वों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को पूर्णतः समझ लिया और सोतापत्ति फल प्राप्त किया।
इसके कुछ समय बाद, किसागोतमी भिक्षुणी बन गईं। एक दिन, जब वे दीपक जला रही थीं, तो उन्होंने देखा कि लौ भड़क उठी और बुझ गई, और अचानक उन्हें प्राणियों के उद्‌भव और विनाश का स्पष्ट आभास हुआ। बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने मठ से देखा और अपनी ज्योति भेजकर स्वयं उनके दर्शन किए। किसागोतमी को सभी प्राणियों के अनित्य स्वरूप पर ध्यान करते रहने और निर्वाण प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने को कहा गया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 114 : जो व्यक्ति अमरता (निर्वाण) को नहीं जानता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर उस व्यक्ति के जीवन का एक दिन है जो अमरता (निर्वाण) को जानता है।

---

प्रवचन के अंत में थेरी किसागोतामी ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नन किसागोतामी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने किसागोतमी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
किसगोतमी, सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री थीं; अपने दुबले-पतले शरीर के कारण उन्हें किसगोतमी के नाम से जाना जाता था। किसगोतमी का विवाह एक धनी युवक से हुआ और उनका एक पुत्र हुआ। बालक की बचपन में ही मृत्यु हो गई और किसगोतमी गहरे शोक में डूब गईं। अपने पुत्र के शव को लेकर वह हर उस व्यक्ति से औषधि माँगने लगीं जिससे वह अपने पुत्र को पुनर्जीवित कर सकें। लोग उन्हें पागल समझने लगे। लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति ने उनकी इस अवस्था को देखकर सोचा कि उन्हें उनकी सहायता करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने उनसे कहा, “तुम्हें बुद्ध के पास जाना चाहिए, उनके पास वह औषधि है जो तुम चाहती हो; उनके पास जाओ।” इस प्रकार, वह बुद्ध के पास गईं और उनसे अपने मृत पुत्र को पुनर्जीवित करने वाली औषधि माँगी।
बुद्ध ने उसे ऐसे घर से सरसों के बीज लाने को कहा जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। अपने मृत शिशु को गोद में लिए किसागोतमी घर-घर जाकर सरसों के बीज माँगने लगी। हर कोई उसकी मदद करने को तैयार था, लेकिन उसे एक भी ऐसा घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब उसे एहसास हुआ कि उसका परिवार ही अकेला ऐसा परिवार नहीं है जिसने मृत्यु का सामना किया है, बल्कि जीवितों से कहीं अधिक लोग मृत हैं। यह एहसास होते ही उसके मृत पुत्र के प्रति उसका भाव बदल गया; अब वह अपने पुत्र के मृत शरीर से आसक्त नहीं थी।
वह शव को जंगल में छोड़कर बुद्ध के पास लौट आई और बताया कि उसे ऐसा कोई घर नहीं मिला जहाँ मृत्यु न हुई हो। तब बुद्ध ने कहा, “क्या तुम्हें एक चुटकी सरसों का दाना भी नहीं मिला?” “नहीं, मुझे नहीं मिला, पूज्यवर। हर गाँव में मृतकों की संख्या जीवितों से अधिक है।” बुद्ध ने कहा, “तुमने व्यर्थ ही सोचा था कि केवल तुमने ही अपना बच्चा खोया है। परन्तु सभी जीव एक अटल नियम के अधीन हैं, और वह यह है: मृत्यु का देवता, प्रचंड जलप्रपात की तरह, सभी जीवों को उनकी अधूरी इच्छाओं के साथ विनाश के सागर में बहा ले जाता है। गौतमी, तुमने सोचा था कि केवल तुमने ही अपना पुत्र खोया है। जैसा कि अब तुम जान चुकी हो, मृत्यु सभी प्राणियों के पास आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें ले जाती है।” यह सुनकर किसागौतमी ने सभी तत्वों की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता को पूर्णतः समझ लिया और सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
इसके कुछ समय बाद, किसागोतमी ने संन्यासिनी बन गईं। एक दिन, जब वे दीपक जला रही थीं, तो उन्होंने देखा कि लौ भड़क उठी और बुझ गई, और अचानक उन्हें प्राणियों के उद्भव और विनाश का स्पष्ट आभास हुआ। बुद्ध ने अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने मठ से देखा और अपनी ज्योति भेजकर स्वयं उनके दर्शन किए। किसागोतमी को सभी प्राणियों के अनित्य स्वरूप पर ध्यान करते रहने और निर्वाण प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास करने को कहा गया। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के उच्चतर चरणों को प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 114)
अमातं पदं अप्पसं यो च वससतं जिवे
अमातं पदं पस्सतो एकहं जीवितं सय्यो
amataṃ padaṃ [ pada ]: मृत्युहीन अवस्था (निब्बान); apassaṃ [ apassa ]: बिना देखे; yo ca : यदि कोई व्यक्ति; vassasatṃ jīve : सौ वर्ष तक जीवित रहे; amataṃ padaṃ [ pada ]: मृत्युहीन अवस्था (निब्बान); passato [ passata ]: देखने वाले का; ekāhaṃ [ ekāha ]: एक दिन का; jīvitaṃ [ jīvita ]: जीवन; seyyo [ seyya ]: श्रेष्ठ है
जो व्यक्ति अमरता की अवस्था को देख लेता है, उसका एक दिन का जीवन उस व्यक्ति के सौ साल के जीवनकाल से कहीं अधिक महान और श्रेष्ठ होता है जो अमरता की अवस्था को नहीं देख पाता।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 114)
अमरं पदं : अमरता की अवस्था — निर्वाण। निर्वाण को 'अमरता' कहा जाता है क्योंकि यह अस्तित्व के भ्रम का अंत है। निर्वाण को अनुभव की पंचांगीय समग्रता ( पंचूपादन खंड ) को व्यक्तिगत रूप से त्यागकर प्राप्त किया जा सकता है।
हमारे मन में जो अस्तित्व की आत्म-छवि होती है, वह निराकार घटनाओं के वैयक्तिकरण से निर्मित होती है। हमारा अस्तित्व या होना इसी आत्म-छवि का विस्तार है, जिसे व्यक्तित्व कहते हैं। जब हम इस आत्म-छवि को निराकार रूप देकर हटा देते हैं, तो हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है। जब हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो हमारी मृत्यु भी समाप्त हो जाती है। यही अमरता की अवस्था है। अनुभव को, उसके आने-जाने के क्रम में, बिना उसे वैयक्तिक बनाए देखना ही अमरता के निर्वाण का अनुभव करना है।
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 115

---

(धम्मपद 114) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 115 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 116)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 115 - बहुपुत्तिकत्थेरी वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ca vassasatam jive
apassam dhammamuttamam(1)
ekaham jivitam seyyo
passato(2) dhammamuttamam.

---

श्लोक 115 : जो व्यक्ति आर्य धम्म (धम्ममुत्तमम्) को नहीं समझता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो आर्य धम्म को समझता है।

---

1. धम्ममुत्तमम्: बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सर्वोच्च धम्म (मार्ग) जो निर्वाण/ज्ञानोदय की ओर ले जाता है।
2. पासातो: समभाव से किसी चीज़ को देखना/ध्यान केंद्रित करना। यह विपश्यना से संबंधित है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई एक ध्यान विधि है जिसमें व्यक्ति अपने कर्मों (व्यवहारिक लक्षणों) से संबंधित आंतरिक घटनाओं जैसे संवेदनाओं, विचारों और सांसों को देखता है, जिससे उनका विघटन होता है और निर्वाण (ज्ञानोदय/मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त होता है।

---

थेरी बहुपुटिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (115) का उच्चारण किया, जो कई बच्चों की माँ बहुपुट्टिका के संदर्भ में था।

सावत्थी में एक दंपत्ति अपने सात पुत्रों और सात पुत्रियों के साथ रहते थे। सभी पुत्रों का विवाह हो गया था और परिवार सुख-सुविधाओं से भरा था। फिर पिता का देहांत हो गया और माता ने सारी संपत्ति अपने पास रख ली, बच्चों को कुछ भी नहीं दिया। पुत्र-पुत्रियों को विरासत चाहिए थी, इसलिए उन्होंने माता से कहा, "हमें इस संपत्ति से क्या लाभ होगा? क्या हम इसे बढ़ा नहीं सकते? क्या हम अपनी माता की देखभाल नहीं कर सकते?" उन्होंने बार-बार यही बातें कहीं, जिससे माता को लगा कि उनके बच्चे उनकी देखभाल करेंगे, और अंततः उन्होंने अपने लिए कुछ भी छोड़े बिना सारी संपत्ति बाँट दी।

संपत्ति के बंटवारे के बाद, वह पहले अपने बड़े बेटे के पास रहने गई, लेकिन उसकी बहू ने शिकायत करते हुए कहा, "वह हमारे साथ ऐसे रहने आई है जैसे उसने हमें दो हिस्से दे दिए हों!", और इसी तरह की और भी बातें कहीं। इसलिए, बहुपुतिका अपने दूसरे बेटे के पास रहने चली गई, और वहाँ भी वही बातें कही गईं। इस प्रकार, वह एक बेटे से दूसरे बेटे के पास, एक बेटी से दूसरी बेटी के पास जाती रही; लेकिन उनमें से कोई भी उसे लंबे समय तक अपने पास रखने को तैयार नहीं था और न ही किसी ने उसका उचित सम्मान किया।

वृद्धा बहुत दुखी और अपने बच्चों से नाराज़ थी; उसने अपना परिवार त्याग दिया और भिक्षुणी बन गई। अनेक संतानों की माता होने के कारण वह बहुपुतिका के नाम से प्रसिद्ध हुई। बहुपुतिका को यह अहसास हुआ कि उसने वृद्धावस्था में ही भिक्षुणी का जीवन व्यतीत किया है और उसे लापरवाही नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपने शेष जीवन का भरपूर सदुपयोग करना चाहिए। अतः उसने पूरी रात बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म का ध्यान किया। जेतवन मठ से बुद्ध ने उसे देखा और अलौकिक शक्ति से प्रकाश भेजा तथा उसके सामने विराजमान हो गए। तब बुद्ध ने उससे कहा, "जो व्यक्ति मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म का अभ्यास नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है, चाहे वह सौ वर्ष तक ही क्यों न जिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 115 : जो व्यक्ति आर्य धम्म (धम्ममुत्तमम्) को नहीं समझता, उसके जीवन में सौ वर्षों से बेहतर वह दिन है जो आर्य धम्म को समझता है।

---

अध्याय आठ का अंत: हजार (सहस्सवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नन बहुपुट्टिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई बच्चों की माता बहुपुट्टिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार सावत्थी में एक दंपत्ति अपने सात पुत्रों और सात पुत्रियों के साथ रहते थे। सभी पुत्रों का विवाह हो गया था और परिवार सुख-सुविधाओं में था। फिर पिता का देहांत हो गया और माता ने सारी संपत्ति अपने पास रख ली, बच्चों को कुछ नहीं दिया। पुत्र-पुत्रियों को विरासत चाहिए थी, इसलिए उन्होंने माता से कहा, "हमें इस संपत्ति से क्या लाभ होगा? क्या हम इसे बढ़ा नहीं सकते? क्या हम अपनी माता की देखभाल नहीं कर सकते?" उन्होंने बार-बार यही बातें कहीं, जिससे माता को लगा कि उनके बच्चे उनकी देखभाल करेंगे, और अंत में उन्होंने सारी संपत्ति बाँट दी और अपने लिए कुछ नहीं छोड़ा।

कुछ दिन बीतने के बाद, उसके सबसे बड़े बेटे की पत्नी ने उससे कहा, "लगता है हमारी उत्तम माताजी का यही एकमात्र घर है जहाँ वे जाती हैं; वे ऐसा व्यवहार करती हैं मानो उन्होंने अपनी सारी संपत्ति अपने सबसे बड़े बेटे को दे दी हो।" उसके अन्य बेटों की पत्नियाँ भी उससे इसी तरह बात करती थीं। उसकी बेटियाँ भी, सबसे बड़ी से लेकर सबसे छोटी तक, जब भी वह उनके घर जाती, उससे इसी तरह बात करती थीं। उसके साथ इतना अपमानजनक व्यवहार किया जाता था कि अंततः उसने मन ही मन कहा, "मैं अब इनके साथ क्यों रहूँ? मैं संघ में प्रवेश करूँगी और एक नन का जीवन व्यतीत करूँगी।" अतः वह ननों के मठ में गई और संघ में प्रवेश के लिए निवेदन किया। संघ ने उसे प्रवेश दे दिया, और जब उसने संघ में पूर्ण रूप से प्रवेश कर लिया, तो वह बहुपुट्टिका नन के नाम से जानी जाने लगी क्योंकि वह कई बच्चों की माता थी।

"चूंकि मैंने वृद्धावस्था में संघ में प्रवेश किया है," भिक्षुणियों को सौंपे गए प्रमुख और गौण कर्तव्यों का पालन करते हुए उन्होंने सोचा। "यह मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधान रहूँ; इसलिए मैं पूरी रात ध्यान में बिताऊँगी।" निचली छत पर, एक खंभे पर हाथ रखकर, उन्होंने अपने कदमों को दिशा देते हुए ध्यान किया। चलते समय भी, इस डर से कि कहीं अँधेरे स्थानों में उनका सिर किसी पेड़ या किसी अन्य वस्तु से न टकरा जाए, उन्होंने एक पेड़ पर हाथ रखकर अपने कदमों को दिशा दी और ध्यान किया। केवल बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म का पालन करने का संकल्प लेकर, उन्होंने धम्म पर विचार किया, उस पर मनन किया और ध्यान किया।

सुगंधित कक्ष में विराजमान बुद्ध ने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की और मानो उनके आमने-सामने बैठकर उनसे बात करते हुए कहा, "बहुपुतिका, मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को एक क्षण के लिए देखना सौ वर्ष तक बिना देखे जीने से बेहतर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 115)

उत्तमं धम्मं अपासं यो च वससतं जिवे

उत्तमं धम्मं पस्सतो एकहं जीवितं सेय्यो

उत्तमं धम्मं [ धम्म ]: बुद्ध की सर्वोच्च शिक्षा (सिद्धांतों में सर्वोत्तम); अपस्सं [ अप्स्सा ]: जो अनुभव नहीं करता; यो सीए : यदि कोई व्यक्ति; वस्सासतम् जिवे : सौ वर्ष जीने वाले थे; उत्तमं धम्मं [ धम्म ]: बुद्ध की सर्वोच्च शिक्षा (सिद्धांतों में सर्वोत्तम); पासाटो [ पासाटा ]: द्रष्टा का; एकाहम् [ एकहा ]: एक दिन का; जीवितम् [ जीवित ]: जीवन; सेय्यो [ सेय्या ]: श्रेष्ठ है।

बुद्ध की महान शिक्षाओं के दर्शन करने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन, उस व्यक्ति के सौ वर्षों के जीवन से कहीं अधिक महान होता है जो इस महान शिक्षा को नहीं देखता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 115)

धम्म उत्तमम् : श्रेष्ठतम — बुद्ध की शिक्षा। धम्म, बुद्ध की शिक्षा, संसार से परे जाने का मार्ग है। धम्म को नौ रूपों में वर्णित किया गया है: चार मार्ग, चार फल और निर्वाण (अमरता)।

अध्याय 9. पापावग्गा: बुराई (116-128

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 116

---

(धम्मपद 115) <<<< पिछला || धम्मपद 116 || अगला >>>> (धम्मपद 117)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 116 - कुलेकासतक वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
अभित्थरेथा कल्याणे
pipa cittam nivaraye
दंडम ही करोतो पुन्नम
papasmim ramati mano.

———————————————————————————

श्लोक 116 : अच्छे कर्म करने में शीघ्रता बरतनी चाहिए; अपने मन को बुराई से रोकना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करने में सुस्त होता है, उसका मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।

———————————————————————————

कुलेकासताका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (116) का उच्चारण किया, जिसमें चुलेकसटका नाम के एक ब्राह्मण दंपति का जिक्र था।
सावत्थी में एक ब्राह्मण दंपति रहते थे, जिनके पास केवल एक ही वस्त्र था। इसी कारण वे एकासतक कहलाते थे। एक ही वस्त्र होने के कारण वे दोनों एक साथ बाहर नहीं जा सकते थे। इसलिए पत्नी दिन में बुद्ध के प्रवचन सुनने जाती और पति रात में। एक रात, जब ब्राह्मण बुद्ध के प्रवचन सुन रहे थे, तो उनका पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि से भर गया और उनके मन में अपने वस्त्र बुद्ध को अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। परन्तु उन्होंने यह भी महसूस किया कि यदि वे अपना एकमात्र वस्त्र भी दे देंगे, तो उनके और उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए वे दुविधा में पड़ गए। इस प्रकार रात का पहला और दूसरा पहर बीत गया। तीसरा पहर आया और उन्होंने मन ही मन कहा, "यदि मैं इतना कंजूस और संकोची बना रहूँ, तो मैं चार लोकों (अपय) में गिरने से नहीं बच पाऊँगा; अब मैं अपना वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दूँगा।" ऐसा कहकर उसने कपड़े का टुकड़ा बुद्ध के चरणों में रख दिया और तीन बार "मैं जीत गया" चिल्लाया।
कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित), जो सभा में उपस्थित थे, ने ये शब्द सुने और अपने एक दरबारी को जाँच करने का आदेश दिया। ब्राह्मण द्वारा बुद्ध को भेंट किए जाने के बारे में जानकर राजा ने टिप्पणी की कि ब्राह्मण ने ऐसा कार्य किया है जो आसान नहीं है, इसलिए उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि ब्राह्मण को उसकी आस्था और उदारता के पुरस्कार के रूप में एक वस्त्र दें। ब्राह्मण ने वह वस्त्र भी बुद्ध को अर्पित कर दिया और राजा ने उसे दो वस्त्र दिए। फिर ब्राह्मण ने वे दो वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दिए और उसे चार वस्त्र मिले। इस प्रकार, उसने बुद्ध को वह सब कुछ अर्पित किया जो राजा ने उसे दिया था, और हर बार राजा ने उसका पुरस्कार दोगुना कर दिया। अंत में, जब पुरस्कार बत्तीस वस्त्रों तक पहुँच गया, तो ब्राह्मण ने एक वस्त्र अपने लिए और एक अपनी पत्नी के लिए रख लिया, और शेष तीस वस्त्र बुद्ध को अर्पित कर दिए।
फिर विचार करने पर राजा ने कहा कि ब्राह्मण ने वास्तव में एक बहुत कठिन कार्य किया है, इसलिए उसे उचित पुरस्कार मिलना चाहिए। राजा ने महल में एक दूत भेजा और दो मखमली वस्त्र मंगवाए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक लाख थी, और उन्हें ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने उन दो कीमती वस्त्रों से दो छतरियाँ बनवाईं और एक को उस सुगंधित कक्ष में रखा जहाँ बुद्ध विश्राम करते थे और दूसरी को अपने घर में उस स्थान के ऊपर रखा जहाँ एक भिक्षु को नियमित रूप से भिक्षा दी जाती थी। जब राजा अगली बार बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जटावन मठ गए, तो उन्होंने मखमली छतरी देखी और उसे ब्राह्मण द्वारा भेंट की गई वस्तु के रूप में पहचान लिया और बहुत प्रसन्न हुए। इस बार उन्होंने सात प्रकार की वस्तुओं का पुरस्कार दिया, जिनमें चार हाथी, चार घोड़े, चार दासियाँ, चार पुरुष दास, चार सेवक, चार गाँव और चार हज़ार नकद शामिल थे।
जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा, "इस ब्राह्मण के मामले में, ऐसा कैसे है कि अभी किया गया अच्छा कर्म तुरंत फल देता है?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "यदि ब्राह्मण ने रात के पहले पहर में अपना वस्त्र दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के सोलह वस्त्र प्राप्त होते; यदि उसने मध्य पहर में दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के आठ वस्त्र प्राप्त होते; क्योंकि उसने रात के अंतिम पहर में दान किया, इसलिए उसे प्रत्येक प्रकार के केवल चार वस्त्र ही प्राप्त हुए।" अतः, जब कोई दान करना चाहे, तो उसे तुरंत करना चाहिए; यदि

कोई विलंब करता है, तो फल धीरे-धीरे और बहुत कम मात्रा में मिलता है। साथ ही, यदि कोई अच्छे कर्म करने में बहुत धीमा है, तो वह शायद उन्हें बिल्कुल भी न कर पाए, क्योंकि मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 116 : अच्छे कर्म करने में शीघ्रता बरतनी चाहिए; अपने मन को बुराई से रोकना चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करने में सुस्त होता है, उसका मन बुराई करने में आनंद लेने लगता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुल्ला एकासटका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चुल्ला एकसाटक नामक एक ब्राह्मण दंपति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी में एक ब्राह्मण दंपति रहते थे, जिनके पास केवल एक ही वस्त्र था। इसी कारण वे एकसातक कहलाते थे। एक ही वस्त्र होने के कारण वे दोनों एक साथ बाहर नहीं जा सकते थे। इसलिए पत्नी दिन में बुद्ध के प्रवचन सुनने जाती और पति रात में। एक रात, जब ब्राह्मण बुद्ध के प्रवचन सुन रहे थे, तो उनका पूरा शरीर आनंदमय संतुष्टि से भर गया और उनके मन में अपने वस्त्र बुद्ध को अर्पित करने की तीव्र इच्छा हुई। लेकिन उन्हें यह एहसास हुआ कि यदि वे अपना एकमात्र वस्त्र भी दे देंगे, तो उनके और उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। इसलिए वे दुविधा में पड़ गए। इस प्रकार रात का पहला और दूसरा पहर बीत गया। तीसरा पहर आया और उन्होंने मन ही मन कहा, "यदि मैं इतना कंजूस और संकोची रहा, तो सांसारिक कष्टों को दूर करने का अवसर खो दूंगा। अब मैं अपना वस्त्र बुद्ध को अर्पित करता हूँ।" ऐसा कहकर उसने वस्त्र का टुकड़ा बुद्ध के चरणों में रख दिया और तीन बार "मैंने विजय प्राप्त कर ली" कहा। कोसल के राजा पसेनादि, जो वहाँ उपस्थित थे, ने ये शब्द सुने और एक दरबारी को जाँच करने का आदेश दिया। ब्राह्मण द्वारा बुद्ध को भेंट किए जाने के बारे में जानकर राजा ने टिप्पणी की कि ब्राह्मण ने ऐसा कार्य किया है जो आसान नहीं है, इसलिए उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि ब्राह्मण को उसकी आस्था और उदारता के पुरस्कार के रूप में वस्त्र का एक टुकड़ा दें। ब्राह्मण ने वह वस्त्र का टुकड़ा भी बुद्ध को अर्पित कर दिया और राजा ने उसे दो वस्त्र के टुकड़े दिए। फिर ब्राह्मण ने वे दो वस्त्र के टुकड़े बुद्ध को अर्पित कर दिए और उसे चार वस्त्र के टुकड़े मिले। इस प्रकार, उसने बुद्ध को वह सब कुछ अर्पित किया जो राजा ने उसे दिया था, और हर बार राजा ने उसका पुरस्कार दोगुना कर दिया। जब अंततः पुरस्कार के रूप में बत्तीस कपड़े के टुकड़े प्राप्त हुए, तो ब्राह्मण ने एक टुकड़ा अपने लिए और दूसरा अपनी पत्नी के लिए रख लिया, और शेष तीस टुकड़े बुद्ध को अर्पित कर दिए।
तब राजा ने फिर कहा कि ब्राह्मण ने सचमुच बहुत कठिन कार्य किया है, इसलिए उसे उचित पुरस्कार मिलना चाहिए। राजा ने महल में एक दूत भेजा और दो मखमली वस्त्र मंगवाए, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक लाख थी, और उन्हें ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने इन दो कीमती वस्त्रों से दो छतरियाँ बनवाईं और एक को उस सुगंधित कक्ष में रखा जहाँ बुद्ध विश्राम करते थे और दूसरी को अपने घर में उस स्थान के ऊपर रखा जहाँ एक भिक्षु को नियमित रूप से भिक्षा दी जाती थी। जब राजा अगली बार बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जेतवन मठ गए, तो उन्होंने मखमली छतरी देखी और उसे ब्राह्मण द्वारा भेंट की गई वस्तु के रूप में पहचान लिया और बहुत प्रसन्न हुए। इस बार उन्होंने सात प्रकार की वस्तुओं का पुरस्कार दिया, जिनमें चार हाथी, चार घोड़े, चार दासियाँ, चार पुरुष दास, चार सेवक, चार गाँव और चार हज़ार नकद शामिल थे। जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा, "इस ब्राह्मण के मामले में, ऐसा कैसे है कि अभी किया गया अच्छा कर्म तुरंत फल देता है?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "यदि ब्राह्मण ने रात के पहले पहर में अपना वस्त्र दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के सोलह वस्त्र प्राप्त होते; यदि उसने मध्य पहर में दान किया होता, तो उसे प्रत्येक प्रकार के आठ वस्त्र प्राप्त होते; क्योंकि उसने रात के अंतिम पहर में दान किया, इसलिए उसे प्रत्येक प्रकार के केवल चार वस्त्र ही प्राप्त हुए। अतः, जब कोई दान करना चाहे, तो उसे शीघ्रता से करना चाहिए; यदि कोई विलंब करता है, तो फल धीरे-धीरे और बहुत कम मात्रा में मिलता है। साथ ही, यदि कोई अच्छे कर्म करने में बहुत धीमा है, तो वह शायद उसे बिल्कुल भी न कर पाए, क्योंकि मन बुराई में आनंद लेने लगता है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 116)
kalyāne abhittharetha pāpā cittaṃ nivāraye
पुन्नं दण्डं हि करोतो मनो पापस्मिं रमाति
कल्याणे : सद्गुण में; अभित्थरेथा : सतर्क रहो; पापा : बुराई से; चित्तं [ चित्त ]: मन; निवारये : रक्षा करो; पुण्यं [ पुण्य ]: अच्छा कर्म; दंडं [ दंड ]: संकोच से; हि करोतो [ करोत ]: यदि कोई करे; मनो : उसका मन; पापस्मिं [ पापस्मि ]: बुराई में; रमती : आनंद लेता है
पुण्य कर्म करते समय सतर्क और तत्पर रहें। मन को बुराई से बचाएं। यदि कोई पुण्य कर्म करने में संकोच करे, तो उसका मन बुरी बातों में आनंद लेने लगेगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 116)

अभित्थरेथा कल्याणे : समय की हानि किए बिना पुण्य कर्मों में संलग्न रहें। आध्यात्मिक मार्ग के अभ्यास को बुद्ध ने धारा के विपरीत चलना ( पटिषोतगामि ) कहा है। मन की सामान्य प्रवृत्ति भावनाओं में बहकर गलत कार्य करने की होती है। यदि कोई इस धारा के विपरीत जाने का प्रयास नहीं करता है, तो वह गलत कार्य करेगा और गलत मार्ग पर चलेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 117

---

(धम्मपद 116) <<<< पिछला || धम्मपद 117 || अगला >>>> (धम्मपद 118)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 117 - सेय्यसकत्थेरा वत्थु

### डॉ म्या टिन संस्करण

Pipance puriso kayira
na nam kayira punappunam
na tamhi chandam kayiratha
dukkho papassa uccayo.

---

श्लोक 117 : यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार बुराई नहीं करनी चाहिए; उसे उसमें आनंद नहीं लेना चाहिए; बुराई का संचय दुख (पीड़ा/पुनर्जन्म) की ओर ले जाता है।

---

थेरा सेय्यासाका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सेय्यासका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (117) कहा।

एक समय सेय्यासक नाम का एक थेरा था, जिसे हस्तमैथुन करने की आदत थी। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने थेरा को फटकारा क्योंकि उनका यह कार्य मार्ग और फल प्राप्ति से और दूर ले जाता था। उसी समय, बुद्ध ने यौन सुखों में लिप्त होने पर रोक लगाने का नियम निर्धारित किया, अर्थात् संघसिसेसा अपाति, जो प्रायश्चित और संघ से निष्कासन का कारण बनता है। फिर बुद्ध ने कहा, "इस प्रकार का अपराध इस लोक और परलोक दोनों में केवल बुरे परिणाम ही देगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 117 : यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार बुराई नहीं करनी चाहिए; उसे उसमें आनंद नहीं लेना चाहिए; बुराई का संचय दुख (पीड़ा/पुनर्जन्म) की ओर ले जाता है।

---

### वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सेय्यासका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सेय्यासक के संदर्भ में यह श्लोक कहा। पूज्य सेय्यासक, पूज्य कालुदायी के सह-भिक्षु थे। धार्मिक जीवन के लिए आवश्यक संयम से असंतुष्ट होकर, उन्होंने यौन उत्तेजना का सहारा लेना शुरू कर दिया। इसके बाद, जब भी वे इस आत्म-दुराचार में लिप्त होते, वे नियम का उल्लंघन करते। बुद्ध को उनके कार्यों के बारे में पता चला, उन्होंने उन्हें बुलवाया और पूछा, “क्या यह बात सच है कि तुमने ऐसा किया?” “जी, पूज्य।” बुद्ध ने कहा, “हे मूर्ख, तुमने अपने पद के लिए इतना अनुचित कार्य क्यों किया?” इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें फटकारा। ऐसा करने के बाद, उन्होंने उन्हें नियमों का पालन करने का आदेश दिया। फिर उन्होंने उनसे कहा, “ऐसा कर्म करना इस लोक और परलोक दोनों में दुख का कारण बनता है।” ऐसा कहकर, बुद्ध ने इस श्लोक का उच्चारण किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 117)
पुरिसो सी पापं कयिरा तां पुनप्पुनं न कयिरा
तमहि चंदं न कयिरथ पपास्सा उच्चयो दुक्खो
पुरिसो [ पुरिसा ]: कोई व्यक्ति; चे पापं कायिरा : कोई बुरा कर्म करे; तं : वह; पुनप्पुनं [ पुनप्पुना ]: बार-बार; न कायिरा : नहीं करना चाहिए; तम्ही : उसमें; चंदं [ चंदा ]: आनंद; न कायिराथ : न लें; पापस्स : बुराई में; उच्चयो [ उच्चय ]: (बुराई का) संचय; दुक्खो [ दुक्खा ]: कष्टदायक
एक व्यक्ति कुछ बुरे काम कर सकता है। लेकिन उसे बार-बार, लगातार ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे इसमें आनंद नहीं लेना चाहिए। बुराई का संचय कष्टदायी होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 117)
विशेष टिप्पणी : अरहत कालुदायी : इस कथा में वर्णित भिक्षु का नाम सेय्यासका है। अरहत कालुदायी पूज्य सेय्यासका के साथी और गुरु थे। अरहत कालुदायी को सेय्यासका पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ी थी। पूज्य सेय्यासका को सुधारने का दायित्व संभालने वाले अरहत कालुदायी बौद्ध धर्म के इतिहास में एक प्रमुख अरहत हैं। इस महा अरहत को बुद्ध के परिजनों को बौद्ध धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने का अद्वितीय गौरव प्राप्त है। राजकुमार सिद्धार्थ की अनुपस्थिति के छह वर्षों के दौरान वे राजा सुद्धोदन के साथ रहे। उन्होंने राजकुमार की अनुपस्थिति को सहजता से स्वीकार किया। अनेक पुण्य कर्म करने के बाद, उनका जन्म कपिलवस्तु में राजा सुद्धोदन के एक मंत्री के पुत्र के रूप में उसी वेसाक पूर्णिमा के दिन हुआ, जिस दिन राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। वह राजकुमार सिद्धार्थ के करीबी सहयोगी थे।
राजकुमार को जन्म से ही सात अनमोल धरोहरें प्राप्त थीं, अर्थात्:
वह बोधि वृक्ष जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ;
उनकी रानी यशोधरा;
चार महान खजाने;
आरोहणीय- शाही हाथी;
कंथका, राजसी घोड़ा;
चन्ना—सारथी और
साथी कालुदयी।
ज्ञान प्राप्ति के बाद, बुद्ध राजगृह के वेलुवनाराम में थे। राजा सुद्धोदन छह वर्षों से अधिक समय से अनुपस्थित थे और अपने पुत्र से मिलने के लिए व्याकुल थे। इसलिए उन्होंने एक के बाद एक कई मंत्रियों को एक-एक हजार अनुयायियों के साथ बुद्ध से वापस आने का अनुरोध करते हुए भेजा। कुल मिलाकर उन्होंने नौ मंत्री भेजे। लेकिन उनमें से कोई भी वापस नहीं लौटा। सभी ने दीक्षा ली और अरहत बन गए। फिर भी वे अपने उद्देश्य को भूल गए। अंततः उन्होंने अपने सबसे विश्वसनीय अनुयायी कालुदायी को भेजा। कालुदायी और उनके अनुयायी, उनसे पहले के अन्य अनुयायियों की तरह, अरहत बन गए। राजा की इच्छा सर्वोपरि थी। उन्होंने उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की। उन्होंने तब तक इंतजार किया जब तक प्रकृति ऐसी यात्रा के लिए अनुकूल नहीं हो गई। कालुदायी ने संकेत दिया और बुद्ध प्रसन्न हुए। बुद्ध के आगमन पर लगभग बीस हजार अरहत उपस्थित थे। कालुदायी ने हाथ में कुंड लेकर वायु में प्रकट होकर अपने आगमन की सूचना दी। यह खुशखबरी सुनकर राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने कटोरे को उत्तम भोजन से भरवाया और पूज्य बुद्ध से वहीं भोजन ग्रहण करने का अनुरोध किया, साथ ही बुद्ध को भोजन अर्पित करने का वचन भी दिया।
जब पूज्य गुरु ने ऐसा किया, तो राजा ने भी वही क्रिया दोहराई। पूज्य गुरु ने राजा के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वे बुद्ध के आगमन तक प्रतिदिन आकर इस प्रक्रिया को दोहराते रहें। और प्रतिदिन पूज्य गुरु राजा को धन्यवाद के रूप में उपदेश देते थे। यह पुण्य का अर्पण ( पुण्य का हस्तांतरण ) था।
इसके कुछ समय बाद ही बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि पूज्य कालुदाई, संघ में अपने रिश्तेदारों को धर्म अपनाने के लिए प्रेरित करने में अग्रणी थे।
पाप : अकुशल कर्म । वे सभी कर्मिक संकल्प और उनसे संबंधित चेतना एवं मानसिक अभिक्रियाएँ अस्वास्थ्यकर हैं, जो लोभ ( लालच ), द्वेष ( दोष ) या केवल मोह ( मोह ) से ग्रस्त हों; और ये सभी घटनाएँ प्रतिकूल कर्म परिणामों का कारण हैं और इनमें दुखद भाग्य या पुनर्जन्म के बीज निहित हैं।
अकुसला-साधारण-चेतसिका : सभी अस्वास्थ्यकर कार्यों (इच्छाओं) से जुड़े सामान्य अस्वास्थ्यकर ( पाप ) मानसिक कारक चार हैं: (1) नैतिक लज्जा ( अहिरिका ) का अभाव; (2) नैतिक भय ( अनोत्तप्पा ) का अभाव ; (3) बेचैनी ( उद्धच्च ); (4) भ्रम ( मोह )।
मूल : हेतु कहलाने वाले वे तत्व हैं जो अपनी उपस्थिति से किसी इच्छाशक्ति की वास्तविक नैतिक गुणवत्ता ( चेतना ) और उससे जुड़े चेतना एवं मानसिक कारकों, यानी कर्म की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं। ऐसे छह मूल तत्व हैं, जिनमें से तीन कर्मिक रूप से

लाभकारी और तीन हानिकारक हैं, अर्थात्: लोभ, घृणा, मोह ( लोभ , दोष , मोह ) और लोभहीनता, घृणाहीनता, मोहहीनता ( लोभ , दोष , मोह )।

लोभ किसी आकर्षक वस्तु पर अनुचित चिंतन से उत्पन्न होता है, जबकि घृणा किसी अप्रिय वस्तु पर अनुचित चिंतन से। इस प्रकार, लोभ ( लोभ या राग ) में किसी वस्तु के प्रति आकर्षण की सभी अवस्थाएँ समाहित होती हैं, जो एक सूक्ष्म लालसा से लेकर घोर अहंकार तक होती हैं, जबकि घृणा ( दोष ) में घृणा की सभी अवस्थाएँ समाहित होती हैं, जो हल्के से द्वेष से लेकर घोर क्रोध तक होती हैं। पाप कर्म — हत्या, चोरी, अवैध यौन संबंध, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर भाषा, व्यर्थ की बातें, लालच, द्वेष और गलत विचार — ये सब लोभ, घृणा या भ्रम के कारण होते हैं।

कामवासना में डूबा हुआ, घृणा से क्रोधित, भ्रम में अंधा, व्याकुल, मन में फँसा हुआ मनुष्य अपने विनाश, दूसरों के विनाश, और दोनों के विनाश का लक्ष्य रखता है, और मानसिक पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है। वह कर्मों, वचनों और विचारों में बुराई के मार्ग पर चलता है, और वास्तव में न तो अपना कल्याण जानता है, न दूसरों का, और न ही दोनों का। ये बातें उसे अंधा और अज्ञानी बनाती हैं, उसके ज्ञान में बाधा डालती हैं, पीड़ादायक होती हैं, और उसे शांति की ओर नहीं ले जातीं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 118

———————————————————————————

(धम्मपद 117) <<<< पिछला || धम्मपद 118 || अगला >>>> (धम्मपद 119 और 120)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 118 - लजादेवाधिता वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Punnace puriso kayira
kayira nam punappunam
tamhi chandam kayiratha
sukho punnassa uccayo.

———————————————————————————

श्लोक 118 : यदि कोई व्यक्ति अच्छा काम करता है, तो उसे बार-बार करना चाहिए; उसे उसमें आनंद लेना चाहिए; पुण्य का संचय सुख की ओर ले जाता है।

———————————————————————————

लाजादेवधिता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (118) का उच्चारण किया, जो लाजा नामक स्त्री देव के संदर्भ में है।

एक समय थेरा महाकस्सपा पिप्पली गुफा में सात दिनों तक एकाग्रता में लीन रहे। समाधि से उठने के तुरंत बाद, उन्होंने किसी को समाधि से उठे हुए थेरा को कुछ भेंट करने का अवसर देने की इच्छा से बाहर देखा और एक झोपड़ी में एक युवती को भुट्टा भूनते हुए पाया। इसलिए वे भिक्षा मांगने के लिए उसके दरवाजे पर खड़े हो गए और युवती ने सारा भुट्टा थेरा के कटोरे में डाल दिया। थेरा को भुट्टा भेंट करने के बाद जब वह वापस मुड़ी, तो उसे एक विषैले सांप ने काट लिया और उसकी मृत्यु हो गई। उसका पुनर्जन्म तावतिंसा देवलोक में हुआ और वह लाजा (भुट्टा) देवधिता के नाम से जानी गई।

लाजा को एहसास हुआ कि उनका पुनर्जन्म तावतिंसा में इसलिए हुआ है क्योंकि उन्होंने थेरा महाकस्सपा को पॉपकॉर्न चढ़ाया था और उनके प्रति अत्यंत कृतज्ञता व्यक्त की थी। तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि उन्हें अपनी सौभाग्य को और अधिक स्थायी बनाने के लिए थेरा की कुछ सेवाएँ करते रहना चाहिए। इसलिए, वह हर सुबह थेरा के मठ में जातीं, परिसर की सफाई करतीं, पानी के बर्तन भरतीं और अन्य सेवाएँ करतीं। पहले तो थेरा को लगा कि ये सेवाएँ युवा समनेरों ने की हैं; लेकिन एक दिन उन्हें पता चला कि एक महिला देव (परी) ये सेवाएँ कर रही थी। इसलिए उन्होंने उसे मठ में न आने के लिए कहा, क्योंकि अगर वह आती रही तो लोग उसके बारे में बातें

करने लगेंगे। लाजादेवधिता बहुत दुखी हुईं; उन्होंने थेरा से विनती की और रोते हुए कहा, "कृपया मेरी संपत्ति, मेरे धन को नष्ट न करें।" बुद्ध ने उसकी चीखें सुनीं और अपने कक्ष से प्रकाश भेजा तथा देवी से कहा, "देवधिता, मेरे पुत्र कश्यप का यह कर्तव्य है कि वह तुम्हें मठ में आने से रोके; पुण्य कमाना चाहने वाले का यही कर्तव्य है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 118 : यदि कोई व्यक्ति अच्छा काम करता है, तो उसे बार-बार करना चाहिए; उसे उसमें आनंद लेना चाहिए; पुण्य का संचय सुख की ओर ले जाता है।

---

प्रवचन के अंत में, लाजादेवधिता ने सोतापत्ति की सिद्धि प्राप्त की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
देवी लाजा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवी लाजा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कुछ समय के लिए पूज्य कस्सपा महान पिप्पली गुफा में निवास कर रहे थे, वे समाधि में चले गए और सात दिनों तक वहीं रहे। सातवें दिन समाधि से जागने पर उन्होंने अलौकिक दृष्टि से उन स्थानों का अवलोकन किया जहाँ वे भिक्षा मांगने जाना चाहते थे। जब उन्होंने चारों ओर देखा, तो उन्हें धान के खेत की रखवाली करने वाली एक स्त्री दिखाई दी, जो अपने द्वारा तोड़े गए धान की बालियों को भून रही थी। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, “क्या वह आस्थावान है या नहीं?” तुरंत यह जानकर कि वह आस्थावान है, उन्होंने विचार किया, “क्या वह मेरी सहायता कर पाएगी?” तभी उन्हें यह बात समझ में आई, “यह नेक युवती बुद्धिमान और साधन संपन्न है; वह मेरी सहायता करेगी और ऐसा करने के फलस्वरूप उसे भरपूर प्रतिफल मिलेगा।” अतः उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए, हाथ में भिक्षापात्र लिया और धान के खेत के पास जाकर खड़े हो गए। जब उस नेक युवती ने पूज्यवर को देखा, तो उसका हृदय आस्तिक हो गया और उसका शरीर पाँचों प्रकार के आनंद से भर गया। “एक क्षण रुकिए, पूज्यवर,” उसने कहा। भुने हुए चावल लेकर वह शीघ्रता से उनके पास गई, चावल पूज्यवर के कटोरे में डाले और फिर पाँचों विश्रामों से उन्हें प्रणाम करते हुए उसने हार्दिक निवेदन किया, “पूज्यवरवर, क्या मैं उस सत्य की भागीदार बन सकती हूँ जिसे आपने देखा है?” “ऐसा ही हो,” पूज्यवर ने धन्यवाद के शब्द कहते हुए उत्तर दिया। तब उस नेक युवती ने पूज्यवर को प्रणाम किया और पूज्यवर को दिए गए दान पर विचार करते हुए वापस लौटने लगी।
धान के खेतों के किनारे सड़क के पास एक गड्ढे में एक विषैला साँप छिपा रहता था। वह पूज्यवर के पैर को काट नहीं पाता था, क्योंकि वह उनके पीले वस्त्र से ढका हुआ था। लेकिन जब वह नेक युवती लौटते समय उस स्थान पर पहुँची, पूज्यवर को दिए गए अपने दान के बारे में सोचते हुए, साँप अपने गड्ढे से निकला, उसे काट लिया और उसे वहीं जमीन पर गिरा दिया। श्रद्धापूर्वक प्राण त्यागते हुए, वह स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर लौटी। देवी के रूप में वह समय-समय पर नीचे आती और पूज्यवर के स्थान की देखभाल करती, परिसर की सफाई आदि करती। पूज्यवर ने जब यह सब देखा, तो उन्होंने सोचा, “यह सेवा किसी प्रशिक्षु या नौसिखिए ने ही की होगी।” दूसरे दिन भी देवी ने वही किया, और पूज्यवर फिर उसी निष्कर्ष पर पहुँचे। लेकिन तीसरे दिन पूज्यवर ने उनके झाड़ू लगाने की आवाज सुनी, और चाबी के छेद से झाँककर देखा, तो उन्हें उनका प्रकाशमान शरीर दिखाई दिया। और उसने तुरंत पूछा, “झाड़ू कौन लगा रही है?” “हे पूज्यवर, मैं आपकी शिष्या, देवी लाजा हूँ।” “इस नाम की मेरी कोई शिष्या नहीं है।” “हे पूज्यवर, जब मैं एक युवती थी और धान के खेत में काम करती थी, तब मैंने आपको भुने हुए धान दिए थे; लौटते समय मुझे एक साँप ने काट लिया, और मैं विश्वास के साथ मर गई और स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लिया। क्योंकि आपके द्वारा ही मुझे यह महिमा प्राप्त हुई, इसलिए मैंने मन ही मन कहा, 'मैं आपके सभी छोटे-बड़े कर्तव्यों का पालन करूँगी और इस प्रकार अपना मोक्ष सुनिश्चित करूँगी।' इसलिए मैं यहाँ आई हूँ, हे पूज्यवर।” “क्या तुमने ही कल और उससे पहले के दिनों में मेरे लिए इस जगह की झाड़ू लगाई थी और पीने का पानी रखा था?” “जी हाँ, हे पूज्यवर।” “कृपा करके यहाँ से चली जाइए, देवी। आपने जो भी कर्तव्य निभाए हैं, उनकी चिंता न कीजिए, लेकिन अब से यहाँ मत आना।” “हे पूज्यवर, मुझे नष्ट मत कीजिए। मुझे आपके सभी छोटे-बड़े कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति दीजिए और इस प्रकार अपना मोक्ष सुनिश्चित कीजिए।” “देवी, यहाँ से चली जाइए, कहीं ऐसा न हो कि भविष्य में जब धर्म के व्याख्याता रंगीन पंखा लेकर बैठ जाएँ, तो उन्हें यह कहने का कारण मिले, ‘सुना है कि एक देवी आती हैं और पूज्य कस्सपा के लिए बड़े-छोटे सभी काम करती हैं, उनके लिए पीने का पानी रखती हैं।’” तब देवी हवा में स्थिर खड़ी होकर रोने-पीटने लगीं। इस घटना के विषय में बुद्ध ने कहा, “सचमुच, इस लोक में और परलोक में, केवल अच्छे कर्म करने से ही सुख मिलता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 118)
पुरिसो सी पुन्नं कयिरा तं पुन्नपुनं कयिरथा

तं हि चंदं कयिरथ पुन्नस्सा उचायो सुखो
पुरिसो [ purisa ]: कोई व्यक्ति; चे पुन्जं [ puñña ]: यदि पुण्य कर्म; कायिरा : किए जाएँ; तं : वह; पुनप्पुनं [ punappuna ]: बार-बार; कायिरा : किया जाए; तं ही : उसमें; चंदं [ chanda ]: आनंद; कायिराथा : लिया जाए; पुन्ञस्स : पुण्य का; उच्चयो [ uccaya ]: संचय; सुखो [ sukha ]: सुख की ओर ले जाता है
एक व्यक्ति कोई पुण्य कर्म कर सकता है। उसे वह कर्म बार-बार दोहराते रहना चाहिए। उसे उस पुण्य कर्म में आनंद लेना चाहिए। पुण्य संचय से सुख प्राप्त होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 118)
पुण्य : पुण्य कर्म। ऐसे कर्मों को दर्शाने के लिए कुसला एक अन्य शब्द है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 119,120

---

(धम्मपद 118) <<<< पिछला || धम्मपद 119 और 120 || अगला >>>> (धम्मपद 121)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 119 और 120 - अनाथपिंडिकासेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
Papopi passati bhadram
yava papam na paccati
yada ca paccati papam
atha papo papam passati.

भद्रोपी पासाति पापम
yava bhadram na paccati
yada ca paccati bhadram
atha bhadro bhadrani passati.

---

श्लोक 119 : एक दुष्ट व्यक्ति भी तब तक सुख पा सकता है जब तक उसके बुरे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसके बुरे कर्मों का फल मिल जाता है तो उसे बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

---

श्लोक 120 : एक अच्छे व्यक्ति को भी तब तक कष्ट सहना पड़ सकता है जब तक कि उसके अच्छे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसका फल मिलेगा तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभों का आनंद उठाएगा।

---

अनाथपिंडिका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (119) और (120) का उच्चारण किया।
अनाथपिंडिका जेतवन मठ के दाता थे, जिसका निर्माण चौवन करोड़ रुपये की लागत से हुआ था। वे न केवल उदार थे, बल्कि बुद्ध के प्रति सच्चे भक्त भी थे। वे प्रतिदिन तीन बार जेतवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करते थे। सुबह वे चावल का दलिया, दिन में कोई उपयुक्त पौष्टिक भोजन या औषधि और शाम को फूल और अगरबत्ती लाते थे। कुछ समय बाद अनाथपिंडिका गरीब हो गए, लेकिन

एक दैत्य होने के कारण वे दुर्भाग्य से विचलित नहीं हुए और उन्होंने अपने दैनिक दान-पुण्य कार्य जारी रखे। एक रात, अनाथपिंडिका के घर के द्वार की रक्षा करने वाली आत्मा उनके सामने प्रकट हुई और बोली, "मैं तुम्हारे द्वार का रक्षक हूँ। तुम अपने भविष्य की चिंता किए बिना समना गौतम को अपनी संपत्ति अर्पित करते रहे हो। इसीलिए तुम अब गरीब हो। अतः तुम्हें समना गौतम को और दान नहीं करना चाहिए और अपने व्यवसाय पर ध्यान देना चाहिए तथा फिर से समृद्ध होना चाहिए।"

अनाथपिंडिका ने ऐसी बातें कहकर संरक्षक देवता को अपने घर से निकाल दिया। चूंकि अनाथपिंडिका एक सोतापन्न थे, इसलिए संरक्षक देवता उनकी अवज्ञा नहीं कर सके और उन्हें परिसर छोड़ना पड़ा। उनके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं थी और वे वापस लौटना चाहते थे, लेकिन अनाथपिंडिका से डरते थे। इसलिए, वे देवताओं के राजा सक्का के पास गए। सक्का ने उन्हें पहले अनाथपिंडिका का भला करने और उसके बाद उनसे क्षमा मांगने की सलाह दी। फिर सक्का ने आगे कहा, "कुछ व्यापारियों ने अनाथपिंडिका से लगभग अठारह करोड़ रुपये का ऋण लिया है जो अभी तक चुकाया नहीं गया है; अनाथपिंडिका के पूर्वजों द्वारा दफ़नाए गए अठारह करोड़ रुपये समुद्र में बह गए हैं, और अठारह करोड़ रुपये किसी स्थान पर दफ़नाए गए हैं, जिनका कोई मालिक नहीं है। जाओ और अपनी अलौकिक शक्ति से यह सारा धन वापस लाओ और अनाथपिंडिका के कमरों को भर दो। ऐसा करने के बाद, तुम उनसे क्षमा मांग सकते हो।" संरक्षक देवता ने सक्का के निर्देशानुसार कार्य किया और अनाथपिंडिका फिर से धनी हो गए।

जब संरक्षक आत्मा ने अनाथपिंडिका को सक्का द्वारा दी गई जानकारी और निर्देशों के बारे में बताया, जिसमें पृथ्वी के नीचे से, समुद्र के भीतर से और देनदारों से अपनी संपत्ति की वसूली के बारे में बताया गया था, तो वह विस्मय से भर गया। तब अनाथपिंडिका संरक्षक आत्मा को बुद्ध के पास ले गया। बुद्ध ने उन दोनों से कहा, "हो सकता है कि किसी अच्छे कर्म का फल लंबे समय तक न मिले और बुरे कर्म का परिणाम भुगतना पड़े; लेकिन वह समय अवश्य आएगा जब उसके अच्छे या बुरे कर्म का फल अवश्य मिलेगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 119 : एक दुष्ट व्यक्ति भी तब तक सुख पा सकता है जब तक उसके बुरे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसके बुरे कर्मों का फल मिल जाता है तो उसे बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

---

श्लोक 120 : एक अच्छे व्यक्ति को भी तब तक कष्ट सहना पड़ सकता है जब तक कि उसके अच्छे कर्मों का फल न मिले; परन्तु जब उसका फल मिलेगा तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभों का आनंद उठाएगा।

---

प्रवचन के अंत में, अनाथपिंडिका के घर के द्वार के संरक्षक देवता ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अनाथपिंडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

अनाथपिंडिका, जिन्होंने अकेले जेतवन मठ में बुद्ध के धर्म में चौवन अरब का खजाना खर्च किया, जेतवन में बुद्ध के निवास के दौरान दिन में तीन बार भव्य रूप से बुद्ध की सेवा करने जाते थे। जब भी वे वहां जाने के लिए निकलते, वे सोचते, "प्रशिक्षु और नौसिखिए मेरे हाथों को देखकर पूछेंगे, 'यह अपने साथ भेंट के रूप में क्या लाया है?'" और इसलिए वे कभी खाली हाथ नहीं जाते थे।

जब वह सुबह सवेरे वहाँ जाता था तो अपने साथ चावल की दलिया ले जाता था; नाश्ते के बाद वह घी, ताजा मक्खन और अन्य औषधियाँ ले जाता था; शाम को वह अपने साथ इत्र, मालाएँ, मलहम और वस्त्र ले जाता था। अब व्यापार से जीविका चलाने वालों ने उससे अठारह अरब का खजाना उधार लिया था। इसके अलावा, उसके परिवार का अठारह अरब का खजाना, जो नदी के किनारे गुप्त रूप से दबा हुआ था, नदी के उफान के समय विशाल सागर में बह गया था। परिणामस्वरूप, वह धीरे-धीरे दरिद्रता की स्थिति में पहुँच रहा था। लेकिन इसके बावजूद, वह पहले की तरह ही भिक्षुओं के संघ को दान देता रहा, यद्यपि वह पहले की तरह उत्तम भोजन देने में असमर्थ था।

एक दिन बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या हमारे गृहस्थ के घर में हमारे लिए भिक्षा का प्रबंध है?" अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया, "जी हाँ, पूज्यवर, परन्तु भोजन तो केवल पक्षियों का दाना और खट्टी दलिया है।" तब बुद्ध ने उनसे कहा, "गृहस्थ, यह मत सोचो कि 'मैं बुद्ध को केवल कच्चा भोजन दे रहा हूँ,' और इस बात से विचलित मत हो। यदि नीयत शुद्ध हो, तो बुद्धों और अन्य लोगों को वास्तव में कच्चा भोजन देना असंभव है।"

जब बुद्ध और उनके शिष्य अनाथपिंडिका के घर में प्रवेश कर रहे थे, तो द्वार पर निवास करने वाली देवी, उनकी अपार अच्छाई से अभिभूत होकर, वहाँ ठहर न पाने के कारण मन ही मन सोचने लगीं, "मैं गृहस्थ को उसकी निष्ठा से विमुख कर दूँगी, ताकि वे फिर कभी इस घर में प्रवेश न कर सकें।" यद्यपि देवी गृहस्थ से बात करने के लिए व्याकुल थीं, परन्तु उनके धन और शक्ति के चरम पर होने के

कारण वे उनसे एक शब्द भी नहीं कह सकीं। परन्तु इस समय उन्होंने मन ही मन सोचा, "गृहस्थ अब निर्धन है, अतः वह मेरी बातों पर ध्यान देगा।" तदनुसार वे रात में गईं, राजकोष के कक्ष में प्रवेश किया और हवा में स्थिर खड़ी हो गईं। जब राजकोष ने उन्हें देखा, तो उन्होंने कहा, "यह कौन है?" "हे महामहिम, मैं आपके चौथे द्वार पर निवास करने वाली देवी हूँ। मैं आपको उपदेश देने आई हूँ।" "तो फिर, जो कहना है कहिए।"

"हे महान कोषाध्यक्ष, भविष्य की चिंता किए बिना आपने अपनी अपार संपत्ति गौतम भिक्षु के धर्म में लुटा दी है। अब, यद्यपि आप दरिद्र हो चुके हैं, फिर भी आप अपनी संपत्ति दान करते रहते हैं। यदि आप इसी प्रकार दान करते रहे, तो कुछ ही दिनों में आपके पास अपने वस्त्र और भोजन के लिए भी पर्याप्त धन नहीं बचेगा। गौतम भिक्षु आपके किस काम के हैं? अपना फिजूलखर्ची छोड़ दें, व्यापार पर ध्यान दें और धनवान बनें।" "क्या यही सलाह देने आप आए हैं?" "जी हां, कोषाध्यक्ष।" "तो चले जाइए। चाहे आप जैसे एक लाख लोग भी कोशिश करें, आप मुझे मेरे मार्ग से नहीं हटा पाएंगे। आपने मुझसे वह बात कही है जो कहने का आपको अधिकार नहीं था; आपको मेरे घर में रहने का क्या अधिकार है? तुरंत मेरा घर छोड़ दीजिए।" धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त कर चुके एक श्रेष्ठ शिष्य के शब्दों को सहन न कर पाने के कारण देवी अपने बच्चों को साथ लेकर उसका घर छोड़कर चली गईं।

लेकिन देवी के उसके घर से चले जाने के बाद, उसे कहीं और रहने की जगह नहीं मिली। तब उसने मन ही मन सोचा, "मैं कोषाध्यक्ष से क्षमा मांगूंगी और इस घर में फिर से रहने की अनुमति मांगूंगी।" तदनुसार, वह नगर के संरक्षक देवता के पास गई, उन्हें अपनी गलती बताई और कहा, "आइए, मुझे कोषाध्यक्ष के पास ले चलिए, उन्हें मुझे क्षमा करने के लिए मनाइए और उन्हें अपने घर में फिर से रहने की अनुमति देने के लिए राजी कीजिए।" लेकिन नगर के संरक्षक देवता ने उत्तर दिया, "तुमने ऐसी बात कह दी है जो तुम्हें नहीं कहनी चाहिए थी; मेरे लिए तुम्हारे साथ कोषाध्यक्ष के घर जाना असंभव होगा।" इस प्रकार नगर के संरक्षक देवता ने उसकी विनती को अस्वीकार कर दिया। तब वह चार महान राजाओं के पास गई, लेकिन उन्होंने भी उसकी विनती को अस्वीकार कर दिया। तब वह देवताओं के राजा सक्का के पास गई, उन्हें अपनी कहानी सुनाई और उनसे और भी अधिक गंभीरता से विनती की। उसने कहा, "महाराज, मुझे रहने के लिए कोई जगह नहीं मिल रही है, मैं अपने बच्चों को साथ लेकर बिना किसी सुरक्षा के भटक रही हूँ। कृपया मुझे अपने पुराने निवास स्थान पर लौटने की अनुमति दें।" सक्का ने उत्तर दिया, "लेकिन मेरे लिए कोषाध्यक्ष से आपकी ओर से बात करना संभव नहीं होगा। फिर भी, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ।" "बहुत अच्छा, महाराज; मुझे बताइए वह क्या है।"

"जाओ, कोषाध्यक्ष के सहायक का वेश धारण करो; कोषाध्यक्ष के हाथ से लिखे एक पन्ने पर उसके पास मौजूद धन-संपत्ति की सूची लिखो; अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग करो और व्यापार से जीविका चलाने वालों द्वारा उधार ली गई अठारह अरब की संपत्ति को वापस लाओ और कोषाध्यक्ष के खाली भंडारगृह को उससे भर दो। इस संपत्ति के अलावा, अठारह अरब की संपत्ति ऐसी है जो विशाल सागर में बह गई है। इसके अलावा, अठारह अरब की संपत्ति ऐसी भी है जिसका कोई मालिक नहीं है, जो फलां-फलां स्थान पर पाई जा सकती है।"

इन सबको इकट्ठा करो और इससे उसका खाली भंडारगृह भर दो। इस प्रकार अपने अपराध का प्रायश्चित करके, उससे क्षमा मांगो।" "ठीक है," देवी ने कहा। और उसने तुरंत वही किया जो देवताओं के राजा सक्का ने उसे करने को कहा था। ऐसा करने के बाद, वह हवा में स्थिर खड़ी हो गई, और अलौकिक प्रकाश से राजकोष के कक्ष को प्रकाशित कर दिया।

"वह कौन है?" कोषाध्यक्ष ने पूछा। "मैं हूँ," देवी ने उत्तर दिया, "वह अंधी, मूर्ख देवी जो कभी आपके चौथे द्वार पर निवास करती थी। अपनी अंधी मूर्खता में मैंने आपसे जो शब्द कहे थे, उनके लिए मुझे क्षमा करें। देवताओं के राजा सक्का के आदेश का पालन करते हुए, मैंने चौवन अरब धन पुनः प्राप्त कर लिया है और आपके खाली भंडारगृह को उससे भर दिया है; इस प्रकार मैंने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है; मेरे पास रहने के लिए कोई स्थान नहीं है, और इसलिए मैं बहुत थकी हुई हूँ।" अनाथपिंडिका ने मन ही मन सोचा, "यह देवी मुझसे कह रही है, 'मैंने अपने अपराध का प्रायश्चित कर लिया है,' और अपने दोष को स्वीकार कर रही है; मैं इसे परम प्रबुद्ध के पास ले जाऊँगा।" तदनुसार, वह उसे बुद्ध के पास ले गया और उससे कहा, "बुद्ध को अपने सभी कर्मों का वर्णन करें।" देवी बुद्ध के चरणों में गिर पड़ी और बोली, "आदरणीय, अपनी मूर्खता के कारण मैंने आपके उत्कृष्ट गुणों को नहीं पहचाना और बुरे शब्द कहे; मुझे क्षमा करें।" इस प्रकार देवी ने बुद्ध और महान कोषाध्यक्ष दोनों से क्षमा मांगी।

तब बुद्ध ने कोषाध्यक्ष और अप्सरा दोनों को अच्छे और बुरे कर्मों के फलने-फूलने के बारे में समझाते हुए कहा, "हे महान कोषाध्यक्ष, इस जन्म में, जब तक बुरे कर्मों का फल नहीं निकलता, तब तक दुष्ट भी सुख देखता है। परन्तु जैसे ही उसके बुरे कर्मों का फल निकल जाता है, तब वह केवल बुराई ही देखता है। इसी प्रकार, जब तक अच्छे कर्मों का फल नहीं निकलता, तब तक भले ही बुराई ही देखता है; परन्तु जैसे ही उसके अच्छे कर्मों का फल निकल जाता है, तब वह केवल सुख ही देखता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 119)

यव पापं न पच्चति पापो अपि भद्रं पस्सति
यदा च पापं पक्कति अथ पापो पापनि पस्सति

याव : जब तक; पापं [ पाप ]: बुरा कर्म; न पच्चति : परिपक्व नहीं होता; पापो अपि : बुरा कर्म करने वाला; भद्रं पसति : उसे अच्छा मानता है; यदा च : जब; पापं [ पाप ]: बुराई; पच्चति : परिपक्व होने लगती है; अथ : तब; पापो : बुरा कर्म करने वाला; पापानी : बुराई का वास्तविक स्वरूप; पसति : देखता है
बुराई करने वाला बुराई को भी अच्छाई समझने लगता है। जब बुराई परिपक्व होने लगती है, तब बुराई करने वाला बुराई को बुराई के रूप में समझने लगता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 120)
यव भद्रं न पच्चति भद्रो अपि पापं पस्सति
यदा च भद्रं पच्चति अथ भद्रो भद्राणि पस्सति
याव : जब तक; भद्रं [ भद्र ]: अच्छा; न पच्चति : परिपक्व नहीं होता; भद्रो अपि: अच्छा भी; पापं पसति : बुरा प्रतीत होता है; यदा : जब; च भद्रं [ भद्र ]: जो अच्छा है; पच्चति : परिपक्व होने लगता है; अथ : तब; भद्रो [ भद्र ]: अच्छा; भद्राणि पसति : वास्तव में अच्छा प्रतीत होता है
एक व्यक्ति अच्छे काम कर सकता है। लेकिन वे अच्छे काम शुरू में बुरे लग सकते हैं। लेकिन जब अच्छाई परिपक्व हो जाती है, तब वह वास्तव में अच्छी साबित होती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 119-120)
अनाथपिंडिका : ये दो श्लोक बुद्ध ने एक ऐसे आयोजन के दौरान कहे थे जिसमें कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका उपस्थित थे। करोड़पति अनाथपिंडिका बुद्ध के प्रमुख गृहस्थ शिष्य और समर्थक थे। उनके नाम अनाथपिंडिका का अर्थ है 'असहायों का भोजन कराने वाला'। उनका मूल नाम सुदत्त था। उनकी अतुलनीय उदारता के कारण उन्हें यह नया नाम दिया गया था। उनका जन्मस्थान सावत्थी था।
अथा पापो पापनि पस्साति : एक दुष्ट व्यक्ति अपने पूर्व कर्मों के फलस्वरूप समृद्ध जीवन जी सकता है। वह अपने पूर्व कर्मों की वर्तमान बुराई पर विजय पाने की क्षमता के कारण सुख का अनुभव करेगा — यह एक ऐसा अन्याय है जो अक्सर इस संसार में व्याप्त रहता है। जब कर्म के अटल नियम के अनुसार उसके बुरे कर्म फल देने लगते हैं, तब उसे अपने दुष्टता के कष्टदायी परिणाम बोध होते हैं।
अथा भद्रो भद्राणि पस्साति : एक गुणी व्यक्ति को, जैसा कि अक्सर होता है, अपने अतीत के बुरे कर्मों के फलदायी होने के कारण वर्तमान के अच्छे कर्मों की तुलना में विपत्ति का सामना करना पड़ सकता है। उसे अपने वर्तमान अच्छे कर्मों की सार्थकता का अहसास तभी होता है जब उचित समय पर वे फलदायी होकर उसे प्रचुर आनंद प्रदान करते हैं। यह तथ्य कि कभी-कभी दुष्ट समृद्ध होते हैं और गुणी दुर्भाग्यशाली, स्वयं कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास का प्रबल प्रमाण है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 121

———————————————————————————

(धम्मपद 119 और 120) <<<< पिछला || धम्मपद 121 || अगला >>>> (धम्मपद 122)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 121 - असन्नतापरिक्खरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
मावमन्नेथा पापासा
na mandam agamissati
udabindu nipatena
उदाकुंभोपी पुरती
balo purati papassa
thokam thokampi acinam.

---

श्लोक 121 : बुराई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि "थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा"; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही मूर्ख भी थोड़ी-थोड़ी बुराई जमा करके उससे भर जाता है।

---

एक लापरवाह भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (121) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो मठ से संबंधित फर्नीचर के उपयोग में लापरवाह था।

यह भिक्षु मठ के किसी भी फर्नीचर, जैसे कि सोफा, बेंच या स्टूल का उपयोग करने के बाद, उसे बाहर परिसर में छोड़ देता था, जिससे वह बारिश, धूप और दीमक के संपर्क में आ जाता था। जब अन्य भिक्षुओं ने उसके इस गैरजिम्मेदाराना व्यवहार के लिए उसे फटकारा, तो वह कहता, "मेरा इरादा इन चीजों को नष्ट करने का नहीं है; आखिर, नुकसान तो बहुत कम हुआ है," और इसी तरह वह अपना व्यवहार जारी रखता था। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने उस भिक्षु को बुलवाया और उससे कहा, "भिक्षु, तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए: तुम्हें किसी भी बुराई को हल्के में नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कितनी भी छोटी क्यों न हो, क्योंकि यदि तुम इसे आदत के रूप में करोगे तो यह बड़ी हो जाएगी।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 121 : बुराई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि "थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा"; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही मूर्ख भी थोड़ी-थोड़ी बुराई जमा करके उससे भर जाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक लापरवाह भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में कहा था जो मठ के फर्नीचर के उपयोग में लापरवाह था। यह भिक्षु मठ के किसी भी फर्नीचर (जैसे सोफा, बेंच या स्टूल) का उपयोग करने के बाद उसे बाहर परिसर में छोड़ देता था, जिससे वह बारिश, धूप और दीमक के संपर्क में आ जाता था। जब अन्य भिक्षुओं ने उसके इस गैरजिम्मेदाराना व्यवहार के लिए उसे डांटा, तो वह कहता, "मेरा इरादा इन चीजों को नष्ट करने का नहीं है; आखिर, नुकसान तो बहुत कम हुआ है," और इसी तरह वह अपना व्यवहार जारी रखता था। जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भिक्षु को बुलवाया और उससे कहा, "भिक्षु, तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए; तुम्हें किसी भी बुरे काम को हल्के में नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो; क्योंकि, अगर तुम इसे आदत के रूप में करोगे तो यह बड़ा रूप ले लेगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 121)

तं मां न अगामिस्सति पपास्स मा अप्पमन्नेथा
उदबिंदु निपातेन अपि उदकुंभो पूर्ति
थोकथोकं अपि अचिनं बालो पपास पुरति

taṃ : वह छोटा सा पाप: maṃ : मेरे प्रति; na āgamissati : बुरे परिणाम नहीं लाएगा; pāpassa : बुरे कर्म के बारे में; mā appamaññetha : कम मत समझो; udabindu nipātena api : केवल बूंद-बूंद करके; udakumbho [ udakumbha ]: जल पात्र; pūrati : भर जाता है; thokathokaṃ api : थोड़ा-थोड़ा करके भी; ācina [ ācina ]: संचय करते हुए; bālo : अज्ञानी; pāpassa : बुराई से; pūrati : भर जाता है

कुछ लोग बुराई को हल्के में लेते हैं। उनका रवैया यह होता है कि वे कुछ भी करके बच सकते हैं। वे कहते हैं, "मैं जैसा चाहूँ वैसा व्यवहार करूँगा। मुझे कभी कोई बुरा परिणाम नहीं भुगतना पड़ेगा।" लेकिन बुराई धीरे-धीरे बढ़ती है, ठीक वैसे ही जैसे पानी का घड़ा बूंद-बूंद करके भरता है। धीरे-धीरे बुराई बढ़ती जाती है, जब तक कि व्यक्ति उससे भर न जाए।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 121)

भिक्षु की आवश्यकताएँ । यह श्लोक बुद्ध द्वारा एक ऐसे भिक्षु के बारे में कहा गया है जो मठवासी जीवन की आवश्यकताओं का दुरुपयोग करता है। भिक्षु की आवश्यकताएँ परंपरागत रूप से बहुत सरल होती हैं। भिक्षु के लिए पवित्रता और मोक्ष के मार्ग पर प्रगति हेतु चार आवश्यकताएँ ( चतु पच्चया ) हैं: वस्त्र, भोजन, आवास और औषधि। ये मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। मूलतः ये एक गृहस्थ की भी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। बुद्ध की यह प्रथा थी कि वे भिक्षुओं से मिलने पर उनसे पूछते थे: “आप कैसे हैं? आप कैसे हैं? मुझे आशा है कि आप कुशल मंगल हैं और आपको भोजन की कमी नहीं है।” एक चरवाहे की मार्मिक कहानी है जो खोए हुए बैल को खोजते हुए दोपहर का भोजन नहीं कर पाया। वापस लौटते समय, थका हुआ और भूखा, वह बुद्ध

के प्रवचन सुनने के लिए उनके पास गया। लेकिन भगवान बुद्ध यह जानते हुए कि उस व्यक्ति ने दिन भर कुछ नहीं खाया था, लोगों से पूछा कि क्या पहले उसे भोजन कराया जा सकता है। बुद्ध जानते थे कि इस व्यक्ति की भूख मिटाए बिना उसे उपदेश देना व्यर्थ है।

यद्यपि बुद्ध ने मुख्य रूप से भौतिक प्रगति पर ध्यान केंद्रित नहीं किया, फिर भी उन्होंने इसे पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं किया। बुद्ध भौतिक परिस्थितियों और सामाजिक कल्याण के कुछ पहलुओं के बारे में बहुत मुखर थे।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि गरीबी अपराध का एक प्रमुख कारण है। यदि लोगों को ऊपर वर्णित चार मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रखा जाए, या यदि ये आवश्यकताएँ, विशेषकर भोजन, दुर्लभ हों, तो उनका मन अशांत रहता है। वे नैतिक आचरण के बारे में नहीं सोचते और न ही धार्मिक जीवन के बारे में विचार करते हैं। आवश्यकता का कोई नियम नहीं होता और वे जीविका कमाने के लिए अन्यायपूर्ण और अधार्मिक तरीकों का सहारा लेते हैं। आर्थिक असुरक्षा और धन की कमी के कारण लोग चोरी और अन्य अपराध करने के लिए विवश हो जाते हैं। कूटदंतसूत्र में कहा गया है कि किसी देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए किसानों और व्यापारियों को खेती और व्यापार करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए और लोगों को पर्याप्त मजदूरी दी जानी चाहिए। इस प्रकार, जब उनके पास जीविका के लिए पर्याप्त धन होता है और वे आर्थिक रूप से सुरक्षित होते हैं, तो अपराध कम हो जाता है और शांति और सद्भाव का माहौल बनता है।

एक अन्य प्रवचन में, बुद्ध अनाथपिंडिका (वह धनाढ्य जिसने संघ को जेतवन मठ दान किया था) को गृहस्थ को प्राप्त होने वाले चार प्रकार के सुखों के बारे में समझाते हैं। पहला है स्वामित्व का संतोष ( अत्थि-सुख ), यानी आर्थिक सुरक्षा, जिससे व्यक्ति के पास अपने प्रयासों से विधिवत अर्जित पर्याप्त साधन हों; दूसरा है उपभोग का आनंद ( भोग-सुख ), यानी विधिवत धन के विवेकपूर्ण उपयोग से प्राप्त सुख; तीसरा है ऋणमुक्ति का सुख ( अनना-सुख ), यानी यह सोचकर प्राप्त होने वाला आनंद और संतोष कि “मैं किसी का ऋणी नहीं हूँ”; चौथा है निर्दोषता का आनंद ( अनवज्जसुख ), जो इस विचार से प्राप्त होने वाला संतोष है कि “मैं शरीर, वाणी और मन से निष्कलंक कर्मों से धन्य हूँ।”

बौद्ध धर्म में ये सभी चर्चाएँ और उपदेश यह दर्शाते हैं कि समाज के एक सदस्य के रूप में, आम आदमी को जीविका कमाने और अपनी आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा को मजबूत करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए, अन्यथा वह स्वयं और दूसरों पर बोझ बन जाएगा, लेकिन साथ ही उसे गलत और अधार्मिक जीवन शैली से बचना चाहिए और आत्म-बलिदान, दान, आत्म-संयम, संयम, धैर्य, वैराग्य, ध्यान आदि के मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए।

बुद्ध के सही आजीविका संबंधी निर्देश और सलाह गृहस्थों और संघ के सदस्यों दोनों के लिए हैं। उन्होंने अपने शिष्यों को स्पष्ट रूप से समझाया है कि भिक्षु का जीवन पूर्णतः शुद्ध और छल-कपट से मुक्त होना चाहिए। गुरु इस विषय पर अत्यंत बल देते हुए कहते हैं: “हे भिक्षुओं, जो भी भिक्षु धोखेबाज, हठी, बकवास करने वाले, धूर्त, भावुक, अभिमानी और अशांत हैं, वे मेरे अनुयायी नहीं हैं। वे इस धम्म-विनय (सिद्धांत और अनुशासन) से विमुख हो गए हैं, और न ही वे इस धम्म-विनय में वृद्धि, विकास और समृद्धि प्राप्त करते हैं ।” गुरु आगे कहते हैं: “हे भिक्षुओं, यह पवित्र जीवन ( ब्रह्मचर्य ) न तो लोगों को धोखा देने के लिए, न ही षड्यंत्र रचने के लिए, न ही लाभ और अनुग्रह के लिए, न ही मान-सम्मान के लिए जिया जाता है। यह न तो गपशप के लिए है, न ही इस इरादे से कि 'लोग मुझे फलां-फलां के रूप में जानें।'” लेकिन, भिक्षुओं, यह पवित्र जीवन संयम, त्याग, वैराग्य और विश्राम के लिए जिया जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 122

---

(धम्मपद 121) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 122 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 123)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 122 - बिलालापादकसेट्ठि वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण
मावमन्नेथा पुन्नस्सा
na mandam agamissati
उदाबिन्दुनिपतेना
उदाकुंभोपी पुरती
dhiro purati punnassa
thokam thokampi acinam.

---

श्लोक 122 : किसी को भी भलाई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि 'थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा'; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा करके पुण्य अर्जित करता है।

---

बिलालापादका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (122) का उच्चारण किया, जो कि धनी व्यक्ति बिलालापादक के संदर्भ में था।
एक बार, श्रावस्ती के एक व्यक्ति ने बुद्ध का प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने का निश्चय किया। उपदेश यह था कि स्वयं दान करने के साथ-साथ दूसरों को भी दान करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है और परलोक में अनेक अनुयायी प्राप्त होते हैं। अतः उस व्यक्ति ने बुद्ध और जेतवन मठ के सभी भिक्षुओं को अगले दिन भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। फिर वह प्रत्येक घर में जाकर निवासियों को सूचित किया कि अगले दिन बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन दिया जाएगा, इसलिए वे अपनी इच्छा अनुसार दान करें। धनी बिलालपादक ने उस व्यक्ति को घर-घर घूमते देखकर उसके इस व्यवहार को अस्वीकार कर दिया और उससे घृणा करने लगा। उसने मन ही मन कहा, "हे इस दुष्ट व्यक्ति! लोगों को भिक्षा मांगने के बजाय, इसने स्वयं जितने भिक्षुओं को भिक्षा दे सकता था, उतने को आमंत्रित क्यों नहीं किया?" इसलिए उसने उस आदमी से अपना कटोरा लाने को कहा और उस कटोरे में उसने थोड़ा सा चावल, थोड़ा सा मक्खन और थोड़ा सा गुड़ डाला। ये चीजें अलग-अलग ले जाई गईं और दूसरों द्वारा दी गई चीजों में नहीं मिलाई गईं। अमीर आदमी को समझ नहीं आया कि उसकी चीजें अलग क्यों रखी गई हैं, और उसने सोचा कि शायद वह आदमी दूसरों को यह दिखाना चाहता है कि उसके जैसे अमीर आदमी ने बहुत कम दान दिया है और इस तरह उसे शर्मिंदा करना चाहता है। इसलिए उसने एक नौकर को पता लगाने के लिए भेजा।
दान के सूत्रधार ने धनी व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रत्येक दान को चावल, करी और मिठाई के विभिन्न बर्तनों में थोड़ा-थोड़ा करके डाल दिया, ताकि धनी व्यक्ति को पुण्य प्राप्त हो सके। उसके सेवक ने जो कुछ देखा था, वह सब बता दिया; परन्तु बिलालापादक को इसका अर्थ समझ नहीं आया और वह दान के सूत्रधार के इरादे को लेकर अनिश्चित था। यद्यपि, अगले दिन वह उस स्थान पर गया जहाँ दान दिया जा रहा था। उसी समय वह अपने साथ एक चाकू भी ले गया, क्योंकि उसका इरादा दान के मुख्य सूत्रधार को मार डालने का था, यदि वह सार्वजनिक रूप से यह प्रकट कर दे कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने कितना कम दान दिया है।
लेकिन दान के इस प्रचारक ने बुद्ध से कहा, “आदरणीय महोदय, यह दान हम सबका संयुक्त दान है; किसी ने कम दिया हो या ज्यादा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; हम सबने आस्था और उदारता से दान दिया है; इसलिए हम सबको समान पुण्य मिले।” ये शब्द सुनकर बिललपादक को एहसास हुआ कि उसने उस व्यक्ति के साथ अन्याय किया है और सोचने लगा कि अगर वह अपनी गलती स्वीकार करके दान के प्रचारक से क्षमा नहीं मांगेगा, तो उसका पुनर्जन्म चार लोकों (अपय) में से किसी एक में होगा। इसलिए उसने कहा, “मेरे मित्र, मैंने आपके बारे में बुरा सोचकर आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।” बुद्ध ने धनी व्यक्ति को क्षमा मांगते हुए सुना और पूछताछ करने पर कारण का पता लगाया। इसलिए बुद्ध ने कहा, “मेरे शिष्य, अच्छे कर्म को, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, हल्के में मत लो, क्योंकि छोटे कर्म भी आदतन करने से बड़े हो जाते हैं।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 122 : किसी को भी भलाई करने को हल्के में नहीं लेना चाहिए, यह सोचकर कि 'थोड़ा सा करने से मुझ पर कोई असर नहीं पड़ेगा'; जैसे बारिश की बूंदों से पानी का घड़ा भर जाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा करके पुण्य अर्जित करता है।

---

प्रवचन के अंत में, धनी बिलालापादक ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बिलालापादक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने धनी व्यक्ति बिलालापादक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, सावत्थी के एक व्यक्ति ने बुद्ध का प्रवचन सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने का निश्चय किया। उपदेश यह था कि स्वयं दान करने के साथ-साथ दूसरों को भी दान करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, जिससे पुण्य की प्राप्ति होती है और परलोक में अनेक अनुयायी प्राप्त होते हैं। अतः उस व्यक्ति ने बुद्ध और जेतवन मठ के सभी भिक्षुओं को अगले दिन भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। फिर वह प्रत्येक घर में जाकर निवासियों को सूचित किया कि अगले दिन बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन दिया जाएगा, इसलिए वे अपनी इच्छा अनुसार दान करें। धनी बिलालापादक ने उस व्यक्ति को घर-घर घूमते देखकर उसके इस व्यवहार को अस्वीकार कर दिया और उससे घृणा करने लगा। उसने मन ही मन कहा, "हे इस दुष्ट व्यक्ति! लोगों को भिक्षा देने के लिए इधर-उधर भटकने के बजाय, उसने स्वयं जितने भिक्षुओं को भिक्षा दे सकता था, उतने को आमंत्रित क्यों नहीं किया!" इसलिए उसने उस आदमी से अपना कटोरा लाने को कहा और उस कटोरे में उसने थोड़ा सा चावल, थोड़ा सा मक्खन और थोड़ा सा गुड़ डाला। ये चीजें अलग-अलग ले जाई गईं और दूसरों द्वारा दी गई चीजों में नहीं मिलाई गईं। धनी व्यक्ति को समझ नहीं आया कि उसकी चीजें अलग क्यों रखी गईं, और उसने सोचा कि शायद वह आदमी दूसरों को यह दिखाना चाहता था कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने बहुत कम दान दिया है और इस तरह उसे शर्मिंदा करना चाहता था। इसलिए उसने एक नौकर को पता लगाने के लिए भेजा।

दान के प्रचारक ने धनी व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रत्येक दान को चावल, करी और मिठाई के विभिन्न बर्तनों में थोड़ा-थोड़ा करके डाल दिया, ताकि धनी व्यक्ति को पुण्य प्राप्त हो सके। उसके सेवक ने जो कुछ देखा था, वह सब बता दिया; परन्तु बिलालापादक को इसका अर्थ समझ नहीं आया और वह दान के प्रचारक के इरादे को लेकर अनिश्चित था। यद्यपि, अगले दिन वह उस स्थान पर गया जहाँ दान दिया जा रहा था। उसी समय वह अपने साथ एक चाकू भी ले गया, क्योंकि उसका इरादा दान के मुख्य प्रचारक को मार डालने का था, यदि वह सार्वजनिक रूप से यह प्रकट कर दे कि उसके जैसे धनी व्यक्ति ने कितना कम दान दिया है।

लेकिन दान के इस प्रवर्तक ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह दान हम सबका संयुक्त दान है; किसी ने कम दिया हो या ज्यादा, इसका कोई महत्व नहीं है; हम सबने श्रद्धा और उदारता से दान दिया है; इसलिए हम सब को समान पुण्य मिले।" ये शब्द सुनकर बिलालापादक को एहसास हुआ कि उसने उस व्यक्ति के साथ अन्याय किया है और उसने सोचा कि यदि वह अपनी गलती स्वीकार न करे और दान के प्रवर्तक से क्षमा न मांगे, तो उसका पुनर्जन्म चार निम्न लोकों ( अपायों ) में से किसी एक में होगा। इसलिए उसने कहा, "मेरे मित्र, मैंने आपके बारे में बुरा सोचकर आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है; कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।" बुद्ध ने धनी व्यक्ति को क्षमा मांगते हुए सुना और पूछताछ करने पर कारण का पता लगाया। इसलिए बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, अच्छे कर्म को, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, हल्के में न लें, क्योंकि छोटे कर्म भी आदतन करने से बड़े हो जाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 122)

तं मां न अगामिस्सति पुन्नस्सा मा अवमन्नेथा
उदबिंदु निपातेन अपि उदकुंभो पूर्ति
थोकथोकं अपि अचिनं धीरो पुन्नस्सा पुरति

taṃ : वह पुण्य कर्म; maṃ : मेरे प्रति; na āgamissati : अच्छे परिणाम नहीं लाएगा; puññassa : पुण्य कर्म; mā avamaññetha : कम मत समझो; udabindu nipātena api : बूंद-बूंद करके; udakumbho [ udakumbha ]: जल पात्र; pūrati : भर जाता है; thokathokaṃ api : थोड़ा-थोड़ा करके भी; ācina [ ācina ]: एकत्रित; dhīro [ dhīra ]: महान पुरुष; puññassa : पुण्य से; pūrati : भर जाता है।

कुछ लोग यह मानते हैं कि सद्गुणों को हल्के में लिया जा सकता है, और उनका अभ्यास करने से कोई असाधारण लाभ नहीं मिलता। यह विचार पूरी तरह सही नहीं है। व्यक्ति द्वारा किए गए अच्छे कर्म धीरे-धीरे एकत्रित होते हैं। यह प्रक्रिया ठीक उसी तरह है जैसे किसी घड़े में बूंद-बूंद करके पानी भरता है। समय बीतने के साथ-साथ, सद्गुणों के छोटे-छोटे कार्य एकत्रित होते जाते हैं, जब तक कि सद्गुण करने वाला व्यक्ति पूरी तरह से सद्गुणों से भर नहीं जाता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 122)

māppamaññetha ; mā avamaññetha : कम मत समझो। इस श्लोक का उद्देश्य यह बताना है कि भले ही छोटा-सा कर्म कितना भी तुच्छ क्यों न लगे, उसे कम नहीं समझना चाहिए। क्योंकि कर्म से सुख मिलता है, इसलिए थोड़ी सी भी भलाई सहायक हो सकती है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 123

---

(धम्मपद 122) <<<< पिछला || धम्मपद 123 || अगला >>>> (धम्मपद 124)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 123 - महाधनवनिजा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Vanijova bhayam maggam
अप्पसत्थो महाद्धानो
विसम जीवितुकामोवा
papani parivajjaye.

---

श्लोक 123 : जिस प्रकार कम सेवकों वाला धनी व्यापारी खतरनाक मार्ग से बचता है, जिस प्रकार जीवित रहने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार बुराई से बचना चाहिए।

---

महाधना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने व्यापारी महाधन के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (123) कहा।

महाधना सावत्थी के एक धनी व्यापारी थे। एक बार पाँच सौ लुटेरे उन्हें लूटने की योजना बना रहे थे, लेकिन उन्हें मौका नहीं मिला। इसी बीच, उन्हें पता चला कि व्यापारी जल्द ही बहुमूल्य माल से लदी पाँच सौ गाड़ियों के साथ यात्रा पर निकलेंगे। व्यापारी महाधना ने उन भिक्षुओं को भी अपने साथ यात्रा पर जाने का निमंत्रण दिया जो उनके साथ जाना चाहते थे, और उन्होंने रास्ते में उनकी जरूरतों का ध्यान रखने का वादा किया। इस प्रकार पाँच सौ भिक्षु उनके साथ चल दिए। लुटेरों को यात्रा की खबर मिली और वे व्यापारी के काफिले की प्रतीक्षा में आगे बढ़ गए। लेकिन व्यापारी जंगल के बाहरी इलाके में रुक गए जहाँ लुटेरे प्रतीक्षा कर रहे थे। काफिला वहाँ कुछ दिनों तक डेरा डालने के बाद आगे बढ़ने वाला था। लुटेरों को प्रस्थान की खबर मिली और वे काफिले को लूटने के लिए तैयार हो गए; व्यापारी को भी लुटेरों की गतिविधियों की खबर मिली और उन्होंने घर लौटने का फैसला किया। लुटेरों को अब पता चला कि व्यापारी घर जा रहे हैं; इसलिए वे घर वापसी के रास्ते में उनका इंतजार करने लगे। कुछ ग्रामीणों ने व्यापारी को डाकुओं की गतिविधियों के बारे में सूचना भेजी, और अंततः व्यापारी ने कुछ समय के लिए गाँव में ही रहने का निर्णय लिया। जब उसने भिक्षुओं को अपने निर्णय के बारे में बताया, तो भिक्षु स्वयं ही सावत्थी लौट गए।

जेतवन मठ पहुँचकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी यात्रा रद्द होने की सूचना दी। तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, महाधन डाकुओं से घिरी यात्रा से दूर रहता है; जो मरना नहीं चाहता वह विष से दूर रहता है; उसी प्रकार, एक बुद्धिमान भिक्षु, यह जानकर कि अस्तित्व के तीनों स्तर (1) खतरे से घिरी यात्रा के समान हैं, बुराई करने से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 123 : जिस प्रकार कम सेवकों वाला धनी व्यापारी खतरनाक मार्ग से बचता है, जिस प्रकार जीवित रहने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार बुराई से बचना चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

1. अस्तित्व के तीन स्तर इस प्रकार हैं:

ए. कामभाव, इंद्रियजन्य अस्तित्व का स्तर; जिसमें इंद्रिय इच्छा के ग्यारह क्षेत्र शामिल हैं;

ख. रूपाभवा, सूक्ष्म भौतिक अस्तित्व का स्तर: जिसमें ब्रह्मा के सोलह लोक शामिल हैं;
ग. अरुपहबवा, जो कि गैर-भौतिक अस्तित्व का स्तर है; इसमें ऊपरी ब्रह्माओं के चार क्षेत्र शामिल हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
महाधन की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने व्यापारी महाधन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
महाधन श्रावस्ती का एक धनी व्यापारी था। एक बार पाँच सौ लुटेरे उसे लूटने की योजना बना रहे थे, पर उन्हें मौका नहीं मिला। इसी बीच, उन्हें पता चला कि व्यापारी जल्द ही बहुमूल्य माल से लदी पाँच सौ गाड़ियों के साथ यात्रा पर निकलेगा। व्यापारी महाधन ने अपने साथ यात्रा करने के इच्छुक भिक्षुओं को भी आमंत्रित किया और रास्ते में उनकी जरूरतों का ध्यान रखने का वादा किया। इस प्रकार, पाँच सौ भिक्षु उसके साथ चल दिए। लुटेरों को यात्रा की खबर मिली और वे व्यापारी के काफिले की प्रतीक्षा में आगे बढ़ गए। लेकिन व्यापारी जंगल के बाहरी इलाके में रुक गया जहाँ लुटेरे इंतजार कर रहे थे। काफिला वहाँ कुछ दिनों तक डेरा डालने के बाद आगे बढ़ने वाला था। लुटेरों को प्रस्थान की खबर मिली और वे काफिले को लूटने के लिए तैयार हो गए; व्यापारी को भी लुटेरों की गतिविधियों की खबर मिली और उसने घर लौटने का फैसला किया। लुटेरों को अब पता चला कि व्यापारी घर जा रहा है; इसलिए वे घर वापसी के रास्ते में इंतजार करने लगे। कुछ ग्रामीणों ने व्यापारी को डाकुओं की गतिविधियों के बारे में सूचना भेजी, और अंततः व्यापारी ने कुछ समय के लिए गाँव में ही रहने का निर्णय लिया। जब उसने भिक्षुओं को अपने निर्णय के बारे में बताया, तो भिक्षु स्वयं ही सावत्थी लौट गए।
जीतावन मठ पहुँचने पर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी यात्रा रद्द होने की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, महाधन डाकुओं से घिरी यात्रा से दूर रहता है, जो मरना नहीं चाहता वह विष से दूर रहता है; उसी प्रकार, एक बुद्धिमान भिक्षु, यह जानते हुए कि तीनों लोकों का अस्तित्व खतरों से भरी यात्रा के समान है, बुराई करने से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 123)
महद्धनो अप्पसत्थो वाणीजो भयं मग्गं
इव जीवितुकामो विसं इव पापानि परिवज्जाये
महाद्धनो [ महाद्धना ]: अत्यंत धनी; अप्पसत्थो [ अप्पसत्था ]: कारवां के छोटे दल के साथ; वाणिजो [ वाणिजा ]: व्यापारी के समान; भयं मगगं इव : जोखिम भरे मार्ग से बचना; जीवितुकामो [ जीवितुकामा ]: जीवन से प्रेम करना; विषं इव : विष के समान; पापानी : बुरे कर्म; परिवज्जये : पूरी तरह से त्याग करना
माल ढोने वाला एक धनी और बुद्धिमान व्यापारी किसी भी खतरनाक सड़क (डाकुओं के कब्जे वाली सड़क) से पूरी सावधानी से बचेगा, विशेषकर तब जब उसके पास सुरक्षा के लिए पर्याप्त काफिला न हो। इसी प्रकार, अपने जीवन से प्रेम करने वाला व्यक्ति जहर से अत्यंत सावधानी से बचेगा। ठीक इसी तरह, बुराई से पूरी तरह दूर रहना चाहिए।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 123)
अप्पसत्थो : व्यापारियों का छोटा कारवां। ' सत्था ' शब्द व्यापारियों के समूह को दर्शाता है। ये व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हुए अपना माल बेचते हैं। कभी-कभी ये विशाल कारवां में यात्रा करते हैं। प्राचीन काल में ऐसे कारवां बैलगाड़ियों और रथों से बने होते थे, जिन्हें बैलों द्वारा खींचा जाता था। चूंकि उन्हें विभिन्न प्रकार के भूभागों से होकर गुजरना पड़ता था, इसलिए कभी-कभी उन पर डाकुओं द्वारा हमले किए जाते थे। ऐसे हमलों का मुकाबला करने के लिए, व्यापारी बड़े समूहों में यात्रा करते थे, जो डाकुओं के हमले को विफल करने में सक्षम थे। पारंपरिक टीकाओं में सत्था (व्यापारियों) को दो श्रेणियों में वर्णित किया गया है: (1) जंघासत्था : फेरीवाले और विक्रेता जो ज्यादातर अकेले ही अपना माल ढोते हुए यात्रा करते थे; (2) सक्त सत्था : वे जो अपने माल से भरी गाड़ियां लेकर यात्रा करते थे। बुद्ध के समय में, इन गाड़ीगाड़ियों के कारवां अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थे। इस श्लोक में, इन अत्यंत धनी व्यापारियों की एक आदत पर जोर दिया गया है। यदि वे बहुत धनी होते, लेकिन यदि उनका काफिला छोटा होता ( अप्पसत्थो ), तो वे 'भयंकर रास्तों' ( भयंकर मार्ग ) से बचते । भयंकर रास्ते वे होते थे जहाँ डाकुओं का वास माना जाता था।
पापनि : शरीर, वाणी और विचार की बुराई। ये लोभ, द्वेष और मोह में निहित हैं । ये भावनात्मक क्रियाएं स्वयं और दूसरों दोनों के लिए दुख का कारण बनती हैं। बुराई डाकुओं और विष की तरह ही खतरनाक और विशिष्ट है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 124

---

(धम्मपद 123) <<<< पिछला ll धम्मपद 124 ll अगला >>>> (धम्मपद 125)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 124 - कुक्कुटमित्तनेसदा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Panimhi ce vano nassa
हरेय्या पनीना विसम
निब्बानम विसामनवेति
natthi papam akubbato.

---

श्लोक 124 : यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो कोई विष को छू सकता है; विष उस पर असर नहीं करता जिस पर कोई घाव न हो; जिसका कोई बुरा इरादा न हो, उसके लिए कोई बुराई नहीं हो सकती।

---

कुक्कुतामित्ता की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शिकारी कुक्कुटामित्त और उसके परिवार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (124) कहा।

राजगृह में एक धनी व्यक्ति की पुत्री रहती थी, जिसने कम उम्र में ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया था। एक दिन, कुक्कुतामित्त नामक एक शिकारी बैलगाड़ी में बैठकर हिरण का मांस बेचने आया। कुक्कुतामित्त को देखते ही धनी युवती को उससे प्रेम हो गया; वह उसके पीछे गई, उससे विवाह किया और उसके साथ एक छोटे से गाँव में रहने लगी। इस विवाह से उनके सात पुत्र हुए और समय बीतने पर सभी पुत्रों का विवाह हो गया। एक दिन, बुद्ध ने सुबह-सुबह अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया और पाया कि शिकारी, उसके सात पुत्र और उनकी पत्नियाँ सोतापत्ति फल प्राप्त करने के योग्य थे। इसलिए, बुद्ध उस स्थान पर गए जहाँ शिकारी ने जंगल में अपना जाल बिछाया था। उन्होंने जाल के पास अपने पदचिह्न छोड़े और जाल से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी की छाया में बैठ गए।

जब शिकारी आया, तो उसने जाल में कोई जानवर नहीं देखा; उसने पैरों के निशान देखे और अनुमान लगाया कि उससे पहले कोई आया होगा और जानवर को काट गया होगा। इसलिए, जब उसने झाड़ी की छाया में बुद्ध को देखा, तो उसने उन्हें ही जानवर को जाल से मुक्त करने वाला व्यक्ति समझ लिया और क्रोधित हो गया। उसने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाला, लेकिन जैसे ही उसने धनुष खींचा, वे स्थिर हो गए और मूर्ति की तरह उसी स्थिति में बने रहे। उसके पुत्र पीछे-पीछे आए और अपने पिता को पाया; उन्होंने भी कुछ दूरी पर बुद्ध को देखा और सोचा कि वे उनके पिता के शत्रु होंगे। उन सभी ने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाले, लेकिन वे भी स्थिर हो गए और अपनी-अपनी मुद्राओं में बने रहे। जब शिकारी और उसके पुत्र वापस नहीं लौटे, तो शिकारी की पत्नी अपनी सात बहुओं के साथ उनके पीछे जंगल में गई। अपने पति और सभी पुत्रों को बुद्ध पर तीर ताने हुए देखकर, उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई: "मेरे पिता को मत मारो।"

जब उसके पति ने उसकी बातें सुनीं, तो उसने सोचा, "ये मेरे ससुर जी होंगे", और उसके बेटों ने सोचा, "ये हमारे दादा जी होंगे"; और उनके मन में प्रेम और दया का भाव आया। तब उस महिला ने उनसे कहा, " अपने धनुष-बाण रख दो और मेरे पिता जी को प्रणाम करो।" बुद्ध ने देखा कि इस समय तक शिकारी और उसके बेटे का मन शांत हो चुका था, इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वे उठें और अपने धनुष-बाण रख दें। अपने धनुष-बाण रखने के बाद, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया। अंत में, शिकारी, उसके सात पुत्र और सात बहुएँ, सभी पंद्रह लोगों ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।

फिर बुद्ध मठ लौट आए और थेरा आनंद और अन्य भिक्षुओं को शिकारी कुक्कुतामित्त और उसके परिवार के सुबह-सुबह सोतापत्ति फल प्राप्त करने के बारे में बताया। भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, क्या सोतापन्न शिकारी की पत्नी भी जीवनघात की दोषी नहीं है, यदि वह अपने पति के शिकार पर जाने पर उनके लिए जाल, धनुष और बाण जैसी वस्तुएँ लाती रही है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सोतापन्न हत्या नहीं करते, वे दूसरों के मारे जाने की कामना नहीं करते। शिकारी की पत्नी तो केवल अपने पति की

आज्ञा का पालन करते हुए उनके लिए वस्तुएँ ला रही थी। जैसे जिस हाथ में घाव न हो, उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार, क्योंकि उसका कोई बुरा करने का इरादा नहीं है, इसलिए वह कोई बुरा कार्य नहीं कर रही है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 124 : यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो कोई विष को छू सकता है; विष उस पर असर नहीं करता जिस पर कोई घाव न हो; जिसका कोई बुरा इरादा न हो, उसके लिए कोई बुराई नहीं हो सकती।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कुक्कुटमित्त की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शिकारी कुक्कुटमित्त और उसके परिवार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
राजगृह में एक समय एक धनी व्यक्ति की पुत्री रहती थी जिसने कम उम्र में ही सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। एक दिन कुक्कुटमित्त नामक एक शिकारी बैलगाड़ी में बैठकर हिरण का मांस बेचने आया। कुक्कुटमित्त को देखते ही धनी युवती को उससे प्रेम हो गया; वह उसके पीछे गई, उससे विवाह किया और एक छोटे से गाँव में उसके साथ रहने लगी। इस विवाह से उनके सात पुत्र हुए और समय बीतने पर सभी पुत्रों का विवाह हो गया। एक दिन बुद्ध ने सुबह-सुबह अपनी अलौकिक शक्ति से संसार का अवलोकन किया और पाया कि शिकारी, उसके सात पुत्र और उनकी पत्नियाँ सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के योग्य थे। इसलिए बुद्ध उस स्थान पर गए जहाँ शिकारी ने जंगल में अपना जाल बिछाया था। उन्होंने जाल के पास अपने पदचिह्न छोड़े और जाल से कुछ ही दूरी पर एक झाड़ी की छाया में बैठ गए।
जब शिकारी आया, तो उसने जाल में कोई जानवर नहीं देखा; उसने पैरों के निशान देखे और अनुमान लगाया कि उससे पहले कोई आया होगा और जानवर को छोड़ गया होगा। इसलिए, जब उसने झाड़ी की छाया में बुद्ध को देखा, तो उसने उन्हें ही जानवर को जाल से मुक्त करने वाला व्यक्ति समझ लिया और क्रोधित हो गया। उसने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाला, लेकिन जैसे ही उसने धनुष खींचा, वे स्थिर हो गए और मूर्ति की तरह उसी स्थिति में बने रहे। उसके पुत्र पीछे-पीछे आए और अपने पिता को पाया; उन्होंने भी कुछ दूरी पर बुद्ध को देखा और सोचा कि वे उनके पिता के शत्रु होंगे। उन सभी ने बुद्ध पर तीर चलाने के लिए धनुष-बाण निकाले, लेकिन वे भी स्थिर हो गए और अपनी-अपनी मुद्राओं में बने रहे। जब शिकारी और उसके पुत्र वापस नहीं लौटे, तो शिकारी की पत्नी अपनी सात बहुओं के साथ उनके पीछे जंगल में गई। अपने पति और सभी पुत्रों को बुद्ध पर तीर ताने हुए देखकर, उसने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई, "मेरे पिता को मत मारो।"
जब उनके पति ने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने सोचा, "ये मेरे ससुर जी होंगे", और उनके बेटों ने सोचा, "ये हमारे दादा जी होंगे", और उनके मन में प्रेम और दया का भाव आया। तब उस महिला ने उनसे कहा, "अपने धनुष-बाण रख दो और मेरे पिता जी को प्रणाम करो।" बुद्ध ने महसूस किया कि तब तक शिकारी और उसके बेटों का मन शांत हो चुका था, इसलिए उन्होंने इच्छा की कि वे उठें और अपने धनुष-बाण रख दें। अपने धनुष-बाण रखने के बाद, उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और बुद्ध ने उन्हें धम्म का उपदेश दिया। अंत में, शिकारी, उसके सात पुत्र और सात बहुएँ, सभी पंद्रह लोगों ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त किया। तब बुद्ध मठ लौट आए और पूज्य आनंद और अन्य भिक्षुओं को शिकारी कुक्कुटमित्त और उनके परिवार के सुबह-सुबह सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त करने के बारे में बताया। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, क्या शिकारी की पत्नी, जो एक सोतापन्न है, भी जीवन लेने की दोषी नहीं है, यदि वह अपने पति के शिकार पर जाने पर उसके लिए जाल, धनुष और बाण जैसी वस्तुएँ लाती है?" इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सोतापन्न हत्या नहीं करते, वे दूसरों की मृत्यु नहीं चाहते। शिकारी की पत्नी तो केवल अपने पति की आज्ञा का पालन करते हुए उसके लिए वस्तुएँ ला रही थी। जैसे जिस हाथ में घाव नहीं होता, उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही, क्योंकि उसका कोई बुरा करने का इरादा नहीं है, इसलिए वह कोई बुरा काम नहीं कर रही है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 124)
सी पणिमहि वनो न अस्सा पणिन विसं हारेया
विसं अब्बनं न अन्वेति अकुब्बतो पापं नत्थि
ce : यदि; pāṇimhi : हथेली में; vano : घाव; nā assa : मौजूद नहीं है; pāṇinā : हथेली में; visaṃ [ visa ]: विष; hareyya : लिया जा सकता है; visaṃ [ visa ]: विष; abbanaṃ [ abbana ]: हथेली में घाव रहित व्यक्ति; na anveti : प्रवेश नहीं करेगा; akubbato [ akubbata ]: उसी प्रकार, जो व्यक्ति बुराई नहीं करता; pāpaṃ natthi : कोई बुराई नहीं होती
यदि किसी व्यक्ति की हथेली पर कोई घाव न हो, तो वह अपने हाथ में विष रख सकता है। इसका कारण यह है कि विष उसके शरीर में अवशोषित नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार, जिसने कोई बुरा कर्म नहीं किया है, उसे बुरे परिणामों का कोई भय नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 124)

विषम् : विष। यदि किसी व्यक्ति की हथेली पर कोई घाव न हो और वह विष को छू ले, तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार, जो व्यक्ति बुरे कर्म नहीं करता, उस पर बुराई का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 125

---

(धम्मपद 124) <<<< पिछला || धम्मपद 125 || अगला >>>> (धम्मपद 126)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 125 - कोकासुनाखलुद्दका वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

यो अप्पादुत्थस्सा नरस्सा(1) दुस्साति
सुधास्सा पोसासा(1) अनंगनासा
tameva balam pacceti papam
सुखुमो रजो पतिवतमव खित्तो।

---

श्लोक 125 : यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अन्याय करता है जिसके साथ अन्याय नहीं किया जाना चाहिए, जो पवित्र है और नैतिक दोषों से मुक्त है, अर्थात् एक अरहत, तो वह बुराई उस मूर्ख पर वापस आ पड़ती है, जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

---

1. नरसा/पोसासा: एक अरहत (प्रबुद्ध व्यक्ति)।

---

शिकारी कोका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शिकारी कोका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (125) कहा।

एक सुबह, जब कोका अपने कुत्तों के झुंड के साथ शिकार पर जा रहा था, तो उसकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई जो भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश कर रहा था। उसने इसे अपशगुन समझा और मन ही मन बड़बड़ाया, "इस अभागे को देखकर लगता है कि आज मुझे कुछ नहीं मिलेगा," और वह अपने रास्ते चला गया। जैसा कि उसने सोचा था, उसे कुछ नहीं मिला। घर लौटते समय भी उसने उसी भिक्षु को शहर में भिक्षा मांगने के बाद मठ लौटते देखा, और शिकारी बहुत क्रोधित हो गया। इसलिए उसने अपने कुत्तों को भिक्षु पर छोड़ दिया। भिक्षु तेजी से एक पेड़ पर चढ़ गया और कुत्तों की पहुँच से थोड़ा दूर हो गया। फिर शिकारी पेड़ के नीचे गया और अपने तीर की नोक से भिक्षु की एड़ियों में वार किया। भिक्षु को बहुत दर्द हुआ और वह अपने वस्त्रों को पकड़ नहीं पा रहा था; इस प्रकार, वस्त्र उसके शरीर से फिसलकर पेड़ की तलहटी में खड़े शिकारी पर गिर गया।

पीले वस्त्र को देखकर कुत्तों ने सोचा कि भिक्षु पेड़ से गिर गया है और वे उसके शरीर पर झपट पड़े, उसे बेरहमी से काटने और खींचने लगे। भिक्षु ने पेड़ पर शरण लेकर एक सूखी शाखा तोड़ी और कुत्तों पर फेंक दी। तब कुत्तों को एहसास हुआ कि वे भिक्षु पर नहीं बल्कि अपने ही स्वामी पर हमला कर रहे थे और वे जंगल में भाग गए। भिक्षु पेड़ से नीचे उतरे और देखा कि शिकारी मर चुका है और उन्हें उस पर दया आई। उन्होंने यह भी सोचा कि क्या वे उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, क्योंकि शिकारी की मृत्यु उसके पीले वस्त्रों से ढके होने के कारण हुई थी।

अतः वह अपने संदेह को दूर करने के लिए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, "मेरे पुत्र, निश्चिंत रहो और संदेह मत करो; शिकारी की मृत्यु के लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो; उस मृत्यु से तुम्हारा शील भी कलंकित नहीं हुआ है। वास्तव में, उस शिकारी ने एक ऐसे व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया जिसके साथ उसे अन्याय नहीं करना चाहिए था और इसीलिए उसका यह दुखद अंत हुआ।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 125 : यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति के साथ अन्याय करता है जिसके साथ अन्याय नहीं किया जाना चाहिए, जो पवित्र है और नैतिक दोषों से मुक्त है, अर्थात् एक अरहत, तो वह बुराई उस मूर्ख पर वापस आ पड़ती है, जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

---

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
शिकारी कोका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शिकारी कोका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक सुबह, जब कोका अपने कुत्तों के झुंड के साथ शिकार पर जा रहा था, तो उसकी मुलाकात शहर में भिक्षा मांगने आए एक भिक्षु से हुई। उसने इसे अपशगुन समझा और मन ही मन बड़बड़ाया, "इस दुष्ट को देखकर लगता है आज मुझे कुछ नहीं मिलेगा," और वह अपने रास्ते चला गया। जैसा उसने सोचा था, उसे कुछ नहीं मिला। घर लौटते समय भी उसने उसी भिक्षु को मठ लौटते देखा, और शिकारी बहुत क्रोधित हो गया। उसने अपने कुत्तों को भिक्षु पर छोड़ दिया। भिक्षु फुर्ती से एक पेड़ पर चढ़ गया और कुत्तों की पहुँच से थोड़ा दूर हो गया। फिर शिकारी पेड़ के नीचे गया और अपने तीर की नोक से भिक्षु की एड़ी में वार कर दिया। भिक्षु को बहुत दर्द हुआ और वह अपने वस्त्रों को संभाल नहीं पाया; इसलिए वस्त्र उसके शरीर से फिसलकर पेड़ के नीचे खड़े शिकारी पर गिर पड़े।
पीले वस्त्र को देखकर कुत्तों ने सोचा कि भिक्षु पेड़ से गिर गया है और वे शरीर पर झपट पड़े, उसे बेरहमी से काटने और खींचने लगे। पेड़ पर शरण लिए हुए भिक्षु ने एक सूखी शाखा तोड़कर कुत्तों पर फेंक दी। तब कुत्तों को एहसास हुआ कि वे भिक्षु पर नहीं बल्कि अपने ही स्वामी पर हमला कर रहे थे और वे जंगल में भाग गए। भिक्षु पेड़ से नीचे उतरे और पाया कि शिकारी मर चुका है और उन्हें उस पर दया आई। उन्होंने यह भी सोचा कि क्या वे उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं, क्योंकि शिकारी की मृत्यु उसके पीले वस्त्रों से ढके होने के कारण हुई थी।
अतः वह अपने संदेह दूर करने के लिए बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने कहा, “मेरे पुत्र, निश्चिंत रहो और संदेह मत करो; शिकारी की मृत्यु के लिए तुम जिम्मेदार नहीं हो; उस मृत्यु से तुम्हारा नैतिक सद्गुण ( शील ) भी कलंकित नहीं हुआ है। वास्तव में, उस शिकारी ने एक ऐसे व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया जिसके साथ उसे अन्याय नहीं करना चाहिए था, और इसीलिए उसका यह दुखद अंत हुआ।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 125)
यो अप्पादुथस्स सुधास्स अनंगनस्स नरससा
पोस्सा दुस्सति ( तं ) पापं पतिवतं खित्तो
सुखुमो रजो इव तं बालं एव पचेती
यदि कोई व्यक्ति; अप्पदुत्तस्स : निष्कलंक हो; शुद्धस्स : पवित्र हो; अनंगणस्स : दोषों से मुक्त हो; नरस्स पोस्स : ऐसे मनुष्य के प्रति; दुस्सति : यदि कोई व्यक्ति कठोर हो जाए; पापं [ पाप ]: वह बुरा कर्म; पाटिवातं [ पाटिवात ]: हवा के विपरीत; खित्तो [ खित्त ]: फेंका जाए; सुखुमों राजो इव : जैसे कोई महीन धूल; तं बलं एव : उस अज्ञानी व्यक्ति को ही; पच्चेति : लौट आए
यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति किसी निर्दोष, पवित्र और भ्रष्टाचार से मुक्त व्यक्ति के प्रति कठोर और असभ्य व्यवहार करे, तो वह पाप कर्म उसी पर लौट आएगा। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल, फेंकने वाले के पास वापस लौट आती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 125)
अनंगणस : दोषों से रहित व्यक्ति । अंगण वे दोष हैं जो राग (वासना), दोष (द्वेष) और मोह (अज्ञान) से उत्पन्न होते हैं। इन्हें अंगण (शाब्दिक रूप से, खुले स्थान; खेल के मैदान) कहा जाता है क्योंकि इनमें बुराई बिना किसी रोक-टोक के खेल सकती है। कभी-कभी 'दाग' को भी अंगण कहा जाता है । व्युत्पत्ति के अनुसार, अंगण का अर्थ दोषों से दूषित व्यक्ति को भ्रष्ट करने की क्षमता भी है। कुछ संदर्भों में, अंगण का अर्थ गंदगी भी होता है। दोषों से रहित व्यक्ति को अनंगण कहा जाता है ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 126

---

(धम्मपद 125) <<<< पिछला || धम्मपद 126 || अगला >>>> (धम्मपद 127)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 126 - मणिकारकुलुपक तिस्सत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Gabbhameke uppajjanti(1)
निरयम पापकम्मिनो
saggam sugatino yanti
parinibbanti anasava(2).

[गब्बमेक उप्पज्जन्ति,
निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यंति,
परिणिब्बन्ति अनासवा॥

हिन्दी अर्थ :
कुछ (प्राणि) गर्भ में जन्म लेते हैं,
पापकर्मी नरक में जाते हैं।
सुकर्मी स्वर्ग को प्राप्त होते हैं,
और निवास स्थान आसव (क्लेश) नष्ट हो जाते हैं, वे परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।]

---

श्लोक 126 : कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं, दुष्ट निरंतर यातना (निरय) के स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं। धर्मात्मा देवलोक जाते हैं, और जो नैतिक व्यसनों से मुक्त होते हैं (अर्थात अरहत), वे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

---

1. गब्भमेके उप्पंजन्ति: शाब्दिक अर्थ, कुछ गर्भ में प्रवेश करते हैं; इस संदर्भ में, "कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।"
2. अनसवा: नैतिक मादक पदार्थों या वासनाओं से मुक्त। (अवस) अर्थात्, वे खिनसवा या अनसवा या अरहतस्स हो गए हैं।

---

थेरा टिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (126) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक रत्न तराशने वाला और उसकी पत्नी रहते थे; वहाँ एक थेरा भी रहते थे, जो एक अरहत थे। दंपति प्रतिदिन थेरा को भिक्षा देते थे। एक दिन, जब रत्न तराशने वाला मांस तराश रहा था, तभी कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) का एक दूत एक माणिक लेकर आया, जिसे काटकर और तराशकर राजा को वापस भेजना था। रत्न तराशने वाले ने अपने रक्त से सने हाथ से माणिक उठाया, उसे एक मेज पर रखा और हाथ धोने के लिए घर के अंदर चला गया। परिवार के पालतू सारस ने रक्त से सने माणिक को मांस का टुकड़ा समझकर उठा लिया और थेरा के सामने ही निगल गया। जब रत्न तराशने वाला लौटा, तो उसने पाया कि माणिक गायब है। उसने अपनी पत्नी और बेटे से पूछा, तो उन्होंने कहा कि उन्होंने नहीं लिया। फिर उसने थेरा से पूछा, तो थेरा ने कहा कि उन्होंने नहीं लिया; लेकिन वे संतुष्ट नहीं हुए। घर में कोई और न होने के कारण, रत्न पॉलिश करने वाले ने यह निष्कर्ष निकाला कि कीमती माणिक्य अवश्य ही किसी थेरेपिस्ट ने लिया होगा: इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि चोरी की बात कबूल करवाने के लिए उसे थेरेपिस्ट को प्रताड़ित करना होगा।

लेकिन उनकी पत्नी ने उत्तर दिया, "यह थेरा पिछले बारह वर्षों से हमारे मार्गदर्शक और शिक्षक रहे हैं, और हमने उन्हें कभी कोई बुराई करते नहीं देखा; कृपया थेरा पर आरोप न लगाएँ। एक कुलीन व्यक्ति पर आरोप लगाने से बेहतर है कि राजा की सज़ा भुगती जाए।" लेकिन उनके पति ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया; उन्होंने एक रस्सी ली और थेरा को बांधकर डंडे से कई बार पीटा, जिसके परिणामस्वरूप थेरा के सिर, कान और नाक से बहुत खून बहने लगा और वे ज़मीन पर गिर पड़े। सारस ने खून देखकर उसे पीने की

इच्छा से थेरा के पास आया। रत्न पॉलिश करने वाला, जो उस समय बहुत क्रोधित था, ने सारस को पूरी ताकत से लात मारी और पक्षी तुरंत मर गया। तब थेरा ने कहा, "कृपया देखें कि सारस मरा है या नहीं," और रत्न पॉलिश करने वाले ने उत्तर दिया, "तुम भी इस सारस की तरह मरोगे।" जब थेरा को यकीन हो गया कि सारस मर गया है, तो उन्होंने धीरे से कहा, "मेरे शिष्य, सारस ने माणिक निगल लिया।"

यह सुनकर रत्न-तराशने वाले ने सारस को काटकर उसके पेट में माणिक पाया। तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और वह भय से कांप उठा। उसने थेरा से क्षमा मांगने और भिक्षा मांगने के लिए उनके द्वार पर खड़े रहने की अनुमति देने की विनती की। थेरा ने उत्तर दिया, "मेरे शिष्य, यह न तो तुम्हारी गलती है और न ही मेरी। यह हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का फल है; यह संसार में हमारा ऋण है; मुझे तुमसे कोई द्वेष नहीं है। वास्तव में, यह इसलिए हुआ है क्योंकि मैं एक घर में प्रवेश कर गया था। आज से मैं किसी घर में प्रवेश नहीं करूंगा; मैं केवल द्वार पर खड़ा रहूंगा।" यह कहकर थेरा का निधन हो गया।

बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उपरोक्त प्रसंग के विभिन्न पात्रों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "सारस का पुनर्जन्म रत्न पॉलिश करने वाले के पुत्र के रूप में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले का पुनर्जन्म निरय में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले की पत्नी का पुनर्जन्म देवलोक में हुआ; और थेरा, जो अपने जीवनकाल में ही अरहत थे, ने परिनिर्वाण प्राप्त किया।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 126 : कुछ मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं, दुष्ट निरंतर यातना (निरय) के स्थान पर पुनर्जन्म लेते हैं। धर्मात्मा देवलोक जाते हैं, और जो नैतिक व्यसनों से मुक्त होते हैं (अर्थात अरहत), वे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार, सावत्थी में एक रत्न-तराशने वाला और उसकी पत्नी रहते थे; वहाँ एक पूज्य (वरिष्ठ भिक्षु) भी रहते थे, जो अरहत थे। दंपति प्रतिदिन पूज्य तिस्सा को भिक्षा देते थे। एक दिन, जब रत्न-तराशने वाला मांस का काम कर रहा था, तभी कोसल के राजा पसेनादि का एक दूत एक माणिक लेकर आया, जिसे काटकर और तराशकर राजा को वापस भेजना था। रत्न-तराशने वाले ने अपने रक्त से सने हाथ से माणिक उठाया, उसे एक मेज पर रखा और हाथ धोने के लिए घर के अंदर चला गया। परिवार के पालतू सारस ने रक्त से सने माणिक को मांस का टुकड़ा समझकर उठा लिया और पूज्य तिस्सा के सामने ही निगल गया। जब रत्न-तराशने वाला लौटा, तो उसने पाया कि माणिक गायब है। उसने अपनी पत्नी और बेटे से पूछा और उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने उसे नहीं लिया था। फिर उसने पूज्यवर से पूछा, जिन्होंने कहा कि उन्होंने इसे नहीं लिया। रत्न पॉलिश करने वाला संतुष्ट नहीं हुआ। घर में कोई और नहीं था, इसलिए रत्न पॉलिश करने वाले ने निष्कर्ष निकाला कि पूज्यवर ने ही कीमती माणिक लिया होगा: इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि चोरी कबूल करवाने के लिए उसे पूज्यवर को प्रताड़ित करना होगा।

लेकिन उनकी पत्नी ने उत्तर दिया, “यह पूज्यवर पिछले बारह वर्षों से हमारे मार्गदर्शक और शिक्षक रहे हैं, और हमने उन्हें कभी कोई बुराई करते नहीं देखा; कृपया पूज्यवर पर आरोप न लगाएँ। एक कुलीन व्यक्ति पर आरोप लगाने से बेहतर है राजा का दंड भुगतना।”

लेकिन उनके पति ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया; उन्होंने एक रस्सी ली और पूज्यवर को बांधकर डंडे से कई बार पीटा। इसके परिणामस्वरूप, पूज्यवर के सिर, कान और नाक से बहुत खून बहने लगा और वे ज़मीन पर गिर पड़े। सारस ने खून देखकर उसे पीने की इच्छा से पूज्यवर के पास आया। रत्न पॉलिश करने वाला, जो उस समय बहुत क्रोधित था, ने सारस को पूरी ताकत से लात मारी और पक्षी तुरंत मर गया। तब पूज्यवर ने कहा, “कृपया देखें कि सारस मरा है या नहीं,” और रत्न पॉलिश करने वाले ने उत्तर दिया, “तुम भी इस सारस की तरह मरोगे।” जब पूज्यवर को यकीन हो गया कि सारस मर गया है, तो उन्होंने धीरे से कहा, “मेरे शिष्य, सारस ने माणिक निगल लिया।”

यह सुनकर रत्न-तराशने वाले ने सारस को काटकर उसके पेट में माणिक पाया। तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ और वह भय से कांप उठा। उसने पूज्य गुरु से क्षमा मांगने और भिक्षा मांगने के लिए उनके द्वार पर आते रहने की विनती की। पूज्य गुरु ने उत्तर दिया, “मेरे शिष्य, यह न तो तुम्हारी गलती है और न ही मेरी। यह हमारे पिछले जन्मों के कर्मों का फल है; यह संसार में हमारा ऋण है; मुझे तुमसे कोई द्वेष नहीं है। वास्तव में, यह इसलिए हुआ क्योंकि मैं एक घर में प्रवेश कर गया था। आज से मैं किसी घर में प्रवेश नहीं करूंगा; मैं केवल द्वार पर खड़ा रहूंगा।” यह कहने के तुरंत बाद, पूज्य गुरु का चोटों के कारण देहांत हो गया।

बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उपरोक्त प्रसंग के विभिन्न पात्रों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और बुद्ध ने उत्तर दिया, “सारस का पुनर्जन्म रत्न पॉलिश करने वाले के पुत्र के रूप में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले का पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ; रत्न पॉलिश करने वाले की पत्नी का पुनर्जन्म देवलोक में हुआ; और पूज्य बुद्ध, जो अपने जीवनकाल में ही अरहत थे, ने परिनिर्वाण प्राप्त किया।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 126)
एके गभं उप्पज्जन्ति पापकमिनो निरयं
सुगतिनो सग्गं यंति अनासाव परिनिब्बन्ति
एके : कुछ; गब्बं [ गब्ब ]: गर्भ में; उपज्जन्ति : गर्भ धारण करना; पापकम्मिनो [ पापकम्मिना ]: दुष्ट; निरयं [ निरय ]: नरक में (जन्म लेना); सुगतिनो [ सुगतिना ]: अच्छे मार्ग वाले; सग्गं [ सग्ग ]: स्वर्ग; यन्ती : पहुंचना; अनासवा : जो दोष और भ्रष्टाचार से मुक्त हैं; परिनिब्बन्ति : पूर्ण निर्वाण प्राप्त करना
कुछ लोग मृत्यु के बाद गर्भ धारण करते हैं। जो लोग अपने जीवनकाल में पाप करते हैं, वे नरक में जन्म लेते हैं। जिनके आचरण जीवनकाल में सदाचारी रहे हों, वे मृत्यु के बाद स्वर्ग जाते हैं। ये निष्कलंक, जो पूर्णतः दोष और भ्रष्टाचार से मुक्त हैं, अपने नश्वर जीवन का त्याग करने पर पूर्ण निर्वाण प्राप्त करते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 126)
सग्ग : स्वर्ग। पारंपरिक टीकाओं में, सग्ग की परिभाषा इस प्रकार है: रूपादिहि पंच काम गुणेहि सुत्तु अग्गोति — सग्गो । इसका अर्थ है: वह स्थान जहाँ पाँचों इंद्रियाँ उच्चतम स्तर पर होती हैं। स्वर्ग में रहने वालों को देव (देवदूत या भगवान) कहा जाता है।
gabbhaṃ eke uppajjanti : [गब्बं एके उप्पज्जन्ति  सरल हिंदी अर्थ कुछ जीव गर्भ में जन्म लेते हैं।]बौद्ध धर्म के अनुसार जन्म के चार प्रकार होते हैं — अर्थात्, अंडाणु से जन्म ( अण्डज ), गर्भ से जन्म ( जलबुज ), नमी से जन्म ( संसेदज ), और स्वतःस्फूर्त जन्म ( ओपपातिका )।
निरयं पापकम्मिनो : निरय = नि + अय = सुख से रहित। निरय चार प्रकार के होते हैं — दुःखपूर्ण अवस्था ( अपाय ), पशु जगत ( तिरच्छानयोनी ), पेटलोक ( पेटायोनी ) और असुरलोक (असुरयोनी ) । इनमें से कोई भी अवस्था शाश्वत नहीं है। अपने बुरे कर्मों के अनुसार प्राणी ऐसी दुःखपूर्ण अवस्थाओं में जन्म ले सकते हैं। इन अवस्थाओं से मुक्त होकर वे अपने पिछले अच्छे कर्मों के अनुसार आनंदमय अवस्थाओं में जन्म ले सकते हैं।
parinibbanti anāsavā : [पाली (देवनागरी लिपी में) **परिनिब्बन्ति अनासावा**  सरल हिंदी अर्थ
जहाँ आसव नष्ट हो गए हैं, वे परिनिर्वाण प्राप्त होते हैं।] अरहंत, मृत्यु के बाद, फिर कभी जन्म नहीं लेते, बल्कि परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद श्लोक 127

---

(धम्मपद 126) <<<< पिछला || धम्मपद 127 || अगला >>>> (धम्मपद 128)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 127 - तयोजना वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

न अन्तलिक्खे न समुद्दमजिहे
na pabbatanam vivaram pavissa
na vijjati so jagatippadeso
yatthatthito mucceyya papakamma.

**न पब्बतनं विवरं पविस्स**
**न विज्जति सो जगतिपदेसो**
**यत्थथितो मुच्चेय पापकम्मा।**

**□हिन्दी अर्थ**

न तो पहाड़ों की गुफाओं में प्रवेश करके,
और न ही दुनिया के किसी स्थान में,
ऐसी कोई जगह है जहां ठहरकर
इंसान अपने पापकर्मों से बच सके।

———————————————————————

श्लोक 127 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ कोई बुरे कर्म के परिणामों से बच सके।

———————————————————————

तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीन असाधारण घटनाओं के संबंध में भिक्षुओं के तीन समूहों द्वारा उठाए गए प्रश्नों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (127) कहा।

पहला समूह: भिक्षुओं का एक समूह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था और रास्ते में एक गाँव में रुका। कुछ लोग उन भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन पका रहे थे, तभी एक घर में आग लग गई और आग का एक घेरा हवा में उठ उठा। उसी क्षण, एक कौआ उड़ता हुआ आया, आग के घेरे में फंस गया और गाँव के मध्य भाग में गिरकर मर गया। मृत कौए को देखकर भिक्षुओं ने सोचा कि केवल बुद्ध ही बता सकते हैं कि इस कौए को किस बुरे कर्म के कारण इस तरह मरना पड़ा। भिक्षा भोजन ग्रहण करने के बाद वे बुद्ध को प्रणाम करने और उस दुर्भाग्यशाली कौए के बारे में पूछने के लिए अपनी यात्रा पर आगे बढ़े।

दूसरा समूह: भिक्षुओं का एक और समूह नाव में यात्रा कर रहा था; वे भी बुद्ध को प्रणाम करने जा रहे थे। जब वे समुद्र के बीच में थे, तो नाव हिल नहीं पा रही थी। इसलिए, यह पता लगाने के लिए पर्ची निकाली गई कि दुर्भाग्यशाली कौन है; तीन बार पर्ची कप्तान की पत्नी के नाम निकली। तब कप्तान ने दुखी होकर कहा, "इस दुर्भाग्यशाली स्त्री के कारण बहुत से लोग न मरें; इसके गले में रेत का घड़ा बांधकर इसे पानी में फेंक दो ताकि मैं इसे न देख सकूँ।" कप्तान के निर्देशानुसार स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया और नाव आगे बढ़ सकी। अपने गंतव्य पर पहुँचने पर, भिक्षु नाव से उतरे और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस बुरे कर्म के कारण उस दुर्भाग्यशाली स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया था।

तीसरा समूह: सात भिक्षुओं का एक समूह भी बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था। रास्ते में उन्होंने एक मठ में पूछा कि क्या आस-पास कोई उपयुक्त स्थान है जहाँ वे रात बिता सकें। उन्हें एक गुफा का पता बताया गया और उन्होंने वहीं रात बिताई; लेकिन आधी रात को ऊपर से एक बड़ा पत्थर खिसक गया और गुफा का प्रवेश द्वार बंद हो गया। सुबह पास के मठ से गुफा में आए भिक्षुओं ने देखा कि क्या हुआ है और वे सात गाँवों से लोगों को बुलाने गए। इन लोगों की मदद से उन्होंने पत्थर को हटाने की कोशिश की, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। इस प्रकार, सातों भिक्षु सात दिनों तक बिना भोजन और पानी के गुफा में फंसे रहे। सातवें दिन, चमत्कारिक रूप से पत्थर अपने आप हट गया और भिक्षु बाहर आ गए और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस पूर्व कर्म के कारण उन्हें सात दिनों तक गुफा में बंद रहना पड़ा।

यात्रियों के तीनों समूह रास्ते में मिले और सब मिलकर बुद्ध के पास गए। प्रत्येक समूह ने बुद्ध को अपने रास्ते में देखी या अनुभव की गई बातें बताईं और बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिए।

पहले समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक किसान के पास एक बैल था। बैल बहुत आलसी और जिद्दी था। उसे कोई काम करने के लिए राजी करना नामुमकिन था; वह या तो जुगाली करता रहता या सो जाता। इस आलसी और जिद्दी जानवर के कारण किसान को कई बार गुस्सा आया; इसलिए गुस्से में उसने बैल के गले में पुआल की रस्सी बांधकर आग लगा दी, और बैल मर गया। इस बुरे कर्म के कारण किसान को निरय में लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा, और अपने दंड के शेष भाग को पूरा करते हुए, पिछले सात जन्मों में उसकी मृत्यु जलकर हुई।"

दूसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार एक स्त्री के पास एक पालतू कुत्ता था। वह जहाँ भी जाती, कुत्ते को अपने साथ ले जाती थी और शहर के लड़के उसका मज़ाक उड़ाते थे। वह बहुत क्रोधित और शर्मिंदा हुई, इसलिए उसने कुत्ते को मारने की योजना बनाई। उसने एक घड़ा रेत से भरकर कुत्ते के गले में बाँध दिया और उसे पानी में फेंक दिया; और कुत्ता डूब गया। इस बुरे कर्म के कारण उस स्त्री

को निरयण में बहुत समय व्यतीत करना पड़ा और अपने दंड के शेष भाग को भुगतते हुए, उसे पिछले सौ जन्मों से पानी में डुबोकर मरने के लिए भेजा जा रहा है।"

तीसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: "भिक्षुओं, एक बार सात ग्वालों ने एक इगुआना को एक टीले में जाते देखा और उन्होंने टीले के सातों द्वारों को पेड़ों की टहनियों और शाखाओं से बंद कर दिया। द्वार बंद करने के बाद वे चले गए और टीले में फंसी इगुआना को पूरी तरह से भूल गए। सात दिन बाद ही उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और वे जल्दी से उस जगह पर वापस आए जहाँ उन्होंने शरारत की थी और इगुआना को बाहर निकाल दिया। इस बुरे कर्म के कारण, वे सातों पिछले चौदह जन्मों में सात दिनों तक बिना भोजन के एक साथ कैद रहे।"

तब एक भिक्षु ने कहा, “अरे! जिसने बुरा कर्म किया है, उसे बुरे कर्मों के फल से कोई नहीं बच सकता, चाहे वह आकाश में हो, सागर में हो या गुफा में।” बुद्ध ने उससे कहा, “जी भिक्षु! तुम सही कह रहे हो; चाहे आकाश में हो या कहीं और, कोई भी स्थान बुरे कर्मों के प्रभाव से मुक्त नहीं है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 127 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ कोई बुरे कर्म के परिणामों से बच सके।

---

प्रवचन के अंत में सभी भिक्षुओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीन समूहों के व्यक्तियों की कहानी

भिक्षुओं का एक समूह बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा था और रास्ते में एक गाँव में रुका। कुछ लोग उन भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन पका रहे थे, तभी एक घर में आग लग गई और आग का एक घेरा हवा में उठ उठा। उसी क्षण, एक कौआ उड़ता हुआ आया, आग के घेरे में फंस गया और गाँव के मध्य में गिरकर मर गया। मृत कौए को देखकर भिक्षुओं ने सोचा कि केवल बुद्ध ही बता सकते हैं कि इस कौए ने ऐसा कौन सा बुरा कर्म किया था जिसके कारण उसकी मृत्यु इस प्रकार हुई। भिक्षा भोजन ग्रहण करने के बाद, वे कौए के बारे में पूछने के लिए बुद्ध के पास गए। भिक्षुओं का एक और समूह बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा था। जब वे समुद्र के बीच में थे, तो नाव हिल नहीं पा रही थी। इसलिए, यह पता लगाने के लिए पर्ची निकाली गई कि दुर्भाग्यशाली कौन है। तीन बार पर्ची कप्तान की पत्नी के नाम निकली। तब कप्तान ने दुखी स्वर में कहा, “इस अभागी स्त्री के कारण बहुत से लोगों की मृत्यु न हो; इसके गले में रेत का घड़ा बाँधकर इसे पानी में फेंक दो।” स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया और जहाज चलने लगा। अपने गंतव्य पर पहुँचकर भिक्षु जहाज से उतरे और बुद्ध के पास जाने के लिए आगे बढ़े। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि किस बुरे कर्म के कारण उस अभागी स्त्री को समुद्र में फेंक दिया गया था।

सात भिक्षुओं का एक समूह भी बुद्ध को प्रणाम करने गया। रास्ते में उन्होंने एक मठ में पूछताछ की, जहाँ से उन्हें एक गुफा का पता मिला और उन्होंने वहीं रात बिताई। लेकिन आधी रात को ऊपर से एक बड़ा पत्थर खिसक कर गुफा का प्रवेश द्वार बंद कर दिया। सुबह पास के मठ से गुफा में आए भिक्षुओं ने यह देखा और वे सात गाँवों से लोगों को बुलाने गए। इन लोगों की मदद से उन्होंने पत्थर को हटाने की कोशिश की, लेकिन सातों भिक्षु सात दिनों तक बिना भोजन और पानी के गुफा में फंसे रहे। सातवें दिन चमत्कारिक रूप से पत्थर अपने आप हट गया और भिक्षु बाहर आ गए और बुद्ध के दर्शन के लिए अपनी यात्रा जारी रखी। वे बुद्ध से यह भी पूछना चाहते थे कि उनके पिछले किसी बुरे कर्म के कारण उन्हें सात दिनों तक गुफा में क्यों बंद रहना पड़ा।

भिक्षुओं के तीनों समूह बुद्ध के पास गए। प्रत्येक समूह ने बुद्ध को अपने मार्ग में देखी गई घटनाओं के बारे में बताया और बुद्ध ने उनके प्रश्नों के उत्तर दिए।

पहले समूह को बुद्ध का उत्तर: “भिक्षुओं, एक बार एक किसान के पास एक बहुत आलसी और जिद्दी बैल था। किसान ने क्रोधित होकर बैल के गले में भूसे की रस्सी बांधकर आग लगा दी, जिससे बैल मर गया। इस बुरे कर्म के कारण किसान को नरक (निरय) में लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा। पिछले सात जन्मों में उसे जलकर मृत्यु प्राप्त हुई।” पिछले कर्मों के फलस्वरूप ही वर्तमान कष्ट भोगना पड़ा।

दूसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: “भिक्षुओं, एक बार एक स्त्री के पास एक कुत्ता था। वह जहाँ भी जाती, कुत्ता हमेशा उसके पीछे-पीछे जाता। परिणामस्वरूप, कुछ लड़के उसका मज़ाक उड़ाते थे। वह बहुत क्रोधित और शर्मिंदा हुई, इसलिए उसने कुत्ते को मार डालने की योजना बनाई। उसने एक घड़ा रेत से भरकर कुत्ते के गले में बाँध दिया और उसे पानी में फेंक दिया; और कुत्ता डूब गया। इस बुरे कर्म के कारण उस स्त्री को लंबे समय तक कष्ट भोगना पड़ा और उसके फल के रूप में उसे भी पानी में फेंककर डुबो दिया गया।”

तीसरे समूह को बुद्ध का उत्तर: “भिक्षुओं, एक बार सात ग्वालों ने एक इगुआना को टीले में जाते देखा और मजे के लिए उन्होंने टीले के सभी द्वार बंद कर दिए। वे टीले में फंसी इगुआना को पूरी तरह भूल गए। सात दिन बाद उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और वे इगुआना को बाहर निकालने के लिए तुरंत उस जगह पर गए जहाँ उन्होंने शरारत की थी। इस बुरे कर्म के कारण तुम सातों को सात दिन तक बिना भोजन के एक साथ कैद में रखा गया है।”

बुद्ध ने उत्तर दिया, "आकाश में हो या कहीं और, ऐसी कोई जगह नहीं है जो बुराई के परिणामों की पहुँच से बाहर हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 127)

यत्थतितो पापकम्मा मुन्सेय्य सो जगतिप्पदेसो
न विज्जति अंतलिक्खे न समुद्दमज्जे
न पब्बतानं विवरं पविस्सा न

यत्था : कहीं; ṭhito [ ṭhita ]: शरण लेना; पापकम्मा : बुरे कर्मों के फल से; मुन्चेय्य : (कोई) बच सकता है; सो : उस प्रकार का; जगतिपदेशो [ jagatippadesa ]: पृथ्वी पर स्थान; न विज्जति : दिखाई नहीं देता; अंतलिक्खे : अंतरिक्ष में; न : ऐसा कोई स्थान नहीं है; समुद्दमज्जे न : न ही (ऐसा कोई स्थान) समुद्र के बीच में है; पब्बतान [ pabbatāna ]: पहाड़ों का; विवर [ vivara ]: दरार, खाई या खुला स्थान; पविस्सा : प्रवेश करने के बाद: न : (कोई बच नहीं सकता)

पृथ्वी पर ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कोई दुष्ट व्यक्ति अपने बुरे कर्मों के परिणामों से बचने के लिए शरण ले सके। न ही अंतरिक्ष में, न ही समुद्र के बीच में ऐसी कोई जगह दिखाई देती है। न ही किसी चट्टानी पर्वत की दरार, छिद्र या खाई में वह अपने बुरे कर्मों के परिणामों से बचने के लिए शरण ले सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 127)

na vijjati so jagatippadeso : कोई स्थान नहीं है। यहाँ तात्पर्य यह है कि न तो ज़मीन पर, न समुद्र में और न ही आकाश में कोई ऐसा स्थान है जहाँ कोई पापी अपने कुकर्मों के परिणामों से बच सके। श्लोक में कुछ ऐसे स्थानों का उल्लेख है जिन्हें सुरक्षित माना जा सकता है: अंतलिक्खे (आकाश); समुद्दमज्जे (समुद्र के बीच में); पब्बतानं विवरं (चट्टान की दरारें)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 128

———————————————————————

(धम्मपद 127) <<<< पिछला || धम्मपद 128 || अगला >>>> (धम्मपद 129)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 128 - सुप्पबुद्धसाक्य वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
na pabbatanam vivaram pavissa
na vijjati so jagatippadeso
यत्थट्ठितं नप्पसहेय मक्कु।

———————————————————————

श्लोक 128 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ मृत्यु से पीड़ित न हो सके।

---

राजा सुप्पबुद्ध (भगवान बुद्ध के ससुर) की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजा सुप्पबुद्ध के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (128) कहा।

राजा सुप्पबुद्ध, देवदत्त के पिता और राजकुमार सिद्धार्थ के ससुर थे, जो बाद में गौतम बुद्ध बने। राजा सुप्पबुद्ध दो कारणों से बुद्ध के घोर विरोधी थे। पहला, क्योंकि राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में उन्होंने अपनी पत्नी यशोधरा, जो राजा सुप्पबुद्ध की पुत्री थीं, को त्यागकर संसार त्याग दिया था; और दूसरा, क्योंकि उनके पुत्र देवदत्त, जिन्हें गौतम बुद्ध ने संघ में प्रवेश दिया था, बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानने लगे थे। एक दिन, यह जानकर कि बुद्ध भिक्षा मांगने आ रहे हैं, उन्होंने शराब पीकर रास्ता रोक दिया। जब बुद्ध और भिक्षु आए, तो सुप्पबुद्ध ने रास्ता देने से इनकार कर दिया और संदेश भेजा, "मैं समना गौतम को रास्ता नहीं दे सकता, जो मुझसे बहुत छोटे हैं।" रास्ता अवरुद्ध देखकर बुद्ध और भिक्षु वापस लौट गए। तब सुप्पबुद्ध ने किसी को गुप्त रूप से बुद्ध का पीछा करने और यह पता लगाने के लिए भेजा कि बुद्ध ने क्या कहा और उन्हें सूचना देने के लिए भेजा।

जब बुद्ध पीछे मुड़े, तो उन्होंने आनंद से कहा, "आनंद, क्योंकि राजा सुप्पबुद्ध ने मुझे रास्ता देने से इनकार कर दिया था, इसलिए आज से सातवें दिन वह अपने महल के शिखर वाले हॉल की सीढ़ियों के नीचे धरती में समा जाएगा।" राजा के जासूस ने ये शब्द सुने और राजा को सूचना दी। राजा ने कहा कि वह उन सीढ़ियों के पास नहीं जाएगा और बुद्ध के शब्दों को गलत साबित करेगा। इसके अलावा, उसने अपने आदमियों को उन सीढ़ियों को हटाने का आदेश दिया, ताकि वह उनका उपयोग न कर सके; उसने कुछ आदमियों को भी तैनात किया, जिन्हें निर्देश दिया गया था कि यदि वह सीढ़ियों की ओर जाए तो उसे रोक लें।

जब बुद्ध को राजा के अपने सैनिकों को दिए गए निर्देशों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! चाहे राजा सुप्पबुद्ध किसी ऊंचे शिखर वाले टावर में रहें, या आकाश में, या समुद्र में, या किसी गुफा में, मेरा वचन कभी गलत नहीं हो सकता; राजा सुप्पबुद्ध उसी स्थान पर पृथ्वी में समा जाएंगे, जिस स्थान का मैंने तुम्हें उल्लेख किया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 128 : न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, न ही पर्वत की गुफा में, न ही कहीं और, ऐसी कोई जगह है जहाँ मृत्यु से पीड़ित न हो सके।

---

सातवें दिन, भिक्षा भोज के समय के आसपास, राजसी घोड़ा किसी अज्ञात कारण से भयभीत हो गया और ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने और बेतहाशा लात मारने लगा। अपने घोड़े की डरावनी आवाज़ें सुनकर राजा को लगा कि उसे अपने पालतू घोड़े को संभालना चाहिए और सभी सावधानियों को भूलकर वह दरवाजे की ओर चल पड़ा। दरवाजा अपने आप खुल गया, पहले से टूटी हुई सीढ़ियाँ भी वहीं थीं, उसके आदमियों ने उसे नीचे जाने से रोकना भूल गए थे। इसलिए राजा सीढ़ियों से नीचे उतर गया और जैसे ही उसने धरती पर कदम रखा, वह फट गई और उसे निगल लिया और सीधे अविचि निरय (नरक) में खींच ले गई।

अध्याय नौ का अंत: बुराई (पापावग्गा)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

राजा सुप्पबुद्ध की कहानी

निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजा सुप्पबुद्ध के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

राजा सुप्पबुद्ध, देवदत्त के पिता और राजकुमार सिद्धार्थ के ससुर थे, जो बाद में गौतम बुद्ध बने। राजा सुप्पबुद्ध दो कारणों से बुद्ध के घोर विरोधी थे। पहला, क्योंकि राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में उन्होंने अपनी पत्नी यशोदरा, जो राजा सुप्पबुद्ध की पुत्री थीं, को छोड़कर संसार त्याग दिया था; और दूसरा, क्योंकि उनके पुत्र देवदत्त, जिन्हें गौतम बुद्ध ने संघ में शामिल किया था, बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानने लगे थे। एक दिन, यह जानकर कि बुद्ध भिक्षा मांगने आ रहे हैं, उन्होंने शराब पीकर रास्ता रोक दिया। जब बुद्ध और भिक्षु आए, तो सुप्पबुद्ध ने रास्ता देने से इनकार कर दिया और संदेश भेजा, "मैं समना गौतम को रास्ता नहीं दे सकता, जो मुझसे बहुत छोटे हैं।" रास्ता अवरुद्ध देखकर बुद्ध और भिक्षु वापस लौट गए। तब सुप्पबुद्ध ने किसी को गुप्त रूप से बुद्ध का पीछा करने और यह पता लगाने के लिए भेजा कि बुद्ध ने क्या कहा और उन्हें सूचना देने के लिए भेजा।

जब बुद्ध पीछे मुड़े, तो उन्होंने आनंद से कहा, "आनंद, क्योंकि राजा सुप्पबुद्ध ने मुझे रास्ता देने से इनकार कर दिया, इसलिए आज से सातवें दिन वे अपने महल के शिखर वाले हॉल की सीढ़ियों के नीचे धरती में समा जाएंगे।" राजा के जासूस ने ये शब्द सुने और राजा को सूचना दी। राजा ने कहा कि वे उन सीढ़ियों के पास नहीं जाएंगे और बुद्ध के वचन को गलत साबित करेंगे। इसके अलावा, उन्होंने अपने आदमियों को उन सीढ़ियों को हटाने का आदेश दिया, ताकि वे उनका उपयोग न कर सकें; उन्होंने कुछ आदमियों को भी तैनात किया, जिन्हें निर्देश दिया गया था कि यदि वे सीढ़ियों की ओर जाएं तो उन्हें रोक लें।

जब बुद्ध को राजा के अपने सैनिकों को दिए गए निर्देशों के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! चाहे राजा सुप्पबुद्ध किसी शिखर वाली मीनार में रहें, या आकाश में, या समुद्र में, या किसी गुफा में, मेरा वचन कभी गलत नहीं हो सकता; राजा सुप्पबुद्ध उसी स्थान पर पृथ्वी में समा जाएंगे, जिस स्थान का मैंने तुम्हें उल्लेख किया है।"

सातवें दिन, भिक्षा भोज के समय के आसपास, राजसी घोड़ा किसी अज्ञात कारण से भयभीत हो गया और ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने और बेतहाशा लात मारने लगा। अपने घोड़े की डरावनी आवाज़ें सुनकर राजा को लगा कि उसे अपने पालतू घोड़े को संभालना चाहिए और सभी सावधानियों को भूलकर वह दरवाजे की ओर चल पड़ा। दरवाजा अपने आप खुल गया, पहले से टूटी हुई सीढ़ियाँ भी वहीं थीं, उसके आदमियों ने उसे नीचे जाने से रोकना भूल गए थे। इसलिए राजा सीढ़ियों से नीचे उतर गया और जैसे ही उसने धरती पर कदम रखा, वह फट गई और उसे निगलकर सीधे अविची नरक में खींच ले गई। इस प्रकार, मूर्ख राजा चाहे कितनी भी कोशिश करे, वह अपने बुरे कर्मों के फल से बच नहीं सका।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 128)

यत्थथितं मक्कु नप्पासहेथा सो जगतिप्पदेसो
न विज्जति अंतलिक्खे न समुद्दमज्जे
न पब्बतानं विवरं पविस्सा न

यत्थ : कहीं; ṭहितं [ ṭहिता ]: आश्रय लेना; मक्कू : मृत्यु से; नप्पासहेथा : अभिभूत नहीं होंगे; तो : उस प्रकार का; जगतिप्पदेसो [ जगतिप्पदेसा ]: पृथ्वी पर स्थान; न विज्जति : देखा नहीं जाता; अंतलिक्खे : अंतरिक्ष में; ना : ऐसी कोई जगह नहीं है; समुद्दमज्जे न : न समुद्र के मध्य में; पब्बताणं [ पब्बताना ]: पहाड़ों का; विवरं [ विवर ]: दरार, दरार या खुलापन; पाविसा : प्रवेश करके; ना : कोई बच नहीं सकता

न तो आकाश में, न ही सागर के बीचोंबीच, और न ही किसी पर्वत की गुफा में, ऐसी कोई छिपने की जगह है जहाँ कोई मृत्यु से बच सके।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 128)

नप्पसहेथा मच्चु : वह स्थान जहाँ मृत्यु किसी व्यक्ति को पराजित नहीं कर सकती। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ मृत्यु किसी व्यक्ति को पराजित न कर सके। स्पष्ट शब्दों में कहें तो, मृत्यु से कोई बच नहीं सकता, चाहे कोई कहीं भी चला जाए।

अध्याय 10. दंडवग्ग: हिंसा (129-145)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 129

———————————————————————

(धम्मपद 128) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 129 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 130)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 129 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbe tasanti dandassa
sabbe bhayanti maccuno
attanam upamam katva

na haneyya na ghataye.

———————————————————————————

श्लोक 129 : सभी लाठी से डरते हैं, सभी मृत्यु से डरते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को मारना या जान से नहीं मारना चाहिए।

———————————————————————————

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (129) का उच्चारण किया, जिसमें छह भिक्षुओं (छब्बाग्गी) के एक समूह का जिक्र था, जिन्होंने सत्रह भिक्षुओं वाले दूसरे समूह के साथ झगड़ा किया था।

एक बार सत्रह भिक्षु जेतवन मठ परिसर में एक इमारत की सफाई कर रहे थे, ताकि उस पर कब्जा कर सकें। तभी छह भिक्षुओं का एक दूसरा समूह वहाँ आ पहुँचा। छह भिक्षुओं के समूह ने पहले समूह से कहा, "हम आपसे वरिष्ठ हैं, इसलिए बेहतर होगा कि आप हमें रास्ता दें; हम इस जगह पर कब्जा कर लेंगे।" सत्रह भिक्षुओं के समूह ने हार नहीं मानी, तो उन्होंने दूसरे समूह की पिटाई कर दी, जिससे वे दर्द से चिल्ला उठे। बुद्ध को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने उन्हें फटकारा और भिक्षुओं द्वारा दूसरों को पीटने पर रोक लगाने का नियम बनाया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 129: सभी लाठी से डरते हैं, सभी मृत्यु से डरते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को मारना या जान से मारना नहीं चाहिए।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, भिक्षुओं का एक समूह जेतवन मठ में एक इमारत की सफाई कर रहा था, ताकि उस पर कब्ज़ा कर सके। तभी वहाँ आए भिक्षुओं के एक अन्य समूह ने उनके काम में बाधा डाली। बाद में आए भिक्षुओं ने सफाई कर रहे पहले समूह से कहा, “हम आपसे बड़े और वरिष्ठ हैं, इसलिए बेहतर होगा कि आप हमारा सम्मान करें और हमें रास्ता दें; हम इस जगह पर कब्ज़ा करने जा रहे हैं और कोई भी हमें ऐसा करने से नहीं रोक सकता।”

हालांकि, भिक्षुओं के पहले समूह ने वरिष्ठ भिक्षुओं के अवांछित हस्तक्षेप का विरोध किया और उनकी मांगों के आगे नहीं झुके, जिसके परिणामस्वरूप वरिष्ठ भिक्षुओं ने उन्हें तब तक पीटा जब तक कि वे मार सहन नहीं कर सके और दर्द से चिल्ला उठे।

इस उपद्रव की खबर बुद्ध तक पहुंच गई थी, जिन्होंने भिक्षुओं के दोनों समूहों के बीच झगड़े के बारे में जानकर उन्हें फटकार लगाई और अनुशासनात्मक नियम लागू किया जिसके अनुसार भिक्षुओं को एक दूसरे को चोट पहुंचाने से बचना चाहिए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 129)

सब्बे दण्डास्सा तसन्ति सब्बे मैकुणो भयन्ति

अत्तनं उपमं कत्वा न हानिय न घटये

सबे : सभी; दण्डस्स : दंड से; तसन्ति : भयभीत; सबे : सभी; मच्चुनो [ मच्चुना ]: मृत्यु; भयन्ति : भय; अत्तानं [ अत्तान ]: स्वयं से; उपमं कत्वा : उदाहरण के रूप में लेते हुए; न हनेय्या : हत्या न करो; न घटये : किसी और से हत्या न करवाओ

हिंसा से सब कांपते हैं, मृत्यु से सब भयभीत होते हैं। दूसरों से अपनी तुलना करना उचित नहीं है; किसी को हानि न पहुंचाएं, किसी की हत्या न करें।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक)

मच्चुनो भयंति : मृत्यु से डरना। बौद्ध धर्म ने मृत्यु की घटना का काफी विस्तार से विश्लेषण किया है। पटिच्च-समुप्पाद पुनर्जन्म की प्रक्रिया का सूक्ष्म तकनीकी शब्दों में वर्णन करता है और मृत्यु के निम्नलिखित चार कारणों में से एक को बताता है:

1) कर्मिक ऊर्जा ( कम्मक्खया ) का क्षय। बौद्ध मान्यता है कि जीवनकाल में जो विचार, संकल्प या इच्छा अत्यंत प्रबल होती है, वह मृत्यु के समय प्रबल हो जाती है और अगले जन्म को प्रभावित करती है। इस अंतिम विचार प्रक्रिया में एक विशेष संभाव्यता निहित होती है। जब इस जनक कर्म की संभाव्य ऊर्जा समाप्त हो जाती है, तो उस भौतिक रूप की जैविक गतिविधियाँ, जिसमें जीवन शक्ति समाहित होती है, उस विशेष स्थान पर जीवनकाल समाप्त होने से पहले ही रुक जाती हैं। ऐसा अक्सर अपाय अवस्था में जन्म लेने वाले प्राणियों के मामले में होता है, लेकिन यह अन्य लोकों में भी हो सकता है।

2) आयुक्षय (जीवन काल ) की समाप्ति, जो विभिन्न लोकों में भिन्न-भिन्न होती है। वृद्धावस्था के कारण होने वाली प्राकृतिक मृत्यु को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। विभिन्न लोकों में आयु सीमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। चाहे कर्मिक शक्ति कितनी भी प्रबल क्यों न हो, अधिकतम आयु सीमा तक पहुँचने पर व्यक्ति को मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। यदि प्रजनन कर्मिक शक्ति अत्यंत प्रबल हो, तो कर्मिक ऊर्जा उसी लोक में या, देवताओं के मामले में, किसी उच्च लोक में पुन: प्रकट हो जाती है।
3) प्रजनन कर्मिक ऊर्जा की एक साथ समाप्ति और जीवन-अवधि ( उभयक्षय ) की समाप्ति।
4) जीवनकाल समाप्त होने से पहले ही प्रबल कर्मों द्वारा प्रजनन कर्मों के प्रवाह में अप्रत्याशित अवरोध उत्पन्न होना ( उपच्छेदक कर्म )। व्यक्तियों और बच्चों की असमय मृत्यु इसी कारण होती है। अधिक शक्तिशाली विरोधी बल उड़ते हुए तीर का मार्ग रोककर उसे जमीन पर गिरा सकता है। अतः अतीत का एक अत्यंत शक्तिशाली कर्म बल अंतिम विचार प्रक्रिया की संभाव्य ऊर्जा को नष्ट कर सकता है और इस प्रकार प्राणी के मानसिक जीवन को नष्ट कर सकता है। उदाहरण के लिए, पूज्य देवदत्त की मृत्यु उनके जीवनकाल में किए गए एक विनाशकारी कर्म के कारण हुई थी।

पहले तीन कारणों को सामूहिक रूप से काल - मरण कहा जाता है , और चौथे कारण को असमय मृत्यु कहा जाता है । उदाहरण के लिए, एक तेल का दीपक निम्नलिखित चार कारणों में से किसी एक से बुझ सकता है — जैसे कि बाती का खत्म होना, तेल का खत्म होना, बाती और तेल दोनों का एक साथ खत्म होना, या हवा के झोंके जैसा कोई बाहरी कारण। इसी प्रकार, मृत्यु भी उपरोक्त चार कारणों में से किसी एक से हो सकती है।

वास्तव में, बहुत कम लोग मरने के लिए तैयार होते हैं। वे और अधिक समय तक जीना चाहते हैं, एक ऐसा भ्रम जिसे समकालीन शोध साकार होने की अधिक संभावना दे रहा है। इस जीवन को और अधिक जीने की लालसा कुछ हद तक कम हो जाती है, यदि कोई यह मानता है, जैसा कि बहुत से लोग मानते हैं, कि यह जीवन श्रृंखला का केवल एक हिस्सा है। जो लोग जीवन की लालसा रखते हैं, उनके लिए और भी बहुत से जीवन उपलब्ध हैं और इस जीवन में शुरू किया गया कार्य जल्दबाजी में समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि इसे बाद के जन्मों में फिर से शुरू किया जा सकता है। मरने की वास्तविक पीड़ाएँ निश्चित रूप से भिन्न-भिन्न होती हैं और सभी लोग शारीरिक पीड़ाओं से नहीं गुजरते। लेकिन एक अलग प्रकार की पीड़ा भी होती है; वह भयानक तनाव जो उस व्यक्ति के मन में उत्पन्न होता है जिसका शरीर उसकी इच्छा के विरुद्ध मर रहा होता है। यह वास्तव में इस बात का अंतिम प्रमाण है कि शरीर मेरा नहीं है, क्योंकि यदि होता, तो मैं इसके साथ जो चाहूँ कर सकता था; लेकिन मृत्यु के समय, यद्यपि मैं निरंतर जीवन की इच्छा रखता हूँ, यह बस चला जाता है और मर जाता है - और इसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता। यदि मैं बिना तैयारी के मृत्यु की ओर बढ़ता हूँ, तो शरीर के मरने के समय, भय और असुरक्षा की भावना का अनुभव होगा, जो शरीर को स्वयं के रूप में गलत तरीके से पहचानने का परिणाम होगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 130

---

(धम्मपद 129) <<<< पिछला || धम्मपद 130 || अगला >>>> (धम्मपद 131 और 132)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 130 - चब्बग्गिया भिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbe tasanti dandassa

सब्बेसम जीवतम पियाम
attanam upamam katva
na haneyya na ghataye.

---

श्लोक 130 : सभी हिंसा से भयभीत हैं, सभी अपने जीवन को प्रिय मानते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को भी दूसरों को पीटना या मारना नहीं चाहिए।

---

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (130) कहा।
पहली बार हाथापाई होने के बाद, भिक्षुओं के वही दो समूह उसी भवन को लेकर फिर झगड़ पड़े। चूंकि दूसरों को पीटने पर रोक का नियम पहले ही बना हुआ था, इसलिए छह भिक्षुओं के समूह ने दूसरे समूह को हाथ उठाकर धमकाया। सत्रह भिक्षुओं का समूह, जो छब्बाग्गियों से कनिष्ठ था, भयभीत होकर चिल्ला उठा। यह सुनकर बुद्ध ने हाथ उठाकर धमकी देने पर रोक लगाने का नियम बना दिया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 130 : सभी हिंसा से भयभीत हैं, सभी अपने जीवन को प्रिय मानते हैं। स्वयं को दूसरे की जगह पर रखकर सोचना चाहिए, किसी को भी दूसरों को पीटना या मारना नहीं चाहिए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। यह पिछले श्लोक से संबंधित है।
जेतवन मठ में हुई घटना को लेकर आपस में मारपीट करने के बाद, भिक्षुओं के वही दो समूह उसी भवन को लेकर फिर से झगड़ पड़े। चूंकि दूसरों को शारीरिक रूप से चोट पहुँचाने के संबंध में नियम बुद्ध द्वारा पहले ही निर्धारित किए जा चुके थे, इसलिए दोनों समूहों ने इस विशेष नियम का कड़ाई से पालन किया।
हालांकि, इस बार दोनों समूहों में से एक ने दूसरे समूह को धमकी भरे इशारे किए, जिससे दूसरा समूह डर के मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओं के इस धमकी भरे रवैये के बारे में सुनकर बुद्ध ने एक-दूसरे को धमकी भरे इशारे करने से रोकने का नियम लागू किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 130)
सब्बे दण्डस्सा तसन्ति सब्बेसं जीवितं पियं
अत्तनं उपमं कत्वा न हानिय न घटये
सब्बे : सभी; दण्डस्स : दंड से; तसन्ति : भयभीत; सब्बेसं [ सब्बेसा ]: सभी को; जीवित [ जीवित ]: जीवन; पिया [ पिया ]: प्रिय; अत्तान [ अत्तान ]: स्वयं को; उपमं कत्वा : उदाहरण के रूप में लेते हुए; न हनेय्या : हत्या न करो; न घटये : किसी और से हत्या न करवाओ
सभी को चोट लगने या जान को किसी भी तरह के खतरे का डर सताता है। जीवन सभी के लिए अनमोल है। यह देखकर कि दूसरे भी ऐसा ही महसूस करते हैं, और दूसरों को अपने समान समझकर, किसी को नुकसान पहुंचाने या जान से मारने से बचना चाहिए।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 130)
न हनेय्या , न घटये : विनाश न करो; हत्या न करो। यहाँ जिस गुण का पोषण किया जा रहा है, वह करुणा है। असहमति और विवाद करुणा के अभाव के कारण उत्पन्न होते हैं। सार्वभौमिक करुणा तभी उत्पन्न होती है जब सच्ची वास्तविकता का ज्ञान हो। करुणा स्वयं को अच्छे कर्मों के माध्यम से प्रकट करती है। करुणा केवल करुणामय विचार करना नहीं है। इसे करुणामय कर्मों के माध्यम से प्रकट होना चाहिए। करुणा संसार में अन्य प्राणियों के कष्टों पर ध्यान देना है। यह पीड़ित प्राणियों, चाहे मनुष्य हों या अन्य, की दुर्दशा के प्रति कठोर उदासीनता पर विजय प्राप्त करती है। इसी प्रकार, यह व्यक्ति के जीवन में जहाँ संभव हो, सहायता देने और संकट में पड़े लोगों की मदद करने की तत्परता के रूप में परिलक्षित होनी चाहिए। दूसरों के दुखों को समझने से स्वार्थ कम होता है। यह भगवान बुद्ध द्वारा क्रूरता के लिए दी गई औषधि है, क्योंकि जब कोई व्यक्ति दूसरों को इतना कष्ट सहते हुए देख चुका हो, तो वह कैसे हानि पहुँचा सकता है? इसके दो शत्रु भी हैं: 'निकट' शत्रु मात्र दुःख है, जबकि इसका 'दूर' शत्रु क्रूरता है।

मैत्री : करुणा-प्रेम-दया। मैत्री चार उदात्त अवस्थाओं में से पहली है। इसका अर्थ है वह अवस्था जो हृदय को कोमल बनाती है, या एक सच्चे मित्र की अवस्था। इसे सभी जीवित प्राणियों के कल्याण और सच्ची खुशी की हार्दिक कामना के रूप में परिभाषित किया गया है। इसे मित्रतापूर्ण स्वभाव के रूप में भी समझाया जाता है, क्योंकि एक सच्चा मित्र अपने मित्र के कल्याण की हार्दिक कामना करता है।

"जिस प्रकार एक माँ अपने इकलौते बच्चे की रक्षा अपनी जान जोखिम में डालकर भी करती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति असीम प्रेम और दया भाव रखना चाहिए," बुद्ध का उपदेश है। यहाँ माँ के अपने बच्चे के प्रति भावुक प्रेम की बात नहीं की जा रही है, बल्कि उसके बच्चे के वास्तविक कल्याण की सच्ची कामना की बात की जा रही है। दया भाव न तो शारीरिक प्रेम है और न ही व्यक्तिगत स्नेह, क्योंकि दोनों से ही दुःख उत्पन्न होता है। दया भाव केवल पड़ोसियों के प्रति सद्भावना नहीं है, क्योंकि यह पड़ोसियों और अन्य लोगों में कोई भेद नहीं करती। दया भाव केवल सार्वभौमिक भाईचारा नहीं है, क्योंकि इसमें सभी जीवित प्राणी समाहित हैं, जिनमें पशु, हमारे वे छोटे भाई-बहन भी शामिल हैं जिन्हें अधिक करुणा की आवश्यकता है क्योंकि वे असहाय हैं। दया भाव धार्मिक भाईचारा भी नहीं है। तथाकथित धार्मिक भाईचारे की दुखद सीमाओं के कारण मनुष्यों के सिर बिना किसी संकोच के काट दिए गए हैं, ईमानदार और मुखर पुरुषों और महिलाओं को जिंदा जला दिया गया है; अनेक अत्याचार किए गए हैं जिनका वर्णन करना असंभव है; क्रूर युद्ध लड़े गए हैं जिन्होंने विश्व इतिहास के पन्नों को कलंकित कर दिया है। इस तथाकथित प्रबुद्ध बीसवीं सदी में भी, एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्मों के अनुयायियों से घृणा करते हैं, उन पर निर्मम अत्याचार करते हैं और यहाँ तक कि उनकी हत्या भी कर देते हैं, केवल इसलिए कि वे उन्हें अपने समान सोचने के लिए बाध्य नहीं कर सकते या क्योंकि उनका नाम अलग है। यदि धार्मिक विचारों के कारण विभिन्न धर्मों के लोग भाई-बहनों की तरह एक मंच पर नहीं मिल सकते, तो निश्चित रूप से करुणामय विश्व शिक्षकों का मिशन दयनीय रूप से विफल हो गया है। मधुर मैत्री इन सभी संकीर्ण भाईचारे से परे है। इसका दायरा असीमित है। इसमें कोई बाधा नहीं है। यह भेदभाव नहीं करती। मैत्री व्यक्ति को संपूर्ण विश्व को अपनी मातृभूमि और सभी को सह-मानव मानने में सक्षम बनाती है। जिस प्रकार सूर्य बिना किसी भेदभाव के सभी पर अपनी किरणें बिखेरता है, उसी प्रकार उदात्त मैत्री अपने मधुर आशीर्वाद को सुखद और अप्रिय, धनी और गरीब, ऊँच-नीच, दुष्ट और सदाचारी, पुरुष और स्त्री, और मनुष्य और पशु सभी पर समान रूप से बरसाती है।

बुद्ध की असीम करुणा ऐसी थी कि वे अपने प्रियजनों के साथ-साथ अपने शत्रुओं और यहाँ तक कि उन्हें हानि पहुँचाने और जान से मारने का प्रयास करने वालों के कल्याण और सुख के लिए भी कार्य करते थे। बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल, अपने शत्रु देवदत्त, अपने सेवक आनंद, अपने प्रशंसकों और अपने विरोधियों के प्रति समान रूप से करुणा दिखाई । यह करुणा स्वयं के प्रति, मित्र, शत्रु और तटस्थ सभी के प्रति समान रूप से दिखानी चाहिए। मान लीजिए कि एक डाकू जंगल से गुजर रहे एक व्यक्ति के पास आता है, जिसके साथ उसका एक घनिष्ठ मित्र, एक तटस्थ व्यक्ति और एक शत्रु है, और वह उनमें से किसी एक को बलि के रूप में चढ़ाने की मांग करता है। यदि यात्री यह कहे कि उसे स्वयं मार दिया जाए, तो उसकी स्वयं के प्रति कोई करुणा नहीं है। यदि वह यह कहे कि अन्य तीन व्यक्तियों में से किसी को मार दिया जाए, तो उसकी उनके प्रति कोई करुणा नहीं है ।

यही सच्ची करुणा का गुण है । इस असीम प्रेम का अभ्यास करते समय स्वयं को उपेक्षित नहीं करना चाहिए। इस सूक्ष्म बिंदु को गलत नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आत्म-त्याग एक मधुर गुण है और अहंकारहीनता उससे भी उच्च गुण है। इस करुणा की पराकाष्ठा सभी प्राणियों के साथ स्वयं को एकाग्र करना ( सब्बत्तता ) है, जिसमें स्वयं और दूसरों के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। तथाकथित 'मैं' समग्रता में विलीन हो जाता है। अलगाववाद समाप्त हो जाता है। एकत्व का अहसास होता है।

पाली भाषा के इस सुंदर शब्द 'मेट्टा' का अंग्रेजी में कोई उपयुक्त पर्याय नहीं है । सद्भावना, प्रेम, परोपकार और सार्वभौमिक प्रेम को इसके सर्वोत्तम अर्थ के रूप में सुझाया जाता है। 'मेट्टा' का विलोम क्रोध, दुर्भावना, घृणा या अरुचि है। क्रोध या प्रतिशोध की भावना के साथ 'मेट्टा' का अस्तित्व नहीं हो सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 131,132

---

(धम्मपद 130) <<<< पिछला ll धम्मपद 131 और 132 ll अगला >>>> (धम्मपद 133 और 134)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 131 और 132 - संबहुला कुमारक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सुखाकमणि भूटानी
yo dandena vihimsati
attano sukhamesano
pecca so na labhate sukham.

सुखाकमणि भूटानी
yo dandena na himsati
attano sukhamesano
pecca so labbate sukhatm.

———————————————————————

श्लोक 131 : जो व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार करके अपनी खुशी की तलाश करता है, जबकि दूसरे भी सुख की इच्छा रखते हैं, उसे अगले जन्म में सुख नहीं मिलेगा।

———————————————————————

श्लोक 132 : जो दूसरों पर अत्याचार न करके, जो सुख की इच्छा रखते हैं, अपनी खुशी की तलाश करता है, उसे अपने अगले जन्म में सुख मिलेगा।

———————————————————————

कई युवाओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कई युवकों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (131) और (132) का उच्चारण किया।
एक बार बुद्ध श्रावस्ती में भिक्षा मांग रहे थे, तभी उन्होंने कुछ युवकों को लाठियों से एक सांप को पीटते हुए देखा। पूछने पर युवकों ने उत्तर दिया कि वे सांप को इसलिए पीट रहे थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं सांप उन्हें काट न ले। बुद्ध ने उनसे कहा, "यदि तुम स्वयं को हानि नहीं पहुंचाना चाहते, तो दूसरों को भी हानि न पहुंचाओ; यदि तुम दूसरों को हानि पहुंचाओगे, तो तुम्हें परलोक में सुख नहीं मिलेगा।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 131 : जो व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार करके अपनी खुशी की तलाश करता है, जबकि दूसरे भी सुख की इच्छा रखते हैं, उसे अगले जन्म में सुख नहीं मिलेगा।

———————————————————————

श्लोक 132 : जो दूसरों पर अत्याचार न करके, जो सुख की इच्छा रखते हैं, अपनी खुशी की तलाश करता है, उसे अपने अगले जन्म में सुख मिलेगा।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में सभी युवकों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त कर लिया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कई युवाओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई युवकों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार बुद्ध सावत्थी में भिक्षा मांगने निकले थे, तभी उन्होंने कुछ युवकों को लाठियों से एक सांप को पीटते हुए देखा। पूछने पर युवकों ने उत्तर दिया कि वे सांप को इसलिए पीट रहे थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं सांप उन्हें काट न ले। बुद्ध ने उनसे कहा, “यदि तुम स्वयं को हानि नहीं पहुंचाना चाहते, तो दूसरों को भी हानि न पहुंचाओ; यदि तुम दूसरों को हानि पहुंचाओगे, तो तुम्हें परलोक में सुख नहीं मिलेगा।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 131)
यो अतनो सुखं एसाणो सुख कामानि भूतानि
दण्डेन विहिंसति सो पेक्का सुखं न लभते
यदि कोई व्यक्ति सुख की तलाश में हो , तो उसे दंड से पीड़ा न मिले ।

जो लोग खुश रहना पसंद करते हैं और सुख की तलाश में रहते हैं, वे अपनी खुशी के लिए हिंसा के विभिन्न कृत्यों से दूसरों को चोट पहुंचाते हैं। ये पीड़ित भी उतना ही खुश रहना चाहते हैं जितना कि उन्हें पीड़ा पहुंचाने वाले। पीड़ा पहुंचाने वालों को अगले जन्म में भी सुख नहीं मिलता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 132)

यो अतनो सुखं एसाणो सुख कामानि भूतानि

दण्डेन न हिंसति , सो पेक्का सुखं लभते

यो : यदि कोई; अत्तनो [ अत्तना ]: अपना; सुखं एस्सानो [ एस्साना ]: सुख चाहने वाला; सुख कामानी : समान रूप से सुख चाहने वाला; भूतानि : प्राणी; दंडेन : छड़ियों से (विभिन्न प्रकार के कष्टों के साथ); न हिंसति : चोट नहीं पहुँचाता, यातना नहीं देता या पीड़ा नहीं देता; सो : वह व्यक्ति; पेच्च : परलोक में; सुखं [ सुख ]: सुख; लभते : प्राप्त करता है

जो लोग स्वयं सुख चाहते हैं और अपने लिए आनंद की तलाश में रहते हैं, यदि वे दूसरों को चोट नहीं पहुंचाते, उन्हें यातना नहीं देते या उन्हें पीड़ा नहीं देते, तो उन्हें अगले जन्म में भी सुख प्राप्त होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 131-132)

अनाथपिंडिका और जेतवन : धम्मपद के अधिकांश श्लोक बुद्ध ने जेतवनाराम में निवास करते हुए कहे थे, जिसका निर्माण अनाथपिंडिका ने करवाया था। अतः ये दोनों स्थान बौद्ध धर्म, विशेषकर धम्मपद के अनुयायियों के लिए महत्वपूर्ण हैं। अनाथपिंडिका, जिसका अर्थ है असहायों का भोजन कराने वाला, का मूल नाम सुदत्त था । अपनी अतुलनीय उदारता के कारण वे बाद में अपने नए नाम से जाने गए। उनका जन्मस्थान श्रावस्ती था। एक दिन वे अपने बहनोई से कुछ काम से राजगृह गए। बहनोई ने हमेशा की तरह उनका स्वागत नहीं किया, लेकिन सुदत्त ने उन्हें बगीचे में भोज की तैयारी करते हुए पाया। पूछताछ करने पर, उन्हें असीम प्रसन्नता हुई कि ये व्यवस्थाएँ अगले दिन बुद्ध के स्वागत के लिए की जा रही थीं। बुद्ध शब्द सुनते ही उनकी रुचि जागृत हुई और वे बुद्ध के दर्शन के लिए तरसने लगे। उन्हें बताया गया था कि बुद्ध पास के सीतावन वन में निवास कर रहे हैं और वे उन्हें अगली सुबह देख सकेंगे, इसलिए वे सो गए। बुद्ध से मिलने की उनकी तीव्र इच्छा इतनी प्रबल थी कि उन्हें रात भर नींद नहीं आई और वे सुबह असामान्य समय पर सीतावन के लिए निकल पड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध के प्रति उनकी अटूट आस्था के कारण उनके शरीर से प्रकाश निकला। वे एक कब्रिस्तान से होते हुए सीतावन की ओर चल पड़े। वहाँ घोर अंधेरा था और उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। उन्होंने वापस लौटने का विचार किया।

तब स्वयं अदृश्य यक्ष शिवक ने उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा:

सौ हाथी और घोड़े भी।

हाँ, और खच्चरों द्वारा खींचे गए सौ रथ।

एक लाख युवतियाँ, उनके कानों में

रत्नजड़ित अंगूठियां:— सभी की कीमत नहीं होती।

एक कदम का सोलहवाँ अंश।

हे नागरिक, आगे बढ़ो!

तुम्हारे लिए पीछे हटने से आगे बढ़ना बेहतर है।

उसका भय दूर हो गया और उसकी जगह बुद्ध में आस्था जागृत हो गई। प्रकाश फिर से प्रकट हुआ और वह साहसपूर्वक आगे बढ़ा। फिर भी, यह सब दूसरी बार और फिर तीसरी बार हुआ। अंततः वह सीतावन पहुँचा जहाँ बुद्ध खुले में उसके आने की प्रतीक्षा में चहलकदमी कर रहे थे। बुद्ध ने उसे उसके पारिवारिक नाम सुदत्त से पुकारा और उसे अपने पास बुलाया। अनाथपिंडिका बुद्ध द्वारा इस प्रकार संबोधित किए जाने से प्रसन्न हुआ और आदरपूर्वक पूछा कि क्या बुद्ध सुखपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। बुद्ध ने उत्तर दिया:

वह हर समय खुशी से आराम करता है।

वह अरहत जिसमें सभी अग्नियां बुझ जाती हैं।

जो कामुक इच्छाओं से चिपके नहीं रहते,

उसके पूरे शरीर को ठंडा कर दिया, सारे कीटाणुओं को दूर कर दिया।

जो नया जीवन लाते हैं, सभी बाधाओं को दूर करते हैं।

हृदय के दर्द और तड़प को शांत कर दिया।

वह शांत और निर्मल होकर सुखपूर्वक विश्राम कर रहा है।

क्योंकि उसने अपने मन में शांति प्राप्त कर ली है।

धम्म का उपदेश सुनकर, वह सोतापन्न (नदी-यात्री) बन गया और उसने बुद्ध को वर्षा ऋतु में सावत्थी में रहने का निमंत्रण दिया। बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और कहा कि बुद्धों को एकांत में आनंद आता है। सावत्थी लौटकर, अनाथपिंडिका ने राजकुमार जेत का उद्यान खरीदा, जिसकी कीमत कथा के अनुसार, पूरे स्थल को सोने के सिक्कों से ढककर तय की गई थी, और वहाँ उसने भारी लागत से

प्रसिद्ध जेतवन मठ का निर्माण करवाया। बुद्ध ने यहाँ उन्नीस वर्षा ऋतुएँ बिताईं। यह मठ, जहाँ बुद्ध ने अपने जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया, वह स्थान था जहाँ उन्होंने अपने अनेक उपदेश दिए। कई प्रवचन, जो विशेष रूप से गृहस्थों के लिए रुचिकर थे, अनाथपिंडिका को दिए गए, यद्यपि उसने बुद्ध से कोई प्रश्न नहीं पूछा, कहीं ऐसा न हो कि वह उन्हें ऊबा दे।

एक बार, बुद्ध ने उदारता पर प्रवचन देते हुए अनाथपिंडिका को याद दिलाया कि बुद्ध के साथ संघ को दान देना अत्यंत पुण्यकारी है; परन्तु ऐसे दान से भी अधिक पुण्यकारी है संघ के उपयोग हेतु मठ का निर्माण करना; ऐसे मठों से भी अधिक पुण्यकारी है बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना; बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेने से भी अधिक पुण्यकारी है पंच नियमों का पालन करना; ऐसे पालन से भी अधिक पुण्यकारी है क्षण भर के लिए प्रेम-कृपा ( मेट्टा ) पर ध्यान करना; और सबसे अधिक पुण्यकारी है वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति ( पसना ) के प्रति अंतर्दृष्टि का विकास करना।

एक अन्य अवसर पर जब बुद्ध अनाथपिंडिक के घर गए, तो उन्होंने घर के अंदर एक असामान्य शोर सुना और पूछा कि क्या हो रहा है। अनाथपिंडिक ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, यह मेरी बहू सुजाता है, जो हमारे साथ रहती है। वह धनी है और एक समृद्ध परिवार से यहाँ आई है। वह न तो अपनी सास का आदर करती है, न अपने ससुर का, न अपने पति का; न ही वह बुद्ध का आदर, सम्मान, श्रद्धा या आदर करती है।"

बुद्ध ने उन्हें अपने पास बुलाया और आधुनिक समाज में भी विद्यमान सात प्रकार की पत्नियों पर एक ज्ञानवर्धक प्रवचन दिया, जैसा कि प्राचीन काल में था।

जो दुष्ट मन वाली, द्वेषपूर्ण, निर्दयी, पति की उपेक्षा करने वाली, वेश्यावृत्ति करने वाली और सताने पर तुली हुई हो, ऐसी स्त्री को कष्टदायी पत्नी कहा जाता है। ( वधकभरिया )

जो स्त्री अपने पति की थोड़ी-बहुत कमाई को भी, चाहे वह शिल्प, व्यापार या खेती से ही क्यों न हो, लुटाने की इच्छा रखती है, वह चोरनी कहलाती है। ( कोराभरिया )

जो किसी काम में रुचि न रखती हो, आलसी हो, पेटू हो, कठोर हो, निर्दयी हो, अपशब्दों की शौकीन हो, और कर्मठों पर प्रभुत्व जमाए रहती हो, ऐसी स्त्री को अय्याभरिया कहा जाता है ।

जो सदा दयालु और करुणामयी हो, अपने पति की माँ की तरह रक्षा करे, अपने बेटे की रक्षा करे, अपने पति की संचित संपत्ति की रक्षा करे — ऐसी स्त्री को मातृवत पत्नी कहा जाता है। ( मातुभारिया )

जो स्त्री अपने पति के प्रति उसी प्रकार आदर रखती है जैसे छोटी बहन अपने बड़े भाई के प्रति, जो विनम्र हो और अपने पति की इच्छाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करती हो, उसे भगिनीभरिया कहा जाता है ।

जो स्त्री अपने पति को देखकर उसी प्रकार प्रसन्न होती है जैसे कोई मित्र अपने लंबे समय बाद आए साथी को देखकर प्रसन्न होता है, वह कुलीन, गुणी और पवित्र होती है — ऐसी स्त्री को सखीभारिया कहा जाता है ।

जो स्त्री हानि और दंड की धमकी मिलने पर क्रोधित न होकर शांत रहती है, अपने पति की सभी बातों को निर्दयी हृदय से सहन करती है, घृणा से मुक्त रहती है और अपने पति की इच्छाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करती है, उसे दासी (दासिभरिया ) कहा जाता है।

बुद्ध ने सात प्रकार की पत्नियों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा कि उनमें से कष्टदायक पत्नी ( वधकभरिया ), चोर पत्नी ( कोरभरिया ) और अभिमानी पत्नी ( अय्यभरिया ) बुरी और अवांछनीय हैं, जबकि मातृत्वपूर्ण पत्नी ( मातुभरिया ), बहन के समान पत्नी ( भागिनीभरिया ), मित्रवत पत्नी (सखीभरिया) और दासीभरिया अच्छी और प्रशंसनीय हैं।

"ये सुजाताएं , एक पुरुष की सात प्रकार की पत्नियां हो सकती हैं: और तुम इनमें से कौन सी हो?" "हे प्रभु, आज से बुद्ध मुझे दासिभरिया ( दासिभरिया ) समझें। "

अनाथपिंडिका प्रतिदिन बुद्ध के दर्शन करने जाते थे और यह देखकर कि बुद्ध की अनुपस्थिति में लोग निराश हो जाते हैं, उन्होंने पूज्य आनंद से यह जानना चाहा कि क्या बुद्ध के उपदेश भ्रमण पर जाने के दौरान उनके श्रद्धालु उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं। यह बात बुद्ध को बताई गई, जिसके फलस्वरूप मठ के प्रवेश द्वार पर आनंद-बोधि वृक्ष लगाया गया, जो आज भी खड़ा है।

सुखम् : सुख। गृहस्थ द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले चार प्रकार के सुखों पर टिप्पणी करते हुए, बुद्ध ने घोषणा की: "इंद्रियों के सुखों का आनंद लेने वाले गृहस्थ को समय-समय पर और अवसर मिलने पर ये चार प्रकार के सुख प्राप्त हो सकते हैं: स्वामित्व का सुख ( अत्थिसुख ), आनंद का सुख ( भोगसुख ), ऋणमुक्ति का सुख ( अननासुख ), और निर्दोषता का सुख ( अनवज्जसुख )।"

स्वामित्व का सुख क्या है? इसमें एक कुलवासी के पास वह धन होता है जो उसने अथक परिश्रम से अर्जित किया है, बलपूर्वक इकट्ठा किया है, पसीने से कमाया है, और जो वैध और विधिवत रूप से प्राप्त किया गया है। यह सोचकर कि यह धन मेरा है, अथक परिश्रम से अर्जित किया गया है, और विधिवत रूप से प्राप्त किया गया है, उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसे ही स्वामित्व का सुख कहते हैं।

"ऋणमुक्ति का सुख क्या है?" इसमें कुल के किसी सदस्य पर किसी का भी छोटा-बड़ा कोई ऋण नहीं होता। यह सोचकर कि मुझ पर किसी का भी छोटा-बड़ा कोई ऋण नहीं है, मुझे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसी को ऋणमुक्ति का सुख कहते हैं।

“निर्दोषता का सुख क्या है? इसमें आर्य शिष्य को निष्कलंक देह, निष्कलंक वाणी और निष्कलंक मन की क्रिया का आशीर्वाद प्राप्त होता है। जब वह सोचता है, ‘मैं निष्कलंक देह, वाणी और मन की क्रिया से धन्य हूँ’, तो उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसी को निर्दोशता का सुख कहते हैं।”

कर्जमुक्ति का सुख प्राप्त करने वाला व्यक्ति
तब शायद उन्हें वास्तव में कुछ पाने के आनंद की याद आ सके।
जब वह धन के सुख का आनंद लेता है, तब वह देखता है
यह बुद्धिमत्ता के कारण ही है। जब वह देखता है, तब वह जान जाता है।
इस प्रकार वह वास्तव में दोनों ही मामलों में बुद्धिमान है।
लेकिन इनमें उस आनंद का सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं है।
(जो किसी निर्दोष व्यक्ति को प्राप्त होता है)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 133,134

---

(धम्मपद 131 और 132) <<<< पिछला || धम्मपद 133 और 134 || अगला >>>> (धम्मपद 135)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 133 और 134 - कोंडाधनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Mavoca pharusam kanci
vutta pativadeyyu tam
dukkha hi sarambkakatha(1)
patidanda phuseyyu tam.

Sace neresi attanam
kamso upahato yatha
esa pattosi nibbanam
sarambho te na vijjati.

---

श्लोक 133 : किसी से कठोर शब्द न बोलो; जिन लोगों से कठोर शब्द बोले जाते हैं वे पलटवार करते हैं। द्वेषपूर्ण बातें वास्तव में दुःख का कारण होती हैं और तुम्हें उसका फल भुगतना पड़ेगा।

---

श्लोक 134 : यदि तुम अपने आप को टूटे हुए घंटे की तरह शांत और स्थिर रख सको, जो अब गूंजता नहीं है, तो तुम निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर लोगे, तुममें कोई कठोरता नहीं होगी।

---

1. सरम्बककथा: द्वेषपूर्ण बातें। टीका के अनुसार इसका अर्थ है दूसरों को नीचा दिखाने वाली बातें।

---

थेरा कोंडाधना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा कोंडाधना के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (133) और (134) का उच्चारण किया।

कोंडाधना के संघ में प्रवेश के दिन से ही एक स्त्री की छवि उनका पीछा करती रही। यह छवि दूसरों को दिखाई देती थी, लेकिन कोंडाधना स्वयं इसे नहीं देख पाते थे और इसलिए इसके बारे में उन्हें पता भी नहीं था।

जब वह भिक्षु भिक्षा मांगने निकलते थे, तो लोग उन्हें दो चम्मच देते हुए कहते थे, "यह आपके लिए है, पूज्यवर, और यह आपकी स्त्री साथी के लिए है।" भिक्षु को एक स्त्री के साथ घूमते देख, लोग कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के पास गए और भिक्षु और स्त्री के बारे में उन्हें बताया। उन्होंने राजा से कहा, "हे महाराज! इस भिक्षु को, जो नैतिक गुणों से रहित है, अपने राज्य से निकाल दीजिए।" तब राजा उस मठ में गए जहाँ वह भिक्षु ठहरे हुए थे और अपने सैनिकों से उसे घेर लिया।

कुछ आवाज़ें और शोर सुनकर भिक्षु बाहर आए और द्वार पर खड़े हो गए। मूर्ति भी भिक्षु से कुछ ही दूरी पर थी। राजा के आने का पता चलने पर भिक्षु उनके इंतज़ार में कमरे में चले गए। जब राजा कमरे में आए, तो मूर्ति वहाँ नहीं थी। राजा ने भिक्षु से पूछा कि वह स्त्री कहाँ है, तो उन्होंने कहा कि उन्हें कोई स्त्री नहीं दिखी। राजा यह सुनिश्चित करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भिक्षु को कुछ देर के लिए कमरे से बाहर जाने को कहा। भिक्षु कमरे से बाहर चले गए, लेकिन जब राजा ने बाहर देखा, तो उन्हें वह स्त्री फिर से भिक्षु के पास दिखाई दी। लेकिन जब भिक्षु कमरे में वापस आए, तो वह स्त्री वहाँ नहीं थी। राजा ने निष्कर्ष निकाला कि वह स्त्री वास्तविक नहीं थी, इसलिए भिक्षु निर्दोष होंगे। अतः उन्होंने भिक्षु को प्रतिदिन महल में भिक्षा मांगने के लिए आमंत्रित किया।

जब दूसरे भिक्षुओं ने यह सुना, तो वे हैरान रह गए और उस भिक्षु से बोले, "हे निर्लज्ज भिक्षु! अब जब राजा ने तुम्हें अपने राज्य से निकालने के बजाय भिक्षा के लिए आमंत्रित किया है, तो तुम्हारा तो नाश होना तय है!" भिक्षु ने जवाब दिया, "केवल तुम ही निर्लज्ज हो; केवल तुम ही नाश होगे क्योंकि तुम ही स्त्रियों के साथ घूमते हो!"

तब भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई। बुद्ध ने कोदादधना को बुलवाया और उससे कहा, "मेरे पुत्र, क्या तुमने उन भिक्षुओं के साथ कोई स्त्री देखी है जिनसे तुमने इस प्रकार बात की है? तुमने उनके साथ कोई स्त्री नहीं देखी, जबकि उन्होंने तुम्हारे साथ एक स्त्री देखी है। मुझे लगता है कि तुम्हें यह अहसास नहीं है कि तुम्हें पिछले जन्म में किए गए किसी बुरे कर्म के कारण शाप मिला है। अब सुनो, मैं तुम्हें समझाता हूँ कि तुम्हें एक स्त्री की छवि क्यों दिखाई देती है।"

"अपने पिछले जन्म में तुम एक देव (देवदूत) थे। उस समय दो भिक्षु थे जो एक-दूसरे से बहुत स्नेह रखते थे। लेकिन तुमने स्त्री का रूप धारण करके और उनमें से एक भिक्षु का पीछा करके उन दोनों के बीच कलह पैदा करने की कोशिश की। उस बुरे कर्म के कारण अब एक स्त्री की छवि तुम्हारा पीछा कर रही है। इसलिए, मेरे पुत्र, आगे से किसी भी भिक्षु से वाद-विवाद मत करना; टूटे हुए किनारे वाले घंटे की तरह मौन रहना, और तुम्हें निर्वाण प्राप्त हो जाएगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 133 : किसी से कठोर शब्द न बोलो; जिन लोगों से कठोर शब्द बोले जाते हैं वे पलटवार करते हैं। द्वेषपूर्ण बातें वास्तव में दुःख का कारण होती हैं और तुम्हें उसका फल भुगतना पड़ेगा।

---

श्लोक 134 : यदि तुम अपने आप को टूटे हुए घंटे की तरह शांत और स्थिर रख सको, जो अब गूंजता नहीं है, तो तुम निश्चित रूप से निर्वाण प्राप्त कर लोगे, तुममें कोई कठोरता नहीं होगी।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय कुण्डधान की कहानी

जीतावन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य कुण्डधान के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

जिस दिन कुण्डधान ने भिक्षु दीक्षा ली, उसी दिन से एक स्त्री उनके साथ रहने लगी। पूज्य कुण्डधान ने स्वयं उसे कभी नहीं देखा, परन्तु सब लोग उसे देखते थे। वास्तव में, जब भी पूज्य कुण्डधान किसी गाँव में भिक्षा मांगने जाते, तो गाँव वाले पहले उन्हें भिक्षा का एक भाग देते हुए कहते, "पूज्यवर, यह आपके लिए है," और फिर उस स्त्री को भिक्षा का दूसरा भाग देते हुए कहते, "और यह हमारी सहेली के लिए है।" कथा के अनुसार, बुद्ध कस्सपा के युग में दो सहोदर भिक्षु थे जो एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे मानो वे एक ही माता की कोख से उत्पन्न हुए हों। और बुद्ध दीघायु के युग में, वर्ष दर वर्ष और माह जब भी भिक्षु व्रत रखने के लिए एकत्रित होते, तो वही दो भिक्षु अपने आश्रम से बाहर आकर एक दूसरे से कहते, "चलो साथ में साधना कक्ष चलते हैं।"

उस समय स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेने वाली एक देवी ने उन दो भिक्षुओं को देखकर सोचा, "ये दोनों भिक्षु बहुत अधिक साथ हैं; क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे मैं इन्हें अलग कर सकूँ?" जैसे ही उसने यह मूर्खतापूर्ण विचार किया, उनमें से एक भिक्षु ने अपने साथी से कहा, "भाई, एक क्षण रुकिए; मुझे शौच करना है।" यह सुनते ही देवी ने स्त्री का रूप धारण कर लिया और पूज्य भिक्षु के साथ झाड़ियों में प्रवेश कर गई। जब वह बाहर आए, तो वह उनके पीछे-पीछे चल पड़ी, एक हाथ से अपने बालों का गुच्छा और दूसरे हाथ से अपने अंतर्वस्त्र को संवारती हुई। पूज्य भिक्षु स्वयं उसे नहीं देख सके, लेकिन जब बाहर उनका इंतजार कर रहे भिक्षु ने मुड़कर देखा, तो उसने स्त्री को अपने बाल और अंतर्वस्त्र संवारते हुए बाहर आते देखा। जैसे ही स्त्री ने देखा कि प्रतीक्षा कर रहे भिक्षु ने उसे देख लिया है, वह गायब हो गई। जब पूज्य भिक्षु अपने प्रतीक्षा कर रहे भिक्षु के पास आए, तो उसने उनसे कहा, "भाई, आपने अपने ब्रह्मचर्य के व्रत को तोड़ दिया है।" "मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है, भाई।" "अरे, मैंने अभी-अभी एक युवती को तुम्हारे पीछे आते हुए देखा, वो ये सब कर रही थी। फिर भी तुम कहते हो कि तुमने कुछ नहीं किया।"

आदरणीय भिक्षु ने ऐसा व्यवहार किया मानो उन पर बिजली गिर पड़ी हो। उन्होंने कहा, "भाई, मुझे बर्बाद मत करो। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया है।" भिक्षु ने कहा, "जो मैंने देखा, वह मैंने अपनी आँखों से देखा। क्या आप मुझसे विश्वास की अपेक्षा करते हैं?" और तुरंत ही उन्होंने अपनी छड़ी का सिरा तोड़ दिया और चले गए। इतना ही नहीं, जब वे विश्राम कक्ष में बैठे, तो उन्होंने कहा, "मैं उनके साथ व्रत नहीं रखूँगा।" आदरणीय भिक्षु ने भिक्षुओं से कहा, "भाइयों, मेरी पवित्रता पर एक कण के बराबर भी धूल नहीं है।" लेकिन भिक्षु ने फिर दोहराया, "जो मैंने देखा, वह मैंने अपनी आँखों से देखा।" जब स्त्री आत्मा ने देखा कि भिक्षु आदरणीय भिक्षु के साथ व्रत नहीं रखना चाहता, तो उसने मन ही मन सोचा, "मैंने बहुत बड़ी गलती की है।" और तुरंत ही उसने भिक्षु से कहा, "आदरणीय भिक्षु, मेरे आदरणीय गुरु ने वास्तव में अपनी पवित्रता की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी है। मैंने यह केवल उनकी परीक्षा लेने के लिए किया था। कृपया उनके साथ व्रत रखें, जैसा कि वे हमेशा करते हैं।" जब भिक्षु ने स्त्री आत्मा को हवा में स्थिर देखा और उसके शब्द सुने, तो उसने उस पर विश्वास किया और पूज्य भिक्षु के साथ व्रत रखा। यद्यपि, वह पूज्य भिक्षु के प्रति पहले की तरह दयालु नहीं था। स्त्री आत्मा का पिछला कार्य ऐसा ही था।

अपने जीवन की नियत अवधि समाप्त होने पर, पूज्य भिक्षुओं का उनकी इच्छा अनुसार पुनर्जन्म हुआ। स्त्री आत्मा का पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ, और दो बुद्धों के बीच के अंतराल के बराबर समय तक वहाँ कष्ट भोगने के बाद, वर्तमान बुद्ध के युग में श्रावस्ती में पुरुष के रूप में पुनर्जन्म हुआ। जब वह वयस्क हो गए, तो उन्होंने संसार त्याग दिया और भिक्षु बनने का निश्चय किया, और बाद में इसे अपना पूर्ण जीवनयापन बना लिया। जिस दिन से उन्होंने संसार त्यागा, एक स्त्री रूपी प्रेत उनके पीछे-पीछे चलने लगा। इसलिए उन्होंने उसका नाम कुण्डधान रखा। जब भिक्षुओं ने देखा कि एक स्त्री उनका पीछा कर रही है, तो उन्होंने अनाथपिंडिका से कहा, "धन्यवाद, इस अपवित्र भिक्षु को अपने मठ से निकाल दीजिए, क्योंकि इसके कारण अन्य सभी भिक्षुओं पर कलंक लगेगा।" "परन्तु, पूज्य भिक्षुओं, क्या बुद्ध मठ में नहीं हैं?" "हे शिष्य, वे हैं।" "तो फिर, केवल बुद्ध ही जानते होंगे।" भिक्षुओं ने जाकर विशाखा से भी यही बात कही और उन्होंने उन्हें वही उत्तर दिया।

दोनों शिष्यों से कोई संतोषजनक जवाब न मिलने पर भिक्षुओं ने राजा को यह बात बताई और कहा, "महाराज, कुण्डधान एक स्त्री के साथ घूमता है और इस प्रकार उसने सभी भिक्षुओं पर कलंक लगाया है। उसे अपने राज्य से निकाल दीजिए।" "पर वह कहाँ है, पूज्यवर?" "मठ में, महाराज।" "वह किस मठ में रहता है?" "अमुक मठ में।" "ठीक है, आप जाइए। मैं उसे पकड़वा दूँगा।" अतः शाम को राजा मठ गए, पूज्यवर के कक्ष को अपने सैनिकों से घेर लिया और स्वयं पूज्यवर की कुटिया के प्रवेश द्वार के सामने खड़े हो गए।

तेज आवाज सुनकर पूज्य भिक्षु बाहर आए और मठ की ओर मुख करके खड़े हो गए। राजा ने तुरंत अपने पीछे उस प्रेत स्त्री को खड़ा देखा। जब पूज्य भिक्षु ने देखा कि राजा अपनी कोठरी में चले गए हैं, तो वे फिर से मठ में ऊपर चले गए और बैठ गए, लेकिन राजा ने पूज्य भिक्षु को प्रणाम नहीं किया। राजा को वह स्त्री फिर कभी नहीं दिखी। उन्होंने दरवाजे के अंदर और पलंग के नीचे भी देखा, फिर भी वह उन्हें नहीं मिली। अंत में उन्होंने भिक्षु से कहा, "पूज्य भिक्षु, मैंने इस स्थान पर एक स्त्री को देखा था; वह कहाँ है?" "मुझे कोई नहीं दिखी, महाराज।" तब राजा ने कहा, "मैंने अभी-अभी उसे आपकी पीठ के पीछे देखा था।" लेकिन पूज्य भिक्षु ने पहले की तरह ही उत्तर दिया, "मुझे कोई स्त्री नहीं दिखी, महाराज।" "पूज्य भिक्षु, कृपया एक क्षण के लिए यहाँ बाहर आ जाइए।" भिक्षु बाहर आए और मठ की ओर मुख करके नीचे खड़े हो गए। फिर से वह स्त्री पूज्य भिक्षु के पीछे खड़ी थी। राजा ने उसे देखकर एक बार फिर ऊपरी मंजिल पर चढ़ गए। पूज्य भिक्षु ने देखा कि राजा चले गए हैं, तो वे बैठ गए। राजा ने फिर से हर जगह देखा, लेकिन फिर भी वह स्त्री उन्हें नहीं दिखी। फिर उसने भिक्षु से पूछा, "आदरणीय, वह स्त्री कहाँ है?" "मुझे वह दिखाई नहीं दे रही।" "मुझे सच बताइए, आदरणीय। मैंने अभी-अभी आपके पीछे एक स्त्री को खड़े देखा है।" "जी हाँ, महाराज; यही तो सब कहते हैं। सब कहते हैं, 'एक स्त्री हर जगह आपका पीछा करती है,' लेकिन मुझे वह कभी दिखाई नहीं देती।"

राजा को संदेह हुआ कि यह कोई प्रेत है, इसलिए उसने पूज्यवर से कहा, "पूज्यवर, आपके साथ इतनी अपवित्रता है कि कोई आपको भोजन तक नहीं देगा। इसलिए, नियमित रूप से मेरे घर आइए, मैं ही आपको चारों आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करूँगा।" यह निमंत्रण देकर

वह चला गया। भिक्षुओं ने जाकर बुद्ध को यह बात बताई। तब बुद्ध ने उन्हें भिक्षु के पिछले जन्म में स्त्री आत्मा के रूप में किए गए दुष्ट कर्म के बारे में बताया और धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 133)

कांची चरणं मा अवोका वुत्ता तं पतिवादेयुं

हाय सरंभकथा दुक्ख पतिदा तं फुसेयुं

kañci : किसी से भी; pharusaṃ [ pharusa ]: कठोर शब्द; mā avoca : न बोलें; vuttā : यदि आप कठोर शब्द बोलेंगे; taṃ : आपसे; paṭivadeyyuṃ [ paṭivadeyyu ]: बदले में कठोर शब्द बोले जाएँगे; hi : किसी कारण से; sārambhakathā : परस्पर विरोधी बातें; dukkhā : कष्टदायक है; paṭidaṇḍā : पारस्परिक आक्रमण; taṃ : आप; phuseyyuṃ [ phuseyyu ]: सहारा ले सकते हैं

कभी भी कठोर शब्दों का प्रयोग न करें। यदि आप ऐसा करेंगे, तो आपको भी उसी तरह का जवाब मिलेगा। इस तरह की तीखी नोकझोंक कष्टदायक होती है। इससे मारपीट तक की नौबत आ सकती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 134)

ससे उपहतो कांसो यथा अत्तनं नेरेसि

एसो निब्बाणं पत्तो असि ते सरम्भो न विज्जति

sace : ठीक वैसे ही; upahato [ upahata ]: चपटा किया हुआ; kaṃso yathā : धातु का बर्तन; attānaṃ [ attāna ]: स्वयं; neresi : मौन हो गया है; eso : उस तरह; nibbānaṃ patto asi : आप निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं; te : आपके लिए; sārambho [ sārambha ]: शब्दों का आदान-प्रदान करने की आवश्यकता है; na vijjati : दिखाई नहीं देता

जब कोई व्यक्ति चपटे धातु के घड़े की तरह शांत और स्थिर होता है, तो ऐसा लगता है मानो उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया हो। ऐसा व्यक्ति व्यर्थ की बातों में नहीं पड़ता। यहाँ तक कि चोट लगने पर भी वह चपटे धातु के घड़े से कोई ध्वनि नहीं निकालता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 133-134)

फरुसं मा अवोच : कठोर शब्द न बोलें। यहाँ सकारात्मक सलाह यह है कि सही वाणी का अभ्यास करें। सही वाणी का अर्थ है: (1) झूठ से बचना और हमेशा सच बोलना; (2) चुगली से बचना, जिससे कलह और असामंजस्य उत्पन्न होता है, और ऐसे शब्द बोलना जो मेलजोल और सद्भाव को बढ़ावा देते हैं; (3) कठोर और अपशब्दों से बचना, और इसके बजाय दयालु और सौम्य शब्द बोलना; और (4) व्यर्थ की बातों, फिजूल की चर्चाओं या गपशप से बचना, और इसके बजाय अर्थपूर्ण और निर्दोष शब्द बोलना।

कांसो : धातु का बर्तन। कांसो शब्द पाँचों धातुओं—सोना, चाँदी, तांबा, लोहा या सीसा—में से किसी एक के लिए प्रयोग किया जाता है। यहाँ इसकी तुलना धातु के बर्तन से की गई है। जब इसका बर्तन जैसा आकार समाप्त हो जाता है और यह चपटा हो जाता है, तो इससे कोई ध्वनि नहीं निकलती। यह मंद और मौन हो जाता है।

Esa patto ' si nibbānaṃ : जो इस अनुकरणीय अभ्यास का पालन करता है, भले ही उसने अभी तक निर्वाण प्राप्त न किया हो, उसे निर्वाण प्राप्त माना जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 135

———————————————————————

(धम्मपद 133 और 134) <<<< पिछला || धम्मपद 135 || अगला >>>> (धम्मपद 136)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 135 - उपोसाथिका इत्थिनं वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा दंडेना गोपालो
gavo pajeti gocaram
evam jara ca maccu ca
ayum pajenti paninam.

---

श्लोक 135 : जैसे चरवाहा अपने मवेशियों को चरागाह में ले जाने के लिए छड़ी का इस्तेमाल करता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों के जीवन को चलाती है।

---

नैतिक सिद्धांतों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (135) का उच्चारण पाँच सौ महिलाओं के संदर्भ में किया।

एक बार, सावत्थी से पाँच सौ महिलाएँ उपोसथा शिला (उपवास और नैतिक व्रत) निभाने के लिए पुब्बाराम मठ में आईं। मठ की दानदाता, प्रसिद्ध विशाखा ने विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से पूछा कि वे उपवास क्यों कर रही हैं। उन्हें अलग-अलग आयु वर्ग की महिलाओं से अलग-अलग उत्तर मिले, क्योंकि वे अलग-अलग कारणों से मठ में आई थीं। वृद्ध महिलाएँ उपवास इसलिए कर रही थीं क्योंकि उन्हें आशा थी कि अगले जन्म में उन्हें देवताओं (देवदूतों) का धन और यश प्राप्त होगा; मध्यम आयु वर्ग की महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अपने पतियों की रखैल के साथ नहीं रहना चाहती थीं। नवविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे चाहती थीं कि उनका पहला बच्चा पुत्र हो, और अविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अच्छे पतियों से विवाह करना चाहती थीं।

इन उत्तरों को प्राप्त करने के बाद, विशाखा सभी महिलाओं को बुद्ध के पास ले गईं। जब उन्होंने बुद्ध को विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं के विभिन्न उत्तरों के बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा, "विशाखा! जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु मनुष्य में सदा सक्रिय रूप से कार्यरत हैं; क्योंकि मनुष्य जन्म लेता है, इसलिए वह वृद्धावस्था और क्षय के अधीन है, और अंततः मृत्यु के अधीन है। फिर भी, वे जन्म-मृत्यु के इस चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करतीं; वे अभी भी संसार में ही रहना चाहती हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 135 : जैसे चरवाहा अपने मवेशियों को चरागाह में ले जाने के लिए छड़ी का इस्तेमाल करता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों के जीवन को चलाती है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नैतिक सिद्धांतों का पालन करने वाली कुछ महिलाओं की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ महिलाओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, सावत्थी से पाँच सौ महिलाएँ अष्टम व्रत रखने के लिए पुब्बाराम मठ में आईं। मठ की दानदाता, प्रसिद्ध विशाखा ने विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से पूछा कि वे व्रत रखने क्यों आई हैं। उन्हें विभिन्न आयु वर्ग की महिलाओं से अलग-अलग उत्तर मिले, क्योंकि वे अलग-अलग कारणों से मठ में आई थीं। वृद्ध महिलाएँ व्रत रखने इसलिए आई थीं क्योंकि उन्हें आशा थी कि अगले जन्म में उन्हें स्वर्गिक सुख-समृद्धि प्राप्त होगी; मध्यम आयु वर्ग की महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अपने पतियों की रखैल के साथ नहीं रहना चाहती थीं। नवविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे चाहती थीं कि उनका पहला बच्चा पुत्र हो, और अविवाहित महिलाएँ इसलिए आई थीं क्योंकि वे अच्छे पतियों से विवाह करना चाहती थीं।

इन उत्तरों को प्राप्त करने के बाद, विशाखा सभी स्त्रियों को बुद्ध के पास ले गईं। जब उन्होंने बुद्ध को विभिन्न आयु वर्ग की स्त्रियों के विभिन्न उत्तरों के बारे में बताया, तो बुद्ध ने कहा, "विशाखा! जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु मनुष्य में सदा सक्रिय रूप से चलते रहते हैं; जन्म लेने के कारण ही वृद्धावस्था और क्षय का भागी होता है, और अंततः मृत्यु के अधीन होता है। फिर भी, वे जन्म-मृत्यु के इस चक्र से मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करतीं ; वे संसार में ही लीन रहना चाहती हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 135)

यथा गोपालो दण्डेन गावो गोचरण पसेटि

एवं जरा च मैक्कु च पणिनं अयुं पसेटि

यथा : जैसे; गोपालो [ गोपाल ]: ग्वाला; दण्डेन : अंकुश से; गावो : मवेशी; गोचरं [ गोचर ]: चरागाह की ओर; पाचेति : हांकना; एवं : इसी प्रकार; जरा च : क्षय; मच्चू च : और मृत्यु; पाणिनं [ पानिन ]: प्राणियों की; आयुं : जीवनकाल; पाचेति : हांकना

चरवाहा लाठी से मवेशियों को चरागाह की ओर ले जाता है। ठीक उसी प्रकार, क्षय और मृत्यु प्राणियों के जीवनकाल को निर्धारित करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 135)

विशाखा : विशाखा पर विशेष टिप्पणी । विशाखा धनंजय की पुत्री थीं। उनकी माता सुमना देवी थीं और उनके प्रिय दादा धनी मेंडक थे। जब वह मात्र सात वर्ष की थीं, तब संयोगवश बुद्ध अंग राज्य में स्थित उनके जन्मस्थान भद्दिया में आए। बुद्ध के आगमन की सूचना सुनकर उनके दादाजी ने उनसे कहा, "प्रिय पुत्री, यह तुम्हारे लिए और मेरे लिए भी शुभ दिन है। अपनी सेविकाओं को बुलाओ, रथों पर सवार हो जाओ और अपनी दासियों के दल के साथ बुद्ध का स्वागत करने के लिए जाओ।"

उसने तुरंत सहमति दे दी और सलाह के अनुसार बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गई। बुद्ध उसके सुसंस्कृत व्यवहार से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे और अन्य लोगों को धम्म का उपदेश दिया। यद्यपि वह कम उम्र की थी, फिर भी नैतिक दृष्टि से वह अपेक्षाकृत अधिक उन्नत थी। इस प्रकार, धम्म सुनने के तुरंत बाद ही उसने कम उम्र में ही संतत्व की प्रथम अवस्था ( सोतापत्ति ) प्राप्त कर ली। ग्रंथों में लिखा है कि अपनी युवावस्था में भी उसमें पुरुषोचित शक्ति थी और वह स्त्रीत्व के सभी गुणों से परिपूर्ण थी। उसके बाल मोर की पूंछ के समान थे और खोलने पर उसकी स्कर्ट के किनारे तक पहुँचते थे, फिर बालों के सिरे ऊपर की ओर मुड़ जाते थे। उसके होंठ चमकीले लाल रंग के थे और छूने में चिकने और कोमल थे। उसके दाँत सफेद थे और बिना किसी अंतराल के समान रूप से जड़े हुए थे और हीरों की पंक्ति की तरह चमकते थे। उसकी त्वचा, बिना किसी सौंदर्य प्रसाधन के, नीले कमल की माला के समान चिकनी और सुनहरे रंग की थी। कई संतानों को जन्म देने के बावजूद भी वह अपनी युवावस्था में ही सुंदर दिखती थी।

स्त्री सौंदर्य के इन पांच प्रकारों - बाल, मांस, अस्थि, त्वचा और यौवन - से संपन्न युवा विशाखा सांसारिक ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि दोनों में उत्कृष्ट थीं।

जब वह लगभग पंद्रह या सोलह वर्ष की थी, एक त्यौहार के दिन, वह अपने दल के साथ उत्सव के उत्साह में नदी में स्नान करने के लिए पैदल गई। अचानक अप्रत्याशित रूप से बारिश होने लगी, और युवा विशाखा को छोड़कर बाकी सभी लोग बेमन से जितनी तेज़ी से दौड़ सकते थे, दौड़े और एक हॉल में प्रवेश किया जहाँ कुछ ब्राह्मण अपने युवा स्वामी के लिए पाँचों प्रकार के सौंदर्य से युक्त एक उपयुक्त कन्या की तलाश में आए थे। सुसंस्कृत विशाखा, बिना किसी विशेष जल्दबाजी के, अपनी सामान्य चाल से आगे बढ़ी और भीगे हुए वस्त्रों और आभूषणों के साथ हॉल में प्रवेश किया। जिज्ञासु ब्राह्मणों ने उसकी आलोचना की कि उसने दूसरों की तरह अपनी गति क्यों नहीं बढ़ाई और इस प्रकार बारिश में भीगने से बच गई।

प्रतिभावान विशाखा ने अवसर का लाभ उठाते हुए अपने दृष्टिकोण से आचरण पर तात्कालिक प्रवचन दिया। उन्होंने कहा कि वे और भी तेज़ दौड़ सकती थीं, लेकिन उन्होंने जानबूझकर ऐसा नहीं किया। फिर उन्होंने समझाया कि सभी आभूषणों से सजे राजा के लिए महल के प्रांगण में कमर कसकर दौड़ना उचित नहीं है। इसी प्रकार, पूरी तरह से सुसज्जित राजसी हाथी का दौड़ना भी उचित नहीं है; उसे हाथी की स्वाभाविक शालीनता के साथ चलना चाहिए। भिक्षुओं की भी आलोचना होती है जब वे आम लोगों की तरह दौड़ते हैं। इसी प्रकार, किसी स्त्री को पुरुष की तरह दौड़ते देखना गरिमापूर्ण दृश्य नहीं है।

ब्राह्मण उसके ज्ञानवर्धक प्रवचन से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपने स्वामी के लिए आदर्श पत्नी समझा। तदनुसार, उसका विवाह उनके स्वामी पुन्नवद्धन से करने की व्यवस्था की गई, जो स्वयं मिगारा नामक एक धनी व्यक्ति का पुत्र था और बुद्ध का अनुयायी नहीं था।

विवाह समारोह भव्य पैमाने पर आयोजित किया गया था। शादी के दिन, एक बड़े दहेज और एक अत्यंत समृद्ध आभूषण ( महालातापितन्धन ) के अलावा , उसके बुद्धिमान पिता ने उसे निम्नलिखित उपदेश दिए:

घर के अंदर लगी आग को बाहर न ले जाएं;
बाहर लगी आग को अंदर न ले जाएं;
केवल उन्हीं को दान दें जो दान देते हैं;
जो लोग दान नहीं देते, उन्हें दान न दें;
जो देते हैं और जो नहीं देते, दोनों को दें;
खुशी से बैठो;
खुशी से खाएं;
चैन से सोएं;
आग जलाए रखें और
घर के देवी-देवताओं का सम्मान करें।

पुस्तकों में लिखा है कि उन्हें दस सौभाग्यशाली पुत्रों और दस सौभाग्यशाली पुत्रियों की सुखी माता होने का सौभाग्य प्राप्त था। उनकी मृत्यु एक सौ बीस वर्ष की परिपक्व आयु में हुई।



---

(धम्मपद 135) <<<< पिछला || धम्मपद 136 || अगला >>>> (धम्मपद 137, 138, 139 और 140)

---

अंतर्वस्तु



---

डॉ म्या टिन संस्करण

अथा पापनी कम्मनी
karam balo na bujjhati
sehi kammehi dummedho
aggidaddhova tappati.

---

श्लोक 136 : मूर्ख व्यक्ति बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानता कि वे बुरे हैं; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों का फल उसी प्रकार भुगतता है जैसे आग से जलने वाला।

---

पायथन पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते शरीर वाला पायथन जैसा भूत)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

एक बार, जब थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक अजगर पेटा देखा और मुस्कुराए, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब वे जेतवन मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में लखना को उस अजगर पेटा के बारे में बताया, जिसका लंबा शरीर आग की लपटों में जल रहा था। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं भी बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस अजगर पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करके वे बुद्ध के साथ घोर अन्याय करेंगे। अतः इन प्राणियों के प्रति करुणावश बुद्ध मौन रहे। फिर उन्होंने आगे कहा, "अब जब मोग्गलाना गवाह हैं, तो मैं आपको इस अजगर पेटा के बारे में बताता हूँ। यह पेटा कश्यप बुद्ध (पूर्व युग के बुद्ध) के समय का चोर था। एक चोर और क्रूर हृदय वाले व्यक्ति के रूप में, उसने एक धनी व्यक्ति के घर में सात बार आग लगाई थी। और इतने से संतुष्ट न होकर, उसने उसी धनी व्यक्ति द्वारा कश्यप बुद्ध को दान किए गए सुगंधित हॉल में भी आग लगा दी, जब कश्यप बुद्ध भिक्षा मांगने गए हुए थे। इन बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसने निरय (नरक) में लंबे समय तक कष्ट भोगा। अब, पेटा के रूप में अपने कष्टों को भोगते हुए, उसके शरीर पर ऊपर-नीचे उठती हुई लपटों की चिंगारियों से उसे जलाया जा रहा है। भिक्षुओं, मूर्ख लोग बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानते कि वे बुरे हैं; परन्तु वे बुरे परिणामों से बच नहीं सकते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 136 : मूर्ख व्यक्ति बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानता कि वे बुरे हैं; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों का फल उसी प्रकार भुगतता है जैसे आग से जलने वाला।

---

(1) पेटा: हमेशा भूखी रहने वाली आत्मा या भूत (संस्कृत/हिन्दी में प्रीटा)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-घोस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, पूज्य मोग्गलाना, पूज्य लक्खना के साथ गिद्ध शिखर से नीचे उतर रहे थे, तभी उन्हें अलौकिक दृष्टि से एक पच्चीस मील लंबा, नाग के रूप में एक प्रेत दिखाई दिया। उसके सिर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके अंगों पर गिर रही थीं; उसके दोनों ओर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके मध्य भाग पर गिर रही थीं। पूज्य मोग्गलाना ने उस प्रेत को देखकर मुस्कुरा दिया। जब पूज्य लक्खना ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, “भाई, अभी इस प्रश्न का उत्तर देने का उचित समय नहीं है; जब हम बुद्ध के समक्ष उपस्थित हों, तब मुझसे पूछिएगा।”

इसलिए, जब पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद बुद्ध के समक्ष आए, तो पूज्य लखन ने अपना प्रश्न दोहराया। पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया, “भाई, मैंने उस स्थान पर एक भूत देखा, जिसका रूप ऐसा था। उसे देखकर मैंने मन ही मन सोचा, ‘ऐसा भूत मैंने पहले कभी नहीं देखा।’ इसीलिए मैं मुस्कुराया।” तब बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, मेरे शिष्यों के पास आंखें हैं और वे उनका उपयोग करते हैं।” उन्होंने पूज्य मोग्गलाना के कथन की पुष्टि करते हुए आगे कहा, “मैंने उस भूत को ज्ञान के सिंहासन पर बैठे हुए देखा था। लेकिन मेरे मन में यह विचार आया कि ‘यदि कोई मेरी बात पर विश्वास न करे, तो यह उनके लिए हानिकारक हो सकता है।’ इसलिए मैंने इस बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन अब जब मोग्गलाना साक्षी हैं, तो मैं यह बात कहता हूँ।” जब उन्होंने भिक्षुओं के अनुरोध के जवाब में इस प्रकार बात की, तो उन्होंने बताया कि भूत ने अपने पिछले जन्म में क्या किया था।

कथा के अनुसार, बुद्ध कश्यप के युग में, सुमंगला नामक एक कोषाध्यक्ष ने बीस उसभा (फ़दम) की दूरी तक सोने की ईंटें बिछाईं, उतनी ही राशि का खजाना एक मठ के निर्माण में खर्च किया और उतनी ही राशि का खजाना मठ के उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक उत्सव के आयोजन में लगाया। एक दिन, सुबह-सुबह, जब वह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था, तो उसने नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में एक चोर को छिपा हुआ देखा, जिसके पैर कीचड़ से सने थे और उसने अपना वस्त्र सिर पर ओढ़ा हुआ था। कोषाध्यक्ष ने मन ही मन सोचा, "कीचड़ से सने पैरों वाला यह आदमी अवश्य ही कोई रात में छुपकर घूमने वाला चोर होगा।" चोर ने सोचा, "कोई बात नहीं, मुझे तुमसे बदला लेने का तरीका पता है।" कोषाध्यक्ष से द्वेष रखते हुए, उसने उसके खेत को सात बार जलाया, उसके गौशाला में सात बार पशुओं के पैर काटे और उसके घर को सात बार जलाया।

लेकिन इन सब के बावजूद, वह कोषाध्यक्ष के प्रति अपनी दुश्मनी शांत नहीं कर सका। इसलिए उसने कोषाध्यक्ष के सेवक से मित्रता की और उससे पूछा, “तुम्हारे स्वामी, कोषाध्यक्ष को सबसे अधिक क्या प्रिय है?” सेवक ने उत्तर दिया, “उन्हें सुगंधित कक्ष से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं है।” चोर ने सोचा, “ठीक है, मैं सुगंधित कक्ष को जला दूंगा और इस प्रकार अपनी दुश्मनी शांत कर लूंगा।” तदनुसार, जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में आए, तो उसने खाने-पीने के सभी बर्तन तोड़ दिए और सुगंधित कक्ष में आग लगा दी। जब कोषाध्यक्ष ने “सुगंधित कक्ष में आग लग गई है!” की आवाज सुनी, तो वह तुरंत वहां पहुंचा, लेकिन उसके पहुंचने से पहले ही वह कक्ष जलकर राख हो चुका था। कोषाध्यक्ष ने मठ का पुनर्निर्माण किया और चोर को उसके अपराधों के लिए क्षमा कर दिया। चोर का पुनर्जन्म पेटा-भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 136)

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुझति
दुम्मेधो सेहि कम्मेहि अग्गिदोदो इव तप्पति

अथा : इसके अलावा; पापानि कम्मानि : बुरे कर्म; करं [ करा ]: करना; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; नो बुझति : अनभिज्ञ; दुम्मेधो [ दुम्मेधा ]: नासमझ व्यक्ति; सेहि कम्मेहि : अपने बुरे कर्मों के कारण; अग्गिदड्ढो इव : मानो आग से जल गया हो; तपपति : जलता है (पीड़ित होता है)

मूर्ख, जो बुराई के प्रतिफल से अनभिज्ञ होते हैं, बुरे कर्मों से स्वयं को ही हानि पहुँचाते हैं। जैसे मक्खियाँ आग में कूदकर जल जाती हैं, वैसे ही वे स्वयं अपने जल्लाद बन जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 136)

दुम्मेधो : वह व्यक्ति जिसमें बुद्धि का अभाव हो। यहाँ बुद्धि से तात्पर्य सही और गलत का विवेक करने की क्षमता से है।

---

(धम्मपद136) <<<< पिछला|| धम्मपद 137, 138, 139 और 140 ||अगला >>>> (धम्मपद141)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 137, 138, 139 और 140 - महा मोग्गलनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

यो डांडेना एडंडेसु
appadutthesu dussati
dasannarnannataram thanam
khippameva nigacchati.

Vedanam pharusam janim
sarirassa va bhedanam
garukam vapi abadham
cittakkhepam va papune.

Rajato va upasaggam
abbhakkhanam va darunam
परिक्खयम वा नतिनाम
भोगनम वा पभंगुरम.

Atha vassa agarani
aggi dahati pavako
kayassa bheda duppanno
nirayam so papajjati.

---

श्लोक 137 : जो व्यक्ति निर्दोषों को, जिन्हें हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए, हथियारों से हानि पहुँचाता है, वह शीघ्र ही इन दस बुरे परिणामों में से किसी एक का शिकार होगा।

---

श्लोक 138, 139 और 140 : उसे घोर पीड़ा, दरिद्रता, शारीरिक क्षति (अर्थात अंगों का नुकसान), गंभीर बीमारी (जैसे कुष्ठ रोग), पागलपन, राजा के क्रोध के कारण विपत्तियाँ, अनुचित और गंभीर आरोप, रिश्तेदारों की हानि, धन का विनाश, या आग या बिजली से घरों का जल जाना जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। शरीर के नष्ट होने के बाद, मूर्ख का पुनर्जन्म निरंतर पीड़ा के लोक (निरय) में होगा।

---

थेरा महा मोग्गलाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (137), (138), (139) और (140) का उच्चारण किया।

एक बार निगंथ तपस्वियों ने थेरा महा मोग्गलाना की हत्या करने की योजना बनाई, क्योंकि उनका मानना था कि थेरा महा मोग्गलाना को मार डालने से बुद्ध की यश और समृद्धि भी कम हो जाएगी। इसलिए उन्होंने कुछ हत्यारों को थेरा महा मोग्गलाना को मारने के लिए भेजा, जो उस समय राजगृह के पास कलाशिला में रह रहे थे। हत्यारों ने मठ को घेर लिया; लेकिन थेरा महा मोग्गलाना ने अपनी असाधारण शक्ति से पहले एक चाबी के छेद से और दूसरी बार छत के रास्ते भाग निकले। इस प्रकार, वे दो महीने तक थेरा को पकड़ नहीं पाए। जब तीसरे महीने में हत्यारों ने फिर से मठ को घेर लिया, तो थेरा महा मोग्गलाना को याद आया कि उन्हें अपने पिछले जन्मों में किए गए बुरे कर्मों का प्रायश्चित करना बाकी है, इसलिए उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग नहीं किया। इस प्रकार वे पकड़े गए और हत्यारों ने उन्हें तब तक पीटा जब तक उनकी सारी हड्डियाँ टूट नहीं गईं। उसके बाद, उन्होंने उनके शरीर को एक झाड़ी में छोड़ दिया, यह सोचकर कि उनका निधन हो गया है। लेकिन थेरा ने अपनी ध्यान शक्ति से स्वयं को पुनर्जीवित किया और जेतवन मठ में बुद्ध से मिलने गए। जब उन्होंने बुद्ध को बताया कि वे जल्द ही राजगृह के पास कलाशिला में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, तो बुद्ध ने उनसे कहा कि वे भिक्षुओं की सभा को धर्म का उपदेश देने के बाद ही जाएँ, क्योंकि यह उनका अंतिम दर्शन होगा। अतः थेरा महा मोग्गलाना ने धर्म का उपदेश दिया और बुद्ध को सात बार प्रणाम करने के बाद वहाँ से चले गए।
हत्यारों के हाथों थेरा महा मोग्गलाना के देहांत की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। राजा अजातसत्तु ने अपने सैनिकों को जांच करने और दोषियों को पकड़ने का आदेश दिया। हत्यारों को पकड़ लिया गया और उन्हें जलाकर मार डाला गया। भिक्षुओं को थेरा महा मोग्गलाना की मृत्यु पर गहरा शोक हुआ और वे समझ नहीं पा रहे थे कि थेरा महा मोग्गलाना जैसे महान व्यक्तित्व की मृत्यु हत्यारों के हाथों क्यों हुई। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! यह देखते हुए कि मोग्गलाना ने इस जन्म में एक नेक जीवन व्यतीत किया था, उनकी मृत्यु इस प्रकार नहीं होनी चाहिए थी। परन्तु अपने पिछले जन्मों में से एक में उन्होंने अपने माता-पिता, जो दोनों अंधे थे, के साथ घोर अन्याय किया था। आरंभ में वे एक अत्यंत आज्ञाकारी पुत्र थे, परन्तु विवाह के बाद उनकी पत्नी ने कलह उत्पन्न करना शुरू कर दिया और उन्हें अपने माता-पिता से छुटकारा पाने का सुझाव दिया। वे अपने अंधे माता-पिता को एक बैलगाड़ी में बिठाकर जंगल में ले गए और वहाँ उन्हें पीट-पीटकर मार डाला और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि कोई चोर उन्हें पीट रहा है। उस दुष्ट कर्म के कारण उन्होंने निरयण में दीर्घकाल व्यतीत किया; और इस जन्म में, जो उनका अंतिम जन्म है, वे हत्यारों के हाथों मारे गए। निश्चय ही, जिनका अपमान नहीं करना चाहिए, उनके साथ अन्याय करने का फल भोगना ही है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 137 : जो व्यक्ति निर्दोषों को, जिन्हें हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए, हथियारों से हानि पहुँचाता है, वह शीघ्र ही इन दस बुरे परिणामों में से किसी एक का शिकार होगा।

---

श्लोक 138, 139 और 140 : उसे घोर पीड़ा, दरिद्रता, शारीरिक क्षति (अर्थात अंगों का नुकसान), गंभीर बीमारी (जैसे कुष्ठ रोग), पागलपन, राजा के क्रोध के कारण विपत्तियाँ, अनुचित और गंभीर आरोप, रिश्तेदारों की हानि, धन का विनाश, या आग या बिजली से घरों का जल जाना जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। शरीर के नष्ट होने के बाद, मूर्ख का पुनर्जन्म निरंतर पीड़ा के लोक (निरय) में होगा।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय महा मोग्गलाना की कहानी
जीतावन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य महा मोग्गलाना के संदर्भ में ये श्लोक कहे। एक बार विधर्मी एकत्रित हुए और आपस में बोले, "भाइयों, क्या आप जानते हैं कि बुद्ध को अर्पित की जाने वाली भेंटें इतनी अधिक क्यों हो गई हैं?" "नहीं, हम नहीं जानते; लेकिन क्या आप जानते हैं?" "जी हाँ, हम जानते हैं; यह सब पूज्य मोग्गलाना के कारण हुआ है। पूज्य मोग्गलाना स्वर्ग जाते हैं और देवताओं से पूछते हैं कि उन्होंने कौन से पुण्य कर्म किए; फिर वे पृथ्वी पर लौटकर मनुष्यों से कहते हैं, 'यह और वह करने से मनुष्य को इतना यश प्राप्त होता है।' फिर वे नरक जाते हैं और नरक में पुनर्जन्म लेने वालों से भी पूछते हैं कि उन्होंने क्या किया; और फिर पृथ्वी पर लौटकर मनुष्यों से कहते हैं, 'यह और वह करने से मनुष्य को इतना दुख भोगना पड़ता है।' लोग उसकी बातें सुनते हैं और बहुमूल्य उपहार और भेंट लाते हैं। यदि हम उसे मारने में सफल हो जाते हैं, तो ये सभी बहुमूल्य उपहार और भेंट हमें मिल जाएँगे।
"यह तो वाकई एक तरीका है!" सभी विधर्मी एकमत होकर बोले। इस प्रकार सभी विधर्मियों ने सर्वसम्मति से संकल्प लिया, "हम उसे किसी भी तरह मार डालेंगे।" तदनुसार उन्होंने अपने समर्थकों को इकट्ठा किया, एक हजार सिक्के जुटाए और पूज्य मोग्गलाना की हत्या की योजना बनाई। कुछ घुमंतू चोरों को बुलाकर उन्होंने उन्हें एक हजार सिक्के दिए और कहा, "पूज्य मोग्गलाना ब्लैक रॉक में रहते हैं।

वहाँ जाओ और उन्हें मार डालो।" सिक्कों ने चोरों को आकर्षित किया और वे तुरंत आज्ञा मानने को तैयार हो गए। "जी हाँ, हम पूज्य को मार डालेंगे।" इस प्रकार वे गए और पूज्य के निवास स्थान को घेर लिया।

पूज्यवर यह जानते हुए कि उनका निवास स्थान चारों ओर से घिरा हुआ है, चुपके से ताले के छेद से निकल कर भाग निकले। चोरों ने उस दिन पूज्यवर को न देखकर अगले दिन फिर से उनके निवास स्थान को घेर लिया। परन्तु पूज्यवर यह जानते हुए घर के गोलाकार शिखर को तोड़कर हवा में उड़ गए। इस प्रकार चोरों ने पहले और दूसरे महीने में पूज्यवर को पकड़ने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहे। परन्तु जब तीसरा महीना आया, तो पूज्यवर ने अपने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्म के प्रबल प्रभाव को महसूस किया और भागने का कोई प्रयास नहीं किया।

अंततः चोर पूज्यवर को पकड़ने में सफल हो गए। ऐसा करने के बाद, उन्होंने उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और उनकी हड्डियों को तब तक पीसा जब तक वे चावल के दानों के समान बारीक न हो गईं। फिर यह सोचकर कि "वह मर गया है," उन्होंने उनकी हड्डियों को झाड़ियों के एक झुंड के पीछे फेंक दिया और चले गए। पूज्यवर ने मन ही मन सोचा, "निर्वाण में प्रवेश करने से पहले मैं बुद्ध को प्रणाम करूंगा।" तदनुसार उन्होंने ध्यान में खुद को वस्त्र की तरह लपेट लिया, खुद को कठोर बना लिया और हवा में उड़ते हुए बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, "पूज्यवर, मैं निर्वाण में प्रवेश करने वाला हूँ।" "आप निर्वाण में प्रवेश करने वाले हैं, मोग्गलाना?" "जी हाँ, पूज्यवर।" "आप पृथ्वी के किस क्षेत्र में जा रहे हैं?" "काले पत्थर में, पूज्यवर।" "तो फिर, मोग्गलाना, जाने से पहले मुझे धर्म का उपदेश दीजिए, क्योंकि इसके बाद मुझे आप जैसा शिष्य नहीं मिलेगा।" "जी, मैं ऐसा ही करूंगा," पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया। इस प्रकार, उन्होंने पहले बुद्ध को प्रणाम किया, फिर वायु में विलीन हो गए, और पूज्य सारिपुत्त के समान ही अनेक चमत्कार किए, जिस दिन वे निर्वाण प्राप्त हुए थे, धर्म का उपदेश दिया, बुद्ध को प्रणाम किया, और फिर काले पत्थर के वन में जाकर निर्वाण प्राप्त किया।

देखते ही देखते यह खबर पूरे दक्षिण एशिया में फैल गई। "चोरों ने पूज्य गुरु की हत्या कर दी है।" राजा अजातसत्तु ने तुरंत चोरों की तलाश में जासूस भेजे। तभी वे चोर एक सराय में शराब पी रहे थे, तभी उनमें से एक ने दूसरे की पीठ पर वार किया और उसे ज़मीन पर गिरा दिया। दूसरे चोर ने पहले को कोसते हुए कहा, "अरे बदमाश, तूने मेरी पीठ पर वार करके मुझे ज़मीन पर क्यों गिराया?" "अरे चोर, तूने ही तो पूज्य मोग्गलाना पर सबसे पहले वार किया था।" "तुम्हें पता भी नहीं कि मैंने वार किया था या नहीं।" चारों ओर से ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें आने लगीं, "मैंने ही वार किया था, मैंने ही वार किया था।"

उन जासूसों ने चोरों की बातें सुन लीं, सभी चोरों को पकड़ लिया और राजा को सूचना दी। राजा ने चोरों को अपने समक्ष बुलवाया और उनसे पूछा, "क्या तुमने ही पूज्यवर की हत्या की है?" "जी महाराज।" "तुम्हें किसने उकसाया?" "नग्न तपस्वियों ने, महाराज।" राजा ने पाँच सौ नग्न तपस्वियों को पकड़वाया, उन्हें पाँच सौ चोरों के साथ महल के प्रांगण में खोदे गए गड्ढों में कमर तक डुबो दिया, उनके शरीरों को भूसे के गट्ठों से ढक दिया और फिर भूसे के गट्ठों में आग लगा दी। जब उसे पता चला कि वे जल गए हैं, तो उसने उनके शरीरों को लोहे के हल से जोतवाया और इस प्रकार उन्हें चूर-चूर कर दिया।

सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने चर्चा शुरू की: "आदरणीय मोग्गलाना की मृत्यु ऐसी हुई जिसके वे पात्र नहीं थे।" उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर क्या कह रहे हैं?" जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, यदि आप केवल इस वर्तमान अवस्था पर ध्यान दें, तो आदरणीय मोग्गलाना की मृत्यु वास्तव में ऐसी हुई जिसके वे पात्र नहीं थे। परन्तु वास्तव में, उनकी मृत्यु का तरीका उनके पिछले जन्म में किए गए कर्म के बिल्कुल अनुरूप था।" तब भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "परन्तु, आदरणीय, उन्होंने पिछले जन्म में क्या कर्म किया था?" उत्तर में बुद्ध ने उनके पूर्व कर्म का विस्तृत वर्णन किया।

कथा के अनुसार, बहुत समय पहले की बात है, एक अच्छे परिवार का युवक घर के सारे काम, जैसे चावल कूटना और खाना पकाना, स्वयं करता था और अपने माता-पिता की देखभाल भी करता था। एक दिन उसके माता-पिता ने उससे कहा, "बेटा, घर और जंगल दोनों जगह सारा काम करते-करते तुम थक रहे हो। हम तुम्हारे लिए एक युवती को घर लाएंगे, जो तुम्हारी पत्नी बनेगी।" बेटे ने उत्तर दिया, "माता-पिता जी, आपको ऐसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। जब तक आप दोनों जीवित रहेंगे, मैं स्वयं आपकी सेवा करूंगा।" यद्यपि उसने उनकी बात नहीं मानी, फिर भी उन्होंने बार-बार अनुरोध किया और अंततः उसके लिए एक युवती को घर ले आए, जो उसकी पत्नी बनी।

कुछ दिनों तक ही वह उसके माता-पिता की सेवा करती रही। कुछ दिन बीतने के बाद, वह उन्हें देखना भी सहन नहीं कर पा रही थी और अपने पति से बड़े क्रोध से बोली, "अब मैं तुम्हारे माता-पिता के साथ एक ही घर में नहीं रह सकती।" लेकिन उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए एक दिन, जब वह घर से बाहर गया हुआ था, उसने मिट्टी के टुकड़े, पेड़ की छाल और चावल के दलिया का झाग लिया और उन्हें घर में इधर-उधर बिखेर दिया। जब उसका पति लौटा और उससे पूछा कि इसका क्या मतलब है, तो उसने कहा, "यही तो तुम्हारे अंधे बूढ़े माता-पिता ने किया है; वे पूरे घर में गंदगी फैलाते फिरते हैं; अब मैं उनके साथ एक ही जगह पर नहीं रह सकती।"

वह बार-बार यही दोहराती रही। नतीजा यह हुआ कि अंततः उसके जैसा इतना प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली थी, भी अपने माता-पिता से अलग हो गया।

"कोई बात नहीं," पति ने कहा, "मैं इनसे निपटने का कोई न कोई तरीका ज़रूर ढूंढ लूंगा।" भोजन कराने के बाद उसने उनसे कहा, "प्यारे माता-पिता, फलां जगह पर आपके रिश्तेदार रहते हैं जो चाहते हैं कि आप उनसे मिलने आएं; चलिए वहीं चलते हैं।" उन्हें गाड़ी में बिठाकर वह उनके साथ चल पड़ा। जब वह जंगल के भीतरी हिस्से में पहुंचा, तो उसने अपने पिता से कहा, "प्यारे पिता, लगाम पकड़िए; बैल रास्ता इतना अच्छी तरह जानते हैं कि बिना मार्गदर्शन के ही चले जाएंगे; यह वह जगह है जहां चोर यात्रियों का इंतजार करते हैं; मैं गाड़ी से उतरने जा रहा हूं।" लगाम अपने पिता को सौंपकर वह गाड़ी से उतर गया और जंगल की ओर चल पड़ा।

ऐसा करते हुए वह शोर मचाने लगा, और शोर की तीव्रता इतनी बढ़ गई कि ऐसा लगा मानो चोरों का कोई गिरोह हमला करने वाला हो। जब उसके माता-पिता ने शोर सुना, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "चोरों का कोई गिरोह हम पर हमला करने वाला है।" इसलिए उन्होंने अपने बेटे से कहा, "बेटा, हम बूढ़े हो चुके हैं; अपनी जान बचाओ, और हमारी परवाह मत करो।" लेकिन जैसे ही उसके माता-पिता ने इस तरह चिल्लाना शुरू किया, बेटे ने चोरों की तरह चिल्लाते हुए उन्हें पीट-पीटकर मार डाला और उनके शवों को जंगल में फेंक दिया। ऐसा करके वह घर लौट आया।

जब बुद्ध ने पूज्य मोग्गलाना के पिछले जन्म के कुकर्म की कहानी सुनाई, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, पूज्य मोग्गलाना ने इतना जघन्य पाप किया था कि उन्होंने अनगिनत लाखों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा; और उसके बाद, क्योंकि उनके बुरे कर्म का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए सौ जन्मों तक उन्हें इसी प्रकार पीटा और चूर-चूर किया गया और इस प्रकार उनकी मृत्यु हुई। अतः पूज्य मोग्गलाना की मृत्यु का तरीका उनके पिछले जन्म के कुकर्म के बिल्कुल अनुरूप था। इसी प्रकार, पाँच सौ विधर्मी, जिन्होंने पाँच सौ चोरों के साथ मिलकर मेरे पुत्र के विरुद्ध अपराध किया, जबकि मेरे पुत्र ने उनके विरुद्ध कोई अपराध नहीं किया था, उन्हें ठीक वही मृत्यु मिली जिसके वे पात्र थे। क्योंकि जो निर्दोष के विरुद्ध अपराध करता है, उसे दस प्रकार की विपत्तियों और हानियों का सामना करना पड़ता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 137)

यो अदांडेसु अप्पादुत्थेसु दंडेना दुस्साति
दशन्नम अनंतरं थनं खिप्पम एव निगच्छति

यदि कोई व्यक्ति हिंसा के माध्यम से कष्ट पहुँचाता है , तो वह दस प्रकार के कष्टों का अनुभव करेगा ।

यदि कोई किसी निर्दोष पर हमला करता है, या निर्दोष प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसे यहीं और अभी दस कष्टदायी अवस्थाओं का सामना करना पड़ेगा, जिनमें से किसी एक में वह निश्चित रूप से गिरेगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 138)

चरणं वेदानां जानिं शरीरं भेदानं वा
अपि गरुकां अबाधं वा चित्तक्षेपं वा पापुने

फरुसाम् [ pharusa ]: गंभीर; वेदनम् [ vedana ]: पीड़ा ; जानीम् [ jāni ]: विपत्ति; शरीरस भेदनम् [ bhedana ]: शारीरिक क्षति; वा अपि : भी; गरुकम् आबाधम् [ ābādha ]: गंभीर बीमारी; चित्तक्खेपम् [ cittakkhepa ]: मानसिक विकार; पापुणे : घटित होगा।

निर्दोष, निर्दोष संतों को पीड़ा पहुँचाने वालों को निम्नलिखित दस प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे: गंभीर पीड़ा; विपत्ति; शारीरिक चोट; गंभीर बीमारी; मानसिक विकार।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 139)

राजतो उपसग्गं वा दारुणं अबभक्खाणं वा
नातीनं परिक्खयं वा भोगानं पभंगुरं वा

राजतो [ राजता ]: राजाओं से; उपसग्गं वा : परेशानी; दारुणम् [ दारुण ]: कब्र; अबभक्खानां [ अब्भक्खाना ]: आरोप; वा नातिनां [ नातिना ]: रिश्तेदारों का; परिक्खयं [ परिक्खय ]: हानि; भोगानं पभंगुरं [ पभंगुरं ]: संपत्ति की हानि

शासकों से परेशानी; गंभीर आरोप; रिश्तेदारों की हानि; संपत्ति की हानि।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 140)

अथा इवा अस्सा अगारनि पावको अग्गि हहति सो
दुप्पन्नो कायस्सा भेदा निरयं उपपज्जति

atha ivā : अन्यथा; assa : उसके; agārāni pāvako aggi ḍahati : घरों को आग जला देगी; so duppañño [ duppañña ]: वह अज्ञानी व्यक्ति; kāyassa bhedā : शरीर के विघटन पर; nirayaṃ [ niraya ]: नरक में; upapajjati : जन्म लेगा

अन्यथा, उसके घर आग से जल जाएंगे और मृत्यु के बाद वह दुष्ट व्यक्ति नरक में पुनर्जन्म लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 137-140)

आदरणीय मोग्गलाना : ये चार श्लोक मुख्य शिष्य मोग्गलाना के दुखद निधन से संबंधित हैं। यदि सारिपुत्त को बुद्ध के दाहिनी ओर का मुख्य शिष्य माना जा सकता है, तो मोग्गलाना उनके बाईं ओर के मुख्य शिष्य थे। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और वे कई पूर्व जन्मों से एक दूसरे के साथ जुड़े रहे; अंतिम जन्म में भी वे एक दूसरे के साथ थे। यह विश्व की सबसे पुरानी ज्ञात मित्रताओं में से एक है। आदरणीय मोग्गलाना मानसिक शक्ति में श्रेष्ठ संघ के प्रमुख थे। एक बार नंदोपानंद नामक नागों का राजा, जो अपनी मानसिक शक्तियों के लिए भी प्रसिद्ध था, बुद्ध और कुछ अरहतों को धमका रहा था। नागों के राजा को वश में करने के लिए बुद्ध को संघ के विभिन्न सदस्यों से प्रस्ताव प्राप्त हुए। अंत में आदरणीय मोग्गलाना की बारी आई और बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्हें पता था कि वे इस कार्य को पूरा करने में सक्षम हैं। इसका परिणाम नाग राजा के साथ एक मानसिक संघर्ष था, जिसमें नाग राजा पराजित हुए और उन्होंने शांति की भीख मांगी। इस पूरे संघर्ष के दौरान बुद्ध उपस्थित थे।

इस महान पराक्रम का वर्णन जयमंगल गाथा के सातवें श्लोक में मिलता है, जिसका पाठ लगभग हर बौद्ध समारोह में किया जाता है। चाहे स्वर्ग के शासक सक्का के संगमरमर के महल को अपने अंगूठे से हिलाना हो या नरक का भ्रमण करना हो, वे दोनों ही स्थितियों में सहज थे। इन भ्रमणों ने उन्हें एक प्रकार का सूचना केंद्र बना दिया। वे इस पृथ्वी पर रहने वालों को उनके पूर्व मित्रों या रिश्तेदारों के भाग्य का सजीव वर्णन कर सकते थे। कैसे बुरे कर्मों के कारण कुछ लोग नरक में अपमानजनक पुनर्जन्म पाते हैं, और अच्छे कर्मों के कारण अन्य लोग छह स्वर्गों में से किसी एक में शुभ पुनर्जन्म पाते हैं। इन कार्यों ने उनके संप्रदाय को बहुत प्रसिद्धि दिलाई, जिससे अन्य संप्रदायों को बहुत कष्ट हुआ। उनका जीवन एक उदाहरण और एक गंभीर चेतावनी है। यहां तक कि एक प्रमुख शिष्य, जो इतने वीरतापूर्ण कार्यों में सक्षम था, भी सुदूर अतीत में किए गए बुरे कर्मों के अवशेष से अछूता नहीं था। यह एक जघन्य अपराध था। उन्होंने अत्यंत घृणित परिस्थितियों में माता-पिता की हत्या की थी। नरक में अनेक जन्म भी उस जघन्य कर्म के बुरे प्रभावों को पूरी तरह से मिटा नहीं सके। बहुत समय पहले, अपनी युवा पत्नी की इच्छा पूरी करने के लिए, जिसका एकमात्र जुनून अपने सास-ससुर से छुटकारा पाना था, वह अपने वृद्ध माता-पिता को जंगल में ले गया, मानो किसी यात्रा पर जा रहा हो। वहाँ उसने रास्ते में रोककर उन्हें लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला। माता-पिता चीखते-चिल्लाते अपने बेटे से विनती कर रहे थे कि वह लुटेरों से बच निकले, जिन्हें वे अपने ऊपर हमला करने वाला समझ रहे थे। ऐसी क्रूरता के बावजूद, उसके माता-पिता का प्रेम अत्यंत मार्मिक था। मोग्गलाना के अंतिम जन्म में, वह कर्म के निर्दयी प्रभाव से बच नहीं सका। क्योंकि अरहत के परिनिर्वाण से कर्म के अच्छे या बुरे प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। वह दो बार लुटेरों के जाल में फँसा, लेकिन हर बार बच निकला। परन्तु तीसरी बार, उसने अपनी दिव्य दृष्टि से भागने की निरर्थकता देख ली। उसे इतनी बेरहमी से पीटा गया कि उसका शरीर एक बोरी में भी डाला जा सकता था। परन्तु मृत्यु को ही उसका भाग्य निर्धारित था। ऐसा लिखा है कि एक प्रमुख शिष्य को न केवल बुद्ध से पहले मर जाना चाहिए, बल्कि उनकी मृत्यु से पहले उनका उपचार ( परिनिर्वाण ) भी करना चाहिए, चमत्कारिक कार्य करने चाहिए और विदाई में श्लोक बोलने चाहिए, और बुद्ध को बदले में उनके गुणों का वर्णन करना चाहिए। वे भी अपवाद नहीं थे। इस तरह एक गौरवशाली जीवन का अंत हुआ।

महान संघ ने एक सबसे ऊर्जावान व्यक्तित्व को खो दिया। मुख्य शिष्य मोग्गलाना की जीवन कहानी सह-मुख्य शिष्य सारिपुत्त की जीवन कहानी से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है।

राजगृह से कुछ ही दूरी पर उपतिस्सा नामक गाँव में, जिसे नालक के नाम से भी जाना जाता है, सारिपुत्त नाम का एक अत्यंत बुद्धिमान युवक रहता था। गाँव के प्रमुख परिवार से होने के कारण उसे उपतिस्सा भी कहा जाता था। ब्राह्मण धर्म में पले-बढ़े होने के बावजूद, जीवन के प्रति उनके व्यापक दृष्टिकोण और परिपक्व ज्ञान ने उन्हें अपने पैतृक धर्म को त्यागकर बुद्ध गौतम की अधिक सहिष्णु और वैज्ञानिक शिक्षाओं को अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनके भाई-बहनों ने भी उनके इस नेक उदाहरण का अनुसरण किया। उनके पिता, वांगंत, स्पष्ट रूप से ब्राह्मण धर्म का पालन करते थे। उनकी माता, जो पुत्र के बौद्ध बनने से असंतुष्ट थीं, ने अपने निधन के समय स्वयं बौद्ध धर्म अपना लिया।

उपतिस्सा का पालन-पोषण विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ। उन्हें कोलिता, जिन्हें मोग्गलाना के नाम से भी जाना जाता था, में एक घनिष्ठ मित्र मिला, जिनके साथ उनका प्राचीन काल से गहरा संबंध था। एक दिन, जब वे दोनों एक पहाड़ी पर उत्सव मना रहे थे, तब उन्हें अहसास हुआ कि सभी इंद्रिय सुख कितने व्यर्थ और क्षणभंगुर हैं। उन्होंने तुरंत संसार त्यागकर मोक्ष का मार्ग खोजने का निश्चय किया। वे शांति की खोज में स्थान-स्थान भटकते रहे।

दोनों युवा साधक सर्वप्रथम संजय के पास गए, जिनके बहुत से अनुयायी थे, और उनसे दीक्षा लेने का निश्चय किया। शीघ्र ही उन्होंने अपने गुरु द्वारा प्रदत्त अल्प ज्ञान प्राप्त कर लिया, परन्तु उनकी शिक्षाओं से असंतुष्ट होकर, क्योंकि उन्हें उस सर्वव्यापी पीड़ा का कोई समाधान नहीं मिला जिससे मानवता ग्रस्त है, उन्होंने संजय को त्याग दिया और शांति की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध ब्राह्मणों और तपस्वियों से संपर्क किया, परन्तु हर जगह निराशा ही हाथ लगी। अंततः वे अपने गाँव लौट आए और आपस में यह निश्चय किया कि जो भी सबसे पहले मार्ग की खोज करेगा, वही दूसरे को सूचित करेगा।

उसी समय बुद्ध ने अपने पहले साठ शिष्यों को विश्व में परम धम्म का प्रचार करने के लिए भेजा। बुद्ध स्वयं उरुवेला की ओर प्रस्थान कर गए, और उनके पहले पाँच शिष्यों में से एक पूज्य अस्सजी राजगृह की दिशा में गए।

अब साधकों के अच्छे कर्मों का प्रभाव प्रकट हुआ, मानो वे सहानुभूति भरी दृष्टि से उनकी आध्यात्मिक प्रगति को देख रहे हों। उपतिस्सा राजगृह नगर में घूमते हुए संयोगवश एक तपस्वी से मिले, जिनका आदरणीय रूप और संतमय आचरण ने तुरंत उनका ध्यान आकर्षित कर लिया। इस तपस्वी की आँखें उनसे कुछ दूरी पर झुकी हुई थीं, और उनके शांत चेहरे पर गहरी शांति झलक रही थी। सुगठित शरीर और सुव्यवस्थित वस्त्रों के साथ, यह आदरणीय व्यक्ति संयमित कदमों से एक द्वार से दूसरे द्वार तक जाते हुए, दानवीर द्वारा उनके कटोरे में रखे गए भोजन के निवाले ग्रहण कर रहे थे। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैंने पहले कभी ऐसा तपस्वी नहीं देखा। निश्चय ही, वे अर्हतत्व प्राप्त कर चुके होंगे, या अर्हतत्व की ओर ले जाने वाले मार्ग का अनुसरण कर रहे होंगे। अगर मैं उनके पास जाकर पूछूँ, 'हे महाराज, आपने संसार का त्याग किसके लिए किया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?'"

उपतिस्सा ने उनसे प्रश्न न करने का निर्णय लिया, क्योंकि उन्हें लगा कि इससे उनकी मौन भिक्षायात्रा में बाधा उत्पन्न होगी। अरहत अस्सजी ने अपनी थोड़ी सी आवश्यकता पूरी कर ली थी और भोजन करने के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहे थे। यह देखकर उपतिस्सा ने सहर्ष उन्हें अपनी कुर्सी और अपने घड़े से जल प्रदान किया। इस प्रकार शिष्य के प्रारंभिक कर्तव्यों का पालन करते हुए उन्होंने उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और आदरपूर्वक पूछा, "आदरणीय, आपकी इंद्रियाँ शांत और निर्मल हैं, आपकी त्वचा निर्मल और सुंदर है। आपने संसार का त्याग किसके लिए किया है? आपके गुरु कौन हैं? आप किस सिद्धांत का पालन करते हैं?" सभी महान पुरुषों के स्वभाव के अनुरूप, सरलता से अरहत अस्सजी ने उत्तर दिया, "भाई, मैं संघ में अभी नया हूँ और मैं आपको धम्म का विस्तृत उपदेश नहीं दे सकता।"

"मैं उपतिस्सा हूँ, पूज्यवर। आप अपनी क्षमता के अनुसार कम या ज्यादा बोलें, इसे सौ या हजार तरीकों से समझना मेरा काम है।"

"थोड़ा बोलो या ज्यादा," उपतिस्सा ने आगे कहा, "मुझे सिर्फ सारगर्भित बात बताओ। मुझे सिर्फ सारगर्भित बात चाहिए। मात्र शब्दों का बेतरतीब संग्रह किसी काम का नहीं।"

आदरणीय असजी ने चार पंक्तियों का एक श्लोक सुनाकर, कारण और परिणाम के नियम की सत्यता पर गुरु के गहन दर्शन को कुशलतापूर्वक संक्षेप में प्रस्तुत किया।

Ye dhammā hetuppabhavā
tesaṃ hetuṃ tathāgato
Aha tesañ ca yo nirodho
evaṃ vādi mahā samano .

(जिन चीजों का कोई कारण होता है, उनके कारण और समाप्ति के बारे में बुद्ध ने बताया है। महान तपस्वी यही शिक्षा देते हैं।)

उपतिस्सा इतने प्रबुद्ध थे कि वे इतने सरल शब्दों में व्यक्त किए गए इतने उच्च कोटि के उपदेश को भी समझ सके। सत्य को जानने के लिए उन्हें केवल एक संकेत की आवश्यकता थी। पूज्य अस्सजी ने उन्हें उनके आध्यात्मिक मार्ग पर इतनी कुशलता से मार्गदर्शन किया कि पहली दो पंक्तियाँ सुनते ही उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था, सोतापत्ति प्राप्त कर ली । नवदीक्षित उपतिस्सा निस्संदेह अपने पूज्य गुरु को बुद्ध के उदात्त उपदेशों से परिचित कराने के लिए हार्दिक धन्यवाद देने के लिए शब्दहीन रहे होंगे। उन्होंने सत्य के उनके उत्कृष्ट स्पष्टीकरण के लिए अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त की और गुरु के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बाद उनसे विदा ली। बाद में, अपने गुरु के प्रति उनकी भक्ति ऐसी थी कि जब से उन्होंने पूज्य अस्सजी से धम्म का ज्ञान प्राप्त किया, वे जिस भी दिशा में अपने गुरु के निवास की खबर सुनते, उस दिशा में श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते और सोते समय अपना सिर उसी दिशा में घुमाते।

अब, समझौते के अनुसार, वे अपने साथी कोलिता को यह शुभ समाचार देने के लिए लौट आए। कोलिता, जो अपने मित्र के समान ही प्रबुद्ध थे, ने भी संपूर्ण श्लोक सुनकर संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त कर ली। शांति की अपनी सफल खोज से प्रसन्न होकर, वे अपने कर्तव्य के अनुसार अपने गुरु संजय से मिलने गए, ताकि उन्हें नए सिद्धांत में परिवर्तित कर सकें। अपने प्रयास में असफल होने पर, उपतिस्सा और कोलिता, संजय के कई अनुयायियों के साथ, जो सहर्ष उनके साथ शामिल हो गए, अपने प्रख्यात गुरु बुद्ध से मिलने के लिए वेलुवन मठ गए।

उनकी प्रार्थना का पालन करते हुए, बुद्ध ने मात्र "एथा भिक्खवे !" (आओ, हे भिक्षुओं!) कहकर उन दोनों को संघ में प्रवेश दे दिया। पखवाड़े भर बाद, पूज्य सारिपुत्त ने बुद्ध द्वारा विचरणरत तपस्वी दीघनाखा को वेदना परिग्ह सूत्र का उपदेश देते हुए सुनकर अर्हतत्व प्राप्त किया । उसी दिन शाम को, बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने चारों ओर एकत्रित किया, और संघ में प्रथम और द्वितीय शिष्यों के उच्च पद क्रमशः पूज्य उपतिस्सा (सारिपुत्त) और कोलिता (मोग्गलाना) को प्रदान किए गए, जिन्होंने एक सप्ताह पहले ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 141

(धम्मपद 137, 138, 139 और 140) <<<< पिछला|| धम्मपद141 ||अगला >>>> (धम्मपद142)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 141 - बहुभांडिका भिक्खु वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

न नग्गाकारिया न जाता न पंका
nanasaka thandilasayika va
rajojallam ukkutikappadhanam
सोधेन्ति मैक्कम अवितिन्नकनखम।

---

श्लोक 141 : न तो नंगा चलना, न ही जटाधारी बाल रखना, न ही कीचड़ से खुद को लपेटना, न उपवास करना, न नंगी जमीन पर सोना, न धूल से खुद को ढकना, न ही उकड़ू बैठकर प्रयास करना, उस प्राणी को शुद्ध कर सकता है जिसने अभी तक संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है।

---

भिक्खु बहुभांडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (141) का उच्चारण किया, जो बहुभंडिका नामक एक भिक्षु के संदर्भ में था, जिसके पास बहुत सारी संपत्ति थी।

सावत्थी में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, उसने भिक्षु बनने का निश्चय किया। लेकिन संघ में प्रवेश करने से पहले, उसने एक मठ बनवाया, जिसमें एक रसोईघर और एक भंडारगृह था। वह अपने साथ फर्नीचर, बर्तन और चावल, तेल, मक्खन और अन्य खाद्य सामग्री का बड़ा भंडार भी लाया था। वह जो भी खाना चाहता, उसके नौकर उसके लिए पकाते थे। इस प्रकार, भिक्षु रहते हुए भी वह सुख-सुविधाओं में रहता था, और अपने साथ इतनी सारी चीजें होने के कारण वह 'बहुबंधिका' के नाम से जाना जाता था। एक दिन, अन्य भिक्षु उसे बुद्ध के पास ले गए, और बुद्ध के सामने उसने बताया कि वह अपने साथ मठ में कितनी सारी चीजें लाया है, और यह भी कि वह अभी भी एक धनी व्यक्ति की तरह विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है। तब बुद्ध ने बहुबंधिका से कहा, "मेरे पुत्र, मैं तुम सबको संयमी जीवन जीने की शिक्षा देता रहा हूँ; तुम अपने साथ इतनी सारी संपत्ति क्यों लाए हो?" इतनी डांट सुनकर भी वह भिक्षु क्रोधित हो गया और गुस्से से बोला, "जी हां, पूज्यवर! अब मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही जीवन व्यतीत करूंगा।" ऐसा कहते हुए उसने अपना ऊपरी वस्त्र उतार दिया।

उसे इस प्रकार देखकर बुद्ध ने उससे कहा, "मेरे पुत्र, अपने पिछले जन्म में तुम एक राक्षस थे; राक्षस होते हुए भी तुममें लज्जा और बुराई करने का भय था। अब जब तुम मेरे उपदेशों में भिक्षु हो, तो तुम्हें लज्जा और बुराई करने के भय को क्यों त्यागना है?" ये शब्द सुनकर भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ; उसकी लज्जा और बुराई करने का भय फिर से जागृत हो गया, और उसने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और क्षमा मांगी। तब बुद्ध ने उससे कहा, "वहाँ बिना वस्त्र के खड़े रहना उचित नहीं है; केवल वस्त्र आदि त्याग देने से तुम तपस्वी भिक्षु नहीं बन जाते; भिक्षु को अपने संशय का भी त्याग करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 141 : न तो नंगा चलना, न ही जटाधारी बाल रखना, न ही कीचड़ से खुद को लपेटना, न उपवास करना, न नंगी जमीन पर सोना, न धूल से खुद को ढकना, न ही उकड़ू बैठकर प्रयास करना, उस प्राणी को शुद्ध कर सकता है जिसने अभी तक संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय बहुभांडिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बहुभांडिक नामक एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसके पास बहुत सी संपत्ति थी।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक धनी व्यक्ति रहता था। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, उसने भिक्षु बनने का निश्चय किया। संघ में प्रवेश करने से पहले, उसने एक मठ बनवाया, जिसमें एक रसोईघर और एक भंडारगृह था। वह अपने साथ फर्नीचर, बर्तन और चावल, तेल, मक्खन और अन्य खाद्य सामग्री का बड़ा भंडार भी लाया था। उसके नौकर उसकी इच्छा के अनुसार व्यंजन बनाते थे। इस प्रकार, भिक्षु रहते हुए भी वह सुख-सुविधाओं में रहता था, और इतनी सारी संपत्ति होने के कारण वह बहुभांडिक के नाम से जाना जाता था। एक दिन, अन्य भिक्षु उसे बुद्ध के पास ले गए, और उनके सामने उसने बुद्ध को बताया कि वह अपने साथ मठ में कितनी सारी चीजें लाया है, और यह भी कि वह अभी भी एक धनी व्यक्ति की तरह विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है। तब बुद्ध ने बहुभांडिक से कहा, "मेरे पुत्र, मैंने तुम सबको संयमी जीवन जीने की शिक्षा दी है; तुम इतनी सारी संपत्ति अपने साथ क्यों लाए हो?" इतनी डांट सुनकर भी वह भिक्षु क्रोधित हो गया और गुस्से से बोला, "जी हां, पूज्यवर! अब मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही जीवन व्यतीत करूंगा।" ऐसा कहते हुए उसने अपना ऊपरी वस्त्र उतार दिया।

उसे इस प्रकार देखकर बुद्ध ने उससे कहा, "मेरे पुत्र, अपने पिछले जन्म में तुम एक दुष्ट आत्मा थे; दुष्ट आत्मा होने पर भी तुममें लज्जा और बुराई करने का भय था। अब जब तुम मेरे उपदेशों में भिक्षु हो, तो तुम्हें लज्जा और बुराई करने के भय को क्यों त्यागना है?" ये शब्द सुनकर भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ; उसकी लज्जा और बुराई करने का भय फिर से जागृत हो गया, और उसने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और क्षमा मांगी। तब बुद्ध ने उससे कहा, "वहाँ बिना वस्त्र के खड़े रहना उचित नहीं है; केवल वस्त्र आदि त्याग देने से तुम कठोर भिक्षु नहीं बन जाते; एक भिक्षु को अपने संशय का भी त्याग करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 141)

नग्गाकारिया न जाता न पंका न अनासका न थंडिलसायिका वा ,

रजो जलं वा उक्कुटिकप्पाधनं वा अवितिण्-कंखं मक्कं न सोधेन्ति

naggacariyā : नग्न अवस्था में घूमने से; jaṭā : उलझे हुए बालों से; paṅkā : शरीर पर मिट्टी मलने से; ānāsakā : उपवास करने से; thaṇḍilasāyikā vā : यहाँ तक कि नंगी ज़मीन पर लेटने से भी; rajo jallaṃ vā : शरीर पर धूल जमा करने से; ukkuṭikappadhānaṃ [ ukkuṭikappadhāna ] : उकड़ू बैठने से; avitiṇṇa-kaṅkhaṃ [ kaṅkha ] : जो अपने मन के व्याकुलता पर विजय प्राप्त नहीं कर सका; maccaṃ [ macca ] : नश्वर; na sodhenti : आध्यात्मिक रूप से शुद्ध नहीं होगा

आत्मा की शुद्धि चाहने वाला व्यक्ति नग्न अवस्था में घूमने का अनुष्ठान कर सकता है; या पगड़ी पहन सकता है; अपने शरीर पर मिट्टी मल सकता है; शुद्धता प्राप्त करने के लिए भोजन का त्याग भी कर सकता है; नंगी ज़मीन पर लेट सकता है; या अपने पूरे शरीर पर धूल मल सकता है। कुछ लोग उकड़ू आसन का अभ्यास भी करते हैं। लेकिन यदि मन की चंचलता पर विजय प्राप्त नहीं की गई है, तो ये सभी उपाय व्यक्ति को आध्यात्मिक शुद्धता प्रदान नहीं करेंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 141)

na naggacariyā : नग्न होकर भटकने से नहीं। यह श्लोक विभिन्न तपस्वियों और मुक्ति चाहने वालों द्वारा पालन किए जाने वाले असंख्य रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को संदर्भित करता है। उनके भ्रामक प्रयासों पर यहाँ विचार किया गया है।

जंबुद्वीप में आज भी व्यायाम विद्या का अभ्यास किया जाता है। कुछ लोग बाहरी गंदगी को संतत्व का प्रतीक मानते हैं। बुद्ध ने ऐसी बाहरी चीजों तक सीमित कठोर तपस्या की निंदा की है। उनके ब्रह्मचारी संघ के सदस्य मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं, आत्म-यातना और आत्म-भोग की अति से बचते हैं। सादगी, नम्रता और दरिद्रता भिक्षुओं के प्रमुख गुण होने चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे स्वच्छता। मूर्ख लोग उलझे हुए बालों को बिना धोए पवित्रता का प्रतीक मानते हैं। केवल दांत साफ न करना, शरीर पर मिट्टी मलना और उपवास करना शुद्धि की ओर नहीं ले जाता। भिक्षु दोपहर से लेकर अगली सुबह तक प्रतिदिन उपवास करते हैं। जमीन पर सोने से पवित्रता प्राप्त नहीं होती। भिक्षु केवल आलीशान और ऊंचे पलंगों से परहेज करते हैं। कुछ तपस्वियों द्वारा आज भी शरीर पर राख मलने का अभ्यास किया जाता है।

सतही रीति-रिवाजों और प्रतिज्ञाओं से व्यक्ति शुद्ध नहीं होता, चाहे उनका अभ्यास कितने भी समय तक किया जाए। जब तक मन अच्छे और बुरे के बीच डगमगाता रहता है (और उसमें वह स्थिरता नहीं आ जाती जहाँ मन बिना किसी संकोच के अच्छाई पर स्थिर हो जाता

है), तब तक मन की शुद्धता प्राप्त नहीं होती। डगमगाहट पर विजय पाना ही इस स्थिरता की प्राप्ति है, जो मानसिक शुद्धि की प्रक्रिया का आरंभ है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 142

———————————————————————

(धम्मपद141) <<<< पिछला|| धम्मपद142 ||अगला >>>> (धम्मपद 143 और 144)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 142 - संतति महामत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Alankato cepi samam careyya
santo danto niyato brahmacari
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डम्
सो ब्रम्हणो सो समानो स भिक्खु(1)

———————————————————————

श्लोक 142 : यद्यपि वह सुंदर वस्त्र पहने हो, यदि वह शांत हो, नैतिक विकारों से मुक्त हो और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे, यदि वह मार्ग अंतर्दृष्टि में स्थापित हो, यदि वह शुद्ध हो और सभी प्राणियों के प्रति शत्रुता (यानी, शस्त्र) त्याग दे, तो वह वास्तव में ब्राह्मण, समन और भिक्षु है।

———————————————————————

1. टीका के अनुसार, इस संदर्भ में ब्राह्मण, समन और भिक्षु सभी अरहत हैं।

———————————————————————

संतति मंत्री की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के मंत्री संतति के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (142) कहा।

एक बार, मंत्री संतति सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर लौटे। राजा पसेनदी (प्रसेनजित) उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मंत्री को एक शासक के धन-दौलत और वैभव का उपहार दिया, साथ ही सात दिनों के मनोरंजन के लिए एक नर्तकी भी दी। सात दिनों तक, राजा के मंत्री ने खूब मौज-मस्ती की, शराब के नशे में चूर रहे और उस युवती के प्रति आसक्त होते रहे। सातवें दिन, अलंकृत राज हाथी पर सवार होकर वे नदी में स्नान करने गए। रास्ते में, उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई जो भिक्षा मांग रहे थे। नशे में होने के कारण उन्होंने बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया। बुद्ध मुस्कुराए और आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। तब बुद्ध ने आनंद से कहा, "आनंद, यह मंत्री आज ही मुझसे मिलने आएगा और मेरे संक्षिप्त प्रवचन के बाद अर्हत बन जाएगा। अर्हत बनने के तुरंत बाद वह परिनिर्वाण प्राप्त कर लेगा।"

संतति और उनके साथियों ने पूरा दिन नदी किनारे स्नान करने, खाने-पीने और खूब आनंद उठाने में बिताया। शाम को मंत्री और उनके साथी और पेय लेने तथा नर्तकी के मनोरंजन के लिए बगीचे में गए। नर्तकी ने भी मंत्री का मनोरंजन करने की पूरी कोशिश की। पूरे सप्ताह उसने खुद को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए कम भोजन किया था। नृत्य करते समय उसे तीव्र आघात लगा और वह गिर पड़ी, और उसी क्षण उसकी आंखें और मुंह खुले रह गए और उसकी मृत्यु हो गई। मंत्री को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। व्यथित होकर उन्होंने सहारा ढूंढने की कोशिश की और उन्हें बुद्ध याद आए। वे अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध के पास गए और नर्तकी की अचानक

मृत्यु के कारण अपने दुःख और पीड़ा के बारे में उन्हें बताया। फिर उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! कृपया मुझे मेरे दुःख से उबरने में सहायता करें; मेरी शरण बनें और मुझे मन की शांति प्रदान करें।" बुद्ध ने उनसे कहा, "निश्चिंत रहो मेरे पुत्र, तुम एक ऐसे व्यक्ति के पास आए हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है, जो तुम्हारा निरंतर सहारा और शरणस्थली होगा। इस नर्तकी की मृत्यु के कारण तुमने जन्म-जन्मांतर के चक्र में जितने आँसू बहाए हैं, वे समस्त सागरों के जल से भी अधिक हैं।" इसके बाद बुद्ध ने मंत्री को श्लोक में उपदेश दिया। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है।

"अतीत में तुम्हारे भीतर व्यथा (उपादान) थी; इसे त्याग दो। भविष्य में भी ऐसी व्यथा न होने दो। वर्तमान में भी किसी प्रकार की व्यथा न रखो; व्यथा न होने से व्यथा और वासना शांत हो जाएगी और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।"

श्लोक सुनने के बाद मंत्री ने अर्हतत्व प्राप्त किया। तब, जब उन्हें एहसास हुआ कि उनका जीवनकाल समाप्त हो रहा है, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! अब मुझे परिनिर्वाण प्राप्त करने दीजिए, क्योंकि मेरा समय आ गया है।" बुद्ध की सहमति से, संतति सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक आकाश में उठे और वहाँ अग्नि तत्व (तेजो कसिना) का ध्यान करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर उनका प्राण त्याग दिया गया। उनका शरीर ज्वाला में जल उठा, उनका रक्त और मांस जलकर राख हो गया और अस्थि अवशेष (धातु) आकाश से गिरकर उस स्वच्छ वस्त्र पर गिरे जिसे भिक्षुओं ने बुद्ध के निर्देशानुसार बिछाया था।

सभा में भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर! मंत्री ने पूर्ण वस्त्र धारण करके परिनिर्वाण प्राप्त किया है; क्या वे ब्राह्मण और समन दोनों हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! मेरे पुत्र को समन और ब्राह्मण दोनों कहा जा सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 142 : यद्यपि वह सुंदर वस्त्र पहने हो, यदि वह शांत हो, नैतिक विकारों से मुक्त हो और अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे, यदि वह मार्ग अंतर्दृष्टि में स्थापित हो, यदि वह शुद्ध हो और सभी प्राणियों के प्रति शत्रुता (यानी, शस्त्र) त्याग दे, तो वह वास्तव में ब्राह्मण, समन और भिक्षु है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

संतति मंत्री की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी के मंत्री संतति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, मंत्री संतति सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर लौटे। राजा पसेनादि उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मंत्री को एक शासक के धन-दौलत और वैभव का उपहार दिया, साथ ही सात दिनों तक उनका मनोरंजन करने के लिए एक नर्तकी भी दी। सातवें दिन, अलंकृत राज हाथी पर सवार होकर वे नदी किनारे स्नान करने गए। रास्ते में उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई जो भिक्षा मांग रहे थे। नशे में होने के कारण उन्होंने बुद्ध को आदरपूर्वक प्रणाम किया। बुद्ध मुस्कुराए और आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। तब बुद्ध ने आनंद से कहा, "आनंद, यह मंत्री आज ही मुझसे मिलने आएगा और मेरे संक्षिप्त प्रवचन के बाद वह अरहत बन जाएगा। अरहत बनने के तुरंत बाद उसे परिनिर्वाण प्राप्त हो जाएगा।"

संतति और उनके साथियों ने पूरा दिन नदी किनारे स्नान करने, खाने-पीने और खूब आनंद उठाने में बिताया। शाम को मंत्री और उनके साथी और पेय लेने तथा नर्तकी के मनोरंजन के लिए बगीचे में गए। नर्तकी ने भी मंत्री का मनोरंजन करने की पूरी कोशिश की। पूरे सप्ताह उसने खुद को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए कम भोजन किया था। नृत्य करते समय उसे तीव्र आघात लगा और वह गिर पड़ी, और उसी क्षण उसकी आंखें और मुंह खुले रह गए और उसकी मृत्यु हो गई। मंत्री को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। व्यथित होकर उन्होंने सहारा ढूंढने की कोशिश की और उन्हें बुद्ध याद आए। वे अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध के पास गए और नर्तकी की अचानक मृत्यु के कारण अपने दुःख और पीड़ा के बारे में उन्हें बताया। फिर उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! कृपया मुझे मेरे दुःख से उबरने में सहायता करें; मेरी शरण बनें और मुझे मन की शांति प्रदान करें।" बुद्ध ने उनसे कहा, "निश्चिंत रहो मेरे पुत्र, तुम उसके पास आए हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है, जो तुम्हारा निरंतर सहारा और शरणस्थल होगा। इस नर्तकी की मृत्यु के कारण तुमने जन्म-जन्मांतर के चक्र में जितने आँसू बहाए हैं, वे समस्त सागरों के जल से भी अधिक हैं।" तब बुद्ध ने मंत्री को श्लोक में उपदेश दिया। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है: "भूतकाल में तुम्हारे भीतर भोग-विलास के कारण आसक्ति ( उपादान ) थी; इसे त्याग दो। भविष्य में ऐसी आसक्ति अपने भीतर न आने दो। वर्तमान में भी किसी प्रकार की आसक्ति न रखो; आसक्ति न होने से भोग-विलास और वासना शांत हो जाएगी और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।"

श्लोक सुनने के बाद मंत्री ने अर्हतत्व प्राप्त किया। तब, जब उन्हें एहसास हुआ कि उनका जीवनकाल समाप्त हो रहा है, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! अब मुझे परिनिर्वाण (महान मृत्यु) प्राप्त करने दीजिए, क्योंकि मेरा समय आ गया है।" बुद्ध की सहमति से, संतति सात ताड़ के पेड़ों की ऊँचाई तक आकाश में उठे और वहाँ अग्नि तत्व ( तेजो कसिना ) का ध्यान करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त कर उनका अंत हो गया। उनका शरीर ज्वाला में जल उठा, उनका रक्त और मांस जलकर राख हो गया और अस्थि अवशेष ( धातु ) आकाश से

गिरे और उस स्वच्छ वस्त्र पर गिरे जिसे भिक्षुओं ने बुद्ध के निर्देशानुसार बिछाया था। भिक्षुओं ने पूछा, “मंत्री ने पूर्ण वस्त्र धारण किए हुए परिनिर्वाण प्राप्त किया; क्या वे समन हैं या ब्राह्मण?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “मेरे पुत्र को समन और ब्राह्मण दोनों कहा जा सकता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 142)
अलंकातो एपी सीई संतो दंतो नियतो ब्रह्मचारी समं कैरेया
सब्बेसु भूतेसु दण्डं निधाय सो ब्राह्मणो सो समानो स भिक्खु
अलॅंकतो अपि : भले ही कोई व्यक्ति आकर्षक ढंग से कपड़े पहने हो; चे : यदि; संतो : शांत; दन्तो : संयमित; नियतो : निश्चित मुक्ति वाला; ब्रह्मचारी : उच्चतर जीवन व्यतीत करने वाला; समं : विनम्र; करेय्य : व्यवहार करने वाला; सब्बेसु भूतेसु : प्रत्येक प्राणी के प्रति; दण्डं : हिंसा ; निधाय : त्यागने वाला (परहेज़ करने वाला); सो ब्राह्मणो : वह वास्तव में एक पुजारी है; सो समणो : वह वास्तव में एक तपस्वी है; स भिक्खु : वह वास्तव में एक भिक्षु है
भले ही कोई व्यक्ति आकर्षक वस्त्र पहने हो, उसका व्यवहार सौहार्दपूर्ण होता है। वह शांत, संयमित और मोक्ष के प्रति आश्वस्त होता है। वह धार्मिक जीवन व्यतीत करता है। वह प्राणियों के प्रति हिंसक नहीं होता। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में ब्राह्मण , तपस्वी और भिक्षु होता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 142)
ब्रह्मचर्या : शुद्ध (पवित्र) या पवित्र जीवन, यह भिक्षु के जीवन के लिए प्रयुक्त शब्द है। साथ ही, यह उस गृहस्थ भक्त को भी संदर्भित करता है जो आठ नैतिक नियमों का पालन करता है और तीसरे नियम के रूप में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेता है, यानी यौन संबंधों से पूर्ण परहेज करता है। ब्रह्मचर्या का सर्वोच्च लक्ष्य मन की अविचल मुक्ति है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 143,144

———————————————————————

(धम्मपद 142) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 143 और 144 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 145)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 143 और 144 - पायलटिकातिसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Hirinisedho puriso
koci lokasmi vijjati
yo niddam apabodheti
asso bhadro kasamiva.

अस्सो यथा भद्रो कसानिवित्थो
atapino samvegino bhavatha
सद्धया सिलेना सीए विरियेना सीए
समाधिना धम्मविनिच्चयेना(1) सीए
sampannavijjacarana patissata
जहिस्सथा दुक्खमिदम अनप्पकम।

---

श्लोक 143 : इस संसार में ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है जो शर्म के कारण बुराई करने से खुद को रोकता है और अच्छे घोड़े की तरह सतर्क रहता है जिसे कोड़े मारने का कोई कारण नहीं मिलता।

---

श्लोक 144 : जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक के स्पर्श से उत्तेजित हो जाता है, वैसे ही सचेत रहो और पुनर्जन्मों के अंतहीन चक्र (अर्थात संसार) से भयभीत रहो। विश्वास, नैतिकता, प्रयास, एकाग्रता और धर्म के विवेक से नैतिकता के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण हो जाओ और सचेतनता से इस असीम दुःख (संसार/संसार के कष्ट) को त्याग दो।

---

1. धम्मविनिच्येन (धम्म + विनिच्य): धर्म या विधि का विवेक। टीका में इसे कारणकरण जननम् के रूप में समझाया गया है, जिसका अर्थ है चीजों के सही और गलत कारणों को जानना।

---

थेरा पिलोतिकतिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पिलोतिकतिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (143) और (144) का उच्चारण किया। एक बार थेरा आनंद ने एक फटेहाल कपड़े पहने युवक को भीख मांगते देखा; उन्हें उस युवक पर दया आई और उन्होंने उसे समनेर बना दिया। उस युवक ने अपने पुराने कपड़े और भिक्षापात्र एक पेड़ की शाखा पर रख दिए। जब वह भिक्षु बना तो उसे पिलोतिकतिस्सा के नाम से जाना जाने लगा। भिक्षु बनने के बाद उसे भोजन और वस्त्र की चिंता नहीं करनी पड़ती थी क्योंकि वह समृद्ध परिवार में था। फिर भी, कभी-कभी वह भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं होता था और गृहस्थ जीवन में लौटने का विचार करता था। जब भी उसे ऐसा लगता, वह उस पेड़ के पास लौट जाता जहाँ उसने अपने पुराने कपड़े और भिक्षापात्र छोड़े थे। वहाँ, पेड़ की तलहटी में, वह स्वयं से यह प्रश्न पूछता, "हे निर्लज्ज! क्या तुम उस स्थान को छोड़ना चाहते हो जहाँ तुम्हें भरपेट भोजन और वस्त्र मिलते हैं? क्या तुम अब भी ये फटेहाल कपड़े पहनकर, हाथ में यह पुराना थाली लेकर फिर से भीख मांगने जाना चाहते हो?" इस प्रकार, वह स्वयं को फटकारता और शांत होने के बाद मठ में वापस चला जाता।

दो-तीन दिन बाद, उन्हें फिर से भिक्षु जीवन छोड़ने का मन हुआ, और वे फिर से उस वृक्ष के पास गए जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे। अपने आप से वही पुराना प्रश्न पूछने और अपने पुराने जीवन की दयनीयता को याद करने के बाद, वे मठ लौट आए। यह कई बार दोहराया गया। जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे अक्सर उस वृक्ष के पास क्यों जाते हैं जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते हैं, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वे अपने गुरु से मिलने जाते हैं।(2) इस प्रकार अपने पुराने वस्त्रों को ध्यान का विषय बनाकर, उन्होंने खन्धों (अर्थात अनित्य, दुःख, अनात्म) के समुच्चय के वास्तविक स्वरूप को जान लिया, और अंततः वे अरहत बन गए। फिर, उन्होंने वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। अन्य भिक्षुओं ने देखा कि पिलोतिकतिस्सा ने उस वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया है जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे, तो उन्होंने उनसे पूछा, "आप अब अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उनसे कहा, "जब मुझे आवश्यकता थी, तब मुझे उनके पास जाना पड़ा; परन्तु अब मुझे उनके पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।" भिक्षुओं ने जब उनका उत्तर सुना, तो वे उन्हें बुद्ध के दर्शन कराने ले गए। जब वे उनके समक्ष आए, तो उन्होंने कहा, "आदरणीय महोदय! यह भिक्षु दावा करता है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वह अवश्य झूठ बोल रहा होगा।" परन्तु बुद्ध ने उनका खंडन करते हुए कहा, "भिक्षुओं! पिलोतिकतिस्सा झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य कह रहा है। यद्यपि उसका अपने गुरु से पूर्व में संबंध था, परन्तु अब उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं है। थेरा पिलोतिकतिस्सा ने स्वयं को सही और गलत के बीच भेद करना तथा वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को समझना सिखाया है। वह अब अर्हत बन चुका है, अतः उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं रह गया है।"

तब बुद्ध ने श्लोकों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 143 : इस संसार में ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है जो शर्म के कारण बुराई करने से खुद को रोकता है और अच्छे घोड़े की तरह सतर्क रहता है जिसे कोड़े मारने का कोई कारण नहीं मिलता।

---

श्लोक 144 : जैसे एक अच्छा घोड़ा चाबुक के स्पर्श से उत्तेजित हो जाता है, वैसे ही सचेत रहो और पुनर्जन्मों के अंतहीन चक्र (अर्थात संसार) से भयभीत रहो। विश्वास, नैतिकता, प्रयास, एकाग्रता और धर्म के विवेक से नैतिकता के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण हो जाओ, और सजगता से इस असीम दुःख (संसार/संसार के कष्ट) को त्याग दो।

---

(2) शिक्षक: यहाँ पायलटिका के पुराने कपड़ों और उसकी भीख मांगने की थाली का जिक्र है; वे उसके लिए एक शिक्षक की तरह हैं क्योंकि उन्होंने उसे शर्म की गहरी भावना से भर दिया और उसे सही रास्ते पर डाल दिया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय पिलोतिकतिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पिलोतिकतिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक बार पूज्य आनंद ने एक फटेहाल वस्त्रधारी युवक को भीख मांगते देखा; उन्हें उस युवक पर दया आई और उन्होंने उसे सामनेर बना दिया। उस युवा भिक्षु ने अपने पुराने वस्त्र और भिक्षापात्र एक वृक्ष की शाखा पर रख दिए। जब वह भिक्षु बना तो उसे पिलोतिकतिस्सा के नाम से जाना जाने लगा। भिक्षु बनने के बाद उसे भोजन और वस्त्र की चिंता नहीं करनी पड़ती थी क्योंकि वह समृद्ध परिवार में था। फिर भी, कभी-कभी वह भिक्षु जीवन में प्रसन्न नहीं होता था और गृहस्थ जीवन में लौटने का विचार करता था। जब भी उसे ऐसा लगता, वह उस वृक्ष के पास लौट जाता जहाँ उसने अपने पुराने वस्त्र और थाली छोड़ी थी। वहाँ वृक्ष की तलहटी में वह स्वयं से यह प्रश्न पूछता, "हे निर्लज्ज! क्या तू उस स्थान को छोड़ना चाहता है जहाँ तुझे भरपेट भोजन और वस्त्र मिलते हैं? क्या तू फिर से ये फटेहाल वस्त्र पहनकर हाथ में यह पुरानी थाली लेकर भीख मांगने जाना चाहता है?" इस प्रकार वह स्वयं को धिक्कारता और शांत होने के बाद मठ लौट जाता। दो-तीन दिन बाद, उन्हें फिर से भिक्षु जीवन छोड़ने का मन हुआ, और वे फिर से उस वृक्ष के पास गए जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे। अपने आप से वही पुराना प्रश्न पूछने और अपने पुराने जीवन की दयनीयता को याद करने के बाद, वे मठ लौट आए। यह कई बार दोहराया गया। जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि वे अक्सर उस वृक्ष के पास क्यों जाते हैं जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते हैं, तो उन्होंने उन्हें बताया कि वे अपने गुरु से मिलने जाते हैं। इस प्रकार अपने पुराने वस्त्रों को ध्यान का विषय बनाकर, उन्होंने अनित्य , दुःख , अनात्म जैसे खंधों के समूह के वास्तविक स्वरूप को जान लिया और अंततः वे अरहत बन गए। फिर, उन्होंने वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। अन्य भिक्षुओं ने देखा कि पिलोतिकतिस्सा ने उस वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया है जहाँ वे अपने पुराने वस्त्र और थाली रखते थे, तो उन्होंने उनसे पूछा, "आप अब अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उत्तर दिया, 'जब मुझे आवश्यकता हुई, तो मुझे उनके पास जाना पड़ा; लेकिन अब मुझे उनके पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।" जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो वे उन्हें बुद्ध के पास ले गए। जब वे उनके समक्ष आए, तो उन्होंने कहा, "आदरणीय! यह भिक्षु दावा करता है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वह अवश्य झूठ बोल रहा होगा।" लेकिन बुद्ध ने उनका खंडन करते हुए कहा, "भिक्षुओं! पिलोतिकतिस्सा झूठ नहीं बोल रहा है, वह सत्य कह रहा है। यद्यपि उसका अपने गुरु से पूर्व में संबंध था, अब उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं है। आदरणीय पिलोतिकतिस्सा ने स्वयं को सही और गलत कारणों में भेद करने और चीजों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रशिक्षण दिया है। वह अब अर्हत बन चुका है, इसलिए उसका अपने गुरु से कोई संबंध नहीं रह गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 143)

भद्रो अस्सो कासं इव यो निंदां अप्पाबोधति

हिरि निसेधो पुरिसोलोकास्मि कोचि विज्जति

भद्रो अस्सो : अच्छे नस्ल का घोड़ा; कसां इव : घोड़े के चाबुक से; यो : यदि कोई व्यक्ति; निंदां [ ninda ]: अपमान; अप्पबोधति : टालता है; हिरि निसेधो [ निसेधा ]: शर्म के माध्यम से बुराई छोड़ देता है; पुरिसो [ पुरिसा ]: ऐसा व्यक्ति; लोकस्मिं कोचि : दुनिया में शायद ही कभी; विज्जति : देखा जाता है

दुनिया में ऐसा व्यक्ति बहुत कम मिलता है जो शर्म से बंधा रहता है। जैसे एक सलीकेदार घोड़ा कोड़े से बच जाता है, वैसे ही वह अपमान से बचता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 144)

कसा निवित्थो भद्रो अस्सो यथा अतापिनो भवथा ; संवेगिनो भवथा ;

सद्धया च सिलेना च वीरियेन च समाधिना च धम्मविनिच्चयेन च

संपन्नविज्जाचरण पतिसत्ता अनप्पाकं इदं दुक्खं पहस्सथ

कसा : चाबुक से; निविट्ठो : नियंत्रित ; भद्रो : सुसंस्कृत ; असो : घोड़ा; यथा : किस प्रकार; आतापिनो : पश्चात्ताप करते हुए; संवेगिनो: गहरी प्रेरणा से; सद्धाय : भक्ति से; सीलेन च : अनुशासन से; वीरियेन च : और दृढ़ता से; समाधिना च : मानसिक शांति से; धम्मविनिच्येन च : अनुभव की परीक्षा से; संपन्नविज्जाचरणा : सचेत प्रतिक्रिया की प्राप्ति से; पतिसत्ता : आत्मनिरीक्षण से; अनप्पकम् : कम नहीं; idaṃ dukkhaṃ [ dukkha ]: यह पीड़ा; pahassatha : इससे छुटकारा दिलाता है

एक अनुशासित और प्रशिक्षित घोड़े की तरह, जिसे चाबुक से उचित अनुशासन सिखाया गया हो, आप दृढ़ और गंभीर रहें। भक्ति, अनुशासन और दृढ़ता से, और शांत मन से अपने अनुभवों का विश्लेषण करें। सुस्थापित आत्मनिरीक्षण के माध्यम से सचेत प्रतिक्रिया प्राप्त करें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 143-144)

शील : सद्‌गुण। बोधिसत्व की इस असाधारण उदारता के साथ-साथ उनका सदाचारी आचरण ( शील ) भी निहित है। पाली शब्द का अर्थ सद्‌गुण है। इसमें वे कर्तव्य शामिल हैं जिनका पालन करना चाहिए ( चरित्त ) और वे संयम जिनका अभ्यास करना चाहिए ( वरित्त )। माता-पिता, बच्चों, पति, पत्नी, शिक्षकों, शिष्यों, मित्रों, भिक्षुओं, अधीनस्थों आदि के प्रति इन कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन सिगालोवादा सूत्र में किया गया है ।

आम आदमी के कर्तव्यों को संबंधों की एक श्रृंखला में वर्णित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक को, स्मरणीय कारणों से, पाँच मदों में विभाजित किया गया है:

(1) बच्चे को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए: (i) उनका सहारा बनकर, (ii) उनके कर्तव्यों का पालन करके, (iii) परिवार की वंश परंपरा को बनाए रखकर, (iv) इस प्रकार कार्य करके कि वह अपनी विरासत के योग्य हो और इसके अलावा, (v) अपने दिवंगत रिश्तेदारों के सम्मान में दान देकर।

(2) जिन माता-पिता की उनके बच्चे इस प्रकार सेवा करते हैं, उन्हें चाहिए कि (i) उन्हें बुराई से रोकें, (ii) उन्हें अच्छा करने के लिए प्रेरित करें, (iii) उन्हें कोई कला सिखाएं, (iv) उनका विवाह एक उपयुक्त पत्नी से करा दें, और (v) उचित समय पर उन्हें उनकी विरासत सौंप दें।

(3) एक छात्र को शिक्षक की सेवा करनी चाहिए: (i) उठकर, (ii) उसकी सेवा करके, (iii) ध्यानपूर्वक सुनकर, (iv) व्यक्तिगत सेवा करके, और (v) आदरपूर्वक निर्देश ग्रहण करके।

(4) इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा सेवा प्राप्त शिक्षकों को चाहिए कि: (i) उन्हें सर्वोत्तम अनुशासन में प्रशिक्षित करें, (ii) उन्हें वह ग्रहण करवाएं जो वे अच्छी तरह से मानते हैं, (iii) उन्हें हर उपयुक्त कला और विज्ञान सिखाएं, (iv) उन्हें उनके मित्रों और साथियों से परिचित कराएं, और (v) हर क्षेत्र में उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करें।

(5) पति को अपनी पत्नी की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) शिष्टाचार द्वारा, (ii) उसका अपमान न करके, (iii) वफादारी द्वारा, (iv) उसे अधिकार सौंपकर, और (v) उसे आभूषण प्रदान करके।

(6) पत्नी, जिसकी सेवा उसके पति द्वारा इस प्रकार की जाती है, उसे चाहिए: (i) अपने कर्तव्यों को पूर्ण रूप से निभाना, (ii) आसपास के लोगों के प्रति आतिथ्य सत्कारपूर्ण होना, (iii) वफादार होना, (iv) जो कुछ वह लाता है उसकी रक्षा करना, और (v) अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में परिश्रमी और आलसी नहीं होना।

(7) एक कुलीन वंशज को अपने मित्रों और सहयोगियों की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) उदारता, (ii) शिष्ट वाणी, (iii) उनकी भलाई को बढ़ावा देना, (iv) समानता, और (v) सत्यवादिता।

(8) जो मित्र और सहयोगी किसी कुलीन वंशज द्वारा इस प्रकार सेवा प्राप्त करते हैं, उन्हें चाहिए: (i) जब वह लापरवाह हो तो उसकी रक्षा करें, (ii) जब वह लापरवाह हो तो उसकी संपत्ति की रक्षा करें, (iii) जब वह भयभीत हो तो शरणस्थली बनें, (iv) जब वह खतरे में हो तो उसे न छोड़ें, और (v) उसकी संतान के प्रति विचारशील रहें।

(9) स्वामी को सेवकों और कर्मचारियों की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए: (i) उन्हें उनकी क्षमता के अनुसार काम सौंपकर, (ii) उन्हें भोजन और मजदूरी प्रदान करके, (iii) बीमारी में उनकी देखभाल करके, (iv) उनके साथ विशेष व्यंजन साझा करके, और (v) समय-समय पर उन्हें राहत देकर।

(10) वे सेवक और कर्मचारी, जिनकी सेवा उनके स्वामी द्वारा इस प्रकार की जाती है, उन्हें चाहिए: (i) उनके सामने उठना, (ii) उनके बाद सोना, (iii) केवल वही लेना जो दिया गया हो, (iv) अपने कर्तव्यों को संतोषजनक ढंग से निभाना, और (v) उनके अच्छे नाम और प्रसिद्धि का प्रचार करना।

(11) एक कुलीन वंशज को तपस्वियों और ब्राह्मणों की सेवा निम्न द्वारा करनी चाहिए: (i) प्रेमपूर्ण कर्मों द्वारा, (ii) प्रेमपूर्ण शब्दों द्वारा, (iii) प्रेमपूर्ण विचारों द्वारा, (iv) उनके लिए द्वार बंद न करके, और (v) उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके।

(12) जो तपस्वी और ब्राह्मण इस प्रकार किसी कुलीन वंशज द्वारा सेवा किए जाते हैं, उन्हें चाहिए: (i) उसे बुराई से रोकना, (ii) उसे अच्छा करने के लिए प्रेरित करना, (iii) उससे दयालु हृदय से प्रेम करना, (iv) उसे वह सुनाना जो उसने नहीं सुना है और जो उसने पहले ही सुना है उसे स्पष्ट करना, और (v) उसे स्वर्गिक अवस्था का मार्ग दिखाना।

जो बोधिसत्व इन सभी सामाजिक कर्तव्यों ( चरित्त शील ) का पालन करता है, वह सही मायने में एक सभ्य सज्जन बन जाता है। इन कर्तव्यों के अलावा, वह चरित्त शील (संयम) से संबंधित अन्य नियमों का पालन करने का भरसक प्रयास करता है और इस प्रकार एक आदर्श बौद्ध जीवन व्यतीत करता है। कर्म और फल के नियम को सही ढंग से समझते हुए, वह स्वेच्छा से बुराई से दूर रहता है और अपनी क्षमता के अनुसार भलाई करता है। वह स्वयं और दूसरों के लिए आशीर्वाद बनना अपना कर्तव्य मानता है, न कि किसी के लिए अभिशाप।

जीवन सभी के लिए अनमोल है और किसी को भी दूसरे का जीवन छीनने का अधिकार नहीं है, इसलिए वह प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रति दया और प्रेम का भाव रखता है, यहाँ तक कि अपने पैरों के पास रेंगने वाले सबसे छोटे जीव के प्रति भी, और किसी भी जीवित प्राणी को मारने या चोट पहुँचाने से परहेज करता है। मनुष्य की पशु प्रवृत्ति ही उसे निर्दयतापूर्वक कमजोरों को मारने और उनका मांस खाने के लिए प्रेरित करती है। चाहे भूख मिटाने के लिए हो या मनोरंजन के लिए, किसी भी असहाय जानवर को मारना या मरवाना किसी भी तरीके से, चाहे वह क्रूर हो या मानवीय, उचित नहीं है। और यदि किसी जानवर को मारना गलत है, तो मनुष्यों की हत्या के बारे में क्या कहा जा सकता है, चाहे पहली नज़र में उद्देश्य कितना भी नेक क्यों न लगे।

इसके अलावा, बोधिसत्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी प्रकार की चोरी से दूर रहता है और इस प्रकार ईमानदारी, विश्वसनीयता और सत्यनिष्ठा विकसित करता है। मनुष्य के उच्चतर स्वरूप को दूषित करने वाले दुराचार से दूर रहकर, वह अपने यौन जीवन में पवित्रता और शुद्धता बनाए रखने का प्रयास करता है। वह झूठी वाणी, कठोर भाषा, निंदा और व्यर्थ की बातों से बचता है और केवल सत्य, मधुर, शांतिपूर्ण और सहायक शब्द ही बोलता है। वह मादक पेय पदार्थों से दूर रहता है जो मानसिक भटकाव और भ्रम पैदा करते हैं और सजगता तथा स्पष्ट दृष्टि का अभ्यास करता है।

एक बोधिसत्व इन पाँच सिद्धांतों का पालन करता है जो उसके कर्मों और वाणी को नियंत्रित करते हैं, चाहे वे उसके अपने हित के विरुद्ध हों या नहीं। उचित अवसर पर वह अपने सिद्धांतों के लिए न केवल संपत्ति और धन का त्याग करता है, बल्कि अपने प्राणों का भी बलिदान देता है। यह नहीं समझना चाहिए कि संसार में भ्रमण के दौरान एक बोधिसत्व का व्यवहार पूर्ण होता है। सांसारिक होने के कारण, उसमें भी अपनी कमियाँ और सीमाएँ होती हैं। कुछ जातक ग्रंथ, जैसे काणवेरा जातक, उसे एक अत्यंत क्रूर लुटेरे के रूप में चित्रित करते हैं। हालाँकि, यह अपवाद है, नियम नहीं। बुद्धत्व के साधक द्वारा सद्गुणों को दिया जाने वाला महत्व शीलवीमांस जातक से स्पष्ट है, जहाँ बोधिसत्व कहते हैं: "सद्गुण के बिना बुद्धि का कोई मूल्य नहीं है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 145

———————————————————————

(धम्मपद 143 और 144) <<<< पिछला|| धम्मपद145 ||अगला >>>> (धम्मपद146)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 145 - सुखसामनेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Udakam hi nayanti nettika
usukara namayanti tejanam
darum namayanti tacchaka
attanam damayanti subbata.

———————————————————————

श्लोक 145 : किसान1 पानी को नहर में बदलते हैं; तीर बनाने वाले तीरों को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान लोग खुद को वश में रखते हैं।

———————————————————————

1. किसान: शाब्दिक अर्थ, सिंचाई नहरों के निर्माता।

---

समनेरा (2) सुखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सुखा नामक एक समनेरा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (145) कहा।

सुखा को सात वर्ष की आयु में थेरा सारिपुत्त द्वारा समनेर बनाया गया। समनेर बनने के आठवें दिन वह थेरा सारिपुत्त के साथ भिक्षाटन के लिए निकल पड़ा। भिक्षाटन के दौरान उन्हें कुछ किसान अपने खेतों की सिंचाई करते, कुछ बाणधारी अपने बाणों को सीधा करते और कुछ बढ़ई बैलगाड़ी के पहिए आदि बनाते हुए मिले। इन्हें देखकर सुखा ने थेरा सारिपुत्त से पूछा कि क्या इन निर्जीव वस्तुओं को इच्छानुसार निर्देशित किया जा सकता है या इनसे मनचाही वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, और थेरा ने उसे हाँ में उत्तर दिया। युवा समनेर ने तब विचार किया कि यदि ऐसा है, तो फिर मन को वश में करके शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करने में असमर्थ होने का कोई कारण नहीं है।

अतः उन्होंने थेरा से मठ लौटने की अनुमति मांगी। वहां उन्होंने अपने कमरे में एकांतवास किया और एकांत में ध्यान का अभ्यास किया। सक्का और देवों ने भी मठ को अत्यंत शांत रखकर उनके अभ्यास में सहायता की। उसी दिन, समनेरा बनने के आठवें दिन, सुखा ने अर्हत पद प्राप्त किया। इस संबंध में बुद्ध ने भिक्षुओं की सभा से कहा, "जब कोई व्यक्ति लगन से धम्म का अभ्यास करता है, तो सक्का और देव भी उसकी रक्षा और सहायता करते हैं। मैंने स्वयं सारिपुत्त को प्रवेश द्वार पर रखा है ताकि सुखा को कोई विवश न करे। समनेरा किसानों को अपने खेतों की सिंचाई करते, बाणकारों को अपने बाणों को सीधा करते और बढ़ईयों को गाड़ी के पहिए और अन्य चीजें बनाते देखकर अपने मन को प्रशिक्षित करता है और धम्म का अभ्यास करता है। इस प्रकार, वह अब अर्हत बन गया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 145 : किसान(3) पानी को नहर में बदलते हैं; तीर बनाने वाले तीरों को सीधा करते हैं; बढ़ई लकड़ी पर काम करते हैं; बुद्धिमान लोग खुद को वश में रखते हैं।

---

(2) यह कहानी समनेरा पंडित की कहानी के समान है (श्लोक 80)

(3) किसान: शाब्दिक रूप से, सिंचाई नहरों के निर्माता

अध्याय दस का अंत: दंड (दंडवग्गा)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवोदित भिक्षु सुखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सुखा नामक एक सामनेर (नवदीक्षित भिक्षु) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सुखा को सात वर्ष की आयु में पूज्य सारिपुत्त द्वारा भिक्षु बनाया गया। भिक्षु बनने के आठवें दिन वह पूज्य सारिपुत्त के साथ भिक्षाटन के लिए निकल पड़ा। भिक्षाटन के दौरान उन्हें कुछ किसान अपने खेतों की सिंचाई करते, कुछ तीर-कमान बनाने वाले अपने बाणों को सीधा करते और कुछ बढ़ई बैलगाड़ी के पहिए जैसी चीजें बनाते हुए मिले। यह देखकर सुखा ने पूज्य सारिपुत्त से पूछा कि क्या इन निर्जीव वस्तुओं को इच्छानुसार निर्देशित किया जा सकता है या इनसे मनचाही वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, और भिक्षु ने उसे हाँ में उत्तर दिया। तब युवा भिक्षु ने सोचा कि यदि ऐसा है, तो फिर मन को वश में करके शांति और अंतर्मन का अभ्यास करने में असमर्थ होने का कोई कारण नहीं है।

अतः उन्होंने भिक्षु से मठ लौटने की अनुमति मांगी। उसी दिन, बुद्ध, जो सुबह जल्दी बाहर गए थे, सुगंधित कक्ष में बैठे हुए मन ही मन सोचने लगे, “आज नवोदित सुखा ने अपने गुरु को अपना कुंड और वस्त्र देकर यह कहते हुए लौटाया, ‘मैं अर्हतत्व प्राप्ति के लिए पूरी लगन से प्रयास करूंगा;’ क्या उसने अपना कार्य पूरा कर लिया है?” तुरंत ही उन्हें पता चला कि नवोदित सुखा ने तीनों मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। इस विषय पर और विचार करने पर बुद्ध को यह ज्ञान प्राप्त हुआ, “आज नवोदित सुखा अर्हतत्व प्राप्त कर लेगा।” यह विचार मन में लिए बुद्ध सुगंधित कक्ष से बाहर निकले और द्वार पर पहरा देने के लिए खड़े हो गए।

पूज्य भिक्षु भोजन लेकर आए। बुद्ध ने उनसे चार प्रश्न पूछे, और जब उन्होंने अंतिम प्रश्न का उत्तर दिया, तो भिक्षु अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। तब बुद्ध ने पूज्य भिक्षु से कहा, “जाओ, सारिपुत्त, भिक्षु को भोजन दो।” वरिष्ठ भिक्षु गए और दरवाजा तोड़ दिया, जिसके बाद भिक्षु बाहर आए और पूज्य भिक्षु को प्रणाम किया। पूज्य भिक्षु ने कहा, “जो भोजन मैं लाया हूँ, उसे खाओ।”

तभी बुद्ध पास आए और पूछा, “भिक्षुओं, आप यहाँ बैठकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” भिक्षुओं ने उत्तर दिया, “आदरणीय, आज सुबह बहुत लंबी लगी और शाम भी देर से आई। नौसिखिए ने अभी-अभी अपना भोजन समाप्त किया है। सूर्य अभी-अभी हमारी आँखों के सामने शीर्ष से ऊपर चला गया है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, जब पुण्यवान ध्यान में लीन होते हैं तो ऐसा ही होता है। आज

नौसिखिए सुखा ने जलधारा में पानी ले जाते हुए गड्ढा खोदने वालों, बाण बनाने वालों को बाण तीखा करते हुए और बढ़ईयों को पहिए बनाते हुए देखा। इन सब चीजों को देखकर उसने स्वयं को वश में कर लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 145)

नेत्तिका हि उदकं नयन्ति उसुकारा तेजानां नमयन्ति

तच्चका दारुं नामयंती सुब्बता अत्तनं दमयंती पंडिता

नेट्टिका : सिंचाई करने वाले; उदकम् [ उदका ]: जल; नयन्ति : उन्हें जो भी स्थान पसंद हो, साथ लेकर चलें; उसुकारा : फ्लेचर्स; तेजानां [ तेजना ]: तीर बाण; नामयंती : आकार; तच्चका : बढ़ई; दारुं [ दारू ]: लकड़ी; नामयंती : झुकना; सुब्बता : कर्तव्यनिष्ठ; अट्टणं [ अत्तना ]: स्वयं; दमयंती : नियंत्रण; पंडिता : बुद्धिमान व्यक्ति

सिंचाई करने वाले पानी को नियंत्रित करते हैं। तीर बनाने वाले तीरों को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को तराशते हैं। बुद्धिमान लोग विवेकपूर्ण तरीके से खुद पर नियंत्रण रखते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 145)

सुब्बता : आज्ञाकारी व्यक्ति। सुब्बता वह व्यक्ति होता है जो सलाह को सहजता से मानता है। वह दी गई सलाह का पालन करता है। पारंपरिक टीकाओं में उनका वर्णन इस प्रकार किया गया है: सुखेना ओवादितब्बा , अनुसासि तब्बाति सुब्बता … ऐसा व्यक्ति जिसे आसानी से सलाह और निर्देश दिया जा सकता है। एक सच्चा आज्ञाकारी व्यक्ति ( सुब्बता ) किसी भी सलाह का विरोध नहीं करता, चाहे वह कितनी भी कठोर क्यों न हो। ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया होती है — "यदि आप मुझे सलाह नहीं देंगे, तो और कौन देगा?"

अध्याय 11. जरावग्ग: वृद्धावस्था (146-156)

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 146

———————————————————————————

(धम्मपद 145) <<<< पिछला || धम्मपद 146 || अगला >>>> (धम्मपद 147)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 146 - विशाखया सहायिकानं वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Ko nu haso kimanando
niccam pajjalite(1) sati
andhakarena(2) onaddha
padipam(3) na gavesatha.

———————————————————————————

श्लोक 146 : हंसी क्यों है? आनंद क्यों है जबकि (संसार) सदा जल रहा है? अंधकार में घिरे होने पर प्रकाश की तलाश क्यों न करें?

———————————————————————————

1. पज्जलित: इस संदर्भ में, इसका अर्थ है वासना आदि की आग से जलना। (टीका)

2. अंधकारेण: इस संदर्भ में अंधकार का अर्थ है चार आर्य सत्यों का अज्ञान। (टीका)

3. पदिपम: इस संदर्भ में प्रकाश, यानी ज्ञान। (टीका)

---

विशाखा के साथियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने विशाखा के साथियों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (146) कहा।

श्रावस्ती से पाँच सौ पुरुष अपनी पत्नियों को विशाखा की तरह उदार, दयालु और गुणी बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें विशाखा के पास भेजा ताकि वे उनकी निरंतर सहेलियाँ बन सकें। सात दिनों तक चलने वाले एक उत्सव के दौरान, उन पुरुषों की पत्नियों ने अपने पतियों द्वारा छोड़ी गई सारी शराब पी ली और विशाखा की अनुपस्थिति में खूब शराब पी। इस दुर्व्यवहार के लिए उनके पतियों ने उन्हें पीटा। एक अन्य अवसर पर, बुद्ध के प्रवचन सुनने की इच्छा जताते हुए, उन्होंने विशाखा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और चुपके से अपने कपड़ों में शराब की छोटी बोतलें छिपा लीं।

मठ पहुँचते ही उन्होंने अपने साथ लाई सारी शराब पी ली और बोतलें फेंक दीं। विशाखा ने बुद्ध से उन्हें धम्म सिखाने का अनुरोध किया। तब तक वे स्त्रियाँ मदमस्त हो चुकी थीं और उन्हें गाने-नाचने का मन कर रहा था। मारा ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें और भी निर्भीक बना दिया, और जल्द ही वे मठ में शोर-शराबा करते हुए गाने, नाचने, ताली बजाने और उछलने लगीं। बुद्ध ने इन स्त्रियों के निर्भीक व्यवहार में मारा का हाथ देखा और मन ही मन कहा, "मारा को यह अवसर नहीं मिलना चाहिए।" अतः बुद्ध ने अपने शरीर से गहरे नीले रंग की किरणें भेजीं और पूरा कमरा अंधकारमय हो गया; स्त्रियाँ भयभीत हो गईं और उनका नशा उतरने लगा। फिर बुद्ध अपने आसन से विलीन हो गए और मेरु पर्वत की चोटी पर खड़े हो गए, और वहाँ से उन्होंने सफेद किरणें भेजीं जिससे आकाश हजारों चंद्रमाओं की तरह जगमगा उठा। इस प्रकार अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के बाद, बुद्ध ने उन पाँच सौ स्त्रियों से कहा, "हे देवियों, आपको इस अचेत अवस्था में मेरे मठ में नहीं आना चाहिए था। आपकी लापरवाही के कारण मारा को मेरे मठ में आपको निर्लज्जतापूर्वक हँसने और गाने का अवसर मिला। अब, अपने भीतर की वासना (राग) की आग को बुझाने का प्रयास करें।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 146 : हंसी क्यों है? आनंद क्यों है जबकि (संसार) सदा जल रहा है? अंधकार में घिरे होने पर प्रकाश की तलाश क्यों न करें?

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ महिलाओं ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा के साथियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने विशाखा के साथियों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

सावत्थी के पाँच सौ पुरुष अपनी पत्नियों को विशाखा के समान उदार, दयालु और गुणी बनाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें विशाखा के पास भेजा ताकि वे उनकी निरंतर सहेलियाँ बन सकें। सात दिनों तक चले एक मादक उत्सव के दौरान, उन पुरुषों की पत्नियों ने अपने पतियों द्वारा छोड़ी गई सारी शराब पी ली और विशाखा की अनुपस्थिति में खूब शराब पी। इस दुर्व्यवहार के लिए उनके पतियों ने उन्हें पीटा। एक अन्य अवसर पर, बुद्ध के प्रवचन सुनने की इच्छा जताते हुए, उन्होंने विशाखा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया और चुपके से अपने कपड़ों में शराब की छोटी बोतलें छिपा लीं।

मठ पहुँचते ही उन्होंने अपने साथ लाई सारी शराब पी ली और बोतलें फेंक दीं। विशाखा ने बुद्ध से उन्हें धम्म सिखाने का अनुरोध किया। तब तक वे स्त्रियाँ मदहोश हो चुकी थीं और उन्हें गाने-नाचने का मन कर रहा था। मारा ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें और भी निर्भीक बना दिया, और जल्द ही वे मठ में शोर-शराबा करते हुए गाने, नाचने, ताली बजाने और उछलने लगीं। बुद्ध ने इन स्त्रियों के निर्भीक व्यवहार में मारा का हाथ देखा और मन ही मन कहा, “मारा को यह अवसर नहीं दिया जाना चाहिए।” अतः बुद्ध ने अपने शरीर से गहरे नीले रंग की किरणें निकालीं और पूरा कमरा अंधकारमय हो गया; स्त्रियाँ भयभीत हो गईं और उनका नशा उतरने लगा। फिर बुद्ध अपने आसन से विलीन हो गए और मेरु पर्वत की चोटी पर खड़े हो गए, और वहाँ से उन्होंने सफेद किरणें निकालीं जिससे आकाश हजारों चंद्रमाओं की तरह जगमगा उठा। इस प्रकार अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के बाद, बुद्ध ने उन स्त्रियों से कहा; “हे स्त्री, आपको इस अचेतन अवस्था में मेरे मठ में नहीं आना चाहिए था। आपकी लापरवाही के कारण मारा को आपके द्वारा मेरे मठ में बेशर्मी से हंसने और जोर-जोर से गाने का अवसर मिला। अब, अपने भीतर के कामवासना (राग) के बंधनों को तोड़ने का प्रयास करें।” प्रवचन के अंत में, उन स्त्रियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 146)

निक्कं पज्जलिते सति को नु हासो कि आनंदो

अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ

निच्चं [ निच्च ]: निरंतर; पज्जलिते सति : जलना; को नु हासो : कैसी हंसी; किं आनन्दो [ आनंद ]: कैसा आनंद; अंधकारकारेण : अंधकार के साथ; ओनद्धा : घिरा हुआ; पदीपं [ पदीप ]: एक प्रकाश; न गवेसथ : क्यों न खोजो

जब तुम निरंतर वासना की ज्वालाओं में जलते रहते हो, तो कैसी हंसी, कैसा आनंद? जब तुम अज्ञान के अंधकार में घिरे रहते हो, तो उस अंधकार को दूर करने के लिए ज्ञान के प्रकाश की खोज क्यों नहीं करते?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 146)

विशेष टिप्पणी : इन अधिकांश पृष्ठभूमि कथाओं में, बुद्ध द्वारा श्लोकों के उच्चारण से लोगों को सोतापत्ति का फल प्राप्त होता है। सोतापत्ति की स्थिति : सोतापन्न , अर्थात् सोतापत्ति, आठ श्रेष्ठ शिष्यों में सबसे निम्नतम है। तीन प्रकार के सोतापत्तियों में अंतर किया जाना चाहिए: अधिकतम सात पुनर्जन्मों वाला ( सत्तक्खत्तु-परम ), एक श्रेष्ठ परिवार से दूसरे श्रेष्ठ परिवार में जाने वाला ( कोलनकोला ), और केवल एक बार पुनर्जन्म लेने वाला ( एक-बीजी )।

(1) यदि कोई व्यक्ति तीन बंधनों (व्यक्तित्व-विश्वास, संशयपूर्ण संदेह, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति) के विलीन होने के बाद निर्वाण की धारा में प्रवेश कर लेता है, तो वह निम्न लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं रहता, दृढ़ता से स्थापित हो जाता है और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए नियत हो जाता है। स्वर्ग और मनुष्यों के बीच सात बार और पुनर्जन्म का चक्र पूरा करने के बाद, वह दुखों का अंत कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को अधिकतम सात पुनर्जन्मों वाला ( सत्तक्खत्तु-परम ) कहा जाता है।

(2) यदि कोई व्यक्ति तीनों बंधनों के समाप्त होने के बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियत हो, तो वह दो या तीन बार पुनर्जन्म के चक्र से गुजरने के बाद दुखों का अंत कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को एक कुलीन परिवार से दूसरे कुलीन परिवार में जाने वाला ( कोलांकोला ) कहा जाता है।

(3) यदि कोई व्यक्ति तीनों बंधनों के समाप्त होने के बाद पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत हो, तो वह केवल एक बार फिर मानव जीवन में लौटकर दुखों का अंत कर देता है। ऐसे व्यक्ति को केवल एक बार ही अंकुरित होने वाला ( एक-बीजी ) कहा जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 147

---

(धम्मपद 146) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 147 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 148)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 147 - सिरिमा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Passa cittakatam bimbam
arukayam samussitam
aturam babusankappam(1)
yassa natthi dhuvam thiti.

---

श्लोक 147 : इस सजे-धजे शरीर को देखो, जो घावों का ढेर है, हड्डियों के सहारे टिका हुआ है, बीमार है, और कई कामुक विचारों का विषय है। निश्चय ही, यह शरीर न तो स्थायी है और न ही टिकाऊ।

---

1. बहुसंकप्पम: शरीर, जो कामुक इच्छा और प्रशंसा के अनेक विचारों का विषय है।

---

सिरिमा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (147) का उच्चारण किया, जो कि वेश्या सिरीमा के संदर्भ में था।

राजगृह में एक समय की बात है, सिरीमा नाम की एक अत्यंत सुंदर वेश्या रहती थी। सिरीमा प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भिक्षा देती थी। इन्हीं भिक्षुओं में से एक ने अन्य भिक्षुओं को सिरीमा की सुंदरता और उसके द्वारा प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा की। यह सुनकर एक युवक भिक्षु सिरीमा को देखे बिना ही उससे प्रेम करने लगा। अगले दिन वह युवक अन्य भिक्षुओं के साथ सिरीमा के घर गया। उस दिन सिरीमा की तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन भिक्षुओं को प्रणाम करने की इच्छा से उसे उनके समक्ष लाया गया। सिरीमा को देखकर युवक भिक्षु मन ही मन सोचने लगा, "बीमार होने के बावजूद वह कितनी सुंदर है!" और उसके मन में उसके लिए तीव्र इच्छा जागृत हुई। उसी रात, सिरीमा का निधन हो गया। राजा बिम्बिसार बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि जीवक की बहन सिरीमा का निधन हो गया है। बुद्ध ने राजा बिम्बिसार को शव को श्मशान ले जाने और तीन दिन तक बिना दफनाए वहीं रखने का आदेश दिया, लेकिन यह भी कहा कि उसे कौवों और गिद्धों से बचाकर रखा जाए। राजा ने वैसा ही किया जैसा उन्हें बताया गया था। चौथे दिन, सुंदर सिरीमा का शव न तो सुंदर रहा और न ही आकर्षक; वह फूल गया और उसके नौ छिद्रों से कीड़े निकल आए। उस दिन, बुद्ध अपने भिक्षुओं को लेकर सिरीमा के शव को देखने के लिए श्मशान गए। राजा भी अपने आदमियों के साथ आए। वह युवा भिक्षु, जो सिरीमा से अत्यधिक प्रेम करता था, यह नहीं जानता था कि सिरीमा का निधन हो गया है। जब उसे पता चला कि बुद्ध और भिक्षु सिरीमा को देखने जा रहे हैं, तो वह भी उनके साथ चला गया। श्मशान में, सिरीमा का शव बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं, राजा और उनके आदमियों से घिरा हुआ था।

तब बुद्ध ने राजा से कहा कि वह एक उद्घोषक से यह घोषणा करवाए कि सिरीमा एक हजार रुपये नकद प्रति रात्रि के भुगतान पर उपलब्ध है। परन्तु कोई भी उसे एक हजार रुपये में, या पांच सौ रुपये में, या ढाई सौ रुपये में, या यहाँ तक कि निःशुल्क दिए जाने पर भी स्वीकार नहीं करेगा। तब बुद्ध ने श्रोताओं से कहा, "भिक्षुओं! सिरीमा को देखो। जब वह जीवित थी, तब बहुत से लोग उसके साथ एक रात्रि बिताने के लिए एक हजार रुपये देने को तैयार थे; परन्तु अब तो उसे निःशुल्क दिए जाने पर भी कोई स्वीकार नहीं करता। मनुष्य का शरीर क्षय और क्षीणता के अधीन है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 147 : इस सजे-धजे शरीर को देखो, जो घावों का ढेर है, हड्डियों के सहारे टिका हुआ है, बीमार है, और कई कामुक विचारों का विषय है। निश्चय ही, यह शरीर न तो स्थायी है और न ही टिकाऊ।

---

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिरिमा की कहानी

मठ में, बुद्ध ने यह श्लोक वेश्या सिरिमा के संदर्भ में कहा था।

एक समय की बात है, राजगृह में सिरिमा नाम की एक अत्यंत सुंदर वेश्या रहती थी। सिरिमा प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भिक्षा देती थी। इनमें से एक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं से सिरिमा की सुंदरता और उनके द्वारा प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा की। यह सुनकर एक युवा भिक्षु को सिरिमा को देखे बिना ही उससे प्रेम हो गया। अगले दिन वह युवा भिक्षु अन्य भिक्षुओं के साथ सिरिमा के घर गया। उस दिन सिरिमा की तबीयत ठीक नहीं थी, लेकिन भिक्षुओं को प्रणाम करने की इच्छा से उसे उनके समक्ष लाया गया। सिरिमा को देखकर उस युवा भिक्षु ने मन ही मन सोचा, "बीमार होने के बावजूद वह कितनी सुंदर है!" और उसके मन में उसके लिए तीव्र आकर्षण उत्पन्न हो गया।

उसी रात सिरिमा की मृत्यु हो गई। राजा बिम्बिसार बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि "जीवक की बहन सिरिमा का निधन हो गया है।" बुद्ध ने राजा बिम्बिसार को शव को श्मशान ले जाकर तीन दिन तक बिना दफनाए रखने का आदेश दिया, लेकिन यह भी कहा कि कौवों और गिद्धों से उसकी रक्षा की जाए। राजा ने वैसा ही किया जैसा उन्हें बताया गया था। चौथे दिन, सुंदर सिरिमा का शव न तो सुंदर रहा और न ही आकर्षक; वह फूल गया और उसके नौ छिद्रों से कीड़े निकलने लगे। उस दिन, बुद्ध अपने भिक्षुओं को लेकर सिरिमा के शव को देखने श्मशान गए। राजा भी अपने आदमियों के साथ आए। युवा भिक्षु, जो सिरिमा से अत्यधिक प्रेम करता था, यह नहीं जानता था कि सिरिमा का निधन हो गया है। जब उसे पता चला कि बुद्ध और भिक्षु सिरिमा को देखने जा रहे हैं, तो वह भी उनके साथ चला गया। श्मशान में, सिरिमा का शव बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं, राजा और उनके आदमियों से घिरा हुआ था।

भिक्षुओं के समूह से घिरे बुद्ध शव के एक ओर खड़े थे; भिक्षुणियों का समूह, राजा का दल और उनके शिष्य, पुरुष और स्त्री, शव के दूसरी ओर, अपने-अपने स्थान पर खड़े थे। बुद्ध ने राजा से पूछा, "महाराज, यह स्त्री कौन है?" "आदरणीय, यह जीवक की बहन सिरिमा हैं।" "क्या यह सिरिमा हैं?" "जी हां, आदरणीय।" "अच्छा! पूरे नगर में ढोल बजवाकर यह घोषणा करवाइए, 'जो सिरिमा के लिए एक हजार सिक्के देगा, वह उसे पा सकता है।'" किसी ने भी कुछ नहीं कहा। राजा ने कीमत घटाकर एक पैसा, फिर आधा पैसा, फिर एक चौथाई पैसा, फिर एक आठवां पैसा कर दी। अंत में उन्होंने ढोल की थाप के साथ घोषणा की, "वे उसे मुफ्त में पा सकते हैं।" किसी ने भी कुछ नहीं कहा। तब राजा ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, कोई भी उसे भेंट के रूप में भी स्वीकार नहीं करेगा।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, आप जनमानस की दृष्टि में स्त्री का मूल्य देख लीजिए। इसी नगर में पुरुष इस स्त्री के साथ एक रात बिताने के लिए हज़ारों सिक्के देते थे। अब कोई भी उसे भेंट के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। उसकी सुंदरता इतनी असीम थी कि वह नष्ट हो गई। हे भिक्षुओं, इस शरीर को देखिए, यह रोगग्रस्त और विकृत हो गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 147)

यस्सा धुवं रीति नत्थि । अरुकायं समुस्सितम्

आतुरं बहुसंकप्पां चित्तकटं बिंबं पस

यस्स : इस शरीर के लिए; धुवं थिति : स्थायी अस्तित्व; नत्थि : नहीं है; अरुकायं [ अरुकाय ]: (वास्तव में) घावों से भरा शरीर; समुस्सितं [ समुस्सित ]: अनेक हड्डियों से टिका हुआ; आतुरं [ आतुर ]: (यह) रोगग्रस्त है; बहुसंकप्पं [ बहुसंकप्प ]: अनेक सुविचारित लोगों द्वारा संवारा हुआ; चित्तकतं [ चित्तकत ]: सुंदर ढंग से सँवारा हुआ; बिंबं [ बिंब ]: यह शरीर; पस्सा : अवलोकन करना

इस शरीर का कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। वास्तव में यह घावों से भरा शरीर है। यह रोगग्रस्त है। यह अनेक प्रकार की हड्डियों पर टिका हुआ है। कई लोग इसे अच्छा मानते हैं। कई लोग इसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इसे खूबसूरती से सजाया गया है। शरीर के इस वास्तविक स्वरूप को ध्यान से देखें।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 147)

natthi dhuvaṃ ṭhiti : यह शरीर स्थायी नहीं है। इसका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है—arukāyaṃ। वास्तव में, यह घावों का शरीर है।

आतुरं : यह रोगग्रस्त है; बहुसंकप्पं : बहुतों द्वारा प्रशंसित; समुस्सितं : शरीर में कई हड्डियाँ होती हैं। ये हड्डियाँ इसे सहारा देती हैं; चित्तकतं : आकर्षक ढंग से संवारा हुआ। ये सभी शरीर के बारे में भ्रामक धारणाओं की श्रेणी में आते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 148

———————————————————————

(धम्मपद 147) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 148 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 149)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 148 - उत्तरथेरि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

परिजिन्नामिदम रूपम
रोगानिलम पभंगुरम
bhijjati putisandeho
maranantam hi jivitam.

---

श्लोक 148 : यह शरीर उम्र से क्षीण हो चुका है, यह रोगों का घर है, यह क्षय के अधीन है। यह सड़ा हुआ शरीर विघटित हो जाता है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है।

---

थेरी उत्तरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उत्तरा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (148) कहा।

एक सौ बीस वर्ष की थेरी उत्तरा एक दिन भिक्षाटन से लौट रही थीं, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई और उन्होंने उनसे भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया। निर्दयी भिक्षु ने उनका सारा भिक्षा ग्रहण कर लिया; इसलिए उन्हें उस दिन भोजन नहीं करना पड़ा। अगले दो दिनों तक भी यही हुआ। इस प्रकार थेरी उत्तरा लगातार तीन दिनों तक भोजनहीन रहीं और दुर्बल महसूस करने लगीं। चौथे दिन, जब वह भिक्षाटन कर रही थीं, तो संकरे रास्ते पर उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और पीछे हट गईं। ऐसा करते समय, गलती से उनका पैर अपने ही वस्त्र पर पड़ गया और वह जमीन पर गिर गईं, जिससे उनके सिर में चोट लग गई। बुद्ध उनके पास गए और बोले, "तुम्हारा शरीर बहुत बूढ़ा और दुर्बल हो रहा है, यह टूटने के कगार पर है, यह शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 148 : यह शरीर उम्र से क्षीण हो चुका है, यह रोगों का घर है, यह क्षय के अधीन है। यह सड़ा हुआ शरीर विघटित हो जाता है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है।

---

प्रवचन के अंत में, थेरी उत्तरा ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नून उत्तरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नून उत्तरा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक सौ बीस वर्ष की भिक्षुणी उत्तरा एक दिन भिक्षाटन से लौट रही थीं, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई और उन्होंने उनसे भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया; इस प्रकार उन्हें उस दिन भोजन नहीं करना पड़ा। अगले दो दिनों तक भी यही स्थिति रही। इस प्रकार भिक्षुणी उत्तरा लगातार तीन दिनों तक भोजनहीन रहीं और दुर्बल महसूस करने लगीं। चौथे दिन, जब वे भिक्षाटन कर रही थीं, तो संकरे मार्ग पर उनकी मुलाकात बुद्ध से हुई। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध को प्रणाम किया और पीछे हट गईं। ऐसा करते समय, गलती से उनका पैर अपने ही वस्त्र पर पड़ गया और वे जमीन पर गिर गईं, जिससे उनके सिर में चोट लग गई। बुद्ध उनके पास गए और बोले, “तुम्हारा शरीर बहुत बूढ़ा और दुर्बल हो रहा है, यह टूटने के कगार पर है, यह शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।” प्रवचन के अंत में, भिक्षुणी उत्तरा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 148)

इदं रूपं परिजिनं रोगनिधं पभंगुरं
पूतिसंदेहो भिज्जति हि जीवितं मरणन्तं

idaṃ rupaṃ [ rupa ]: यह रूप; parijiṇṇaṃ [ parijiṇṇa ]: पूरी तरह से टूटा हुआ; roganiḍḍhaṃ [ roganiḍḍha ]: (यह) रोगों के घोंसले के समान है; pabhaṅguraṃ [ pabhaṅgura ]: आसानी से विघटित हो जाता है; pūtisandeho [ pūtisandeha ]: इसमें से सड़ा हुआ पदार्थ रिसता है; bhijjati : यह आसानी से टूट जाता है; hi jīvitaṃ maraṇantaṃ [ maraṇanta ]: मृत्यु इसका अंत कर देती है

यह रूप—यह शरीर—पूरी तरह से विघटित हो चुका है। यह सचमुच रोगों का अड्डा है। यह आसानी से बिखर जाता है। इसके नौ छिद्रों से लगातार सड़ा हुआ पदार्थ रिसता रहता है। यह टूटकर बिखर जाता है। मृत्यु ही इसका अंत करती है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री

जीवन का अंत मृत्यु में होता है । इस श्लोक का मुख्य उद्देश्य जीवन की अनित्यता को स्पष्ट करना है। अनित्यता ( अनिच्चा ) अस्तित्व के तीन गुणों ( तिलक्खना ) में से पहला गुण है । अधिकांश ग्रंथों में अनित्यता के इसी तथ्य से अन्य दो गुण, दुःख ( दुक्खा ) और अनात्म ( अनत्ता ), व्युत्पन्न किए गए हैं। वस्तुओं की अनित्यता का अर्थ है वस्तुओं का उदय, अस्त होना और परिवर्तन होना, या उत्पन्न या अस्तित्व में आई वस्तुओं का लुप्त हो जाना। इसका अर्थ यह है कि ये वस्तुएँ कभी भी एक ही रूप में स्थिर नहीं रहतीं, बल्कि क्षण-क्षण लुप्त होती और विलीन होती रहती हैं।

अनित्यता सभी सशक्त घटनाओं का मूल गुण है, चाहे वे भौतिक हों या मानसिक, स्थूल हों या सूक्ष्म, स्वयं की हों या बाह्य। सभी रचनाएँ अनित्य हैं। संपूर्ण अस्तित्व के अनित्य होने को अक्सर बारह इंद्रिय आधारों, पाँच स्कंधों के संदर्भ में भी व्यक्त किया जाता है। केवल निर्वाण, जो असंबद्ध है और किसी रचना का हिस्सा नहीं है ( असंकत ), ही स्थायी है।
मुक्ति के पहले चरण, यानी धारा-प्रवेश की ओर ले जाने वाली अंतर्दृष्टि को अक्सर अनित्यता के रूप में व्यक्त किया जाता है: "जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह समाप्त भी हो जाता है।" परिनिर्वाण से पहले अपने अंतिम उपदेश में, बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को अस्तित्व की अनित्यता की याद दिलाते हुए उन्हें गंभीर प्रयास करने के लिए प्रेरित किया: "देखो, भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी संरचनाएँ नष्ट हो जाएँगी। पूरी लगन से प्रयास करो!"
अस्तित्व की सभी घटनाओं की अनित्यता और सारहीनता की गहरी समझ के बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः प्रत्यक्ष ध्यान अनुभव द्वारा प्राप्त अनित्यता की समझ, अंतर्दृष्टि ज्ञान की दो श्रेणियों में सबसे ऊपर है: (क) अनित्यता का चिंतन अठारह प्रमुख प्रकार की अंतर्दृष्टि में से प्रथम है; (ख) उत्पत्ति और अपाप का चिंतन नौ प्रकार के ज्ञान में से प्रथम है, जो मार्ग सम्मेलन के ज्ञान और दर्शन द्वारा शुद्धि की ओर ले जाता है। अनित्यता का चिंतन बिना शर्त मोक्ष की ओर ले जाता है। यद्यपि इसमें विश्वास की शक्ति उत्कृष्ट होती है, जो इस मार्ग से धारा-प्रवेश के मार्ग को प्राप्त करता है, उसे विश्वास-भक्त कहा जाता है और सात उच्चतर अवस्थाओं में उसे विश्वास-मुक्त कहा जाता है।
pabhaṅguraṃ : शरीर आसानी से विघटित हो सकता है।
pūtisandeho : इसके नौ छिद्रों से सड़ा हुआ पदार्थ रिसता है।
अनित्यता : अनित्यता। अनित्यता के विषय में, भले ही हम किसी वृक्ष पर नए और खिलते हुए पत्ते देखें, कुछ परिपक्व और कुछ सूखे और पीले, फिर भी अनित्यता हमारे हृदय में गहराई तक नहीं उतरती। भले ही वर्षों में हमारे बाल काले से भूरे और फिर सफेद हो जाते हैं, फिर भी हम इस परिवर्तन के स्पष्ट संदेश - अनित्यता - को नहीं समझ पाते। अनित्यता के सत्य को मन में कभी-कभार स्वीकार करने या ज़बान से मानने और हृदय में इसे निरंतर अनुभव करने में बहुत बड़ा अंतर है। समस्या यह है कि बौद्धिक रूप से हम अनित्यता को सत्य मान लेते हैं, लेकिन भावनात्मक रूप से हम इसे स्वीकार नहीं करते, विशेषकर अपने और अपने के संदर्भ में। लेकिन लालच की हमारी अकुशल भावनाएँ चाहे जो भी स्वीकार करें या न करें, अनित्यता एक सत्य बनी रहती है, और जितनी जल्दी हम अंतर्दृष्टि से इस सत्य को जान लेते हैं, उतना ही हम सुखी होंगे, क्योंकि इससे हमारी चिंतन शैली वास्तविकता के निकट हो जाएगी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 149

---

(धम्मपद 148) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 149 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 150)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 149 - सम्बहुला अधिमानिकाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
यानिमणि अपत्थानी
अलाबुनवा सरदे
kapotakani atthini
tani disvana ka rati

---

श्लोक 149 : पतझड़ में फेंके गए लौकी की तरह ये कबूतर-धूसर हड्डियाँ हैं; इन्हें देखने में क्या आनंद है?

---

आधिमानिक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (149) का उच्चारण कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में किया, जिन्होंने स्वयं को बहुत अधिक महत्व दिया था।

पांच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वनों में प्रवेश किया। वहां उन्होंने पूर्ण लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही गहन ध्यान (झान) की अवस्था प्राप्त कर ली। उन्हें लगा कि वे इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गए हैं और अतः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। वास्तव में, वे केवल अपने आप को अतिशयोक्ति कर रहे थे। फिर वे बुद्ध के पास यह बताने के इरादे से गए कि उन्होंने जो समझा था वह अर्हतत्व की प्राप्ति थी।

जब वे मठ के बाहरी द्वार पर पहुँचे, तो बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "अभी मेरे दर्शन करने से इन भिक्षुओं को कोई लाभ नहीं होगा; वे पहले श्मशान जाएँगे और उसके बाद ही मेरे दर्शन करेंगे।" पूज्य आनंद ने बुद्ध का संदेश उन भिक्षुओं को सुनाया, और उन्होंने मनन किया, "प्रबुद्ध व्यक्ति सर्वज्ञानी हैं; हमें पहले श्मशान भेजने के पीछे उनका कोई कारण अवश्य होगा।" अतः वे श्मशान चले गए।

वहाँ, जब उन्होंने सड़ी-गली लाशें देखीं, तो उन्हें वे महज़ कंकाल और हड्डियाँ ही लगीं, परन्तु जब उन्होंने कुछ ताज़ी लाशें देखीं, तो उन्हें भय से अहसास हुआ कि उनके भीतर अभी भी कुछ कामुक इच्छाएँ जागृत हो रही हैं। बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश भेजा; फिर वे उनके सामने प्रकट हुए और बोले, "भिक्षुओं! इन फीकी हड्डियों को देखकर क्या तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार की कामुक इच्छा रखना उचित है?"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 149 : पतझड़ में फेंके गए लौकी की तरह ये कबूतर-धूसर हड्डियाँ हैं; इन्हें देखने में क्या आनंद है?

---

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अधिमानिक भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ ऐसे भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था जिन्होंने स्वयं को अत्यधिक महत्व दिया था।

बहुत से भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वनों में चले गए। वहाँ उन्होंने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और शीघ्र ही गहन ध्यान (झान) की अवस्था प्राप्त कर ली। उन्हें लगा कि वे इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गए हैं और अतः उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। वास्तव में, वे केवल अपने आप को अतिशयोक्ति कर रहे थे। फिर वे बुद्ध के पास यह बताने के इरादे से गए कि उन्होंने जो समझा था वह अर्हतत्व की प्राप्ति थी।

जब वे मठ के बाहरी द्वार पर पहुँचे, तो बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, “अभी मेरे दर्शन करने से इन भिक्षुओं को कोई लाभ नहीं होगा; वे पहले श्मशान जाएँगे और उसके बाद ही मेरे दर्शन करेंगे।” पूज्य आनंद ने बुद्ध का संदेश उन भिक्षुओं को सुनाया, और उन्होंने सोचा, “बुद्ध सर्वज्ञ हैं; हमें पहले श्मशान भेजने के पीछे उनका कोई कारण अवश्य होगा।” अतः वे श्मशान चले गए।

वहाँ, जब उन्होंने सड़ी-गली लाशें देखीं, तो उन्हें वे केवल कंकाल और हड्डियाँ ही लगीं, लेकिन जब उन्होंने कुछ ताज़ी लाशें देखीं, तो उन्हें भय के साथ एहसास हुआ कि उनके भीतर अभी भी कुछ कामुक इच्छाएँ जागृत हो रही हैं। बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और अपना प्रकाश भेजा; फिर वे उनके सामने प्रकट हुए और बोले, “भिक्षुओं! इन फीकी हड्डियों को देखकर, क्या तुम्हारे लिए कामुक इच्छाएँ रखना उचित है?” प्रवचन के अंत में, भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

तब बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 149)

सारदे अपत्थानि अलापुनि इव कपोत्कानि

यानि इमानी अथिनि तानि दिसवन का रति

सारदे : शरद ऋतु के दौरान; अपत्थानी : लापरवाही से बिखरा हुआ; अलापुनि इव : लौकी की तरह; कपोतकनि : भूरे रंग का; यानि इमानी : ऐसा; अथिनि तानि : ये हड्डियाँ; दिस्वना : देखा हुआ; का रति : जो कोई भी वासना करेगा

शरद ऋतु के शुष्क मौसम में, चारों ओर हड्डियाँ और खोपड़ियाँ बिखरी हुई दिखाई देती हैं। ये सूखी, भूरे रंग की खोपड़ियाँ इधर-उधर फेंके गए लौकी की तरह लगती हैं। इन्हें देखकर भला कौन वासना करेगा?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 149)
अत्तिनी : हड्डियाँ। यह श्लोक एक कब्रिस्तान में बिखरी हुई विभिन्न प्रकार की मानव हड्डियों का वर्णन करता है। ये हड्डियाँ क्षय के सार्वभौमिक नियम — जरा — का प्रतीक हैं ।
जरा : वृद्धावस्था, क्षय। वृद्धावस्था (क्षय) तीन दिव्य दूतों में से एक है। दिव्य दूत वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का प्रतीकात्मक नाम है, क्योंकि ये तीनों चीजें मनुष्य को उसके भविष्य की याद दिलाती हैं और उसे गंभीर प्रयास करने के लिए प्रेरित करती हैं। कहा जाता है, "हे मनुष्य, क्या तुमने संसार में कभी अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष के किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो दुर्बल, छत की तरह टेढ़ा, झुका हुआ, बैसाखियों के सहारे लड़खड़ाते कदमों से चलता हो, बीमार हो, जिसकी जवानी बहुत पहले ही बीत चुकी हो, जिसके दांत टूटे हों, बाल भूरे और कम हों, या गंजा हो, झुर्रियों वाला हो, और जिसके अंग धब्बेदार हों? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बुढ़ापे के अधीन हो, कि तुम भी इससे बच नहीं सकते? क्या तुमने संसार में कभी किसी ऐसे पुरुष या स्त्री को नहीं देखा, जो बीमार, पीड़ित और गंभीर रूप से बीमार हो, और अपनी ही गंदगी में लोट रहा हो, जिसे कुछ लोगों ने ऊपर उठाया हो और दूसरों ने नीचे गिरा दिया हो? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बीमारी के अधीन हो, कि तुम भी इससे बच नहीं सकते? क्या तुमने संसार में कभी किसी पुरुष या स्त्री का शव नहीं देखा, जो मृत्यु के एक, दो या तीन दिन बाद फूला हुआ, नीले-काले रंग का और सड़न से भरा हो? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि तुम भी बुढ़ापे के अधीन हो? मृत्यु के अधीन, क्या तुम भी इससे बच नहीं सकते?
जब हम जीवन में हर चीज की क्षणभंगुरता को देखते हैं: जिस पर हम निर्भर हैं और जिससे हमारा लगाव है, वह सब बदलता रहता है, हमसे बिछड़ जाता है या नष्ट हो जाता है, तो अंत में केवल भावनात्मक अशांति ही रह जाती है: असुरक्षा, अकेलापन, भय, चिंता, व्याकुलता और दुख की भावना। सुख पाने का एकमात्र तरीका है अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना और मन को शांत करना, अपने सोचने के तरीके को बदलकर। हमें चीजों से विरक्त होना होगा और भावनात्मक रूप से स्वतंत्र होना होगा। यह इस बात को समझकर ही संभव है कि संसार में किसी भी चीज पर हमारा अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि स्वयं पर भी: शरीर, मन और आत्मा पर भी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 150

———————————————————————

(धम्मपद 149) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 150 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 151)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 150 - जनपदकल्याणी रूपानन्दथेरी वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्थिनम नागरम कटम
mamsalohita lepanam
yattha jara ca maccu ca
mano makkho ca ohito.

———————————————————————

श्लोक 150 : यह शरीर (शाब्दिक रूप से, शहर) हड्डियों से बना है जो मांस और रक्त से ढकी हुई हैं; इसके भीतर क्षय और मृत्यु, अभिमान और निंदा (दूसरों के गुणों और प्रतिष्ठा की) निवास करते हैं (शाब्दिक रूप से, जमा होते हैं)।

———————————————————————

थेरी रूपानंद (जनपदकल्याणी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने जनपदकल्याणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (150) कहा। राजकुमारी जनपदकल्याणी गौतम बुद्ध की सौतेली माता गौतमी की पुत्री थीं; अत्यंत सुंदर होने के कारण वे रूपानंद के नाम से भी जानी जाती थीं। उनका विवाह बुद्ध के चचेरे भाई नंदा से हुआ था। एक दिन उन्होंने चिंतन किया, “मेरे बड़े भाई, जो सर्वशक्तिमान सम्राट बन सकते थे, ने संसार त्याग कर भिक्षु बनने का निश्चय किया; वे अब बुद्ध हैं। मेरे बड़े भाई के पुत्र राहुल और मेरे पति राजकुमार नंदा भी भिक्षु बन गए हैं। मेरी माता गौतमी भी भिक्षुणी बन गई हैं, और मैं यहाँ बिल्कुल अकेली हूँ!” ऐसा कहकर वे कुछ भिक्षुणियों के मठ में गईं और स्वयं भिक्षुणी बन गईं। इस प्रकार, वे आस्था के कारण नहीं, बल्कि दूसरों के अनुकरण में और एकाकीपन की अनुभूति के कारण भिक्षुणी बनीं।

रूपानंद ने दूसरों से सुना था कि बुद्ध अक्सर खन्धों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में उपदेश देते हैं। इसलिए उसने सोचा कि यदि बुद्ध उसे देख लें तो उसकी सुंदरता की निंदा करेंगे; और ऐसा सोचकर वह बुद्ध से दूर रहती थी। लेकिन मठ से लौट रही अन्य भिक्षुणियाँ बुद्ध की प्रशंसा करती रहती थीं; इसलिए एक दिन उसने अन्य भिक्षुणियों के साथ मठ जाने का निर्णय लिया।

बुद्ध ने उसे देखा और मन ही मन सोचा, "काँटा काँटे से ही निकाला जा सकता है; रूपानंद अपने शरीर से बहुत आसक्त है और अपनी सुंदरता पर बहुत घमंड करती है, इसलिए मुझे सुंदरता के द्वारा ही उसका यह घमंड और आसक्ति दूर करनी होगी।" अतः, अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने लगभग सोलह वर्ष की एक अत्यंत सुंदर स्त्री की छवि को अपने पास बैठा दिया, जो उन्हें पंखा कर रही थी। यह युवती केवल रूपानंद और बुद्ध को ही दिखाई दे रही थी। जब रूपानंद ने उस स्त्री को देखा, तो उसे अहसास हुआ कि उस स्त्री के सामने वह स्वयं एक सुंदर सफेद हंस के सामने एक बूढ़े, बदसूरत कौवे जैसी है। रूपानंद ने उस स्त्री को ध्यान से देखा और उसे बहुत पसंद किया। फिर उसने दोबारा देखा और यह देखकर आश्चर्यचकित रह गई कि वह स्त्री लगभग बीस वर्ष की हो गई थी। उसने बार-बार बुद्ध के बगल में बैठी उस आकृति को देखा और हर बार उसने पाया कि वह स्त्री और अधिक उम्र की होती जा रही है। इस प्रकार, वह स्त्री एक वयस्क महिला, फिर एक अधेड़ महिला, एक बूढ़ी महिला, एक दुर्बल और अंत में एक अत्यंत बूढ़ी महिला में परिवर्तित हो गई। रूपानंद ने यह भी देखा कि एक नई छवि के प्रकट होते ही पुरानी छवि लुप्त हो जाती थी, और उन्हें यह अहसास हुआ कि शरीर में निरंतर परिवर्तन और क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है। इस अहसास के साथ ही शरीर के प्रति उनका आसक्ति कम हो गई। इसी बीच, बुद्ध के पास खड़ी आकृति एक बूढ़ी, जर्जर महिला में बदल गई, जो अपने शारीरिक कार्यों पर नियंत्रण खो बैठी थी और अपने ही मल में लोट रही थी। अंत में, उसकी मृत्यु हो गई, उसका शरीर फूल गया, नौ छिद्रों से मवाद और कीड़े निकलने लगे और कौवे और गिद्ध मृत शरीर को नोचने की कोशिश कर रहे थे।

यह सब देखकर रूपानंदा ने मन ही मन सोचा, "यह युवती बूढ़ी होकर कमजोर हो गई और मेरी आँखों के सामने इसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। उसी प्रकार मेरा शरीर भी बूढ़ा होकर कमजोर हो जाएगा; यह रोगों का शिकार होगा और मैं भी मर जाऊँगी।" इस प्रकार, उन्हें खंधों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी समय, बुद्ध ने खंधों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में बताया, और रूपानंदा ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 150 : यह शरीर (शाब्दिक रूप से, शहर) हड्डियों से बना है जो मांस और रक्त से ढकी हुई हैं; इसके भीतर क्षय और मृत्यु, अभिमान और निंदा (दूसरों के गुणों और प्रतिष्ठा की) निवास करते हैं (शाब्दिक रूप से, जमा होते हैं)।

---

प्रवचन के अंत में, रूपानंद ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षुणी रूपानंदा (जनपदकल्याणी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जनपदकल्याणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

राजकुमारी जनपदकल्याणी, गौतम बुद्ध की सौतेली माता गौतमी की बहू थीं; अपनी सुंदरता के कारण वे रूपानंद के नाम से भी जानी जाती थीं। उनका विवाह बुद्ध के सौतेले भाई नंदा से हुआ था। एक दिन उन्होंने सोचा, “मेरे बड़े भाई, जो सर्वशक्तिमान सम्राट बन सकते थे, उन्होंने संसार त्याग कर भिक्षु बनने का निश्चय किया; वे अब बुद्ध हैं। मेरे बड़े भाई के पुत्र राहुल और मेरे पति राजकुमार नंदा भी भिक्षु बन गए हैं। मेरी माता गौतमी भी भिक्षुणी बन गई हैं, और मैं यहाँ बिल्कुल अकेली हूँ!” ऐसा सोचकर वे कुछ भिक्षुणियों के मठ में गईं और स्वयं भी भिक्षुणी बन गईं। इस प्रकार, वे आस्था के कारण नहीं, बल्कि दूसरों का अनुकरण करते हुए और एकाकीपन महसूस करते हुए भिक्षुणी बनीं।

रूपानंद ने दूसरों से सुना था कि बुद्ध अक्सर खन्धों (घटक पदार्थों) की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का उपदेश देते हैं। इसलिए उन्हें लगा कि यदि वे उन्हें देख लें तो उनकी सुंदरता की निंदा करेंगे; और ऐसा सोचकर वे बुद्ध से दूर रहीं। परन्तु मठ से लौट रही अन्य भिक्षुणियाँ बुद्ध की प्रशंसा करती रहीं; इसलिए एक दिन उन्होंने अन्य भिक्षुणियों के साथ मठ जाने का निश्चय किया।

बुद्ध ने उसे देखा और मन ही मन सोचा, "काँटे को काँटे से ही निकाला जा सकता है; रूपानंद अपने शरीर से बहुत आसक्त है और अपनी सुंदरता पर बहुत घमंड करती है, इसलिए मुझे सुंदरता के द्वारा ही उसका यह घमंड और आसक्ति दूर करनी होगी।" अतः, अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने लगभग सोलह वर्ष की एक अत्यंत सुंदर स्त्री की छवि को अपने पास बैठा दिया, जो उन्हें पंखा कर रही थी। यह युवती केवल रूपानंद और बुद्ध को ही दिखाई दे रही थी। जब रूपानंद ने उस युवती को देखा, तो उन्हें एहसास हुआ कि उस युवती के सामने वे स्वयं एक सुंदर सफेद हंस के सामने एक बूढ़े, बदसूरत कौवे जैसी थीं। रूपानंद ने उस युवती को ध्यान से देखा और उन्हें वह बहुत पसंद आई। फिर उन्होंने दोबारा देखा और यह देखकर आश्चर्यचकित रह गईं कि युवती की आयु लगभग बीस वर्ष हो गई थी। उन्होंने बार-बार बुद्ध के बगल में बैठी उस आकृति को देखा और हर बार उन्होंने पाया कि युवती की आयु बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार, वह लड़की एक वयस्क महिला में, फिर एक अधेड़ महिला में, और अंत में एक बहुत बूढ़ी महिला में परिवर्तित हो गई। रूपानंद ने यह भी देखा कि एक नई छवि के प्रकट होने के साथ ही पुरानी छवि लुप्त हो जाती थी, और उन्हें यह अहसास हुआ कि शरीर में निरंतर परिवर्तन और क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है। इस अहसास के साथ ही शरीर के प्रति उनका आसक्ति कम हो गई। इसी बीच, बुद्ध के पास की आकृति एक बूढ़ी, जीर्ण-शीर्ण महिला में परिवर्तित हो गई, जो अब अपने शारीरिक कार्यों पर नियंत्रण नहीं रख पा रही थी और अपने ही मल में लोट रही थी। अंत में, उसकी मृत्यु हो गई, उसका शरीर फूल गया, नौ छिद्रों से मवाद और कीड़े निकलने लगे और कौवे और गिद्ध मृत शरीर को नोचने की कोशिश कर रहे थे।

यह सब देखकर रूपानंदा ने मन ही मन सोचा, "यह युवती बूढ़ी होकर कमजोर हो गई और मेरी आँखों के सामने इसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई। उसी प्रकार मेरा शरीर भी बूढ़ा होकर कमजोर हो जाएगा; यह रोगग्रस्त होगा और मैं भी मर जाऊँगी।" इस प्रकार, उन्हें खन्धों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी समय, बुद्ध ने खन्धों की अनित्यता, असंतोषजनकता और सारहीनता के बारे में बताया, और रूपानंदा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 150)

यत्थ जरा च मक्कू च मानो च मक्खो च ओहितो

मानसलोहिता लेपनं अथिणं कटं नागरं

यत्थ : कहाँ; जरा च : क्षय; मैक्कु सीए : मृत्यु; मनो मक्खो च : अभिमान भी और कृतघ्नता भी; ओहिटो [ ओहिता ]: जमा किए गए हैं; मानसलोहिता लेपनं [ लेपना ]: मांस और रक्त से सना हुआ; अथिहनं [ अथिहिना ]: हड्डियों का; काटां [ काटा ]: बनाया गया है; नागराँ [ नागारा ]: एक शहर

शरीर हड्डियों से बना होता है जो इसकी संरचना का निर्माण करती हैं। इस नंगी संरचना को प्लास्टर से ढककर मांस और रक्त से भर दिया जाता है। इस किले के भीतर क्षय, मृत्यु, अहंकार और कृतघ्नता समाहित हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 150)

मक्खो : कृतघ्नता; निंदा। दूसरों को नीचा दिखाने और उनकी अच्छाइयों पर कलंक लगाने की प्रवृत्ति को मक्खो कहा जाता है । इस अभिव्यक्ति से दूसरों के उच्चतम गुणों को भी नकारने के बुरे गुण का तात्पर्य है। आम लोग और धर्मगुरु दोनों ही एक-दूसरे के द्वारा किए गए अच्छे कार्यों को नकारने की इस प्रवृत्ति के दोषी हो सकते हैं। यहाँ इसे एक सामान्य मानवीय दोष माना गया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 151

---

(धम्मपद 150) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 151 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 152)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 151 - मल्लिकादेवी वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Jiranti ve rajaratha sucitta
atho sarirampi jaram upeti
सतांका धम्मो(1) न जराम उपेति
संतो हे सब्भि पवेदयन्ति।

---

श्लोक 151 : अलंकृत राजसी रथ भी घिस जाते हैं, शरीर भी वृद्ध हो जाता है, परन्तु गुणी व्यक्तियों का धर्म कभी नष्ट नहीं होता। गुणी लोग आपस में यही कहते हैं।

---

1. धम्मो/धम्म: नौ पारलौकिक तत्व, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण, साथ ही अच्छे कर्म या अच्छे गुण।

---

रानी मल्लिका की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) की रानी मल्लिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (151) कहा।
एक दिन मल्लिका स्नानघर में चेहरा, हाथ और पैर धोने गई। उसका पालतू कुत्ता भी अंदर आ गया; जब वह पैर धोने के लिए झुकी, तो कुत्ते ने उसके साथ यौन संबंध बनाने की कोशिश की, और रानी को यह देखकर हंसी आ रही थी और कुछ हद तक खुशी भी हो रही थी। राजा ने अपने शयनकक्ष की खिड़की से यह अजीब घटना देखी। जब रानी अंदर आई, तो उसने गुस्से से रानी से कहा, "अरे, दुष्ट स्त्री! तुम स्नानघर में उस कुत्ते के साथ क्या कर रही थी? जो मैंने अपनी आँखों से देखा है, उसे मत झुठलाओ।" रानी ने उत्तर दिया कि वह केवल चेहरा, हाथ और पैर धो रही थी, इसलिए उसने कुछ भी गलत नहीं किया था। फिर उसने आगे कहा, "लेकिन, वह कमरा बहुत अजीब है। अगर कोई उस कमरे में जाता है, तो इस खिड़की से देखने वाले को दो लोग दिखाई देंगे। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, हे राजा, तो कृपया उस कमरे में जाइए और मैं इस खिड़की से देख लूंगी।"
तो राजा स्नानघर में चले गए। जब वे बाहर आए, तो मल्लिका ने राजा से पूछा कि उन्होंने उस कमरे में एक बकरी के साथ ऐसा दुराचार क्यों किया। राजा ने इससे इनकार किया, लेकिन रानी ने ज़ोर देकर कहा कि उसने उन्हें अपनी आँखों से देखा था। राजा हैरान थे, लेकिन अपनी कम बुद्धि के कारण उन्होंने रानी की बात मान ली और यह निष्कर्ष निकाला कि स्नानघर वाकई बहुत अजीब था।
उस समय से रानी को राजा से झूठ बोलने और उस पर बकरी के साथ दुर्व्यवहार का आरोप लगाने के लिए गहरा पश्चाताप हुआ। इसलिए, मृत्यु के निकट आने पर भी वह अपने पति के साथ किए गए महान और अद्वितीय दान-पुण्य के बारे में भूल गई और केवल यही याद करती रही कि उसने उनके साथ अन्याय किया था। परिणामस्वरूप, जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ। उसके दाह संस्कार के बाद, राजा ने बुद्ध से यह पूछने का इरादा किया कि उसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने राजा की भावनाओं को ठेस न पहुँचाने की इच्छा की और यह भी नहीं चाहा कि राजा धम्म में अपना विश्वास खो दे। इसलिए उन्होंने इच्छा की कि यह प्रश्न उनसे न पूछा जाए, और राजा पसेनदी (प्रसेनजित) बुद्ध से यह प्रश्न पूछना भूल गए।
हालांकि, निरय (नरक) में सात दिन बिताने के बाद, रानी का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ। उस दिन, बुद्ध राजा पसेनादि के महल में भिक्षा मांगने गए; उन्होंने राजसी रथों के आश्रयगृह में विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। भिक्षा देने के बाद, राजा ने बुद्ध से पूछा कि रानी मल्लिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मल्लिका का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "उनका पुनर्जन्म और कहाँ हो सकता था? वे हमेशा अच्छे कर्म करने के बारे में सोचती रहती थीं, हमेशा इस बारे में सोचती रहती थीं कि अगले दिन बुद्ध को क्या अर्पित करें। आदरणीय! अब जब वे चली गई हैं, तो मैं, आपका विनम्र शिष्य, समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ।" बुद्ध ने उनसे कहा, "अपने पिता और दादा के इन रथों को देखो; ये सब घिस-पिट कर बेकार पड़े हैं; तुम्हारा शरीर भी ऐसा ही है, जो मृत्यु और क्षय के अधीन है। केवल पुण्य का धर्म ही क्षय से मुक्त है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 151 : अलंकृत राजसी रथ भी घिस जाते हैं, शरीर भी वृद्ध हो जाता है, परन्तु गुणी व्यक्तियों का धर्म कभी नष्ट नहीं होता। गुणी लोग आपस में यही कहते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

रानी मल्लिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी की रानी मल्लिका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन मल्लिका स्नानघर में चेहरा, हाथ और पैर धोने गईं। उनका पालतू कुत्ता अंदर आ गया; जब वह पैर धोने के लिए झुकीं, तो कुत्ते ने उनके साथ यौन संबंध बनाने की कोशिश की, और रानी को यह देखकर हंसी आ रही थी और कुछ हद तक खुशी भी हो रही थी। राजा ने अपने शयनकक्ष की खिड़की से यह अजीब घटना देखी। जब रानी अंदर आईं, तो उन्होंने क्रोधित होकर रानी से कहा, "अरे, दुष्ट स्त्री! तुम स्नानघर में उस कुत्ते के साथ क्या कर रही थीं? जो मैंने अपनी आँखों से देखा है, उसे मत झुठलाओ।" रानी ने उत्तर दिया कि वह केवल चेहरा, हाथ और पैर धो रही थीं, इसलिए उन्होंने कुछ भी गलत नहीं किया था। फिर उन्होंने आगे कहा, "पर, वह कमरा बहुत अजीब है। अगर कोई उस कमरे में जाए, तो इस खिड़की से देखने वाले को दो लोग दिखाई देंगे। अगर आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है, हे राजा, तो कृपया उस कमरे में जाइए और मैं इस खिड़की से देख लूंगी।"

तो राजा स्नानघर में चले गए। जब वे बाहर आए, तो मल्लिका ने राजा से पूछा कि उन्होंने उस कमरे में एक बकरी के साथ ऐसा दुराचार क्यों किया। राजा ने इससे इनकार किया, लेकिन रानी ने जोर देकर कहा कि उन्होंने उन्हें अपनी आँखों से देखा था। राजा हैरान थे, लेकिन अपनी कम बुद्धि के कारण उन्होंने रानी की बात मान ली और यह निष्कर्ष निकाला कि स्नानघर वाकई बहुत अजीब था।

उस समय से रानी को राजा से झूठ बोलने और उस पर बकरी के साथ दुर्व्यवहार का आरोप लगाने के लिए गहरा पश्चाताप हुआ। इसलिए, मृत्यु के निकट आने पर भी वह अपने पति के साथ किए गए महान और अद्वितीय दान-पुण्य के बारे में भूल गई और केवल यही याद करती रही कि उसने उनके साथ अन्याय किया था। परिणामस्वरूप, जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म निरय (नरक) में हुआ। उसके अंतिम संस्कार के बाद, राजा ने बुद्ध से यह पूछने का इरादा किया कि उसका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध उसकी भावनाओं को ठेस न पहुँचाना चाहते थे और यह भी नहीं चाहते थे कि राजा धम्म में अपना विश्वास खो दे। इसलिए उन्होंने इच्छा की कि यह प्रश्न उससे न पूछा जाए और राजा पसेनादि बुद्ध से यह प्रश्न पूछना भूल गया।

हालांकि, निरय में सात दिन बिताने के बाद, रानी का तुषिता देवलोक में पुनर्जन्म हुआ। उस दिन, बुद्ध राजा पसेनादि के महल में भिक्षा मांगने गए; उन्होंने राजसी रथों के आश्रयगृह में विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। भिक्षा देने के बाद, राजा ने बुद्ध से पूछा कि रानी मल्लिका का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मल्लिका का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है।" यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "उनका पुनर्जन्म और कहाँ हो सकता था? वे हमेशा अच्छे कर्म करने के बारे में सोचती रहती थीं, हमेशा इस बारे में सोचती रहती थीं कि कल बुद्ध को क्या अर्पित करें। आदरणीय! अब जब वे चली गई हैं, तो मैं, आपका विनम्र शिष्य, समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या करूँ।" बुद्ध ने उनसे कहा, "अपने पिता और दादा के इन रथों को देखो; ये सब घिस-पिट कर बेकार पड़े हैं; तुम्हारा शरीर भी ऐसा ही है, जो मृत्यु और क्षय के अधीन है। केवल सद्गुणी का धर्म ही क्षय से मुक्त है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 151)

सुचित्ता राजरथ वे जिरन्ति अथो शरीरं अपि जरां उपेति ,

सतां धम्मो च जरां न उपेति , संतो सभी हवे पवेदयन्ति ।

सुचित्ता : अच्छी तरह से सजाया गया; राजरथ : शाही गाड़ियाँ; वे जिरन्ति : निश्चित रूप से विघटित; एथो : इसी तरह; शरीरं अपि : शरीर भी: जरां [ जरा ]: क्षय; उपेति : पहुँचता है; सतां [ सता ]: महान व्यक्ति का (बुद्ध की तरह); धम्मो [ धम्म ]: शिक्षण; सीए जरां [ जरा ]: क्षय; न उपेति : नहीं पहुंचता; सैंटो [ सांता ]: वे सर्वोच्च अनुशासित व्यक्ति; सब्भि : अच्छे लोगों के साथ; है : बिना किसी संदेह के; पवेद्यन्ति : संवाद करें

राजाओं के रथ जैसी सुंदर और आकर्षक वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य का शरीर भी क्षीण हो जाता है। परन्तु सत्य का अनुभव कभी नष्ट नहीं होता। शांत मन वाले ही इस सत्य का अनुभव करते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 151)

जबकि सब कुछ क्षय होकर नष्ट हो जाता है, यदि कोई अविचलित मन बनाए रख सकता है, तो वह शांति ही एकमात्र स्थिर अनुभव है जो केवल उन्हीं लोगों को ज्ञात है जिन्होंने निर्वाण की शांति प्राप्त कर ली है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 152

---

(धम्मपद151) <<<< पिछला|| धम्मपद152 ||अगला >>>> (धम्मपद 153 और 154(1))

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 152 - लालूदायी थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
अप्पसुतायम पुरिसो
balibaddova grati
mamsani tassa vaddhanti
panna tassa na vaddhati.

---

श्लोक 152 : यह अल्पज्ञानी व्यक्ति बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है; केवल उसका शरीर बढ़ता है, उसकी बुद्धि नहीं।

---

थेरा लालुदायि (या कलुदायि) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (152) का उच्चारण लालुदायी के संदर्भ में किया, जो अल्प बुद्धि वाला एक थेरा था।
लालुदयी एक मंदबुद्धि और अत्यंत भुलक्कड़ भिक्षु थे। वे चाहे कितनी भी कोशिश कर लें, कभी भी अवसर के अनुरूप बात नहीं कर पाते थे। इस प्रकार, शुभ और आनंदमय अवसरों पर वे दुःख की बातें करते थे, और दुःखमय अवसरों पर प्रसन्नता और आनंद की बातें करते थे। इसके अलावा, उन्हें कभी इस बात का एहसास भी नहीं हुआ कि वे अवसर के अनुरूप बातें नहीं कर रहे हैं। जब बुद्ध ने उन्हें इस बारे में बताया, तो उन्होंने कहा, "लालुदयी जैसा कम ज्ञान वाला व्यक्ति बैल के समान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 152 : यह अल्पज्ञानी व्यक्ति बैल की तरह बूढ़ा हो जाता है; केवल उसका शरीर बढ़ता है, उसकी बुद्धि नहीं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय कालुदाई की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अल्प बुद्धि वाले भिक्षु कालुदाई के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कहा जाता है कि पूज्य कालुदायी किसी ऐसे घर में जाते थे जहाँ लोग कोई त्योहार मना रहे होते थे और वे अंत्येष्टि के लिए उपयुक्त श्लोक पढ़ते थे, जैसे, "वे दीवारों के बाहर खड़े हैं।" इसी प्रकार वे किसी ऐसे घर में जाते थे जहाँ अंत्येष्टि चल रही होती थी, और "वे दीवारों के बाहर खड़े हैं" कहने के बजाय वे त्योहार के ऐसे श्लोक पढ़ते थे, जैसे, "दान और भक्ति।" या फिर वे रत्न सूत्र पढ़ते थे, जिसमें ऐसे श्लोक होते हैं, "इस लोक में या परलोक में जो भी धन-संपत्ति है।"
दरअसल, वह जहाँ भी जाता, चाहे उसका इरादा कुछ और कहने का ही क्यों न होता, वह हमेशा कुछ और ही कह देता। जिन भिक्षुओं ने उसे बोलते सुना, उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई और कहा, “हे पूज्यवर, कालुदायी के उत्सवों या अंत्येष्टि स्थलों पर जाने का क्या लाभ? जहाँ सही बात कहनी चाहिए, वहाँ वह हमेशा गलत बात कहता है।” बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब उसने ऐसा कहा है; पिछले जन्म में भी वह हमेशा सही बात के बजाय गलत बात ही कहता था।” इतना कहकर उन्होंने यह कथा सुनाई।
बहुत समय पहले, बनारस में अग्गिदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसका एक पुत्र था जिसका नाम सोमदत्त कुमार था और वह राजा की सेवा करता था। सोमदत्त राजा का प्रिय और प्यारा था। एक दिन उसके दो बैलों में से एक मर गया। तब ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा, “प्रिय सोमदत्त, राजा से एक बैल मांगो और उसे मेरे पास ले आओ।” सोमदत्त ने मन ही मन सोचा, “यदि मैं राजा से ऐसी विनती

करूंगा, तो वह सोचेगा कि मैं उससे अपने संबंध का दुरुपयोग कर रहा हूं।" इसलिए उसने अपने पिता से कहा, "प्रिय पिता, आप स्वयं जाइए और राजा से मांगिए।" "ठीक है, प्रिय पुत्र, मुझे भी साथ ले चलो।"

फिर उसने अपने पिता को निम्नलिखित श्लोक सिखाया:

हे महामहिम राजा, मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं अपना खेत जोतता था;

लेकिन उन दोनों में से एक मर चुका है; कृपया मुझे दूसरा प्रदान करें, योद्धा-राजकुमार।

लेकिन जब वह राजा के पास गया तो उसने यह कहा:

हे महामहिम राजा, मेरे पास दो बैल थे, जिनसे मैं अपना खेत जोतता था;

लेकिन उन दोनों में से एक मर चुका है; कृपया मेरे दूसरे योद्धा-राजकुमार को ले आओ।

उस समय मूर्ख ब्राह्मण कालूदाई था।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 152)

अप्पासुतो अयं पुरिसो बलिवद्दो इव जिरति

तस्स मंसानि वन्धन्ति तस्स पन्ना न वन्धति

अप्पासुतो [ अप्पासुता ]: जिसने शायद ही सुना हो; अयं पुरिसो [ पुरिसा ]: यह व्यक्ति; बालिवद्दो इवा : बैल की तरह; जिरति : बढ़ता है; तस्सा : उसका; मांसानि : मांसपेशियाँ; वन्धन्ति : बढ़ो; तस्सा : उसका; पन्ना : स्वयं को समझना; न वधति : नहीं बढ़ता।

जिस व्यक्ति ने शिक्षा को मुश्किल से ही सुना है, उसका शरीर मोटे बैल की तरह बढ़ता है। यद्यपि उसका शरीर बढ़ता है, पर उसकी आत्म-समझ नहीं बढ़ती।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 152)

अप्पस्सुतो : कम ज्ञान वाला व्यक्ति; शाब्दिक अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने बहुत कम 'सुना' हो। बुद्ध के समय में, ज्ञान मुख्यतः बुद्धिमान लोगों की बातें सुनकर ही प्राप्त होता था।

बलिवाड्डो : बैल: उसकी वृद्धि और परिपक्वता का माप उसका शारीरिक आकार है।

maṃsāni : उसकी मांसपेशियां बढ़ती हैं; उसका दिमाग बढ़ता है।

paññā tassa navø�ḍhati : उसका आत्मज्ञान नहीं बढ़ता।

पन्ना : समझ, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि। पन्ना का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हालांकि, बौद्ध धर्म में आंतरिक अनुभव की विशिष्ट गहन जागरूकता, मोक्ष के अष्टमार्ग ( मग्ग ) का एक हिस्सा है। यह अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) है, अर्थात् अनुभव की वह विवेकी जागरूकता, जो संतत्व के चार चरणों और निर्वाण की प्राप्ति कराती है, और जिसमें अस्तित्व के सभी रूपों की अनित्यता, दुख और निराकारता की गहरी समझ शामिल है।

इसके उत्पन्न होने की स्थिति के संबंध में, ज्ञान को तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है: चिंतन पर आधारित ज्ञान, अधिगम पर आधारित ज्ञान और मानसिक विकास पर आधारित ज्ञान।

'विचार पर आधारित' वह ज्ञान है जिसे किसी व्यक्ति ने दूसरों से सीखे बिना, अपने स्वयं के चिंतन के माध्यम से अर्जित किया है।

'सीखने पर आधारित' वह ज्ञान है जो किसी व्यक्ति ने दूसरों से सुना है और इस प्रकार सीखने के माध्यम से प्राप्त किया है।

'मानसिक विकास पर आधारित' वह ज्ञान है जो किसी व्यक्ति ने मानसिक विकास के माध्यम से किसी न किसी रूप में प्राप्त किया है और जो पूर्ण समझ के स्तर तक पहुंच चुका है।

पन्ना पांच मानसिक क्षमताओं में से एक है, तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में से एक है, और पारमिता ( अतींद्रिय प्राप्ति ) के लिए आवश्यक शर्तों में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 153,154

(धम्मपद 152) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 153 और 154(1) ‖ अगला >>>> (धम्मपद 155 और 156)

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 153 और 154(1) - उदान वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अनेकाजतिसंसारम
sandhavissam anibbisam
gahakaram gavesanto(2)
dukkha jati punappunam(3)
Gahakaraka ditthosi(4)
puna geham na kahasi(5)
sabba te phasuka bhagga(6)
gahakotam visankhatam(7)
visankharagatam cittam(8)
tanhanam khayamajjhaga(9)

---

श्लोक 153 : मैं, जो इस शरीर (घर) के निर्माता की खोज में भटकता रहा हूँ, ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त करने में असफल रहा हूँ, जिससे मैं उसे पा सकूँ, और संसार में अनगिनत जन्मों से भटकता रहा हूँ। बार-बार जन्म लेना वास्तव में दुःख है!

---

श्लोक 154 : हे गृह निर्माता! तुम प्रकट हो चुके हो, अब तुम मेरे लिए कोई गृह नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट चुकी हैं, तुम्हारा छत का तख़्ता नष्ट हो चुका है। मेरा मन निर्वाण (यानी निर्वाण) की अवस्था में पहुँच चुका है; व्यथा का अंत (अरहत्त फल) हो चुका है।

---

1. श्लोक 153 और 154 के फुटनोट: ये दो श्लोक बुद्ध द्वारा ज्ञान प्राप्ति के क्षण में अनुभव किए गए तीव्र और उदात्त आनंद की अभिव्यक्ति हैं; इस प्रकार, वे उदात्त अर्थ और गहरी भावना के भंडार से परिपूर्ण हैं।

2. gahakaram gavesanto: शाब्दिक अर्थ, "मैं जिसने घर के निर्माता को खोजने का प्रयास किया है" घर शरीर है, निर्माता लालसा (तन्हा) है। टीका में दिए गए श्लोक (153) का अर्थ इस प्रकार है:

मैं, जो इस भवन के निर्माता की खोज में लगा हुआ हूँ, यह जानते हुए कि उन्हें केवल एक विशेष ज्ञान से ही देखा जा सकता है, दीपांकर बुद्ध की भविष्यवाणी के बाद से ही उस ज्ञान (बोधि नाना) को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ कि एक दिन मैं उनके समान बुद्ध बनूँगा। परन्तु बोधि नाना प्राप्त न कर पाने के कारण मैं लाखों जन्मों के इस अंतहीन चक्र में भटकता रहा हूँ।

3. दुःख जाति पुनप्पुनम्: बार-बार जन्म लेना दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) है। यही कारण है कि इस घर के निर्माता, बढ़ई की खोज की जा रही है।

जन्म, जो वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के साथ आता है, दुःख है; इसीलिए मैं लगातार गृहस्थी की लालसा की तलाश में हूँ।

4. दित्तोसी: आप देखे गए हैं: मैंने अब आपको देखा है क्योंकि मैंने अपनी अंतर्दृष्टि से ज्ञान या बोधि नाना, सर्वव्यापी ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

5. पुना गेहम ना कहसी: कोई घर नहीं बनाया जाएगा: तुम इस पुनर्जन्म के चक्र में (मेरे लिए) दूसरा घर नहीं बनाओगे।

6. sabba te phasuka bhagga: All your shipments are broken: I have destroyed all the remaining defilements.

7. gahakutam visankhatam छत का पेड़ नष्ट हो गया है: मैंने अज्ञान को दूर कर दिया है।

8. विसंखरागतं चित्तम्: शाब्दिक अर्थ, मेरा मन निर्वाण को अपना विषय बनाकर, निर्वाण को प्राप्त कर चुका है।

9. तन्हानाम खयामज्जाग: व्यथा का अंत हो गया है। मैंने अरहत्त फल प्राप्त कर लिया है।

---

बुद्ध के उल्लासपूर्ण शब्दों से संबंधित कहानी

ये दो श्लोक बुद्ध द्वारा परम ज्ञान प्राप्ति (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) के क्षण में अनुभव किए गए गहन और उदात्त आनंद की अभिव्यक्ति हैं। पूज्य आनंद के अनुरोध पर जेतवन मठ में इन श्लोकों का पाठ किया गया था।

शाक्यों राज्य के राजा सुद्धोदन और रानी माया के पुत्र गौतम वंश के राजकुमार सिद्धार्थ ने उनतीस वर्ष की आयु में संसार त्याग दिया और धम्म (सत्य) की खोज में तपस्वी बन गए। छह वर्षों तक वे गंगा घाटी में विचरण करते रहे, प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं से मिले और उनके सिद्धांतों और विधियों का अध्ययन किया। उन्होंने संयमी जीवन व्यतीत किया और कठोर तपस्या का पालन किया; परन्तु उन्होंने इन सभी पारंपरिक प्रथाओं को अनुचित पाया। वे अपने तरीके से सत्य को खोजने के लिए दृढ़ थे, और अत्यधिक इंद्रिय भोग और आत्म-यातना (10) की दो चरम सीमाओं से बचकर उन्होंने मध्य मार्ग पाया जो पूर्ण शांति, निर्वाण की ओर ले जाता है। यह मध्य मार्ग (मज्झिमपतिपदा) आठ घटकों का श्रेष्ठ मार्ग है, अर्थात्, सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

इस प्रकार, एक संध्या पर, नेरंजारा नदी के किनारे एक बोधि वृक्ष (पीपल वृक्ष) के नीचे बैठे हुए, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने पैंतीस वर्ष की आयु में परम ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त किया। रात्रि के प्रथम पहर में, राजकुमार ने पूर्व जन्मों के स्मरण की शक्ति (पुब्बेनिवासनुस्सति-नाना) प्राप्त की और द्वितीय पहर में उन्होंने दिव्य दृष्टि (दिब्बचक्खु नाना) प्राप्त की। फिर, रात्रि के तृतीय पहर में उन्होंने अनुलोम और मृत्यु के क्रम में प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत का चिंतन किया। भोर होते ही, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने अपनी बुद्धि और अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझ लिया। चार आर्य सत्य हैं: दुःख/पीड़ा का आर्य सत्य (दुक्खा आर्य सच्च), दुःख/पीड़ा के कारण का आर्य सत्य (दुक्खा समुदय आर्य सच्च), दुःख/पीड़ा के निवारण का आर्य सत्य (दुक्खा निरोध आर्य सच्च), और दुःख/पीड़ा के निवारण के मार्ग का आर्य सत्य (दुक्खा निरोध गामिनी पतिपदा आर्य सच्च)। उनमें प्रत्येक आर्य सत्य के स्वरूप का ज्ञान (सच्चा नाना), प्रत्येक आर्य सत्य के लिए आवश्यक कर्म का ज्ञान (किच्चा नाना), और प्रत्येक आर्य सत्य के लिए आवश्यक कर्म की पूर्णता का ज्ञान (कटा नाना) भी प्रकट हुआ; और इस प्रकार, उन्होंने बुद्ध का सब्बन्नुत नाना (बोधि नाना) प्राप्त किया। उस समय से वे गौतम बुद्ध के नाम से जाने गए।

इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य है कि जब चारों आर्य सत्य, अपने तीन पहलुओं (अर्थात बारह गुणों) के साथ, बुद्ध को पूर्णतः स्पष्ट हो गए, तभी उन्होंने मनुष्य जगत, देवों (देवदूतों) के जगत और ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के जगत में यह स्वीकार किया कि उन्होंने सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है और अतः वे बुद्ध बन गए हैं।

बुद्धत्व प्राप्ति के क्षण में,

बुद्ध ने निम्नलिखित दो श्लोक कहे:

---

श्लोक 153 : मैं, जो इस शरीर (घर) के निर्माता की खोज में भटकता रहा हूँ, ज्ञान (बोधि नाना या सब्बन्नुत नाना) प्राप्त करने में असफल रहा हूँ, जिससे मैं उसे पा सकूँ, और संसार में अनगिनत जन्मों से भटकता रहा हूँ। बार-बार जन्म लेना वास्तव में दुःख है!

---

श्लोक 154 : हे गृह निर्माता! तुम प्रकट हो चुके हो, अब तुम मेरे लिए कोई गृह नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट चुकी हैं, तुम्हारा छत का तख़्ता नष्ट हो चुका है। मेरा मन निर्वाण (यानी निर्वाण) की अवस्था में पहुँच चुका है; व्यथा का अंत (अरहत्त फल) हो चुका है।

---

(10) कामसुखल्लिकानुयोग और अट्टकियामाथानुयोग।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय आनंद के श्लोक: यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने बोधि वृक्ष (ज्ञान के वृक्ष) के चरणों में बैठकर गंभीर प्रवचन ( उदान ) के रूप में दिया था और बाद में एक प्रश्न के उत्तर में आदरणीय आनंद को सुनाया गया था।

सूर्य अस्त होने से पहले, बोधि वृक्ष की तलहटी में बैठे बुद्ध ने मारा की शक्ति पर विजय प्राप्त की; प्रथम पहर में उन्होंने पूर्व की अवस्थाओं को ढकने वाले अंधकार को दूर भगाया; मध्य पहर में उन्होंने अलौकिक दृष्टि प्राप्त की; और अंतिम पहर में, प्राणियों के प्रति दया भाव से, आश्रित उत्पत्ति पर ध्यान केंद्रित करके और उस पर आगे-पीछे ध्यान लगाकर, सूर्योदय के समय उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने असंख्य बुद्धों के समान एक गंभीर घोषणा की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 153) पुनप्पुनं जाति दुक्खा गहकारकम् गवेसंतो

अनेकजति संसारं अनिब्बिसं संधाविस्सां

पुनप्पुनं [ पुनप्पुना ]: बार-बार, लगातार; जाति : जन्म; दुःख : दुःख से भरा; गहकारकं [ गहकारक ]: (इस प्रकार) घर बनाने वाला; गेवेसन्तो [ गेवेसन्त ]: खोज; अनेकजाति संसारं [ संसार ]: अस्तित्व के इस प्रतीत्यतः अंतहीन चक्र में अनेक जन्म; अनिब्बिसं [ अनिबिस ]: बिना सामना किए; संधाविस्सं [ संधाविस्स ]: यात्रा की

यह यात्रा, यह जीवनचक्र, कई जन्मों से गुज़र चुका है, लेकिन सृष्टिकर्ता, संसार और स्वयं के सृजनकर्ता से मिले बिना, उनकी खोज में भटकता रहा है। क्योंकि बार-बार जन्म लेना कष्टदायी होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 154) गहकारक दिथो असि । पुना गेहं न कहासि

ते सब्बा फासुका भग्गा गहकुटं विसंखितं

चित्तं विसंखरागतं । तन्हाणं खयं अज्झागा

गहकारक : हे गृह निर्माता; दिठ्ठो असि : मैंने तुम्हें फिर से देखा है ; पुना : एक बार फिर; गेहं [ गेह ]: गृह; न काहसि : नहीं बनाएगा; ते : तुम्हारा; सब्बा फासुका : सभी आधार; भग्गा : नष्ट हो गए; गहकूत [ गहकूत ]: गृह की संरचना; विसंखित [ विसंखित ]: ध्वस्त हो गई; चित्त [ चित्त ]: मन; विसंखारगत [ विसंखारगत ]: बद्धता समाप्त हो गई; तन्हानां खयं [ खय ]: इच्छा का अंत; अज्जगा : प्राप्त हो गया

हे निर्माता, हे सृष्टिकर्ता, अंततः आप प्रकट हुए। आप इस घर और स्वयं को फिर कभी नहीं बनाएंगे। आपके सभी आधार नष्ट हो गए हैं; संरचना ध्वस्त हो गई है। मन अब बद्ध नहीं है, इच्छा समाप्त हो गई है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 153-154) विशेष टिप्पणी। अपने ज्ञानोदय के दिन ही, भोर में बुद्ध ने आनंद का यह स्तुतिगान ( उदान ) किया, जो उनकी दिव्य नैतिक विजय और उनके आंतरिक आध्यात्मिक अनुभव का सजीव वर्णन करता है। उन्हें इस संसार यात्रा पर विवश होना पड़ा और फलस्वरूप कष्ट भोगना पड़ा, क्योंकि वे उस वास्तुकार को नहीं खोज सके जिसने इस शरीर और आत्मा का निर्माण किया था। अपने अंतिम जन्म में, अपनी विचरण यात्रा के दौरान, जो उन्होंने अत्यंत विकसित कर ली थी, एकांत ध्यान में लीन रहते हुए, अथक खोज के बाद, उन्होंने अपनी अंतर्दृष्टि से उस मायावी वास्तुकार को खोज निकाला जो बाहर नहीं, बल्कि उनके अपने हृदय की गहराई में निवास करता था। यह बोध और कल्पना की मानसिक प्रक्रिया ( संस्कार ) और अस्तित्व की बाध्यकारी इच्छा ( भव तन्हा ) ही थी जो सृष्टिकर्ता, वास्तुकार, निर्माता थी, जो सभी में अंतर्निहित एक मानसिक प्रक्रिया है। जो स्वयं द्वारा सृजित किया जाता है, उसे स्वयं ही नष्ट किया जा सकता है। वास्तुकार की खोज मानसिक प्रक्रिया की आत्मनिरीक्षणात्मक जागरूकता है, जिसने प्रक्रिया को रोककर अर्हतत्व की प्राप्ति कराई। इन श्लोकों में इसे 'इच्छा का अंत' कहा गया है।

स्वयं निर्मित इस घर का आधार प्रेरणा है। यह संरचना मानसिक संरचना ( संस्कार ) है। इस प्रक्रिया के प्रति सचेत होकर संरचना के टूटने से घर का पूर्णतः विध्वंस हो जाता है।

घर के विध्वंस के साथ ही मन निर्वाण की अवस्था प्राप्त कर लेता है। यहाँ बुद्ध अपने अतीत के कष्टमय कष्टों को स्वीकार करते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि पुनर्जन्म मात्र एक विश्वास नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म के अभ्यास का वास्तविक आधार है। यही वह समस्या है जिसे बुद्ध ने समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए हल करने का निश्चय किया था।

tanhānaṃ khayaṃ ajjhagā : शाब्दिक अर्थ है तृप्ति की समाप्ति, जो निर्वाण है, यानी अमरता।

निर्वाण बौद्ध धर्म का सर्वोच्च लक्ष्य है ।

जातक टीका में वर्णित है कि बोधिसत्व ने अपने जन्म के समय तपस्वी सुमेध के रूप में इस प्रकार चिंतन किया:

"यद्यपि दुख है ही,
फिर भी खुशी भी पाई जा सकती है।
अतः, यद्यपि वास्तव में अस्तित्व है,
अस्तित्वहीनता की खोज की जानी चाहिए।
"भले ही गर्मी हो,
फिर भी, सुखद शीत ऋतु भी पाई जाती है।
अतः, यद्यपि त्रिविध अग्नि विद्यमान है,
इसी प्रकार निर्वाण की खोज करनी चाहिए।
"यद्यपि बुराई मौजूद है,
जो अच्छा है, वह भी पाया जाता है।
तो, यह सच है कि जन्म का अस्तित्व है।
जो जन्म से संबंधित नहीं है, उसकी खोज करनी चाहिए।

पाली शब्द निब्बाना (संस्कृत — निर्वाण ) ' न ' और ' वान ' से मिलकर बना है। न एक ऋणात्मक कण है। वान का अर्थ है गति। "इसे निब्बाना इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह गति करने की उस बाध्यकारी इच्छा ( नि ) का अभाव है , जो किसी जीव की उस उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया है जिसे वान कहा जाता है ।" जब तक व्यक्ति इस इच्छा से प्रेरित रहता है, तब तक वह नए कर्मों का संचय करता रहता है, जो किसी न किसी रूप में जन्म और मृत्यु के निरंतर चक्र को जारी रखते हैं। जब इस इच्छा के सभी रूप समाप्त हो जाते हैं, तो प्रजनन कर्म शक्तियां कार्य करना बंद कर देती हैं, और व्यक्ति निब्बाना प्राप्त कर लेता है , जिससे जन्म और मृत्यु का चक्र रुक जाता है। बौद्ध धर्म में मुक्ति का अर्थ है जीवन और मृत्यु के निरंतर चक्र को रोकना।

निर्वाण को कामवासना ( लोभ ), घृणा ( दोष ) और मोह ( मोह ) के बंधनों के नाश के रूप में भी समझाया गया है । बुद्ध कहते हैं, “सारा संसार ज्वालाओं में घिरा है। यह किस अग्नि से प्रज्वलित है? कामवासना, घृणा और मोह की अग्नि से; जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा की अग्नि से यह प्रज्वलित है।” एक अर्थ में, निर्वाण को इन ज्वालाओं के नाश के रूप में समझा जा सकता है। निर्वाण इन ज्वालाओं के नाश के सिवा कुछ नहीं है। ज्वालाओं का नाश होना निर्वाण प्राप्त करने का साधन नहीं है , बल्कि यह स्वयं निर्वाण का लक्ष्य है।
कुछ लेखक यह कहने में संकोच करते हैं कि निर्वाण शून्यता है। वे बौद्ध धर्म में निहित 'शून्यता' (सुञ्ञता) की सर्वोपरि अवधारणा को भूल जाते हैं। वे निर्वाण में भी किसी न किसी चीज़ की लालसा रखते हैं। परन्तु जब तक हम 'कुछ भी न चाहना' नहीं, तब तक हम निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते। यदि निर्वाण शून्यता है, तो यह आकाश के समान होना चाहिए । आकाश और निर्वाण दोनों ही शाश्वत और अपरिवर्तनीय हैं। आकाश शाश्वत है क्योंकि यह पदार्थ की अनुपस्थिति है। निर्वाण स्थान और समय दोनों से रहित है। यह कहना गलत है कि आकाश या निर्वाण 'नहीं है'। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पदार्थ के संबंध में आकाश 'है'; और दुख के संबंध में निर्वाण 'है'।
बुद्ध ने अस्तित्व के विभिन्न स्तरों की चर्चा करते हुए विशेष रूप से 'शून्यता के लोक' ( आकिंचन्यातना ) का उल्लेख किया है, जिसे निर्वाण से अलग समझना आवश्यक है । शून्यता का लोक किसी अनुपस्थिति का नहीं, बल्कि शून्यता की अनुभूति का है।
इस चित्र में बुद्ध स्वयं को एक गृह निर्माता द्वारा निर्मित घर के रूप में वर्णित करते हैं। गृह निर्माता इन श्लोकों में तृष्णा ( तन्हा ) से स्वयं को जोड़ते हैं। इस प्रकार के जुड़ाव का कारण यह है कि बुद्ध के सिद्धांत के अनुसार, तृष्णा ही वह कारक है जो जन्म-मृत्यु के चक्र में बार-बार जन्म लेने का कारण बनती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 155,156

———————————————————————

(धम्मपद 153 और 154(1)) <<<< पिछला || धम्मपद 155 और 156 || अगला >>>> (धम्मपद 157)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 155 और 156 - महाधनसेट्ठिपुत्त वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

अचरित्वा ब्रह्मचर्यम
aladdha yobbane dhanam
जिन्नाकोन्कावा झायंती
khinamaccheva pallale.
अचरित्वा ब्रह्मचर्यम
aladdha yobbane dhanam
senti capatikhinava
puranani anutthunam.

———————————————————————

श्लोक 155 : वे लोग, जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, मछली रहित सूखते हुए तालाब पर जीर्ण-शीर्ण बगुले की तरह निराशा में क्षीण हो जाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 156 : वे लोग जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, गतिहीन तीरों की तरह असहाय पड़े रहते हैं, अतीत के लिए विलाप और आहें भरते रहते हैं।

---

महाधना के पुत्र की कहानी

मिगदया वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (155) और (156) का उच्चारण किया, जो बारानासी के एक धनी व्यक्ति महाधना के पुत्र के संदर्भ में था।

महाधन के पुत्र ने बचपन में पढ़ाई नहीं की; जब वह वयस्क हुआ तो उसने एक धनी व्यक्ति की पुत्री से विवाह किया, जो उसकी ही तरह अशिक्षित थी। दोनों पक्षों के माता-पिता की मृत्यु के बाद, उन्हें दोनों तरफ से अस्सी करोड़ रुपये की संपत्ति विरासत में मिली और वे बहुत धनी हो गए। लेकिन वे दोनों अज्ञानी थे और उन्हें केवल पैसा खर्च करना आता था, उसे बचाना या बढ़ाना नहीं। वे बस खाते-पीते और मौज-मस्ती करते रहे, अपना सारा पैसा लुटाते रहे। जब उनका सारा पैसा खत्म हो गया, तो उन्होंने अपने खेत और बगीचे बेच दिए और अंत में अपना घर भी बेच दिया। इस प्रकार, वे बहुत गरीब और असहाय हो गए; और क्योंकि उन्हें जीविका कमाना नहीं आता था, इसलिए उन्हें भीख मांगनी पड़ी। एक दिन, बुद्ध ने धनी व्यक्ति के पुत्र को मठ की दीवार से टिके हुए, मठवासियों द्वारा दिए गए बचे हुए भोजन को खाते हुए देखा; उसे देखकर बुद्ध मुस्कुराए।

आदरणीय आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, इस अत्यंत धनी व्यक्ति के पुत्र को देखो; इसने व्यर्थ जीवन, लक्ष्यहीन, सुखमय जीवन जिया है। यदि उसने अपने जीवन के प्रथम चरण में ही धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह उच्च कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह अरहत होता और उसकी पत्नी अनागामी होती। यदि उसने अपने जीवन के द्वितीय चरण में धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह द्वितीय कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह अनागामी होता और उसकी पत्नी सकदागामी होती। यदि उसने अपने जीवन के तृतीय चरण में धन का ध्यान रखना सीख लिया होता, तो वह तृतीय कोटि का धनी होता; या यदि वह भिक्षु बन गया होता, तो वह सकदागामी होता और उसकी पत्नी सोतापन्न होती। परन्तु, क्योंकि उसने तीनों चरणों में कुछ भी नहीं किया, अपने जीवन में उसने अपनी सारी सांसारिक संपत्ति खो दी थी, साथ ही उसने किसी भी मगस या फलस को प्राप्त करने के सभी अवसर भी खो दिए थे।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 155 : वे लोग, जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, मछली रहित सूखते हुए तालाब पर जीर्ण-शीर्ण बगुले की तरह निराशा में क्षीण हो जाते हैं।

---

श्लोक 156 : वे लोग जिन्होंने यौवन में न तो पवित्र जीवन व्यतीत किया और न ही धन अर्जित किया, गतिहीन तीरों की तरह असहाय पड़े रहते हैं, अतीत के लिए विलाप और आहें भरते रहते हैं।

---

अध्याय ग्यारह का अंत: बुढ़ापा (जारवग्गा)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोषाध्यक्ष के पुत्र महाधन की कहानी

इसिपताना में निवास करते समय, बुद्ध ने कोषाध्यक्ष के पुत्र महाधन (महान धन) के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि महान धन का पुनर्जन्म बनारस में अस्सी अरब की संपत्ति वाले एक परिवार में हुआ। उनके माता-पिता ने सोचा, “हमारे घर में अपार धन है, और हमारे बेटे को अपनी इच्छा के अनुसार आनंद लेने के अलावा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।” तदनुसार, उन्होंने उसे गायन और वाद्ययंत्र बजाना सिखाया, और यही उसकी एकमात्र शिक्षा थी। इसी प्रकार, उसी शहर में, अस्सी अरब की संपत्ति वाले एक परिवार में, एक बेटी का भी जन्म हुआ। उसके माता-पिता के मन में भी यही विचार आया, और उन्होंने उसे केवल नृत्य और गायन सिखाया। जब दोनों की आयु हुई, तो उनका विवाह रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ। समय बीतने के साथ, दोनों माता-पिता का देहांत हो गया, और तब उसी परिवार में अस्सी अरब की संपत्ति का दुगुना भंडार रह गया।

कोषाध्यक्ष के पुत्र की यह प्रथा थी कि वह दिन में तीन बार राजा की सेवा करने जाता था। एक दिन उस शहर में रहने वाले कुछ बदमाशों ने सोचा, “अगर यह कोषाध्यक्ष का पुत्र नशे में धुत हो जाए, तो हमारे लिए बड़ी बात होगी। चलो इसे नशे में धुत होना सिखाते हैं।” तदनुसार, उन्होंने तेज़ शराब जुटाई, भुना हुआ मांस, नमक और चीनी अपने कपड़ों के किनारों में छिपा ली, और कंद और जड़ें लेकर

एक सुविधाजनक स्थान पर बैठ गए, और उस रास्ते पर नज़र रखने लगे जिससे राजा राजमहल से आता था। जब उन्होंने राजा को आते देखा, तो वे तेज़ शराब पीने लगे, अपने मुँह में नमक और चीनी के दाने रखे, और कंद और जड़ें दाँतों में दबाकर चबाने लगे। और वे कहने लगे, "हे स्वामी, कोषाध्यक्ष के पुत्र, सौ वर्ष की आयु पाओ! आपकी कृपा से हम जी भर कर खा-पी सकें!" ये शब्द सुनकर, युवक ने अपने पीछे चलने वाले छोटे सेवक से पूछा, "ये लोग क्या पी रहे हैं?" "एक खास पेय, स्वामी।" "क्या इसका स्वाद अच्छा है?" "गुरुजी, इस संसार में इससे बढ़कर कोई पेय नहीं है।" "तो फिर," युवक ने कहा, "मुझे भी थोड़ा पीना चाहिए।" इसलिए उसने सेवक से पहले थोड़ा और फिर थोड़ा और मंगवाया, और वह सारा पी गया।

जल्द ही उन बदमाशों को पता चल गया कि उसे शराब पीने की आदत पड़ गई है। फिर वे सब उसके चारों ओर जमा हो गए। समय बीतने के साथ-साथ उसके आसपास जमा होने वाली भीड़ बढ़ती गई। वह एक बार में सौ-दो सौ सिक्के शराब पर खर्च कर देता था। कुछ समय बाद उसकी आदत बन गई कि वह जहाँ भी होता, सिक्कों का ढेर लगा लेता और शराब पीते हुए चिल्लाता, "यह सिक्का लो और मेरे लिए फूल लाओ! यह सिक्का लो और मेरे लिए इत्र लाओ! यह आदमी जुए में माहिर है, यह नाचने में, यह गाने में और यह वाद्ययंत्र बजाने में! इस आदमी को एक हजार और इस आदमी को दो हजार दो!" इस तरह वह अपना पैसा खर्च करता था।

कुछ ही समय में उसने अपना सारा 80 अरब का खजाना लुटा दिया। तब उन धूर्तों ने उससे कहा, "मालिक, आपकी सारी दौलत खत्म हो गई।" "क्या मेरी पत्नी के पास पैसा नहीं है?" "जी मालिक, उसके पास है।" "तो फिर, वह भी ले आओ।" और उसने अपनी पत्नी का पैसा भी ठीक उसी तरह उड़ा दिया। समय बीतने के साथ, उसने अपने खेत, पार्क, बगीचे और रथ बेच दिए। उसने खाने के बर्तन, चादरें, लबादे और सोफे तक बेच दिए। जो कुछ भी उसका था, उसने सब बेच दिया और उससे मिले पैसे अय्याशी में उड़ा दिए। बुढ़ापे में उसने अपना घर बेच दिया, जो उसके खानदान की संपत्ति थी। और जिन्हें उसने घर बेचा था, उन्होंने उस पर कब्जा कर लिया और उसे तुरंत बाहर निकाल दिया। तब वह अपनी पत्नी को साथ लेकर दूसरों के घरों की दीवार के पास रहने लगा। हाथ में टूटा हुआ घड़ा लिए वह भीख मांगने घूमता फिरता था। अंततः उसने दूसरों के बचे हुए भोजन को खाना शुरू कर दिया।

एक दिन वह एक विश्रामगृह के द्वार पर खड़ा था, जहाँ नौसिखियों और प्रशिक्षुओं द्वारा दिए गए भोजन के बचे हुए टुकड़े उसे दिए जा रहे थे। बुद्ध ने उसे देखा और मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं। बुद्ध ने अपनी मुस्कान का कारण बताते हुए कहा, "आनंद, यहाँ इस धनवान को देखो, जो कोषाध्यक्ष का पुत्र है! इसी नगर में उसने 280 अरब का धन लुटा दिया है। अब वह अपनी पत्नी के साथ भिक्षा माँग रहा है। क्योंकि यदि उसने अपने यौवन में ही अपना धन लुटाया न होता, बल्कि व्यापार में लगा होता, तो वह इसी नगर का प्रधान कोषाध्यक्ष होता; और यदि वह संसार त्यागकर भिक्षु बन जाता, तो वह अर्हतत्व प्राप्त कर लेता, और उसकी पत्नी तृतीय मार्ग के फल में स्थापित हो जाती।"

यदि मध्य आयु में उन्होंने अपनी संपत्ति का अपव्यय न किया होता, बल्कि व्यापार में लगे होते, तो वे दूसरे कोषाध्यक्ष बन जाते; और यदि वे संसार से विमुख होकर भिक्षु बन जाते, तो उन्हें तीसरे मार्ग का फल प्राप्त हो जाता, और उनकी पत्नी दूसरे मार्ग के फल में स्थापित हो जातीं। यदि जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने अपनी संपत्ति का अपव्यय न किया होता, बल्कि व्यापार में लगे होते, तो वे तीसरे कोषाध्यक्ष बन जाते; और यदि वे संसार से विमुख होकर भिक्षु बन जाते, तो उन्हें दूसरे मार्ग का फल प्राप्त हो जाता, और उनकी पत्नी धर्म परिवर्तन के फल में स्थापित हो जातीं। परन्तु अब वे गृहस्थ के धन से विमुख हो गए हैं और साथ ही धार्मिक व्यक्ति के धन से भी विमुख हो गए हैं। वे सूखे तालाब में बगुले के समान हो गए हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 155)

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा योब्बन धनं अलद्धा
खिनमच्चे पल्लेले जिन्नाकोनचा इव झायन्ति

ब्रह्मचरियं अचरित्वा : उच्चतर जीवन न जीने वाला; योब्बने : यौवन में; धनं [ धन ]: धन; अलद्धा : संचय न करने वाला; खीणमच्छे : मछली रहित; पल्लले : झील में; जिण्णकोंचा इव : दुबले-पतले और उड़ने में असमर्थ बगुले के समान; झायन्ती : क्षीण हो जाना

जवानी में उन्होंने उच्च आध्यात्मिक जीवन नहीं जिया। जवानी में उन्होंने धन-संपत्ति भी अर्जित नहीं की। अब वे बूढ़े और लाचार हो गए हैं। वे उन दुबले-पतले, बूढ़े और उड़ने में असमर्थ सारसों के समान हैं जो मछलीविहीन झील के किनारे आहें भरते रहते हैं। झील में मछलियाँ न होने के कारण इन सारसों को भोजन नहीं मिलता, जिससे वे दुबले-पतले हो गए हैं। मछलियाँ इसलिए गायब हो गई हैं क्योंकि दूसरे पक्षियों ने उन्हें पकड़ लिया है। बूढ़े और थके होने के कारण वे उड़ नहीं सकते। वे केवल आहें भर सकते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 156)

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा योब्बन धनं अलद्धा
चपा अतीखिना इव पुराणानि अनुत्थुनं सेन्ति

ब्रह्मचर्यं अचरित्वा : उच्चतर जीवन न जीने के कारण; योब्बने : यौवन में; धनं [ धन ]: धन; अलद्धा : संचय न करने के कारण; चापा : धनुष से निकले तीरों के समान; आतिखीना इव : तीरों के समान (व्यर्थ तीरों के समान); पुराणानि : अतीत के गौरव के लिए; अनुत्थुनं [ अनुत्थुन ]: आहें भरना; सेंटी : पछतावा

जवानी में उन्होंने उच्च आध्यात्मिक जीवन नहीं जिया। जवानी में उन्होंने धन-संपत्ति भी अर्जित नहीं की। अब वे बूढ़े और लाचार हो गए हैं। वे उन दुबले-पतले, बूढ़े और उड़ने में असमर्थ सारसों के समान हैं जो मछलीविहीन झील के किनारे आहें भरते रहते हैं। झील में मछलियाँ नहीं हैं, इसलिए इन सारसों को भोजन नहीं मिल रहा है, जिससे वे दुबले-पतले हो गए हैं। मछलियाँ भी चली गई हैं क्योंकि उन्हें दूसरों ने पकड़ लिया है। बूढ़े और थके होने के कारण वे उड़ नहीं सकते। वे केवल आहें भर सकते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 155-156)

जिन्नाकोंच इव : बूढ़े, उड़ने में असमर्थ बगुले की तरह। अपनी जवानी बर्बाद कर चुके एक बूढ़े व्यक्ति की यह छवि धम्मपद में सबसे मार्मिक उदाहरणों में से एक है। जिस तालाब पर उसे निर्भर रहना पड़ता है, उसमें मछलियाँ नहीं हैं। लेकिन, बूढ़ा बगुला उड़ नहीं सकता, क्योंकि वह उड़ने में असमर्थ है। यहाँ उस वृद्ध व्यक्ति की निरर्थकता को दर्शाया गया है जिसने अपनी जवानी बर्बाद कर दी है। यह श्लोक एक ऐसी स्थिति को दर्शाता है जो सार्वभौमिक रूप से सत्य है। अधिकांश लोग अपनी जवानी को अनमोल दिनों को व्यर्थ ही गुज़ार देते हैं, बिना उस अपरिहार्य बुढ़ापे के बारे में सोचे जो उन्हें घेर लेगा। जवानी को भौतिक या आध्यात्मिक धन अर्जित किए बिना ही बीतने दिया जाता है। इस श्लोक में बुद्ध का मानवजाति को उपदेश है कि उन्हें समय के साथ-साथ समय के बीतने और जवानी के आकर्षण के शीघ्र ही लुप्त होने के प्रति सचेत होना चाहिए। तिब्बती बौद्ध विद्वान मिलारेपा ने अपनी एक गीतात्मक रचना में इस क्षणभंगुरता को बखूबी व्यक्त किया है।

यह अंश इन दो छंदों की काव्यात्मक व्याख्या के समान है:

"युवावस्था ग्रीष्म ऋतु के फूल के समान है—
अचानक यह गायब हो जाता है।
बुढ़ापा आग की तरह फैलता जाता है
खेतों के बीच से गुजरते हुए—अचानक वह आपके पीछे आ जाता है।
बुद्ध ने एक बार कहा था:
जन्म और मृत्यु
ये सूर्योदय और सूर्यास्त की तरह हैं।
अब आओ, अब जाओ।
बीमारी एक छोटे पक्षी की तरह होती है
गुलेल से घायल।
आपको नहीं पता, स्वास्थ्य और शक्ति
क्या समय आने पर वह आपको छोड़ देगा?

अध्याय 12. अत्तवग्ग : आत्मा (157-166)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 157

———————————————————————————

(धम्मपद 155 और 156) <<<< पिछला|| धम्मपद157 ||अगला >>>> (धम्मपद158)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 157 - बोधिराजकुमार वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अटैन्स पियाम जन्ना

rakkheyya nam surakkhitam

तिन्नम अन्नतराम यमम(1)
patijaggeyya pandito.

---

श्लोक 157 : यदि कोई जानता है कि वह स्वयं को प्रिय है, तो उसे अपनी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। जीवन के तीनों पहरों में बुद्धिमान व्यक्ति को बुराई से सावधान रहना चाहिए।

---

1. यमन: रात को तीन पहरों में बांटा गया है। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में पहर मनुष्य के जीवन की तीन अवस्थाओं को दर्शाते हैं, अर्थात् बचपन, जवानी और बुढ़ापा।

---

बोधिराजकुमार की कहानी
भेषकला वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने राजकुमार बोधि (बोधिराजकुमार) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (157) कहा।
एक बार राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक भव्य महल बनवाया। महल बनकर तैयार होने पर उन्होंने बुद्ध को भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित किया। इस विशेष अवसर के लिए उन्होंने महल को सजाया और चार प्रकार की सुगंधों और अगरबत्तियों से महकाया। साथ ही, दहलीज से लेकर कमरे के अंदर तक फर्श पर एक लंबा कपड़ा बिछाया गया। फिर, क्योंकि उनके कोई संतान नहीं थी, राजकुमार ने गंभीर प्रतिज्ञा की कि यदि उन्हें संतान हो तो बुद्ध उस कपड़े पर पैर रखें। जब बुद्ध आए, तो राजकुमार बोधि ने आदरपूर्वक तीन बार उनसे कमरे में प्रवेश करने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध हिलने के बजाय केवल आनंद की ओर देखते रहे। आनंद उनकी बात समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से दहलीज से कपड़ा हटाने को कहा। तभी बुद्ध महल में प्रवेश कर पाए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादिष्ट और उत्तम भोजन परोसा। भोजन के बाद, राजकुमार ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने कपड़े पर पैर क्यों नहीं रखा। बुद्ध ने बदले में राजकुमार से पूछा कि क्या उन्होंने भी वह कपड़ा बिछाते समय यह गंभीर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि यदि उन्हें संतान का आशीर्वाद मिले तो बुद्ध उस पर पैर रखेंगे; राजकुमार ने सकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उससे कहा कि उनके और उनकी पत्नी के अतीत के बुरे कर्मों के कारण उन्हें कोई संतान नहीं होगी। फिर बुद्ध ने उन्हें उनके अतीत की कहानी सुनाई।
अपने पिछले जन्मों में से एक में, राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज़ दुर्घटना में अकेले जीवित बचे थे। वे एक सुनसान द्वीप पर पहुँच गए थे और वहाँ उन्होंने पक्षियों के अंडे, चूजे और अन्य पक्षियों को खाकर अपना जीवन व्यतीत किया, बिना किसी पश्चाताप के। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान प्राप्ति का सुख नहीं मिला। यदि उन्होंने अपने जीवन के किसी भी चरण में अपने कर्म के लिए थोड़ा सा भी पश्चाताप किया होता, तो इस जन्म में उनके एक या दो बच्चे हो सकते थे। फिर बुद्ध ने राजकुमार की ओर मुड़कर कहा, "जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे जीवन के सभी चरणों में, या कम से कम जीवन के एक चरण में, स्वयं की रक्षा करनी चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 157 : यदि कोई जानता है कि वह स्वयं को प्रिय है, तो उसे अपनी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। जीवन के तीनों पहरों में बुद्धिमान व्यक्ति को बुराई से सावधान रहना चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में, बोधिराजकुमार ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बोधिराजकुमार की कहानी
भेषकाल वन में निवास करते समय, बुद्ध ने राजकुमार बोधि (बोधिराजकुमार) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार राजकुमार बोधि ने अपने लिए एक भव्य महल बनवाया। महल बनकर तैयार होने पर उन्होंने बुद्ध को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। इस विशेष अवसर के लिए उन्होंने महल को चार प्रकार की सुगंधों और अगरबत्तियों से सजाया और सुगंधित किया। साथ ही, दहलीज से लेकर कमरे के अंदर तक फर्श पर एक लंबा कपड़ा बिछाया गया। फिर, क्योंकि उनके कोई संतान नहीं थी, राजकुमार ने गंभीर प्रतिज्ञा की कि यदि उन्हें संतान हो तो बुद्ध उस कपड़े पर पैर रखें। जब बुद्ध आए, तो राजकुमार बोधि ने आदरपूर्वक तीन बार उनसे कमरे में प्रवेश करने का अनुरोध किया। लेकिन बुद्ध हिलने के बजाय केवल आनंद की ओर देखते रहे। आनंद उनकी बात समझ गए और उन्होंने राजकुमार बोधि से दहलीज से कपड़ा हटाने का अनुरोध किया। तभी बुद्ध महल में प्रवेश कर पाए। राजकुमार ने बुद्ध को स्वादिष्ट और उत्तम भोजन परोसा। भोजन के बाद, राजकुमार ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने कपड़े पर पैर क्यों नहीं रखा। बुद्ध ने बदले में राजकुमार से पूछा कि क्या उन्होंने भी वह कपड़ा बिछाते समय यह गंभीर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि यदि उन्हें संतान

का आशीर्वाद मिले तो बुद्ध उस पर पैर रखेंगे; राजकुमार ने सकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उससे कहा कि उनके और उनकी पत्नी के अतीत के बुरे कर्मों के कारण उन्हें कोई संतान नहीं होगी। फिर बुद्ध ने उन्हें उनके अतीत की कहानी सुनाई।

अपने पिछले जन्मों में से एक में, राजकुमार और उनकी पत्नी एक जहाज़ दुर्घटना में अकेले जीवित बचे थे। वे एक सुनसान द्वीप पर पहुँच गए थे और वहाँ उन्होंने पक्षियों के अंडे, चूजे और अन्य पक्षियों को खाकर अपना जीवन व्यतीत किया, बिना किसी पश्चाताप के। उस बुरे कर्म के कारण उन्हें संतान प्राप्ति का सुख नहीं मिला। यदि उन्होंने अपने जीवन के किसी भी चरण में अपने कर्म के लिए थोड़ा सा भी पश्चाताप किया होता, तो इस जन्म में उनके एक या दो बच्चे हो सकते थे। फिर बुद्ध ने राजकुमार की ओर मुड़कर कहा, "जो स्वयं से प्रेम करता है, उसे जीवन के सभी चरणों में, या कम से कम जीवन के एक चरण में, स्वयं की रक्षा करनी चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 157)

सीई अत्तनं पियं जनना नं सुरक्खितं रक्खेया

पण्डितो तिन्नं अनन्तरं यमं पतिजग्गेया

ce : यदि; attānaṃ [ attāna ]: स्वयं; piyaṃ [ piya ]: जिससे स्नेह हो; jaññā : जागरूक; naṃ : वह आत्मा; surakkhitaṃ [ surakkhita ]: अच्छी तरह से संरक्षित; rakkheyya : सुरक्षा; paṇḍito [ paṇḍita ]: एक बुद्धिमान व्यक्ति; tiṇṇaṃ aññataraṃ yāmaṃ [ yāma ]: जीवन के तीन चरणों में से किसी एक के दौरान; paṭijaggeyya : अपनी सुरक्षा के लिए सद्गुण अर्जित करना

यदि आप जानते हैं कि आप स्वयं से प्रेम करते हैं, तो इसकी रक्षा करना ही सर्वोत्तम सुरक्षा उपाय है। आपको जीवन के तीनों चरणों में से किसी एक में स्वयं की रक्षा के उपाय अवश्य अपनाने चाहिए — चाहे वह बचपन हो, युवावस्था हो या वृद्धावस्था। सर्वोत्तम सुरक्षा उपाय सद्गुणों का विकास है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 157)

attānaṃ surakkhitaṃ rakkheyya : स्वयं की रक्षा करना, स्वयं को सुरक्षित रखना। यह उपदेश बौद्ध धर्म के प्रमुख लक्षण पर बल देता है। आत्म-मुक्ति स्वयं की जिम्मेदारी है। कोई और इसे आपके लिए नहीं कर सकता। बौद्ध धर्म का अन्य धार्मिक प्रणालियों से अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे समझना आवश्यक है। राइस डेविड्स ने प्रश्न पूछा: "धर्म से क्या तात्पर्य है?" इसकी उत्पत्ति अनिश्चित है। सिसरो ने एक संदर्भ में इसे re और lego से व्युत्पन्न किया और माना कि इसका वास्तविक अर्थ प्रार्थनाओं और मंत्रों का दोहराव था। एक अन्य व्याख्या इस शब्द को re और logo से व्युत्पन्न करती है और इसके मूल अर्थ को आसक्ति, निरंतर बंधन (अर्थात, निस्संदेह देवताओं से) के रूप में प्रस्तुत करती है। एक तीसरी व्युत्पत्ति इस शब्द को lex से जोड़ती है और इसे विधि-पालन करने वाली, अत्यंत कर्तव्यनिष्ठ मानसिकता के रूप में समझाती है।

बौद्ध धर्म उस अर्थ में धर्म नहीं है जिस अर्थ में इसे आमतौर पर समझा जाता है, क्योंकि यह किसी अलौकिक देवता के प्रति निष्ठा रखने वाली आस्था और पूजा की प्रणाली नहीं है। बौद्ध धर्म अपने अनुयायियों से अंधविश्वास की मांग नहीं करता। इसलिए, मात्र विश्वास को त्यागकर उसके स्थान पर ज्ञान पर आधारित विश्वास को स्थान दिया जाता है। एक बौद्ध के लिए कभी-कभार संदेह होना संभव है, जब तक कि वह संतत्व की पहली अवस्था ( सोतापत्ति ) को प्राप्त नहीं कर लेता, जब बुद्ध, धम्म और संघ के बारे में सभी संदेह पूरी तरह से दूर हो जाते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद ही व्यक्ति बुद्ध का सच्चा अनुयायी बनता है।

बुद्ध के अनुयायी का विश्वास किसी प्रख्यात चिकित्सक के प्रति रोगी के विश्वास या किसी शिष्य के अपने गुरु के प्रति विश्वास के समान होता है। यद्यपि बौद्ध बुद्ध को अपना अतुलनीय मार्गदर्शक और शिक्षक मानकर उनकी शरण लेते हैं, जो पवित्रता का मार्ग दिखाते हैं, फिर भी वे उनके प्रति दासतापूर्ण समर्पण नहीं करते। बौद्ध यह नहीं सोचते कि केवल बुद्ध की शरण लेने या उन पर विश्वास करने से ही उन्हें पवित्रता प्राप्त हो जाएगी। दूसरों की अशुद्धियों को दूर करना बुद्ध के भी बस में नहीं है। वास्तव में, कोई भी किसी दूसरे को न तो शुद्ध कर सकता है और न ही अपवित्र कर सकता है। बुद्ध, शिक्षक के रूप में, एक माध्यम हो सकते हैं, लेकिन हमारी शुद्धि स्वयं हमारी जिम्मेदारी है। बौद्ध किसी पुस्तक या किसी व्यक्ति के दास नहीं होते। न ही वे बुद्ध के अनुयायी बनकर अपने विचारों की स्वतंत्रता का त्याग करते हैं। उन्हें अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग करने और अपने ज्ञान को बुद्धत्व प्राप्त करने तक विकसित करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, क्योंकि सभी बुद्ध बनने की क्षमता रखते हैं। स्वाभाविक रूप से बौद्ध बुद्ध को अपना प्रमाण मानते हैं, लेकिन बुद्ध ने समस्त अधिकार का त्याग कर दिया था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 158

---

(धम्मपद 157) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 158 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 159)

---

धम्मपद श्लोक 158 - उपनन्दसाक्यपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्तनामेव पथमम
patirupe nivesaye
athannamanusaseyya
na kilisseyya pandito.

---

श्लोक 158 : पहले स्वयं को उचित आचरण में स्थापित करना चाहिए; फिर ही दूसरों को सिखाना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को निंदा का पात्र नहीं बनना चाहिए।

---

थेरा उपनंद शाक्यपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने शाक्य वंश के एक थेरा उपनंद के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (158) कहा।

उपनंद एक अत्यंत प्रभावशाली उपदेशक थे। वे दूसरों को लोभ न करने और सीमित इच्छाओं को रखने का उपदेश देते थे तथा संतोष, मितव्ययिता और कठोर साधनाओं के गुणों पर बड़े ही सजीव ढंग से प्रवचन देते थे। यद्यपि वे स्वयं अपने उपदेशों का पालन नहीं करते थे तथा दूसरों द्वारा त्यागे गए सभी वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ स्वयं धारण कर लेते थे।

एक बार उपनंद वर्षा ऋतु से ठीक पहले एक गाँव के मठ में गए। उनकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर कुछ युवा भिक्षुओं ने उनसे वर्षा ऋतु के तीन महीने अपने मठ में बिताने का अनुरोध किया। उन्होंने उनसे पूछा कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षा ऋतु के लिए दान में कितने वस्त्र मिलते हैं, तो उन्होंने बताया कि उन्हें आमतौर पर एक-एक वस्त्र मिलता है। इसलिए वे वहीं नहीं रुके, बल्कि अपनी चप्पलें वहीं छोड़ दीं। अगले मठ में उन्हें पता चला कि भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दो-दो वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी लाठी छोड़ दी। अगले मठ में भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दान में तीन-तीन वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी पानी की बोतल छोड़ दी। अंत में, जिस मठ में प्रत्येक भिक्षु को चार वस्त्र मिलते थे, वहाँ उन्होंने वर्षा ऋतु बिताने का निर्णय लिया।

वर्षा ऋतु के अंत में, उन्होंने उन अन्य मठों से अपने वस्त्रों का हिस्सा लिया जहाँ उन्होंने अपना सामान छोड़ा था। फिर उन्होंने अपना सारा सामान एक गाड़ी में इकट्ठा किया और अपने पुराने मठ में लौट आए। रास्ते में उनकी मुलाकात दो युवा भिक्षुओं से हुई जो दो वस्त्रों और एक कीमती मखमली कंबल को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। जब वे किसी समझौते पर नहीं पहुँच सके, तो उन्होंने उपनंद से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। उपनंद ने उन्हें एक-एक वस्त्र दिया और मध्यस्थ की भूमिका निभाने के बदले में कीमती मखमली कंबल ले लिया।

दोनों युवा भिक्षु इस निर्णय से संतुष्ट नहीं थे, पर वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। असंतुष्टि और निराशा से व्याकुल होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताई। तब बुद्ध ने कहा, "जो दूसरों को शिक्षा देता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और जैसा उसने सिखाया है, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 158 : पहले स्वयं को उचित आचरण में स्थापित करना चाहिए; फिर ही दूसरों को सिखाना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति को निंदा का पात्र नहीं बनना चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में दोनों युवा भिक्षुओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय उपनंद शाक्यपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने शाक्य वंश के भिक्षु उपनंद के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उपनंद एक अत्यंत प्रभावशाली उपदेशक थे। वे दूसरों को लोभ न करने और सीमित इच्छाओं को रखने का उपदेश देते थे तथा संतोष, मितव्ययिता और कठोर साधनाओं के गुणों पर बड़े ही सजीव ढंग से प्रवचन देते थे। यद्यपि वे स्वयं अपने उपदेशों का पालन नहीं करते थे तथा दूसरों द्वारा दिए गए सभी वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ स्वयं धारण कर लेते थे।

एक बार उपनंद वर्षा ऋतु से ठीक पहले एक गाँव के मठ में गए। उनकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर कुछ युवा भिक्षुओं ने उनसे वर्षा ऋतु में अपने मठ में रहने का अनुरोध किया। उन्होंने उनसे पूछा कि प्रत्येक भिक्षु को वर्षा ऋतु के लिए दान में कितने वस्त्र मिलते हैं, तो उन्होंने बताया कि उन्हें आमतौर पर एक-एक वस्त्र मिलता है। इसलिए वे वहीं नहीं रुके, बल्कि अपनी चप्पलें वहीं छोड़ दीं। अगले मठ में उन्हें पता चला कि भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दो-दो वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी लाठी छोड़ दी। अगले मठ में भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के लिए दान में तीन-तीन वस्त्र मिलते हैं; वहाँ उन्होंने अपनी पानी की बोतल छोड़ दी। अंत में, जिस मठ में प्रत्येक भिक्षु को चार वस्त्र मिलते थे, वहाँ उन्होंने वर्षा ऋतु बिताने का निर्णय लिया।

वर्षावास समाप्त होने पर, उन्होंने उन अन्य मठों से अपने वस्त्रों का हिस्सा लिया जहाँ उन्होंने अपना निजी सामान छोड़ा था। फिर उन्होंने अपना सारा सामान एक गाड़ी में लादा और अपने पुराने मठ में लौट आए। रास्ते में उनकी मुलाकात दो युवा भिक्षुओं से हुई जो दो वस्त्रों और एक कीमती मखमली कंबल को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। जब वे सौहार्दपूर्ण समझौता नहीं कर पाए, तो उन्होंने उपनंद से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया। उपनंद ने उन्हें एक-एक वस्त्र दिया और मध्यस्थ की भूमिका निभाने के बदले कीमती मखमली कंबल ले लिया।

दोनों युवा भिक्षु इस निर्णय से संतुष्ट नहीं थे, पर वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। असंतोष और निराशा से व्याकुल होकर वे बुद्ध के पास गए और उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "जो दूसरों को शिक्षा देता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और जैसा उसने सिखाया है, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 158)

पथमं अत्तनं एव पतिरूपे निवेसये
अथ अन्नं अनुसासेय पंडितो न किलिस्सेय

paṭhamaṃ [ paṭhama ]: सबसे पहले; attānaṃ eva : स्वयं; patīrūpe : उचित सद्गुण में; nivesaye : स्थापित करना; atha : उसके बाद; aññaṃ [ añña ]: अन्य; anusāseyya : सलाह देना; paṇḍito [ paṇḍita ]: ज्ञानी व्यक्ति; na kilisseyya : दोषरहित होता है

यदि आप दूसरों को सलाह देने के इच्छुक हैं, तो सर्वप्रथम स्वयं को उचित सद्गुणों में स्थापित करें। तभी आप दूसरों को शिक्षा देने के योग्य बन पाएंगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 158)

paṭhamaṃ attanaṃ eva : सर्वप्रथम, स्वयं। इस उपदेश का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि बुद्ध ने स्वार्थ का समर्थन किया। इसके विपरीत, बुद्ध केवल प्राथमिकताओं को सही ढंग से निर्धारित करते हैं। सर्वप्रथम, अपनी मुक्ति की रक्षा करो। उसके बाद ही दूसरों की रक्षा करो। यह बुद्ध के धम्म—बुद्ध की शिक्षा—के सार के अनुरूप है। इसका अर्थ केवल यह है कि अपने स्वार्थ पर विजय प्राप्त किए बिना, आप दूसरों की सहायता नहीं कर सकते। धम्म का शाब्दिक अर्थ है, वह जो सहारा देता है; यह हमारे भीतर का सत्य है, जिस पर भरोसा करके और जिसका अभ्यास करके हम दुखों और चिंताओं के सागर को पार कर सकते हैं। धम्म सत्य के वे सूत्र भी हैं जिनका हम अभ्यास कर सकते हैं यदि हम ऐसा करने में रुचि रखते हैं। धम्म में कोई मत या सिद्धांत नहीं है। एक बौद्ध बुद्ध के धम्म के किसी भी भाग पर प्रश्न उठाने के लिए स्वतंत्र है, वास्तव में, बुद्ध ने उसे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिस पर प्रश्न उठाना उसके लिए वर्जित हो, न ही कोई ऐसी शिक्षा है जिसके बारे में उसे अपना मन बंद करके अंधविश्वास करना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि बौद्ध धर्म में आस्था कोई अंधभक्ति नहीं है, बल्कि यह ज्ञान से जुड़ी होती है। इस प्रकार, व्यक्ति धम्म की ओर आकर्षित होता है क्योंकि उसमें कुछ सत्य को समझने का ज्ञान होता है, और साथ ही वह उन शिक्षाओं को भी आस्था के साथ स्वीकार करता है जिन्हें उसने अभी तक सिद्ध नहीं किया है। धम्म का अभ्यास करने पर वह पाता है कि यह वास्तव में कारगर है—यह व्यावहारिक है, और इस प्रकार उसका विश्वास बढ़ता है। अपने विश्वास के बढ़ने के साथ वह और अधिक गहराई से अभ्यास करने में सक्षम होता है, और ऐसा करने से वह सत्य को और अधिक जान पाता है—इस प्रकार उसका विश्वास और मजबूत होता है। इस प्रकार, आस्था और ज्ञान अभ्यास के साथ एक दूसरे के पूरक और मजबूत होते हैं। इस मामले में, जैसा कि कई अन्य बौद्ध शिक्षाओं में होता है, यह समझना आसान है कि बौद्ध शिक्षा को चक्र द्वारा क्यों दर्शाया जाता है, क्योंकि यह एक गतिशील प्रतीक है। लेकिन जिसने स्वयं में धम्म-सत्य को देख लिया है, जो सभी मानसिक विकारों और कष्टों से मुक्त है, एक अरहत, उसमें आस्था नहीं होती, उसके पास उससे कहीं बेहतर, अटूट ज्ञान होता है।

---

(धम्मपद 158) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 159 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 160)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 159 - पदनिकतिसत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Attanance tatha kayira
यथान्नमनुसति
sudanto vata dametha
atta hi kara duddamo.

---

श्लोक 159 : व्यक्ति को स्वयं वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह दूसरों को सिखाता है; स्वयं पूर्णतः वश में किए बिना दूसरों को वश में नहीं करना चाहिए। स्वयं को वश में करना वास्तव में कठिन है।

---

थेरा पधानिकतिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पधानिकतिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (159) कहा।

थेरा पधानिकतिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय ग्रहण करने के बाद पाँच सौ अन्य भिक्षुओं के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को अपने ध्यान अभ्यास में सदा सचेत और लगनशील रहने का निर्देश दिया। इस प्रकार दूसरों को उपदेश देने के बाद वे स्वयं लेट गए और सो गए। युवा भिक्षुओं ने भी वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। उन्होंने रात्रि के पहले पहर में ध्यान का अभ्यास किया और जब वे सोने वाले होते, तो पधानिकतिस्सा उठकर उन्हें अपने अभ्यास में वापस जाने का निर्देश देते। दूसरे और तीसरे पहर में ध्यान अभ्यास के बाद लौटने पर भी वे उनसे यही बात कहते।

उनके इस तरह के व्यवहार के कारण युवा भिक्षुओं को कभी मन की शांति नहीं मिली, और इसलिए वे ध्यान साधना या ग्रंथों के पाठ पर भी एकाग्र नहीं हो सके। एक दिन, उन्होंने यह जानने का निश्चय किया कि क्या उनके गुरु वास्तव में उतने ही उत्साही और सतर्क हैं जितना वे स्वयं को दिखाते हैं। जब उन्हें पता चला कि उनके गुरु पधानिकतिस्सा केवल दूसरों को उपदेश देते हैं और स्वयं अधिकांश समय सोते रहते हैं, तो उन्होंने कहा, "हमारा तो बुरा हाल हो गया है। हमारे गुरु को केवल हमें डांटना आता है, वे स्वयं समय बर्बाद कर रहे हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं।" इस समय तक, भिक्षुओं को पर्याप्त आराम नहीं मिल रहा था, इसलिए वे थक चुके थे और कमजोर हो गए थे। परिणामस्वरूप, किसी भी भिक्षु ने अपनी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं की।

वर्षा ऋतु के अंत में, वे जेतवन मठ लौट आए और बुद्ध को सारी बात बताई। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जो दूसरों को शिक्षा देना चाहता है, उसे पहले स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और उचित आचरण करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 159 : व्यक्ति को स्वयं वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह दूसरों को सिखाता है; स्वयं पूर्णतः वश में किए बिना दूसरों को वश में नहीं करना चाहिए। स्वयं को वश में करना वास्तव में कठिन है।

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय पधानिकतिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पधानिकतिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय पधानिकतिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लेकर कई अन्य भिक्षुओं के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को अपने ध्यान अभ्यास में सदा सचेत और लगनशील रहने का निर्देश दिया। इस प्रकार दूसरों को उपदेश देने के बाद वे स्वयं लेट गए और सो गए। युवा भिक्षुओं ने भी वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। उन्होंने रात्रि के पहले पहर में ध्यान का अभ्यास किया और जब वे सोने वाले होते, तो पधानिकतिस्सा उठकर उन्हें अपने अभ्यास में वापस जाने के लिए कहते। दूसरे और तीसरे पहर में ध्यान अभ्यास के बाद लौटने पर भी वे उनसे यही बात कहते।

उनके इस तरह के व्यवहार के कारण युवा भिक्षुओं को कभी मन की शांति नहीं मिली, और इसलिए वे ध्यान साधना या ग्रंथों के पाठ पर भी एकाग्र नहीं हो सके। एक दिन, उन्होंने यह पता लगाने का निर्णय लिया कि क्या उनके गुरु वास्तव में उतने ही उत्साही और सतर्क हैं जितना वे स्वयं को दिखाते हैं। जब उन्हें पता चला कि उनके गुरु पधानिकतिस्सा केवल दूसरों को उपदेश देते हैं और स्वयं अधिकांश समय सोते रहते हैं, तो उन्होंने कहा, "हमारा तो बुरा हाल हो गया है। हमारे गुरु को केवल हमें डांटना आता है, वे स्वयं समय बर्बाद कर रहे हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं।" इस समय तक, भिक्षुओं को पर्याप्त आराम नहीं मिल रहा था, इसलिए वे थक चुके थे और कमजोर हो गए थे। परिणामस्वरूप, किसी भी भिक्षु ने अपनी ध्यान साधना में कोई प्रगति नहीं की।

निवास पूरा करने के बाद वे बुद्ध के पास लौट आए। बुद्ध ने उनसे सामान्य सौहार्दपूर्ण अभिवादन करने के बाद पूछा, "भिक्षुओं, क्या आपने सजगता का पालन किया? क्या आपने निष्ठापूर्वक ध्यान किया?" तब भिक्षुओं ने उन्हें पूरी कहानी सुनाई।

बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यदि किसी व्यक्ति को दूसरों को उपदेश देना है, तो उसे पहले स्वयं को वश में करना होगा; क्योंकि यदि वह स्वयं अच्छी तरह से वश में होकर दूसरों को उपदेश देता है, तो वह दूसरों को भी वश में कर सकता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 159)

अन्नं यथा अनुससति सी अत्तानं तथा कयिरा

वात सुदन्तो दम्मेथा अत्ता हि किरा दुद्दमो

aññaṃ [ añña ]: दूसरों को; yathā : किस प्रकार; anusāsati : आप निर्देश देते हैं; ce attānaṃ [ attāna ]: आप स्वयं; tathā : उस प्रकार; kayirā : व्यवहार करना चाहिए; vata : निश्चित रूप से; sudanto [ sudanta ]: सबसे अनुशासित व्यक्ति; dammetha : दूसरों को अनुशासित करेगा; attā hi kira : स्वयं को अनुशासित करना वास्तव में कठिन है; duddamo [ duddama ]: अनुशासित करना कठिन है।

यदि आप दूसरों को भी उसी प्रकार अनुशासित करना चाहते हैं, तो आपको स्वयं भी उसी प्रकार व्यवहार करना होगा। सबसे अनुशासित व्यक्ति ही दूसरों को सबसे अच्छे तरीके से अनुशासित कर सकता है। वास्तव में, स्वयं को अनुशासित करना सबसे कठिन है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 159)

अत्तानं तथा कयिरा : तुम्हें स्वयं ऐसा व्यवहार करना चाहिए। यह उन लोगों के संदर्भ में कहा गया है जो दूसरों को उपदेश देते हैं, लेकिन स्वयं उस उपदेश के विपरीत व्यवहार करते हैं। स्वयं बुद्ध इस मनोवृत्ति को पुष्ट करने का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। बुद्ध का परोपकारी और सफल उपदेश काल पैंतालीस वर्षों तक चला। अपने पैंतीसवें वर्ष, यानी ज्ञान प्राप्ति के वर्ष से लेकर अस्सीवें वर्ष में अपनी मृत्यु तक, उन्होंने अपने जीवन और उपदेशों दोनों से मानवता की सेवा की। पूरे वर्ष वे स्थान-स्थान पर विचरण करते रहे, कभी अकेले, कभी अपने शिष्यों के साथ, लोगों को धम्म का उपदेश देते रहे और उन्हें संसार के बंधनों से मुक्त करते रहे। जुलाई से नवंबर तक वर्षा ऋतु ( वस्सना ) के दौरान, निरंतर वर्षा के कारण, वे अपने समय के सभी तपस्वियों की प्रथा के अनुसार एकांतवास में रहते थे।

बुद्ध का ज़ोर स्वयं करके सीखने पर था—व्यवहार पर। उन्होंने अपने मिशन को केवल उपदेश देने तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने अभ्यास का उदाहरण प्रस्तुत किया। जो लोग अधिक समझदार हैं, वे जानते हैं कि बुद्ध ने जो ज्ञान प्राप्त किया, वह उन सभी के लिए सुलभ है जो उनके उपदेशों का निष्ठापूर्वक अभ्यास करते हैं। वास्तव में, प्रत्येक मनुष्य के मन में सदियों पुराने ज्ञान के ढेर के नीचे छिपे ज्ञान के रत्न को खोजने की क्षमता है। इसी में सबसे सुरक्षित आश्रय पाया जा सकता है। स्वयं बुद्ध ने कहा: "किसी बाहरी शरण में मत जाओ।" इस प्रकार, इस संसार में प्रकट होने वाले अंतिम बुद्ध गौतम थे और उन्होंने अपने अनुयायियों, भिक्षुओं और गृहस्थों, को अपने समान बनने के लिए प्रेरित किया, ताकि वे अपने जीवन और अभ्यास को उनके जीवन और अभ्यास का आदर्श बना सकें, क्योंकि उनका जीवन और अभ्यास परम ज्ञान पर आधारित है। उन्होंने घोषणा की कि कोई भी व्यक्ति उपदेशों का पालन कर सकता है, एकाग्रता प्राप्त कर सकता है, झूठे अहंकार को त्याग सकता है और ज्ञान के प्रकाश में खिल सकता है। बुद्ध अपने अनुयायियों को

निचले स्तर पर और स्वयं को सर्वोच्चता के एक अप्राप्य शिखर पर स्थापित नहीं करते, बल्कि उन्हें कई कुशल तरीकों से प्रोत्साहित करते हैं ताकि वे उस चीज़ को प्राप्त कर सकें जो उन्होंने स्वयं प्राप्त की है, क्योंकि यह एक व्यावहारिक बात है, एक ऐसी चीज़ है जिसका अनुभव प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 160

---

(धम्मपद 159) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 160 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 161)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 160 - कुमारकस्सपमातुत्थेरी वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्ता ही अत्तानो नाथो
ko hi natho paro siya
attana hi sudantena
natam labhati dullabham.

---

श्लोक 160 : वास्तव में व्यक्ति स्वयं ही अपना आश्रय है; तो दूसरे उसके लिए आश्रय कैसे हो सकते हैं? स्वयं को पूर्णतः वश में करके ही वह आश्रय (अर्थात अरहत्त फल) प्राप्त कर सकता है, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

---

कुमारकस्सपा की माता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुमारकस्सपा की माता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (160) कहा।

एक बार एक नवविवाहित युवती ने अपने पति से भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी। अनजाने में वह देवदत्त की शिष्याओं के साथ शामिल हो गई। भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी, लेकिन उस समय उसे इस बात का पता नहीं था। कुछ समय बाद उसकी गर्भावस्था स्पष्ट हो गई और अन्य भिक्षुणियां उसे अपने गुरु देवदत्त के पास ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ जीवन में लौटने का आदेश दिया। तब उसने अन्य भिक्षुणियों से कहा, "मैंने आपके गुरु देवदत्त के अधीन भिक्षुणी बनने का इरादा नहीं किया था; मैं गलती से यहां आ गई हूं। कृपया मुझे जेतवन मठ ले चलें, मुझे बुद्ध के पास ले चलें।" इस प्रकार वह बुद्ध के पास पहुंची। बुद्ध जानते थे कि भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी और इसलिए निर्दोष थी; लेकिन उन्होंने इस मामले को अपने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत), प्रसिद्ध धनी अनाथपिंडिका, पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा और कई अन्य व्यक्तियों को बुलवाया। फिर उन्होंने थेरा उपाली को सार्वजनिक रूप से मामले का निपटारा करने का आदेश दिया।

विशाखा उस युवती को पर्दे के पीछे ले गईं; उन्होंने उसकी जांच की और थेरा उपाली को बताया कि जब वह भिक्षुणी बनीं तब वह गर्भवती थीं। थेरा उपाली ने तब सभा में घोषणा की कि युवती पूरी तरह निर्दोष थी और इसलिए उसने अपने नैतिक मूल्यों (शील) को दूषित नहीं किया था। समय आने पर, उन्हें एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक को राजा पसेनादि (प्रसेनजित) ने गोद लिया और उसका नाम कुमारकस्सपा रखा। जब बालक सात वर्ष का हुआ, तो अपनी माता के भिक्षुणी होने का पता चलने पर वह भी बुद्ध के मार्गदर्शन में समनेर बन गया। वयस्क होने पर वह संघ में शामिल हो गया; भिक्षु के रूप में, उसने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और वन में चला

गया। वहाँ उसने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान का अभ्यास किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। हालाँकि, वह बारह वर्ष और वन में ही रहा।

इस प्रकार उनकी माता ने उन्हें बारह वर्षों से नहीं देखा था और वे अपने पुत्र को देखने के लिए बहुत व्याकुल थीं। एक दिन, उन्हें देखकर, माता भिक्षुणी रोते हुए और उनका नाम पुकारते हुए उनके पीछे दौड़ पड़ीं। अपनी माता को देखकर कुमारकस्सपा ने सोचा कि यदि वे अपनी माता से मधुरता से बात करेंगे तो वे अब भी उनसे आसक्त रहेंगी और उनका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। इसलिए उनके भविष्य (निर्वाण प्राप्ति) के लिए उन्होंने जानबूझकर कठोर होकर उनसे कहा: "यह कैसे हो सकता है कि आप, संघ की सदस्य होकर, अपने पुत्र के प्रति इस स्नेह को भी नहीं छोड़ सकीं?" माता को लगा कि उनका पुत्र उनके प्रति बहुत निर्दयी है, और उन्होंने उनसे पूछा कि उनका क्या अर्थ है। कुमारकस्सपा ने वही दोहराया जो उन्होंने पहले कहा था। उनका उत्तर सुनकर कुमारकस्सपा की माता ने मन ही मन सोचा: "ओह, बारह वर्षों से मैं अपने इस पुत्र के लिए आँसू बहा रही हूँ। फिर भी, इसने मुझसे कठोर बातें की हैं। इसके प्रति मेरे स्नेह का क्या लाभ?" तब उन्हें अपने पुत्र के प्रति अपने आसक्ति की निरर्थकता का अहसास हुआ, और उसी क्षण उन्होंने अपने पुत्र से अपना आसक्ति समाप्त करने का निश्चय किया। अपने पुत्र से पूर्णतः आसक्ति समाप्त करके, कुमारकस्सपा की माता ने उसी दिन अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

एक दिन भिक्षुओं की सभा में, कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! यदि कुमारकस्सपा की माता ने देवदत्त की बात मान ली होती, तो वे और उनका पुत्र दोनों अरहत न बन पाते। निश्चय ही देवदत्त ने उनके साथ घोर अन्याय करने का प्रयास किया था; परन्तु हे पूज्यवर, आप उनके लिए शरणस्थल हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! देवलोक (देवदूत लोक) तक पहुँचने या अरहतत्व प्राप्त करने के प्रयास में आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते, आपको स्वयं परिश्रम करना होगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 160 : वास्तव में व्यक्ति स्वयं ही अपना आश्रय है; तो दूसरे उसके लिए आश्रय कैसे हो सकते हैं? स्वयं को पूर्णतः वश में करके ही वह आश्रय (अर्थात अरहत्त फल) प्राप्त कर सकता है, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन है।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुमारकस्सपा की माता की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुमारकस्सपा की माता के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार एक नवविवाहित युवती ने अपने पति से भिक्षुणी बनने की अनुमति मांगी। अनजाने में वह देवदत्त की शिष्याओं के साथ शामिल हो गई। भिक्षुणी बनने से पहले ही वह गर्भवती थी, लेकिन उस समय उसे इस बात का पता नहीं था। कुछ समय बाद उसकी गर्भावस्था स्पष्ट हो गई और अन्य भिक्षुणियां उसे अपने गुरु देवदत्त के पास ले गईं। देवदत्त ने उसे गृहस्थ जीवन में लौटने का आदेश दिया। तब उसने अन्य भिक्षुणियों से कहा, "मैंने आपके गुरु देवदत्त के अधीन भिक्षुणी बनने का इरादा नहीं किया था; मैं गलती से यहां आ गई हूं। कृपया मुझे जेतवन मठ ले चलें, मुझे बुद्ध के पास ले चलें।" इस प्रकार वह बुद्ध के पास पहुंची। बुद्ध जानते थे कि वह भिक्षुणी बनने से पहले ही गर्भवती थी और इसलिए निर्दोष थी; लेकिन उन्होंने इस मामले को अपने हाथ में नहीं लिया। बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि, प्रसिद्ध धनी अनाथपिंडिका, पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा और कई अन्य व्यक्तियों को बुलवाया। फिर उन्होंने वरिष्ठ उपाली को सार्वजनिक रूप से मामले का निपटारा करने का आदेश दिया।

विशाखा उस युवती को पर्दे के पीछे ले गईं; उन्होंने उसकी जाँच की और पूज्य उपाली को बताया कि जब वह नन बनीं तब वह गर्भवती थीं। पूज्य उपाली ने तब उपस्थित लोगों के सामने घोषणा की कि वह स्त्री पूरी तरह निर्दोष थीं और इसलिए उन्होंने अपने नैतिक मूल्यों (शील) को दूषित नहीं किया था। समय आने पर, उन्हें एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक को राजा पसेनादि ने गोद लिया और उसका नाम कुमारकस्सपा रखा गया। जब बालक सात वर्ष का हुआ, तो अपनी माता के नन होने का पता चलने पर वह भी बुद्ध के मार्गदर्शन में सामनेर बन गया। जब वह वयस्क हुआ तो संघ में शामिल हो गया; एक भिक्षु के रूप में, उसने बुद्ध से ध्यान का एक विषय लिया और वन में चला गया। वहाँ उसने पूरी लगन और परिश्रम से ध्यान किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। हालाँकि, वह बारह वर्ष और वन में ही रहा। इस प्रकार उसकी माता ने उसे बारह वर्षों तक नहीं देखा था और वह अपने पुत्र को देखने के लिए बहुत व्याकुल थी। एक दिन, उसे देखकर, माता भिक्षुणी अपने पुत्र के पीछे रोते हुए और उसका नाम पुकारते हुए दौड़ी। अपनी माता को देखकर कुमारकस्साप ने सोचा कि यदि वह अपनी माता से मधुरता से बात करेगा तो वह उससे आसक्त ही रहेगी और उसका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। इसलिए, उसके भविष्य (निर्वाण प्राप्ति) के लिए, वह जानबूझकर कठोर हुआ और उससे कड़े शब्दों में बोला: "यह कैसे हो सकता है कि तुम, संघ की सदस्य होकर, अपने पुत्र के प्रति इस आसक्ति को भी नहीं छोड़ सकती?" माता ने सोचा कि उसका पुत्र उसके प्रति बहुत निर्दयी है, और उसने उससे पूछा कि उसका क्या अर्थ है। कुमारकस्साप ने वही दोहराया जो उसने पहले कहा था।

उसका उत्तर सुनकर, कुमारकस्साप की माता ने मन ही मन सोचा: “ओह, बारह वर्षों से मैं अपने इस पुत्र के लिए आँसू बहा रही हूँ, फिर भी वह मुझसे कठोर शब्दों में बात करता है। उसके प्रति मेरे स्नेह का क्या लाभ?” तब, उसे अपने पुत्र के प्रति अपनी आसक्ति की निरर्थकता का अहसास हुआ और उसी क्षण उसने अपने पुत्र से अपनी आसक्ति को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। कुमारकस्सपा की माता ने अपने आसक्ति को पूर्णतः त्याग कर उसी दिन अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! देवलोक पहुंचने या अर्हतत्व प्राप्त करने के प्रयास में आप दूसरों पर निर्भर नहीं रह सकते, आपको स्वयं कड़ी मेहनत करनी होगी।”

व्याख्यात्मक अनुवाद

अत्तनो अत्ता ही नाथो परो को ही नाथो सिया सुदन्तेन

अत्तना एव दुल्लभं नाथं लभति

attano [ attana ]: स्वयं को; attā hi : स्वयं को; nātho [ nātha ]: उद्धारकर्ता है; paro ko hi : अन्य कौन; nātho siyā : (आपका) उद्धारकर्ता होगा; sudantena : सुशासित; attanā eva : केवल स्वयं को; dullabhaṃ [ dullabha ]: प्राप्त करना कठिन; nāthaṃ [ nātha ]: सहायता; labhati : प्राप्त करेगा

स्वयं का उद्धारक स्वयं ही है। भला और कौन आपका उद्धारक हो सकता है? स्वयं का उद्धारक बनना एक कठिन प्रकार की सहायता है। यह केवल आत्म-अनुशासन के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 160)

आदरणीय कुमारकस्सपा : राजा की सहमति से कुमारकस्सपा ने भिक्षु जीवन व्यतीत किया। वे अंधवन नामक वन में चले गए। वहाँ उन्होंने चींटी के टीले की उपमा पर प्रवचन सुना। कुमारकस्सपा के लिए यह प्रवचन एक रहस्योद्घाटन था। एक लाख युगों से उनके समक्ष जो आदर्श था, अंततः साकार हुआ। प्रवचन द्वारा प्रकट किए गए अर्थों की विशालता ने उन्हें उस निर्वाण का अहसास कराया जो इतने लंबे समय से उनकी पहुँच से बाहर था। युगों से तर्कशास्त्र में निपुण होने की लालसा रखने वाले कुमारकस्सपा को बिम्बों की विस्मयकारी विविधता ने मोहित कर लिया। बुद्ध पद्ममुत्तरा की भविष्यवाणी, अन्य सभी बुद्धों की भविष्यवाणियों की तरह, पूर्ण हुई। तर्कशास्त्रीय भाषण कला में कुमारकस्सपा का कोई सानी नहीं था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 161

---

(धम्मपद 160) <<<< पिछला || धम्मपद 161 || अगला >>>> (धम्मपद 162)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 161 - महाकाल उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Attana hi katam papam
अत्तजम अत्तसंभवम
abhimatthati dummedham
vajiramva'smamayam manim.

---

श्लोक 161 : स्वयं द्वारा किया गया, स्वयं में उत्पन्न हुआ और स्वयं के कारण हुआ पाप मूर्ख व्यक्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हीरा उस चट्टान को पीस देता है जिससे वह बनता है।

---

महाकाल उपासक की कथा

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (161) का उच्चारण महाकाल, एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में किया।

एक व्रत के दिन, महाकाल नामक एक गृहस्थ शिष्य जेतवन मठ गए। उस दिन उन्होंने उपोसथ शील का पालन करते हुए व्रत रखा और रात भर धर्म प्रवचन सुने। संयोगवश, उसी रात कुछ चोर एक घर में सेंध लगा बैठे; और जब घर के मालिक जागे तो वे चोरों के पीछे भागे। चोर चारों दिशाओं में भाग गए। कुछ मठ की ओर भागे। भोर होने वाली थी, और महाकाल मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे। चोरों ने अपना चुराया हुआ सामान महाकाल के सामने गिरा दिया और भाग गए। जब घर के मालिक वापस आए, तो उन्होंने महाकाल को चुराए हुए सामान के साथ देखा। उन्हें चोर समझकर उन्होंने उन पर चिल्लाया, धमकाया और बुरी तरह पीटा। महाकाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई। सुबह तड़के, जब मठ के कुछ युवा भिक्षु और समनेर तालाब से पानी लेने आए, तो उन्होंने शव देखा और उसे पहचान लिया।

मठ लौटकर उन्होंने जो देखा था, वह बुद्ध को बताया और कहा, "हे पूज्यवर! जो गृहस्थ शिष्य रात भर इस मठ में धार्मिक प्रवचन सुन रहा था, उसकी मृत्यु वैसी हुई है जैसी वह नहीं होनी चाहिए थी।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! यदि तुम उसके इस जन्म में किए गए अच्छे कर्मों को देखो, तो वास्तव में उसकी मृत्यु वैसी नहीं हुई जैसी वह होना चाहिए था। परन्तु वास्तव में उसने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्मों का फल भुगता है। अपने पिछले जन्मों में से एक में, जब वह राजा के महल में दरबारी था, तब उसे दूसरे पुरुष की पत्नी से प्रेम हो गया था और उसने उसके पति को पीट-पीटकर मार डाला था। अतः, बुरे कर्म निश्चित रूप से कष्ट लाते हैं; वे तो चारों अपयों की ओर भी ले जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 161 : स्वयं द्वारा किया गया, स्वयं में उत्पन्न हुआ और स्वयं के कारण हुआ पाप मूर्ख व्यक्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हीरा उस चट्टान को पीस देता है जिससे वह बनता है।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

महाकाल उपासक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य महाकाल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक व्रत के दिन, महाकाल नामक एक गृहस्थ शिष्य जेतवन मठ गए। उस दिन उन्होंने आठ नैतिक नियमों ( उपोसथ शील ) का पालन करते हुए व्रत रखा और रात भर धर्म प्रवचन सुने। संयोगवश, उसी रात कुछ चोर एक घर में सेंध लगा बैठे; और जब घर के मालिक जागे तो वे चोरों के पीछे भागे। चोर चारों दिशाओं में भाग गए। कुछ मठ की ओर भागे। तब भोर होने वाली थी, और महाकाल मठ के पास स्थित तालाब में अपना चेहरा धो रहे थे। चोरों ने अपना चुराया हुआ सामान महाकाल के सामने गिरा दिया और भाग गए। जब घर के मालिक वापस आए, तो उन्होंने महाकाल को चुराए हुए सामान के साथ देखा। उन्हें चोर समझकर उन्होंने उन पर चिल्लाया, उन्हें धमकाया और बुरी तरह पीटा। महाकाल की मौके पर ही मृत्यु हो गई। सुबह-सुबह जब मठ के कुछ युवा भिक्षु और सामनेरा तालाब से पानी लेने आए, तो उन्होंने मृत शरीर को देखा और उसे पहचान लिया।

मठ लौटकर उन्होंने जो देखा था, वह बुद्ध को बताया और कहा, "आदरणीय! जो शिष्य रात भर इस मठ में धार्मिक प्रवचन सुन रहा था, उसकी मृत्यु ऐसी हुई है जिसका वह हकदार नहीं था।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! यदि आप उसके इस जन्म में किए गए अच्छे कर्मों को देखें, तो वास्तव में उसकी मृत्यु ऐसी हुई है जिसका वह हकदार नहीं था। लेकिन असलियत यह है कि उसने पिछले जन्म में किए गए बुरे कर्मों का फल भुगता है। अपने पिछले जन्मों में से एक में, जब वह राजा के महल में दरबारी था, तो उसे दूसरे आदमी की पत्नी से प्रेम हो गया और उसने उसके पति को पीट-पीटकर मार डाला। इस प्रकार, बुरे कर्म निश्चित रूप से मुसीबत लाते हैं; वे तो चारों अपायों की ओर भी ले जाते हैं ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 161)

अत्तना एव कतं अत्तजं अत्तसंभवं पापं अस्मामयम्

मनिं वजिरं इव दुम्मेधं अभिमन्थति

अत्तना एव : स्वयं के द्वारा; काटां [ काटा ]: हो गया; अट्टजं [ अट्टजा ]: स्वयं का जन्म; अत्तसंभवम् [ अत्तसंभव ]: स्वयं से उत्पन्न; पापं [ पापा ]: बुरा कार्य; अस्मामयं [ अस्मामय ]: स्वयं निर्मित; मणिṃ [ मणि ]: कीमती पत्थर; वजीरं इव : हीरे के समान; दुम्मेधं [ दुम्मेध ]: मूर्ख व्यक्ति; अभिमन्थति : पीसता है

हीरा पत्थर से ही उत्पन्न होता है, पत्थर से ही पैदा होता है और पत्थर से ही निकलता है। लेकिन वह कीमती पत्थर को काटता है। उसी प्रकार, बुरा कर्म बुरे कर्म करने वाले से ही उत्पन्न होता है, उसी से पैदा होता है और उसी से निकलता है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 161)
वजिरं इव : हीरे के समान। इस श्लोक में, दुष्ट व्यक्ति के आत्म-विनाशकारी दुराचार के लिए हीरे की उपमा का प्रयोग किया गया है, जो स्वयं एक पत्थर होते हुए भी अन्य सभी रत्नों को काट देता है।
इस श्लोक में वजिरा के रूप में संदर्भित हीरे को पारंपरिक टीकाओं में इस प्रकार परिभाषित किया गया है:
वजतेव न पतिहन्ते यस्सा गमनं केनचिति - वजीरं (जो सभी प्रकार की वस्तुओं को काटता है वह हीरा है। इसका विरोध नहीं किया जा सकता है।)
निम्नलिखित छंद इस विचार पर बल देता है:

Prithivyāṃ yāni ratnāni

ye cānye loha dhātavah

Sarvāni vilikhedvajram

tacca tair na vilikhyate

हीरा पृथ्वी पर मौजूद सभी धातुओं और सभी बहुमूल्य पत्थरों को काट सकता है।
हालांकि यह इन सभी को काट सकता है, लेकिन इनमें से कोई भी हीरे को नहीं काट सकता।
हीरों से संबंधित प्राचीन कथाओं में कहा गया है कि हीरा पहनने से अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु का लाभ होता है। इस चित्र में, हीरे की अन्य पत्थरों को काटने की क्षमता की तुलना व्यक्ति की स्वयं की कमियों के कारण होने वाले आत्म-विनाश से की गई है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 162

———————————————————————————

(धम्मपद 161) <<<< पिछला || धम्मपद 162 || अगला >>>> (धम्मपद 163)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 162 - देवदत्त वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa accantadussilyam
maluva salamivotthatam
करोति सो तथात्तनम
यथा नाम इच्छति दिसो.

———————————————————————————

श्लोक 162 : जैसे लता (मलुवा) साल के पेड़ को गला घोंट देती है, वैसे ही एक वास्तव में अनैतिक व्यक्ति (लालसा से ग्रस्त) अपने साथ वही करता है जो उसका शत्रु उससे करवाना चाहता है।

———————————————————————————

देवदत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (162) कहा।

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में बातें कर रहे थे, तभी बुद्ध आए और उनसे उनकी बातचीत का विषय पूछा। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के बारे में बात कर रहे थे और फिर आगे इस प्रकार कहा:

"आदरणीय गुरुदेव! देवदत्त वास्तव में एक अनैतिक व्यक्ति है; वह अत्यंत लालची भी है। उसने अजातसत्तु का विश्वास जीतकर कुटिल साधनों से यश और धन प्राप्त करने का प्रयास किया है। उसने अजातसत्तु को यह विश्वास दिलाने का भी प्रयास किया कि अपने पिता को हटाकर वह (अजातसत्तु) तुरंत एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। देवदत्त के बहकावे में आकर अजातसत्तु ने अपने पिता, परम पूज्य राजा बिम्बिसार की हत्या कर दी। देवदत्त ने आपको, हमारे परम पूज्य गुरुदेव, तीन बार जान से मारने का प्रयास भी किया है। देवदत्त वास्तव में अत्यंत दुष्ट और सुधरने योग्य नहीं है!"

भिक्षुओं की बातें सुनने के बाद, बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने न केवल अभी बल्कि अपने पिछले जन्मों में भी उन्हें मारने का प्रयास किया है। फिर बुद्ध ने एक हिरण शिकारी की कहानी सुनाई।

एक बार जब राजा ब्रह्मदत्त बनारस में शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का जन्म हिरण के रूप में हुआ और देवदत्त उस समय हिरण शिकारी थे। एक दिन, शिकारी ने एक पेड़ के नीचे हिरण के पदचिह्न देखे। इसलिए, उसने पेड़ पर बाँस का एक चबूतरा बनाया और हिरण की प्रतीक्षा में भाला लेकर बैठ गया। हिरण आया, लेकिन वह बहुत सावधानी से आया। शिकारी ने उसे हिचकिचाते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए पेड़ के कुछ फल फेंके। लेकिन इससे हिरण और भी सतर्क हो गया; उसने और ध्यान से देखा और पेड़ पर बैठे शिकारी को पहचान लिया। उसने अनदेखा करने का नाटक किया और धीरे से मुड़ गया। कुछ दूरी से उसने पेड़ को इस प्रकार संबोधित किया:

'हे वृक्ष! तुम हमेशा अपने फल सीधे गिराते हो, लेकिन आज तुमने प्रकृति के नियम को तोड़ दिया है और अपने फल तिरछे गिराए हैं। क्योंकि तुमने वृक्षों के प्रकृति नियम का उल्लंघन किया है, इसलिए मैं अब तुम्हें छोड़कर दूसरे वृक्ष पर जा रहा हूँ।'

हिरण को मुँह मोड़ते देख, हिरण का शिकार करने वाले ने अपना भाला ज़मीन पर गिरा दिया और कहा, 'हाँ, अब तुम आगे बढ़ सकते हो; क्योंकि आज मेरी गणना गलत हुई है।' भावी बुद्ध रूपी हिरण ने उत्तर दिया, 'हे शिकारी! आज तुम्हारी गणना सचमुच गलत हुई है, लेकिन तुम्हारा बुरा कर्म कोई गलती नहीं करेगा; वह तुम्हारा पीछा अवश्य करेगा।' इस प्रकार, देवदत्त ने न केवल आज बल्कि अतीत में भी मुझे मारने का प्रयास किया था, फिर भी वह कभी सफल नहीं हुआ।' तब बुद्ध ने आगे कहा, 'भिक्षुओं! जिस प्रकार लता अपने पेड़ को जकड़ लेती है, उसी प्रकार नैतिकताहीन लोग कामवासना में लीन होकर अंततः निरय (नरक) में गिर जाते हैं।'

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 162 : जैसे लता (मलुवा) साल के पेड़ को गला घोंट देती है, वैसे ही एक वास्तव में अनैतिक व्यक्ति (लालसा से ग्रस्त) अपने साथ वही करता है जो उसका शत्रु उससे करवाना चाहता है।

---

प्रवचन के अंत में, कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

देवदत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन कुछ भिक्षु आपस में बातें कर रहे थे, तभी बुद्ध आए और उनसे उनकी बातचीत का विषय पूछा। उन्होंने बताया कि वे देवदत्त के बारे में बात कर रहे हैं और फिर आगे कहा, "हे पूज्यवर! देवदत्त वास्तव में अनैतिक व्यक्ति है; वह अत्यंत लालची भी है। उसने अजातसत्तु का विश्वास जीतकर कुटिल साधनों से यश और धन प्राप्त करने का प्रयास किया है। उसने अजातसत्तु को यह विश्वास दिलाने का भी प्रयास किया कि अपने पिता को मारकर वह (अजातसत्तु) तुरंत एक शक्तिशाली राजा बन जाएगा। देवदत्त के बहकावे में आकर अजातसत्तु ने अपने पिता, परम पूज्य राजा बिम्बिसार की हत्या कर दी। देवदत्त ने तो तीन बार आपको, हमारे परम पूज्य गुरु, मारने का प्रयास भी किया है। देवदत्त वास्तव में अत्यंत दुष्ट और सुधरने योग्य नहीं है!"

भिक्षुओं की बातें सुनने के बाद, बुद्ध ने उन्हें बताया कि देवदत्त ने न केवल अभी बल्कि अपने पिछले जन्मों में भी उन्हें मारने का प्रयास किया था। फिर बुद्ध ने एक हिरण शिकारी की कहानी सुनाई।

"एक बार जब राजा ब्रह्मदत्त बारानासी में शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का जन्म हिरण के रूप में हुआ और देवदत्त उस समय हिरण शिकारी थे। एक दिन, शिकारी ने एक पेड़ के नीचे हिरण के पदचिह्न देखे। इसलिए, उसने पेड़ पर बाँस का एक चबूतरा बनाया और भाला तैयार करके हिरण की प्रतीक्षा करने लगा। हिरण आया, लेकिन वह बहुत सावधानी से आया। शिकारी ने उसे हिचकिचाते हुए देखा और उसे लुभाने के लिए पेड़ के कुछ फल फेंके। लेकिन इससे हिरण और भी सतर्क हो गया; उसने और ध्यान से देखा और पेड़ पर शिकारी को देख लिया। उसने अनदेखा करने का नाटक किया और धीरे से मुड़ गया। कुछ दूरी से उसने पेड़ को इस प्रकार संबोधित

किया: 'हे वृक्ष! तुम हमेशा अपने फल सीधे गिराते हो, लेकिन आज तुमने प्रकृति के नियम का उल्लंघन किया है और अपने फल तिरछे गिराए हैं। क्योंकि तुमने वृक्षों के प्राकृतिक नियम का उल्लंघन किया है, इसलिए मैं अब तुम्हें छोड़कर दूसरे वृक्ष पर जा रहा हूँ।'
"हिरण को मुँह मोड़ते देख, शिकारी ने अपना भाला ज़मीन पर गिरा दिया और कहा, 'जी हाँ, अब तुम आगे बढ़ सकते हो; क्योंकि आज मेरी गणना गलत हुई है।' भावी बुद्ध रूपी हिरण ने उत्तर दिया, 'हे शिकारी! आज तुम्हारी गणना सचमुच गलत हुई है, परन्तु तुम्हारा बुरा कर्म तुम्हें नहीं भूलेगा; वह तुम्हारा पीछा अवश्य करेगा।' इस प्रकार, देवदत्त ने न केवल आज, बल्कि अतीत में भी मुझे मारने का प्रयास किया था, परन्तु वह कभी सफल नहीं हुआ।" तब बुद्ध ने आगे कहा, "भिक्षुओं! जैसे लता अपने पेड़ को जकड़कर गला घोंट देती है, वैसे ही नैतिकताहीन लोग कामवासना में लीन होकर अंततः निरय में गिर जाते हैं ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 162)
यस्सा एकांत दुसिल्यं सलं मालुवा इव ओटाटं
दिसो नं यथा इच्छाति सो अत्तानं तथा करोति
यस्सा अक्कन्ता दुस्सिल्यं [ दुस्सिल्य ]: किसी में सद्गुणों की अत्यधिक कमी; सालम मालुवा इव ओटाटम् [ ओटाटा ]: ठीक वैसे ही जैसे मालुवा लता साल के पेड़ को कुचल देती है; दिसां [ डिसा ]: शत्रु के रूप में; यथा इच्छाति : नुकसान पहुंचाने का इरादा; अत्तनं तथा करोति : स्वयं को हानि पहुँचाना
सद्गुणहीन व्यक्ति का अत्यंत बुरा कर्म परजीवी मालुवा लता के समान है। लता पेड़ पर उगती है और उसे कुचलकर नष्ट कर देती है। उसी प्रकार, पापी का कर्म भी उसे उसी प्रकार कुचल देता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 162)
अच्चान्त दुस्सील्यं : अनुशासन और सद्गुण का पूर्ण अभाव। यहाँ भिक्षुओं के अनुशासन के अभाव का तात्पर्य है। पारंपरिक टीकाओं के अनुसार, अनुशासन और सद्गुण का यह घोर अभाव तेरह गंभीर दोषों ( गरुकापत्ति ) के कारण होता है।
उन तेरहों के नाम इस प्रकार हैं:
सुक्कविसाठी ,
काया संसग्गा ,
duṭṭhulla vācā ,
attakāmapāricariyā ,
sañcarittā ,
कुटिकारका ,
महल्लका ,
विहार ,
दुत्थाडोसा ,
dutiyadutthadosa ,
संघभेद
दुतिया संघभेद ,
दुब्बाका और
कुलादुसाका .
यह श्लोक देवदत्त के अनुशासनहीनता के कारण लिखा गया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 163

———————————————————————

(धम्मपद 162) <<<< पिछला || धम्मपद 163 || अगला >>>> (धम्मपद 164)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 163 - संघभेदापरिसक्कन वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सुकरानी असाधुनी
अत्तनो अहितानि सीए
yam ve hitanca sadhunca
tam ve paramadukkaram.

---

श्लोक 163 : अपने लिए बुरे और लाभहीन काम करना आसान है, लेकिन वास्तव में, लाभप्रद और अच्छे काम करना सबसे कठिन है।

---

संगठन में फूट की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (163) का उच्चारण देवदत्त के संदर्भ में किया, जिसने भिक्षुओं के संघ में फूट डालने का अपराध किया था।

एक बार जब बुद्ध वेलुवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और सुझाव दिया कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, इसलिए संघ के कर्तव्यों को उसे (देवदत्त को) सौंप दिया जाना चाहिए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उसे फटकारते हुए "थूक निगलने वाला" (खेलासिका) कहा। उस समय से देवदत्त बुद्ध के प्रति बहुत द्वेषपूर्ण हो गया। उसने तीन बार बुद्ध को जान से मारने का प्रयास भी किया, लेकिन उसके सभी प्रयास विफल रहे। बाद में, देवदत्त ने एक और चाल चली। इस बार, वह बुद्ध के पास आया और भिक्षुओं के लिए जीवन भर पालन करने हेतु अनुशासन के पाँच नियम प्रस्तावित किए।

उसने प्रस्ताव किया:

(i) भिक्षुओं को वन में रहना चाहिए;
(ii) कि उन्हें केवल भिक्षा-अनुभागों में प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन करना चाहिए;
(iii) कि उन्हें केवल कूड़े के ढेरों से एकत्रित कपड़े के टुकड़ों से बने वस्त्र पहनने चाहिए;
(iv) कि वे पेड़ों के नीचे निवास करें; और
(v) कि उन्हें मछली या मांस नहीं खाना चाहिए।

बुद्ध को इन नियमों पर कोई आपत्ति नहीं थी और न ही उन्होंने उन लोगों पर कोई आपत्ति जताई जो इनका पालन करने को तैयार थे, लेकिन विभिन्न वैध कारणों से, वे सामान्य रूप से भिक्षुओं पर अनुशासन के इन नियमों को लागू करने के लिए तैयार नहीं थे।

देवदत्त ने दावा किया कि उनके द्वारा प्रस्तावित नियम अनुशासन के मौजूदा नियमों से कहीं बेहतर थे, और कुछ नए भिक्षुओं ने उनकी बात मान ली। एक दिन, बुद्ध ने देवदत्त से पूछा कि क्या यह सच है कि वे संघ में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं, और उन्होंने यह स्वीकार किया। बुद्ध ने उन्हें चेतावनी दी कि यह एक बहुत गंभीर अपराध है, लेकिन देवदत्त ने उनकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के दौरान थेरा आनंद से मिले, तो देवदत्त ने थेरा आनंद से कहा, "आनंद, आज से मैं उपोसथ व्रत रखूंगा और बुद्ध और उनके भिक्षु संघ से स्वतंत्र होकर संघ के कर्तव्यों का पालन करूंगा।" भिक्षा मांगने से लौटने पर, थेरा आनंद ने बुद्ध को देवदत्त की कही हुई बातें बताईं।

यह सुनकर बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "देवदत्त ने बहुत गंभीर अपराध किया है; यह उसे अविची निरय (नरक) में भेजेगा। एक गुणी व्यक्ति के लिए अच्छे कर्म करना आसान और बुरे कर्म करना कठिन होता है; परन्तु एक दुष्ट व्यक्ति के लिए बुरे कर्म करना आसान और अच्छे कर्म करना कठिन होता है। वास्तव में, जीवन में अपंग कर्म करना आसान है, परन्तु लाभकारी कर्म करना अत्यंत कठिन है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 163 : अपने लिए बुरे और लाभहीन काम करना आसान है, लेकिन वास्तव में, लाभप्रद और अच्छे काम करना सबसे कठिन है।

---

फिर, उपोसथ दिवस (उपवास दिवस) पर, देवदत्त पाँच सौ वज्जीय भिक्षुओं के साथ संघ से अलग हो गए और गयासिसा चले गए। हालाँकि, जब दो प्रमुख शिष्य, सारिपुत्त और मोग्गलाना, देवदत्त के साथ गए भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बात की, तो उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनमें से अधिकांश दोनों प्रमुख शिष्यों के साथ बुद्ध के पास लौट आए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

संघ में विभाजन की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने भिक्षुओं के संघ में फूट डालने का अपराध किया था।

एक बार जब बुद्ध वेलुवन मठ में प्रवचन दे रहे थे, तब देवदत्त उनके पास आया और सुझाव दिया कि बुद्ध वृद्ध हो रहे हैं, इसलिए संघ के कर्तव्यों को उसे (देवदत्त को) सौंप दिया जाना चाहिए; लेकिन बुद्ध ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उसे फटकारते हुए उसे घिनौना (खेलासिक) कहा। उस समय से देवदत्त बुद्ध के प्रति बहुत द्वेषपूर्ण हो गया। उसने तीन बार बुद्ध को जान से मारने का प्रयास भी किया, लेकिन उसके सभी प्रयास विफल रहे। बाद में, देवदत्त ने एक और चाल चली। इस बार वह बुद्ध के पास आया और भिक्षुओं के लिए जीवन भर पालन करने हेतु अनुशासन के पाँच नियम प्रस्तावित किए। उसने प्रस्ताव दिया कि (i) भिक्षुओं को वन में रहना चाहिए; (ii) उन्हें केवल भिक्षाटन से प्राप्त भोजन पर ही निर्भर रहना चाहिए; (iii) उन्हें केवल कूड़े के ढेर से एकत्रित कपड़े के टुकड़ों से बने वस्त्र पहनने चाहिए; (iv) उन्हें वृक्षों के नीचे निवास करना चाहिए; और (v) उन्हें मछली या मांस नहीं खाना चाहिए। बुद्ध को इन नियमों पर कोई आपत्ति नहीं थी और न ही उन्होंने उन लोगों पर कोई आपत्ति जताई जो इनका पालन करने को तैयार थे, लेकिन विभिन्न वैध कारणों से, वे सामान्य रूप से भिक्षुओं पर अनुशासन के इन नियमों को लागू करने के लिए तैयार नहीं थे।

देवदत्त ने दावा किया कि उनके द्वारा प्रस्तावित नियम अनुशासन के मौजूदा नियमों से कहीं बेहतर थे, और कुछ नए भिक्षुओं ने उनसे सहमति जताई। एक दिन, बुद्ध ने देवदत्त से पूछा कि क्या यह सच है कि वे संघ में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं, और उन्होंने स्वीकार किया कि ऐसा ही है। बुद्ध ने उन्हें चेतावनी दी कि यह एक बहुत गंभीर अपराध है, लेकिन देवदत्त ने उनकी चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद, जब वे राजगृह में भिक्षाटन के दौरान पूज्य आनंद से मिले, तो देवदत्त ने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, आज से मैं व्रत (उपोसथ) का पालन करूँगा, और बुद्ध और उनके भिक्षु संघ से स्वतंत्र रूप से संघ के कर्तव्यों का पालन करूँगा।" भिक्षाटन से लौटने पर, पूज्य आनंद ने बुद्ध को देवदत्त की कही हुई बातें बताईं।

यह सुनकर बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "देवदत्त ने बहुत गंभीर अपराध किया है; यह उसे अविची निरय को भेजेगा । एक गुणी व्यक्ति के लिए अच्छे कर्म करना आसान और बुरे कर्म करना कठिन होता है; परन्तु एक दुष्ट व्यक्ति के लिए बुरे कर्म करना आसान और अच्छे कर्म करना कठिन होता है। वास्तव में, जीवन में अपलाभदायक कार्य करना आसान है, परन्तु लाभकारी कार्य करना अत्यंत कठिन है।"

फिर उपोसथ दिवस पर, देवदत्त पाँच सौ वज्जीय भिक्षुओं के साथ संघ से अलग होकर गयासीसा चला गया। परन्तु जब दो प्रमुख शिष्य, सारिपुत्त और मोग्गलाना, देवदत्त के साथ गए भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बात की, तो उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उनमें से अधिकांश दो प्रमुख शिष्यों के साथ बुद्ध के पास लौट आए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 163)

असाधुनि अत्तनो अहितानि च सुकराणि यं वे

हितञ्च साधुं च तं वे परम दुक्करं

असधुनी : बुरे कर्म; अत्तनो अहितानि च : स्वयं के लिए हानिकारक कर्म; सुकरानि : आसानी से किए जा सकने वाले कर्म; यं : यदि कोई कर्म; वे हितंच : वास्तव में स्वयं के लिए अच्छा है; साधुंच च : यदि वह सही भी है; तं : उस प्रकार का कर्म; वे : (निश्चित रूप से) है; परम दुक्करं [ दुक्कर ]: करना अत्यंत कठिन है

वे कार्य जो स्वयं के लिए हानिकारक और नुकसानदायक हों, उन्हें करना अत्यंत सरल होता है। परन्तु यदि कोई कार्य अपने लिए लाभकारी हो; यदि वह उचित भी हो, तो निश्चिततः उस प्रकार का कार्य करना अत्यंत कठिन सिद्ध होगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 163)

अत्तनो अहितानि सुकरानि : स्वयं को हानि पहुँचाने वाले कर्म आसानी से किए जा सकते हैं। यह कथन देवदत्त द्वारा किए गए विभाजन के संदर्भ में कहा गया है। यद्यपि बुद्ध का उद्देश्य पूर्णतः शुद्ध था और वे मानवता की सेवा में निस्वार्थ थे, फिर भी अपने उपदेशों और शिक्षाओं के प्रसार में उन्हें प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। अन्य किसी भी धार्मिक शिक्षक की तुलना में उनकी कड़ी आलोचना हुई, उन्हें गालियाँ दी गईं, उनका अपमान किया गया और उन पर निर्मम आक्रमण किए गए। उनके प्रमुख विरोधी प्रतिद्वंद्वी संप्रदायों के शिक्षक और विधर्मी विचारधाराओं के अनुयायी थे, जिनकी पारंपरिक शिक्षाओं और अंधविश्वासी रीति-रिवाजों की उन्होंने उचित आलोचना की। उनका सबसे बड़ा व्यक्तिगत शत्रु, जिसने उन्हें जान से मारने का व्यर्थ प्रयास किया, उनका अपना बहनोई और पूर्व शिष्य देवदत्त था। देवदत्त राजा सुप्पबुद्ध और बुद्ध की मौसी पमिता का पुत्र था। यशोदरा उसकी बहन थी। इस प्रकार वह बुद्ध का चचेरा

भाई और बहनोई था। बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में वे आनंद और अन्य शाक्य राजकुमारों के साथ संघ में शामिल हुए। वे संतत्व की किसी भी अवस्था को प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु सांसारिक मानसिक शक्तियों ( पोथुज्जनिक-इद्धि ) के लिए विख्यात थे। उनके प्रमुख समर्थकों में से एक राजा अजातसत्तु थे, जिन्होंने उनके लिए एक मठ का निर्माण करवाया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 164

———————————————————————

(धम्मपद 163) <<<< पिछला || धम्मपद 164 || अगला >>>> (धम्मपद 165)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 164 - कलत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo sasanam arahatam
अरियानम धम्मजीवनम
patikkosati dummedho
ditthim nissaya papikam
फलानी कत्थकस्सेवा
attghataya phallati.

———————————————————————

श्लोक 164 : वह मूर्ख व्यक्ति जो अपने गलत विचारों के कारण धम्म के अनुसार जीवन जीने वाले आदरयोग्य श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यो) की शिक्षा का तिरस्कार करता है, वह उस बांस के समान है जो अपने ही विनाश के लिए फल देता है।

———————————————————————

थेरा काला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा काला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (164) कहा।
एक बार सावत्थी में, एक बुजुर्ग महिला काला नामक एक थेरा की अपने बेटे की तरह देखभाल करती थी। एक दिन पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों के बारे में सुनकर, उनकी तीव्र इच्छा हुई कि वे जेतवन मठ जाकर बुद्ध के प्रवचन सुनें। उन्होंने थेरा काला को अपनी इच्छा बताई; लेकिन थेरा ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी। उन्होंने तीन बार उनसे अपनी इच्छा व्यक्त की, लेकिन थेरा ने हर बार उन्हें मना कर दिया। लेकिन एक दिन, उनके मना करने के बावजूद, महिला ने जाने का निश्चय कर लिया। अपनी बेटी से थेरा काला की जरूरतों का ध्यान रखने के लिए कहकर वह घर से निकल गईं। जब थेरा काला भिक्षा-भोजन के लिए अपने नियमित दौर पर निकले, तो उन्हें पता चला कि घर की मालकिन जेतवन मठ के लिए निकल चुकी हैं। तब उन्होंने सोचा, "शायद इस घर की मालकिन का मुझ पर से विश्वास कम हो रहा है।" इसलिए, उन्होंने जल्दी से उनका पीछा करते हुए मठ तक गए। वहाँ उन्होंने उन्हें बुद्ध के प्रवचन सुनते हुए पाया। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "हे पूज्यवर! यह स्त्री बहुत मंदबुद्धि है; यह उदात्त धम्म को नहीं समझ पाएगी; कृपया इसे केवल दान और शील के बारे में ही शिक्षा दें।"

बुद्ध भली-भांति जानते थे कि थेरा काला द्वेष और किसी गुप्त इरादे से बोल रहा है। इसलिए उन्होंने थेरा काला से कहा, "भिक्षु! क्योंकि तुम मूर्ख हो और तुम्हारी गलत सोच है, इसलिए तुम मेरे उपदेशों का तिरस्कार करते हो। तुम स्वयं अपनी बर्बादी के कारण हो; वास्तव में, तुम केवल स्वयं को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 164 : वह मूर्ख व्यक्ति जो अपने गलत विचारों के कारण धम्म के अनुसार जीवन जीने वाले आदरयोग्य श्रेष्ठ पुरुषों (आर्यों) की शिक्षा का तिरस्कार करता है, वह उस बांस के समान है जो अपने ही विनाश के लिए फल देता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में उस बुजुर्ग महिला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय काला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य काल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार सावत्थी में एक बुजुर्ग महिला काला नामक भिक्षु की अपने बेटे की तरह देखभाल करती थी। एक दिन, पड़ोसियों से बुद्ध के गुणों के बारे में सुनकर, उनकी तीव्र इच्छा हुई कि वे जेतवन मठ जाकर बुद्ध के प्रवचन सुनें। उन्होंने पूज्य काला को अपनी इच्छा बताई, लेकिन भिक्षु ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी। उन्होंने तीन बार उनसे अपनी इच्छा व्यक्त की, लेकिन उन्होंने हर बार उन्हें मना कर दिया। लेकिन एक दिन, उनकी बार-बार की मनाही के बावजूद, महिला ने जाने का निश्चय कर लिया। अपनी बेटी से पूज्य काला की जरूरतों का ध्यान रखने को कहकर वह घर से निकल गईं। जब पूज्य काला भिक्षा-भोजन के लिए अपने नियमित दौर से निकले, तो उन्हें पता चला कि घर की मालकिन जेतवन मठ के लिए निकल चुकी हैं। तब उन्होंने सोचा, "शायद इस घर की मालकिन का मुझ पर से विश्वास कम हो रहा है।" इसलिए, उन्होंने जल्दी से उनका पीछा करते हुए मठ तक गए। वहाँ उन्होंने उन्हें बुद्ध के प्रवचन सुनते हुए पाया। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, “हे पूज्यवर! यह स्त्री बहुत मंदबुद्धि है; वह उदात्त धम्म को नहीं समझ पाएगी; कृपया उसे केवल दान और नैतिकता के बारे में ही शिक्षा दें ।”
बुद्ध भली-भांति जानते थे कि पूज्य काल द्वेष और गुप्त इरादे से बोल रहे हैं। इसलिए उन्होंने पूज्य काल से कहा, “भिक्षु! क्योंकि तुम मूर्ख हो और तुम्हारी गलत धारणा है, इसलिए तुम मेरे उपदेशों का तिरस्कार करते हो। तुम स्वयं अपनी बर्बादी के कारण हो; वास्तव में, तुम केवल स्वयं को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हो।” प्रवचन के अंत में, उस वृद्ध महिला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 164)
यो दुम्मेधो पापिकां दितिथिं निस्साय अरहतम्
धम्मजीविनं अरियाणं सासनं पतिकोसति
कत्थकस्सा फलानि इव अत्तघन्याय फलति
यो दुमेधो [ दुमेधा ]: यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति है; पापिकां दितिथिं निस्साय : मिथ्या विश्वासों के कारण; अरहतम् [ अरहत ]: गुणी; धम्मजीविनं [ धम्मजीविना ]: जीवन को सही ढंग से संचालित करना; एरियानां [ एरियाना ]: कुलीन'; सासनं [ सासन ]: शिक्षण; पतिकोसति : बाधा डालना; कत्थकस्सा : उसकी क्रिया (बांस के पेड़ की); फलानि इव : फल के समान; अट्टघन्याय : स्वयं का विनाश; फल्लति : अनुकूल है
कुछ अज्ञानी लोग हानिकारक विचारों के कारण उन महान संतों की शिक्षाओं में बाधा डालते हैं जो धार्मिक जीवन जीते हैं। वे बांस के पौधों की तरह, जो फल लगने पर नष्ट हो जाते हैं, स्वयं ही विनाशकारी होते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 164)
diṭṭhiṃ nissāya : क्योंकि विचारों के कारण.
दिठ्ठी : दृष्टिकोण, विश्वास, काल्पनिक मत, अंतर्दृष्टि। यदि इसके साथ सम्मा शब्द का प्रयोग न किया जाए , तो यह अधिकतर गलत और दुष्ट दृष्टिकोण या मत को संदर्भित करता है, और केवल कुछ ही मामलों में सही दृष्टिकोण, समझ या अंतर्दृष्टि को (जैसे, दिठ्ठीपट्टा ; दिठ्ठी - विशुद्धि , अंतर्दृष्टि का शुद्धिकरण; दिठ्ठी-संपन्न , अंतर्दृष्टि से युक्त)।
बुरी सोच ( मिच्छा-दिठ्ठी ) को पूरी तरह से अस्वीकार्य घोषित किया गया है, क्योंकि ये गलत और दुष्ट आकांक्षाओं और आचरण का स्रोत हैं, और कभी-कभी मनुष्य को पतन की गहरी खाई में धकेल सकती हैं। जैसा कि कहा गया है: “हे भिक्षुओं, मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे अस्वास्थ्यकर चीजें जो अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं, उत्पन्न होती हैं और जो पहले से उत्पन्न हो चुकी हैं, वे बढ़ती और पूर्ण होती हैं। मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे स्वास्थ्यकर चीजें जो अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं, उनके उत्पन्न होने में बाधा आती है और जो पहले से उत्पन्न हो चुकी हैं, वे लुप्त हो जाती हैं। मैं बुरी सोच के सिवा कुछ और नहीं जानता, जिससे

मनुष्य शरीर के विघटन के समय, मृत्यु के समय, दुख के मार्ग पर, दुःख के संसार में, नरक में प्रवेश करता है।" आगे: "बुरे विचारों से भरा हुआ व्यक्ति जो कुछ भी करता है या करने का बीड़ा उठाता है, या उसके मन में जो भी इच्छाशक्ति, आकांक्षा, लालसा और प्रवृत्ति होती है, ये सभी चीजें उसे अवांछनीय, अप्रिय और कष्टदायी स्थिति की ओर ले जाती हैं, जिससे उसे दुख और पीड़ा सहनी पड़ती है।"

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब भी बुरे विचार उत्पन्न होते हैं, वे लोभ से जुड़े होते हैं। अनेक काल्पनिक मत और सिद्धांत, जिन्होंने हमेशा से मानव जाति को प्रभावित किया है और अभी भी प्रभावित कर रहे हैं, सुत्त ग्रंथों में उद्धृत हैं। यद्यपि, उनमें से वह गलत विचार जिसने हर जगह और हर समय मानव जाति को सबसे अधिक गुमराह और भ्रमित किया है, वह है व्यक्तित्व-विश्वास, अहंकार-भ्रम। यह व्यक्तित्व-विश्वास ( सक्कायादित्ति ) या अहंकार-भ्रम ( अत्तादित्ति ) दो प्रकार के होते हैं: शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास।

शाश्वतता का विश्वास ( सस्सता-दिट्ठी ) एक निरंतर विद्यमान अहंकार-सत्ता, आत्मा या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो जीवन के भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं से स्वतंत्र रूप से विद्यमान है और मृत्यु के बाद भी बना रहता है। दूसरी ओर, विनाश का विश्वास ( उच्छेद-दिट्ठी ) एक अहंकार-सत्ता या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो कमोबेश उन भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं के समान है, और इसलिए, मृत्यु के अंत में, उसका भी विनाश हो जाएगा। अब, बुद्ध न तो मृत्यु के बाद बने रहने वाले व्यक्तित्व की शिक्षा देते हैं, न ही मृत्यु के समय नष्ट होने वाले व्यक्तित्व की, बल्कि वे हमें दिखाते हैं कि व्यक्तित्व, अहंकार, व्यक्ति, मनुष्य आदि मात्र पारंपरिक पदनाम ( वोहार-वचन ) हैं और परम अर्थ में ( परमत्थ-सच्च ) केवल भौतिक और मानसिक घटनाओं की यह स्व-विनाशकारी प्रक्रिया है जो निरंतर उत्पन्न होती है और तुरंत ही लुप्त हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 165

---

(धम्मपद 164) <<<< पिछला || धम्मपद 165 || अगला >>>> (धम्मपद 166)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 165 - कुलकाल उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Attana hi katam pipam
attana samkilissati
attana akatam papam
attanava visujjhati
शुद्धि अशुद्धि पच्चत्तम
nanno annanam visodhaye.

---

श्लोक 165 : स्वयं के कर्मों से ही बुराई होती है और स्वयं के कर्मों से ही अपवित्रता होती है; स्वयं के कर्मों से ही बुराई नहीं होती और स्वयं के कर्मों से ही पवित्रता प्राप्त होती है। पवित्रता और अपवित्रता पूरी तरह से स्वयं पर निर्भर करती है; कोई भी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

---

चुलकाला उपासक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (165) का उच्चारण किया, जो कि गृहस्थ शिष्य चुलकाला के संदर्भ में था।

गृहस्थ शिष्य कुलकला ने एक व्रत के दिन उपोसथ (उपवास) के नियमों का पालन किया और पूरी रात जेतवन मठ में रहकर धार्मिक प्रवचन सुने। सुबह तड़के जब वह मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे, तभी कुछ चोरों ने उनके पास एक गठरी गिरा दी। मालिकों ने उन्हें चोरी का सामान लिए देख लिया और उन्हें चोर समझकर बुरी तरह पीटा। सौभाग्य से पानी भरने आई कुछ दासियों ने गवाही दी कि वे उन्हें जानती हैं और वह चोर नहीं हैं। इसलिए कुलकला को छोड़ दिया गया।

जब बुद्ध को इस बारे में बताया गया, तो उन्होंने चुलकाला से कहा, "तुम्हें न केवल इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि दासियों ने कहा कि तुम चोर नहीं हो, बल्कि इसलिए भी कि तुमने चोरी नहीं की और इसलिए निर्दोष हो। बुराई करने वाले निरय (नरक) में जाते हैं, लेकिन अच्छाई करने वाले देवलोक में पुनर्जन्म लेते हैं या निर्वाण प्राप्त करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 165 : स्वयं के कर्मों से ही बुराई होती है और स्वयं के कर्मों से ही अपवित्रता होती है; स्वयं के कर्मों से ही बुराई नहीं होती और स्वयं के कर्मों से ही पवित्रता प्राप्त होती है। पवित्रता और अपवित्रता पूरी तरह से स्वयं पर निर्भर करती है; कोई भी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, गृहस्थ शिष्य चुलकाला ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय काला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने एक गृहस्थ शिष्य चूलकाला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

चूलाकला, जो एक गृहस्थ शिष्य थे, ने एक व्रत के दिन उपोसथ के नियमों का पालन किया और जेतवन मठ में रात्रि व्यतीत की, जहाँ उन्होंने रात भर धार्मिक प्रवचन सुने। सुबह तड़के, जब वे मठ के पास स्थित तालाब में स्नान कर रहे थे, तभी कुछ चोरों ने उनके पास एक गठरी गिरा दी। मालिकों ने उन्हें चोरी का सामान लिए देख लिया और उन्हें चोर समझकर बुरी तरह पीटा। सौभाग्यवश, पानी भरने आई कुछ दासियों ने गवाही दी कि वे उन्हें जानती हैं और वे चोर नहीं हैं। इस प्रकार चूलाकला को रिहा कर दिया गया।

जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने चूलकाला से कहा, “तुम्हें न केवल इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि दासियों ने कहा कि तुम चोर नहीं हो, बल्कि इसलिए भी कि तुमने चोरी नहीं की और इसलिए निर्दोष हो। बुराई करने वाले निरयण में जाते हैं , परन्तु अच्छाई करने वाले देवलोक में पुनर्जन्म लेते हैं या निर्वाण प्राप्त करते हैं।” प्रवचन के अंत में, चूलकाला नामक गृहस्थ शिष्य ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 165)

अत्तना एव पापं कटं अत्तना संकिलिस्सति ,

अत्तना पापं अकत् अत्तना एव विसुज्जति ,

शुद्धि अशुद्धि पच्चट्टं अण्णो अणं न विशोधये

attanā eva : यदि कोई स्वयं से पाप करे; पापम् [ pāpa ]: बुरा कर्म; कतम् [ kata ]: (किया जाए); attanā saṅkilissati : यदि कोई स्वयं से पाप करे; पापम् [ pāpa ] : बुरा कर्म; अकतम् [ akata ]: न किया जाए; attanā eva : स्वयं से; विसुज्जति : शुद्ध हो जाए; शुद्धि : शुद्धता; अशुद्धि : अशुद्धता; पच्चत्तम् [ paccatta ]: स्वयं पर निर्भर; आञ्ञो : एक; आञ्ञम् [ añña ]: दूसरा; न विसोधये : शुद्ध न करे

बुराई स्वयं के कर्मों से ही होती है। अपने कर्मों से ही व्यक्ति अपवित्र होता है। यदि कोई व्यक्ति बुरे कर्म न करे, तो वह शुद्ध हो जाता है। व्यक्ति स्वयं अपने कर्मों से ही पूर्णतः शुद्ध होता है। कोई दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता। शुद्धता और अशुद्धता दोनों ही स्वयं पर निर्भर करती हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 165)

añño aññaṃ na visodhaye : एक व्यक्ति दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता। बौद्ध धर्म में, प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को शुद्ध करना होता है; अन्य, धार्मिक शिक्षक या पुजारी, उसे शुद्ध नहीं कर सकते। बुद्ध की शुद्धि प्रक्रिया को विशुद्धि कहा जाता है ।

विशुद्धि : शुद्धि, पवित्रता। शुद्धि के सात चरण ( सत्तविशुद्धि ) उपतिस्सा के विमुक्ति-मग्ग (मुक्ति का मार्ग) की आधारशिला हैं, जो केवल चीनी भाषा में संरक्षित है; साथ ही बुद्धघोष के महान ग्रंथ विशुद्धि-मग्ग, शुद्धि का मार्ग, जो पूर्व ग्रंथ पर आधारित है, की भी

आधारशिला हैं। धर्मग्रंथ में इन सात प्रकार की शुद्धि का उल्लेख केवल एक ही स्थान पर मिलता है, वह है कोच की उपमा, जिसमें इनके उद्देश्य और लक्ष्य को दर्शाया गया है। वहाँ कहा गया है कि वास्तविक और अंतिम लक्ष्य नैतिकता, मन या दृष्टिकोण आदि की शुद्धि में नहीं, बल्कि पूर्ण मुक्ति और निर्वाण में निहित है। अब, जिस प्रकार कोई पहले कोच पर सवार होकर दूसरे कोच तक जाता है, फिर दूसरे कोच पर सवार होकर तीसरे कोच तक जाता है, और इसी प्रकार आगे बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार (1) नैतिकता की शुद्धि ( शील-विशुद्धि ) का लक्ष्य है; (2) मन की शुद्धि ( चित्त ), इसका लक्ष्य है; (3) दृष्टि की शुद्धि ( दिट्ठी ), इसका लक्ष्य है; (4) संशय पर विजय की शुद्धि ( कन्खा-वितरण ), इसका लक्ष्य है; (5) मार्ग और अपतटीय के ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि ( मग्गामग्ग-ज्ञानदस्सान ), इसका लक्ष्य है; (6) मार्ग-प्रगति के ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि ( पतिपदा-ज्ञानदस्सान ), इसका लक्ष्य है; (7) ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि ( ज्ञानदस्सान ); लेकिन इस शुद्धि का लक्ष्य सभी आसक्तियों से मुक्ति प्राप्त करना है।

इनमें से, ज्ञान और दृष्टि की शुद्धि ( ज्ञानदस्सान-विशुद्धि ) वह ज्ञान है जो चार प्रकार की अलौकिक मार्ग-चेतना से संबंधित है। "इस अनुकूलन ज्ञान के तुरंत बाद परिपक्वता-ज्ञान ( गोत्रभू-ज्ञान ) उत्पन्न होता है, जो बिना शर्त, अस्तित्व की स्थिरता, बनने की अनुपस्थिति, समाप्ति, निर्वाण को विषय बनाता है, जबकि साथ ही साथ गोत्र, वंश, पदनाम और सांसारिक (पुथुज्जन) के स्तर से ऊपर उठकर श्रेष्ठ ( अरीय ) के स्तर और स्तर में प्रवेश करता है , निर्वाण को विषय बनाकर उसकी ओर पहला मोड़, उसका पहला चिंतन, उस पर पहली एकाग्रता और मार्ग निर्माण की शर्त है - अंतर्दृष्टि की पराकाष्ठा, और फिर कभी इस रूप में वापस नहीं आता।

उस परिपक्व ज्ञान ( गोत्रभू-ज्ञान ) के ठीक बाद , प्रथम मार्ग-चेतना (धारा-प्रवेश) उत्पन्न होती है, जो अस्तित्व के दस बंधनों ( संयोजन ) में से पहले तीन को सदा के लिए नष्ट कर देती है और निम्न लोकों के प्रवेश द्वार को बंद कर देती है। इस मार्ग-ज्ञान के तुरंत बाद, इसके फलस्वरूप, चेतना की दो या तीन मार्ग-जनित अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें फल-चित्त ( फल-चित्त ) कहा जाता है। इस चेतना के अस्तित्व की अवचेतन धारा में विलीन होने के तुरंत बाद, पूर्वव्यापी ज्ञान ( पच्चवेक्खना-ज्ञान ) उत्पन्न होता है, जिसका विषय मार्ग-चेतना होती है।

चारों प्रकार की पथ-चेतना एक ही समय में चार कार्य करती है, अर्थात्: दुख की पूर्ण समझ ( परिञ्ञा ) का कार्य, दुख के मूल को दूर करने ( पाहन ) का कार्य, दुख के निवारण को अनुभव करने ( सच्चिकिरिया ) का कार्य, और अलौकिक पवित्र अष्टांगिक मार्ग ( मग्ग ) को विकसित करने ( भावना ) का कार्य ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 166

---

(धम्मपद 165) <<<< पिछला || धम्मपद 166 || अगला >>>> (धम्मपद 167)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 166 - अत्तादत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अत्तदत्तम(1) परत्थेना
bahunapi na hapaye
attadatthamabhinnaya
sadatthapasuto siya.

---

श्लोक 166 : चाहे दूसरे का भला कितना भी बड़ा क्यों न हो, अपने स्वयं के (नैतिक) भले की उपेक्षा न करो। अपने भले को स्पष्ट रूप से समझते हुए, उसे प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करो।

---

1. अत्तदत्तम्: स्वयं का लाभ। टीका के अनुसार, इस संदर्भ में स्वयं के लाभ का अर्थ है मार्ग, फल और निर्वाण। (नोट: उपरोक्त कथन बुद्ध ने अंतर्दृष्टि ध्यान के संदर्भ में किया था।)

---

थेरा अट्टादत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अट्टादत्था के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (166) कहा।

जब बुद्ध ने घोषणा की कि वे चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु(2) चिंतित हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें; इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। परन्तु अत्तदत्त बुद्ध के पास नहीं गए और बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करने का संकल्प लेकर ध्यान साधना में लगे रहे। अन्य भिक्षु उन्हें समझ नहीं पाए और उन्हें बुद्ध के पास ले गए तथा कहा, “आदरणीय गुरु, यह भिक्षु हमारी तरह आपका प्रेम और आदर नहीं करता प्रतीत होता; यह तो एकांत में ही रहता है।” तब थेरा ने उन्हें समझाया कि वह बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे और यही एकमात्र कारण था कि वे बुद्ध के पास नहीं आए थे।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, जो मुझसे प्रेम करते हैं और मेरा आदर करते हैं, उन्हें अत्तदत्त के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और धूप चढ़ाने और मेरे दर्शन करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं; आप मुझे प्रणाम केवल मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म, अर्थात् लोकउत्तरा धम्म का अभ्यास करके ही कर रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 166 : चाहे दूसरे का भला कितना भी बड़ा क्यों न हो, अपने स्वयं के (नैतिक) भले की उपेक्षा न करो। अपने भले को स्पष्ट रूप से समझते हुए, उसे प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करो।

---

प्रवचन के अंत में थेरा अट्टादत्था ने अरहत पद प्राप्त किया।

(2) पुथुज्जन भिक्षु: वे भिक्षु जिन्होंने अभी तक कोई मार्ग प्राप्त नहीं किया है।

बारहवें अध्याय का अंत: स्वयं (अत्तवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अट्टादत्था की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अत्तदत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब बुद्ध ने घोषणा की कि वे चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु चिंतित हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें; इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। परन्तु अत्तदत्त बुद्ध के पास नहीं गए और बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करने का संकल्प लेकर ध्यान साधना में लगे रहे। अन्य भिक्षु उन्हें समझ नहीं पाए और उन्हें बुद्ध के पास ले गए तथा कहा, “आदरणीय, यह भिक्षु हमारी तरह आपसे प्रेम और आदर नहीं करता प्रतीत होता; यह तो एकांत में ही रहता है।” तब आदरणीय ने उन्हें समझाया कि वे बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे और यही एकमात्र कारण था कि वे बुद्ध के पास नहीं आए थे।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं, जो मुझसे प्रेम करते हैं और मेरा आदर करते हैं, उन्हें अत्तदत्त के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती चढ़ाने और मेरे दर्शन करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं; आप मुझे प्रणाम केवल मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म, अर्थात् लोकउत्तरा धम्म का अभ्यास करके ही कर रहे हैं।”

प्रवचन के अंत में, पूज्य अट्टादत्था ने अरहत पद प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 166)

बहुना अपि परत्थेन अत्तदत्तं न हापये ;
अत्तदत्तं अभिनयाय सदत्थपसुतो सिया

बहुना अपि : अधिकता के कारण; परथेना : दूसरों की सेवा; अट्टदत्तम् [ अट्टदत्त ]: किसी की अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए लाभ; न हापये : बाधा मत डालो; अट्टदत्तः [ अट्टदत्त ]: स्वयं के लिए लाभ; अभिनयाय : पूरी तरह से समझा जाना चाहिए; सदत्थपसुतो सिया : (इसलिए) अपने स्वयं के आध्यात्मिक हित के प्रवर्तक बनें

दूसरों की सेवा में लगे रहने के चक्कर में व्यक्ति को अपनी आध्यात्मिक प्रगति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अपने आध्यात्मिक स्वार्थ के प्रति पूर्णतः सजग रहें और अपने उच्चतर लक्ष्यों को बढ़ावा दें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 166)

अतदत्तं : कल्याण । बाह्य सम्मान के लिए व्यक्तिगत पुण्य प्राप्ति का त्याग नहीं करना चाहिए।

इस श्लोक का यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि हमें निस्वार्थ भाव से दूसरों के कल्याण के लिए काम नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने निस्वार्थ सेवा की अत्यधिक प्रशंसा की है।

यहां 'कल्याण' से तात्पर्य व्यक्ति के अंतिम लक्ष्य, अर्थात् निर्वाण से है।

निर्वाण क्या है? इस सरल और सहज प्रश्न के उत्तर में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं; लेकिन इनसे समस्या स्पष्ट होने के बजाय और अधिक उलझ गई है। इस प्रश्न का एकमात्र तर्कसंगत उत्तर यही है कि इसका पूर्ण और संतोषजनक उत्तर शब्दों में देना संभव नहीं है, क्योंकि मानव भाषा परम सत्य या निर्वाण के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करने में असमर्थ है। भाषा का निर्माण और उपयोग मनुष्यों द्वारा अपनी इंद्रियों और मन द्वारा अनुभव की गई चीजों और विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। परम सत्य जैसा अलौकिक अनुभव इस श्रेणी में नहीं आता। इसलिए उस अनुभव को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हो सकते, ठीक वैसे ही जैसे मछली के पास ठोस भूमि के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं थे। कछुए ने अपने मित्र मछली से कहा कि वह (कछुआ) अभी-अभी जमीन पर टहलने के बाद झील में लौटा है। मछली ने कहा, 'ज़रूर, तुम्हारा मतलब तैरने से है।' कछुए ने समझाने की कोशिश की कि ज़मीन पर तैरना संभव नहीं है, वह ठोस है और उस पर चला जाता है। लेकिन मछली ने ज़ोर देकर कहा कि ऐसी कोई चीज़ हो ही नहीं सकती, वह उसकी झील की तरह तरल होनी चाहिए, जिसमें लहरें हों और वहाँ गोता लगाकर तैरा जा सकता हो।

आइए मूल पाली ग्रंथों में पाए जाने वाले निर्वाण की कुछ परिभाषाओं और विवरणों पर विचार करें:

'यह उस 'प्यास' ( तन्हा ) का पूर्ण रूप से समाप्त होना है, उसे त्याग देना, उसका परित्याग करना, उससे मुक्ति पाना, उससे वैराग्य प्राप्त करना है।'

'सभी बद्ध चीजों को शांत करना, सभी दोषों का त्याग करना, प्यास का बुझना, वैराग्य, समाप्ति, निर्वाण।'

'हे भिक्षुओं, परम सत्य ( असंखत , बिना शर्त) क्या है? हे भिक्षुओं, यह इच्छा का नाश ( रागक्खयो ), घृणा का नाश ( दोसक्खयो ), और भ्रम का नाश ( मोहक्खयो ) है। हे भिक्षुओं, यही परम सत्य कहलाता है।'

'हे राधा, प्यास का नाश होना ही निर्वाण है।'

'हे भिक्षुओं, चाहे जो भी वस्तुएँ सशर्त हों या निर्शर्त, उनमें वैराग्य ( विराग ) सर्वोच्च है।'

अर्थात्, अहंकार से मुक्ति, प्यास का नाश, आसक्ति का जड़ से उखाड़ना, निरंतरता का विच्छेद, प्यास का अंत ( तण्हा ), वैराग्य, समाप्ति, निर्वाण।

'यहाँ ठोसता, तरलता, ऊष्मा और गति के चार तत्वों का कोई स्थान नहीं है; लंबाई और चौड़ाई, सूक्ष्म और स्थूल, अच्छा और बुरा, नाम और रूप की धारणाएँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं; न तो यह लोक, न ही दूसरा लोक, न आना, न जाना, न रुकना, न मृत्यु, न जन्म, न ही इंद्रिय-विषय पाए जाते हैं।'

यह सोचना गलत है कि निर्वाण भोग-विलास के निषेचन का स्वाभाविक परिणाम है। निर्वाण किसी भी चीज़ का परिणाम नहीं है। यदि यह परिणाम होता, तो यह किसी कारण से उत्पन्न प्रभाव होता। यह संखत होता, 'उत्पन्न' और 'परिबद्ध'। निर्वाण न तो कारण है और न ही प्रभाव। यह कारण और प्रभाव से परे है। सत्य न तो परिणाम है और न ही प्रभाव। यह ध्यान या समाधि जैसी किसी रहस्यमय, आध्यात्मिक मानसिक अवस्था की तरह उत्पन्न नहीं होता ।

अध्याय 13. लोकवग्गा: विश्व (167-178)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 167

---

(धम्मपद 166) <<<< पिछला ll धम्मपद 167 ll अगला >>>> (धम्मपद 168 और 169)

---

अंतर्वस्तु

1.1डॉ माया टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण
1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 167 - दाहरभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Hinam dhammam na seveyya
pamadena na samvase
micchaditthim na seveyya
na siya lokavaddhano.

---

श्लोक 167 : नीच मार्गों का अनुसरण न करो, लापरवाही में न जियो, गलत विचारों को न अपनाओ, संसार (शाब्दिक रूप से, दुनिया) को लंबा करने वाले मत बनो।

---

एक युवा भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक युवा भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (167) कहा।
एक बार एक युवा भिक्षु एक वृद्ध भिक्षु के साथ विशाखा के घर गया। चावल का दलिया खाने के बाद, वृद्ध भिक्षु युवा भिक्षु को विशाखा के घर छोड़कर कहीं और चले गए। विशाखा की पोती युवा भिक्षु के लिए पानी छान रही थी, और जब उसने बड़े बर्तन में अपना प्रतिबिंब देखा तो वह मुस्कुरा उठी। उसे मुस्कुराते हुए देखकर युवा भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया। जब उसने देखा कि युवा भिक्षु उसे देख रहा है और मुस्कुरा रहा है, तो उसे गुस्सा आ गया और वह क्रोधित होकर बोली, "तुम, मुंडे हुए सिर वाले! मुझ पर क्यों मुस्कुरा रहे हो?" युवा भिक्षु ने कहा, "तुम स्वयं मुंडे हुए सिर वाली हो; तुम्हारे माता-पिता भी मुंडे हुए सिर वाले हैं!" इस प्रकार, दोनों में झगड़ा हुआ, और वह लड़की रोते हुए अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा ने आकर युवा भिक्षु से कहा, "कृपया मेरी पोती पर क्रोधित न हों। लेकिन, एक भिक्षु अपने बाल मुंडवाता है, अपने हाथों और पैरों के नाखून कटवाता है, और कटे हुए टुकड़ों से बने वस्त्र पहनकर बिना किनारे वाले भिक्षापात्र के साथ भिक्षा मांगने जाता है। इस युवती ने जो कहा, वह एक तरह से बिल्कुल सही है, है ना?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "यह सच है, लेकिन इस बात पर उसे मुझे क्यों बुरा-भला कहना चाहिए?" इसी समय, बड़े भिक्षु वापस आ गए; लेकिन विशाखा और बड़े भिक्षु दोनों ही युवा भिक्षु और युवती को शांत करने में असफल रहे।
इसके तुरंत बाद, बुद्ध वहाँ पहुँचे और उन्हें झगड़े के बारे में पता चला। बुद्ध जानते थे कि युवा भिक्षु के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। फिर, युवा भिक्षु को अपनी बातों के प्रति अधिक जागरूक करने के लिए, उन्होंने मानो उसका पक्ष लिया और विशाखा से कहा, "विशाखा, तुम्हारी पोती मेरे बेटे को केवल इसलिए मुंडा हुआ क्यों कह रही है क्योंकि उसने अपना सिर मुंडवाया है? आख़िरकार, उसने मेरे संघ में प्रवेश करने के लिए ही तो अपना सिर मुंडवाया था, है ना?"
ये शब्द सुनकर युवा भिक्षु घुटनों के बल बैठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और बोला, "आदरणीय गुरुदेव! केवल आप ही मुझे समझते हैं; न तो मेरे गुरु और न ही मठ के महान दानदाता मुझे समझते हैं।" बुद्ध जानते थे कि भिक्षु उस समय ग्रहणशील अवस्था में था, इसलिए उन्होंने कहा, "इंद्रिय सुख की इच्छा से मुस्कुराना नीच है; नीच विचार रखना उचित नहीं है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 167 : नीच मार्गों का अनुसरण न करो, लापरवाही में न जियो, गलत विचारों को न अपनाओ, संसार (शाब्दिक रूप से, दुनिया) को लंबा करने वाले मत बनो।

---

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार एक युवा भिक्षु एक वृद्ध भिक्षु के साथ विशाखा के घर गए। चावल का दलिया खाने के बाद, वृद्ध भिक्षु युवा भिक्षु को विशाखा के घर छोड़कर कहीं और चले गए। विशाखा की पोती युवा भिक्षु के लिए पानी छान रही थी, और जब उसने बड़े बर्तन में अपना प्रतिबिंब देखा तो वह मुस्कुरा उठी। उसे इस तरह मुस्कुराते देख युवा भिक्षु ने भी उसकी ओर देखा और मुस्कुरा दिया। जब उसने देखा कि युवा भिक्षु उसे देख रहा है और मुस्कुरा रहा है, तो उसे गुस्सा आ गया और वह क्रोधित होकर बोली, "हे मुंडे सिर वाले! मुझ पर क्यों मुस्कुरा रहे हो?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "तुम स्वयं मुंडे सिर वाली हो: तुम्हारी माँ और तुम्हारे पिता भी मुंडे सिर वाले हैं!" इस प्रकार, दोनों में झगड़ा हुआ, और वह युवती रोते हुए अपनी दादी के पास चली गई। विशाखा आईं और युवा भिक्षु से बोलीं, "कृपया मेरी पोती पर क्रोधित न हों। लेकिन, एक भिक्षु अपने बाल मुंडवाता है, अपने हाथों और पैरों के नाखून कटवाता है, और कटे हुए टुकड़ों से बने वस्त्र पहनकर भिक्षापात्र लेकर भिक्षा मांगने जाता है। इस युवती ने जो कहा वह बिल्कुल सही था।" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "यह सच है, लेकिन इस बात पर वह मुझे क्यों बुरा-भला कह रही है?" इसी समय, वृद्ध भिक्षु लौट आए; लेकिन विशाखा और वृद्ध भिक्षु दोनों ही झगड़ रहे युवा भिक्षु और युवती को शांत करने में असफल रहे।

इसके तुरंत बाद, बुद्ध वहाँ पहुँचे और उन्हें झगड़े के बारे में पता चला। बुद्ध जानते थे कि युवा भिक्षु के लिए सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त करने का समय आ गया है। तब, युवा भिक्षु को अपनी बातों के प्रति अधिक ग्रहणशील बनाने के लिए, उन्होंने मानो उसका पक्ष लिया और विशाखा से कहा, "विशाखा, आपकी पोती मेरे पुत्र को केवल इसलिए मुंडा हुआ क्यों कह रही है क्योंकि उसने अपना सिर मुंडवाया है? आख़िरकार, उसने मेरे संघ में प्रवेश करने के लिए ही तो अपना सिर मुंडवाया था?" ये शब्द सुनकर युवा भिक्षु घुटनों के बल बैठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय! केवल आप ही मुझे समझते हैं: न तो मेरे गुरु और न ही मठ के महान दानदाता मुझे समझते हैं।" बुद्ध जानते थे कि भिक्षु उस समय ग्रहणशील अवस्था में था, इसलिए उन्होंने कहा, "इंद्रिय सुख से मुस्कुराना उचित नहीं है और नीच विचार रखना अनुचित है।" प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति मोक्ष प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद

हीनं धम्मं न सेवेया पमादेन न सवसे

मिच्छादिथिं न सेवैया लोकवधनो न सिया

हिनां [ हिना ]: भ्रष्ट; धम्मम् [ धम्म ]: जीवन के तरीके, लक्षण; ना सेवेय्या : खेती मत करो; पमादेना : आलस्यपूर्वक; न संवसे : अपना जीवन मत जियो; मिच्छादिथिः [ मिच्छादिथि ]: झूठे विचार; ना सेवैया : की ओर मत मुड़ो; लोकवन्धनो [ लोकवन्धन ]: संसार का कृषक; न सिया : मत बनो

भ्रष्ट मार्गों और नीच इच्छाओं को बढ़ावा देने वाली प्रथाओं का सहारा न लें। आलसी जीवन न जिएं। झूठे विचारों वाले लोगों से संगति न रखें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 167)

मिच्छादित्तिं न सेवेय्या : झूठे विचारों को मत अपनाओ। ये विचार बुद्ध की शिक्षाओं—धर्म—के विरुद्ध हैं। झूठे विचारों को अपनाने वालों को झूठे मार्ग पर चलने वाला कहा जा सकता है— मिच्छा-मग्ग जो अत्थांगिक है ।

अष्टांगिक मार्ग, अर्थात्

गलत दृष्टिकोण ( मिच्छा-दिठ्ठी )

गलत विचार ( मिच्छा-संकप्पा ):

ग़लत भाषण ( मिच्चा-वाका ):

गलत शारीरिक क्रिया ( मिच्छा-कम्मंता ):

गलत आजीविका ( मिच्छा-आजीव ):

गलत प्रयास ( मिच्चा-वायम ):

गलत ध्यान ( मिच्छा-सति ):

गलत एकाग्रता ( मिच्छा-समाधि )।

जिस प्रकार अष्टांग मार्ग ( सम्मा-मग्ग ) में आठ कड़ियाँ शामिल हैं, उसी प्रकार यहाँ भी आठ कड़ियाँ मानसिक संरचनाओं ( संखार-खंड ) के समूह में आती हैं। कड़ियाँ 2, 6, 7 और 8 कर्मिक रूप से अस्वस्थ चेतना की प्रत्येक अवस्था से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं। अक्सर 3, 4 या 5 भी मौजूद होती हैं, कभी-कभी कड़ी 1 भी।

विशेष टिप्पणी : बुद्ध के समय में जिन धार्मिक व्यक्तियों के मत गलत थे, उनमें से छह बहुत प्रसिद्ध हैं।

उनके नाम और उनके द्वारा प्रतिपादित प्रणालियाँ नीचे दी गई हैं:

पुराण कस्सप - अकिरिया वडा (अक्षमता का सिद्धांत);
अजिता केसकंबाला - उचेदा वडा (विनाशवाद का भौतिकवादी सिद्धांत);
पकुडा कक्कायण - अक्रुन्क्तत्वदा (शून्यवाद);
मक्खलि-गोसाल — दैव वदा (भाग्यवाद);
संजय बेलाथिपुत्त अमरविक्खेपा वादे - अनिश्चिता वादा (तर्कसंगत संशयवाद का सिद्धांत);
निगंठनाथपुत्त - चातुयामा संवर वदा (अहिंसा का सिद्धांत)।
इन छह शिक्षकों में से, चार, अर्थात्, पुराण कस्सप , अजिता केसकंबाला , पाकुडा कच्चायन और संजय बेलाथिपुत्त के बारे में जानकारी दीघनिकाय के समन्नफल सुत्त में दी गई है । अन्य दो के संबंध में जानकारी जैन और बौद्ध साहित्य दोनों में दी गई है।
इन छह शिक्षकों की शिक्षाओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:
अस्थिवाद (आत्मा और परलोक के अस्तित्व में विश्वास):
नास्तिक वाद (आत्मा और परलोक में तथा अच्छे और बुरे कर्मों के परिणामों में अविश्वास)।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 168,169

---

(धम्मपद 167) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 168 और 169 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 170)

---

अंतर्वस्तु
1धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु
1.1डॉ म्या टिन संस्करण
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 168 और 169 - शुद्धोदन वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Uttitthe nappamajjeyya
धम्मम सुकारितम(1) देखभाल
धम्मकारी सुखम सेती
asmim loke paramhi ca.
Dhammam care sucaritarm
na nam duccaritam(2) care
धम्मकारी सुखम सेती
asmim loke paramhi ca.

---

श्लोक 168 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) की उपेक्षा न करो; उचित धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो। जो उचित अभ्यास का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

---

श्लोक 169 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो; अनुचित अभ्यास का पालन मत करो। जो धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

---

1. धम्मं सुचरितम्: उचित अभ्यास या मार्ग। टीका कहती है कि यहाँ तपस्वी के लिए उचित अभ्यास का अर्थ है भिक्षायात्रा के दौरान एक के बाद एक घर में भिक्षा ग्रहण करना, सिवाय उन स्थानों के जहाँ जाना उचित न हो (जैसे कि वेश्या का घर)।
2. ना नाम दुकारितम: अनुचित व्यवहार। यहाँ इसका अर्थ है उपरोक्त नियमों का पालन न करना।

---

राजा सुद्धोदना की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने गौतम बुद्ध के पिता राजा सुद्धोदन के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (168) और (169) का उच्चारण किया।

जब बुद्ध पहली बार कपिलवस्तु लौटे, तो वे निग्रोधरमा मठ में ठहरे। वहाँ उन्होंने अपने सगे-संबंधियों को धम्म का उपदेश दिया। राजा सुद्धोदन को लगा कि गौतम बुद्ध, जो उनके अपने पुत्र थे, किसी और स्थान पर नहीं जाएँगे, बल्कि अगले दिन भिक्षा ग्रहण करने के लिए उनके महल में अवश्य आएँगे; परन्तु उन्होंने बुद्ध को भिक्षा ग्रहण करने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित नहीं किया। फिर भी, अगले दिन उन्होंने बीस हजार भिक्षुओं के लिए भिक्षा भोजन तैयार किया। उस सुबह बुद्ध सभी बुद्धों की परंपरा के अनुसार भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने निकले।

राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा ने, उनके संसार त्यागने से पहले, महल की खिड़की से बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा। उन्होंने अपने ससुर, राजा सुद्धोदन को इसकी सूचना दी, और राजा शीघ्र ही बुद्ध के पास गए। राजा ने बुद्ध से कहा कि शाही क्षत्रिय वंश के किसी सदस्य के लिए घर-घर जाकर भिक्षा मांगना लज्जाजनक है। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया कि सभी बुद्धों की यह प्रथा रही है कि वे घर-घर जाकर भिक्षा मांगें, इसलिए उनके लिए भी इस परंपरा को निभाना उचित है।

---

श्लोक 168 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) की उपेक्षा न करो; उचित धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो। जो उचित अभ्यास का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

---

श्लोक 169 : धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करो; अनुचित अभ्यास का पालन मत करो। जो धम्म (मार्ग/अभ्यास) का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

---

प्रवचन के अंत में गौतम बुद्ध के पिता ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

राजा सुद्धोदना की कहानी

बरगद के वन में निवास करते समय, बुद्ध ने अपने पिता के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कुछ समय बाद बुद्ध ने कपिल नगर की अपनी पहली यात्रा की, और जब वे वहाँ पहुँचे, तो उनके सगे-संबंधी उनका स्वागत करने के लिए उमड़ पड़े। उस अवसर पर, अपने सगे-संबंधियों के अत्यधिक अहंकार को तोड़ने के लिए, उन्होंने अलौकिक मानसिक शक्ति से आकाश में रत्नों का एक आश्रम बनाया, और उस आश्रम में घूम-घूम कर धर्म का उपदेश दिया। उनके सगे-संबंधियों के हृदय तुरंत श्रद्धा से भर गए, और महान राजा सुद्धोदन से लेकर सभी ने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद उनके सगे-संबंधियों की सभा पर वर्षा हुई, जिसके विषय में लोगों के बीच चर्चा हुई। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मेरे सगे-संबंधियों की सभा पर वर्षा हुई है: ऐसा ही मेरे पिछले जन्म में भी हुआ था।" ऐसा कहकर उन्होंने वेस्सन्तर जातक कथा सुनाई। उनके धर्मोपदेश को सुनकर उनके रिश्तेदार बिना बुद्ध को निमंत्रण दिए ही चले गए। इसी प्रकार, राजा के मन में यह विचार आया, "यदि मेरा पुत्र मेरे घर नहीं आएगा, तो वह कहाँ जाएगा?", फिर भी वह उसे आमंत्रित किए बिना ही घर लौट गया। परन्तु जब वह राजमहल पहुँचा, तो उसने बीस हजार भिक्षुओं के लिए चावल का दलिया और अन्य प्रकार के भोजन तैयार करवाए और उनके लिए बैठने की व्यवस्था भी करवाई।

अगले दिन, जब बुद्ध भिक्षा लेने के लिए नगर में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या पूर्व के बुद्ध अपने पिता के नगर में प्रवेश करते ही सीधे अपने सगे-संबंधियों के घर जाते थे, या वे नियमित रूप से घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे?" यह जानकर कि वे हमेशा घर-घर जाते थे, बुद्ध ने भी पहले घर से शुरुआत की और घर-घर जाकर भिक्षा मांगी। उन्होंने यह बात राजा को बताई। राजा जल्दी से अपने निवास से बाहर आए, जाते समय अपना वस्त्र ठीक किया और बुद्ध के समक्ष प्रणाम करते हुए बोले, "पुत्र, तुम मुझे क्यों अपमानित कर रहे हो? तुम्हें घर-घर जाकर भिक्षा मांगते देखकर मैं लज्जित हो रहा हूँ। इसी नगर में जहाँ तुम सोने के रथ में यात्रा करते थे, वहाँ सोने की पालकी में घर-घर जाकर भिक्षा मांगना अनुचित है। तुम मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो?" "महाराज, मैं आपको लज्जित नहीं कर रहा हूँ: मैं तो बस अपने वंश की परंपरा का पालन कर रहा हूँ।" "परन्तु, मेरे प्रिय पुत्र, क्या मेरे वंश में भिक्षा माँगकर जीविका

कमाना एक परंपरा है?" "नहीं, महाराज, यह आपके वंश की परंपरा नहीं है। परन्तु यह मेरे वंश की परंपरा है, क्योंकि असंख्य बुद्धों ने घर-घर जाकर भिक्षा माँगी है और इसी प्रकार अपनी जीविका अर्जित की है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 168)

उत्तिष्ठे नप्पमज्जेय धम्मं सुचरितं देखभाल

धम्मचारी अस्मि लोके परमहि च सुखं सेति

उत्तित्ते : वास्तविकता को जागो; नप्पमज्जेय्या : भ्रमित मत हो; धम्मं [ धम्म ]: वास्तविकता में; सुचरितं केयर : सही ढंग से जियो; धम्मचारी : यथार्थवादी जीवन जीने वाला; अस्मिं लोके : इस दुनिया में; परम्हि च : और अगली दुनिया में; सुखं [ सुख ]: आराम से; सेति : जीवन

वास्तविकता को जागो: भ्रम में मत रहो। वास्तविकता के अनुसार जीवन जियो। यथार्थवादी व्यक्ति इस दुनिया में और अगली दुनिया में सुखी रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 169)

धम्मं सुचरितं केयर नं दुच्चैरितं न केयर

धम्मचारी अस्मि लोके परमहि च सुखं सेति

धम्मं [ धम्म ]: वास्तविकता के भीतर; सुचरितं देखभाल : सही ढंग से जीना; नं : वह; दुच्चरितं [ दुच्चरित ]: गलत तरीके से जीना; न देखभाल : न जीना; धम्मचारि : जो यथार्थवादी जीवन जीता है; अस्मिं लोके : इस दुनिया में; परम्हि च : और अगली दुनिया में; सुखं [ सुख ]: आराम से; सेति : जीवन जीता है

धम्म का पूर्णतया अभ्यास करो। इसका गलत या दोषपूर्ण तरीके से अभ्यास मत करो। जो व्यक्ति उचित ढंग से शिक्षा का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक दोनों में शांति और सुख का अनुभव करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 168-169)

राजा सुद्धोदन : यह खबर वृद्ध राजा सुद्धोदन तक पहुँची कि बुद्ध राजगृह में निवास कर रहे हैं और धर्म का प्रचार कर रहे हैं, और अपने ज्ञानी पुत्र के दर्शन करने की उनकी उत्सुकता और भी बढ़ गई। उन्होंने नौ बार अपने नौ दरबारी भेजे, जिनमें से प्रत्येक के साथ एक बड़ा समूह था, ताकि बुद्ध को कपिलवस्तु में आमंत्रित किया जा सके। उनकी अपेक्षा के विपरीत, उन सभी ने धर्म का उपदेश सुना और अर्हतत्व प्राप्त करके संघ में प्रवेश किया। चूंकि अर्हत सांसारिक चीजों के प्रति उदासीन थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को यह संदेश नहीं दिया। निराश राजा ने अंततः एक और वफादार दरबारी, कालुदायी को भेजा, जो बुद्ध का बचपन का साथी था। अन्य दरबारियों की तरह, उसे भी अर्हतत्व प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और वह संघ में शामिल हो गया। लेकिन, दूसरों के विपरीत, उसने बुद्ध को यह संदेश दिया और उन्हें अपने वृद्ध पिता से मिलने के लिए राजी किया। चूंकि यात्रा के लिए मौसम सबसे उपयुक्त था, इसलिए बुद्ध अपने शिष्यों के एक बड़े दल के साथ धीरे-धीरे यात्रा करते हुए रास्ते में धम्म का प्रचार करते रहे और उचित समय पर दो महीने में कपिलवस्तु पहुंचे। उनके रहने की व्यवस्था शाक्य निग्रोध उद्यान में की गई। अहंकारी वृद्ध शाक्य मन ही मन सोच रहे थे, "यह हमारा छोटा भाई, हमारा भतीजा, हमारा पोता है," और उन्होंने युवा राजकुमारों से कहा, "आप उन्हें प्रणाम कीजिए; हम आपके पीछे बैठेंगे।" जब वे बिना उचित सम्मान दिए बैठ गए, तो उन्होंने वायु में उठकर अपने शरीर से जल और ऊष्मा निकालकर उनके अहंकार को चकनाचूर कर दिया। इस अद्भुत घटना को देखकर राजा ने तुरंत उन्हें प्रणाम किया और कहा कि यह उनका तीसरा प्रणाम था। उन्होंने पहली बार उन्हें तब प्रणाम किया था जब उन्होंने शिशु राजकुमार के चरणों को तपस्वी असिता के सिर पर रखा हुआ देखा था, जिनका वे चाहते थे कि बालक आदर करे। उनका दूसरा प्रणाम हल चलाने के उत्सव में हुआ, जब उन्होंने शिशु राजकुमार को पलंग पर पालथी मारकर ध्यान में लीन देखा। तब सभी शाक्य उन्हें उचित सम्मान देने के लिए विवश हो गए।

तब बुद्ध आकाश से अवतरित हुए और उनके लिए तैयार आसन पर विराजमान हुए। उनके विनम्र संबंधी उत्सुकतापूर्वक उनके उपदेश सुनने के लिए बैठ गए। उसी क्षण शाक्य परिजनों पर अचानक वर्षा होने लगी। इस विचित्र घटना के कारण उनमें आपस में चर्चा हुई। तब बुद्ध ने वेस्सन्तरा जातक का उपदेश दिया और बताया कि पिछले जन्म में भी उनके परिजनों के समक्ष ऐसी ही घटना घटी थी। शाक्य प्रवचन से प्रसन्न हुए और वे यह जाने बिना चले गए कि बुद्ध और शिष्यों को दोपहर के भोजन के लिए आमंत्रित करना उनका कर्तव्य था। राजा को बुद्ध को आमंत्रित करने का विचार नहीं आया, यद्यपि उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मेरा पुत्र मेरे घर नहीं आएगा, तो वह कहाँ जाएगा?" घर पहुँचकर उन्होंने उनके आगमन की प्रतीक्षा में कई प्रकार के भोजन तैयार किए।

अगले दिन दोपहर के भोजन के लिए कोई विशेष निमंत्रण न होने के कारण, बुद्ध और उनके शिष्य अपने नियमित भिक्षाटन के लिए तैयार हो गए। आगे बढ़ने से पहले उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या पूर्वज ऋषि अपने सगे नगर में प्रवेश करते ही सीधे उनके घरों में प्रवेश करते थे, या वे नियमित रूप से घर-घर जाकर भिक्षा मांगते थे?" यह जानकर कि वे ऐसा ही करते थे, बुद्ध कपिलवस्तु की गलियों में भिक्षा मांगने चले गए। बुद्ध के इस प्रतीत होने वाले अपमानजनक आचरण के बारे में उनकी बहू यशोदरा से सुनकर, व्याकुल होकर, वह बुद्ध के पास जल्दी से पहुंची और उन्हें प्रणाम करते हुए बोली, "पुत्र, तुम मुझे क्यों अपमानित कर रहे हो? तुम्हें भिक्षा मांगते देखकर

मैं लज्जित हो रही हूँ। क्या तुम्हारे लिए, जो सोने की पालकी में यात्रा करते थे, इस नगर में भिक्षा मांगना उचित है? तुम मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो?"

"हे महाराज, मैं आपको लज्जित नहीं कर रहा हूँ! मैं अपने वंश की परंपरा का पालन कर रहा हूँ," बुद्ध ने राजा को आश्चर्यचकित करते हुए उत्तर दिया। "परन्तु, हे पुत्र, क्या मेरे वंश में भिक्षा माँगकर जीविका चलाना प्रथा है? निश्चय ही हमारा वंश महासम्मत का योद्धा वंश है, और आज तक किसी योद्धा ने भिक्षा नहीं माँगी।" "हे महाराज, यह तो आपके राजवंश की प्रथा है। परन्तु यह मेरे बुद्ध वंश की प्रथा है। हजारों ऋषियों ने भिक्षा माँगकर जीवन यापन किया है।" सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने राजा को यह उपदेश दिया: "भिक्षा माँगने में लापरवाही न करें। धर्मपरायण जीवन व्यतीत करें। धर्मपरायण इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं।" यह सुनकर राजा ने उपदेश को आत्मसात कर लिया और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त कर ली। इसके तुरंत बाद, उन्होंने बुद्ध का कुंड लिया और उन्हें तथा उनके शिष्यों को महल में ले जाकर उत्तम भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने उन्हें फिर से इस प्रकार उपदेश दिया: "धर्मपरायण जीवन जियो, भ्रष्ट जीवन नहीं। धर्मपरायण लोग इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहते हैं।"

इसके बाद राजा ने संतत्व की दूसरी अवस्था ( सकदागामी ) और प्रजापति गौतमी ने संतत्व की पहली अवस्था ( सोतापत्ति ) प्राप्त की। बाद में जब बुद्ध को बताया गया कि राजा अपने पुत्र की कठोर तपस्या के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त किए बिना मृत्यु को मानने से इनकार कर रहे हैं, तो बुद्ध ने धम्मपाल जातक का उपदेश देकर यह दर्शाया कि पिछले जन्म में भी उन्होंने अपने पुत्र की मृत्यु को मानने से इनकार कर दिया था, जबकि उन्हें अस्थियों का ढेर दिखाया गया था। इस समय उन्होंने संतत्व की तीसरी अवस्था ( अनागामी ) प्राप्त की। अपनी मृत्यु शैय्या पर राजा ने बुद्ध से अंतिम बार धम्म सुना और अर्हतत्व प्राप्त किया। सात दिनों तक मोक्ष के आनंद का अनुभव करने के बाद, जब बुद्ध लगभग चालीस वर्ष के थे, तब वे एक गृहस्थ अर्हत के रूप में परलोक विदा हो गए। राजा सुद्धोदन को अपने पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ से अत्यंत स्नेह था। कुछ परंपराओं में राजा द्वारा देखे गए सात सपनों का उल्लेख है, जो राजकुमार सिद्धार्थ द्वारा चार शगुन देखने और गृहस्थ जीवन का त्याग करने से ठीक पहले देखे गए थे।

ये हैं वो सपने:

(1) इंद्र के समान एक विशाल शाही ध्वज के चारों ओर असंख्य लोगों की भीड़ जमा हो गई, और उन्होंने उसे उठाकर और ऊपर लहराते हुए कपिलवस्तु से होते हुए आगे बढ़े, और अंत में पूर्वी द्वार से शहर से बाहर चले गए:

(2) राजकुमार सिद्धार्थ विशाल हाथियों द्वारा खींचे गए शाही रथ पर सवार होकर दक्षिणी द्वार से गुजरे:

(3) राजकुमार एक अत्यंत भव्य चार घोड़ों वाले रथ में सवार होकर फिर पश्चिमी द्वार से आगे बढ़े:

(4) एक शानदार रत्नजड़ित चक्र हवा में उड़ता हुआ उत्तरी द्वार से होकर गुजरा:

(5) कपिलवस्तु के चार महान राजमार्गों के मध्य में बैठा राजकुमार, एक बड़ी गदा धारण किए हुए, उससे एक बड़े ढोल पर प्रहार कर रहा था:

(6) राजकुमार कपिलवस्तु के केंद्र में स्थित एक ऊंचे टॉवर के शीर्ष पर बैठा था, और उसने वहां आए असंख्य जीव-जंतुओं द्वारा एकत्रित किए गए अनगिनत रत्नों को स्वर्ग के चारों दिशाओं में बिखेर दिया था;

(7) कपिलवस्तु नगर के बाहर, बहुत दूर नहीं, छह पुरुषों ने ऊँची आवाज़ में विलाप किया और रोए, और अपने हाथों से अपने सिर के बाल नोचकर मुट्ठी भर ज़मीन पर फेंक दिए।

जब राजा के ब्राह्मण सलाहकारों को स्वप्न देखने के लिए बुलाया गया, तो उन्होंने राजा के स्वप्नों की व्याख्या करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। तब एक देवता ब्राह्मण के वेश में महल के द्वार पर प्रकट हुए और कहा कि वे राजा के स्वप्नों की व्याख्या कर सकते हैं। जब राजा ने उनसे संपर्क किया और स्वप्नों की व्याख्या करने का अनुरोध किया, तो उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की:

(1) पहले सपने के अनुसार: राजकुमार जल्द ही अपनी वर्तमान स्थिति को त्याग देगा, और असंख्य देवताओं से घिरा हुआ, वह शहर से निकलकर संन्यासी बन जाएगा:

(2) दूसरे सपने के अनुसार: राजकुमार अपना घर छोड़कर बहुत जल्द ज्ञान और मन की दस शक्तियों को प्राप्त कर लेगा:

(3) तीसरे सपने के अनुसार: राजकुमार ज्ञान प्राप्त करने के बाद चार निर्भीकताओं को प्राप्त करेगा:

(4) चौथे सपने के अनुसार: राजकुमार देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिए अच्छे उपदेश के पहिये को गतिमान करेगा:

(5) पाँचवें सपने के अनुसार: राजकुमार के बुद्ध बनने और धम्म के चक्र को गतिमान करने के बाद, उसके उपदेश की ध्वनि उच्चतम स्वर्गों तक फैलेगी:

(6) छठे सपने के अनुसार: ज्ञान प्राप्ति के बाद वह देवताओं, मनुष्यों और आठ प्रकार के प्राणियों के हित में धम्म के रत्नों को बिखेरेगा।

(7) सातवें सपने ने उन छह विधर्मी शिक्षकों के दुख और पीड़ा को दर्शाया जिन्हें राजकुमार ज्ञान प्राप्त करने के बाद पराजित और बेनकाब करेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 170

———————————————————

(धम्मपद 168 और 169) <<<< पिछला|| धम्मपद170 ||अगला >>>> (धम्मपद171)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 170 - पंचसताविपासकभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

यथा पब्बुलकम पासे
यथा पासे मारसिकम
evam lokam avekkhantam(1)
maccuraja na passati.

---

श्लोक 170 : यदि कोई व्यक्ति संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को उसी प्रकार देखे जैसे कोई बुलबुला या मृगतृष्णा को देखता है, तो मृत्यु का राजा उसे नहीं पाएगा।

---

1. evam jokam avekkhantam: वह व्यक्ति जो संसार को एक ही तरह से देखता है, अर्थात् संसार को एक बुलबुले की तरह क्षणभंगुर और एक मृगतृष्णा की तरह अभौतिक मानता है।

---

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (170) कहा।

एक बार पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु उन्हें बहुत कम लाभ हुआ; अतः वे बुद्ध के पास लौटकर ध्यान का अधिक उपयुक्त विषय माँगने लगे। बुद्ध के पास जाते समय उन्होंने एक मृगतृष्णा देखी और उस पर ध्यान किया। जैसे ही वे मठ के परिसर में प्रवेश कर पाए, एक तूफ़ान आ गया; बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं और ज़मीन पर बुलबुले बन गए जो तुरंत गायब हो गए। उन बुलबुलों को देखकर भिक्षुओं ने मन में विचार किया, "हमारा यह शरीर बुलबुलों के समान नाशवान है", और उन्होंने स्कंधों (खंधों) की अनित्यता को समझा।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश प्रसारित करते हुए उनके दर्शन किए।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 170 : यदि कोई व्यक्ति संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को उसी प्रकार देखे जैसे कोई बुलबुला या मृगतृष्णा को देखता है, तो मृत्यु का राजा उसे नहीं पाएगा।

---

प्रवचन के अंत में, उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, बहुत से भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। परन्तु उन्हें बहुत कम लाभ हुआ, इसलिए वे बुद्ध के पास लौटकर ध्यान के लिए अधिक उपयुक्त विषय माँगने लगे। बुद्ध के पास जाते समय, उन्होंने एक मृगतृष्णा देखी और उस पर ध्यान किया। जैसे ही वे मठ के परिसर में पहुँचे, एक तूफान आ गया: बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं और ज़मीन पर बुलबुले बन गए जो तुरंत गायब हो गए। उन बुलबुलों को देखकर भिक्षुओं ने कहा, "हमारा यह शरीर बुलबुलों की तरह नश्वर है..." और उन्होंने स्कंधों (खन्दों) की अनित्यता को समझ लिया। प्रवचन के अंत में, भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।
बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उन्हें देखा और प्रकाश प्रसारित करते हुए उनके दर्शन किए।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 170)
बुब्बुलकं यथा पससे , मरीचिकां यथा पससे ,
एवं लोकं अवेक्खन्तं मक्कुराजा न पस्सति
बुब्बुलाकाँ [ बुब्बुलाका ]: एक पानी का बुलबुला; यथा : जैसे; पासे : कोई देखता है; मारीसिकाम् [ मारीसिका ]: मृगतृष्णा; एवम् : उस ढंग से; लोकं [ लोका ]: संसार; अवेक्खन्तं [ अवेक्खंता ]: वह व्यक्ति जो देखता है; मैकुराजा : मृत्यु का राजा; न पासति : नहीं देखता
एक बुलबुले को देखो। यह कितना क्षणभंगुर है! एक मृगतृष्णा को देखो। कितना भ्रम है! अगर तुम दुनिया को इस नजरिए से देखोगे, तो मौत का बादशाह भी तुम्हें नहीं देख पाएगा।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 170)
लोकं : संसार। लोक से तात्पर्य संपूर्ण ब्रह्मांड को समाहित करने वाले अस्तित्व के तीन क्षेत्रों से है, अर्थात्
इंद्रियलोक ( कामलोक ), या पांचों इंद्रियों का जगत:
रूपलोक ( रूपलोक ), जो मानसिक विश्राम ( झान ) के चार स्तरों के अनुरूप है :
निराकार जगत ( अरूपलोक ), जो चार मानसिक रिक्तियों ( समापत्ति ) के अनुरूप है।
इंद्रिय जगत में निम्नलिखित शामिल हैं:
नरक ( निरय ),
पशु जगत ( तिराच्छना-योनि ),
भूतलोक ( पेटालोक )
असुर राक्षसों का संसार ( असुर-निकाय ),
मानव जगत ( मनुष्यलोक ) और
छह इंद्रियजन्य दिव्य लोक।
बुब्बुलकं , मरीसिकं : एक बुलबुला, एक मृगतृष्णा। यह श्लोक बौद्ध ध्यान के एक पहलू को प्रकट करता है। ध्यान करने वाला व्यक्ति संसार को एक घटना के रूप में देखता है।
कहीं-कहीं संवेदना की तुलना फव्वारे से और बोध की तुलना मृगतृष्णा से की गई है। संवेदना और बोध अनुभव के मूलभूत तत्व हैं। इन्हें मानसिक रचनाएँ ( चित्त-संस्कार ) कहा जाता है। बोध ( वितक्का ) को शाब्दिक रचना ( वची-संस्कार ) कहा जाता है। जिस संसार को हम अनुभव और कल्पना करते हैं, वह इन क्षणिक मनो-शारीरिक प्रक्रियाओं की रचना है। इसीलिए संसार को फव्वारे या मृगतृष्णा के रूप में देखना आवश्यक है। संसार की शून्यता को इस प्रकार देखने से सभी आसक्ति समाप्त हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 171

———————————————————————

(धम्मपद 170) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 171 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 172)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 171 - अभयराजकुमार वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Etha passathimam lokam
चित्तम राजारथुपमम
yattha bala visidanti
nattbi sango vijanatam.

---

श्लोक 171 : आओ, इस संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को देखो, जो एक अलंकृत राजसी रथ के समान है। मूर्ख इस खन्धों के संसार में भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान इससे आसक्त नहीं रहते।

---

राजकुमार अभय की कहानी
वेलुवन मठ में रहते हुए, बुद्ध ने राजकुमार अभय (अभयराजकुमार) के संदर्भ में, इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया।
एक बार राजकुमार अभय सीमा पर हुए विद्रोह को दबाकर विजयी होकर लौटे। राजा बिम्बिसार उनसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने सात दिनों तक अभय को शासक का शान-शौकत और सम्मान दिया, साथ ही उनके मनोरंजन के लिए एक नर्तकी भी दी। अंतिम दिन, जब नर्तकी बगीचे में राजकुमार और उनके साथियों का मनोरंजन कर रही थी, तभी उसे तीव्र हृदय गति रुकी; वह गिर पड़ी और मौके पर ही उसकी मृत्यु हो गई। राजकुमार को गहरा सदमा लगा और वे बहुत दुखी हुए। दुखी होकर वे सांत्वना पाने के लिए बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उनसे कहा, "हे राजकुमार, जन्म-जन्मांतर के चक्र में तुमने जितने आँसू बहाए हैं, उनका कोई माप नहीं है। यह षट्कोणीय संसार (अर्थात्, खन्धों का संसार) मूर्खों का ही स्थान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 171 : आओ, इस संसार (अर्थात पाँच खन्धों) को देखो, जो एक अलंकृत राजसी रथ के समान है। मूर्ख इस खन्धों के संसार में भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान इससे आसक्त नहीं रहते।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमार अभय की कहानी
वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने राजकुमार अभय (अभयराजकुमार) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, राजकुमार अभय ने सीमावर्ती क्षेत्र में हुए विद्रोह को दबा दिया, जिससे उनके पिता बिम्बिसार इतने प्रसन्न हुए कि जब राजकुमार लौटे, तो राजा ने उन्हें नृत्य और गायन में निपुण एक स्त्री भेंट की और सात दिनों के लिए राज्य का कार्यभार सौंप दिया। तदनुसार, राजकुमार सात दिनों तक घर से बाहर नहीं निकले, बल्कि राजसी वैभव का आनंद लेते हुए भीतर ही रहे। आठवें दिन वे नदी के किनारे स्थित स्नानागार गए और स्नान किया। स्नान करने के बाद, वे अपने आनंद उद्यान में प्रवेश कर गए, राजा के मंत्री संतति की तरह बैठ गए और उस स्त्री को नृत्य और गायन करते देखने लगे। यद्यपि, जैसे ही उसने नृत्य और गायन शुरू किया, ठीक उसी क्षण, राजा के मंत्री संतति की स्त्री की तरह, उसे तीव्र पीड़ा हुई और वहीं उसकी मृत्यु हो गई।
राजकुमार अभय उस स्त्री की मृत्यु से गहरे शोक में डूब गए। तुरंत उनके मन में यह विचार आया, "बुद्ध के सिवा कोई भी मेरे शोक को दूर नहीं कर सकता।" इसलिए वे बुद्ध के पास गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कृपया मेरा शोक दूर करें।" बुद्ध ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, "राजकुमार, इस अनंत जन्म-जन्म चक्र में, इस स्त्री की इस प्रकार मृत्यु की संख्या का कोई हिसाब नहीं है, और न ही आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं का कोई माप है।" यह देखकर कि इस उपदेश से राजकुमार का शोक शांत हो गया है, उन्होंने कहा, "राजकुमार, शोक न करें: केवल अपरिपक्व लोग ही अपने आप को शोक के सागर में डूबने देते हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 171)
यत्थ बाला विशिदन्ति विजानतम सङ्गो नत्थि चित्तं
राजरथुपमं इमं लोकं एथा पस्सथ
यत्था : जिसमें: बाला : अपरिपक्व; विसीदन्ति : डूबकर नष्ट हो जाते हैं; विजानतं [ विजानत ]: वास्तविकता से अवगत लोगों के लिए; संगो [ संग ]: आसक्ति रखने वाले; नत्थि : नहीं है; चित्तं [ चित्त ]: (जैसे) सुशोभित; राजरथूपमं [ राजरथूपम ]: राजसी रथ; इमं लोकं [ लोक ]: यह संसार; एथा : आओ; पसथ : देखो

आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व लोग इस संसार में पूरी तरह डूबे रहते हैं, जिसकी चकाचौंध किसी शाही रथ की सजावट की तरह भ्रामक होती है। वास्तविकता से अवगत लोग इन सांसारिक वस्तुओं से आसक्त नहीं रहते। संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में देखें।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 171)
विज्ञानतं : वे जो वास्तविकता को देखते हैं। बौद्ध धर्म में, धम्म, बुद्ध की शिक्षा, सच्ची वास्तविकता है। बौद्ध धर्म के लिए मूल पाली शब्द धम्म है , जिसका शाब्दिक अर्थ है वह जो इसके सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करने वाले को सहारा देता है और इस प्रकार उसे दुखद अवस्थाओं में गिरने से बचाता है। पाली शब्द के अर्थ को सटीक रूप से व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त अंग्रेजी पर्याय नहीं है। धम्म वह है जो वास्तव में है। यह वास्तविकता का सिद्धांत है। यह दुख से मुक्ति का साधन और स्वयं मुक्ति है। बुद्धों का जन्म हो या न हो, धम्म अनादि काल से विद्यमान है। यह एक बुद्ध ही हैं जो इस धम्म को समझते हैं, जो अज्ञानी मनुष्यों की दृष्टि से तब तक छिपा रहता है, जब तक कि बुद्ध आकर करुणापूर्वक इसे संसार के सामने प्रकट नहीं करते।
हे भिक्षुओं, चाहे बुद्ध प्रकट हों या न हों, यह एक अटल सत्य, एक स्थापित सिद्धांत, एक प्राकृतिक नियम है कि समस्त सत्व-प्राप्त वस्तुएँ क्षणभंगुर ( अनिच्च ), दुःखमय ( दुक्खा ) और आत्माहीन ( अनत्ता ) हैं। तथागत इस सत्य को भलीभांति जानते हैं और जब वे इसे भलीभांति जान लेते हैं, तो वे इसकी घोषणा करते हैं, इसका उपदेश देते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसका खुलासा करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं और इसे स्पष्ट करते हैं कि समस्त सत्व-प्राप्त वस्तुएँ क्षणभंगुर, दुःखमय और आत्माहीन हैं। मज्झिमा निकाय ग्रंथ में बुद्ध कहते हैं: "बुद्ध केवल एक ही बात सिखाते हैं: दुख और दुखों का निवारण।" यही वास्तविकता का सिद्धांत है।
जो लोग इस वास्तविकता को पूर्णतः देख पाते हैं, उन्हें विजानतम् — 'वास्तविकता की सच्ची जागरूकता' कहा जाता है। वास्तविकता को देखने के लिए प्रयास और अनुशासन आवश्यक हैं। अनुशासन शब्दों और कर्मों को नियंत्रित करता है; एकाग्रता मन को वश में करती है; परन्तु अंतर्दृष्टि ( पञ्ञा ), जो तीसरा और अंतिम चरण है, वही संत बनने के इच्छुक व्यक्ति को समाधि द्वारा रोके गए दोषों को पूर्णतः दूर करने में सक्षम बनाती है ।
आरंभ में वह दृष्टि की शुद्धता ( दिठ्ठी विशुद्धि ) का अभ्यास करते हैं ताकि चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख सकें। शांत मन से वे इस तथाकथित अस्तित्व का विश्लेषण और परीक्षण करते हैं। यह गहन परीक्षण दर्शाता है कि जिसे उन्होंने 'मैं' व्यक्तित्व कहा है, वह केवल क्षणभंगुर घटनाओं का एक निराकार समूह है जिसे वैयक्तिक बना दिया गया है। जब घटनाओं का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है, तो यह घटनात्मक अनुभव निराकार हो जाता है। यही आत्म-अस्तित्व का अंत है। यही दुख, जन्म और मृत्यु का अंत है। यही निर्वाण का अनुभव है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 172

---

(धम्मपद 171) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 172 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 173)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 172 - सम्मज्जनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
यो कै पुब्बे पमाज्जित वा
pacchi so nappamajjati
so'mam locam pabhaseti
abbha muttova candima.

---

श्लोक 172 : जो पहले लापरवाह था, परन्तु बाद में सचेत हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चंद्रमा की तरह मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है।

---

थेरा सम्मज्जना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सम्मज्जना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (172) कहा।

थेरा सम्मज्जना अपना अधिकांश समय मठ परिसर की सफाई में व्यतीत करते थे। उस समय थेरा रेवता भी मठ में ही रह रहे थे; सम्मज्जना के विपरीत, थेरा रेवता अपना अधिकांश समय ध्यान या गहन मानसिक एकाग्रता में व्यतीत करते थे। थेरा रेवता के इस व्यवहार को देखकर सम्मज्जना को लगा कि दूसरे थेरा अपना समय यूं ही बर्बाद कर रहे हैं। इसलिए, एक दिन सम्मज्जना थेरा रेवता के पास गए और उनसे कहा, "आप बहुत आलसी हो गए हैं, केवल दान-पुण्य से प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन कर रहे हैं; क्या आपको नहीं लगता कि आपको कभी-कभी फर्श, परिसर या किसी अन्य स्थान की सफाई करनी चाहिए?" इस पर थेरा रेवता ने उत्तर दिया, "मित्र, एक भिक्षु को अपना सारा समय सफाई में नहीं व्यतीत करना चाहिए। उसे सुबह जल्दी सफाई करनी चाहिए, फिर भिक्षा मांगने निकलना चाहिए। भोजन के बाद, अपने शरीर का चिंतन करते हुए, उसे तत्वों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए, या फिर सूर्यास्त तक शास्त्रों का पाठ करना चाहिए। उसके बाद, यदि वह चाहे तो पुनः सफाई कर सकता है।" थेरा सम्मज्जना ने थेरा रेवता द्वारा दी गई सलाह का कड़ाई से पालन किया और शीघ्र ही अरहत पद प्राप्त कर लिया।

अन्य भिक्षुओं ने परिसर में कूड़ा जमा होते देखा और उन्होंने सम्मज्जना से पूछा कि वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं कर रहे हैं। सम्मज्जना ने उत्तर दिया, "जब मैं ध्यानमग्न था, तब मैं हर समय सफाई करता रहता था; लेकिन अब मैं ध्यानमग्न नहीं हूँ।" भिक्षुओं को उनका उत्तर सुनकर संदेह हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, "आदरणीय महोदय! थेरा सम्मज्जना स्वयं को अरहत होने का झूठा दावा कर रहे हैं; वे झूठ बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "सम्मज्जना ने वास्तव में अरहत पद प्राप्त कर लिया है; वे सत्य कह रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 172 : जो पहले लापरवाह था, परन्तु बाद में सचेत हो जाता है, वह बादलों से मुक्त चंद्रमा की तरह मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सम्मुंजनी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सम्मुंजनी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय सम्मुंजनी अपना अधिकांश समय मठ परिसर की सफाई में व्यतीत करते थे। उस समय आदरणीय रेवता भी मठ में ही रह रहे थे: सम्मुंजनी के विपरीत, आदरणीय रेवता अपना अधिकांश समय ध्यान या गहन चिंतन में व्यतीत करते थे। आदरणीय रेवता के इस व्यवहार को देखकर सम्मुंजनी को लगा कि दूसरा भिक्षु अपना समय यूं ही बर्बाद कर रहा है। इसलिए, एक दिन सम्मुंजनी आदरणीय रेवता के पास गए और उनसे कहा, “आप बहुत आलसी हैं, केवल दान-पुण्य से प्राप्त भोजन पर ही जीवन यापन कर रहे हैं: क्या आपको नहीं लगता कि आपको कभी-कभी फर्श, परिसर या किसी अन्य स्थान की सफाई करनी चाहिए?” इस पर पूज्य रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र, भिक्षु को अपना सारा समय झाड़ू लगाने में नहीं व्यतीत करना चाहिए। उसे सुबह जल्दी झाड़ू लगानी चाहिए, फिर भिक्षा मांगने निकलना चाहिए। भोजन के बाद, अपने शरीर का ध्यान करते हुए, उसे तत्वों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए, या फिर सूर्यास्त तक शास्त्रों का पाठ करना चाहिए। उसके बाद, यदि वह चाहे तो पुनः झाड़ू लगा सकता है।” पूज्य सम्मुंजनी ने पूज्य रेवता की सलाह का पूर्णतया पालन किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

अन्य भिक्षुओं ने परिसर में कूड़ा जमा होते देखा और उन्होंने सम्मुंजनी से पूछा कि वह पहले की तरह सफाई क्यों नहीं कर रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, “जब मैं ध्यानमग्न था, तब मैं हर समय सफाई करता रहता था; लेकिन अब मैं ध्यानमग्न नहीं हूँ।” जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना तो उन्हें संदेह हुआ; इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, “आदरणीय! आदरणीय सम्मुंजनी अपने आप को अरहत होने का झूठा दावा कर रहे हैं; वे झूठ बोल रहे हैं।” बुद्ध ने उनसे कहा, “सम्मुन्जनी ने वास्तव में अरहत पद प्राप्त कर लिया है; वे सत्य कह रहे हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 172)

यो पुब्बे पमज्जित्वा च सो पच्च नप्पमज्जति
सो अब्भा मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं पभसेति
यो : यदि कोई; पुब्बे : पहले; पमज्जित्वा : भ्रमित होने के कारण; च सो : वह यहाँ भी; पच्चा : बाद में; नप्पमज्जति : मोहभंग हो जाता है; सो : वह; अब्भा मुत्तो [ मुत्त ]: अंधकार के बादल से मुक्त; चन्दिमा इव : चंद्रमा के समान; इमं लोकं [ लोक ]: यह संसार; पभासेति : प्रकाशित होता है
कोई व्यक्ति अतीत में भ्रम में रहा हो सकता है। लेकिन बाद में वह अपने विचारों को सुधारता है और भ्रममुक्त हो जाता है। इसलिए, वह उस चंद्रमा के समान है जो घने बादल के पीछे से निकला है: इस प्रकार, वह दुनिया को रोशन करता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 172)
abbhā mutto candimā iva : जैसे चंद्रमा अंधकार के बादलों से मुक्त हो जाता है। यह उपमा उन लोगों के लिए प्रयोग की जाती है जिन्होंने आध्यात्मिकता की उच्च अवस्थाएँ प्राप्त कर ली हैं। अंधकार के बादलों से मुक्त होने पर चंद्रमा अपनी पूरी चमक के साथ जगमगाता है। सत्य की खोज करने वाले जब सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाते हैं, तो वे भी प्रकाशमान हो उठते हैं। सांसारिक बाधाओं के अंधकार के बादलों से मुक्ति कई चरणों में होती है। जब अवरोधों को अस्थायी रूप से हटाकर ध्यान विकसित किया जाता है ( निवारण ), तो मन इतना शुद्ध हो जाता है कि वह एक पॉलिश किए हुए दर्पण के समान हो जाता है, जिसमें सब कुछ स्पष्ट रूप से सही परिप्रेक्ष्य में प्रतिबिंबित होता है।
अनुशासन ( सीला ) शब्दों और कर्मों को नियंत्रित करता है; संयम ( समाधि ) मन को शांत करता है; परन्तु अंतर्दृष्टि ( पञ्ञा ), तीसरा और अंतिम चरण, संतत्व के साधक को समाधि द्वारा अस्थायी रूप से दूर किए गए दोषों को पूर्णतः मिटाने में सक्षम बनाता है । आरंभ में, वह दृष्टि की शुद्धता ( दिट्ठी विशुद्धि ) का अभ्यास करता है ताकि चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देख सके।
शांत मन से वह अपने अनुभव का विश्लेषण और परीक्षण करता है। यह गहन परीक्षण दर्शाता है कि जिसे उसने 'मैं' व्यक्तित्व कहा है, वह मात्र मनो-शारीरिक गतिविधि की एक अवैयक्तिक प्रक्रिया है।
इस प्रकार तथाकथित अस्तित्व की वास्तविक प्रकृति का सही दृष्टिकोण प्राप्त करने के बाद, एक स्थायी आत्मा की झूठी धारणा से मुक्त होकर, वह इस अहंकार के कारणों की खोज करता है।
तब वह इस सत्य पर विचार करता है कि सभी रचनाएँ क्षणभंगुर ( अनिच्च ), पीड़ादायक ( दुक्ख ) और निराकार ( अनत्ता ) हैं। जिधर भी उसकी नज़र जाती है, उसे ये तीनों विशेषताएँ स्पष्ट रूप से उभरती हुई दिखाई देती हैं। वह समझता है कि जीवन आंतरिक और बाह्य कारणों से संचालित एक प्रवाह मात्र है। उसे कहीं भी वास्तविक सुख नहीं मिलता, क्योंकि सब कुछ क्षणिक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 173

---

(धम्मपद 172) <<<< पिछला || धम्मपद 173 || अगला >>>> (धम्मपद 174)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 173 - अंगुलिमालत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa papam katam kammam
kusalena(1) pidhiyati
so'mam locam pabhaseti

abbha muttova candima.

———————————————————————————

श्लोक 173 : जो व्यक्ति अपने किए हुए बुरे कर्मों को अच्छाई से ढक लेता है, वह इस संसार को (मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से) प्रकाशित करता है, जैसे बादलों से मुक्त चंद्रमा करता है।

———————————————————————————

1. कुसलेना: अच्छे कर्म के साथ; इस संदर्भ में अच्छे का अर्थ अरहत्ता मग्गा है, चौथा और अंतिम मार्ग ज्ञान।

———————————————————————————

थेरा अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अंगुलिमाला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (173) कहा।

अंगुलिमाला कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) के दरबार में प्रधान पुजारी का पुत्र था। उसका मूल नाम अहिंसक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसे तक्षशिला भेजा गया, जो एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नगर था। अहिंसक बुद्धिमान और अपने गुरु का आज्ञाकारी था। इसलिए वह गुरु और उनकी पत्नी को प्रिय था; परिणामस्वरूप, अन्य छात्र उससे ईर्ष्या करने लगे। इसलिए वे गुरु के पास गए और झूठी खबर फैलाई कि अहिंसक का गुरु की पत्नी के साथ संबंध है। पहले तो गुरु ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया, लेकिन कई बार सुनने के बाद उन्होंने विश्वास कर लिया; और इसलिए उन्होंने लड़के से बदला लेने की कसम खाई। लड़के को मारना उनके लिए कलंक साबित होता; इसलिए उन्होंने हत्या से भी बदतर एक योजना बनाई। उन्होंने अहिंसक को एक हजार पुरुषों या महिलाओं को मारने के लिए कहा और बदले में लड़के को अमूल्य ज्ञान देने का वादा किया। लड़का यह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था, लेकिन जीवन लेने से बहुत हिचकिचा रहा था। हालांकि, उसने कही गई बात मानने का फैसला किया।

इस प्रकार, वह लोगों को मारता रहा और गिनती न भूलने के लिए, उसने मारे गए प्रत्येक व्यक्ति की एक-एक उंगली पिरोकर माला की तरह अपने गले में पहन ली। इसी कारण वह अंगुलिमाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पूरे क्षेत्र में आतंक का पर्याय बन गया। राजा को स्वयं अंगुलिमाला के कारनामों के बारे में पता चला और उसने उसे पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाला की माता मंतानी को राजा के इरादे का पता चला, तो अपने पुत्र के प्रेम के कारण वह उसे बचाने के लिए जंगल में चली गई। तब तक अंगुलिमाला के गले में बंधी माला में नौ सौ निन्यानवे उंगलियां थीं, जो एक हजार से केवल एक कम थीं।

उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अंगुलिमाला को दर्शन दिए और सोचा कि यदि उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया, तो अंगुलिमाला, जो एक हजार लोगों की सूची में अंतिम व्यक्ति की तलाश में था, अपनी माता को देख लेगा और शायद उनकी हत्या कर देगा। ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला को अनंत काल तक निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिए करुणावश बुद्ध अंगुलिमाला के निवास स्थान, जंगल की ओर चल पड़े।

कई दिनों और रातों तक बिना सोए रहने के बाद अंगुलिमाला बहुत थका हुआ और लगभग बेहाल था। साथ ही, वह अपने एक हजार के लक्ष्य को पूरा करने के लिए आखिरी व्यक्ति को मारने के लिए भी बहुत बेचैन था। उसने मन बना लिया कि वह सबसे पहले जिस व्यक्ति से मिलेगा उसे मार डालेगा। अचानक, जैसे ही उसने बाहर देखा, उसे बुद्ध दिखाई दिए और वह अपनी छुरी उठाकर उनके पीछे दौड़ पड़ा। लेकिन पूरी तरह से थक जाने के कारण वह बुद्ध तक नहीं पहुँच सका। तब, बुद्ध को देखकर वह चिल्लाया, "हे भिक्षु, रुको! रुको!" और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं रुक गया हूँ, केवल तुम नहीं रुके हो।" अंगुलिमाला बुद्ध के शब्दों का अर्थ नहीं समझ पाया, इसलिए उसने पूछा, "हे भिक्षु! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आप रुक गए हैं और मैं नहीं रुका हूँ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, "मैं कहता हूँ कि मैंने त्याग कर दिया है, क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना छोड़ दिया है, सभी प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करना छोड़ दिया है, और चिंतन के माध्यम से सार्वभौमिक प्रेम, धैर्य और ज्ञान में स्वयं को स्थापित कर लिया है। परन्तु तुमने हत्या करना या दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ा है और तुम अभी तक सार्वभौमिक प्रेम और धैर्य में स्थापित नहीं हुए हो। अतः तुम ही हो जिसने त्याग नहीं किया है।" बुद्ध के मुख से ये शब्द सुनकर अंगुलिमाला ने मन ही मन सोचा, "ये तो एक बुद्धिमान व्यक्ति के शब्द हैं। यह भिक्षु इतना बुद्धिमान और इतना साहसी है; यह अवश्य ही भिक्षुओं का स्वामी होगा। वास्तव में, यह स्वयं बुद्ध ही होंगे! वे मुझे ज्ञान दिलाने के लिए ही विशेष रूप से यहाँ आए होंगे।" ऐसा सोचकर उसने अपना शस्त्र फेंक दिया और बुद्ध से भिक्षु संघ में प्रवेश देने का निवेदन किया। उसी क्षण बुद्ध ने उसे भिक्षु बना दिया।

अंगुलिमाला की माता ने जंगल में हर जगह अपने पुत्र को ढूंढा और उसका नाम पुकारती रहीं, लेकिन जब वह नहीं मिला तो वे घर लौट आईं। जब राजा और उसके सैनिक अंगुलिमाला को पकड़ने आए, तो उन्होंने उसे बुद्ध के मठ में पाया। यह देखकर कि अंगुलिमाला ने अपने बुरे मार्ग त्याग दिए थे और भिक्षु बन गया था, राजा और उसके सैनिक घर लौट गए। मठ में रहने के दौरान, अंगुलिमाला ने लगन और परिश्रम से ध्यान किया और थोड़े ही समय में उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

फिर एक दिन, जब वे भिक्षा मांगने निकले थे, तो वे एक ऐसी जगह पर पहुँचे जहाँ कुछ लोग आपस में झगड़ रहे थे। वे एक-दूसरे पर पत्थर फेंक रहे थे, तभी कुछ पत्थर भटककर थेरा अंगुलिमाला के सिर पर लगे और वे गंभीर रूप से घायल हो गए। फिर भी, वे किसी तरह बुद्ध के पास वापस आ गए, और बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र अंगुलिमाला! तुमने बुराई का नाश कर दिया है। धैर्य रखो। तुम इस जन्म में अपने कर्मों का फल भोग रहे हो। इन कर्मों के कारण तुम्हें अनगिनत वर्षों तक निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ता।" इसके कुछ ही समय बाद, अंगुलिमाला का शांतिपूर्वक निधन हो गया; उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया था।

अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि अंगुलिमाला का पुनर्जन्म कहाँ हुआ, और जब बुद्ध ने उत्तर दिया, "मेरे पुत्र ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है", तो उन्हें इस पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि क्या यह संभव है कि इतने लोगों को मारने वाला व्यक्ति परिनिर्वाण प्राप्त कर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! अंगुलिमाला ने बहुत बुराई की क्योंकि उसके अच्छे मित्र नहीं थे। लेकिन बाद में, उसे अच्छे मित्र मिले और उनकी सहायता और अच्छे परामर्श से वह धर्म के अभ्यास में दृढ़ और सचेत रहा। इसलिए, उसके बुरे कर्म अच्छे कर्मों से दब गए हैं (अर्थात् अरहत्त मार्ग)।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 173 : जो व्यक्ति अपने किए हुए बुरे कर्मों को अच्छाई से ढक लेता है, वह इस संसार को (मग्गा अंतर्दृष्टि के प्रकाश से) प्रकाशित करता है, जैसे बादलों से मुक्त चंद्रमा करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अंगुलिमाला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अंगुलिमाला कोसल के राजा पसेनादि के दरबार में प्रधान पुरोहित का पुत्र था। उसका मूल नाम अहिंसक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नगर तक्षशिला भेजा गया। अहिंसक बुद्धिमान और अपने गुरु का आज्ञाकारी था। इसलिए गुरु और उनकी पत्नी उसे पसंद करते थे, जिसके परिणामस्वरूप अन्य छात्र उससे ईर्ष्या करने लगे। इसलिए वे गुरु के पास गए और झूठी खबर फैलाई कि अहिंसक का गुरु की पत्नी के साथ संबंध है। पहले तो गुरु ने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया, लेकिन कई बार सुनने के बाद उन्होंने विश्वास कर लिया और लड़के से बदला लेने की कसम खाई। लड़के को मारना उनके लिए कलंक साबित होता, इसलिए उन्होंने हत्या से भी बदतर योजना बनाई। उन्होंने अहिंसक को एक हजार पुरुषों या महिलाओं को मारने के लिए कहा और बदले में उसे अमूल्य ज्ञान देने का वादा किया। लड़का यह ज्ञान प्राप्त करना चाहता था, लेकिन किसी की जान लेने से बहुत हिचकिचा रहा था। फिर भी, उसने वैसा ही करने के लिए सहमति दे दी जैसा उसे कहा गया था। इस प्रकार, वह लोगों को मारता रहा और गिनती न भूलने के लिए, उसने मारे गए प्रत्येक व्यक्ति की एक-एक उंगली पिरोकर अपने गले में माला की तरह पहन ली। इसी कारण वह अंगुलिमाला के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पूरे क्षेत्र में आतंक का पर्याय बन गया। राजा को स्वयं अंगुलिमाला के कारनामों के बारे में पता चला और उसने उसे पकड़ने की तैयारी शुरू कर दी। जब अंगुलिमाला की माता मंतानी को राजा के इरादे का पता चला, तो अपने पुत्र के प्रेम के कारण वह उसे बचाने के लिए जंगल में चली गई। तब तक अंगुलिमाला के गले में बंधी माला में नौ सौ निन्यानवे उंगलियां थीं, जो एक हजार से केवल एक कम थीं।

उस दिन सुबह-सुबह बुद्ध ने अंगुलिमाला को दर्शन दिए और सोचा कि अगर उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया, तो अंगुलिमाला, जो एक हजार लोगों की पूर्ति के लिए अंतिम व्यक्ति की तलाश में था, अपनी माता को देख लेगा और शायद उनकी हत्या कर देगा। ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला को अनंत काल तक निरयण में कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिए करुणावश बुद्ध उस जंगल की ओर चल पड़े जहाँ अंगुलिमाला था। कई दिनों और रातों तक बिना सोए रहने के कारण अंगुलिमाला बहुत थका हुआ और लगभग क्षीण हो चुका था। साथ ही, वह एक हजार लोगों की पूर्ति के लिए अंतिम व्यक्ति को मारने के लिए बहुत बेचैन था ताकि उसका कार्य पूरा हो सके। उसने मन बना लिया कि वह सबसे पहले मिलने वाले व्यक्ति को ही मार डालेगा। अचानक, जब उसने बाहर देखा तो उसे बुद्ध दिखाई दिए और वह चाकू उठाकर उनके पीछे दौड़ा। लेकिन बुद्ध तक पहुँचना संभव नहीं था क्योंकि वे स्वयं पूरी तरह से थक चुके थे। तब, बुद्ध को देखकर वह चिल्लाया, "हे भिक्षु, रुकिए! रुकिए!" और बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं रुक गया हूँ, केवल आप नहीं रुके हैं।" अंगुलिमाला बुद्ध के शब्दों का महत्व नहीं समझ पाया, इसलिए उसने पूछा, "हे भिक्षु! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आप रुक गए हैं और मैं नहीं रुका हूँ?"

तब बुद्ध ने उससे कहा, "मैं कहता हूँ कि मैंने त्याग कर दिया है, क्योंकि मैंने सभी प्राणियों की हत्या करना छोड़ दिया है, सभी प्राणियों के साथ दुर्व्यवहार करना छोड़ दिया है, और चिंतन के माध्यम से सार्वभौमिक प्रेम, धैर्य और ज्ञान में स्वयं को स्थापित कर लिया है। परन्तु तुमने हत्या करना या दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ा है और तुम अभी तक सार्वभौमिक प्रेम और धैर्य में स्थापित नहीं हुए हो। अतः तुम ही हो जिसने त्याग नहीं किया है।" बुद्ध के मुख से ये शब्द सुनकर अंगुलिमाला ने सोचा, "ये तो एक बुद्धिमान व्यक्ति के शब्द हैं। यह भिक्षु इतना बुद्धिमान और इतना साहसी है: यह स्वयं बुद्ध ही होंगे! वे मुझे ज्ञान दिलाने के लिए ही विशेष रूप से यहाँ आए होंगे।"

ऐसा सोचकर उसने अपना शस्त्र फेंक दिया और बुद्ध से उसे भिक्षुओं के संघ में शामिल करने का निवेदन किया। उसी क्षण बुद्ध ने उसे भिक्षु बना दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 173)

यस्सा कटं पापं कम्मं कुसलेना पिथियाति

सो अब्भा मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं पभसेति

यस्सा : यदि किसी के द्वारा; कटं पापं कम्मं [ कम्म ]: किया गया बुरा कार्य; कुसलेना : अच्छे से; पिथीयति : रुका हुआ है; इसलिए वह; अब्भा मुत्तो [ मुत्ता ]: काले बादल से बच गया; कैंडिमा इव : चंद्रमा की तरह; इमं लोकं [ लोका ]: यह दुनिया; पभसेति : प्रकाशित करता है

यदि किसी व्यक्ति की बुरी आदतें उसके अच्छे व्यवहार से प्रतिस्थापित हो जाएं, तो वह दुनिया को रोशन करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 173)

यह श्लोक अंगुलिमाला के संदर्भ में उच्चारित किया गया था। वे बुद्ध के सबसे प्रसिद्ध और अत्यंत रंगीन व्यक्तित्व वाले शिष्यों में से एक थे।

कुसलेना पिथीयति : व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। परन्तु संसार में किए गए सभी कर्मों का फल भोगना अनिवार्य नहीं है। यदि ऐसा होता, तो जन्म-मृत्यु से मुक्ति असंभव हो जाती। कभी-कभी शक्तिशाली अच्छे कर्म करके बुरे कर्मों को मिटाया जा सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 174

---

(धम्मपद 173) <<<< पिछला || धम्मपद 174 || अगला >>>> (धम्मपद 175)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 174 - पेसाकारधिता वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Andhabhuto ayam loko
तनुकेत्था विपस्सति
sakuno jalamuttova
appo saggaya gacchati.

---

श्लोक 174 : इस संसार के लोग अंधे हैं; इस संसार में केवल कुछ ही लोग स्पष्ट दृष्टि से देख पाते हैं। जैसे कुछ ही पक्षी जाल से बच पाते हैं, वैसे ही कुछ ही लोग देवलोक (और निर्वाण) पहुँच पाते हैं।

---

बुनकर लड़की की कहानी

अलावी देश में अगगवाला मंदिर के पास मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (174) का उच्चारण एक युवती के संदर्भ में किया, जो एक बुनकर थी।

अलावी में एक दान समारोह के समापन पर, बुद्ध ने स्कंधों (कन्धों) की अनित्यता पर प्रवचन दिया। उस दिन बुद्ध ने जिन मुख्य बिंदुओं पर जोर दिया, उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:
"मेरा जीवन क्षणभंगुर है; मेरे लिए केवल मृत्यु ही स्थायी है। मुझे निश्चित रूप से मरना है; मेरा जीवन मृत्यु में समाप्त होता है। जीवन स्थायी नहीं है; मृत्यु स्थायी है।"
बुद्ध ने श्रोताओं को सदा सचेत रहने और समग्र स्वरूप को समझने का प्रयास करने का उपदेश दिया। उन्होंने कहा, "जैसे कोई व्यक्ति लाठी या भाले से लैस होकर शत्रु (जैसे विषैले साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो व्यक्ति मृत्यु के प्रति सजग रहता है, वह मृत्यु का सामना भी सजगता से करेगा। तब वह इस संसार को छोड़कर एक शुभ गंतव्य (सुगति) की ओर प्रस्थान करेगा।"
अनेक लोगों ने इस उपदेश को गंभीरता से नहीं लिया, परन्तु सोलह वर्ष की एक बुनकर युवती ने इस संदेश को स्पष्ट रूप से समझ लिया। प्रवचन देने के बाद बुद्ध जेतवन मठ लौट गए।
तीन वर्ष बीतने के बाद, जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में वह युवती दिखाई दी और वे समझ गए कि अब उस कन्या के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः बुद्ध दूसरी बार धर्म का उपदेश देने के लिए अलावी देश आए। जब उस कन्या ने सुना कि बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पुनः आए हैं, तो वह भी जाकर उनका प्रवचन सुनना चाहती थी। यद्यपि उसके पिता ने उसे कुछ सूत की चरखी भी लपेटने को कहा था, जिसकी उन्हें तत्काल आवश्यकता थी, इसलिए उसने तुरंत कुछ चरखे लपेटे और उन्हें अपने पिता के पास ले गई। अपने पिता के पास जाते समय, वह बुद्ध का प्रवचन सुनने आए श्रोताओं के बाहरी किनारे पर एक क्षण के लिए रुकी।
इस बीच, बुद्ध को पता था कि वह युवती उनका प्रवचन सुनने आएगी; उन्हें यह भी पता था कि वह बुनाईशाला पहुँचते ही मर जाएगी। इसलिए, यह अत्यंत महत्वपूर्ण था कि वह बुनाईशाला जाते समय धम्म सुने, न कि लौटते समय। अतः, जब वह युवती सभा के किनारे पर प्रकट हुई, तो बुद्ध ने उसकी ओर देखा। जब उसने देखा कि बुद्ध उसे देख रहे हैं, तो उसने अपनी टोकरी नीचे रख दी और आदरपूर्वक बुद्ध के पास गई। तब उन्होंने उससे चार प्रश्न पूछे और उसने उन सभी के उत्तर दिए। प्रश्न और उत्तर नीचे दिए गए हैं।
प्रश्न
जवाब
(1) आप कहाँ से आए हैं?
(1) मुझे नहीं पता.
(2) तुम कहाँ जा रहे हो?
(2) मुझे नहीं पता.
(3) क्या आपको नहीं पता?
(3) हाँ, मुझे पता है.
(4) क्या आप जानते हैं?
(4) मुझे नहीं पता, आदरणीय महोदय।
उसके जवाब सुनकर श्रोताओं को लगा कि युवा बुनकर बहुत ही असभ्य व्यवहार कर रही है। तब बुद्ध ने उससे पूछा कि उसके जवाबों का क्या अर्थ है, और उसने समझाया।
आदरणीय महोदय! चूंकि आप जानते हैं कि मैं अपने घर से आया हूँ, इसलिए मैंने आपके पहले प्रश्न से यह समझा कि आप मुझसे यह पूछना चाहते हैं कि मैं किस पूर्व जन्म से यहाँ आया हूँ। अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।' दूसरे प्रश्न का अर्थ है कि मैं यहाँ से किस भविष्य के जन्म में जाऊँगा; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।' तीसरे प्रश्न का अर्थ है कि क्या मुझे यह नहीं पता कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी; अतः मेरा उत्तर है, 'हाँ, मुझे पता है।' अंतिम प्रश्न का अर्थ है कि क्या मुझे यह पता है कि मेरी मृत्यु कब होगी; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता।'
बुद्ध उसकी व्याख्या से संतुष्ट हुए और उन्होंने श्रोताओं से कहा, "आपमें से अधिकांश लोग शायद उस युवती द्वारा दिए गए उत्तरों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाए होंगे। अज्ञानी लोग अंधकार में हैं, वे अंधों के समान हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 174 : इस संसार के लोग अंधे हैं; इस संसार में केवल कुछ ही लोग स्पष्ट दृष्टि से देख पाते हैं। जैसे कुछ ही पक्षी जाल से बच पाते हैं, वैसे ही कुछ ही लोग देवलोक (और निर्वाण) पहुँच पाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में, युवा बुनकर ने सोतापत्ति की सिद्धि प्राप्त कर ली।

फिर वह बुनाई की झोपड़ी की ओर चल पड़ी। जब वह वहाँ पहुँची, तो उसके पिता बुनकर की कुर्सी पर सो रहे थे। अचानक जागते ही उन्होंने गलती से शटल खींच दी, और शटल की नोक लड़की के स्तन पर जा लगी। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई, और उसके पिता का हृदय टूट गया। आँखों में आँसू भरे हुए वे बुद्ध के पास गए और उनसे भिक्षु संघ में प्रवेश देने की विनती की। इस प्रकार वे भिक्षु बन गए, और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुनकर लड़की की कहानी

आलवी देश में अग्गलवा मंदिर के पास स्थित मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक युवा महिला, जो एक बुनकर थी, के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आलवी में एक भिक्षादान समारोह के समापन पर, बुद्ध ने षष्ठमों (खंधाओं) की अनित्यता पर प्रवचन दिया। उस दिन बुद्ध ने जिन मुख्य बिंदुओं पर बल दिया, उन्हें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: “मेरा जीवन अनित्य है: मेरे लिए केवल मृत्यु ही स्थायी है। मुझे निश्चित रूप से मरना है: मेरा जीवन मृत्यु में समाप्त होता है। जीवन स्थायी नहीं है: मृत्यु स्थायी है।” बुद्ध ने श्रोताओं को सदा सचेत रहने और षष्ठमों के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करने के लिए भी प्रेरित किया। उन्होंने यह भी कहा, “जैसे कोई व्यक्ति लाठी या भाले से लैस होकर शत्रु (जैसे विषैला साँप) का सामना करने के लिए तैयार रहता है, वैसे ही जो व्यक्ति सदा मृत्यु के प्रति सचेत रहता है, वह मृत्यु का सामना भी सचेत होकर करेगा। तब वह इस संसार को छोड़कर एक अच्छे गंतव्य (सुगति) की ओर प्रस्थान करेगा।” अनेक लोगों ने इस उपदेश को गंभीरता से नहीं लिया, परन्तु सोलह वर्ष की एक बुनकर युवती ने इस संदेश को स्पष्ट रूप से समझ लिया। प्रवचन देने के बाद, बुद्ध जेतवन मठ लौट गए।

तीन वर्ष बीतने के बाद, जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्हें दर्शन में वह युवती दिखाई दी और वे समझ गए कि अब उस लड़की के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः बुद्ध दूसरी बार धम्म का उपदेश देने के लिए आलवी आए। जब उस लड़की ने सुना कि बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ पुनः आए हैं, तो वह भी जाकर उनका प्रवचन सुनना चाहती थी। हालाँकि, उसके पिता ने उसे कुछ सूत की चरखी भी लपेटने को कहा था, जिसकी उन्हें तत्काल आवश्यकता थी, इसलिए उसने तुरंत कुछ चरखे लपेटे और उन्हें अपने पिता के पास ले गई। अपने पिता के पास जाते समय, वह बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए एकत्रित श्रोताओं के एक कोने में क्षण भर के लिए रुक गई।

इस बीच, बुद्ध को पता था कि वह युवती उनका प्रवचन सुनने आएगी; उन्हें यह भी पता था कि वह बुनाईशाला पहुँचते ही मर जाएगी। इसलिए, यह बहुत महत्वपूर्ण था कि वह बुनाईशाला जाते समय धम्म सुने, न कि लौटते समय। अतः, जब युवती सभा के किनारे पर प्रकट हुई, तो बुद्ध ने उसकी ओर देखा। जब उसने देखा कि बुद्ध उसे देख रहे हैं, तो उसने अपनी टोकरी नीचे रख दी और आदरपूर्वक बुद्ध के पास गई। तब उन्होंने उससे चार प्रश्न पूछे और उसने सभी के उत्तर दिए। उसके उत्तर सुनकर लोगों को लगा कि युवती बहुत अनादर कर रही है। तब बुद्ध ने उससे अपने उत्तरों का अर्थ समझाने को कहा, और उसने समझाया। “आदरणीय! चूंकि आप जानते हैं कि मैं अपने घर से आई हूँ, इसलिए मैंने आपके पहले प्रश्न का यह अर्थ निकाला कि आप मुझसे यह पूछना चाहते हैं कि मैं किस पूर्व जन्म से यहाँ आई हूँ। अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता;' दूसरे प्रश्न का अर्थ है कि मैं यहाँ से किस भविष्य के जन्म में जाऊँगी; अतः मेरा उत्तर है, 'मुझे नहीं पता;'” तीसरे प्रश्न का अर्थ है कि क्या मैं जानती हूँ कि एक दिन मेरी मृत्यु होगी; इसलिए मेरा उत्तर है, 'हाँ, मैं जानती हूँ;' अंतिम प्रश्न का अर्थ है कि क्या मैं जानती हूँ कि मेरी मृत्यु कब होगी; इसलिए मेरा उत्तर है, 'मैं नहीं जानती।' बुद्ध उसकी व्याख्या से संतुष्ट हुए और उन्होंने श्रोताओं से कहा, “आपमें से अधिकांश लोग इस युवती द्वारा दिए गए उत्तरों का अर्थ स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाए होंगे। अज्ञानी लोग अंधकार में हैं, वे देख नहीं सकते।” फिर वह बुनाई के शेड की ओर चल पड़ी। जब वह वहाँ पहुँची, तो उसके पिता बुनकर की कुर्सी पर सो रहे थे। अचानक जागते ही उन्होंने शटल खींच ली और शटल की नोक युवती के स्तन पर जा लगी। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई और उसके पिता का हृदय क्षुद्र हो गया। आँखों में आँसू भरे हुए वे बुद्ध के पास गए और उनसे संघ में शामिल होने का अनुरोध किया। इस प्रकार वे भिक्षु बन गए और कुछ ही समय बाद अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 174)

अयं लोको अंधभूतो एत्थ तनुको विपश्यति

जालमुत्तो सकुन्तो इव अप्पो सग्गया गच्छति

अयं लोको : ये सांसारिक लोग; अंधभूतो [ अंधभूत ]: अंधे हैं; एत्थ : उनमें से; तनुको [ तनुका ] : कुछ; विपस्सति : अच्छी तरह से देखने में सक्षम हैं; जाल से बच निकले; सकुंतो इव : पक्षी की तरह; अप्पो : कुछ; सग्गाय गच्छति : स्वर्ग जाते हैं

इस संसार में अधिकतर लोग देख नहीं पाते। वे वास्तविकता को ठीक से नहीं देख पाते। उनमें से भी केवल कुछ ही लोग अंतर्दृष्टि प्राप्त कर पाते हैं। केवल वही लोग सही दृष्टि रखते हैं। कुछ ही लोग, जैसे कोई भटका हुआ पक्षी जाल से बच निकलता है, स्वर्ग तक पहुँच

पाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री : अंधा । सांसारिक लोग, जो मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाते, उन्हें यहाँ अंधा कहा गया है। मुट्ठी भर लोग जो “देखने” में सक्षम हैं, वे सांसारिकता के जाल से बचकर स्वर्ग पहुँच जाते हैं।
सग्गा : आनंदमय अवस्थाएँ, शाश्वत स्वर्ग नहीं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 175

---

(धम्मपद 174) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 175 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 176)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 175 - तिम्सभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Hamsa diccapathe yanti
ikase yanti iddhiya
niyanti dhira lokamha
jetva maram savahinim.

---

श्लोक 175 : हंस आकाश में विचरण करते हैं; अलौकिक शक्तियों वाले अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; बुद्धिमान लोग मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त करके इस दुनिया से चले जाते हैं (अर्थात निर्वाण प्राप्त करते हैं)।

---

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (175) कहा।
एक बार तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। उनके आने पर, पूज्य आनंद, जो उस समय बुद्ध की सेवा कर रहे थे, कमरे से बाहर निकलकर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय बाद, थेरा आनंद अंदर गए, लेकिन उन्हें कोई भी भिक्षु नहीं मिला। इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि वे सभी भिक्षु कहाँ चले गए। बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, उन सभी भिक्षुओं ने मेरा प्रवचन सुनकर अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है, और अपनी अलौकिक शक्तियों से वे अंतरिक्ष में विचरण कर रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 175 : हंस आकाश में विचरण करते हैं; अलौकिक शक्तियों वाले अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; बुद्धिमान लोग मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त करके इस दुनिया से चले जाते हैं (अर्थात निर्वाण प्राप्त करते हैं)।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन तीस भिक्षु, जो विदेशों में रहते थे, बुद्ध से मिलने आए। पूज्य आनंद बुद्ध की सेवा करने के लिए उनके पास पहुँचते ही उन भिक्षुओं को देख लिया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं तब तक प्रतीक्षा करूँगा जब तक बुद्ध इन भिक्षुओं से सौहार्दपूर्ण अभिवादन न कर लें, फिर मैं बुद्ध की सेवा करूँगा।" तदनुसार, वे द्वार पर प्रतीक्षा करने लगे। जब बुद्ध ने उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन कर लिया, तो उन्होंने उन्हें मधुरता से धम्म का उपदेश दिया। धम्म सुनने के बाद उन सभी भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे आकाश में विचरण करते हुए चले गए।

जब वे रुके, तो पूज्य आनंद बुद्ध के पास आए और बोले, "पूज्यवर, तीस भिक्षु यहाँ आए थे। वे कहाँ हैं?" "चले गए हैं, आनंद।" "वे किस मार्ग से गए, पूज्यवर?" "वायु के द्वारा, आनंद।" "पर क्या उन्होंने अपने पापों से मुक्ति पा ली है?" "जी हाँ, आनंद। मेरे धम्म प्रवचन सुनने के बाद, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।" तभी कुछ हंस वायु में उड़ते हुए आए। बुद्ध ने कहा, "आनंद, जिसने चारों प्रकार की जादुई शक्तियाँ पूर्णतः विकसित कर ली हैं, वह हंस की तरह वायु में उड़ता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 175)

हंसा आदिचपथे यान्ति इद्धिया आकाशे यान्ति

धीरा सवाहिनि मरं जेत्वा लोकम्हा नयन्ति

हंस : हंस; आदिच्चपथे : सूर्य के पथ (आकाश) में; यंति : उड़ना; इद्धिया : मानसिक शक्तियों वाले; आकाशे : आकाश में; यंति : घूमना; धीरा : बुद्धिमान; सवाहिणिं मारं [ मार ]: मृत्यु अपने दल सहित; जेत्वा : पराजित करके; लोकमहा : इस संसार से बाहर; नीयन्ति : निर्वाण की ओर प्रस्थान।

हंस सूर्य के पथ के समान आकाश में उड़ जाते हैं। मानसिक शक्ति से संपन्न लोग आकाश में विचरण करते हैं। वे परिश्रमी, बुद्धिमान संत मृत्यु और उसकी सेनाओं पर विजय प्राप्त करके संसार को त्याग देते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 175)

इद्धि : शक्ति, जादुई शक्ति। जादुई शक्तियाँ छह प्रकार की उच्च आध्यात्मिक शक्तियों ( अभिज्ञा ) में से एक हैं। जादुई शक्तियों के अनेक प्रकार हैं, जैसे, दृढ़ संकल्प की शक्ति ( अधित्थान इद्धि ): अर्थात् स्वयं को अनेक रूपों में बदलने की शक्ति, रूपांतरण की शक्ति ( विकुब्बाना ): अर्थात् दूसरा रूप धारण करने की शक्ति, आध्यात्मिक सृजन की शक्ति ( मनोमय ): अर्थात् इस शरीर से मानसिक रूप से उत्पन्न दूसरे शरीर को उत्पन्न करने की शक्ति, गहन ज्ञान की शक्ति ( ज्ञान-विप्फार ): अर्थात् खतरे में भी अप्रभावित रहने की अंतर्निहित अंतर्दृष्टि, और गहन एकाग्रता की शक्ति ( समाधि-विप्फार ), जो समान परिणाम उत्पन्न करती है।

श्रेष्ठ शक्ति ( अरिया-इद्धि ) वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को इस प्रकार नियंत्रित कर सकता है कि वह किसी अप्रिय वस्तु को अप्रिय और अप्रिय वस्तु को अप्रिय न समझे, और इस प्रकार सदा अविचलित और समभाव से परिपूर्ण बना रहे। मन के इस प्रशिक्षण का उल्लेख सूत्रों में बार-बार मिलता है , परन्तु केवल एक बार ही इसे अरिया-इद्धि कहा गया है।

सिद्धि-पाद : शक्ति (या सफलता) के मार्ग निम्नलिखित चार गुण हैं, क्योंकि ये मार्गदर्शक के रूप में शक्ति से जुड़े मार्ग को इंगित करते हैं; और क्योंकि ये मार्ग की सफलता का आधार बनने वाली शक्ति के मार्गों की तैयारी करते हैं, अर्थात् इच्छाशक्ति के प्रयास से युक्त इरादे की एकाग्रता ( चंद-समाधि ) , ऊर्जा की एकाग्रता ( वीर्य ), चेतना की एकाग्रता ( चित्त ), और इच्छाशक्ति के प्रयास से युक्त अन्वेषण की एकाग्रता ( विमंस )। इस प्रकार, ये अलौकिक ( लोकउत्तर ) हैं, अर्थात् मार्ग या मार्ग की सफलता से जुड़े हुए हैं। लेकिन प्रमुख कारकों के रूप में ये सांसारिक ( लोकीय ) भी हैं, क्योंकि कहा गया है: "चूंकि भिक्षु इरादे को प्रमुख कारक बनाकर एकाग्रता प्राप्त करता है, इसलिए इसे इरादे की एकाग्रता ( चंद-समाधि ) कहा जाता है, इत्यादि।"

शक्ति के ये चार मार्ग जादुई शक्ति की प्राप्ति और उसे अर्जित करने, जादुई रूपांतरण की शक्ति, जादुई शक्ति के सृजन और उसमें निपुणता और कौशल प्राप्त करने की ओर ले जाते हैं। एक बार जब भिक्षु इन चारों मार्गों को विकसित कर लेता है और उनका बार-बार अभ्यास करता है, तो वह विभिन्न जादुई शक्तियों का आनंद लेता है—दिव्य कान से स्वर्गीय और मानवीय ध्वनियों को सुनता है—अपने मन से अन्य प्राणियों के मन को अनुभव करता है—अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है—दिव्य दृष्टि से प्राणियों के मृत्यु-मृत्यु के बाद पुनर्जन्म को देखता है—पक्षपातों के नाश होने पर मन की मुक्ति और पूर्वाग्रहों से मुक्त ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त करता है।

हे भिक्षुओं, जिसने भी शक्ति के चारों मार्गों को खो दिया है, उसने दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले सही मार्ग को खो दिया है; परन्तु हे भिक्षुओं, जिसने भी शक्ति के चारों मार्गों को प्राप्त कर लिया है, उसने दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले सही मार्ग को प्राप्त कर लिया है।

iddhiyā ākāse yanti : आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त (अरहत) आकाश में विचरण करते हैं। अरहत को यह अहसास होता है कि जो करना था वह हो चुका है, दु:ख का भारी बोझ अंततः उतर गया है, और सभी प्रकार की लालसाएँ और अज्ञान के सभी रूप पूर्णतः नष्ट हो गए हैं। सुखी तीर्थयात्री अब स्वर्ग से भी ऊँची ऊँचाइयों पर खड़े हैं, अनियंत्रित भावनाओं और संसार के दोषों से दूर, निर्वाण के अवर्णनीय आनंद का अनुभव कर रहे हैं।

पुनर्जन्म का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि नए कर्मों से अब कोई प्रजनन बीज उत्पन्न नहीं होते। यद्यपि वे अरहत हैं, फिर भी वे शारीरिक कष्टों से पूर्णतः मुक्त नहीं हैं, क्योंकि मुक्ति का यह आनंद क्षणिक ही होता है, और उन्होंने अभी तक अपना भौतिक शरीर त्यागा भी नहीं है। अरहत को असिख कहा जाता है, अर्थात् वे जो प्रशिक्षण नहीं लेते, क्योंकि उन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया है और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। सोतापत्ति अवस्था से अरहत पथ अवस्था तक के अन्य संतों को सीख कहा जाता है क्योंकि वे अभी भी प्रशिक्षण ले रहे हैं।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना उचित होगा कि रूप और अरूप ध्यान विकसित कर चुके अनागामी और अरहत इस जीवन में भी सात दिनों तक निरंतर निर्वाणिक आनंद का अनुभव कर सकते हैं। पाली भाषा में इसे निरोध-समापत्ति कहते हैं । इस अवस्था में आर्य पूर्णतः पीड़ामुक्त होते हैं और उनकी सभी मानसिक गतिविधियाँ रुक जाती हैं। चेतना का प्रवाह अस्थायी रूप से थम जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 176

---

(धम्मपद 175) <<<< पिछला || धम्मपद 176 || अगला >>>> (धम्मपद 177)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 176 - सिन्कामनविका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Ekam dhammam atitassa
musavadissa jantuno
vitinnaparalokassa
natthi papam akariyam.

---

आयत 176 : जो सत्य का उल्लंघन करता है, झूठ बोलने का आदी है और परलोक के प्रति उदासीन है, उसके लिए कोई बुराई नहीं है जिसे करने का वह साहस न करे।

---

सिनकामनाविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने चिनकामनाविक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (176) कहा।

जैसे-जैसे बुद्ध धर्म का उपदेश देते गए, वैसे-वैसे अधिकाधिक लोग उनके अनुयायियों की ओर आकर्षित होते गए और अन्य धर्मों के तपस्वियों के अनुयायी कम होते चले गए। इसलिए उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी एक समर्पित शिष्या, अत्यंत सुंदर चिंचमनविका को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "यदि आप हमारे हित में हैं, तो कृपया हमारी सहायता करें और समना गौतम को लज्जित करें।" चिंचमनविका ने यह बात मान ली।

उसी शाम, वह कुछ फूल लेकर जेतवन मठ की ओर चल पड़ीं। जब लोग उनसे पूछते कि वे कहाँ जा रही हैं, तो वे कहतीं, "तुम्हें क्या पता कि मैं कहाँ जा रही हूँ?" फिर वे जेतवन मठ के पास अन्य तपस्वियों के स्थान पर जातीं और सुबह जल्दी लौट आतीं ताकि ऐसा लगे कि उन्होंने रात जेतवन मठ में बिताई है। पूछे जाने पर वे कहतीं, "मैंने समना गौतम के साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रात बिताई।" तीन-चार महीने बीतने के बाद, उन्होंने अपने पेट को कपड़े से लपेट लिया ताकि वे गर्भवती लगें। फिर, आठ-नौ महीने बाद, उन्होंने

अपने पेट को पतले लकड़ी के गोल तख्ते से लपेट लिया; उन्होंने अपनी हथेलियों और पैरों को पीट-पीटकर फुला लिया और थकावट और कमजोरी का नाटक किया। इस प्रकार, उन्होंने गर्भावस्था के अंतिम चरण में एक महिला का पूर्ण रूप धारण कर लिया। फिर, शाम को, वे बुद्ध से मिलने जेतवन मठ गईं।

उस समय बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों की सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। उन्हें मंच पर उपदेश देते देख, उसने बुद्ध पर यह आरोप लगाया: "हे बड़े समना! आप तो केवल दूसरों को ही उपदेश देते हैं। मैं आपसे गर्भवती हूँ, फिर भी आप मेरे प्रसव के लिए कुछ नहीं करते। आपको तो केवल अपने सुख का ही ज्ञान है!" बुद्ध ने कुछ देर के लिए उपदेश रोक दिया और उससे कहा, "बहन, केवल आप और मैं ही जानते हैं कि आप सच कह रही हैं या नहीं," और चिनचमनविका ने उत्तर दिया, "हाँ, आप सही कह रहे हैं, जो बात केवल आप और मैं जानते हैं, उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं?"

उसी क्षण, देवताओं के राजा सक्का को जेतवन मठ में पनप रही गड़बड़ी का पता चला, इसलिए उन्होंने अपने चार देवदूतों को युवा चूहों के रूप में भेजा। चारों चूहे चिंचमनविका के वस्त्रों के नीचे घुस गए और उसके पेट के चारों ओर बंधी लकड़ी की डोरियों को काट डाला। डोरियाँ टूटते ही लकड़ी की डोरी नीचे गिर गई, जिससे उसके पैरों का अगला भाग कट गया। इस प्रकार चिंचमनविका का छल उजागर हो गया, और भीड़ में से कई लोग क्रोध में चिल्ला उठे, "हे दुष्ट स्त्री! झूठी और धोखेबाज़! हमारे परम गुरु पर आरोप लगाने की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई!" उनमें से कुछ ने उस पर थूका और उसे बाहर निकाल दिया। वह जितनी तेज़ी से भाग सकती थी भागी, और कुछ दूर जाने पर धरती फट गई और वह उसमें समा गई।

अगले दिन, जब भिक्षु चिनचमनविका के बारे में चर्चा कर रहे थे, तब बुद्ध उनके पास आए और बोले, "भिक्षु, जो झूठ बोलने से नहीं डरता और भविष्य में क्या होगा इसकी परवाह नहीं करता, वह कोई भी बुराई करने से नहीं हिचकेगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

आयत 176 : जो सत्य का उल्लंघन करता है, झूठ बोलने का आदी है और परलोक के प्रति उदासीन है, उसके लिए कोई बुराई नहीं है जिसे करने का वह साहस न करे।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिंकामानविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चिंचमानविका के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जैसे-जैसे बुद्ध धर्म का उपदेश देते गए, वैसे-वैसे अधिकाधिक लोग उनके अनुयायियों की ओर आकर्षित होते गए और अन्य धर्मों के तपस्वियों के अनुयायी घटते चले गए। इसलिए उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी एक समर्पित शिष्या, अत्यंत सुंदर चिंचामानविका को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, “यदि आप हमारे हित में हैं, तो कृपया हमारी सहायता करें और समना गौतम को लज्जित करें।” चिंचामानविका ने यह बात मान ली।

उसी शाम, वह कुछ फूल लेकर जेतवन मठ की ओर चल पड़ीं। जब लोग उनसे पूछते कि वे कहाँ जा रही हैं, तो वे कहतीं, “तुम्हें क्या पता कि मैं कहाँ जा रही हूँ?” फिर वे जेतवन मठ के पास अन्य तपस्वियों के स्थान पर जातीं और सुबह जल्दी लौट आतीं ताकि ऐसा लगे कि उन्होंने रात जेतवन मठ में बिताई है। पूछे जाने पर वे कहतीं, “मैंने समना गौतम के साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रात बिताई।” तीन-चार महीने बीतने के बाद, उन्होंने अपने पेट को कपड़े से लपेट लिया ताकि वे गर्भवती लगें। फिर, आठ-नौ महीने बाद, उन्होंने अपने पेट को पतले लकड़ी के गोल तख्ते से लपेट लिया; उन्होंने अपनी हथेलियों और पैरों को पीट-पीटकर फुला लिया और थकावट और कमजोरी का नाटक किया। इस प्रकार, उन्होंने गर्भावस्था के अंतिम चरण में एक महिला का पूर्ण रूप धारण कर लिया। फिर, शाम को, वे बुद्ध से मिलने के लिए जेतवन मठ गईं।

उस समय बुद्ध भिक्षुओं और गृहस्थों की सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। उन्हें मंच पर उपदेश देते देख, एक स्त्री ने बुद्ध पर यह आरोप लगाया: “हे बड़े समना! आप तो केवल दूसरों को ही उपदेश देते हैं। मैं आपसे गर्भवती हूँ, फिर भी आप मेरे प्रसव के लिए कुछ नहीं करते। आपको तो केवल अपने सुख का ही ज्ञान है!” बुद्ध ने कुछ देर के लिए उपदेश देना बंद कर दिया और उससे कहा, “बहन, केवल तुम और मैं ही जानते हैं कि तुम सच कह रही हो या नहीं,” और चिन्कामानविका ने उत्तर दिया, “जी हाँ, आप सही कह रहे हैं, जो बात केवल आप और मैं जानते हैं, उसे दूसरे कैसे जान सकते हैं?”

उसी क्षण, देवताओं के राजा सक्का को जेतवन मठ में हुई गड़बड़ी का पता चला, इसलिए उन्होंने अपने चार देवताओं को युवा चूहों के रूप में भेजा। चार चूहे चिंचामानविका के वस्त्रों के नीचे घुस गए और उनके पेट के चारों ओर बंधी लकड़ी की डोरियों को काट डाला। डोरियाँ टूटते ही लकड़ी की डोरी नीचे गिर गई। इस प्रकार, चिंचामानविका का छल उजागर हो गया, और भीड़ में से कई लोग क्रोध में चिल्ला उठे, “हे दुष्ट स्त्री! झूठी और धोखेबाज! तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई बुद्ध पर आरोप लगाने की!” उनमें से कुछ ने उस पर थूका और

उसे बाहर निकाल दिया। वह जितनी तेज़ी से भाग सकती थी भागी, और जब वह कुछ दूर गई तो धरती फट गई और उसमें दरार पड़ गई और वह उसमें समा गई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 176)

एकं धम्मं अतितास मुसावदिस्सा वितिण

परलोकस्सा जन्तुनो अकार्यं पापं नत्थि

एकं धम्मं [ धम्म ]: वह एक सद्गुण (सत्यवादिता); अतितस्स : उल्लंघन करने वाला; मुसावादिस्स : झूठ बोलने वाला; वितिष्ण परलोकस्स : जिसने परलोक त्याग दिया है; जंतुनो [ जंटुना ]: ऐसे व्यक्ति द्वारा; अकारियं पापं [ पाप ]: एक ऐसा बुरा कर्म जो नहीं किया जा सकता; नत्थि : नहीं है

सत्यवादिता का गुण त्यागने वाला दुष्ट व्यक्ति परलोक की सभी आशाओं को त्याग देता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 176)

झूठ बोलने वाला व्यक्ति । झूठ का विपरीत सत्य है। धम्म के अभ्यास से हम सत्य के दो स्तरों, सापेक्ष और परम, के बारे में अधिक जागरूक हो जाते हैं, पहले स्तर की क्षणिक प्रकृति को समझते हैं और दूसरे स्तर को समझने का प्रयास करते हैं।

ज्ञानोदय के क्षण में, जैसा कि बुद्ध और अन्य ऋषियों के मामले में हुआ, उस परम सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है जिसे हम 'वास्तविक सत्य' या 'धर्मों का वास्तविक स्वरूप देखना' कह सकते हैं, जिससे बौद्ध मार्ग के सभी चरणों को जोड़ने वाला एक सत्य सूत्र स्थापित हो जाता है। निर्वाण का अनुभव होने के बाद, जैसा कि बुद्ध ने कहा है, "सत्य अद्वितीय है।" इस पूर्णता का अभ्यास एक विनम्र स्तर पर विधुर-पंडित की प्रसिद्ध जन्म कथा में देखा जा सकता है, जिन्हें जंगल में एक नरभक्षी ने बंदी बना लिया था। उन्होंने इतनी निर्भीकता से अपनी मृत्यु की व्यवस्थित तैयारी की कि उनके बंदी बनाने वाले की जिज्ञासा जागृत हो गई। विधुर-पंडित ने उनकी सत्यनिष्ठा की परीक्षा के लिए उन्हें कुछ समय के लिए अपने शहर लौटने की अनुमति दी। यद्यपि उनसे कम योग्य कई अन्य लोगों ने नरभक्षी की भूख मिटाने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया, विधुर-पंडित ने स्वयं अपने वादे के अनुसार लौटने पर जोर दिया। उसकी सत्यनिष्ठा का फल यह हुआ कि नरभक्षी उसकी महानता से बहुत प्रभावित हुआ, उसे उसके दायित्वों से मुक्त कर दिया और स्वयं पांच सिद्धांतों का पालन करने लगा।

natthi pāpaṃ akāriyaṃ : असत्य, आत्मसम्मान से रहित, परलोक में विश्वास न रखने वाला और बुराई के परिणामों से भयभीत न होने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार का पाप करने के लिए उत्तरदायी होता है। ऐसा व्यक्ति न तो सांसारिक सुख, न ही स्वर्गीय सुख और न ही निर्वाणिक सुख का अनुभव करता है। (टीका)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 177

(धम्मपद 176) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 177 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 178)

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 177 - असादिसादन वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

न वे कादरिया देवलोकं वजन्ति

bala have nappasamsanti danam

dhiro ca danam anumodamano

टेनेवा सो होती सुखी पराठा।

---

श्लोक 177 : निःसंदेह, कंजूस लोग देवताओं के धाम में नहीं जाते; मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; परन्तु बुद्धिमान लोग दान में प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार परलोक में सुख प्राप्त करते हैं।

---

अद्वितीय दान-पुण्य की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के अद्वितीय दान के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (177) कहा।

एक बार राजा ने बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भव्य दान दिया। उनकी प्रजा ने उनसे प्रतिस्पर्धा करते हुए राजा से भी बड़े पैमाने पर एक और दान समारोह आयोजित किया। इस प्रकार, राजा और उनकी प्रजा के बीच दान देने की होड़ जारी रही। अंततः, रानी मल्लिका ने एक योजना बनाई; इस योजना को लागू करने के लिए उन्होंने राजा से एक भव्य मंडप बनवाने का अनुरोध किया। फिर उन्होंने पाँच सौ सफेद छतरियाँ और पाँच सौ पालतू हाथी मंगवाए; इन पाँच सौ हाथियों को पाँच सौ भिक्षुओं के ऊपर पाँच सौ सफेद छतरियाँ थामे रखना था। मंडप के बीच में दस नावें रखी गईं जो इत्र और अगरबत्ती से भरी हुई थीं। वहाँ ढाई सौ राजकुमारियाँ भी थीं, जो पाँच सौ भिक्षुओं को पंखा झलती रहती थीं। चूंकि राजा की प्रजा के पास न तो राजकुमारियाँ थीं, न सफेद छतरियाँ और न ही हाथी, इसलिए वे राजा से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकीं। जब सभी तैयारियाँ पूरी हो गईं, तो दान-भोजन परोसा गया। भोजन के बाद, राजा ने मंडप में मौजूद सभी वस्तुओं का दान किया, जिनकी कीमत चौदह करोड़ रुपये थी।

उस समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। उनमें से जुन्हा नामक मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को इतनी उदारता से दान देने के लिए राजा की प्रशंसा की। उसने यह भी कहा कि ऐसा दान केवल एक राजा ही दे सकता है। वह इस बात से बहुत खुश था कि राजा अपने अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँट रहा था। संक्षेप में, मंत्री जुन्हा राजा के अद्वितीय दान में उनके साथ प्रसन्न था। दूसरी ओर, मंत्री काला का मानना था कि राजा एक ही दिन में चौदह करोड़ रुपये दान करके केवल धन की बर्बादी कर रहा है और भिक्षु मठ में जाकर सो जाएँगे।

भोजन के बाद, बुद्ध ने श्रोताओं की ओर देखा और जान गए कि मंत्री काल कैसा महसूस कर रहा है। फिर उन्होंने सोचा कि यदि वे प्रशंसा का लंबा प्रवचन देंगे, तो काल और अधिक असंतुष्ट हो जाएगा, और फलस्वरूप उसे अगले जन्म में और अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा। अतः काल पर दया करते हुए, बुद्ध ने संक्षिप्त प्रवचन दिया और जेतवन मठ लौट गए। राजा को प्रशंसा के लंबे प्रवचन की उम्मीद थी, इसलिए बुद्ध के संक्षिप्त प्रवचन से वे बहुत दुखी हुए। राजा को लगा कि शायद उन्होंने कुछ ऐसा नहीं किया जो किया जाना चाहिए था, और इसलिए वे मठ गए।

राजा को देखकर बुद्ध ने कहा, "महाराज! आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने अद्वितीय दान (असदिसादना) करने में सफलता प्राप्त की है। ऐसा अवसर बहुत दुर्लभ होता है; प्रत्येक बुद्ध के प्रकट होने पर यह केवल एक बार आता है। लेकिन आपके मंत्री काल को यह व्यर्थ लगा और उन्होंने इसकी बिल्कुल भी सराहना नहीं की। इसलिए, यदि मैं लंबा प्रवचन देता, तो वे और अधिक असंतुष्ट और असहज हो जाते, और परिणामस्वरूप, उन्हें इस जन्म में और अगले जन्म में भी अधिक कष्ट भोगना पड़ता। इसीलिए मैंने संक्षेप में प्रवचन दिया।"

तब बुद्ध ने आगे कहा, "हे महाराज! मूर्ख लोग दूसरों द्वारा दिए गए दान में प्रसन्न नहीं होते और निम्न लोकों में चले जाते हैं। बुद्धिमान लोग दूसरों के दान में प्रसन्न होते हैं और कृतज्ञता के माध्यम से दूसरों द्वारा अर्जित पुण्य में भागीदार होते हैं और देवताओं के धाम में जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 177 : निःसंदेह, कंजूस लोग देवताओं के धाम में नहीं जाते; मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; परन्तु बुद्धिमान लोग दान में प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार परलोक में सुख प्राप्त करते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सिंकामानविका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के अद्वितीय दान-पुण्य के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार राजा ने बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भव्य दान दिया। उनकी प्रजा ने उनसे प्रतिस्पर्धा करते हुए राजा से भी बड़े पैमाने पर एक और दान समारोह आयोजित किया। इस प्रकार, राजा और उनकी प्रजा के बीच दान देने की होड़ जारी रही। अंततः, रानी मल्लिका ने

एक योजना बनाई: इस योजना को लागू करने के लिए, उन्होंने राजा से एक भव्य मंडप बनवाने का अनुरोध किया। इसके बाद, उन्होंने पाँच सौ सफेद छतरियाँ और पाँच सौ पालतू हाथी मंगवाए: ये पाँच सौ हाथी पाँच सौ भिक्षुओं के ऊपर पाँच सौ सफेद छतरियाँ थामे रहेंगे। मंडप के बीच में, उन्होंने इत्र और अगरबत्ती से भरी दस नावें रखीं। साथ ही ढाई सौ राजकुमारियाँ भी थीं, जो पाँच सौ भिक्षुओं को पंखा झलती रहती थीं। चूंकि राजा की प्रजा के पास न तो राजकुमारियाँ थीं, न सफेद छतरियाँ और न ही हाथी, इसलिए वे राजा से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। जब सभी तैयारियाँ पूरी हो गईं, तो दान-भोजन अर्पित किया गया। भोजन के बाद, राजा ने मंडप में रखी सभी वस्तुओं का दान किया, जिनका मूल्य चौदह अरब था।

उस समय राजा के दो मंत्री उपस्थित थे। उनमें से जुन्हा नामक मंत्री बहुत प्रसन्न था और उसने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को इतनी उदारता से दान देने के लिए राजा की प्रशंसा की। उसने यह भी कहा कि ऐसा दान केवल एक राजा ही दे सकता है। वह बहुत खुश था क्योंकि राजा अपने अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँट रहा था। संक्षेप में, मंत्री जुन्हा राजा के अद्वितीय दान में उसके साथ प्रसन्न था। दूसरी ओर, मंत्री काल का मानना था कि राजा एक ही दिन में चौदह अरब दान देकर केवल धन की बर्बादी कर रहा है और भिक्षु मठ में जाकर सो जाएँगे। भोजन के बाद, बुद्ध ने उपस्थित लोगों की ओर देखा और मंत्री काल की भावनाओं को समझ गए। फिर उन्होंने सोचा कि यदि वे प्रशंसा का लंबा प्रवचन देंगे, तो काल और अधिक असंतुष्ट हो जाएगा और परिणामस्वरूप उसे अगले जन्म में और अधिक कष्ट भोगना पड़ेगा।

राजा को देखकर बुद्ध ने कहा, “महाराज! आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने अद्वितीय दान ( असदिसदान ) करने में सफलता प्राप्त की है। ऐसा अवसर बहुत दुर्लभ होता है: प्रत्येक बुद्ध के प्रकट होने पर यह केवल एक बार आता है। लेकिन आपके मंत्री काल ने इसे व्यर्थ समझा और इसकी बिल्कुल भी सराहना नहीं की। इसलिए, यदि मैं लंबा प्रवचन देता, तो वह और अधिक असंतुष्ट और असहज हो जाता, और परिणामस्वरूप, उसे इस जन्म में और अगले जन्म में भी अधिक कष्ट भोगना पड़ता। इसीलिए मैंने संक्षेप में प्रवचन दिया।” फिर बुद्ध ने आगे कहा, “महाराज! मूर्ख लोग दूसरों द्वारा दिए गए दान में प्रसन्न नहीं होते और निम्न लोकों में चले जाते हैं। बुद्धिमान लोग दूसरों के दान में प्रसन्न होते हैं, और सराहना के माध्यम से, वे दूसरों द्वारा अर्जित पुण्य में भागीदार होते हैं और देवताओं के धाम में जाते हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 177)

कादरिया वे देवलोकं न वजन्ति , बाला हवे दानं नप्पसंशन्ति

धीरो च दानं अनुमोदमानो सो तेन एव परत सुखी होति

कदरिया : अत्यंत कंजूस; वे : निश्चित रूप से; देवलोक : देवताओं का लोक; न वजंति : न पहुँचें; बाला : अज्ञानी; हैव : निश्चित रूप से; दान : दान ; नप्पसंसन्ति : प्रशंसा न करें; धीरो च : जहाँ तक बुद्धिमान श्रेष्ठ व्यक्ति का सवाल है; दान : दान का कार्य; अनुमोदमानो : प्रसन्न होना; इसलिए : वह (अतः); तेन एव : उसी स्वीकृति के द्वारा; परत्थ : अगले जन्म में; सुखी : सुख का आनंद लेने वाला; होति : हो जाता है

अत्यंत कंजूस लोग स्वर्गलोक नहीं पहुँच पाते। दुष्ट और अज्ञानी लोग दान-पुण्य को स्वीकार नहीं करते। परन्तु बुद्धिमान और श्रेष्ठ लोग दान-पुण्य को स्वीकार करते हैं और स्वयं भी दान करते हैं। फलस्वरूप वे अगले जन्म में सुखी होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 177)

दान : परोपकार का कार्य: उदारता। दान प्रथम सिद्धि ( पारामी ) है। यह दाता को स्वार्थ के अनैतिक विचारों को रोकने और निस्वार्थता के शुद्ध विचारों को विकसित करने का दोहरा आशीर्वाद प्रदान करता है। “यह देने वाले और लेने वाले दोनों को आशीर्वाद देता है।” एक बोधिसत्व को इस बात की चिंता नहीं होती कि प्राप्तकर्ता वास्तव में जरूरतमंद है या नहीं, क्योंकि उदारता का अभ्यास करने का उनका एकमात्र उद्देश्य अपने भीतर सुप्त लालसा को समाप्त करना है। सेवा का आनंद, उससे प्राप्त सुख और दुखों का निवारण उदारता के अन्य आशीर्वाद हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 178

---

(धम्मपद 177) <<<< पिछला || धम्मपद 178 || अगला >>>> (धम्मपद 179 और 180)

---

अंतर्वस्तु

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 178 - अनाथपिंडिकापुत्तकला वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
पथब्या एकराज्जेना
saggassa gamanena va
sabbalokadhipacce na
sotapattifalam varam.

---

श्लोक 178 : पृथ्वी पर प्रभुत्व से कहीं श्रेष्ठ, या देवों के निवासों में जाने से कहीं श्रेष्ठ, या संपूर्ण ब्रह्मांड पर सर्वोच्च शासन करने से कहीं श्रेष्ठ, सोतापत्ति फल की प्राप्ति है।

---

अनाथपिण्डिक के पुत्र कला की कथा
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (178) का उच्चारण किया, जिसमें सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के पुत्र काला का उल्लेख किया गया है।
अनाथपिंडिका का पुत्र काला, जब भी बुद्ध और उनके भिक्षुओं का समूह उनके घर आता, हमेशा उनसे दूर रहता था। अनाथपिंडिका को डर था कि यदि उसका पुत्र इसी प्रकार व्यवहार करता रहा, तो उसका पुनर्जन्म किसी निम्न लोक (अपय) में होगा। इसलिए, उसने अपने पुत्र को धन का लालच दिया। उसने वादा किया कि यदि युवक मठ जाकर एक दिन का उपवास रखेगा, तो वह उसे सौ रुपये देगा। इसलिए, युवक मठ गया और अगले दिन सुबह जल्दी घर लौट आया, बिना कोई धार्मिक प्रवचन सुने। उसके पिता ने उसे चावल का दलिया दिया, लेकिन उसने भोजन करने के बजाय सबसे पहले धन की मांग की।
अगले दिन पिता ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, यदि तुम बुद्ध से शास्त्र का एक श्लोक सीख लो, तो लौटने पर मैं तुम्हें एक हजार श्लोक दूंगा।" अतः काला फिर से मठ गया और बुद्ध से कहा कि वह कुछ सीखना चाहता है। बुद्ध ने उसे एक छोटा श्लोक याद करने को दिया; साथ ही उन्होंने यह इच्छा भी की कि युवक उसे पूरी तरह से याद न कर पाए। इस प्रकार, युवक को एक ही श्लोक को कई बार दोहराना पड़ा, परन्तु बार-बार दोहराने के कारण अंततः उसे धम्म का पूर्ण अर्थ समझ में आ गया और उसने सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया।
अगली सुबह सवेरे, वह बुद्ध और भिक्षुओं के पीछे-पीछे अपने घर लौट आया। उस दिन वह मन ही मन सोच रहा था, "काश मेरे पिता बुद्ध के सामने मुझे एक हजार न देते। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने केवल धन के लिए व्रत रखा था।" उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को, और उसे भी, चावल का दलिया दिया। फिर उसके पिता एक हजार लेकर आए और काला को पैसे लेने को कहा, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि उसने लेने से इनकार कर दिया। उसके पिता ने उसे पैसे लेने के लिए ज़ोर दिया, लेकिन उसने फिर भी इनकार कर दिया। तब अनाथपिंडिका ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय गुरु, मेरा पुत्र बिल्कुल बदल गया है; अब वह बहुत ही सुखद व्यवहार करता है।" फिर उसने बुद्ध को बताया कि कैसे उसने युवक को धन का लालच देकर मठ में व्रत रखने और कुछ धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए राजी किया था। बुद्ध ने उनसे कहा, "अनाथपिंडिका! आज तुम्हारे पुत्र ने सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया है, जो सार्वभौम सम्राट, देवों (देवदूतों) या ब्रह्माओं के धन से कहीं श्रेष्ठ है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 178 : पृथ्वी पर प्रभुत्व से कहीं श्रेष्ठ, या देवों के निवासों में जाने से कहीं श्रेष्ठ, या संपूर्ण ब्रह्मांड पर सर्वोच्च शासन करने से कहीं श्रेष्ठ, सोतापत्ति फल की प्राप्ति है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
अनाथपिण्डिक के पुत्र काल की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के प्रसिद्ध धनी व्यक्ति अनाथपिंडिका के पुत्र काल के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अनाथपिंडिक के पुत्र काल, जब भी बुद्ध और उनके भिक्षुओं का समूह उनके घर आता, हमेशा दूर ही रहता था। अनाथपिंडिक को डर था कि यदि उनका पुत्र इसी प्रकार व्यवहार करता रहा, तो उसका पुनर्जन्म निम्न लोकों (अपायों) में होगा। इसलिए, उन्होंने अपने पुत्र को धन का लालच दिया। उन्होंने वादा किया कि यदि युवक एक दिन के लिए मठ जाकर व्रत रखेगा, तो वे उसे सौ रुपये देंगे। इसलिए, युवक मठ गया और अगले दिन सुबह जल्दी घर लौट आया, बिना कोई धार्मिक प्रवचन सुने। उसके पिता ने उसे चावल का दलिया दिया, लेकिन उसने भोजन करने के बजाय सबसे पहले धन की मांग की।

अगले दिन पिता ने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र, यदि तू बुद्ध से शास्त्र का एक श्लोक याद कर ले, तो लौटकर मैं तुझे एक हजार श्लोक दूंगा।" अतः काल फिर से मठ गया और बुद्ध से कहा कि वह कुछ सीखना चाहता है। बुद्ध ने उसे एक छोटा श्लोक याद करने को दिया और साथ ही यह इच्छा भी की कि वह युवक उसे पूरी तरह से याद न कर पाए। इस प्रकार, युवक को एक ही श्लोक को कई बार दोहराना पड़ा, परन्तु बार-बार दोहराने के कारण अंततः उसे धम्म का पूर्ण अर्थ समझ में आ गया और उसने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

अगली सुबह, वह बुद्ध और भिक्षुओं के पीछे-पीछे अपने घर गया। लेकिन उस दिन वह मन ही मन सोच रहा था, "काश मेरे पिता बुद्ध के सामने मुझे एक हजार न देते। मैं नहीं चाहता कि बुद्ध को पता चले कि मैंने केवल पैसों के लिए व्रत रखा था।" उसके पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को, और उसे भी, चावल का दलिया दिया। फिर, उसके पिता एक हजार लेकर आए और काला को पैसे लेने को कहा, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि उसने मना कर दिया। उसके पिता ने उसे पैसे लेने के लिए ज़ोर दिया, लेकिन उसने फिर भी मना कर दिया।

तब अनाथपिंडिका ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, आज मेरे पुत्र का व्यवहार मुझे प्रसन्न कर रहा है।" "यह कैसे, महाधन्यवाद?" "परसों मैंने उसे मठ में यह कहकर भेजा था कि मैं तुम्हें सौ सोने के सिक्के दूंगा। कल उसने भोजन नहीं किया क्योंकि मैंने उसे पैसे नहीं दिए थे; परन्तु आज जब मैंने उसे पैसे दिए, तो उसने उन्हें छूने से भी इनकार कर दिया।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "यह सच है, महाधन्यवाद। आज, धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त करके, आपके पुत्र ने वह प्राप्ति कर ली है जो सार्वभौम सम्राट की प्राप्ति, देवताओं के लोक की प्राप्ति, ब्रह्मा के लोक की प्राप्ति से भी बढ़कर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 178)

पथव्या एकराजजेना , सग्गस्सा गमनेन वा ,

सब्बलोकाधिपच्चेन , सोतापत्तिफलं वरं

पथव्य : पूरी पृथ्वी का; एकराज्जेन : एकमात्र राजा; सग्गस्स : स्वर्ग लोकों तक; गमनेन वा : साथ-साथ चलने वाला; सब्बलोकधिपच्चेन : सार्वभौमिक राजा; सोतापत्तिफल : धारा - संग्रह का फल; वर : (उन सभी से) महान

धारा-प्रबंधन के फल की प्राप्ति आध्यात्मिक सफलता की प्राप्ति का प्राथमिक चरण है। यह अवस्था सर्वव्यापी सम्राट होने या स्वर्ग प्राप्त करने से भी श्रेष्ठ है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 178)

पथव्य एकरज्जेन : पृथ्वी पर एकमात्र शासक होना। पारंपरिक कथाओं के अनुसार, कुछ युगों में एक सार्वभौमिक राजा प्रकट होता है। वह पूरी पृथ्वी पर शासन करता है। इस पद को पृथ्वी पर सर्वोच्च और सर्वोपरि माना जाता है। परंपरा के अनुसार, केवल वही व्यक्ति इस अद्वितीय सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है जो अपने सभी पुण्य कर्मों का फल एक साथ भोगने में सक्षम हो। इस कथा के अनुसार, पृथ्वी पर उसके आगमन की भविष्यवाणी देवताओं के समूह द्वारा उसके आगमन से एक शताब्दी पहले की जाती है। वह सात महान खजानों का स्वामी बनता है। ये सार्वभौमिक राजा उच्चतम भौतिक और सांसारिक विलासिता के प्रतीक हैं। परंपरा कहती है कि इनमें से कोई भी दो राजा एक ही समय में विश्व में प्रकट नहीं होंगे। जब कोई सार्वभौमिक राजा शासन कर रहा हो तब बुद्ध प्रकट नहीं होंगे, और न ही जब कोई बुद्ध पृथ्वी पर प्रकट हो चुका हो तब कोई सार्वभौमिक राजा प्रकट होगा।

सोतापत्ति : यहाँ सोता का अर्थ है वह धारा जो निर्वाण की ओर ले जाती है। यह श्रेष्ठ अष्टमार्ग है। ' आ ' का अर्थ है पहली बार। ' पत्ति ' का अर्थ है प्राप्ति। सोतापत्ति का अर्थ है धारा की पहली बार प्राप्ति। यह पहली बार निर्वाण का अहसास है। यह संतत्व का पहला चरण है। धारा-प्राप्तकर्ता दुखद अवस्थाओं में जन्म नहीं लेते, परन्तु सांसारिक महान लोग इससे मुक्त नहीं हैं।

अध्याय 14. बुद्धवग्ग: बुद्ध (179-196)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 179,180

---

(धम्मपद178) <<<< पिछला|| धम्मपद 179 और 180 ||अगला >>>> (धम्मपद181)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 179 और 180 - मराधितारा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa jitam navajiyati(1)
जीतम यस्सा नोयति कोसि लोके(2)
tam buddhamanantagocaram(3)
अपदम(4) केना पदेन नेसथः।
Yassa jalini visattika
tanha nathti kuhinci netave
tam buddhamanantagocaram
अपदम केना पड़ेना नेसथ(5)

---

श्लोक 179 : बुद्ध, जिन्होंने (नैतिक विकारों पर) पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिनमें इस संसार में आगे कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

---

श्लोक 180 : बुद्ध, जिनमें कोई लालसा नहीं है, जो उन्हें जाल की तरह किसी भी अस्तित्व (संसार) में वापस ले आए, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

---

1. जितम नवजियाति: 'विजय पूर्ण हो गई है' का अर्थ है कि आगे और विजय की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब और कोई नैतिक दोष नहीं हैं जिन पर विजय प्राप्त करनी हो।
2. jitam yassa no'yati koci loke: शाब्दिक अर्थ: जिनके विरक्त दोषों का इस संसार में कोई और दोष नहीं हो सकता।
3. अनंतगोकारम: बुद्ध के ज्ञान की सीमा उनकी सर्वज्ञता, सब्बानुता नाना के कारण अनंत है।
4. अपदम: शाब्दिक अर्थ, 'बिना मार्ग वाला'। बुद्ध, तृष्णा, आसक्ति, वासना आदि जैसे पुनर्जन्म के बंधनों से मुक्त होकर, संसार में अपने मार्ग या यात्रा को समाप्त कर चुके हैं। (टिप्पणी)
[यही विचार आयत 92 और 93 में भी व्यक्त किया गया है, जिनमें यह बताया गया है कि अरहत इस कदर इस दुनिया से चले जाते हैं कि वे अपने पीछे अस्तित्व का कोई निशान नहीं छोड़ते, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी हवा में उड़ते हुए अपना निशान छोड़ जाता है।]
5. केना पदेना नेसथा: शाब्दिक अर्थ, तुम उसे किस मार्ग से ले जाओगे? इसका अर्थ है कि वह किसी भी प्रलोभन से बहकाया नहीं जा सकता।

---

मारा (अर्थात शैतान/शैतान की) की तीन बेटियों की कहानी
बुद्ध ने सबसे पहले बोधि वृक्ष के पास निवास करते हुए इस पुस्तक के श्लोक (179) और (180) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने मारा की तीन पुत्रियों का उल्लेख किया। उन्होंने कुरु देश की यात्रा के दौरान ब्राह्मण मगंदिया को ये श्लोक दोहराए।
कुरु राज्य में ब्राह्मण मगंदिया और उनकी पत्नी अपनी अत्यंत सुंदर पुत्री मगंदिया के साथ रहते थे। मगंदिया इतनी सुंदर थी कि उसके पिता ने उसके सभी दूल्हों को कठोर भाव से ठुकरा दिया। एक दिन, सुबह-सुबह जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने पाया कि ब्राह्मण मगंदिया और उनकी पत्नी के लिए अनागामी पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। अतः, बुद्ध ने अपना कुंड और वस्त्र लेकर उस स्थान की ओर प्रस्थान किया जहाँ ब्राह्मण अग्नि यज्ञ करने जाते थे।

बुद्ध को देखते ही ब्राह्मण ने तुरंत निर्णय लिया कि बुद्ध ही उसकी पुत्री के योग्य हैं। उसने बुद्ध से वहीं रुकने की विनती की और अपनी पत्नी और पुत्री को लाने के लिए जल्दी से चला गया। बुद्ध ने अपना पदचिह्न छोड़ा और पास ही एक दूसरे स्थान पर चले गए। जब ब्राह्मण और उसका परिवार वहाँ पहुँचा, तो उन्हें केवल पदचिह्न ही मिला। पदचिह्न देखकर ब्राह्मण की पत्नी ने कहा कि यह उस व्यक्ति का पदचिह्न है जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है। तब ब्राह्मण ने बुद्ध को देखा और अपनी पुत्री का विवाह उनसे करने का प्रस्ताव रखा।

बुद्ध ने न तो प्रस्ताव स्वीकार किया और न ही अस्वीकार किया, बल्कि पहले उन्होंने ब्राह्मण को बताया कि बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद मारा की पुत्रियों ने उन्हें कैसे प्रलोभित किया। बुद्ध ने मारा की सुंदर पुत्रियों तन्हा, आरती और रागा से कहा था, "जो व्यथा, आसक्ति और वासना से मुक्त है, उसे प्रलोभित करने का कोई लाभ नहीं है, क्योंकि वह किसी भी प्रलोभन से प्रभावित नहीं हो सकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 179 : बुद्ध, जिन्होंने (नैतिक विकारों पर) पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है, जिनमें इस संसार में आगे कोई विकार उत्पन्न नहीं हो सकता, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

---

श्लोक 180 : बुद्ध, जिनमें कोई लालसा नहीं है, जो उन्हें जाल की तरह किसी भी अस्तित्व (संसार) में वापस ले आए, वे अनंत ज्ञान वाले बुद्ध, जो मार्गहीन हैं, - आप उन्हें किस मार्ग से ले जाएंगे?

---

तब बुद्ध ने आगे कहा, "ब्राह्मण मगंदिया, जब मैंने मारा की उन अद्वितीय पुत्रियों को देखा, तब भी मेरे मन में कोई कामुक इच्छा उत्पन्न नहीं हुई। आख़िर तुम्हारी पुत्री का यह शरीर कैसा है? यह मूत्र और मैल से भरा है; मैं इसे अपने पैर से भी छूना नहीं चाहता!" बुद्ध के ये शब्द सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया। बाद में वे संघ में शामिल हो गए और अंततः दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

तेरहवें अध्याय का अंत: लोकवग्ग (विश्व)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

मारा की तीन बेटियों की कहानी

बोधि वृक्ष के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने मारा की तीन पुत्रियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे। उन्होंने ये श्लोक कुरुओं के राज्य के ब्राह्मण मागंदिया को सुनाए। कुरुओं के राज्य में रहने वाले मागंदिया नामक एक ब्राह्मण की पुत्री का नाम भी मागंदिया था, जो अत्यंत सुंदर थी। अनेक धनी और प्रतिष्ठित ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे और उन्होंने मागंदिया को संदेश भेजा, "हमें अपनी पुत्री दे दो।" परन्तु उन्होंने सभी को यह कहकर अस्वीकार कर दिया, "तुम मेरी पुत्री के योग्य नहीं हो।"

एक दिन, जब बुद्ध ने भोर होते हुए संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने देखा कि मागंदिया उनके ज्ञान के जाल में प्रवेश कर चुका है। वह ब्राह्मण प्रतिदिन गाँव के बाहर अग्नि की देखभाल करता था; इसलिए बुद्ध सुबह सवेरे ही कुंड और वस्त्र लेकर उसी स्थान पर गए। बुद्ध के भव्य स्वरूप को देखकर ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "इस संसार में इस पुरुष के समान कोई पुरुष नहीं है; यह पुरुष मेरी पुत्री के लिए उपयुक्त है; मैं अपनी पुत्री का विवाह इसी पुरुष से कराऊँगा।" उसने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी एक पुत्री है, और मैंने उसके लिए उपयुक्त वर की व्यर्थ ही खोज की है। मैंने उसका विवाह किसी से नहीं कराया है। परन्तु आप उसके लिए उपयुक्त हैं। मैं अपनी पुत्री का विवाह आपको देना चाहता हूँ; जब तक मैं उसे लेकर न आऊँ, आप यहीं प्रतीक्षा कीजिए।" बुद्ध ने उसकी बातें सुनीं, परन्तु उन्होंने न तो स्वीकृति व्यक्त की और न ही अस्वीकृति।

अतः ब्राह्मण ने अपनी पुत्री को सुंदर वस्त्र पहनाए और पुत्री एवं पत्नी को साथ लेकर उस स्थान पर गया जहाँ उसकी बुद्ध से मुलाकात हुई थी। बुद्ध ब्राह्मण द्वारा बताए गए स्थान पर रुकने के बजाय वहाँ से चले गए और दूसरे स्थान पर खड़े हो गए, तथा अपने पहले के स्थान पर पदचिह्न छोड़ गए।

ब्राह्मण की पत्नी, जो उनके साथ आई थीं, ने उनसे पूछा, "यह आदमी कहाँ है?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैंने उससे कहा था, 'यहीं ठहरो।'" चारों ओर देखते हुए ब्राह्मण को पदचिह्न दिखाई दिए और उन्होंने अपनी पत्नी को दिखाते हुए कहा, "यह उसका पदचिह्न है।" ब्राह्मण की पत्नी संकेतों से संबंधित श्लोकों से परिचित थीं और उन्होंने तुरंत ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, यह पाँच वासनाओं का पालन करने वाले व्यक्ति का पदचिह्न नहीं है।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "पत्नी, तुम हमेशा पानी की एक बूँद में मगरमच्छ देखती हो। जब मैंने उस भिक्षु से कहा, 'मैं तुम्हें अपनी पुत्री दे दूँगा,' तो उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।" ब्राह्मण की पत्नी ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, आप जो चाहें कहें, लेकिन यह पदचिह्न केवल वासना से मुक्त व्यक्ति का है।" तब ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा, "पत्नी, इस तरह बड़बड़ाना बंद करो; मेरे साथ चुपचाप आओ।" थोड़ा आगे बढ़ने पर उसने बुद्ध को देखा, और उनकी ओर इशारा करते हुए कहा, "वह

रहा वह व्यक्ति!" बुद्ध के पास पहुँचकर उसने कहा, "आदरणीय, मैं अपनी पुत्री आपको पत्नी के रूप में देना चाहता हूँ।" बुद्ध ने "मुझे तुम्हारी पुत्री की आवश्यकता नहीं है" कहने के बजाय कहा, "ब्राह्मण, मुझे तुमसे कुछ कहना है; सुनो।" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "कहिए; मैं सुनूँगा।" तब बुद्ध ने ब्राह्मण को अपने पिछले जीवन की कथा सुनाई, जिसकी शुरुआत महासन्यास से हुई। बुद्ध ने प्रभुत्व का शयनकक्ष त्याग कर अपने घोड़े कंठक पर सवार होकर चन्ना को अपने साथ लेकर महासन्यास के लिए प्रस्थान किया। जब वे नगर के द्वार के पास पहुँचे, तो पास खड़े मारा ने उनसे कहा, "सिद्धार्थ, अपने मार्ग पर लौट जाओ; सात दिन बाद एक सर्वशक्तिमान सम्राट का जादुई चक्र तुम्हें दिखाई देगा।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं भी यह जानता हूँ, मारा, परन्तु मुझे इसकी इच्छा नहीं है।" "तो फिर आप किस उद्देश्य से संन्यास लेने जा रहे हैं?" "ताकि मुझे सर्वज्ञता प्राप्त हो सके।" "अच्छा, तो फिर यदि आज से आपके मन में कोई कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आए, तो मैं जानता हूँ कि आपके मामले में क्या करना है।"

और तब से मारा सात वर्षों तक उनका पीछा करता रहा, अपने अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। बुद्ध ने छह वर्षों तक तपस्या की, और जब उन्होंने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से बोधि वृक्ष (बकरी चराने वाले बरगद के वृक्ष) के चरणों में सर्वज्ञता प्राप्त की और मुक्ति के आनंद का अनुभव किया, तब मारा राजमार्ग के किनारे बैठ गया, इस विचार से व्याकुल होकर, "इतने समय तक मैं उनका पीछा करता रहा, अपने अवसर की तलाश में, लेकिन उनमें कोई दोष नहीं पाया; अब वे मेरे वश से निकल गए हैं।"

अब मारा की तीन पुत्रियों, तृष्णा, कामवासना और वासना ने उनसे पूछा, "प्रिय पिता, आप इतने उदास और निराश क्यों हैं?" उन्होंने उन्हें सारी बात बताई। तब उन्होंने उनसे कहा, "प्रिय पिता, आप चिंतित न हों; हम उसे अपने वश में कर यहाँ ले आएँगी।" बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे कहा, "हम आपकी विनम्र दासियाँ बनेंगी।" बुद्ध ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, न ही उन्होंने अपनी आँखें खोलकर उनकी ओर देखा। मारा की पुत्रियों ने फिर कहा, "पुरुषों की रुचियाँ अनेक और विविध होती हैं। कुछ को कुंवारी कन्याएँ पसंद हैं, कुछ को यौवन प्राप्त स्त्रियाँ, कुछ को मध्य आयु प्राप्त स्त्रियाँ, और कुछ को मध्य आयु पार कर चुकी स्त्रियाँ। हम उसे विभिन्न रूपों में लुभाएँगी।" इस प्रकार, उन्होंने एक-एक करके विभिन्न आयु वर्ग की स्त्रियों का रूप धारण किया, अलौकिक शक्ति से प्रत्येक ने सौ-सौ स्त्रियाँ बनाईं, और उनसे कहा, "हम आपकी विनम्र दासियाँ बनेंगी।"

बुद्ध ने उनसे कहा, "चले जाओ; तुम ऐसा क्या देखते हो कि इस प्रकार प्रयास कर रहे हो? ऐसे कर्म तो उन लोगों के सामने किए जाने चाहिए जिन्होंने कामवासनाओं और अन्य बुरी भावनाओं से खुद को मुक्त नहीं किया है। तथागत ने कामवासनाओं और अन्य बुरी भावनाओं से खुद को मुक्त कर लिया है। तुम मुझे अपने वश में करने का प्रयास क्यों कर रहे हो?" बुद्ध ने अपना जीवनी संबंधी प्रवचन समाप्त करते हुए कहा, "मागंदिया, बहुत समय पहले जब मैंने मारा की इन तीन पुत्रियों को देखा, जिनके शरीर सोने के समान थे, कफ और अन्य शारीरिक अशुद्धियों से मुक्त थे, तब भी मुझे कामुक सुखों की कोई इच्छा नहीं हुई। परन्तु तुम्हारी पुत्री का शरीर तो बत्तीस अशुद्धियों से भरा हुआ है, मानो वह अशुद्धियों से भरा हुआ कोई पात्र हो, जिस पर बाहर से सुंदर रंग चढ़ा हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 179)

यस्सा जितं लोके न अवजियाति अस्सा जितं कोचि नो याति
अनंतगोचरं अपादं तं बुद्धं केन पदेन नेसथा

यस्स : उस प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा; जितं [ जित ]: जिसे जीता गया; लोके ना अवजीयति : इस संसार में कभी नहीं जीता जा सकता; अस्स : उस बुद्ध द्वारा; जितं [ जित ]: जिसे (इस संसार में) जीता गया है; कोचि : किसी अन्य दोष द्वारा; नो यति : अनुसरण नहीं किया जाएगा; अनंतगोचरं [ अनंतगोचर ]: उनका ध्यान अनंत है; अपदं [ अपद ]: उनके पास कोई मार्ग नहीं बचा है; तं बुद्धं [ बुद्ध ]: वह प्रबुद्ध व्यक्ति; केना पदेन : किस मार्ग से; नेसथ : आप अनुसरण कर सकते हैं?

बुद्ध की विजय अनुचित नहीं है। कोई भी बुद्ध की विजय को पराजय में नहीं बदल सकता। उन्होंने जो कुछ भी जीता है, वह न तो वापस लौट सकता है और न ही उनका पीछा कर सकता है, क्योंकि उनकी विजय पूर्ण है: उनका ज्ञान अनंत है। आप उन्हें किस प्रकार प्रलोभित या फँसा सकते हैं?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 180)

यस्सा कुहिनसि नेतवे जालिनी विसात्तिका तन्हा नत्थि ,
अनंत गोचरं अपादं तं बुद्धं केन पदेन नेसथ

yassa : वह बुद्ध; kuhiñci netave : जिसे पकड़ा जा सके; jālinī : जाल के समान; visattikā : विष के समान; taṇhā : लालसा; natthi : नहीं पाया जाता; ananta gocaraṃ [ gocara ] : जिसका ध्यान अनंत है; apadaṃ [ apada ] : जिसकी कोई जड़ नहीं बची; taṃ Buddhaṃ [ Buddha ] : वह बुद्ध; kena padena : किस माध्यम से; nessatha : क्या आप उसे प्रलोभित कर सकते हैं?

बुद्ध, जिनमें लुभाने वाले जाल को पकड़ने की कोई प्यास ( तन्हा ) नहीं है, जिनका ज्ञान अनंत है, उन्हें आप किस तरह लुभा सकते हैं?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 179-180)

बुद्ध : प्रबुद्ध व्यक्ति । छह वर्षों के अथक संघर्ष के बाद, 35 वर्ष की आयु में, किसी भी अलौकिक शक्ति की सहायता या मार्गदर्शन के बिना, केवल अपने प्रयासों और बुद्धि पर निर्भर रहते हुए, उन्होंने सभी दोषों का नाश किया, आसक्ति की प्रक्रिया को समाप्त किया और अपने असाधारण ज्ञान से चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में जानकर बुद्ध - प्रबुद्ध व्यक्ति - बन गए।
इसके बाद, वे बुद्ध गौतम के नाम से जाने गए, जो अतीत में प्रकट हुए और भविष्य में प्रकट होने वाले बुद्धों की लंबी श्रृंखला में से एक हैं। वे जन्म से बुद्ध नहीं थे, बल्कि अपने स्वयं के प्रयासों से चेतना के स्वैच्छिक विकास की प्रक्रिया द्वारा बुद्ध बने। पाली शब्द बुद्ध, बोधि से लिया गया है , जिसका अर्थ है जागृत होना। जैसे ही उन्होंने चारों असाधारण वास्तविकताओं का पूर्ण अनुभव किया और अज्ञानता की नींद से जागे, वे एक स्वार्थी प्राणी से शाब्दिक रूप से और हर अर्थ में, निस्वार्थ गैर-अस्तित्व या गैर-व्यक्ति में पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गए। उन्होंने न केवल उस अवस्था को प्राप्त किया, बल्कि उन्होंने अपने द्वारा अनुभव की गई वास्तविकता का प्रतिपादन भी किया और दूसरों को ज्ञान प्रदान किया। उन्हें सम्मा सम्बुद्ध कहा जाता है - एक सामंजस्यपूर्ण रूप से जागृत व्यक्ति - ताकि उन्हें पच्चेक (एकांत) बुद्धों से अलग किया जा सके जो केवल वास्तविकता का अनुभव करते हैं लेकिन दूसरों को ज्ञान प्रदान करने में असमर्थ होते हैं।
ज्ञान प्राप्ति से पहले, उन्हें बोधिसत्व कहा जाता था, जिसका अर्थ है बुद्धत्व प्राप्त करने की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति। बुद्धत्व के प्रत्येक साधक को बोधिसत्व अवस्था से गुजरना पड़ता है — यह गहन अभ्यास और उदारता, अनुशासन, त्याग, ज्ञान, ऊर्जा, सहनशीलता, सत्यनिष्ठा, दृढ़ संकल्प, परोपकार और पूर्ण समभाव जैसे गुणों के विकास का काल होता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 181

---

(धम्मपद 179 और 180) <<<< पिछला|| धम्मपद181 ||अगला >>>> (धम्मपद182)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 181 - देवोरोहण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

ये झनपसुता धीरा
नेक्खम्मुपासामे राता
devapi tesam pihayanti
sambuddhanam satimatam.

---

श्लोक 181 : जो ज्ञानी ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, वे इंद्रिय सुखों और नैतिक विकारों से मुक्ति की शांति में आनंदित होते हैं। ऐसे ज्ञानी और सचेतन, जो वास्तव में चार आर्य सत्यों को समझते हैं (अर्थात अरहत और बुद्ध), देवताओं को भी प्रिय होते हैं।

---

तावतिंसा देवलोक से बुद्ध की वापसी की कहानी

तावतिंसा देव (देवदूत) लोक से लौटने पर, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के स्वागत के शब्दों के उत्तर में संकसनागर में इस पुस्तक का श्लोक (181) कहा।

एक बार, श्रावस्ती में रहते हुए, बुद्ध ने विभिन्न संप्रदायों के तपस्वियों की चुनौती का उत्तर देते हुए युगल का चमत्कार किया। इसके बाद, बुद्ध तावतिंसा देवलोक गए; उनकी माता, जिनका तुषिता देवलोक में संतुसिता नामक देव के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, वे भी तावतिंसा देवलोक आईं। वहाँ बुद्ध ने वर्षा ऋतु के तीन महीनों के दौरान देवों और ब्रह्माओं को अभिधम्म का उपदेश दिया। फलस्वरूप, संतुसिता देव ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया; और अनेक अन्य देवों और ब्रह्माओं ने भी ऐसा ही किया।

उस दौरान थेरा सारिपुत्त ने वर्षा ऋतु (तीन महीने) संकसननगर में बिताई, जो श्रावस्ती से तीस योजन दूर था। वहाँ रहते हुए, बुद्ध के नियमित निर्देशानुसार, उन्होंने अपने साथ रहने वाले पाँच सौ भिक्षुओं को अभिधम्म का उपदेश दिया और वर्षा ऋतु के अंत तक पूरा पाठ्यक्रम संपन्न कर दिया।

वर्षा ऋतु के अंत में, थेरा महा मोग्गलाना बुद्ध से मिलने के लिए तावतिंसा देवलोक गए। तब उन्हें बताया गया कि बुद्ध वर्षा ऋतु के अंत में पूर्णिमा के दिन मानवलोक में उस स्थान पर लौटेंगे जहाँ थेरा सारिपुत्त वर्षा ऋतु व्यतीत कर रहे थे।

प्रतिज्ञा के अनुसार, बुद्ध अपने शरीर से निकलती छह रंग की किरणों के साथ असायुज माह की पूर्णिमा की रात को, जब चंद्रमा चमक रहा था, संकसनगर नगर के द्वार पर आए। उनके साथ एक ओर देवों (देवदूतों) का एक विशाल समूह और दूसरी ओर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) का एक विशाल समूह था। थेरा सारिपुत्त के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह ने बुद्ध का इस संसार में पुनः स्वागत किया; और पूरा नगर प्रकाश से जगमगा उठा। बुद्ध के आगमन के इस भव्य और महिमामय दृश्य को देखकर थेरा सारिपुत्त विस्मित हो गए। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "आदरणीय गुरुदेव! हमने ऐसा भव्य और तेजस्वी रूप न कभी देखा है और न ही सुना है। वास्तव में, आदरणीय गुरुदेव, देवों, ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) और मनुष्यों द्वारा समान रूप से प्रेम, आदर और श्रद्धा के पात्र हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, अद्वितीय गुणों से संपन्न बुद्धों को मनुष्य और देव (देवदूत) दोनों ही समान रूप से प्रेम करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 181 : जो ज्ञानी ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, वे इंद्रिय सुखों और नैतिक विकारों से मुक्ति की शांति में आनंदित होते हैं। ऐसे ज्ञानी और सचेतन, जो वास्तव में चार आर्य सत्यों को समझते हैं (अर्थात अरहत और बुद्ध), देवताओं को भी प्रिय होते हैं।

---

प्रवचन के अंत में, थेरा सारिपुत्त के पांच सौ शिष्यों ने अरहतत्व प्राप्त किया और मंडली के कई लोगों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तावतिंस देवलोक से बुद्ध की वापसी की कथा

तावतिंस देवलोक से लौटने पर, बुद्ध ने साणकसनगर में पूज्य सारिपुत्त के स्वागत शब्दों के उत्तर में यह श्लोक कहा।

एक बार, सावत्थी में रहते हुए, बुद्ध ने विभिन्न संप्रदायों के तपस्वियों की चुनौती के उत्तर में समकालिक उद्भव का चमत्कार प्रदर्शित किया। इसके बाद, बुद्ध तावतिंस देवलोक गए; उनकी माता, जिनका तुषिता देवलोक में संतुसिता नामक देवी के रूप में पुनर्जन्म हुआ था, वे भी तावतिंस देवलोक आईं। वहाँ बुद्ध ने वर्षा के तीन महीनों के दौरान देवताओं और ब्रह्माओं को अभिधम्म का उपदेश दिया। फलस्वरूप, संतुसिता देव ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया; और अनेक अन्य देवताओं और ब्रह्माओं ने भी यही फल प्राप्त किया।

जब बुद्ध चले गए, तो लोगों ने मोग्गलाना से पूछा, "बुद्ध कहाँ गए हैं?" हालाँकि पूज्य मोग्गलाना स्वयं भली-भांति जानते थे कि बुद्ध कहाँ गए हैं, फिर भी उन्होंने मन ही मन सोचा, "दूसरों की भी अद्भुत शक्तियों का ज्ञान हो," और इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, "पूज्य अनुराधा से पूछिए।" तब लोगों ने पूज्य अनुराधा से पूछा, "पूज्यवर, बुद्ध कहाँ गए हैं?" पूज्य अनुराधा ने उत्तर दिया, "वे तैंतीस लोकों में निवास करने के लिए पीले पत्थर के सिंहासन पर विराजमान हुए हैं; वे वहाँ अपनी माता को अभिधम्म पिटक का उपदेश देने गए हैं।"

उस दौरान पूज्य सारिपुत्त ने श्रावस्ती से तीस योजन दूर स्थित संकसननगर में वर्षावास व्यतीत किया। वहाँ अपने प्रवास के दौरान, बुद्ध के नियमित निर्देशानुसार, उन्होंने अपने साथ रहने वाले भिक्षुओं के विशाल समूह को अभिधम्म का उपदेश दिया और वर्षावास के अंत तक संपूर्ण पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया।

वर्षावास के अंत में, पूज्य मोग्गलाना बुद्ध से मिलने तावतिंस देवलोक गए। तब उन्हें बताया गया कि बुद्ध वर्षावास के अंत में पूर्णिमा के दिन मानवलोक में उस स्थान पर लौटेंगे जहाँ पूज्य सारिपुत्त वर्षावास कर रहे थे।

प्रतिज्ञा के अनुसार, बुद्ध अपने शरीर से निकलती छह रंग की किरणों के साथ असायुज माह की पूर्णिमा की रात को, जब चंद्रमा चमक रहा था, संकसनगर नगर के द्वार पर आए। उनके साथ एक ओर देवताओं का एक बड़ा समूह और दूसरी ओर ब्रह्माओं का एक बड़ा समूह था। पूज्य सारिपुत्त के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह ने बुद्ध का इस संसार में पुनः स्वागत किया; और पूरा नगर प्रकाश से जगमगा उठा। पूज्य सारिपुत्त बुद्ध के आगमन के पूरे दृश्य की भव्यता और महिमा को देखकर विस्मित हो गए। उन्होंने आदरपूर्वक बुद्ध के पास जाकर कहा, "पूज्यवर! हमने ऐसी भव्य और तेजस्वी महिमा न कभी देखी है और न ही सुनी है। वास्तव में, पूज्यवर, आप

देवताओं, ब्रह्माओं और मनुष्यों द्वारा समान रूप से प्रिय, आदरणीय और पूजनीय हैं!" बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र सारिपुत्त, अद्वितीय गुणों से संपन्न ऋषि वास्तव में मनुष्यों और देवताओं द्वारा समान रूप से प्रिय होते हैं।"

प्रवचन के अंत में, पूज्य सारिपुत्त के शिष्य भिक्षुओं के समूह ने अर्हतत्व प्राप्त किया और मंडली के बहुत से लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 181)

ये धीरा झानापसुत नेक्खम्मुपसमे रता सतीमतम्

तेसं संबुद्धानं देवा अपि पिहयन्ति

ये धीरा : वे महान लोग; झानापसुत : ध्यान में तत्पर हैं; नेक्खम्मुपासमे रता : अपवित्रता, विजय (निब्बाण) पर आमादा हैं; सतीमतम् [ सतीमत ]: ध्यानपूर्ण; तेसं संबुद्धानां [ संबुद्धन ]: वे प्रबुद्ध लोग; देवा अपि : यहां तक कि देवता भी; पिहयंती : आराधना

वे श्रेष्ठ और ज्ञानी जन ध्यान में लीन रहते हैं। वे विकारों पर विजय प्राप्त करने, अर्थात् निर्वाण प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित रहते हैं। वे सचेत रहते हैं; और ऐसे प्रबुद्ध जन सभी के प्रिय होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 181)

देव : प्रकाशमान; स्वर्गीय प्राणी, देवता, दिव्य प्राणी। ये सुखमय लोकों में निवास करते हैं और सामान्यतः मनुष्य की दृष्टि से अदृश्य होते हैं। यद्यपि, सभी मनुष्यों और अन्य प्राणियों की तरह, ये भी पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के चक्र में बंधे होते हैं, और इस प्रकार जीवन चक्र से मुक्त नहीं होते, दुख से मुक्त नहीं होते। स्वर्गीय प्राणियों के अनेक वर्ग हैं:

इंद्रियलोक के दिव्य प्राणी ( काम-वचर या काम-लोक );

रूपलोक ( रूपावचर या रूपलोक ) के दिव्य प्राणी और

निराकार लोक के दिव्य प्राणी ( अरूपावचर या अरूपलोक )।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 182

---

(धम्मपद181) <<<< पिछला॥ धम्मपद182 ॥अगला >>>> (धम्मपद 183, 184 और 185)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 182 - एरकपट्टनागराज वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

किच्चो मनुस्सपतिलभो
किच्चम मच्चना जीवतम
किच्चम सद्धम्मसवनाम
kiccho buddhanamuppado.

---

श्लोक 182 : मनुष्य के रूप में जन्म पाना कठिन है; मनुष्यों का जीवन कठिन है; आर्य धम्म (बुद्धों की शिक्षा) सुनने का अवसर पाना कठिन है; बुद्ध का प्रकट होना कठिन है।

---

नागा राजा एरकपट्टा की कहानी

बरनासी के पास निवास करते हुए बुद्ध ने नागों (ड्रैगन) के राजा एराकापट्टा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (182) कहा।
एक समय की बात है, एराकापट्टा नाम का एक नाग राजा था। अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, वह लंबे समय तक भिक्षु रहा था। उस दौरान किए गए एक छोटे से अपराध के कारण चिंता (कुक्कुच्चा) से प्रेरित होकर, उसका पुनर्जन्म नाग के रूप में हुआ। नाग के रूप में, वह बुद्ध के प्रकट होने की प्रतीक्षा करता रहा। एराकापट्टा की एक बहुत सुंदर पुत्री थी, और उसने बुद्ध को खोजने के लिए उसका उपयोग एक साधन के रूप में किया। उसने यह घोषणा की कि जो कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर देगा, वह उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर सकेगा। एराकापट्टा महीने में दो बार उसे खुले में नृत्य करवाता और उससे प्रश्न गवाता था। कई लोग उससे विवाह करने की आशा में उसके प्रश्नों का उत्तर देने आए, लेकिन कोई भी सही उत्तर नहीं दे सका।
एक दिन बुद्ध ने अपने दर्शन में उत्तरा नामक एक युवक को देखा। उन्हें यह भी ज्ञात था कि नाग एराकापत्ता की पुत्री द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने से ही उस युवक को सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त होगी। तब तक वह युवक एराकापत्ता की पुत्री से मिलने जा रहा था। बुद्ध ने उसे रोककर प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका सिखाया। जब उत्तरा को यह विधि सिखाई जा रही थी, तभी उसे सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त हो गई। सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी के प्रति उसकी कोई इच्छा नहीं रही। फिर भी, उत्तरा अनेक अन्य प्राणियों के हित में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए चला गया।
पहले चार प्रश्न ये थे:
1. शासक कौन होता है?
2. क्या नैतिक विकारों के कोहरे से घिरे व्यक्ति को शासक कहा जा सकता है?
3. कौन सा शासक नैतिक दोषों से मुक्त है?
4. किस प्रकार के व्यक्ति को मूर्ख कहा जाता है?
उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार थे:
1. जो छह इंद्रियों को वश में रखता है, वही शासक है।
2. जो नैतिक विकारों के कोहरे से घिरा हुआ हो, उसे शासक नहीं कहा जा सकता; जो लालसा से मुक्त हो, वही शासक कहलाता है।
3. जो शासक लालसा से मुक्त होता है, वह नैतिक दोषों से मुक्त होता है।
4. जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों की लालसा रखता है, उसे मूर्ख कहा जाता है।
उपरोक्त प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी ने कामुक इच्छाओं, पुनर्जन्म, झूठे सिद्धांतों और अज्ञानता की बाढ़ (ओघों) के बारे में प्रश्न पूछे और उनसे निपटने के तरीके पूछे। उत्तरा ने बुद्ध द्वारा सिखाई गई विधि के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर दिए। जब एराकापट्टा ने ये उत्तर सुने तो उन्हें पता चला कि इस संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं। इसलिए उन्होंने उत्तरा से उन्हें बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया। बुद्ध को देखकर एराकापट्टा ने उन्हें बताया कि कैसे वे कश्यप बुद्ध के समय में भिक्षु थे, कैसे नाव में यात्रा करते समय उनसे गलती से घास का एक तिनका टूट गया था, और कैसे उन्होंने निर्धारित प्रायश्चित न करने के कारण उस छोटी सी गलती पर चिंता व्यक्त की थी, और अंत में कैसे उनका पुनर्जन्म नाग के रूप में हुआ। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने उन्हें बताया कि मनुष्यलोक में जन्म लेना कितना कठिन है, और बुद्धों के प्रकट होने के समय या उनके उपदेशों के समय जन्म लेना तो और भी कठिन है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 182 : मनुष्य के रूप में जन्म पाना कठिन है; मनुष्यों का जीवन कठिन है; आर्य धम्म (बुद्धों की शिक्षा) सुनने का अवसर पाना कठिन है; बुद्ध का प्रकट होना कठिन है।

---

उपरोक्त प्रवचन से अनेक प्राणियों को लाभ हुआ। एराकापट्टा एक पशु होने के कारण उस समय सोतापत्ति फल प्राप्त नहीं कर सका।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
नाग राजा एराकापट्टा की कहानी
बारानासी के निकट निवास करते समय बुद्ध ने नागों के राजा एराकापट्टा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, एराकापट्टा नाम का एक नाग राजा था। अपने पिछले जन्मों में से एक में, कश्यप बुद्ध के समय में, वह लंबे समय तक भिक्षु रहा था। उस दौरान किए गए एक छोटे से अपराध के कारण चिंता से प्रेरित होकर, उसने नाग के रूप में पुनर्जन्म लिया। नाग के रूप में, वह बुद्ध के प्रकट होने की प्रतीक्षा करता रहा। एराकापट्टा की एक बहुत सुंदर पुत्री थी, और उसने बुद्ध को खोजने के लिए उसका उपयोग एक साधन के रूप में किया। उसने यह घोषणा की कि जो कोई भी उसके प्रश्नों का उत्तर देगा, वह उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर सकता है। एराकापट्टा महीने में दो बार उसे खुले में नृत्य करवाता और उससे प्रश्न गवाता था। कई लोग उससे विवाह करने की आशा में उसके प्रश्नों का उत्तर देने आए, लेकिन कोई भी सही उत्तर नहीं दे सका।

एक दिन बुद्ध ने अपने दर्शन में उत्तरा नामक एक युवक को देखा। उन्हें यह भी ज्ञात था कि नाग एराकापत्त की पुत्री द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देने से ही उस युवक को सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त होगा। तब तक वह युवक एराकापत्त की पुत्री से मिलने जा रहा था। बुद्ध ने उसे रोककर प्रश्नों के उत्तर देने का तरीका सिखाया। जब उत्तरा को यह ज्ञान सिखाया जा रहा था, तभी उसे सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त हो गया। सोतापत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी के प्रति उसकी कोई इच्छा नहीं रही। फिर भी, उत्तरा अनेक अन्य प्राणियों के हित में प्रश्नों के उत्तर देने के लिए चला गया।

पहले चार प्रश्न थे: (1) शासक कौन है? (2) क्या नैतिक विकारों के कोहरे से घिरे व्यक्ति को शासक कहा जा सकता है? (3) कौन सा शासक नैतिक विकारों से मुक्त है? (4) किस प्रकार के व्यक्ति को मूर्ख कहा जाता है?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं: (1) जो छह इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, वही शासक है। (2) जो नैतिक विकारों के कोहरे में घिरा रहता है, उसे शासक नहीं कहा जा सकता; जो लालसा से मुक्त होता है, वही शासक कहलाता है। (3) जो शासक लालसा से मुक्त होता है, वह नैतिक विकारों से मुक्त होता है। (4) जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों की खोज करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

उपरोक्त प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के बाद, नाग राजकुमारी ने कामुक इच्छाओं, पुनर्जन्म, झूठे सिद्धांतों और अज्ञान के ओघों (बाढ़) के बारे में प्रश्न पूछे और उनसे कैसे पार पाया जा सकता है, यह भी पूछा। उत्तरा ने बुद्ध द्वारा सिखाई गई शिक्षा के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर दिए। जब एराकापट्टा ने ये उत्तर सुने, तो वह समझ गया कि इस संसार में एक बुद्ध प्रकट हुए हैं। इसलिए उसने उत्तरा से उसे बुद्ध के पास ले जाने का अनुरोध किया। बुद्ध को देखकर, एराकापट्टा ने बुद्ध को बताया कि कैसे वह कश्यप बुद्ध के समय में एक भिक्षु था, कैसे नाव में यात्रा करते समय उससे गलती से घास का एक तिनका टूट गया था, और कैसे उसने निर्धारित प्रायश्चित न करने के कारण उस छोटी सी गलती पर चिंता व्यक्त की थी, और अंत में कैसे उसका पुनर्जन्म एक नाग के रूप में हुआ। उसकी बात सुनकर, बुद्ध ने उसे बताया कि मानव जगत में जन्म लेना कितना कठिन है, और बुद्धों के प्रकट होने के समय या उनके उपदेशों के समय जन्म लेना कितना कठिन है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 182)

मनुस्सा पतिलाभो किच्चो मक्कन जीवितं किच्चं
सद्धम्म सावनं किच्चं बुद्धानं उप्पदो किच्चो

मनुस्सा पतिलाभो [ पतिलाभ ]: मानव अस्तित्व को जीतना; किच्चो [ किच्चा ]: (है) कठिन; मक्काना : नश्वर लोगों का; जेविताम् [ जेविता ]: जीवन; किच्चाँ [ किच्चा ]: (है) कठिन; सधम्म सवानाम् [ सवाना ]: धम्म सुनना; किच्चाँ [ किच्चा ]: (है) कठिन; बुद्धानं उप्पादो [ उप्पादा ]: बुद्ध का जन्म; किच्चो [ किच्चा ]: कठिन और दुर्लभ है

इस पुनर्जन्म के चक्र में मनुष्य के रूप में जन्म लेना दुर्लभ है। उत्तम शिक्षा सुनने का अवसर मिलना भी मुश्किल और दुर्लभ है। वास्तव में, बुद्ध का जन्म होना तो और भी दुर्लभ है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 182)

मच्चाना जीवितं : नश्वर प्राणी का जीवन। मच्चा (नश्वर) शब्द मनुष्य के लिए प्रयोग किया जाता है क्योंकि वह मृत्यु के अधीन है। सभी जीव मृत्यु के अधीन हैं। लेकिन मच्चा शब्द मनुष्यों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है; क्योंकि सभी प्राणियों में मनुष्य ही एकमात्र ऐसे प्राणी हैं जो मृत्यु की अनिवार्यता को जान सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 183,184,185

———————————————————————————

(धम्मपद 182) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 183, 184 और 185 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 186 और 187)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 183, 184 और 185 - आनंदत्थेरपन्हा वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
सब्बपपस्स अकरनम
ku salassa upasampada
सचित्तपरियोडापनम
etam buddhana sasanam.
Khanti paramam tapo titikkha
निब्बानं परमं वदन्ति बुद्ध
na hi pabbajito parupaghati
न समणो होति परम विहेथयन्तो।
अनुपवादो अनुपघातो
patimokkhe ca samvaro
mattannuta ca bhattasmim
pantanca sayanasanam
adhicitte ca ayogo
etam buddhana sasanam.

---

श्लोक 183 : बुराई न करना, पुण्य का विकास करना, मन को शुद्ध करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

---

श्लोक 184 : सबसे उत्तम नैतिक अभ्यास धैर्य और सहनशीलता है; बुद्धों ने कहा है, "निर्वाण सर्वोच्च है"। भिक्षु दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता; जो दूसरों को हानि पहुँचाता है वह भिक्षु नहीं है।

---

श्लोक 185 : निंदा न करना, किसी को हानि न पहुँचाना, भिक्षुओं के लिए मूलभूत निर्देशों के अनुसार संयम बरतना, भोजन में संयम बरतना, एकांत स्थान में निवास करना, उच्चतर एकाग्रता में स्वयं को समर्पित करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

---

थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (183), (184) और (185) का उच्चारण किया, जो पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत निर्देशों के संबंध में थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में था।
एक बार थेरा आनंद ने बुद्ध से पूछा कि क्या पूर्ववर्ती बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत उपदेश वही हैं जो स्वयं बुद्ध ने दिए हैं। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि सभी बुद्धों द्वारा दिए गए उपदेश निम्नलिखित श्लोकों में दिए गए हैं:
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 183 : बुराई न करना, पुण्य का विकास करना, मन को शुद्ध करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

---

श्लोक 184 : सबसे उत्तम नैतिक अभ्यास धैर्य और सहनशीलता है; बुद्धों ने कहा है, "निर्वाण सर्वोच्च है"। भिक्षु दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता; जो दूसरों को हानि पहुँचाता है वह भिक्षु नहीं है।

---

श्लोक 185 : निंदा न करना, किसी को हानि न पहुँचाना, भिक्षुओं के लिए मूलभूत निर्देशों के अनुसार संयम बरतना, भोजन में संयम बरतना, एकांत स्थान में निवास करना, उच्चतर एकाग्रता में स्वयं को समर्पित करना - यही बुद्धों की शिक्षा है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इन श्लोकों का कथन पूज्य आनंद द्वारा पूर्व बुद्धों द्वारा भिक्षुओं को दिए गए मूलभूत निर्देशों के संबंध में उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में किया था।

हमें बताया जाता है कि पूज्य बुद्ध अपने विश्राम कक्ष में बैठे हुए मन ही मन सोचने लगे, "बुद्ध ने सात बुद्धों के माता-पिता, उनकी आयु, जिस वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ, उनके शिष्यों का समूह, उनके प्रमुख शिष्य और उनके मुख्य समर्थक का वर्णन किया है। बुद्ध ने इन सबका वर्णन किया है। लेकिन उन्होंने उनके उपवास के तरीके के बारे में कुछ नहीं बताया, क्या वह आज के तरीके जैसा ही था या उससे अलग था?" तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा।

इन बुद्धों के संदर्भ में, यद्यपि समय में अंतर था, उनके द्वारा प्रयुक्त श्लोकों में कोई अंतर नहीं था। परम प्रबुद्ध विपस्सी बुद्ध सात वर्ष में एक बार व्रत रखते थे, परन्तु एक दिन में दिया गया उनका उपदेश सात वर्षों के लिए पर्याप्त था। सिख और वेस्साभू छह वर्ष में एक बार व्रत रखते थे; काकुसंध और कोनागमना प्रत्येक वर्ष व्रत रखते थे; दस शक्तियों के स्वामी कस्सपा बुद्ध छह माह में एक बार व्रत रखते थे, परन्तु उनका उपदेश छह माहों के लिए पर्याप्त था। इसी कारण बुद्ध ने पूज्य बुद्धों को समय के इस अंतर को समझाने के बाद यह स्पष्ट किया कि सभी मामलों में व्रत रखने का तरीका एक समान था।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 183)

सब्बापास्सा अकरणं कुसलस्सा उपसम्पदा
सचित्त परियोदापनं एतं बुद्धं शासनं

सब्बापापास : सभी बुरे कार्यों से; अकारणं [ अकारण ]: बचना; कुसलस्सा : अच्छे कार्य; उपसम्पदा : उत्पादन और रखरखाव; सचित्त परियोदपनाम् [ परियोदपना ]: अपने मन को शुद्ध करना और अनुशासित करना; एताम् : यह है; बुद्धानं [ बुद्धाना ]: बुद्धों का; सासनं [ सासन ]: शिक्षण।

सभी बुराइयों का त्याग करके, अच्छाई की अवस्था में प्रवेश करना और स्वयं अपने मन को शुद्ध करना—यही बुद्ध की शिक्षा है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 184)

तितिक्खा खांति परमं तपो , बुद्ध निब्बाणं परमं वदन्ति ,
परुपघाति पब्बजितो न हि होति परं विहेथयंतो समणो न हि होति

तितिक्खा : सहनशील; खांति : धैर्य; परमं तपो : (है) सर्वोच्च तप; बुद्ध : बुद्ध; निब्बाणम् [ निब्बाण ]: अविचलता; परमं [ परम ]: (है) सर्वोच्च; वदन्ति : अवस्था; परुपघाती : दूसरों को चोट पहुँचाना; पब्बाजितो [ पब्बाजिता ]: एक त्यागी; ना ही होती : निश्चित रूप से नहीं है; परं विहेहयंतो [ विहेहयंत ]: जो दूसरों को नुकसान पहुंचाता है; समणो न होति : निश्चित रूप से साधु नहीं है

धीरज रखना सर्वोच्च तपस्या है। बुद्ध कहते हैं कि निर्भयता ( निब्बान ) सर्वोच्च है। जो किसी दूसरे को दुख पहुँचाता है, वह संन्यासी नहीं है। सच्चा संत ( समना ) वही है जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 185)

अनुपवादो अनुपघाटो पतिमोक्खे संवरो च
भट्टस्मिं मत्तनुता च पंथं सयानासनं च
अधिचित्ते अयोगो च एतं बुद्धं सासनं

anūpavādo [ anūpavāda ]: दूसरों में दोष न निकालना; anūpaghāto [ anūpaghāta ]: दूसरों को परेशान करने से बचना; pātimokkhe : अनुशासन के मुख्य रूपों में; saṃvaro [ saṃvara ]: अच्छी तरह से संयमित; ca bhattasmiṃ [ bhattasmi ]: भोजन में; mattññutā : संयमित; ca panthaṃ sayanāsanaṃ [ sayanāsana ]: एकांत स्थानों (मानव बस्तियों से दूर) में आनंद लेना; adhicitte ca : उच्च ध्यान में भी; āyogo [ āyoga ]: (और) निरंतर अभ्यास में; etaṃ : यह सब; Buddhānaṃ [ Buddhāna ]: बुद्धों का; sāsanaṃ [ sāsana ]: (है) शिक्षा

दूसरों में दोष ढूंढने से बचना, दूसरों को चोट पहुंचाने से बचना, अनुशासन और आचरण के उच्चतम रूपों में प्रशिक्षित होना; भोजन करने में संयम बरतना; एकांत में आनंद लेना; और उच्च चिंतन (जो कि ध्यान है) में संलग्न होना।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 183-185)

सब्बपापास अकारण : इस श्लोक में बुद्ध के धर्म का सारांश दिया गया है।

आसक्ति ( लोभ ), द्वेष ( दोष ) और मोह ( मोह ) इन तीन अनैतिक जड़ों से जुड़ी चीजें बुरी होती हैं। वहीं उदारता ( आलोभ ), सद्भावना ( आदोष ) और ज्ञान ( अमोह ) इन तीन नैतिक जड़ों से जुड़ी चीजें अच्छी होती हैं।

पब्बाजितो : वह व्यक्ति जिसने अपनी अशुद्धियों को त्याग दिया है और संसार को छोड़ दिया है।

समानो : वह व्यक्ति जिसने अपनी वासनाओं को वश में कर लिया हो, एक तपस्वी।

खन्ती परमं तपो : धैर्य सर्वोच्च तपस्या है। यह दूसरों द्वारा स्वयं पर किए गए कष्टों को धैर्यपूर्वक सहना और दूसरों के अन्याय को सहन करना है। एक बोधिसत्व इतना धैर्यवान होता है कि हाथ-पैर काटे जाने पर भी वह क्रोधित नहीं होता। खन्तीवादी जातक में यह प्रकट

होता है कि बोधिसत्व ने न केवल उस शराबी राजा द्वारा दी गई यातनाओं को प्रसन्नतापूर्वक सहन किया, जिसने निर्दयतापूर्वक उनके हाथ-पैर, नाक और कान काटने का आदेश दिया था, बल्कि उन चोटों का प्रतिफल आशीर्वाद से दिया। अपने ही रक्त के गहरे कुंड में, क्षत-विक्षत अंगों के साथ जमीन पर लेटे हुए, बोधिसत्व ने कहा, "उस राजा की जय हो, जिसने मेरे शरीर को इस प्रकार क्रूरता से काटा।" मेरे जैसे पवित्र आत्माएं ऐसे कर्मों को क्रोध से नहीं देखते।

उनकी सहनशीलता के बारे में कहा जाता है कि जब भी उन्हें कोई हानि पहुँचती है, वे हमलावर के बारे में सोचते हैं — 'यह व्यक्ति मेरा ही साथी है। जानबूझकर या अनजाने में, उकसावे का स्रोत मैं स्वयं ही रहा हूँगा, या यह मेरे किसी पिछले बुरे कर्म का परिणाम हो सकता है। क्योंकि यह मेरे अपने कर्म का परिणाम है, तो मुझे उसके प्रति दुर्भावना क्यों रखनी चाहिए?'

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि बोधिसत्व किसी भी मनुष्य के निर्लज्ज आचरण से विचलित नहीं होते। अपने शिष्यों को सहनशीलता का अभ्यास करने की सलाह देते हुए बुद्ध ने काकाचूपमा सूत्र में कहा , "यद्यपि डाकू, जो लुटेरे हैं, दोधारी आरी से तुम्हारे अंगों को काट दें, तो भी यदि तुम इससे अपने मन को दूषित करोगे, तो तुम मेरे उपदेश के अनुयायी नहीं रहोगे। इसलिए तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: हमारा हृदय निर्मल रहे। हमारे मुख से कोई बुरा शब्द न निकले। दयालु और करुणामय हृदय से, किसी के प्रति द्वेष न रखते हुए, हम इन डाकुओं को भी प्रेममय विचारों से घेर लें। और उनसे आगे बढ़कर, हम प्रेममय विचारों से पूरे संसार को फैलाते हुए, विशाल, असीम, परोपकारी और एकीकृत रूप से निवास करें।"

एक बोधिसत्व दूसरों में कुरूपता देखने के बजाय धैर्य और सहनशीलता का अभ्यास करते हुए सभी में अच्छाई और सुंदरता को खोजने का प्रयास करता है।

खन्ती : धैर्य; सहनशीलता। यह एक उत्कृष्ट गुण है जिसकी बौद्ध धर्मग्रंथों में बहुत प्रशंसा की गई है। इसे आसानी से तभी विकसित किया जा सकता है जब मन में बेचैनी और घृणा को शांत कर लिया गया हो, जैसा कि ध्यान के अभ्यास से होता है। अधीरता, जो व्यक्ति को जल्दबाजी करने और इस प्रकार कई अच्छे अवसरों को खोने की प्रवृत्ति रखती है, शांत बैठने और चीजों को अपने आप सुलझने देने की अक्षमता से उत्पन्न होती है, जबकि कभी-कभी वे बिना हस्तक्षेप के भी सुलझ जाती हैं। धैर्यवान व्यक्ति को कई ऐसे फल प्राप्त होते हैं जो जल्दबाजी करने वाले व्यक्ति को नहीं मिलते। उनमें से एक है शांत मन, क्योंकि अधीरता मन को मंथन कराती है और आधुनिक व्यावसायिक जगत की जानी-पहचानी चिंता-बीमारियों को जन्म देती है। धैर्य चुपचाप सहन करता है - यही गुण इसे मानसिक प्रशिक्षण और विशेष रूप से ध्यान में इतना मूल्यवान बनाता है। पाँच मिनट के अभ्यास के बाद तत्काल ज्ञान की अपेक्षा करना व्यर्थ है। कॉफी भले ही तुरंत मिल जाए, लेकिन ध्यान नहीं मिलता और इसे जल्दी करने की कोशिश करने से केवल नुकसान ही होगा। सदियों से यह कूड़ा जमा होता आ रहा है, मानसिक कचरे का एक विशाल ढेर। ऐसे में जब कोई छोटी सी चम्मच लेकर आता है और इसे हटाना शुरू करता है, तो कितनी जल्दी इसके गायब होने की उम्मीद की जा सकती है? धैर्य ही इसका उत्तर है और इसके साथ दृढ़ संकल्प भी आवश्यक है। धैर्यवान ध्यान करने वाले को वास्तव में स्थायी लाभ मिलते हैं, जबकि 'त्वरित विधियों' या 'अचानक ज्ञानोदय' की खोज करने वाला व्यक्ति अपने ही रवैये के कारण लंबे समय तक निराशा का शिकार होता है।

धम्म का अध्ययन करने वाले किसी भी व्यक्ति को यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो जाएगी कि ये शिक्षाएँ अधीर लोगों के लिए नहीं हैं। एक बौद्ध अपने वर्तमान जीवन को लगभग अस्सी वर्षों का एक छोटा सा काल मानता है, और ऐसे अनेक जन्मों में से यह उसका अंतिम जन्म है। इसे ध्यान में रखते हुए, वह इस जीवन में ज्ञान प्राप्ति के लिए यथासंभव प्रयास करने का निश्चय करता है, परन्तु वह अपनी क्षमताओं को अतिरंजित नहीं करता और शांत और धैर्यपूर्वक प्रतिदिन धम्म का पालन करता रहता है। ज्ञान प्राप्ति की शीघ्रता (या जिसे कोई ज्ञान समझता है) से कोई बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकता, जब तक कि वह कोई असाधारण व्यक्ति न हो जो इस प्रकार का उपचार सहन कर सके और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह ध्यान के किसी कुशल गुरु के प्रति समर्पित हो।

धैर्य से व्यक्ति को चोट नहीं पहुँचती, बल्कि वह मार्ग पर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता है। हम जानते हैं कि बोधिसत्व इस बात से भलीभांति परिचित थे और उन्होंने अपने मन को इस पूर्णता से संवारा था, जिससे संसार में घटित होने वाली किसी भी अप्रिय घटना से उनका मन विचलित नहीं होता था। उन्होंने निश्चय किया कि वे बाहरी परिस्थितियों के प्रति धैर्यवान रहेंगे — चाहे सूर्य की गर्मी अधिक हो या मौसम ठंडा; कीड़े-मकोड़े जैसे जीवों द्वारा शरीर पर आक्रमण करने पर भी विचलित नहीं होंगे। न ही वे तब विचलित होंगे जब लोग उनके बारे में कठोर शब्द, झूठ या अपशब्द बोलेंगे, चाहे उनके सामने या उनकी पीठ पीछे। यहाँ तक कि जब उनके शरीर को यातनाएँ, मार-पीट, लाठी-पत्थर, यातनाएँ दी गईं, तब भी उनका धैर्य नहीं टूटा; मृत्यु को भी उन्होंने दृढ़ता से सहन किया, उनका धैर्य इतना अटूट था। बौद्ध भिक्षुओं को भी इसी प्रकार अभ्यास करने की सलाह दी जाती है।

सचित्त परियोदपनम् : मन को शांत करना। बौद्ध धर्म में, उच्चतर बोध मन की शुद्धि से प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप, मन-साधना और ध्यान बौद्ध धर्म के उचित अभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ध्यान नामक मानसिक अभ्यास सभी धार्मिक प्रणालियों में पाया जाता है। प्रार्थना एक प्रकार का विवेचनात्मक ध्यान है, और हिंदू धर्म में श्लोकों और मंत्रों का पाठ मन को ग्रहणशीलता की अवस्था में शांत करने के लिए किया जाता है। इनमें से अधिकांश प्रणालियों में लक्ष्य को प्राप्त होने वाले विशिष्ट मानसिक परिणामों से पहचाना जाता है, जैसे कि अर्ध-सम्मोहन अवस्था में आने वाले दर्शन या सुनाई देने वाली ध्वनियाँ। बौद्ध धर्म में प्रचलित ध्यान के रूपों में ऐसा नहीं है।

मन, उसके कार्यों और उसकी शक्तियों के बारे में अपेक्षाकृत कम जानकारी है, और अधिकांश लोगों के लिए आत्म-सम्मोहन, माध्यम बनने की अवस्थाओं और मानसिक स्पष्टता एवं प्रत्यक्ष बोध की वास्तविक प्रक्रिया के बीच अंतर करना कठिन है, जो बौद्ध मानसिक विकास का उद्देश्य है जिसे भावना (ध्यान) कहा जाता है। यह तथ्य कि प्रत्येक धर्म के रहस्यवादियों ने स्वयं में ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न की हैं जिनमें वे अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप दर्शन और वाणी सुनते हैं, यह दर्शाता है कि उनके ध्यान का परिणाम केवल सांस्कृतिक परिवेश के कारण उनके मन की गहरी परतों में पहले से ही अंतर्निहित अवधारणाओं को सतह पर लाना है। ईसाई उन संतों को देखते और उनसे संवाद करते हैं जिन्हें वे पहले से जानते हैं, हिंदू हिंदू देवताओं की कल्पना करते हैं, इत्यादि। जब बंगाली रहस्यवादी श्री रामकृष्ण परमहंस ने ईसाई धर्म की ओर अपना ध्यान केंद्रित करना शुरू किया, तो उन्होंने अपने ध्यान में हिंदू अवतारों की अपनी पूर्व स्पष्ट छवियों के स्थान पर यीशु के दर्शन देखे ।

सम्मोहन का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सम्मोहनकर्ता द्वारा दिए गए सुझावों के प्रति अधिक से अधिक सहजता से आत्मसमर्पण करने लगता है, और इस विषय का अध्ययन करने वाला कोई भी व्यक्ति सम्मोहनकर्ता द्वारा प्राप्त की गई मानसिक स्थिति और सम्मोहनकर्ता द्वारा अपनी इच्छा अनुसार किसी भी प्रकार के अनुभव को सहजता से प्राप्त करने की क्षमता के बीच संबंध अवश्य देख सकता है। ध्यान के अभ्यास में एक और संभावना भी निहित है: माध्यम बनने की क्षमता का विकास, जिसके द्वारा व्यक्ति वास्तव में अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर विद्यमान प्राणियों, जैसे देवलोक और प्रेतों के लोक को देख और सुन सकता है। ये लोक हमारे अपने लोक के सबसे निकट होने के कारण अधिक सुलभ हैं, और यही पश्चिमी अध्यात्मवाद की मानसिक घटनाओं की वास्तविक व्याख्या हो सकती है।

लेकिन बौद्ध ध्यान का उद्देश्य इनमें से कोई भी नहीं है। ये चीजें ध्यान में त्रुटियों के कारण उत्पन्न हो सकती हैं, लेकिन ये न केवल इसका लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि ऐसी बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। यीशु को देखने वाला ईसाई या भगवान कृष्ण से संवाद करने वाला हिंदू इस बात से पूरी तरह संतुष्ट हो सकता है कि उसने अपने धार्मिक जीवन का उद्देश्य पूरा कर लिया है, लेकिन बुद्ध का दर्शन करने वाला बौद्ध इस तथ्य से ही जान जाता है कि वह केवल अपने मन पर एक विश्वास को प्रतिबिंबित करने में सफल हुआ है, क्योंकि बुद्ध अपने परिनिर्वाण के बाद, स्वयं उनके शब्दों में, किसी को भी दिखाई नहीं देते।

इसलिए, बौद्ध ध्यान और अन्य प्रणालियों में अभ्यास किए जाने वाले ध्यान में एक मूलभूत अंतर है। ध्यान का मार्ग अपनाने वाले बौद्ध के लिए इस अंतर को पहचानना और अपने मन में यह स्पष्ट रूप से स्थापित करना आवश्यक है कि वह वास्तव में क्या करने का प्रयास कर रहा है।

पुनर्जन्म और दुख का मूल कारण अज्ञान ( अविज्जा ) और प्यास ( तन्हा ) का संयोजन है । ये दोनों कारण एक दुष्चक्र बनाते हैं; एक ओर अवधारणाएँ भावनाओं को जन्म देती हैं, और दूसरी ओर भावनाएँ अवधारणाओं को जन्म देती हैं। इस भौतिक संसार का अर्थ हमारे स्वयं के द्वारा की गई व्याख्या से परे कुछ भी नहीं है।

जब व्याख्या अतीत के पूर्वाग्रहों पर आधारित होती है, तो हम विपल्लास या विकृतियों, संज्ञा-विपल्लास ( धारणा की विकृति), चित्त-विपल्लास (स्वभाव की विकृति) और दिट्ठी-विपल्लास (अवधारणाओं की विकृति) के शिकार हो जाते हैं, जिसके कारण हम अनित्य ( अनिच्च ) को स्थायी, पीड़ादायक ( दुक्ख ) को सुखदायक और निराकार ( अनत्ता ) को साकार मान लेते हैं। परिणामस्वरूप, हम छह इंद्रियों ( चक्खु , सोत , नाक , जीभ , स्पर्श और मन ) के माध्यम से प्राप्त सभी संवेदी अनुभवों की गलत व्याख्या करते हैं। यह ज्ञात है कि इन इंद्रियों के माध्यम से हम जिन घटनाओं को जानते हैं, वे वास्तव में भौतिक जगत से मेल नहीं खातीं। इससे बौद्ध मत की पुष्टि होती है। हम अपनी इंद्रियों के बहकावे में आ जाते हैं। जिसे हम वांछनीय समझते हैं, सुख का स्रोत मानते हैं, उसकी खोज में हम वास्तव में एक परछाई का पीछा कर रहे होते हैं, एक मृगतृष्णा को पकड़ने का प्रयास कर रहे होते हैं। ये घटनाएँ अस्थिर, पीड़ादायक और निराकार होती हैं। हम स्वयं, जो इन भ्रमों का पीछा करते हैं, भी क्षणभंगुर हैं, दुख के अधीन हैं और उनमें कोई वास्तविक व्यक्तित्व नहीं है; एक परछाई जो दूसरी परछाई का पीछा कर रही है।

इसलिए बौद्ध ध्यान का उद्देश्य इस सत्य की बौद्धिक समझ से कहीं अधिक गहन समझ प्राप्त करना, भ्रम से मुक्ति पाना और इस प्रकार अज्ञान और प्यास दोनों का अंत करना है। यदि ध्यान से व्यक्ति के चरित्र और जीवन के प्रति उसके संपूर्ण दृष्टिकोण में कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन नहीं होता, तो स्पष्ट है कि या तो ध्यान पद्धति में कोई त्रुटि है या अभ्यास विधि में। केवल प्रकाश देखना, दर्शन प्राप्त करना या परमानंद का अनुभव करना पर्याप्त नहीं है। ये घटनाएँ इतनी सामान्य हैं कि बौद्ध ध्यान के उद्देश्य को सही मायने में समझने वाले व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पातीं।

बुद्ध के ध्यान साधना पर आधारित महान प्रवचन, महा-सतिपट्ठाना सूत्र में , ध्यान का उद्देश्य और उसे प्राप्त करने के साधन स्पष्ट रूप से बताए गए हैं। शरीर की गतियों और मन की निरंतर बदलती अवस्थाओं पर ध्यान देना आवश्यक है, ताकि उनके वास्तविक स्वरूप को जाना जा सके। इन भौतिक और मानसिक घटनाओं को स्वयं की झूठी अवधारणा से जोड़ने के बजाय, हमें उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए; एक ओर भौतिक शरीर की गतियों के रूप में, जो कारण-कार्य के भौतिक नियमों के अधीन हैं, और दूसरी ओर बाहरी उद्दीपनों के फलस्वरूप उत्पन्न होने और लुप्त होने वाली संवेदनाओं, भावनात्मक अवस्थाओं और अवधारणाओं की एक क्रमिक

श्रृंखला के रूप में। इन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से देखना चाहिए, मानो ये ऐसी प्रक्रियाएँ हों जो हमसे संबंधित न हों, बल्कि निराकार घटनाओं की एक श्रृंखला हों।

आत्मबोध ( सक्कायादिट्ठी ) के अलावा स्वार्थ और अहंकार की उत्पत्ति और क्या हो सकती है? यदि किसी भी प्रकार की ध्यान साधना में स्वार्थ या अहंकार का प्रभाव बना रहता है, तो वह सफल नहीं है। वृक्ष का मूल्यांकन उसके फलों से होता है और मनुष्य का उसके कर्मों से; इसके अलावा कोई अन्य मापदंड नहीं है। बौद्ध मनोविज्ञान में यह विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों से ही बनता है। सच्चे अर्थों में, केवल कर्म और विपाक की निरंतरता ही किसी स्थायी पहचान का दावा कर सकती है, न केवल जीवन के विभिन्न चरणों में, बल्कि जन्म और मृत्यु के इस संसार चक्र में विभिन्न जन्मों में भी । शरीर और मन के प्रति सजगता आत्मबोध के भ्रम को दूर करती है, और इतना ही नहीं, यह बाहरी वस्तुओं के प्रति लालसा और आसक्ति को भी समाप्त करती है, जिससे अंततः न तो लालसा करने वाला आत्म रहता है और न ही लालसा का कोई विषय। यह एक लंबी और कठिन साधना है, जिसे केवल एकांतवास में ही किया जा सकता है। इस अनुशासन का अस्थायी पाठ्यक्रम अच्छे परिणाम दे सकता है क्योंकि यह एक ऐसी मानसिकता विकसित करता है जिसे जीवन की सामान्य परिस्थितियों में कुछ हद तक लागू किया जा सकता है। अनासक्ति और वस्तुनिष्ठता स्पष्ट चिंतन के लिए अमूल्य सहायक हैं। ये व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति का बिना किसी पूर्वाग्रह, चाहे वह व्यक्तिगत हो या अन्य, के आकलन करने और उस परिस्थिति में साहस और विवेक के साथ कार्य करने में सक्षम बनाते हैं। इसका एक अन्य वरदान एकाग्रता है - किसी भी विषय पर मन को स्थिर रखने की क्षमता। यही किसी भी कार्य में सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है। मन को वश में करना कठिन है; यह हवा की तरह या बेकाबू घोड़े की तरह बेचैनी से इधर-उधर भटकता रहता है, लेकिन जब यह पूरी तरह से नियंत्रण में होता है, तो यह पूरे ब्रह्मांड का सबसे शक्तिशाली साधन बन जाता है।

सर्वप्रथम, वह भयमुक्त है। भय इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि हम मन और शरीर ( नाम - रूप ) को स्वयं से जोड़ते हैं, परिणामस्वरूप, इनमें से किसी को भी हानि पहुँचाना स्वयं को हानि पहुँचाना समझा जाता है। परन्तु जिसने इस भ्रम को तोड़कर यह जान लिया है कि पंच वृत्त की प्रक्रिया मात्र कारण और परिणाम की अभिव्यक्ति है, वह मृत्यु या दुर्भाग्य से नहीं डरता। वह सफलता और असफलता में एकसमान रहता है, प्रशंसा या निंदा से अप्रभावित। वह केवल बुरे कर्मों से भयभीत होता है, क्योंकि वह जानता है कि संसार में कोई भी वस्तु या व्यक्ति उसे स्वयं के सिवा हानि नहीं पहुँचा सकता, और जैसे-जैसे उसका वैराग्य बढ़ता है, वैसे-वैसे वह बुरे कर्मों से कम प्रभावित होता जाता है। बुरे कर्म बुरे मन से उत्पन्न होते हैं, और जैसे-जैसे मन शुद्ध होता है, विकारों से मुक्त होता है, नकारात्मक कर्मों का संचय समाप्त हो जाता है। वह बुरे कर्मों से घृणा करने लगता है और अलोभ , आदोष और अमोह से उत्पन्न कर्मों में अधिकाधिक आनंद लेने लगता है — उदारता, परोपकार और ज्ञान से।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 186,187

———————————————————————

(धम्मपद 183, 184 और 185) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 186 और 187 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 188 से 192)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 186 और 187 - अनाभिरताभिक्खु वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na kahapana vassena
titti kamesu vijjati
appassada dukha kama
iti vinnaya pandito.

आपि दिब्बेसु कामेसु
ratim so nadhigacchati
तनख्खयारतो होती
sammasambuddhasavako.

---

श्लोक 186 एवं 187 : सिक्कों की वर्षा से इंद्रिय सुख तृप्त नहीं होते; इंद्रिय सुख अल्प ही होते हैं और उनका परिणाम दुःख ही होता है। यह जानकर, बुद्ध के शिष्य ज्ञानी व्यक्ति को देवताओं के सुखों में भी आनंद नहीं मिलता, परन्तु वह भोग-विलास के निवारण (अर्थात निर्वाण) में प्रसन्न होता है।

---

एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (186) और (187) का उच्चारण एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया, जो भिक्षु के रूप में अपने जीवन से नाखुश था।

एक समय की बात है, जेतवन मठ में एक युवा भिक्षु रहता था। एक दिन उसके गुरु ने उसे अध्ययन के लिए दूसरे मठ में भेज दिया। जब वह दूर था, उसके पिता गंभीर रूप से बीमार हो गए और उसे देखे बिना ही उनका निधन हो गया। लेकिन उसके पिता ने उसके लिए उसके भाई, जो कि उसका मामा था, के पास सौ कहपना (सिक्के) छोड़ दिए। लौटने पर, उसके मामा ने उसे उसके पिता की मृत्यु और उसके लिए छोड़े गए सौ कहपना (सिक्कों) के बारे में बताया। पहले तो उसने कहा कि उसे पैसों की कोई ज़रूरत नहीं है। बाद में, उसने सोचा कि गृहस्थ जीवन में लौटना बेहतर होगा, और परिणामस्वरूप, वह भिक्षु जीवन से असंतुष्ट हो गया। धीरे-धीरे, उसकी जीवन में रुचि कम होने लगी और उसका वजन भी घटने लगा। जब अन्य भिक्षुओं को इस बारे में पता चला, तो वे उसे बुद्ध के पास ले गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या यह सच है कि वे भिक्षु जीवन से नाखुश हैं और क्या उनके पास गृहस्थ जीवन शुरू करने के लिए पर्याप्त धन है? उन्होंने उत्तर दिया कि यह सच है और उनके पास सौ कहपन (सिक्के) हैं जिनसे वे अपना जीवन शुरू कर सकते हैं। तब बुद्ध ने उन्हें समझाया कि उन्हें भोजन, वस्त्र, घरेलू बर्तन, दो बैल, हल, कुल्हाड़ी, चाकू आदि की आवश्यकता होगी, इसलिए उनके सौ कहपन से खर्चा पूरा करना मुश्किल होगा। बुद्ध ने उन्हें बताया कि मनुष्यों के लिए कभी भी पर्याप्त नहीं हो सकता, यहाँ तक कि उन सर्वशक्तिमान सम्राटों के लिए भी नहीं जो किसी भी क्षण सिक्कों, रत्नों या किसी भी मात्रा में धन और खजाने की वर्षा करवा सकते हैं। आगे, बुद्ध ने सर्वशक्तिमान सम्राट मंदातु की कहानी सुनाई, जिन्होंने चतुमहाराजिका और तावतिंसा दोनों लोकों में लंबे समय तक देवों (देवदूतों) की महिमा का आनंद लिया। तवातिमसा में लंबा समय बिताने के बाद, एक दिन मंदातु ने इच्छा जताई कि वह सक्का के साथ तावातिमसा को साझा करने के बजाय उसका एकमात्र शासक हो। लेकिन इस बार उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी और वह तुरंत बूढ़ा और दुर्बल हो गया; वह मानवलोक लौट आया और कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 186 एवं 187 : सिक्कों की वर्षा से इंद्रिय सुख तृप्त नहीं होते; इंद्रिय सुख अल्प ही होते हैं और उनका परिणाम दुःख ही होता है। यह जानकर, बुद्ध के शिष्य ज्ञानी व्यक्ति को देवताओं के सुखों में भी आनंद नहीं मिलता, परन्तु वह भोग-विलास के निवारण (अर्थात निर्वाण) में प्रसन्न होता है।

---

प्रवचन के अंत में युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक एक ऐसे युवा भिक्षु के संदर्भ में कहे थे जो भिक्षु के रूप में असंतुष्ट था।

कथा के अनुसार, संघ में प्रवेश लेने और पूर्ण दीक्षा लेने के बाद, उनके गुरु ने उन्हें यह कहकर विदा किया, "फलां स्थान पर जाकर विधि-विधान सीखो।" भिक्षु के वहां पहुंचते ही उनके पिता बीमार पड़ गए। पिता अपने पुत्र से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल थे, परन्तु उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो उन्हें बुला सके। मृत्यु के निकट आकर वे पुत्र के प्रेम में बड़बड़ाने लगे। अपने सबसे छोटे पुत्र के हाथों में सौ सिक्के रखते हुए उन्होंने कहा, "यह धन लो और इससे मेरे पुत्र के लिए एक कुंड और वस्त्र खरीद लो।" ऐसा कहते ही उनका प्राण थम गया।

जब युवा भिक्षु घर लौटे, तो उनके सबसे छोटे भाई ने उनके चरणों में गिरकर ज़मीन पर लोटते हुए रोते हुए कहा, “आदरणीय, आपके पिता ने मरते समय आपकी प्रशंसा की थी और मेरे हाथ में सौ सोने के सिक्के रख दिए थे। मैं इनका क्या करूँ?” युवा भिक्षु ने धन लेने से इनकार कर दिया और कहा, “मुझे इस धन की कोई आवश्यकता नहीं है।” कुछ समय बाद, उन्होंने मन ही मन सोचा, “यदि मुझे घर-घर जाकर भिक्षा माँगकर ही अपना जीवन यापन करना पड़े, तो जीने का क्या लाभ? ये सौ सिक्के मेरे जीवनयापन के लिए पर्याप्त हैं; मैं गृहस्थ जीवन में लौट जाऊँगा।”

असंतोष से व्याकुल होकर उसने पवित्र ग्रंथों का पाठ और ध्यान का अभ्यास छोड़ दिया, और उसका चेहरा पीलिया जैसा दिखने लगा। युवकों ने उससे पूछा, “क्या बात है?” उसने उत्तर दिया, “मैं असंतुष्ट हूँ।” इसलिए उन्होंने यह बात उसके गुरु और गुरु को बताई, और गुरु उसे बुद्ध के पास ले गए और उसे उसकी समस्या समझाई।

बुद्ध ने उनसे पूछा, “क्या यह बात सच है कि आप असंतुष्ट हैं?” उन्होंने उत्तर दिया, “जी हां, पूज्यवर।” बुद्ध ने फिर उनसे पूछा, “आपने ऐसा क्यों किया? क्या आपके पास जीविका का कोई साधन है?” “जी हां, पूज्यवर।” “आपकी संपत्ति कितनी है?” “पूज्यवर ...

तब बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षु, तुम्हारे पास जो सिक्के हैं वे बहुत कम हैं। इतने कम सिक्कों से तुम अपनी इच्छा कैसे पूरी कर सकते हो? अतीत में ऐसे लोग रहते थे जो सार्वभौमिक सम्राटों की तरह शासन करते थे, जो केवल भुजाओं को हिलाकर ही रत्नों की वर्षा करवा सकते थे, जिससे बारह मील तक की भूमि कमर तक रत्नों से ढक जाती थी; इन लोगों ने छत्तीस सक्कों की मृत्यु तक शासन किया; और इतने लंबे समय तक देवताओं पर प्रभुत्व रखने के बावजूद, वे अपनी इच्छा पूरी किए बिना ही मर गए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 186)

कहापना वस्सेन कामेसु तिति न विज्जति

पण्डितो काम अप्पसदा दुःख इति विन्याय

kahāpaṇa vassena : सोने के सिक्कों की वर्षा से भी; kāmesu : कामुकता की इच्छा; titti : तृप्ति; na vijjati : दिखाई नहीं देता; paṇḍito [ paṇḍita ]: एक बुद्धिमान व्यक्ति; kāmā : कामुक सुख; appassādā : (असंतुष्ट मानता है); dukhā : (और) कष्टदायक; iti : इस तरह; viññāya : समझकर

इंद्रिय सुख कभी तृप्त नहीं होते। सोने की वर्षा से भी ये तृप्त नहीं होते। बुद्धिमान जानते हैं कि इंद्रिय सुख से संतुष्टि कम और पीड़ा अधिक मिलती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 187)

सो दिब्बेसु कामेसु अपि रतिम नाधिगच्छति

सम्मासंबुद्धसावको तनहक्खयारतो होति

इसलिए वह; दिब्बेसु : (स्वर्गीय) सुखों में भी; कामेसु अपि : भोग- विलास में भी ; नाधिगच्छति : पास नहीं आएगा; सम्मासंबुद्धसावको [ सम्मासंबुद्धसावका ]: प्रबुद्ध व्यक्ति का वह शिष्य; तनखख्यरतो [ तनखख्यरता ]: जिसका मन केवल इच्छाओं के अंत पर स्थिर है; होति : वह है

बुद्ध का शिष्य दिव्य सुखों के पीछे भी नहीं भागता। बुद्ध के शिष्य का मन केवल अपनी इच्छाओं को समाप्त करने की प्रक्रिया पर ही केंद्रित रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 186-187)

सम्मा सम्बुद्ध सावका : बुद्ध के शिष्य। बुद्ध के भिक्षु शिष्यों की लंबी परंपरा बुद्ध के प्रथम उपदेश - धम्मचक्क पवत्तना सूत्र - के प्रकाशन से शुरू हुई । यह उपदेश पाँच तपस्वियों को संबोधित था। अंततः उन पाँचों ने अर्हतत्व प्राप्त किया - जो आध्यात्मिक प्राप्ति का सर्वोच्च स्तर है। इस प्रकार अर्हतत्व प्राप्त करने वाले और बुद्ध के प्रथम शिष्य बनने वाले पाँच विद्वान भिक्षु ब्राह्मण कोण्डञ्ञ, भद्दिया, वप्पा, महानामा और अस्सजी थे।

कोण्डाञ्ञ उन आठ ब्राह्मणों में सबसे छोटे और सबसे बुद्धिमान थे जिन्हें राजा सुद्धोदन ने शिशु राजकुमार का नामकरण करने के लिए बुलाया था। अन्य चार ब्राह्मण उन बड़े ब्राह्मणों के पुत्र थे। ये सभी पाँचों बोधिसत्व के बुद्धत्व प्राप्ति के प्रयास में उनकी प्रतीक्षा में वनवास में चले गए। जब उन्होंने व्यर्थ की तपस्या और कठोर साधनाओं को त्यागकर अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए संयमित आहार लेना शुरू किया, तो उनके इस बदले हुए तरीके से निराश होकर उनके इन प्रिय अनुयायियों ने उन्हें त्याग दिया और इसिपताना चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया। पूज्य कोण्डाञ्ञ प्रथम अरहत और संघ के सबसे वरिष्ठ सदस्य बने। पाँचों में से एक अस्सजी ने ही बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्त को परिवर्तित किया था। तब से संघ के सदस्यों की संख्या बढ़ती गई।

वाराणसी में यासा नाम का एक करोड़पति का पुत्र रहता था, जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था। एक सुबह वह जल्दी उठा और अपनी दासियों और संगीतकारों को घृणित मुद्रा में सोते हुए देखकर उसे घोर घृणा हुई। यह दृश्य इतना घृणित था कि महल किसी श्मशान की तरह उदास दिखाई दे रहा था। सांसारिक जीवन की व्यर्थता को भांपकर वह चुपके से घर से निकल गया और बोला, “मैं व्यथित हूँ, मैं पीड़ित हूँ”, और इसिपताना की ओर चल पड़ा, जहाँ पाँच भिक्षुओं के अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद बुद्ध अस्थायी रूप से

निवास कर रहे थे। उस समय बुद्ध हमेशा की तरह एक खुले मैदान में टहल रहे थे। दूर से उसे आते देख बुद्ध अपने चहलकदमी से बाहर आए और एक तैयार आसन पर बैठ गए। उनसे कुछ ही दूरी पर यासा खड़ा था और रोते हुए बोला, “हे व्यथित हूँ! मैं पीड़ित हूँ!” तब बुद्ध ने कहा, “हे यस! यहाँ कोई कष्ट नहीं है! यहाँ कोई अत्याचार नहीं है! हे यस! इधर आओ! बैठो। मैं तुम्हें धर्म का उपदेश दूंगा।” दुखी यस बुद्ध के प्रोत्साहन भरे शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने अपनी स्वर्ण की पांव उतारकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश दिया और उसने संतत्व की प्रथम अवस्था ( सोतापत्ति ) प्राप्त की। सबसे पहले बुद्ध ने उसे दान, नैतिकता, दिव्य अवस्था, कामदीन के दुष्परिणाम और त्याग के आशीर्वाद के बारे में बताया । जब उन्होंने पाया कि उसका मन ग्रहणशील है और गहन शिक्षा को ग्रहण करने के लिए तैयार है, तो उन्होंने उसे चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया।
यासा की माता ने सबसे पहले अपने पुत्र के लापता होने का पता लगाया और इसकी सूचना अपने पति को दी। पति ने तुरंत चारों दिशाओं में घुड़सवार भेजे और स्वयं सोने की चप्पलों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए इसिपताना की ओर चल पड़ा। बुद्ध ने उसे दूर से आते हुए देखा और अपनी मानसिक शक्तियों से यह निश्चय किया कि वह अपने पुत्र को न देख पाए। जब वह बुद्ध के पास पहुँचा और आदरपूर्वक पूछा कि क्या उन्होंने उसके पुत्र यासा को देखा है, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, “अच्छा, तो कृपया यहाँ बैठ जाइए। आप अपने पुत्र को देख पाएँगे।” इस शुभ समाचार से प्रसन्न होकर वह बैठ गया। बुद्ध ने उसे प्रवचन दिया और वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने कहा, “हे प्रभु, यह उत्तम है! यह ऐसा है मानो कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, या अंधकार में दीपक जला दे, ताकि देखने वाले देख सकें!” इसी प्रकार बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत की व्याख्या की है। “मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेता हूँ। बुद्ध मुझे आज से जीवन के अंत तक अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें!” वे तीन सूत्र का प्रयोग करते हुए शरण लेने वाले पहले गृहस्थ अनुयायी थे। अपने पिता को दिए गए प्रवचन को सुनकर यासा ने अर्हतत्व प्राप्त किया। इसके बाद बुद्ध ने अपनी इच्छाशक्ति वापस ले ली ताकि यासा के पिता अपने पुत्र को देख सकें। उन्होंने अपने पुत्र को देखा और अगले दिन बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने मौन रहकर निमंत्रण स्वीकार किया। करोड़पति यासा के जाने के बाद उन्होंने बुद्ध से लघु और उच्च दीक्षा प्रदान करने की विनती की। “आओ, हे भिक्षुओं! धर्म अच्छी तरह से सिखाया गया है। दुखों का पूर्ण अंत करने के लिए धार्मिक जीवन व्यतीत करो।” इन शब्दों के साथ बुद्ध ने उन्हें उच्च दीक्षा प्रदान की। पूज्य यासा के साथ अर्हतों की संख्या बढ़कर छह हो गई।
निमंत्रण पर, बुद्ध अपने छह शिष्यों के साथ करोड़पति के घर गए। पूज्य यासा की माता और उनकी पूर्व पत्नी ने बुद्ध द्वारा प्रतिपादित उपदेश सुने और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त करके उनकी पहली दो महिला अनुयायी बनीं। पूज्य यासा के चार विशिष्ट मित्र थे, जिनके नाम विमला, सुभहु, पुन्णजी और गवम्पति थे। जब उन्होंने सुना कि उनके परम मित्र ने अपने बाल मुंडवा लिए हैं और पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तो वे पूज्य यासा के पास आईं और उनका अनुसरण करने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य यासा ने उनका परिचय बुद्ध से कराया और धम्म सुनकर वे भी अर्हतत्व प्राप्त कर गईं।
पूज्य यासा के पचास और योग्य मित्र, जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख परिवारों से थे, बुद्ध से शिक्षा प्राप्त करके अर्हत पद प्राप्त कर संघ में शामिल हो गए। उनके ज्ञानोदय के लगभग दो महीने ही बीते थे कि अर्हतों की संख्या धीरे-धीरे बढ़कर साठ हो गई। वे सभी प्रतिष्ठित परिवारों से थे और योग्य पिताओं के योग्य पुत्र थे। बुद्ध, जो बहुत पहले ही साठ शिष्यों को ज्ञान प्रदान करने में सफल हो चुके थे, ने उन्हें सत्य के दूतों के रूप में भेजने का निश्चय किया ताकि वे बिना किसी भेदभाव के सभी को अपना नया धर्म सिखा सकें। उन्हें विभिन्न दिशाओं में भेजने से पहले उन्होंने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया:
“हे भिक्षुओं, मैं सभी बंधनों से मुक्त हूँ, चाहे वे दैवीय हों या मानवीय।”
“हे भिक्षुओं, आप भी सभी बंधनों से मुक्त हैं, चाहे वे दैवीय हों या मानवीय।”
हे भिक्षुओं, अनेकों के कल्याण के लिए, अनेकों की खुशी के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए आगे बढ़ो। एक मार्ग से दो लोग न जाएं।
हे भिक्षुओं, धम्म का प्रचार करो, जो आरंभ में उत्तम, मध्य में उत्तम और अंत में उत्तम है, भावना और अक्षर दोनों में। पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन का प्रचार करो।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 188 से 192

---

(धम्मपद 186 और 187) <<<< पिछला || धम्मपद 188 से 192 || अगला >>>> (धम्मपद 193)

---

अंतर्वस्तु

1.2.1अभिकर्षण
धम्मपद श्लोक 188 से 192 - अग्गिदत्तब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Bahum ve saranam yanti
pabbatani vanani ca
aramarukkhacetyani
manussa bhayatajjita.
Netam kho saranam khemam
netam saranamuttamam
netam saranamagamma
sabbadukkha pamuccati.
Yo ca buddhanca dhammanca
samghanca saranam gato
cattari ariyasaccani
सम्मप्पन्नया पस्साति.
दुक्खम दुक्खसमुप्पदम
dukkhassa ca atikkamam
ariyam catthangikam maggam
दुःखुपासमगमिनम।
Etam kho saranam khemam
एतम सरनमुत्तमम
etam saranamagamma
sabbadukkha pamuccati.

———————————————————————

श्लोक 188 : जब खतरे का सामना करना पड़ता है, तो लोग अनेक शरणस्थलों की ओर जाते हैं, - पहाड़ों और जंगलों में, उद्यानों और उद्यानों में, और पवित्र वृक्षों की ओर।

———————————————————————

श्लोक 189 : परन्तु ऐसा शरणस्थान सुरक्षित शरणस्थान नहीं है, न ही सर्वोत्तम शरणस्थान है। ऐसे शरणस्थान में आने से व्यक्ति जीवन के सभी बुरे परिणामों (दुःख) से मुक्त नहीं हो जाता।

———————————————————————

श्लोक 190 और 191 : जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, वह मार्ग अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को देखता है, अर्थात् दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण और आठ घटकों का आर्य मार्ग जो दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाता है।

———————————————————————

श्लोक 192 : यही वास्तव में सुरक्षित शरण है; यही सर्वोत्तम शरण है। इस शरण में आने से व्यक्ति सभी दुःखों (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

अग्गिदत्ता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिदत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (188) से (192) तक कहे।
अग्गिदत्त राजा महाकोसला के शासनकाल में प्रमुख पुजारी थे, जो राजा पसेनदी के पिता थे। राजा महाकोसला की मृत्यु के बाद, अग्गिदत्त ने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी और फिर अपना घर छोड़कर गैर-बौद्ध तपस्वी बन गए। वे अपने दस हजार अनुयायियों के

साथ अंग, मगध और कुरु राज्यों की सीमा के पास एक स्थान पर रहने लगे, जो एक शक्तिशाली नाग के निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर स्थित था। अग्गिदत्त अपने अनुयायियों और इन तीनों राज्यों के लोगों को उपदेश देते थे: "जंगलों, पहाड़ों, उद्यानों, बगीचों और वृक्षों को प्रणाम करो; ऐसा करने से तुम जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाओगे।"

एक दिन बुद्ध ने अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों को दर्शन दिए और महसूस किया कि उनके लिए अरहतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना को अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों के पास भेजा और उनसे कहा कि वे स्वयं बाद में उनके पास आएंगे। थेरा महा मोग्गलाना अग्गिदत्त और उसके अनुयायियों के स्थान पर गए और उनसे एक रात के लिए आश्रय मांगा। उन्होंने पहले तो उनका अनुरोध ठुकरा दिया, लेकिन अंततः वे उन्हें नाग के निवास स्थान, रेत के टीले पर रुकने देने के लिए सहमत हो गए। नाग थेरा महा मोग्गलाना का घोर विरोधी था, और नाग और थेरा के बीच द्वंद्व युद्ध हुआ; दोनों पक्षों ने धुआं और ज्वालाएं निकालकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। हालांकि, अंत में नाग पराजित हुआ। उसने स्वयं को रेत के टीले के चारों ओर लपेट लिया और अपना सिर उठाकर थेरा महा मोग्गलाना के ऊपर छाते की तरह फैला दिया, इस प्रकार उनके प्रति सम्मान दिखाया। सुबह तड़के, अग्गिदत्ता और अन्य तपस्वी यह पता लगाने के लिए रेत के टीले पर आए कि थेरा महा मोग्गलाना जीवित हैं या नहीं; उन्हें उम्मीद थी कि वे मर चुके होंगे। जब उन्होंने नाग को वश में पाया, और वह विनम्रतापूर्वक अपना सिर थेरा महा मोग्गलाना के ऊपर छाते की तरह रखे हुए था, तो वे अत्यंत आश्चर्यचकित रह गए।

तभी बुद्ध वहाँ पहुँचे और थेरा महा मोग्गलाना टीले पर अपने आसन से उठकर बुद्ध को प्रणाम किया। तब थेरा महा मोग्गलाना ने तपस्वियों के समूह से कहा, "ये मेरे गुरु, परम बुद्ध हैं, और मैं इस महान गुरु का एक विनम्र शिष्य मात्र हूँ!" उनकी बात सुनकर, थेरा महा मोग्गलाना की शक्ति से भी अत्यंत प्रभावित तपस्वी बुद्ध की अपार शक्ति के सामने विस्मित हो गए। तब बुद्ध ने अग्गिदत्त से पूछा कि वह अपने अनुयायियों और आस-पास के निवासियों को क्या शिक्षा देते हैं। अग्गिदत्त ने उत्तर दिया कि उन्होंने उन्हें पर्वतों, वनों, उद्यानों, उद्यानों और वृक्षों को प्रणाम करना सिखाया है, और ऐसा करने से वे जीवन के सभी कष्टों से मुक्त हो जाएँगे। अग्गिदत्त को बुद्ध ने उत्तर दिया, “अग्गिदत्त, जब लोग खतरे में पड़ते हैं तो वे पहाड़ों, जंगलों, उद्यानों, उद्यानों और पेड़ों की शरण लेते हैं, परन्तु ये चीजें उन्हें कोई सुरक्षा नहीं दे सकतीं। केवल वे ही जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेते हैं, पुनर्जन्म के चक्र (संसार) से मुक्त होते हैं।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 188 : जब खतरे का सामना करना पड़ता है, तो लोग अनेक शरणस्थलों की ओर जाते हैं, - पहाड़ों और जंगलों में, उद्यानों और उद्यानों में, और पवित्र वृक्षों की ओर।

---

श्लोक 189 : परन्तु ऐसा शरणस्थान सुरक्षित शरणस्थान नहीं है, न ही सर्वोत्तम शरणस्थान है। ऐसे शरणस्थान में आने से व्यक्ति जीवन के सभी बुरे परिणामों (दुःख) से मुक्त नहीं हो जाता।

---

श्लोक 190 और 191 : जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, वह मार्ग अंतर्दृष्टि से चार आर्य सत्यों को देखता है, अर्थात् दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निवारण और आठ घटकों का आर्य मार्ग जो दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाता है।

---

श्लोक 192 : यही वास्तव में सुरक्षित शरण है; यही सर्वोत्तम शरण है। इस शरण में आने से व्यक्ति सभी दुःखों (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

---

प्रवचन के अंत में अग्गिदत्त और उनके सभी अनुयायी अर्हतत्व प्राप्त कर चुके थे। वे सभी भिक्षु संघ में प्रवेश कर गए। उस दिन जब अंग, मगध और कुरु से अग्गिदत्त के शिष्य उन्हें प्रणाम करने आए, तो उन्होंने अपने गुरु और उनके अनुयायियों को भिक्षुओं के वेश में देखा और वे व्याकुल होकर सोचने लगे, "अधिक शक्तिशाली कौन है? हमारे गुरु या समना गौतम? हमारे गुरु तो अधिक शक्तिशाली होंगे क्योंकि समना गौतम हमारे गुरु के पास आए हैं।" बुद्ध उनकी सोच को समझ गए थे; अग्गिदत्त ने भी महसूस किया कि उन्हें उनके संदेह को दूर करना चाहिए। इसलिए, उन्होंने अपने शिष्यों की उपस्थिति में बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! आप मेरे गुरु हैं, मैं तो आपका शिष्य मात्र हूँ।" इस प्रकार, सभी उपस्थित लोगों को बुद्ध की सर्वोच्चता का ज्ञान प्राप्त हुआ।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक असंतुष्ट युवा भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिदत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि अग्गिदत्त महा कोसल के गृह-पुजारी थे। महा कोसल की मृत्यु के बाद, उनके पुत्र राजा पसेनादि कोसल ने अग्गिदत्त के प्रति सम्मानपूर्वक, क्योंकि वे उनके पिता के गृह-पुजारी रह चुके थे, उन्हें उसी पद पर पुनः नियुक्त कर दिया। जब भी अग्गिदत्त राजा से मिलने आते, राजा उनसे मिलने आगे आते और उन्हें अपने समान सम्मान के साथ आसन प्रदान करते तथा कहते, "गुरुजी, कृपया यहाँ बैठिए।" कुछ समय बाद, अग्गिदत्त ने मन ही मन सोचा, "यह राजा मुझे बहुत आदर देते हैं, परन्तु राजा की कृपा हमेशा के लिए बनी रहना असंभव है। राजा के गृहस्थी में जीवन राजा के समान आयु के व्यक्ति के लिए बहुत सुखद होता है। परन्तु मैं तो वृद्ध हो चुका हूँ, इसलिए मेरे लिए भिक्षु बनना ही सर्वोत्तम है।" तदनुसार, अग्गिदत्ता ने राजा से भिक्षु बनने की अनुमति मांगी, पूरे शहर में ढोल बजवाया, एक सप्ताह के भीतर अपनी सारी संपत्ति दान में दे दी और संसार त्याग कर एक विधर्मी संप्रदाय का भिक्षु बन गया। अनेक पुरुषों ने भी उसका अनुसरण करते हुए भिक्षु बनने का मार्ग अपनाया।

अग्गिदत्त अपने भिक्षुओं के साथ अंग और मगध तथा कुरु देश की सीमा पर रहने लगे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने भिक्षुओं से कहा, "हे मित्रों, यदि तुममें से किसी के मन में कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आएं, तो तुममें से प्रत्येक नदी से रेत भरकर एक घड़ा इस स्थान पर उंडेल दो।" भिक्षुओं ने कहा, "ठीक है," और ऐसा करने का वचन दिया। अतः, जब भी उनके मन में कामुक, द्वेषपूर्ण या क्रूर विचार आते, वे अग्गिदत्त के आदेशानुसार कार्य करते। समय बीतने के साथ-साथ रेत का एक विशाल ढेर बन गया और नागों के राजा अहिच्छत्त ने उस पर अधिकार कर लिया। अंग और मगध तथा कुरु राज्य के निवासी हर माह उन भिक्षुओं के सम्मान में बहुमूल्य भेंट लाते थे। अब अग्गिदत्ता ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया, "जिस प्रकार तुम पर्वत की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम वन की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम उपवन की शरण लेते हो, जिस प्रकार तुम वृक्ष की शरण लेते हो, उसी प्रकार तुम समस्त कष्टों से मुक्त हो जाओगे।" इस उपदेश के साथ अग्गिदत्ता ने अपने शिष्यों को यह समझाया।

इस समय भावी बुद्ध, महान संन्यास पर जाने और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद, सावत्थी के निकट जेतवन मठ में निवास करने लगे। भोर में संसार का अवलोकन करते हुए उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अग्गिदत्त अपने शिष्यों के साथ उनके ज्ञान के जाल में प्रवेश कर चुके हैं। अतः उन्होंने मन ही मन विचार किया, "क्या इन सभी प्राणियों में अर्हतत्व के लिए आवश्यक गुण हैं?" यह जानकर कि उनमें आवश्यक गुण हैं, उन्होंने संध्या पर पूज्य मोग्गलाना से कहा, "मोग्गलाना, क्या आप देखते हैं कि ब्राह्मण अग्गिदत्त भीड़ को उचित मार्ग के अलावा किसी अन्य मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं? जाइए और उन्हें समझाइए।" मोग्गलाना ने कहा, "पूज्यवर, ये भिक्षु बहुत संख्या में हैं, और यदि मैं अकेला जाऊँगा, तो मुझे भय है कि वे अड़ियल साबित होंगे; परन्तु यदि आप भी जाएँगे, तो वे वश में हो जाएँगे।" मोग्गलाना ने कहा, "मोग्गलाना, मैं भी जाऊँगा, लेकिन आप आगे जाइए।"

जब पूज्य भिक्षु आगे बढ़े, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "ये भिक्षु शक्तिशाली और संख्या में बहुत हैं। अगर मैं इनके एकत्रित होने पर एक शब्द भी कहूँ, तो ये सब मिलकर मेरे विरुद्ध विद्रोह कर देंगे।" इसलिए उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से भारी वर्षा करवाई। जब वर्षा की वे बूँदें गिरीं, तो भिक्षु एक-एक करके उठे और प्रत्येक अपने-अपने पत्तों और घास के कुँवारी में चले गए। पूज्य भिक्षु अग्गिदत्त की पत्तों से बनी कुँवारी के द्वार पर जाकर खड़े हो गए और पुकारा, "अग्गिदत्त!" जब अग्गिदत्त ने पूज्य भिक्षु की आवाज सुनी, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मुझे नाम से पुकार सके; कौन है जो मुझे इस प्रकार नाम से पुकार रहा है?" और अहंकार में आकर उन्होंने उत्तर दिया, "वह कौन है?" "मैं हूँ, ब्राह्मण।" "तुम्हें क्या कहना है?" "मुझे यहाँ कोई ऐसी जगह बता दो जहाँ मैं आज रात ठहर सकूँ।" "यहाँ आपके रहने की कोई जगह नहीं है; यहाँ तो बस एक ही भिक्षु के लिए पत्तों और घास की झोपड़ी है।" "अग्गिदत्त, मनुष्य मनुष्यों के घर जाते हैं, पशु पशुओं के घर जाते हैं और भिक्षु भिक्षुओं के घर जाते हैं; ऐसा मत करो; मुझे रहने की जगह दो।" "क्या तुम भिक्षु हो?" "हाँ, मैं भिक्षु हूँ।" "यदि तुम भिक्षु हो, तो तुम्हारा भिक्षापात्र कहाँ है? तुम्हारे पास कौन-कौन से भिक्षु-सामान हैं?" "मेरे पास बर्तन तो हैं, लेकिन उन्हें इधर-उधर ले जाना असुविधाजनक है, इसलिए मैं उन्हें यहीं से लाता हूँ और फिर चला जाता हूँ।" "तो तुम उन्हें यहीं से लाकर चला जाओगे!" अग्गिदत्त ने पूज्यवर से क्रोधित होकर कहा। पूज्यवर ने उससे कहा, "चले जाओ, अग्गिदत्त, क्रोधित मत हो; मुझे कोई ऐसी जगह दिखाओ जहाँ मैं रात बिता सकूँ।" "यहाँ रहने की कोई जगह नहीं है।" "अच्छा, उस रेत के ढेर पर कौन रहता है?" "एक नाग-राजा।" "मुझे रेत का ढेर दे दो।" "मैं तुम्हें रेत का ढेर नहीं दे सकता; यह उसका घोर अपमान होगा।" "कोई बात नहीं, मुझे दे दो।" "ठीक है; लगता है सिर्फ तुम्हें ही पता है।"

पूज्य साधु रेत के ढेर की ओर चल पड़े। नागराज ने उन्हें आते देख मन ही मन सोचा, "वह साधु इधर आ रहा है। निःसंदेह वह नहीं जानता कि मैं यहाँ हूँ। मैं उस पर अग्नि उगलकर उसे मार डालूँगा।" पूज्य साधु ने मन ही मन सोचा, "यह नागराज अवश्य ही सोच रहा होगा, 'केवल मैं ही धुआँ उगल सकता हूँ; अन्य ऐसा नहीं कर सकते।'" अतः पूज्य साधु ने स्वयं अग्नि उगल दी। दोनों के शरीरों से धुएँ के गुबार उठे और ब्रह्मालोक की ओर चले गए। धुएँ के गुबार से पूज्य साधु को कोई कष्ट नहीं हुआ, परन्तु नागराज को अत्यंत कष्ट हुआ। नागराज धुएँ के प्रकोप को सहन न कर सका और अग्नि में प्रज्वलित हो गया। पूज्य साधु ने अग्नि तत्व का ध्यान किया और समाधि अवस्था में प्रवेश कर गए। इसके बाद वे अग्नि में प्रज्वलित हो गए और अग्नि में प्रज्वलित होकर ब्रह्मालोक की ओर चले गए। उनका पूरा शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मशालों से जला दिया गया हो। ऋषियों का समूह यह सब देख रहा था और मन ही मन सोच

रहा था, “नाग-राज भिक्षु को जला रहा है; हमारे वचन न मानने के कारण इस भले भिक्षु ने अपना प्राण खो दिया।” जब पूज्य भिक्षु ने नाग-राज को वश में कर लिया और उसे उसके कुकर्म से विमुख कर दिया, तो वह रेत के ढेर पर बैठ गया। तब नाग-राज ने रेत के ढेर को खाने-पीने की वस्तुओं से घेर लिया और एक गुंबद के भीतरी भाग के बराबर विशाल फन बनाकर पूज्य भिक्षु के सिर पर रख दिया।
सुबह तड़के ऋषियों के समूह ने मन ही मन सोचा, “हम पता लगाएंगे कि भिक्षु जीवित हैं या मृत।” अतः वे पूज्य भिक्षु के पास गए और जब उन्हें रेत के ढेर पर बैठे देखा, तो उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, “भिक्षु, नागराज ने आपको बहुत सताया होगा।” “क्या आप उसे मेरे सिर पर फन उठाए वहाँ खड़े नहीं देख रहे?” तब ऋषियों ने कहा, “भिक्षु ने इतने शक्तिशाली नागराज को परास्त करके कितना अद्‌भुत कार्य किया!” और वे पूज्य भिक्षु के चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो गए।
उसी क्षण बुद्ध पास आ गए। पूज्यवर ने बुद्ध को देखकर उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया। ऋषियों ने पूज्यवर से कहा, “क्या यह व्यक्ति आपसे श्रेष्ठ है?” पूज्यवर ने उत्तर दिया, “यह बुद्ध हैं; मैं तो केवल उनका शिष्य हूँ।” बुद्ध रेत के ढेर के शिखर पर बैठ गए। ऋषियों का समूह आपस में कहने लगा, “यदि एक साधारण शिष्य में इतनी अलौकिक शक्ति है, तो इस व्यक्ति की अलौकिक शक्ति कैसी होगी?” और आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उन्होंने बुद्ध की स्तुति की। बुद्ध ने अग्गिदत्त से कहा, “अग्गिदत्त, अपने शिष्यों और समर्थकों को उपदेश देते समय तुम उन्हें किस प्रकार उपदेश देते हो?” अग्गिदत्त ने उत्तर दिया, “मैं उन्हें इस प्रकार उपदेश देता हूँ, ‘इस पर्वत की शरण लो, इस वन, उपवन या वृक्ष की शरण लो। क्योंकि जो इनकी शरण लेता है, उसे समस्त दुखों से मुक्ति मिलती है।’” बुद्ध ने कहा, “नहीं, अग्गिदत्त, जो इनकी शरण लेता है, उसे दुखों से मुक्ति नहीं मिलती। परन्तु जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेता है, उसे दुखों के चक्र से मुक्ति मिलती है।”
प्रवचन के समापन पर उन सभी ऋषियों ने अरहतत्व और अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति की। इसके बाद उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और संघ में प्रवेश का अनुरोध किया। बुद्ध ने अपने वस्त्र के नीचे से हाथ बढ़ाकर कहा, “आओ, भिक्षुओं! धार्मिक जीवन व्यतीत करो।” उसी क्षण उन्हें आठ आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हुईं और वे मानो सौ वर्ष के भिक्षु बन गए।
यह वह दिन था जब अंग, मगध और कुरु देश के सभी निवासी समृद्ध भेंट लेकर आते थे। जब वे अपनी भेंट लेकर आए और देखा कि सभी ऋषि भिक्षु बन गए हैं, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, “क्या हमारे ब्राह्मण अग्गिदत्त महान हैं या भिक्षु गौतम?” और क्योंकि बुद्ध अभी-अभी आए थे, उन्होंने निष्कर्ष निकाला, “केवल अग्गिदत्त ही महान हैं।” बुद्ध ने उनके विचारों को समझा और कहा, “अग्गिदत्त, अपने शिष्यों के मन में जो संदेह है उसे दूर करो।” अग्गिदत्त ने उत्तर दिया, “यही तो मैं करना चाहता हूँ।” अतः उन्होंने अलौकिक शक्ति से सात बार वायु में उत्थान किया और पृथ्वी पर उतरकर बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, “आदरणीय, आप मेरे गुरु हैं और मैं आपका शिष्य हूँ।” इस प्रकार अग्गिदत्त ने स्वयं को बुद्ध का शिष्य घोषित किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 188)
भयतज्जिता मानुषा पब्बतानि वनानि अरामा
रुक्ख सीतानि च वे बहुं शरणं यंति
भयतज्जिता : भय से कांपते हुए; मनुस्सा : मनुष्य; पब्बतानि : चट्टानें; वनानी : वन; आराम : उद्यान; रुक्खा : वृक्ष; चेत्यानि च : और मंदिर; वे : निश्चित रूप से; बहुं शरणं [ सरण ]: अनेक शरणस्थल; यंति : जाना
भय से कांपते हुए मनुष्य पहाड़ों, जंगलों, पार्कों, पेड़ों और तीर्थस्थलों में शरण लेते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 189)
एतं शरणं खो न खेमं एतं शरणं न उत्तमं
एतं शरणं अगम्मा , सबदुक्खा न पमुक्कति
इस प्रकार की शरण निःसंदेह सुरक्षित नहीं है; इस प्रकार की शरण सर्वोच्च नहीं है; उस शरण में आने से सभी कष्टों से मुक्ति नहीं मिलती ।
ये सुरक्षित शरणस्थल नहीं हैं। ये सर्वोच्च शरणस्थल नहीं हैं। इनमें शरण लेने वाला व्यक्ति सभी कष्टों से मुक्त नहीं हो जाता।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 190)
यो च बुद्धाञ्च धम्मञ्च संघाञ्च शरणं
गतो कत्तारि अरियासच्चनि सम्मप्पन्नया पस्सति
यो सीए : यदि कोई; बुद्धान्का : बुद्ध में; धम्मञ्च : धम्म में; संघांक : और संघ (आदेश) में; शरणं गतो ;शरण लेता है; कट्टारी अरियासाक्कनी : चार असाधारण वास्तविकताएं; सम्मा : अच्छा; पनन्या : भेदक अंतर्दृष्टि के साथ; पासती : (वह) देखेगा
यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ले, तो वह उच्च बुद्धि के साथ चार आर्य सत्यों का पालन करेगा।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 191)
दुक्खं दुक्खसमुप्पदं दुक्खस्सा अतिक्कमं च
दुक्खुपासमगामिनं अरियं अष्टांगिकं मग्गं च

दुक्खां [ दुक्खा ]: कष्ट; दुक्खसमुप्पदां [ दुक्खसमुप्पदा ]: दुख से उत्पन्न; दुक्खस्सा अतिक्कमं [ अतिक्कमा ]: दुख का अंत; च दुक्खुपाससमागमिनाम् [ दुक्खुपाससमागमिना ]: और दुख के अंत का मार्ग; अरियं अष्टांगिकां मग्गं [ मग्गा ]: (अर्थात) अष्टांगिक मार्ग
चार असाधारण वास्तविकताएं हैं: दुख; दुख का उत्पन्न होना; दुख का अंत; और दुख के अंत की ओर ले जाने वाला अष्टमार्ग।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 192)

एतं शरणं खो खेमं एतं शरणं उत्तमं

एतं शरणं अगम्मा , सबदुक्खा पमुक्कति

etaṃ saraṇaṃ kho : निःसंदेह यह शरणस्थल है; khemaṃ [ khema ]: सुरक्षित; etaṃ saraṇaṃ [ saraṇa ]: यह शरणस्थल है; uttamaṃ [ uttama ]: सर्वोच्च; etaṃ saraṇaṃ āgamma : जब आप इस शरणस्थल में पहुँचते हैं; sabbadukkhā : समस्त कष्टों से; pamuccati : (आप) मुक्त हो जाते हैं
त्रिविध शरण में शरण लेना निःसंदेह पूर्णतः सुरक्षित है। यही सर्वोच्च शरण है। इस शरण में आने से समस्त कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 188-192)

N ' etaṃ kho saraṇaṃ khemaṃ : मनुष्य का सर्वोत्तम आश्रय स्वयं ही है। एक बौद्ध जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए बुद्ध, धम्म और संघ में शरण लेता है, जो गुरु, शिक्षा और शिष्य तीनों हैं। बुद्ध सर्वोच्च गुरु हैं जो मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। धम्म अद्वितीय मार्ग है। संघ उन शिष्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्होंने मार्ग का अनुसरण किया है और सजीव उदाहरण बन गए हैं। इस त्रिरत्न ( तिसारण ) में बुद्धिमानी से शरण लेने से व्यक्ति औपचारिक रूप से बौद्ध बनता है। एक बौद्ध इस आशा से बुद्ध की शरण नहीं लेता कि वह स्वयं किसी मुक्तिदायक कार्य से उद्धार पाएगा। बुद्ध में बौद्ध का विश्वास वैसा ही है जैसा किसी बीमार व्यक्ति का किसी प्रसिद्ध चिकित्सक में या किसी छात्र का अपने गुरु में होता है।
यो च बुधंच धम्मंच संघंच शरणं गतो : वे जो बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेते हैं। यद्यपि संघ की शुरुआत केवल साठ शिष्यों से हुई थी, लेकिन यह हजारों तक फैल गया, और उन शुरुआती दिनों में एक अनुयायी तीन शरणों के रूप में जाने जाने वाले तीन गुना सूत्र का उच्चारण करके इसमें प्रवेश चाहता था:

बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि
दुतियामपि बुद्धं शरणं गच्छामि
दुतियामपि धम्मं शरणं गच्छामि
दुतीयमपि संघं शरणं गच्छामि
तत्यामपि बुद्धं शरणं गच्छामि
तत्यामपि धम्मं शरणं गच्छामि
तत्यामपि संघं शरणं गच्छामि
मैं बुद्ध (गुरु) की शरण में जाता हूँ।
मैं धम्म (शिक्षा) की शरण लेता हूँ।
मैं संघ (विद्वानों) की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार बुद्ध की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार धम्म की शरण में जाता हूँ।
मैं दूसरी बार संघ की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार बुद्ध की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार धम्म की शरण में जाता हूँ।
मैं तीसरी बार संघ की शरण में जा रहा हूँ।

यहां बुद्ध ने जीवन के दैनिक कष्टों से मुक्ति और शुद्धि के लिए व्यक्तिगत प्रयास के महत्व पर विशेष बल दिया है। दूसरों से प्रार्थना करने या दूसरों पर निर्भर रहने में कोई लाभ नहीं है। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि बौद्धों को बुद्ध, धम्म और संघ की शरण क्यों लेनी चाहिए, जबकि बुद्ध ने अपने अनुयायियों को स्पष्ट रूप से दूसरों की शरण न लेने की सलाह दी थी। त्रिरत्न की शरण लेने में, बौद्ध बुद्ध को केवल एक गुरु मानते हैं जो मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, धम्म को एकमात्र मार्ग या साधन और संघ को जीवन जीने के सजीव उदाहरण मानते हैं। बौद्ध यह नहीं मानते कि केवल इन प्रतिज्ञा शब्दों का जाप करने से उन्हें मुक्ति मिल जाएगी। इसका अभ्यास करना आवश्यक है।

चत्तरी अरियासच्चानि : चार असाधारण वास्तविकताएँ। सच्चा पाली भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है वह वास्तविकता जिसका बुद्ध ने अनुभव किया, जो सामान्य से भिन्न है और इसलिए असाधारण है। बुद्ध ने चार प्रकार की वास्तविकता का प्रतिपादन किया है, जो उनके उपदेशों का आधार है और जिसे अस्तित्व या सजीवता कहा जाता है। बुद्धों का जन्म हो या न हो, यह वास्तविकता बनी रहती है और एक बुद्ध ही इसे भ्रमित संसार के समक्ष प्रकट करते हैं। यह समय के साथ बदलती नहीं है और न ही बदल सकती है, क्योंकि यह हमेशा उपलब्ध रहती है। बुद्ध इस वास्तविकता के अहसास के लिए किसी के ऋणी नहीं थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने प्रवचन में कहा है: "पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।" ये शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये उनके अनुभव की मौलिकता की गवाही देते हैं।

पाली भाषा में इस वास्तविकता को आर्य सच्चानि कहा जाता है । इन्हें आर्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनकी खोज परम आर्य ने की थी, अर्थात् वह जिसने साधारण अवस्था को पार कर असाधारण अवस्था प्राप्त कर ली हो। आर्य शब्द, जिसका सामान्य अनुवाद श्रेष्ठ होता है, यहाँ असाधारण के रूप में अनुवादित किया गया है, जो साधारण ( पुथुज्जन ) के विपरीत है । हम यहाँ आम आदमी द्वारा देखी जाने वाली साधारण या सरल वास्तविकता और बुद्ध तथा उनके शिष्यों द्वारा अनुभव की गई असाधारण वास्तविकता के बीच अंतर कर रहे हैं।

असाधारण वास्तविकता का पहला भाग दु:ख से संबंधित है , जिसे अंग्रेज़ी में बेहतर अर्थ में पीड़ा कहा गया है। दु:ख का अर्थ है दर्द। संक्षेप में, पीड़ादायक वह व्यक्तित्व है जो एक असंभव बोझ है जिसे हम निरंतर ढोते रहते हैं। हम इसे बनाए रखने में असमर्थ हैं क्योंकि यह अवास्तविक है। असंभव को करने के प्रयास से ही दुख उत्पन्न होता है।

सामान्य मनुष्य केवल सतही दृष्टि से ही चीजों को देखते हैं। आर्य व्यक्ति चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है। आर्य व्यक्ति के लिए जीवन दुखमय है और उसे इस संसार में कोई वास्तविक सुख नहीं मिलता, जो उसे मायावी सुखों से धोखा देता है। भौतिक सुख मात्र किसी इच्छा की पूर्ति मात्र है।

सभी जन्म ( जाति ) के अधीन हैं और फलस्वरूप क्षय ( जरा ), रोग ( व्याधि ) और अंततः मृत्यु ( मरण ) के अधीन हैं। जीवन के इन चारों चरणों से कोई भी अछूता नहीं है। जीवन स्थिर नहीं है, बल्कि परिवर्तनशील एक गतिशील प्रक्रिया है। स्वयं एक स्थिर अवधारणा है जिसे हम गतिशील वास्तविकता में बनाए रखने का प्रयास करते हैं। यह इच्छा पूरी न होने पर दुख का कारण बनती है। इस स्वयं को बनाए रखने के प्रयास में व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है या वह वस्तुओं या व्यक्तियों से विमुख हो जाता है। कभी-कभी, जिसकी सबसे कम अपेक्षा होती है या जिसकी सबसे कम इच्छा होती है, वह हम पर आ पड़ती है। ऐसी अप्रत्याशित, अप्रिय परिस्थितियाँ इतनी असहनीय और पीड़ादायक हो जाती हैं कि कमजोर लोग कभी-कभी आत्महत्या कर लेते हैं, मानो ऐसा करने से समस्या का समाधान हो जाएगा।

इस पीड़ा का कारण अनुभवों को व्यक्तिगत रूप देने की भावनात्मक प्रवृत्ति है। व्यक्तित्व का निर्माण इसी व्यक्तिगतकरण के माध्यम से होता है।

तीन प्रकार की इच्छाएँ होती हैं।

पहली इच्छा है इंद्रिय सुखों का आनंद लेने की ( कामतन्हा )।

दूसरा है अस्तित्व में आने या होने की इच्छा ( भवतण्हा )।

तीसरी प्रवृत्ति है अस्तित्व समाप्त करने की इच्छा ( विभवतान्हा )।

टीकाओं के अनुसार, अंतिम दो आवेग शाश्वतवाद ( सस्सतादिष्ठी ) और विनाशवाद ( उच्छेदादिष्ठी ) में विश्वास से जुड़े हैं। भावतण्हा को रूप लोकों से आसक्ति और विभावतण्हा को निराकार लोकों से आसक्ति के रूप में भी समझा जा सकता है, क्योंकि रूपराग और अरूपराग को दो बंधनों ( संयोजन ) के रूप में माना जाता है।

यह प्रबल इच्छा सभी में अंतर्निहित एक शक्तिशाली भावनात्मक शक्ति है, और जीवन के कष्टों का मूल कारण है। यही इच्छा, स्थूल या सूक्ष्म रूप में, संसार में बार-बार जन्म लेने की ओर ले जाती है और व्यक्ति को जीवन और व्यक्तित्व के सभी रूपों से आसक्त रखती है।

सुख की इस तीव्र इच्छा के स्थूल रूप सकदागामी (संतत्व की दूसरी अवस्था) प्राप्त करने पर कम हो जाते हैं, और अनागामी ( संतत्व की तीसरी अवस्था) प्राप्त करने पर पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। अस्तित्व और गैर-अस्तित्व की इस तीव्र इच्छा के सूक्ष्म रूप अर्हतत्व प्राप्त करने पर समाप्त हो जाते हैं ।

असाधारण वास्तविकता का तीसरा पहलू दुखों का पूर्ण निवारण है, जो निर्वाण है, बौद्धों का अंतिम लक्ष्य। इसे सभी इच्छाओं के पूर्ण उन्मूलन द्वारा इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस निर्वाण को बाह्य संसार से सभी आसक्तियों का त्याग करके प्राप्त किया जा सकता है । यह व्यक्तित्व या आत्मा का निर्माण करने वाले व्यक्तिगत अनुभवों के समूह (पंचुपादनक्खंड) का निराकारीकरण है ।

इस तीसरे असाधारण सत्य को असाधारण अष्टांगिक मार्ग ( अरियट्टंगिक मार्ग ) का विकास ( भावेतब्बा ) करके ही प्राप्त किया जा सकता है । यही अद्वितीय मार्ग निर्वाण का एकमात्र सीधा मार्ग है। यही चौथा असाधारण सत्य है।

ariyañchaṭṭhangikaṃ maggaṃ : असाधारण अष्टांगिक मार्ग। यह अनूठा मार्ग दो चरम सीमाओं से बचता है: आत्म-यातना जो शरीर को कमजोर करती है और आत्म-भोग जो मन को मंदबुद्धि बनाती है।
इसमें निम्नलिखित आठ कारक शामिल हैं:
सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य ( सम्मा दिति );
सामंजस्यपूर्ण भावना ( सम्मा संकप्पा );
सामंजस्यपूर्ण भाषण ( सम्मा वाचा );
सामंजस्यपूर्ण क्रिया ( सम्मा कम्मंता );
सामंजस्यपूर्ण जीवन ( सम्मा अजीवा );
सामंजस्यपूर्ण अभ्यास ( सम्मा वायामा );
सामंजस्यपूर्ण आत्मनिरीक्षण ( सम्मा सती );
सामंजस्यपूर्ण संतुलन ( सम्मा समाधि )।
1. सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य को चार असाधारण वास्तविकताओं के ज्ञान के रूप में समझाया गया है। दूसरे शब्दों में, यह स्वयं को उसी रूप में समझना है जैसा कि व्यक्ति वास्तव में है, क्योंकि जैसा कि रोहितास्सा सूत्र में कहा गया है, ये सत्य मनुष्य के एक तीतर लंबे शरीर से संबंधित हैं। बौद्ध धर्म का मूल तत्व यही सामंजस्यपूर्ण परिप्रेक्ष्य है जो भीतर और बाहर के सभी संघर्षों को दूर करता है।
2. स्पष्ट दृष्टि से स्पष्ट भावना उत्पन्न होती है। अतः मार्ग का दूसरा कारक सम्मा संकल्प है । अंग्रेज़ी अनुवाद — सही संकल्प, सही आकांक्षाएँ — पाली शब्द का वास्तविक अर्थ व्यक्त नहीं करते। सही भावनाएँ इसके निकटतम अंग्रेज़ी पर्याय के रूप में सुझाई जा सकती हैं।

यह भावना या अनुभूति ही है जो किसी व्यक्ति को या तो दूषित करती है या शुद्ध करती है। भावनाएँ व्यक्ति के स्वभाव को आकार देती हैं और भाग्य को नियंत्रित करती हैं। बुरी भावनाएँ व्यक्ति को नीचा दिखाती हैं, जबकि अच्छी भावनाएँ व्यक्ति को ऊपर उठाती हैं। कभी-कभी एक ही भावना विनाश या उद्धार दोनों कर सकती है।
सम्मा संकल्प का दोहरा उद्देश्य है: बुरी भावनाओं और विचारों का निवारण करना और अच्छी भावनाओं का विकास करना। इस विशेष संदर्भ में, सही भावनाएँ तीन प्रकार की होती हैं: (i) नेक्खम्म - सांसारिक सुखों के त्याग की इच्छा, जो आसक्ति, स्वार्थ और आत्म-अधिकार के विपरीत है; (ii) अव्यापाद - प्रेम, सद्भावना या परोपकार की भावनाएँ, जो घृणा, दुर्भावना या अरुचि के विपरीत हैं; और (iii) अविहिंसा - अहिंसा या करुणा की भावनाएँ, जो क्रूरता और संवेदनहीनता के विपरीत हैं।
ये अच्छे और बुरे भाव सभी में सुप्त अवस्था में होते हैं। जब तक हम साधारण मनुष्य हैं, बुरे भाव अप्रत्याशित क्षणों में प्रबल रूप से उभर आते हैं। अरहतत्व प्राप्त करने पर जब ये भाव पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं, तब चेतना का प्रवाह शुद्ध हो जाता है।
सामंजस्यपूर्ण भावनाएँ स्वतः ही सामंजस्यपूर्ण वाणी और कर्म की ओर ले जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत होता है।
इन सुखद भावनाओं को बनाए रखने के लिए बुरे विचारों को रोकने और दूर करने तथा अच्छे विचारों को विकसित करने और बनाए रखने का निरंतर अभ्यास आवश्यक है। इससे भीतर के अनुभवों के प्रति निरंतर आत्मनिरीक्षण की भावना उत्पन्न होती है। परिणामस्वरूप मानसिक संतुलन प्राप्त होता है। यह शांत मन वास्तविकता से अवगत होता है। यह जागरूकता उस शांति को बनाए रखती है जिसे भंग नहीं किया जा सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 193

———————————————————————

(धम्मपद 188 से 192) <<<< पिछला|| धम्मपद193 ||अगला >>>> (धम्मपद194)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 193 - आनंदत्थेरापन्हा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
दुल्लभो पुरिसजन्नो(1)
na so sabbattha jayati
yattha so jayati dhiro
tam kulam sukhamedhati.(2)

———————————————————————

श्लोक 193 : श्रेष्ठतम पुरुष को खोजना कठिन है; वह हर जगह या हर कुल में जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति जन्म लेता है, वह कुल समृद्ध होता है।

———————————————————————

1. पुरिसजन्नो: टीका के अनुसार, यहाँ बुद्ध का उल्लेख है।
2. सुखमेधाति: शाब्दिक अर्थ, सुख प्राप्त करना या सुख में फलना-फूलना।

———————————————————————

थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (193) कहा।
एक दिन, थेरा आनंद ने चिंतन करते हुए कहा: "हमारे गुरु ने हमें बताया है कि हाथियों की शुद्ध नस्लें केवल छद्दंत और उपोसथ नस्लों में ही पैदा होती हैं, घोड़ों की शुद्ध नस्लें केवल सिंध नस्ल में ही पैदा होती हैं, और मवेशियों की शुद्ध नस्लें केवल उस्भा नस्ल में ही पैदा होती हैं। इस प्रकार, उन्होंने हमसे केवल हाथियों, घोड़ों और मवेशियों की शुद्ध नस्लों के बारे में ही बात की थी, न कि श्रेष्ठतम पुरुषों (पुरिसजन्नो) के बारे में।"
इस प्रकार विचार करने के बाद, थेरा आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे श्रेष्ठतम पुरुष के बारे में प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "आनंद, श्रेष्ठतम पुरुष हर जगह जन्म नहीं लेता, वह केवल क्षत्रियमहासला और ब्राह्मणमहासला में ही जन्म लेता है, जो क्षत्रिय और ब्राह्मण के धनी कुल हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 193 : श्रेष्ठतम पुरुष को खोजना कठिन है; वह हर जगह या हर कुल में जन्म नहीं लेता। जिस कुल में ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति जन्म लेता है, वह कुल समृद्ध होता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन पूज्य आनंद ने चिंतन करते हुए कहा, “हमारे गुरु ने हमें बताया है कि हाथियों की शुद्ध नस्लें केवल छद्दंत और उपोसथ नस्लों में ही पैदा होती हैं, घोड़ों की शुद्ध नस्लें केवल सिंध नस्ल में ही पैदा होती हैं, और मवेशियों की शुद्ध नस्लें केवल उस्भा नस्ल में ही पैदा होती हैं। इस प्रकार, उन्होंने हमसे केवल हाथियों, घोड़ों और मवेशियों की शुद्ध नस्लों के बारे में ही बात की थी, न कि श्रेष्ठतम पुरुषों ( पुरिसाजन्नो ) के बारे में।”
इस प्रकार विचार करने के बाद, पूज्य आनंद बुद्ध के पास गए और उनसे श्रेष्ठ पुरुषों के बारे में प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “आनंद, श्रेष्ठ पुरुष हर जगह जन्म नहीं लेते, वे क्षत्रियमहासाल और ब्राह्मणमहासाल में जन्म लेते हैं, जो क्षत्रिय और ब्राह्मण के धनी कुल हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 193)
पुरिसजान्नो दुल्लभो , सो सब्बत्थ न जयति
सो धीरो यथा जयति तं कुलं सुखं एधति

पुरिसाजाञ्ञो [ purisājañña ]: मनुष्यों में श्रेष्ठ (बुद्ध); दुल्लभो [ dullabha ]: दुर्लभ; सो : उस प्रकार का दुर्लभ प्राणी; सब्बत्थ : सभी स्थानों में; न जायति : जन्म नहीं लेता; सो धीरो [ dhīra ]: वह श्रेष्ठ और बुद्धिमान व्यक्ति; यत्थ : यदि किसी स्थान पर; जायति : यदि जन्म लेता है; तं कुलं [ kula ]: वह परिवार; सुखं एधति : सुख की ओर आता है

बुद्ध सचमुच दुर्लभ हैं। ऐसे दुर्लभ व्यक्ति हर जगह पैदा नहीं होते। यदि किसी कुल में ऐसा नेक और बुद्धिमान व्यक्ति जन्म ले, तो वह कुल सुखवान होगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 193)

सब्बत्थ न जायति : हर जगह जन्म नहीं। यह संदर्भ बुद्ध के जन्म से है। बुद्ध का जन्म कहीं भी नहीं होता। भावी ऋषि स्वर्ग में थे जब देवताओं और ब्रह्माओं ने उन्हें पृथ्वी पर बुद्ध के रूप में जन्म लेने का निमंत्रण दिया। लेकिन बुद्ध ने उनकी इच्छा स्वीकार करने से पहले पाँच महान अवलोकन ( पंच महा-विलोकन ) किए। उन्होंने समय, महाद्वीप, देश, परिवार और माता तथा उनके जीवनकाल का अवलोकन किया। इन अवलोकनों में से पहले में उन्होंने स्वयं से पूछा कि क्या यह सही समय है या नहीं। "जब मनुष्यों का जीवनकाल एक लाख वर्ष से अधिक हो, तो यह उचित समय नहीं है। और यह उचित समय क्यों नहीं है? क्योंकि तब प्राणियों का जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु प्रकट नहीं होते, और बुद्धों के धम्म का कोई भी उपदेश इन तीन लक्षणों से मुक्त नहीं होता, इसलिए जब वे (बुद्ध) इन (लोगों) से अनित्यता, पीड़ा और अनात्म के बारे में बात करते हैं, तो वे कहते हैं, 'ये लोग क्या बात कर रहे हैं?' और सोचते हैं कि इसे न तो सुनना चाहिए और न ही इस पर विश्वास करना चाहिए। परिणामस्वरूप, कोई अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं होती। ऐसा होने पर, यह एक ऐसा उपदेश है जो आगे नहीं ले जाता। इसलिए, यह उचित समय नहीं है।" "और यह सही समय नहीं है जब मनुष्यों का जीवन सौ वर्ष से कम हो। और यह सही समय क्यों नहीं है? क्योंकि उस समय प्राणी अशुद्धियों से भरे होते हैं; और अशुद्धियों से भरे लोगों को दी गई नसीहत का कोई असर नहीं होता, बल्कि पानी की सतह पर छड़ी से खींची गई निशानी की तरह वह तुरंत गायब हो जाती है। इसलिए, यह भी सही समय नहीं है।"

लेकिन जब मनुष्यों का जीवनकाल सौ वर्ष और एक लाख वर्ष के बीच होता है, तब जन्म का सही समय होता है। उस समय मनुष्यों का जीवनकाल सौ वर्ष था; तदनुसार, बुद्ध ने देखा कि यही उनके जन्म का सही समय था।

इसके बाद उन्होंने महाद्वीप के बारे में विचार किया। चारों महाद्वीपों और उनके आसपास के द्वीपों को देखते हुए उन्होंने सोचा, "तीन महाद्वीपों में बुद्धों का जन्म नहीं होता; केवल जंबूद्वीप में ही उनका जन्म होता है।" इस प्रकार उन्होंने इस महाद्वीप का चयन किया। फिर उन्होंने स्थान के बारे में विचार किया। उन्होंने सोचा, "जंबूद्वीप महाद्वीप विशाल है, दस हजार मील चौड़ा। इसके किस देश में बुद्धों का जन्म होता है?" और उस क्षेत्र का अवलोकन करते हुए उन्होंने कपिलवस्तु नगर के मध्य देश का चयन किया।

फिर उन्होंने परिवार के विषय में यह विचार किया। उन्होंने सोचा, "बुद्ध न तो व्यापारी परिवार में जन्म लेते हैं और न ही शुद्ध परिवार में। बल्कि वे या तो कुलीन परिवार में जन्म लेते हैं या ब्राह्मण परिवार में, जो भी परिवार उस समय संसार में अधिक प्रतिष्ठित होता है। वर्तमान में कुलीन परिवार संसार में अधिक प्रतिष्ठित है। मैं उसी परिवार में जन्म लूंगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरे पिता होंगे।" इस प्रकार उन्होंने परिवार का चयन किया।

फिर उन्होंने माता के विषय में एक विचार किया। उन्होंने सोचा, "बुद्ध की माता न तो व्यभिचारी होती हैं, न ही शराबी, बल्कि वे होती हैं जिन्होंने एक लाख जन्म चक्रों में सिद्धियाँ प्राप्त की हों और जन्म से ही पंच धर्म नियमों का अटूट पालन किया हो। अब यह रानी, महामाया, ऐसी ही हैं। वे मेरी माता होंगी। परन्तु उनका जीवनकाल कितना होगा?" तब उन्हें पता चला कि उनका जीवनकाल दस माह और सात दिन होगा।

इस प्रकार पाँच महान अवलोकन करने के बाद, उन्होंने देवताओं को उनकी प्रार्थना का उत्तर देते हुए कहा, "हे पूज्यवर, आप सही हैं। मेरे बुद्धत्व का समय आ गया है।" फिर, तुषिता स्वर्ग के देवताओं से घिरे हुए और अन्य सभी देवताओं को विदा करते हुए, वे तुषिता स्वर्ग के नंदनवन में प्रवेश कर गए, क्योंकि प्रत्येक स्वर्ग में एक नंदनवन होता है। वहाँ देवताओं ने कहा, "अपने अगले जन्म में अपने उच्च भाग्य को प्राप्त करो," और उन्हें याद दिलाते रहे कि उन्होंने अपने संचित कर्मों से पहले ही इसके लिए मार्ग प्रशस्त कर लिया है। अब जब वे इस प्रकार इन देवताओं से घिरे हुए और अपने संचित कर्मों की निरंतर याद दिलाए जाने के बीच निवास कर रहे थे, तभी उनका निधन हो गया और वे रानी महामाया के गर्भ में गर्भ धारण कर सके। यह घटना एसाला (जुलाई, अगस्त) माह में, पूर्णिमा के दिन, उत्तरासाल्हा नक्षत्र के प्रभाव में, सुबह-सुबह घटी।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 194

---

(धम्मपद193) <<<< पिछला|| धम्मपद194 ||अगला >>>> (धम्मपद 195 और 196)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 194 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सुखो बुद्धनमुप्पादो
सुखा सद्धम्मदसाना
सुखा संघा समाग्गी
samagganam tapo sukho.

———————————————————————

श्लोक 194 : बुद्ध का उदय होना सुखद है; आर्य धम्म का विवेचन होना सुखद है; संघ में सामंजस्य होना सुखद है; सामंजस्य में रहने वालों का अभ्यास होना सुखद है।

———————————————————————

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कई भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (194) कहा।

एक बार पाँच सौ भिक्षु "सुख क्या है?" इस प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। इन भिक्षुओं ने महसूस किया कि अलग-अलग लोगों के लिए सुख का अर्थ अलग-अलग होता है। इसलिए उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजा के समान धन-दौलत और यश पाना सुख है, कुछ लोगों के लिए इंद्रिय सुख सुख है, परन्तु दूसरों के लिए मांस के साथ पका हुआ अच्छा चावल खाना ही सुख है।" जब वे चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आए। उनकी चर्चा का विषय जानने के बाद बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, आपने जिन सुखों का उल्लेख किया है, वे आपको पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति नहीं दिलाते। इस संसार में, ये ही सुख हैं: बुद्ध का उदय, परम सत्य की शिक्षा सुनने का अवसर और भिक्षुओं के बीच सामंजस्य।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 194 : बुद्ध का उदय होना सुखद है; आर्य धम्म का विवेचन होना सुखद है; संघ में सामंजस्य होना सुखद है; सामंजस्य में रहने वालों का अभ्यास होना सुखद है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कई भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, कई भिक्षु "सुख क्या है?" इस प्रश्न पर चर्चा कर रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि अलग-अलग लोगों के लिए सुख का अर्थ अलग-अलग होता है। इसलिए, उन्होंने कहा, "कुछ लोगों के लिए राजा के समान धन और यश पाना सुख है, कुछ लोगों के लिए इंद्रिय सुख सुख है, लेकिन दूसरों के लिए मांस के साथ पका हुआ अच्छा चावल खाना ही सुख है।" जब वे चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आए। उनकी चर्चा का विषय जानने के बाद, बुद्ध ने कहा, "जिन सुखों का तुमने उल्लेख किया है, वे तुम्हें पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति नहीं

दिलाते। इस संसार में, ये ही सुख हैं: बुद्ध का उदय, परम सत्य की शिक्षा सुनने का अवसर और भिक्षुओं के बीच सद्भाव।" प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 194)

बुद्धानं उप्पादो सुखो , सद्धम्मदेसाना सुखा ,

संघस्स समाग्गि सुख , समग्गनं तपो सुखो

बुद्धानं [ बुद्धाना ]: बुद्ध का; उप्पादो [ उप्पाडा ]: उत्पन्न होना; सुखो [ सुखा ]: (है) हर्षित; सद्धम्मदेसाना : धम्म की उद्घोषणा; सुखा : आनंदमय है; संघसः भाईचारे का; सामग्गी : सौहार्द (एकता); सुखा : (है) हर्षित; समग्गनम् [ samaggāna ]: सामंजस्य रखने वालों में से; तपो : धार्मिक अभ्यास; सुखो [ सुखा ]: (है) हर्षित

बुद्धों का उदय आनंदमय है। धम्म का प्रचार आनंदमय है। संघ की एकता आनंदमय है। वास्तव में, सामंजस्यपूर्ण आध्यात्मिक साधना आनंदमय है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 194)

बुद्धानं उप्पादो सुखो : बुद्ध का उदय एक आनंदमय घटना है। राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म से संबंधित पारंपरिक कथाओं में, जो बाद में बुद्ध बने, इस बात का संकेत मिलता है कि वे बुद्ध के रूप में संसार को कितना सुख प्रदान करेंगे। अन्य मनुष्य गर्भ से जन्म लेते समय अप्रिय प्रतीत होते हैं; परन्तु बोधिसत्व ऐसे नहीं थे। वे अपनी माता के गर्भ से ऐसे निकले मानो कोई उपदेशक अपने मंच से उतर रहा हो, या कोई व्यक्ति सीढ़ियों से नीचे उतर रहा हो, दोनों हाथ-पैर फैलाए हुए, बिना किसी अशुद्धता के, जैसे वाराणसी वस्त्र पर कोई रत्न बिखरा हो।

इस आनंदमय घटना के बारे में और अधिक जानकारी उपलब्ध है।

बच्चे के जमीन पर पैर रखने से पहले ही, चार देवता उसका स्वागत करते हैं और उसे माँ के सामने पेश करते हुए कहते हैं, "हे रानी, आनंदित होइए, आपने एक महान प्राणी को जन्म दिया है।"

चार महान राजाओं ने देवता से बालक को तेंदुए की कोमल खाल में ग्रहण किया, और फिर रानी के दल ने उसे रेशमी वस्त्र में उनके पास से ले लिया। बालक ने धरती पर कदम रखा और पूर्व दिशा की ओर मुख किया। उसके ऊपर एक सफेद चंदवा उठाया गया।

असंख्य ब्रह्मांड एक संयुक्त रूप में प्रकट हुए। देवताओं और मनुष्यों ने फूल, धूप आदि से भेंट चढ़ाई और कहा, "हे महानुभाव, यहाँ आपके समान कोई नहीं है; भला आपसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है?" बुद्ध ने चारों ओर देखा तो उन्हें अपने समान कोई नहीं दिखा और उन्होंने उत्तर दिशा में सात कदम बढ़ाए। सातवां कदम बढ़ाते ही बुद्ध ने घोषणा की, "मैं संसार का मुखिया हूँ। यह मेरा अंतिम जन्म है। अब मेरा कोई जन्म नहीं होगा।" क्योंकि यह बुद्ध का जन्म है, जो अद्वितीय और अद्भुत प्राणी हैं, जिन्होंने संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए संसार में जन्म लिया है।

बुद्ध के जन्म के साथ ही, देवताओं से भी कहीं अधिक असीम प्रकाश पूरे ब्रह्मांड में फैल गया। तावतिंसा स्वर्ग में असंख्य देवता भावी बुद्ध के जन्म की खबर सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए और खूब मौज-मस्ती और खेलकूद में जुट गए।

बुद्ध के जन्म के समय ही भद्धकच्चाना (यशोधरा), मंत्री चन्ना और कालुदाई तथा अश्व कंठक का भी जन्म हुआ था। बोधि वृक्ष और चार महान रत्न भी इसी समय उत्पन्न हुए थे।

संघ , बुद्ध द्वारा स्थापित सबसे प्राचीन, लोकतांत्रिक रूप से गठित, ऐतिहासिक ब्रह्मचारी संघ है। सही मायने में, संघ उन श्रेष्ठ शिष्यों को दर्शाता है जिन्होंने चार मार्ग और चार फल प्राप्त कर लिए हैं। आज के साधारण भिक्षु केवल उनके प्रतिनिधि हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 195,196

---

(धम्मपद 194) <<<< पिछला || धम्मपद 195 और 196 || अगला >>>> (धम्मपद 197, 198 और 199)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 195 और 196 - कस्सापादसबालास्सा सुवन्नासेटिया वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
195. पुजाराहे पुजयातो
buddhe yadi va savake
papancasamatikkante(1)
tinnasokapariddave.
196.Te tadise pujayato
nibbute akutobhaye
na sakka punnam sahkhatum
imettamapi kenaci.

---

श्लोक 195 : वह उन लोगों को प्रणाम करता है जो आदर के योग्य हैं, चाहे वे बुद्ध हों या उनके शिष्य जिन्होंने (अंतर्दृष्टि विकास में) बाधाओं को पार कर लिया हो और स्वयं को दु:ख और विलाप से मुक्त कर लिया हो।

---

श्लोक 196 : जो व्यक्ति नैतिक दोषों से मुक्त और भयमुक्त लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उसके द्वारा अर्जित पुण्य को कोई भी इस या उस रूप में नहीं माप सकता।

---

1. papancasamatikkante: शाब्दिक अर्थ: वे लोग जिन्होंने लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से छुटकारा पा लिया है, जो संसार को लंबा करने वाले कारक हैं।

---

कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी
सावत्थी से बरनासी की यात्रा करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण और कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (195) और (196) का उच्चारण किया।
एक बार बुद्ध और उनके अनुयायी बरनासी की यात्रा पर थे, तभी वे एक ऐसे खेत में पहुँचे जहाँ एक आध्यात्मिक मंदिर था। मंदिर से कुछ ही दूरी पर एक ब्राह्मण खेत जोत रहा था। बुद्ध ने ब्राह्मण को देखकर उसे अपने पास बुलाया। जब वह आया, तो ब्राह्मण ने मंदिर को प्रणाम किया, लेकिन बुद्ध को नहीं। बुद्ध ने उससे कहा, "ब्राह्मण, मंदिर को प्रणाम करके तुम पुण्य कर्म कर रहे हो।" यह सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उसे प्रसन्न करने के बाद, बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप को प्रकट किया और उसे आकाश में प्रकट रहने दिया। फिर बुद्ध ने ब्राह्मण और अन्य भिक्षुओं को समझाया कि स्तूप के योग्य चार वर्ग होते हैं: वे बुद्ध (तथागत) जो आदर के योग्य और पूर्णतः आत्मज्ञानी हैं, पच्चेकबुद्ध, आर्य शिष्य और सर्वसमर्थ। उन्होंने इन चार वर्गों के व्यक्तियों के सम्मान में निर्मित तीन प्रकार के स्तूपों के बारे में भी बताया। जिन स्तूपों में भौतिक अवशेष स्थापित होते हैं, उन्हें शरीरधातु चैत्य कहा जाता है; जिन स्तूपों और प्रतिमाओं को उपरोक्त चार व्यक्तियों के समान बनाया जाता है, उन्हें उद्दिस्सा चैत्य कहा जाता है; और जिन स्तूपों में इन पूजनीय व्यक्तियों के वस्त्र, कुंड आदि जैसी व्यक्तिगत वस्तुएँ स्थापित होती हैं, उन्हें परिभोग चैत्य कहा जाता है। बोधि वृक्ष भी परिभोग चैत्य में शामिल है। बुद्ध ने फिर उन लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के महत्व पर जोर दिया जो आदर के योग्य हैं।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 195 : वह उन लोगों को प्रणाम करता है जो आदर के योग्य हैं, चाहे वे बुद्ध हों या उनके शिष्य जिन्होंने (अंतर्दृष्टि विकास में) बाधाओं को पार कर लिया हो और स्वयं को दु:ख और विलाप से मुक्त कर लिया हो।

---

श्लोक 196 : जो व्यक्ति नैतिक दोषों से मुक्त और भयमुक्त लोगों को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उसके द्वारा अर्जित पुण्य को कोई भी इस या उस रूप में नहीं माप सकता।

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त की। कश्यप बुद्ध का स्तूप सात दिनों तक दिखाई देता रहा और लोग निरंतर दर्शन और श्रद्धा अर्पित करने आते रहे। सात दिनों के अंत में, बुद्ध की इच्छा से, स्तूप लुप्त हो गया और आत्माओं के लिए निर्मित मंदिर के स्थान पर चमत्कारिक रूप से एक विशाल पत्थर का स्तूप प्रकट हो गया।
अध्याय चौदह का अंत: बुद्ध (बुद्धवग्ग)

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कश्यप बुद्ध के स्वर्ण स्तूप की कहानी
सावत्थी से वाराणसी की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने एक ब्राह्मण और कश्यप के स्वर्ण स्तूप के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक दिन बुद्ध कई भिक्षुओं के साथ सावत्थी से वाराणसी के लिए रवाना हुए। रास्ते में वे तोदेय्या गाँव के पास एक मंदिर में पहुँचे। वहाँ बुद्ध बैठ गए और आनंद को भेजा तथा पास में खेत जोत रहे एक ब्राह्मण को बुलाने का आदेश दिया। जब ब्राह्मण आया, तो उसने बुद्ध को प्रणाम नहीं किया, बल्कि केवल मंदिर को प्रणाम किया। ऐसा करने के बाद, वह बुद्ध के सामने खड़ा हो गया। बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, तुम इस स्थान को कैसे देखते हो?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "यह मंदिर पीढ़ियों से हमें विरासत में मिला है, और इसीलिए मैं इसे प्रणाम करता हूँ, हे गौतम।" इस पर बुद्ध ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, "हे ब्राह्मण, तुमने इस स्थान को प्रणाम करके अच्छा किया है।"
जब भिक्षुओं ने यह सुना, तो उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ और उन्होंने कहा, "आपने यह प्रशंसा किसलिए की?" उनके संदेह दूर करने के लिए, बुद्ध ने मज्झिमा निकाय में घटीकार सूत्र का पाठ किया । फिर उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति से वायु में बुद्ध कश्यप के स्वर्ण मंदिर से दुगुना, एक मील ऊँचा स्वर्ण पर्वत निर्मित किया। इसके बाद, अपने असंख्य शिष्यों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "ब्राह्मण, इन जैसे सम्मान के योग्य पुरुषों को सम्मान देना और भी अधिक उचित है।" फिर, महामृत्यु सूत्र के शब्दों में, उन्होंने घोषणा की कि बुद्ध और अन्य चार व्यक्ति, मंदिरों के योग्य हैं। फिर उन्होंने तीन प्रकार के मंदिरों का विस्तार से वर्णन किया: शारीरिक अवशेषों का मंदिर, स्मृति अवशेषों का मंदिर और उपयोग या आनंदित वस्तुओं का मंदिर। पाठ के समापन पर ब्राह्मण को धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 195)
पापांका समतिक्कंते तिन सोकापरिद्दवे
पूजारे बुद्धे यदि वा सावके पूज्यतो
papañca samatikkante : वे जो सामान्य बोध से परे चले गए हैं; tiṇṇa sokapariddave : वे जो दुःख और विलाप से पार हो गए हैं; pūjārahe : वे जो पूजा के योग्य हैं; Buddhe : (अर्थात्) बुद्ध; yadi vā : और साथ ही: sāvake : बुद्ध के शिष्य; pūjayato [ pūjayata ]: यदि कोई उनकी पूजा करे
वे लोग जो सामान्य दृष्टि से संसार को देखने के तरीके से परे चले गए हैं, जो दुःख और विलाप से ऊपर उठ गए हैं, वे पूजा के योग्य हैं; अर्थात् बुद्ध और उनके शिष्य।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 196)
निब्बुते अकुतोभये तदिसे ते पूज्यतो पुन्नं
इमां मत्तं इति संखातुं केन सी अपि न सक्का
निब्बुते : जो अविचलितता प्राप्त कर चुके हों; अकुतोभये : जो कांपते या भयभीत होते हों; तादिसे : उस प्रकार के प्राणी; ते पूजयातो [ पूजयाता ]: आदर करने वाला; पुण्य [ पुण्य ]: गुण; इमम् मत्तम् इति : इतना या उतना; संखातु [ संखातु ]: मात्रा निर्धारित करना; न सक्का : असमर्थ; केनाचि : किसी के द्वारा
जो व्यक्ति अविचलित और निर्भय है, उसकी उपासना करता है, वह बहुत पुण्य अर्जित करता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा अर्जित पुण्य का मापन किसी से नहीं किया जा सकता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 195-196)
पूजाहो पूजातो , बुद्धे यदिव सावके : पूजा के योग्य लोगों की पूजा करो, बुद्धों और उनके शिष्यों की। बुद्ध की पूजा क्यों की जानी चाहिए? उनकी ज्ञान प्राप्ति और उनका मिशन इसका स्पष्टीकरण प्रदान करेगा। बुद्ध 2500 वर्ष पूर्व जंबूद्वीप में निवास करते थे और सिद्धार्थ (संस्कृत में सिद्धार्थ, जिसका उद्देश्य पूर्ण हो गया हो) के नाम से जाने जाते थे। गौतम उनका पारिवारिक नाम था। उनके पिता, सुद्धोदन, नेपाली सीमा पर कपिलवस्तु में शाक्यों के राज्य पर शासन करते थे। कोलियों की राजकुमारी महामाया सुद्धोदन की रानी थीं। मई माह की पूर्णिमा के दिन—वसंत ऋतु में, जब जंबूद्वीप में वृक्ष पत्तों, फूलों और फलों से लदे हुए थे—और मनुष्य, पक्षी और पशु सभी आनंदित थे, तब रानी महामाया अपने मायके कपिलवस्तु से देवदहा, अपने मायके, के लिए शान से यात्रा कर रही थीं, उस समय की

प्रथा के अनुसार, अपने बच्चे को जन्म देने के लिए। लेकिन ऐसा होना संभव नहीं था, क्योंकि दोनों शहरों के बीच में, लुम्बिनी वन में, एक फूलदार साल के पेड़ की छाया में, उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया।

बच्चे के जन्म के सातवें दिन ही माता, रानी महामाया का देहांत हो गया और बच्चे का पालन-पोषण उसकी माता की बहन, प्रजापति गौतमी ने किया। बच्चे का पालन-पोषण युवावस्था तक अत्यंत सुख-सुविधाओं और विलासितापूर्ण वातावरण में हुआ। पिता ने अपने पुत्र को वह शिक्षा दिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जो एक राजकुमार को मिलनी चाहिए। वह ज्ञान की अनेक शाखाओं और युद्ध कलाओं में निपुण हो गया और उसने सर्वथा दूसरों को पीछे छोड़ दिया। फिर भी, बचपन से ही राजकुमार गहन चिंतन में लीन रहता था। जब राजकुमार बड़ा हुआ तो पिता की प्रबल इच्छा थी कि उसका पुत्र विवाह करे, परिवार बसाए और उसका योग्य उत्तराधिकारी बने; परन्तु उन्हें भय था कि कहीं राजकुमार एक दिन घर छोड़कर तपस्वी का जीवन व्यतीत न करने लगे।

उस समय की प्रथा के अनुसार, सोलह वर्ष की कम उम्र में ही राजकुमार सिद्धार्थ का विवाह उनकी चचेरी बहन यशोदरा से हो गया, जो कोलिय वंश के राजा सुप्पबुद्ध और रानी पामिता की इकलौती पुत्री थीं। राजकुमारी भी राजकुमार की ही उम्र की थीं। भौतिक सुखों से भरपूर होने के कारण सिद्धार्थ को दुखों का कोई ज्ञान नहीं था। फिर भी, पिता द्वारा पुत्र को इंद्रियों के वश में रखने और सांसारिक बनाने के सभी प्रयास व्यर्थ रहे। राजा सुद्धोदन द्वारा जीवन के दुखों को पुत्र की जिज्ञासु दृष्टियों से दूर रखने के प्रयासों ने ही राजकुमार सिद्धार्थ की जिज्ञासा और सत्य एवं ज्ञान की खोज को और भी तीव्र कर दिया।

जैसे-जैसे उम्र और परिपक्वता बढ़ती गई, राजकुमार को संसार की समस्याओं का आभास होने लगा। कहा जाता है कि उन्होंने चार दृश्य देखे: पहला, एक वृद्ध, निर्बल व्यक्ति; दूसरा, एक दुबला-पतला, अत्यंत दुखी और अकेला व्यक्ति, किसी बीमारी से ग्रसित; तीसरा, शोक संतप्त रिश्तेदारों का एक समूह, अपने प्रिय के शव को दाह संस्कार के लिए कंधों पर उठाए हुए। इन भयावह दृश्यों ने उन्हें अत्यंत विचलित कर दिया। परन्तु चौथे दृश्य ने उन पर अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने एक एकांतवासी को देखा, शांत, निर्मल, एकांतप्रिय और स्वतंत्र, और उन्हें पता चला कि वह ऐसा व्यक्ति था जिसने पवित्र जीवन जीने, सत्य की खोज करने और जीवन के रहस्य को सुलझाने के लिए अपना घर त्याग दिया था। त्याग के विचार राजकुमार के मन में कौंधे और गहन चिंतन में लीन होकर वे अपने घर की ओर लौट गए। व्यथित और पीड़ित मानवता की पीड़ा ने उनके हृदय में भी गहरी संवेदना उत्पन्न की। जैसे-जैसे वह अपने महल की दीवारों के बाहर की दुनिया के संपर्क में आता गया, वैसे-वैसे वह इस बात से और अधिक आश्वस्त होता गया कि दुनिया में सच्ची खुशी का अभाव है।

उस चांदनी रात की खामोशी में (जुलाई की पूर्णिमा थी) उनके मन में ऐसे विचार उठे: "जवानी, जीवन का राजकुमार, बुढ़ापे में समाप्त हो जाती है और मनुष्य की इंद्रियां तब साथ छोड़ देती हैं जब उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। स्वस्थ और तंदुरुस्त व्यक्ति भी बीमारी के अचानक आ लगने से अपनी शक्ति खो बैठते हैं। अंत में, मृत्यु आती है, शायद अचानक और अप्रत्याशित रूप से, और जीवन के इस संक्षिप्त काल का अंत कर देती है। निश्चित रूप से, इस असंतोष, बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्ति पाने का कोई न कोई रास्ता जरूर होगा।" इस प्रकार जवानी, स्वास्थ्य और जीवन का वह महान नशा उनसे दूर हो गया। तीनों नशों की व्यर्थता और खतरे को देखकर, वे अमरता को पाने और उसे हासिल करने की प्रबल इच्छा से भर गए, बुढ़ापे, बीमारी और दुख से मुक्ति पाने के लिए प्रयास करने लगे, अपने लिए और सभी पीड़ित प्राणियों के लिए। यह उनकी गहरी करुणा ही थी जिसने उन्हें ज्ञानोदय, बुद्धत्व की खोज की ओर अग्रसर किया। यह करुणा ही थी जिसने अब उनके हृदय को त्याग की ओर प्रेरित किया और उनके लिए गृहस्थ जीवन के परम बंधन के द्वार खोल दिए। करुणा ही वह कारण था जिसने उनके संकल्प को उनकी प्रिय पत्नी की अंतिम दृष्टि के बावजूद भी अडिग रखा, जो अपने शिशु को गोद में लिए सो रही थीं। अब उनतीस वर्ष की आयु में, युवावस्था के चरम पर, जिस दिन उनकी सुंदर यशोदरा ने उनके इकलौते पुत्र राहुल को जन्म दिया, जिसने उनके बिछड़ने को और भी दुःखमय बना दिया, उन्होंने स्वयं को त्याग दिया। राजकुमार ने असाधारण इच्छाशक्ति से पत्नी, पुत्र, पिता और सत्ता एवं यश के वचन से युक्त मुकुट का त्याग कर दिया। एक निर्धन तपस्वी के वेश में, वे वन एकांत में चले गए, जीवन के शाश्वत सत्यों की खोज में, बंधन से मुक्ति के सर्वोच्च मार्ग - निर्वाण - की प्राप्ति के लिए। जीवन के सार्वभौमिक दुराचार का उपाय खोजने के महान कार्य में स्वयं को समर्पित करते हुए, उन्होंने दो प्रसिद्ध ऋषियों, अलारा कलाम और उद्दक रामपुत्त से मार्गदर्शन मांगा, इस आशा के साथ कि ध्यान के स्वामी होने के नाते वे उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखाएंगे। उन्होंने मानसिक स्थिरता का अभ्यास किया और इस प्रकार ध्यान की उच्चतम अवस्था को प्राप्त किया, लेकिन वे ज्ञानोदय से कम किसी भी चीज़ से संतुष्ट नहीं थे। हालाँकि, उनका ज्ञान और रहस्यमय अनुभव उन्हें वह प्रदान करने के लिए अपर्याप्त था जिसकी उन्हें वास्तव में तलाश थी। इसलिए, वे अज्ञात सत्य की खोज में उन्हें छोड़कर चले गए। अपनी यात्रा में वे अंततः गया में नेरांजरा नदी के किनारे उरुवेला पहुँचे। वे वहाँ के शांत और घने उपवनों और नदी के निर्मल जल से आकर्षित हुए। यह जानकर कि यह ज्ञानोदय की खोज जारी रखने के लिए उपयुक्त स्थान है, उन्होंने वहीं रहने का निर्णय लिया। उनके दृढ़ प्रयास से प्रभावित पाँच अन्य तपस्वियों ने उनकी सेवा की। वे थे कोंडञ्ञ, भद्दिया, वप्पा, महानामा और असजी।

जंबुद्वीप में कई तपस्वियों के बीच यह मान्यता थी और आज भी है कि कठोर आत्म-यातना से शुद्धि और परम पापों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। तपस्वी गौतम ने इसकी सत्यता का परीक्षण करने का निश्चय किया। उरुवेला में उन्होंने अपने शरीर को वश में करने का दृढ़ संघर्ष शुरू किया, इस आशा में कि उनका मन, भौतिक शरीर से मुक्त होकर, मोक्ष की ऊँचाइयों तक पहुँच सकेगा। वे इन

साधनाओं में अत्यंत तत्पर थे। वे पत्तों और जड़ों पर जीवन व्यतीत करते थे, भोजन की मात्रा लगातार कम होती जाती थी, वे फटे-पुराने वस्त्र पहनते थे, वे शवों के बीच या काँटों के बिस्तरों पर सोते थे। उन्होंने कहा, "मैंने अपनी तपस्या में कठोरता बरती है। मैं अन्य सभी से कहीं अधिक कठोर रहा हूँ। मेरे सभी अंग सूखे, मुरझाए सरकंडों के समान हो गए हैं।" इन्हीं शब्दों में, बाद के वर्षों में, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने अपनी प्रारंभिक तपस्याओं का विस्मयकारी वर्णन किया। इस प्रकार छह वर्षों तक संघर्ष करते हुए वे लगभग मृत्यु के कगार पर पहुँच गए, परन्तु अपने लक्ष्य से अभी भी दूर थे। आत्म-यातना की निरर्थकता उन्हें अपने अनुभव से भलीभांति सिद्ध हो गई; ज्ञान प्राप्ति के लिए आत्म-यातना का उनका प्रयोग विफल रहा। परन्तु निराश न होकर, उनका सक्रिय मन अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुँचने के नए मार्ग खोजने लगा। तभी उन्हें बचपन में एक रसभरी के नीचे ध्यान करते हुए प्राप्त हुई शांति याद आई और उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा: "यही ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है।" यद्यपि वे जानते थे कि अपने इतने दुर्बल शरीर के साथ वे इस मार्ग पर सफलता की किसी भी संभावना के साथ नहीं चल सकते। अतः उन्होंने आत्म-यातना और कठोर उपवास त्याग दिया और सामान्य भोजन ग्रहण किया। उनका दुर्बल शरीर शीघ्र ही स्वस्थ हो गया और उनकी खोई हुई शक्ति लौट आई। अब उनके पाँच साथी निराश होकर उन्हें छोड़कर चले गए; क्योंकि उन्हें लगा कि उन्होंने प्रयास छोड़ दिया है और विलासितापूर्ण जीवन जीने का निश्चय कर लिया है।

फिर भी, दृढ़ संकल्प और अपनी पवित्रता और सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास के साथ, बिना किसी गुरु की सहायता के, बिना किसी साथी के, बोधिसत्व (जैसा कि वे ज्ञान प्राप्ति से पहले जाने जाते थे) ने पूर्ण एकांत में अपनी अंतिम खोज करने का निश्चय किया। वे नेरांजरा नदी के तट पर, गया (जिसे अब बुद्ध-गया के नाम से जाना जाता है) में, एक वृक्ष के नीचे पालथी मारकर बैठ गए, जिसे बाद में बोधि वृक्ष, ज्ञान का वृक्ष या बुद्धि का वृक्ष के रूप में जाना गया — "इंद्रियों को सुखदायक और मन को उत्तेजित करने वाले एक सुखद स्थान" पर, उन्होंने अटल संकल्प के साथ अंतिम प्रयास किया: "यद्यपि केवल मेरी त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही शेष रहें, और मेरा रक्त और मांस सूखकर नष्ट हो जाए, तब भी मैं पूर्ण ज्ञान ( सम्मासंबोधि ) प्राप्त होने तक इस आसन से नहीं हिलूंगा।" वे प्रयास में इतने अथक थे और सत्य को जानने और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतने दृढ़ थे कि उन्होंने सचेत श्वास-अंदर लेने ( आना + अपाना सती ) का अभ्यास किया, जो ध्यान उन्होंने अपने बचपन में विकसित किया था, और बोधिसत्व ध्यान की पहली अवस्था ( झान ; संस्कृत, ध्यान ) में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो गए।

अध्याय 15. सुखवग्गा: ख़ुशी (197-208

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 197,198,199

———————————————————————

(धम्मपद 195 और 196) <<<< पिछला || धम्मपद 197, 198 और 199 || अगला >>>> (धम्मपद 200)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सुसुखम वात जीवमा
verinesu averino
verinesu manussesu
viharama averino.
सुसुखम वात जीवमा
अतुरेसु(1) अनातुरा
aturesu manussesu

विहारमा अनातुरा.
सुसुखम वात जीवमा
उस्सुकेसु अनुसुका
उस्सुकेसु मानुस्सेसु
विहारमा अनुसुका.

---

श्लोक 197 : निःसंदेह हम बहुत सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, घृणा करने वालों में से किसी से घृणा नहीं करते; घृणा करने वालों के बीच हम किसी से घृणा किए बिना रहते हैं।

---

श्लोक 198 : वास्तव में हम बहुत सुखी हैं, बीमारों के बीच अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं; बीमार लोगों के बीच हम अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं।

---

श्लोक 199 : निःसंदेह हम बहुत सुखपूर्वक रहते हैं, उन लोगों के बीच (इंद्रिय सुखों के लिए) प्रयास नहीं करते जो उनके लिए प्रयास करते हैं; जो लोग उनके लिए प्रयास करते हैं, उनके बीच हम बिना प्रयास किए रहते हैं।

---

1. aturesu/atura: बीमार या रोग; यहाँ नैतिक रोग का तात्पर्य है।

---

बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कहानी

बुद्ध ने शाक्य देश में इस पुस्तक के श्लोक (197) से (199) तक का उच्चारण अपने उन रिश्तेदारों के संदर्भ में किया जो रोहिणी नदी के पानी के उपयोग को लेकर झगड़ रहे थे।

शाक्यों का नगर कपिलवस्तु और कोल्यों का नगर कोलिया, रोहिणी नदी के दोनों किनारों पर स्थित थे। दोनों नगरों के किसान रोहिणी नदी से सिंचित खेतों में खेती करते थे। एक वर्ष पर्याप्त वर्षा नहीं हुई और धान एवं अन्य फसलें सूखने लगीं, तो दोनों किनारों के किसानों ने रोहिणी नदी का जल अपने खेतों में मोड़ने का निर्णय लिया। कोलिया के निवासियों का कहना था कि नदी में दोनों किनारों के लिए पर्याप्त जल नहीं है और यदि एक बार भी जल उनके खेतों में मोड़ दिया जाए, तो धान की फसल पकने के लिए पर्याप्त होगा। दूसरी ओर, कपिलवस्तु के लोगों का तर्क था कि ऐसा करने पर उन्हें जल का उपयोग करने से वंचित कर दिया जाएगा और उनकी फसलें निश्चित रूप से बर्बाद हो जाएंगी, और उन्हें दूसरों से खरीदना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि वे भोजन के बदले अपना धन और कीमती सामान नदी के दूसरे किनारे तक ले जाने को तैयार नहीं हैं।

दोनों पक्षों को पानी केवल अपने उपयोग के लिए चाहिए था और अपशब्दों और एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप के कारण उनके बीच काफी दुर्भावना थी। किसानों के बीच शुरू हुआ यह झगड़ा संबंधित मंत्रियों के कानों तक पहुंचा और उन्होंने अपने-अपने शासकों को इसकी सूचना दी, जिसके बाद दोनों पक्ष युद्ध के लिए तैयार हो गए।

बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्तियों से संसार का अवलोकन करते हुए देखा कि नदी के दोनों किनारों पर उनके रिश्तेदार युद्ध के लिए आ रहे हैं और उन्होंने उन्हें रोकने का निश्चय किया। वे अकेले ही आकाश में विचरण करते हुए उनके पास गए और नदी के मध्य में रुक गए। उनके रिश्तेदारों ने उन्हें आकाश में शक्तिशाली और शांत भाव से विराजमान देखकर अपने सभी हथियार एक तरफ रख दिए और बुद्ध को प्रणाम किया। तब बुद्ध ने उनसे कहा, "थोड़े से पानी के लिए, जिसका कोई मूल्य नहीं है, तुम्हें अपने अनमोल जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए। तुमने यह मूर्खतापूर्ण कार्य क्यों किया? यदि मैंने आज तुम्हें न रोका होता, तो तुम्हारा खून नदी की तरह बह रहा होता। तुम अपने शत्रुओं से घृणा करते हो, परन्तु मेरा कोई शत्रु नहीं है; तुम नैतिक विकारों से ग्रस्त हो, परन्तु मैं उनसे मुक्त हूँ; तुम इंद्रिय सुखों के लिए तरस रहे हो, परन्तु मैं उनके लिए तरसता नहीं हूँ।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 197 : निःसंदेह हम बहुत सुखी जीवन व्यतीत करते हैं, घृणा करने वालों में से किसी से घृणा नहीं करते; घृणा करने वालों के बीच हम किसी से घृणा किए बिना रहते हैं।

---

श्लोक 198 : वास्तव में हम बहुत सुखी हैं, बीमारों के बीच अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं; बीमार लोगों के बीच हम अच्छे स्वास्थ्य में रहते हैं।

---

श्लोक 199 : निःसंदेह हम बहुत सुखपूर्वक रहते हैं, उन लोगों के बीच (इंद्रिय सुखों के लिए) प्रयास नहीं करते जो उनके लिए प्रयास करते हैं; जो लोग उनके लिए प्रयास करते हैं, उनके बीच हम बिना प्रयास किए रहते हैं।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुद्ध के रिश्तेदारों को शांत करने की कहानी

बुद्ध ने ये श्लोक शाक्यन देश में रोहिणी नदी के जल के उपयोग को लेकर आपस में झगड़ रहे रिश्तेदारों के संदर्भ में कहे थे।

कथा के अनुसार, शाक्य और कोलिया शासकों ने रोहिणी नदी के जल को कपिलवस्तु और कोलिया नगरों के बीच एक ही बांध में रोककर नदी के दोनों किनारों पर खेतों की खेती की। अब जेठमूल माह में फसलें खराब होने लगीं, जिस पर दोनों नगरों के निवासियों द्वारा नियोजित मजदूर एकत्रित हुए। कोलिया नगर के निवासियों ने कहा, "यदि इस जल को नदी के दोनों किनारों पर मोड़ दिया जाए, तो न तो आपके लिए और न ही हमारे लिए पर्याप्त होगा। परन्तु हमारी फसलें एक ही बार सिंचाई से पक जाएंगी। इसलिए हमें यह जल दे दीजिए।"

शाक्यों ने उत्तर दिया, "जब आप अपने भंडारगृह भर लेंगे, तब हमारा मन नहीं करेगा कि हम सोना, पन्ना और सिक्के लेकर, टोकरियाँ और बोरे लेकर घर-घर जाकर आपसे भीख माँगें। हमारी फसलें भी एक बार पानी देने से पक जाएँगी। इसलिए हमें यह पानी दीजिए।" "हम आपको यह नहीं देंगे।" "हम भी आपको यह नहीं देंगे।" बात इतनी तीखी हो गई कि अंत में एक ने उठकर दूसरे को मुक्का मार दिया। दूसरे ने भी वैसा ही मुक्का मारा और दोनों के बीच ज़बरदस्त लड़ाई शुरू हो गई। लड़ने वालों ने दोनों शाही परिवारों की उत्पत्ति पर आरोप लगाकर मामले को और बिगाड़ दिया।

कोलियों के यहाँ काम करने वाले मजदूरों ने कहा, "कपिलवस्तु नगर में रहने वाले तुम अपने बच्चों को लेकर अपने घर चले जाओ। क्या हम उन हाथियों, घोड़ों, ढालों और हथियारों से नुकसान उठाने की हिम्मत कर सकते हैं जो कुत्तों और सियार की तरह अपनी ही बहनों के साथ रहते हैं?" शाक्यों के यहाँ काम करने वाले मजदूरों ने जवाब दिया, "तुम कुष्ठ रोगियों, अपने बच्चों को लेकर अपने घर चले जाओ। क्या हम उन हाथियों, घोड़ों, ढालों और हथियारों से नुकसान उठाने की हिम्मत कर सकते हैं जो जानवरों की तरह पेड़ों पर रहते हैं?" दोनों पक्षों के मजदूरों ने जाकर काम के प्रभारी मंत्रियों को झगड़े की सूचना दी, और मंत्रियों ने यह बात राजपरिवार को बता दी। तब शाक्य युद्ध के लिए हथियार लेकर निकले और चिल्लाए, "हम दिखाएंगे कि अपनी बहनों के साथ रहने वालों की क्या ताकत और शक्ति होती है।" इसी प्रकार कोलियों ने भी युद्ध के लिए हथियार लेकर निकले और चिल्लाए, "हम दिखाएंगे कि पेड़ों पर रहने वालों की क्या ताकत और शक्ति होती है।"

भोर होते ही जब बुद्ध ने संसार का अवलोकन किया और अपने सगे-संबंधियों को देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि मैं इनके पास नहीं गया, तो ये आपस में ही नष्ट हो जाएँगे। मेरा यही कर्तव्य है कि मैं इनके पास जाऊँ।" तदनुसार, वे अकेले ही वायु में उड़कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उनके सगे-संबंधी एकत्रित थे, और रोहिणी नदी के मध्य में पाँव-पालक होकर बैठ गए। बुद्ध के सगे-संबंधियों ने जब उन्हें देखा, तो उन्होंने अपने शस्त्र फेंक दिए और उन्हें प्रणाम किया। बुद्ध ने अपने सगे-संबंधियों से कहा, "हे महाराज, यह सब झगड़ा किस बात का है?" "हम नहीं जानते, आदरणीय।" "तो फिर कौन जान सकता है?" "सेनापति को ही पता होगा।" सेनापति ने कहा, "वाइसराय को ही पता होगा।" इस प्रकार बुद्ध ने पहले एक से और फिर दूसरे से प्रश्न पूछा, और अंत में दासों से पूछा। दासों ने उत्तर दिया, "झगड़ा पानी को लेकर है।"

तब बुद्ध ने राजा से पूछा, "हे महाराज, जल का मूल्य कितना है?" "बहुत कम, पूज्यवर।" "हे महाराज, शाक्यों का मूल्य कितना है?" "हे पूज्यवर, शाक्यों अनमोल हैं।" "थोड़े से जल के कारण अनमोल शाक्यों का नाश करना उचित नहीं है।" वे चुप रहे। तब बुद्ध ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा, "हे महाराज, आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? यदि मैं आज यहाँ उपस्थित न होता, तो आप रक्त की नदी बहा देते। आपने अत्यंत अशोभनीय कार्य किया है। आप शत्रुता में लीन रहते हैं, पाँच प्रकार की घृणा में लिप्त रहते हैं। मैं घृणा से मुक्त रहता हूँ। आप बुरी वासनाओं के रोग से ग्रस्त रहते हैं। मैं रोगमुक्त रहता हूँ। मैं किसी भी चीज़ की लालसा से मुक्त रहता हूँ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 197)

वेरिनेसु अवेरिनो वात सुसुखं जीवमा

मनुस्सेसु वेरिनेसु एवरिनो विहारा

वेरिनेसु : घृणा से भरे लोगों के बीच; अवेरिनो वत : निःसंदेह घृणा रहित; सुसुखं [ सुसुख ]: सुखपूर्वक; जीवाम : हम निवास करते हैं; मनुस्सेसु : घृणा से भरे लोगों के बीच; वेरिनेसु : घृणा रहित; अवेरिनो [ अवेरिना ]: घृणा रहित; विहाराम : (हम) जीवन व्यतीत करते रहते हैं

जो लोग घृणा करते हैं, उनके बीच हम बिना घृणा किए रहते हैं। जब वे घृणा करते हैं, तब हम बिना घृणा किए रहते हैं। घृणा करने वालों के बीच हम अत्यंत सुखपूर्वक रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 198)

आतुरेसु अनातुरा वत सुसुखं जीवम्

मनुस्सेसु आतुरेसु अनातुरा विहारा

āturesu : जो लोग (अशुद्धियों से) बीमार हैं; anāturā : (हम) रोगमुक्त हैं; vata : वास्तव में; susukhaṃ [ susukha ]: अत्यंत सुख में; jīvāma : हम रहते हैं; manussesu āturesu : जो लोग बीमार हैं उनके बीच; anāturā : बिना बीमार हुए; viharāma : हम रहते हैं

जो लोग बीमार और विकारों से ग्रस्त हैं, उनके बीच हम, जो इन विकारों से मुक्त हैं, सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। बीमारों के बीच हम निर्मल होकर अत्यंत सुखी रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 199)

उस्सुकेसु अनुसुका वात सुसुखं जीवमा

मनुस्सेसु उस्सुकेसु अनुसुका विहारा

हम उन लोगों में रहते हैं जो सांसारिक सुखों के पीछे बेचैनी से भागते हैं; हम बिना किसी प्रयास के भी अत्यंत सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। हम उन लोगों में रहते हैं जो बेचैनी से प्रयास करते हैं; हम बिना किसी प्रयास के भी जीवन व्यतीत करते हैं।

उन चिंतित पुरुषों और महिलाओं के बीच, जो लगातार सांसारिक वस्तुओं की खोज में लगे रहते हैं, हम, जो सांसारिक वस्तुओं की ऐसी तीव्र खोज नहीं करते, अत्यंत सुखी जीवन जीते हैं। सांसारिक वस्तुओं की खोज करने वालों के बीच, सुख की तलाश करने वालों के बीच, हम सुख की खोज किए बिना जीते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 197-199)

ये श्लोक बुद्ध ने तब कहे थे जब उन्होंने अपने ही रिश्तेदारों के कुलों के बीच एक ऐसे संघर्ष को टाला था जो एक खूनी युद्ध में तब्दील हो सकता था। बुद्ध का जन्म राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में हुआ था, जो शाक्य शासक राजा सुद्धोदन के पुत्र थे। बुद्ध (राजकुमार सिद्धार्थ) के करीबी रिश्तेदार बौद्ध संघ से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। राजकुमार सिद्धार्थ की माता, रानी महामाया का निधन उनके जन्म के कुछ ही दिनों बाद हो गया था। राजकुमार सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा उनकी चचेरी बहन थीं। राजकुमारी यशोधरा, जिन्हें राहुलमाता, बिम्बा और भद्दकच्चाना के नाम से भी जाना जाता था, कोलिय वंश के शासक राजा सुप्पबुद्ध और राजा सुद्धोदन की बहन पामिता की पुत्री थीं। उनकी आयु राजकुमार सिद्धार्थ के समान थी, जिनसे उनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हुआ था। अपनी सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करके ही उन्होंने यशोदरा का हाथ जीता था। यशोदरा ने अत्यंत सुखमय और विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत किया। उनतीस वर्ष की आयु में, जिस दिन उन्होंने अपने इकलौते पुत्र राहुल को जन्म दिया, उसी दिन उनके बुद्धिमान और चिंतनशील पति, जिनसे वे अत्यंत प्रेम करती थीं, ने संसार त्याग कर जीवन के कष्टों से मुक्ति पाने का निश्चय किया। अपनी निष्ठावान और आकर्षक पत्नी को विदाई दिए बिना ही वे रात में महल छोड़कर चले गए, और युवा यशोदरा को बच्चे की देखभाल के लिए अकेला छोड़ दिया। वे हमेशा की तरह अपने प्रिय पति का स्वागत करने के लिए उठीं, लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि वे वहाँ नहीं थे। जब उन्हें यह अहसास हुआ कि उनके आदर्श राजकुमार उन्हें और नवजात शिशु को छोड़कर चले गए हैं, तो वे अवर्णनीय दुःख से भर उठीं। उनकी सबसे प्रिय संपत्ति हमेशा के लिए खो गई थी। महल अपने सभी आकर्षणों के साथ अब एक कालकोठरी जैसा लग रहा था; सारा संसार निर्जीव प्रतीत हो रहा था। उनका एकमात्र सहारा उनका शिशु पुत्र था। यद्यपि कई क्षत्रिय राजकुमारों ने उनका हाथ मांगा, उन्होंने उन सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया और अपने प्रिय पति के प्रति सदा निष्ठावान रहीं। अपने पति के संन्यासी जीवन का भोग-विलास सुनकर, उन्होंने अपने सभी आभूषण उतार दिए और सादे पीले वस्त्र धारण किए। छह वर्षों तक जब तपस्वी गौतम बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, राजकुमारी यशोदरा ने उनके कार्यों को ध्यानपूर्वक देखा और उनका अनुसरण किया। जब बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद कपिलवस्तु आए और अगले दिन राजा महल में उनका स्वागत कर रहे थे, तो राजकुमारी यशोदरा को छोड़कर सभी लोग उन्हें प्रणाम करने आए। उन्होंने सोचा, "यदि मुझमें कोई सद्‌गुण है, तो बुद्ध अवश्य मेरे पास आएंगे। तब मैं उनका आदर करूंगी।"

भोजन समाप्त होने के बाद बुद्ध ने राजा को कटोरा सौंप दिया और अपने दो प्रमुख शिष्यों के साथ यशोदरा के कक्ष में प्रवेश किया। वे अपने लिए तैयार आसन पर बैठ गए और बोले, "राजा की पुत्री मुझे अपनी इच्छानुसार प्रणाम करें। कुछ न कहें।" बुद्ध के आगमन की सूचना पाकर यशोदरा ने दरबार की सभी स्त्रियों को पीले वस्त्र पहनने का आदेश दिया। जब बुद्ध बैठे, तो यशोदरा शीघ्रता से उनके पास आईं और उनके टखनों को पकड़कर अपना सिर उनके चरणों पर रखकर अपनी इच्छानुसार प्रणाम किया। इस प्रकार अपना स्नेह और आदर प्रकट करते हुए वे आदरपूर्वक बैठ गईं। तब राजा ने उसके गुणों की प्रशंसा की और उसकी प्रेम और निष्ठा पर टिप्पणी करते हुए कहा, "हे प्रभु, जब मेरी पुत्री ने सुना कि आप पीले वस्त्र पहन रहे हैं, तो उसने भी पीले वस्त्र पहन लिए; जब उसने सुना कि आप दिन में एक बार भोजन कर रहे हैं, तो उसने भी वैसा ही किया; जब उसने सुना कि आपने ऊँचे पलंगों का त्याग कर दिया है, तो वह नीचे के

पलंगों पर सोई; जब उसने सुना कि आपने मालाएँ और सुगंध त्याग दी हैं, तो उसने भी उन्हें त्याग दिया; जब उसके रिश्तेदारों ने उसे भोजन कराने का संदेश भेजा, तो उसने उनमें से किसी की ओर देखा तक नहीं। मेरी पुत्री इतनी गुणी थी।"

"हे महाराज, न केवल इस जन्म में, बल्कि पिछले जन्म में भी उन्होंने मेरी रक्षा की और मेरे प्रति समर्पित और वफादार रहीं," बुद्ध ने चंदकिन्नार जातक का हवाला देते हुए कहा। उनके साथ बीते समय के संबंध को याद करते हुए, उन्होंने उन्हें सांत्वना दी और महल से चले गए। राजा सुद्धोदन की मृत्यु के बाद, जब प्रजापति गौतमी भिक्षुणी बन गईं , तो यशोदरा भी संघ में शामिल हो गईं और अर्हतत्व प्राप्त किया।

महिला शिष्यों में वे महाअभिज्ञा प्राप्त करने वाली प्रमुख शिष्याओं में से एक थीं । अठहत्तर वर्ष की आयु में उनका देहांत हुआ। उनका नाम थेरीगाथा में नहीं मिलता , लेकिन उनके रोचक श्लोक अपादना में पाए जाते हैं ।

राहुल राजकुमार सिद्धार्थ और राजकुमारी यशोद्धरा के इकलौते पुत्र थे। उनका जन्म उस दिन हुआ जब राजकुमार सिद्धार्थ ने संसार त्यागने का निश्चय किया था। जब वे उद्यान में ध्यानमग्न थे, तभी उन्हें अपने पुत्र के जन्म की शुभ सूचना मिली। सामान्य अपेक्षाओं के विपरीत, समाचार सुनकर प्रसन्न होने के बजाय, उन्होंने कहा, " राहु जातो , बंधनं जातम् " (राहु का जन्म हुआ है, बंधन उत्पन्न हुआ है!)। इसी कारण उनके दादा, राजा सुद्धोदन ने बालक का नाम राहुल रखा।

राहुल का पालन-पोषण उनकी माता और दादा ने पिताविहीन बच्चे के रूप में किया। जब वे सात वर्ष के थे, तब बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद पहली बार कपिलवस्तु का दर्शन किया। उनके आगमन के सातवें दिन राजकुमारी यशोदरा ने युवा राहुल को सुंदर वस्त्र पहनाए और बुद्ध की ओर इशारा करते हुए कहा, "देखो, पुत्र, वह तपस्वी, ब्रह्मा के समान, बीस हजार तपस्वियों से घिरे हुए! वे तुम्हारे पिता हैं, और उनके पास अपार धन था। उनके संन्यास के बाद से हम उन्हें नहीं देख पाते। उनके पास जाओ और अपना उत्तराधिकार मांगो, और कहो, "पिताजी, मैं राजकुमार हूँ। मेरे राज्याभिषेक के बाद मैं सर्वशक्तिमान सम्राट बनूँगा। मुझे धन की आवश्यकता है। कृपया मुझे धन प्रदान करें, क्योंकि पुत्र ही पिता की संपत्ति का स्वामी होता है।"

भोले-भाले राहुल बुद्ध के समक्ष आए और अपनी माता के उपदेशानुसार, अपने उत्तराधिकार का अनुरोध करते हुए अत्यंत स्नेहपूर्वक बोले, "हे तपस्वी, आपकी परछाई भी मुझे प्रिय है।" भोजन के बाद, बुद्ध महल से चले गए और राहुल उनके पीछे-पीछे "मुझे मेरा उत्तराधिकार दीजिए" कहते हुए और अन्य कई बातें कहते हुए चले गए। किसी ने भी उन्हें रोकने का प्रयास नहीं किया। न ही बुद्ध ने उन्हें अपने पीछे आने से रोका। उद्यान पहुँचकर बुद्ध ने सोचा, "यह अपने पिता के धन की इच्छा रखता है, परन्तु वह संसार के साथ जुड़ा है और कष्टों से भरा है। मैं इसे बोधि वृक्ष के चरणों में प्राप्त सात गुना श्रेष्ठ धन दूँगा और इसे दिव्य उत्तराधिकार का स्वामी बनाऊँगा।" उन्होंने पूज्य सारिपुत्त को बुलाया और उनसे लघु राहुल को दीक्षा देने का अनुरोध किया।

उस समय केवल सात वर्ष के राहुल को संघ में शामिल किया गया था।

अपने प्रिय पोते के अचानक दीक्षा लेने की खबर सुनकर राजा सुद्धोदन को गहरा दुःख हुआ। उन्होंने बुद्ध से विनती करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा कि माता-पिता की पूर्व सहमति के बिना किसी को भी दीक्षा न दी जाए। उन्होंने आगे कहा, "जब बुद्ध ने संसार त्यागा, तब मुझे बहुत दुःख हुआ। नंदा के त्याग के समय भी ऐसा ही हुआ, और विशेषकर राहुल के मामले में। पिता का पुत्र के प्रति प्रेम त्वचा, मांस, नस, हड्डी और मज्जा तक को भेद देता है। कृपया मेरी प्रार्थना स्वीकार करें कि माता-पिता की अनुमति के बिना किसी पुत्र को दीक्षा न दी जाए।" बुद्ध ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसे विनय ग्रंथ में नियम बना दिया। सात वर्ष के एक छोटे लड़के का धार्मिक जीवन व्यतीत करना लगभग अकल्पनीय है। परन्तु समनेर (नवदीक्षित) राहुल, जो सुसंस्कृत, असाधारण रूप से आज्ञाकारी और अनुशासित थे, अपने वरिष्ठों से शिक्षा ग्रहण करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। ऐसा कहा जाता है कि वे सुबह जल्दी उठकर मुट्ठी भर रेत उछालते हुए कहते थे, "आज मुझे अपने गुरुओं से उतना ही उपदेश मिले जितना इन रेत के कणों से मिलता है।" दीक्षा के तुरंत बाद उन्हें दिए गए शुरुआती उपदेशों में से एक अंबलत्तिका-राहुलोवाद सूत्र था , जिसमें उन्होंने सत्यनिष्ठा के महत्व पर जोर दिया था।

एक दिन बुद्ध पूज्य राहुल के पास गए। दूर से उन्हें आते देख राहुल ने उनके लिए आसन की व्यवस्था की और पैर धोने के लिए जल उपलब्ध कराया। बुद्ध ने उनके पैर धोए और पात्र में थोड़ा सा जल छोड़कर कहा, "हे राहुल, क्या तुम पात्र में बचे इस थोड़े से जल को देख रहे हो?" "जी, प्रभु।" "इसी प्रकार, हे राहुल, जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में तुच्छ है।" फिर बुद्ध ने वह थोड़ा सा जल फेंक दिया और कहा, "जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में व्यर्थ है।" बुद्ध ने पात्र को उल्टा कर दिया और कहा, "जो जानबूझकर झूठ बोलने से लज्जित नहीं होते, उनका भिक्षुत्व वास्तव में उलट गया है।"

अंत में बुद्ध ने पात्र को सीधा किया और कहा, "जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म न करने वालों का सामंतत्व वास्तव में व्यर्थ है। मैं कहता हूँ कि जो जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म नहीं करता, उससे कोई भी बुराई नहीं हो सकती। इसलिए, हे राहुल, तुम्हें भी ऐसा ही अभ्यास करना चाहिए। मैं खेल में भी झूठ नहीं बोलूँगा।"

सरल उदाहरणों के माध्यम से सत्यनिष्ठा के महत्व पर बल देते हुए, बुद्ध ने उन्हें चिंतन का महत्व और नैतिकता के मापदंड को इस प्रकार समझाया कि एक बच्चा भी समझ सके। बुद्ध ने पूछा, "राहुल, दर्पण किस उद्देश्य से होता है?" उन्होंने उत्तर दिया, "प्रतिबिंबित

करने के उद्देश्य से, हे प्रभु।" "इसी प्रकार, राहुल, चिंतन करने के बाद ही शारीरिक क्रिया करनी चाहिए; चिंतन करने के बाद ही वाणी क्रिया करनी चाहिए; चिंतन करने के बाद ही मानसिक क्रिया करनी चाहिए।"

"शरीर से जो भी क्रिया आप करना चाहें, उस क्रिया के बारे में आपको यह सोचना चाहिए: 'अब, यह क्रिया जो मैं शरीर से करना चाहता हूँ—क्या यह क्रिया मेरे स्वयं के लिए, या दूसरों के लिए, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी?' तो, यह क्रिया अकुशल है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होगा।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं जो शारीरिक क्रिया करना चाहता हूँ, वह मेरे स्वयं के लिए, दूसरों के लिए, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी।' तो यह शारीरिक क्रिया अनुचित है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होगा। ऐसी शारीरिक क्रिया आपको किसी भी हालत में नहीं करनी चाहिए।" "दूसरी ओर, यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं जो शारीरिक क्रिया करना चाहता हूँ, वह न तो मेरे लिए, न ही दूसरों के लिए, और न ही मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक होगी।' तो यह शारीरिक क्रिया कुशल है, क्योंकि इससे आनंद और प्रसन्नता प्राप्त होगी। ऐसी शारीरिक क्रिया आपको अवश्य करनी चाहिए।" सामनेर राहुल को अपने कार्यों के दौरान और बाद में चिंतन करने की सलाह देते हुए बुद्ध ने कहा, "जब आप शरीर से कोई क्रिया कर रहे हों, तो उस क्रिया के बारे में चिंतन करें: 'क्या यह क्रिया जो मैं अपने शरीर से कर रहा हूँ, मेरे स्वयं के लिए हानिकारक है, या दूसरों के लिए हानिकारक है, या मेरे और दूसरों दोनों के लिए हानिकारक है?' तो यह शारीरिक क्रिया अकुशल है, जिससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होता है।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मैं अपने शरीर से जो क्रिया कर रहा हूँ, वह मेरे स्वयं के लिए, दूसरों के लिए और स्वयं तथा दूसरों दोनों के लिए हानिकारक है।' तो यह शारीरिक क्रिया अनुचित है, क्योंकि इससे पीड़ा और कष्ट उत्पन्न होता है। ऐसी शारीरिक क्रिया से आपको अवश्य विरक्त रहना चाहिए।"

"यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मेरे द्वारा किया गया यह शारीरिक कार्य न तो मेरे स्वयं के लिए हानिकारक है, न ही दूसरों के लिए, और न ही मेरे और दूसरों दोनों के लिए।' तो यह शारीरिक कार्य कुशल है, जिससे सुख और आनंद प्राप्त होता है। ऐसा शारीरिक कार्य आपको बार-बार करना चाहिए।" बुद्ध ने कहा, "यदि चिंतन करते समय आपको यह अहसास हो कि 'मेरे द्वारा किया गया यह कार्य अकुशल है।' तो ऐसे कार्य को स्वीकार करें, प्रकट करें और बुद्ध, या विद्वानों, या अपने साथी धर्मनिष्ठों के समक्ष प्रकट करें। स्वीकार करने के बाद, आपको भविष्य में संयम प्राप्त करना चाहिए।" इन विभिन्न संबंधों और एक निरर्थक युद्ध को रोकने की इच्छा ने बुद्ध को शाक्यों और कोलियों के बीच संघर्ष को समाप्त करने के लिए प्रेरित किया।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 200

---

(धम्मपद 197, 198 और 199) <<<< पिछला|| धम्मपद200 ||अगला >>>> (धम्मपद201)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 200 - मरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

सुसुखम वात जीवमा
yesam no nathti kincanam(1)
pitibhakkha bhavissama
देव अभासर(2) यथा.

---

श्लोक 200 : वास्तव में हम बिना किसी चिंता के (अर्थात लोभ, द्वेष और अज्ञान के बिना) बहुत सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं; आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह हम भी आनंदमय तृप्ति (पीति) को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करेंगे।

---

1. नत्थी किंचनम्: बिना किसी चिंता के, यहाँ इसका अर्थ है लालच, दुर्भावना और अज्ञान (राग, दोष और मोह) के बिना।
2. देव आभासर: आभासर ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) द्वितीय रूपावचारा ध्यान ब्रह्मलोक के निवास स्थान के तेजस्वी ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हैं।

---

मारा की कहानी (मृत्यु/रोग/बुराई/भौतिक सुख/धन का देवता, अर्थात् शैतान)
बुद्ध ने पंचशाला (पांच हॉल वाला गांव) नामक ब्राह्मण गांव में इस पुस्तक के श्लोक (200) का उच्चारण मारा के संदर्भ में किया।
एक बार बुद्ध ने दिव्य दर्शन में देखा कि पंचासला गाँव की पाँच सौ कन्याएँ सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने वाली थीं। इसलिए वे उस गाँव के पास ही रहने चले गए। पाँच सौ कन्याएँ नदी किनारे स्नान करने गईं; स्नान के बाद वे सज-धज कर गाँव लौट आईं, क्योंकि उस दिन एक त्योहार था। लगभग उसी समय, बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए पंचासला गाँव में गए, लेकिन गाँव वालों में से किसी ने भी उन्हें कुछ नहीं दिया क्योंकि वे मारा के वश में थे।
वापस लौटने पर बुद्ध की मुलाकात मारा से हुई, जिसने तुरंत उनसे पूछा कि क्या उन्हें बहुत सारा भिक्षा-भोजन प्राप्त हुआ था।
उस दिन भिक्षा प्राप्त न कर पाने में बुद्ध को मारा का हाथ दिखाई दिया और उन्होंने कहा, "हे दुष्ट मारा! तूने ही तो ग्रामीणों को मेरे विरुद्ध भड़काया है। तेरे प्रभाव में आकर उन्होंने मुझे भिक्षा नहीं दी। क्या मैं सही नहीं हूँ?" मारा ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसने सोचा कि बुद्ध को गाँव वापस बुलाना और ग्रामीणों से उनका उपहास निकलवाना मनोरंजक होगा। इसलिए उसने कहा, "हे बुद्ध, आप फिर से गाँव क्यों नहीं जाते? इस बार आपको भिक्षा अवश्य मिलेगी।"
तभी पांच सौ ग्राम कन्याएं वहां पहुंचीं और बुद्ध को प्रणाम किया। उनकी उपस्थिति में, मारा ने बुद्ध का उपहास करते हुए कहा, "हे बुद्ध, चूंकि आपने आज सुबह भिक्षा ग्रहण नहीं की, इसलिए आप भूख से व्याकुल होंगे!" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे दुष्ट मारा, भले ही हमें कोई भोजन न मिले, आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह, जो केवल ध्यान के आनंदमय संतोष (पीति) और सुख (सुख) पर ही जीवित रहते हैं, हम धम्म के आनंदमय संतोष और सुख पर ही जीवित रहेंगे।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 200 : वास्तव में हम बिना किसी चिंता के (अर्थात लोभ, द्वेष और अज्ञान के बिना) बहुत सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं; आभासर ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) की तरह हम भी आनंदमय तृप्ति (पीति) को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करेंगे।

---

प्रवचन के अंत में, पाँच सौ कन्याओं ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा की कहानी
बुद्ध ने यह श्लोक पंचशाला (पांच कक्षों वाला गांव) नामक एक ब्राह्मण गांव में मारा के संदर्भ में कहा था।
एक बार बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि पंचासाल गाँव की कई कन्याएँ सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने वाली थीं। इसलिए वे उस गाँव के पास ही रहने चले गए। वे कन्याएँ नदी किनारे स्नान करने गईं; स्नान के बाद वे सज-धज कर गाँव लौट आईं, क्योंकि उस दिन एक त्योहार था। लगभग उसी समय, बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए पंचासाल गाँव में गए, लेकिन गाँव वालों में से किसी ने भी उन्हें कुछ नहीं दिया क्योंकि वे मारा के वश में थे।
लौटकर बुद्ध की मुलाकात मारा से हुई, जिसने तुरंत उनसे पूछा कि क्या उन्हें भिक्षा में पर्याप्त भोजन मिला। बुद्ध ने उस दिन भिक्षा न मिलने में मारा का हाथ देखा और उत्तर दिया, “हे दुष्ट मारा! तूने ही तो ग्रामीणों को मेरे विरुद्ध भड़काया है। तेरे प्रभाव में आकर उन्होंने मुझे भिक्षा नहीं दी। क्या मैं सही नहीं हूँ?” मारा ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसने सोचा कि बुद्ध को गाँव वापस बुलाकर ग्रामीणों से उनका अपमान करवाना मनोरंजक होगा। इसलिए उसने कहा, “हे बुद्ध, क्यों न आप फिर से गाँव जाएँ? इस बार आपको भिक्षा अवश्य मिलेगी।”
तभी पांच सौ ग्राम कन्याएं वहां पहुंचीं और बुद्ध को प्रणाम किया। उनकी उपस्थिति में, मारा ने बुद्ध का उपहास करते हुए कहा, “हे बुद्ध, क्योंकि आपने आज सुबह भिक्षा ग्रहण नहीं की, आप भूख से व्याकुल होंगे!” बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, “हे दुष्ट मारा, भले ही हमें कोई

भोजन न मिले, आभासर ब्रह्मों की तरह, जो केवल गहन ध्यान ( झान ) के आनंदमय संतोष ( पीति ) और सुख ( सुख ) पर ही जीवित रहते हैं , हम धम्म के आनंदमय संतोष और सुख पर ही जीवित रहेंगे।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 200)

हांं नो किंचनं नत्थि वात सुसुखं जीवम्

आभास्सर देव यथा पतिभक्खा भविस्सामा

yesaṃ no : हम जो इस प्रकार हैं; kiñcanaṃ natthi : हमारे पास कुछ भी नहीं है; vata susukhaṃ [ susukha ] : निश्चित रूप से सुखी; jīvāma : (हम) जीते हैं; ābhassarā devā yathā : आभासर स्वर्ग के देवताओं के समान; pītibhakkhā : आनंद पर निर्भर; bhavissāma : (हम) जीवन यापन करते हैं।

हम सुखी हैं, जिन्हें संपत्ति की चिंता नहीं है। आनंद में लीन होकर हम प्रकाशमान आभासर स्वर्ग के देवताओं के समान जीवन व्यतीत करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 200)

सुख : सुखद, प्रसन्न; आनंद, प्रसन्नता, उल्लास, परमानंद। यह तीन भावों ( वेदना ) में से एक है और यह शारीरिक या मानसिक हो सकता है। ग्रंथों में इंद्रियों के सुख और त्याग के सुख, सांसारिक (शारीरिक; सामिस ) और अलौकिक (अनास्निमिक; निरमिस ) सुख के बीच अंतर बताया गया है। प्रसन्नता ( पीति ) ध्यान की प्रारंभिक अवस्था ( समाधि ) का एक अनिवार्य घटक है । यह प्रथम अवस्था (प्रथम ध्यान) के पाँच घटकों ( झानंग ) में से एक है और द्वितीय अवस्था (द्वितीय ध्यान ) तक इसमें समाहित है।

सुख-संज्ञा : वास्तव में पीड़ा में सुख की अनुभूति ( दुक्खे सुख-संज्ञा ) जो कि चार विकृतियों ( विपल्लास ) में से एक है।

आभासरा : प्रकाशमान प्राणी रूपलोक के दिव्य प्राणियों का एक वर्ग हैं ।



---

(धम्मपद200) <<<< पिछला || धम्मपद201 || अगला >>>> (धम्मपद202)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 201 - कोसलारन्नो परजाया वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

जयम वेरम पसावती
dukkham seti parajito
upasanto1 sukham seti
हित्वा जयपराजयम।

---

श्लोक 201 : विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित लोग दुख में जीते हैं; शांतिप्रिय लोग विजय और पराजय का त्याग करके सुखी जीवन जीते हैं।

---

कोसल के राजा की पराजय की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (201) का उच्चारण किया, जिसमें कोसल के राजा का जिक्र था, जो अपने भतीजे अजातसत्तु द्वारा युद्ध में पराजित हुआ था।

अजातसत्तु के विरुद्ध युद्ध में कोसल के राजा को तीन बार परास्त होना पड़ा। अजातसत्तु राजा बिम्बिसार और उनकी बहन रानी वेदेही का पुत्र था। कोसल के राजा अपनी पराजय से लज्जित और अत्यंत दुखी थे। उन्होंने विलाप करते हुए कहा, "कितना अपमान! मैं इस बालक को भी नहीं जीत सका, जिसमें अभी भी माँ के दूध की महक है। इससे अच्छा तो मैं मर जाऊँ।" दुखी और लज्जित होकर राजा ने भोजन त्याग दिया और बिस्तर पर पड़े रहे। राजा के इस कष्ट की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई और जब बुद्ध को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जो विजय प्राप्त करता है, उसमें शत्रुता और घृणा बढ़ती है; जो पराजित होता है, उसे पीड़ा और कष्ट सहना पड़ता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 201 : विजय शत्रुता को जन्म देती है; पराजित लोग दुख में जीते हैं; शांतिप्रिय लोग विजय और पराजय का त्याग करके सुखी जीवन जीते हैं।

---

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कोसल के राजा की पराजय की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसे युद्ध में उसके अपने भतीजे अजातसत्तु ने पराजित किया था।

अजातसत्तु के विरुद्ध युद्ध में कोसल के राजा को तीन बार परास्त होना पड़ा। अजातसत्तु राजा बिंबिसार और उनकी बहन रानी वेदेही का पुत्र था। कोसल के राजा अपनी पराजय से लज्जित और अत्यंत दुखी थे। उन्होंने विलाप करते हुए कहा, "कितना अपमान! मैं इस बालक को भी नहीं जीत सका, जिसमें अभी भी माँ के दूध की महक है। इससे अच्छा तो मैं मर जाऊँ।" दुखी और अत्यंत लज्जित होकर राजा ने भोजन त्याग दिया और बिस्तर पर पड़े रहे। राजा के इस कष्ट की खबर जंगल की आग की तरह फैल गई और जब बुद्ध को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जो विजय प्राप्त करता है, उसमें शत्रुता और घृणा बढ़ती है; जो पराजित होता है, उसे पीड़ा और कष्ट भोगना पड़ता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 201)

जयं वेरं पसवति पराजितो दुक्खं सेति

उपसंतो जयापराजयं हित्वा सुखं सेति

जयं [ जया ]: विजय; वेरं पश्वति : घृणा उत्पन्न करता है; पराजितो [ पराजिता ]: पराजित; दुक्खाँ [ दुक्खा ]: दुःख में; सेति : रहता है; उपसंतो [ उपसंता ]: शांत व्यक्ति; जयपराजयं हित्वा : विजय और पराजय दोनों से ऊपर उठकर; सुखं [ सुखा ]: ख़ुशी में; सेति : निवास करता है

विजय से घृणा उत्पन्न होती है। पराजित व्यक्ति दुख में जीता है। परन्तु जिसका मन शांत और स्थिर होता है, वह सुखी जीवन व्यतीत करता है, क्योंकि वह विजय और पराजय दोनों से ऊपर उठ चुका होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 201)

राजा कोसल । विजय और पराजय की वास्तविकता को समाहित करने वाला यह श्लोक बुद्ध ने राजा कोसल की अपने भतीजे राजा अजातसत्त के हाथों हुई पराजय के अवसर पर कहा था। राजा महा कोसल के पुत्र राजा पसेनदी कोसल, जो सावत्थी को राजधानी बनाकर कोसल राज्य पर शासन करते थे, बुद्ध के एक अन्य संरक्षक थे। वे बुद्ध के समकालीन थे और विभिन्न कलाओं में निपुण होने के कारण, उन्हें अपने पिता द्वारा जीवित रहते हुए ही राजा बनाए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका धर्म परिवर्तन संभवतः बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में हुआ होगा। संयुत्त निकाय में वर्णित है कि एक बार वे बुद्ध के पास आए और उनसे उनके ज्ञानोदय के बारे में प्रश्न करते हुए उन्हें कम उम्र और कम दीक्षा वाला बताया।

बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे महाराज, चार ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका उपेक्षित या तिरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए। वे हैं क्षत्रिय (योद्धा), नाग, अग्नि और भिक्षु।" इसके बाद उन्होंने राजा को इस विषय पर एक रोचक उपदेश दिया। उपदेश के समापन पर राजा ने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और तुरंत बुद्ध के अनुयायी बन गए। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक वे बुद्ध के प्रति अत्यंत आसक्त रहे। कहा जाता है कि एक बार राजा ने बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और उनके चरणों को चूमते हुए सहलाया।

उनकी प्रमुख रानी मल्लिका, जो एक अत्यंत धर्मनिष्ठ और बुद्धिमान महिला थीं और धम्म की भली-भांति ज्ञाता थीं, उनके धार्मिक उत्साह के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। एक सच्चे मित्र की तरह, उन्हें कई अवसरों पर उनके धार्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ा।

एक दिन राजा ने सोलह विचित्र सपने देखे और उनका वास्तविक अर्थ न जानते हुए वे अत्यंत व्याकुल हो गए। उनके ब्राह्मण सलाहकारों ने उनका अर्थ अशुभ संकेत बताया और उन्हें इससे उत्पन्न होने वाले खतरों को दूर करने के लिए एक भव्य पशु बलि देने का निर्देश दिया। सलाह के अनुसार, उन्होंने इस अमानवीय बलि के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ कर लीं, जिसके परिणामस्वरूप हजारों असहाय प्राणियों की जान चली जाती। रानी मल्लिका ने इस बर्बर कृत्य के बारे में सुनकर राजा को बुद्ध से अपने सपनों का अर्थ जानने के लिए प्रेरित किया, जिनकी समझ सांसारिक ब्राह्मणों की समझ से कहीं अधिक थी। राजा बुद्ध के पास गए और अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। उन्होंने अपने सोलह सपनों का वर्णन करते हुए उनका अर्थ जानना चाहा, और बुद्ध ने उन्हें उनका पूर्ण अर्थ समझाया।
बिंबिसार राजा के विपरीत, कोसल राजा को बुद्ध के अनेक ज्ञानवर्धक और शिक्षाप्रद प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संयुत्त निकाय में कोसल संयुत्त नामक एक विशेष खंड है जिसमें बुद्ध द्वारा राजा को दिए गए अधिकांश प्रवचन और प्रवचन दर्ज हैं।
एक बार जब राजा बुद्ध के साथ बैठे थे, तब उन्होंने कुछ घने बालों वाले शरीर और लंबे नाखूनों वाले तपस्वियों को वहाँ से गुजरते देखा। वे अपनी सीट से उठकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए अपना नाम पुकारा, “हे पूज्यजनों, मैं कोसल का राजा, पसेनादि हूँ।” उनके चले जाने पर वे बुद्ध के पास लौट आए और जानना चाहा कि क्या वे अरहत थे या अरहतत्व प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बुद्ध ने समझाया कि भौतिक सुखों में लिप्त साधारण गृहस्थों के लिए यह परखना कठिन है कि दूसरे अरहत हैं या नहीं, और उन्होंने निम्नलिखित रोचक बातें कहीं: “ किसी के आचरण ( शील ) को संगति ( सम्वासेन ) से समझा जा सकता है, और वह भी अल्पकाल में नहीं, बल्कि सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा। किसी की पवित्रता ( सोचेय्यम ) को संवाद ( सम्वहारेन ) से समझा जा सकता है। संकट के समय में ही किसी के धैर्य को समझा जा सकता है। किसी की बुद्धिमत्ता को चर्चा से समझा जा सकता है, और वह भी अल्पकाल में नहीं, बल्कि सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा।”

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 202

---

(धम्मपद 201) <<<< पिछला || धम्मपद 202 || अगला >>>> (धम्मपद 203)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 202 - अन्नतारकुलदारिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Natthi ragasamo aggi
natthi dosasamo kali
natthi khandhasama dukkha
natthi santiparam sukham.

---

श्लोक 202 : जुनून जैसी कोई आग नहीं; नफरत जैसी कोई बुराई नहीं; खन्धों के बोझ जैसा कोई दुख नहीं; पूर्ण शांति (अर्थात निर्वाण) से बढ़कर कोई आनंद नहीं।

---

एक युवा दुल्हन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य के घर पर इस पुस्तक के श्लोक (202) का उच्चारण एक युवा दुल्हन के संदर्भ में किया।

जिस दिन एक युवती का विवाह एक युवक से होने वाला था, उस दिन दुल्हन के माता-पिता ने बुद्ध और उनके अस्सी शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। युवती को घर में इधर-उधर घूमते और भिक्षा भोजन में मदद करते देख दूल्हा अत्यंत उत्साहित हो गया और वह बुद्ध और अन्य भिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ रहा। बुद्ध दूल्हा की भावनाओं को भलीभांति जानते थे और यह भी कि दूल्हा और दुल्हन दोनों के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया था।

अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने यह इच्छा की कि दूल्हा, दुल्हन को न देख पाए। जब युवक को युवती दिखाई देना बंद हो गई, तो वह बुद्ध पर पूर्ण ध्यान दे सका और उसके मन में बुद्ध के प्रति प्रेम और आदर और भी प्रबल हो गया। तब बुद्ध ने युवक से कहा, "हे युवक, कामवासना की आग के समान कोई अग्नि नहीं; क्रोध और घृणा के समान कोई बुराई नहीं; पाँचों स्कंधों के बोझ के समान कोई कष्ट नहीं; निर्वाण की पूर्ण शांति के समान कोई आनंद नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 202 : जुनून जैसी कोई आग नहीं; नफरत जैसी कोई बुराई नहीं; खन्धों के बोझ जैसा कोई दुख नहीं; पूर्ण शांति (अर्थात निर्वाण) से बढ़कर कोई आनंद नहीं।

---

प्रवचन के अंत में दूल्हा और दुल्हन दोनों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक युवा दुल्हन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक गृहस्थ शिष्य के घर में एक युवा दुल्हन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जिस दिन एक युवती का विवाह एक युवक से होने वाला था, उस दिन दुल्हन के माता-पिता ने बुद्ध और उनके अस्सी शिष्यों को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। युवती को घर में भिक्षा भोजन में मदद करते देख दूल्हा अत्यंत उत्साहित हो गया और वह बुद्ध और अन्य भिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ रहा। बुद्ध दूल्हे की भावनाओं को भलीभांति जानते थे और यह भी कि दूल्हा और दुल्हन दोनों के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया था।

अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने यह इच्छा की कि दूल्हा, दुल्हन को न देख पाए। जब युवक को दुल्हन दिखाई देना बंद हो गई, तो वह बुद्ध पर पूर्ण ध्यान दे सका और उसके मन में बुद्ध के प्रति प्रेम और आदर और भी प्रबल हो गया। तब बुद्ध ने युवक से कहा, “हे युवक, प्रेम की आग के समान कोई अग्नि नहीं; क्रोध और घृणा के समान कोई बुराई नहीं; पांचों स्कंधों के बोझ के समान कोई कष्ट नहीं; निर्वाण के समान कोई आनंद नहीं।” प्रवचन के अंत में, दूल्हा और दुल्हन दोनों को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 202)

रागसमो अग्गि नत्थि , दोसासोमो काली नत्थि

खंडसामा दुक्खा नत्थि , नत्थि शांतिपरं सुखं

रागसमो [ रागसम ]: वासना की तरह; अग्गी नत्थि : (वहां) कोई आग नहीं है; दोसासामो [ दोसासामा ]: क्रोध की तरह; काली नत्थि : (कोई अपराध नहीं है); खंडसमा : भौतिक अस्तित्व की तरह; दुक्खा नत्थि : (कोई दर्द नहीं है); शांतिपारां [ शांतिपारा ]: मन की शांति से भी ऊंचा; सुखं नत्थि : कोई खुशी नहीं है

जुनून जैसी कोई आग नहीं। क्रोध जैसा कोई अपराध नहीं। अनेक अनुभवों के व्यक्तिगत समूह जैसा कोई दर्द नहीं। परम शांति से बढ़कर कोई सुख नहीं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 202)

खन्धासमादुक्खा नत्थि : शारीरिक पीड़ा के समान कोई पीड़ा नहीं। अस्तित्व के पाँच समूह या आसक्ति के समूह ( उपादानक्खन्ध ); वैकल्पिक अर्थ: समूह, आसक्ति के विषयों की श्रेणियाँ।

ये वे पाँच पहलू हैं जिनमें बुद्ध ने अस्तित्व की सभी भौतिक और मानसिक घटनाओं का सार प्रस्तुत किया है, और जो अज्ञानी व्यक्ति को उसके अहंकार या व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं, अर्थात्:

रूपाखंड समूह ( रूपाखंड );

वेदना ( बोध );

धारणा ( सन्ना );

मानसिक संरचना ( संखार );
चेतना-समूह ( विञ्ञानखंड )।
“भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल की जो भी भौतिक वस्तुएँ विद्यमान हैं, चाहे वे स्वयं की हों या बाहरी, स्थूल हों या सूक्ष्म, उच्च हों या निम्न, दूर हों या निकट, वे सब भौतिकता समूह में आती हैं। जो भी भावनाएँ, बोध, मानसिक संरचनाएँ और चेतनाएँ विद्यमान हैं, वे सब चेतना समूह में आती हैं।”
एक अन्य विभाजन मन और देह ( नामा-रूप ) के दो समूहों में है , जबकि धम्मसंगनी में सभी घटनाओं को तीन समूहों के रूप में माना जाता है। जिसे व्यक्तिगत अस्तित्व कहा जाता है, वह वास्तव में उन मानसिक और शारीरिक घटनाओं की एक प्रक्रिया मात्र है, एक ऐसी प्रक्रिया जो अनादि काल से चली आ रही है और मृत्यु के बाद भी अकल्पनीय रूप से लंबे समय तक जारी रहेगी। हालांकि, ये पांच समूह न तो अकेले और न ही सामूहिक रूप से किसी स्व-निर्भर वास्तविक अहं-सत्ता या व्यक्तित्व ( अत्ता ) का निर्माण करते हैं, और न ही इनसे अलग कोई ऐसी सत्ता पाई जाती है।
अत: ऐसे अहं-सत्ता या व्यक्तित्व को परम अर्थ में वास्तविक मानना मात्र एक भ्रम सिद्ध होता है।
जब सभी घटक भाग मौजूद हों,
'गाड़ी' पदनाम का प्रयोग किया जाता है;
ठीक इसी प्रकार, जहाँ पाँच समूह मौजूद हैं,
हम सजीव प्राणियों की बात कर रहे हैं।
यहां इस तथ्य पर जोर देना आवश्यक है कि ये पांच समूह, सही मायने में, बुद्ध द्वारा किया गया एक अमूर्त वर्गीकरण मात्र हैं, लेकिन वास्तव में इनका कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि चेतना की किसी भी अवस्था में इन समूहों के केवल एक-एक प्रतिनिधि ही उत्पन्न हो सकते हैं, जो अधिकतर परिवर्तनशील होते हैं। उदाहरण के लिए, चेतना की एक इकाई के साथ केवल एक ही प्रकार की भावना, जैसे कि आनंद या दुःख, जुड़ी हो सकती है, एक से अधिक कभी नहीं। इसी प्रकार, दो भिन्न-भिन्न बोध एक ही क्षण में उत्पन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकार, विभिन्न प्रकार की इंद्रिय-ज्ञान या चेतना में से, एक समय में केवल एक ही मौजूद हो सकती है, उदाहरण के लिए, देखना, सुनना या आंतरिक चेतना। हालांकि, पचास मानसिक संरचनाओं में से, प्रत्येक चेतना अवस्था के साथ कम या अधिक संख्या में संरचनाएं हमेशा जुड़ी रहती हैं।
बौद्ध धर्म पर कुछ लेखकों ने यह नहीं समझा है कि पाँच खंधा केवल वर्गीकरणात्मक समूह हैं, और उन्होंने इन्हें ठोस इकाइयों (ढेरों, बंडलों) के रूप में माना है, जबकि वास्तव में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये समूह कभी भी अपने सभी घटकों की एक साथ समग्रता में विद्यमान नहीं होते। साथ ही, किसी समूह के वे एकल घटक जो किसी भी देह-मन प्रक्रिया में उपस्थित होते हैं, क्षणभंगुर प्रकृति के होते हैं, और यही बात उनके विभिन्न संयोजनों पर भी लागू होती है। भावना, बोध और मानसिक संरचनाएँ चेतना की एक इकाई के केवल विभिन्न पहलू और कार्य हैं। वे चेतना के लिए वैसे ही हैं जैसे सेब के लिए लालिमा, कोमलता और मिठास, और उनका अलग अस्तित्व उतना ही कम है जितना उन गुणों का।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 203

---

(धम्मपद 202) <<<< पिछला ll धम्मपद 203 ll अगला >>>> (धम्मपद 204)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 203 - एक उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
जिघच्छपरमा रोग
संखारपरमा दुःख
etam natva yathabhutam

nibbanam paramam sukham.

---

श्लोक 203 : भूख सबसे बड़ा रोग है, खन्ध सबसे बड़ा रोग है। ज्ञानी, इन्हें इनके वास्तविक स्वरूप में जानकर, निर्वाण, परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

---

एक गृहस्थ शिष्य की कहानी

बुद्ध ने अलावी गाँव में इस पुस्तक का श्लोक (203) एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में कहा।

एक दिन बुद्ध ने दिव्य दर्शन में देखा कि अलावी गाँव में एक गरीब व्यक्ति सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। इसलिए वे उस गाँव गए, जो सावत्थी से तीस योजन दूर था। संयोगवश, उसी दिन उस व्यक्ति का बैल खो गया था। इसलिए वह बैल की तलाश में था। इसी दौरान, अलावी गाँव के एक घर में बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी जा रही थी। भोजन के बाद, लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए तैयार हो गए; लेकिन बुद्ध उस युवक की प्रतीक्षा करते रहे। अंततः, अपना बैल पाकर, वह व्यक्ति दौड़ता हुआ उस घर में आया जहाँ बुद्ध थे। वह व्यक्ति थका हुआ और भूखा था, इसलिए बुद्ध ने दानदाताओं को उसे भोजन देने का निर्देश दिया। जब उस व्यक्ति को भोजन मिल गया, तभी बुद्ध ने प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने चरण-दर-चरण धम्म की व्याख्या की और अंत में चार आर्य सत्यों की ओर अग्रसर हुए। प्रवचन के अंत में उस गृहस्थ शिष्य ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

इसके बाद बुद्ध और उनके शिष्य जेतवन मठ लौट आए। रास्ते में भिक्षुओं ने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि बुद्ध ने प्रवचन देने से पहले उन लोगों को उस युवक को भोजन कराने का निर्देश दिया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! आपकी बात सत्य है, परन्तु आप यह नहीं समझते कि मैं यहाँ तीस योजन की इतनी दूरी तय करके इसलिए आया हूँ क्योंकि मैं जानता था कि वह धम्म ग्रहण करने के लिए उपयुक्त अवस्था में है। यदि वह बहुत भूखा होता, तो भूख की पीड़ा उसे धम्म को पूर्णतः ग्रहण करने से रोक सकती थी। वह व्यक्ति सुबह से अपने बैल की खोज में निकला था, और बहुत थका हुआ और भूखा था। भिक्षुओं, अंततः भूख से अधिक कष्टदायी कोई रोग नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 203 : भूख सबसे बड़ा रोग है, खन्ध सबसे बड़ा रोग है। ज्ञानी, इन्हें इनके वास्तविक स्वरूप में जानकर, निर्वाण, परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक गृहस्थ शिष्य की कहानी

बुद्ध ने यह श्लोक आलवी गांव में एक गृहस्थ शिष्य के संदर्भ में कहा था।

एक दिन बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि आलवी गाँव में एक गरीब व्यक्ति को सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त होगा। अतः वे उस गाँव गए, जो सावत्थी से तीस योजन (लीग) दूर था। संयोगवश, उसी दिन उस व्यक्ति के बैल खो गए। इसलिए वह बैलों की खोज में लगा हुआ था। इसी दौरान, आलवी गाँव के एक घर में बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी जा रही थी। भोजन के बाद, लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने के लिए तैयार हो गए; परन्तु बुद्ध उस युवक की प्रतीक्षा करते रहे। अंततः, अपने बैल पाकर वह व्यक्ति दौड़ता हुआ उस घर में आया जहाँ बुद्ध थे। वह व्यक्ति थका हुआ और भूखा था, इसलिए बुद्ध ने दानदाताओं को उसे भोजन देने का निर्देश दिया। जब उस व्यक्ति को भोजन मिल गया, तभी बुद्ध ने प्रवचन दिया, जिसमें उन्होंने चरण-दर-चरण धम्म की व्याख्या की और अंत में चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में गृहस्थ शिष्य को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

इसके बाद बुद्ध और उनके शिष्य जेतवन मठ लौट आए। रास्ते में भिक्षुओं ने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि बुद्ध ने प्रवचन देने से पहले रुककर उन लोगों को उस युवक को भोजन कराने का निर्देश दिया। उनकी बात सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं! आपकी बात सत्य है, परन्तु आप यह नहीं समझते कि मैं यहाँ तीस योजन की इतनी दूरी तय करके इसलिए आया हूँ क्योंकि मैं जानता था कि वह धम्म ग्रहण करने के लिए उपयुक्त अवस्था में है। यदि वह बहुत भूखा होता, तो भूख की पीड़ा उसे धम्म को पूर्णतः ग्रहण करने से रोक सकती थी। वह व्यक्ति सुबह से अपने बैलों की खोज में निकला था, और बहुत थका हुआ और भूखा था। भिक्षुओं! अंततः, भूख से अधिक कष्टदायी कोई रोग नहीं है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 203)

रोगा जिघच्चा परमा दुख संखारा परमा

एतं यथाभूतं नात्वा निब्बाणं परमं सुखं

रोगा : रोगों में सबसे बुरा; जिगच्छा परमा : भूख सबसे बुरी है; दुःखा : पीड़ाओं में सबसे बुरा; संखारा परमा : इनके घटक सबसे बुरे हैं; एतं : ये; यथाभूतं [ यथाभूत ]: (जब) वास्तविकता से; ञत्वा : समझा जाता है; निर्वाणं [ निब्बान ]: अमरता; परमं सुखं [ सुख ]: सर्वोच्च आनंद है

भूख सबसे गंभीर रोग है। सबसे कष्ट शरीर के सूक्ष्म अंगों में होता है। यदि इस बात को वास्तविकता से समझा जाए, तो निर्वाण ही सर्वोच्च आनंद है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 203)

संखारा परमा दुःख : संखारा के घटक सबसे भीषण पीड़ा हैं। संखारा शब्द के विभिन्न अर्थ होते हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक समझना चाहिए। इसके सबसे अधिक प्रयोग में, संदर्भ के अनुसार, सामान्य शब्द 'निर्माण' का प्रयोग किया जा सकता है। यह शब्द निर्माण की क्रिया, या निर्मित होने की निष्क्रिय अवस्था, या दोनों को संदर्भित कर सकता है।

(1) आश्रित उत्पत्ति के सूत्र ( पटिच्च-समुप्पाद ) की दूसरी कड़ी के रूप में , संस्कार का सक्रिय पहलू है, जो सृजन करता है, और कर्म को दर्शाता है जो शरीर ( काय ), वाणी ( वची ) या मन ( चित्त या मनो ) की लाभकारी या अलाभकारी इच्छा-संबंधी गतिविधि ( चेतना ) है । क्योंकि, इसी अर्थ में, लेखक ने 'कर्म-सृजन' शब्द गढ़ा है। अन्य अंशों में, इसी संदर्भ में, संस्कार को (क) पुण्य कर्म-सृजन ( पुण्याभिसंखार ), (ख) पाप कर्म ( अपुण्याभिसंखार ), (ग) अविचलित ( आनेंजभिसंखार ) के संदर्भ में परिभाषित किया गया है । यह त्रिविध विभाजन अस्तित्व के सभी क्षेत्रों में कर्मिक गतिविधि को समाहित करता है: पुण्य कर्म- सृजन इंद्रिय और सूक्ष्म-भौतिक क्षेत्र तक विस्तारित होते हैं, पापी कर्म केवल इंद्रिय क्षेत्र तक और अविचल केवल अभौतिक क्षेत्र तक।

(2) उपर्युक्त तीन शब्द, काय- , वची- और चित्त (या मनो ), कभी-कभी बिल्कुल अलग अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं, जैसे (क) शारीरिक क्रिया जैसे श्वास लेना और छोड़ना; (ख) मौखिक क्रिया जैसे विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन; और (ग) मानसिक क्रिया जैसे भावना, बोध।

(3) यह अस्तित्व के चौथे समूह ( संखार-क्खन ध) को भी दर्शाता है, और इसमें सभी मानसिक संरचनाएं शामिल हैं, चाहे वे कर्मिक रूप से गठित चेतना से संबंधित हों या नहीं।

(4) यह आगे चलकर किसी भी निर्मित ( संखत ) और सशर्त वस्तु के अर्थ में आता है , और इसमें संसार की सभी वस्तुएँ, अस्तित्व की सभी घटनाएँ शामिल हैं। यह अर्थ प्रसिद्ध वाक्य "सभी रचनाएँ अनित्य हैं... दुख के अधीन हैं" ( सब्बे संखारा अनिच्चा ... दुक्खा ) पर लागू होता है। हालाँकि, उस संदर्भ में, संखारा शब्द और भी व्यापक और सर्वव्यापी शब्द धम्म (वस्तु) के अधीन है; क्योंकि धम्म में अनिर्मित या अशर्त तत्व ( असंखत-धातु ), अर्थात् निर्वाण भी शामिल है (उदाहरण के लिए, सब्बे धम्म अनत्ता में : सभी वस्तुएँ आत्मा रहित हैं)।

संखारा का अर्थ 'इच्छित प्रयास' भी है, उदाहरण के लिए, रोड्स टू पावर ( इद्धि-पाद ) के सूत्र में; ससंखारा- और असंखारा-परिनिब्बायी ( अनगामी ) में; और अभिधम्म के शब्दों असंखारिका और ससंखारिका-चित्त में , अर्थात् बिना प्रयास के - सहज रूप से, और प्रयास के साथ - प्रेरित होकर।

प्रतीत्यसमुत्पाद में, संस्कार न तो अवचेतन है और न ही मात्र एक प्रवृत्ति, बल्कि यह पूर्णतः चेतन और सक्रिय कर्मिक संकल्प है। पांच पंथों के संदर्भ में, मानसिक संरचनाओं ( संस्कार-खंड ) के कुछ ही कारक अवचेतन के सहवर्ती के रूप में उपस्थित होते हैं, परन्तु वे केवल अवचेतन तक ही सीमित नहीं हैं और न ही वे मात्र प्रवृत्तियाँ हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 204

———————————————————————————

(धम्मपद 203) <<<< पिछला || धम्मपद 204 || अगला >>>> (धम्मपद 205)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 204 - पसेनादिकोसल वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
आरोग्यपरम लाभ
संतुत्थिपराम्म धनम
vissasaparama(1) nati
nibbanam paramam sukham.

———————————————————————————

श्लोक 204 : स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, एक विश्वसनीय मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है, निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।

———————————————————————————

1. vissasaparama: vissasa + parama: vissasa का यहाँ अर्थ विश्वास है, जिसे आत्मीयता के रूप में भी समझा जाता है।

———————————————————————————

कोसला के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (204) कहा।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) सुबह का भरपेट भोजन करने के बाद जेतवन मठ गए। कहा जाता है कि उस दिन राजा ने एक चौथाई टोकरी (लगभग आधा बुशेल) चावल मांस की करी के साथ खाए थे; इसलिए बुद्ध के प्रवचन सुनते समय उन्हें बहुत नींद आ रही थी और वे लगातार ऊंघ रहे थे। उन्हें ऊंघते देख बुद्ध ने उन्हें प्रतिदिन थोड़ा कम चावल खाने और धीरे-धीरे मात्रा कम करते हुए न्यूनतम मात्रा का सोलहवाँ भाग तक लाने की सलाह दी। राजा ने ऐसा ही किया और पाया कि कम खाने से वे पतले तो हो गए, लेकिन उन्हें बहुत हल्कापन महसूस हुआ और उनका स्वास्थ्य बहुत बेहतर हो गया। जब उन्होंने बुद्ध को इस बारे में बताया, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "हे राजा! स्वास्थ्य एक बड़ा वरदान है; संतोष एक बड़ा धन है; एक करीबी और भरोसेमंद मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है; निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 204 : स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, एक विश्वसनीय मित्र सबसे अच्छा रिश्तेदार है, निर्वाण सबसे बड़ा आनंद है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसला के राजा पसेनादी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। अपने जीवन के एक निश्चित काल में, राजा पसेनादि कोसल बाल्टी भर-भरकर उबले हुए चावल, और उतनी ही मात्रा में चटनी और करी खाते थे। एक दिन नाश्ता करने के बाद, अधिक खाने से उत्पन्न हुई सुस्ती से उबरने में असमर्थ होकर, वे बुद्ध के दर्शन करने गए और उनके सामने अत्यंत थके हुए रूप में इधर-उधर टहलने लगे। उन्हें नींद आने की तीव्र इच्छा हुई, लेकिन लेटने और शरीर को फैलाने का साहस न होने के कारण, वे एक करवट बैठ गए। तब बुद्ध ने उनसे कहा, “हे महाराज, क्या आप अच्छी तरह से विश्राम किए बिना आए हैं?” “नहीं, पूज्यवर; लेकिन मुझे भोजन करने के बाद हमेशा बहुत कष्ट होता है।”
तब बुद्ध ने उनसे कहा, “महाराज, अधिक खाने से इतना कष्ट होता है।” ऐसा कहकर बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया: “यदि कोई व्यक्ति आलस्य में लिप्त हो जाए, अधिक खाए, सोने में समय व्यतीत करे, और अनाज खाए हुए सूअर की तरह इधर-उधर लोटता रहे, तो ऐसा मूर्ख व्यक्ति बार-बार जन्म लेता रहेगा।” इस श्लोक से राजा को उपदेश देने के बाद बुद्ध ने आगे कहा, “महाराज, भोजन में संयम बरतना चाहिए, क्योंकि संयमित भोजन में सुख है।” और आगे उपदेश देते हुए बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया: “यदि कोई व्यक्ति सदा सचेत रहे, भोजन में संयम बरते, तो उसके कष्ट कम होंगे; वह धीरे-धीरे वृद्ध होगा और अपना जीवन व्यतीत करेगा।”
राजा इस श्लोक को याद नहीं कर पा रहे थे। इसलिए बुद्ध ने पास खड़े राजा के भतीजे, राजकुमार सुदस्सन से कहा, “इस श्लोक को याद कर लो।” सुदस्सन ने बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर, इस श्लोक को याद करने के बाद मुझे क्या करना चाहिए?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “जब राजा भोजन करें, और उबले हुए चावल का अंतिम टुकड़ा उठाने ही वाले हों, तब तुम्हें यह श्लोक पढ़ना है। राजा इसका अर्थ

समझ जाएंगे और तुरंत चावल का वह टुकड़ा फेंक देंगे। जब राजा के अगले भोजन के लिए चावल उबालने का समय हो, तब तुम्हें उतने ही ताजे चावल लाने हैं जितने उबले हुए चावल के दाने उस टुकड़े में थे।" "बहुत अच्छा, हे पूज्यवर," सुदस्सन ने उत्तर दिया। इसलिए, सुबह और शाम, जब राजा भोजन करते थे, तो उनके भतीजे ठीक उसी समय वह श्लोक सुनाते थे जब राजा उबले हुए चावल का आखिरी टुकड़ा खाने वाले होते थे, और फिर राजा के अगले भोजन के लिए उतने ही ताजे चावल लाते थे जितने उबले हुए चावल के दाने राजा द्वारा फेंके गए उबले हुए चावल के टुकड़े में थे। और हर बार जब राजा वह श्लोक सुनते थे, तो वे एक हजार सिक्के दान में दे देते थे। राजा प्रतिदिन एक प्याला उबले हुए चावल खाकर संतुष्ट रहते थे, इससे अधिक कभी नहीं खाते थे। कुछ समय बाद वे प्रसन्न और दुबले-पतले हो गए।

एक दिन राजा बुद्ध को प्रणाम करने गए और उन्हें प्रणाम करके बोले, "हे पूज्यवर, अब मैं प्रसन्न हूँ। मैं फिर से शिकार करने और जंगली पशुओं और घोड़ों को पकड़ने में सक्षम हूँ। मैं अपने भतीजे से झगड़ा करता रहता था। लेकिन हाल ही में मैंने अपनी पुत्री, राजकुमारी वजिरा, का विवाह अपने भतीजे से करवाया है। मैंने उसे यह गाँव भी दे दिया है ताकि वह स्नान कर सके। मेरे भतीजे से मेरा झगड़ा समाप्त हो गया है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ। कुछ दिन पहले राजपरिवार का एक कीमती पत्थर खो गया था; वह अभी हाल ही में मुझे वापस मिला है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ। आपके शिष्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने की इच्छा से मैंने आपके एक रिश्तेदार की पुत्री को अपने घर में रखा है और इसी कारण मैं प्रसन्न हूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे महाराज, स्वास्थ्य सबसे बड़ा वरदान है, जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उससे संतोष सबसे बड़ा धन है, और विश्वास सबसे अच्छा रिश्तेदार है। लेकिन निर्वाण से बढ़कर कोई सुख नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 204)

लाभ आरोग्यपरमा धनं सन्तुति परमं
नाति विश्सपरायणं निब्बाणं परमं सुखं

लाभ : सभी प्राप्तियों में सर्वोपरि; आरोग्यपरमा : स्वास्थ्य सर्वोपरि; धनं [ धन ]: सभी धन में सर्वोपरि; संतोष परमं [ परमा ]: सुख सर्वोपरि; ञाती : सभी संबंधों में सर्वोपरि; विश्वासयोग्य लोग सर्वोपरि; निर्वाण [ निब्बान ]: अमरता; परमं सुखं [ सुख ]: परम आनंद है

प्राप्तियों में सर्वोपरि है अच्छा स्वास्थ्य। धन में सर्वोपरि है मन की शांति। सगे-संबंधियों में सबसे विश्वसनीय और सर्वोच्च है निर्वाण।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 204)

vissāsā paramā ñātī : भरोसेमंद ही सबसे बड़े रिश्तेदार होते हैं। रिश्तेदार आम तौर पर सबसे भरोसेमंद होते हैं। रिश्ते भरोसे की नींव पर टिके होते हैं। पारंपरिक टीका कहती है: Mātā vā hotu pitā vā tena saddhim vissāso natthi , yena aññatakena pana saddhim vissāso atthi so asambandhopi paramo uttamo ñātī . यदि किसी को अपने माता-पिता या अन्य रिश्तेदारों पर भी भरोसा नहीं है, तो वे वास्तव में रिश्तेदार नहीं हैं। लेकिन, दूसरी ओर, यदि कोई किसी ऐसे व्यक्ति पर भरोसा कर सकता है जो रिश्तेदार न हो, तो वह वास्तव में एक बड़ा रिश्तेदार है। भरोसे का अर्थ है सहमति, घनिष्ठता और विश्वास। कुछ लोगों के इरादों को समझना कभी-कभी मुश्किल होता है, और कुछ लोग दुष्ट स्वभाव के होते हैं, इसलिए ऐसे लोगों पर भरोसा करना—चाहे वे रिश्तेदार हों या अजनबी—दु:खद परिणाम ला सकता है। इस प्रकार, ऐसा व्यक्ति मिलना मुश्किल है जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सके। सच्चे और वास्तविक भरोसे से ही अच्छे परिणाम मिलते हैं। तीन चीजें हैं जो मनुष्य के पतन का कारण बनती हैं: लोभ प्रमाद विश्वास पुरुषो नाशयते त्रिभि : तस्मा लोभो नकार्तव्यं प्रमादो न विश्वासेत् । मनुष्य के पतन का कारण बनने वाली तीन चीजें हैं: कंजूसी, आलस्य और गलत विश्वास।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 205

---

(धम्मपद204) <<<< पिछला|| धम्मपद205 ||अगला >>>> (धम्मपद 206, 207 और 208)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 205 - तिसत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Pavivekarasam pitva
रसम उपासमस्स च
niddaro hoti nippapo
धम्मपितिरसम पिवम.

---

श्लोक 205 : एकांत का स्वाद और निर्वाण की पूर्ण शांति का स्वाद चखने के बाद, जो धम्म के सार के आनंद में डूबा रहता है, वह भय और बुराई से मुक्त हो जाता है।

---

थेरा टिस्सा की कहानी
बुद्ध ने वैशाली में थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (205) कहा।
जब बुद्ध ने घोषणा की कि चार महीने में वे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो कई पुथुज्जन भिक्षु चिंतित हो गए। वे असमंजस में थे और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें, इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। लेकिन थेरा तिस्सा ने यह निश्चय कर लिया था कि वे बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त कर लेंगे, इसलिए वे बुद्ध के पास नहीं गए, बल्कि ध्यान साधना के लिए एकांत स्थान पर चले गए। अन्य भिक्षुओं को उनका यह व्यवहार समझ नहीं आया, इसलिए वे उन्हें बुद्ध के पास ले गए और कहा, "आदरणीय, ऐसा प्रतीत होता है कि यह भिक्षु आपका आदर नहीं करता; यह आपके दर्शन करने के बजाय एकांत में ही रहता है।" तब थेरा तिस्सा ने उन्हें समझाया कि वे बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहे थे, और यही कारण था कि वे बुद्ध से मिलने नहीं आए थे।
उनकी व्याख्या सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! जो मुझसे प्रेम और आदर करते हैं, उन्हें तिस्सा के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती अर्पित करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। आप मुझे केवल लोकउत्तरा धम्म, अर्थात् अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करके ही प्रणाम कर रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 205 : एकांत का स्वाद और निर्वाण की पूर्ण शांति का स्वाद चखने के बाद, जो धम्म के सार के आनंद में डूबा रहता है, वह भय और बुराई से मुक्त हो जाता है।

---

प्रवचन के अंत में थेरा तिस्सा ने सोतापत्ति फल प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय तिस्सा की कहानी
बुद्ध ने यह श्लोक पूज्य तिस्सा के संदर्भ में कहा था। जब बुद्ध ने घोषणा की कि चार महीने में उन्हें परिनिर्वाण (पूर्ण निर्वाण) प्राप्त हो जाएगा, तो कई सांसारिक भिक्षु चिंतित हो गए। वे असमंजस में थे और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें, इसलिए वे बुद्ध के निकट ही रहे। लेकिन पूज्य तिस्सा ने यह निश्चय कर लिया था कि वे बुद्ध के जीवनकाल में ही अर्हतत्व प्राप्त करेंगे, इसलिए वे उनके पास नहीं गए, बल्कि ध्यान साधना के लिए एक एकांत स्थान पर चले गए।
अन्य भिक्षुओं को उसका व्यवहार समझ नहीं आया, इसलिए वे उसे बुद्ध के पास ले गए और बोले, “आदरणीय! यह भिक्षु आपका आदर-भाव नहीं करता; यह आपके दर्शन करने के बजाय एकांत में ही रहता है।” तब आदरणीय तिस्सा ने उन्हें समझाया कि बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से पहले ही वह अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहा था, और यही एकमात्र कारण था कि वह बुद्ध से मिलने नहीं आया था।

उनकी व्याख्या सुनकर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! जो मुझसे प्रेम और आदर करते हैं, उन्हें तिस्सा के समान व्यवहार करना चाहिए। केवल फूल, इत्र और अगरबत्ती अर्पित करने से आप मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। आप मुझे केवल लोकउत्तरा धम्म , जैसे कि अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करके ही प्रणाम कर रहे हैं।" प्रवचन के अंत में, पूज्य तिस्सा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 205)

पविवेकरसं उपसमस्सा रसं च पीत्वा

धम्मपीतिरसं पिबं निद्दरो निप्पापो होति

पविवेकरसाः [ पविवेकरसा ]: एकांत का स्वाद; उपसमस्सा रसं च : दोषों की अनुपस्थिति से उत्पन्न शांति का स्वाद भी; पीतवा : स्वाद चखकर; धम्मपीतिरसं [ धम्मपीतिरस ]: धम्म के आनंद की मिठास; पिबां [ पिबा ]: चखना; निद्दारो [ निद्दारा ]: अप्रभावित; निप्पापो [ निप्पापा ]: निष्कलंक; होती : हो जाता है

उन्होंने एकांत का आनंद चखा है। उन्होंने दोषों की अनुपस्थिति से उत्पन्न शांति का अनुभव भी किया है। यथार्थवादी जागरूकता के आनंद की मिठास का अनुभव करते हुए वे दोषों से अप्रभावित और बुराई से रहित हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 205)

परिनिर्वाण : परम निर्वाण। यह श्लोक बुद्ध द्वारा अपने महान निधन की घोषणा के अवसर पर उच्चारित किया गया था। बुद्ध के निधन—महान निधन ( परिनिर्वाण )—का बौद्ध साहित्य में विस्तृत वर्णन किया गया है। पूज्य सुभद्दा, जो एक अरहत थे, बुद्ध के अंतिम व्यक्तिगत अनुयायी थे। पूज्य आनंद यह जानना चाहते थे कि बुद्ध के शरीर का क्या किया जाए।

बुद्ध ने उत्तर दिया, "मेरे अवशेषों का सम्मान करने में स्वयं को संलग्न न करो। अपने कल्याण (अर्थात् अर्हतत्व) की चिंता करो। सचेत रहो, परिश्रम करो और अपने हित के लिए तत्पर रहो। बुद्धिमान योद्धा, बुद्धिमान ब्राह्मण और बुद्धिमान गृहस्थ हैं जो बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे मेरे अवशेषों का सम्मान करेंगे।"

इन वार्ताओं के समापन पर पूज्य आनंद एक तरफ जाकर रोने लगे और सोचने लगे, 'हाय! मैं अभी भी एक विद्यार्थी हूँ और मुझे अभी बहुत कुछ सीखना है। लेकिन मेरे गुरु अंततः इस दुनिया से चले जाएँगे। वही जो मेरे हमदर्द हैं।' बुद्ध ने उनकी अनुपस्थिति देखकर उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "बस करो, हे आनंद! शोक मत करो, रोओ मत। क्या मैंने तुम्हें पहले ही नहीं बताया है कि हमें अपने आप को उन सभी चीजों से अलग करना होगा जो हमें प्रिय और सुखद हैं?" "हे आनंद, तुमने बहुत पुण्य कर्म किए हैं। शीघ्र ही तुम विकारों से मुक्त हो जाओ।"

इसके बाद बुद्ध ने पूज्य आनंद को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके प्रमुख गुणों का वर्णन किया। पूज्य आनंद को विभिन्न प्रकार से उपदेश देने के बाद, बुद्ध ने उन्हें कुशीना में प्रवेश करने और मल्ल समुदाय को अपनी आसन्न मृत्यु की सूचना देने का आदेश दिया। मल्ल समुदाय को सूचना दी गई और वे अपनी पत्नियों, युवकों और युवतियों के साथ रोते हुए बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि देने आए।

तब बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, हो सकता है तुम ऐसा कहो: 'गुरु के बिना ही परम शिक्षा संभव है! हमारे लिए कोई गुरु नहीं है...' नहीं, आनंद, तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। आनंद, मैंने जो भी सिद्धांत और अनुशासन सिखाए और प्रचारित किए हैं, वे मेरे जाने के बाद तुम्हारे गुरु होंगे। हे आनंद, यदि संघ चाहे तो मेरी मृत्यु के बाद लघु और गौण नियमों को निरस्त कर दे।" इस संदर्भ में बुद्ध ने आज्ञावाचक रूप के बजाय संभाव्य रूप का प्रयोग किया है। यदि उनकी इच्छा होती कि गौण नियमों को निरस्त किया जाए, तो वे आज्ञावाचक रूप का प्रयोग कर सकते थे। टीकाकार के अनुसार, बुद्ध ने यह पूर्वाभास कर लिया था कि प्रथम सभा के अध्यक्ष पूज्य कस्सपा संघ की सहमति से किसी भी नियम को निरस्त नहीं करेंगे — इसीलिए उन्होंने संभाव्य रूप का प्रयोग किया है। चूंकि बुद्ध ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया कि ये छोटे नियम क्या थे और चूंकि अरहत भी इनके बारे में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सके, इसलिए उन्होंने किसी भी नियम को बदलने के बजाय सभी नियमों को यथावत बनाए रखना बेहतर समझा।

फिर बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, "हे शिष्यों, यदि बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग या विधि के विषय में कोई संदेह हो, तो मुझसे प्रश्न पूछो, और बाद में यह सोचकर पश्चाताप मत करो कि 'हम गुरु के सामने उपस्थित थे, फिर भी उनकी उपस्थिति में उनसे प्रश्न नहीं पूछ सके।'" जब उन्होंने ऐसा कहा तो शिष्य चुप रहे। दूसरी और तीसरी बार भी बुद्ध ने शिष्यों को इसी प्रकार संबोधित किया। और दूसरी और तीसरी बार भी शिष्य चुप रहे। फिर बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, "शायद गुरु के प्रति आदर के कारण ही तुम मुझसे प्रश्न नहीं पूछते। हे शिष्यों, अपने किसी मित्र से कहो कि वह दूसरे को बता दे।" फिर भी शिष्य चुप रहे।

तब पूज्य आनंद ने बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे भगवान! अद्‌भुत! हे भगवान! मैं शिष्यों के इस समूह से अत्यंत प्रसन्न हूँ। एक भी शिष्य ऐसा नहीं है जिसे बुद्ध, धम्म, संघ, मार्ग और विधि के विषय में कोई संदेह या उलझन हो।" "आनंद, आप इस विषय में श्रद्धापूर्वक बोल रहे हैं। तथागत को ज्ञात है कि शिष्यों के इस समूह में एक भी शिष्य ऐसा नहीं है जिसे सिद्धांत, संघ, मार्ग और विधि के विषय में कोई संदेह या उलझन हो। हे आनंद, इन पाँच सौ शिष्यों में से जो अंतिम है, वह सफलता की राह पर चलने वाला है, पतन से अछूता है, परन्तु निश्चित रूप से ज्ञान प्राप्ति के लिए नियत है।"

अंत में, बुद्ध ने शिष्यों को संबोधित करते हुए अपना अंतिम उपदेश दिया: "हे शिष्यों, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। लगन से प्रयास करो। ( vayadhammā samkhārā appamādena sampādetha )।" ये बुद्ध के अंतिम शब्द थे। बुद्ध ने प्रथम समाधि ( झान ) प्राप्त की। इससे निकलकर उन्होंने द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ समाधि प्राप्त की। चतुर्थ समाधि से निकलकर उन्होंने अनंत आकाश ( आकाशणंचायतन ) के क्षेत्र को प्राप्त किया। फिर बुद्ध ने बोध और संवेदनाओं के अंत से निकलकर न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने शून्यता के क्षेत्र को प्राप्त किया। इससे निकलकर उन्होंने अनंतता के क्षेत्र को प्राप्त किया। चेतना की अवस्था से निकलकर, उन्होंने अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने चौथी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने तीसरी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने दूसरी परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने पहली परमानंद अवस्था को प्राप्त किया। उससे निकलकर, उन्होंने परिनिर्वाण को प्राप्त किया ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद >> श्लोक 206, 207, 208

———————————————————————

(धम्मपद 205) <<<< पिछला || धम्मपद 206, 207 और 208 || अगला >>>> (धम्मपद 209, 210 और 211)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 206, 207 और 208 - सक्का वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

साहू दस्सनामारियानम
sannivaso sada sukho
अदस्सनेना बलनम
niccameva sukhi siya.
Balasangatacari hi
दिघमद्धना सोकाती
dukkho balehi samvaso
अमिततेनेवा सब्बादा
dhiro ca sukhasamvaso
natinam va samagamo.
तस्मा ही
धिरांका पन्नंका बहुसुतांका
धोरयहसीलं वातवंतमरियम्
तम तदिसं सप्पुरिसं सुमेधम्
भजेथा नक्खट्टपथम्वा कैंडिमा।

———————————————————————

श्लोक 206 : श्रेष्ठ व्यक्तियों (आरियों) को देखना अच्छा है; उनके साथ रहना हमेशा सुखद होता है; मूर्खों को न देखना भी हमेशा सुखद होता है।

———————————————————————

श्लोक 207 : मूर्खों की संगति में चलने वाले को लंबे समय तक दुःख सहना पड़ता है। मूर्खों की संगति सदा कष्टदायी होती है, मानो शत्रु के साथ रहना हो; बुद्धिमानों की संगति सुखदायी होती है, मानो सगे संबंधियों के साथ रहना हो।

———————————————————————

श्लोक 208 : इसलिए किसी को दृढ़ निश्चयी, बुद्धिमान, विद्वान, दृढ़ निश्चयी और कर्तव्यनिष्ठ आर्य का अनुसरण करना चाहिए; ऐसे गुणी और बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, जैसे चंद्रमा तारों के पथ का अनुसरण करता है।

---

सक्का (इंद्र, देवताओं/देवदूतों के राजा) की कहानी

वेलुवा गाँव में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (206), (207) और (208) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का के संदर्भ में है।

बुद्ध के परिनिर्वाण प्राप्त करने से लगभग दस माह पहले, वे वैशाली के पास वेलुवा गाँव में वर्षा ऋतु (तीन महीने) बिता रहे थे। वहाँ रहते हुए उन्हें पेचिश हो गई। जब सक्का को पता चला कि बुद्ध बीमार हैं, तो वह वेलुवा गाँव आया ताकि वह स्वयं उनकी सेवा कर सके। बुद्ध ने उसे कहा कि वह अपने स्वास्थ्य की चिंता न करे, क्योंकि उसके आस-पास कई भिक्षु हैं; लेकिन सक्का ने उनकी बात नहीं मानी और बुद्ध के ठीक होने तक उनकी सेवा करता रहा।

भिक्षु यह देखकर आश्चर्यचकित और विस्मयचकित हो गए कि स्वयं सक्का बुद्ध की सेवा में उपस्थित हैं। जब बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! सक्का का मेरे प्रति प्रेम और भक्ति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। एक बार जब पूर्व सक्का वृद्ध हो रहे थे और मृत्यु के निकट थे, तब वे मुझसे मिलने आए। तब मैंने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। धर्म सुनते हुए उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया; फिर उनका देहांत हो गया और वे वर्तमान सक्का के रूप में पुनर्जन्म लिए। यह सब उनके साथ केवल इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने मेरे द्वारा उपदेशित धर्म को सुना। वास्तव में, भिक्षुओं, आर्यों के दर्शन करना सुखद है; उनके साथ रहना सुखदायक है; मूर्खों के साथ रहना वास्तव में कष्टदायक है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 206 : श्रेष्ठ व्यक्तियों (आरियों) को देखना अच्छा है; उनके साथ रहना हमेशा सुखद होता है; मूर्खों को न देखना भी हमेशा सुखद होता है।

---

श्लोक 207 : मूर्खों की संगति में चलने वाले को लंबे समय तक दुःख सहना पड़ता है। मूर्खों की संगति सदा कष्टदायी होती है, मानो शत्रु के साथ रहना हो; बुद्धिमानों की संगति सुखदायी होती है, मानो सगे संबंधियों के साथ रहना हो।

---

श्लोक 208 : इसलिए किसी को दृढ़ निश्चयी, बुद्धिमान, विद्वान, दृढ़ निश्चयी और कर्तव्यनिष्ठ आर्य का अनुसरण करना चाहिए; ऐसे गुणी और बुद्धिमान व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, जैसे चंद्रमा तारों के पथ का अनुसरण करता है।

---

पंद्रहवें अध्याय का अंत: सुख (सुखवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सक्का की कहानी

वेलुवना गांव में निवास करते समय, बुद्ध ने देवताओं के प्रमुख सक्का के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

जब बुद्ध का जीवन समाप्त होने वाला था और वे पेचिश से पीड़ित थे, तब देवताओं के राजा सक्का को इसका आभास हुआ और उन्होंने मन ही मन सोचा, “बुद्ध के पास जाना और उनकी बीमारी में उनकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है।” तदनुसार, उन्होंने अपना शरीर, जो पौने मील लंबा था, एक तरफ रख दिया, बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और अपने हाथों से बुद्ध के चरणों को मला। बुद्ध ने उनसे कहा, “यह कौन है?” “मैं हूं, आदरणीय सक्का।” “आप यहां क्यों आए हैं?” “आपकी बीमारी में आपकी सेवा करने के लिए, आदरणीय।” “सक्का, देवताओं के लिए मनुष्यों की गंध, सौ मील की दूरी से भी, गले से बंधे मुर्दे की गंध के समान होती है; यहां से चले जाओ, क्योंकि मेरे पास भिक्षु हैं जो मेरी बीमारी में मेरी सेवा करेंगे।” “आदरणीय, चौरासी हजार मील की दूरी से भी मैंने आपकी अच्छाई की सुगंध महसूस की, इसलिए मैं यहां आया हूं; मैं ही आपकी बीमारी में आपकी सेवा करूंगा।” सक्का ने किसी और को बुद्ध और उनके मल से भरे पात्र को छूने तक की अनुमति नहीं दी; बल्कि उन्होंने स्वयं उस पात्र को अपने सिर पर उठाकर बाहर ले गए। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने मुंह की मांसपेशियों को जरा भी सिकोड़े बिना उसे बाहर ले गए, मानो वे इत्र से भरा कोई पात्र ढो रहे हों। इस प्रकार सक्का ने बुद्ध की सेवा की। वे तभी गए जब बुद्ध को अधिक आराम महसूस हुआ।

भिक्षुओं ने चर्चा शुरू करते हुए कहा, “अरे, बुद्ध के प्रति सक्का का स्नेह कितना महान होगा! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि सक्का ने अपनी दिव्य महिमा को त्यागकर बुद्ध की बीमारी में उनकी सेवा की! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि उसने बुद्ध के शरीर के मल से भरे

पात्र को अपने सिर पर इस प्रकार उठाया, मानो वह इत्र से भरा पात्र उठा रहा हो, और उसके मुँह की मांसपेशियों में जरा भी संकुचन नहीं हुआ!" उनकी बातें सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, तुम क्या कहते हो? यह बिलकुल भी आश्चर्य की बात नहीं है कि देवताओं के राजा सक्का मेरे प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं। क्योंकि मेरे कारण ही देवताओं के राजा सक्का ने वृद्ध सक्का का रूप त्याग दिया, धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और युवा सक्का का रूप धारण किया। एक बार जब वे मृत्यु के भय से भयभीत होकर मेरे पास आए, उनके आगे-आगे दिव्य संगीतकार पंचसिखा थे, और वे देवताओं के बीच इंद्राशाला गुफा में बैठ गए, तो मैंने उनसे कहा, "वासव, जो भी प्रश्न तुम्हारे मन में हो, मुझसे पूछो; मैं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर दूंगा।" उनके कष्ट को दूर करने के बाद, मैंने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में चौदह अरब जीवों ने धर्म को समझ लिया, और स्वयं सक्का ने भी, वहीं बैठे-बैठे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया और युवा सक्का बन गए।" इसलिए मैं उसका बहुत बड़ा सहायक रहा हूँ, और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वह मेरे प्रति गहरा स्नेह रखता है। क्योंकि, भिक्षुओं, कुलीनों को देखना सुखद होता है, और उनके साथ एक ही स्थान पर रहना भी सुखद होता है; परन्तु मूर्खों से कोई भी संबंध रखना कष्टदायी होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 206)

अरियाणं दस्साणं साधु सन्निवासो सदा सुखो
बलानां अडस्सनेन निक्कं एव सुखी सिया

अरियानां [ अरियाना ]: महान प्राणियों का; दासानां [ दासाना ]: दृष्टि; साधु : (है) अच्छा; सन्निवासो [ सन्निवास ]: उनके साथ जुड़ना; सदा : (है) सदैव; सुखो [ सुखा ]: खुश; बालानां [ बालाना ]: अज्ञानी; अदसानेना : नहीं देख रहा; निक्कं एव : सदैव; सुखी सिया : सुख के लिए अनुकूल है

नेक लोगों को देखना अच्छा होता है। उनके साथ रहना हमेशा सुखदायी होता है। अज्ञानी लोगों को न देखना हमेशा सुख देता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 207)

हि बालसंगतचारि दीघं अद्धानं सोचति
बलेहि संवासो अमितेन इव सब्दा दुक्खो
धीरो च नातिनां समागमो इव सुख संवासो

ही : यह सच है; बालसंगतचारी : जो अज्ञानी लोगों की घनिष्ठ संगति में रहता है; दीघं अधानं [ अधान ]: लंबे समय तक; सोचति : पछताता है (दुखी होता है); बालेहि संवासो [ संवास ]: अज्ञानी लोगों के साथ संगति करना; अमित्तेन इव सब्बादा दुःखो [ दुक्खा ]: शत्रु के साथ रहने जितना कष्टदायी होता है; धीरो च : वास्तव में बुद्धिमानों के साथ; ञातीनं समागमो इव : रिश्तेदारों की गर्मजोशी भरी संगति के समान; सुख संवासो [ संवास ]: सुखदायी मिलन होता है

अज्ञानियों की संगति में रहने वाला व्यक्ति लंबे समय तक दुःख भोगता रहता है। अज्ञानियों के साथ रहना शत्रुओं की संगति में रहने के समान है — इससे हमेशा दुःख ही प्राप्त होता है। वहीं, बुद्धिमानों की संगति में रहना अपने सगे-संबंधियों से मिलने के समान है — इससे हमेशा सुख ही प्राप्त होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 208)

तस्मा हि , धीरणं च पन्नं च बहुसुतं च धोरायहसीलं वतवंतं अरियं
सुमेधं तदिसं तं सप्पुरिसं कैंडिमा नक्खट्ट पथं इव भजेथा

तस्मा ही : इसलिए; धीरं च : बुद्धिमान; पन्नां च : ज्ञान से युक्त; बहुसुतं च : सुशिक्षित; धोरायहसीलं [ धोरायहसील ]: शिक्षा का सावधानीपूर्वक अभ्यास करने वाले; वातवन्तं [ वातवन्त ]: आध्यात्मिक दिनचर्या का पालन करने में निपुण; अरियां [ अरिया ]: श्रेष्ठ; सुमेधं [ सुमेध ]: विवेकशील; तादिसं [ तादिसा ]: उस प्रकार का; तं सप्पुरिसं [ सप्पुरिस ]: गुणी व्यक्ति; चन्दिमा इव : चंद्रमा के समान; नक्खत्त पथं [ पथ ]: आकाश से संगति करने वाला—तारों का पथ; भजेत : (तुम्हें) संगति करनी चाहिए

चंद्रमा तारों के पथ पर चलता है। ठीक उसी प्रकार, मनुष्य को ऐसे नेक व्यक्तियों की संगति में रहना चाहिए जो स्थिर स्वभाव के हों, गहन ज्ञान से परिपूर्ण हों, अत्यधिक विद्वान हों, निरंतर प्रयास करने में सक्षम हों, कर्तव्यनिष्ठ हों, कुलीन हों और उच्च कोटि के मनुष्य हों।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 206-208)

बुद्ध का रोग : ये तीन श्लोक बुद्ध के अंतिम दिनों का वर्णन करते हैं। जब बुद्ध बीमार थे, तब सक्का स्वर्ग से उनकी देखभाल करने आए थे। बुद्ध के रोग, जिसके कारण उनका अंत हुआ, का बौद्ध साहित्य में विस्तृत वर्णन मिलता है। बुद्ध एक असाधारण व्यक्तित्व थे। फिर भी वे नश्वर थे, सभी प्राणियों की तरह रोग और क्षय के अधीन थे। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि वे अस्सी वर्ष की आयु में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे। अपनी विनम्रता के कारण उन्होंने अपने अंतिम प्राण सावत्थी या राजगृह जैसे प्रसिद्ध शहरों में नहीं, जहाँ उनका केंद्र था, बल्कि कुसिनारा जैसे एक दूरस्थ और महत्वहीन गाँव में धारण करने का निर्णय लिया।

यहां बुद्ध के निधन का विस्तृत विवरण दिया गया है।

बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, ककुधा नदी में उतरे, उसका जल पिया और वहाँ स्नान किया। नदी पार करने के बाद, वे आम के बाग में गए और पूज्य चुंडा से बात की। पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए, बुद्ध ने कहा कि चुंडा को इस बात का कोई दुःख नहीं होना चाहिए कि उनके द्वारा अर्पित भोजन ग्रहण करने के बाद बुद्ध बीमार पड़ गए। बुद्ध भिक्षुओं के साथ हिरण्यवती नदी के उस पार कुसिनारा के मल्लों के साल वन में आए। वहाँ बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, "मेरे लिए उत्तर दिशा की ओर मुख करके दो साल वृक्षों के बीच एक पलंग तैयार कीजिए। मैं थक गया हूँ और लेटना चाहता हूँ।"

वहाँ तैयार किए गए पलंग पर बुद्ध एकाग्र मन से दाहिनी ओर सिंह मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे पर टिका हुआ था। उस समय जुड़वां साल के वृक्ष असमय ही पूरी तरह खिले हुए थे, और बुद्ध का शरीर श्रद्धापूर्वक गिरे फूलों से ढका हुआ था। ऊपर से दिव्य मंदार के फूल गिर रहे थे। स्वर्ग से दिव्य चंदन का चूर्ण बरस रहा था। इन सभी ने श्रद्धापूर्वक बुद्ध के शरीर को ढक लिया था। दिव्य संगीत वातावरण में गूंज रहा था। बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "हे आनंद, ये सभी फूल, चंदन का चूर्ण और दिव्य संगीत मुझे श्रद्धापूर्वक अर्पित किए गए हैं। परन्तु केवल इनसे श्रद्धा नहीं अर्पित की जा सकती। यदि कोई भिक्षु या भिक्षुणी या कोई पुरुष या स्त्री गृहस्थ शिष्य मेरे उपदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करे और उनका अनुसरण करे, तो वह मुझे उचित आदर देता है; वह मुझे उचित सम्मान देता है; और यही मेरे लिए सर्वोच्च अर्पण है। अतः, आनंद, तुम्हें मेरे उपदेशों के अनुसार कार्य करना चाहिए और सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए, और इसे इसी प्रकार सिखाया जाना चाहिए।"

अब पूज्य उपवान बुद्ध के सामने खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। बुद्ध को उनका वहाँ खड़े रहना पसंद नहीं आया और उन्होंने उन्हें एक तरफ जाने को कहा। पूज्य आनंद जानते थे कि पूज्य उपवान बुद्ध के पुराने सेवक थे और उन्हें समझ नहीं आया कि उन्हें एक तरफ जाने के लिए क्यों कहा गया। इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उस भिक्षु को एक तरफ जाने के लिए क्यों कहा गया। बुद्ध ने समझाया कि उस समय मल्ल वंश के साल वन के चारों ओर बारह मील की दूरी तक दिव्य प्राणी खड़े थे, जहाँ एक सुई गिरने की भी जगह नहीं थी, और वे इस बात का कुंठा कर रहे थे कि वे बुद्ध को उनके अंतिम क्षणों में नहीं देख पा रहे थे क्योंकि वे एक महान भिक्षु से ढके हुए थे। बुद्ध ने बताया कि सांसारिक देवता उनके देहांत से कितने दुखी थे, लेकिन जो देवता आसक्ति से मुक्त और सचेत थे, उन्होंने इस विचार से स्वयं को सांत्वना दी कि सभी समूह क्षणभंगुर हैं।

बुद्ध ने पूज्य आनंद को फिर संबोधित करते हुए कहा, "हे आनंद, ये चार स्थान हैं जिनका सच्चे अनुयायी को श्रद्धापूर्वक दर्शन करना चाहिए। ये स्थान हैं बुद्ध का जन्मस्थान, बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति का स्थान, धर्म के चक्र का आरंभ और बुद्ध के परलोक का स्थान। इन स्थानों की तीर्थयात्रा के दौरान प्राण त्यागने वाले लोग पुण्यवत जन्म लेंगे।" पूज्य आनंद के उत्तर में बुद्ध ने कहा कि बुद्ध का अंतिम संस्कार एक विश्व सम्राट के समान होना चाहिए और बुद्ध के सम्मान में चारों मार्गों के संगम पर एक स्तूप स्थापित किया जाना चाहिए। बुद्ध ने यह भी कहा कि चार ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी स्मृति में स्तूप स्थापित किए जाने चाहिए, वे हैं बुद्ध, पच्चेक बुद्ध, बुद्ध के शिष्य और विश्व सम्राट।

आदरणीय आनंद की यह इच्छा थी कि बुद्ध का निधन कुसिनारा जैसे छोटे और साधारण नगर में नहीं, बल्कि चंपा जैसे महान नगर में हो। राजगृह ने बताया कि कुसिनारा एक महान नगर था जिसका लंबा इतिहास था, और उन्होंने आदरणीय आनंद से कुसिनारा के मल्ल राजकुमारों को बुद्ध के आसन्न निधन की सूचना देने का अनुरोध किया। तदनुसार, मल्ल राजकुमारों को उनके नगर भवन में यह सूचना दी गई। मल्ल राजकुमार अत्यंत व्यथित अवस्था में साल वन में आए और रात्रि के पहले पहर में बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत हुए।

ठीक इसी समय, सुभद्ध नाम के एक भ्रमणशील तपस्वी बुद्ध से एक विशेष विषय पर स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए मिलना चाहते थे, लेकिन पूज्य आनंद ने उन्हें तीन बार प्रवेश देने से इनकार कर दिया। बुद्ध ने उनकी बातचीत सुन ली और उनका स्वागत किया। वे जानना चाहते थे कि क्या पूर्ण कस्सपा जैसे छह धर्मगुरु सही मार्ग पर हैं। बुद्ध ने कहा कि केवल वही लोग मोक्ष के सही मार्ग पर हैं जो उनके द्वारा दिखाए गए अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करते हैं। सुभद्ध बुद्ध के शिष्य बनना चाहते थे। तदनुसार, उन्हें बुद्ध के अंतिम शिष्य के रूप में स्वीकार किया गया और वे एक दीक्षित व्यक्ति बन गए। भिक्षु समुदाय को आगे सलाह देते हुए, बुद्ध ने कहा कि भविष्य में, युवा भिक्षुओं को अपने बड़ों को उनके नाम या गोत्र के नाम से या मित्र कहकर संबोधित नहीं करना चाहिए, बल्कि पूज्य या आदरणीय महोदय कहकर संबोधित करना चाहिए। हालांकि, बड़े भिक्षु युवा भिक्षुओं को मित्र या गोत्र के नाम से संबोधित कर सकते हैं।

बुद्ध ने आगे कहा, "यदि आप में से किसी को भी बुद्ध, उनकी शिक्षा, भिक्षु समुदाय, मार्ग या साधना के बारे में कोई संदेह या अनिश्चितता हो, तो आप अभी स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते हैं। बाद में यह मत कहना कि आप बुद्ध के समक्ष उपस्थित थे।" यद्यपि बुद्ध ने ऐसा तीन बार कहा, फिर भी कोई प्रश्न नहीं पूछा गया, और पूज्य आनंद ने गुरु को उनके प्रति अपने अटूट विश्वास का आश्वासन दिया। बुद्ध ने कहा कि उन पाँच सौ भिक्षुओं में से अंतिम भिक्षु ने भी सोतापत्ति का मार्ग प्राप्त कर लिया था और उसे मोक्ष का पूरा विश्वास था।

तब बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने अंतिम शब्द कहे; "हे भिक्षुओं, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। सभी वस्तुएँ नश्वर हैं। अपने उद्धार के लिए पूरी लगन से प्रयास करो।"

बुद्ध ने मन की अनेक अवस्थाओं में प्रवेश किया और समाधि की चौथी अवस्था से बाहर आने के बाद उनका देहांत हो गया। तुरंत ही एक भयानक भूकंप आया और आकाश से ज़ोरदार गर्जना हुई।

जब बुद्ध का देहांत हुआ, तब पूज्य अनुराधा ने कहा: "स्थिर मन वाले, भावहीन बुद्ध का श्वास-श्वास थम गया है और वे परम आनंद की अवस्था में विलीन हो गए हैं। उन्होंने खुले मन से पीड़ा सहन की और उनके मन का विलीन होना ज्वाला के बुझने के समान था।" पूज्य आनंद ने कहा: "बुद्ध के देहांत से रोंगटे खड़े हो गए हैं।" सहमपति ब्रह्मा ने टिप्पणी की: "चूंकि यह गुरु, जो संसार के सर्वोच्च पुरुष हैं, सर्वशक्ति और सर्वज्ञता से संपन्न हैं, देहांत हो गया है, इसलिए संसार के सभी प्राणियों का प्राण त्यागना स्वाभाविक है।" सक्का ने कहा: "सभी तत्व वास्तव में अनित्य हैं। सब कुछ उदय और अस्त होने के स्वभाव का है। जो भी उदय होता है, उसका अंत निश्चित है और उसका अस्त होना आनंदमय है।" सांसारिक भिक्षुओं ने विलाप करना शुरू कर दिया, लेकिन पूज्य अनुराधा ने उन्हें विलाप जारी न रखने का आग्रह किया।

आदरणीय अनुरुद्ध और आदरणीय आनंद ने उस रात का शेष समय धार्मिक चर्चा में बिताया। फिर आदरणीय अनुरुद्ध ने सुझाव दिया कि बुद्ध के देहांत की दुखद खबर कुसिनारा के मल्ल राजकुमारों को दी जानी चाहिए। तदनुसार, आदरणीय आनंद, एक अन्य भिक्षु के साथ, नगर भवन में उनकी सभा में गए और उन्हें यह दुखद खबर दी। मल्ल राजकुमार और अन्य सभी जिन्होंने यह खबर सुनी, शोक से व्याकुल हो गए और गहन विलाप करने लगे।

मल्लों ने अपने राज्य के सभी फूल और सुगंध एकत्र किए और अपने सभी उपलब्ध संगीत के साथ बुद्ध के पार्थिव शरीर के दर्शन के लिए गए। सात दिनों तक उन्होंने बुद्ध के पार्थिव शरीर को पूर्ण श्रद्धा अर्पित की। सातवें दिन, मल्लों के आठ प्रमुखों ने स्नान किया और स्वच्छ वस्त्र धारण करके पार्थिव शरीर को उठाकर दक्षिणी द्वार से दाह संस्कार के लिए बाहर ले जाने का प्रयास किया। परन्तु वे पार्थिव शरीर को हिला नहीं सके और इस विषय में पूज्य अनुराधा से परामर्श लिया। पूज्य अनुराधा ने उन्हें बताया कि यह देवताओं की इच्छा है कि बुद्ध के पार्थिव शरीर को उनकी इच्छानुसार सम्मान दिया जाए और उत्तरी द्वार से नगर के मध्य में ले जाकर पूर्वी द्वार से मल्लों के मकुताबंधन चैत्य में दाह संस्कार किया जाए। इसके बाद यह मामला देवताओं की इच्छा पर छोड़ दिया गया।

अब कुसिनारा नगर पूरी तरह से घुटनों तक दिव्य मंदार फूलों से भरा हुआ था। देवताओं और मल्लों द्वारा फूलों, इत्रों और संगीत से उचित सम्मान अर्पित करने के बाद, शव को मल्लों के मकुताबंधन चैत्य ले जाया गया। पूज्य आनंद से परामर्श करके, मल्लों ने शव को एक सर्वमान्य सम्राट के समान सम्मान दिया। मल्लों के चार प्रमुखों ने नए वस्त्र धारण करके चिता को प्रज्वलित करने का प्रयास किया, लेकिन वे असफल रहे। उन्होंने इस संबंध में पूज्य अनुराधा से परामर्श किया, और उन्हें बताया गया कि जब तक पूज्य महा कस्सपा आकर शव को सम्मान नहीं देते, तब तक कोई भी चिता को प्रज्वलित नहीं कर सकता। अब इस समय, पूज्य महा कस्सपा पांच सौ भिक्षुओं के साथ पावा से कुसिनारा की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ते में वे सड़क के किनारे एक पेड़ की छाया में विश्राम कर रहे थे। तभी उन्होंने कुसिनारा की दिशा से एक तपस्वी को हाथ में मंदारा का फूल लिए आते देखा। पूज्य तपस्वी ने उनसे पूछा, "मित्र, क्या आप हमारे गुरु को जानते हैं?" तपस्वी ने उत्तर दिया, "जी हां, मित्र, मैं उन्हें जानता हूं। वे पूज्य गौतम गौतम हैं, जिनका सात दिन पहले देहांत हो गया। मैं यह मंदारा का फूल उनके देहांत स्थल से लाया हूं।"

जब सांसारिक भिक्षुओं ने यह दुखद समाचार सुना, तो वे रोने और विलाप करने लगे, परन्तु उनमें से जो पवित्र थे, उन्होंने यह कहकर स्वयं को सांत्वना दी कि सभी समूह क्षणभंगुर हैं। सुभद्दा नाम के एक भिक्षु, जिन्होंने वृद्धावस्था में संघ में प्रवेश किया था, ने बुद्ध के देहांत पर राहत की अनुभूति व्यक्त की क्योंकि अब वे अनुशासन आदि के विभिन्न नियमों से मुक्त हो जाएंगे। पूज्य कस्सपा ने वहाँ उपस्थित सभी भिक्षुओं को उपदेश दिया और कुसिनारा की ओर प्रस्थान किया।

आदरणीय महा कस्सपा मल्ला समुदाय के मकुताबंधन चैतिया पहुंचे और बुद्ध की चिता के पास गए। उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर चिता की तीन परिक्रमा की। फिर उन्होंने बुद्ध के पार्थिव शरीर के चरणों को नंगा करके उनकी पूजा की। उनके साथ आए पांच सौ भिक्षुओं ने भी बुद्ध को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित की। देखते ही देखते चिता स्वतः प्रज्वलित हो गई और बुद्ध का शरीर ज्वाला में भस्म हो गया। एक सप्ताह तक नगर भवन में एक जलकुंड के ऊपर और नीचे से जल की धाराएं और मल्ला समुदाय द्वारा प्रदत्त सुगंधित जल से बुद्ध के अवशेषों की रक्षा और सम्मान किया गया।

बुद्ध के अवशेषों पर निम्नलिखित में से प्रत्येक ने दावा किया, अर्थात् मगध के राजा अजातसत्तु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लाकप्प के बुली, रामगाम के कोलिय, पावा के मल्ल और वेथादीप के एक ब्राह्मण ने। लेकिन कुसिनारा के मल्लों का कहना था कि बुद्ध का निधन उनके राज्य में हुआ था, और वे अवशेषों का कोई भी भाग किसी को नहीं देंगे। ब्राह्मण दोना ने यह कहकर विवाद सुलझाया कि ऐसे पवित्र व्यक्तित्व के अवशेषों पर झगड़ा करना उचित नहीं है, जिन्होंने संसार को सहनशीलता का उपदेश दिया। उन्होंने अवशेषों को आठ भागों में बाँटा और प्रत्येक दावेदार को एक भाग दिया। उन्होंने कहा कि खाली भाग के बदले उनके संबंधित राज्यों में बुद्ध के पवित्र अवशेषों को समाहित करते हुए एक स्तूप का निर्माण किया जाए।

सप्पुरिसं : गुणी व्यक्ति। ये श्लोक आर्यों , अच्छे लोगों के गुणों की प्रशंसा करते हैं । गुणी व्यक्तियों के गुणों और विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा की गई है। निम्नलिखित दृष्टिकोण एक सप्पुरिसं , एक अच्छे व्यक्ति के स्वरूप को स्थापित करता है।

नैतिकता का पालन करना घर को चोरों से बचाने के लिए बाड़ लगाने के समान है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक आदर्श नैतिकता में निहित हैं। जीवन का सार प्रेम है और नैतिकता उसकी रीढ़ है। सद्गुण के बिना जीवन का अस्तित्व नहीं है और प्रेम के बिना जीवन मृत है। जीवन का विकास सद्गुण के विकास पर निर्भर करता है और सद्गुण के बढ़ने पर प्रेम का प्रवाह भी बढ़ता है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव से परिपूर्ण नहीं है, इसलिए उसे अच्छा बनने के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करना पड़ता है। इस प्रकार नैतिकता हर किसी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू बन जाती है। उदाहरण के लिए, नैतिकता का संबंध वस्त्रों से नहीं है। एक जलवायु, काल या सभ्यता के लिए उपयुक्त वस्त्र दूसरे में अशोभनीय माने जा सकते हैं; यह पूरी तरह से रीति-रिवाज का मामला है, इसमें नैतिक विचार शामिल नहीं हैं, फिर भी परंपराओं को लगातार वैध और अपरिवर्तनीय सिद्धांतों के साथ भ्रमित किया जा रहा है।

अध्याय 16. पियावग्ग: स्नेह (209-220)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 209,210,211

---

(धम्मपद 206, 207 और 208) <<<< पिछला || धम्मपद 209, 210 और 211 || अगला >>>> (धम्मपद 212)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 209, 210 और 211 - तयोजनापबजिता वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Ayoge yunja'mattanam
yogasminca ayojayam
attham hit va piyaggahi
piheta'ttanuyoginam.
Ma piyehi samaganchi
appiyehi kudacanam
piyanam adassanam dukkham
appiyananca dassanam.
तस्मा पियाम ना कायिरथा
piyapayo hi papako
gantha tesam na vijjanti
yesam natthi piyappiyam.

---

श्लोक 209 : जो व्यक्ति वह करता है जो नहीं करना चाहिए और वह करने में विफल रहता है जो करना चाहिए, जो जीवन के महान उद्देश्य (अर्थात नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि) को त्याग देता है और इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित होता है, वह उन लाभों की लालसा करता है जो ध्यान में परिश्रम करने वालों को प्राप्त होते हैं।

---

श्लोक 210 : अपने प्रियजनों के साथ संगति न करो, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उनके साथ कभी संगति न करो; प्रियजनों को न देखना कष्टदायी है, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उन्हें देखना भी कष्टदायी है।

---

श्लोक 211 : इसलिए किसी को भी प्रिय नहीं मानना चाहिए; प्रियजनों से वियोग पीड़ादायक होता है; जो प्रेम या घृणा नहीं करते, उनके लिए कोई बंधन नहीं होते।

---

तीन तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (209), (210) और (211) का उच्चारण किया, जिसमें एक पिता, एक माता और एक पुत्र से मिलकर बने एक त्रिमूर्ति का उल्लेख है।

श्रावस्ती में एक परिवार का इकलौता बेटा सबसे पहले भिक्षु बना; पिता ने भी उनका अनुसरण किया और अंत में माता भी भिक्षुणी बन गईं। वे एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए थे कि वे शायद ही कभी अलग रहते थे। परिवार मठ में ऐसे रहता था जैसे वे अपने घर में हों, साथ में बातें करते और खाते थे, जिससे वे दूसरों के लिए असुविधा का कारण बनते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनके इस व्यवहार की सूचना बुद्ध को दी और उन्होंने उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा, "एक बार जब आप संघ में शामिल हो जाते हैं, तो आपको परिवार की तरह साथ नहीं रहना चाहिए। प्रियजनों को न देखना और प्रियजनों को न देखना, दोनों ही कष्टदायी हैं; इसलिए आपको किसी भी प्राणी या वस्तु को प्रिय नहीं मानना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 209 : जो व्यक्ति वह करता है जो नहीं करना चाहिए और वह करने में विफल रहता है जो करना चाहिए, जो जीवन के महान उद्देश्य (अर्थात नैतिकता, एकाग्रता और अंतर्दृष्टि) को त्याग देता है और इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित होता है, वह उन लाभों की लालसा करता है जो ध्यान में परिश्रम करने वालों को प्राप्त होते हैं।

---

श्लोक 210 : अपने प्रियजनों के साथ संगति न करो, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उनके साथ कभी संगति न करो; प्रियजनों को न देखना कष्टदायी है, और जो तुम्हें प्रिय न हों, उन्हें देखना भी कष्टदायी है।

---

श्लोक 211 : इसलिए किसी को भी प्रिय नहीं मानना चाहिए; प्रियजनों से वियोग पीड़ादायक होता है; जो प्रेम या घृणा नहीं करते, उनके लिए कोई बंधन नहीं होते।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीन तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पिता, माता और पुत्र की त्रिमूर्ति के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि सावत्थी के एक परिवार में एक इकलौता बेटा था, जो अपने माता-पिता का लाडला और प्रिय था। एक दिन कुछ भिक्षुओं को उनके घर भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन समाप्त होने के बाद उन्होंने धन्यवाद के वचन पढ़े। धम्म के वचन सुनते ही युवक के मन में भिक्षु बनने की इच्छा जागृत हुई और उसने तुरंत अपने माता-पिता से अनुमति मांगी। माता-पिता ने उसे अनुमति देने से इनकार कर दिया। तब उसके मन में यह विचार आया, "जब मेरे माता-पिता नहीं देख रहे होंगे, मैं घर छोड़कर भिक्षु बन जाऊंगा।"

जब भी पिता घर से बाहर जाते, वे पुत्र को उसकी माता के हवाले करते हुए कहते, "कृपा करके उसे सुरक्षित और स्वस्थ रखना।" और जब भी माता घर से बाहर जातीं, वे पुत्र को पिता के हवाले कर देतीं। एक दिन, पिता के घर से बाहर जाने के बाद, माता ने मन ही मन कहा, "मैं अपने पुत्र को अवश्य सुरक्षित और स्वस्थ रखूंगी।" इसलिए उन्होंने एक पैर दरवाजे के एक चौखट पर और दूसरा पैर दूसरे चौखट पर टिकाया और इस प्रकार जमीन पर बैठकर सूत कातने लगीं। युवक ने मन ही मन सोचा, "मैं उसे चकमा देकर भाग जाऊंगा।" इसलिए उसने अपनी माता से कहा, "प्रिय माता, कृपया अपना पैर थोड़ा हटा लें; मुझे शौच करना है।" माता ने अपना पैर हटा लिया और वह बाहर चला गया। वह जितनी जल्दी हो सके मठ पहुंचा और भिक्षुओं के पास जाकर बोला, "हे आदरणीय, मुझे संघ में शामिल कर लीजिए।" भिक्षुओं ने उसकी विनती मान ली और उसे संघ में शामिल कर लिया।

जब पिता घर लौटे, तो उन्होंने माता से पूछा, "मेरा बेटा कहाँ है?" माता ने कहा, "पतिदेव, वह अभी कुछ देर पहले यहीं था।" पिता ने सोचा, "मेरा बेटा कहाँ हो सकता है?" और चारों ओर देखने लगे। उसे कहीं न देखकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला, "वह मठ चला गया होगा।" इसलिए पिता मठ गए और अपने बेटे को भिक्षु के वस्त्रों में देखकर रो पड़े और विलाप करते हुए बोले, "प्रिय पुत्र, तू मुझे क्यों

दुखी कर रहा है?" लेकिन कुछ क्षण बाद उन्होंने मन ही मन सोचा, "अब जब मेरा बेटा भिक्षु बन गया है, तो मैं गृहस्थ जीवन क्यों जीऊँ?" इसलिए उन्होंने भी स्वेच्छा से भिक्षुओं से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया और वहीं संसार त्याग कर भिक्षु बन गए।

युवक की माता ने मन ही मन सोचा, "मेरा बेटा और पति इतनी देर क्यों लगा रहे हैं?" चारों ओर देखते हुए, अचानक उसके मन में विचार आया, "निश्चित रूप से वे मठ में जाकर भिक्षु बन गए होंगे।" इसलिए वह मठ गई और अपने बेटे और पति दोनों को भिक्षुओं के वस्त्र पहने देखकर मन ही मन सोचने लगी, "चूंकि मेरे बेटे और पति दोनों भिक्षु बन गए हैं, तो मुझे गृहस्थ जीवन की क्या आवश्यकता है?" और अपनी इच्छा से वह ननों के समुदाय में शामिल हो गई और संसार से विरक्त हो गई।

लेकिन माता-पिता और पुत्र के संसार त्याग कर धार्मिक जीवन अपनाने के बाद भी वे एक-दूसरे से अलग नहीं रह पाते थे; चाहे वे मठ में हों या भिक्षुणियों के आश्रम में, वे अकेले बैठकर दिनभर बातें करते रहते थे। भिक्षुओं ने बुद्ध को सब कुछ बताया। बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और पूछा, "क्या यह बात सच है कि तुम लोग ऐसा-वैसा कर रहे हो?" उन्होंने हाँ में उत्तर दिया। तब बुद्ध ने कहा, "तुम ऐसा क्यों करते हो? भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए ऐसा आचरण उचित नहीं है।" "परन्तु हमारे लिए अलग रहना असंभव है।" "संसार त्यागने के समय से ऐसा आचरण अत्यंत अनुचित है; प्रिय लोगों के दर्शन से वंचित रहना और अप्रिय चीजों को देखना दोनों ही कष्टदायी हैं; इसलिए चाहे व्यक्ति हों या भौतिक वस्तुएँ, किसी को भी प्रिय या अप्रिय चीजों की परवाह नहीं करनी चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 209)

अत्तनं अयोगे युञ्जं योगस्मिं अयोजयं च
अत्थं हित्वा पियाग्गहि अत्तानुयोगिनं पिहेति

attānaṃ [ attāna ]: (जहाँ) किसी को; ayoge : नहीं लगना चाहिए; yuñjaṃ [ yuñja ]: जो लग जाता है; yogasmiṃ [ yogasmi ]: जहाँ लगना चाहिए; ayojayaṃ [ ayojaya ]: जो नहीं लगता; ca atthaṃ [ attha ]: क्या करना चाहिए; hitvā : उपेक्षा करने वाला; piyaggāhi : केवल मनभावन चीजों को पकड़ने वाला; attānuyoginaṃ [ attānuyogina ]: जो स्वार्थी उद्देश्यों की पूर्ति चाहते हैं; piheti : इच्छा रखने वाला

गलत बातों में लिप्त रहकर, सही बातों में लिप्त न रहकर, अपना कल्याण त्यागकर, व्यक्ति इंद्रिय सुखों के पीछे भागता है। ऐसा करने से वह उन लोगों से ईर्ष्या करता है जो स्वयं का विकास करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 210)

पियेहि अप्पियेहि कुदाकनं मा समागांचि पियानं
अदस्सानं अप्पियानं दस्सनं च दुक्खं

पियेहि : प्रियतम; अप्पियेहि : नापसंद; कुडाचनम् [ कुडाचन ]: कभी नहीं; मा समागंचि : कभी निकट संबंध नहीं रखना; पियानम् [ पियान ]: प्रियजनों में से; अदस्सनम् [ अदस्सन ]: न देखना; अप्पियेनम् दस्सनम् च : (और) नापसंद व्यक्तियों को देखना; दुःखम् [ दुक्खा ]: (दोनों) कष्टदायी हैं

जिनसे आप प्यार करते हैं, उनसे भी कभी एक जैसा मेलजोल न रखें, चाहे आप उन्हें नापसंद करें। जिनसे आप प्यार करते हैं, उनसे बिछड़ना कष्टदायक होता है। और जिनसे आप नापसंद करते हैं, उनके साथ रहना भी उतना ही कष्टदायक होता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 211)

तस्मा पियं न कयिरथ , हाय पियापायो पापाको
येसं पियाप्पियं नत्थि तेसं गंथा न विज्जन्ति

तस्मा : इसलिए; पियां न कयिराथ : पसंद नहीं करते; ही : क्योंकि; पियापायो [ पियापाया ]: जिनसे हम प्यार करते हैं उनसे अलग होना; पापको [ पापक ]: बुरा है; येसं [ येसा ]: किसी के लिए; पियाप्पियं [ पियाप्पिय ]: सुखद या अप्रिय; नत्थि : नहीं है; तेसं [ तेसा ]: उनके लिए; गंथा : अशुद्धियों की गांठें; न विज्जन्ति : दिखाई नहीं देतीं

इसलिए, किसी को भी प्रेम भाव नहीं रखना चाहिए; क्योंकि वियोग पीड़ादायी होता है। जो बंधनों से मुक्त होते हैं, उनके लिए न तो प्रेम भाव होता है और न ही अनासक्ति।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 209-211)

दुःख : पीड़ा। दुःख चार आर्य सत्यों में से पहला है। भावना के रूप में दुःख का अर्थ है वह जिसे सहन करना कठिन हो ( दु - कठिन; खा - सहन करना)। अमूर्त सत्य के रूप में दुःख का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण ( दु ) और शून्यता ( खा ) के अर्थ में किया जाता है । संसार पीड़ा पर टिका है - इसलिए यह तिरस्कारपूर्ण है। संसार किसी भी वास्तविकता से रहित है - इसलिए यह खाली या शून्य है। दुःख का अर्थ है तिरस्कारपूर्ण शून्यता।

सामान्य मनुष्य केवल सतही दृष्टि से ही चीजों को देखते हैं। आर्य मनुष्य चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखता है। आर्य मनुष्य के लिए समस्त जीवन दुखमय है और उसे इस संसार में कोई वास्तविक सुख नहीं मिलता, जिसने मनुष्य को मायावी सुखों से धोखा दिया है। भौतिक सुख मात्र किसी इच्छा की पूर्ति है। मनचाही वस्तु प्राप्त होते ही उसका तिरस्कार होने लगता है। सभी इच्छाएँ अतृप्त हैं। सभी

जन्म ( जाति ) के अधीन हैं, और फलस्वरूप क्षय ( जरा ), रोग ( व्याधि ) और अंततः मृत्यु ( मरण ) के अधीन हैं। इन चार अपरिहार्य दुखों से कोई भी मुक्त नहीं है।

अधूरी इच्छा भी कष्टदायी होती है। हम उन चीजों या व्यक्तियों से जुड़ना नहीं चाहते जिनसे हमें घृणा होती है, न ही हम उन चीजों या व्यक्तियों से अलग होना चाहते हैं जिनसे हमें प्रेम होता है। हालांकि, हमारी प्रिय इच्छाएं हमेशा पूरी नहीं होतीं। अक्सर वही हम पर थोपा जाता है जिसकी हमें सबसे कम उम्मीद होती है या जिसकी हम सबसे कम इच्छा रखते हैं। कई बार ऐसी अप्रत्याशित अप्रिय परिस्थितियां इतनी असहनीय और पीड़ादायक हो जाती हैं कि कमजोर और अज्ञानी लोग आत्महत्या करने पर विवश हो जाते हैं, मानो ऐसा करने से समस्या हल हो जाएगी।

सच्ची खुशी भीतर ही निहित है, और इसे धन, शक्ति, सम्मान या विजय के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता। यदि ऐसी सांसारिक संपत्तियां बलपूर्वक या अन्यायपूर्वक प्राप्त की गई हों, या उनका दुरुपयोग किया गया हो, या उनसे आसक्ति की भावना रखी गई हो, तो वे प्राप्तकर्ताओं के लिए पीड़ा और दुःख का स्रोत बनेंगी।

सामान्यतः, इंद्रिय सुखों का आनंद लेना ही एक औसत व्यक्ति के लिए सर्वोच्च और एकमात्र सुख है। ऐसे क्षणिक भौतिक सुखों की प्रत्याशा, तृप्ति और स्मरण से बेशक क्षणिक आनंद मिलता है, परन्तु ये मायावी और अस्थायी होते हैं। बुद्ध के अनुसार अनासक्ति ( विरागतता ) या भौतिक सुखों से परे जाना ही परम आनंद है। संक्षेप में, यह मिश्रित शरीर ही दुख का कारण है।

दुःख का यह प्रथम सत्य, जो तथाकथित अस्तित्व और जीवन के विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है, का गहन विश्लेषण और अध्ययन किया जाना चाहिए। यह अध्ययन व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप को सही ढंग से समझने की ओर ले जाता है।

बुद्ध ने कहा है: जन्म दुख है । जन्म का अर्थ है गर्भाधान से लेकर प्रसव तक की संपूर्ण जीवन प्रक्रिया। यहाँ विशेष रूप से गर्भाधान की बात की गई है। तृष्णा के बंधनों में जकड़े हुए, एक ठोस, क्षयशील, भौतिक शरीर से बंधे रहना ही दुख है । तृष्णा के प्रलोभन से जन्म लेना हो या कर्म के कारण विवश होना हो , दुख का अनुभव अवश्य होता है। जन्म की संपूर्ण प्रक्रिया इतनी पीड़ादायक होती है कि यदि किसी प्रकार से इसमें कोई गड़बड़ी हो जाए, जैसा कि आधुनिक मनोविज्ञान ने पाया है, तो शिशु के मन पर एक गहरा मानसिक घाव, एक प्रकार का आघात, रह सकता है। भगवान बुद्ध ने अपने अनंत जन्मों के अनुभवों से कहा है कि जन्म लेना एक भयावह अनुभव है, इतना कि अधिकांश लोग इसे भूलना ही बेहतर समझते हैं। एक अन्य अर्थ में भी जन्म वास्तव में दुख है , क्योंकि बुद्ध की शिक्षाओं में जन्म और मृत्यु क्षण-क्षण अस्तित्व के विभिन्न चरण हैं। जैसे शरीर में पुरानी कोशिकाओं के स्थान पर नई कोशिकाएँ बनती रहती हैं, वैसे ही मन में भी नए विचार आते हैं, उनका विश्लेषण होता है और वे लुप्त हो जाते हैं। यह निरंतर प्रवाह दिन-रात चलता रहता है, और यदि इसका ध्यानपूर्वक (अंतर्दृष्टि से) अध्ययन किया जाए, तो यह एक ऐसा अनुभवजन्य रोग प्रतीत होता है जो न तो शांति देता है, न सुरक्षा प्रदान करता है और न ही कोई स्थायी संतोष देता है। अनुभव के एक क्षण में घटनाएँ उत्पन्न होती हैं, विद्यमान होती हैं और लुप्त हो जाती हैं, लेकिन जन्म-मृत्यु का यह अर्थ केवल गहन ध्यान और अंतर्दृष्टि की सहायता से ही सही मायने में समझा जा सकता है।

बुढ़ापा दुःख है । यह शायद सबसे स्पष्ट है। दांत गिरने लगते हैं, सुंदर, चमकदार बाल पतले और सफेद हो जाते हैं, पेट मनपसंद भोजन पचाने से इनकार कर देता है, जोड़ों में दर्द और कटकने की आवाज आती है और मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं; इन शारीरिक कष्टों से कहीं अधिक गंभीर हैं दृष्टि का कमजोर होना या सुनने में कठिनाई — इन सबका वर्णन करने के लिए कई पन्ने भरे जा सकते हैं। सबसे भयानक है मन की समझने और बुद्धिमानी से प्रतिक्रिया करने की क्षमता का कम होना, आदतों और पूर्वाग्रहों की पकड़ का बढ़ना, आगे देखने की अनिच्छा (जहां मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है) और अतीत की यादों में खो जाना, जो धीरे-धीरे झूठे होते जा रहे हैं। अंत में, मन की उस कोमलता का जिक्र किया जा सकता है जिसे शिष्टता से 'दूसरा बचपन' कहा जाता है, और सटीक रूप से 'बुढ़ापा' कहा जाता है। सभी प्राणी, सभी लोग इन सभी स्थितियों से नहीं गुजरेंगे, लेकिन बुढ़ापा निश्चित रूप से इनमें से कुछ का अनुभव कराता है, एक ऐसा अनुभव जो केवल अरुचिकर ही हो सकता है।

बीमारी दुख है । हालांकि यह काफी आम बात है, फिर भी जीवन में सभी लोग बीमारियों से प्रभावित नहीं होते। इस शरीर पर विचार करें: यह कितना जटिल है, और यह कितना अद्भुत है कि यह पांच मिनट के लिए भी सुचारू रूप से काम करता है, आठ साल की तो बात ही छोड़ दें। एक छोटी सी ग्रंथि या कुछ छोटी कोशिकाएं कहीं गड़बड़ कर दें, तालमेल बिगाड़ दें, तो कितना कष्ट हो सकता है! ज्यादातर लोग इसके बारे में सोचना पसंद नहीं करते और इसलिए जब उन्हें इसका सामना करना पड़ता है तो वे और भी अधिक कष्ट भोगते हैं। बीमारी की व्यापकता को समझने के लिए, बस अस्पतालों में जाकर देखें, डॉक्टरों और नर्सों से बात करें, या चिकित्सा की पाठ्यपुस्तक खोलें। जिन बीमारियों के बारे में जानकारी मिल सकती है, उनकी संख्या बहुत अधिक है और वे कई तरह की भयावह स्थितियों में विलीन हो जाती हैं, जिनके कारणों का पता विज्ञान अभी तक नहीं लगा पाया है। लालच और घृणा के साथ मिश्रित अत्यधिक प्रबल भ्रम से उत्पन्न मानसिक रोग भी इसमें शामिल हैं।

बुद्ध के प्रथम उपदेश में, केंद्रीय अवधारणा दुख की धारणा है। बुद्ध ने कहा:

दुख का महान सत्य यह है: जन्म ही दुख है; बुढ़ापा दुख है; बीमारी दुख है; मृत्यु दुख है; अप्रिय संगति दुख है; प्रियजनों से वियोग दुख है; मनचाही वस्तुओं की प्राप्ति न होना दुख है। संक्षेप में, दुख के ये सभी पाँच तत्व दुख हैं।

"दुख के कारण का महान सत्य यह है: यही लालसा पुनर्जन्म का कारण बनती है, जो भोग-विलास से जुड़ी होती है। यह यहाँ-वहाँ आनंद लेती है, अर्थात् इंद्रिय सुखों में, अस्तित्व में और विनाश में।"

"दुखों के निवारण का महान सत्य यह है: यह उस लालसा से पूर्ण रूप से बचना, उसका निवारण करना, उसे त्याग देना, उससे मुक्ति पाना और उससे अनासक्ति प्राप्त करना है।"

"इस पीड़ा के निवारण का महान सत्य उचित दृष्टि और उचित विचार से युक्त अष्टमार्ग है।"

“दुख का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जिसके बारे में मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, दुख के इस महान सत्य को पूर्णतः समझना आवश्यक है।”

“दुख के कारण का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, दुःख के इस कारण का वास्तव में त्याग करना आवश्यक है; और मैंने इसका त्याग कर दिया है।”

“दुखों के निवारण का यह महान सत्य एक ऐसा सिद्धांत है जिसके बारे में मैंने पहले कभी नहीं सुना था, और इसी से मेरी समझ, अंतर्दृष्टि, ज्ञान और आत्मज्ञान का विकास हुआ। हे भिक्षुओं, इस महान सत्य का विकास अवश्य होना चाहिए; और मैंने इसका विकास कर दिया है।”

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 212

———————————————————————

(धम्मपद 209, 210 और 211) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 212 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 213)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 212 - अन्नतारकुटुम्बिका वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Piyato jayati soko
piyato jayati bhayam
piyato vippamuttassa
natthi soko kuto bhayam.

———————————————————————

श्लोक 212 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

———————————————————————

एक धनी गृहस्थ की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (212) का उच्चारण किया, जो एक धनी गृहस्थ के संदर्भ में था जिसने अपने बेटे को खो दिया था।

एक बार एक गृहस्थ अपने पुत्र की मृत्यु से बहुत दुखी था। वह अक्सर श्मशान जाकर रोता था। एक सुबह बुद्ध ने उस धनी गृहस्थ को दर्शन दिए। इसलिए, एक भिक्षु को साथ लेकर बुद्ध उस गृहस्थ के घर गए। वहाँ उन्होंने उससे पूछा कि वह इतना दुखी क्यों है। तब उस गृहस्थ ने बुद्ध को अपने पुत्र की मृत्यु और अपने दुख-दर्द के बारे में बताया। बुद्ध ने उससे कहा, "मेरे शिष्य, मृत्यु केवल एक ही स्थान पर नहीं होती। सभी जन्म लेने वाले प्राणियों को एक दिन मरना ही है; वास्तव में, जीवन का अंत मृत्यु में होता है। तुम्हें सदा इस तथ्य को याद रखना चाहिए कि जीवन का अंत मृत्यु में होता है। यह मत सोचो कि केवल तुम्हारा प्रिय पुत्र ही मृत्यु के अधीन है। इतना दुखी या विचलित मत हो। दुख और भय स्नेह से उत्पन्न होते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 212 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

प्रवचन के अंत में, धनी गृहस्थ ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक धनी गृहस्थ की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक धनी गृहस्थ के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने अपने पुत्र को खो दिया था।
कथा के अनुसार, अपने पुत्र की मृत्यु से व्याकुल एक गृहस्थ इतना दुखी हुआ कि वह प्रतिदिन श्मशान जाकर रोता था, क्योंकि वह अपने दुःख को रोक नहीं पाता था। जब बुद्ध ने भोर में संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने देखा कि उस गृहस्थ में धर्म परिवर्तन के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं। इसलिए जब वे भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो उन्होंने एक भिक्षु को साथ लेकर उस गृहस्थ के घर गए। जब उस गृहस्थ ने सुना कि बुद्ध उसके घर आए हैं, तो उसने मन ही मन सोचा, "वे मुझसे कुशल मंगल और शिष्टाचार का अभिवादन करना चाहते होंगे।" अतः उसने बुद्ध को अपने घर में आमंत्रित किया, उन्हें प्रांगण में बैठने की व्यवस्था की, और जब बुद्ध बैठ गए, तो वह उसके पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए।
तभी बुद्ध ने उससे पूछा, "हे गृहस्थ, तुम दुखी क्यों हो?" गृहस्थ ने उत्तर दिया, "मैंने अपना पुत्र खो दिया है, इसलिए मैं दुखी हूँ।" बुद्ध ने कहा, "शोक मत करो, गृहस्थ। जिसे मृत्यु कहते हैं, वह किसी एक स्थान या किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि इस संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों के लिए समान है। अस्तित्व का कोई भी तत्व स्थायी नहीं है। इसलिए हमें शोक में डूबे नहीं रहना चाहिए, बल्कि मृत्यु के प्रति तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जैसा कि कहा गया है, 'नश्वरता ने नश्वरता को सहा, नश्वरता ने नश्वरता को सहा।'"
पुराने समय के बुद्धिमान लोग पुत्र की मृत्यु पर शोक नहीं करते थे, बल्कि मृत्यु पर ध्यान लगाते हुए मन ही मन कहते थे, 'नश्वर का नश्वर होना तय है, विघटन का विघटन तय है।' बीते समय में बुद्धिमान लोग पुत्र की मृत्यु पर वैसा नहीं करते थे जैसा आप कर रहे हैं। आपने अपने नियमित कार्य छोड़ दिए हैं, भोजन त्याग दिया है और अपना समय शोक मनाने में व्यतीत कर रहे हैं। पुराने समय के बुद्धिमान लोग ऐसा नहीं करते थे। इसके विपरीत, वे मृत्यु पर ध्यान लगाते थे, शोक नहीं करते थे, हमेशा की तरह भोजन करते थे और अपने नियमित कार्य करते थे। इसलिए अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु पर शोक न करें। क्योंकि शोक या भय चाहे जो भी हो, वह केवल किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के कारण ही होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 212)
पियातो सोको जयति पियातो भयं जयति पियातो
विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो
पियातो [ पियाता ]: प्रेम के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; पियातो [ पियाता ]: प्रेम के कारण; भयं [ भय ]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; पियातो विप्पामुत्तस्सा : प्रेम से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [ भय ]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से भय उत्पन्न होता है। स्नेह से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता। तो ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 212)
बुद्ध की दिनचर्या : इस श्लोक और कई अन्य श्लोकों को जन्म देने वाली कथा के अनुसार, बुद्ध प्रत्येक सुबह संसार का चिंतन करते थे और उन लोगों की तलाश करते थे जिनकी सहायता की जानी चाहिए। बुद्ध को पृथ्वी पर रहने वाले सभी धार्मिक शिक्षकों में सबसे ऊर्जावान और सबसे सक्रिय माना जा सकता है। वे अपने शारीरिक कार्यों को पूरा करने के अलावा, सारा दिन धार्मिक गतिविधियों में

लीन रहते थे। वे अपने दैनिक कर्तव्यों के निर्वाह में विधिवत और व्यवस्थित थे। उनका आंतरिक जीवन ध्यान में व्यतीत होता था और वे निर्वाणिक आनंद की प्राप्ति में लगे रहते थे, जबकि उनका बाह्य जीवन संसार के नैतिक उत्थान के लिए निस्वार्थ सेवा में समर्पित था। स्वयं प्रबुद्ध होकर, उन्होंने दूसरों को भी प्रबुद्ध करने और उन्हें जीवन के दुष्चक्रों से मुक्त करने का भरसक प्रयास किया।
उनका दिन पाँच भागों में विभाजित था, अर्थात्:
सुबह का सत्र,
दोपहर का सत्र,
पहली घड़ी,
बीच वाली घड़ी और
आखिरी पहरा।
सामान्यतः, वे सुबह-सुबह अपनी दिव्य दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हैं कि वे किसकी सहायता कर सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति को उनकी आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता होती है, तो वे बिना बुलाए ही चले जाते हैं, अक्सर पैदल, कभी-कभी अपनी मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए हवाई मार्ग से, और उस व्यक्ति को सही मार्ग पर ले आते हैं। वे आमतौर पर दुष्टों और अपवित्रों की खोज में जाते हैं, परन्तु शुद्ध और गुणी लोग उनकी खोज में आते हैं। उदाहरण के लिए, बुद्ध स्वयं लुटेरे और हत्यारे अंगुलिमाला और दुष्ट राक्षस आलवक को परिवर्तित करने गए, परन्तु धर्मात्मा युवा विशाखा, उदार करोड़पति अनाथपिंडिका और बुद्धिमान सारिपुत्त और मोग्गलाना आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए उनके पास आए। जहां भी आवश्यक हो, आध्यात्मिक सेवा करते समय, यदि किसी विशेष स्थान पर किसी गृहस्थ समर्थक द्वारा भिक्षा देने का निमंत्रण न मिले, तो वे, जिनके समक्ष राजा भी नतमस्तक होते थे, अकेले या अपने शिष्यों के साथ, हाथ में भिक्षापात्र लिए गलियों और सड़कों पर भिक्षा मांगने निकल पड़ते थे। प्रत्येक घर के द्वार पर चुपचाप खड़े होकर, बिना कुछ बोले, वे जो भी भिक्षापात्र दिया जाता था, उसे एकत्र करके अपने कटोरे में रख देते थे और मठ लौट आते थे। यहां तक कि अस्सी वर्ष की आयु में भी, जब वे वृद्ध और अस्वस्थ थे, तब भी वे वैशाली में भिक्षा मांगने जाते थे। दोपहर से पहले वे अपना भोजन समाप्त कर लेते थे। दोपहर के भोजन के तुरंत बाद वे प्रतिदिन लोगों को संक्षिप्त प्रवचन देते थे, उन्हें तीन शरणों और पांच उपदेशों में स्थापित करते थे और यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता था, तो उसे संतत्व का मार्ग दिखाते थे। कभी-कभी वे संघ में प्रवेश चाहने वालों को दीक्षा प्रदान करते थे और फिर अपने कक्ष में लौट जाते थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 213

———————————————————————

(धम्मपद 212) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 213 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 214)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 213 - विशाखा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Pemato jayati soko
pemato jayati bhayam
pemato vippamuttassa
natthi soko kuto bhayam.

———————————————————————

श्लोक 213 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

विशाखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ के प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (213) कहा।

एक दिन विशाखा की पोती सुदत्ता की मृत्यु हो गई। विशाखा को इस हानि का गहरा दुख हुआ और वह बच्ची की मृत्यु पर शोक मना रही थी। इसलिए वह बुद्ध के पास गई। बुद्ध ने उसे देखकर कहा, "विशाखा, क्या तुम्हें यह एहसास नहीं है कि श्रावस्ती में प्रतिदिन कितने लोग मरते हैं? यदि तुम उन सभी को अपनी पोती के समान मानोगी तो तुम्हें निरंतर रोना और शोक मनाना पड़ेगा। बच्चे की मृत्यु से इतना प्रभावित मत हो। शोक और भय स्नेह से उत्पन्न होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 213 : स्नेह दुःख उत्पन्न करता है, स्नेह भय उत्पन्न करता है। जो स्नेह से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

विशाखा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पुब्बाराम मठ की प्रसिद्ध दानदाता विशाखा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। कथा के अनुसार, विशाखा अपनी अनुपस्थिति में अपने पुत्र की पुत्री दत्ता को अपने घर में भिक्षुओं की सेवा करने की अनुमति देती थीं। कुछ समय बाद दत्ता का निधन हो गया। विशाखा ने उनके पार्थिव शरीर के अंतिम संस्कार में भाग लिया और फिर अपने शोक को वश में न कर पाने के कारण दुखी और शोकाकुल होकर बुद्ध के पास गईं और उन्हें प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गईं। बुद्ध ने विशाखा से कहा, “हे विशाखा, तुम यहाँ दुखी और शोकाकुल होकर, आँखों में आँसू लिए, क्यों रो रही हो?”

तब विशाखा ने बुद्ध को मामला समझाते हुए कहा, “आदरणीय, वह कन्या मुझे बहुत प्रिय थी और वह निष्ठावान और सच्ची थी; मुझे उसके जैसी कोई और नहीं मिलेगी।” “परन्तु, विशाखा, सावत्थी में कितने निवासी हैं?” “मैंने आपको कहते सुना है, आदरणीय, कि वहाँ सत्तर करोड़ लोग हैं।” “परन्तु मान लीजिए कि ये सभी लोग दत्ता की तरह ही आपको प्रिय होते; क्या आप ऐसा चाहते?” “जी हाँ, आदरणीय।” “परन्तु सावत्थी में प्रतिदिन कितने लोग मरते हैं?” “बहुत सारे, आदरणीय।” “तो फिर यह निश्चित है कि आपको अपने शोक को कम करने का समय नहीं मिलेगा, आप दिन-रात विलाप करते रहेंगे।” “बिल्कुल, आदरणीय; मैं समझती हूँ।” तब बुद्ध ने कहा, “ठीक है, शोक मत करो। क्योंकि चाहे शोक हो या भय, वह केवल स्नेह से ही उत्पन्न होता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 213)

पेमातो सोको जयति पेमातो भयं जयति

पेमातो विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो ?

पेमाटो [ पेमाटा ]: स्नेह के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; पेमाटो [ पेमाटा ]: स्नेह के कारण; भयं [ भय ]: भय, जयति : उत्पन्न होता है; पेमातो विप्पामुत्तस्सा : स्नेह से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [ भय ]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?

स्नेह से दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से भय उत्पन्न होता है। स्नेह रहित व्यक्ति को दुःख नहीं होता। इसलिए, ऐसे व्यक्ति के लिए भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 213)

विशाखा का शोक : बुद्ध ने यह श्लोक बुद्धशासन (बुद्ध का धर्म) के आरंभिक दिनों में बुद्ध की सबसे बड़ी महिला अनुयायी विशाखा को शांत करने के लिए कहा था। विशाखा का जीवन बौद्ध धर्म के प्रारंभिक इतिहास से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनके जीवन में एक ऐसी घटना है जो पशुओं के प्रति भी उनकी कर्तव्यपरायणता को दर्शाती है। जब उन्हें पता चला कि उनकी सुसंस्कृत घोड़ी ने आधी रात को एक बछड़े को जन्म दिया है, तो वे तुरंत अपनी महिला परिचारिकाओं के साथ मशालें लेकर अस्तबल में गईं और घोड़ी की सभी जरूरतों का अत्यंत ध्यान रखा।

उनके ससुर निगंठनातपुत्त के कट्टर अनुयायी थे, इसलिए उन्होंने बड़ी संख्या में नग्न तपस्वियों को भिक्षा के लिए अपने घर आमंत्रित किया। उनके आने पर विशाखा से इन तथाकथित अरहतों को प्रणाम करने का अनुरोध किया गया। अरहत शब्द सुनकर वह प्रसन्न हुईं और तुरंत हॉल में गईं, जहाँ उन्होंने देखा कि तपस्वी निर्लज्ज थे। विशाखा जैसी सुसंस्कृत महिला के लिए यह दृश्य असहनीय था।

उन्होंने अपने ससुर को फटकारा और उनका स्वागत किए बिना अपने कमरे में लौट गईं। नग्न तपस्वियों को यह बात बुरी लगी और उन्होंने करोड़पति पर तपस्वी गौतम की एक महिला अनुयायी को अपने घर लाने का आरोप लगाया। उन्होंने उनसे उसे तुरंत घर से निकालने को कहा। करोड़पति ने उन्हें शांत किया। एक दिन वह एक कीमती आसन पर बैठे और सोने के कटोरे में मीठी दूध की दलिया खाने लगे। उसी समय एक भिक्षु भिक्षा मांगने घर में दाखिल हुए। विशाखा अपने ससुर को पंखा कर रही थी और बिना उन्हें बताए एक तरफ हट गई ताकि वे उन्हें देख सकें। हालांकि उन्होंने उन्हें देख लिया था, फिर भी वे ऐसे खाते रहे मानो उन्होंने उन्हें देखा ही न हो।
विशाखा ने विनम्रता से भिक्षु से कहा, "हे पूज्यवर, आप आगे बढ़िए, मेरे ससुर बासी भोजन ( पुराण ) खा रहे हैं।" अज्ञानी करोड़पति ने उसके शब्दों का गलत अर्थ निकाला और इतना क्रोधित हो गया कि उसने कटोरा हटाने और विशाखा को घर से निकालने का आदेश दिया। विशाखा घर के सभी लोगों की प्रिय थी, इसलिए कोई भी उसे छूने की हिम्मत नहीं करता था। लेकिन विशाखा, अनुशासित स्वभाव की होने के कारण, अपने ससुर से भी इस तरह का व्यवहार चुपचाप स्वीकार नहीं कर सकी। उसने विनम्रता से कहा, "पिताजी, यह आपके घर छोड़ने का पर्याप्त कारण नहीं है। आप मुझे यहाँ किसी नदी के किनारे से दासी की तरह नहीं लाए हैं। जिन बेटियों के माता-पिता जीवित होते हैं, वे इस तरह घर नहीं छोड़तीं। इसी कारण से, जब मैं यहाँ आने के लिए निकली थी, तब मेरे पिता ने आठ कुलियों को बुलाया और मुझे उनके हवाले करते हुए कहा, 'यदि मेरी पुत्री में कोई दोष हो, तो उसकी जाँच कीजिए।'" उन्हें संदेश भेजो और उन्हें मेरी गलती या बेगुनाही की जांच करने दो।
करोड़पति ने उसके उचित प्रस्ताव को मान लिया और उन्हें बुलाकर कहा, "त्योहार के समय, जब मैं सोने के कटोरे में बैठकर मीठी दूध की चावल की दलिया खा रहा था, तब इस लड़की ने कहा कि मैं जो खा रहा हूँ वह अशुद्ध है। इस गलती के लिए उसे दोषी ठहराओ और घर से निकाल दो।" विशाखा ने अपनी निर्दोषता साबित करते हुए कहा, "मैंने ठीक ऐसा नहीं कहा था। जब एक साधु भिक्षा मांगने दरवाजे पर खड़ा था, तब मेरे ससुर उसे अनदेखा करते हुए मीठी दूध की चावल की दलिया खा रहे थे। यह सोचकर कि मेरे पिता ने इस जीवन में कोई अच्छा कर्म नहीं किया है, वे केवल पिछले कर्मों का फल भोग रहे हैं, मैंने साधु से कहा, 'आदरणीय, आगे बढ़िए, मेरे ससुर बासी खाना खा रहे हैं।' इसमें मेरी क्या गलती है?"
उन्हें आरोप से बरी कर दिया गया, और ससुर ने स्वयं मान लिया कि वह दोषी नहीं थीं। लेकिन उस द्वेषपूर्ण करोड़पति ने उन पर फिर से आरोप लगाया कि वह आधी रात को पुरुष और महिला सेवकों के साथ घर के पीछे गई थीं। जब उन्होंने समझाया कि वास्तव में वह प्रसव पीड़ा से जूझ रही घोड़ी की देखभाल करने के लिए गई थीं, तो परिवार के सदस्यों ने कहा कि उनकी कुलीन बेटी ने एक अनुकरणीय कार्य किया है जो एक दासी भी नहीं करती। इस प्रकार उन्हें दूसरे आरोप से भी बरी कर दिया गया। लेकिन प्रतिशोधी करोड़पति तब तक चैन से नहीं बैठा जब तक कि वह दोषी साबित न हो जाए। अगली बार उसने बिना किसी कारण के उन पर दोष मढ़ा। उसने कहा कि घर से निकलने से पहले उनके पिता ने उन्हें दस नसीहतें दी थीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने उनसे कहा, "घर की आग को बाहर नहीं ले जाना चाहिए। क्या वास्तव में बिना अपने दोनों ओर के पड़ोसियों को भी आग दिए जीना संभव है?" करोड़पति ने सवाल किया।
उसने इस अवसर का लाभ उठाते हुए दसों चेतावनियों को विस्तार से समझाया और उसे पूरी तरह संतुष्ट कर दिया। करोड़पति चुप हो गया और उसके पास आरोप लगाने के लिए कुछ नहीं बचा। अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के बाद, स्वाभिमानी विशाखा अब घर छोड़ने की इच्छा रखती थी, जैसा कि उसे शुरू में आदेश दिया गया था। करोड़पति का विशाखा के प्रति रवैया पूरी तरह बदल गया और वह अपनी बहू से अपनी अज्ञानता में कही गई बातों के लिए क्षमा मांगने के लिए विवश हो गया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 214

———————————————————————

(धम्मपद 213) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 214 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 215)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 214 - लिच्छवि वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Ratiya jayati soko
ratiya jayati bhayam
रतिया विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

---

श्लोक 214 : आसक्ति (इंद्रिय सुखों से) दुःख उत्पन्न करती है, आसक्ति भय उत्पन्न करती है। जो आसक्ति से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
वेसाली में कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने लिच्छवी राजकुमारों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (214) कहा।
एक त्यौहार के दिन, बुद्ध भिक्षुओं के एक दल के साथ वैशाली नगर में प्रवेश कर रहे थे। रास्ते में, उनकी मुलाकात कुछ लिच्छवी राजकुमारों से हुई, जो भव्य वस्त्रों में सजे हुए थे। बुद्ध ने उन्हें पूर्ण वेशभूषा में देखकर भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, जो लोग तावतिंसा देवलोक में नहीं गए हैं, उन्हें इन लिच्छवी राजकुमारों को अवश्य देखना चाहिए।" राजकुमार एक आनंद उद्यान की ओर चल पड़े। वहाँ, वे एक वेश्या को लेकर आपस में झगड़ पड़े और जल्द ही मारपीट शुरू हो गई। परिणामस्वरूप, उनमें से कुछ को खून बहते हुए घर ले जाना पड़ा। जब बुद्ध नगर में भोजन करने के बाद भिक्षुओं के साथ लौटे, तो उन्होंने घायल राजकुमारों को घर ले जाते हुए देखा।
उपरोक्त घटना के संदर्भ में भिक्षुओं ने कहा, "एक स्त्री के कारण ये लिच्छवी राजकुमार बर्बाद हो गए।" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, दुख और भय इंद्रिय सुखों के भोग और उनसे आसक्ति के कारण उत्पन्न होते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 214 : आसक्ति (इंद्रिय सुखों से) दुःख उत्पन्न करती है, आसक्ति भय उत्पन्न करती है। जो आसक्ति से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
लिच्छवी राजकुमारों की कहानी
वेसाली के कूटागार मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने लिच्छवी राजकुमारों के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
कथा के अनुसार, एक त्यौहार के दिन, लिच्छवी राजकुमार, अत्यंत विविध आभूषणों से सजे हुए, आनंद उद्यान जाने के लिए शहर से निकले। जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए शहर में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने उन्हें देखा और भिक्षुओं से कहा, “भिक्षुओं, उन लिच्छवी राजकुमारों को देखो! तुममें से जिन्होंने तैंतीस देवताओं के दर्शन नहीं किए हैं, एक बार इन राजकुमारों को देखो!” इतना कहकर बुद्ध शहर में प्रवेश कर गए।
आनंद उद्यान जाते समय राजकुमारों ने एक वेश्या को देखा और उसे अपने साथ ले गए। वेश्या के कारण दोनों आपस में ईर्ष्या करने लगे और इस तरह खून की नदी बहने लगी। लोगों ने उन्हें गद्दों पर लिटाया, उठाया और ले गए। बुद्ध ने भोजन करने के बाद नगर छोड़ दिया। जब भिक्षुओं ने लिच्छवी राजकुमारों को इस प्रकार ले जाते हुए देखा, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, सुबह-सुबह लिच्छवी राजकुमार देवताओं के समान सजे-धजे नगर से निकले थे। परन्तु अब एक स्त्री के कारण वे इस दयनीय स्थिति में आ गए हैं।” बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, चाहे दुःख हो या भय, वह केवल कामवासना के कारण ही उत्पन्न होता है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 214)
रतिया सोको जयति रतिया भयं जयति रतिया
विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो ?
रतिया : वासना के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; रतिया : वासना के कारण; भयं [ भय ]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; रतिया विप्पमुत्तस्स : वासना से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [ भय ]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है। कामवासना से भय उत्पन्न होता है। कामवासना से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति में भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 214)

लिच्छवी राजकुमार : यह श्लोक बुद्ध ने एक ऐसी घटना के संदर्भ में कहा था जिसमें लिच्छवी राजकुमारों का जिक्र था। लिच्छवी वंश, जिसकी राजधानी वैशाली थी— जो बुद्ध के समय में भारत के सबसे महान शहरों में से एक था—एक अत्यंत अभिमानी राजवंश था। निम्नलिखित घटना इसे दर्शाती है।

वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि बुद्ध वैशाली आए हैं और अंबपाली के आम के बाग में ठहरे हैं। वे कीमती वाहनों के काफिले में सवार होकर आम के बाग की ओर चल पड़े। उनमें से कुछ गहरे नीले रंग के थे और उन्होंने गहरे नीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ पीले रंग के थे और उन्होंने पीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ लिच्छवी लाल रंग के थे और उन्होंने लाल रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे। कुछ पीले रंग के थे और उन्होंने पीले रंग के वस्त्र और आभूषण पहने हुए थे।

अंबापाली ने अपने वाहनों को युवा लिच्छवियों के वाहनों के विरुद्ध इस प्रकार दौड़ाया, जैसे धुरी से धुरी, पहिए से पहिए और जुए से जुआ। तब लिच्छवियों ने अंबापाली को संबोधित किया।

"हे अंबपाली, तुम युवा लिच्छवियों के विरुद्ध इस प्रकार धुरी से धुरी, पहिए से पहिए और जुए से जुए को जोड़कर क्यों गाड़ी चलाते हो?"

"ऐसा इसलिए है क्योंकि मैंने कल अपने निवास पर भिक्षुओं के समुदाय सहित भगवान बुद्ध को भिक्षा देने के लिए आमंत्रित किया है," अंबपाली ने कहा।

"क्या आप हमें यह मौका देंगे, अंबपाली, एक लाख सोने के सिक्कों के बदले?" लिच्छवियों ने पूछा।

"नहीं, मेरे स्वामियों, यदि आप मुझे अपने सभी उपनिवेशों सहित संपूर्ण वैशाली भी पेश कर दें, तो भी मैं आपको भोजन अर्पित करने का यह अवसर नहीं दूंगा।"

लिच्छवियों ने उंगलियां चटकाते हुए कहा, "हम आम के बाग की इस स्त्री से हार गए हैं। हम आम के बाग की इस स्त्री से पराजित हो गए हैं।"

हालांकि, वे आम के बाग की ओर बढ़ गए, और बुद्ध ने उन्हें दूर से देखकर भिक्षुओं के समूह से कहा, "आपमें से जिन भिक्षुओं ने तावतिंस लोक के देवताओं को नहीं देखा है, वे इन लिच्छवी राजकुमारों को देखें और उन्हें तावतिंस के देवताओं के समान समझें।"

लिच्छवी राजकुमार अपने वाहनों से उतरे और उस स्थान तक गए जहाँ बुद्ध विराजमान थे। वे एक तरफ बैठ गए और बुद्ध के उपदेश सुनने लगे। यद्यपि उन्होंने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को अगले दिन भिक्षा के लिए आमंत्रित किया, पर बुद्ध ने कहा कि उन्होंने पहले ही अंबपाली से भिक्षा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। लिच्छवी राजकुमारों ने चुटकी बजाते हुए कहा, "हम हार गए, और आम के बाग की स्त्री ने हमें परास्त कर दिया।"

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 215

———————————————————————

(धम्मपद 214) <<<< पिछला || धम्मपद 215 || अगला >>>> (धम्मपद 216)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 215 - अनिट्ठिगन्धकुमार वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Kamato jayati soko
कामतो जयति भयम्
कामतो विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

---

श्लोक 215 : कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है, कामवासना से भय उत्पन्न होता है। जो कामवासना से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

अनित्थिगंधा कुमार की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनित्थिगंधा नामक एक युवक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (215) कहा।

अनित्थिगंधा सावत्थी में रहते थे। उनका विवाह मद्दाओं के देश में स्थित सागला नगर की एक सुंदर युवती से होने वाला था। जब दुल्हन अपने घर से सावत्थी आ रही थी, तो वह बीमार पड़ गई और रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई। जब दूल्हे को अपनी दुल्हन की इस दुखद मृत्यु के बारे में पता चला तो वह अत्यंत स्तब्ध रह गया।

इस समय, बुद्ध यह जानते हुए कि युवक के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है, उसके घर गए। युवक के माता-पिता ने बुद्ध को भिक्षा दी। भोजन के बाद, बुद्ध ने उसके माता-पिता से युवक को अपने समक्ष लाने को कहा। जब वह आया, तो बुद्ध ने उससे पूछा कि वह इतने दुःख और पीड़ा में क्यों है, और युवक ने अपनी युवा दुल्हन की दुखद मृत्यु की पूरी कहानी सुनाई। तब बुद्ध ने उससे कहा, "हे अनित्थिगंधा! कामवासना दुःख को जन्म देती है; वस्तुओं की लालसा और इंद्रिय सुखों की लालसा के कारण ही दुःख और भय उत्पन्न होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 215 : कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है, कामवासना से भय उत्पन्न होता है। जो कामवासना से मुक्त है, उसे दुःख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

प्रवचन के अंत में अनित्थिगंधा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अनित्थिगंधा कुमार की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनित्थिगंधा नामक एक युवक के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

हमें बताया जाता है कि अनित्थिगंधा ब्रह्मालोक से निकलकर श्रावस्ती लोक में एक धनी परिवार में पुनर्जन्म लिया। जन्म से ही उन्होंने किसी स्त्री के निकट जाने से इनकार कर दिया। जब वे वयस्क हुए तो उनके माता-पिता ने उनसे कहा, "पुत्र, हम तुम्हारा विवाह कराना चाहते हैं।" युवक ने उत्तर दिया, "मुझे स्त्री की कोई आवश्यकता नहीं है।" उन्होंने बार-बार उनसे कहा, और हर बार उन्होंने इनकार कर दिया। अंततः उन्होंने पाँच सौ सुनारों से सोने की एक ठोस प्रतिमा बनवाई, जो अत्यंत सुंदर स्त्री के रूप में थी, और अपने माता-पिता से कहा, "यदि आप मुझे ऐसी ही कोई कन्या लाकर देंगे, तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" ऐसा कहते हुए उन्होंने सोने की प्रतिमा की ओर इशारा किया। तब उनके माता-पिता ने कई प्रतिष्ठित ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें यह कहते हुए भेजा, "हमारे पुत्र में बहुत गुण हैं; अवश्य ही कोई कन्या होगी जिसने उनके साथ पुण्य कर्म किए होंगे। इस सोने की प्रतिमा को अपने साथ ले जाओ, विदेश जाओ और अपने साथ ऐसी ही सुंदर कन्या लाकर लाओ।" "सहमत हैं," ब्राह्मणों ने कहा, और वे एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हुए मद्दा राज्य के सागला नगर में पहुँचे।

इस नगर में लगभग सोलह वर्ष की एक युवती रहती थी, जो अत्यंत सुंदर थी। ब्राह्मणों ने सोने की मूर्ति को स्नानघर की ओर जाने वाली सड़क के किनारे स्थापित कर दिया। जब उस युवती की दाई ने मूर्ति देखी, तो उसने मन ही मन कहा, "मैंने सोचा था कि यह मेरी अपनी बेटी है; भला यह क्या हो सकती है?" तब ब्राह्मणों ने उससे पूछा, "हे स्त्री, क्या तुम्हारी बेटी इस मूर्ति जैसी दिखती है?" "मेरी बेटी के सामने यह मूर्ति क्या है?" "तो फिर हमें अपनी बेटी दिखाओ।" दाई ब्राह्मणों के साथ घर तक गई। घर के मुखिया और स्वामिन ने ब्राह्मणों का सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और फिर अपनी पुत्री को नीचे बुलाकर महल के निचले तल पर सोने की प्रतिमा के पास खड़ा कर दिया। कन्या इतनी सुंदर थी कि प्रतिमा उसके सामने फीकी लगने लगी। ब्राह्मणों ने प्रतिमा उन्हें दे दी, कन्या को अपने साथ ले गए और अनित्तिगंधा कुमार के माता-पिता को सूचना देने चले गए। वे प्रसन्न होकर ब्राह्मणों से बोले, "इस कन्या को शीघ्र यहाँ ले आओ।" ऐसा कहकर उन्हें बहुमूल्य भेंटों के साथ भेजा गया। अनित्तिगंधा कुमार ने जब यह सूचना सुनी तो उन्होंने कहा, "कन्या को शीघ्र यहाँ ले आओ।" वह युवती एक गाड़ी में सवार हुई, लेकिन वह इतनी नाज़ुक थी कि रास्ते में गाड़ी के झटकों से उसे ऐंठन होने लगी और उसकी मृत्यु हो गई। जब युवक को उसकी मृत्यु की सूचना मिली, तो वह बोला, "अफ़सोस, मैं इतनी सुंदर स्त्री से मिलने से चूक गया!" वह गहरे शोक में डूब गया और दुःख और पीड़ा से व्याकुल हो गया।

बुद्ध ने देखा कि युवक धर्म परिवर्तन के लिए तैयार है, इसलिए भिक्षा मांगने के दौरान वे उसके घर के द्वार पर रुके। युवक के माता-पिता ने उन्हें भोजन के लिए अंदर बुलाया। भोजन समाप्त होने पर बुद्ध ने युवक से पूछा, "युवक, तुम बहुत दुखी लग रहे हो।" युवक ने उत्तर दिया, "जी जी, पूज्यवर, अभी-अभी रास्ते में एक अत्यंत सुंदर स्त्री का निधन हो गया है, और उसकी मृत्यु की खबर से मैं बहुत दुखी हूँ; मेरा दुख इतना गहरा है कि मुझे भोजन भी नहीं पच रहा है।" तब बुद्ध ने उससे कहा, "परन्तु, युवक, क्या तुम अपने इस गहरे दुःख का कारण जानते हो?" "नहीं, पूज्यवर, मैं नहीं जानता।" बुद्ध ने कहा, "युवक, प्रेम के कारण तुम पर गहरा दुःख आया है; दुःख और भय दोनों प्रेम से उत्पन्न होते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 215)

कामतो सोको जयति कामतो भयं जयति

कामातो विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो

कामातो [ कामता ]: जुनून के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; कामातो [ कामता ]: जुनून के कारण; भयं [ भय ]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; कामातो विप्पमुत्तस्स : जुनून से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [ भय ]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?

इच्छा से दुख उत्पन्न होता है। इच्छा से भय उत्पन्न होता है। इच्छा से मुक्त व्यक्ति को दुख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 215)

विशेष टिप्पणी : राजकुमार अनित्थिगंधा की कहानी राजा कुश की कहानी से उल्लेखनीय रूप से मिलती-जुलती है। हालांकि, कुश की कहानी के विपरीत, इस कहानी में राजकुमार अत्यंत सुंदर है। यह समानता राजकुमार की दृष्टि में नारी सौंदर्य के आदर्श को दर्शाने वाली एक स्वर्ण प्रतिमा के निर्माण में प्रकट होती है। इस कहानी में और कुश की घटना में भी, राजकुमार आदर्श दुल्हन की तलाश में ब्राह्मणों को स्वर्ण प्रतिमा के साथ भेजता है। लेकिन इस कहानी में, स्वर्ण प्रतिमा से मेल खाने वाली एक सुंदर स्त्री की खोज होती है, और घटना का अंत दुखद होता है, क्योंकि राजकुमार से मिलने के रास्ते में ही दुल्हन की मृत्यु हो जाती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 216

---

(धम्मपद 215) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 216 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 217)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 216 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

तनहया जपति सोको
तनहया जयति भयम्
तनहया विप्पमुत्तस्सा
natthi soko kuto bhayam.

---

श्लोक 216 : लालसा दुख को जन्म देती है, लालसा भय को जन्म देती है। जो लालसा से मुक्त है, उसे दुख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (216) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया जो किसान था।

वह ब्राह्मण सावत्थी में रहता था और बौद्ध नहीं था। लेकिन बुद्ध जानते थे कि वह ब्राह्मण निकट भविष्य में सोतापत्ति फल प्राप्त करेगा। इसलिए बुद्ध उस ब्राह्मण के पास गए जो अपना खेत जोत रहा था और उससे बात की। ब्राह्मण उससे मित्रवत हो गया और बुद्ध का आभारी था कि उन्होंने उसमें और उसके खेत के काम में रुचि दिखाई। एक दिन उसने बुद्ध से कहा, "समना गौतम, जब मैं इस खेत से अपना चावल इकट्ठा कर लूंगा, तो पहले आपको थोड़ा सा अर्पित करूंगा। मैं आपको चावल दिए बिना अपना चावल नहीं खाऊंगा।"

हालांकि, बुद्ध पहले से ही जानते थे कि उस वर्ष ब्राह्मण को अपने खेत से चावल काटने का अवसर नहीं मिलेगा, लेकिन वे चुप रहे।

फिर, ब्राह्मण की धान की कटाई से एक रात पहले, भारी बारिश हुई जिससे धान की पूरी फसल बह गई। ब्राह्मण बहुत दुखी हुआ, क्योंकि अब वह अपने मित्र समना गौतम को धान भेंट नहीं कर पाएगा।

बुद्ध ब्राह्मण के घर गए और ब्राह्मण ने उन्हें अपने ऊपर आई विपत्ति के बारे में बताया। उत्तर में बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, तुम दुःख का कारण नहीं जानते, पर मैं जानता हूँ। दुःख और भय उत्पन्न होते हैं तो वे लालसा के कारण उत्पन्न होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 216 : लालसा दुख को जन्म देती है, लालसा भय को जन्म देती है। जो लालसा से मुक्त है, उसे दुख नहीं होता; भला उसे भय कैसे हो सकता है?

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक किसान ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण, जिसके विचार भ्रामक थे, एक दिन नदी के किनारे अपना खेत साफ करने गया। बुद्ध ने देखा कि वह धर्म परिवर्तन के लिए तैयार है, इसलिए वे उसके पास गए। ब्राह्मण ने बुद्ध को देखा तो भी उन्हें कोई आदर नहीं दिया और चुप रहा। बुद्ध ने पहले ही बात की और पूछा, "ब्राह्मण, तुम क्या कर रहे हो?" "हे पूज्यवर, मैं अपना खेत साफ कर रहा हूँ।" बुद्ध ने और कुछ नहीं कहा और अपने मार्ग पर चले गए। अगले दिन, ब्राह्मण अपना खेत जोतने गया। बुद्ध उसके पास गए और पूछा, "ब्राह्मण, तुम क्या कर रहे हो?" "हे पूज्यवर, मैं अपना खेत जोत रहा हूँ।" उसका उत्तर सुनकर बुद्ध अपने मार्ग पर चले गए। कई दिनों तक लगातार बुद्ध ब्राह्मण के पास गए और वही प्रश्न पूछा। उत्तर मिलने पर, "हे पूज्यवर, मैं अपने खेत में बीज बो रहा हूँ, मैं अपने खेत से खरपतवार निकाल रहा हूँ, मैं अपने खेत की रखवाली कर रहा हूँ," बुद्ध अपने मार्ग पर चले गए। एक दिन ब्राह्मण ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, जब से मैंने अपना खेत साफ किया है, आप यहाँ आते रहे हैं। यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं उसे आपके साथ बाँटूँगा। मैं स्वयं आपको दिए बिना नहीं खाऊँगा। अब से आप मेरे सहभागी होंगे।"

समय बीतने के साथ-साथ उनकी फसल खूब फली-फूली। एक दिन उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरी फसल खूब फली-फूली है; कल मैं कटाई करने वालों को काम पर लगाऊंगा।" अतः उन्होंने कटाई की तैयारी शुरू कर दी। लेकिन उसी रात भयंकर बारिश हुई और उनकी सारी फसल बह गई; खेत ऐसा लग रहा था मानो उसे पूरी तरह से काट दिया गया हो। लेकिन बुद्ध को शुरू से ही पता था कि उनकी फसल अच्छी नहीं होगी। सुबह जब ब्राह्मण ने देखा कि खेत पूरी तरह से साफ हो गया है, तो उन्होंने गहरे दुःख से सोचा, "जिस दिन से मैंने पहली बार खेत साफ किया है, उस दिन से भिक्षु गौतम इस खेत में आते रहे हैं और मैंने उनसे कहा है, 'यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं इसे आपके साथ बाँट लूँगा। मैं स्वयं आपको दिए बिना नहीं खाऊँगा। अब से आप मेरे सहभागी होंगे।' परन्तु मेरे हृदय की इच्छा पूरी नहीं हुई।" और इसलिए उन्होंने भोजन करने से इनकार कर दिया और सोने चले गए। अब बुद्ध अपने घर के द्वार पर रुक गए। जब ब्राह्मण ने सुना कि बुद्ध आ गए हैं, तो उसने कहा, "मेरे सहभागी को अंदर लाओ और उन्हें यहाँ बैठने दो।" उनके सेवकों ने ऐसा ही किया। जब बुद्ध अपने आसन पर बैठ गए, तो उन्होंने पूछा, "क्या बात है, ब्राह्मण?" "आदरणीय, जब से मैंने अपना खेत साफ किया है, तब से आप मुझसे मिलने आते रहे हैं, और मैंने आपसे कहा है, 'यदि मेरी फसल अच्छी हुई, तो मैं उसे आपके साथ बाँट लूँगा।' परन्तु मेरे मन की इच्छा पूरी नहीं हुई। इसलिए, मुझे दुःख हुआ है, और अब मुझे भोजन से लाभ नहीं होता।" तब बुद्ध ने उनसे कहा, "परन्तु, ब्राह्मण, क्या तुम जानते हो कि इस दुःख का कारण क्या है?" "नहीं, आदरणीय, यह मैं नहीं जानता। परन्तु आप जानते हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी, ब्राह्मण। दुःख हो या भय, वह केवल इच्छा से ही उत्पन्न होता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 216)
तन्हाय सोको जयति , तन्हाय भयं जयति
तन्हाय विप्पमुत्तस्सा सोको नत्थि भयं कुतो
तन्हाय : इच्छा के कारण; सोको : दुःख; जयति : जन्म लेता है; तन्हाय : इच्छा के कारण; भयं [ भय ]: डर; जयति : उत्पन्न होता है; तन्हाय विप्पमुत्तस्स : इच्छा से मुक्त व्यक्ति के लिए; सोको नत्थि : कोई दुःख नहीं है; भयं [ भय ]: डर; कुटो : कैसे हो सकता है?
व्यथा से दुःख उत्पन्न होता है। व्यथा से भय उत्पन्न होता है। व्यथा से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को भय कैसे हो सकता है?
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 216)
ताण्हा : प्यास; लालसा। लालसा ही दुख का मुख्य कारण है, और पुनर्जन्म के निरंतर चक्र का भी। "हे भिक्षु, दुख का मूल क्या है? यह वही लालसा है जो नए जन्म को जन्म देती है और सुख और कामवासना से बंधी हुई, यहाँ-वहाँ नए-नए आनंद की खोज करती है। यह इंद्रिय-तना ( काम-तना ), अस्तित्व की लालसा ( भव-तना ), और गैर-अस्तित्व की लालसा ( विभव-तना ) है। ताण्हा आश्रित उत्पत्ति ( पटिच्च-समुप्पाद ) के सूत्र में आठवीं कड़ी है ।"
छह इंद्रिय-विषयों के अनुरूप, छह प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं: दृश्य वस्तुओं की तृष्णा, ध्वनियों, गंधों, स्वादों, शारीरिक अनुभूतियों और मानसिक अनुभूतियों की तृष्णा ( रूपा-तन्हा , सद्धा , गंध , रस , फोत्तब्बा और धम्म )। त्रिगुणी अस्तित्व के अनुरूप, तीन प्रकार की तृष्णाएँ होती हैं: इंद्रिय-संबंधी अस्तित्व की तृष्णा ( काम-तन्हा ), सूक्ष्म भौतिक अस्तित्व की तृष्णा ( रूप ) और अभौतिक अस्तित्व की तृष्णा ( अरूप )।
आंतरिक रूप से उत्पन्न अठारह विचार-मार्ग ( तन्हा-विचरित ) और बाह्य रूप से उत्पन्न अठारह विचार-मार्ग हैं ; भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल में घटित होने के कारण इनकी कुल संख्या एक सौ आठ है। प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार, तृष्णा भावना से प्रेरित होती है। अस्तित्व की तृष्णा ( भव-तन्हा ) के बारे में कहा गया है: "हे भिक्षुओं, अस्तित्व की तृष्णा का कोई ऐसा आरंभ नहीं देखा जा सकता जिसके पहले वह न हो और जिसके बाद वह उत्पन्न हो। परन्तु यह देखा जा सकता है कि अस्तित्व की तृष्णा की एक विशिष्ट स्थिति होती है। हे भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व की तृष्णा का भी एक पोषण देने वाला ( साहारम् ) कारक होता है और वह इसके बिना नहीं होती। और वह क्या है? उत्तर है, अज्ञान।" अस्तित्व की तृष्णा और अज्ञान को सुखी और दुःखी नियतियों (जीवन पथों) के प्रमुख कारण कहा जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 217

---

(धम्मपद 216) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 217 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 218)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 217 - पञ्चसतादारक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सिलादससनसम्पन्नम
धम्मत्थम सच्चवेदिनाम
अत्तानो कम्म कुब्बनम
tam jano kurute piyam.

---

श्लोक 217 : जो व्यक्ति सद्‌गुण और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है, जो धम्म में स्थापित है, जिसने सत्य को जान लिया है और अपने कर्तव्यों का पालन करता है, वह सभी मनुष्यों का प्रिय है।

---

पांच सौ लड़कों की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ लड़कों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (217) कहा।

एक त्यौहार के दिन, बुद्ध कई भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह नगर में प्रवेश किया। रास्ते में, उन्हें पाँच सौ लड़के एक उद्यान की ओर जाते हुए मिले। लड़कों के पास पैनकेक से भरी कुछ टोकरियाँ थीं, लेकिन उन्होंने बुद्ध और उनके भिक्षुओं को कुछ भी भेंट नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, आज तुम ये पैनकेक खा लो; स्वामी हमारे पीछे आ रहा है। हम इनमें से कुछ पैनकेक लेकर ही आगे बढ़ेंगे।" यह कहकर, बुद्ध और उनके भिक्षु एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे। ठीक उसी समय थेरा कस्सपा वहाँ से गुज़रे, और उन्हें देखकर लड़कों ने उन्हें प्रणाम किया और अपने सारे पैनकेक थेरा को भेंट कर दिए।

तब थेरा ने लड़कों से कहा, "मेरे गुरु, परम पूज्य बुद्ध, वहाँ एक वृक्ष के नीचे कुछ भिक्षुओं के साथ विश्राम कर रहे हैं; जाओ और उन्हें और भिक्षुओं को अपने पैनकेक भेंट करो।" लड़कों ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। बुद्ध ने उनके पैनकेक का प्रसाद स्वीकार किया। बाद में, जब भिक्षुओं ने कहा कि लड़के थेरा कस्सपा के प्रति बहुत स्नेह रखते हैं, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र कस्सपा के समान सभी भिक्षु देवदूतों और मनुष्यों दोनों को प्रिय होते हैं। ऐसे भिक्षुओं को भिक्षुओं के लिए आवश्यक चारों वस्तुओं का भरपूर प्रसाद प्राप्त होता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 217 : जो व्यक्ति सद्‌गुण और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है, जो धम्म में स्थापित है, जिसने सत्य को जान लिया है और अपने कर्तव्यों का पालन करता है, वह सभी मनुष्यों का प्रिय है।

---

प्रवचन के अंत में पांच सौ लड़कों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ लड़कों की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ लड़कों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, एक विशेष पर्व के अवसर पर, जब बुद्ध अपने आठ प्रमुख भिक्षुओं और पाँच सौ भिक्षुओं के दल के साथ भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि पाँच सौ युवक अपने कंधों पर केक की टोकरियाँ लिए शहर से निकलकर एक उद्यान की ओर जा रहे हैं। बुद्ध को देखकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और बिना किसी भिक्षु से "एक केक खाओ" कहे अपने मार्ग पर आगे बढ़ गए। उनके चले जाने पर, बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या आप कुछ केक खाना चाहेंगे?" "आदरणीय, मेरे केक कहाँ हैं?" "क्या आप उन युवकों को अपने कंधों पर केक की टोकरियाँ लिए जाते हुए नहीं देख रहे हैं?" "आदरणीय, ऐसे युवक कभी किसी को केक नहीं देते।" "भिक्षुओं, यद्यपि इन युवकों ने आपको या मुझे अपने केक में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया है, फिर भी केक का स्वामी एक भिक्षु पीछे-पीछे आ रहा है। आगे बढ़ने से पहले आपको कुछ केक अवश्य खाने चाहिए।" बुद्ध किसी भी मनुष्य के प्रति द्वेष या घृणा की भावना नहीं रखते। अत: बुद्ध ने ऐसा कहा। और ऐसा कहकर वे भिक्षुओं के समूह के साथ गए और एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

जब युवकों ने पूज्य महा कस्सपा को पीछे-पीछे आते देखा, तो वे तुरंत उनसे मोहित हो गए। वास्तव में, उन्हें देखकर उनके शरीर में आनंद की लहर दौड़ गई। उन्होंने तुरंत अपनी टोकरियाँ नीचे रख दीं, पाँच विश्राम करने वाले बुजुर्ग को प्रणाम किया, टोकरियाँ समेत सभी रोटी और प्रसाद ऊपर उठाए और बुजुर्ग को प्रणाम करते हुए उनसे कहा, “पूज्यवर, कुछ रोटी ग्रहण कीजिए।” उत्तर में बुजुर्ग ने उनसे कहा, “बुद्ध भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। आप अपनी भेंट लेकर जाइए और भिक्षुओं के साथ भोजन कीजिए।” “अच्छी बात है, पूज्यवर,” युवकों ने उत्तर दिया। फिर भी, वे मुड़कर वापस बुजुर्ग के पास गए, उन्हें रोटी दी, एक तरफ खड़े होकर उन्हें देखते रहे और भोजन समाप्त होने पर उन्हें जल पिलाया। भिक्षु नाराज हो गए और बोले, “इन युवकों ने भिक्षा देने में पक्षपात किया है; इन्होंने न तो बुद्ध से और न ही प्रमुख भिक्षुओं से भिक्षा स्वीकार करने का अनुरोध किया, परन्तु पूज्य महा कस्सपा को देखते ही अपनी टोकरियाँ लेकर उन्हें रोटी भेंट करने चले गए।” बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, “भिक्षुओं, मेरे पुत्र महा कस्सपा जैसे भिक्षु देवताओं और मनुष्यों दोनों को समान रूप से प्रिय हैं; ऐसे व्यक्ति को वे चारों आवश्यक वस्तुओं से आदर देना पसंद करते हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 217)
शिलादासनं सम्पन्नं धम्मथं सच्चवादिनं
अत्तनो कम्म कुब्बनं तं जानो पियं कुरुते
सिलादासन सम्पन्नं [ सम्पन्न ]: अनुशासन और अंतर्दृष्टि से संपन्न; dhammaṭṭhaṭ [ dhammaṭṭha ]: धम्म में अच्छी तरह से स्थापित; सच्चवादिनं [ सक्कवादिना ]: सच्चा; अट्टानो [ अट्टाना ]: अपना; कम्म कुब्बाणं [ कुब्बाना ]: गतिविधियों की देखभाल करना; तं : उस प्रकार का अस्तित्व; जानो : जनता; पियं कुरुते : प्यार (स्नेह में पकड़)
वह अनुशासन और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हैं। वे धर्म के नियमों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे सत्य बोलते हैं। वे अपने सांसारिक और आध्यात्मिक दायित्वों का निर्वाह करते हैं। जनता ऐसे व्यक्ति की आराधना करती है।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 217)
सच्चवादिनं : सत्य को जान लेने वाले।
बुद्ध ने चार आर्य सत्यों में दृढ़ विश्वास रखा, जिन्हें उन्होंने शाश्वत मानवीय स्थिति के रूप में खोजा था। सत्यनिष्ठा ( सच्च ) सातवीं पूर्णता है। यहाँ सच्चा से तात्पर्य अपने वचन का पालन करना है। यह बोधिसत्व का एक प्रमुख गुण है, क्योंकि वह अपने वचन का उल्लंघन नहीं करता। वह जैसा बोलता है, वैसा ही करता है, और जैसा करता है, वैसा ही बोलता है ( यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी )। हरित जातक के अनुसार, बोधिसत्व अपने जीवन के भ्रमण के दौरान कभी भी असत्य नहीं बोलता, यद्यपि कभी-कभी वह अन्य चार नियमों का उल्लंघन कर सकता है। वह सत्य को कभी नहीं छुपाता, यहाँ तक कि शिष्टाचारवश भी नहीं। वह सत्य को अपना मार्गदर्शक बनाता है और अपने वचन का पालन करना अपना परम कर्तव्य मानता है। वह वचन देने से पहले अच्छी तरह विचार करता है, लेकिन एक बार वचन दे देने के बाद उसे हर हाल में पूरा करता है, चाहे इसके लिए उसे अपने प्राणों की भी कीमत चुकानी पड़े।
हिरी जातक में बोधिसत्व सलाह देते हैं: "अपने हर वादे के प्रति कर्म में सच्चे रहो, जो तुम नहीं कर सकते उसका वादा करने से इनकार करो; बुद्धिमान लोग खोखले शेखीबाजों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं।"
महा सुतसोमा जातक में फिर से वर्णित है कि एक प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए बोधिसत्व अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए भी तैयार थे। "जिस प्रकार आकाश में सूर्योदय का तारा सदा स्थिर रहता है, और समस्त ऋतुओं, कालों और वर्षों में भी सत्य के मार्ग पर चलता रहता है, उसी प्रकार वे सर्वप्रसिद्ध वाणी में सत्य के मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।"
एक बोधिसत्व भरोसेमंद, ईमानदार और सच्चा होता है। वह जो सोचता है, वही बोलता है। उसके विचारों, शब्दों और कर्मों में पूर्ण सामंजस्य होता है। वह अपने सभी व्यवहारों में सुसंगत और स्पष्टवादी होता है। वह पाखंडी नहीं होता क्योंकि वह अपने उच्च सिद्धांतों का कड़ाई से पालन करता है। उसके अंतर्मन और बाहरी वाणी में कोई भेद नहीं होता। उसका निजी जीवन उसके सार्वजनिक जीवन के अनुरूप होता है।
वह चापलूसी से दूसरों का दिल नहीं जीतता, उनकी प्रशंसा पाने के लिए स्वयं को बड़ा नहीं समझता, न ही अपनी कमियों को छुपाता है और न ही अपने गुणों का व्यर्थ प्रदर्शन करता है। प्रशंसनीय की वह बिना द्वेष के प्रशंसा करता है, निंदनीय की वह विवेकपूर्ण ढंग से निंदा करता है, तिरस्कार से नहीं बल्कि करुणा से। (हालाँकि, वह हमेशा सच नहीं बोलता।) यदि ऐसा कथन दूसरों के भले और सुख के लिए लाभकारी न हो, तो वह मौन रहता है। यदि कोई सत्य दूसरों के लिए लाभकारी प्रतीत होता है, तो वह उसे बोलता है, चाहे वह स्वयं के लिए कितना भी हानिकारक क्यों न हो। और वह दूसरों के वचन का उतना ही सम्मान करता है जितना अपने वचन का।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 218

———————————————————————

(धम्मपद217) <<<< पिछला॥ धम्मपद218 ॥अगला >>>> (धम्मपद 219 और 220)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 218 - एका अनागमित्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
चंदजातो अनक्खते
manasa ca phuto siya
kamesu ca appatibaddhacitto
"uddhamsoto"(1) ti vuccati.

---

श्लोक 218 : जिसने अवर्णनीय (अर्थात निर्वाण) की इच्छा विकसित कर ली है, जिसका मन उसी तक पहुँचता है, और जो अब इंद्रिय जगत (कमलोक) से आसक्त नहीं है, उसे उद्धांशोतो (उद्धांशोतो) कहा जाता है।

---

1. उद्धमसोतो: वह जो धारा के विपरीत दिशा में जा रहा हो, अर्थात् वह जो "शुद्ध लोकों" (सुधावास ब्रह्मलोक) की ओर अग्रसर हो। यहाँ अनागामी या अब लौटने वाले व्यक्ति का संदर्भ है, जो अविहा शुद्धवास में जन्म लेता है और वहाँ से ऊपर की ओर बढ़ते हुए अकनित्थ शुद्धवास पहुँचता है, जो पाँचों शुद्ध लोकों में सर्वोच्च है।

---

एक अनागामी थेरा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (218) का उच्चारण किया, जो एक थेरा के संदर्भ में था जो अनागामी थे।
एक बार थेरा के शिष्यों ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने किसी मार्ग को प्राप्त किया है; लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, हालांकि उन्होंने अनागामी मार्ग, तीसरा मार्ग प्राप्त कर लिया था। वे चुप रहे क्योंकि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त होने तक अपनी उपलब्धि के बारे में बात न करने का संकल्प लिया था। लेकिन थेरा अर्हतत्व प्राप्त किए बिना और अनागामी मार्ग अंतर्दृष्टि की अपनी उपलब्धि के बारे में कुछ भी कहे बिना ही इस दुनिया से चले गए।
उनके शिष्यों को लगा कि उनके गुरु का निधन किसी भी मार्ग को प्राप्त किए बिना हो गया है और उन्हें उन पर बहुत दुख हुआ। वे बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि उनके गुरु का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं! तुम्हारे गुरु, जो निधन से पहले अनागामी थे, अब ब्रह्माओं/प्रधान देवलोक (शुद्धवास ब्रह्मलोक) में पुनर्जन्म ले चुके हैं। उन्होंने अनागामी मार्ग की प्राप्ति का खुलासा नहीं किया क्योंकि उन्हें इस बात का लज्जा था कि वे केवल इतना ही प्राप्त कर पाए थे, और वे अरहतत्व प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहे थे। तुम्हारे गुरु अब इंद्रियलोक (कमलोक) के आसक्ति से मुक्त हो चुके हैं और निश्चित रूप से उच्चतर लोकों में विचरण करेंगे।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 218 : जिसने अवर्णनीय (अर्थात निर्वाण) की इच्छा विकसित कर ली है, जिसका मन उसी तक पहुँचता है, और जो अब इंद्रिय जगत (कमलोक) से आसक्त नहीं है, उसे उद्धांशोतो (उद्धांशोतो) कहा जाता है।

---

प्रवचन के अंत में उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक अनागामी पूज्य की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अनागामी (प्रधानाचार्य) बुजुर्ग के संदर्भ में यह श्लोक कहा था ।
एक बार, बड़े गुरु के शिष्यों ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त किया है; लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, हालांकि उन्होंने अनागामी मार्ग , तीसरा मार्ग प्राप्त कर लिया था। वे चुप रहे क्योंकि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त होने तक अपनी उपलब्धि के बारे में बात न करने का संकल्प लिया था। लेकिन गुरु अर्हतत्व प्राप्त किए बिना और अनागामी मार्ग की अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के बारे में कुछ भी कहे बिना ही इस दुनिया से चले गए।
उनके शिष्यों को लगा कि उनके गुरु का निधन बिना किसी मार्ग को प्राप्त किए ही हो गया है और उन्हें उन पर बहुत दुख हुआ। वे बुद्ध के पास गए और उनसे पूछा कि उनके गुरु का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है। बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं! तुम्हारे गुरु, जो निधन से पहले अनागामी थे, अब ब्राह्मणों के निवास ( शुद्धवास ब्रह्मलोक ) में पुनर्जन्म ले चुके हैं। उन्होंने अनागामी मार्ग की प्राप्ति का खुलासा नहीं

किया क्योंकि उन्हें इस बात का लज्जा था कि वे केवल इतना ही प्राप्त कर पाए थे, और वे अरहतत्व प्राप्त करने के लिए अत्यंत प्रयासरत थे। तुम्हारे गुरु अब इंद्रियलोक ( कामलोक ) के आसक्ति से मुक्त हो चुके हैं और निश्चित रूप से उच्चतर लोकों में विचरण करेंगे।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 218)

अनक्खते छंदजातो मनसा फूटो च सिया कामेसु
अप्पतिबद्धचित्तो च उद्धंसोतो इति वुकाति

अनक्खाते : (जिसमें) अवर्णनीय (निर्वाण) में; चंदजातो [ चंदजात ]: लालसा उत्पन्न हुई है; मनसा : मन में; फुटो च सिया : ने भी (निर्वाण) को स्पर्श किया है; कामेसु : इच्छाओं में; अप्पटिबद्धचित्तो च : अनासक्त भी; उद्धंसोतो इति : (ऐसा व्यक्ति) कहलाता है; वच्चति : धारा के विपरीत दिशा में जाने वाला

उस व्यक्ति में निर्वाण के लिए एक गहरी तड़प उत्पन्न हो चुकी है। उसने मानसिक रूप से निर्वाण को स्पर्श कर लिया है। उसे धारा के विपरीत तैरने वाला, विपरीत दिशा में जाने वाला व्यक्ति कहा जाता है। उसने निर्वाण की ओर अपनी यात्रा शुरू कर दी है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 218)

अनागामी : जो वापस नहीं लौटता। इस श्लोक के वरिष्ठ व्यक्ति ने अनागामी (वापसी न करने वाले) का मार्ग प्राप्त कर लिया था , लेकिन उन्होंने इसका खुलासा नहीं किया।

अनागामी, पवित्रता के तीसरे चरण पर स्थित एक श्रेष्ठ शिष्य ( अरीय-पुग्गला ) हैं। गैर-वापसी करने वालों के पाँच वर्ग हैं और ऐसा कहा जाता है:

"एक प्राणी पांच निम्न बंधनों ( संयोजन ) के लुप्त होने से उच्च लोक (शुद्ध धामों के देवताओं के बीच, शुद्धवास ) में पुन: प्रकट होता है, और उस लोक से (इंद्रिय लोक में) वापस आए बिना वह वहाँ निर्वाण प्राप्त करता है।"

(1) "वह वहाँ (शुद्ध निवासों में) प्रकट होने के तुरंत बाद या अर्ध जीवन काल से आगे बढ़े बिना ही उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त कर सकता है। ऐसे प्राणी को वह कहा जाता है जो जीवन के पहले आधे भाग में निर्वाण प्राप्त कर लेता है ( अंतरापरिनिब्बायी )।

(2) "या, अर्ध-जीवनकाल से अधिक समय तक जीवित रहते हुए, या मृत्यु के क्षण में, वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को अर्ध-जीवनकाल पार करने के बाद निर्वाण प्राप्त करने वाला ( उपहच्च-परिनिब्बायी ) कहा जाता है।"

(3) "या, परिश्रम से वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के लिए पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को परिश्रम से निर्वाण प्राप्त करने वाला कहा जाता है" ( ससंखार-परिनिब्बायी )।

(4) "या फिर, बिना प्रयास किए वह उच्च बंधनों पर विजय प्राप्त करने के पवित्र मार्ग को प्राप्त कर लेता है। ऐसे प्राणी को निर्वाण प्राप्त करने वाला ( असंखार-परिनिब्बायी ) कहा जाता है।"

(5) "या, अविहा-देवताओं के स्वर्ग ( शुद्धावास ) से लुप्त होने के बाद, वह निश्चिंत ( आतप्पा ) देवताओं के स्वर्ग में प्रकट होता है। वहाँ से लुप्त होने के बाद वह स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले ( सुदस्स ) देवताओं के स्वर्ग में, वहाँ से स्पष्ट दृष्टि वाले ( सुदस्सी ) देवताओं के स्वर्ग में, और वहाँ से सर्वोच्च ( अकानिट्ठ ) देवताओं के स्वर्ग में प्रकट होता है । वहाँ वह उच्च बंधनों से मुक्ति पाने के पवित्र मार्ग को प्राप्त करता है। ऐसे प्राणी को सर्वोच्च देवताओं तक धारा के विपरीत जाने वाला ( उद्धम्सोत-अकानिट्ठ-गामी ) कहा जाता है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद

---

(धम्मपद218) <<<< पिछला|| धम्मपद 219 और 220 ||अगला >>>> (धम्मपद221)

---

स्रोत : डॉ म्या टिन, एमए द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

---

## धम्मपद छंद 219 और 220 - नंदिया वत्थु

Cirappavsim purisam
durato sotthimagatam
natimitta suhajja ca
अभिनन्दन्ति अगतम.
तथावा कटपुन्नम्पी
asma loka param gatam
punnani patiganhanti
piyam nativa agatam.

---

श्लोक 219 : एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था और दूर से सुरक्षित घर लौट आया है, उसके लौटने पर रिश्तेदारों, दोस्तों और शुभचिंतकों द्वारा उसका खुशी से स्वागत किया जाता है।

---

श्लोक 220 : इसी प्रकार, जब कोई नेक काम करने वाला इस दुनिया से दूसरी दुनिया में जाता है, तो उसके अच्छे कर्म उसका स्वागत करेंगे, जैसे रिश्तेदार किसी प्रियजन के लौटने पर उसका स्वागत करते हैं।

---

नंदिया की कहानी

इसिपताना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने नंदिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (219) और (220) का उच्चारण किया।

नंदिया बरनासी का एक धनी व्यक्ति था। भिक्षुओं के लिए मठ बनाने के लाभों पर बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, नंदिया ने इसिपताना में महाविहार मठ का निर्माण करवाया। यह भवन शिखरयुक्त और पूर्ण रूप से सुसज्जित था। जैसे ही मठ बुद्ध को समर्पित किया गया, नंदिया के लिए तावतिंसा देवलोक में एक महल का निर्माण हो गया।

एक दिन, जब थेरा महा मोग्गलाना तावतिंसा देवलोक गए, तो उन्होंने इसिपताना में महाविहार मठ के दानदाता के लिए बने महल को देखा। तावतिंसा देवलोक से लौटते समय, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर! क्या पुण्य कर्म करने वालों के लिए इस संसार में रहते हुए भी देवलोक में महल और अन्य धन-संपत्ति तैयार रहती है?" बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे पुत्र, तुम ऐसा क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं तावतिंसा देवलोक में नंदिया के लिए प्रतीक्षारत महल और धन-संपत्ति नहीं देखी? देव अच्छे और उदार लोगों के आने की प्रतीक्षा करते हैं, जैसे रिश्तेदार लंबे समय से अनुपस्थित व्यक्ति के लौटने की प्रतीक्षा करते हैं। जब अच्छे लोग मर जाते हैं, तो उनका देवलोक में आनंदपूर्वक स्वागत किया जाता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 219 : एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था और दूर से सुरक्षित घर लौट आया है, उसके लौटने पर रिश्तेदारों, दोस्तों और शुभचिंतकों द्वारा उसका खुशी से स्वागत किया जाता है।

---

श्लोक 220 : इसी प्रकार, जब कोई नेक काम करने वाला इस दुनिया से दूसरी दुनिया में जाता है, तो उसके अच्छे कर्म उसका स्वागत करेंगे, जैसे रिश्तेदार किसी प्रियजन के लौटने पर उसका स्वागत करते हैं।

---

अध्याय सोलह का अंत: स्नेह (पियावग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नंदिया की कहानी

इसिपताना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने नंदीय के संदर्भ में ये श्लोक कहे। कथा के अनुसार, बनारस में नंदीय नामक एक युवक रहता था, जो एक धर्मपरायण परिवार का पुत्र था। वह अपने माता-पिता की इच्छा के अनुरूप, निष्ठावान, विश्वासयोग्य और संघ का सेवक था। जब वह वयस्क हुआ, तो उसके माता-पिता चाहते थे कि उसका विवाह उसके मामा की पुत्री रेवती से हो, जो सामने वाले घर में रहती थी। परन्तु रेवती नास्तिक थी और दान देने की आदी नहीं थी, इसलिए नंदीय उससे विवाह नहीं करना चाहता था। तब नंदीय की माता ने रेवती से कहा, "प्रिय पुत्री, इस घर में जहाँ भिक्षु बैठते हैं, वहाँ फर्श को अच्छी तरह से साफ करो, बैठने की व्यवस्था करो, खाने के लिए स्टैंड सही जगह पर रखो, और जब भिक्षु आएँ, तो उनके प्याले लेकर उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करो और उनके लिए पानी

छान दो; जब वे भोजन कर लें, तो उनके प्याले धो दो। यदि तुम ऐसा करोगी, तो तुम मेरे पुत्र की कृपा पाओगी।" रेवती ने वैसा ही किया। नंदिया की माता ने अपने पुत्र से कहा, "रेवती अब उपदेश सहने के लिए तैयार है।" नंदिया ने सहमति दे दी, विवाह का दिन तय हुआ और उनका विवाह हो गया। नंदिया ने अपनी पत्नी से कहा, "यदि तुम भिक्षुओं के संघ और मेरे माता-पिता की निष्ठापूर्वक सेवा करोगी, तो तुम्हें इस घर में रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा; इसलिए सावधान रहना।" रेवती ने कहा, "ठीक है," और ऐसा करने का वचन दिया। कुछ ही दिनों में उसने सच्चे विश्वासी की तरह व्यवहार करना सीख लिया। उसने अपने पति की सच्ची आज्ञा का पालन किया और समय के साथ दो पुत्रों को जन्म दिया।

नंदिया के माता-पिता के निधन के बाद, वह घर की एकमात्र मुखिया बन गईं। माता-पिता की मृत्यु के बाद नंदिया को अपार धन-संपत्ति प्राप्त हुई, जिससे उन्होंने भिक्षुओं के लिए भिक्षा का कार्य शुरू किया और अपने घर के द्वार पर गरीबों और यात्रियों को नियमित रूप से पका हुआ भोजन वितरित करने की व्यवस्था की। कुछ समय बाद, बुद्ध के धर्मोपदेश को सुनने के बाद, भिक्षुओं को निवास स्थान दान करने से प्राप्त होने वाले आशीर्वादों पर विचार करते हुए, उन्होंने इसिपताना के महान मठ में एक चौगुने भवन का निर्माण और उसे सुसज्जित करवाया। बिस्तर और पलंग लगवाकर, उन्होंने यह निवास स्थान बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को दान में दिया और बुद्ध के दाहिने हाथ में दान का जल अर्पित किया। जब दान का जल बुद्ध के दाहिने हाथ में गिरा, तो तैंतीस लोकों में बारह मील तक फैला, सौ मील ऊँचा, सात प्रकार के रत्नों से बना और अप्सराओं से भरा एक दिव्य महल प्रकट हुआ। एक दिन जब पूज्य महा मोग्गलाना देवताओं के लोक की तीर्थयात्रा पर गए, तो वे इस महल के पास रुके और उनके पास आए कुछ देवताओं से पूछा, "किसके पुण्य से अप्सराओं से भरा यह दिव्य महल अस्तित्व में आया?" तब उन देवताओं ने उन्हें महल के स्वामी के बारे में बताया, "पूज्यवर, नंदीय नामक एक गृहस्थ पुत्र ने इसिपताना में एक मठ बनवाया और उसे बुद्ध को दान कर दिया, और उनके पुण्य से यह दिव्य महल अस्तित्व में आया।" तब अप्सराओं का समूह उस महल से नीचे उतरा और उस बुजुर्ग से कहा, "हे पूज्यवर, हम नंदीय की दासी बनना चाहती हैं। यद्यपि हमारा पुनर्जन्म यहाँ हुआ है, फिर भी हम अत्यंत दुखी हैं क्योंकि हम उन्हें देख नहीं पा रहे हैं; कृपया उनसे यहाँ आने का अनुरोध कीजिए। क्योंकि मनुष्य रूप त्यागकर देवता का रूप धारण करना मिट्टी के बर्तन को तोड़कर सोने का बर्तन उठाने के समान है।" बुजुर्ग वहाँ से चले गए और बुद्ध के पास पहुँचकर उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, क्या यह सत्य है कि मनुष्य अपने सद्गुणों के फल स्वरूप मनुष्यलोक में रहते हुए ही स्वर्गिक महिमा प्राप्त करते हैं?"

बुद्ध ने उत्तर दिया, "मोग्गलाना, तुमने स्वयं अपनी आँखों से नंदीय को देवताओं के लोक में प्राप्त दिव्य महिमा को देखा है; तुम मुझसे ऐसा प्रश्न क्यों पूछते हो?" बड़े ने कहा, "तो यह सचमुच सत्य है, पूज्यवर!" बुद्ध ने कहा, "मोग्गलाना, तुम ऐसा क्यों कहते हो? यदि कोई पुत्र या भाई जो लंबे समय से घर से अनुपस्थित रहा हो, घर लौटता है, तो गाँव के द्वार पर जो भी उसे देखता है, वह तुरंत घर जाकर कहता है, 'अमुक लौट आया है।' और तुरंत उसके रिश्तेदार प्रसन्न होकर उसका स्वागत करने के लिए दौड़ पड़ते हैं और कहते हैं, 'प्रिय मित्र, तुम अंततः लौट आए!' ठीक उसी प्रकार, जब कोई स्त्री या पुरुष जिसने इस लोक में पुण्य कर्म किए हों, इस लोक को छोड़कर परलोक जाता है, तो स्वर्ग के देवता दस प्रकार के उपहार लेकर उससे मिलने और उसका स्वागत करने के लिए जाते हैं और कहते हैं, 'मुझे पहले मिलने दो! मुझे पहले मिलने दो!'"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 219)

सिरप्पावासिं पुरिसं दुरतो सोत्थिं अगतं

नातिमित्त सुहज्जा च , सगतं अभिनन्दन्ति

Cirappavāsiṃ purisaṃ [ purisa ]: वह व्यक्ति जो लंबे समय तक घर से दूर रहा हो; dūrato [ dūrata ]: दूर से; sotthiṃ āgataṃ [ āgata ]: जब वह सुरक्षित घर लौटता है; ñātimittā : मित्र और रिश्तेदार; suhajjā ca : शुभचिंतक; sāgataṃ [ sāgata ]: उसकी सुरक्षित वापसी; abhinandanti : स्वागत

जब कोई व्यक्ति, जो लंबे समय तक घर से दूर रहा हो, सुरक्षित रूप से घर लौटता है, तो उसके मित्र, रिश्तेदार और शुभचिंतक उसका स्वागत करते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 220)

तथा एव कता पुन्नं अपि अस्मा लोक परं

गतं पुन्ननि गतं पियं नातिं इव पतिगनन्ति

तथा एव : इसी प्रकार; कत पुण्यं अपि : जिसने (यहाँ) पुण्य कर्म किए हैं; अस्मा लोका परं गतं [ गत ]: इस लोक को छोड़कर परलोक चला गया है; पुण्यं : पुण्य कर्म; गतं पियां ञातं इव : जैसे कोई निकट संबंधी यात्रा से लौटा हो; पटिगंहन्ति : उसका स्वागत करो

इसी प्रकार, जब इस दुनिया में पुण्य कर्म करने वाले लोग परलोक में जाते हैं, तो उनके पुण्य कर्म उनका स्वागत करते हैं, जैसे रिश्तेदार लंबी यात्रा से लौटने वाले रिश्तेदारों का स्वागत करते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 219-220)

puññāni paṭigaṇhanti : उनके पुण्य कर्मों ( puñña ) द्वारा स्वागत किया गया।

पुण्य : पुण्य; पुण्यकारी। पुण्य कर्मिक रूप से लाभकारी ( कुशल ) कर्मों के लिए एक लोकप्रिय शब्द है । विलोम शब्द: अपुष्ण , पाप; पाप , बुरा, दुष्ट। पुण्यकारी कर्मों के महत्व पर अक्सर जोर दिया जाता है, उदाहरण के लिए, खजाना सूत्र में। पवित्र भिक्षुओं का समुदाय ( आर्य-संघ ), तीसरा आश्रय, संसार में अतुलनीय पुण्य क्षेत्र ( अनुत्तरम् पुण्यक्खेत्तम् लोकस्स ) कहा जाता है ।
इस प्रकार के दस प्रकार के पुण्य कर्म ( कुसलकम्मा ) हैं — अर्थात्,
उदारता ( दान ),
नैतिकता ( सीला )
ध्यान ( भावना )
आदर ( अपचायण )
सेवा ( veyyāvacca ),
योग्यता का स्थानांतरण ( पट्टीदाना ),
दूसरों के अच्छे कर्मों में प्रसन्न होना ( अनुमोदना ),
धर्मोपदेश सुनना ( धम्म सवना ),
धर्म की व्याख्या करना ( धम्मदेशना ), और
अपने विचारों को सुदृढ़ करना ( diṭṭhijjukamma )।
कभी-कभी, इन दस नैतिक कार्यों को (7) और (10) में उप-विभाजन शुरू करके बारह माना जाता है।
दूसरों के अच्छे कर्मों की प्रशंसा ( पसम्सा ) को दूसरों के पुण्य की सराहना ( अनुमोदना ) में जोड़ा जाता है । तीन शरणों ( सरना ) और सजगता ( अनुस्सति ) को अपने विचारों को दृढ़ करने के स्थान पर अपनाया जाता है।
उदारता से धन की प्राप्ति होती है। नैतिकता से श्रेष्ठ परिवारों और सुखमय अवस्थाओं में जन्म होता है। ध्यान से साकार और निराकार लोकों में जन्म होता है और उच्च ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्त करने में सहायता मिलती है। पुण्य का हस्तांतरण भविष्य के जन्मों में प्रचुर दान का कारण बनता है। दूसरों के पुण्य में प्रसन्नता से जन्म के स्थान पर आनंद प्राप्त होता है। धम्म का उपदेश देना और सुनना दोनों ही ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होते हैं। आदर से श्रेष्ठ माता-पिता की प्राप्ति होती है। सेवा से भक्तगण की प्राप्ति होती है। दूसरों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करने से स्वयं प्रशंसा प्राप्त होती है। तीन शरणों का पालन करने से वासना का नाश होता है। सजगता अनेक प्रकार के सुखों की प्राप्ति का कारण बनती है।
कुसला कर्म जो रूप के क्षेत्र में परिपक्व हो सकता है।
ये पाँच प्रकार के ( रूप-झान ) या परमानंद हैं जो विशुद्ध रूप से मानसिक होते हैं:
(1) पहला झान , नैतिक चेतना जिसमें प्रारंभिक अनुप्रयोग ( वितक्का ), निरंतर अनुप्रयोग ( विचार ), सुखमय रुचि ( पीति ), सुख ( सुख ), और एकाग्रता ( एकग्गता ) शामिल हैं;
(2) दूसरा झान , नैतिक चेतना जिसमें निरंतर अभ्यास, सुखदायक रुचि, खुशी और एकाग्रता शामिल है;
(3) तीसरा झान , नैतिक चेतना जिसमें सुखदायक रुचि, खुशी और एकाग्रता शामिल है;
(4) चौथा ध्यान , नैतिक चेतना जिसमें सुख और एकाग्रता शामिल है; और
(5) पाँचवाँ झान , नैतिक चेतना जिसमें समभाव ( उपेक्खा ) और एकाग्रता शामिल है ।
इन ध्यान का रूप के क्षेत्र में भी अपना-अपना प्रभाव होता है।
कुसला कम्मा जो निराकार लोकों में परिपक्व हो सकता है:
ये चार अरूप झान हैं जिनका निराकार लोकों में संबंधित प्रभाव होता है — अर्थात्,
(1) अंतरिक्ष की अनंतता में निवास करने वाली नैतिक चेतना ( akāsānañcāyatana );
(2) चेतना की अनंतता पर ध्यान केंद्रित करने वाली नैतिक चेतना ( विञ्ञाञ्चायतन );
(3) शून्यता पर ध्यान केंद्रित करने वाली नैतिक चेतना ( अकिंचाञ्ञायतन ); और
(4) नैतिक चेतना जिसमें धारणा न तो है और न ही नहीं है ( n ' eva saññānāsaññāyatana )।
बुद्ध ने अनाथपिंडिक को पुण्य कर्मों के विभिन्न स्तरों के बारे में बताया। एक बार, बुद्ध ने उदारता पर प्रवचन देते हुए अनाथपिंडिक को याद दिलाया कि बुद्ध के साथ संघ को दान देना अत्यंत पुण्यकारी है; लेकिन ऐसे दान से भी अधिक पुण्यकारी है संघ के उपयोग के लिए एक मठ का निर्माण करना; ऐसे मठों से भी अधिक पुण्यकारी है बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेना; बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेने से भी अधिक पुण्यकारी है पाँच नियमों का पालन करना; ऐसे नियमों के पालन से भी अधिक पुण्यकारी है क्षणभंगुर प्रेम ( मेट्टा ) का ध्यान करना; और इन सबसे अधिक पुण्यकारी है वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति ( विपस्सना ) का ज्ञान प्राप्त करना। इस प्रवचन से स्पष्ट है कि उदारता बौद्ध जीवन के मार्ग का पहला चरण है। उदारता से भी अधिक महत्वपूर्ण है आचरण के कम से कम पाँच नियमों का पालन करना, जो शब्दों और कर्मों को अनुशासित करने में सहायक होते हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और लाभकारी है प्रेम और

करुणा जैसे उदात्त गुणों का विकास करना, जो आत्म-विकास की ओर ले जाते हैं। आत्म-अनुशासन में सबसे महत्वपूर्ण और लाभकारी है चीजों को उनके वास्तविक स्वरूप में समझने का सच्चा प्रयास करना।

अध्याय 17. कोधवग्ग: क्रोध (221-234)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 221

———————————————————————

(धम्मपद 219 और 220) <<<< पिछला|| धम्मपद221 ||अगला >>>> (धम्मपद222)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 221 - रोहिणीक्कत्तियाकन्ना वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

कोधं जहे विप्पजहेय मनम
समन्वयम्(1) सब्बामटिक्कमेय्या
tam namarupasmimasajjanamam
अकिंचनम्(2) नानुपतन्ति दुक्खा।

———————————————————————

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दुःख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

———————————————————————

1. सम्योजनम्: एक बंधन। मनुष्य की वासना के दस बंधन हैं जो मनुष्य को पुनर्जन्म के चक्र में बांधते हैं; ये बंधन मार्ग अंतर्दृष्टि के विभिन्न चरणों में टूट जाते हैं।
2. अकिंचनम्: किंचन (अपवित्रता) से मुक्त: तीन किंचन हैं कामवासना, द्वेष और अज्ञान।

———————————————————————

बुद्ध द्वारा कुष्ठ रोगी के उपचार की कहानी

निग्रोधरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अनुरुद्ध की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (221) कहा।
एक बार थेरा अनुराद्ध कपिलवस्तु गए। वहाँ के मठ में ठहरते समय, उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। थेरा अनुराद्ध ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भवन बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। थेरा अनुराद्ध ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी भवन निर्माण में सहायता करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को भवन निर्माण के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद, बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, और उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बरनास के राजा की प्रधान रानी थीं। संयोग से, राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और प्रधान रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से गौ-हेज की फलियों से बना खुजलीदार पाउडर नर्तकी के पलंग, कंबल आदि में डलवा दिया। फिर, उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में, उस पर

थोड़ा सा खुजलीदार पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली हो रही थी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से तड़प रही थी। असहनीय खुजली के कारण वह दौड़कर अपने कमरे और बिस्तर पर चली गई, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में आकर मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 221 : क्रोध त्याग दो, अहंकार छोड़ दो, सभी बंधनों पर विजय प्राप्त करो। जीवन के दुख (दुःख) उस व्यक्ति पर नहीं आते जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता और नैतिक दोषों से मुक्त होता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित कई लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
राजकुमारी रोहिणी की कहानी
निग्रोधराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य अनुराधा की बहन राजकुमारी रोहिणी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य अनुराधा कपिलवस्तु आए। जब वे वहाँ के मठ में ठहरे हुए थे, तो उनकी बहन रोहिणी को छोड़कर उनके सभी रिश्तेदार उनसे मिलने आए। जब उन्हें पता चला कि रोहिणी कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण नहीं आई हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया। शर्म से सिर ढँककर रोहिणी बुलवाए जाने पर आईं। पूज्य अनुराधा ने उनसे कोई पुण्य कर्म करने को कहा और सुझाव दिया कि वे अपने कुछ वस्त्र और आभूषण बेच दें; और उससे प्राप्त धन से भिक्षुओं के लिए एक भोजन कक्ष बनवाएँ। रोहिणी ने ऐसा करने की सहमति दी। पूज्य अनुराधा ने अपने अन्य रिश्तेदारों से भी हॉल के निर्माण में मदद करने को कहा। इसके अलावा, उन्होंने रोहिणी को निर्माण कार्य के दौरान भी प्रतिदिन फर्श साफ करने और पानी के बर्तन भरने को कहा। उन्होंने निर्देशानुसार कार्य किया और उनकी सेहत में सुधार होने लगा।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। भोजन के बाद बुद्ध ने भवन और भिक्षा भोजन के दाता के बारे में पूछा, लेकिन रोहिणी वहाँ नहीं थीं। इसलिए बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और वे आ गईं। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे जानती हैं कि उन्हें यह भयानक बीमारी क्यों हुई है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे नहीं जानतीं। तब बुद्ध ने उन्हें बताया कि उन्हें यह भयानक बीमारी उनके पिछले जन्मों में द्वेष और क्रोध में किए गए एक बुरे कर्म के कारण हुई है। बुद्ध द्वारा बताए अनुसार, रोहिणी एक समय बारानासी के राजा की मुख्य रानी थीं। राजा की एक प्रिय नर्तकी थी और मुख्य रानी उससे बहुत ईर्ष्या करती थीं। इसलिए रानी नर्तकी को दंडित करना चाहती थीं। इस प्रकार एक दिन, उन्होंने अपने सेवकों से नर्तकी के पलंग और कंबल में खुजली का पाउडर डलवा दिया। फिर उन्होंने नर्तकी को बुलाया और मानो मजाक में उस पर खुजली का पाउडर फेंक दिया। लड़की को पूरे शरीर में खुजली होने लगी और वह बहुत दर्द और बेचैनी से पीड़ित हो गई। असहनीय खुजली से परेशान होकर वह अपने कमरे और बिस्तर की ओर भागी, जिससे उसकी पीड़ा और भी बढ़ गई।
उस बुरे कर्म के फलस्वरूप रोहिणी इस जन्म में कुष्ठ रोगी हो गई थी। बुद्ध ने तब सभा में उपस्थित लोगों को क्रोध में मूर्खतापूर्ण कार्य न करने और दूसरों के प्रति द्वेष न रखने की सलाह दी। प्रवचन के अंत में, सभा में उपस्थित अनेक लोगों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। राजकुमारी रोहिणी ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया, और उसी समय उनका त्वचा रोग दूर हो गया, और उनका रंग गोरा, चिकना और अत्यंत आकर्षक हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 221)
कोढं जहे मनं विप्पजहेय सब्बं संनोजानं अतिक्कमेय्या
नामरूपस्मि असज्जमानं अकिंचनं तं दुक्खा न अनुपातन्ति
कोढ़ां [ कोढ़ा ]: क्रोध; जहे : त्यागना; मनं [ मन ]: अभिमान; विप्पजहेय्या : पूरी तरह से त्याग दो; सब्बाṃ [ सब्बा ]: सभी; संनोजनं [ संनोजाना ]: बेड़ियाँ; अतिक्कमेय्या : छुटकारा पाना; नामरूपस्मिः [ नामरूपस्मि ]: नाम और रूप में; असज्जमानाम् [ असज्जमाना ]: अनासक्त; अकिंचानाṃ [ अकिंचना ]: उपांगों से मुक्त; तं : उस व्यक्ति पर; दुक्खा न अनुपातन्ति : कष्ट और दुःख नहीं आते
क्रोध का त्याग करो। अहंकार को पूरी तरह छोड़ दो। सभी आसक्तियों से मुक्त हो जाओ। जो व्यक्ति नाम और रूप से आकर्षित नहीं होता और आसक्तियों से मुक्त होता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 221)

क्रोध : क्रोध। व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली सभी भावनाओं में क्रोध सबसे बुरा है। क्रोध का सामना क्रोध से करने पर वह दस गुना बढ़ जाता है, लेकिन यदि शांत भाव से उसका सामना किया जाए तो वह अक्सर शीघ्र ही शर्मिंदगी की भावना में तब्दील हो जाता है, जो उससे कहीं अधिक प्रबल होती है। यह सभी भावनाओं में सबसे अतार्किक है। तीव्र क्रोध के क्षण में मनुष्य वास्तव में मनुष्य नहीं रह जाता; वह एक विनाशकारी पशु बन जाता है। दूसरों के साथ हुए अन्याय पर क्रोध करना भी सही समाधान की ओर ले जाने वाली मानसिक स्थिति नहीं है। लेकिन स्वयं से निपटने में, क्रोध की यह मनोदशा शांत विश्लेषण के आगे टिक नहीं सकती। स्पष्ट है कि ये दोनों मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत हैं, और प्रारंभ में, यदि क्रोध पहले से ही एक आदत बन चुका है, तो वह अन्य सभी चीजों को दरकिनार कर सकता है। लेकिन अभ्यास से सब कुछ हासिल किया जा सकता है, और हम खुद को देखकर कह सकते हैं, "कौन नाराज़ है? इस गुस्से का कारण क्या है?" गुस्सा जल्द ही शांत हो जाता है और अक्सर कारण जानने की कोशिश में भुला दिया जाता है। बाद में, यह जानकर कि हमने गुस्से के हावी होने पर होने वाली संभावित मूर्खतापूर्ण कार्रवाई से खुद को बचा लिया, हमें खुशी होती है कि हमने ऐसा आत्म-संयम बरता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 222

———————————————————————

(धम्मपद221) <<<< पिछला || धम्मपद222 || अगला >>>> (धम्मपद223)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 222 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo ve uppatitam kodham
ratham bhantamva varaye
tamaham sarathim brumi
rasmiggaho itaro jano.

———————————————————————

श्लोक 222 : जो अपने बढ़ते क्रोध को एक कुशल सारथी की तरह नियंत्रित करता है, जैसे एक तेज गति से दौड़ते रथ को नियंत्रित करता है, उसे मैं सच्चा सारथी कहता हूँ; अन्य सारथी तो केवल लगाम थामे रहते हैं।

———————————————————————

एक भिक्षु की कहानी

अलवी नगर में अग्गलावा स्तूप में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (222) कहा।

एक बार, अलावी के एक भिक्षु ने अपने लिए एक मठ बनाने की इच्छा जताई और इसलिए उसने एक पेड़ काटना शुरू कर दिया। उस पेड़ में निवास करने वाली देवदूत (रुक्खा देवता) ने उसे रोकने का प्रयास किया और कहा कि उसके और उसके शिशु पुत्र के पास जाने के लिए कोई जगह नहीं है। भिक्षु को रोकने में असफल रहने पर उसने अपने पुत्र को एक शाखा पर बिठा दिया, इस उम्मीद में कि इससे वह पेड़ काटने से रुक जाएगा। तब तक भिक्षु अपनी कुल्हाड़ी चला रहा था और वह समय रहते उसे रोक नहीं पाया और अनजाने में बच्चे का एक हाथ काट दिया। अपने बच्चे को इस तरह घायल देखकर माता क्रोधित हो उठी और भिक्षु को जान से मारने ही वाली थी।

जैसे ही उसने भिक्षु पर प्रहार करने के लिए हाथ उठाए, अचानक उसने खुद को रोका और सोचा, "यदि मैं किसी भिक्षु को मार डालूँ, तो मैं एक ऐसे व्यक्ति को मार डालूँगी जो नैतिक नियमों (शील) का पालन करता है; ऐसे में मुझे निश्चित रूप से निरयण (नरक) में जाना पड़ेगा। वृक्षों के अन्य संरक्षक देव (देवदूत) भी मेरे उदाहरण का अनुसरण करेंगे और अन्य भिक्षु भी मारे जाएँगे। लेकिन इस भिक्षु का एक गुरु है; मुझे जाकर उसके गुरु से मिलना चाहिए।" इसलिए वह रोते हुए बुद्ध के पास गई और उन्हें सारी घटना बताई।
बुद्ध ने उनसे कहा, "हे रुक्खा देवता! आपने स्वयं पर अच्छा नियंत्रण रखा है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 222 : जो अपने बढ़ते क्रोध को एक कुशल सारथी की तरह नियंत्रित करता है, जैसे एक तेज गति से दौड़ते रथ को नियंत्रित करता है, उसे मैं सच्चा सारथी कहता हूँ; अन्य सारथी तो केवल लगाम थामे रहते हैं।

---

प्रवचन के अंत में देवदूत ने सोतापत्ति सिद्धि प्राप्त की, और उन्हें निवास स्थान के रूप में बुद्ध के सुगंधित कक्ष के पास एक वृक्ष भेंट किया गया। इस घटना के बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं को घास, पौधे, झाड़ियाँ और वृक्ष जैसी वनस्पतियों को काटने से मना किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक भिक्षु की कहानी
आलवी नगर के अग्गलव स्तूप में निवास करते समय, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
जब बुद्ध ने भिक्षुओं को मठ की दीवारों के बाहर रहने की अनुमति दे दी, और राजगृह के कोषाध्यक्ष और अन्य लोग ऐसे आवास उपलब्ध कराने में व्यस्त थे, तब आलवी के एक भिक्षु ने अपने लिए एक आवास बनाने का निर्णय लिया और अपनी पसंद का एक पेड़ देखकर उसे काटने लगे। तभी उस पेड़ में पुनर्जन्म लेने वाली एक आत्मा, जिसके साथ एक शिशु था, अपने बच्चे को गोद में लिए हुए उस भिक्षु के सामने प्रकट हुई और उनसे पेड़ न काटने की विनती करते हुए कहा, "गुरुजी, मेरा घर मत काटिए; मेरे लिए अपने बच्चे को लेकर बिना घर के भटकना असंभव होगा।" लेकिन भिक्षु ने कहा, "मुझे ऐसा दूसरा पेड़ नहीं मिलेगा," और उन्होंने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वृक्ष-आत्मा ने मन ही मन सोचा, "यदि वह इस बच्चे को देख ले, तो वह रुक जाएगा," और उसने बच्चे को पेड़ की एक शाखा पर रख दिया। लेकिन भिक्षु ने कुल्हाड़ी चला दी थी, वह अपनी उठी हुई कुल्हाड़ी की ताकत को रोक नहीं पाया और बच्चे का हाथ काट दिया। क्रोध से आग बबूला होकर वृक्ष-प्रेत ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और चिल्लाई, "मैं इसे मार डालूँगी।" लेकिन तभी उसके मन में यह विचार आया, "यह भिक्षु एक धर्मात्मा है; अगर मैं इसे मार डालूँगी, तो मैं नरक में जाऊँगी। इसके अलावा, अगर दूसरे वृक्ष-प्रेत भिक्षुओं को अपने ही पेड़ काटते देखेंगे, तो वे मन ही मन कहेंगे, 'अमुक वृक्ष-प्रेत ने अमुक परिस्थितियों में एक भिक्षु को मार डाला,' और मेरे उदाहरण का अनुसरण करते हुए दूसरे भिक्षुओं को मार डालेंगे। इसके अलावा, इस भिक्षु का एक गुरु है; इसलिए मैं इस मामले की सूचना उसके गुरु को देकर ही संतुष्ट हो जाऊँगी।"
अपने उठे हुए हाथों को नीचे करके, वह रोते हुए बुद्ध के पास गई और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ खड़ी हो गई। बुद्ध ने कहा, "क्या बात है, वृक्ष-प्रेत?" वृक्ष-प्रेत ने उत्तर दिया, "आदरणीय, आपके शिष्य ने मेरे साथ यह-वह किया। मुझे उसे जान से मारने का बहुत मन हुआ, लेकिन मैंने यह-वह सोचकर खुद को रोका और यहाँ आ गई।" ऐसा कहकर उसने उन्हें पूरी कहानी विस्तार से सुनाई। जब बुद्ध ने उसकी कहानी सुनी, तो उन्होंने उससे कहा, "शाबाश, शाबाश, प्रेत! तुमने क्रोध को इतनी तेजी से दौड़ते रथ की तरह काबू में रखा, जब वह इतना उग्र हो गया था।"
पाठ के समापन पर वृक्ष-आत्मा को परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ; वहाँ उपस्थित सभी लोगों को भी इसका लाभ मिला। परन्तु परिवर्तन का फल प्राप्त होने के बाद भी वृक्ष-आत्मा रोती रही। बुद्ध ने उससे पूछा, "क्या बात है, वृक्ष-आत्मा?" उसने उत्तर दिया, "आदरणीय, मेरा घर नष्ट हो गया है; अब मैं क्या करूँ?" बुद्ध ने कहा, "बस करो, वृक्ष-आत्मा; विचलित मत हो; मैं तुम्हें निवास स्थान दूँगा।" ये कहकर उन्होंने जेतवन के सुगंधित कक्ष के पास एक वृक्ष की ओर इशारा किया, जिससे एक वृक्ष-आत्मा पिछले दिन चली गई थी, और कहा, "अमुक स्थान पर एक वृक्ष है जो अकेला खड़ा है; उसमें प्रवेश करो।" तदनुसार वृक्ष-आत्मा उस वृक्ष में प्रवेश कर गई। तब से, क्योंकि वृक्ष-आत्मा को बुद्ध से निवास स्थान उपहार में मिला था, यद्यपि महान शक्ति वाली आत्माएँ उस वृक्ष के पास आती थीं, वे उसे हिला नहीं पाती थीं। बुद्ध ने इस अवसर का उपयोग भिक्षुओं को उपदेश देने और पौधों और पेड़ों को नुकसान पहुंचाने के संबंध में उपदेश के पालन को निर्धारित करने के लिए किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 222)
यो वे उपपतितं कोधं भंतं रथं इव धारये
तं अहं सारथिं ब्रूमी इतारो जानो रस्मिगाहो

यो : यदि कोई व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; उपपतितं कोधं [ कोढ़ा ]: क्रोध उत्पन्न हुआ; भन्तं रथं इव : अनियंत्रित रथ की तरह; धारये : रोकता है; तं : उसे; अहं : मैं; सारथिं ब्रूमि : सारथी को बुलाओ; इतारो जानो : दूसरा (सारथी का प्रकार); रसमिग्गाहो [ रस्मिग्गाहा ]: एक मात्र बागडोर धारक है

जो व्यक्ति अचानक आने वाले क्रोध को नियंत्रित करने में सक्षम होता है, वह उस कुशल सारथी के समान होता है जो अनियंत्रित होकर दौड़ते रथ को रोक लेता है। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा सारथी कहता हूँ। दूसरे प्रकार के सारथी तो केवल लगाम थामे रहने वाले होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 222)

उपपतितं कोधं : उत्पन्न क्रोध। अधिकांश मनुष्य क्रोधी स्वभाव के होते हैं। उनके क्रोधित होने की प्रवृत्ति के कई कारण होते हैं। सभी मनुष्यों ने कभी न कभी दुर्व्यवहार सहा है और उसके निशान सभी पर हैं। कई लोगों का बचपन दुखद रहा है और उनका चरित्र विकृत हो गया है। हम भी इसी तरह के अपूर्ण अतीत से उबरने के लिए मानसिक स्वास्थ्य की तलाश में हैं। मानसिक स्वास्थ्य दूसरों में भी उसी तरह फैलता है जैसे गलत विचार। किसी भी स्थिति में, जब तक मन की ऐसी सभी गलत मनोवृत्तियों को दूर नहीं कर लिया जाता, तब तक लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग संभव नहीं है। इसलिए, चाहे हम कितनी भी बार असफल हों, हमें अपनी असफलता को खुलकर स्वीकार करना चाहिए और प्रयास जारी रखना चाहिए।

कुछ जीव दिन में देख नहीं सकते, जबकि कुछ अन्य रात में अंधे हो जाते हैं। लेकिन घृणा की चरम सीमा पर पहुंचा हुआ व्यक्ति दिन हो या रात, कुछ भी नहीं देख पाता। बुद्ध कहते हैं: "क्रोध को प्रेम से, बुराई को अच्छाई से, कंजूस को उदारता से और झूठे को सत्य से जीतो।" जब आप क्रोधित होते हैं, तो आप किससे और किससे लड़ते हैं? आप स्वयं से लड़ते हैं, क्योंकि आप स्वयं के सबसे बड़े शत्रु हैं। मन आपका सबसे अच्छा मित्र और सबसे बड़ा शत्रु है। आपको नैतिकता, एकाग्रता और ज्ञान के माध्यम से अपने मन में छिपी वासना, घृणा और अज्ञानता को नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 223

---

(धम्मपद222) <<<< पिछला ll धम्मपद223 ll अगला >>>> (धम्मपद224)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 223 - उत्तर उपासिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Akkodhena jine kodham
asadhum sadhuna jine
jine kadariam danena
saccena' likavidinam.

---

श्लोक 223 : क्रोधित व्यक्ति को क्रोधित न होकर (अर्थात् प्रेम और दया से) जीतो; दुष्ट को अच्छाई से जीतो; कंजूस को उदारता से जीतो, और झूठे को सत्य बोलकर जीतो।

---

उत्तरा नामक गृहस्थ शिष्या की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (223) का उच्चारण उत्तरा नामक एक महिला गृहस्थ शिष्या के संदर्भ में किया।

उत्तरा, पुन्ना नामक एक खेतिहर मजदूर और उसकी पत्नी की पुत्री थी। पुन्ना राजगृह में सुमना नामक एक धनी व्यक्ति के यहाँ काम करता था। एक दिन, पुन्ना और उसकी पत्नी ने थेरा सारिपुत्त को उनके गहन ध्यान (निरोध समापत्ति) से उठने के तुरंत बाद भिक्षा दी, और इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे अचानक बहुत धनी हो गए। पुन्ना को अपने खेत में, जहाँ वह हल चला रहा था, सोना मिला, और राजा ने उसे आधिकारिक तौर पर राजकोषीय धनी घोषित कर दिया। एक बार, पुन्ना के परिवार ने सात दिनों तक बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी, और सातवें दिन, बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, परिवार के तीनों सदस्यों ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

बाद में, पुन्ना की पुत्री उत्तरा का विवाह धनी सुमना के पुत्र से हुआ। वह परिवार बौद्ध नहीं था, इसलिए उत्तरा अपने पति के घर में प्रसन्न नहीं थी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, आपने मुझे इस पिंजरे में क्यों रखा है? यहाँ मुझे कोई भिक्षु नहीं दिखता और न ही किसी भिक्षु को कुछ भेंट करने का अवसर मिलता है।" उसके पिता को उस पर दया आई और उन्होंने उसे पंद्रह हजार रुपये नकद भेजे। इस धन से, अपने पति से अनुमति लेकर, उत्तरा ने अपने पति की देखभाल के लिए एक वेश्या को नियुक्त किया। इस प्रकार यह व्यवस्था की गई कि एक प्रसिद्ध और अत्यंत सुंदर वेश्या, सिरिमा, पंद्रह दिनों के लिए उसकी पत्नी के रूप में सेवा करेगी।

उस दौरान, उत्तरा ने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। पंद्रहवें दिन, जब वह रसोई में भोजन बना रही थी, उसके पति ने उसे शयनकक्ष की खिड़की से देखा और मुस्कुराया, फिर मन ही मन बुदबुदाया, "कितनी मूर्ख है! इसे आनंद लेना नहीं आता। यह भिक्षा देने के इस अनुष्ठान में खुद को थका रही है!" सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा, और यह भूलकर कि वह केवल एक वेतनभोगी स्थानापन्न पत्नी थी, उत्तरा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। अपने आप को नियंत्रित न कर पाने के कारण, सिरिमा रसोई में गई और उत्तरा के सिर पर डालने के इरादे से उबलता हुआ मक्खन एक करछुल भर ले आई। उत्तरा ने उसे आते देखा, लेकिन उसके मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। उसने सोचा कि सिरिमा के उसकी जगह लेने के कारण ही वह पंद्रह दिनों तक धर्म का पाठ सुन सकी, भिक्षा दे सकी और अन्य दान-पुण्य कार्य कर सकी। इसलिए वह सिरिमा की बहुत आभारी थी। अचानक, उसे एहसास हुआ कि सिरिमा उसके बहुत करीब आ गई है और उस पर उबलता हुआ मक्खन डालने वाली है; इसलिए उसने यह प्रतिज्ञा की: "यदि मेरे मन में सिरीमा के प्रति कोई दुर्भावना है तो यह खौलता हुआ मक्खन मुझे जला दे; यदि मेरे मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है तो यह मुझे न जलाए।"

उत्तरा के मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी, इसलिए सिरिमा द्वारा सिरिमा के सिर पर डाला गया खौलता मक्खन ठंडे पानी के समान लगा। तब सिरिमा ने सोचा कि मक्खन ठंडा हो गया होगा; और जैसे ही वह खौलते मक्खन का एक और चम्मच लेने के लिए आगे बढ़ी, उत्तरा के सेवकों ने उस पर हमला कर दिया और उसे बुरी तरह पीटा। उत्तरा ने अपने सेवकों को रोका और उन्हें निर्देश दिया कि वे सिरिमा पर औषधीय मरहम मलें।

तब सिरिमा को अपनी वास्तविक स्थिति का अहसास हुआ और उन्हें उत्तरा के प्रति अपने किए पर खेद हुआ। उन्होंने उत्तरा से क्षमा मांगी। उत्तरा ने उत्तरा से कहा, "मेरे पिता हैं; मैं उनसे पूछूंगी कि क्या मुझे तुम्हारी क्षमा स्वीकार करनी चाहिए।" तब सिरिमा ने कहा कि वह तुरंत जाकर उत्तरा के पिता, जो धनी थे, से क्षमा मांग लेंगी। उत्तरा ने सिरिमा को समझाया, "सिरिमा, जब मैंने 'मेरे पिता' कहा, तो मेरा तात्पर्य मेरे वास्तविक पिता से नहीं था, जिन्होंने मुझे इस पुनर्जन्म के चक्र में फंसाया था। मेरा तात्पर्य मेरे पिता, बुद्ध से था, जिन्होंने मुझे पुनर्जन्म के इस चक्र को तोड़ने में सहायता की थी, जिन्होंने मुझे धम्म, आर्य सत्यों का उपदेश दिया था।" तब सिरिमा ने बुद्ध से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अतः अगले दिन उत्तरा के घर पर सिरिमा द्वारा बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

भोजन के बाद, बुद्ध को सिरिमा और उत्तरा के बीच हुई सारी बातें बताई गईं। सिरिमा ने स्वीकार किया कि उसने उत्तरा के साथ गलत किया था और बुद्ध से क्षमा की विनती की, क्योंकि अन्यथा उत्तरा उसे क्षमा नहीं करती। बुद्ध ने उत्तरा से पूछा कि जब सिरिमा ने उसके सिर पर उबलता हुआ मक्खन डाला, तो उसके मन में क्या भाव थे? उत्तरा ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, क्योंकि मैं सिरिमा की बहुत ऋणी थी, इसलिए मैंने अपना आपा न खोने और उसके प्रति कोई द्वेष न रखने का निश्चय किया था। मैंने उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।" बुद्ध ने कहा, "शाबाश, शाबाश, उत्तरा! किसी के प्रति द्वेष न रखकर तुमने घृणा से तुम्हें नुकसान पहुँचाने वाले पर विजय प्राप्त कर ली है। गाली न देकर तुम गाली देने वाले पर विजय प्राप्त कर सकती हो; उदारता दिखाकर तुम कंजूस पर विजय प्राप्त कर सकती हो; सत्य बोलकर तुम झूठ बोलने वाले पर विजय प्राप्त कर सकती हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 223 : क्रोधित व्यक्ति को क्रोधित न होकर (अर्थात् प्रेम और दया से) जीतो; दुष्ट को अच्छाई से जीतो; कंजूस को उदारता से जीतो, और झूठे को सत्य बोलकर जीतो।

---

प्रवचन के अंत में सिरिमा और पांच सौ महिलाओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उत्तरा नामक गृहस्थ शिष्या की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक अपनी एक गृहस्थ शिष्या उत्तरा के संदर्भ में कहा था।

उत्तरा, पुन्ञ नामक एक खेतिहर मजदूर और उसकी पत्नी की पुत्री थी। पुन्ञ राजगृह में सुमन नामक एक धनी व्यक्ति के यहाँ काम करता था। एक दिन, पुन्ञ और उसकी पत्नी ने पूज्य सारिपुत्त को उनके गहन ध्यान ( निरोध समाधि ) से उठने के तुरंत बाद भिक्षा दी, और इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप वे अचानक बहुत धनी हो गए। पुन्ञ को अपने खेत में, जहाँ वह हल चला रहा था, सोना मिला, और राजा ने उसे आधिकारिक तौर पर राजकोषीय धनी घोषित कर दिया। एक बार, पुन्ञ के परिवार ने सात दिनों तक बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी, और सातवें दिन, बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, परिवार के तीनों सदस्यों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में, पुन्ञ की पुत्री उत्तरा का विवाह धनी व्यक्ति सुमन के पुत्र से हुआ। वह परिवार बौद्ध नहीं था, इसलिए उत्तरा अपने पति के घर में खुश नहीं थी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, आपने मुझे इस पिंजरे में क्यों रखा है? यहाँ मुझे कोई भिक्षु नहीं दिखता और न ही किसी भिक्षु को कुछ भेंट करने का अवसर मिलता है।" उसके पिता को उस पर दया आई और उन्होंने उसे पंद्रह हजार रुपये नकद भेजे। इस पैसे से, अपने पति से अनुमति लेकर, उत्तरा ने अपने पति की देखभाल के लिए एक वेश्या को नियुक्त किया। इस प्रकार यह तय हुआ कि एक प्रसिद्ध और बेहद खूबसूरत वेश्या, सिरिमा, पंद्रह दिनों के लिए उसकी पत्नी बनकर रहेगी।

उस दौरान, उत्तरा ने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा दी। पंद्रहवें दिन, जब वह रसोई में भोजन बना रही थी, तो उसके पति ने उसे शयनकक्ष की खिड़की से देखा और मुस्कुराया, फिर मन ही मन बुदबुदाया, "कितनी मूर्ख है! इसे आनंद लेना नहीं आता। यह भिक्षा देने के अनुष्ठान में खुद को थका रही है!" सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा और यह भूलकर कि वह केवल एक वेतनभोगी स्थानापन्न पत्नी थी, उत्तरा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। अपने आप को रोक न पाने के कारण, सिरिमा रसोई में गई और उत्तरा के सिर पर डालने के इरादे से उबलता हुआ मक्खन एक करछुल भर ले आई। उत्तरा ने उसे आते हुए देखा, लेकिन उसके मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। उसने सोचा कि सिरिमा के उसकी जगह सेवा करने के कारण ही वह पंद्रह दिनों तक धर्म का पाठ सुन सकी, भिक्षा दे सकी और अन्य परोपकारी कार्य कर सकी। इसलिए वह सिरिमा की बहुत आभारी थी। अचानक, उसे एहसास हुआ कि सिरिमा उसके बहुत करीब आ गई है और उस पर उबलता हुआ गर्म मक्खन डालने वाली है; इसलिए उसने यह प्रार्थना की: "यदि मेरे मन में सिरिमा के प्रति कोई दुर्भावना है तो यह उबलता हुआ गर्म मक्खन मुझे जला दे; यदि मेरे मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है तो यह मुझे न जलाए।" उबलते हुए गर्म मक्खन से उसे ज़रा भी नुकसान नहीं हुआ।

तब सिरिमा ने बुद्ध से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अतः अगले दिन उत्तरा के घर पर सिरिमा द्वारा बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देने की व्यवस्था की गई। भोजन के बाद, सिरिमा और उत्तरा के बीच जो कुछ हुआ था, वह सब बुद्ध को बताया गया। सिरिमा ने स्वीकार किया कि उसने उत्तरा के साथ गलत किया था और बुद्ध से क्षमादान की विनती की, क्योंकि अन्यथा उत्तरा उसे क्षमा नहीं करती। तब बुद्ध ने उत्तरा से पूछा कि जब सिरिमा ने उनके सिर पर खौलता हुआ मक्खन डाला, तो उनके मन में क्या भाव थे, और उत्तरा ने उत्तर दिया, "हे पूज्यवर, क्योंकि मैं सिरिमा की ऋणी थी, इसलिए मैंने अपना क्रोध न करने और उनके प्रति कोई दुर्भावना न रखने का निश्चय किया था। मैंने उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट किया।" तब बुद्ध ने कहा, "शाबाश, शाबाश, उत्तरा! किसी से द्वेष न रखकर तुमने घृणा के कारण तुम्हें अपमानित करने वाले पर विजय प्राप्त कर ली है। गाली न देकर तुम कंजूस पर विजय प्राप्त कर लोगी; सत्य बोलकर तुम झूठ बोलने वाले पर विजय प्राप्त कर लोगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 223)

कोढं अक्कोधेन जिने असाधुं साधुं जिने

कादरियां दानेन अलीकावादिनं सकैना जिने

कोढ़ां [ कोढ़ा ]: क्रोधित व्यक्ति; अक्कोधेना : क्रोध न करने के साथ; जीन : जीतना; असाधुम् [ असाधु ]: निर्गुण व्यक्ति; साधुना : अच्छाई के साथ; जीन : जीतना; कादरियाम् [ कादरिया ]: कंजूस; दानेना : दान के माध्यम से (जीतना); अलिकावादिनं [ अलिकावादिना ]: झूठा; सैकेना : सत्य से; जीन : जीतो

क्रोध को संयम से जीतें। बुरे को अच्छाई से जीतें। कंजूसी को दान से जीतें। झूठे को सत्य से जीतें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 223)

निरोध समापत्ति : शांति की अवस्था की प्राप्ति। इस कथा के अनुसार, पुण्ण अत्यंत धनी हो गए क्योंकि उन्होंने निरोध समापत्ति (जिसे गहन मानसिक विश्राम भी कहा जाता है) से उठने के तुरंत बाद पूज्य सारिपुत्त को दान दिया था। संवेदना और बोध की समाप्ति ( संज्ञा वेदयित निरोध ) सभी चेतना और मानसिक गतिविधियों का अस्थायी निलंबन है।

---

(धम्मपद223) <<<< पिछला ‖ धम्मपद224 ‖ अगला >>>> (धम्मपद225)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 224 - महामोग्गलानपन्हा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Saccam bhane na kujjheyya
dajja appampi yacito
etehi tihithanehi
gacche devana santike.

---

श्लोक 224 : सत्य बोलना चाहिए, क्रोध पर काबू रखना चाहिए, और माँगने पर थोड़ा-थोड़ा ही सही, देना चाहिए। इन तीनों के माध्यम से ही व्यक्ति देवलोक में जा सकता है।

---

थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (224) कहा।

एक बार, थेरा महा मोग्गलाना देवलोक गए और वहाँ उन्होंने कई देवों को आलीशान महलों में रहते देखा। उन्होंने उनसे पूछा कि किस पुण्य कर्म के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला है, और उन्होंने उन्हें अलग-अलग उत्तर दिए। उनमें से एक को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं मिला कि उन्होंने बहुत धन दान किया था या धर्म का पालन किया था, बल्कि इसलिए मिला कि वे हमेशा सत्य बोलते थे। दूसरी एक स्त्री देवलोक थी, जिसे देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि वह अपने गुरु से क्रोधित नहीं होती थी और उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रखती थी, भले ही वे अक्सर उसे पीटते और गाली देते थे। अपने क्रोध को नियंत्रित रखने और घृणा का त्याग करने के कारण उसे देवलोक में पुनर्जन्म मिला। फिर, कुछ अन्य देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिले क्योंकि उन्होंने किसी भिक्षु या किसी अन्य व्यक्ति को गन्ने की डंडी, फल या कुछ सब्जियां जैसी छोटी-छोटी वस्तुएँ भेंट की थीं।

देवलोक से लौटने पर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा कि क्या केवल सत्य बोलने, कर्मों पर संयम रखने या फल-सब्जियों जैसी तुच्छ वस्तुओं का थोड़ा सा दान करने से इतने महान लाभ प्राप्त करना संभव है? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, तुम क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं नहीं देखा और देवलोकों की बातें नहीं सुनीं? तुम्हें कोई संदेह नहीं होना चाहिए। छोटे-छोटे पुण्य कर्म निश्चित रूप से व्यक्ति को देवलोक की ओर ले जाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 224 : सत्य बोलना चाहिए, क्रोध पर काबू रखना चाहिए, और माँगने पर थोड़ा-थोड़ा ही सही, देना चाहिए। इन तीनों के माध्यम से ही व्यक्ति देवलोक में जा सकता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य महा मोग्गलाना द्वारा उठाए गए प्रश्न के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार पूज्य महा मोग्गलाना देवलोक गए और उन्होंने वहाँ अनेक देवों को आलीशान महलों में रहते देखा। उन्होंने उनसे पूछा कि किस पुण्य कर्म के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला है, और उन्होंने उन्हें अलग-अलग उत्तर दिए। उनमें से एक को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए नहीं मिला कि उन्होंने बहुत धन दान किया था या धर्म का पालन किया था, बल्कि इसलिए मिला कि वे सदा सत्य बोलते थे। दूसरी एक स्त्री देव थीं, जिन्हें देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि वे अपने गुरु से क्रोधित नहीं हुईं और उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रखा, जबकि गुरु अक्सर उन्हें पीटते और गाली देते थे। अपने क्रोध पर नियंत्रण रखने और घृणा का त्याग करने के कारण उन्हें देवलोक में पुनर्जन्म मिला। फिर कुछ अन्य देवों को देवलोक में पुनर्जन्म इसलिए मिला क्योंकि उन्होंने किसी भिक्षु या किसी अन्य व्यक्ति को गन्ने की डंडी, फल या कुछ सब्जियां जैसी छोटी-छोटी वस्तुएँ भेंट की थीं।

देवलोक से लौटने पर पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध से पूछा कि क्या केवल सत्य बोलने, कर्मों पर संयम रखने या फल-सब्जियों जैसी तुच्छ वस्तुओं का थोड़ा सा दान करने से इतने महान लाभ प्राप्त करना संभव है? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्र, तुम क्यों पूछते हो? क्या तुमने स्वयं नहीं देखा और देवताओं की बातें नहीं सुनीं? तुम्हें कोई संदेह नहीं होना चाहिए। पुण्य के छोटे-छोटे कर्म ही मनुष्य को देवलोक की ओर ले जाते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 224)

सच्चं भाणे न कुज्जेया यचितो अप्पस्मिं अपि

दज्जा एतेहि तीहि ठाणेहि देवानां संतिके गच्छे

saccaṃ [ sacca ]: सत्य; bhaṇe : बोलो; na kujjheyya : क्रोधित मत हो; yācito [ yācita ]: पूछे जाने पर; āppasmiṃ api : थोड़ा सा भी; dajjā : दो; etehi : इनमें; tīhi ṭhānehi : तीन कारक; devānaṃ santike : देवताओं की उपस्थिति तक; gacche : पहुँचना

सच बोलो। क्रोधित मत हो। पूछे जाने पर थोड़ी सी भी मदद करो। ये तीन बातें तुम्हें देवताओं तक पहुँचा देंगी।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 224)

ना कुज्जेय्या : क्रोधित मत हो। क्रोध (गुस्सा) कुछ लोगों के मन में उत्पन्न होने वाली कठोरता है। क्रोध की भावना में उतार-चढ़ाव होता रहता है, खासकर जब यह विभिन्न चरणों से गुजरती है। क्रोध के आरंभ से मनुष्य की जो अस्थिरता उत्पन्न होती है, वह मन की प्रारंभिक अशांति से शुरू होकर अंततः हथियारों के विनाशकारी उपयोग में परिणत होती है। इस प्रकार का क्रोध कभी-कभी स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन की हानि का कारण भी बन सकता है।

परंपरागत व्याख्या में क्रोध के तरीकों के बारे में यह कहा गया है:

कोधानो दुब्बानोहोति — अथो दुक्खमपि सेति सो

अथो अत्थम गहेतावना - अनत्थम अधिगच्छति ।

(क्रोधित व्यक्ति का रंग-रूप और खान-पान दोनों ही कम प्रभावित होते हैं। यद्यपि वह विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता है, फिर भी वह दुखी रहता है। लाभकारी और स्वास्थ्यवर्धक चीजों को देखते-देखते वह पतन की ओर अग्रसर होता चला जाता है।)

ततो कायेन वचन - वधं कत्वान् कोधानो

कोधाभिभूतो पुरिसो - धनजानिम् निगच्छुति ।

(गुस्से की गिरफ्त में आने वाला व्यक्ति शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से जीवन को नष्ट कर देगा। अंत में, वह धन-संपत्ति की हानि झेलेगा और जीवन को बर्बाद कर देगा।)

दुम्मनकुयांसा दस्सेटा - धूमग्गिवीय पावको

यतो पतयति कोधो - येन कुज्झन्ति मनावा ।

(एक बार क्रोधित होने पर उसका चेहरा सुलगती आग की तरह विकृत हो जाता है। क्रोध का कारण चाहे जो भी हो, एक बार क्रोधित होने पर पुरुष और स्त्रियाँ निर्लज्ज हो जाते हैं। उनके शब्द असंगत और अर्थहीन होते हैं। क्रोधित व्यक्ति पूरी तरह से असहाय हो जाता है।)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 225

---

(धम्मपद224) <<<< पिछला || धम्मपद225 || अगला >>>> (धम्मपद226)

---

अंतर्वस्तु


धम्मपद श्लोक 225 - बुद्धपितुब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Ahimsaka ye munayo
niccam kayena sarmvuta
te yanti accutam(1) thanam
yattha gantva na socare.

---

श्लोक 225 : वे अरहत, जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते और अपने कार्यों में हमेशा संयमित रहते हैं, अमर निर्वाण में जाते हैं, जहाँ कोई दुःख नहीं होता।

---

1. accutam: अपरिवर्तनीय; मृत्युहीन। इसका अर्थ अमरता नहीं है।

---

उस ब्राह्मण की कहानी जो 'बुद्ध के पिता' थे।

साकेत के पास अंजना वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (225) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसने दावा किया कि बुद्ध उसका पुत्र है।

एक बार बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए साकेत नगर में प्रवेश किया। वृद्ध ब्राह्मण ने बुद्ध को देखकर उनसे कहा, "हे पुत्र, आपने हमें इतने समय तक दर्शन क्यों नहीं कराए? मेरे साथ आइए और अपनी माता को भी दर्शन कराइए।" ऐसा कहकर उन्होंने बुद्ध को अपने घर आमंत्रित किया। घर पहुँचने पर ब्राह्मण की पत्नी ने भी बुद्ध से वही बातें कहीं और अपने बच्चों को बुद्ध से "बड़े भाई" कहकर परिचय कराया और उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने को कहा। उस दिन से, दंपति प्रतिदिन बुद्ध को भिक्षा देने लगे और धार्मिक प्रवचन सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों को समय आने पर अनागामी पुण्य प्राप्त हो गया।

भिक्षु यह जानकर हैरान थे कि ब्राह्मण दंपति ने बुद्ध को अपना पुत्र क्यों कहा; इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, उन्होंने मुझे पुत्र इसलिए कहा क्योंकि मैं पंद्रह सौ जन्मों तक उन दोनों का पुत्र या भतीजा था।" बुद्ध तीन महीने और ब्राह्मण दंपति के पास ही रहे और इस दौरान ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया और फिर परिनिर्वाण का अनुभव किया।

भिक्षुओं को यह नहीं पता था कि ब्राह्मण दंपति अरहत बन चुके हैं, इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया:

"जो लोग अरहत बन चुके हैं, वे कहीं भी पुनर्जन्म नहीं लेते; उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 225 : वे अरहत, जो दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते और अपने कार्यों में हमेशा संयमित रहते हैं, अमर निर्वाण में जाते हैं, जहाँ कोई दुःख नहीं होता।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस ब्राह्मण की कहानी जो बुद्ध के पिता थे

साकेत के पास अंजना वन में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जिसने दावा किया था कि बुद्ध उसका पुत्र है।

एक बार बुद्ध कुछ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के लिए साकेता नगर में गए। वृद्ध ब्राह्मण ने बुद्ध को देखकर उनसे कहा, "हे पुत्र, आपने हमें इतने समय तक दर्शन क्यों नहीं कराए? मेरे साथ आइए और अपनी माता को भी आपसे मिलवाइए।" ऐसा कहकर उन्होंने

बुद्ध को अपने घर आमंत्रित किया। घर पहुँचकर ब्राह्मण की पत्नी ने भी बुद्ध से वही बातें कहीं और अपने बच्चों को बुद्ध से "आपके बड़े भाई" के रूप में परिचित कराया और उन्हें बुद्ध को प्रणाम करने को कहा। उस दिन से, दंपति प्रतिदिन बुद्ध को भिक्षा देने लगे और धार्मिक प्रवचन सुनकर ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों को समय आने पर अनागामी पुण्य प्राप्त हो गया। भिक्षु यह जानकर आश्चर्यचकित रह गए कि ब्राह्मण दंपति ने बुद्ध को अपना पुत्र क्यों कहा; इसलिए उन्होंने बुद्ध से पूछा।

तब बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, वे मुझे पुत्र इसलिए कहते थे क्योंकि मैं पंद्रह सौ जन्मों तक आप दोनों का पुत्र या भतीजा रहा था।" बुद्ध उस ब्राह्मण दंपत्ति के पास तीन महीने और रहे और इस दौरान ब्राह्मण और उनकी पत्नी दोनों ने अर्हतत्व प्राप्त किया और परिनिर्वाण प्राप्त किया। भिक्षुओं को जब पता चला कि ब्राह्मण दंपत्ति अर्हत बन चुके हैं, तो उन्होंने बुद्ध से पूछा कि उनका पुनर्जन्म कहाँ हुआ। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "जो अर्हत बन चुके हैं, उनका कहीं पुनर्जन्म नहीं होता; उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 225)

ये मुनायो अहिंसा निच्चं कायेन संवुता

ते यत्थ गन्त्वा न सोकेरे एकुतं थानं यंति

ये मुनयो [ मुनया ]: वे ऋषि; अहिंसका : (हैं) हानिरहित; निच्चं [ निच्च ]: निरंतर; कायेन संवुता : शरीर में संयमित; ते : वे; यत्थ : किसी स्थान पर; गन्त्वा : गए; न सोकारे : शोक न करें; अच्चुतं ठनं [ ठन ]: उस अमर स्थान पर; यंति : पहुँचें

वे निर्दोष ऋषि, जो सदा शरीर से बंधे रहते हैं, अमरता के स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे शोक नहीं करते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 225)

अच्चुतं ठानं : वह स्थान जो अपरिवर्तनीय है। यह निर्वाण की एक और परिभाषा है—अमरता। सब कुछ बदलता है—पर यह नियम निर्वाण पर लागू नहीं होता। संसार , यानी भौतिक अस्तित्व के विपरीत , निर्वाण शाश्वत ( धुव ), वांछनीय ( सुभ ) और सुखमय ( सुख ) है।

बौद्ध धर्म के अनुसार, सांसारिक और अलौकिक सभी वस्तुओं को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है: कारण-आधारित ( संक्षिप्त ) और असंक्षिप्त ( असम्क्षिप्त )। "सभी बद्ध वस्तुओं के तीन लक्षण हैं : उत्पत्ति ( उप्पाद ), समाप्ति ( वय ) और अवस्था परिवर्तन ( थितस्स अञ्ञतत्तम् )।" उत्पत्ति या बनना प्रत्येक उस वस्तु का अनिवार्य लक्षण है जो किसी कारण या कारणों से बद्ध है। जो भी उत्पन्न होता है या बनता है, वह परिवर्तन और विघटन के अधीन है। प्रत्येक बद्ध वस्तु निरंतर बनती और बदलती रहती है। परिवर्तन का सार्वभौमिक नियम ब्रह्मांड में मौजूद प्रत्येक वस्तु पर लागू होता है — चाहे वह मानसिक हो या भौतिक — सूक्ष्मतम बीज या कण से लेकर उच्चतम सत्ता या विशाल वस्तु तक। मन, यद्यपि अगोचर है, पदार्थ से भी अधिक तेजी से बदलता है।

निर्वाण, बुद्धों और अरहतों द्वारा प्राप्त की गई एक अलौकिक अवस्था है, जिसे किसी भी कारण से बाध्य नहीं माना जाता है। इसलिए यह किसी भी उत्पत्ति, परिवर्तन और विनाश के अधीन नहीं है। यह जन्म रहित ( अजात ), क्षय रहित ( अजर ) और अमर ( अमर ) है। वास्तव में, निर्वाण न तो कारण है और न ही परिणाम। इसलिए यह अद्वितीय ( केवल ) है। जो कुछ भी किसी कारण से उत्पन्न होता है, उसका अंत निश्चित है, और इस प्रकार वह अवांछनीय ( असुभ ) है ।

जीवन मनुष्य की सबसे अनमोल संपत्ति है, लेकिन जब उसे अथाह कठिनाइयों और असहनीय बोझों का सामना करना पड़ता है, तो वही जीवन एक असहनीय बोझ बन जाता है। कभी-कभी वह आत्महत्या करके राहत पाने की कोशिश करता है, मानो आत्महत्या से उसकी सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। शरीर को सजाया-संवारा और पूजा जाता है। लेकिन समय और रोग से विकृत होने पर वे आकर्षक, मनमोहक और लुभावने रूप अत्यंत घृणित हो जाते हैं। मनुष्य अपने प्रियजनों के साथ शांतिपूर्वक और सुखपूर्वक जीवन जीना चाहता है, मनोरंजन और सुखों से घिरा रहना चाहता है, लेकिन यदि किसी दुर्भाग्यवश यह दुष्ट संसार उसकी महत्वाकांक्षाओं और इच्छाओं के विपरीत हो जाए, तो अपरिहार्य दुःख लगभग अवर्णनीय रूप से तीव्र हो जाता है।

निम्नलिखित सुंदर दृष्टांत जीवन की क्षणभंगुरता और उसके मोहक सुखों को बखूबी दर्शाता है। एक व्यक्ति घने, काँटों और पत्थरों से घिरे जंगल से होकर गुजर रहा था। अचानक, उसे बहुत हैरानी हुई जब एक हाथी प्रकट हुआ और उसका पीछा करने लगा। वह डर के मारे भागने लगा और एक कुआँ देखकर उसमें छिप गया। लेकिन जब उसने कुएँ की तलहटी में एक साँप देखा तो वह भयभीत हो गया। बचने का कोई और रास्ता न देखकर वह कुएँ में कूद गया और उसमें उग रही एक काँटेदार लता को पकड़ लिया। ऊपर देखने पर उसने दो चूहों को, एक सफेद और एक काला, लता को कुतरते हुए देखा। उसके चेहरे के ऊपर एक मधुमक्खी का छत्ता था जिससे कभी-कभी शहद की बूँदें टपक रही थीं। यह व्यक्ति अपनी इस खतरनाक स्थिति से बेखबर, लालच से शहद चख रहा था। एक दयालु व्यक्ति ने उसे भागने का रास्ता दिखाने की पेशकश की। लेकिन लालची व्यक्ति ने कहा कि जब तक वह आनंद न ले ले, तब तक उसे जाने की अनुमति दे दी जाए।

काँटों भरा मार्ग संसार है , जीवन का सागर। यह कठिनाइयों और बाधाओं से भरा है, जिन पर विजय प्राप्त करनी होती है, विरोध और अनुचित आलोचना का सामना करना पड़ता है, आक्रमण और अपमान सहने पड़ते हैं। जीवन का काँटों भरा मार्ग ऐसा ही है। यहाँ हाथी मृत्यु का प्रतीक है; सर्प वृद्धावस्था का; लता जन्म का; दो चूहे रात और दिन का। शहद की बूँदें क्षणभंगुर इंद्रिय सुखों का प्रतीक हैं।

मनुष्य तथाकथित प्राणी का प्रतिनिधित्व करता है। दयालु व्यक्ति बुद्ध का प्रतिनिधित्व करता है। क्षणिक भौतिक सुख केवल किसी इच्छा की पूर्ति है। जब वांछित वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो दूसरी इच्छा उत्पन्न होती है। सभी इच्छाएँ अतृप्त हैं। दु:ख जीवन का अनिवार्य अंग है, और इससे बचा नहीं जा सकता। निर्वाण, अबद्ध होने के कारण, शाश्वत ( धुव ), वांछनीय ( सुभ ) और सुखमय ( सुख ) है। निर्वाण के सुख को सामान्य सांसारिक सुख से भिन्न समझना चाहिए। निर्वाण का आनंद न तो बासी होता है और न ही नीरस। यह एक प्रकार का सुख है जो कभी नहीं थकता, कभी नहीं बदलता। यह वासनाओं को शांत करके ( वूपसम ) उत्पन्न होता है, उस क्षणिक सांसारिक सुख के विपरीत जो किसी इच्छा की पूर्ति से प्राप्त होता है ( वेदयित )।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 226

———————————————————————

(धम्मपद225) <<<< पिछला|| धम्मपद226 ||अगला >>>> (धम्मपद 227, 228, 229 और 230)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 226 - पुन्नादासि वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

सदा जागृतमनम
ahorattanusi kkhinam
निब्बानम अधिमुत्तनम
attham gacchanti asava.

———————————————————————

श्लोक 226 : जो लोग सदा सतर्क रहते हैं, जो दिन-रात तीनों विद्याओं (अर्थात् शील, समाधि और पन्ना) का अभ्यास करते हैं, और जिनका मन निर्वाण की ओर उन्मुख होता है, उनमें नैतिक मादक पदार्थ विलुप्त हो जाते हैं।

———————————————————————

पुन्ना नाम की दासी की कहानी

गिज्झकुटा पर्वत पर निवास करते हुए, बुद्ध ने राजगृह में एक दासी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (226) कहा।

एक रात, पुन्ना नाम की दासी अपने स्वामी के लिए चावल कूट रही थी। थककर वह थोड़ी देर आराम करने लगी। आराम करते समय उसने देखा कि थेरा डब्बा कुछ भिक्षुओं को धम्म प्रवचन सुनकर उनके मठों की ओर ले जा रहे हैं। उन्हें इतनी देर तक जागते देखकर पुन्ना सोचने लगी, "मुझे इतनी देर तक जागना पड़ता है क्योंकि मैं बहुत गरीब हूँ और मुझे कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन ये भले लोग इतनी देर तक क्यों जाग रहे हैं? शायद कोई भिक्षु बीमार है, या उन्हें कोई साँप परेशान कर रहा है?"

अगले दिन सुबह-सुबह पुन्ना ने कुछ टूटे हुए चावल लिए, उन्हें पानी में भिगोया और उनकी एक रोटी बनाई। नदी किनारे बैठकर उसे खाने के इरादे से वह अपनी सस्ती, खुरदरी रोटी अपने साथ ले गई। रास्ते में उसने बुद्ध को भिक्षा मांगते हुए देखा। वह अपनी रोटी बुद्ध को अर्पित करना चाहती थी, लेकिन उसे यकीन नहीं था कि बुद्ध इतनी सस्ती, खुरदरी रोटी खाने की कृपा करेंगे। बुद्ध उसकी बात समझ गए। उन्होंने उसकी रोटी स्वीकार कर ली और थेरा आनंद से ज़मीन पर छोटी चटाई बिछाने को कहा। बुद्ध चटाई पर बैठ गए और दासी द्वारा अर्पित रोटी खा ली। खाने के बाद, बुद्ध ने पुन्ना को अपने पास बुलाया और उसके मन में उठ रहे प्रश्न का उत्तर दिया। बुद्ध ने दासी

से कहा, "पुन्ना, तुम सो नहीं सकती क्योंकि तुम गरीब हो और इसलिए तुम्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। जहाँ तक मेरे पुत्र भिक्षुओं की बात है, वे सोते नहीं हैं क्योंकि उन्हें हमेशा सतर्क और सचेत रहना पड़ता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 226 : जो लोग सदा सतर्क रहते हैं, जो दिन-रात तीनों विद्याओं (अर्थात् शील, समाधि और पन्ना) का अभ्यास करते हैं, और जिनका मन निर्वाण की ओर उन्मुख होता है, उनमें नैतिक मादक पदार्थ विलुप्त हो जाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में पुन्ना ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पुण्णा नामक दासी की कहानी
गिज्झकूत पर्वत पर निवास करते समय, बुद्ध ने राजगृह की एक दासी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, एक दिन उन्हें बहुत सारा चावल कूटने को दिया गया। वे रात देर तक चावल कूटती रहीं, और काम करते समय एक दीपक जलाती रहीं; अंत में, वे बहुत थक गईं और आराम करने के लिए बाहर निकलकर हवा में खड़ी हो गईं, उनका शरीर पसीने से तर था। उस समय मल्ला दब्बा भिक्षुओं के आवास के प्रबंधक थे। धम्म सुनकर, ताकि वे भिक्षुओं को उनके आवासों का मार्ग दिखा सकें, उन्होंने अपनी उंगली में दीपक जलाया और भिक्षुओं के आगे-आगे चलते हुए अलौकिक शक्ति से उनके लिए प्रकाश उत्पन्न किया। प्रकाश के कारण पुण्णा ने भिक्षुओं को पर्वत पर चलते हुए देखा। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैं तो अपनी ही बेचैनी से परेशान हूँ, और इसलिए इस समय भी सो नहीं पा रही हूँ। आदरणीय भिक्षु क्यों नहीं सो पा रहे हैं?" इस पर विचार करने के बाद, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं, "ज़रूर वहाँ रहने वाला कोई भिक्षु बीमार है, या किसी सरीसृप के काटने से पीड़ित है।" भोर होते ही उसने थोड़ा सा चावल का चूरा लिया, उसे हथेली पर फैलाया, पानी से गीला किया और उससे एक रोटी बनाकर कोयले की आंच पर पकाया। फिर मन ही मन सोचते हुए, "मैं इसे नदी के किनारे स्नान स्थल की ओर जाने वाले रास्ते पर खाऊंगी," उसने रोटी को अपने वस्त्र की तह में रखा और हाथ में पानी का घड़ा लेकर नदी के किनारे स्नान स्थल की ओर चल पड़ी।
बुद्ध भी उसी मार्ग पर चल पड़े, उनका इरादा भी भिक्षा मांगने के लिए उसी गाँव में प्रवेश करने का था। जब पुण्णा ने बुद्ध को देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "पहले जब भी मैंने बुद्ध को देखा है, तो मेरे पास उन्हें देने के लिए कुछ नहीं था, या अगर कुछ देने के लिए था भी, तो मैं उनसे मिल नहीं पाई; लेकिन आज तो न केवल मैं बुद्ध से आमने-सामने मिल रही हूँ, बल्कि मेरे पास उन्हें देने के लिए भिक्षा भी है। यदि वे इस रोटी को बिना यह सोचे समझे स्वीकार कर लें कि यह उत्तम है या उत्तम, तो मैं उन्हें दे दूँगी।" अतः उन्होंने अपना पानी का घड़ा एक तरफ रखकर बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "हे पूज्यवर, इस साधारण भोजन को स्वीकार कीजिए और मुझे अपना आशीर्वाद दीजिए।" बुद्ध ने पूज्य आनंद की ओर देखा, जिस पर पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र की तह से एक कटोरा निकाला और बुद्ध को भेंट किया, जो एक महान राजा की ओर से बुद्ध को भेंट था। बुद्ध ने कटोरा आगे बढ़ाया और उसमें रोटी का प्रसाद ग्रहण किया। जब पुण्णा ने केक को बुद्ध के कटोरे में रख दिया, तो उसने पांच विश्रामों से उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, "आदरणीय, जो सत्य आपने देखा है, वह मेरे लिए भी उपयोगी हो।"
बुद्ध ने उत्तर दिया, "ऐसा ही हो।" बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "इस स्त्री के मन में क्या विचार था?" उनके मन की बात समझकर, बुद्ध ने पूज्य आनंद की ओर देखा और बैठने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य आनंद ने एक वस्त्र बिछाया और बुद्ध को बैठने के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध बैठ गए और नाश्ता किया। नाश्ता समाप्त करने के बाद, उन्होंने पुण्णा से कहा, "पुण्णा, तुमने मेरे शिष्यों पर दोष क्यों लगाया?" पुण्णा ने कहा, "मैं आपके शिष्यों पर दोष नहीं लगाती, पूज्य।" "तो फिर तुमने मेरे शिष्यों को देखकर क्या कहा?" "आदरणीय, इसका स्पष्टीकरण बहुत सरल है। मैंने मन ही मन सोचा, 'मैं तो अपनी ही बेचैनी से परेशान हूँ, इसलिए सो नहीं पा रही; तो फिर अन्य आदरणीय क्यों सो नहीं पा रहे? अवश्य ही वहाँ रहने वाला कोई भिक्षु बीमार होगा, या किसी सरीसृप के काटने से पीड़ित होगा।'" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और फिर उनसे कहा, "पुण्णा, तुम्हारे मामले में तो तुम बेचैनी से पीड़ित हो, इसलिए सो नहीं पा रही हो। परन्तु मेरे शिष्य तो पूरी तरह सतर्क रहते हैं, इसलिए सोते नहीं हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 226)
सदा जगरामानां अहोरत्तं अनुसिक्खिनं
निब्बाणं अधिमुत्तनं आसव अत्थं गच्छन्ति

सदा : सदैव; जगरामानां [ जगरामाना ]: जाग्रत; अहोराट्टं [ अहोरात्ता ]: दिन और रात; अनुसिक्खिनं [ अनुसिक्खिना ]: अनुशासन के लिए दिया गया; निब्बाणं अधिमुत्तनम् [ अधिमुत्तन ]: निब्बाण पर तुला हुआ; आसव : (उस व्यक्ति का) कलंक; अत्थं गच्छन्ति : बुझ जाओ

जो लोग निरंतर जागृत, सजग और सतर्क रहते हैं, जो स्वयं को अनुशासित करने और दिन-रात अध्ययन करने में लगे रहते हैं, निर्वाण की प्राप्ति के लिए तत्पर रहते हैं, उनके सारे दोष और कलंक मिट जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 226)

आसवा : दोष; दाग। ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में बुद्ध ने आसवाओं को समझा ; उनके उत्पन्न होने और समाप्त होने की प्रक्रिया को जाना। इस ज्ञान से उनका मन आसवाओं (दोषों) से मुक्त हो गया: कामसव (इंद्रिय सुख), भावसव (भाव) और अविज्जसव (अज्ञान)। इस प्रकार उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 227,228,229,230

---

(धम्मपद 226) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 227, 228, 229 और 230 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 231, 232, 233 और 234)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 227, 228, 229 और 230 - अतुल उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

पोरानामेटम अतुला
netam ajjatanamiva
nindanti tunhimasinam
निंदन्ति बहुभाननाम
mitabhanimpi nindanti
natthi loke anindito.
Na cahu na ca bhavissati
na cetarahi vijjati
ekantam nindito poso
ekantam va pasamsito.
Yam ce vinnu pasamsanti
anuvicca suve suve
acchiddavuttim medhavim
pannasilasamahitam.
निक्खम जंबोनादाससेवा(1)
ko tam ninditumarahati
devapi nam pasamsanti

brahmunapi pasamsito.

---

श्लोक 227 : हे अतुल! यह कोई नई बात नहीं है! यह प्राचीन काल से होता आ रहा है। वे चुप रहने वाले को दोष देते हैं, वे बहुत बोलने वाले को दोष देते हैं, वे कम बोलने वाले को दोष देते हैं। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसे दोष न दिया गया हो।

---

श्लोक 228 : न कभी कोई ऐसा था, न कभी कोई ऐसा होगा, और न ही अब कोई ऐसा है, जिसकी हमेशा निंदा की जाती हो या जिसकी हमेशा प्रशंसा की जाती हो।

---

श्लोक 229-230 : यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हैं, यह जानते हुए कि वे वास्तव में निर्दोष, बुद्धिमान और ज्ञान एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, तो भला कौन उनकी निंदा करेगा, जो शुद्ध सोने के निक्खा के समान हैं? देव (देवदूत) उनकी स्तुति करते हैं; महान ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करते हैं।

---

1. निक्खम जंबोनादाससेवा: जंबोनादा सोने के निक्खा की तरह। जंबू नदी से प्राप्त जंबोनादा सोना सबसे उत्तम सोना होता है। निक्खा सोने की एक इकाई, आभूषण या सिक्का हो सकता है।

---

गृहस्थ शिष्य अतुल की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अतुल और उनके साथियों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (227) से (230) तक कहे।

एक बार अतुल और उनके पाँच सौ साथी धर्म के उपदेश सुनने की इच्छा से थेरा रेवता के पास गए। परन्तु थेरा सिंह के समान एकांतप्रिय थे; उन्होंने उनसे कुछ नहीं कहा। वे अत्यंत असंतुष्ट हुए और इसलिए वे थेरा सारिपुत्त के पास गए। जब थेरा सारिपुत्त को उनके आने का कारण पता चला, तो उन्होंने अभिधम्म का विस्तृत उपदेश दिया। वे भी उन्हें पसंद नहीं आए और उन्होंने शिकायत की कि थेरा सारिपुत्त का उपदेश बहुत लंबा और गहन था। इसके बाद अतुल और उनके साथी थेरा आनंद के पास गए। थेरा आनंद ने उन्हें धर्म के मूल तत्व समझाए। इस बार उन्होंने कहा कि थेरा आनंद का उपदेश बहुत संक्षिप्त और सारगर्भित था। अंततः वे बुद्ध के पास आए और उनसे कहा, "आदरणीय बुद्ध, हम आपका उपदेश सुनने आए हैं। यहाँ आने से पहले हम कई अन्य गुरुओं के पास जा चुके हैं, लेकिन उनमें से किसी से भी संतुष्ट नहीं हुए। थेरा रेवता ने हमें उपदेश देने की जहमत ही नहीं उठाई और वे मौन ही बैठे रहे; थेरा सारिपुत्त का उपदेश बहुत विस्तृत था और उनके द्वारा सिखाया गया धम्म हमारे लिए बहुत कठिन था। थेरा आनंद का उपदेश भी बहुत संक्षिप्त और सारगर्भित था। हमें उनके किसी भी प्रवचन में रुचि नहीं है।"

बुद्ध ने उनसे कहा, "मेरे शिष्यों, दूसरों पर दोषारोपण करना कोई नई बात नहीं है। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिस पर कभी दोषारोपण न हुआ हो; लोग राजा पर भी, या बुद्ध पर भी दोषारोपण कर देते हैं। किसी मूर्ख द्वारा दोषारोपित या प्रशंसा किए जाने का कोई महत्व नहीं है; वास्तव में दोषारोपित व्यक्ति तभी होता है जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति दोषारोपित करता है, और वास्तव में प्रशंसा तभी होती है जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति प्रशंसा करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 227 : हे अतुल! यह कोई नई बात नहीं है! यह प्राचीन काल से होता आ रहा है। वे चुप रहने वाले को दोष देते हैं, वे बहुत बोलने वाले को दोष देते हैं, वे कम बोलने वाले को दोष देते हैं। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसे दोष न दिया गया हो।

---

श्लोक 228 : न कभी कोई ऐसा था, न कभी कोई ऐसा होगा, और न ही अब कोई ऐसा है, जिसकी हमेशा निंदा की जाती हो या जिसकी हमेशा प्रशंसा की जाती हो।

---

श्लोक 229-230 : यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हैं, यह जानते हुए कि वे वास्तव में निर्दोष, बुद्धिमान और ज्ञान एवं सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, तो भला कौन उनकी निंदा करेगा, जो शुद्ध सोने के निक्खा के समान हैं? देव (देवदूत) उनकी स्तुति करते हैं; महान ब्रह्मा भी उनकी स्तुति करते हैं।

---

प्रवचन के अंत में अतुल और उनके साथियों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

(धम्मपद 227, 228, 229 और 230) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 231, 232, 233 और 234 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 235, 236, 237 और 238)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 231, 232, 233 और 234 - चब्बग्गिया वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Kayappakopam rakkheyya
kayena sambyuto siya
kayaduccharitam hitva
kayena sucaritam care.
Vacipakopam rakkheyya
vacaya samvuto siya
vaciduccaritam hitva
vacaya sucaritam care.
मनोपाकोपम रक्खेय्या
manasa samvuto siya
manoduccaritam hitva
manasa sucaritam care.
Kayena samvuta dhira
atho vacaya sambuta
manasa samvuta dhira
te ye suparisamvuta.

---

श्लोक 231 : बुरे कर्मों से सावधान रहो, अपने शरीर पर नियंत्रण रखो। बुरे कर्मों का त्याग करके अच्छे कर्म करो।

---

श्लोक 232 : बुरी वाणी से सावधान रहो, अपनी वाणी पर नियंत्रण रखो। बुरी वाणी का त्याग करके अच्छी वाणी का अभ्यास करो।

---

श्लोक 233 : बुरे विचारों से सावधान रहो, अपने मन को वश में रखो। बुरे विचारों का त्याग करके अच्छे विचारों का विकास करो।

---

श्लोक 234 : बुद्धिमान लोग कर्मों में संयमित होते हैं, वे वाणी में संयमित होते हैं, वे विचारों में संयमित होते हैं। वास्तव में, वे पूर्णतः आत्मसंयमित होते हैं।

---

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (231) से (234) तक कहे। लकड़ी की चप्पलें पहने और दोनों हाथों में लाठी लिए छह भिक्षु एक बड़ी पत्थर की पटिया पर शोर मचाते हुए इधर-उधर चल रहे थे। शोर सुनकर बुद्ध ने थेरा आनंद से पूछा कि क्या हो रहा है, और थेरा आनंद ने उन्हें उन छह भिक्षुओं के बारे में बताया। तब बुद्ध ने भिक्षुओं को लकड़ी की चप्पलें पहनने से मना किया। उन्होंने भिक्षुओं को वचन और कर्म दोनों में संयम बरतने की भी सलाह दी।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 231 : बुरे कर्मों से सावधान रहो, अपने शरीर पर नियंत्रण रखो। बुरे कर्मों का त्याग करके अच्छे कर्म करो।

---

श्लोक 232 : बुरी वाणी से सावधान रहो, अपनी वाणी पर नियंत्रण रखो। बुरी वाणी का त्याग करके अच्छी वाणी का अभ्यास करो।

---

श्लोक 233 : बुरे विचारों से सावधान रहो, अपने मन को वश में रखो। बुरे विचारों का त्याग करके अच्छे विचारों का विकास करो।

---

श्लोक 234 : बुद्धिमान लोग कर्मों में संयमित होते हैं, वे वाणी में संयमित होते हैं, वे विचारों में संयमित होते हैं। वास्तव में, वे पूर्णतः आत्मसंयमित होते हैं।

---

सत्रहवें अध्याय का अंत: क्रोध (कोधवग्ग)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक दिन छह भिक्षुओं के एक समूह ने अपने पैरों में लकड़ी के जूते पहने और दोनों हाथों में लकड़ी की लाठियाँ लेकर एक समतल चट्टान पर इधर-उधर चलने लगे। बुद्ध ने खड़खड़ाहट सुनकर पूज्य आनंद से पूछा, “आनंद, यह कैसी आवाज़ है?” पूज्य आनंद ने उत्तर दिया, “छह भिक्षुओं का एक समूह लकड़ी के जूते पहनकर चल रहा है; वे ही यह खड़खड़ाहट कर रहे हैं जो आप सुन रहे हैं।” यह सुनकर बुद्ध ने यह उपदेश दिया, “भिक्षु को अपने कर्मों, अपने शब्दों और अपने विचारों पर नियंत्रण रखना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 231)

कायप्पकोपं रक्खेया , कायेन संवुतो सिया ,

काया दुचरितं हित्वा कायेन सुचरितं देखभाल ।

कायप्पकोपम् [ कायप्पकोप ]: शरीर की उत्तेजना; रक्खेय्य : स्वयं को संभालना; कायन संवुतो सिया : शरीर को अनुशासित रखना; काय दुच्चरितम् [ दुच्चरित ]: शारीरिक दुराचार; हित्वा : त्याग देना; कायन : शरीर के साथ; सुचरितम् देखभाल : सद्गुणपूर्ण व्यवहार करना

अपनी भावनाओं को शारीरिक रूप से प्रकट करने से बचें। शारीरिक व्यवहार में संयम बरतें। शारीरिक दुराचार से दूर रहें। स्वस्थ शारीरिक व्यवहार का अभ्यास करें।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 232)

वाचिपकोपं रक्खेय वाचाय सवुतो सिया

वसीदुच्चरितं हित्वा वचन सुचरितं देखभाल

vacīpakopaṃ [ vacīpakopa ]: वाणी की उत्तेजना; rakkheyya : स्वयं को संभालना; vācāya saṃvuto siyā : वाणी में संयम बरतना; vacīduccaritaṃ [ vacīduccarita ]: वाणी में दुराचार; hitvā : त्याग देना ; vācāya : अपनी वाणी से; sucaritaṃ care : सद्गुणपूर्ण व्यवहार करना

अपनी भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करने से बचें। अपने वाणी व्यवहार में संयम बरतें। वाणी के दुर्व्यवहार से बचें। अच्छे वाणी व्यवहार का अभ्यास करें।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 233)

मनोपकोपं रक्खेया , मनसा संवुतो सिया ,

मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं ध्यान
मनोपकोपम् [ मनोपकोप ]: मन की उत्तेजना; रक्खेय्य : स्वयं को संभालना; मनसा संवुतो सिया : मन में अनुशासन रखना; मनोदुच्चरितम् [ मनदुच्चरित ]: मन का दुराचार; हित्वा : त्याग देना; मनसा : मन से; सुचरितम् देखभाल : अच्छे आचरण का अभ्यास करना
अपनी भावनाओं को मन में प्रकट करने से बचें। अपने मन के व्यवहार में संयम बरतें। मानसिक दुराचार से दूर रहें। स्वस्थ मानसिक व्यवहार का अभ्यास करें।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 234)
धीरा कायेन संवुता अथो वचन संवुता
मनसा संवुता ते धीरा वे सुपरिसंवुता
धीरा : वे बुद्धिमान प्राणी; कायेन : शरीर से; संवुता : अनुशासित हैं; अथो : फिर से; वाचाय : वाणी से; संवुता : संयमित हैं; मनसा : मन से; संवुता : अनुशासित हैं; ते धीरा : वे बुद्धिमान प्राणी; वे : निश्चित रूप से; सुपरिसंवुता : पूर्णतः संयमित
ज्ञानी पुरुष शरीर से संयमित होते हैं। वे वाणी से भी संयमित होते हैं। वे मन से भी पूर्णतः अनुशासित होते हैं। जिन्होंने शरीर, वाणी और मन - तीनों द्वारों की रक्षा कर ली है, वे परम संयमी होते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 231-234)
कायप्पकोपं वचीपकोपं मनोपकोपं रक्खेय्य : शरीर, वाणी और मन के कुकर्मों से सावधान रहो। ये श्लोक बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह को चेतावनी देने के लिए कहे थे, जिनका व्यवहार भिक्षुओं के अनुशासन के अनुरूप नहीं था। बुद्ध ने उनसे कुकर्मों से बचने के लिए कहा। बौद्ध धर्म में भिक्षुओं के संयम के लिए कड़े नियम निर्धारित हैं। यदि भिक्षुओं को आध्यात्मिक प्रगति के उच्चतर चरणों को प्राप्त करना है, तो संयमित व्यवहार आवश्यक है। निर्वाण के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिए संयमित व्यवहार के ये मूलभूत सिद्धांत आवश्यक हैं, मुख्यतः इसलिए क्योंकि ये कर्म और वाणी दोनों को नियंत्रित करते हैं। इनका उल्लंघन मार्ग पर नैतिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है। इनका पालन मार्ग पर सुचारू और स्थिर प्रगति का साधन है।
अपनी क्रमिक उन्नति में एक कदम और आगे बढ़ते हुए, साधक अब अपनी इंद्रियों को वश में करने का प्रयास करता है। भोजन की लालसा को नियंत्रित करने और मन एवं शरीर के अर्थ को बढ़ावा देने के लिए महीने में एक दिन उपवास करना उचित है। विलासितापूर्ण जीवन की तुलना में सादा जीवन श्रेष्ठ है, क्योंकि विलासितापूर्ण जीवन व्यक्ति को वासनाओं का गुलाम बना देता है। ब्रह्मचर्य का जीवन अनुशंसित है, क्योंकि इस प्रकार संरक्षित बहुमूल्य ऊर्जा का उपयोग स्वयं और दूसरों के बौद्धिक एवं नैतिक कल्याण के लिए किया जा सकता है। ऐसे जीवन में व्यक्ति उन अतिरिक्त सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है जो नैतिक प्रगति में बाधा डालते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग सभी आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने शरीर का पोषण संयम से किया है और कठोर ब्रह्मचर्य, सादगी, स्वैच्छिक दरिद्रता और आत्म-संयम का जीवन व्यतीत किया है। जैसे-जैसे साधक नियमित रूप से, नियमित वाणी और कर्म तथा इंद्रिय-संयम के साथ धीरे-धीरे प्रगति करता है, कर्म की प्रेरणा उसे सांसारिक सुखों का त्याग करने और तपस्वी जीवन अपनाने के लिए विवश करती है।
तब उनके मन में यह विचार आता है कि:
गृहस्थ जीवन कलह का अड्डा होता है।
और परिश्रम और अभाव से भरा हुआ,
लेकिन खुले आकाश की तरह स्वतंत्र और ऊँचा
बेघर लोग ऐसा ही जीवन जीते हैं।
इस प्रकार इंद्रिय सुखों की व्यर्थता को जानकर, वह स्वेच्छा से सभी सांसारिक संपत्तियों का त्याग कर, तपस्वी वेश धारण करके ऋषिमय जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है। यद्यपि, यह बाहरी रूप नहीं है जो मनुष्य को पवित्र बनाता है, बल्कि आंतरिक शुद्धि और अनुकरणीय जीवन है। परिवर्तन भीतर से आना चाहिए, बाहर से नहीं। निर्वाण प्राप्त करने के लिए एकांतवास में जाकर तपस्वी जीवन व्यतीत करना पूर्णतः आवश्यक नहीं है। भिक्षु का जीवन निस्संदेह आध्यात्मिक प्रगति को गति प्रदान करता है और सुगम बनाता है, परन्तु गृहस्थ रहते हुए भी संतत्व प्राप्त किया जा सकता है। जो व्यक्ति सभी प्रलोभनों का सामना करते हुए गृहस्थ रहते हुए अर्हतत्व प्राप्त करता है, वह निःसंदेह उस भिक्षु से अधिक प्रशंसनीय है जो विचलित न करने वाले परिवेश में रहते हुए अर्हतत्व प्राप्त करता है।
एक मंत्री के विषय में, जिसने अपने सर्वोत्तम वस्त्रों में सजे-धजे और हाथी पर बैठे हुए अर्हतत्व प्राप्त किया, बुद्ध ने टिप्पणी की:
भले ही कोई व्यक्ति कितना भी सुसज्जित क्यों न हो, यदि वह शांति से चलता है,
यदि वह शांत, संयमित, निश्चित और पवित्र हो,
और यदि वह किसी भी जीवित प्राणी को हानि पहुँचाने से परहेज करता है,
वह व्यक्ति ब्राह्मण है, वह व्यक्ति संन्यासी है, वह व्यक्ति भिक्षु है।

ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें गृहस्थों ने संसार का त्याग किए बिना निर्वाण प्राप्त किया। सबसे धर्मनिष्ठ और उदार गृहस्थ अनुयायी अनाथपिंडिक एक सोतापन्न थे, शाक्य महानामा एक सकदागामी थे, कुम्हार घटिकारा एक अनागामी थे और बुद्ध के पिता राजा सुद्धोदन एक अरहत के रूप में प्राण त्यागे।

एक भिक्षु से चार प्रकार की उच्च नैतिक मान्यताओं का पालन करने की अपेक्षा की जाती है—अर्थात्:

पतिमोक्ख सिला - मौलिक नैतिक संहिता,

इंद्रियसंवर शील - इंद्रिय-संयम से संबंधित नैतिकता,

Ājīvapārisuddhi sīla — आजीविका की शुद्धता से संबंधित नैतिकता,

Paccayasannissita sīla —जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उपयोग से संबंधित नैतिकता।

इन चार प्रकार के नैतिक मूल्यों को सामूहिक रूप से शील-विशुद्धि (सद्गुणों की शुद्धता) कहा जाता है, जो निर्वाण की ओर जाने वाले सात चरणों में से पहला चरण है। जब कोई व्यक्ति संघ में प्रवेश करता है और उच्च दीक्षा ( उपसंपदा ) प्राप्त करता है, तो उसे भिक्षु कहा जाता है। पाली शब्द भिक्षु का कोई ऐसा अंग्रेजी पर्याय नहीं है जो इसके अर्थ को सटीक रूप से व्यक्त करता हो । भिक्षु शब्द इसका सबसे उपयुक्त अनुवाद हो सकता है, भिक्षा मांगने वाले के अर्थ में नहीं, बल्कि भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले के अर्थ में।

भिक्षु के लिए कोई प्रतिज्ञा नहीं होती। वह अपनी इच्छा से धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए भिक्षु बनता है। वह संघ छोड़ने के लिए स्वतंत्र है। भिक्षु विनय में वर्णित 227 नियमों का पालन करने के लिए बाध्य है, इसके अतिरिक्त कई अन्य छोटे नियम भी हैं। पूर्ण ब्रह्मचर्य, चोरी, हत्या और उच्च आध्यात्मिक शक्तियों के झूठे दावे से संबंधित चार प्रमुख नियमों का कड़ाई से पालन करना अनिवार्य है। यदि वह इनमें से किसी एक का भी उल्लंघन करता है, तो वह पराजित ( पाराजिका ) हो जाता है और स्वतः ही भिक्षु नहीं रह जाता। यदि वह चाहे, तो वह संघ में पुनः प्रवेश कर सकता है और सामान्यर (नवदीक्षित) के रूप में रह सकता है। अन्य नियमों के उल्लंघन के मामले में, उसे अपराध की गंभीरता के अनुसार प्रायश्चित करना होता है। भिक्षु के प्रमुख गुणों में पवित्रता, पूर्ण ब्रह्मचर्य, स्वैच्छिक निर्धनता, विनम्रता, सादगी, निस्वार्थ सेवा, आत्म-संयम, धैर्य, करुणा और अहिंसा शामिल हैं।

भिक्षु का जीवन, या दूसरे शब्दों में, सांसारिक सुखों और महत्वाकांक्षाओं का त्याग, निर्वाण प्राप्त करने का केवल एक प्रभावी साधन है, लेकिन यह अपने आप में एक लक्ष्य नहीं है।

नैतिकता के मार्ग पर दृढ़ आधार स्थापित करने के बाद, साधक समाधि की उच्च साधना में संलग्न होता है , जो मन का नियंत्रण और संवर्धन है, और पवित्रता के मार्ग का दूसरा चरण है। समाधि मन का संतुलन है। यह मन की स्थिरता या मानसिक गतिविधि का विश्राम है। बौद्ध धर्म के अनुसार, चालीस ध्यान विषय ( कम्मट्ठाना ) हैं जो व्यक्तियों के स्वभाव के अनुसार भिन्न होते हैं।

वे हैं:

(1) दस विस्तार ( कासिना ), अर्थात्: (ए) पृथ्वी कासिना , (बी) जल कासिना , (सी) अग्नि कासिना , (डी) वायु कासिना , (ई) नीला कासिना , (एफ) पीला कासिना , (जी) लाल कासिना , (एच) सफेद कासिना , (आई) प्रकाश कासिना और (जे) अंतरिक्ष कासिना ।

(2) दस अप्रिय ( असुभ ), अर्थात् दस शव जो क्रमशः इस प्रकार हैं: (क) फूले हुए ( उद्धुमातक ), (ख) बदरंग ( विनीलाक ), (ग) सड़ते हुए ( विपुब्बक ), (घ) विच्छेदित ( विच्चिद्दक ), (ङ) कुतर-कुतर कर टुकड़े किए हुए ( विक्खायितक ), (च) टुकड़ों में बिखरे हुए ( विक्खित्तक ), (छ) क्षतविक्षत और टुकड़ों में बिखरे हुए ( हतविक्खित्तक ), (ज) रक्त से लथपथ ( लोहितक ), (झ) कृमिग्रस्त ( पुलावक ), और (झ) कंकाल ( अट्ठिका )।

(3) दस चिंतन ( अनुस्सति ), अर्थात्, आठ चिंतन: (क) बुद्ध ( बुद्धानुस्सति ), (ख) सिद्धांत ( धम्मानुस्सति ), (ग) संघ ( संघानुस्सति ), (घ) सद्गुण ( सीलानुस्सति ), (ङ) उदारता ( चागानुस्सति ), (च) देव ( देवतानुस्सति ), (छ) शांति ( उपसमानुस्सति ), (ह) मृत्यु ( मरनानुस्सति ), क्रमशः, साथ ही (छ) शरीर के प्रति सजगता ( कायगतासति ) और (श) श्वसन के प्रति सजगता ( आनापानसति )।

(4) चार असीम या दिव्य आचरण के चार तरीके ( ब्रह्मविहार ), अर्थात्, प्रेम ( मेट्टा ), करुणा ( करुणा ), प्रशंसात्मक आनंद ( मुदिता ), और समभाव ( उपेक्खा )।

(5) एक धारणा, अर्थात् भौतिक भोजन की घृणास्पदता की धारणा ( āhāre patikkiūlasaññā )।

(6) एक विश्लेषण, अर्थात् चार तत्वों का विश्लेषण ( चतुधातुविवत्थाना )।

(7) चार अरूप झान , अर्थात् अंतरिक्ष की अनंतता का क्षेत्र ( आकासानंचायतन ), चेतना की अनंतता का क्षेत्र ( विञ्ञानंचायतन ), और न तो बोध और न ही अबोध का क्षेत्र ( न ' एव सञ्ञा न ' आसान्चायतन )।

ग्रंथों के अनुसार, दस अशुद्धियाँ और शरीर के प्रति सजगता, जैसे कि बत्तीस अंग, कामुक स्वभाव वाले लोगों के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि वे शरीर के प्रति घृणा उत्पन्न करते हैं जो इंद्रियों को मोहित करता है।

चार असीम तत्व और चार रंगों के कसिन घृणाशील स्वभाव वालों के लिए उपयुक्त हैं। बुद्ध आदि का चिंतन भक्तिमय स्वभाव वालों के लिए उपयुक्त है। मृत्यु और शांति का चिंतन, भौतिक भोजन की घृणास्पदता का बोध और चार तत्वों का विश्लेषण बौद्धिक स्वभाव

वालों के लिए उपयुक्त है। शेष विषय, मुख्यतः बुद्ध का चिंतन, प्रेम-कृपा का ध्यान, शरीर के प्रति सजगता और मृत्यु का चिंतन, स्वभाव की परवाह किए बिना सभी के लिए उपयुक्त हैं।

स्वभाव ( कारिता ) छह प्रकार के होते हैं । वे इस प्रकार हैं:

कामुक स्वभाव ( रागचरित )

घृणास्पद स्वभाव ( दोसाचरिता )

अज्ञानी स्वभाव ( मोहकारिता ),

सद्धाचरित (भक्तिपूर्ण स्वभाव )

बौद्धिक स्वभाव ( बुद्धचरित ), और

विवेचनात्मक स्वभाव ( विताक्कचरिता )।

चरिता व्यक्ति के आंतरिक स्वभाव को दर्शाती है, जो तब प्रकट होता है जब व्यक्ति किसी भी चीज़ में लीन न होकर सामान्य अवस्था में होता है। लोगों के स्वभाव उनके कर्मों की विविधता के कारण भिन्न होते हैं। नियमित क्रियाएँ विशिष्ट स्वभावों को आकार देती हैं।

कुछ लोगों में राग या कामवासना प्रबल होती है, जबकि अन्य में दोष या क्रोध, घृणा, द्वेष आदि। अधिकांश लोग इन्हीं दो श्रेणियों में आते हैं। कुछ अन्य लोग बुद्धिहीन होते हैं और कमोबेश अज्ञानी ( मोहचरित ) होते हैं। अज्ञानी लोगों के समान वे लोग हैं जिनका मन चंचल होता है — वे जानबूझकर किसी एक चीज पर ध्यान केंद्रित करने में असमर्थ होते हैं ( वितक्कचरित )। स्वभाव से कुछ लोग असाधारण रूप से भक्त ( सद्धाचरित ) होते हैं, जबकि अन्य असाधारण रूप से बुद्धिमान ( बुद्धचरित ) होते हैं ।

इन छह प्रकारों को आपस में मिलाने पर तिरसठ प्रकार प्राप्त होते हैं। चिंतनशील स्वभाव ( दिट्ठिचरित ) को शामिल करने पर चौंसठ प्रकार हो जाते हैं। ध्यान के विषय इन विभिन्न स्वभावों और लोगों के प्रकारों के अनुरूप अनुकूलित किए गए हैं।

समाधि का अभ्यास करने से पहले, योग्य साधक को ध्यान के विषय पर गहन विचार करना चाहिए। प्राचीन काल में, शिष्यों के लिए यह प्रथा थी कि वे अपने स्वभाव के अनुसार उपयुक्त विषय चुनने के लिए किसी योग्य शिक्षक से मार्गदर्शन प्राप्त करें। लेकिन आज, यदि कोई योग्य शिक्षक उपलब्ध न हो, तो साधक को स्वयं विवेक का प्रयोग करना चाहिए और ऐसा विषय चुनना चाहिए जो उसे अपने स्वभाव के लिए सबसे उपयुक्त लगे।

विषय का चयन हो जाने के बाद, व्यक्ति को किसी शांत स्थान पर चले जाना चाहिए जहाँ कम से कम व्यवधान हो। जंगल, गुफा या कोई भी एकांत स्थान सबसे उपयुक्त होता है, क्योंकि वहाँ अभ्यास के दौरान व्यवधान की संभावना सबसे कम होती है।

यह समझना आवश्यक है कि एकांत हम सभी के भीतर मौजूद है। यदि हमारा मन शांत न हो, तो एक शांत जंगल भी हमारे लिए अनुकूल स्थान नहीं होगा। परन्तु यदि हमारा मन शांत हो, तो एक व्यस्त शहर का केंद्र भी अनुकूल हो सकता है। जिस वातावरण में हम रहते हैं, वह हमारे मन को शांत करने में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होता है। साधक को अगला निर्णय लेना चाहिए कि अभ्यास के लिए सबसे उपयुक्त समय कौन सा है, जब वह स्वयं और उसका परिवेश दोनों ही सर्वोत्तम स्थिति में हों।

सुबह-सुबह, जब मन तरोताजा और सक्रिय होता है, या सोने से पहले, यदि थकान न हो, तो ध्यान के लिए आमतौर पर सबसे उपयुक्त समय होता है। लेकिन समय चाहे जो भी चुना जाए, प्रतिदिन उसी समय पर ध्यान करना उचित है, क्योंकि इससे हमारा मन अभ्यास के लिए अभ्यस्त हो जाता है।

ध्यान मुद्रा भी एकाग्रता बढ़ाने में एक शक्तिशाली सहायक है। ध्यान करने वाले आमतौर पर पालथी मारकर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हुए। वे दाहिना पैर बाईं जांघ पर और बायां पैर दाहिनी जांघ पर रखते हैं। यह पूर्ण मुद्रा है। यदि यह मुद्रा कठिन हो, जैसा कि कई लोगों के लिए होता है, तो अर्ध मुद्रा अपनाई जा सकती है, यानी दाहिना पैर बाईं जांघ पर या बायां पैर दाहिनी जांघ पर रखना। इस त्रिभुजाकार मुद्रा में शरीर संतुलित रहता है। दाहिना हाथ बाएं हाथ पर रखना चाहिए, गर्दन सीधी रखनी चाहिए ताकि नाक नाभि के साथ सीधी रेखा में हो, जीभ तालू पर टिकी होनी चाहिए। कमरबंद ढीला रखना चाहिए और कपड़े ठीक से पहनने चाहिए। कुछ लोग अनावश्यक प्रकाश और बाहरी दृश्यों से बचने के लिए आंखें बंद करना पसंद करते हैं। हालांकि आंखें बंद करने के कुछ फायदे हैं, लेकिन यह हमेशा अनुशंसित नहीं है क्योंकि इससे नींद आने लगती है। तब मन अनियंत्रित होकर भटकने लगता है, अनपेक्षित विचार उत्पन्न होते हैं, शरीर का सीधापन बिगड़ जाता है, अनायास ही मुँह खुल जाता है, लार टपकने लगती है और सिर हिलने लगता है। बुद्ध आमतौर पर आधी बंद आँखों से नाक की नोक से देखते हुए बैठते थे और चार फीट से अधिक दूरी पर नहीं होते थे।

जिन लोगों को पालथी मारकर बैठना कठिन लगता है, वे कुर्सी या किसी अन्य ऊँची चीज़ पर आराम से बैठ सकते हैं, जिससे उनके पैर ज़मीन पर टिक सकें। बैठने का तरीका सहज और आरामदायक होना चाहिए, इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता। मन की एकाग्रता प्राप्त करने के इच्छुक साधक को किसी भी अवांछित विचार को उसके आरंभ में ही नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए।

सुत्त निपाता में उल्लेख के अनुसार, उस पर निम्नलिखित द्वारा हमला किया जा सकता है:

कामुक इच्छाएँ ( काम ),

असंतोष ( आरती ),

भूख और प्यास ( खुप्पिपासा ),
आग्रह ( तन्हा ),
आलस्य और सुस्ती ( थिनामिद्धा ),
भय
संदेह ( vicikicchā )
विकर्षण और हठ ( मक्खा , थम्भा ),
लाभ, प्रशंसा, सम्मान और अनुचित रूप से अर्जित प्रसिद्धि ( लोभ , सिलोका , सक्कारा , मिच्चायसा ), और
आत्म-प्रशंसा और दूसरों के प्रति अवमानना ( अट्ठुक्कमसाना परावंभना )।
ऐसे अवसरों पर बुद्ध द्वारा दिए गए निम्नलिखित व्यावहारिक सुझाव लाभकारी सिद्ध हुए:
(1) अतिक्रमण करने वाले विचार के विपरीत अच्छा विचार रखना: घृणा के मामलों में प्रेम और दया।
(2) संभावित बुरे परिणामों पर विचार करना: क्रोध जिसके परिणामस्वरूप दुर्भावना उत्पन्न होती है।
(3) साधारण उपेक्षा या उनके प्रति पूर्णतः असावधान हो जाना।
(4) उन अस्वस्थ विचारों के उत्पन्न होने के कारण का पता लगाना और इस प्रकार पूर्वव्यापी प्रक्रिया में उन्हें भूल जाना।
(5) प्रत्यक्ष शारीरिक बल।
जैसे बलवान व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है, वैसे ही शारीरिक बल से बुरे विचारों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। बुद्ध सलाह देते हैं, "दांत भींचकर और जीभ को तालू से दबाकर, मनुष्य को अपने मन को बलपूर्वक वश में करना चाहिए।"
बौद्ध धर्म का सार : इन श्लोकों में, बुद्ध ने अनुशासनहीन भिक्षुओं के एक समूह को व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान किया, जिससे बुद्ध की शिक्षाओं का मूल गुण स्थापित होता है। बौद्ध धर्म का केंद्र बिंदु अभ्यास है। बौद्ध धर्म के सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षाओं को जीवन में उतारना आवश्यक है।
बौद्ध धर्म न तो आध्यात्मिक मार्ग है और न ही कर्मकांडीय मार्ग:
यह न तो संशयवादी है और न ही कट्टरपंथी।
यह न तो शाश्वतवाद है और न ही शून्यवाद।
यह न तो आत्म-यातना है और न ही आत्म-भोग।
यह न तो निराशावाद है और न ही आशावाद, बल्कि यथार्थवाद है।
यह न तो पूरी तरह से इस दुनिया का है और न ही पूरी तरह से परलोक का।
यह बहिर्मुखी नहीं बल्कि अंतर्मुखी है।
यह ईश्वर-केंद्रित नहीं बल्कि अहंकार-केंद्रित है।
यह ज्ञान प्राप्ति का एक अनूठा मार्ग है।
बौद्ध धर्म के लिए मूल पाली शब्द धम्म है , जिसका शाब्दिक अर्थ है वह जो सहारा देता है या बनाए रखता है (जो इसके सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करता है और इस प्रकार उसे दुखद अवस्थाओं में गिरने से रोकता है)।

अध्याय 18. मालवग्ग: अशुद्धि (235-255)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 235,236,237,238

---

(धम्मपद 231, 232, 233 और 234) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 235, 236, 237 और 238 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 239)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 235,236,237,238 - गोघटकपुत्त वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Pandupalasova danisi
yamapurisapi ca te upatthita
uyyogamukhe(1) ca titthasi
patheyyampi ca te na vijjati.
So karohi dipamattano
khippam vayama pandito bhava
niddhantamalo anangano
दिब्बम अरियाभूमिम(2) उपेहिसी।
Upanitavayo ca danisi
sampayatosi yamassa santikam
vase te nathti antara
patheyyampi ca te na vijjati.
So karohi dipamattano
khippam vayama pandito bhava
niddhantamalo anangano
na punam jatijaram upehisi.

---

आयत 235 : तुम अब मुरझाए हुए पत्ते के समान हो; मृत्यु के दूत तुम्हारे निकट हैं; तुम एक लंबी यात्रा पर निकलने वाले हो; (फिर भी), तुम्हारे पास (यात्रा के लिए) कोई प्रावधान नहीं है।

---

श्लोक 236 : अपने लिए दृढ़ आधार बनाओ; परिश्रम करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम आर्यों के निवासों (अर्थात शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक) में प्रवेश करोगे।

---

श्लोक 237 : अब तुम वृद्ध हो चुके हो; तुम मृत्यु के राजा की उपस्थिति में जा रहे हो और तुम रास्ते में रुक नहीं सकते; (फिर भी) तुम्हारे पास यात्रा के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

---

श्लोक 238 : अपने लिए एक मजबूत आधार बनाओ; कड़ी मेहनत करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम पुनर्जन्म और क्षय के अधीन नहीं रहोगे।

---

1. उय्योगमुखे: शाब्दिक अर्थ, लंबी यात्रा पर निकलने वाला, अर्थात् संसार की यात्रा।
2. दिब्बम अरियाभूमिम्: आर्यों का दिव्य लोक। यहाँ शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक या उन पवित्र निवासों का उल्लेख है जहाँ केवल अनागामी (अनेक लौटकर आने वाले) ही निवास करते हैं।

---

एक कसाई के बेटे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कसाई के बेटे के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (235) से (238) तक कहे।
सावत्थी में एक आदमी रहता था जो पचपन साल से कसाई का काम करता था। इतने समय तक वह मवेशियों को काटकर उनका मांस बेचता था और हर दिन चावल के साथ मांस की करी खाता था। एक दिन उसने परिवार के लिए मांस पकाने के लिए अपनी पत्नी के पास कुछ मांस छोड़ दिया और फिर नदी किनारे नहाने चला गया। उसकी अनुपस्थिति में, एक दोस्त ने उसकी पत्नी को बहला-फुसलाकर वह मांस का टुकड़ा उसे बेच दिया। नतीजतन, उस दिन कसाई को मांस की करी नहीं मिली। लेकिन चूंकि कसाई मांस की

करी के बिना भोजन नहीं करता था, इसलिए वह जल्दी से अपने घर के पीछे गया, जहाँ एक बैल खड़ा था। उसने तुरंत बैल की जीभ काट ली और उसे आग पर भून लिया। भोजन करते समय, कसाई ने बैल की जीभ का एक टुकड़ा खाया, लेकिन ऐसा करते ही उसकी अपनी जीभ भी कटकर चावल की थाली में गिर गई। इस प्रकार बैल और कसाई दोनों की जीभ कट गई। कसाई असहनीय पीड़ा से तड़प रहा था और अपने घुटनों के बल बेचैनी से इधर-उधर भटक रहा था, उसके मुंह से लगातार खून टपक रहा था। फिर कसाई की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ।

कसाई की पत्नी बहुत व्याकुल थी और वह चाहती थी कि उसका बेटा किसी दूसरी जगह चला जाए, कहीं उसे भी यह विपत्ति न आ पड़े। इसलिए उसने अपने बेटे को तक्षशिला भेज दिया। तक्षशिला में उसने सुनार का काम सीखा। बाद में उसने अपने मालिक की बेटी से विवाह किया और उनके कुछ बच्चे हुए। जब उनके बेटे बड़े हुए तो वह श्रावस्ती लौट आया। बेटों में बुद्ध के प्रति गहरी आस्था थी और वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे अपने पिता के बारे में चिंतित थे, जो बूढ़े हो चुके थे और उन्हें न तो धर्म की चिंता थी और न ही अपने भविष्य के बारे में। इसलिए एक दिन उन्होंने बुद्ध और भिक्षुओं को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे प्रभु, आज हम अपने पिता की ओर से आपको यह भेंट अर्पित कर रहे हैं। कृपया उनके लिए विशेष प्रवचन दें।" तब बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य! तुम बूढ़े हो रहे हो; लेकिन तुमने अपने परलोक के लिए पुण्य कर्मों का कोई प्रबंध नहीं किया है; अब तुम्हें अपने लिए सहारा ढूंढना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

आयत 235 : तुम अब मुरझाए हुए पत्ते के समान हो; मृत्यु के दूत तुम्हारे निकट हैं; तुम एक लंबी यात्रा पर निकलने वाले हो; (फिर भी), तुम्हारे पास (यात्रा के लिए) कोई प्रावधान नहीं है।

---

श्लोक 236 : अपने लिए दृढ़ आधार बनाओ; परिश्रम करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम आर्यों के निवासों (अर्थात शुद्धवास ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोक) में प्रवेश करोगे।

---

श्लोक 237 : अब तुम वृद्ध हो चुके हो; तुम मृत्यु के राजा की उपस्थिति में जा रहे हो और तुम रास्ते में रुक नहीं सकते; (फिर भी) तुम्हारे पास यात्रा के लिए कोई प्रावधान नहीं है।

---

श्लोक 238 : अपने लिए एक मजबूत आधार बनाओ; कड़ी मेहनत करने में तत्पर रहो और बुद्धिमान बनो। अशुद्धियों को दूर करके और नैतिक दोषों से मुक्त होकर तुम पुनर्जन्म और क्षय के अधीन नहीं रहोगे।

---

प्रवचन के अंत में भिक्षा-भोजन दान करने वालों के पिता (अर्थात कसाई के पुत्र) ने अनागामी फल प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक कसाई के बेटे की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कसाई के पुत्र के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि सावत्थी में एक कसाई रहता था। वह गायों को मारकर उनके मांस के सबसे उत्तम भाग चुनकर अपने लिए रख लेता, उसे पकाकर अपने बेटे और पत्नी के साथ बैठकर खाता था; बाकी बचा हुआ मांस वह बेच देता था। पचपन वर्षों तक वह गायों को मारने का यही काम करता रहा। इस पूरे समय में, यद्यपि बुद्ध पास के एक मठ में रहते थे, उसने कभी भी बुद्ध को एक चम्मच चावल का दलिया या उबले हुए चावल तक भिक्षा नहीं दी। यदि उसके पास खाने के लिए मांस होता, तो वह कभी चावल नहीं खाता था। एक दिन जब उजाला था, कुछ गोमांस बेचने के बाद, उसने अपनी पत्नी को अपने रात के खाने के लिए गोमांस का एक टुकड़ा पकाने को दिया और फिर स्नान करने के लिए तालाब चला गया।

जब वह घर से बाहर थे, तो उनका एक मित्र घर आया और उनकी पत्नी से कहा, "मुझे थोड़ा सा गोमांस दे दीजिए जो आपके पति ने बेचने के लिए रखा है; मेरे घर एक मेहमान आया है।" पत्नी ने कहा, "हमारे पास बेचने के लिए गोमांस नहीं है। आपके मित्र ने अपना सारा गोमांस बेच दिया है और नहाने के लिए तालाब गए हैं।" "मेरी विनती को मना मत कीजिए; अगर आपके घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी हो, तो मुझे दे दीजिए।" पत्नी ने कहा, "घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी नहीं है, सिवाय उस एक टुकड़े के जो आपके मित्र ने अपने खाने के लिए अलग रखा है, और चूंकि वह बिना मांस के नहीं खाता, इसलिए वह आपको यह टुकड़ा बिल्कुल नहीं देगा।" लेकिन उन्होंने गोमांस का टुकड़ा लिया और चले गए।

कसाई नहाने के बाद घर लौटा। जब उसकी पत्नी ने उसके लिए उबले हुए चावल परोसे, जिनमें उसने खुद के पकाए हुए पत्ते डाले थे, तो उसने उससे पूछा, “मांस कहाँ है?” “पतिदेव, मांस नहीं है।” “क्या मैंने घर से निकलने से पहले तुम्हें मांस पकाने के लिए नहीं दिया था?” “तुम्हारा एक दोस्त घर आया और मुझसे कहा, ‘मेरे घर एक मेहमान आया है; मुझे थोड़ा सा गोमांस दे दो जो तुम बेच रहे हो।’ मैंने उससे कहा, ‘घर में गोमांस का एक टुकड़ा भी नहीं है, सिवाय उस टुकड़े के जो तुम्हारे दोस्त ने अपने खाने के लिए अलग रखा है, और वह तब तक नहीं खाएगा जब तक उसे मांस न मिले।’ लेकिन मेरी बात न मानते हुए भी, उसने गोमांस का टुकड़ा खुद ही ले लिया और चला गया।” “जब तक मुझे इसके साथ मांस न मिले, मैं चावल नहीं खाऊँगा; इसे हटा दो।” “क्या करें, पतिदेव? कृपया चावल खा लीजिए।” “मैं नहीं खाऊँगा।” अपनी पत्नी से चावल हटवाकर, उसने हाथ में चाकू लिया और घर से निकल गया।

उसके घर के पीछे एक बैल बंधा हुआ था। वह आदमी बैल के पास गया, अपना हाथ उसके मुंह में डाला, उसकी जीभ खींचकर बाहर निकाली, चाकू से जड़ से काट दी और उसे लेकर घर लौट आया। उसने उसे कोयलों पर पकाकर उबले हुए चावलों पर रखा और रात का खाना खाने बैठ गया। उसने पहले एक निवाला चावल खाया, फिर मांस का एक टुकड़ा अपने मुंह में डाला। उसी क्षण उसकी जीभ दो टुकड़ों में कट गई और उसके मुंह से निकलकर चावलों की थाली में गिर गई। उसी क्षण उसे अपने किए पाप का फल मिला। मुंह से खून बहता हुआ वह अपने घर के आंगन में आया और बैल की तरह रंभाते हुए हाथों और घुटनों के बल रेंगने लगा।

उस समय उसका बेटा पास ही खड़ा अपने पिता को देख रहा था। उसकी माँ ने उससे कहा, “बेटा, देखो, यह कसाई घर के आँगन में हाथों और घुटनों के बल रेंग रहा है और बैल की तरह रंभा रहा है। यह सज़ा शायद तुम्हारे सिर पर ही पड़ेगी। मेरी बात मत सुनो, बल्कि भागकर अपनी जान बचाओ।” मृत्यु के भय से भयभीत होकर बेटे ने अपनी माँ को अलविदा कहा और भाग गया। भागने में सफल होकर वह तक्सिला चला गया। जहाँ तक गाय मारने वाले की बात है, वह कुछ देर तक घर के आँगन में बैल की तरह रंभाते हुए रेंगने के बाद मर गया और अविची नरक में पुनर्जन्म लिया। बैल भी मर गया।

तक्कासिला जाकर कसाई का बेटा एक सुनार के यहाँ प्रशिक्षु बन गया। एक दिन जब उसका गुरु गाँव के लिए रवाना हुआ, तो उसने उससे कहा, “तुम्हें फलाँ आभूषण बनाना है।” इतना कहकर उसका गुरु चला गया। प्रशिक्षु ने निर्देशानुसार आभूषण बनाया। जब उसका गुरु लौटा और उसने आभूषण देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “यह युवक जहाँ कहीं भी जाए, अपनी जीविका कमा सकेगा।” इसलिए जब प्रशिक्षु बड़ा हुआ, तो सुनार ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। उसके पुत्र-पुत्रियाँ हुए। जब उसके पुत्र बड़े हुए, तो उन्होंने विभिन्न कलाएँ सीखीं और बाद में श्रावस्ती जाकर बस गए, अपने-अपने घर बसाए और बुद्ध के सच्चे अनुयायी बन गए। उनके पिता तक्कासिला में ही रहे, बिना कोई पुण्य कर्म किए अपना जीवन व्यतीत किया और अंत में वृद्ध हो गए। उनके पुत्रों ने मन ही मन सोचा, “हमारे पिता अब बूढ़े हो गए हैं,” और उन्हें अपने साथ रहने के लिए बुलवाया।

तब उन्होंने मन ही मन सोचा, “चलो अपने पिता की ओर से दान करें।” तदनुसार उन्होंने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। अगले दिन उन्होंने अपने घर में बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह के लिए बैठने की व्यवस्था की, उन्हें भोजन परोसा, उनका विशेष ध्यान रखा और भोजन समाप्त होने पर बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, यह भोजन जो हमने आपको अर्पित किया है, वही भोजन है जिससे हमारे पिता का जीवन चलता है; अतः हमारे पिता को धन्यवाद दीजिए।” तब बुद्ध ने उनसे कहा, “हे गृहस्थ शिष्य, तुम वृद्ध हो गए हो। तुम्हारा शरीर परिपक्व होकर सूखे पत्ते के समान हो गया है। परलोक की यात्रा के लिए तुम्हारे पास कोई अच्छे कर्म नहीं हैं। अपने लिए एक आश्रय बनाओ। बुद्धिमान बनो; मूर्ख मत बनो।” इस प्रकार बुद्ध ने धन्यवाद के शब्द कहे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 235)

इदानि पाण्डुपलासो इव असि तं यमपुरीसा अपि च उपथिता
उययोगमुखे च तिथसि ते पाथेयं अपि । च न विज्जति

idāni : अब; paṇḍupalāso iva : मुरझाए और पीले पत्ते की तरह; asi : तुम हो; taṃ : तुम्हारे लिए; yamapurisā api ca : मृत्यु की शक्तियाँ भी; upaṭṭhitā : आ गई हैं; uyyogamukhe ca : मृत्यु के द्वार पर; tiṭṭhasi : तुम खड़े हो; te : तुम्हारे लिए; pātheyyaṃ api ca : यहाँ तक कि मार्ग के लिए भी भोजन; na vijjati : दिखाई नहीं देता

अब तुम मुरझाए, पीले पड़े सूखे पत्ते के समान हो। हवा का पहला झोंका ही तुम्हें गिरा देगा। मृत्यु की शक्तियाँ तुम्हें लेने आ चुकी हैं। तुम मृत्यु के द्वार पर खड़े हो। तुम्हारे पास रास्ते के लिए भी कोई साधन नहीं है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 236)

सो अतनो दीपं करोहि खिप्पं वयम पण्डितो भव
निद्धान्तमालो अनंगणो दिब्बं अरियाभूमिम् एहिसि

अतः तुम; अत्तनो [ अत्तना ]: अपने आप को; दीपं [ दीप ]: एक दीपक; करोहि : बनो; खीप्पं [ खीप्प ]: लगन से (शीघ्र); वायामा : प्रयास करो; पंडितो भव : एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो; निद्धंतमलो [ निद्धंतमल ]: दोषों से रहित; अनंगणो [ अनंगण ]: कष्टों से रहित; दिब्बं [ दिब्ब ]: स्वर्गिक; अरियाभूमि [ अरियाभूमि ]: श्रेष्ठों के लोक; एहिसी : पहुँचो

जैसी परिस्थितियाँ हैं, वैसे ही स्वयं के लिए एक दीपक, एक द्वीप, एक आश्रय बनो। लगन और परिश्रम से प्रयास करो और एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो। दोषों से रहित, दोषों से मुक्त होकर, श्रेष्ठजनों के स्वर्गलोक को प्राप्त करो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 237)

इदानि उपनितवयो च असि यमस्सा संतिके संपयातो असि
ते अंतरा वासो अपि च नत्थि ते पाथेयं अपि च न विज्जति

idāni : अब; upanītavayo ca : व्यथित जीवनकाल के; asi : तुम हो; yamassa : मृत्यु के राजा के; santike : उपस्थिति; sampayāto asi : तुम आए हो; te : तुम्हारे लिए; antarā : बीच में; vāso api ca : आश्रय भी नहीं है; natthi : है नहीं; te : तुम्हारे लिए; pātheyyaṃ api ca : मार्ग के लिए राशन भी नहीं है; na vijjati : दिखाई नहीं देते

अब आपका निर्धारित जीवन काल समाप्त हो चुका है। आप मृत्यु के राजा (यम) के समक्ष पहुँच चुके हैं। अब आपके लिए बीच में विश्राम का कोई स्थान नहीं है। आगे की यात्रा के लिए भी आपके पास कोई व्यवस्था नहीं दिखती।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 238)

सो अतनो दीपं करोहि खिप्पं वयम पण्डितो भव
निद्धान्तमलो अनंगणो पुना जातिं जरां न उपेहिसि ।

अतः तुम; अत्तनो [ अत्तना ]: अपने लिए; दीपं [ दीपा ]: एक दीपक; करोहि : बनो; खीप्पं [ खीप्पा ]: लगन से (शीघ्र); वायम : प्रयास करो; पंडितो भव : एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो; निद्धंतमलो [ निद्धंतमल ]: दोषों से रहित; अनंगणो [ अनंगण ]: दोषों से मुक्त; पुना : फिर से; जातिं जरं [ जर ]: जन्म और मृत्यु का चक्र; न उपेहिसि : प्रवेश न करो

इसलिए, स्वयं के लिए एक दीपक, एक द्वीप, एक आश्रय बनो। लगन से प्रयास करो और एक बुद्धिमान व्यक्ति बनो। दोषों से रहित, दोषों से मुक्त होकर, तुम जन्म और मृत्यु के चक्र में फिर कभी नहीं पड़ोगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 235-238)

उपनीतवयो : व्यथित जीवनकाल का। इन श्लोकों का केंद्रबिंदु मृत्यु है। जीवन के अंत के प्रति सजग रहने की आवश्यकता इन श्लोकों में निहित है। बुद्ध वृद्ध व्यक्ति को मृत्यु की संभावना के प्रति सचेत रहने और कष्टों को समाप्त करने के लिए व्यवस्था करने का उपदेश देते हैं। यह उन्हें मृत्यु के निरंतर मंडराते खतरे के प्रति सचेत और जागरूक बनाने का प्रयास है। बौद्ध ध्यान पद्धति में, मृत्यु के प्रति जागरूकता और सजगता ध्यान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मृत्यु के इस ध्यानपूर्ण चिंतन के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका सभी के लिए आवश्यक है। ध्यान का यह रूप मरणानुस्सति भावना कहलाता है - मृत्यु के प्रति सजगता का ध्यान। मरणानुस्सति का अर्थ है मृत्यु पर निरंतर चिंतन। मृत्यु पर चिंतन करते हुए किए जाने वाले ध्यान को मरणानुस्सति भावना कहते हैं । जैसे सूर्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर गतिमान रहता है, वैसे ही इस संसार के सभी प्राणियों का जीवन जन्म से मृत्यु तक चलता रहता है। इस संसार में कोई भी अमर नहीं है। किसी प्राणी का जीवन उतना ही क्षणभंगुर है जितना भोर में घास के तिनके के सिरे पर ओस की एक बूंद। यह पानी पर खींची गई रेखा या पानी की सतह पर बने बुलबुले की तरह क्षणिक है। जीवन का अंत मृत्यु के साथ ही हो जाता है, चाहे वह बचपन हो, युवावस्था हो या वृद्धावस्था।

मृत्यु एक ऐसा देन है जो सभी प्राणियों को प्राप्त है, चाहे वे मनुष्य हों, पशु हों, देवता हों या ब्रह्मा हों। इस संसार का यही स्वभाव है कि जो भी अस्तित्व में आता है, एक दिन उसका अंत अवश्य हो जाता है। यह अनित्यता, जिसमें अस्तित्व में आना और अंत होना शामिल है, संसार के सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं में समान है।

हमें यह तथ्य याद रखना चाहिए कि पेड़, पहाड़, नदियाँ, शहर, महासागर, सूर्य और चंद्रमा, मशीनें और अन्य उपकरण—ये सभी परिवर्तनशील और क्षयशील हैं। संसार के सभी प्राणियों को किसी न किसी दिन तीन प्रकार के भय का सामना करना पड़ता है, अर्थात् वृद्धावस्था ( जरा ), रोग ( व्याधि ) और मृत्यु ( मरण )। धन, पद, शक्ति या विद्या जैसे कारकों से इन भयों को दूर करना संभव नहीं है। इसलिए, हम जीवन को संतोषजनक या सुखदायी नहीं मान सकते।

जो व्यक्ति मृत्यु के बारे में नहीं सोचता, वह जीवन की क्षणभंगुर प्रकृति को नहीं समझ सकता। ऐसे व्यक्ति का मन द्वेष, प्रतिशोध, लोभ, स्वार्थ और अहंकार जैसे बुरे और खतरनाक विचारों के प्रति संवेदनशील होता है। मरणानुसति भावना का अभ्यास इन बुरे विचारों को दूर करने और दया, करुणा, ईमानदारी, समानता, अहिंसा और उदारता जैसे गुणों को विकसित करने में अत्यंत सहायक होता है।

बुद्ध ने हमें दिखाया है कि समाज में तीन दिव्य संदेशवाहक हैं जो हमें तीन महत्वपूर्ण सबक सिखाते हैं। वे हैं वृद्ध, रोगग्रस्त और मृत। हम इन संदेशवाहकों से अक्सर मिलते हैं। जब आप किसी वृद्ध व्यक्ति को देखते हैं, तो इस बात पर विचार करें कि एक दिन आप भी ऐसी ही स्थिति में होंगे; जब आप किसी बीमार व्यक्ति को देखते हैं, तो अपने आप के बीमार होने की संभावना के बारे में सोचें; जब आप किसी अंत्येष्टि में शामिल होते हैं या जब आप किसी मृत शरीर को देखते हैं या किसी की मृत्यु के बारे में सुनते हैं, तो इस बात पर विचार करें कि एक दिन आप भी मरेंगे। ऐसा करने से आप स्वाभाविक रूप से बड़ों का सम्मान करना, गरीबों और पीड़ितों की सहायता करना

और सदाचारी जीवन जीना शुरू कर देंगे। इसके अलावा, यह आपको धन, पद, शक्ति, वंश, ज्ञान और यौवन से उत्पन्न होने वाले अहंकार को त्यागकर सुख और शांति का जीवन जीने में मदद करेगा।

प्रतिदिन मरणानुस्सति भावना का अभ्यास करने से आप धीरे-धीरे मृत्यु के भय से मुक्त हो सकते हैं। इसके अलावा, माता-पिता, भाई-बहन या अन्य प्रियजनों की मृत्यु पर भी आपको अत्यधिक शोक नहीं होगा। यह तथ्य मल्लिका, पताचारा और किसागोतमी की प्राचीन कथाओं या उरग जातक जैसी जातक कथाओं से स्पष्ट होता है। इसलिए, मरणानुस्सति ध्यान के अभ्यास से प्राप्त होने वाले महान लाभों पर हमेशा विचार करें ।

मरणानुसति भावना का अभ्यास शुरू करने से पहले , आपको स्वयं को शुद्ध करना चाहिए, फूल आदि अर्पित करने चाहिए, त्रिरत्न की शरण लेनी चाहिए और अन्य प्रकार की ध्यान विधियों में बताए गए पंचांगों का पालन करना चाहिए। इसके बाद, ध्यान के अनुकूल स्थान पर उचित मुद्रा में बैठें। अब, निम्नलिखित तथ्यों पर बार-बार चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास शुरू करें।

(1) मैं वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हूँ। मेरी ही तरह संसार के सभी प्राणी वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

अब आप दूसरे चरण में प्रवेश कर सकते हैं, जिसके लिए आपको निम्नलिखित बिंदुओं पर शुरू से अंत तक बार-बार चिंतन करना होगा:

(2) मेरा जीवन क्षणभंगुर है। मृत्यु निश्चित है। मैं वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हूँ।

(3) मेरे माता-पिता का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(4) मेरे शिक्षकों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(5) मेरे भाई-बहनों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(6) मेरे रिश्तेदारों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(7) मेरे प्रियजनों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(8) मेरे पड़ोसियों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के अधीन हैं।

(9) जो लोग मेरे प्रति द्वेष रखते हैं, उनका जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

(10) इस संसार में सभी प्राणियों का जीवन क्षणभंगुर है। उनकी मृत्यु निश्चित है। वे वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के अधीन हैं।

जब आप लंबे समय तक इस ध्यान का अभ्यास करेंगे, तो आपका शरीर, वाणी और मन शुद्ध हो जाएगा। आप समाज को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। आपके कर्म, वाणी और विचार सभी के हित में होंगे।

जो व्यक्ति निरंतर इस ध्यान का अभ्यास करता है, उसका जीवन वास्तव में सुखमय होगा और वह मृत्यु का सामना बिना किसी भय के कर सकेगा। इसके अलावा, यह उसे परलोक में देवताओं और मनुष्यों के सुखों की प्राप्ति में सहायक होगा और अंततः निर्वाण प्राप्त करने में भी मदद करेगा।

आम आदमी के लिए मृत्यु कोई सुखद विषय नहीं है जिस पर चर्चा की जा सके। यह एक निराशाजनक और दमनकारी चीज़ है — मानो आनंद को क्षीण करने वाली, केवल अंतिम संस्कार के लिए उपयुक्त विषय। आम आदमी, जो स्वार्थ में डूबा रहता है, सुख की तलाश में रहता है, इंद्रियों को उत्तेजित और संतुष्ट करने वाली चीज़ों के पीछे भागता रहता है, इस बात पर गंभीरता से विचार करने से इनकार कर देता है कि सुख और संतुष्टि के ये साधन भी एक दिन समाप्त हो जाएँगे। यदि कोई समझदार सलाह न दे और इस अविवेकी, सुख-चाहने वाले व्यक्ति को गंभीरता से यह सोचने के लिए प्रेरित न करे कि मृत्यु उसके दरवाजे पर भी दस्तक दे सकती है, तो केवल अपने ही घर में किसी अपने की मृत्यु का आघात, माता-पिता, पत्नी या बच्चे की अचानक और असमय मृत्यु ही उसे इंद्रिय सुख के इस उन्माद से जगाएगी और जीवन की कठोर सच्चाई से अवगत कराएगी। तभी उसकी आँखें खुलेंगी, तभी वह स्वयं से यह पूछना शुरू करेगा कि मृत्यु जैसी घटना क्यों है? यह अपरिहार्य क्यों है? ये पीड़ादायक बिछड़ना क्यों जीवन से उसके सुख छीन लेते हैं?

हममें से अधिकांश लोगों के मन में कभी न कभी मृत्यु का दृश्य अवश्य ही गहरे विचारों और गहन प्रश्नों को जन्म देता है। जीवन का क्या अर्थ है, यदि कभी महान कर्म करने वाले सक्षम शरीर आज निर्जीव और ठंडे पड़े हों? जीवन का क्या अर्थ है, यदि कभी आनंद से चमकने वाली, प्रेम से दमकने वाली आँखें अब हमेशा के लिए बंद हो गई हों, गतिहीन और जीवनहीन हो गई हों? ऐसे विचारों को दबाना नहीं चाहिए। ये जिज्ञासु विचार ही, यदि बुद्धिमानी से इनका अनुसरण किया जाए, अंततः मानव मन में निहित सर्वोच्च सत्य को ग्रहण करने की क्षमता को उजागर करेंगे।

बौद्ध दर्शन के अनुसार, मृत्यु को त्यागने या उससे बचने का विषय नहीं माना जा सकता, बल्कि यह जीवन के रहस्य को उजागर करने वाली कुंजी है। मृत्यु को समझकर ही हम जीवन को समझ सकते हैं; क्योंकि मृत्यु व्यापक अर्थ में जीवन की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। दूसरे शब्दों में, जीवन और मृत्यु एक ही प्रक्रिया के दो छोर हैं, और यदि आप प्रक्रिया के एक छोर को समझ लेते हैं, तो आप दूसरे छोर को भी समझ जाते हैं। अतः मृत्यु के उद्देश्य को समझकर ही हम जीवन के उद्देश्य को समझ पाते हैं। मृत्यु का चिंतन, यह गहन विचार कि एक दिन यह हम पर आएगी, कठोरतम हृदयों को भी कोमल कर देता है, प्रेम और करुणा के बंधन में बांध देता है, और इस पृथ्वी के

लोगों के बीच जाति, धर्म और नस्ल के भेदों को नष्ट कर देता है, क्योंकि सभी का भाग्य मृत्यु ही है। मृत्यु सबको समान कर देती है। जन्म का अभिमान, पद का अभिमान, धन का अभिमान, सत्ता का अभिमान, सब कुछ अपरिहार्य मृत्यु के विचार के आगे झुकना ही पड़ता है।

मृत्यु का यही समतावादी पहलू है जिसने कवि को यह कहने पर मजबूर किया:

राजदंड और मुकुट
नीचे गिरना ही होगा
और धूल में समान रूप से निर्मित हो जाओ
उस बेचारे टेढ़े-मेढ़े दरांती और कुदाल के साथ।

मृत्यु का चिंतन ही इंद्रिय सुख के मोह को नष्ट करने में सहायक है। मृत्यु का चिंतन ही अहंकार को नष्ट करता है। मृत्यु का चिंतन ही हमारे अति उत्तेजित, भ्रामक मूल्यों से ग्रस्त मन को संतुलन और उचित अनुपात की भावना प्रदान करता है। मृत्यु का चिंतन ही उस चंचल मानव मन को शक्ति, स्थिरता और दिशा प्रदान करता है जो कभी एक दिशा में तो कभी दूसरी दिशा में, बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य के भटकता रहता है। बुद्ध ने अपने शिष्यों को मृत्यु के प्रति सजगता का अभ्यास करने की अत्यंत उच्च कोटि की प्रशंसा की है, और यह व्यर्थ नहीं है। इसे ' मरणानुस्सति भावना' के नाम से जाना जाता है । जो इसका अभ्यास करना चाहता है, उसे नियमित समय पर और समय-समय पर ' मरणं भविस्सति ' के विचार पर लौटना चाहिए , 'मृत्यु घटित होगी'। मृत्यु का यह चिंतन विशुद्धि मार्ग (शुद्धि का मार्ग) में वर्णित शास्त्रीय ध्यान विषयों में से एक है, जिसमें कहा गया है कि पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए, इस ध्यान का अभ्यास सही तरीके से करना चाहिए, अर्थात् सती भाव से, संवेग भाव से और समझ से । उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक युवा शिष्य इस बात को गंभीरता से नहीं समझ पाता कि मृत्यु किसी भी क्षण उस पर आ सकती है, और इसे दूर भविष्य में वृद्धावस्था में होने वाली घटना मानता है, तो मृत्यु पर उसका चिंतन सशक्त और स्पष्ट नहीं होगा, यहाँ तक कि वह सफलता के लिए अनुकूल नहीं होगा।

विशुद्धि मार्ग में वर्णित निम्नलिखित लाभकारी प्रभावों से मृत्यु के चिंतन का महत्व और उपयोगिता स्पष्ट होती है — “जो शिष्य मृत्यु के चिंतन में संलग्न होता है, वह सदा सजग रहता है, किसी भी रूप में जीवन का आनंद नहीं लेता, जीवन के प्रति लालसा का त्याग करता है, बुरे कर्मों की निंदा करता है, जीवन की आवश्यकताओं के प्रति लालसा से मुक्त रहता है; उसकी अनित्यता की अनुभूति दृढ़ हो जाती है, वह जीवन की पीड़ादायक और आत्माहीन प्रकृति को जान लेता है और मृत्यु के क्षण में वह भयमुक्त होकर सचेत और आत्मसंयमित रहता है। अंत में, यदि वह इस जीवन में निर्वाण प्राप्त करने में असफल रहता है, तो शरीर के नष्ट होने पर वह सुखद भाग्य की ओर अग्रसर होता है।” इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि मृत्यु के प्रति सजगता न केवल मन को शुद्ध और परिष्कृत करती है, बल्कि मृत्यु के भय और आतंक को भी दूर करती है, और उस गंभीर क्षण में जब व्यक्ति अपनी अंतिम सांस ले रहा होता है, उसे धैर्य और शांति के साथ उस स्थिति का सामना करने में सहायता करती है। वह मृत्यु के विचार से कभी विचलित नहीं होता, बल्कि हमेशा इसके लिए तैयार रहता है। ऐसा ही व्यक्ति सचमुच कह सकता है, "हे मृत्यु, तेरा डंक कहाँ है?"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 239

---

(धम्मपद 235, 236, 237 और 238) <<<< पिछला॥ धम्मपद239 ॥अगला >>>> (धम्मपद240)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 239 - अन्नतर ब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अनुपब्बेना मेधावी
थोकम थोकम खाने खाने
kammaro rajatasseva
niddhame malamattano.

———————————————————————

श्लोक 239 : धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों (नैतिक दोषों) को दूर करता है, जैसे एक लोहार चांदी या सोने की मैल को दूर करता है।

———————————————————————

एक ब्राह्मण की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (239) कहा।
एक बार एक ब्राह्मण ने भिक्षुओं के एक समूह को भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले अपने वस्त्रों को ठीक करते हुए देखा। देखते-देखते उन्होंने पाया कि कुछ भिक्षुओं के वस्त्र ज़मीन को छू रहे थे और घास पर ओस के कारण गीले हो रहे थे। इसलिए उन्होंने उस जगह को साफ कर दिया। अगले दिन उन्होंने देखा कि भिक्षुओं के वस्त्र ज़मीन को छूते ही गंदे हो रहे थे। इसलिए उन्होंने उस जगह को रेत से ढक दिया। फिर उन्होंने देखा कि धूप में भिक्षुओं को पसीना आता था और बारिश में वे भीग जाते थे। अंत में, उन्होंने उस स्थान पर भिक्षुओं के लिए एक विश्रामगृह बनवाया जहाँ वे भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करने से पहले एकत्रित होते थे।
जब भवन बनकर तैयार हो गया, तो उन्होंने बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण ने बुद्ध को समझाया कि उन्होंने यह पुण्य कर्म किस प्रकार चरण-दर-चरण किया। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! ज्ञानी लोग अपने पुण्य कर्म थोड़े-थोड़े करके करते हैं, और धीरे-धीरे और निरंतर नैतिक दोषों की अशुद्धियों को दूर करते हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 239 : धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों (नैतिक दोषों) को दूर करता है, जैसे एक लोहार चांदी या सोने की मैल को दूर करता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ब्राह्मण की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण सुबह-सुबह शहर से बाहर निकला, उस स्थान पर रुका जहाँ भिक्षु वस्त्र धारण करते थे, और उन्हें वस्त्र धारण करते हुए देखने लगा। वह स्थान घनी घास से भरा हुआ था। जब एक भिक्षु ने अपना वस्त्र धारण किया, तो उसके वस्त्र का किनारा घास में घिसटता हुआ ओस की बूंदों से भीग गया। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ से घास हटा देनी चाहिए।" अतः अगले दिन वह अपनी कुदाल लेकर वहाँ गया, उस स्थान को साफ किया और उसे खलिहान की तरह चिकना और समतल बना दिया। उसके अगले दिन वह फिर उसी स्थान पर गया। जब भिक्षु वस्त्र धारण कर रहे थे, तो उसने देखा कि एक भिक्षु के वस्त्र का किनारा जमीन पर गिर गया और धूल में घिसटने लगा। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ रेत छिड़क देनी चाहिए।" अतः वह रेत लाया और उसे जमीन पर छिड़क दिया।
एक दिन, नाश्ते से पहले, भीषण गर्मी थी। इस अवसर पर ब्राह्मण ने देखा कि भिक्षुओं ने वस्त्र धारण करते ही उनके शरीर से पसीना बहने लगा। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ मुझे एक मंडप बनवाना चाहिए।" तदनुसार उन्होंने एक मंडप बनवाया। फिर एक दिन, सुबह-सुबह वर्षा हुई। इस अवसर पर भी, जब ब्राह्मण भिक्षुओं को देख रहे थे, तो उन्होंने देखा कि उनके वस्त्र वर्षा की बूंदों से भीग गए थे। ब्राह्मण ने सोचा, "यहाँ मुझे एक हॉल बनवाना चाहिए।" अतः उन्होंने वहाँ एक हॉल बनवाया। हॉल के पूरा होने पर उन्होंने मन ही मन सोचा, "अब मैं हॉल के पूर्ण होने के उपलक्ष्य में एक उत्सव आयोजित करूँगा।" तदनुसार उन्होंने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को आमंत्रित किया, भिक्षुओं को हॉल के अंदर और बाहर बैठाया और दान दिया।
भोजन समाप्त होने पर उन्होंने बुद्ध का कटोरा लेकर धन्यवाद के शब्द कहे। उन्होंने कहा, "आदरणीय, जब मैं इस स्थान पर खड़ा होकर भिक्षुओं को वस्त्र धारण करते हुए देख रहा था, तब मैंने यह और वह देखा और मैंने यह और वह किया।" और उन्होंने शुरुआत से ही बुद्ध को पूरी कहानी सुनाई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और फिर कहा, "हे ब्राह्मण, एक बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे कर्म करके, समय-समय पर, थोड़ा-थोड़ा करके अपने बुरे कर्मों के दागों को धीरे-धीरे मिटा देता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 239)
मेधावी अनुपुब्बेना खाने खाने ठोकथोकम्
राजतस्सा कम्मरो इव अत्तानो मलं निद्धमे
मेधावी : बुद्धिमान व्यक्ति; अनुपुब्बेना : धीरे-धीरे; खणे खणे : हर पल; थोकथोकम् [ थोकथोका ]: थोड़ा-थोड़ा करके; राजतस्सा : चांदी का; कम्मरो इव : लोहार की तरह; अत्तनो मलं [ माला ]: किसी के अपने दोष; निद्धमे : शुद्ध करें
बुद्धिमान व्यक्ति पल-पल, थोड़ा-थोड़ा करके अपने भीतर से दोषों को दूर करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे लोहार चांदी से दोषों को दूर करते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 239)
मलं : दाग, धब्बा, कलंक। इन्हें आमतौर पर क्लेश कहा जाता है । क्लेश , यानी अशुद्धियाँ, मन को दूषित करने वाले, अस्वास्थ्यकर गुण हैं। दस अशुद्धियाँ हैं, जिन्हें यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि वे स्वयं अशुद्ध हैं और उनसे जुड़े मानसिक कारकों को भी अशुद्ध करती हैं।
वे हैं:
लोभ ( लालच );
नफरत ( डोसा );
मोह ;
अहंकार ( माना );
सट्टा विचार ( दिट्ठी );
संशयपूर्ण संदेह ( vicikicchā );
मानसिक सुस्ती ( थीना );
बेचैनी ( उद्धच्च );
निर्लज्जता ( अहिरिका );
नैतिक भय या कर्तव्यनिष्ठा का अभाव ( अनोत्तप्पा )।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 240

———————————————————————

(धम्मपद239) <<<< पिछला ॥ धम्मपद240 ॥ अगला >>>> (धम्मपद241)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 240 - तिसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Ayasava malan samutthitam
tatutthaya tameva khadati
evam atidhonacarinam(1)
सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिम्।

———————————————————————

श्लोक 240 : जिस प्रकार लोहे से जंग लगती है और वह लोहे को ही नष्ट कर देती है, उसी प्रकार उसके अपने कर्म ही पापी को निम्न स्तर के अस्तित्व (दुग्गति) की ओर ले जाते हैं।

———————————————————————

1. अतिधोनाचारिनम् - उल्लंघनकर्ता: अर्थात्, वह व्यक्ति जो भिक्षु के चार आवश्यक तत्वों 'धोना' का उल्लंघन करता है या उसका अत्यधिक उपयोग करता है।

---

थेरा टिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (240) कहा।
एक समय श्रावस्ती में तिस्सा नाम के एक थेरा रहते थे। एक दिन उन्हें उत्तम वस्त्रों का एक जोड़ा मिला और वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अगले दिन उन्हें पहनने का इरादा किया। लेकिन उसी रात उनकी मृत्यु हो गई और क्योंकि वे उन उत्तम वस्त्रों से आसक्त थे, इसलिए उनका पुनर्जन्म एक जूं के रूप में हुआ और वे वस्त्रों की तहों में रहने लगे। उनकी संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए यह निर्णय लिया गया कि वस्त्रों का यह विशेष जोड़ा अन्य भिक्षुओं में बाँट लिया जाए। जब भिक्षु आपस में वस्त्र बाँटने की तैयारी कर रहे थे, तो जूं बहुत व्याकुल हो गई और चिल्लाई, "वे मेरे वस्त्र नष्ट कर रहे हैं!" यह पुकार बुद्ध ने अपनी दिव्य श्रवण शक्ति से सुन ली। इसलिए उन्होंने किसी को भिक्षुओं को रोकने के लिए भेजा और उन्हें निर्देश दिया कि वे वस्त्रों का निपटान केवल सात दिनों के अंत में ही करें। आठवें दिन, थेरा तिस्सा के वस्त्र भिक्षुओं में बाँट लिए गए।
बाद में, भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि उन्होंने थेरा तिस्सा के वस्त्रों को बांटने से पहले उन्हें सात दिन तक प्रतीक्षा करने के लिए क्यों कहा था। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "मेरे पुत्रों, मृत्यु के समय तिस्सा का मन विशेष वस्त्रों से आसक्त था, अतः उसका पुनर्जन्म जूं के रूप में हुआ और वह वस्त्रों की तहों में ही रहा। जब तुम सब वस्त्र बाँटने की तैयारी कर रहे थे, तब जूं तिस्सा अत्यंत पीड़ा में था और वस्त्रों की तहों में इधर-उधर भाग रहा था। यदि तुम उस समय वस्त्र ले लेते, तो जूं तिस्सा तुम पर बहुत क्रोध करता और उसे निरय (नरक) जाना पड़ता। परन्तु अब तिस्सा का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ है, इसीलिए मैंने तुम्हें वस्त्र लेने की अनुमति दी है। हे भिक्षुओं, आसक्ति अत्यंत हानिकारक है; जैसे जंग लोहे को नष्ट कर देती है, वैसे ही आसक्ति मनुष्य का विनाश करती है और उसे निरय (नरक) भेजती है। भिक्षु को चार आवश्यक वस्तुओं का अत्यधिक उपयोग नहीं करना चाहिए और न ही उनसे अत्यधिक आसक्त होना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 240 : जिस प्रकार लोहे से जंग लगती है और वह लोहे को ही नष्ट कर देती है, उसी प्रकार उसके अपने कर्म ही पापी को निम्न स्तर के अस्तित्व (दुग्गति) की ओर ले जाते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय बुद्ध ने पूज्य तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, सावत्थी में रहने वाले एक प्रतिष्ठित परिवार के युवक ने संसार त्यागकर संन्यास ले लिया और पूर्ण दीक्षा लेकर आदरणीय तिस्सा के नाम से ख्यातिप्राप्त हुए। बाद में, जब वे ग्रामीण क्षेत्र के एक मठ में निवास कर रहे थे, तब उन्हें आठ हाथ लंबा एक मोटा कपड़ा प्राप्त हुआ। निवास पूरा करने के बाद, उन्होंने अंतिम पर्व मनाया और अपना कपड़ा साथ लेकर घर गए और उसे अपनी बहन को सौंप दिया। उनकी बहन ने सोचा, "यह वस्त्र मेरे भाई के लिए उपयुक्त नहीं है।" इसलिए उन्होंने एक तेज चाकू से उसे पट्टियों में काटा, ओखली में कूटा, कोड़े से पीटा और साफ किया, और फिर महीन सूत कातकर उससे एक वस्त्र बुनवाया। आदरणीय तिस्सा ने धागा और सुई मंगवाई और कुछ कुशल वस्त्र निर्माता युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को इकट्ठा करके अपनी बहन के पास गए और कहा, "मुझे वह कपड़ा दे दीजिए; मैं उससे एक वस्त्र बनवाऊंगा।" उसने नौ हाथ लंबा एक वस्त्र उतारा और अपने सबसे छोटे भाई के हाथों में रख दिया। उसने उसे लिया, फैलाया और कहा, "मेरा वस्त्र मोटा था, आठ हाथ लंबा, लेकिन यह बढ़िया है, नौ हाथ लंबा। यह मेरा नहीं है; यह आपका है। मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे वही वस्त्र दे दीजिए जो मैंने आपको दिया था।" "आदरणीय, यह वस्त्र आपका है; इसे ले लीजिए।" उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया।
तब उसकी बहन ने उसे अपने किए हुए सारे काम बताए और उसे वह कपड़ा वापस देते हुए कहा, "आदरणीय, यह आपका है; इसे ले लीजिए।" अंततः उसने कपड़ा लिया, मठ गया और वस्त्र बनाने वालों को काम पर लगा दिया। उसकी बहन ने वस्त्र बनाने वालों के लिए चावल का दलिया, उबले हुए चावल और अन्य राशन तैयार किया, और जिस दिन वस्त्र बनकर तैयार हुआ, उस दिन उन्हें अतिरिक्त भत्ता दिया। तिस्सा ने वस्त्र को देखा और उसे पसंद करने लगा। उसने कहा, "कल मैं इसे ऊपरी वस्त्र के रूप में पहनूंगा।" इसलिए उसने उसे मोड़कर बांस के रैक पर रख दिया।
रात के समय, खाए हुए भोजन को पचा न पाने के कारण, उसकी मृत्यु हो गई और उसी वस्त्र में एक जूं के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। जब भिक्षुओं ने उसके शरीर का अंतिम संस्कार किया, तो उन्होंने कहा, "चूंकि उसकी बीमारी में उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं

था, इसलिए यह वस्त्र भिक्षुओं के समूह का है; आइए इसे आपस में बाँट लें।" इस पर उस जूं ने चीखते हुए कहा, "ये भिक्षु मेरी संपत्ति लूट रहे हैं!" और चीखते हुए वह इधर-उधर भागने लगा। बुद्ध, जो सुगंधित कक्ष में बैठे थे, ने अलौकिक श्रवण शक्ति से वह आवाज सुनी और पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, उनसे कहो कि वे तिस्सा का वस्त्र सात दिनों के लिए अलग रख दें।" पूज्य आनंद ने ऐसा ही करवाया। सात दिनों के बाद उस जूं की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म तुषिता देवताओं के धाम में हुआ। आठवें दिन बुद्ध ने यह आदेश दिया, "भिक्षु अब तिस्सा के वस्त्र को आपस में बाँट लें और अपने-अपने हिस्से ले लें।" भिक्षुओं ने ऐसा ही किया और आपस में इस बात पर चर्चा की कि बुद्ध ने तिस्सा के वस्त्रों को सात दिनों के लिए अलग रखने का आदेश क्यों दिया था।

जब बुद्ध को उनकी बातचीत के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, तिस्सा अपने ही वस्त्र में जूं के रूप में पुनर्जन्म लेकर आया। जब तुम लोग वस्त्र बाँटने लगे, तो वह चिल्लाया, 'ये मेरी संपत्ति लूट रहे हैं।' यदि तुम उसका वस्त्र ले लेते, तो वह तुमसे द्वेष रखता और इस पाप के कारण नरक में पुनर्जन्म लेता। इसीलिए मैंने वस्त्र को अलग रखने का आदेश दिया था। परन्तु अब वह तुषी देवताओं के धाम में पुनर्जन्म ले चुका है, और इसी कारण मैंने तुम्हें वस्त्र लेने और उसे आपस में बाँटने की अनुमति दी है।" बुद्ध ने आगे कहा, "यद्यपि वास्तव में इस संसार में प्राणियों के लिए तृप्ति एक गंभीर दोष है। जिस प्रकार लोहे में जंग लगकर उसे नष्ट कर देती है और उसे बेकार कर देती है, उसी प्रकार यह तृप्ति नामक दोष, जब इस संसार में प्राणियों में उत्पन्न होती है, तो उन्हीं प्राणियों को नरक में पुनर्जन्म लेने का कारण बनती है और उन्हें विनाश की ओर ले जाती है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 240)

अयसा एव समुत्थितं मलं तदुत्थाय तमेव खादति ,
एवं अतिधोनाचारिनं सकाकम्मानि दुग्गतिं नयन्ति

अयसा एव : लोहे से ही; समुत्थितं मलं [ माला ]: जंग जो उत्पन्न हो गई है; तदुत्थाय : वहीं से उत्पन्न; तमेव : वही; खादति : खाता है (क्षरण करता है); एवम् : इस प्रकार; अतिधोनाकारिनाम् [ अतिधोनाकारिना ]: भिक्षु जो सीमाओं का उल्लंघन करते हैं; सकाकम्मानि : स्वयं के (बुरे) कार्य; दुग्गतीं [ दुग्गति ]: बुरी स्थिति में; नयन्ति : नेतृत्व (बुरा करने वाला)

लोहे में लगने वाली जंग लोहे को ही नष्ट कर देती है। ठीक उसी प्रकार, किसी व्यक्ति के बुरे कर्म उस व्यक्ति का ही विनाश कर देते हैं।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 240)

दुगती : बुरी अवस्था; दयनीय अवस्था; जीवन का दयनीय मार्ग। यह शब्द दु + गति से व्युत्पन्न है ।

गति : जीवन का मार्ग, नियति, गंतव्य। जीवन के पाँच मार्ग हैं: नरक, पशु जगत, प्रेतलोक, मनुष्यलोक और स्वर्गलोक। इनमें से पहले तीन मार्ग दुखद मार्ग ( दुग्गति , अपाया ) हैं, जबकि अंतिम दो मार्ग सुखद मार्ग ( सुगति ) हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 241

---

(धम्मपद240) <<<< पिछला|| धम्मपद241 ||अगला >>>> (धम्मपद 242 और 243)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 241 - लालूदायी (कालूदायी) वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

असज्जयामाला मंता
अनुत्थानामाला घरा

malam vanaassa kosajjam
pamado rakkhato malam.

---

श्लोक 241 : पाठ न करना विद्या पर कलंक है; रखरखाव न करना घरों पर कलंक है; आलस्य सौंदर्य पर कलंक है; असावधानी जागते रहने वाले पर कलंक है।

---

लालूदायी (या कलुदायी) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा लालुदयी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (241) कहा।

सावत्थी में, थेरा सारिपुत्त और थेरा महा मोग्गलाना के प्रवचन सुनकर लौटने वाले लोग हमेशा इन दोनों प्रमुख शिष्यों की प्रशंसा करते थे। एक बार, लालुदयी ने उनकी प्रशंसा सुनकर कहा कि उनके प्रवचन सुनने के बाद वे भी उनके बारे में ऐसी ही प्रशंसा करेंगे। इसलिए लालुदयी को प्रवचन देने के लिए कहा गया; वे मंच पर चढ़े, लेकिन कुछ बोल नहीं पाए। तब उन्होंने श्रोताओं से कहा कि पहले किसी दूसरे भिक्षु को बोलने का मौका दें और फिर वे बोलेंगे। इस तरह उन्होंने तीन बार बारी-बारी से बोलने का प्रयास किया।

श्रोता उससे तंग आ गए और चिल्लाने लगे, "अरे मूर्ख! जब हमने दो प्रमुख शिष्यों की प्रशंसा की थी, तब तुम व्यर्थ ही शेखी बघार रहे थे कि तुम भी उनकी तरह उपदेश दे सकते हो। अब क्यों नहीं उपदेश देते?" तब लालुदयी भाग गया और भीड़ उसके पीछे दौड़ी। डर के मारे और ध्यान न देते हुए वह एक शौचालय के गड्ढे में गिर गया।

जब बुद्ध को इस घटना के बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "ललुदयी ने धम्म का बहुत कम ज्ञान प्राप्त किया था; वह नियमित रूप से धार्मिक ग्रंथों का पाठ नहीं करता था; उसने कुछ भी याद नहीं किया था। जो थोड़ा-बहुत उसने सीखा था, वह पाठ न करने के कारण क्षीण हो गया था।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 241 : पाठ न करना विद्या पर कलंक है; रखरखाव न करना घरों पर कलंक है; आलस्य सौंदर्य पर कलंक है; असावधानी जागते रहने वाले पर कलंक है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कालुदयी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य कालुदयी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। बताया जाता है कि सावत्थी में, अनेक श्रेष्ठ शिष्यों ने नाश्ते से पहले दान दिया और नाश्ते के बाद घी, तेल, शहद, गुड़, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर मठ गए और धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश सुनने के बाद जब वे विदा हुए, तो उन्होंने पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों की प्रशंसा की। पूज्य उदय ने उनकी बातें सुन लीं और उनसे कहा, "तुमने केवल इन्हीं पूज्यों को धर्मोपदेश देते हुए सुना है, इसीलिए तुम इस प्रकार बातें करते हो; मुझे आश्चर्य है कि यदि तुम मुझे धर्मोपदेश देते हुए सुनते तो क्या कहते।" उनकी यह बात सुनकर सभी ने मन ही मन सोचा, "यह अवश्य ही कोई महान धर्मोपदेशक होंगे; हमें भी निश्चित रूप से इस पूज्य का धर्मोपदेश सुनना चाहिए।" अतः एक दिन उन्होंने पूज्यवर से यह निवेदन किया, "पूज्यवर, आज वह दिन है जब हम धर्म का प्रवचन सुनने जाते हैं। भिक्षुओं की सभा में दान देने के बाद, हे पूज्यवर, कृपा करके हमें दिन में धर्म का प्रवचन दीजिए।" पूज्यवर ने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया।

जब उनके लिए धम्म सुनने का समय आया, तो वे पूज्य गुरु के पास गए और बोले, "पूज्य गुरु, हमें धम्म का उपदेश दीजिए।" तब पूज्य उदयि आसन पर बैठ गए, हाथ में एक रंगीन पंखा लिया और उसे आगे-पीछे हिलाया, लेकिन धम्म का एक भी शब्द न जानते हुए उन्होंने कहा, "मैं पवित्र वचन का पाठ करूँगा; कोई और धम्म का उपदेश दे।" ऐसा कहकर वे आसन से उतर गए। शिष्यों ने किसी और से धम्म का उपदेश करवाया और उन्हें फिर से आसन पर बैठने में सहायता की ताकि वे पवित्र वचन का पाठ कर सकें। लेकिन दूसरी बार भी, पूज्य गुरु, जो पाठ करने और उपदेश देने दोनों में असमर्थ थे, बोले, "मैं रात में पवित्र वचन का पाठ करूँगा; कोई और अभी पवित्र वचन का पाठ कर दे।" तब शिष्यों ने किसी और से पवित्र वचन का पाठ करवाया और रात में पूज्य गुरु को फिर से ले आए। लेकिन रात में भी उन्हें पाठ करना उतना ही मुश्किल लगता था, और उन्होंने कहा, "मैं भोर में पाठ करूँगा; रात में कोई और पाठ कर ले।" इतना कहकर वे आसन से उतर गए। शिष्यों ने किसी और से रात में पवित्र वचन का पाठ करवाया और भोर में पूज्य गुरु को फिर से ले आए। लेकिन एक बार फिर वे असफल रहे।

तब भीड़ ने मिट्टी के ढेले, लाठियाँ और अन्य वस्तुएँ उठाकर उन्हें धमकाते हुए कहा, "मूर्ख, जब हम पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों के बारे में बात कर रहे थे, तब आपने ये-वो कहा। अब क्यों नहीं कुछ कहते?" पूज्य सारिपुत्त भागने लगे और भीड़ उनके पीछे

दौड़ी। भागते-भागते वे एक गंदे नाले में गिर पड़े। भीड़ ने उस दिन की घटनाओं पर चर्चा करते हुए कहा, “जब कालुदाई ने पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के गुणों की हमारी प्रशंसा सुनी, तो वह ईर्ष्यालु हो गया, उसने स्वयं को धम्म का उपदेशक घोषित कर दिया, और जब लोगों ने उसका सम्मान किया और उससे कहा, 'हम धम्म सुनना चाहते हैं,' तो वह चार बार धम्म के आसन पर बैठ गया, जबकि उसे पाठ करने योग्य एक भी शब्द ज्ञात नहीं था। फिर, जब हमने उससे कहा, 'फिर भी तुमने स्वयं को हमारे पूज्य सारिपुत्त और मोग्गलाना के बराबर बताया,' और मिट्टी के ढेले, डंडे और अन्य वस्तुएँ उठाकर उसे धमकाया, तो वह भाग गया और एक गंदे नाले में गिर गया।”
बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?” जब उन्होंने उन्हें बताया, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब इसने गंदे पानी में लोटपोट किया है; इसने पिछले जन्म में भी ऐसा ही किया था।” इस जातक कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बाद, बुद्ध ने कहा, “उस समय सिंह पूज्य सारिपुत्त थे और सूअर कालुदयी थे।”
प्रवचन समाप्त करते हुए, बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, उदययी ने धम्म का केवल एक अंश ही सीखा था, परन्तु उन्होंने ग्रंथों का पुनरावलोकन नहीं किया। पवित्र वचन का कितना भी कम या अधिक ज्ञान हो, उसका पुनरावलोकन न करना घोर पाप है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 241)
मंता असज्जयमाला घर अनुष्ठानमाला
वनस्सा कोसज्जां मलं रक्खतो पमादो मलं
मंता : मंत्र और सूत्र; असज्झयामाला : अभ्यास न करना उनके जंग के समान है; घरा : घर; अनुष्ठानमाला : कैदियों की सुस्ती को जंग की तरह महसूस करना; वनस्सः रंग; कोसज्जं मलं [ माला ]: परवाह न करना जंग है; रक्खातो [ रक्खाता ]: रक्षा करने वाले के लिए; पमाडो [ पमाडा ]: लापरवाही; मलम् [ माला ]: जंग है
जिन सूत्रों को याद करना पड़ता है, उन्हें बार-बार न दोहराने से उनमें जंग लग जाती है। घरों के लिए, उनमें रहने वालों की उपेक्षा से जंग लग जाती है। त्वचा के लिए, लापरवाही से जंग लग जाती है। पहरेदार के लिए, असावधानी से जंग लग जाती है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 241)
पामादो : असावधानी। बुद्ध ने हमेशा सजग जीवन का समर्थन किया। बुद्ध के अंतिम शब्द भी सजगता के प्रति उनकी इस चिंता को दर्शाते हैं। अपने अंतिम उपदेश में बुद्ध ने कहा, “हे भिक्षुओं, अब मैं तुमसे कहता हूँ। सभी परिस्थितियाँ क्षणभंगुर हैं। लगन से प्रयास करो। बुद्ध का देहांत शीघ्र ही होगा। आज से तीन माह के अंत में बुद्ध का देहांत हो जाएगा।”

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 242,243

---

(धम्मपद 241) <<<< पिछला || धम्मपद 242 और 243 || अगला >>>> (धम्मपद 244 और 245)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 242 और 243 - अन्नतारकुलपुत्त वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
मालित्थिया दुकारिताम
maccheram dadato malam
mala ve papaka dhamma
asmim loke paramhi ca.
Tato mala malataram

अविज्जा परमम मलम
etam malam pahantvana
nimmala hotha bhikkhavo.

---

श्लोक 242 : यौन दुराचार स्त्री का कलंक है; कंजूसी दाता का कलंक है; बुरे मार्ग वास्तव में इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी कलंक हैं।

---

श्लोक 243 : इन सबसे भी बदतर दोष अज्ञान (सत्य का अज्ञान) है, जो सबसे बड़ा दोष है। हे भिक्षुओं, इस दोष को त्याग दो और दोषरहित हो जाओ।

---

एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (242) और (243) का उच्चारण एक ऐसे व्यक्ति के संदर्भ में किया जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया था।
एक बार एक पुरुष की पत्नी ने व्यभिचार किया। वह अपनी पत्नी के दुराचार से इतना लज्जित हुआ कि किसी का सामना करने की हिम्मत नहीं कर पाया; वह बुद्ध से भी दूर रहा। कुछ समय बाद वह बुद्ध के पास गया और बुद्ध ने उससे पूछा कि वह इतने समय तक अनुपस्थित क्यों रहा, तो उसने सब कुछ स्पष्ट कर दिया। अनुपस्थिति का कारण जानकर बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, स्त्रियाँ नदी, सड़क, शराब की दुकान, विश्रामगृह या सड़क किनारे पानी के ठेले के समान होती हैं; वे हर प्रकार के लोगों के साथ संगति करती हैं। वास्तव में, व्यभिचार स्त्री के विनाश का कारण होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 242 : यौन दुराचार स्त्री का कलंक है; कंजूसी दाता का कलंक है; बुरे मार्ग वास्तव में इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी कलंक हैं।

---

श्लोक 243 : इन सबसे भी बदतर दोष अज्ञान (सत्य का अज्ञान) है, जो सबसे बड़ा दोष है। हे भिक्षुओं, इस दोष को त्याग दो और दोषरहित हो जाओ।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ऐसे व्यक्ति की कहानी जिसकी पत्नी ने व्यभिचार किया
वेलुवन में निवास करते समय, बुद्ध ने एक प्रतिष्ठित परिवार के एक युवक के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, एक युवक ने अपने ही कुल की एक युवती से विवाह किया। विवाह के दिन से ही उसकी पत्नी व्यभिचार करने लगी। उसके व्यभिचार से लज्जित होकर युवक का लोगों से आमने-सामने मिलने का साहस नहीं रहा। कुछ दिन बीतने के बाद, बुद्ध की सेवा करना उसका कर्तव्य बन गया। इसलिए वह बुद्ध के पास गया, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। बुद्ध ने पूछा, “शिष्य, अब तुम क्यों किसी के दर्शन नहीं करते?” युवक ने बुद्ध को पूरी कहानी सुनाई। तब बुद्ध ने उससे कहा, “शिष्य, पिछले जन्म में भी मैंने कहा था, ‘स्त्रियाँ नदियों के समान हैं, और एक बुद्धिमान व्यक्ति को उन पर क्रोधित नहीं होना चाहिए।’ परन्तु पुनर्जन्म तुमसे छिपा हुआ है, इसलिए तुम इसे नहीं समझते।”
युवक के अनुरोध पर बुद्ध ने निम्नलिखित जातक कथा सुनाई:
नदी, सड़क, सराय, हॉल, झोपड़ी की तरह, इस दुनिया की महिलाएं भी ऐसी ही होती हैं: उनका समय कभी ज्ञात नहीं होता।
बुद्ध ने कहा, “कामुकता स्त्री पर कलंक है; कंजूसी भिक्षा देने वाले पर कलंक है; बुरे कर्म, इस लोक और परलोक दोनों में विनाश का कारण बनते हैं, इसलिए सभी जीवों पर कलंक हैं; लेकिन सभी कलंकों में अज्ञान सबसे बुरा कलंक है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 242)
इत्थिया दुकारितं मळं ददातो मच्छेरं मळं
पापाका धम्म अस्मि लोके परमहि च वे माला

itthiya : स्त्री के लिए; duccarita: बुरा व्यवहार; mala : दोष है ; dadato : दाता के लिए ; macchera : कंजूसी ; mala : दोष है; pāpakā dhammā : बुरे कर्मों के लिए; asmiṃ loke paramhi ca : यह लोक और परलोक (दोनों); ve malā : निश्चित रूप से दोष हैं

महिलाओं के लिए दुराचार कलंक है। दानशील व्यक्तियों के लिए कंजूसी कलंक है। बुरे कर्म इस दुनिया में और परलोक में भी कलंक हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 243)

भिक्खवो , ततो माला मालतरं अविज्जा परमं

मळं एतं मळं पहतवना निम्मला होथा

भिक्खावो [ भिक्खवा ]: हे भिक्षु: ततो माला मालतरं [ मालतारा ]: उन सभी दागों से ऊपर (वहां है) एक सबसे खराब दाग; अविज्जा : अज्ञान; परमं मलम् [ माला ]: सबसे बुरा दाग है; एतं मलं [ माला ]: यह दाग; पहत्वाना : छुटकारा पाकर; निम्मला होथा : स्टेनलेस बनें

हे भिक्षुओं, इन सभी दागों से भी बदतर एक दाग है। सबसे बुरा दाग है अज्ञानता। इस दाग से छुटकारा पाकर निर्मल और बेदाग बन जाओ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 242-243)

इत्तिया दुच्चरितं मलं : स्त्री के लिए बुरा व्यवहार कलंक है। समकालीन धार्मिक नेताओं में बुद्ध का स्त्री-द्वेष के प्रति सबसे उदार दृष्टिकोण था। बुद्ध ने ही स्त्री-द्वेष का उत्थान किया और उन्हें समाज में उनके महत्व का अहसास कराया। बुद्ध के आगमन से पहले भारत में स्त्री-द्वेष को उच्च स्थान नहीं दिया जाता था। एक भारतीय लेखक, हेमचंद्र, स्त्री-द्वेष को नरक का मार्ग प्रशस्त करने वाली मशाल मानते थे — नरकमार्गद्वारस्य दीपिका । बुद्ध ने स्त्री-द्वेष का अपमान नहीं किया, बल्कि उन्हें स्वभाव से दुर्बल माना। उन्होंने पुरुष और स्त्री दोनों के अंतर्निहित गुणों को देखा और अपने उपदेशों में उन्हें उनका उचित स्थान दिया। लिंग शुद्धि या सेवा में कोई बाधा नहीं है।

पाली भाषा में महिलाओं के लिए कभी-कभी मतुगामा शब्द का प्रयोग किया जाता है , जिसका अर्थ है 'मातृसत्ता' या 'माताओं का समाज'। बौद्ध धर्म में एक माँ के रूप में स्त्री का विशेष सम्मान है। माँ को स्वर्ग तक पहुँचने का एक सुगम मार्ग माना जाता है, और पत्नी को पति की सबसे अच्छी सहेली ( परमा सखा ) समझा जाता है।

यद्यपि शुरुआत में बुद्ध ने तर्कसंगत कारणों से महिलाओं को संघ में शामिल करने से इनकार कर दिया था, फिर भी बाद में वे पूज्य आनंद और उनकी पालक माता महा प्रजापति गौतमी के आग्रह के आगे झुक गए और भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की। इस प्रकार बुद्ध ने ही नियमों और विनियमों के साथ महिलाओं के लिए पहले समाज की स्थापना की।

जिस प्रकार अरहत सारिपुत्त और मोग्गलाना को संघ का दो प्रमुख शिष्य बनाया गया, जो कि सबसे प्राचीन लोकतांत्रिक रूप से गठित ब्रह्मचारी संघ है, उसी प्रकार अरहत खेमा और उप्पलावन्ना को भिक्षुणियों के संघ की दो प्रमुख महिला शिष्य बनाया गया। कई अन्य महिला शिष्यों को भी स्वयं बुद्ध ने सबसे विशिष्ट और धर्मपरायण अनुयायियों में गिना है। वज्जी समुदाय में भी, महिलाओं को मिली स्वतंत्रता को उनकी समृद्धि के प्रमुख कारणों में से एक माना जाता था। बुद्ध के आगमन से पहले महिलाओं को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी और वे अपनी जन्मजात आध्यात्मिक क्षमताओं और मानसिक प्रतिभाओं को प्रदर्शित करने के अवसर से वंचित थीं। प्राचीन भारत में, जैसा कि आज भी देखा जाता है, परिवार में पुत्री का जन्म एक अवांछित और बोझिल जुड़ाव माना जाता था।

एक बार जब बुद्ध राजा कोसल से बातचीत कर रहे थे, तभी एक दूत आया और उसने राजा को सूचित किया कि उनके घर पुत्री का जन्म हुआ है। यह सुनकर राजा स्वाभाविक रूप से अप्रसन्न हुए। लेकिन बुद्ध ने उन्हें सांत्वना देते हुए और प्रोत्साहित करते हुए कहा, "हे मनुष्यों के स्वामी, पुत्री पुत्री से भी श्रेष्ठ संतान सिद्ध हो सकती है।"

बुद्ध के आगमन से पहले विभिन्न कठिनाइयों का सामना कर रही महिलाओं के लिए भिक्षुणियों के संघ की स्थापना एक वरदान सिद्ध हुई। इस संघ में रानियाँ, राजकुमारियाँ, कुलीन परिवारों की पुत्रियाँ, विधवाएँ, शोक संतप्त माताएँ, असहाय महिलाएँ, वेश्याएँ, सभी अपनी जाति या पद के बावजूद एक समान स्तर पर मिलती थीं, पूर्ण सांत्वना और शांति का अनुभव करती थीं, और उस मुक्त वातावरण में सांस लेती थीं जो झोपड़ियों और आलीशान महलों में कैद महिलाओं को प्राप्त नहीं था। अनेक ऐसी महिलाएं, जो अन्यथा गुमनामी में खो जातीं, उन्होंने संघ में शरण लेकर विभिन्न तरीकों से अपनी पहचान बनाई और मुक्ति प्राप्त की।

खेमा, जो पहली प्रमुख महिला शिष्या थीं, राजा बिम्बिसार की सुंदर पत्नी थीं। शुरुआत में वे बुद्ध से मिलने से हिचकिचा रही थीं क्योंकि उन्होंने सुना था कि बुद्ध बाहरी सुंदरता को तुच्छ समझते थे। एक दिन वे महल का नजारा देखने के लिए ही मठ में गईं। धीरे-धीरे वे उस हॉल की ओर आकर्षित हो गईं जहाँ बुद्ध उपदेश दे रहे थे। बुद्ध ने उनके मन की बात जान ली और अपनी अलौकिक शक्तियों से एक सुंदर युवती को उनके बगल में पंखा करते हुए प्रकट किया। खेमा उस युवती की सुंदरता की मुग्ध हो गईं। बुद्ध ने उस प्रकट छवि को युवावस्था से अधेड़ और फिर वृद्धावस्था में बदलते हुए दिखाया, यहाँ तक कि अंत में वह टूटे हुए दाँतों, सफ़ेद बालों और झुर्रीदार त्वचा के साथ ज़मीन पर गिर पड़ी। तब जाकर उन्हें बाहरी सुंदरता की व्यर्थता और जीवन की क्षणभंगुरता का अहसास हुआ। उन्होंने सोचा, "क्या ऐसा शरीर इस तरह नष्ट होने के लिए आया है? तो मेरा शरीर भी ऐसा ही होगा।"

बुद्ध ने उसके मन की बात जान ली और कहा:
जो लोग कामवासना के गुलाम होते हैं, वे धारा के साथ बह जाते हैं।
जैसे कोई मकड़ी जाले पर सरकती है
उसने स्वयं ही काम किया। लेकिन रिहा किए गए व्यक्ति ने...
जिनके सारे बंधन टूटकर बिखर गए हैं,
कहीं और विचार केंद्रित करके, संसार को त्याग दो।
और इंद्रियों से मिलने वाले सभी सुखों को दूर कर दिया गया।

खेमा ने अर्हतत्व प्राप्त किया और राजा की सहमति से संघ में प्रवेश किया। वे भिक्षुणियों में अंतर्दृष्टि में अग्रणी थीं। पताचारा, जिन्होंने अत्यंत दुखद परिस्थितियों में अपने दो बच्चों, पति, माता-पिता और भाई को खो दिया था, बुद्ध की इच्छाशक्ति से आकर्षित होकर उनकी उपस्थिति की ओर खिंची चली गईं। बुद्ध के सुखदायक वचन सुनकर उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त की और संघ में प्रवेश किया। एक दिन, जब वे अपने पैर धो रही थीं, तो उन्होंने देखा कि पहले पानी थोड़ा सा बहकर रुक गया, दूसरी बार थोड़ा और बहकर रुक गया, और तीसरी बार और बहकर रुक गया। उन्होंने मन ही मन सोचा, "मनुष्य भी इसी प्रकार मरते हैं, या तो बचपन में, या अधेड़ उम्र में, या बुढ़ापे में।" बुद्ध ने उनके विचारों को पढ़ लिया और उनके सामने अपनी छवि प्रकट करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त किया और बाद में कई शोक संतप्त माताओं के लिए सांत्वना का स्रोत बनीं।

धम्मदिन्ना और भद्दा कापिलानी दो ऐसी भिक्षुणियां थीं जिन्हें धम्म की सम्मानित व्याख्याता माना जाता था।

दुष्ट मारा के उत्तर में, नन सोमा ने कहा: "जिस स्त्री का मन स्थिर हो और ज्ञान में वृद्धि हो, और जिसे धम्म का अधिकार प्राप्त हो, उसमें स्त्रीत्व की क्या भूमिका होनी चाहिए? जो इस प्रश्न से संशय में हो कि 'क्या मैं इन मामलों में स्त्री हूँ, या पुरुष हूँ, या फिर मैं क्या हूँ?' — दुष्ट को ही इस विषय पर बात करने का अधिकार है।"

आम लोगों में भी कई ऐसी महिलाएं थीं जो अपनी धर्मनिष्ठा, उदारता, भक्ति, ज्ञान और दयालुता के लिए विख्यात थीं।

संघ की प्रमुख दानदाता विसाखा इन सबमें सर्वोपरि हैं। सुप्पिया एक अत्यंत धर्मनिष्ठ महिला थीं, जो बाजार से मांस न मिलने पर एक बीमार भिक्षु के लिए सूप बनाने के लिए अपनी जांघ से मांस का एक टुकड़ा काट कर लाईं।

नकुलमाता एक निष्ठावान पत्नी थीं, जिन्होंने अपने गुणों का बखान करके अपने पति को मृत्यु के मुंह से बचाया। सामावती एक धर्मपरायण और प्रेममयी रानी थीं, जिन्होंने बिना किसी द्वेष के अपनी प्रतिद्वंद्वी के प्रति प्रेम और दया का भाव दिखाया, यहाँ तक कि तब भी जब उनकी साजिश के कारण उनकी मृत्यु हो गई। रानी मल्लिका ने अनेक अवसरों पर अपने पति, राजा पसेनादि को सलाह दी। एक दासी, खुज्जुत्तारा ने धर्म का उपदेश देकर अनेकों को धर्म परिवर्तन कराया।

पुनब्बासुमाता धर्म को सुनने में इतनी लीन थीं कि उन्होंने अपने रोते हुए बच्चे को इस प्रकार चुप कराया:
हे मौन, नन्ही उत्तरा! शांत रहो!
पुनाबासु, ताकि मैं नॉर्म को सुन सकूँ
गुरु द्वारा, सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी व्यक्ति द्वारा सिखाया गया।
हमें अपना बच्चा प्रिय है, और प्रिय
हमारे पति; इन सबसे भी अधिक प्रिय
इस सिद्धांत का उद्देश्य मार्ग का अन्वेषण करना है।

एक चिंतनशील माँ से जब पूछा गया कि वह अपने इकलौते बच्चे की मृत्यु पर क्यों नहीं रोई, तो उसने कहा: "वह बिना बुलाए यहाँ आया, बिना कहे ही चला गया; जैसे आया वैसे ही चला गया। इसमें शोक का क्या कारण है?"

सुमना और सुभद्दा दो ऐसी बहनें थीं जिनका चरित्र अनुकरणीय था और बुद्ध में उनकी अटूट आस्था थी। ये कुछ उदाहरण बुद्ध के समय में, विशेषकर बुद्ध के मार्गदर्शन में, महिलाओं द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 244,245

———————————————————————

(धम्मपद 242 और 243) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 244 और 245 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 246, 247 और 248)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 244 और 245 - कुलासरिभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सुजीवम अहिरिकेना
kakasurena dhamsina
pakkhandina pagabbhena
samkilitthena jivitam.
हिरिमाता च दुज्जिवम
niccam sucigavesina
alinena' ppagabbhena
suddhajivena passata.

---

श्लोक 244 : जीवन उस व्यक्ति के लिए आसान है जो कौवे की तरह निर्भीक और साहसी है, जो दूसरों की निंदा करता है और ढोंगी, आक्रामक और भ्रष्ट है।

---

श्लोक 245 : जीवन उस व्यक्ति के लिए कठिन है जिसमें लज्जा की भावना होती है, जो सदा पवित्रता की खोज करता है, जो आसक्ति से मुक्त होता है, जो विनम्र होता है और जो उचित आजीविका को स्पष्ट रूप से देखता है।

---

कुलासारी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (244) और (245) का उच्चारण किया, जो कि चुलसारी नामक एक भिक्षु के संदर्भ में था, जो चिकित्सा का अभ्यास करता था।
एक दिन, कुलासारी एक रोगी की सेवा करके लौट रहे थे। रास्ते में उनकी मुलाकात थेरा सारिपुत्त से हुई और उन्होंने उन्हें बताया कि वे एक रोगी का इलाज करने गए थे और उन्हें अपनी सेवा के बदले कुछ स्वादिष्ट भोजन दिया गया था। उन्होंने थेरा सारिपुत्त से विनती की कि वे उनसे कुछ भोजन स्वीकार कर लें। थेरा सारिपुत्त ने उन्हें कुछ नहीं कहा और अपने रास्ते पर चलते रहे। थेरा सारिपुत्त ने उस भिक्षु से भोजन लेने से इनकार कर दिया क्योंकि उस भिक्षु ने भिक्षुओं को चिकित्सा करने से रोकने वाले नियम का उल्लंघन किया था। अन्य भिक्षुओं ने इस बात की सूचना बुद्ध को दी और उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जो भिक्षु निर्लज्ज होता है, वह विचार, वचन और कर्म में कठोर होता है। वह कौवे के समान अहंकारी होता है, वह अवैध तरीकों से जीविका कमाता है और आराम से जीवन व्यतीत करता है। दूसरी ओर, जो भिक्षु लज्जित होता है, उसका जीवन आसान नहीं होता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 244 : जीवन उस व्यक्ति के लिए आसान है जो कौवे की तरह निर्भीक और साहसी है, जो दूसरों की निंदा करता है और ढोंगी, आक्रामक और भ्रष्ट है।

---

श्लोक 245 : जीवन उस व्यक्ति के लिए कठिन है जिसमें लज्जा की भावना होती है, जो सदा पवित्रता की खोज करता है, जो आसक्ति से मुक्त होता है, जो विनम्र होता है और जो उचित आजीविका को स्पष्ट रूप से देखता है।

---

प्रवचन के अंत में कई लोगों ने सोतापत्ति फल की प्राप्ति की।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुल्ला सारी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने चिकित्सा का अभ्यास करने वाले चुल्ला सारी नामक एक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। कथा के अनुसार, एक दिन एक भिक्षु ने चिकित्सा उपचार किया, जिसके बदले में उसे उत्तम भोजन प्राप्त हुआ। भोजन लेकर निकलते समय रास्ते में उसकी मुलाकात एक पूज्य भिक्षु से हुई और उसने उनसे कहा, "पूज्य भिक्षु, यह भोजन मुझे चिकित्सा उपचार के बदले में प्राप्त हुआ है। ऐसा भोजन आपको कहीं और नहीं मिलेगा। इसे लीजिए और खाइए। अब से जब भी मुझे चिकित्सा उपचार के बदले में ऐसा भोजन प्राप्त होगा, मैं उसे आपके पास लाऊंगा।" पूज्य भिक्षु ने उसकी बात सुनी, लेकिन बिना कुछ कहे चले गए। भिक्षु मठ गए और बुद्ध को इस बात की सूचना दी। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जो कौवे के समान निर्लज्ज और ढीठ है, जो इक्कीस प्रकार के दुराचार करता है, वह सुखी जीवन व्यतीत करता है। परन्तु जो लज्जावान और मृत्यु पाप के भय से परिपूर्ण है, वह दुःख में जीवन व्यतीत करता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 244)

अहिरिकेन काकासुरेण धसीना पखंडिना
पगब्बेण संकिलित्थेन जीवितं सुजीवं

अहिरिकेना : निर्लज्ज व्यक्ति द्वारा; काकासूरेन : कौवे के समान चालाक; धंसीना : निंदा करना; पक्खंदीना : फिसलन भरा; पगब्बेन : चिकना; संकिलिट्ठेन : भ्रष्ट ; जीवित : जीवित; सुजीव : आसानी से बहकाया जा सकने वाला

यदि किसी व्यक्ति में लज्जा का भाव न हो, तो उसका जीवन आसान प्रतीत होता है, क्योंकि वह सार्वजनिक राय की परवाह किए बिना अपनी इच्छानुसार जी सकता है। वह कौवे की तरह बड़ी कुशलता से मनचाहा विनाश कर सकता है। कौवे की ही तरह, निर्लज्ज व्यक्ति का जीवन भी अपवित्र होता है। वह घमंडी होता है और दूसरों की बिल्कुल परवाह नहीं करता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 245)

हिरिमाता च निक्कं सुसिगावेसिना अलीनेना
अप्पगब्बेण शुद्धजीवेन पस्सता दुज्जिवं

हिरिमाता च : विनम्र व्यक्ति के लिए; निच्चं [ निच्च ]: निरंतर; सुचिगावेसिना : शुद्धता का अनुसरण करने वाला; अलीनेन : अनासक्त; अप्पगब्बेन : चालाक नहीं; शुद्ध जीवन जीने वाला; पसाता : अंतर्दृष्टि रखने वाला; दुज्जीवं [ दुज्जीव ]: जीवन आसान नहीं है

जो व्यक्ति विनम्र, संवेदनशील और संयमी हो, जो निरंतर शुद्धता की खोज में लगा रहता हो, आसक्त न हो, जो चालाक और उद्दंड न हो, जो शुद्ध जीवन जी रहा हो और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हो, उसके लिए जीवन कठिन होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 244-245)

काकासुरन : कौवे के समान धूर्त। निर्लज्ज व्यक्ति का रवैया एक धूर्त कौवे के समान है, जो अवसर की प्रतीक्षा में घात लगाए बैठा रहता है और जो कुछ भी उसे मिल सके, उसे छीन लेता है। श्लोक कहता है कि ऐसे धूर्त व्यक्ति के लिए जीवन आसान है, लेकिन संघ (भाईचारे) के सदस्य के लिए यह उचित रवैया नहीं है। भाईचारा बौद्ध धर्म के तीन रत्नों में से अंतिम है।

तीन शरणों में से अंतिम, संघ का रत्न, पर अभी विचार किया जाना बाकी है। इसे इस खंड के लिए इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि व्यवहारिक रूप से इस पर विचार करना अधिक उपयुक्त है। बुद्ध की शिक्षाएँ सभी के लिए हैं। लिंग, जाति या रंग के आधार पर किसी को भी बौद्ध बनने से नहीं रोका गया है। यह व्यक्तिगत बौद्ध (और उसकी परिस्थितियों) पर निर्भर करता है कि वह गृहस्थ रहे या भिक्षु (या भिक्षुणी) बने। प्रत्येक वर्ग को दूसरे से जो लाभ मिलता है वह पारस्परिक है: गृहस्थ भिक्षुओं को वस्त्र, भोजन, आश्रय और औषधियाँ देते हैं और ये भिक्षु के जीवनयापन के साधन हैं। भिक्षु (और भिक्षुणियाँ) बदले में गृहस्थों को सबसे अनमोल वस्तु देते हैं: धम्म, जैसा कि उन्होंने अध्ययन, अभ्यास और अनुभव किया है। इस प्रकार गृहस्थ बौद्ध किसी मठ में वहाँ के किसी शिक्षक से या शायद अपने किसी पुत्र, चाचा या किसी अन्य रिश्तेदार से, जो स्थायी रूप से या कुछ समय के लिए नौसिखिया, भिक्षु या भिक्षुणी के रूप में अभ्यास कर रहा हो, आसानी से सलाह और सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार, एक संतुलन बना रहता है, प्रत्येक समूह दूसरे को सही आजीविका के लिए आवश्यक कुछ न कुछ देता है।

भिक्षुओं और नौसिखियों के जीवन में मार्गदर्शन के लिए नियमों का एक समूह होता है, जिनका पालन वे स्वेच्छा से आत्म-प्रशिक्षण के रूप में करते हैं। इन्हें स्वेच्छा से छोड़ा भी जा सकता है, जैसे कि जब कोई भिक्षु पुनः नौसिखिया बनता है या गृहस्थ जीवन में लौटता है। कुछ देशों में, गृहस्थों के लिए कुछ समय नौसिखिया या भिक्षु के रूप में बिताना एक आम प्रथा है (बाद वाला दीक्षा संस्कार केवल बीस वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को दिया जाता है)। आमतौर पर यह स्कूल या कॉलेज की शिक्षा पूरी होने के बाद, काम शुरू करने से पहले, लगभग जुलाई से अक्टूबर या नवंबर तक तीन या चार महीने की अवधि के लिए किया जाता है। इस अवधि को, जब भिक्षुओं को अपने मठ में रहना होता है, वर्षा ऋतु निवास के रूप में जाना जाता है और यह अध्ययन, ध्यान या किसी अन्य गहन आध्यात्मिक गतिविधि के लिए समर्पित अवधि होती है। इस वार्षिक वर्षा ऋतु निवास के समाप्त होने के बाद, भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार अन्य मठों

में या वन में जाने के लिए स्वतंत्र होते हैं। बौद्ध संघ में, भिक्षुओं को धन नहीं रखना चाहिए और उन्हें कम से कम संपत्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए।

भिक्षु होने के नाते, उन्हें किसी भी प्रकार के यौन संबंध से बचना चाहिए, इस प्रकार 'पवित्रता' का पालन करना चाहिए। लेकिन उन पर बिना किसी प्रश्न के 'आज्ञापालन' करने का कोई नियम नहीं है, हालांकि एक गुरु के शिष्य के रूप में उनके कुछ दायित्व होते हैं और सभी अच्छे भिक्षु इनका कड़ाई से पालन करते हैं। कम से कम पांच वर्षों के बाद, जब उन्हें कुछ ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो जाता है और वे अपने नियमों को भली-भांति जान लेते हैं, तो वे अपनी इच्छानुसार इधर-उधर घूमने, अच्छे गुरुओं की खोज करने या स्वयं अभ्यास करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

भिक्षु के नियमों में उल्लिखित चार सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख करना आवश्यक है, जिनका उल्लंघन करने पर व्यक्ति को संघ से निष्कासित कर दिया जाता है और वह इस जीवन में पुनः कभी भिक्षु नहीं बन सकता। ये चार नियम हैं: 1) कभी भी यौन संबंध न रखना; 2) जानबूझकर किसी मनुष्य की हत्या न करना, न ही किसी अन्य व्यक्ति को हत्या का आदेश देना, चाहे वह अन्य मनुष्य हो या स्वयं; 3) किसी अन्य वस्तु को अपने अधिकार में लेने के इरादे से न लेना; 4) किसी भी आध्यात्मिक उपलब्धि, शक्ति या ज्ञान के स्तर का झूठा दावा न करना (यदि वह पागल, अभिमानी या गैर-गंभीर हो तो उसे छूट दी जाती है)।

एक भिक्षु की वास्तविक संपत्ति बहुत कम होती है और उसके आसपास की अन्य सभी वस्तुएं संघ से उधार ली गई मानी जाती हैं। उसके पास केवल आठ आवश्यक वस्तुएं होती हैं: दोहरी परत वाला बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र, अंतर्वस्त्र, भोजन इकट्ठा करने के लिए कटोरा, वस्त्रों की मरम्मत के लिए सुई और धागा, अंतर्वस्त्र के लिए कमरबंद, एक तरकश और पीने के पानी से छोटे जीवों को अलग करने के लिए पानी छानने वाला यंत्र, ताकि न तो उन्हें और न ही स्वयं भिक्षु को कोई हानि हो।

उसके कर्तव्य सरल हैं, पर उनका निर्वाह करना आसान नहीं है। उसे अपने गुरु, प्रबुद्ध पुरुष, द्वारा दी गई सभी शिक्षाओं का व्यापक ज्ञान और गहन समझ प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए; उसे शिक्षाओं का अभ्यास करना चाहिए, सद्‌गुणों का पालन करना चाहिए, एकाग्रता को मजबूत करना चाहिए और ज्ञान का विकास करना चाहिए; तब वह अपने अभ्यास के अनुसार बुद्ध की शिक्षाओं को साकार करेगा; और अंत में, अपनी क्षमताओं के अनुसार, वह अपने उदाहरण द्वारा, उपदेश द्वारा, पुस्तकें लिखकर आदि के माध्यम से शिक्षा दे सकता है।

संघ की शरण लेते समय, यह न सोचें कि सभी भिक्षुओं के समूह की शरण ले रहे हैं, क्योंकि यद्यपि उनमें से कुछ श्रेष्ठ हैं (परम ज्ञान की अग्नि द्वारा दोषों को भस्म करने के बाद प्राप्त होने वाली सच्ची श्रेष्ठता), फिर भी काफी संख्या में भिक्षु सांसारिक हैं और धम्म का अभ्यास कर रहे हैं। गृहस्थों में भी श्रेष्ठ भिक्षु हो सकते हैं। श्रेष्ठ भिक्षु और गृहस्थ मिलकर श्रेष्ठ संघ बनाते हैं, जो कि समस्त लोकों के बंधनों से मुक्त हो चुके और मुक्त करने वाले लोगों से बना होने के कारण वास्तव में एक सुरक्षित शरणस्थल है। गृहस्थों का इस अलौकिक श्रेष्ठता को प्राप्त करना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि यह शिक्षा उनके लिए भी है, यद्यपि इसके लिए उन्हें पूर्ण अभ्यास करना होगा।

संघ के इस रत्न ने भगवान बुद्ध के निकटवर्ती शिष्यों में से कई महान शिक्षकों को जाना है, जैसे कि पूज्य अञ्ञाकोण्डञ्ञ, सारिपुत्त, मोग्गल्लाना, महाकस्सपा, आनंद; और पूज्य भिक्षुणियां जैसे महाप्रजापति, खेमा, उप्पलवन्ना, धम्मदिन्ना; साथ ही परोपकारी अनाथपिंडिका जैसे गृहस्थ पुरुष और विशाखा जैसी प्रसिद्ध गृहस्थ महिलाएं; और प्रबुद्ध शिष्यों का यह महान सिलसिला युगों से लेकर आज तक जारी है।

यद्यपि कोई व्यक्ति बाह्य सुगठित संघ की शरण ले सकता है, परन्तु वास्तविक शरण तो भीतर ही खोजनी चाहिए। यह सुगठित गुणों (जैसे आस्था, ऊर्जा, सजगता, संयम और ज्ञान) का संग्रह है, जो संतुलित और सुसंस्कृत व्यक्ति को सुगठित होकर सुगठित संघ का सदस्य बनने की ओर अग्रसर करता है।

बौद्ध मान्यताओं और त्रिरत्न या त्रिविध शरण में उनके आधार का वर्णन करने के बाद, अब यह बताने का समय है कि बौद्ध प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षाओं को साकार करने के लिए क्या अभ्यास करते हैं, और इस प्रकार अपने स्वयं के अनुभव में उन सिद्धांतों को प्रमाणित करते हैं जिन पर उन्होंने प्रारंभ में विश्वास किया था।

यहां विचार किए जाने योग्य शिक्षाओं के विशाल समूह के लिए एक रूपरेखा के रूप में, शिक्षा का एक प्राचीन त्रिगुणात्मक सारांश उपयोग किया जाता है: सद्‌गुण, संयम और ज्ञान।

भगवान बुद्ध ने इन बातों को एक श्लोक में संक्षेप में व्यक्त किया है, जो सभी बौद्ध देशों में प्रसिद्ध है:

किसी भी प्रकार की बुराई न करना (सद्‌गुण को दर्शाता है)

लाभदायक कौशल को परिपूर्ण बनाना, (एकजुटता की ओर)

हृदय का शुद्धिकरण भी (ज्ञान की ओर)।

यह बुद्धों की शिक्षा है।

इन्हें तीन प्रशिक्षणों के रूप में जाना जाता है, लेकिन चूंकि अंतिम प्रशिक्षण, ज्ञान, सांसारिक और अलौकिक दोनों है, इसलिए धम्म के दायरे (हालांकि पूर्ण सार से बहुत दूर) को समाहित करने वाले चार खंड तैयार किए गए हैं: सांसारिक ज्ञान, सद्गुण, संयम और अलौकिक ज्ञान।

विशेष टिप्पणी : कुछ स्थानों पर यह भ्रामक धारणा प्रचलित है कि बौद्ध धर्म केवल भिक्षुओं के लिए है। यह सत्य से कोसों दूर है। जैसा कि हम यहाँ प्रदर्शित करने का प्रयास करेंगे, भिक्षुओं और गृहस्थों, सभी के लिए कुछ न कुछ है। यह सत्य है कि बुद्ध के अनेक उपदेश भिक्षुओं को संबोधित हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि गृहस्थ उनके विषयवस्तु का उपयोग नहीं कर सकते। बौद्ध शिक्षाओं को जीवन में कितना अपनाना है, यह कुछ हद तक परिवेश (कार्य, परिवार आदि) पर निर्भर करता है, जबकि गृहस्थों के मामले में यह अधिकतः व्यक्ति की तत्परता और दृढ़ संकल्प पर निर्भर करता है। भिक्षु को बुद्ध की शिक्षाओं को जीवन में उतारने के लिए अधिक अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है, क्योंकि गृहस्थों की तुलना में उनका ध्यान कम भटकता है। भिक्षुओं में भी योग्यता और रुचि स्वाभाविक रूप से भिन्न होती है। भिक्षु के लिए 'पुजारी' शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया जाना चाहिए , इसका सर्वोत्तम अनुवाद 'भिक्षु' ही है।

बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां भोजन के लिए भीख नहीं मांगते और न ही भिखारी होते हैं। भिक्षुओं के भोजन संग्रह के लिए एक सख्त आचार संहिता का पालन किया जाता है। उदाहरण के लिए, वे लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए किसी भी प्रकार का शोर नहीं मचा सकते—जैसे चिल्लाना या गाना। वे चुपचाप चलते हैं और ध्यानमग्न भिक्षुओं के मामले में, अपना मन ध्यान के विषय पर केंद्रित रखते हैं, और लोगों द्वारा दी जाने वाली हर चीज को स्वीकार करते हैं। भगवान बुद्ध ने एक बार एक गरीब बच्चे की भेंट को गंभीरता से स्वीकार किया, जिसके पास मुट्ठी भर धूल के अलावा देने के लिए कुछ नहीं था: बच्चे को महान गुरु पर विश्वास था। इससे यह सीख मिलती है कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि क्या दिया गया है, बल्कि यह है कि वह कैसे दिया गया है। भिक्षु को जो कुछ भी दिया जाता है, चाहे वह भोजन हो या मन-शरीर के संतुलन को बनाए रखने के लिए औषधि, उससे संतुष्ट रहना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 246,247,248

---

(धम्मपद 244 और 245) <<<< पिछला || धम्मपद 246, 247 और 248 || अगला >>>> (धम्मपद 249 और 250)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 246, 247 और 248 - पंच उपासक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo panamatipatiti
musavadanca bhasati
loke adinnamadiyati
paradaranca gacchati.
सुरमेरायापानंका
yo naro anuyunjati
idheva meso lokasmim

mulam khanati attano.
एवम भो पुरिसा जनाहि
पापधम्मा असन्नता
ma tam lobho adhammo ca
ciram dukkhaya randhayum.

---

श्लोक 24 6 और 247: जो जीवन को नष्ट करता है, झूठ बोलता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है, व्यभिचार करता है और मादक पेय पीता है, वह इसी जीवन में अपनी ही जड़ें उखाड़ता है।

---

श्लोक 248 : हे मनुष्य, यह जान लो! अपने आप को संयमित न रखना बुराई है; लोभ और द्वेष को अपने ऊपर दीर्घकालीन कष्ट का कारण न बनने दो।

---

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (246), (247) और (248) कहे।

एक बार जेतवन मठ में पाँच गृहस्थ शिष्य उपवास कर रहे थे। उनमें से अधिकांश पाँच नैतिक नियमों (शील) में से केवल एक या दो का ही पालन कर रहे थे। प्रत्येक शिष्य, जो किसी विशेष नियम का पालन कर रहा था, दावा करता था कि वह नियम सबसे कठिन है और इस बात पर बहुत बहस हुई। अंत में, वे इस समस्या को लेकर बुद्ध के पास आए। बुद्ध ने उनसे कहा, "तुम्हें किसी भी नियम को आसान या महत्वहीन नहीं समझना चाहिए। प्रत्येक नियम का कड़ाई से पालन करना चाहिए। किसी भी नियम को हल्के में मत लो; किसी का भी पालन करना आसान नहीं है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 24 6 और 247: जो जीवन को नष्ट करता है, झूठ बोलता है, जो उसे नहीं दिया गया है उसे लेता है, व्यभिचार करता है और मादक पेय पीता है, वह इसी जीवन में अपनी ही जड़ें उखाड़ता है।

---

श्लोक 248 : हे मनुष्य, यह जान लो! अपने आप को संयमित न रखना बुराई है; लोभ और द्वेष को अपने ऊपर दीर्घकालीन कष्ट का कारण न बनने दो।

---

प्रवचन के अंत में पांच गृहस्थ शिष्यों ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

इन पाँच सौ गृहस्थ शिष्यों में से एक ने केवल जीव-जंतुओं का वध न करने का नियम अपनाया; दूसरे ने कोई और नियम, और इसी प्रकार अन्य शिष्य भी। एक दिन वे आपस में झगड़ पड़े, और प्रत्येक ने कहा, “मुझे जो करना है वह कठिन है; मुझे जिस नियम का पालन करना है वह कठिन है।” वे बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और सारा मामला उनके समक्ष रखा। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं, और फिर किसी भी नियम को कम महत्वपूर्ण बताए बिना कहा, “सभी नियम कठिन हैं।” ऐसा कहकर बुद्ध ने ये श्लोक कहे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 246)

यो पणं अतिपतेति मुसावादं च भासति
लोके अदिनं आदियति , परदारं च गच्छति

यदि कोई व्यक्ति; पाणं अतिपातेति : जीवन लेता है; मुसावादं च भासति : झूठ बोलता है; लोके : इस संसार में; अदिन्नं [ अदिन्न ]: जो नहीं दिया गया; आदियति : लेता है; परदारं च गच्छति : व्यभिचार करता है

यदि इस संसार में कोई व्यक्ति जीवन का नाश करता है; झूठ बोलता है; बिना माँगे वस्तुएँ लेता है और व्यभिचार करता है, तो वह दूसरे पुरुष की पत्नी के पास जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 247)
यो नरो सुरामेरायपानं च अनुयुञ्जति एसो
इधा लोकस्मि एव अत्तानो मूलं खनाति
यो नारो : यदि कोई; सुरामेरायपानं च : नशीला पेय लेना; अनुयुञ्जति : भोगता है; एसो : वह; इधा लोकस्मि एव : यहीं इस दुनिया में; अट्टानो [ अट्टाना ]: अपना; मूलं [ मूल ]: जड़; खनाति : खोदता है
मादक पेय पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति स्वयं को इस संसार से ही उखाड़ देता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 248)
भो पुरिसा पापधम्म असंन्याता एवं जनाहि लोभो च
अधम्मो च तं सीरं दुक्खाय मा रंधायुं
भो पुरिसा : हे मनुष्य!; पापधम्मा : बुरा कर्म; असञ्ञता : संयम से रहित; एवं : इस मार्ग को ; जानाहि : (तुम्हें) जानना चाहिए; लोभो [ लोभ ]: लोभ; अधम्मो च : और बुरे मार्ग; तं : (इन दोनों) को तुम; चिरं [ चिर ]: लंबे समय तक; दुःखाय : कष्ट में; मा रंधयुं [ रंधयु ]: तुम्हें अपने वश में न रखने दो
हे मनुष्य, बुरे कर्मों पर कोई रोक या नियंत्रण नहीं होता। इसलिए, तुम्हें यह समझना चाहिए कि लोभ और क्रोध जैसे बुरे कर्मों को अपने ऊपर लंबे समय तक कष्ट का कारण नहीं बनने देना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 246-248)
इन तीन श्लोकों में उन पाँच सिद्धांतों का वर्णन है जिनका पालन आम लोगों को प्रारंभ में करना चाहिए। निम्नलिखित में इन पाँचों सिद्धांतों का विश्लेषण प्रस्तुत है।
सही आचरण के नियमों में सबसे निचले स्तर पर पंचशील हैं , जो प्रशिक्षण के पाँच नियम हैं, बौद्ध नैतिकता के मूल सिद्धांत। ये गृहस्थ अनुयायी के लिए बुनियादी सिद्धांत हैं। वे इस प्रकार हैं:
(1) मैं किसी भी जीवित प्राणी को मारने से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता हूँ;
(2) मैं प्रशिक्षण के इस नियम का पालन करता हूँ कि जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है, उसे लेने से परहेज़ करूँ।
(3) मैं यौन दुराचार से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता/करती हूँ।
(4) मैं झूठ बोलने से परहेज करने के प्रशिक्षण उपदेश का पालन करता हूँ।
(5) मैं नशा और असावधानी पैदा करने वाले पेय से परहेज करने के प्रशिक्षण सिद्धांत का पालन करता हूँ।
सर एडविन अर्नोल्ड ने अपनी पुस्तक 'द लाइट ऑफ एशिया' में पांच सिद्धांतों को इन शब्दों में व्यक्त किया है:
दया के नाम पर हत्या मत करो—वरना तुम हत्या कर दोगे
अपने क्षेत्र में सबसे घटिया चीज।
खुलकर दें और पाएं, लेकिन किसी से कुछ न लें।
लालच, बल या धोखाधड़ी से, जो उसका अपना है।
झूठी गवाही न दो, निंदा न करो और झूठ न बोलो;
सत्य आंतरिक पवित्रता की वाणी है।
मादक पदार्थों और शराब से दूर रहें, क्योंकि ये बुद्धि के दुरुपयोग को बढ़ावा देते हैं;
मन को शांत रखें, शरीर को स्वस्थ रखें, सोमा जूस की जरूरत नहीं।
अपने पड़ोसी की पत्नी को मत छुओ, न ही उसके साथ कोई अपराध करो।
देह संबंधी पाप गैरकानूनी और अनुचित हैं।
इन सीलाओं को अपने दैनिक जीवन में धारण करना और उन पर अमल करना आवश्यक है; ये केवल पाठ करने, दिखावटी तौर पर कहने या दूसरों पर लागू करने के लिए नहीं हैं।
जो उपदेशों को कंठस्थ जानता है, परन्तु उनका पालन नहीं करता, वह उस व्यक्ति के समान है जो दीपक जलाकर अपनी आँखें बंद कर लेता है।
बौद्ध धर्म में गृहस्थ अनुयायी से वह सब अपेक्षा नहीं की जाती जो संघ के सदस्य से की जाती है। परन्तु चाहे भिक्षु हो या गृहस्थ, नैतिक आदतें आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। जो व्यक्ति तीन शरण लेकर बौद्ध बनता है, उससे कम से कम पाँच मूलभूत नियमों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है, जो इस मार्ग का आरंभिक बिंदु है। ये नियम किसी विशेष दिन या स्थान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जीवन भर, हर जगह, हर समय इनका पालन करना चाहिए। यह भी संभव है कि प्रथम अवस्था (सोतापत्ति ) प्राप्त कर चुके लोगों को छोड़कर बाकी सभी इनका उल्लंघन कर सकते हैं। फिर भी, जब कोई अपराध हो जाए तो अपनी कमजोरियों और कमियों के लिए

पश्चाताप करना व्यर्थ है, क्योंकि पश्चाताप से न तो स्वयं को और न ही दूसरों को कोई लाभ होगा। यह केवल मन को विचलित करेगा। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बौद्ध धर्म के अनुसार, कुकर्म को 'पाप' नहीं माना जाता, क्योंकि यह शब्द बुद्ध की शिक्षाओं से परे है। बुद्ध के नियमों का उल्लंघन जैसी कोई बात नहीं है, क्योंकि वे न तो नियम निर्माता थे और न ही ऐसे मध्यस्थ जो बुरे कर्मों को दंडित और अच्छे कर्मों को पुरस्कृत करते हों। इसलिए, पाप के लिए पश्चाताप, शोक या अफसोस जैसी कोई बात नहीं है। कर्म करने वाला अपने कर्मों के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है; उसे उनके परिणाम भुगतने पड़ते हैं, और यह उसकी जिम्मेदारी है कि वह अच्छा कर्म करे या पापी बने। यह भी स्पष्ट है कि सभी कर्म, चाहे अच्छे हों या बुरे, फलदायी नहीं होते। अच्छे कर्म बुरे कर्मों को दबा सकते हैं और इसके विपरीत भी हो सकता है।

जैसा कि सूत्र से स्पष्ट है, इसमें कोई नियम या आदेश नहीं हैं। आप स्वेच्छा से प्रशिक्षण के नियमों का पालन करने का वचन देते हैं, इसमें कोई बाध्यता या दबाव नहीं है; आप स्वयं अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी हैं। यदि आप अपने वचन का उल्लंघन करते हैं, तो यह अत्यंत आवश्यक है कि आप दृढ़ निश्चय करें कि आप इसे नहीं दोहराएंगे, बल्कि अपनी कमजोरी को सुधारें और पुनः चूक न करने का भरसक प्रयास करें। एक सजग व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि इन नियमों का पालन करने का एकमात्र उद्देश्य स्वयं को प्रशिक्षित करना, अपनी भावनाओं, बुरी प्रवृत्तियों और गलत कार्यों पर नियंत्रण रखना है, और इस प्रकार शुद्धि और सुख का मार्ग प्रशस्त करना, समाज को सुरक्षा प्रदान करना और सौहार्द को बढ़ावा देना है। गहन विश्लेषण से हम पाते हैं कि इन नियमों का पालन ही समाज में सभी बुराइयों के मूल कारणों, जैसे कि कामवासना (लोभ), घृणा और भ्रम को कम करने का एकमात्र उपाय है। उदाहरण के लिए, पहले नियम का उल्लंघन घृणा और क्रूरता के विचारों के बिना नहीं किया जा सकता, तीसरे नियम के मामले में यह विशेष रूप से वासना के कारण होता है, दूसरा और चौथा नियम लोभ और घृणा दोनों के कारण हो सकता है, और पांचवा नियम लोभ के कारण हो सकता है, जबकि भ्रम इन सभी पांच नियमों के पीछे है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मादक पेय का सेवन भ्रम पैदा करता है। यह स्पष्ट सोच को बाधित करता है, तर्क शक्ति को कम करता है और लापरवाही, मोह और अन्य कई बुराइयों को जन्म देता है। एक शराबी अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होता और कोई भी अपराध कर सकता है। इसलिए, इस एक सिद्धांत का उल्लंघन व्यक्ति को अन्य सभी सिद्धांतों को तोड़ने के लिए प्रेरित कर सकता है।

बुद्ध कहते हैं:
इस बुराई की जड़ को त्याग दो
जिससे पागलपन की स्थिति उत्पन्न होती है।
मानसिक शोषण करना।

अब कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि सीमित मात्रा में शराब पीना हानिरहित है, लेकिन एक कहावत है:
पहले एक आदमी पेय पीता है,
फिर पेय एक घूंट लेता है,
फिर शराब आदमी को अपने वश में कर लेती है।

इसलिए बुद्ध की इस चेतावनी को हमेशा याद रखना बेहतर है: "सचेत, संयमी और शांत रहो।" हमें मादक पदार्थों और शराब से दूर रहना चाहिए जो जीवन के सत्यों और मुक्ति के मार्ग दोनों से हमें अंधा कर देते हैं।

ध्यान रखें कि तीसरे और पाँचवें उपदेश में घनिष्ठ संबंध है, वे एक दूसरे का समर्थन करते हैं और दोनों आनंद ( रसासाद ) प्रदान करते हैं। पाली धर्मग्रंथों में कभी-कभी पाँचवें उपदेश को छोड़ दिया जाता है और उसे तीसरे उपदेश में शामिल कर लिया जाता है, जैसा कि अष्टांगिक मार्ग में वर्णित नैतिक संहिता के मामले में है। फिर दस उपदेश या प्रशिक्षण के विषय हैं जो नौसिखियों ( सामनेरों ) के लिए हैं। ये पहले से उल्लिखित उपदेशों में पाँच और जोड़कर बनाए गए हैं।

शील : नैतिक शुद्धता। इन श्लोकों में जिन पाँच भिक्षुओं का उल्लेख किया गया है, वे शील — नैतिक शुद्धता — की ओर ले जाने वाले अनुशासन का अभ्यास कर रहे थे ।

मानसिक शुद्धि के साधन के रूप में ध्यान के लिए नैतिक शुद्धता ( शील-विशुद्धि ) का होना आवश्यक है, जो इसका मूलभूत आधार है। बौद्ध शिक्षा में नैतिकता का आंतरिक मूल्य इस तथ्य में निहित है कि यह मन को उसकी निम्न प्रवृत्तियों से मुक्त करती है और उसे सच्चे ज्ञान के आंतरिक प्रकाश की प्राप्ति के लिए तैयार करती है। मन, जो अपनी सामान्य, निम्न अवस्था में चंचल होता है और निम्न प्रवृत्तियों के प्रत्येक सांसारिक आवेग और वासना की मांगों के आगे झुकने का आदी होता है, उसे नियंत्रित करना कठिन होता है जब उच्च प्रेरणा पहली बार एक अजनबी के रूप में प्रकट होती है जिसका कोई अधिकार नहीं होता। चूंकि ध्यान सामान्य चेतना को उच्च अवस्था में रूपांतरित करने का साधन है, इसलिए यह आवश्यक है कि निम्न चेतना पर कुछ पूर्व प्रशिक्षण और अनुशासन लागू किया जाए, जो उसकी सामान्य गतिविधियों को तब तक नियंत्रित और सीमित करे जब तक कि वह उच्च मन के मार्गदर्शन के प्रति पूर्णतः समर्पित न हो जाए। इसके लिए मन को पहले विश्वास, जागरूकता, ऊर्जा और ज्ञान जैसे उच्च नैतिक गुणों से सुसज्जित होना चाहिए

और उन्हें ऐसी स्थिति में स्थापित करना चाहिए कि वे अपने शत्रुओं द्वारा कुचले न जा सकें। इसलिए बौद्ध प्रशिक्षण की सभी योजनाओं में हम पाते हैं कि नैतिकता ( शील ) का प्रशिक्षण आगे की प्रगति के लिए एक आवश्यक प्रारंभिक चरण है। अतः शिष्य को सर्वप्रथम शील के इस प्रारंभिक प्रशिक्षण में पूर्णतः निपुणता प्राप्त कर लेनी चाहिए, क्योंकि यही उच्च धार्मिक संस्कृति का आरंभ है। संयुत्त निकाय के शब्दों में : उच्च अवस्थाओं का आरंभ क्या है? पूर्ण पवित्रता का शील।

ध्यान में शील का अत्यधिक महत्व है क्योंकि यह पश्चाताप और मानसिक अस्थिरता का प्रतिकार है, जो मन की एकाग्रता के लिए हानिकारक हैं। इसी संदर्भ में कहा गया है: आनंद, नैतिक गुणों का लाभ पश्चाताप का अभाव है। इसके अतिरिक्त, आकंकेय सूत्र में हम पढ़ते हैं :

हे भिक्षु, यदि कोई भिक्षु उदात्त, अलौकिक, चेतना की उच्च अवस्थाओं, सुखी जीवन के लिए सहायक ध्यान प्राप्त करना चाहता है, तो उसे नैतिक सद्गुणों का पालन करना चाहिए... यदि वह शांति... मानसिक शक्तियों... उच्च ज्ञान... आसवों का पूर्ण निवारण चाहता है, तो उसे नैतिक सद्गुणों का पालन करना चाहिए।

शील , बौद्ध धर्म का एक मूलभूत लक्षण होने के नाते, उन सभी अच्छे गुणों को समाहित करता है जो इसकी नैतिक शिक्षाओं की श्रेणी में आते हैं। कड़ाई से कहें तो, इसमें प्रथम तो अनैतिक आचरण से परहेज द्वारा निर्मित चेतना और द्वितीय, नैतिक शुद्धता के लिए निर्धारित सकारात्मक नियमों के पालन से संबंधित विचार शामिल हैं।

इसकी दो प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

समाधान , मन और विचारों को एक साथ सामंजस्य में दृढ़ता से स्थापित करना, और

उपधारणा , सभी अच्छे गुणों को सहारा देने और उन्हें एक साथ बनाए रखने की शक्ति।

शील के दो पहलू , नकारात्मक और सकारात्मक, धार्मिक और नैतिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। नकारात्मक पहलू पापों से परहेज (जो कि वरित्त हैं) पर जोर देता है , और सकारात्मक पहलू पुण्य संचय करने और अपने कर्तव्य ( चरित ) को पूरा करने की आवश्यकता पर बल देता है । उपदेशों से संबंधित प्रत्येक सूत्र में ये दो पहलू समाहित हैं। उदाहरण के लिए, (i) वह हत्या से परहेज करता है, लाठी और तलवार त्याग देता है; (ii) दया और करुणा से परिपूर्ण होकर वह सभी जीवित प्राणियों के कल्याण और सुख के लिए जीवन व्यतीत करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 249,250

(धम्मपद 246, 247 और 248) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 249 और 250 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 251)

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 249 और 250 - तिस्सादहारा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Dadati ve yathasaddham
यथापसदनम जानो
tattha yo ca manku bhavati
paresam panabhojane
na so diva va rattim va
समाधिमधिगच्छति.

Yassa cetam samucchinnam
mulaghaccam samuhatam
sa ve diva va rattim va
समाधिमधिगच्छति.

———————————————————————

श्लोक 249 : लोग अपने विश्वास और भक्ति के अनुसार दान करते हैं; जो दूसरों को भोजन और पेय प्राप्त करते देखकर अप्रसन्न होता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं कर सकता।

———————————————————————

श्लोक 250 : जो व्यक्ति इस अप्रसन्नता की भावना को काट कर जड़ से उखाड़ देता है, वह दिन हो या रात, निश्चित रूप से एकाग्रता (समाधि) प्राप्त कर लेगा।

———————————————————————

तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने युवा भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (249) और (250) का उच्चारण किया।

युवा भिक्षु तिस्सा को दूसरों के दान और अच्छे कार्यों की निंदा करने की बुरी आदत थी। वह अनाथपिंडिका और विशाखा जैसे प्रसिद्ध दानदाताओं द्वारा दिए गए दान की भी आलोचना करता था। इसके अलावा, वह अपने रिश्तेदारों के धनवान होने का घमंड करता था और कहता था कि वे एक ऐसे कुएं के समान हैं जहाँ कोई भी पानी लेने आ सकता है। उसकी इस तरह की शेखी सुनकर अन्य भिक्षु बहुत संशय में पड़ गए; इसलिए उन्होंने सच्चाई जानने का फैसला किया।

कुछ युवा भिक्षु उस गाँव में गए जहाँ से वह आया था और पूछताछ की। उन्हें पता चला कि तिस्सा के सभी रिश्तेदार गरीब थे और इतने समय से तिस्सा केवल व्यर्थ का घमंड कर रहा था। जब बुद्ध को इस बारे में बताया गया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरों को दान और भेंट स्वीकार करने से अप्रसन्न होता है, वह कभी भी मग और फल प्राप्त नहीं कर सकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 249 : लोग अपने विश्वास और भक्ति के अनुसार दान करते हैं; जो दूसरों को भोजन और पेय प्राप्त करते देखकर अप्रसन्न होता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता (समाधि) प्राप्त नहीं कर सकता।

———————————————————————

श्लोक 250 : जो व्यक्ति इस अप्रसन्नता की भावना को काट कर जड़ से उखाड़ देता है, वह दिन हो या रात, निश्चित रूप से एकाग्रता (समाधि) प्राप्त कर लेगा।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने युवा भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

नवोदित भिक्षु तिस्सा के बारे में कहा जाता है कि वे गृहस्थ अनाथपिंडिका, उनकी शिष्या विशाखा और यहाँ तक कि अनेक श्रेष्ठ शिष्यों के दान में भी दोष निकालते रहते थे; यहाँ तक कि वे अतुलनीय दानों में भी कमी निकालते थे। जब भी उन्हें उनके भोजनालय में ठंडा भोजन मिलता, वे शिकायत करते कि वह ठंडा है; जब भी उन्हें गर्म भोजन मिलता, वे शिकायत करते कि वह गर्म है। जब भी वे थोड़ा दान देते, वे उन्हें कोसते हुए कहते, "ये लोग इतना कम क्यों देते हैं?" और जब भी वे भरपूर दान देते, वे उन्हें भी कोसते हुए कहते, "शायद उनके घर में इसे रखने की जगह नहीं थी; या फिर, "उन्हें भिक्षुओं को उतना ही दान देना चाहिए जितना उनके जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हो; इतना दलिया और उबले हुए चावल तो बिलकुल व्यर्थ हैं।" लेकिन अपने रिश्तेदारों के बारे में बात करते हुए वह कहते थे, "ओह, हमारे रिश्तेदारों का घर तो चारों दिशाओं से आने वाले सभी भिक्षुओं के लिए एक बेहतरीन सराय है!" इस प्रकार वह अपने रिश्तेदारों की प्रशंसा करते थे।

दरअसल, तिस्सा एक द्वारपाल का पुत्र था। कुछ बढ़ईयों के साथ देश की यात्रा करते हुए, वह सावत्थी पहुँचकर संसार त्याग कर भिक्षु बन गया। जब भिक्षुओं ने देखा कि वह मनुष्यों के दान और अन्य अच्छे कार्यों में दोष निकाल रहा है, तो उन्होंने सोचा, "चलो इसके बारे में सच्चाई का पता लगाते हैं।" इसलिए उन्होंने उससे पूछा, "भाई, तुम्हारे रिश्तेदार कहाँ रहते हैं?" तिस्सा ने उत्तर दिया, "अमुक गाँव में।" भिक्षुओं ने कुछ नौसिखियों को वहाँ जाँच करने के लिए भेजा। नौसिखिए वहाँ गए और गाँव वालों से, जिन्होंने उन्हें विश्राम गृह में बैठने और खाने की व्यवस्था की, पूछा, "इस गाँव से तिस्सा नाम का एक नौसिखिया आया है जिसने संसार त्याग कर लिया है; उसके

रिश्तेदार कौन हैं?" गाँव वालों ने सोचा, "इस गाँव में ऐसा कोई युवक नहीं है जिसने किसी सज्जन का घर छोड़कर संसार त्याग किया हो; ये नौसिखिए क्या कह रहे हैं?" तब उन्होंने नौसिखियों से कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, हमने एक द्वारपाल के पुत्र के बारे में सुना है जो बढ़ईयों के एक समूह के साथ यात्रा करके संसार से संन्यास ले लिया था; निःसंदेह वही वह नौसिखिया है जिसकी आप चर्चा कर रहे हैं।" जब युवा भिक्षुओं को पता चला कि तिस्सा का वहाँ कोई महत्वपूर्ण रिश्तेदार नहीं है, तो वे सावत्थी लौट आए और भिक्षुओं को अपनी जानकारी देते हुए कहा, "आदरणीय भिक्षुओं, तिस्सा बिना किसी उचित कारण के इधर-उधर बकवास करता रहता है।" भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब वह निंदा और व्यर्थ की शेखी बघार रहा है; पिछले जन्म में भी वह शेखीबाज़ था।" बुद्ध ने आगे कहा, "भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति इस बात से नाराज़ होता है कि दूसरे उसे थोड़ा या ज़्यादा देते हैं, या मोटा या उत्तम भोजन देते हैं, या जब वह दूसरों को देता है और उसे कुछ नहीं देते, तो ऐसा व्यक्ति समाधि, अंतर्दृष्टि, मार्ग और फल प्राप्त नहीं कर सकता।" इस प्रकार, बुद्ध ने इन श्लोकों का उच्चारण करके धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 249)

जानो वे यथा सद्धं यथा पसादनं ददाति
यो परेसं तत्थ पानभोजन मंकु भवति
सो वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं न अधिगच्छति

जानो : लोग; वे : निःसंदेह; यथा सद्धं [ सद्ध ]: अपने विश्वास के अनुसार; यथा पसादनं [ पसादन ]: अपनी इच्छा के अनुसार; ददाति : देना; यो : यदि कोई; परेसं [ परेष ]: अन्य; तत्त पानभोजने : भोजन और पेय के योग्य; मंकु भवति: ईर्ष्या करता है; सो : वह; वे : निश्चित रूप से; दिवा वा रत्तिं वा : दिन हो या रात; समाधिं [ समाधि ]: मन की शांति; न अधिगच्छति : नहीं होगा

लोग दान देने में उतना ही विश्वास रखते हैं जितना उन्हें प्राप्तकर्ता पर होता है। वे अपनी प्रसन्नता के अनुसार दान देते हैं। यदि कोई व्यक्ति भोजन और पेय प्राप्त करने पर ईर्ष्या करता है, तो उसे कभी भी मन की शांति प्राप्त नहीं होगी—दिन हो या रात।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 250)

यस्सा एतं समुच्चिन्नं च मूलघक्कं समुहत् ,
सा वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति

यस्सा : यदि किसी का; एताम् : यह (ईर्ष्या); समुच्चिन्नं [ समुच्चिन्ना ]: पूरी तरह से उखाड़ देता है; सीए : भी; मूलाघक्कम [ मूलाघक्का ]: पूरी तरह से मिटा देता है; समुहताम् [ समुहता ]: इसे नष्ट कर देता है; सा : वह; दिवा वे रत्तिं वा : दिन और रात; समाधिम् [ समाधि ]: शांति; अधिगच्छति : प्राप्त होगा

यदि कोई इस ईर्ष्या को जड़ से उखाड़ फेंके और पूरी तरह से नष्ट कर दे, तो वह निःसंदेह दिन-रात शांति प्राप्त कर लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 249-250)

समाधि : मन की शांति। सही एकाग्रता ( समाधि ) अष्टांगिक मार्ग का एक चरण है। मन को एक ही वस्तु पर स्थिर रखना ( चित्तकग्गता , जिसका शाब्दिक अर्थ है मन की एकाग्रता): यही एकाग्रता है। व्यापक अर्थ में, 'सही एकाग्रता' ( सम्मासमाधि ) वह मानसिक एकाग्रता है जो चेतना की प्रत्येक स्वस्थ अवस्था ( कुशल-चित्त ) में विद्यमान होती है, और इसलिए इसमें कम से कम सही विचार (दूसरा चरण), सही प्रयास (छठा चरण) और सही जागरूकता (सातवां चरण) शामिल होते हैं। गलत एकाग्रता अस्वस्थ चेतना की अवस्थाओं में विद्यमान होती है, और इसलिए यह केवल इंद्रियजन्य अवस्था में ही संभव है, उच्चतर स्तर पर नहीं। सूत्रों में, समाधि शब्द का प्रयोग केवल सम्मा-समाधि या सही एकाग्रता के लिए किया जाता है।

ध्यान के चार मूल सिद्धांत (सातवाँ चरण): ये एकाग्रता के विषय हैं। चार महान प्रयास (छठा चरण): ये एकाग्रता के लिए आवश्यक तत्व हैं।

इन चीजों का अभ्यास, विकास और संवर्धन करना ही एकाग्रता का विकास ( भावना ) है। सही एकाग्रता ( सम्मासमाधि ) के विकास के दो स्तर हैं: (1) आस-पास की एकाग्रता ( उपचार-समाधि ), जो प्रथम समाधि के निकट पहुँचती है, यद्यपि उसे प्राप्त नहीं करती; (2) प्राप्ति एकाग्रता ( अप्पनासमाधि ), जो चारों समाधियों ( झान ) में विद्यमान एकाग्रता है । ये समाधियाँ पाँचों इंद्रियों की पहुँच से परे मानसिक अवस्थाएँ हैं, जो केवल एकांत में और एकाग्रता के निरंतर अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती हैं। इन अवस्थाओं में पाँचों इंद्रियों की सभी क्रियाएँ रुक जाती हैं। उस समय कोई दृश्य या श्रव्य अनुभूति नहीं होती, कोई शारीरिक संवेदना नहीं होती। परन्तु, यद्यपि सभी बाहरी इंद्रिय अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं, फिर भी मन सक्रिय, पूर्णतः सचेत और पूरी तरह से जागृत रहता है।

इन समाधियों की प्राप्ति, पवित्रता के चार अलौकिक मार्गों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य नहीं है; न ही निकट एकाग्रता और न ही प्राप्ति एकाग्रता, स्वयं में चार अलौकिक मार्गों में प्रवेश प्रदान करने की शक्ति रखती हैं; अतः, वास्तव में इनमें किसी को हमेशा के लिए बुरे कर्मों से मुक्त करने की कोई शक्ति नहीं है। चार अलौकिक मार्गों की प्राप्ति केवल अनित्यता ( अनिच्चता ), दुख ( दुक्खता ) और निराकारता ( अनत्तता ) की गहन अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) के क्षण में ही संभव है । यह अंतर्दृष्टि भी केवल निकट एकाग्रता के दौरान ही प्राप्त की जा सकती है, प्राप्ति एकाग्रता के दौरान नहीं।

जिसने समाधि अवस्थाओं को प्राप्त किए बिना ही चारों अलौकिक मार्गों में से किसी एक को जान लिया हो, उसे सुक्क-विपस्सक या शुद्ध-विपस्सनायनिक कहा जाता है , अर्थात् जिसने केवल अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) को अपना वाहन बनाया हो। वहीं, जिसने समाधि अवस्थाओं का अभ्यास करने के बाद अलौकिक मार्गों में से किसी एक को प्राप्त कर लिया हो, उसे समाथायनिक या शांति ( समाथा ) को अपना वाहन ( यान ) बनाने वाला कहा जाता है।
मन की शांति भावना ध्यान से प्राप्त होती है । समाथा भावना , एकाग्रता के साथ मन की शांति का विकास, तीन लाभों से युक्त है: यह वर्तमान जीवन में सुख, अनुकूल पुनर्जन्म और मानसिक विकारों से मुक्ति प्रदान करती है, जो अंतर्दृष्टि की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। समाथा में मन एक शांत, निर्मल तालाब के समान हो जाता है, जो पूरी तरह से अशांति और हलचल से मुक्त होता है और अपनी सतह पर चीजों के वास्तविक स्वरूप को प्रतिबिंबित करने के लिए तैयार होता है, उनका वह पहलू जो लालसा की बेचैनी के कारण सामान्य ज्ञान से छिपा रहता है। यह वह शांति और पूर्णता है जो बुद्ध के चेहरे पर चित्रित होती है, जिससे उनकी छवियों को एक ऐसा महत्व प्राप्त होता है जो उन लोगों को भी प्रभावित करता है जो इसका अर्थ नहीं जानते। बुद्ध की ऐसी छवि स्वयं ध्यान का एक उपयुक्त विषय हो सकती है, और वास्तव में, अधिकांश बौद्ध सहज रूप से इसी का उपयोग करते हैं। शांत बुद्ध छवि के दर्शन मात्र से सांसारिक आशाओं और भय से व्याकुल मन शांत हो सकता है। यह निर्वाण का निश्चित और प्रत्यक्ष आश्वासन है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 251

———————————————————————

(धम्मपद 249 और 250) <<<< पिछला|| धम्मपद251 ||अगला >>>> (धम्मपद252)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 251 - पंच उपासक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Natthi ragasamo aggi
natthi dosasamo gaho
नत्थी मोहसमम जलम
natthi tanhaisama nadi(1)

———————————————————————

श्लोक 251 : जुनून जैसी कोई आग नहीं, दुर्भावना जैसी कोई पकड़ नहीं, अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

———————————————————————

1. नाथ्ति तन्हासमा नाड़ी: तृप्ति जैसी कोई नदी नहीं है। इसका कारण यह है कि यद्यपि नदी कभी-कभी भर सकती है, तृप्ति कभी भी पूरी तरह से भर नहीं सकती, अर्थात् तृप्त नहीं हो सकती।

———————————————————————

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (251) कहा।

एक बार जेतवन मठ में बुद्ध जब धम्म का प्रवचन दे रहे थे, तब पाँच शिष्य उपस्थित थे। उनमें से एक बैठे-बैठे सो रहा था, दूसरा ज़मीन पर उंगलियों से रेखाएँ खींच रहा था, तीसरा एक पेड़ को हिलाने की कोशिश कर रहा था, चौथा आकाश की ओर देख रहा था। पाँचवाँ शिष्य ही एकमात्र ऐसा था जो आदरपूर्वक और ध्यानपूर्वक बुद्ध का प्रवचन सुन रहा था। बुद्ध के पास बैठे थेरा आनंद, जो उन्हें पंखा कर रहे थे, ने पाँचों शिष्यों के इस भिन्न व्यवहार को देखा और बुद्ध से कहा, "आदरणीय गुरुदेव! जब आप आकाश से बरसती वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों की तरह धम्म का प्रवचन दे रहे थे, तब इन पाँचों में से केवल एक ही ध्यानपूर्वक सुन रहा था।" तब थेरा आनंद ने अन्य चार शिष्यों के भिन्न व्यवहार का वर्णन बुद्ध से किया और उनसे पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं।

तब बुद्ध ने थेरा आनंद को समझाया, "आनंद, ये लोग अपनी पुरानी आदतों से छुटकारा नहीं पा सके। अपने पिछले जन्मों में, पहला जन्म एक सर्प के रूप में हुआ था; जैसे एक सर्प कुंडली मारकर सो जाता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी धम्म सुनते हुए सो गया। जो व्यक्ति हाथ से धरती को कुरेद रहा था वह केंचुआ था, जो पेड़ को हिला रहा था वह बंदर था, जो आकाश की ओर देख रहा था वह खगोलशास्त्री था और जो ध्यान से धम्म सुन रहा था वह एक विद्वान ज्योतिषी था। इस संदर्भ में, आनंद, तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि धम्म को समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और ऐसे बहुत से लोग हैं जो कही गई बातों को समझ नहीं पाते।"

तब थेरा आनंद ने बुद्ध से पूछा, "आदरणीय गुरुदेव! वे कौन सी बातें हैं जो लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, राग, द्वेष और मोह, ये तीन बातें लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं। वासना मनुष्य को जला देती है; वासना जैसी कोई अग्नि नहीं है। जब आकाश में सात सूर्य उदय होंगे तो संसार जलकर राख हो सकता है, लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। वासना सदा जलती रहती है और कभी रुकती नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 251 : जुनून जैसी कोई आग नहीं, दुर्भावना जैसी कोई पकड़ नहीं, अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

---

प्रवचन के अंत में, जो ध्यानपूर्वक सुन रहा था, उसे सोतापत्ति फल प्राप्त हुआ।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पाँच गृहस्थ शिष्यों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच गृहस्थ शिष्यों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कथा के अनुसार, ये पाँच पुरुष धम्म का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से मठ गए और बुद्ध को प्रणाम करके आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्धों के मन में कभी ऐसा विचार नहीं आता, "यह पुरुष क्षत्रिय है, यह पुरुष ब्राह्मण है, यह पुरुष धनी है, यह पुरुष गरीब है; मैं इस पुरुष को इस प्रकार धम्म का उपदेश दूँगा जिससे उसका उत्थान हो; परन्तु दूसरे पुरुष के मामले में ऐसा नहीं करूँगा।" बुद्ध चाहे किसी भी विषय पर धम्म का उपदेश दें, वे धम्म के प्रति श्रद्धा को सर्वोपरि रखते हैं और धम्म का उपदेश ऐसे देते हैं मानो वे आकाश से दिव्य नदी को अवतरित कर रहे हों।

लेकिन जब बुद्ध ने अपने चारों ओर बैठे पाँचों पुरुषों को इस प्रकार धम्म का उपदेश दिया, तो उनमें से एक बैठे-बैठे सो रहा था, दूसरा ज़मीन पर उंगलियों से रेखाएँ खींच रहा था, तीसरा एक पेड़ को हिलाने की कोशिश कर रहा था, चौथा आकाश की ओर देख रहा था। पाँचवाँ ही एकमात्र ऐसा था जो आदरपूर्वक और ध्यान से बुद्ध की बातें सुन रहा था। पूज्य आनंद, जो बुद्ध के पास बैठे उन्हें पंखा कर रहे थे, ने पाँचों शिष्यों के इस भिन्न व्यवहार को देखकर बुद्ध से कहा, "पूज्यवर! जब आप आकाश से गिरती हुई बड़ी-बड़ी बूंदों की तरह धम्म का उपदेश दे रहे थे, तब इन पाँचों में से केवल एक ही ध्यान से सुन रहा था।" तब पूज्य आनंद ने अन्य चार के भिन्न व्यवहार का वर्णन बुद्ध को किया और उनसे पूछा कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं।

तब बुद्ध ने पूज्य आनंद को समझाया, "आनंद, ये लोग अपनी पुरानी आदतों से छुटकारा नहीं पा सके। अपने पिछले जन्मों में, पहला जन्म एक सर्प के रूप में हुआ था; जैसे एक सर्प कुंडली मारकर सो जाता है, वैसे ही यह व्यक्ति भी धम्म सुनते हुए सो गया। जो व्यक्ति हाथ से धरती को कुरेद रहा था वह केंचुआ था, जो पेड़ को हिला रहा था वह बंदर था, जो आकाश की ओर देख रहा था वह खगोलशास्त्री था और जो ध्यानपूर्वक धम्म सुन रहा था वह एक विद्वान ज्योतिषी था। इस संदर्भ में, आनंद, आपको यह याद रखना चाहिए कि धम्म को समझने के लिए ध्यान देना आवश्यक है और ऐसे बहुत से लोग हैं जो कही गई बातों का पालन नहीं कर पाते।"

तब पूज्य आनंद ने बुद्ध से पूछा, "पूज्यवर! वे कौन सी बातें हैं जो लोगों को धम्म ग्रहण करने से रोकती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, वे कामवासना, घृणा और मोह के कारण ऐसा नहीं कर पाते। क्योंकि कामवासना की आग के समान कोई अग्नि नहीं है, जो जीवित प्राणियों को भस्म कर देती है और राख का एक अंश भी नहीं छोड़ती। यह सच है कि युग का अंत करने वाली विश्व प्रलय पूरी दुनिया को जलाकर राख कर देती है, लेकिन यह अग्नि केवल सात सूर्यों के प्रकट होने पर ही भड़कती है और यह अग्नि केवल विशेष समय और ऋतुओं में ही जलती है। परन्तु कामवासना की अग्नि तो ऐसी है जैसे कोई समय न हो जब कामवासना की अग्नि न जलती हो।

इसलिए मैं कहता हूँ कि कामवासना की अग्नि के समान कोई अग्नि नहीं, घृणा के समान कोई बंधन नहीं, मोह के समान कोई फंदा नहीं और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।" प्रवचन के अंत में, जो ध्यानपूर्वक सुन रहा था, उसने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 251)

रागसामो अग्गि नत्थि , दोसासामो गहो नत्थि ,
मोहसामं जालं नत्थि , तन्हासामा नदी नत्थि

रागसमो [ नत्थि रागसम ]: वासना के बराबर; अग्गी : आग; नत्थि : नहीं है; दोसासामो [ दोसासामा ]: घृणा के बराबर; गाहो : एक पकड़; नत्थि : नहीं है; मोहसामं [ मोहासामा ]: अज्ञानता के बराबर; जालम् [ जाल ]: एक जाल; नत्थि : नहीं है; तन्हासामा : इच्छा के तुलनीय; नदी : एक नदी; नत्थी : नहीं है

जुनून जैसी कोई आग नहीं। नफरत जैसी कोई पकड़ नहीं। अज्ञान जैसा कोई जाल नहीं। लालसा जैसी कोई बाढ़ नहीं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 251)

रागसमो , दोससमो , मोहसमं , तन्हासमा : मनुष्य के मन के सभी प्रमुख दोषों की तुलना मनुष्य को प्रभावित करने वाली विभिन्न आपदाओं से की गई है। कामवासना ( रागो ) की तुलना अग्नि से की गई है। घृणा ( दोस ) को जकड़न के रूप में समझा गया है। अज्ञान ( मोह ) की तुलना जाल से की गई है। लालसा ( तन्हा ) की तुलना प्रचंड बाढ़ से की गई है: इससे लोगों को मानसिक दोषों को भौतिक रूप में समझने में सहायता मिलती है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 252

---

(धम्मपद251) <<<< पिछला ॥ धम्मपद252 ॥ अगला >>>> (धम्मपद253)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 252 - मेंडकासेट्ठि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

सुदस्सम वज्जमन्नेसम
attano pana duddsam
paresam hi so vajjani
opunati yatha bhusam
attano pana chadeti
कलिम्वा कितवा सथो(1)

---

श्लोक 252 : दूसरों की कमियाँ देखना आसान है, परन्तु अपनी कमियाँ देखना कठिन। मनुष्य दूसरों की कमियों को हवा में भूसे की तरह फैलाता है, परन्तु अपनी कमियों को एक चतुर शिकारी की तरह छुपाता है।

---

1. सथो: एक धोखेबाज, एक जुआरी। टीका के अनुसार, इसका अर्थ है एक धूर्त शिकारी।

---

धनी मेंडका की कहानी

बददिया नगर के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने प्रसिद्ध धनी व्यक्ति मेंडका और उसके परिवार के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (252) कहा।

एक बार, अंग और उत्तर क्षेत्रों की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि मेंडक, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, उनकी बहू, उनकी पोती और उनके सेवक के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। इन छह लोगों को सोतापत्ति फल प्राप्त करते देख, बुद्ध बद्दिया नगर गए।

मेंडका एक अत्यंत धनी व्यक्ति थे। कहा जाता है कि उन्हें अपने घर के पिछवाड़े में बकरियों की आदमकद सोने की कई मूर्तियाँ मिलीं। इसी कारण वे धनी मेंडका (बकरी) के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह भी कहा जाता है कि विपस्सी बुद्ध के समय में उन्होंने विपस्सी बुद्ध के लिए एक मठ और उपदेशक के लिए चबूतरे सहित एक सभा भवन दान किया था। इन भवनों के निर्माण के बाद उन्होंने विपस्सी बुद्ध और भिक्षुओं को चार महीने तक भिक्षा दी। फिर, अपने एक और पिछले जन्म में, जब वे बनारसी में एक धनी व्यक्ति थे, तब पूरे क्षेत्र में अकाल पड़ा था। एक दिन, परिवार के सदस्यों के लिए पर्याप्त भोजन पकाया ही था कि एक पच्चेकबुद्ध भिक्षा मांगने के लिए दरवाजे पर आ खड़े हुए। उन्होंने वहीं सारा भोजन दान कर दिया। लेकिन उनकी अटूट आस्था और उदारता के कारण, चावल का बर्तन चमत्कारिक रूप से फिर से भर गया; उनके अन्न भंडार भी भर गए।

बुद्ध के बद्दिया आने की खबर सुनकर मेंदका और उनका परिवार उन्हें प्रणाम करने गए। बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद मेंदका, उनकी पत्नी चंदपदुम, पुत्र दानंचया, बहू सुमनदेवी, पोती विशाखा और सेवक पुन्ना ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया। तब मेंदका ने बुद्ध को बताया कि रास्ते में कुछ तपस्वियों ने बुद्ध की निंदा की थी और उन्हें बुद्ध से मिलने आने से रोकने की कोशिश की थी। तब बुद्ध ने कहा, "मेरे शिष्य, यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी कमियों को न देखें और दूसरों की कमियों और खामियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताएं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 252 : दूसरों की कमियाँ देखना आसान है, परन्तु अपनी कमियाँ देखना कठिन। मनुष्य दूसरों की कमियों को हवा में भूसे की तरह फैलाता है, परन्तु अपनी कमियों को एक चतुर शिकारी की तरह छुपाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धनी मेन्दक की कहानी

भद्दिया नगर के निकट निवास करते समय, बुद्ध ने प्रसिद्ध धनी व्यक्ति मेण्डक और उनके परिवार के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, अंग और उत्तर क्षेत्रों की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने दिव्य दृष्टि से देखा कि मेन्दक, उनकी पत्नी, उनके पुत्र, उनकी बहू, उनकी पोती और उनके सेवक के लिए सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। इन छह लोगों को सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करते देख, बुद्ध भद्दिया नगर गए।

मेन्दक एक अत्यंत धनी व्यक्ति थे। कहा जाता है कि उन्हें अपने घर के पिछवाड़े में बकरियों की आदमकद सोने की कई मूर्तियाँ मिलीं। इसी कारण वे मेन्दक (बकरी) धनी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह भी कहा जाता है कि विपश्य बुद्ध के समय में उन्होंने विपश्य बुद्ध के लिए एक मठ और उपदेशक के लिए चबूतरे सहित एक सभा भवन दान किया था। इन भवनों के निर्माण के बाद उन्होंने विपश्य बुद्ध और भिक्षुओं को चार महीने तक भिक्षा दी। फिर, अपने एक और पिछले जन्म में, जब वे बारानासी में एक धनी व्यक्ति थे, तब पूरे क्षेत्र में अकाल पड़ा था। एक दिन उन्होंने परिवार के सदस्यों के लिए पर्याप्त भोजन पकाया ही था कि एक पच्चेकबुद्ध भिक्षा मांगने के लिए दरवाजे पर आ खड़े हुए। उन्होंने वहीं सारा भोजन दान कर दिया। लेकिन उनकी अटूट आस्था और उदारता के कारण बाद में चावल का बर्तन चमत्कारिक रूप से फिर से भर गया; उनके अन्न भंडार भी भर गए।

मेन्दक और उनका परिवार यह सुनकर भद्दिया आ रहे हैं कि बुद्ध उन्हें प्रणाम करने जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें कई विधर्मी मिले जिन्होंने उनसे कहा, “हे गृहस्थ, तुम जो आत्माओं की गतिविधि में विश्वास करते हो, उस ऋषि गौतम के पास क्यों जाते हो जो ऐसा नहीं करते?” इस प्रकार विधर्मी उन्हें उनके उद्देश्य से विमुख करना चाहते थे। लेकिन उन्होंने उनकी बातों पर ध्यान न देते हुए बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। तब बुद्ध ने उन्हें क्रमबद्ध तरीके से धम्म का उपदेश दिया।

बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद, मेन्दक, उनकी पत्नी चंदपदुम, उनके पुत्र धनंजय, उनकी बहू सुमनादेवी, उनकी पोती विशाखा और सेवक पुन्न ने सोतापत्ति का पुण्य प्राप्त किया। मेन्दक ने बुद्ध को बताया कि कैसे रास्ते में कुछ तपस्वियों ने बुद्ध की निंदा की और उन्हें बुद्ध से मिलने आने से रोकने की कोशिश की। तब बुद्ध ने कहा, “मेरे शिष्य, यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी कमियों को न देखें और दूसरों की कमियों और खामियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताएं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 252)

अण्नेसं◌ं वज्जं सुदस्सं अत्तनो पण दुद्दसं◌ं

हाय सो परेसं वज्जनि भूषण यथा ओपुनति
कलिं कितावा साथो इव अत्तनो पण चदेति

anñesaṃ [ anñesa ]: अन्य'; वज्जं [ वज्जा ]: दोष; सुदस्सां [ सुदस्सा ]: देखने में आसान; अतनो पना : लेकिन अपनी ही (गलती); दुद्दसां [ दुद्दसा ]: देखना कठिन है; नमस्ते : तो यह है; इसलिए वह; परेसां [ परेसा ]: अन्य'; वज्जानि : दोष; भूसां यथा : भूसी की तरह; ओपुनति : प्रमुखता में विन्नोज़; कलिः [ काली ]: अपना शरीर; कितावा : पत्तियों और शाखाओं को छिपाने के साथ; सत्थो इव : पक्षी-शिकारी की तरह; अतनो पाना : स्वयं के दोष; छादेति : छुपाता है

दूसरों की कमियां स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। लेकिन अपनी कमियां देखना मुश्किल होता है। व्यक्ति दूसरों की कमियों को भूसे की तरह छांटकर प्रमुखता देता है। वह अपनी कमियों को उसी तरह छुपाता है जैसे कोई शिकारी अपने आप को पत्तों और टहनियों से छिपा लेता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 252)

कितावा : छलावरण। यहाँ एक पक्षी शिकारी ( सथो ) की छवि का उपयोग किया गया है जो पक्षियों से अपनी उपस्थिति छिपाने के लिए खुद को टहनियों और शाखाओं से ढक लेता है। ठीक उसी तरह, दुष्ट व्यक्ति भी दूसरों को धोखा देने के लिए अपने इरादों को छुपाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 253

———————————————————————

(धम्मपद 252) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 253 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 254 और 255)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 253 - उज्जहनसन्नित्थेरा वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

परवज्जनुपस्सिसा
niccam ujjhanasannino
asava tassa vaddhanti
अरा सो असवक्खया.

———————————————————————

श्लोक 253 : जो व्यक्ति लगातार दूसरों के दोष देखता है और हमेशा उनकी निंदा करता है, उसमें नैतिक आसव (नैतिक मादक पदार्थ) बढ़ जाते हैं; वह नैतिक मादक पदार्थों के निरोध से बहुत दूर है (अर्थात, वह अर्हतत्व की प्राप्ति से बहुत दूर है)।

———————————————————————

थेरा उज्जनासननी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा उज्जनसन्नी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (253) कहा।

थेरा उज्जनासन्नि हमेशा दूसरों की कमियां निकालते और उनकी बुराई करते रहते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनके बारे में बुद्ध को बताया। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, यदि कोई किसी दूसरे की कमियां इसलिए निकालता है ताकि उसे अच्छे मार्ग की शिक्षा दे सके, तो यह कोई बुराई नहीं है और इसलिए निंदनीय नहीं है। परन्तु, यदि कोई केवल द्वेष और दुर्भावना से ही दूसरों की कमियां निकालता और

उनकी बुराई करता रहता है, तो वह एकाग्रता और ध्यान (ज्ञान) प्राप्त नहीं कर पाएगा। वह धम्म को नहीं समझ पाएगा और उसमें नैतिक (नशे वाले आसव) बढ़ेंगे।"

———————————————————

श्लोक 253 : जो व्यक्ति लगातार दूसरों के दोष देखता है और हमेशा उनकी निंदा करता है, उसमें नैतिक आसव (नैतिक मादक पदार्थ) बढ़ जाते हैं; वह नैतिक मादक पदार्थों के निरोध से बहुत दूर है (अर्थात, वह अर्हतत्व की प्राप्ति से बहुत दूर है)।

———————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय उज्जनासन्नि की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य उज्जनासन्नि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

आदरणीय उज्जनासंझी हमेशा दूसरों की कमियां निकालते और उनकी बुराई करते रहते थे। अन्य भिक्षुओं ने उनकी शिकायत बुद्ध से की। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, यदि कोई किसी दूसरे की कमियां निकालकर उसे अच्छे मार्ग सिखाए, तो यह कोई बुराई नहीं है और इसलिए निंदनीय नहीं है। परन्तु यदि कोई केवल द्वेष और दुर्भावना से ही दूसरों की कमियां निकालता रहे और उनकी बुराई करता रहे, तो वह एकाग्रता और ध्यान ( ज्ञान ) प्राप्त नहीं कर पाएगा। वह धम्म को नहीं समझ पाएगा और उसमें नैतिक व्यसन ( आसव ) बढ़ जाएंगे।"

तब बुद्ध ने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 253)

परवज्जनुपास्सिस्सा निक्कं उज्झानसैनिनो

तस्स आसव वन्धन्ति सो आसवक्खया अरा

परवज्जानुपस्सिस : जो दूसरों की कमियों को देखने की आदत रखते हैं; निच्चं [ निच्च ]: निरंतर; उज्जनासंञ्ञो [ उज्जनासंञ्ञा ]: दूसरों का उपहास करते हैं; तस्स : उसका; आसवा : कलंकित करता है; वड्धन्ति : बढ़ता है; इसलिए : वह; आसवक्खया : दोषरहित अवस्था से; आरा : दूर है

कुछ लोग दूसरों की कमियों को देखने की आदत रखते हैं। वे लगातार दूसरों की निंदा करते रहते हैं। उनके अंदर के दोष पनपते रहते हैं और वे दोषरहितता से बहुत दूर रहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 253)

उज्जनासाञ्ञो : दूसरों को विभाजित करने की प्रवृत्ति रखने वाला। कहानी में पूज्य व्यक्ति का नाम दूसरों में दोष ढूंढने की उनकी व्यक्तिगत कमजोरी से लिया गया है, जिसका उद्देश्य केवल उन्हें नष्ट करना है।

परवज्जानुपस्सिस : वे लोग जिन्हें दूसरों की कमियां निकालने की आदत होती है। यह अधिकांश मनुष्यों की एक कमी है। यह सांसारिक जीवन का लगभग स्वाभाविक परिणाम है। रोजमर्रा के जीवन में, इस आदत के कारण बहुत दुख होता है। यह आदत कुछ लोगों के बातूनी स्वभाव के कारण उत्पन्न होती है। जब वे बिना किसी झिझक के बोलते हैं, तो दूसरों की कमियां निकालना भी स्वाभाविक हो जाता है।

"ज्यादा बात करना खतरे का स्रोत है।"

मौन रहने से दुर्भाग्य से बचा जा सकता है।

पिंजरे में बंद बातूनी तोता बंद है।

जबकि जो पक्षी बोल नहीं सकते वे स्वतंत्र रूप से उड़ते हैं।

(तिब्बती योग)

हम कितनी बार सोच-समझकर बोलते हैं? कितनी बार हमें पता होता है कि हम क्या कहने वाले हैं, इससे पहले कि शब्द हमारे मुँह से निकल जाएँ? और कभी-कभी हम खुद भी अपने कहे पर उतना ही हैरान हो जाते हैं जितना कि हम सामने वाले को हैरान और चौंका देते हैं। और अक्सर हम कहने के बाद सोचते हैं कि काश हमने ऐसा न कहा होता। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है, क्योंकि एक बार निकले हुए शब्द कभी वापस नहीं लिए जा सकते, चाहे हम उनके लिए माफी मांग लें और उन्हें वापस ले लें। क्योंकि वे व्यक्त हो चुके हैं और हमेशा के लिए वहीं रह जाते हैं। हमारे स्वर यंत्रों द्वारा उत्पन्न ध्वनि कंपन दुनिया का हिस्सा बन जाते हैं, दुनिया का एक अंग बन जाते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि यही बात विचारों पर भी लागू होती है; कि एक बार बना हुआ विचार, चाहे अच्छा हो या बुरा, कभी भी अस्तित्व से गायब नहीं होता। यह एक बहुत ही गंभीर विचार है जब हम याद करते हैं कि हम क्रोध, नापसंदगी, तिरस्कार या निर्दयता में कितनी आसानी से शब्द बोल देते हैं, और ये शब्द सहज प्रतिक्रियाएँ होती हैं। कोई घटना घटित होती है जो हमें परेशान करती है और इससे पहले कि हम जागरूक हों, कुछ गुस्से भरे शब्द हमारे मुँह से निकल जाते हैं। और अगला चरण, ज़ाहिर है, अपनी बातों पर ध्यान देने के बाद, अपने विचारों पर ध्यान देना है, क्योंकि बोलने से पहले सोचना ज़रूरी है, हालाँकि आम तौर पर विचार इतने तेज़ होते हैं कि

शब्दों में घुलमिल जाते हैं। बड़ों से अक्सर सुनने को मिलता है कि "बोलने से पहले सोचो!" (हालाँकि वे खुद ऐसा कम ही करते हैं) - इसका मतलब है कि हमें अपने जवाबों की गति धीमी करनी चाहिए ताकि हम अपने विचारों को बोलने से पहले जान सकें; तब हमें पता चलेगा कि हम क्या कह रहे हैं। अगर आप अपनी बातों पर ध्यान देने की आदत डाल लें और उनके बारे में सोचें, तो आप जल्द ही समझ जाएँगे कि किस तरह की बातें सबसे तेज़ी से और सबसे हिंसक रूप से निकलती हैं - वे बातें जो दूसरों को सबसे ज़्यादा दुख पहुँचाती हैं। जब आप किसी बात पर तर्क करते हैं तो आपको सोचना पड़ता है और इसलिए धीरे-धीरे बोलना पड़ता है, लेकिन जब आपकी भावनाएँ उत्तेजित होती हैं, जब आपको गुस्सा, नापसंदगी, दया, दुख या नाराज़गी महसूस होती है, तो आपकी भावनाएँ (जिनका केंद्र मस्तिष्क का मध्य भाग है) जीभ को निर्देश देती हैं और तेज़, हिंसक शब्द आपके रोकने से पहले ही बाहर निकल आते हैं। विचार नियंत्रित करने का अर्थ है शब्द नियंत्रित करना, और शब्द नियंत्रित करने का अर्थ है क्रिया नियंत्रित करना, क्योंकि क्रोधित शब्द अक्सर मारपीट में परिणत होते हैं, और शब्दों और क्रियाओं पर नियंत्रण का अर्थ है कि आप लड़ाई के लिए उकसाए नहीं जा सकते और शायद चाकू निकालकर किसी को गंभीर चोट नहीं पहुंचा सकते। वास्तव में, खुद को उकसाने से इनकार करके आप किसी पर जो प्रभाव डालते हैं, उसे देखना काफी मजेदार होता है। वे और अधिक क्रोधित होते जाते हैं क्योंकि वे आपको क्रोधित करने की कोशिश करते हैं और सफल नहीं हो पाते। फिर आप देख सकते हैं कि लोग अपना आपा खोते हुए कितने मूर्ख दिखते हैं, और आपको पता चल जाएगा कि आप अपना आपा खोते हुए कितने मूर्ख दिखेंगे। इसलिए याद रखें, आपकी जीभ वास्तव में आपकी सेवक है और आप उसके स्वामी हैं, और इसलिए उसे वही कहना चाहिए जो आप चाहते हैं, न कि अपनी मनमानी करनी चाहिए जैसा कि वह अक्सर करती है। क्योंकि दुर्भाग्य से, हममें से अधिकांश के साथ, हमारी जीभ ही हमारी स्वामी है और हम उसके गुलाम हैं।और हमें वह सुनना होगा जो यह हमारे नाम पर बोलता है, और हम इसे हिलने से रोकने में असमर्थ प्रतीत होते हैं।

“केवल बहुत बोलने से कोई बुद्धिमान नहीं बन जाता, न ही अधिक बोलने से कोई धर्म का ज्ञाता हो जाता है।” (बुद्ध)

कभी-कभी बहस के ज़रिए सच्चाई का पता लगाना बहुत मुश्किल होता है। वाक्पटु व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश कर सकता है और छिपा सकता है, और आसानी से दूसरे के दृष्टिकोण को नकार सकता है। विशेष रूप से, तीखी बहसें कभी भी अच्छे परिणाम नहीं देतीं। जो व्यक्ति वास्तविक तथ्यों को जानना चाहता है, उसे शांत मन से सोचना चाहिए और दूसरों से शांतिपूर्वक और विनम्रता से चर्चा करनी चाहिए। सच्चाई कभी भी तीखी बहसों या दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाने से सामने नहीं आती; क्योंकि हर कोई अपनी प्रतिष्ठा बचाने की कोशिश करता है, भले ही वह जानता हो कि वह गलत है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 254,255

———————————————————————

(धम्मपद 253) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 254 और 255 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 256 और 257)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 254 और 255 - सुभद्दापरिबजका वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अकासेवा पदम नत्थी
samano natthi bahire
papancabhirata paja
nippapanca tathagata.

अकासेवा पदम नत्थी
samano natthi bahire
sankhara sassatta natthi
natthi buddhanaminjitam.

---

श्लोक 254 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। सभी प्राणी उन बंधनों (अर्थात व्याकुलता, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) में आनंदित होते हैं जो संसार को लंबा खींचते हैं; सभी बुद्ध इन बंधनों से मुक्त हैं।

---

श्लोक 255 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। कोई भी बद्ध वस्तु स्थायी नहीं है; सभी बुद्ध (लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से) अविचलित हैं।

---

घुमंतू तपस्वी सुभद्दा की कहानी
इस पुस्तक के श्लोक (2 54) और (255) बुद्ध द्वारा कुसिनारा के पास मल्ला राजकुमारों के साल वन में, बुद्ध के परिनिर्वाण (मृत्यु) से ठीक पहले, सुभद्दा, जो एक भ्रमणशील तपस्वी (परिब्बजक) थे, द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में कहे गए थे।

---

सुभद्दा नामक घुमंतू तपस्वी कुसिनारा में ठहरे हुए थे, जब उन्हें पता चला कि गौतम बुद्ध का परिनिर्वाण उस रात के अंतिम पहर में होगा। सुभद्दा के मन में तीन प्रश्न थे जो उन्हें लंबे समय से परेशान कर रहे थे। उन्होंने ये प्रश्न अन्य धार्मिक नेताओं, जैसे पुराण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबला, पकुधा कच्चयन, संचय बेलत्थपुत्त और निगंथ नटपुत्त से पूछे थे, लेकिन उनके उत्तरों से वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने अभी तक गौतम बुद्ध से ये प्रश्न नहीं पूछे थे, और उन्हें लगा कि केवल बुद्ध ही उनके प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। इसलिए, वे जल्दी से साल वन की ओर चल पड़े, लेकिन पूज्य आनंद ने उन्हें बुद्ध से मिलने नहीं दिया, क्योंकि बुद्ध उस समय बहुत दुर्बल थे। बुद्ध ने उनकी बातचीत सुन ली और सुभद्दा से मिलने के लिए सहमत हो गए। सुभद्दा ने तीन प्रश्न पूछे। वे ये हैं: (1) क्या आकाश में कोई पदचिह्न हैं? (2) क्या बुद्ध की शिक्षाओं से बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) हैं? और (3) क्या कोई ऐसी वस्तु (संस्कार) है जो स्थायी है? उपरोक्त सभी प्रश्नों का बुद्ध का उत्तर नकारात्मक था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 254 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। सभी प्राणी उन बंधनों (अर्थात व्याकुलता, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) में आनंदित होते हैं जो संसार को लंबा खींचते हैं; सभी बुद्ध इन बंधनों से मुक्त हैं।

---

श्लोक 255 : आकाश में कोई मार्ग नहीं है; बुद्ध की शिक्षा के बाहर कोई आर्य भिक्षु (समना) नहीं है। कोई भी बद्ध वस्तु स्थायी नहीं है; सभी बुद्ध (लालसा, अहंकार और गलत दृष्टिकोण से) अविचलित हैं।

---

प्रवचन के अंत में सुभद्दा ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया और उनकी इच्छा के अनुसार बुद्ध ने उन्हें भिक्षु संघ में शामिल कर लिया। सुभद्दा बुद्ध के जीवनकाल में भिक्षु बनने वाले अंतिम व्यक्ति थे। अंततः सुभद्दा ने अर्हत पद प्राप्त किया।
अठारहवें अध्याय का अंत: अशुद्धियाँ

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
घुमंतू तपस्वी सुभद्दा की कहानी
कुसिनारा नगर के उपवत्तना में मल्लाओं के साल वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने परिनिर्वाण (महान मृत्यु) से ठीक पहले सुभद्दा नामक विचरण करने वाले तपस्वी द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, बहुत समय पहले, जब सुभद्दा के छोटे भाई ने एक विशेष फसल के प्रथम फल नौ बार दान किए, तो सुभद्दा की स्वयं दान करने की कोई इच्छा नहीं थी और उन्होंने मना कर दिया, परन्तु अंत में उन्होंने दान कर ही दिया। इसी कारण वे प्रथम और द्वितीय दोनों ही ज्ञानोदय काल में बुद्ध के दर्शन नहीं कर पाए। परन्तु अंतिम ज्ञानोदय काल में, जब बुद्ध का महामृत्यु का समय आ गया, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे तीन बातों पर संदेह है और मैंने वृद्ध भिक्षुओं से अपने संदेह दूर करने का अनुरोध किया है। परन्तु क्योंकि

मैंने भिक्षु गौतम को नौसिखिया समझा है, इसलिए मैंने उनसे कभी नहीं पूछा। परन्तु अब उनका महामृत्यु का समय आ गया है, और यदि मैं अब उनसे नहीं पूछूंगा, तो मुझे परसों पछताना पड़ेगा।" अतः वे बुद्ध के पास गए।

आदरणीय आनंद ने उन्हें रोकने का प्रयास किया। परन्तु बुद्ध ने उन्हें पास आने की अनुमति देते हुए आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, सुभद्दा को दूर मत रखिए; उन्हें अपना प्रश्न मुझसे पूछने दीजिए।" अतः सुभद्दा परदे के भीतर प्रवेश कर पलंग के चरणों में बैठ गए और बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे, "हे भिक्षु, क्या वायु में कोई मार्ग होता है? क्या कोई परग्रही भिक्षु कहला सकता है? क्या स्कंध शाश्वत हैं?" इस पर बुद्ध ने उन्हें बताया कि इन बातों का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है और इन श्लोकों में धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 254)

आकाशे पदं नत्थि , बहिरे समणो नत्थि ,

पजा पापञ्चाभिरता , तथागत निप्पञ्चा

आकाश में; पदं नत्थि : पदचिह्न दिखाई नहीं देते; बाहर : बाहर; समणो [ समण ]: भिक्षु; नत्थि : नहीं पाए जाते; पजा : आम जनता; पापंचाभिराता : सांसारिक आकर्षणों में लीन हैं; तथागत : बुद्ध; निप्पपंचा : सांसारिक चिंताओं से पूरी तरह मुक्त हैं।

आकाश में कोई पदचिह्न दिखाई नहीं देते। ठीक उसी प्रकार, बौद्ध धर्म से बाहर, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसे समण (भिक्षु) के रूप में पहचाना जा सके। आम जनता सांसारिक बाधाओं से घिरी रहती है। लेकिन बुद्ध इन बाधाओं से अप्रभावित रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 255)

आकाशे पदं नत्थि बहिरे समणो नत्थि ,

सस्साता संखारा नत्थि बुद्धानं इंजितं नत्थि

आकाशे : आकाश में; पदं नत्थि : पदचिह्न नहीं देखे जाते; बहिरे : बाहर; समानो [ समाना ]: भिक्षुओं; नत्थि : नहीं मिलते; सस्साता : अनंत काल; संखरा : घटक वस्तु का; नत्थि : नहीं है; बुद्धानं [ बुद्धाना ]: बुद्ध के लिए; इंजितां [ इंजिता ]: उत्तेजना या चिंता; नत्थी : नहीं है

आकाश में कोई पदचिह्न दिखाई नहीं देते। उसी प्रकार, बौद्ध धर्म के बाहर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे समणा-भिक्षु कहा जा सके। कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। बुद्ध को कोई व्याकुलता या चिंता नहीं होती।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 254-255)

तपस्वी सुभद्दा । बुद्ध के अंतिम व्यक्तिगत शिष्य तपस्वी सुभद्दा थे। इसी कारण बौद्ध धर्म के इतिहास में उनका विशेष स्थान है। बुद्ध के परिनिर्वाण के समय, सुभद्दा नामक एक भ्रमणशील तपस्वी कुसिनारा में निवास कर रहे थे। उन्होंने यह समाचार सुना कि तपस्वी गौतम रात के अंतिम पहर में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। उन्होंने सोचा, "मैंने बड़े-बड़े गुरुओं और उनके गुरुओं, यानी भ्रमणशील तपस्वियों को यह कहते सुना है कि इस संसार में परमप्रधान, पूर्णतः प्रबुद्ध अरहत बहुत कम ही प्रकट होते हैं। आज रात अंतिम पहर में तपस्वी गौतम परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। मेरे मन में संदेह उत्पन्न हुआ है, और मुझे तपस्वी गौतम पर पूरा भरोसा है। वास्तव में, तपस्वी गौतम इस सिद्धांत को सिखाने में सक्षम हैं जिससे मेरा संदेह दूर हो जाएगा।"

समणो नत्थि बहिरे : बुद्ध की व्यवस्था ( सासन ) के बाहर।

यहां 'समण' से तात्पर्य उन संतों से है जिन्होंने चारों मार्ग और चारों फल प्राप्त कर लिए हैं। वे आर्य संत हैं जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।

ऐसी कोई एक बाधा नहीं है जैसे कि लालसा, अहंकार आदि, जिनके माध्यम से बुद्ध बद्ध वस्तुओं को शाश्वत मानते हैं।

तब सुभद्दा, जो एक विचरणशील तपस्वी थे, मल्ल वंश के उपवत्तना साल वन में गए जहाँ पूज्य आनंद विराजमान थे, और उनके पास पहुँचकर उन्होंने कहा, "मैंने वयस्क और वृद्ध गुरुओं और उनके गुरुओं, विचरणशील तपस्वियों को यह कहते सुना है कि इस संसार में परम ज्ञानी और पूर्णतः प्रबुद्ध अरहत बहुत कम ही प्रकट होते हैं। आज रात के अंतिम पहर में तपस्वी गौतम परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे। मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है, और मुझे तपस्वी गौतम पर पूरा विश्वास है। वास्तव में, तपस्वी गौतम इस सिद्धांत को सिखाने में सक्षम हैं जिससे मेरी शंकाएँ दूर हो जाएँगी। हे आनंद, क्या मुझे तपस्वी गौतम के दर्शन का अवसर मिलेगा?"

"बस करो, मित्र सुभद्दा, बुद्ध को परेशान मत करो। बुद्ध थक चुके हैं," पूज्य आनंद ने कहा।

सुभद्दा ने दूसरी और तीसरी बार अपना अनुरोध दोहराया, और पूज्य आनंद ने दूसरी और तीसरी बार उसी तरह उत्तर दिया।

बुद्ध ने पूज्य आनंद और सुभद्दा के बीच की बातचीत सुनी और आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, सुभद्दा को मत रोको। हे आनंद, सुभद्दा को सिद्ध पुरुष के दर्शन करने दो। सुभद्दा मुझसे जो कुछ भी पूछेगा, वह ज्ञान की इच्छा से पूछेगा, न कि मुझे परेशान करने के लिए। और मैं जो कुछ भी उत्तर दूंगा, वह उसे सहजता से समझ लेगा।"

तब पूज्य आनंद ने सुभद्दा का परिचय बुद्ध से कराया। सुभद्दा ने बुद्ध से सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर कहा, "हे गौतम, ये तपस्वी और पुरोहित हैं, जो समूहों और सभाओं के नेता हैं, संप्रदायों के प्रमुख हैं और प्रसिद्ध, विख्यात धार्मिक शिक्षक हैं,

जिन्हें जनमानस में अच्छे पुरुष के रूप में सम्मान दिया जाता है, जैसे कि पूरण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चायन, संजय बेल्लत्थिपुत्त, निगंठ नाथपुत्त — क्या इन सभी ने, जैसा कि वे स्वयं दावा करते हैं, सत्य को पूर्णतः समझा है या नहीं, या उनमें से कुछ ने समझा है और कुछ ने नहीं?"

"हे सुभद्दा! चिंता मत करो कि सभी ने इसे समझा है या नहीं। मैं तुम्हें यह सिद्धांत सिखाऊंगा। सुनो और इसे अच्छी तरह याद रखो। मैं बोलता हूँ।" "ऐसा ही हो, प्रभु!" सुभद्दा ने उत्तर दिया।

बुद्ध ने इस प्रकार कहा: "जिस भी युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान नहीं है, उसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ समण भी नहीं पाया जाता। हे सुभद्दा, जिस भी युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान है, उसमें प्रथम समण, द्वितीय समण, तृतीय समण और चतुर्थ समण भी पाए जाते हैं। हे सुभद्दा, इस युग में आर्य अष्टांगिक मार्ग विद्यमान है।"

"यहाँ प्रथम समण, द्वितीय समण, तृतीय समण और चतुर्थ समण पाए जाते हैं। अन्य विदेशी संप्रदायों में समण नहीं हैं। हे सुभद्दा, यदि शिष्य सही मार्ग पर चलें, तो संसार अरहतों से रहित नहीं होगा। जब मैं सद्‌गुण की खोज में निकला, तब मेरी आयु उनतीस वर्ष थी। अब दीक्षा लिए हुए 15 वर्ष बीत चुके हैं। इस संप्रदाय के बाहर एक भी ऐसा तपस्वी नहीं है जो इस सिद्ध सिद्धांत का आंशिक रूप से भी पालन करता हो।"

तब सुभद्दा ने बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे प्रभु, यह उत्तम है! हे प्रभु, मानो कोई मनुष्य किसी उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, किसी छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, किसी भटके हुए व्यक्ति को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जला दे ताकि जिसे आँखें हों वह देख सकें, ठीक उसी प्रकार बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। हे प्रभु, मैं बुद्ध, सिद्धांत और संघ की शरण लेता/लेती हूँ। मुझे बुद्ध की उपस्थिति में ही निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त हो!"

"हे सुभद्दा," बुद्ध ने कहा, "जो कोई भी अन्य धर्मों में पहले से ही समर्पित होते हुए भी निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह चार महीने की परीक्षा में रहता है। चार महीने के अंत में, शिष्यों की स्वीकृति से, उसे दीक्षा दी जाती है और भिक्षु का दर्जा दिया जाता है। फिर भी, समझ के आधार पर, मैं इस मामले में अपवाद बनाता हूँ।"

तब सुभद्दा ने कहा, "हे प्रभु, यदि अन्य मतों के प्रति समर्पित वे लोग जो इस युग में लघु एवं उच्चतर दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, चार माह की परिवीक्षा अवधि में रहें, तो मैं भी परिवीक्षा अवधि में रहूँगा; और उस अवधि की समाप्ति के बाद, यदि शिष्य स्वीकृति दें, तो मुझे संघ में शामिल कर लिया जाए और भिक्षु का दर्जा प्रदान किया जाए।"

तब बुद्ध ने आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "आनंद, तुम सुभद्दा को दीक्षा दे सकते हो।" "जी हाँ, प्रभु!" आनंद ने उत्तर दिया।

और भ्रमणशील तपस्वी सुभद्दा ने पूज्य आनंद से कहा, "हे पूज्य आनंद, यह आपके लिए लाभ की बात है! यह वास्तव में आपके लिए बहुत बड़ा लाभ है, क्योंकि आपको स्वयं बुद्ध की उपस्थिति में शिष्यत्व का अभिषेक प्राप्त हुआ है।" सुभद्दा ने बुद्ध की उपस्थिति में निम्न और उच्च दीक्षा प्राप्त की।

उच्च दीक्षा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद, पूज्य सुभद्दा ने एकांतवास में, मनुष्यों से दूर, परिश्रमी, ऊर्जावान और दृढ़ निश्चयी होकर, इसी जीवन में अपने अंतर्ज्ञान से उस अतुलनीय पवित्र जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर लिया और उस अवस्था में निवास किया जिसके लिए कुलीन परिवारों के पुत्र गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि पुनर्जन्म का चक्र समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, और इस जीवन के बाद कोई दूसरा जीवन नहीं है।

अध्याय 19. धम्मत्थावग्ग: न्यायप्रिय (256-272)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 256,257

---

(धम्मपद 254 और 255) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 256 और 257 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 258)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 256 और 257 - विनिच्चयामहत्त वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Na tena hoti dhammattho
yenattham sahasa naye
yo ca attham anatthanca
ubbo niccheyya pandito.
Asahasena dhammena
samena nayati pare
धम्मस्सा गुट्टो मेधावी
"dhammattho" ti pavuccati.

———————————————————————

श्लोक 256 : यदि कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से किसी मामले का निर्णय करता है तो वह न्यायसंगत नहीं है; बुद्धिमान व्यक्ति को उचित और अनुचित दोनों बातों पर विचार करने के बाद निर्णय लेना चाहिए।

———————————————————————

श्लोक 257 : जो बुद्धिमान व्यक्ति मनमाने ढंग से नहीं बल्कि कानून के अनुसार निर्णय लेता है, वही कानून का रक्षक है; उसे 'धर्ममत्थो' कहा जाना चाहिए।

———————————————————————

न्यायाधीश की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (256) और (257) का उच्चारण कुछ भ्रष्ट न्यायाधीशों के संदर्भ में किया।
एक दिन कुछ भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद लौट रहे थे तभी बारिश होने लगी और वे एक अदालत में शरण लेने चले गए। वहाँ उन्हें पता चला कि कुछ न्यायाधीश रिश्वत लेकर मनमाने ढंग से फैसले सुना रहे हैं। उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई और बुद्ध ने उत्तर दिया, “भिक्षुओं! यदि कोई व्यक्ति स्नेह या धन के लालच में फैसले सुनाता है, तो उसे 'न्यायी' या 'कानून का पालन करने वाला न्यायाधीश' नहीं कहा जा सकता। यदि कोई व्यक्ति साक्ष्यों का बुद्धिमानी से मूल्यांकन करके निष्पक्ष रूप से फैसला सुनाता है, तो उसे 'न्यायी' या 'कानून का पालन करने वाला न्यायाधीश' कहा जा सकता है।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 256 : यदि कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से किसी मामले का निर्णय करता है तो वह न्यायसंगत नहीं है; बुद्धिमान व्यक्ति को उचित और अनुचित दोनों बातों पर विचार करने के बाद निर्णय लेना चाहिए।

———————————————————————

श्लोक 257 : जो बुद्धिमान व्यक्ति मनमाने ढंग से नहीं बल्कि कानून के अनुसार निर्णय लेता है, वही कानून का रक्षक है; उसे 'कानून का पालन करने वाला (धम्मत्थो)' कहा जाना चाहिए।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
न्यायाधीश की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भ्रष्ट न्यायाधीशों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक दिन भिक्षुओं ने सावत्थी के उत्तरी द्वार पर स्थित एक बस्ती में भिक्षाटन किया और मठ की तीर्थयात्रा से लौटते समय नगर के मध्य से होकर गुजरे। उसी क्षण एक बादल छा गया और वर्षा होने लगी। सामने स्थित न्याय कक्ष में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि न्यायाधीश रिश्वत ले रहे थे और वैध मालिकों की संपत्ति छीन रहे थे। यह देखकर उन्होंने सोचा, “अरे, ये लोग तो अधर्मी हैं! अब तक तो हम इन्हें न्यायपूर्ण निर्णय देने वाला ही मानते थे।” वर्षा थमने पर वे मठ गए, बुद्ध को प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठकर उन्हें घटना का विवरण दिया। बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो बुरी इच्छाओं के वश में होकर हिंसा से किसी मामले का निर्णय करते हैं, वे उचित रूप से

न्यायाधीश नहीं कहलाते; केवल वे ही उचित रूप से न्यायाधीश कहलाते हैं जो अन्याय की तह तक जाकर बिना हिंसा के किए गए अन्याय के अनुसार न्याय करते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 256)

येन अत्थं सहसा नये तेन धम्मथो न होति

पण्डितो यो च अत्थं च अनत्थं च उभो निश्चेया

येना : यदि किसी कारणवश; अत्थं [ अत्थ ]: अर्थ; सहसा नये : गलत निर्णय दिया गया; तेना : उसके द्वारा; धम्मठो [ धम्मठ ]: न्याय पर आधारित; न होति : वह नहीं है; पंडितो [ पंडित ]: बुद्धिमान व्यक्ति; यो च : अपने मार्ग में; अत्थं च : न्याय; अनत्थं च : और अन्याय; उभो : ये दोनों; निच्चेय : निर्णय करता है

यदि किसी कारणवश कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से सही और गलत का निर्णय करे, तो वह निर्णय न्यायसंगत नहीं होता। परन्तु, बुद्धिमान व्यक्ति बिना किसी पूर्वाग्रह के, विवेकपूर्ण ढंग से सही और गलत का निर्णय करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 257)

असाहसेना धम्मेना समेना परे नयति धम्मस्सा

गुत्तो मेधावी धम्मथितो ति पावुक्कति

असाहसेन : मनमाना हुए बिना; धम्मेना : धर्मपूर्वक; समेना : निष्पक्ष रूप से; पारे : अन्य; नयति : न्यायाधीश; धम्मस्सा : धार्मिकता के नियम से; गुट्टो [ गुट्टा ]: संरक्षित; मेधावी : वह बुद्धिमान व्यक्ति; धम्मत्थितो ति : धर्म में स्थापित; पावुकाति : कहा जाता है

वह बुद्धिमान व्यक्ति जो निष्पक्ष रूप से, बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना किसी मनमानी के न्याय करता है और दूसरों का न्याय करता है, धर्म के नियम का पालन करता है और उसके अंतर्गत संरक्षित रहता है। ऐसे व्यक्ति को धर्म में सुस्थापित कहा जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 256-257)

धम्मत्तितो : वह व्यक्ति जो धर्म में दृढ़ है। बुद्ध ने हमेशा यह स्पष्ट किया है कि धम्म की जटिलताओं का बौद्धिक रूप से बोध करना तब तक पूर्णतः फलदायी नहीं है जब तक व्यक्ति धम्म में दृढ़तापूर्वक स्थापित न हो जाए—अर्थात् उसे अपने जीवन को धम्म के अनुरूप व्यवस्थित करना चाहिए। इस स्तर पर, बुद्धों के वचन को जानना आवश्यक है।

यदि कोई स्वयं बुद्ध के वचन जानना चाहता है, तो बौद्ध धर्म की पुस्तकें पर्याप्त नहीं होंगी और उसे पाली ग्रंथ में संकलित उनके उपदेशों का अध्ययन करना चाहिए। बुद्ध के वचनों का यह प्रामाणिक संग्रह एक ही संक्षिप्त पुस्तक में समाहित नहीं किया जा सकता, यद्यपि इसमें विभिन्न दृष्टिकोणों से धम्म के कई संक्षिप्त सूत्र मौजूद हैं। बुद्ध ने पैंतालीस वर्षों तक उपदेश दिया, इसलिए उनके धम्म और विनय ग्रंथ इतने व्यापक हैं।

पाली भाषा के अधिकांश ग्रंथों का एक बार अनुवाद हो चुका है, बहुत कम ग्रंथों के दो या तीन अनुवाद हुए हैं, जबकि केवल एक ग्रंथ का ही अंग्रेजी में कई बार अनुवाद हुआ है (धम्मपद)। नीचे दिए गए सारांश में केवल पाली भाषा के ग्रंथों का उल्लेख है, जो बुद्ध की भाषा थी और जिनके पूर्ण ग्रंथ उपलब्ध हैं। संस्कृत ग्रंथ या तो खंडित हैं, जो केवल चीनी और तिब्बती अनुवादों में ही मौजूद हैं और जिनका अंग्रेजी में अनुवाद नहीं हुआ है, या फिर वे बहुत बाद के ग्रंथों से बने हैं, जिन्हें अक्सर गौतम बुद्ध से जोड़ा जाता है, लेकिन ये उनके शब्द नहीं हो सकते।

बुद्ध के परनिर्वाण के बाद आयोजित प्रथम सभा में पाली भाषा के ग्रंथों को संहिताबद्ध किया गया। बाद में इसमें कुछ अंश जोड़े गए। इस ग्रंथ का प्रसार उन भिक्षुओं द्वारा हुआ जिन्होंने अपने गुरुओं से प्रवचनों के अंश कंठस्थ किए और फिर उन्हें अपने शिष्यों को सुनाया। यह मौखिक प्रसार लगभग चार सौ वर्षों तक चला। ग्रंथों को याद करने की कला में प्रशिक्षित कई ब्राह्मण भिक्षु बने और उन्होंने श्रीलंका में आयोजित चौथी सभा तक पाली भाषा में इस ग्रंथ का निष्ठापूर्वक प्रसार किया।

उस समय की अशांत परिस्थितियों के कारण, वरिष्ठ भिक्षुओं ने संपूर्ण धर्मग्रंथ को लिखित रूप में दर्ज करने का निर्णय लिया। वे इस उद्देश्य से एकत्रित हुए और ताड़ के पत्तों पर धातु की कलम से बुद्ध के वचन उकेरे। तब से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मुद्रित संस्करणों के प्रकाशन तक, धर्मग्रंथ की नकलें उन्हीं सामग्रियों का उपयोग करके की जाती रहीं। पहला पूर्ण मुद्रित संस्करण पंचम राजा राम (चुललोंगकोर्न) के आदेश पर थाई लिपि में प्रकाशित किया गया था।

पश्चिम में, पाली टेक्स्ट सोसाइटी की स्थापना 1881 में टी.डब्ल्यू. राइस डेविड्स द्वारा संपूर्ण धर्मग्रंथ को लैटिन लिपि में प्रकाशित करने के उद्देश्य से की गई थी। यह कार्य अब पूर्ण हो चुका है और इसका अधिकांश भाग अंग्रेजी में अनुवादित होकर उसी सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

इस ग्रंथ में निम्नलिखित खंड और उपखंड शामिल हैं। जब तक अन्यथा उल्लेख न किया गया हो, इन ग्रंथों के पाली नामों का अंग्रेजी अनुवाद पाली पाठ सोसायटी (पीटीएस) द्वारा प्रकाशित अनुवादों के शीर्षक हैं।

I. विनय - पिटक : "अनुशासन की पुस्तक" (शाब्दिक अर्थ: अनुशासन का ग्रंथ) छह पुस्तकों का पूर्ण अनुवाद।

(1) भिक्खु - विभंग - भिक्षुओं के लिए अनुशासन का मैट्रिक्स।

(2) भिक्खुनी - विभंग - भिक्षुणियों के लिए अनुशासन का मैट्रिक्स।
(3) महावग्ग — विविध विषयों का महान संग्रह।
(4) कुल्लवग्गा — विविध विषयों का छोटा संग्रह।
(5) परिवारा — श्रीलंका में रचित सारांश।
(6) भिक्खु -पातिमोक्खा-भिक्षुओं के लिए 227 मूलभूत प्रशिक्षण नियम (महामाकुट प्रेस, बैंकॉक द्वारा प्रकाशित)।
द्वितीय. सूत्र - पिटक : (शाब्दिक अर्थ: प्रवचनों का संग्रह)।
(1) दीघा - निकाय —"बुद्ध के संवाद" (शाब्दिक अर्थ: विस्तारित संग्रह) तीन पुस्तकें जिनमें 34 लंबे प्रवचन हैं।
(2) मज्झिमा - निकाय - "मध्यम लंबाई के कथन" (शाब्दिक अर्थ: मध्य लंबाई का संग्रह) तीन पुस्तकें जिनमें मध्यम लंबाई के 152 प्रवचन हैं।
(3) संयुत्त - निकाय —"संबंधी कथन" (शाब्दिक अर्थ: संबंधित संग्रह) पाँच पुस्तकें जिनमें विषय के अनुसार व्यवस्थित 7,762 प्रवचन हैं।
(4) अंगुत्तरा - निकाय —"क्रमिक कथन" (शाब्दिक अर्थ: एक-आगे का संग्रह) पाँच पुस्तकें जिनमें 9,557 प्रवचन हैं, जिन्हें एक से ग्यारह तक संख्यात्मक समूहों में व्यवस्थित किया गया है।
(5) खुद्दाका - निकाय - "लघु संकलन" (अर्थात: लघु संग्रह) पंद्रह अलग-अलग कार्यों से बना है:
खुद्दकपाठ - "लघु पाठ" (और चित्रकार - इसकी टिप्पणी)। आवश्यक चीज़ों की एक संक्षिप्त पुस्तिका.
धम्मपद — (अनेक चित्रों सहित) 26 अध्याय जिनमें 423 प्रेरणादायक श्लोक हैं।
उदाना — "उत्थान के श्लोक" — से प्रेरित कथन।
इतिवुत्तका —"जैसा कहा गया"— लघु प्रवचनों का एक संग्रह।
सुत्त - निपाता — "बुनी हुई लय" — अधिकतर पद्य में प्रवचन।
विमानवत्थु — "भवनों की कहानियां" — स्वर्ग का वृत्तांत।
पेटवत्थु — "मृतकों की कहानियां" — भूतों के वृत्तांत।
थेरागाथा — "भाइयों के भजन" — "पूजनीयों के श्लोक" — प्रबुद्ध भिक्षुओं द्वारा बोले गए प्रेरित श्लोक।
थेरीगाथा — "बहनों के भजन" — ऊपर जैसा ही, लेकिन ननों के लिए।
जातक —"जातक कथाएँ"—बुद्ध के 550 पूर्व जन्म तीन पुस्तकों में संकलित हैं (केवल श्लोक ही प्रामाणिक हैं, कथाएँ टीकाएँ हैं)।
निद्देसा — ऊपर दिए गए (v) पर प्राचीन टीका।
पतिसंभिदामग्गा -विश्लेषणात्मक कार्य।
अपदान — शिष्यों के इन पूर्व जन्मों का कोई अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध नहीं है।
बुद्धवंश — दो अनुवाद: "बुद्धों की वंशावली" और "बुद्धों का इतिहास"।
Cariyā - piṭaka — 'आचरण के तरीकों का संग्रह'.
तृतीय. अभिधम्म - पिटक : (शाब्दिक: आगे की शिक्षाओं का खंड) अब तक अनुवाद में पाँच पुस्तकें।
(1) धम्मसंगनी — 'बौद्ध मनोवैज्ञानिक नैतिकता'।
(2) विभागा — 'विश्लेषण की पुस्तक'.
(3) धातुकथा — 'तत्वों पर प्रवचन'।
(4) पुग्गलपन्नत्ती — 'मानव प्रकारों का पदनाम'।
(5) कथावत्थु — 'विवाद के बिंदु' तीसरी परिषद में जोड़े गए।
(6) यमाका —जोड़े.
(7) पट्टाना — 'सशर्त संबंध'.
लेकिन धम्म के अभ्यास और गहन अध्ययन के लिए बुद्ध के सभी वचनों और विस्तृत टीकाओं को पढ़ना आवश्यक नहीं है, हालांकि कुछ मामलों में यह उपयोगी हो सकता है। बुद्ध ने कहा है:
धम्म का वह एक शब्द श्रेष्ठ है जिसे सुनकर मन को शांति मिलती है।
कविता की बाढ़ की तुलना में, जो हजार गुना अधिक निरर्थक और लाभहीन है।
(धम्मपद, श्लोक 102)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 258

———————————————————————

(धम्मपद 256 और 257) <<<< पिछला || धम्मपद 258 || अगला >>>> (धम्मपद 259)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 258 - चब्बग्गिया वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena pandito hoti
yavata bahu bhasati
khemi averi abhayo
"pandito" ti pavuccati.

---

श्लोक 258 : कोई व्यक्ति केवल इसलिए बुद्धिमान नहीं हो जाता क्योंकि वह बहुत बोलता है; केवल वही व्यक्ति 'बुद्धिमान' कहलाने योग्य है जो शांत स्वभाव का हो, द्वेष से मुक्त हो और दूसरों को हानि न पहुँचाता हो।

---

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (258) कहा।

एक बार छह भिक्षुओं का एक समूह था जो मठ या गाँव में भोजन करते समय उपद्रव मचाता था। एक दिन, जब कुछ भिक्षु भिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तब वे छह भिक्षु आए और घमंड से बोले, "देखो! केवल हम ही बुद्धिमान हैं।" फिर वे भोजन स्थल पर चीजें फेंकने लगे और उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो बहुत बोलता है, गाली देता है और दूसरों को धमकाता है, वह बुद्धिमान है। केवल वही बुद्धिमान है जो द्वेष से मुक्त है और किसी को हानि नहीं पहुँचाता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 258 : कोई व्यक्ति केवल इसलिए बुद्धिमान नहीं हो जाता क्योंकि वह बहुत बोलता है; केवल वही व्यक्ति 'बुद्धिमान' कहलाने योग्य है जो शांत स्वभाव का हो, द्वेष से मुक्त हो और दूसरों को हानि न पहुँचाता हो।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

छह भिक्षुओं के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने छह भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार छह भिक्षुओं का एक समूह था जो मठ या गाँव में भोजन करते समय उपद्रव मचाता था। एक दिन, जब कुछ सामनेर भिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो वे छह भिक्षु आए और सामनेरों से घमंड से बोले, “देखो! केवल हम ही बुद्धिमान हैं।” फिर वे भोजन स्थल पर चीजें फेंकने लगे और उसे अस्त-व्यस्त कर दिया। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो बहुत बोलता है, गाली देता है और दूसरों को धमकाता है, वह बुद्धिमान है। केवल वही बुद्धिमान है जो द्वेष से मुक्त है और किसी को हानि नहीं पहुँचाता।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 258)

यावत बहु भासति तेन पण्डितो न होति
खेमि अवेरी अभयो पण्डितो इति पावुक्कति
यावता : केवल इसलिए; बहु भासति : (कोई) बहुत बोलता है; तेन : इससे; पंडितो न होति : वह बुद्धिमान नहीं बनता; खेमी : मुक्त; अवेरी : घृणा न करने वाला; अभयो [ अभय ]: निर्भीक (व्यक्ति); पंडितो इति : बुद्धिमान व्यक्ति; पवुच्चति : कहलाता है
किसी व्यक्ति को केवल इसलिए विद्वान नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह बहुत बोलता है। विद्वान वह व्यक्ति होता है जो स्वतंत्र, निश्चिंत, घृणा रहित और निर्भीक हो।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 258)
खेमी , अवेरी , अभयो : मुक्त, घृणा रहित, निर्भय। ये तीन गुण इस श्लोक में सराहे गए हैं। इन गुणों का निरंतर अभ्यास करने से मनुष्य बुद्धिमान बनता है, लेकिन बातूनीपन नहीं। मन को इन गुणों में अनुशासित करने और सच्चा बुद्धिमान ( पंडितो ) बनने के लिए मन को प्रशिक्षित करना ( भावना ) आवश्यक है। इस संबंध में सबसे प्रभावी विधि है करुणा का ध्यान। मैत्री या करुणा शब्द का अर्थ है प्रेम। तदनुसार, ध्यान का वह रूप जो व्यक्ति को इस संसार के सभी प्राणियों, यहाँ तक कि पशुओं को भी, अपना मित्र मानने की क्षमता प्राप्त करने में सहायक होता है, करुणा भावना कहलाता है ।
सभी प्राणी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों, सभी प्राणी कुशल हों — इन विचारों को सभी प्राणियों के प्रति व्यक्त करना, चाहे वे रिश्तेदार हों या गैर-रिश्तेदार, मित्र हों या शत्रु, मनुष्य हों या पशु, मैत्री भावना है। केवल मनुष्यों के लिए सुख की कामना करना मैत्री का सही अर्थ नहीं है । सच्ची मैत्री का अर्थ है संपूर्ण जगत के लिए, यहाँ तक कि सबसे छोटे जीव के लिए भी सुख की कामना करना। बुद्ध इस संसार में मैत्री का सर्वोच्च उदाहरण हैं। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों के प्रति समान रूप से मैत्री दिखाई है , चाहे वे मित्र हों या शत्रु, मनुष्य हों या निर्जीव। मैत्री सर्वोच्च पुण्य है। यह चार उदात्त अवस्थाओं ( ब्रह्म विहार ) में से एक है। यह परम ज्ञान ( सम्मा सम्बोधि ) की प्राप्ति के लिए आवश्यक सिद्धियों ( पारमिता ) में से एक है। खंड सूत्र के प्रवचन के अनुसार, यदि सर्पों या जंगली जानवरों के प्रति प्रेम और दया का भाव रखा जाए तो उनसे कोई हानि नहीं पहुंचाई जा सकती।
मैत्री भावना के लाभों का वर्णन मैत्रीसंसा के प्रवचन में किया गया है । इसमें मैत्री भावना का अभ्यास करने के ग्यारह लाभ बताए गए हैं ।
आरामदायक नींद।
आराम से जागना।
बुरे सपने न आना।
सभी मनुष्यों द्वारा प्यार किया जाना।
देवताओं द्वारा प्रेम किया जाना।
देवताओं द्वारा संरक्षण।
आग, जहर और हथियारों से खतरे में न होना।
मानसिक संतुलन।
चेहरे की रंगत में निखार।
बिना किसी भय के मृत्यु का सामना करने की क्षमता।
एकाग्रता विकसित कर चुके और इस जीवन में अरहतत्व प्राप्त न कर पाने वाले व्यक्ति का मृत्यु के बाद ब्रह्म लोक में जन्म होता है।
यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि इन ग्यारह लाभों में से दस इसी जीवन में प्राप्त किए जा सकते हैं। सुखी जीवन जीने के लिए यह ध्यान अत्यंत उपयोगी है। मनुष्य का सबसे बड़ा धन मानसिक शांति है। मानसिक शांति का अभाव मुख्यतः मन में शत्रुता की उपस्थिति के कारण होता है। यदि इस ध्यान को निरंतर जारी रखा जाए तो व्यक्ति चारों दिव्य अवस्थाओं को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही दूसरों की खुशी और प्रगति से ईर्ष्या करता है। इसलिए, सच्ची प्रेममयी भावना प्राप्त करना काफी कठिन है। मनुष्य अपने बच्चों और पत्नियों के सौभाग्य पर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति रखता है। यह वास्तविक प्रेम नहीं है , बल्कि इच्छा का प्रेम का रूप है। यह प्रेम के विरुद्ध एक सिद्धांत है और इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।
सच्ची मैत्री भावना दूसरों की खुशी की कामना करना है, बिना किसी भी प्रकार के लाभ की अपेक्षा किए। मैत्री भावना को अपने परिवार के हितों को बढ़ाने की इच्छा से भ्रमित नहीं करना चाहिए। इसके अलावा, सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना भाव रखे बिना दूसरों के स्वास्थ्य, धन और सुख की कामना करना व्यर्थ है। मैत्री भावना मैत्री का अभ्यास करने वाले व्यक्ति और उन व्यक्तियों दोनों को लाभ पहुंचाती है जिनके प्रति यह भावना निर्देशित होती है। सच्ची मैत्री भावना से ही दोनों पक्षों को लाभ होता है ।
मेट्टा की खेती इस प्रकार करनी चाहिए:
माता यथा नियं पुत्तं
Āyusā ekaputtamanurakkhe
Evampi sabbabhūtesu

मनसंभवये अपरिमाणं
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 259

---

(धम्मपद 258) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 259 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 260 और 261)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 259 - एकुदानखिनासव वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Na tavata dhammadharo
yavata bahu bhasati
yo ca appampi sutvana
धम्मम कायना पस्साती
sa ve dhammadharo hoti
yo dhammam nappamajjati.

---

श्लोक 259 : जो अधिक बोलता है, वह "धम्म में पारंगत (धम्मधर)" नहीं हो जाता। जो कम सुनता है, परन्तु धम्म को समझता है और असावधान नहीं रहता, वही वास्तव में "धम्म में पारंगत" है।

---

अरहत एकुदन की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (259) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो एक अरहत था।
यह भिक्षु सावत्थी के पास एक वन में रहते थे। उन्हें एकुदन के नाम से जाना जाता था, क्योंकि उन्हें उदाना (उत्साह) का केवल एक श्लोक ही कंठस्थ था। परन्तु वे श्लोक में निहित धम्म के अर्थ को भली-भांति समझते थे। प्रत्येक व्रत के दिन वे दूसरों को धम्म सुनने के लिए प्रेरित करते और स्वयं भी अपने ज्ञात श्लोक का पाठ करते। हर बार पाठ समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवता उनकी स्तुति करते और उनका अभिनंदन करते। एक व्रत के दिन त्रिपिटक के ज्ञाता दो विद्वान थेरे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ उनके स्थान पर आए। एकुदन ने दोनों थेरों से धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने पूछा कि क्या इस एकांत स्थान पर बहुत से लोग धम्म सुनने के इच्छुक हैं। एकुदाना ने सकारात्मक उत्तर दिया और उन्हें यह भी बताया कि जंगलों के संरक्षक देवता भी आमतौर पर आते हैं, और वे प्रवचनों के अंत में प्रशंसा और तालियाँ बजाते हैं।
अतः, दोनों विद्वान थेरों ने बारी-बारी से धम्म का उपदेश दिया, परन्तु उनके प्रवचन समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवताओं ने कोई ताली नहीं बजाई। दोनों विद्वान थेरे अचंभित हुए; उन्हें एकुदन की बातों पर संदेह भी हुआ। परन्तु एकुदन ने जोर देकर कहा कि संरक्षक देवता आते थे और प्रत्येक प्रवचन के अंत में हमेशा ताली बजाते थे। तब दोनों थेरों ने एकुदन से स्वयं उपदेश देने का आग्रह किया। एकुदन ने पंखा अपने सामने रखा और वही श्लोक पढ़ा। श्लोक के अंत में, संरक्षक देवताओं ने हमेशा की तरह ताली बजाई। दोनों विद्वान थेरों के साथ आए भिक्षुओं ने शिकायत की कि वन में निवास करने वाले देवता (देवदूत) बहुत पक्षपाती हैं।

जेतवन मठ पहुँचने पर उन्होंने बुद्ध को इस मामले की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो भिक्षु बहुत कुछ सीखता है और धम्म का बहुत प्रचार करता है, वही धम्म का ज्ञाता (धम्मधर) है। बल्कि वह है जिसने बहुत कम सीखा है और धम्म का केवल एक श्लोक जानता है, परन्तु चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझता है और सदा सचेत रहता है, वही वास्तव में धम्म का ज्ञाता है।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 259 : जो अधिक बोलता है, वह "धम्म में पारंगत (धम्मधर)" नहीं हो जाता। जो कम सुनता है, परन्तु धम्म को समझता है और असावधान नहीं रहता, वही वास्तव में "धम्म में पारंगत" है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अरहत एकूदान की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक अरहत भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

यह भिक्षु सावत्थी के पास एक उपवन में रहता था। वह एकूदान के नाम से जाना जाता था, क्योंकि उसे उल्लास ( उदान ) का केवल एक श्लोक ही याद था।

उच्च विचारों वाले, सजग, मौन के मार्ग में स्वयं को प्रशिक्षित करने वाले भिक्षु को, ऐसे शांत और सदा सचेत भिक्षु को दुख नहीं आते।

लेकिन भिक्षु श्लोक में निहित धम्म के अर्थ को भलीभांति समझ गए थे। प्रत्येक व्रत के दिन वे दूसरों को धम्म सुनने के लिए प्रेरित करते और स्वयं अपने ज्ञात एक श्लोक का पाठ करते। हर बार पाठ समाप्त होने पर वनों के संरक्षक देव उनकी स्तुति और प्रशंसा करते। एक व्रत के दिन, त्रिपिटक के ज्ञाता दो विद्वान वृद्ध भिक्षु पाँच सौ भिक्षुओं के साथ उनके स्थान पर आए। एकूदान ने दोनों वृद्ध भिक्षुओं से धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। उन्होंने पूछा कि क्या इस एकांत स्थान पर बहुत से लोग धम्म सुनना चाहते हैं। एकूदान ने हाँ में उत्तर दिया और उन्हें यह भी बताया कि वनों के संरक्षक देव भी अक्सर आते हैं और प्रवचनों के अंत में स्तुति और प्रशंसा करते हैं। अतः, दोनों विद्वान गुरुओं ने बारी-बारी से धम्म का उपदेश दिया, परन्तु उनके प्रवचन समाप्त होने पर वन के संरक्षक देवताओं ने कोई ताली नहीं बजाई। दोनों विद्वान गुरु चकित रह गए; उन्हें एकूदान की बातों पर संदेह भी हुआ। परन्तु एकूदान ने दृढ़तापूर्वक कहा कि संरक्षक देवता पहले आते थे और प्रत्येक प्रवचन के अंत में ताली बजाते थे। तब दोनों गुरुओं ने एकूदान से स्वयं उपदेश देने का आग्रह किया।

एकूदान ने पंखा अपने सामने रखा और हमेशा की तरह श्लोक का पाठ किया। पाठ समाप्त होने पर, संरक्षक देवताओं ने हमेशा की तरह तालियाँ बजाईं। दो विद्वान बुजुर्गों के साथ आए भिक्षुओं ने शिकायत की कि जंगलों में रहने वाले देवता बहुत पक्षपाती हैं।

जेतवन मठ पहुँचने पर उन्होंने बुद्ध को इस मामले की सूचना दी। बुद्ध ने उनसे कहा, “भिक्षुओं! मैं यह नहीं कहता कि जो भिक्षु बहुत कुछ सीख चुका है और धम्म का बहुत प्रचार करता है, वही ‘धम्म का ज्ञाता’ (धम्मधर) है। बल्कि, जिसने बहुत कम सीखा है और धम्म का केवल एक श्लोक जानता है, परन्तु चार आर्य सत्यों को पूर्णतः समझता है और सदा सचेत रहता है, वही वास्तव में धम्म का ज्ञाता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 259)

यावता बहु भासति , तावता धम्मधरो न
यो च अप्पं अपि सुत्वन कायेन धम्मं पस्सति ,
सो वे धम्मधरो होति सो धम्मं नप्पमज्जति ।

यावत : सिर्फ इसलिए; बहु भासति : बहुत बोलता है; तावता : उसके द्वारा; धम्मधरो न : कोई धम्म का धारक नहीं बनता; यो सीए : यदि कोई; अप्पं अपि : थोड़ा सा भी धम्म; सुतवना : सुना हुआ; कायेन : उसके शरीर द्वारा; धम्मं पस्सति : धम्म का अभ्यास करता है; इसलिए वह; वे : बिना किसी संदेह के; धम्मधरो होति : धम्म का धारक बन जाता है; यो : यदि कोई; धम्मम् [ dhamma ]: धम्म में; नप्पमज्जति : मेहनती है (वह भी धम्म का संरक्षक है)

केवल अधिक बोलने से कोई धर्म के अनुयायी नहीं बन जाता। भले ही उसने थोड़ा ही सुना हो, यदि वह अपने शरीर से धर्म का अनुभव करे और लगन से उसका पालन करे, तो वह वास्तव में धर्म का अनुयायी है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 259)

बहु भासति : निःसंकोच बोलना। अत्यधिक बोलने की प्रवृत्ति को मन की शांति से नियंत्रित किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने का साधन ध्यान है। ध्यान में मन को देखना और मन को शांत होने देना, मन के चिंतन ( चित्त विपश्यना ) के माध्यम से संभव है।

लेकिन मन का चिंतन कैसे किया जाए? इसमें शिष्य लोभी मन को लोभी और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; क्रोधित मन को क्रोधित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; भ्रमित मन को भ्रमित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; संकुचित मन को

संकुचित और बिखरे हुए मन को बिखरा हुआ जानता है; विकसित मन को विकसित और अविकसित मन को अविकसित जानता है; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अपरिभूत मन को अपरिभूत जानता है; एकाग्र मन को एकाग्र और असंबद्ध मन को असंबद्ध जानता है; मुक्त मन को मुक्त और अपरिभूत मन को अपरिभूत जानता है।

इस प्रकार वह मन के चिंतन में लीन रहता है, चाहे स्वयं के विषय में हो, या अन्य व्यक्तियों के विषय में, या दोनों के विषय में। वह देखता है कि मन कैसे उत्पन्न होता है; कैसे नष्ट होता है; मन के उत्पन्न होने और नष्ट होने की प्रक्रिया को देखता है। 'मन विद्यमान है': यह स्पष्ट जागरूकता उसमें ज्ञान और सजगता के लिए आवश्यक सीमा तक विद्यमान रहती है; और वह स्वतंत्र, संसार की किसी भी वस्तु से अनासक्त होकर जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार शिष्य मन के चिंतन में लीन रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 260,261

---

(धम्मपद 259) <<<< पिछला || धम्मपद 260 और 261 || अगला >>>> (धम्मपद 262 और 263)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 260 और 261 - लकुंदकभद्दियत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena thero so hoti
yenassa palitam siro
paripakko vayo tassa
"moghajinno" ti vuccati.
Yamhi saccanca dhammo ca
अहिंसा सम्यामो दमो
sa ve vantamalo(1) dhiro
"thero2" iti pavuccati.

---

श्लोक 260 : वह केवल इसलिए थेरा नहीं है क्योंकि उसके सिर के बाल सफेद हो गए हैं; जो केवल उम्र में परिपक्व होता है उसे "व्यर्थ में बूढ़ा" कहा जाता है।

---

श्लोक 261 : केवल वही बुद्धिमान व्यक्ति जो चार आर्य सत्यों और धम्म को समझता है, जो निर्दोष और गुणी है, जो अपनी इंद्रियों को संयमित करता है और नैतिक विकारों से मुक्त है, वास्तव में थेरा कहलाता है।

---

1. वंतामलो: शाब्दिक अर्थ, अशुद्धियाँ उल्टी कर दी हैं।
2. थेरो: एक वरिष्ठ, अर्थात् बौद्ध संघ का एक वरिष्ठ सदस्य; लेकिन अक्सर इसका प्रयोग सामान्य रूप से भिक्षुओं के लिए किया जाता है।

---

थेरा भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा भद्दिया के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (260) और (261) का उच्चारण किया। उन्हें लकुंदक भद्दिया के नाम से भी जाना जाता था क्योंकि वे कद में बहुत छोटे थे।

एक दिन तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। बुद्ध जानते थे कि उन तीस भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने कमरे में प्रवेश करते समय किसी थेरा को देखा था। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने किसी थेरा को नहीं देखा, बल्कि केवल एक युवा समनेरा को देखा। इस पर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! वह व्यक्ति समनेरा नहीं है, वह एक वरिष्ठ भिक्षु है, यद्यपि वह कद में छोटा और अत्यंत विनम्र है। मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति केवल इसलिए थेरा नहीं बन जाता क्योंकि वह वृद्ध है और थेरा जैसा दिखता है; केवल वही व्यक्ति थेरा कहलाता है जो चार आर्य सत्यों को समझता है और दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

---

श्लोक 260 : वह केवल इसलिए थेरा नहीं है क्योंकि उसके सिर के बाल सफेद हो गए हैं; जो केवल उम्र में परिपक्व होता है उसे "व्यर्थ में बूढ़ा" कहा जाता है।

---

श्लोक 261 : केवल वही बुद्धिमान व्यक्ति जो चार आर्य सत्यों और धम्म को समझता है, जो निर्दोष और गुणी है, जो अपनी इंद्रियों को संयमित करता है और नैतिक विकारों से मुक्त है, वास्तव में थेरा कहलाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय लकुंटक भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। वे कद में बहुत छोटे होने के कारण लकुंटक भद्दिया के नाम से भी जाने जाते थे।

एक दिन यह पूज्य भिक्षु बुद्ध से मिलने गए। उनके जाने पर तीस वनवासी भिक्षुओं ने उन्हें देखा। भिक्षु बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने यह जानकर कि वे अर्हत पद के योग्य हैं, उनसे पूछा, “क्या तुमने किसी पूज्य भिक्षु को इस स्थान से जाते देखा?” “नहीं, पूज्य भिक्षु, हमने नहीं देखा।” “नहीं देखा?” “हमने एक नवोदित भिक्षु को देखा, पूज्य भिक्षु।” “भिक्षुओं, वह नवोदित भिक्षु नहीं थे; वह पूज्य भिक्षु थे।” “वह अत्यंत युवा थे, पूज्य भिक्षु।” “भिक्षुओं, मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए पूज्य नहीं कहता कि वह वृद्ध है, या पूज्य भिक्षु के आसन पर बैठा है; बल्कि वह जो सत्यों को समझता है और सदा दूसरों के प्रति दयालु रहता है, वही वास्तव में पूज्य है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 260)

येना अस्सा सिरो पालिटं तेना थेरो न होति
तस्सा वायो परिपक्को मोघाजिनो इति वुकाति

येना : किसी कारण से; अस्सा : किसी का; सिरो पलिटं [ पलिता ]: बाल सफ़ेद हो जाते हैं; टेना : सिर्फ इसलिए; थेरो ना होती : कोई बड़ा नहीं बनता; तस्सा वायो : उसकी उम्र; परिपक्को [ परिपक्का ]: परिपक्व हो जाता है; मोघाजिनो इति : वर्षों में पका हुआ लेकिन पुण्य में नहीं; वुकाति : कहा जाता है

बाल सफेद हो जाने मात्र से कोई व्यक्ति बुजुर्ग नहीं बन जाता। जो व्यक्ति केवल उम्र में ही बूढ़ा हो जाता है, वह व्यर्थ ही परिपक्व हो जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 261)

यमहि सच्चं च धम्मो च अहिंसा सन्नमो
दमो वंतमालो सा धीरो वे थेरो इति पवुक्कति

यमहि : यदि किसी व्यक्ति में; सक्कं च : चार गुना सत्य; धम्मो सीए : बुद्ध की शिक्षा; अहिंसा : हानिरहितता; सन्नामो [ सन्नामा ]: संयम; दामो : अनुशासन (मौजूद हैं); वंतमालो [ वंतमाला ]: यदि उसने अपवित्रता के दाग से छुटकारा पा लिया है; सा : वह व्यक्ति; धीरो [ धीरा ]: प्रयास से भरा व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; थेरो [ थेरा ]: सच्चा बुजुर्ग; इति पवुक्कति : (उसे) कहा जाता है

मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सब मन से उत्पन्न होता है। मनुष्य के वचन और कर्म उसके मन से निकलते हैं। कभी-कभी उसका मन दूषित होता है—दुष्ट होता है। यदि वह दुष्ट मन से बोले या कार्य करे, तो उसका अपरिहार्य परिणाम दुख होता है। वह जहाँ भी जाए, यह

दुख उसका पीछा करता रहता है। वह इस दुख से छुटकारा नहीं पा सकता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाड़ी का पहिया बैल के कदमों का अनुसरण करता है, जो गाड़ी से जुता हुआ है। गाड़ी का पहिया बैल का पीछा करता रहता है। बैल उससे हमेशा के लिए बंधा रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 260-261)

थेरा : यह शब्द उन भिक्षुओं के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्होंने उच्च दीक्षा प्राप्त करने के बाद संघ में कम से कम दस वर्ष बिताए हों। थेरा का शाब्दिक अर्थ है सुस्थापित — दृढ़ और स्थिर। अंग्रेजी में, इस शब्द का सामान्यतः अनुवाद एल्डर (बुजुर्ग) होता है। जो भिक्षु संघ में बीस वर्ष पूरे कर लेते हैं, उन्हें महा थेरा (महान आदरणीय) कहा जाता है। संस्कृत में, थेरा के लिए शब्द स्थविर है । सच्चं : सत्य। यहाँ, चार आर्य सत्यों का तात्पर्य है।

धम्म : नौ अलौकिक अवस्थाओं को नौ लोकउत्तर धम्म के रूप में वर्णित किया गया है। ये चार मार्ग और चार फल हैं, और नौवां निर्वाण है। चार मार्ग और चार फल इस प्रकार हैं:

sotāpanna path
सोतापन्ना फल
सकादागामी पथ
सकादागामी फल
अनागामी पथ
अनागामी फल
अरहत पथ
अरहत फल
निब्बाण

जैसे रात्रि में यात्री बिजली की चमक से अपने आसपास के परिदृश्य को देखता है, और इस प्रकार प्राप्त चित्र उसकी चकाचौंध भरी आंखों के सामने बहुत देर तक तैरता रहता है, उसी प्रकार साधक अंतर्दृष्टि के चमकते प्रकाश से निर्वाण की ऐसी स्पष्टता से झलक पाता है कि वह चित्र उसके मन से कभी नहीं मिटता।

जब आध्यात्मिक तीर्थयात्री को पहली बार निर्वाण का अनुभव होता है, तो उसे सोतापन्न कहा जाता है , यानी वह व्यक्ति जिसने पहली बार निर्वाण की ओर ले जाने वाली धारा में प्रवेश किया है। यह धारा आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग का प्रतीक है।

धारा में जीत हासिल करने वाला व्यक्ति अब सांसारिक ( पुथुज्जना ) नहीं रहता, बल्कि आर्य (कुलीन) बन जाता है।

संतत्व की इस प्रथम अवस्था को प्राप्त करने पर, वह अस्तित्व से बंधे निम्नलिखित तीन बंधनों ( संयोजन ) को नष्ट कर देता है, जिन्हें इस प्रकार जाना जाता है:

(1) सक्काया - दिठ्ठी = सती + काये - दिठ्ठी - शाब्दिक अर्थ है, जब कोई समूह या यौगिक विद्यमान हो। यहाँ, काये से तात्पर्य पदार्थ, भावना, बोध, मानसिक अवस्थाओं और चेतना के पाँच समुच्चयों से है। यह धारणा कि जब मनो-शारीरिक समुच्चयों का एक जटिल यौगिक मौजूद हो, तब एक अपरिवर्तनीय सत्ता, एक स्थायी आत्मा विद्यमान होती है, सक्काया - दिठ्ठी कहलाती है । धम्मसंगनी ने ऐसे बीस प्रकार के आत्मा-सिद्धांतों का वर्णन किया है। सक्काया - दिठ्ठी को सामान्यतः आत्म-भ्रम, व्यक्तित्व का सिद्धांत या व्यक्तिवाद का भ्रम के रूप में समझा जाता है।

(2) विचिचिच्छा —संदेह। ये संदेह हैं (i) बुद्ध, (ii) धम्म, (iii) संघ, (iv) अनुशासनात्मक नियम ( सिक्खा ), (v) भूतकाल, (vi) भविष्यकाल, (vii) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों, और (viii) आश्रित उत्पत्ति ( पटिच्च - समुप्पाद )।

(3) सीलाब्बतपरमासा — (गलत) रीति-रिवाजों और समारोहों का पालन।

धम्मसंगानी इसे इस प्रकार समझाते हैं: "इस सिद्धांत से बाहर के तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह मत है कि शुद्धि नैतिक आचरण के नियमों, या अनुष्ठानों, या नैतिक आचरण के नियमों और अनुष्ठानों दोनों के द्वारा प्राप्त की जाती है।"

शेष सात बंधनों से मुक्ति पाने के लिए, सोतापन्न अधिकतम सात बार पुनर्जन्म लेता है। वह बुद्ध, धम्म और संघ में पूर्ण विश्वास प्राप्त करता है। वह किसी भी कारण से पांचों नियमों का उल्लंघन नहीं करता। वह दुखमय अवस्थाओं में पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह ज्ञान प्राप्ति के लिए नियत है।

निर्वाण के इस दूरस्थ दर्शन के परिणामस्वरूप नए साहस के साथ, महान तीर्थयात्री तेजी से प्रगति करता है और अपनी अंतर्दृष्टि को परिपूर्ण करते हुए, दो अन्य बंधनों - अर्थात्, इंद्रिय-इच्छाओं ( कामराग ) और द्वेष ( पटीघा ) को शिथिल करके एक सकदागामी (एक बार लौटने वाला) बन जाता है, जो संतत्व का दूसरा चरण है।

अब, उन्हें एक बार जन्म लेने वाला कहा जाता है क्योंकि यदि वे उसी जन्म में अर्हतत्व प्राप्त न कर लें तो वे केवल एक बार ही मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। यह रोचक तथ्य है कि आर्य संत, जो संतत्व की दूसरी अवस्था प्राप्त कर चुके हैं, वे अनादि काल से अपने

ऊपर बंधे इन दो शक्तिशाली बंधनों को केवल शिथिल कर सकते हैं। कभी-कभी, हालांकि थोड़ी मात्रा में, उनके मन में कामवासना और क्रोध के विचार आ सकते हैं।

संतत्व की तीसरी अवस्था, अनागामी (अनाद्दत्यम) की अवस्था प्राप्त करके ही वे इन दोनों बंधनों को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं। इसके बाद वे न तो इस संसार में लौटते हैं और न ही स्वर्गलोक में जन्म लेते हैं, क्योंकि उन्होंने इंद्रिय सुख की इच्छा को जड़ से उखाड़ फेंका होता है। मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म शुद्धावास में होता है , जो अनागामीयों के लिए आरक्षित वातावरण है । वहाँ वे अर्हतत्व प्राप्त करते हैं और जीवन के अंत तक वहीं निवास करते हैं।

जब कोई आम आदमी अनागामी बन जाता है तो वह ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता है।

अब अनागामी संत अपनी अंतिम यात्रा पर आगे बढ़ते हैं और शेष पाँच बंधनों—अर्थात्, रूपलोक से आसक्ति ( रूपराग ), निराकारलोक से आसक्ति ( अरूपराग ), अहंकार ( मान ), बेचैनी ( उद्धच्च ) और अज्ञान ( अविज्जा )—को नष्ट करके अरहतत्व प्राप्त करते हैं, जो संतत्व की अंतिम अवस्था है।

जो लोग एक बार प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं, एक बार लौट चुके हैं और कभी नहीं लौटते, उन्हें 'सेखा' कहा जाता है क्योंकि उन्हें अभी प्रशिक्षण प्राप्त करना बाकी है। अरहतों को ' असेखा ' कहा जाता है क्योंकि उन्हें अब कोई प्रशिक्षण नहीं लेना पड़ता।

अरहत, यानी एक योग्य व्यक्ति, पुनर्जन्म के अधीन नहीं होता क्योंकि वह नए कर्मों का संचय नहीं करता। उसके पुनर्जन्म के सभी बीज नष्ट हो चुके होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 262,263

---

(धम्मपद 260 और 261) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 262 और 263 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 264 और 265)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 262 और 263 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na vakkaranamattena
vannapokkharataya va
sadhurupo naro hoti
issuki macchari satho.
Yassa cetam samucchinnam
mulaghaccam samuhatam
sa vantadoso medhavi
"sadhurupo" ti vuccati.

---

श्लोक 262 : मीठी बातों से या अच्छे दिखने से कोई व्यक्ति नेक दिल नहीं हो सकता, यदि वह ईर्ष्यालु, कंजूस और धूर्त हो।

---

श्लोक 263 : जो बुद्धिमान व्यक्ति इन सब को काट कर, जड़ से उखाड़ कर और हटा कर नैतिक विकारों से मुक्त हो गया है, वही वास्तव में नेक दिल वाला व्यक्ति कहलाता है।

———————————————————————

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (262) और (263) का उच्चारण कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में किया जो अन्य भिक्षुओं से बहुत ईर्ष्या करते थे।

मठ में, युवा भिक्षु और समनेर अपने गुरुओं, यानी वरिष्ठ भिक्षुओं की सेवा करने के लिए जाने जाते थे। वे उनके वस्त्र धोते और रंगते थे, या उनके लिए अन्य छोटे-मोटे काम करते थे। कुछ भिक्षुओं ने इन सेवाओं को देखकर वरिष्ठ भिक्षुओं से ईर्ष्या की, और इसलिए उन्होंने एक ऐसी योजना बनाई जिससे उन्हें आर्थिक लाभ हो। उनकी योजना यह थी कि वे बुद्ध से यह सुझाव दें कि युवा भिक्षुओं और समनेरों को अपने-अपने गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी आगे की शिक्षा और मार्गदर्शन के लिए उनके पास आना अनिवार्य होना चाहिए। जब वे यह प्रस्ताव लेकर बुद्ध के पास गए, तो बुद्ध ने उनके इरादे को भली-भांति जानते हुए इसे अस्वीकार कर दिया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि तुम केवल इसलिए अच्छे हृदय के हो क्योंकि तुम धाराप्रवाह बोल सकते हो। केवल वही व्यक्ति अच्छे हृदय का कहलाता है जिसने अरहत मार्ग के द्वारा लोभ और सभी बुराइयों से मुक्ति प्राप्त कर ली हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 262 : मीठी बातों से या अच्छे दिखने से कोई व्यक्ति नेक दिल नहीं हो सकता, यदि वह ईर्ष्यालु, कंजूस और धूर्त हो।

———————————————————————

श्लोक 263 : जो बुद्धिमान व्यक्ति इन सब को काट कर, जड़ से उखाड़ कर और हटा कर नैतिक विकारों से मुक्त हो गया है, वही वास्तव में नेक दिल वाला व्यक्ति कहलाता है।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

एक समय की बात है, कुछ पूज्यजनों ने कुछ युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को अपने गुरुओं के वस्त्र रंगते और अन्य कार्य करते देखा। तब उन्होंने मन ही मन कहा, "हम स्वयं शब्दों को जोड़ने में तो कुशल हैं, परन्तु फिर भी हमें ऐसा सम्मान नहीं मिलता। मान लीजिए कि हम बुद्ध के पास जाकर उनसे कहें, 'पूज्यजन, पवित्र शास्त्र के अक्षरशः अर्थ में हम भी निपुण हैं; इन युवा भिक्षुओं और नौसिखियों को इस प्रकार आदेश दीजिए — यद्यपि आपने शास्त्र का ज्ञान दूसरों से प्राप्त किया है, परन्तु जब तक आप इन पूज्यजनों के मार्गदर्शन में शास्त्र का गहन अध्ययन न कर लें, तब तक उसका अभ्यास न करें।' इस प्रकार हमारा लाभ और सम्मान बढ़ेगा।"

तदनुसार, वे बुद्ध के पास गए और उन्हें अपनी सहमति के अनुसार सब कुछ बताया। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और उन्हें यह ज्ञान हुआ, "इस धर्म में, परंपरा के अनुसार, ऐसा कहना बिल्कुल उचित है। परन्तु ये पूज्यवर केवल अपना ही लाभ चाहते हैं।" इसलिए उन्होंने उनसे कहा, "मैं तुम्हें केवल तुम्हारी वाणी के कारण सिद्ध नहीं मानता। परन्तु वह व्यक्ति, जिसमें ईर्ष्या और अन्य बुरे गुण अरहतत्व के मार्ग से जड़ से उखड़ गए हों, वही वास्तव में सिद्ध है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 262)

वक्कारणमत्तेन वनपोक्खराटय वा

इस्सुकी मछरी साथो नरो साधुरूपो न होति

वाक्करणमत्तेन : केवल अलंकृत वाणी के कारण; वण्णपोक्खरताय वा : या रूप-रंग की सुंदरता के कारण; इस्सुकी : ईर्ष्यालु; मच्छरी : लालची; सठो [ सठ ]: कुटिल; नरो : मनुष्य; साधुरूपो [ साधुरूप ]: स्वीकार्य व्यक्ति; न होति : शोभा नहीं देता।

महज अपनी वाक्पटुता, प्रभावशाली बोलने के अंदाज या आकर्षक व्यक्तित्व के कारण, एक लालची, ईर्ष्यालु और कपटी व्यक्ति स्वीकार्य व्यक्ति नहीं बन जाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 263)

यस्सा एतं समुच्चिन्नं च मूलघक्कं समुहतां

वन्तदोसो मेधावी सो साधुरूपो इति वुकाति

yassa : यदि किसी एक व्यक्ति द्वारा; etaṃ : ये सभी बुराइयाँ; samucchinnaṃ [ samucchinna ] : जड़ से उखाड़ी जा रही हैं; ca : और; mūlaghaccaṃ [ mūlaghacca ] : जड़ से उखाड़ी जा रही हैं; samūhataṃ [ samūhata ] : पूर्णतः नष्ट की जा रही

हैं; vantadoso [ vantadosa ] : जिसने इन सभी बुराइयों का त्याग कर दिया है; medhāvi : बुद्धिमान; so : वह बुद्धिमान व्यक्ति; sādhurūpo iti : एक गुणी व्यक्ति; vuccati : कहलाता है

यदि किसी व्यक्ति ने इन सभी बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंका है और अपने दोषों से छुटकारा पा लिया है, तो ऐसा व्यक्ति वास्तव में एक स्वीकार्य व्यक्ति है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 262-263)

बुद्ध एक शिक्षक के रूप में : इन श्लोकों में, बुद्ध उन वरिष्ठ भिक्षुओं को फटकार लगाते हैं जो यह मानते हैं कि वे युवा भिक्षुओं को सिखाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं, केवल इसलिए कि वे शब्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर सकते हैं। बुद्ध कहते हैं कि एक कुशल आध्यात्मिक शिक्षक बनने के लिए शब्दों के चतुर प्रयोग से कहीं अधिक गुण आवश्यक हैं। अपने पूरे जीवन में, बुद्ध ने लोगों को आध्यात्मिक मामलों में — और कभी-कभी सांसारिक मामलों में भी — शिक्षा और मार्गदर्शन दिया। उन्होंने न केवल उपदेश दिया, बल्कि अपने उपदेशों के अनुसार जीवन भी जिया।

बुद्ध स्वयं उन सद्गुणों के साकार रूप थे जिनका उन्होंने उपदेश दिया। अपने सफल और घटनापूर्ण पैंतालीस वर्षों के उपदेश काल में उन्होंने अपने वचनों को कर्मों में उतारा। उन्होंने कभी भी मानवीय दुर्बलता या नीच वासना का प्रदर्शन नहीं किया। फिर भी बुद्ध की नैतिक संहिता विश्व में अब तक की सबसे परिपूर्ण नैतिक संहिता है।

पच्चीस शताब्दियों से भी अधिक समय से, लाखों लोगों ने उनके उपदेशों से प्रेरणा और शांति पाई है। उनका उपदेश आज भी थके हुए तीर्थयात्रियों को निर्वाण की सुरक्षा और शांति की ओर आमंत्रित करता है।

बुद्ध के लिए धर्म कोई सौदा नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग था। वे अंधविश्वासी अनुयायी नहीं चाहते थे; वे ऐसे अनुयायी चाहते थे जो स्वतंत्र और बुद्धिमानी से विचार कर सकें।

बुद्ध ने कभी किसी व्यक्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव नहीं दिखाया। यहाँ तक कि अपने विरोधियों और कट्टर शत्रुओं के प्रति भी उन्होंने कोई शत्रुता नहीं व्यक्त की। कुछ पूर्वाग्रही लोग बुद्ध के विरुद्ध हो गए और उन्हें जान से मारने की कोशिश की; फिर भी बुद्ध ने उन्हें कभी शत्रु नहीं माना। बुद्ध ने एक बार कहा था, "जैसे युद्ध के मैदान में हाथी तीर सह लेता है, वैसे ही मैं भी दूसरों के अपमान और शत्रुतापूर्ण शब्दों को सहन करूँगा।"

इतिहास में बुद्ध के समान किसी भी व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता जिन्होंने समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं को इतना समर्पित किया हो। ज्ञान प्राप्ति से लेकर जीवन के अंत तक उन्होंने मानव जाति के उत्थान के लिए अथक परिश्रम किया। वे दिन में केवल दो घंटे ही सोते थे। यद्यपि इस महान गुरु के निधन को पच्चीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, फिर भी उनका प्रेम और ज्ञान का संदेश आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है। यह संदेश आज भी मानवता के भाग्य को निर्णायक रूप से प्रभावित कर रहा है। वे परम करुणावान थे जिन्होंने इस संसार को प्रेम और करुणा से प्रकाशित किया।

निर्वाण प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने एक अमर संदेश छोड़ा जो आज भी हमारे बीच जीवित है। आज हम विश्व शांति के लिए एक गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। विश्व के इतिहास में कभी भी उनके संदेश की इतनी आवश्यकता नहीं रही जितनी आज है।

बुद्ध का जन्म अज्ञान के अंधकार को दूर करने और संसार को दुख और बीमारी, क्षय और मृत्यु तथा जीवित प्राणियों की चिंताओं और कष्टों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाने के लिए हुआ था।

सही समझ की दिशा में निर्देशित न होने वाली कोई भी बातचीत या चर्चा मोक्ष की ओर नहीं ले जाएगी। यही वह सिद्धांत था जिसने बुद्ध के उपदेशों का मार्गदर्शन किया।

बुद्ध उन आध्यात्मिक समस्याओं से चिंतित नहीं थे जो केवल मनुष्य को भ्रमित करती हैं और उसके मानसिक संतुलन को बिगाड़ती हैं। उनका समाधान निश्चित रूप से मानव जाति को दुख और कष्ट से मुक्ति नहीं दिलाएगा। यही कारण था कि बुद्ध ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में संकोच करते थे, और कई बार उन प्रश्नों की व्याख्या करने से भी बचते थे जो अक्सर गलत तरीके से पूछे जाते थे। बुद्ध एक व्यावहारिक शिक्षक थे। उनका एकमात्र उद्देश्य दुख , पीड़ा, जीवन के सार्वभौमिक सत्य की समस्या को विस्तार से समझाना, लोगों को इसकी पूरी शक्ति का अनुभव कराना और उन्हें इसके प्रति आश्वस्त करना था। उन्होंने स्पष्ट रूप से हमें बताया है कि वे क्या समझाते हैं और क्या नहीं समझाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 264,265

———————————————————————

(धम्मपद 262 और 263) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 264 और 265 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 266 और 267)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 264 और 265 - हत्थक वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na mundakena samano
abbato alikam bhanam
icchalobhasamapanno
samano kim bhavissati.
Yo ca sameti papani
anumthulani sabbaso
samitatta hi papanam
"samano" ti pavuccati.

---

श्लोक 264 : सिर मुंडवाने से कोई व्यक्ति समना नहीं बन जाता, यदि उसमें नैतिकता और कठोर आचरण का अभाव हो और वह झूठ बोलता हो। जो लोभ और लालच से भरा हो, वह समना कैसे हो सकता है?

---

श्लोक 265 : जिसने सभी प्रकार की बुराई, बड़ी और छोटी, पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर ली है, उसे समना कहा जाता है क्योंकि उसने सभी बुराई पर विजय प्राप्त कर ली है।

---

भिक्खु हत्थका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने हत्थक नामक भिक्षु के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (264) और (265) का उच्चारण किया। भिक्षु हत्थक को गैर-बौद्ध धर्मों के तपस्वियों को धार्मिक विषयों पर बहस करने के लिए किसी विशेष स्थान पर चुनौती देने की आदत थी। फिर वे अकेले ही उस स्थान पर चले जाते थे। जब कोई नहीं आता तो वे शेखी बघारते हुए कहते, "देखो, वे भटकते हुए तपस्वी मुझसे मिलने की हिम्मत नहीं करते, मैंने उन्हें हरा दिया है!", और इसी तरह की अन्य बातें कहते थे। बुद्ध ने हत्थक को अपने पास बुलाया और कहा, "भिक्षु! तुम ऐसा व्यवहार क्यों करते हो? जो ऐसी बातें कहता है, वह सिर मुंडवाने के बावजूद समन नहीं हो सकता। केवल वही समन कहलाता है जिसने अपने आप को सभी बुराइयों से मुक्त कर लिया हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 264 : सिर मुंडवाने से कोई व्यक्ति समना नहीं बन जाता, यदि उसमें नैतिकता और कठोर आचरण का अभाव हो और वह झूठ बोलता हो। जो लोभ और लालच से भरा हो, वह समना कैसे हो सकता है?

---

श्लोक 265 : जिसने सभी प्रकार की बुराई, बड़ी और छोटी, पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर ली है, उसे समना कहा जाता है क्योंकि उसने सभी बुराई पर विजय प्राप्त कर ली है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय हत्थका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने हत्थका नामक एक भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि जब भी हत्थक किसी वाद-विवाद में हार जाते थे, तो वे कहते थे, "कृपा करके फलां स्थान पर फलां समय पर आएं, हम फिर से चर्चा करेंगे।" फिर वे अपने प्रतिद्वंद्वी से पहले तय स्थान पर पहुँच जाते और कहते, "देखो! विधर्मी मुझसे इतना डरते हैं कि मुझसे मिलने की हिम्मत नहीं करते; यह उनकी हार की स्वीकारोक्ति है।" वे ऐसा ही और भी बहुत कुछ कहते थे। जब भी उन्हें हार का सामना करना पड़ता, वे एक के बाद एक प्रतिद्वंद्वी के साथ यही रणनीति अपनाते थे। बुद्ध ने जब सुना कि हत्थक ऐसा कर रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें बुलवाया और पूछा, "हत्थक, क्या यह खबर सच है कि तुम ऐसा कर रहे हो?" "हाँ, सच है," हत्थक ने उत्तर दिया। तब बुद्ध ने कहा, "तुम ऐसा क्यों करते हो? जो व्यक्ति इस तरह के झूठ बोलता है, उसे केवल सिर मुंडवाने मात्र से भिक्षु कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु जो छोटे-बड़े सभी पापों पर विजय प्राप्त करता है, वही सच्चा भिक्षु है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 264)

मुंदकेना समणो न अब्बतो अलिकं भाणं

इच्छा-लोभासमापन्नो किं समानो भविष्यति

मुंडकेन : मुंडे हुए सिर से; समानो न : कोई साधु नहीं बनता; अब्बतो [ अब्बता ]: सिद्धांतहीन; अलिकं भाणं [ भाण ]: झूठ बोलने के लिए दिया गया; इच्छा - लोभासमापन्नो [ लोभासमापन्न ]: वह इच्छा और लालच से भर गया; किं समणो भविष्यसति : साधु कैसे हो सकता है

क्या कोई ऐसा व्यक्ति जो धर्म का पालन नहीं करता, झूठ बोलता है और इच्छा और लोभ से भरा हुआ है, केवल सिर मुंडवाने के कारण तपस्वी बन सकता है?

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 265)

यो च अनुं थुलानि पापानि सब्बसो समेटि

पापानां समितत्त हि समानो इति पवुक्कति

यो च : यदि कोई; अनु : सूक्ष्म; थूलानि : विशाल; पापानि : बुरे कर्म; सब्बासो [ सब्बासा ] : पूरी तरह; समेति : शांत करता है; पापाना [ पापाना ] : बुरे कर्म; समितत्ता हि : (जैसे) पूरी तरह से मिटा दिया है; समणो [ समण ] : (वह) भिक्षु; इति पावुच्चति : कहलाता है

यदि कोई व्यक्ति सभी छोटे-बड़े पापों का निवारण कर लेता है, तो उसे तपस्वी कहा जाता है क्योंकि उसने पापों का निवारण कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 264-265)

जेतवन मठ : धम्मपद के अधिकांश श्लोक जेतवन मठ में ही रचे गए थे। अतः, धम्मपद के आध्यात्मिक निवास के रूप में इस मठ का विशेष महत्व है।

जेतवन मठ का निर्माण अनाथपिंडिक ने करवाया था, जो बौद्ध धर्म के सर्वकालिक समर्थकों में एक प्रमुख व्यक्ति थे। अनाथपिंडिक ने बुद्ध के उपदेश देने के तरीके की प्रशंसा की और बुद्ध के गृहस्थ शिष्य के रूप में त्रिरत्न की शरण ली। उन्होंने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को अगले दिन अपने बहनोई के निवास पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया और आदरपूर्वक बुद्ध से विदा ली।

राजगृह के करोड़पति ने जब अपने बहनोई द्वारा बुद्ध को आमंत्रित किए जाने की सूचना सुनी, तो उन्होंने कहा, "आप स्वयं यहाँ अतिथि हैं; इसलिए मैं आपके भिक्षादान संबंधी सभी खर्चों का प्रबंध करूँगा।" इस पर अनाथपिंडिका ने कहा, "धन्यवाद, हे करोड़पति, मेरे पास इसके लिए पर्याप्त धन है।" राजगृह के उपनगरों के प्रमुख और स्वयं राजा बिम्बिसार ने भी इसी प्रकार के प्रस्ताव रखे, परन्तु अनाथपिंडिका ने इनमें से कोई भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। भिक्षादान के समापन पर, अनाथपिंडिका ने बुद्ध को भिक्षुओं के समूह के साथ श्रावस्ती में निवास करने के लिए आमंत्रित किया।

"सुकून से गए लोग एकांत स्थानों में आनंदित होते हैं," बुद्ध ने कहा। "मैं जानता हूँ, पूज्यवर," अनाथपिंडिक ने कहा। बुद्ध ने अनाथपिंडिक को उपदेश दिया और वहाँ से चले गए। राजगृह में अपना कार्य समाप्त करने के बाद अनाथपिंडिक सावत्थी के लिए रवाना हुए। वे अनेक मित्रों और सहयोगियों वाले व्यक्ति थे और दूसरों को अच्छी सलाह देते थे। रास्ते में उन्होंने लोगों से कहा, "मित्रों, उद्यान बनाओ, मठ बनाओ और दान करो। बुद्ध संसार में जन्म ले चुके हैं। मैंने उन्हें सावत्थी का निमंत्रण दिया है; और वे इसी मार्ग से आएँगे।"

इस प्रकार अनाथपिंडिक से प्रेरित होकर लोगों ने बाग-बगीचे लगाने, मठों का निर्माण करने और भिक्षादान की व्यवस्था करने का काम शुरू कर दिया। अनाथपिंडिक के सावत्थी पहुँचते ही उन्होंने बुद्ध के निवास के लिए उपयुक्त स्थान की खोज की और राजकुमार जेत का बाग देखा। इसलिए वे राजकुमार से मिलने गए और बोले, "महोदय, क्या आप मुझे अपना बाग मठ बनाने के लिए देंगे?" राजकुमार ने कहा, "नहीं, मैं अपना बाग नहीं दूंगा, चाहे आप वहाँ एक अरब सोने के सिक्के ही क्यों न बिखेर दें।" इस पर करोड़पति ने कहा, "तो मैंने आपका बाग खरीद लिया है, राजकुमार।" दूसरे ने कहा, "नहीं।"

इस बात को लेकर विवाद कि क्या बगीचा अनाथपिंडिका द्वारा खरीदा गया था या नहीं, न्यायिक अधिकारियों के समक्ष ले जाया गया जिन्होंने अनाथपिंडिका के पक्ष में फैसला सुनाया, क्योंकि जमीन की खरीद तब हुई थी जब कीमत तय की गई थी।

अनाथपिंडिका एक अरब सोने के सिक्के गाड़ियों में भरकर लाया और ज़मीन को सोने से ढक दिया। लेकिन एक छोटा सा हिस्सा छूट गया, तो उसने अपने आदमियों को और सोने के सिक्के लाने का आदेश दिया ताकि बाकी हिस्से को भी ढका जा सके। तब राजकुमार जेत ने सोचा कि जिस कारण से करोड़पति अपना सोना दान कर रहा है, वह मामूली नहीं हो सकता, और उसने कहा, "नहीं, करोड़पति, आपको बाकी हिस्से को सोने से ढकने की ज़रूरत नहीं है। मैं वह ज़मीन दान कर देता हूँ।"

करोड़पति ने राजकुमार का अनुरोध मान लिया, क्योंकि राजकुमार एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और उनका संरक्षण बहुत मायने रखता था। राजकुमार ने उस क्षेत्र पर एक भवन का निर्माण करवाया। अनाथपिंडिका ने जेतवन में मठ, अध्ययन कक्ष, भंडारगृह, भिक्षागृह, अग्निगृह, शौचालय, स्नानघर, पैदल मार्ग, परिक्रमा मार्ग, कुएँ, तालाब, गर्म कमरे और मंडप बनवाए।

राजगृह में पर्याप्त समय व्यतीत करने के बाद, बुद्ध वैशाली की ओर प्रस्थान कर गए और उचित समय पर वैशाली पहुँच गए। वहाँ से वे सावत्थी पहुँचे और जेतवन मठ में आए। अनाथपिंडिक ने बुद्ध और भिक्षु समुदाय को दान दिया और बुद्ध की सलाह पर, जेतवन मठ को चारों दिशाओं के भिक्षु समुदाय को दान कर दिया, चाहे वे वहाँ उपस्थित हों या न हों।

समण : यह शब्द धार्मिक पुरोहितों को दर्शाने के लिए प्रयोग किया जाता है। बौद्ध संघ के सदस्यों को भी समण कहा जाता है। इस श्लोक में बुद्ध उस व्यक्ति का वर्णन करते हैं जो समण कहलाने के योग्य है ।

बुद्ध के चार शिष्यों - भिक्षु , भिक्षुणी , उपासक और उपासिका - में से भिक्षुओं का संघ सबसे अधिक बुद्ध से जुड़ा हुआ है। बौद्ध भिक्षु का कर्तव्य बुद्ध की शिक्षाओं का अध्ययन करना और इन शिक्षाओं के अनुसार मार्गदर्शन और सलाह देना है। उन्हें धार्मिक कर्तव्यों और अनुष्ठानों का पालन करना भी आवश्यक है। उनका कर्तव्य केवल बुद्ध के वचनों का संरक्षण करना ही नहीं है; उनका कर्तव्य विश्व भर में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करना भी है। भिक्षुओं से उचित मार्गदर्शन और सहायता प्राप्त किए बिना विश्व के किसी भी भाग में बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करना आसान नहीं है।

बौद्ध भिक्षुओं को पुजारी नहीं माना जाता क्योंकि वे ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ का कार्य नहीं करते। वे केवल मोक्ष की राह दिखाने का काम करते हैं। बुद्ध तक पहुँचने के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। किसी पुजारी या किसी विशेष व्यक्ति के हस्तक्षेप की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

संघ की स्थापना के प्रारंभ से ही भिक्षुओं के दो अलग-अलग समूह बने: ग्रंथ धुर और विदर्भ धुर । ग्रंथ धुर वे भिक्षु हैं जो जनता के साथ रहते हैं। वे समाज को अपनी धार्मिक सेवाएँ प्रदान करते हैं। शिक्षित युवा जो भिक्षु बनते हैं, वे आमतौर पर इस समूह में शामिल होते हैं। विदर्भ धुर वे भिक्षु हैं जो व्यस्त समाज से दूर रहकर अपना समय ध्यान में लगाते हैं। अधिकांश वृद्ध पुरुष जो भिक्षु बनते हैं, वे आमतौर पर इस समूह में शामिल होते हैं। जनता के साथ रहने वाले भिक्षुओं को अपने ध्यान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्हें प्रतिदिन कम से कम कुछ मिनट ध्यान के लिए समर्पित करने का प्रयास करना चाहिए। जो अपना समय केवल ध्यान में लगाते हैं, उन्हें दूसरों को ध्यान करने के आवश्यक निर्देश देने चाहिए। भिक्षुओं के दोनों समूह समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। कुछ बौद्ध देशों में, कुछ भिक्षु ध्यान के लिए निश्चित समय निर्धारित करते हैं; फिर वे समाज की सेवा में लौट आते हैं।

बौद्ध भिक्षु अत्यंत सरल जीवन व्यतीत करते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सहिष्णुता और संतोष से परिपूर्ण होता है। भिक्षुओं के निवास वाले मठों में शांति, सुकून और स्थिरता का वातावरण रहता है। कई भिक्षुओं के मुस्कुराते चेहरों पर शांति और स्थिरता का भाव झलकता है। उनके चेहरे पर गरिमा, कोमलता, वैराग्य और गृहस्थ जीवन की बाध्यताओं से मुक्ति का भाव दिखाई देता है। दयालुता, सत्यनिष्ठा और धर्म के प्रति समर्पण उनके कर्तव्य हैं।

कई बौद्ध देशों में, भिक्षु न केवल धार्मिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों में भी सेवा प्रदान करते हैं। वास्तव में, बौद्ध देशों में मठ पारंपरिक रूप से सामाजिक सेवा के केंद्र होते हैं।

यदि बुद्ध ने संघ की स्थापना न की होती, तो बुद्ध की शिक्षाएँ बहुत पहले ही इस संसार से लुप्त हो गई होतीं। बौद्ध सभाओं की परंपरा, जिसने बुद्ध के वचनों को निरंतर संरक्षित रखा है, भिक्षुओं द्वारा ही आरंभ की गई थी। बौद्ध धर्म के प्रामाणिक ग्रंथों और सिद्धांतों को उनके शुद्ध स्वरूप में संकलित करने के लिए अनेक सभाएँ आयोजित की गईं। बुद्ध के निधन के तुरंत बाद राजगृह में आयोजित प्रथम सभा की अध्यक्षता अरहंत महाकस्सपा ने की थी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 266,267

---

(धम्मपद 264 और 265) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 266 और 267 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 268 और 269)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 266 और 267 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena bhikkhu so hoti
yavata bhikkhate(1) pare
vissam dhammam samadaya
bhikkhu hoti na tavata.
Yo'dha punnanca papanca
बहेत्व ब्रह्मचरियवा
संख्या लोके चरती
sa ve "bhikkhu" ti vuccati.

---

श्लोक 266 : कोई व्यक्ति केवल भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े होने मात्र से भिक्षु नहीं बन जाता। वह धम्म के अनुरूप न होने वाले विश्वास के अनुसार कार्य करने से भी भिक्षु नहीं बन सकता।

---

श्लोक 267 : इस संसार में, जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों को त्याग देता है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, और खन्ध समुच्चयों का ध्यान करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

---

1. भिक्खते: शाब्दिक अर्थ, भीख मांगना।

---

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (266) और (267) का उच्चारण किया।

एक समय की बात है, एक ब्राह्मण भिक्षा मांगने का शौकीन था। एक दिन उसने सोचा, "समना गौतम ने कहा है कि जो भिक्षा मांगकर जीवन यापन करता है, वह भिक्षु होता है। इसलिए मुझे भी भिक्षु कहा जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा कि उसे (ब्राह्मण को) भी भिक्षु कहा जाना चाहिए, क्योंकि वह भी भिक्षा मांगता है। बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, मैं तुम्हें केवल भिक्षा मांगने से भिक्षु नहीं कहता। जो गलत धर्म का पालन करता है और उसी के अनुसार कार्य करता है, उसे भिक्षु नहीं कहा जा सकता। केवल वही भिक्षु कहलाता है जो समुच्चय की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का ध्यान करते हुए जीवन यापन करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 266 : कोई व्यक्ति केवल भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े होने मात्र से भिक्षु नहीं बन जाता। वह धम्म के अनुरूप न होने वाले विश्वास के अनुसार कार्य करने से भी भिक्षु नहीं बन सकता।

---

श्लोक 267 : इस संसार में, जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों को त्याग देता है, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, और खन्ध समुच्चयों का ध्यान करते हुए जीवन व्यतीत करता है, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने संसार त्याग दिया और एक विधर्मी संप्रदाय का भिक्षु बन गया। भिक्षा मांगने के दौरान उसने मन ही मन सोचा, "बुद्ध अपने शिष्यों को, जो भिक्षा मांगने जाते हैं, भिक्षु कहकर संबोधित करते हैं; उन्हें मुझे भी भिक्षु कहकर संबोधित करना चाहिए।" इसलिए वह बुद्ध के पास गया और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, मैं भी भिक्षा मांगकर अपना जीवन यापन करता हूँ; कृपया मुझे भिक्षु कहकर संबोधित करें।" लेकिन बुद्ध ने उससे कहा, "ब्राह्मण, मैं किसी व्यक्ति को केवल भिक्षा मांगने मात्र से भिक्षु नहीं कहता। क्योंकि जो व्यक्ति सभी गुणों का पालन करता है, वह भिक्षु नहीं होता। परन्तु जो व्यक्ति सभी गुणों का विवेकपूर्वक मूल्यांकन करता है और उसी के अनुसार कर्म करता है, वही वास्तव में भिक्षु है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 266)

यावता परे भिक्खते तेन भिक्खु न होति,

विस्सां धम्मं समादाय तवता भिक्खु न होति

यावता : क्योंकि (कोई); परे : दूसरों से; भिक्खते : भीख मांगता है; तेना : उसके द्वारा; भिक्खु न होती : (वह) भिक्षु नहीं बनता; विस्सं धम्मं [ धम्म ]: घृणित विश्वास; समादय : आलिंगन करना; तावता : उस हद तक; भिक्खु न होती : भिक्षु नहीं बनता

कोई भी व्यक्ति केवल दूसरों से भीख मांगने से भिक्षु नहीं बन जाता। भीख मांगने वाला व्यक्ति भी दुष्ट और घृणित मान्यताओं को अपनाने से भिक्षु नहीं बन जाता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 267)

इधा यो पुन्नं च पापं च बहेत्वा ब्रह्मचर्यव

लोके संखया चराति स वे भिक्खु इति वुकाति

इधा : इस (व्यवस्था) में; यो : यदि कोई; पुण्यं च : पुण्य; पापं च : और बुरे कर्म; बाहेत्वा : त्यागकर (ऊपर उठकर); ब्रह्मचर्यवा : उच्च अनुशासन का पालन करते हुए; लोके : इस संसार में; सांखाय : बुद्धिमानी से चिंतन करते हुए; चरति : यदि कोई जीवित रहता है; च : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; भिक्खु इति : एक भिक्षु; वच्चति : कहलाता है

जो व्यक्ति अच्छे और बुरे दोनों से ऊपर उठकर, बुद्धिमानी से चिंतन करते हुए उच्च अनुशासन के मार्ग पर चलता है, वही व्यक्ति वास्तव में भिक्षु कहलाने का पात्र है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 266-267)

बुद्ध का ब्राह्मणों से सामना : अपने सांसारिक जीवन के दौरान बुद्ध का सामना अधिकतर आक्रामक ब्राह्मणों से हुआ, जिन्होंने उनका विरोध किया। इनमें से एक अनाम ब्राह्मण है जिसके कारण ये श्लोक लिखे गए हैं। यद्यपि वह इतना महत्वपूर्ण नहीं था कि उसका नाम ज्ञात हो, फिर भी कुछ अन्य ब्राह्मण जिनसे बुद्ध को निपटना पड़ा, वे उल्लेखनीय रूप से प्रसिद्ध थे। उनमें से कुछ ये थे:

सोनदण्ड : बुद्ध, अनेक भिक्षुओं के एक समूह के साथ, अंग राज्य के चंपा नगर में पहुँचे और गग्गरा तालाब के किनारे ठहरे। उस समय ब्राह्मण सोनदण्ड चंपा में रह रहे थे और राजा बिम्बिसार द्वारा दान में दी गई भूमि का आनंद ले रहे थे।

शहर के लोग बुद्ध के गुणों और उपलब्धियों के बारे में सुनकर बड़ी संख्या में उस गग्गरा कुंड की ओर चल पड़े जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे। सोनदण्ड ने लोगों को बड़ी संख्या में कुंड की ओर जाते देखा और अपने सेवक से सुना कि वे बुद्ध के दर्शन करने जा रहे हैं। सोनदण्ड ने अपने सेवक से कहा कि वह लोगों को बता दे कि वह स्वयं भी उनके साथ बुद्ध के दर्शन करना चाहता है।

चंपा में आए लगभग पाँच सौ ब्राह्मणों को सोनदण्ड की बुद्ध दर्शन की इच्छा का पता चला और वे उनके पास जाकर उनसे कहने लगे कि बुद्ध से मिलने जाना उनके लिए उचित नहीं है, और उचित तो यह है कि बुद्ध स्वयं आकर सोनदण्ड से मिलें। जब इन ब्राह्मणों ने सोनदण्ड को उनके जन्म, गुणों और उपलब्धियों की याद दिलाई, तो उन्होंने बुद्ध के उच्च जन्म, सर्वोच्च गुणों और उपलब्धियों का विस्तृत वर्णन किया। अंततः, सोनदण्ड उन्हें बुद्ध की महानता के बारे में आश्वस्त करने में सफल हुए और उनके साथ बुद्ध से मिलने गए।

सोनदण्ड ने बुद्ध से वार्तालाप किया और उनके उपदेशों की लंबी व्याख्या सुनी। बुद्ध की शिक्षाओं से पूर्णतः संतुष्ट होकर उन्होंने त्रिरत्न की शरण ली और आजीवन बुद्ध भक्त बन गए। बुद्ध और भिक्षुओं को भोजन पर आमंत्रित करने के बाद, उन्होंने अगले दिन अपने निवास पर उन्हें दान दिया।

कुटदंत । जब बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ मगध में यात्रा कर रहे थे, तब वे ब्राह्मणों के गाँव खानुमाता पहुँचे और वहाँ के आम के बाग में ठहरे। उस समय ब्राह्मण कुटदंत राजा बिम्बिसार द्वारा दान में दिए गए इस गाँव में रह रहे थे। उन्होंने बड़े पैमाने पर पशु बलि की तैयारी भी कर रखी थी और प्रत्येक समूह में सात सौ की संख्या में गाय, बछड़े, बकरियाँ और मेमने बलि के लिए बाँधे गए थे।

गांव के लोग बड़ी संख्या में बुद्ध के दर्शन के लिए आम के बाग में जा रहे थे, और उन्हें कूटदंत ने देख लिया। जब उन्हें उनके आने का उद्देश्य पता चला, तो उन्होंने भी उनके साथ जाने की इच्छा व्यक्त की। हालांकि, यज्ञ में भाग लेने आए सैकड़ों ब्राह्मणों ने उन्हें बुद्ध के दर्शन के लिए जाने से रोकने की कोशिश की और उनकी प्रतिष्ठा और उपलब्धियों का बड़े-बड़े शब्दों में वर्णन किया। उनकी बातें सुनने के बाद, कूटदंत ने उन्हें बुद्ध की सर्वांगीण महानता के बारे में बताया और उन्हें बुद्ध की महानता का विश्वास दिलाने के बाद, वे उनके साथ आम के बाग में उनके दर्शन के लिए चले गए।

बुद्ध ने उन्हें एक लंबा प्रवचन दिया, जिसमें मुख्य रूप से नैतिकता और उपदेशों के पालन पर बल दिया गया और चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन किया गया। कूटदंत ने प्रवचन सुनते हुए सोतापत्ति के फल को अनुभव किया। उन्होंने पशु बलि त्याग दी और अगले दिन यज्ञशाला में बुद्ध और भिक्षुओं को दान दिया।

पोक्खरसाती । जब बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ कोसल राज्य में यात्रा कर रहे थे, तब वे इच्छानांगल नामक ब्राह्मण गाँव में आए और इच्छानांगल उपवन में समय व्यतीत करने लगे। उस समय ब्राह्मण पोक्खरसाती उक्कट्ठा नगर में रह रहे थे और वहाँ की आय का आनंद ले रहे थे। यह नगर उन्हें कोसल के राजा पसेनदी ने दान में दिया था।

पोक्खरसाती के अधीन अंबट्ठ नामक एक विद्वान शिष्य था। उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि वह वन में जाकर बुद्ध के दर्शन करे और यह पता लगाए कि क्या बुद्ध वास्तव में उतने ही महान थे जितना कि लोग उन्हें मानते हैं। शिष्य ने गुरु से पूछा कि वह कैसे पता लगा सकता है कि बुद्ध वास्तव में उतने ही महान हैं जितना कि उन्हें माना जाता है। गुरु ने अपने शिष्य को सलाह दी कि वह बुद्ध में एक महान व्यक्ति के बत्तीस लक्षण देखे, क्योंकि उनके उपदेशों के अनुसार, ऐसा व्यक्ति यदि गृहस्थ बना रहता है तो वह विश्व सम्राट बनेगा, और यदि वह संसार का त्याग कर लेता है तो पूर्णतः प्रबुद्ध संत बनेगा।

अंबट्ठ ने अपने गुरु से विदा ली और कई युवकों के साथ रथ पर सवार होकर उस वन में गए जहाँ बुद्ध निवास करते थे। बाहर खड़े भिक्षुओं के निर्देशानुसार जब उन्होंने बुद्ध के कक्ष का द्वार खटखटाया, तो बुद्ध ने द्वार खोल दिया। अंबट्ठ अपने अनुयायियों के साथ कक्ष में प्रवेश कर गए और बैठ गए। वे खड़े-खड़े चलते हुए बुद्ध से बातें करते रहे।

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने गुरुओं और बड़ों से इसी तरह बात करते थे? उन्होंने कहा कि उनके साथ उनका व्यवहार अलग था, लेकिन मुंडे हुए सिर वाले काले भिक्षुओं से वे इसी तरह बात करते थे। बुद्ध ने टिप्पणी की कि वे कम पढ़े-लिखे और अनुशासनहीन हैं। तब अंबत्थ ने शाक्यों वंश की आलोचना की और उनके बारे में अपमानजनक शब्द कहे। बुद्ध ने उन्हें याद दिलाया कि वे शाक्यों वंश की एक दासी के वंशज हैं, और उन्होंने यह बात स्वीकार कर ली।

बुद्ध के लंबे प्रवचन को सुनने और यह सुनिश्चित करने के बाद कि उनमें बत्तीस महान लक्षण हैं, अंबट्ठ ने बुद्ध से विदा ली और अपने गुरु पोक्खरसाती के पास गए। उन्होंने पोक्खरसाती को बताया कि बुद्ध में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं और उन्होंने उनसे लंबी बातचीत की है। जब पोक्खरसाती ने सुना कि उनके शिष्य ने बुद्ध से क्या कहा, तो वे क्रोधित हो गए और उन्होंने गुस्से में अंबट्ठ को लात मार दी।

पोक्खरसाती ने तुरंत बुद्ध के पास जाकर अपने शिष्य की कमियों के लिए उनसे क्षमा मांगी और बुद्ध के उपदेश सुने। उन्होंने उपदेश को समझा और त्रिरत्न की शरण ली तथा आजीवन बुद्ध के भक्त के रूप में स्वयं को समर्पित कर दिया।

जानुसोनी । जानुसोनी एक विद्वान ब्राह्मण थे जो कोसल राज्य के मानसाकट नामक ब्राह्मण गाँव में रहते थे। जब बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन मठ में निवास कर रहे थे, तब जानुसोनी दोपहर के समय श्रावस्ती नगर से होकर गुजर रहे थे, उनके रथ को श्वेत घोड़ियाँ खींच रही थीं। रास्ते में उनकी मुलाकात घुमंतू तपस्वी पिलोतिक से हुई और उन्होंने उनसे पूछा कि वे कहाँ से आ रहे हैं। पिलोतिक ने बताया कि वे पूज्य गौतम से मिलने आ रहे हैं।

"आप पूज्य गौतम के बारे में क्या सोचते हैं? क्या वे अत्यंत ज्ञानी हैं? क्या वे बहुत विद्वत्तापूर्ण हैं?" जानूसोनी ने पूछा। "मैं कौन होता हूँ पूज्य गौतम की बुद्धिमत्ता को समझने और उनके ज्ञान का आकलन करने वाला? केवल गौतम जैसे भिक्षु ही उनकी बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता को माप और आंक सकते हैं।"

"आप गौतम भिक्षुओं की बहुत प्रशंसा कर रहे हैं," जानुसोनी ने कहा। "मैं कौन होता हूँ गौतम भिक्षुओं की प्रशंसा करने वाला? उनकी प्रशंसा तो प्रशंसनीय लोग ही करते हैं। वे सभी देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं," पिलोतिका ने कहा। जानुसोनी ने पूछा, "आप गौतम भिक्षुओं से इतने प्रसन्न कैसे हो गए?" पिलोतिका ने हाथी के चरणों के उपमा का प्रयोग करते हुए बुद्ध की महानता का वर्णन किया। पिलोतिका की बात सुनकर जानुसोनी बुद्ध से मिलने के लिए शीघ्रता से गए और उनसे मुलाकात की। उन्होंने बुद्ध को वे सभी बातें बताईं जो पिलोतिका ने हाथी के चरणों के उपमा का प्रयोग करते हुए बुद्ध के बारे में कही थीं। बुद्ध ने उपमा पर प्रवचन पूरा किया और चूलाहत्तिपादोपमा सूत्र का पूर्ण उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में, जानुसोनी ने बुद्ध की प्रशंसा की और जीवन भर के लिए उनके शिष्य बन गए।

एक अन्य अवसर पर, बुद्ध ने उन्हें भयभेरव सूत्र का उपदेश दिया, जिसमें उन्होंने कारण और प्रभाव के सिद्धांत की व्याख्या की और कहा कि उनका सिद्धांत एक मध्यम मार्ग की शिक्षा है जो भौतिकवाद और शून्यवाद दोनों से बचती है।

सेला और केनिया । जब बुद्ध अंगुत्तरापा क्षेत्र में एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के साथ यात्रा कर रहे थे, तब वे आपाना के उपनगर में पहुँचे। जटाधारी तपस्वी केनिया, जिन्होंने बुद्ध की महानता के बारे में बहुत कुछ सुना था, उनसे मिलने गए। बुद्ध के उपदेश सुनने के बाद वे उनसे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें भिक्षुओं के समुदाय में भिक्षा देने के लिए आमंत्रित किया।
लेकिन बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया, क्योंकि भिक्षुओं का समुदाय बड़ा था और केनिया ब्राह्मणों के अनुयायी थे। जब केनिया ने तीसरी बार विनती की और अपना अनुरोध किया, तो बुद्ध ने मौन ही उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। केनिया अपने आश्रम गए और अपने मित्रों और रिश्तेदारों की सहायता से बुद्ध के सम्मान में आयोजित भव्य भोज की सभी तैयारियाँ कीं। मंडप का निर्माण कार्य स्वयं केनिया ने करवाया।
जब ये तैयारियाँ चल रही थीं, तब सेला नामक एक उच्च शिक्षित ब्राह्मण, जो तीन सौ शिष्यों के गुरु और केनिया के अनुयायी थे, उस स्थान पर आए और यह जानने की कोशिश की कि ये तैयारियाँ किस लिए की जा रही हैं। उन्हें पता चला कि ये तैयारियाँ बुद्ध के लिए की जा रही हैं, जो उनके उपनगर आपाना में निवास कर रहे थे। जब सेला ने बुद्ध के व्यक्तित्व को देखा, जो एक महान व्यक्तित्व के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण थे, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कई श्लोकों में बुद्ध के व्यक्तित्व की प्रशंसा की। बुद्ध द्वारा उत्तर दिए जाने पर, उन्होंने दीक्षा का अनुरोध किया और अपने अनुयायियों के साथ संघ में प्रवेश किया और उच्च दीक्षा प्राप्त की। समय आने पर वे सभी दीक्षित हो गए।
अगले दिन, केनिया ने अपने आश्रम में बुद्ध और भिक्षुओं के समुदाय को एक भव्य भोज दिया, जिसके अंत में बुद्ध ने दो श्लोकों में उन्हें पुण्य प्रदान किया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 268,269

———————————————————————

(धम्मपद 266 और 267) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 268 और 269 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 270)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 268 और 269 - तित्थिया वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
न मोनेना मुनि होतिमुलहरूपो अविद्दसु
yo ca tulamva paggayha
varama(1) daya pandito.
पापनी परिवज्जेती
sa muni tena so muni
यो मुनति उभो लोके(2)
"muni" tena pavuccati.

———————————————————————

श्लोक 268 एवं 269: मौन रहकर कोई मुनि नहीं बन जाता, यदि वह मंदबुद्धि और अज्ञानी हो। तराजू के समान, बुद्धिमान व्यक्ति अच्छाई को ग्रहण करता है और बुराई को त्याग देता है। इसी कारण वह मुनि कहलाता है। जो आंतरिक और बाह्य दोनों तत्वों को समझता है, वह भी इसी कारण मुनि कहलाता है।

———————————————————————

1. वरम: सर्वश्रेष्ठ, अच्छा, श्रेष्ठ। इस संदर्भ में इसका अर्थ है नैतिकता (शील), एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान (पन्न), आदि।

2. उभो लोके: शाब्दिक अर्थ, दोनों लोक, जिसका अर्थ है आंतरिक और बाह्य समूह, या स्वयं के समूह और साथ ही दूसरों के समूह।

———————————————————————————

गैर-बौद्ध सिद्धांतों के अनुयायियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ गैर-बौद्ध तपस्वियों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (268) और (269) का उच्चारण किया।

जो लोग उन्हें भोजन या अन्य वस्तुएँ भेंट करते थे, उन्हें वे तपस्वी आशीर्वाद देते थे। वे कहते थे, "आप खतरे से मुक्त रहें, आप समृद्ध और धनी हों, आप दीर्घायु हों," इत्यादि। उस समय, बुद्ध के अनुयायी अपने गृहस्थ शिष्यों से कुछ भी ग्रहण करने के बाद कुछ नहीं कहते थे। इसका कारण यह था कि बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद पहले बीस वर्षों तक उन्हें भेंट ग्रहण करते समय मौन रहने का निर्देश दिया गया था। चूंकि बुद्ध के अनुयायी अन्य मतों के तपस्वियों द्वारा अपने शिष्यों को प्रसन्न करने वाली बातें कहने पर मौन रहते थे, इसलिए लोगों ने दोनों समूहों की तुलना करना शुरू कर दिया।

जब बुद्ध को इस बात का पता चला, तो उन्होंने भिक्षुओं को दान ग्रहण करने के बाद अपने शिष्यों को आशीर्वाद देने की अनुमति दी। इसके परिणामस्वरूप, अधिक से अधिक लोग बुद्ध के अनुयायियों को भिक्षा के लिए आमंत्रित करने लगे। तब अन्य संप्रदायों के तपस्वियों ने तिरस्कारपूर्वक कहा, “हम मुनि के मार्ग पर चलते हैं और मौन रहते हैं, जबकि समना गौतम के अनुयायी भोजनालयों में उत्साहपूर्वक बातें करते फिरते हैं।” इन अपमानजनक टिप्पणियों को सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं! कुछ लोग अज्ञान और भय के कारण मौन रहते हैं, और कुछ लोग अपने गहन ज्ञान को दूसरों के साथ साझा नहीं करना चाहते। केवल वही व्यक्ति मुनि कहलाता है जिसने बुराई पर विजय प्राप्त की हो।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 268 एवं 269: मौन रहकर कोई मुनि नहीं बन जाता, यदि वह मंदबुद्धि और अज्ञानी हो। तराजू के समान, बुद्धिमान व्यक्ति अच्छाई को ग्रहण करता है और बुराई को त्याग देता है। इसी कारण वह मुनि कहलाता है। जो आंतरिक और बाह्य दोनों तत्वों को समझता है, वह भी इसी कारण मुनि कहलाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गैर-बौद्ध सिद्धांतों के अनुयायियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ गैर-बौद्ध तपस्वियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कहा जाता है कि जब भी विधर्मी किसी स्थान पर भोजन करते थे, तो वे अपने मेज़बानों से कहते थे, “आपको शांति मिले, आपको सुख मिले, आपकी आयु लंबी हो। फलाँ स्थान पर कीचड़ है, फलाँ स्थान पर काँटे हैं; उस स्थान पर मत जाओ।” इस प्रकार वे धन्यवाद और शुभकामनाएँ व्यक्त करते थे और ऐसा करने के बाद ही वे प्रस्थान करते थे। लेकिन ज्ञानोदय के प्रारंभिक काल में, धन्यवाद कहने का नियम लागू होने से पहले, भिक्षु अपने मेज़बानों को एक शब्द भी धन्यवाद कहे बिना भोजनालय से प्रस्थान कर जाते थे। इससे लोग नाराज़ हुए और कहने लगे, “हम विधर्मियों से धन्यवाद और शुभकामनाएँ सुनते हैं, लेकिन पूज्य भिक्षु पूरी तरह मौन होकर प्रस्थान करते हैं।” भिक्षुओं ने यह बात बुद्ध को बताई।

बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, अब से भोजनालयों और ऐसे अन्य स्थानों में अपनी इच्छा अनुसार धन्यवाद दें और अपने मेज़बानों के पास बैठकर उनसे मधुरता से बात करें।” इस प्रकार बुद्ध ने उन्हें धन्यवाद देने का आदेश दिया और उन्होंने उनके आदेश का पालन किया। जब लोगों ने धन्यवाद के शब्द सुने, तो उन्होंने और अधिक प्रयास किए, भिक्षुओं को अपने घरों में भोजन के लिए आमंत्रित किया और उन्हें भरपूर भेंटें दीं। तब विधर्मी नाराज हो गए और कहने लगे, “हम तो ऋषि हैं और मौन रहते हैं, परन्तु बुद्ध के शिष्य भोजनालयों और ऐसे अन्य स्थानों में लंबे-लंबे प्रवचन देते हैं।” जब बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं, तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं, मैं किसी व्यक्ति को केवल मौन रहने से ऋषि नहीं कहता। क्योंकि कुछ लोग अज्ञानता के कारण चुप रहते हैं, कुछ आत्मविश्वास की कमी के कारण, और कुछ इतने कंजूस होते हैं कि वे दूसरों को वह ज्ञान भी सीखने से रोकते हैं जो वे स्वयं जानते हैं। इसलिए, मैं कहता हूँ कि कोई व्यक्ति केवल मौन रहने से ऋषि नहीं कहलाता; बल्कि वह बुराई को दबाने के कारण ऋषि कहलाता है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 268)

मूहरूपो अविद्दसु मोनेना मुनि न होति

पण्डितो यो च तुलां पग्गयः इव वरं अदायः

मूलहरूपो [ आदाय मूलहरूप ]: मूर्खतापूर्ण आचरण वाला; अविद्दसु : अज्ञानी; मोनेना : केवल मौन रहने के अनुष्ठान से; मुनी न होति : ऋषि नहीं बनता; पंडितो [ पंडित ]: बुद्धि से संपन्न; यो च : कोई; तुलं पग्गयह इव : तराजू पकड़े हुए व्यक्ति के समान; वरं आदाय : श्रेष्ठ का निर्णय करने वाला

अज्ञानी व्यक्ति, जो मूर्खतापूर्ण आचरण रखता है और भ्रमित प्रतीत होता है, मुनियों के समान मौन का अभ्यास कर सकता है । परन्तु इससे वह ऋषि नहीं बन जाता। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति तराजू की तरह अच्छे और बुरे का तौल करता है और श्रेष्ठ का चयन करता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 269)

पापानि परिवज्जेति , स मुनि । तो तेना मुनि ,

यो उभो लोके मुनाति , तेना मुनि पवुक्कति ।

पापानी परिवज्जेति : (वह) बुराई से छुटकारा दिलाता है; स : फलस्वरूप; मुनी सो : मुनि (ऋषि) के रूप में वर्णित है ; तेन : इसलिए; मुनी : वह ऋषि; यो : वह जो; उभो लोके : दोनों लोकों (आंतरिक और बाह्य); मुनाति : अपनी बुद्धि से समझता है; तेन : इसी कारण; मुनी पवुच्चति : मुनि (ऋषि) के रूप में वर्णित है।

सही और गलत का विवेक रखते हुए, वे बुराई से दूर रहते हैं। इसी कारण वे मुनि कहलाते हैं । वे अपने विद्वत्तापूर्ण ज्ञान से दोनों लोकों का संतुलन स्थापित करने में सक्षम हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 268-269)

विधर्मी : अनेक अवसरों पर संन्यासियों ने बुद्ध और उनकी शिक्षाओं के बारे में प्रतिकूल अफवाहें फैलाईं। ये श्लोक भी विधर्मियों द्वारा बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के ऐसे ही प्रयास के कारण रचे गए हैं। बुद्ध के चरित्र को कलंकित करने के विधर्मियों के कुछ प्रयासों ने भयावह रूप धारण कर लिया। यहाँ ऐसे ही कुछ प्रयासों का वर्णन है।

एक समय जब बुद्ध जीतावन मठ में निवास कर रहे थे, तब विधर्मी अपने भविष्य को लेकर बहुत चिंतित थे। बुद्ध और भिक्षु समुदाय को जनता द्वारा बहुत सम्मान, आदर, देखभाल और आज्ञापालन प्राप्त था, और उन्हें भोजन, वस्त्र, आसन, औषधियाँ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जाती थीं। दूसरी ओर, विधर्मियों को उतना सम्मान, आदर, देखभाल और आज्ञापालन प्राप्त नहीं था, और उन्हें भोजन, वस्त्र, आसन, औषधियाँ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थीं।

विधर्मी इस स्थिति का सामना करने में असमर्थ थे, इसलिए वे एक महिला तपस्वी के पास गए, जो अपने शारीरिक सौंदर्य के कारण सुंदरी (सुंदरता) के नाम से प्रसिद्ध थी। वह कम उम्र की थी, लेकिन उसका चरित्र सुचारु नहीं था। विधर्मियों की योजना इस तपस्वी के माध्यम से बुद्ध और भिक्षुओं के चरित्र और प्रतिष्ठा पर हमला करने की थी।

उन्होंने उससे पूछा, "बहन, क्या आप अपने रिश्तेदारों के लिए कुछ कर सकती हैं?" "आप मुझसे क्या करवाना चाहते हैं? मैं आपके लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ। मैं अपने रिश्तेदारों के लिए अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार हूँ," महिला तपस्वी ने आश्वासन दिया।

विधर्मियों ने उससे कहा कि वह तुरंत जेतवन जाए और नियमित रूप से वहाँ जाती रहे। तदनुसार, उसने सज-धज कर जेतवन जाना शुरू किया, उस समय जब लोग बुद्ध के प्रवचन सुनकर मठ से लौट रहे होते थे। जब लोगों ने उससे पूछा कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने कहा कि वह बुद्ध के साथ सुगंधित कक्ष में रात्रि व्यतीत करने जा रही है। वास्तव में वह विधर्मियों के एक आश्रम में रात्रि व्यतीत करती और सुबह जल्दी जेतवन मठ से होकर शहर लौट आती। जब लोगों ने उससे पूछा कि वह कहाँ से आ रही है, तो उसने कहा कि वह बुद्ध के सुगंधित कक्ष में रात्रि व्यतीत करने के बाद घर लौट रही है।

एक दिन विधर्मियों ने कुछ भाड़े के गुंडों से इस महिला तपस्वी की हत्या करवा दी और उसे जीतावन मठ की खाई में एक गड्ढे में दफना दिया, और फिर राजा पसेनादि के पास जाकर शिकायत की कि सुंदरी लापता है।

"तुम्हें क्या लगता है कि वह कहाँ हो सकती है?" राजा ने पूछा। "जेतवन मठ में," उन्होंने तुरंत उत्तर दिया।

राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर वे उसे महल में ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, "हे महाराज, बुद्ध के अनुयायियों ने इस परिब्बाजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।" राजा ने उत्तर दिया, "तो फिर आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।" इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाने लगे, "देखो बुद्ध के अनुयायियों ने क्या किया है; देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!" फिर जुलूस महल लौट आया।

इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने उन्हें आदेश दिया कि वे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करें।

इसलिए वे पूरे शहर में घूम-घूमकर कहने लगे, 'सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उनके शिष्यों पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।' इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध के प्रति सम्मान बहुत बढ़ गया, जिससे उनकी महिमा हुई।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 270

———————————————————————————

(धम्मपद 268 और 269) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 270 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 271 और 272)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 270 - बालिसिका वत्थु

———————————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Na tena ariyo hoti
yena panani himsati
अहिंसा सब्बपपनाम
"ariyo" ti pavuccati.

———————————————————————————

श्लोक 270 : जो किसी जीव को हानि पहुँचाता है, वह इसी कारण आर्य (महान) नहीं कहलाता; जो किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वही आर्य कहलाता है।(1)

———————————————————————————

1. अरिया: वह व्यक्ति जिसने चार मार्गों में से किसी एक को प्राप्त कर लिया हो।

———————————————————————————

आरिया नाम के एक मछुआरे की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने आर्य नामक एक मछुआरे के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (270) कहा।

एक समय की बात है, श्रावस्ती के उत्तरी द्वार के पास एक मछुआरा रहता था। एक दिन बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि मछुआरे के लिए सोतापत्ति फल प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए भिक्षाटन से लौटते समय, बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ उस स्थान के पास रुके जहाँ आर्य मछली पकड़ रहा था। जब मछुआरे ने बुद्ध को देखा, तो उसने अपने मछली पकड़ने के उपकरण फेंक दिए और बुद्ध के पास आकर खड़ा हो गया। तब बुद्ध ने मछुआरे की उपस्थिति में अपने भिक्षुओं के नाम पूछे और अंत में मछुआरे का नाम पूछा। जब मछुआरे ने उत्तर दिया कि उसका नाम आर्य है, तो बुद्ध ने कहा कि आर्य किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाते, लेकिन चूंकि मछुआरा मछलियों का जीवन ले रहा था, इसलिए वह आर्य नाम के योग्य नहीं था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 270 : जो किसी जीव को हानि पहुँचाता है, वह इसी कारण आर्य (महान) नहीं कहलाता; जो किसी जीव को हानि नहीं पहुँचाता, वही आर्य कहलाता है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आरिया नाम के एक मछुआरे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आर्य नामक एक मछुआरे के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, श्रावस्ती के उत्तरी द्वार के पास एक मछुआरा रहता था। एक दिन बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से देखा कि मछुआरे के लिए सोतापत्ति पुण्य प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ उस स्थान के पास रुके जहाँ आर्य मछली पकड़ रहा था। जब मछुआरे ने बुद्ध को देखा, तो उसने अपने मछली पकड़ने के उपकरण फेंक दिए और बुद्ध के पास आकर खड़ा हो गया। तब बुद्ध ने मछुआरे की उपस्थिति में अपने भिक्षुओं के नाम पूछे और अंत में मछुआरे का नाम पूछा। जब मछुआरे ने अपना नाम आर्य बताया, तो बुद्ध ने कहा कि आर्य किसी भी जीव को हानि नहीं पहुँचाते, लेकिन चूंकि मछुआरा मछलियों का जीवन ले रहा था, इसलिए वह आर्य नाम के योग्य नहीं था। प्रवचन के अंत में, मछुआरे ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त कर लिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 270)
येना पनानि हिंसति तेन अरीयो न होति
सब्बापानं अहिंसा अरियो इति पावुक्कति
येन : यदि कोई; पाणानि : जीव; हिंसति : पीड़ा पहुँचाता है; तेन : इसके कारण; अरियो [ अरिया ]: एक श्रेष्ठ व्यक्ति; न होति : (वह) नहीं बनता; सब्बपाणानं [ सब्ब्याणान ]: सभी जीव; अहिंसा : पीड़ा नहीं पहुँचाता; अरियो इति पावुच्चति : (इसके कारण) उसे श्रेष्ठ कहा जाता है
जो व्यक्ति जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाता है, वह नेक इंसान नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति, जो किसी भी जीवित प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, उसे अरियो , यानी नेक इंसान कहा जाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 270)
अहिंसा : अहिंसा। बौद्ध नैतिकता का सर्वव्यापी सार अहिंसा है । इस अवधारणा की व्याख्या सम्राट अशोक ने अमरतापूर्वक की, जिनके प्रचारकों ने बुद्ध के संदेश को उस समय के ज्ञात विश्व के अधिकांश केंद्रों तक पहुँचाया। चार वर्षों तक अशोक, यद्यपि वास्तव में अपने राज्य के शासक थे, उन्हें अपने राज्य को वश में करने और अपने क्षेत्रों का विस्तार करने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ा, जिसमें कालिंग को भी अपने अधीन करना शामिल था। यह अशोक का दिग्विजय या सैन्य विजय का युद्ध था। अशोक के इस दिग्विजय के पूर्ण होने के बाद ही, इसमें शामिल मानव वध की भयावहता से पश्चाताप करते हुए, उन्होंने धर्मविजय या धर्म द्वारा विजय की नीति अपनाई, जो बुद्ध के धम्म द्वारा सिखाए गए प्रेम और करुणा के उच्च आदर्शों से ओतप्रोत थी। इसके बाद वे धर्माशोक के नाम से जाने गए।
धर्म के मार्ग पर चलते हुए, बौद्ध धर्म को अपनाकर अशोक ने अपने साम्राज्य और दूर-दराज के देशों में भी इस धर्म का प्रचार-प्रसार शुरू किया। उन्होंने अपने दोनों बच्चों, पुत्र महिंदा और पुत्री संघमित्रा को दीक्षा दिलाई और महिंदा को श्रीलंका में धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा, जबकि संघमित्रा बाद में महा बोधि वृक्ष का पौधा लेकर बुद्धगया आईं और बौद्ध भिक्षुणियों के संघ की स्थापना की।
अशोक की नीति यह थी कि:
(1) सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा ,
(2) कठोर और अभद्र भाषा से परहेज करना,
(3) माता-पिता, शिक्षकों और बड़ों का आदर करना,
(4) ब्राह्मणों, पुरोहितों और सेवकों का ध्यान रखते हुए,
(5) धार्मिक जीवन जीना, जिसमें करुणा, उदारता, सत्यवादिता, पवित्रता, नम्रता, कृतज्ञता और अपनी सामर्थ्य के अनुसार खर्च करना शामिल है।
(6) धर्मयात्रियों या तीर्थयात्राओं में संलग्न होना,
(7) कुओं और तालाबों का निर्माण तथा फलों और औषधीय जड़ी-बूटियों का रोपण, और
(8) अपनी प्रजा के प्रति पुत्रवत आदर और स्नेह रखना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक

---

(धम्मपद 270) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 271 और 272 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 273, 274, 275 और 276)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 271 और 272 - सम्बहुलासिलादिसम्पन्नाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na silabbatamattena
bahusaccena va pana
atha va samadhilabhena
vivittasayanena va.
फुसामी नेक्खम्मासुखम(1)
अपुथुज्जनसेविटम
भिक्खु विस्सासामपदी
appatto asavakkhayam.

---

श्लोक 271 और 272: केवल नैतिक अभ्यास से, न ही अधिक ज्ञान से, न ही एकाग्रता प्राप्त करने से, न ही एकांतवास में रहने से, और न ही स्वयं को यह आश्वासन देने से कि "मैं अनागामी फल के उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो सामान्य सांसारिक लोगों (पुथुज्जनों) को प्राप्त नहीं होता है," भिक्षु को नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) के अंत को प्राप्त किए बिना (अर्थात, अरहतत्व प्राप्त किए बिना) संतुष्ट रहना चाहिए।

---

1. नेक्खमसुखम: इस संदर्भ में, अनागामिसुखम। यानी, अनागामी फल, वह फल जो अनागामी मग्गा की प्राप्ति के बाद होता है।

---

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (271) और (272) कहे।

एक समय की बात है, कुछ भिक्षु सद्गुणों से परिपूर्ण थे; उनमें से कुछ कठोर तपस्या (धुतंग) का पालन करते थे, कुछ को धम्म का व्यापक ज्ञान था, कुछ ने ध्यान (झान) प्राप्त कर लिया था, कुछ ने अनागामी फल आदि प्राप्त कर लिए थे। उन सभी का मानना था कि चूंकि उन्होंने इतना कुछ प्राप्त कर लिया है, इसलिए उनके लिए अरहत्त फल प्राप्त करना अत्यंत सरल होगा। इसी विचार के साथ वे बुद्ध के पास गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "भिक्षुओं, क्या आपने अरहत्त फल प्राप्त कर लिया है?" तब उन्होंने उत्तर दिया कि वे ऐसी स्थिति में हैं कि उनके लिए किसी भी समय अरहत्त फल प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! केवल इसलिए कि आप नैतिकता (शील) से संपन्न हैं, केवल इसलिए कि आपने अनागामी फल प्राप्त कर लिया है, आपको आत्मसंतुष्ट नहीं होना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए कि बस थोड़ा सा और करना बाकी है; जब तक आप सभी नैतिक आसवों (अस्वों) का नाश नहीं कर लेते, तब तक आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि आपने अरहत्त फल के पूर्ण आनंद को प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 271 और 272: केवल नैतिक अभ्यास से, न ही अधिक ज्ञान से, न ही एकाग्रता प्राप्त करने से, न ही एकांतवास में रहने से, और न ही स्वयं को यह आश्वासन देने से कि "मैं अनागामी फल के उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो सामान्य सांसारिक लोगों (पुथुज्जनों) को प्राप्त नहीं होता है," भिक्षु को नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) के अंत को प्राप्त किए बिना (अर्थात, अरहतत्व प्राप्त किए बिना) संतुष्ट रहना चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में उन सभी भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

अध्याय उन्नीस का अंत: न्यायप्रिय या धर्मी

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कुछ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ गुणी भिक्षुओं के संदर्भ में इन श्लोकों का उच्चारण किया था।

कथा के अनुसार, इनमें से कुछ भिक्षुओं ने मन ही मन विचार किया, "हमने सद्‌गुण प्राप्त कर लिए हैं; हमने शुद्ध साधनाओं का मार्ग अपनाया है; हम अत्यंत विद्वान हैं; हम एकांत और एकांत स्थानों में निवास करते हैं; हमने समाधि जैसी ध्यान साधना से अलौकिक शक्तियाँ विकसित कर ली हैं। हमारे लिए अर्हतत्व प्राप्त करना कोई कठिन बात नहीं है; वास्तव में, हम जब चाहें अर्हतत्व प्राप्त कर सकते हैं।" इसी प्रकार, तीसरे मार्ग का फल प्राप्त कर चुके भिक्षुओं ने भी मन ही मन विचार किया, "हमारे लिए अब अर्हतत्व प्राप्त करना कोई कठिन बात नहीं है।" एक दिन वे सभी बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "लेकिन, भिक्षुओं, क्या आपने अपने धार्मिक कर्तव्यों को पूर्ण कर लिया है?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "आदरणीय, हमने इतनी पवित्रता प्राप्त कर ली है। इसलिए, जब भी हम चाहें, हम अर्हतत्व प्राप्त कर सकते हैं। इसी विचार के साथ हम निवास करते हैं।" जब बुद्ध ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, किसी भिक्षु के लिए केवल इसलिए यह सोचना उचित नहीं है कि 'हमारे वर्तमान जीवन में कष्ट बहुत कम हैं।' इसके विपरीत, जब तक वह अपने पापों का नाश न कर ले, तब तक उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि 'मैंने सच्चा आनंद प्राप्त कर लिया है।'"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 271)

सिलब्बतामात्तेन पुना बहुसच्चेन वा

अथवा समाधि लभेण विविच्च सयानेन वा

sīlabbatamattena : केवल उपदेशों और अधिकारों के माध्यम से; puna : और साथ ही; bāhusaccena vā : बहुत अधिक ज्ञान के माध्यम से; athavā : केवल नहीं; samādhi lābhena : शांति की प्राप्ति के माध्यम से; vivicca sayanena vā : या एकांतवास के माध्यम से

ये दो श्लोक निर्मलता की अवस्था (निर्वाण) प्राप्त करने का प्रयास कर रहे भिक्षुओं को उपदेश देते हैं। उनसे कहा गया है कि वे उन उपलब्धियों से संतुष्ट होकर मुक्ति प्राप्त करने के अपने प्रयास में ढिलाई न बरतें जो केवल अंतिम लक्ष्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 272)

आपुथुज्जनसेवितं नेक्खमसुखं फुसामि

भिक्खु आसवक्खयं अप्पत्तो विस्सासं न अपादि

aputhujjanasevitaṃ [ aputhujjanasevita ]: सांसारिक सुखों से ऊपर उठ चुके लोगों द्वारा संरक्षित; nekkhammasukhaṃ [ nekkhammasukha ]: त्याग का आनंद; phusāmi : मैं अपने मन से स्पर्श करता हूँ; bhikkhu : भिक्षु; āsavakkhayaṃ appatto [ appatta ]: दोषों से मुक्ति प्राप्त किए बिना; vissāsaṃ [ vissāsa ]: विश्वास तक; na āpādi : न पहुँचना

भिक्षुओं, नियमों और रीति-रिवाजों से संतुष्ट मत होइए। यहाँ तक कि गहन विद्या से भी संतुष्ट मत होइए। न ही मानसिक समाधि की अवस्था प्राप्त करने से संतुष्ट होइए। एकांतवास में रहकर यह सोचकर संतुष्ट मत होइए कि "मैंने वैराग्य का वह आनंद अनुभव कर लिया है जो साधारणों के लिए संभव नहीं है।" निर्वाण प्राप्त करने तक अपने प्रयास में ढिलाई मत बरतो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 271-272)

नेक्खम्मसुखं : त्याग का आनंद। आध्यात्मिक जीवन के उच्चतर आनंद को प्राप्त करने के लिए नेक्खम्म (त्याग) आवश्यक है।

एक बार बुद्ध वाराणसी के पास इसिपताना में स्थित हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। तब बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं के समूह को इस प्रकार संबोधित किया:

हे भिक्षुओं, ये दो चरम सीमाएँ ( अंता ) हैं जिनसे त्याग करने वाले ( पब्बजितेन ) को बचना चाहिए:

(1) इंद्रिय सुखों में लिप्त होना — यह नीच, अश्लील, सांसारिक, घृणित और लाभहीन है, और

(2) आत्म-यातना की लत — यह कष्टदायक, नीच और लाभहीन है।

इन दोनों चरम सीमाओं को त्यागकर बुद्ध ने मध्य मार्ग ( मज्झिमा पटिपदा ) को समझा है, जो दृष्टि ( चक्खु ) और ज्ञान (ज्ञान ) को बढ़ावा देता है , और जो शांति ( वूपसमय ), उच्चतर ज्ञान ( अभिञ्ञाय ), ज्ञानोदय ( संबोधाय ) और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

हे भिक्षुओं, बुद्ध ने जिस मध्य मार्ग को समझा है, वह क्या है? वह मार्ग दृष्टि और ज्ञान को बढ़ावा देता है, और शांति, उच्चतर बुद्धि, ज्ञानोदय और निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।
वह अत्यंत श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग—अर्थात,
सही समझ ( सम्मादिट्ठी ),
सही विचार ( सम्मा संकल्प ),
सम्यक वाणी ( सम्मा वाचा ),
सही कार्य ( सम्मा - कम्मंता ),
सही आजीविका ( सम्मा अजीव ),
सही प्रयास ( सम्मा वायामा ),
सही जागरूकता ( सम्मासति ), और
सही एकाग्रता ( सम्मा समाधि ),
—हे भिक्षुओं, यही वह मध्य मार्ग है जिसे तथागत ने समझा है।
हे भिक्षुओं, यही दुख का महान सत्य है ! जन्म दुख है, क्षय दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है, अप्रिय से जुड़ाव दुख है, सुखद से अलगाव दुख है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुख है। संक्षेप में , आसक्ति के पाँचों समूह दुख हैं।
हे भिक्षुओं, यही दुख के कारण का महान सत्य है ( दुक्खा - समुदय - अरीयसच्च ):
यही लालसा पुनर्जन्म ( पोनोभविका ) का कारण बनती है, जिसके साथ आसक्ति और जीवन के प्रति आसक्ति भी जुड़ी रहती है। यह इंद्रिय सुखों की लालसा ( कामतन्हा ), अस्तित्व की लालसा ( भवतन्हा ) और गैर-अस्तित्व की लालसा ( विभवतन्हा ) है।
अब, हे भिक्षुओं, यह दुख की समाप्ति का महान सत्य है ( दुक्ख - निरोध - अरियासक्का ):
यह इस लालसा से पूर्ण रूप से अलग होना और इसका विनाश करना, इसका त्याग करना, इससे मुक्ति पाना और इससे अनासक्ति प्राप्त करना है।
अब, हे भिक्षुओं, यह दुख की समाप्ति ( दुक्ख - निरोध - गामिनी - पतिपद - अरियासक्का ) की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है।
यह वही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है—अर्थात्, सही समझ, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।
(1) i. "यह दुख का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुख के इस महान सत्य को समझना चाहिए ( परिञ्ञेय्य )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुख के इस महान सत्य को अनुभव किया गया है ( परिञ्ञता )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(2) i. "यह दुख के कारण का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुख के कारण के इस महान सत्य का उन्मूलन किया जाना चाहिए ( पहातब्ब )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुख के कारण का यह महान सत्य मिटा दिया गया है ( पाहीनं )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के संबंध में, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(3) i. "यह दुख के निवारण का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
ii. "दुखों के निवारण के इस महान सत्य को साकार किया जाना चाहिए ( सच्चिकातब्बा )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. "दुखों के निवारण का यह महान सत्य सिद्ध हो गया है ( सच्चिकतं )।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
(4) i. "यह दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का महान सत्य है।" इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।

ii. “दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले इस महान सत्य का विकास किया जाना चाहिए ( भावेतब्बं ) ।” इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
iii. “दुखों के निवारण की ओर ले जाने वाले इस महान सत्य का विकास हुआ है ( भावितं ) ।” इस प्रकार, हे भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि और प्रकाश उत्पन्न हुआ।
हे भिक्षुओं, जब तक मुझे इन चार आर्य सत्यों के तीन पहलुओं और बारह गुणों के संबंध में पूर्ण सत्य सहज ज्ञान पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो गया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देवता, मार और ब्रह्मा शामिल हैं, और तपस्वियों और पुरोहितों, देवताओं और मनुष्यों के समूह के बीच, यह स्वीकार नहीं किया कि मैंने अतुलनीय सर्वोच्च ज्ञान ( अनुत्तरं सम्मासंबोधिं ) प्राप्त कर लिया है।
हे भिक्षुओं, जब इन चार आर्य सत्यों के तीन पहलुओं और बारह गुणों के संबंध में पूर्णतः सत्य सहज ज्ञान मुझे स्पष्ट हो गया, तभी मैंने इस संसार में, जिसमें देवता, मार, ब्रह्मा, तपस्वियों और पुरोहितों, देवताओं और मनुष्यों की भीड़ है, यह स्वीकार किया कि मैंने अतुलनीय सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है।
और मुझमें यह ज्ञान और अंतर्दृष्टि ( ज्ञानदस्सना ) उत्पन्न हुई — “मेरे मन की मुक्ति अटल है। यह मेरा अंतिम जन्म है, और अब मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।”
इस प्रकार बुद्ध ने प्रवचन दिया और प्रसन्न भिक्षुओं ने बुद्ध के शब्दों की सराहना की।
जब इस सिद्धांत का प्रतिपादन हो रहा था, तब पूज्य कोण्डञ्ञ में धूल रहित, निष्कलंक, सत्य-दर्शन करने वाली आँख ( धम्मचक्खु ) उत्पन्न हुई और उन्होंने देखा कि "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब कुछ समाप्ति के अधीन है।"
जब बुद्ध ने धम्मचक्र का उपदेश दिया, तो पृथ्वी पर स्थित देवताओं ने कहा, "यह उत्कृष्ट धम्मचक्र, जिसका उपदेश इस संसार में किसी तपस्वी, पुरोहित, देवता, मार या ब्रह्मा द्वारा नहीं दिया जा सकता था, उसका उपदेश बुद्ध ने वाराणसी के निकट इसिपताना के हिरण उद्यान में दिया है।"

अध्याय 20. मग्गावग्गा: मार्ग (273-289)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 273,274,275,276

---

(धम्मपद 271 और 272) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 273, 274, 275 और 276 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 277, 278 और 279)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 273, 274, 275 और 276 - पंचसताभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Magganatthangiko(1) settho
saccanam caturo pada(2)
virago settho dhammanam(3)
dvipadananca cakkhuma.
Eseva maggo natthanno
dassanassa visuddhiya
etanhi tumhe patipajjatha

marassetam pamohanam.
Etanhi tumhe patipanna
dukkhassantam karissatha
akkhato vo rnaya maggo
annaya sallakantanam.
तुमहेही किच्चामतप्पम
अक्खतरो तथागत
पतिपन्ना पामोक्खंती
jhayino marabandhana.

---

श्लोक 273 : मार्गों में, अष्टम तत्वों का मार्ग श्रेष्ठ है; सत्यों में, चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं; धर्मों में, भोग का अभाव (अर्थात निर्वाण) श्रेष्ठ है; दो पैरों वाले प्राणियों में, सर्वदर्शी बुद्ध श्रेष्ठ हैं।

---

श्लोक 274 : यही एकमात्र मार्ग है, और दृष्टि की पवित्रता के लिए इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसी मार्ग का अनुसरण करो; यह मारा को भी चकित कर देगा।

---

श्लोक 275 : इस मार्ग पर चलकर तुम दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाओगे। मैंने स्वयं नैतिक विकारों के कांटों को दूर करने वाले मार्ग को जान लिया है, इसलिए मैंने तुम्हें वह मार्ग दिखाया है।

---

श्लोक 276 : आप स्वयं प्रयास करें; तथागत (बुद्ध) ही मार्ग दिखा सकते हैं। जो लोग शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

---

1. अत्थांगिको: आर्य अत्थांगिका मार्ग, या आठ तत्वों का श्रेष्ठ मार्ग। यह वह मार्ग है जिसे बुद्ध ने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने के लिए बताया है। आठ तत्व हैं: सही दृष्टिकोण, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही जीवन, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।
2. चतुरोपाद: चतुरि आर्यसच्चानी, या चार आर्य सत्य। ये वे चार सत्य हैं जिन पर बुद्ध का संपूर्ण सिद्धांत आधारित है। वे हैं: (क) दुःख का आर्य सत्य; (ख) दुःख के कारण का आर्य सत्य, अर्थात् तृष्णा; (ग) दुःख के निवारण का आर्य सत्य; और (घ) दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का आर्य सत्य। (ध्यान दें: इस संदर्भ में दुःख का अर्थ पाँच प्रकार की आसक्ति या पंचुपादनक्खन्ध है)।
3. धम्म: सशर्त और निर्शर्त दोनों प्रकार की वस्तुएँ।

---

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (273) से (276) तक कहे।
पांच सौ भिक्षु बुद्ध के साथ एक गाँव की यात्रा करने के बाद जेतवन मठ लौट आए। शाम को वे यात्रा के बारे में, विशेषकर उस भूमि की प्रकृति के बारे में चर्चा कर रहे थे, जैसे कि वह समतल थी या पहाड़ी, चिकनी मिट्टी वाली थी या पथरीली आदि। बुद्ध उनकी बातचीत के बीच में उनके पास आए और उनसे कहा, "भिक्षुओं, जिस मार्ग की आप चर्चा कर रहे हैं वह आपके लिए बाह्य है; एक भिक्षु को केवल आर्यों के मार्ग पर ही ध्यान देना चाहिए और आर्य मार्ग (मार्ग) की प्राप्ति के लिए जो कुछ भी करना चाहिए, वह करने का प्रयास करना चाहिए, जो पूर्ण शांति (निर्वाण) की प्राप्ति की ओर ले जाता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 273 : मार्गों में, अष्टम तत्वों का मार्ग श्रेष्ठ है; सत्यों में, चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं; धर्मों में, भोग का अभाव (अर्थात निर्वाण) श्रेष्ठ है; दो पैरों वाले प्राणियों में, सर्वदर्शी बुद्ध श्रेष्ठ हैं।

---

श्लोक 274 : यही एकमात्र मार्ग है, और दृष्टि की पवित्रता के लिए इसके अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसी मार्ग का अनुसरण करो; यह मारा को भी चकित कर देगा।

---

श्लोक 275 : इस मार्ग पर चलकर तुम दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाओगे। मैंने स्वयं नैतिक विकारों के कांटों को दूर करने वाले मार्ग को जान लिया है, इसलिए मैंने तुम्हें वह मार्ग दिखाया है।

---

श्लोक 276 : आप स्वयं प्रयास करें; तथागत (बुद्ध) ही मार्ग दिखा सकते हैं। जो लोग शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, एक बार बुद्ध देश भर की यात्रा करने के बाद सावत्थी लौट आए और धम्म सभा में विराजमान हुए। उनके बैठने के बाद, पाँच सौ भिक्षु अपने-अपने यात्रा मार्गों के बारे में चर्चा करने लगे। वे कहने लगे, "अमुक गाँव का मार्ग चिकना है; अमुक गाँव का मार्ग ऊबड़-खाबड़ है; अमुक गाँव का मार्ग कंकड़ों से भरा है; अमुक गाँव का मार्ग बिना कंकड़ के है।" इसी प्रकार वे अपने यात्रा मार्गों पर चर्चा करते रहे। बुद्ध ने यह जानकर कि वे अर्हतत्व के योग्य हैं, धम्म सभा में गए और अपने लिए तैयार आसन पर बैठकर पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह मार्ग हमारे हित से परे है; भिक्षु को श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि केवल ऐसा करने से ही वह समस्त दुखों से मुक्ति पा सकता है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 273)
मग्गनं अथंगिको सेठो सैकानं कैटुरो पदा
धम्मणं विरागो सेठो दिपदानं च चक्खुमा
maggānaṃ [ maggāna ]: मार्गों में से; aṭṭhangiko maggo [ magga ]: अष्टांगिक मार्ग है; seṭṭho [ seṭṭha ]: सबसे श्रेष्ठ है; saccānaṃ [ saccāna ]: सत्यों में से; caturo padā : चार आर्य सत्य (सबसे श्रेष्ठ हैं); dhammānaṃ [ dhammāna ]: अवस्थाओं में से; virāgo [ virāga ]: वैराग्य-निर्वाण; dipadānaṃ [ dipadāna ]: दो पैरों वाले में से; cakkhumā : नेत्र धारण करने वाला (बुद्ध) सबसे श्रेष्ठ है
सभी मार्गों में अष्टांगिक मार्ग सर्वोपरि है। सत्यों में चार आर्य सत्य सर्वोपरि हैं। निर्वाण सर्वोपरि है। और दो पैरों वाले प्राणियों में, जिन्हें आंखें प्राप्त हैं, बुद्ध सर्वोपरि हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 274)
विशुद्धिआ दस्सानासा एसो इवा मग्गो नत्थि आन्नो
तुम्हें एतमहि पतिपज्जथा एतं मरस्स पमोहनं
visuddhiyā dassanassa : अंतर्दृष्टि की स्पष्टता के लिए; eso eva maggo [ magga ]: यही एकमात्र मार्ग है; natthi añño : कोई अन्य (मार्ग) नहीं; tumhe : (इसलिए) तुम; etamhi : इस मार्ग का; paṭipajjatha : अनुसरण करो; etaṃ : इस मार्ग का; mārassa : मृत्यु; pamohanaṃ [ pamohana ]: भ्रमित करेगी
यही मार्ग है। अंतर्दृष्टि की स्पष्टता प्राप्त करने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आपको मारा के पूर्ण विस्मय में डूबने के लिए इसी मार्ग का अनुसरण करना होगा।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 275)
एतामहि पतिपन्ना तुम्हें दुक्खस्सा अंतं करिस्सथा
मया सल्लसंथनं मग्गो अनन्याय वे अक्खेतो
एतम्ही : यह मार्ग; पतिपन्ना : अनुसरण करना; तुमहे : तुम्हारे द्वारा; दुःखस्स : कष्टों का; अंतं करिसथ : (तुम्हें) इसका अंत करना होगा; मया : मेरे द्वारा; सल्लसंथनं [ सल्लसंथन ]: शरीर से तीर निकालने के लिए; मग्गो [ मग्गा ]: मार्ग; अञ्ञाय : जानकर; वे : निश्चित रूप से; अक्खेतो [ अक्खेत ]: घोषित किया गया

इस मार्ग का अनुसरण करने से आपको दुखों का अंत प्राप्त होगा। बाणों को निकालने का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, मैंने इस मार्ग का पता लगाया है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 276)

तुमहे अट्टप्पां किच्चं तथागत अक्खातारो

पतिपन्ना झायिनो मरबंधना पमोक्खन्ति

तुमहेहि : स्वयं द्वारा; आतप्पं [ आतप्प ]: (दोषों से मुक्ति पाने का) प्रयास; किच्चं [ किच्च ]: किया जाना चाहिए; तथागत : पथप्रदर्शक (बुद्ध); अक्खतारो [ अक्खतारा ]: (निर्वाण के) उद्घोषक; पटिपन्ना : मार्ग के अनुयायी; झायिनो [ झायिना ]: ध्यान करने वाले; मारबंधना : मृत्यु के बंधनों से मुक्त होना; पामोक्खंति : पूर्णतः मुक्त होना

प्रयास तो आपको स्वयं ही करना होगा। बुद्ध (गुरु) केवल मार्ग दिखाते हैं और मार्गदर्शन करते हैं। जो ध्यानमग्न साधक इस मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे मृत्यु के जाल से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 273-276)

Eso va maggaṃ natthi añño dassanassa visuddhiyā : दृष्टि की शुद्धता प्राप्त करने का इस मार्ग के सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जो लोग बुद्ध द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर दृष्टि की शुद्धता प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें ध्यान की उस तकनीक का अभ्यास करना होगा, जिससे दृष्टि की शुद्धता प्राप्त की जा सकती है।

सत्य की खोज करने वाला व्यक्ति सात चरणों से गुजरते हुए इस अवस्था को प्राप्त करता है। परिणामस्वरूप, इस प्रक्रिया को सप्त विशुद्धि (शुद्धता के सात चरण) के रूप में जाना जाता है। शुद्धता के सात चरण इस प्रकार हैं:

शील विशुद्धि ( नैतिकता की शुद्धता )

चित्त विशुद्धि ( मन की शुद्धता )

Diṭṭhi visuddhi ( विचारों की शुद्धता )

कंखावितरण विशुद्धि ( संदेहों पर विजय की शुद्धता )

Maggāmagga ñaṇadassana visuddhi ( ज्ञान की शुद्धता और सही-गलत मार्ग की अंतर्दृष्टि )

Patipadā ñaṇadassana visuddhi ( ज्ञान की शुद्धता और प्रगति की अंतर्दृष्टि )

Ñaṇadassana visuddhi ( ज्ञान की शुद्धता और श्रेष्ठ मार्ग में अंतर्दृष्टि )।

(1) शीलविशुद्धि —नैतिक शुद्धता—

अशुद्ध चरित्र वाले व्यक्ति को हमेशा यह भय सताता रहता है कि दूसरे लोग उसमें दोष निकालेंगे, उसे लज्जित करेंगे या उससे बदला लेंगे। इसी प्रकार, उसका अंतरात्मा भी उसे कचोटता रहता है, यह कहते हुए कि उसने कुछ गलत किया है। ऐसे विचारों से अगुणी व्यक्ति का मन दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार दुर्बल मन वाला व्यक्ति ध्यान करने पर भी कोई लाभ नहीं प्राप्त करेगा। जैसे बंजर मिट्टी में लगाया गया वृक्ष, वैसे ही उसका मन एकाग्रता से ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाएगा। इसलिए, यदि कोई योगावस्कार एकाग्रता से ध्यान लगाकर उच्च अवस्था प्राप्त करना चाहता है या ध्यान द्वारा सही मार्ग पाना चाहता है, तो उसे सबसे पहले ध्यान के लिए मार्ग तैयार करना चाहिए, जैसे एक किसान खेती के लिए भूमि तैयार करता है। यदि वह गृहस्थ है, तो उसे गृहस्थ के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। यदि वह भिक्षु है, तो उसे भिक्षु के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। गृहस्थ यदि गुणवान बनना चाहता है, तो उसे कम से कम पांच नियमों का पालन करना चाहिए। सद्गुण तभी उत्पन्न होते हैं जब सभी दोष दूर हो जाते हैं। इसलिए, उसे यह महसूस करने के बजाय कि वह एक सदाचारी जीवन जीने में असमर्थ है और ध्यान छोड़ देने के बजाय, एक सदाचारी जीवन जीकर स्वयं को शुद्ध करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

(2) चित्तविशुद्धि — मन की शुद्धता —

नामरूप (मन और पदार्थ) के स्वरूप को समझना अत्यंत कठिन है, क्योंकि वे व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, मनुष्य और अन्य अवधारणाओं के भ्रमों से ढके हुए हैं। पुस्तकों से प्राप्त नामरूप का ज्ञान हमारे दोषों को दूर करने और मोक्ष एवं ज्ञानोदय के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अपर्याप्त है। पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान परोक्ष ज्ञान है, जिसका स्वयं अनुभव नहीं हुआ है, क्योंकि यह व्यक्ति द्वारा स्वयं अनुभव नहीं किया गया है। यह आत्म-साक्षात्कार नहीं है।

सही मार्ग पाने के लिए हमें किताबों से मिले ज्ञान से कहीं अधिक की आवश्यकता है; हमें एक स्पष्ट दर्शन की आवश्यकता है जिसे हम स्वयं समझ सकें। यह दर्शन केवल ध्यान से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी कठोर वस्तु को काटने से पहले अपनी छुरी को तेज करता है, उसी प्रकार नाम रूप को समझने के लिए योगावस्कार को सर्वप्रथम अपने मन को तैयार करना चाहिए। जब उसका मन बाधाओं से मुक्त हो जाता है, तब वह चित्त विशुद्धि प्राप्त करता है ।

अपने मन को शुद्ध करने के लिए हमें एकाग्रता शक्ति बढ़ानी चाहिए। मन का स्वभाव किसी एक वस्तु पर लंबे समय तक एकाग्र रहने का नहीं, बल्कि विभिन्न वस्तुओं पर भटकने का है। जो व्यक्ति बहुत तेज गति से यात्रा कर रहा होता है, वह सड़क के किनारे दिखाई देने

वाली किसी भी वस्तु को समझ नहीं पाता, क्योंकि उसका मन, जो एकाग्र नहीं हुआ है और विभिन्न वस्तुओं पर भटकता रहता है, वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाता। जब हम अंतर्दृष्टि ध्यान के द्वारा मन और पदार्थ के वास्तविक स्वरूप पर एकाग्र होते हैं, यदि मन इस पर लंबे समय तक स्थिर न रहे, तो वह बहुत तेजी से विभिन्न वस्तुओं पर भटकने लगता है। ऐसा मन परम सत्य को ग्रहण नहीं कर पाएगा। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ है, तो उसमें अंतर्दृष्टि ध्यान का ज्ञान शीघ्र उत्पन्न नहीं होगा। इसलिए, यदि वह अंतर्दृष्टि ज्ञान को शीघ्र विकसित करना चाहता है, तो उसे एकाग्र होना चाहिए और अपने मन को इस कार्य के लिए तैयार करना चाहिए। निरंतर अभ्यास के बाद व्यक्ति में मन को एक वस्तु पर लंबे समय तक एकाग्र रखने की क्षमता आ जाती है। मन की यह एकाग्रता समाधि (मानसिक अनुशासन ) से प्राप्त होती है । इस दौरान मन में किसी और विचार को आने दिए बिना, यदि कोई व्यक्ति लंबे समय तक मन को एक वस्तु पर एकाग्र रख पाता है, तो वह समाधि की अवस्था में होता है। कुछ योगावकार ऐसे भी होते हैं जो आरंभ में ही एकाग्रता विकसित किए बिना उच्च कोटि की अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए, जो लोग एकाग्रता विकसित नहीं करना चाहते, यदि वे शुद्ध अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लें तो इसमें कोई हानि नहीं है। जो लोग एकाग्रता के बाद अंतर्दृष्टि प्राप्त करते हैं, उनमें से कुछ समाधि की अवस्था में ही यह अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। कुछ अन्य एक निश्चित स्तर तक एकाग्रता विकसित करते हैं और एकाग्रता की प्रथम अवस्था तक पहुँचते ही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं। कुछ अन्य एकाग्रता और अंतर्दृष्टि दोनों को एक साथ विकसित करते हैं और इन दोनों का उपयोग करते हुए ध्यान करते हैं। इन सभी प्रणालियों में से, समाधि की अवस्था प्राप्त करने के बाद अंतर्दृष्टि प्राप्त करना वर्तमान समय के अनुकूल नहीं है। यदि कोई ऐसा करता है तो हो सकता है कि वह लंबे समय तक अंतर्दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम न हो पाए।

हमारा मानना है कि सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी एकाग्रता विकसित करनी चाहिए और उसके बाद एकाग्रता एवं अंतर्दृष्टि दोनों को विकसित करने की विधि अपनानी चाहिए। यही सर्वोत्तम पद्धति प्रतीत होती है।

(3) दिट्ठिविशुद्धि —दृष्टिकोण की शुद्धता—

बुद्ध का ध्यान करके या किसी अन्य ध्यान पद्धति का अभ्यास करके मन को शुद्ध करने के लिए, सबसे पहले दिट्ठी विशुद्धि भावना से शुरुआत करनी चाहिए। आत्म दिट्ठी दृष्टि क्या है ? आत्म दिट्ठी दृष्टि का अर्थ है मन और पदार्थ को मन और पदार्थ के रूप में, स्वयं को स्वयं के रूप में, माता को माता के रूप में, पिता को पिता के रूप में, भाई को भाई के रूप में, बहन को बहन के रूप में, शत्रु को शत्रु के रूप में, मित्र को मित्र के रूप में न समझना, और अन्य विभिन्न व्यक्तियों को एक ही स्वरूप के प्राणी मानकर उनके साथ एक जैसा व्यवहार करना और उन्हें उसी रूप में स्वीकार करना। यही आत्म दृष्टि है। सक्कायादिट्ठी इसका दूसरा नाम है ( सक्कायादिट्ठी का अर्थ है आत्मा या स्वयं में विश्वास)। अंतर्दृष्टि का अर्थ है मन और पदार्थ के स्वरूप को मन और पदार्थ के रूप में ही समझना, न कि स्वयं के रूप में, न ही पिता, माता या किसी अन्य प्राणी के रूप में। आत्म दृष्टि से मुक्त इस अंतर्दृष्टिपूर्ण ज्ञान को दिट्ठी विशुद्धि कहते हैं । दिट्ठी विशुद्धि का संक्षिप्त अर्थ है ज्ञान की शुद्धता।

अंतर्दृष्टि ध्यान की शुरुआत दिट्ठी विशुद्धि भावना से होती है । योगावस्कार को इस दिट्ठी विशुद्धि — शुद्ध ज्ञान — को प्राप्त करने में बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है । उसे दिट्ठी विशुद्धि में पूर्णतः निपुण होना चाहिए । यदि योगावस्कार दिट्ठी विशुद्धि में पूर्णतः निपुण हुए बिना आगे बढ़ने का प्रयास करता है, तो उसका ध्यान अभ्यास भ्रमित हो जाएगा। इस पर इस प्रकार निपुण होना चाहिए कि मन और पदार्थ के सिद्धांत को स्वयं, माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति के रूप में देखा जा सके, जैसे हम केले के पेड़ की छाल को छीलकर अपने ज्ञान को अलग-अलग भागों में विभाजित करते हैं। इस ध्यान को तब तक विकसित करना होगा जब तक हम उन विचारों से छुटकारा न पा लें जो पहले हमारे मन में 'मेरा', 'मेरे पिता', 'मेरा भाई', 'मेरा बेटा', 'मेरी पत्नी' जैसी धारणाओं के रूप में मौजूद थे - अर्थात्, उन्हें प्राणी और व्यक्ति के रूप में मानने की अवधारणा से - और जब तक हम उन्हें 'मैं मैं नहीं हूँ' और 'मेरे पिता मेरे पिता नहीं हैं' के रूप में न देख और उनका विश्लेषण न कर लें, और उन्हें केवल पदार्थ और मन के घटक के रूप में न समझ लें।

बौद्ध दर्शन के अनुसार, कोई भी स्थायी, अपरिवर्तनीय आत्मा या सत्ता नहीं है जिसे हम पदार्थ के विपरीत स्वयं, आत्मा या अहंकार मान सकें, और चेतना या विज्ञान को पदार्थ के विपरीत आत्मा नहीं माना जाना चाहिए। इस बात पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए, क्योंकि यह गलत धारणा सदियों से बनी हुई है कि चेतना एक प्रकार की आत्मा है जो जीवन भर एक स्थायी पदार्थ के रूप में विद्यमान रहती है। बुद्ध ने इसे एक उदाहरण देकर और स्पष्ट किया है। आग का स्वरूप उस पदार्थ के आधार पर बताया जाता है जिसके कारण वह जलती है। यदि वह भूसे के कारण जलती है तो उसे भूसे की आग कहते हैं। इसी प्रकार चेतना का वर्णन उस परिस्थिति के अनुसार किया जाता है जिसके कारण वह उत्पन्न होती है।

बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि चेतना पदार्थ, संवेदना, बोध और मानसिक अवधारणाओं पर निर्भर है और इनके बिना विद्यमान नहीं रह सकती। चेतना पदार्थ को अपने साधन ( रूपायं ), पदार्थ को अपने लक्ष्य ( रूपारम्मण ) और पदार्थ को अपने आधार ( रूपपतिठितं ) के रूप में धारण करके विद्यमान होती है और सुख की खोज में बढ़ती, विकसित होती और विकसित होती है। चेतना संवेदना को अपने साधन या मानसिक अवधारणा को अपने आधार के रूप में धारण करके भी विद्यमान हो सकती है और सुख की खोज में बढ़ती, विकसित होती और विकसित होती है।

यदि कोई व्यक्ति कहे कि “मैं पदार्थ, संवेदना, बोध और मानसिक अवधारणा से अलग चेतना के आगमन, प्रस्थान, अपव्यय, उद्भव, वृद्धि, विकास या विकास को दिखाऊंगा,” तो वह किसी ऐसी चीज़ की बात कर रहा होगा जिसका अस्तित्व ही नहीं है। संक्षेप में, पंचखंडों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। जिसे हम प्राणी, व्यक्ति या 'मैं' कहते हैं, वह केवल इन पाँच समूहों के संयोजन को दिया गया एक सुविधाजनक नाम या लेबल है। ये सभी क्षणभंगुर हैं और निरंतर परिवर्तन के अधीन हैं। जो कुछ भी क्षणभंगुर है, वह दुःख है। बुद्ध के शब्दों का वास्तविक अर्थ संक्षेप में यह है: आसक्ति के पाँच समूह दुःख के समान हैं। दो लगातार क्षणों के लिए वे एक समान नहीं होते। इसलिए, 'अ' 'अ' के बराबर नहीं है। वे क्षणिक उद्भव या अपव्यय का प्रवाह हैं।

“हे ब्राह्मण, यह एक पर्वतीय नदी के समान है जो दूर तक तीव्र गति से बहती है और अपने साथ सब कुछ बहा ले जाती है। ऐसा कोई क्षण, कोई पल या सेकंड नहीं होता जब यह बहना बंद कर दे, बल्कि यह निरंतर बहती रहती है। इसी प्रकार, मनुष्य जीवन भी एक पर्वतीय नदी के समान है।” इन शब्दों में बुद्ध ने रट्ठपाल को समझाया कि संसार निरंतर परिवर्तनशील है और क्षणभंगुर है।

एक वस्तु के लुप्त होने से अगली वस्तु का प्रकट होना निर्धारित होता है, और इस प्रकार कारण-परिणाम की एक श्रृंखला चलती रहती है। इनमें कोई अपरिवर्तनीय तत्व नहीं है। इनके पीछे ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे स्थायी आत्मा या स्व कहा जा सके। यह सर्वविदित होगा कि न तो पदार्थ, न संवेदना, न बोध, न ही इनमें से कोई मानसिक क्रिया, न ही चेतना को वास्तव में "मैं" कहा जा सकता है। परन्तु ये पाँच स्वतंत्र भौतिक और मानसिक समूह एक शारीरिक-मनोवैज्ञानिक यंत्र की तरह मिलकर "मैं" का आभास देते हैं। परन्तु यह एक भ्रामक आभास है, एक मानसिक अवधारणा जो स्वयं के आभास, चौथे समूह की उन बावन मानसिक अवधारणाओं में से एक है।

इन पाँचों तत्वों को सामूहिक रूप से दुख ही कहा जाता है। इन पाँचों तत्वों के पीछे न तो कोई अन्य प्राणी है और न ही मैं स्वयं, जो दुख का अनुभव करता है ।

कम्मास्सा कारका नत्थि-विपाकस्साचा वेदको शुद्धधम्म पवत्तन्ति-एवेतं सम्मदासनम्

(4) कंखावितरण विशुद्धि —संदेहों पर विजय की शुद्धता—

परम अवस्था को प्राप्त करने में संदेह एक बड़ी बाधा है। किसी भी चीज के मूल को मिटाने के लिए हमें उसके कारणों का पता लगाना होगा। पुनर्जन्म के चक्र को उसके कारणों का पता लगाकर ही नष्ट किया जा सकता है।

(5) Maggāmagga ñāṇadassana visuddhi — सही और गलत मार्ग के ज्ञान और अंतर्दृष्टि की शुद्धता।—

यहां, मार्गा का अर्थ है ध्यान की सही विधि। इस ज्ञान की अवस्था को प्राप्त करने के लिए तिलक्खण ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। नाम और रूप को एक साथ लेने पर उन्हें संस्कार कहा जाता है । प्रतीत्य समुप्पाद में वर्णित संस्कार कर्मों के कारण और परिणाम को दर्शाते हैं। यद्यपि हम अनित्य , दुःख और अनत्त्व जैसे शब्दों को अक्सर सुनते हैं , फिर भी हम यह नहीं समझ पाते कि इनका कितना गहरा अर्थ है। हम जानते हैं कि सभी जीव मृत्यु के अधीन हैं, लेकिन यह विपश्यना भावना के लिए पर्याप्त नहीं है । केवल दुःख के गुणों को जानना ही काफी नहीं है। यह समझना हमारे लिए कठिन है क्योंकि हमारा मन भ्रम से ग्रस्त है।

(6) पटिपदाञ्चन्नदस्सन विशुद्धि — ज्ञान की शुद्धता और प्रगति में अंतर्दृष्टि।

शिष्य जो दोषों के हानिकारक प्रभावों से मुक्त होकर पिछले चरण में पवित्रता और सही-गलत के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, वह इस अंतिम चरण में गहन समझ की व्यवस्थित और निरंतर प्रगति के माध्यम से अपनी अंतर्दृष्टि को पराकाष्ठा तक विकसित करता है। इसे पटिपदा — क्रमिक प्रगति — कहा जाता है, जिसमें नौ प्रकार की अंतर्दृष्टि और ज्ञान शामिल हैं जो पारलौकिक अवस्थाओं की प्राप्ति की ओर ले जाते हैं।

(7) Ñāṇadassana visuddhi — ज्ञान की शुद्धता और श्रेष्ठ मार्ग की अंतर्दृष्टि।

उच्चतर उपलब्धि के चार चरणों तक पहुंचने के मार्ग को जानने की चार प्रकार की बुद्धिमत्ताएँ मिलकर इसे बनाती हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 277,278,279

---

(धम्मपद 273, 274, 275 और 276) <<<< पिछला॥ धम्मपद 277, 278 और 279 ॥अगला >>>> (धम्मपद280)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 277, 278 और 279 - अनिक्कलक्खन वत्थु, दुक्खलक्खन वत्थु, अनात्तलक्खन वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
"Sabbe sankhara anicca" ti
yada pannaya(1) passati(2)
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

"Sabbe sankhara dukkha" ti
yada pannaya passati
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

"Sabbe dhammā anatta" ti
yada pannaya passati
atha nibbindati dukkhe
esa maggo visuddhiya.

---

श्लोक 277 : अनिच्छ (3) - "सभी संस्कार (4) अनित्य/अस्थायी (अनिच्छ) हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

श्लोक 278 : दुःख(5) - "सभी संस्कार दुःख हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

श्लोक 279 : अनत्ता(6) - "सभी धम्म आत्म-रहित (अनत्ता) हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि-ज्ञान (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

1. पन्ना : प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त अंतर्दृष्टि-ज्ञान (विपस्सना पन्ना), सत्य को प्रत्यक्ष रूप से देखना और जानना। इसका अर्थ समाधि की अवस्था और उससे प्राप्त ज्ञान भी है। यह संस्कृत/हिंदी शब्द प्रज्ञा (प्रत्यक्ष+ज्ञान) से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष+ज्ञान। पन्ना का तात्पर्य सांसारिक और पारलौकिक (ब्रह्मांड से परे) दोनों अनुभवों से है, जो ध्यान में समाधि की अवस्था में प्रवेश करने पर प्राप्त होते हैं। अभिधम्म (DS1.16,29) में भगवान बुद्ध ने पन्ना को शक्ति (पन्नबलं), पन्ना को तलवार (पन्नसत्थं), पन्ना को (ऊंची) ऊँचाई (पन्नपसादो), पन्ना को (चमकती हुई) रोशनी (पन्ना-आलोको), पन्ना को (पन्ना-आलोको) के रूप में विस्तार से बताया है। महिमा (पन्ना-ओभासो), पन्ना के रूप में (चमकदार) वैभव (पन्ना-पज्जोतो सं. प्रज्जवलितो), पन्ना के रूप में (चमक) कीमती पत्थर (पन्ना-रत्नं)।
2. पस्सति: प्रत्यक्ष रूप से देखना, अवलोकन करना, यहाँ यह विपश्यना ध्यान को संदर्भित करता है, जो बुद्ध द्वारा सिखाई गई प्रमुख तकनीक है। यहाँ 'वि' शब्द 'विशेष' या 'विशेष' से लिया गया है, अर्थात् आंतरिक भावनाओं, मनोभावों और संवेदनाओं के प्रत्यक्ष अवलोकन की विशेष तकनीक, जिसमें अवलोकन (ध्यान) को अनासक्ति/अनासक्ति के दृष्टिकोण के साथ जोड़ा जाता है, न पसंद न नापसंद।
3. अनिच्छ: क्षणभंगुर/परिवर्तनशील। संस्कृत/हिंदी शब्द अनित्य है। बुद्ध ने इस विचार का उपदेश सांसारिक इच्छाओं से विरक्ति उत्पन्न करने के लिए दिया, जो कभी संतुष्ट नहीं होतीं। यह इसके विपरीत है, अर्थात् नित्य (शाश्वत) की अवस्था, जो निर्वाण/निब्बान/मोक्ष के अंतिम ज्ञान में प्राप्त होती है, जहाँ परम शाश्वत आनंद प्राप्त होता है।

4. संस्कार: आंतरिक परिस्थितिजन्य घटनाएँ जैसे भावनाएँ, मनोभाव, इच्छाएँ, आसक्ति, प्रवृत्तियाँ, प्रतिक्रियाएँ, व्यसन आदि, जो किसी व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार का निर्माण करती हैं, अर्थात् कामुकता, क्रोध, घृणा, लोभ, स्नेह, मोह आदि से संबंधित गुण। इसका संस्कृत/हिंदी शब्द संस्कार (या कर्म संस्कार) है।
5. दुःख: पीड़ा (मानसिक या शारीरिक) जैसे दर्द, बीमारी, असफलता, दुर्घटनाएँ, तनाव, दबाव, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि। यहाँ इसका अर्थ यह है कि सभी भौतिक सुख और इच्छाएँ दुःख की ओर ले जाती हैं, इसलिए इनसे अनासक्ति विकसित करना आवश्यक है।
6. अनात्म: अनात्म + आत्म; इसका अर्थ है आत्म का अस्तित्व न होना। इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई व्यक्ति ध्यान में अंतिम ज्ञानोदय/समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है, जब शारीरिक आत्म भौतिक शरीर से परे जाकर सार्वभौमिक आत्म बन जाता है (मैं सर्वत्र हूँ, मैं सर्वस्व हूँ), तो शारीरिक आत्म के अनुभव की घटना का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

---

अनित्या (क्षणिकता), दुःख (पीड़ा) और अनात्म (अनात्म) से संबंधित कहानियां
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (277), (278) और (279) का उच्चारण किया, जिसमें प्रत्येक में पाँच सौ भिक्षुओं के तीन समूहों का उल्लेख किया गया था।
अनित्यता (अनिच्चा) पर
पांच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद वन में जाकर ध्यान का अभ्यास किया, लेकिन उन्हें कोई खास प्रगति नहीं मिली। इसलिए वे बुद्ध के पास लौटकर एक ऐसे विषय के बारे में पूछने लगे जो उनके लिए अधिक उपयुक्त हो। विचार करने पर बुद्ध को पता चला कि उन भिक्षुओं ने कश्यप बुद्ध के समय में अनित्यता का ध्यान किया था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी (पुनर्जन्म का कारण बनने वाले) कर्म/नैतिक दोष परिवर्तन और क्षय के अधीन हैं और इसलिए अनित्य हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 277 : "सभी संस्कार अनित्य हैं; जब कोई इस बात को अंतर्दृष्टि से समझ लेता है, तो वह दुःख से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।"

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
दुःख (पीड़ा) पर
अगली कहानी अनिक्का की कहानी के समान ही है। यहाँ, बुद्ध ने चिंतन करते हुए पाया कि पाँच सौ भिक्षुओं के एक अन्य समूह ने दुःख (पुनर्जन्म/कष्ट) पर ध्यान किया था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी क्षुद्र समूह दमनकारी और असंतोषजनक हैं; अतः सभी क्षुद्र दुःख (कष्ट) हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 278 : "सभी संस्कार दुःख हैं"; जब कोई इस बात को अंतर्दृष्टि (पन्न) से देखता है, तो वह दुःख/पीड़ा से बाहर आ जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

प्रवचन के अंत में उन पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
सारहीनता या अनात्म (अनात्म) पर
अगली कहानी अनित्या (क्षणिकता) और दुःख (दुःख/पुनर्जन्म) की कहानियों के समान है। यहाँ, बुद्ध ने चिंतन करते हुए पाया कि पाँच सौ भिक्षुओं का एक और समूह अनात्म (अनात्मता) पर ध्यान कर रहा था। इसलिए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, सभी स्कंध समूह अनात्म हैं; वे किसी के वश में नहीं हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 279 : "सभी धर्म अनात्म रहित हैं"; जब कोई इसे अंतर्दृष्टि और ज्ञान से देखता है, तो वह दुःख से मुक्त हो जाता है। यही पवित्रता का मार्ग है।

---

प्रवचन के अंत में उन सभी पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच सौ भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
यह कहानी इस प्रकार है कि बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने वाले और अरहतत्व प्राप्त किए बिना जंगल में अथक परिश्रम करने वाले ये पांच सौ भिक्षु, अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बेहतर ध्यान विषय प्राप्त करने के उद्देश्य से बुद्ध के पास लौट आए।
बुद्ध ने मन ही मन सोचा, "इन भिक्षुओं के लिए सबसे लाभदायक ध्यान का विषय क्या होगा?" फिर उन्होंने मन ही मन विचार किया, "बुद्ध कस्सपा के युग में इन भिक्षुओं ने बीस हजार वर्षों तक अनित्यता के गुण पर ध्यान लगाया; अतः अनित्यता का गुण ही मेरे द्वारा दिए जाने वाले एकमात्र श्लोक का विषय होगा।"
और उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इंद्रियजन्य अस्तित्व के क्षेत्र में और अस्तित्व के अन्य क्षेत्रों में, अस्तित्व के सभी समूह अवास्तविकता के कारण क्षणभंगुर हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 277)
सब्बे संखारा अनिच्च इति यदा पन्नया पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सभी; संखारा : घटक वस्तुएँ; अनिच्चा : क्षणभंगुर हैं; इति यदा : जब यह; पञ्ञाय पसति : (आप) अंतर्दृष्टि से अनुभव करते हैं; अथ : तब; दुक्खे : दुख से; निब्बिंदति : (आप) विरक्त हो जाते हैं; एसा : यह है; विशुद्धिया : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निर्वाण); मग्गो [ मग्गा ]: मार्ग
सभी घटक वस्तुएँ, सभी संयोजित वस्तुएँ, सभी सृजित वस्तुएँ क्षणभंगुर, अस्थिर और अस्थाई हैं। अंतर्दृष्टि से इस ज्ञान के फलस्वरूप, व्यक्ति दुखों से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दोषों से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 278)
सब्बे संखारा दुक्खा इति यदा पनन्या पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सब; संखारा : घटक वस्तुएँ; दुक्खा ' ति : पीड़ित हैं; इति यदा : जब यह; पनन्या पस्सति : (आप) अंतर्दृष्टि से महसूस करते हैं; अथः तब; दुक्खे : कष्ट से; निब्बिंदति : (आप) अलग हो जाओ; ईएसए : यह है; विशुद्धिआ : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निब्बाण); मग्गो [ मग्गा ]: पथ
सभी घटक वस्तुएँ—सभी संयोजित वस्तुएँ—सभी सृजित वस्तुएँ दुःख से भरी हैं। जब अंतर्दृष्टि के माध्यम से यह अहसास होता है, तो व्यक्ति दुःख से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दुःख से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 279)
सब्बे धम्म अनात्ता इति यदा पनन्या पस्सति
अथ दुक्खे निब्बिंदति एसा विशुद्धिय मग्गो
सब्बे : सभी; धम्मा : अस्तित्व की अवस्थाएँ; अनत्ता : (वे) आत्मा रहित हैं; इति यदा: जब यह; पञ्ञाय पसति : (आप) अंतर्दृष्टि से अनुभव करते हैं; अथा : तब; दुःखे : दुख से; निब्बिंदति : (आप) विरक्त हो जाते हैं; एसा : यह है; विशुद्धिया : दोषों से पूर्ण मुक्ति (निर्वाण); मग्गो [ मग्गा ]: मार्ग
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 277-279)
सभी अवस्थाएँ आत्माविहीन होती हैं। जब अंतर्दृष्टि के माध्यम से इस बात का अहसास होता है, तो व्यक्ति दुख से विरक्ति प्राप्त कर लेता है। यही दुख से पूर्ण मुक्ति का मार्ग है।
अनित्य : क्षणभंगुर। बौद्ध धर्म में, अस्तित्व के तीन लक्षण हैं - अनित्य , दुःख और अनात्म । क्षणभंगुरता का अर्थ है कि अस्तित्व के सभी रूप अंततः क्षय और मृत्यु में परिणत होते हैं। निर्वाण को छोड़कर, यह सभी घटनाओं पर लागू होता है।
जो व्यक्ति निरंतर इस तथ्य को ध्यान में रखता है कि उसे एक दिन मृत्यु का सामना करना पड़ेगा और मृत्यु अपरिहार्य है, वह मृत्यु से पहले अपने साथी मनुष्यों के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उत्सुक रहेगा, और यह निश्चित रूप से उसे इस लोक और परलोक के प्रति सजग बनाएगा। इसलिए कहा गया है कि "मृत्यु के चिंतन में लीन रहने वाला भिक्षु सदा सजग रहता है ( मरणसति-मनुयुत्तो भिक्खु सततम् अप्पमत्तो होति )।
हालांकि, कुछ अतिवादी यह कहते हैं कि मृत्यु पर चिंतन एक अनावश्यक विचार है जो व्यक्ति की प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है। ऐसा नहीं है। क्योंकि विष्णुशर्मन ने पंचतंत्र में यही कहा है :
Samcintya tamugradandam

मृत्युं मनुष्यस्य विकासस्य
वर्षसंबुसिक्ता इव कर्मबन्धः
सर्वप्रयत्नः सिथिलि भवन्ति ।
(जो बुद्धिमान व्यक्ति निरंतर कठोर दंड देने वाली मृत्यु के बारे में सोचता रहता है, उसके सभी प्रयास बारिश के पानी से भीगे चमड़े के थैलों की तरह सहज और लचीले हो जाते हैं।)
हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि बौद्ध धर्म ने कभी भी मृत्यु के बारे में सोचकर निराशा और अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने का समर्थन नहीं किया। इसके विपरीत, बौद्ध धर्म में मृत्यु के निकट भी अपने कर्तव्यों और दायित्वों को सर्वोत्तम संभव तरीके से पूरा करने की शिक्षा दी जाती है। बुद्ध ने अपने कर्तव्यों को टालने का स्पष्ट विरोध किया था: बुद्ध कहते हैं:
Ajjeva kiccam ātappaṃ Ko jañña Māraṇaṃ suve ... (आज ही अपने कार्यों को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए; क्योंकि कौन जानता है कि कल मृत्यु आ जाए...)
उरगा जातक कथा के अनुसार, एक पिता ने अपने इकलौते बेटे की सर्प के काटने से हुई मृत्यु पर घरवालों को सूचना भेजी और उनके आने की प्रतीक्षा किए बिना ही अपना खेत जोतना जारी रखा। वह मृत्यु का नियमित ध्यान करने वाला व्यक्ति था। इस प्रकार मृत्यु की अनिवार्यता पर चिंतन करने से व्यक्ति अपने कर्तव्यों के निर्वाह में अधिक सक्रिय हो जाता है; मृत्यु के प्रति निर्भयता का भाव भी विकसित होता है। इसके अलावा, ऐसा व्यक्ति परलोक में कष्ट भोगने वाले किसी भी पाप से बचने का ध्यान रखता है; वह अपने प्रियजनों और अन्य वस्तुओं से सभी बंधनों और आसक्तियों को त्यागकर स्वतंत्र हो जाता है।
भिक्षु और गृहस्थ, दोनों ही मृत्यु के प्रति उदासीन और स्वयं को अमर समझते हुए, अक्सर सद्‌गुणों के विकास में लापरवाही बरतते हैं। वे कलह और वाद-विवाद में लिप्त रहते हैं और अक्सर निराश हो जाते हैं, उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। कभी-कभी वे भविष्य में किसी कार्य को बड़े पैमाने पर करने की आशा में उसे स्थगित कर देते हैं, और अंत में कुछ भी करने में असमर्थ रह जाते हैं। इसलिए, प्रतिदिन मृत्यु पर चिंतन करना उचित है। बौद्धों के लिए निर्धारित चार प्रकार के ध्यान विषयों ( सब्बत्था कम्मत्थाना ) में से, मृत्यु पर चिंतन चौथा विषय ( बुद्धानुस्सति मेट्टा च - असुभं मरणस्सति ) है।
" एकधम्मो भिक्कवे भावितो बहुलीकतो एकान्त निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बाणाय संवत्तति ; कतमो एकधम्मो मरणस्सति ।" हे भिक्षुओं, एक ही धर्म है जिसका निरंतर ध्यान और अभ्यास करने से सांसारिक विरक्ति, सभी दोषों से मुक्ति, सांसारिक दुखों से छुटकारा, उच्च ज्ञान की प्राप्ति, चार आर्य सत्यों का ज्ञान और निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह धर्म क्या है? यह मृत्यु पर निरंतर चिंतन है। मृत्यु पर चिंतन की महानता और महत्व इस धार्मिक ग्रंथ से स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है।
दुःख : पीड़ा। यह अस्तित्व के तीन लक्षणों में से दूसरा है। चारों आर्य सत्य भी दुःख ( दुःख ) के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं।
बुद्ध के चार आर्य सत्यों से संबंधित उपदेश दुख के ज्ञान, दुख के कारण, उसके निवारण और निवारण के मार्ग से संबंधित हैं। दुख से संबंधित सत्य हमें बताता है कि सभी प्राणी जन्म, क्षय, रोग और मृत्यु के अधीन हैं। संक्षेप में, पाँच स्कंध ( रूप ) , वेदना , अनुभूति , कर्म और चेतना , ये सभी दुख का कारण बनते हैं। यही दुख से संबंधित सत्य है, और इसकी सही समझ सम्मादिष्ठी है । सम्मादिष्ठी जगत के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अनिवार्य है। चार आर्य सत्यों में दुख की समझ सर्वोपरि है, इसलिए इसे सर्वप्रथम माना जाता है ।
दूसरा आर्य सत्य दुख के कारण से संबंधित है, और वह है तृष्णा या आसक्ति ( तन्हा )। इसी तृष्णा के कारण समस्त प्राणी संसार के चक्र में जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करते हैं । जिसे प्राणी सुख समझता है, वह वास्तव में दुख है, जो इसी तृष्णा या आसक्ति से उत्पन्न होता है। मनुष्य इसी तृष्णा या आसक्ति के कारण मृगजल में फंसे हिरण की तरह सुख की खोज में अनेक सुखों का पीछा करता है। संसार या जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पाने के लिए तृष्णा के सत्य को समझना आवश्यक है।
यह लालसा तीन रूप धारण करती है:
काम तन्हा (इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति);
भव तन्हा (अस्तित्व के प्रति आसक्ति);
विभव तन्हा (अस्तित्वहीनता से आसक्ति)।
काम तन्हा सक्कायादित्ति से उत्पन्न होता है , यानी इस विचार से कि कोई अपरिवर्तनीय सत्ता या स्थायी आत्मा विद्यमान है—अर्थात 'मैं' नामक कोई सत्ता है। ऐसा भ्रम ग्रस्त व्यक्ति सदा अपनी पाँचों इंद्रियों को तृप्त करने का प्रयास करता है। काम तन्हा के कारण ही सुख को पाँचों इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाला आनंद माना जाता है। यह एक भ्रम है। काम तन्हा बढ़ने के साथ-साथ दुख भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार काम तन्हा दुख का कारण है।
भव तन्हा वह लालसा है जो किसी प्राणी में जीवन के अंत के लिए उत्पन्न होती है। यह लालसा उस प्राणी में उत्पन्न होती है जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखता है ( सस्सतादिट्ठी )।

विभाव तन्हा वह लालसा है जो किसी प्राणी में इंद्रिय सुखों के उपभोग को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर उत्पन्न होती है। यह लालसा परलोक में अविश्वास ( उच्चेदादित्ति ) के कारण उत्पन्न होती है। चार्वाक और अजित केशकंबल का लोकायत सिद्धांत इसी श्रेणी में आता है। बौद्ध धर्मग्रंथ ब्रह्मजाल सूत्र में उच्चेदावाद के सात प्रकारों का वर्णन किया गया है।

जो व्यक्ति सही समझ विकसित कर लेता है, जो कि अष्टांगिक मार्ग का पहला घटक है, वह यह जान लेता है कि यही लालसा दुख का कारण है। चार आर्य सत्यों में से दूसरा सत्य इस लालसा या दुख के कारण से संबंधित है। सही समझ दुख को समाप्त करने का ज्ञान प्रदान करती है। तीसरा आर्य सत्य दुख के निवारण से संबंधित है। दुख के तीन प्रकारों ( तनख्खय ) को नष्ट करके ही दुख का निवारण होता है, जो दुख का कारण बनते हैं। यही निर्वाण है।

सही समझ हमें दुखों के निवारण के मार्ग का ज्ञान देती है। चौथा आर्य सत्य दुखों के निवारण से संबंधित है ( दुक्खनिरोधगामिनि पतिपादाज्ञान )। दुखों के निवारण का मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग है। यही मध्य मार्ग है। अतः मध्य मार्ग का अनुसरण किए बिना दुख उत्पन्न करने वाली तीनों प्रकार की भोग-विलास को समाप्त करना असंभव है।

अनात्म : आत्माहीनता की अवधारणा। यह बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अस्तित्व के तीन गुणों में से तीसरा है। आत्मा का अभाव, या एक स्थायी और स्थिर स्व, या एक शाश्वत आत्मा का अभाव, अधिकांश व्यक्तियों के लिए समझना अत्यंत कठिन है।

बौद्ध धर्म में सिखाए जाने वाले परिवर्तन के सिद्धांत का सार यह है कि अस्तित्व से जुड़ी सभी घटक वस्तुएँ एक प्रक्रिया हैं, न कि स्थिर सत्ताओं का समूह। परन्तु परिवर्तन इतनी तीव्र गति से होते हैं कि लोग मन और शरीर को स्थिर सत्ताएँ मान लेते हैं। वे उनके उद्भव और विघटन को नहीं देखते, बल्कि उन्हें एक इकाई के रूप में, एक पिंड ( घाना सन्ञा ) या संपूर्ण मानते हैं।

वे तपस्वी और ब्राह्मण जो आत्मा की अवधारणा को विभिन्न तरीकों से समझते हैं, वे इसे या तो आसक्ति के पांच समूहों के रूप में, या उनमें से किसी एक के रूप में समझते हैं।

"यहाँ अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति... शरीर को आत्मा मानता है, आत्मा को शरीर से युक्त मानता है, आत्मा को शरीर में समाहित मानता है... इसी प्रकार भावना, बोध, इच्छाशक्ति निर्माण और चेतना के बारे में भी यही मानता है... अतः यह गलत दृष्टिकोण है। 'मैं हूँ' की अवधारणा का त्याग नहीं किया जाता..."

जो लोग अपने मन, शरीर और बाह्य जगत को मानसिक कल्पनाओं के आधार पर संपूर्ण, अविभाज्य इकाई मानकर देखते रहते हैं, उनके लिए इस 'संपूर्णता' के झूठे भ्रम से छुटकारा पाना वास्तव में बहुत कठिन है। जब तक मनुष्य चीजों को प्रक्रियाओं, गतियों के रूप में नहीं देखेगा, तब तक वह बुद्ध के अनात्म (आत्माहीनता) सिद्धांत को कभी नहीं समझ पाएगा। इसीलिए लोग अभद्रता और अधीरता से यह प्रश्न पूछते हैं: "यदि आत्मा या आत्मन ( स्वयं ) जैसी कोई स्थायी सत्ता, कोई अपरिवर्तनीय सिद्धांत नहीं है, तो वह क्या है जो इस जन्म और परलोक में कर्मों के फल भोगता है?"

अस्तित्व के तीन गुणों का एक अन्य दृष्टिकोण अनित्यता ( अनिच्चा ), दुःख ( दुक्खा ) और अनात्म ( अनात्म ) हैं। ये तीनों गुण अस्तित्व में हमेशा मौजूद रहते हैं या उससे जुड़े होते हैं, और ये अस्तित्व के वास्तविक स्वरूप को दर्शाते हैं। ये हमें अस्तित्व से निपटने में मदद करते हैं। इन तीनों गुणों को समझने के परिणामस्वरूप हम जो सीखते हैं, वह है वैराग्य। एक बार जब हम समझ जाते हैं कि अस्तित्व सार्वभौमिक रूप से अनित्यता, दुःख और अनात्म से चिह्नित है, तो हम अस्तित्व से अपना आसक्ति समाप्त कर देते हैं। अस्तित्व से अपना आसक्ति समाप्त करते ही हम निर्वाण की दहलीज पर पहुँच जाते हैं। यही इन तीनों गुणों को समझने का उद्देश्य है। यह भ्रमों को दूर करके आसक्ति को दूर करता है, इस गलतफहमी को दूर करता है कि अस्तित्व स्थायी है, सुखद है और इसका आत्मा से कुछ संबंध है। इसीलिए इन तीनों गुणों को समझना ज्ञान का केंद्र है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 280

---

(धम्मपद 277, 278 और 279) <<<< पिछला॥ धम्मपद280 ॥अगला >>>> (धम्मपद281)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 280 - पधानकम्मिकतिसत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Utthana kalamhi anutthahano
yuva bali Alasiyam upeto
samsanna sankappamano kusito
पन्नया मग्गम अलासो न विंदति।

---

श्लोक 280 : वह आलसी व्यक्ति जो उस समय प्रयास नहीं करता जब उसे प्रयास करना चाहिए, जो युवा और बलवान होते हुए भी आलस्य में लिप्त रहता है, जिसके विचार कमजोर और भटकते रहते हैं, वह उस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाएगा जो केवल बुद्धि से ही प्राप्त किया जा सकता है।

---

आलसी थेरा टिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (280) का उच्चारण किया, जो एक आलसी भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में था। एक बार, श्रावस्ती में बुद्ध ने पाँच सौ युवकों को संघ में प्रवेश दिया। बुद्ध से ध्यान का एक विषय प्राप्त करने के बाद, एक को छोड़कर सभी नए भिक्षु ध्यान का अभ्यास करने के लिए वन में चले गए। उन्होंने लगन और सतर्कता से अभ्यास किया, जिसके परिणामस्वरूप समय आने पर उन सभी ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ लौटे, तो बुद्ध उनकी उपलब्धि से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। भिक्षु तिस्सा, जो वहीं रह गए थे, ने कोई प्रयास नहीं किया और इसलिए उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।
जब तिस्सा ने देखा कि बुद्ध और उन भिक्षुओं के बीच बहुत सौहार्दपूर्ण और घनिष्ठ संबंध है, तो उन्हें उपेक्षित महसूस हुआ और उन्हें खेद हुआ कि उन्होंने अपना सारा समय व्यर्थ कर दिया। इसलिए उन्होंने पूरी रात ध्यान करने का संकल्प लिया। उस रात ध्यान करते हुए चलते समय वे फिसल गए और उनकी जांघ की हड्डी टूट गई। उनकी चीख सुनकर अन्य भिक्षु उनकी सहायता के लिए दौड़े। इस घटना के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जो व्यक्ति परिश्रम करने के समय परिश्रम नहीं करता और अपना समय व्यर्थ व्यतीत करता है, वह ध्यान (ज्ञान) और अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 280 : वह आलसी व्यक्ति जो उस समय प्रयास नहीं करता जब उसे प्रयास करना चाहिए, जो युवा और बलवान होते हुए भी आलस्य में लिप्त रहता है, जिसके विचार कमजोर और भटकते रहते हैं, वह उस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाएगा जो केवल बुद्धि से ही प्राप्त किया जा सकता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आलसी तिस्सा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने आलसी भिक्षु तिस्सा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार, सावत्थी में बुद्ध ने कई युवकों को संघ में शामिल किया। बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद, एक को छोड़कर सभी नए भिक्षु ध्यान का अभ्यास करने के लिए वन में चले गए। उन्होंने लगन और सतर्कता से अभ्यास किया, जिसके परिणामस्वरूप समय आने पर उन सभी ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ लौटे, तो बुद्ध उनकी उपलब्धि से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हुए। भिक्षु तिस्सा, जो वहीं रह गए थे, ने कोई प्रयास नहीं किया और इसलिए उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ।
जब तिस्सा ने देखा कि बुद्ध और उन भिक्षुओं के बीच बहुत सौहार्दपूर्ण और घनिष्ठ संबंध है, तो उन्हें उपेक्षित महसूस हुआ और उन्हें खेद हुआ कि उन्होंने अपना सारा समय व्यर्थ कर दिया। इसलिए उन्होंने पूरी रात ध्यान करने का संकल्प लिया। उस रात ध्यान करते हुए चलते समय वे फिसल गए और उनकी जांघ की हड्डी टूट गई। उनकी चीख सुनकर अन्य भिक्षु उनकी सहायता के लिए दौड़े। इस घटना के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो व्यक्ति परिश्रम करने के समय परिश्रम नहीं करता और आलस्य में समय व्यतीत करता है, वह ध्यान ( ज्ञान ) और अंतर्दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता ।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 280)
उत्थानकलामहि अनुत्थानो युवा बलि अलसीयम् उपेतो ,
संसन्न संकप्पामानो कुसितो अलसो पन्नया मग्गं न विंदति

उत्थानाकालम्ही : जब प्रयास करना आवश्यक हो; अनुत्तहहानो [ अनुत्तहहान ]: प्रयास नहीं करता; युवा : (यद्यपि) युवा; बलि : (यद्यपि) बलवान; आलसियं उपेतो [ उपेता ]: (यदि) सुस्त हो; संसन्न संकप्पमनो [ संकप्पमन ]: यदि अच्छे विचार दबा दिए जाएं; कुसीतो [ कुसीता ]: आलसी; अलसो [ अलसा ]: सुस्त; पञ्ञाय मग्गं [ मग्ग ]: ज्ञान का मार्ग; न विन्दति : नहीं पाता

यदि कोई व्यक्ति उस समय भी प्रयास नहीं करता जब परिश्रम करना आवश्यक होता है, यदि कोई व्यक्ति युवा और बलवान होने पर भी सुस्त रहता है, यदि कोई व्यक्ति अपने मन में उठने वाले अच्छे विचारों को दबाता है, यदि वह आलसी है, तो उसे ज्ञान का मार्ग नहीं मिलेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 280)

paññāya maggaṃ : वह मार्ग जिसे बुद्धि के माध्यम से समझना आवश्यक है।

पन्ना : समझ, ज्ञान, बुद्धि, अंतर्दृष्टि, एक बहुत व्यापक क्षेत्र को समाहित करता है। हालाँकि, विशिष्ट बौद्ध ज्ञान या बुद्धि, मोक्ष के अष्टांगिक मार्ग के एक भाग के रूप में, अंतर्दृष्टि है, अर्थात् वह सहज ज्ञान जो पवित्रता के चार चरणों और निर्वाण की प्राप्ति कराता है और जो अस्तित्व के सभी रूपों की अनित्यता, दुख और निराकारता के भेदन में निहित है।

इसके उत्पन्न होने की स्थिति के संबंध में, ज्ञान के तीन प्रकारों में अंतर किया जाता है: चिंतन पर आधारित ज्ञान ( चिंता-मय-पञ्ञा ), अधिगम पर आधारित ज्ञान ( सुत-मय-पञ्ञा ), और मानसिक विकास पर आधारित ज्ञान ( भावना-मय-पञ्ञा )।

चिंतन पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने स्वयं के चिंतन से अर्जित किया हो, न कि दूसरों से सीखा हो। अधिगम पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने दूसरों से सुनकर अधिगम के माध्यम से प्राप्त किया हो। मानसिक विकास पर आधारित वह ज्ञान है जो व्यक्ति ने किसी न किसी प्रकार के मानसिक विकास के माध्यम से अर्जित किया हो और जो पूर्ण एकाग्रता की अवस्था तक पहुँच चुका हो।

बुद्धि पांच मानसिक क्षमताओं में से एक है, तीन प्रकार के प्रशिक्षणों में से एक है और पूर्णताओं में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 281

---

(धम्मपद280) <<<< पिछला ‖ धम्मपद281 ‖ अगला >>>> (धम्मपद282)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 281 - सुकारपेटा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Vacanurakkhi manasa susamvuto
kayena ca nakusalam kayira
ete tayo kammapathe visodhaye
अराधये मग्गा' मिसिप्पवेदितम्।

---

श्लोक 281 : वाणी में सावधानी बरतनी चाहिए, मन को संयमित रखना चाहिए और शारीरिक रूप से भी किसी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टम मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

---

एक सूअर-पेटा (मानव शरीर वाला सूअर का सिर वाला भूत) की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।

एक बार थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोग्गलाना मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस सूअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस सूअर-पेटा की कहानी सुनाई।

कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम अच्छा चल रहा है क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को मठ छोड़कर चला जाए और पूरा मठ अपने लिए खाली कर ले तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक भिक्षु को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को एक सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को विचार, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 281 : वाणी में सावधानी बरतनी चाहिए, मन को संयमित रखना चाहिए और शारीरिक रूप से भी किसी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टम मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक सूअर की आत्मा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सूअर की आत्मा के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।

एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे रहने वाले जीव ( पेटा ) को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस पेटा के बारे में बताया , जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस पेटा की कहानी सुनाई ।

कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम बहुत अच्छा चल रहा था क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को वहाँ से भगा दे और मठ पर उसका पूरा अधिकार हो जाए तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था, जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को मन, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 281)

वचनुरक्खी मनसा सुसानवुतो , कायेना च
अकुसलं न कयिरा एते तयो कम्मपथे
विशोधये इशिप्पवेदितं मग्गं अराध्ये

वाचनुरक्खी : वाणी में सजग; मनसा : मन में; सुसंवुतो [ सुसंवुत ]: संयमित; कायेन च : शरीर से भी; अकुसल [ अकुसल ]: बुरे कर्म; न कायिरा : नहीं किए जाते; एते तयो कम्मपथे : कर्म के इन तीन द्वारों का पालन करता है; विसोधये : शुद्ध; इसिप्पवेदित [ इसिप्पवेदित ]: ऋषियों द्वारा प्राप्त; मग्गा [ मग्ग ]: श्रेष्ठ अष्टमार्ग; आराधये : (वह) प्राप्त करेगा

यदि कोई व्यक्ति वाणी में सजग रहे, मन में संयम रखे और शारीरिक रूप से पाप करने से परहेज करे, तो वह निश्चित रूप से ऋषियों द्वारा प्राप्त किए गए श्रेष्ठ अष्टमार्ग को प्राप्त कर लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 281)

तायो कम्मपथे : कर्म के तीन द्वार — वाणी, मन और शरीर। कर्म के संबंध में विचार अक्सर विवादास्पद होते हैं। यद्यपि हम अपने कर्म के पूर्णतः स्वामी या दास नहीं हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि कर्म के फल पर बाहरी परिस्थितियों, परिवेश, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत प्रयास

आदि का कुछ हद तक प्रभाव पड़ता है। कर्म का यही सिद्धांत बौद्ध को सांत्वना, आशा, भरोसा और नैतिक साहस प्रदान करता है। जब अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, कठिनाइयाँ, असफलताएँ और दुर्भाग्य उसके सामने आते हैं, तो बौद्ध को यह अहसास होता है कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है और अतीत के ऋण को चुका रहा है। कर्म पर सब कुछ छोड़ देने के बजाय, वह खरपतवारों को उखाड़ने और उनके स्थान पर उपयोगी बीज बोने का भरसक प्रयास करता है, क्योंकि भविष्य उसके हाथों में है। कर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सबसे भ्रष्ट व्यक्ति की भी निंदा नहीं करता, क्योंकि उनके पास किसी भी क्षण स्वयं को सुधारने का अवसर होता है। दुखदायी अवस्थाओं में कष्ट भोगने के लिए बाध्य होते हुए भी, उन्हें शाश्वत शांति की आशा रहती है। अपने कर्मों से वे स्वयं अपना नरक बनाते हैं, और अपने कर्मों से ही अपना स्वर्ग भी बना सकते हैं। कर्म के नियम में पूर्णतः विश्वास रखने वाला बौद्ध मुक्ति के लिए किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं करता, बल्कि अपने आप पर ही विश्वास रखता है। किसी भी प्रकार का आत्मसमर्पण करने या किसी अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के बजाय, वह अपनी इच्छाशक्ति पर भरोसा करता है और सभी के कल्याण और सुख के लिए निरंतर कार्य करता है।

कर्म में विश्वास, "उसके प्रयासों को सार्थकता प्रदान करता है और उसके उत्साह को बढ़ाता है" क्योंकि यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी सिखाता है। एक साधारण बौद्ध के लिए कर्म एक निवारक का काम करता है, जबकि एक बुद्धिजीवी के लिए यह अच्छे कर्म करने के लिए एक प्रेरणा का काम करता है। कर्म का यह नियम दुख की समस्या, कुछ धर्मों में वर्णित भाग्य और नियति के रहस्य और सबसे बढ़कर मानव जाति की असमानता की व्याख्या करता है। हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। हम अपने सृजनकर्ता स्वयं हैं। हम अपने विनाशक स्वयं हैं। हम अपने स्वर्ग स्वयं बनाते हैं। हम अपने नरक स्वयं बनाते हैं। हम जो सोचते हैं, बोलते हैं और करते हैं, वह हमारा अपना हो जाता है। ये विचार, शब्द और कर्म ही कर्म का नाम धारण करते हैं और जन्म-जन्मांतर तक हमारे संसार के भ्रमण में हमारा उत्थान और पतन करते रहते हैं ।

बुद्ध ने कहा:

मनुष्य के गुण और उसके द्वारा किए गए पाप:
यही वह चीज है जो उसके पास है, और इसी के सहारे वह यहाँ से जाता है।
वह परछाई की तरह उसका पीछा करता है।
इसलिए उसे भविष्य में जीवनयापन के लिए अच्छी बचत कर लेनी चाहिए।
किसी अन्य भविष्य की दुनिया में अवश्य ही एक मंच होगा।
अच्छे प्राणियों को उनके सद्‌गुणों का फल अवश्य मिलेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 282

---

(धम्मपद281) <<<< पिछला॥ धम्मपद282 ॥अगला >>>> (धम्मपद 283 और 284)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 282 - पोथिलत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yoga ve jayati bhuri
ayoga bhurisankhayo
etam dvedhapatham natva

भावया विभावया च
तथा ट्टानाम निवेशेय्या
यथा भूरी पावद्धति.

———————————————————————

श्लोक 282 : निःसंदेह, बुद्धि ध्यान से उत्पन्न होती है; ध्यान के बिना बुद्धि लुप्त हो जाती है। बुद्धि की प्राप्ति और हानि के इस दोहरे मार्ग को जानकर, मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे बुद्धि में वृद्धि हो।

———————————————————————

थेरा पोथिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा पोथिला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (282) कहा।

पोत्थिला एक वरिष्ठ भिक्षु थे जो पिटक ग्रंथ के ज्ञाता थे और वास्तव में पाँच सौ भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा दे रहे थे। पिटक ग्रंथ के ज्ञान के कारण वे बहुत अहंकारी थे। बुद्ध उनकी इस कमजोरी को जानते थे और चाहते थे कि वे अपना आचरण सुधारें और सही मार्ग पर चलें। इसलिए, जब भी पोत्थिला प्रणाम करने आते, बुद्ध उन्हें 'निकम्मा पोत्थिला' कहकर संबोधित करते। जब पोत्थिला ने ये बातें सुनीं, तो उन्होंने बुद्ध के इन शब्दों पर विचार किया और उन्हें यह अहसास हुआ कि बुद्ध ने ये कठोर शब्द इसलिए कहे थे क्योंकि उन्होंने (पोत्थिला ने) ध्यान का अभ्यास करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया था और न ही वे किसी भी मार्ग को प्राप्त कर पाए थे, यहाँ तक कि ध्यान की किसी भी अवस्था को भी नहीं।

इस प्रकार, किसी को बताए बिना, थेरा पोथिला जेतवन मठ से बीस योजन दूर एक मठ में चले गए। उस मठ में तीस भिक्षु थे। सबसे पहले, वे सबसे वरिष्ठ भिक्षु के पास गए और विनम्रतापूर्वक उनसे अपना गुरु बनने का अनुरोध किया; लेकिन थेरा ने उन्हें विनम्र बनाए रखने के लिए अगले वरिष्ठ भिक्षु के पास जाने को कहा, जिन्होंने उन्हें आगे अगले के पास भेज दिया। इस प्रकार, उन्हें एक के बाद एक भेजा जाता रहा, जब तक कि वे एक सात वर्षीय अर्हत समनेर के पास नहीं पहुँच गए। युवा समनेर ने पोथिला को शिष्य के रूप में तभी स्वीकार किया जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि पोथिला उनके निर्देशों का आज्ञाकारी रूप से पालन करेंगे। समनेर के निर्देशानुसार, थेरा पोथिला ने अपना ध्यान शरीर के वास्तविक स्वरूप पर दृढ़ता से केंद्रित रखा; वे अपने ध्यान में अत्यंत तल्लीन और सतर्क थे।

बुद्ध ने अपने दर्शन में पोथिला को देखा और अलौकिक शक्ति के माध्यम से पोथिला को अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और उसे दृढ़ और उत्साही रहने के लिए प्रोत्साहित किया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 282 : निःसंदेह, बुद्धि ध्यान से उत्पन्न होती है; ध्यान के बिना बुद्धि लुप्त हो जाती है। बुद्धि की प्राप्ति और हानि के इस दोहरे मार्ग को जानकर, मनुष्य को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे बुद्धि में वृद्धि हो।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में पोत्थिला ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पूज्य पोथिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य पोथिला के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

पोथिला एक वरिष्ठ भिक्षु थे जो पिटक ग्रंथ के ज्ञाता थे और वास्तव में कई भिक्षुओं को धम्म की शिक्षा दे रहे थे। पिटक ग्रंथ के ज्ञान के कारण वे बहुत अहंकारी भी थे। बुद्ध उनकी इस कमजोरी को जानते थे और चाहते थे कि वे अपना आचरण सुधारें और सही मार्ग पर चलें। इसलिए, जब भी पोथिला प्रणाम करने आते, बुद्ध उन्हें 'निकम्मे पोथिला' कहकर संबोधित करते। जब पोथिला ने ये बातें सुनीं, तो उन्होंने बुद्ध के इन शब्दों पर विचार किया और उन्हें यह अहसास हुआ कि बुद्ध ने ये कठोर शब्द इसलिए कहे थे क्योंकि पोथिला ने ध्यान का अभ्यास करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया था और न ही उन्होंने किसी मार्ग को प्राप्त किया था, यहाँ तक कि किसी भी स्तर की ध्यानमग्नता ( झान ) को भी नहीं।

इस प्रकार, पूज्य पोथिला ने किसी को बिना बताए जेतवन मठ से बीस योजन दूर एक मठ के लिए प्रस्थान किया। उस मठ में तीस भिक्षु थे। सर्वप्रथम वे सबसे वरिष्ठ भिक्षु के पास गए और उनसे विनम्रतापूर्वक अपना गुरु बनने का अनुरोध किया; परन्तु वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें विनम्र बनाए रखने के लिए अगले वरिष्ठ भिक्षु के पास जाने को कहा, जिन्होंने उन्हें आगे अगले भिक्षु के पास भेज दिया। इस प्रकार वे एक के बाद एक भिक्षुओं के पास जाते रहे, अंततः एक सात वर्षीय अर्हत सामनेर के पास पहुँचे। युवा सामनेर ने पोथिला को शिष्य के रूप में तभी स्वीकार किया जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि पोथिला उनके निर्देशों का आज्ञाकारी रूप से पालन करेंगे। सामनेर के

निर्देशानुसार, पूज्य पोथिला ने अपना ध्यान शरीर के वास्तविक स्वरूप पर दृढ़तापूर्वक केंद्रित रखा; वे अपने ध्यान में अत्यंत तल्लीन और सजग थे।

बुद्ध ने अपने दर्शन में पोथिला को देखा और अलौकिक शक्ति से उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया तथा उन्हें दृढ़ और उत्साही बने रहने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रवचन के अंत में, पोथिला ने अर्हत पद प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 282)

योग वे भूरि जयति अयोग भूरिसंखयो
भावाय विभावाय च एतं द्वेधा पाठं नात्वा
यथा भूरि पवन्धति तथा अत्तनं निवेसेय

योगा : ध्यान से; वे : निश्चित रूप से; भूरी : परिष्कृत बुद्धि; जायति : उत्पन्न होती है; अयोगा : ध्यान न करने से; भूरिसंखयो [ भूरिसंखय ]: बुद्धि का क्षरण होता है; भावाय : प्रगति; विभावाय च : पतन भी; एतां द्वेधा पथं [ पथ ]: ये दो मार्ग; ञत्वा : जानकर; यथा : किस प्रकार; भूरी पवद्धति : बुद्धि बढ़ती है; तथा : उस प्रकार; अत्तानं [ अत्तान ]: स्वयं; निवेश्य : स्थापित करना

चिंतन और एकाग्रता से परिष्कृत ज्ञान का उदय होता है। एकाग्रता का अभ्यास न करने से ज्ञान क्षीण हो जाता है। एक बार जब ये दोनों मार्ग — एक प्रगति की ओर और दूसरा पतन की ओर — पहचान लिए जाएं, तो व्यक्ति को ज्ञान बढ़ाने के लिए आचरण करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 282)

योगा वे भूरी जायति : ध्यान निश्चय ही बुद्धि को परिष्कृत करता है। ध्यान ( भावना ) स्वस्थ क्षमताओं, विशेष रूप से मानसिक क्षमताओं को परिष्कृत करने की एक प्रक्रिया है। मानसिक विकास (शाब्दिक अर्थ: अस्तित्व में लाना, उत्पन्न करना) को अंग्रेजी में सामान्यतः, लेकिन कुछ अस्पष्ट रूप से, ध्यान कहा जाता है। दो प्रकारों में अंतर करना आवश्यक है - शांति ( समाथाभावना ) का विकास, अर्थात् एकाग्रता ( समाधि ), और अंतर्दृष्टि ( विपस्सना-भावना ) का विकास, अर्थात् ज्ञान ( पञ्ञा )।

ये दो महत्वपूर्ण शब्द, शांति और अंतर्दृष्टि ( समथ-विपस्सना ), अक्सर सूत्र और अभिधम्म दोनों में मिलते हैं और इनकी व्याख्या की जाती है।

शांति ( समथा ) मन की एकाग्र, अविचलित, शांत और इसलिए निर्मल अवस्था है, जबकि अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) अस्तित्व की सभी शारीरिक और मानसिक घटनाओं की अनित्यता, दुख और निराकारता ( अनिच्च , दुःख , अनात्म ) में सहज अंतर्दृष्टि है , जो अस्तित्व के पांच समूहों में शामिल हैं, अर्थात् शारीरिकता, भावना, बोध, मानसिक संरचनाएं और चेतना।

संखेपवण्णा ( अभिधम्मत्थ-संघ की टीका ) के अनुसार , मन की शांति या एकाग्रता तीन प्रकार के आशीर्वाद प्रदान करती है: अनुकूल पुनर्जन्म, वर्तमान सुखी जीवन और मन की पवित्रता, जो अंतर्दृष्टि की अवस्था है। एकाग्रता ( समाधि ) पांच मानसिक दोषों या बाधाओं ( निवरण ) से मन को शुद्ध करके अंतर्दृष्टि का अनिवार्य आधार और पूर्व शर्त है, जबकि अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) पवित्रता और मन की मुक्ति की चार अलौकिक अवस्थाओं को उत्पन्न करती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं: "हे भिक्षुओं, आप मानसिक एकाग्रता विकसित करें; क्योंकि जो मानसिक रूप से एकाग्र होता है वह चीजों को वास्तविकता के अनुसार देखता है।" और यह भी कहा गया है, "जैसे किसी अंधेरे कमरे में जलता हुआ दीपक लाने पर उसकी रोशनी अंधकार को नष्ट कर देती है और प्रकाश उत्पन्न करके फैला देती है, वैसे ही अंतर्दृष्टि, एक बार उत्पन्न होने पर, अज्ञान के अंधकार को नष्ट कर देती है और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करती है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 283,284

---

(धम्मपद282) <<<< पिछला॥ धम्मपद 283 और 284 ॥अगला >>>> (धम्मपद285)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 283 और 284 - पंचमहल्लकभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Vanam chindatha ma rukkham

वनतो जयते भयम्
chetva vananca vanathanca
nibbana hotha bhikkhavo.
Yava hi vanatho na chijjati
अनुमत्तोपि नरसा नारिसु
patibaddhamanova tava so
vaccho khirapakova matari.

---

श्लोक 283 : हे भिक्षुओं, भोग-विलास के जंगल को काट डालो, असली वृक्ष को नहीं; भोग-विलास का जंगल पुनर्जन्म का खतरा पैदा करता है। भोग-विलास के जंगल और उसकी झाड़ियों को काट डालो और भोग-विलास से मुक्त हो जाओ।

---

श्लोक 284 : जब तक स्त्री के लिए पुरुष की लालसा कम नहीं हो जाती और उसका जरा सा भी अंश शेष रहता है, तब तक उसका मन उसी प्रकार बंधन में रहता है जैसे बछड़ा अपनी माँ से बंधा रहता है।

---

पांच वृद्ध भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच वृद्ध भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (283) और (284) का उच्चारण किया।
एक समय की बात है, सावत्थी में पाँच मित्र थे जिन्होंने वृद्धावस्था में ही भिक्षुत्व ग्रहण किया। ये पाँचों भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए अपने वृद्धाश्रम जाया करते थे। इन पाँचों की पूर्व पत्नियों में से एक, मधुरापचिका, विशेष रूप से कुशल रसोइया थीं और उनकी अच्छी देखभाल करती थीं। इसलिए, ये पाँचों भिक्षु अक्सर उनके घर ही जाते थे। लेकिन एक दिन मधुरापचिका बीमार पड़ गईं और अचानक उनका निधन हो गया। वृद्ध भिक्षुओं को गहरा दुःख हुआ और वे सब मिलकर उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए और अपने देह त्याग पर शोक व्यक्त करते हुए रोए।
बुद्ध ने उन भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और कहा, "भिक्षुओं! तुम सब पीड़ा और शोक भोग रहे हो क्योंकि तुम लोभ, घृणा और अज्ञान (राग, दोष, मोह) से मुक्त नहीं हो, जो एक जंगल के समान हैं। इस जंगल को काट डालो, और तुम लोभ, घृणा और अज्ञान से मुक्त हो जाओगे।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 283 : हे भिक्षुओं, भोग-विलास के जंगल को काट डालो, असली वृक्ष को नहीं; भोग-विलास का जंगल पुनर्जन्म का खतरा पैदा करता है। भोग-विलास के जंगल और उसकी झाड़ियों को काट डालो और भोग-विलास से मुक्त हो जाओ।

---

श्लोक 284 : जब तक स्त्री के लिए पुरुष की लालसा कम नहीं हो जाती और उसका जरा सा भी अंश शेष रहता है, तब तक उसका मन उसी प्रकार बंधन में रहता है जैसे बछड़ा अपनी माँ से बंधा रहता है।

---

प्रवचन के अंत में पांचों वृद्ध भिक्षुओं ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
पांच वृद्ध भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पांच वृद्ध भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
कथा के अनुसार, संसार में रहते हुए वे सावत्थी के धनी और समृद्ध गृहस्थ थे। घनिष्ठ मित्र होने के कारण वे अच्छे कर्म करने के लिए एक साथ जुड़ गए। बुद्ध के धम्म उपदेश सुनकर उन्होंने मन ही मन कहा, “हम तो बूढ़े हो चुके हैं; अब गृहस्थ क्यों रहें?” अतः उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया और संसार त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। वृद्धावस्था के कारण वे धम्म को कंठस्थ नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने मठ के बाहरी इलाके में पत्तों और घास से एक कुटिया बनाई और वहीं रहने लगे। भिक्षा मांगने के दौरान वे आम तौर पर अपने पुत्रों और पत्नियों के घर जाते और वहीं भोजन करते थे।
अब उन वृद्ध भिक्षुओं में से एक की पूर्व पत्नी का नाम मधुरपाचिका था, और वह उन सभी की अच्छी मित्र थीं। इसलिए, वे सभी प्राप्त भोजन उनके घर ले जाते थे, और वहाँ बैठकर खाते थे, और मधुरपाचिका उन्हें अपने भंडार से चटनी और करी देती थीं। समय बीतने

पर उन्हें कोई बीमारी हो गई और उनका निधन हो गया। तब वे वृद्ध भिक्षु अपनी एक कुटिया में एकत्रित हुए, और एक-दूसरे के गले लगकर रोने और विलाप करने लगे, और कहने लगे, "मधुरपाचिका, हमारी गृहस्थ शिष्या, का निधन हो गया।" तब चारों ओर से भिक्षु दौड़ते हुए आए और पूछा, "भाइयों, क्या बात है?" वृद्ध भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "आदरणीय भिक्षुओं, हमारे साथी की पूर्व पत्नी का निधन हो गया है। वह हमारी अत्यंत उदार कृषक थीं। अब हमें उनके जैसी दूसरी कहाँ मिलेगी? इसीलिए हम रो रहे हैं।"

सत्य के हॉल में भिक्षु उस घटना पर चर्चा करने लगे। तभी बुद्ध आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है जब उन्होंने ऐसा व्यवहार किया है; यही घटना उनके पिछले जन्म में भी घटी थी। पिछले जन्म में वे सब कौवे के रूप में पुनर्जन्म लिए थे। जब वह समुद्र के किनारे चल रही थी, तो समुद्र की एक लहर ने उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई, जिस पर वे सब रोने और विलाप करने लगे। उन्होंने कहा, 'हम उसे फिर से बाहर निकाल लेंगे,' और तुरंत अपनी चोंच से विशाल सागर को खाली करने में जुट गए; अंत में वे अपने काम से थक गए।"

बुद्ध ने काक जातक का विस्तृत वर्णन करने के बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्योंकि तुम कामवासना, घृणा और भ्रम के वन के कारण इस कष्ट को भोग रहे हो, इसलिए तुम्हें इस वन को काट डालना चाहिए; ऐसा करने से तुम्हें कष्टों से मुक्ति प्राप्त होगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 283)

भिक्खवो वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो भयं

जयति वनञ्च वनथञ्च चेत्वा निब्बाना होथा

भिक्खवो [ भिक्खव ]: हे भिक्षुओं; वनं [ वन ]: दोषों का वन; चिन्दथ : काट डालो; मा रुक्खं [ रुक्खा ]: वृक्ष को मत काटो; वनतो [ वनत ]: दोषों के वन से; भयं [ भय ]: भय; जायति : उत्पन्न होता है; वनंच : वन; वनथंच : और झाड़ियाँ भी; चेत्वा : काटकर; निब्बाना होथ : अमरता (वनहीनता) प्राप्त करो।

हे भिक्षुओं, विकारों के जंगलों को काट डालो। परन्तु वृक्षों को मत काटो। भय विकारों के जंगलों से उत्पन्न होता है। जंगलों और झाड़ियों दोनों को साफ करो। ऐसा करने से निर्वाण की अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 284)

नरस्सा नारिसु अनुमत्तो अपि वनथो यावं हि न चिज्जति ,

तव सो मातरि खिरपाको वाचो इव पतिबद्धमानो एव

नरस्सा : मनुष्य का; नारिसु : स्त्रियों के प्रति; अणुमत्तो अपि : थोड़ा सा भी; वनथो [ वनथा ]: दोषों का एक छोटा सा आवरण (मौजूद है); यावं हि : जब तक; न चिज्जति : (यह) नष्ट नहीं हो जाता; ताव : तब तक; इसलिए : वह मनुष्य; मातरि : माता के प्रति (आसक्त); खीरापको [ खीरापका ]: दूध पीने वाला; वच्छो इव : बछड़े के समान; पटिबद्धमानो एव : निश्चित रूप से (स्त्रियों के प्रति) आसक्त होगा।

जब तक किसी पुरुष का मन स्त्री से जुड़ा रहता है, चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो, जैसे कोई छोटी सी झाड़ी जिसे काटा न गया हो, तब तक उसका मन दूध पीते बछड़े की तरह अपनी मां गाय से जुड़ा रहेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 283-284)

नरस्सा नारिसु : पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण। बुद्ध यहाँ पुरुष के स्त्री के प्रति प्रबल और अनियंत्रित आसक्ति का उल्लेख कर रहे हैं। बुद्ध के प्रवचनों के कुछ अंशों में यौन संबंध के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है। अंगुत्तरा निकाय के आरंभिक प्रवचन में कहा गया है: हे भिक्षुओं, मुझे किसी अन्य रूप का ज्ञान नहीं है जिससे पुरुष का हृदय स्त्री के रूप के समान आकर्षित होता हो। हे भिक्षुओं, स्त्री का रूप पुरुष के मन को भर देता है।

भिक्षुओं, मुझे किसी और ध्वनि का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और गंध का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और स्वाद का ज्ञान नहीं है... मुझे किसी और स्पर्श का ज्ञान नहीं है... जिससे पुरुष का हृदय स्त्री के स्पर्श की तरह आकर्षित होता हो। स्त्री की ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श पुरुष के मन को भर देते हैं।

भिक्षुओं, मुझे किसी अन्य रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श का ज्ञान नहीं है जिससे स्त्री का हृदय पुरुष के रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श की तरह आकर्षित हो। भिक्षुओं, स्त्री का मन इन्हीं चीजों से भरा रहता है।

यहां कामुकता पर एक ऐसा उपदेश है जिसे स्पष्ट भाषा में समझाया गया है, जिसकी सच्चाई को कोई भी समझदार व्यक्ति नकारने की हिम्मत नहीं कर सकता। बुद्ध ने कामुकता को मनुष्य की सबसे प्रबल प्रवृत्ति बताया है। यदि कोई इस प्रवृत्ति का गुलाम बन जाता है, तो सबसे शक्तिशाली व्यक्ति भी कमजोर हो जाता है; यहां तक कि ऋषि भी उच्चतर स्तर से निम्नतर स्तर पर गिर सकते हैं। कामुकता की

इच्छा, विशेषकर यौवन में, एक ऐसी आग है जिसे सावधानीपूर्वक संभालना आवश्यक है। यदि कोई विचारशील और संयमित न रहे, तो यह अथाह हानि पहुंचा सकती है। कामवासना जैसी कोई आग नहीं है। वासनाएं बुझती नहीं हैं: वे जलकर नष्ट हो जाती हैं।

बुद्ध एक व्यावहारिक दार्शनिक थे, इसलिए उन्होंने अपने गृहस्थ अनुयायियों से तपस्वी जीवन की अपेक्षा नहीं की। वास्तव में, उन्होंने उन्हें इंद्रिय सुखों का आनंद लेने वाले ( गिही कामभोगी ) कहा। मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, इच्छाओं और लालसाओं से भलीभांति परिचित होने के कारण, गुरु ने भिक्षुओं की तरह गृहस्थों के लिए यौन संबंधों पर प्रतिबंध नहीं लगाया। परन्तु उन्होंने मनुष्य को यौन इच्छा को संतुष्ट करने के गलत तरीकों से सावधान किया। उन्होंने एक कदम आगे बढ़कर गृहस्थों को उपवास के दिनों में या आवश्यकतानुसार आठ नियमों का पालन करने की सलाह दी, विशेष रूप से तीसरे नियम पर जोर दिया ।

यदि कोई व्यक्ति अविवाहित जीवन जीने का निश्चय कर ले, तो उसे शरीर, वाणी और विचार से पवित्र रहने का वास्तविक प्रयास करना चाहिए। यदि वह अविवाहित रहने के लिए पर्याप्त रूप से दृढ़ नहीं है, तो वह विवाह कर सकता है, लेकिन उसे ऐसे यौन संबंधों से बचना चाहिए जो गलत और हानिकारक हों। जैसा कि बुद्ध ने पतन पर अपने प्रवचन में समझाया है:

यदि कोई व्यक्ति स्त्रियों का आदी है (अनैतिक जीवन व्यतीत करता है), शराबी है, जुआरी है और अपनी सारी कमाई लुटा देता है, तो यही उसके पतन का कारण है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नियों से संतुष्ट नहीं होता है, और वेश्याओं और दूसरों की पत्नियों के साथ संबंध रखता है, तो यह उसके पतन का कारण बनता है।

जवानी बीत जाने के बाद, किसी किशोरी से शादी कर लेना, और ईर्ष्या के कारण नींद न आना—यह सब किसी के पतन का कारण बनता है।

बुद्ध ने व्यभिचार के बुरे परिणामों का विश्लेषण इन शब्दों में किया है:

जो व्यक्ति उचित आचरण का पालन नहीं करता और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं: पुण्य कर्म, अज्ञानता, निंदा और निरयण में कष्ट । इस प्रकार, पुण्य कर्म होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है । पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 285

———————————————————————

(धम्मपद 283 और 284) <<<< पिछला|| धम्मपद285 ||अगला >>>> (धम्मपद286)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 285 - सुवन्नाकरत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Ucchinda sinehamattano
kumudam saradikamva panina
santimaggameva(1) bruhaya
Nibbanam sugatena desitam.

———————————————————————

श्लोक 285 : अपनी लालसा को उसी प्रकार त्याग दो जैसे शरद ऋतु में हाथ से लिली तोड़ते हैं। बुद्ध ने निर्वाण का वर्णन किया है; उस मार्ग का अनुसरण करो जो निर्वाण की ओर ले जाता है।

———————————————————————

1. सन्तिमग्गम: निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग, अर्थात् आठ घटकों वाला मार्ग।

———————————————————————

एक सुनार रहे थेरा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (285) का उच्चारण थेरा सारिपुत्त के शिष्य भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार, एक सुनार के युवा, सुंदर पुत्र को थेरा सारिपुत्त ने संघ में प्रवेश दिया। थेरा सारिपुत्त ने उस युवा भिक्षु को मृत शरीर के प्रति घृणा को ध्यान का विषय बनाया। ध्यान का विषय बनने के बाद वह वन में चला गया और वहाँ ध्यान का अभ्यास किया; परन्तु उसे बहुत कम प्रगति प्राप्त हुई। इसलिए वह आगे के निर्देशों के लिए दो बार थेरा सारिपुत्त के पास लौटा। फिर भी उसे कोई प्रगति नहीं हुई। तब थेरा सारिपुत्त उस युवा भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए और उसके बारे में सब कुछ बताया।

बुद्ध जानते थे कि वह युवक एक सुनार का पुत्र था, और पिछले पाँच सौ जन्मों से सुनारों के परिवार में ही जन्मा था। इसलिए बुद्ध ने युवक भिक्षु के लिए ध्यान का विषय बदल दिया; घृणा के स्थान पर उन्हें सुख का ध्यान करने का निर्देश दिया गया। अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने एक सुंदर कमल का फूल बनाया जो बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था और युवक भिक्षु को उसे मठ के ठीक बाहर रेत के टीले पर लगाने को कहा। युवक भिक्षु ने उस बड़े, सुंदर और सुगंधित कमल पर ध्यान केंद्रित किया और अपनी बाधाओं से मुक्त हो गया। वह परम सुख (पीति) से भर गया, और धीरे-धीरे प्रगति करते हुए वह ध्यान की चौथी अवस्था (झान) तक पहुँच गया।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उसे देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से फूल को पल भर में मुरझा दिया। फूल को मुरझाते और उसका रंग बदलते देख भिक्षु ने फूल और सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अनित्यता को जान लिया। इससे उसे सभी बद्ध वस्तुओं की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का अहसास हुआ। उसी क्षण, बुद्ध ने अपना प्रकाश प्रकट किया और साक्षात भिक्षु के सामने प्रकट होकर उसे तृष्णा (तन्हा) से मुक्ति पाने का उपदेश दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 285 : अपनी लालसा को उसी प्रकार त्याग दो जैसे शरद ऋतु में हाथ से लिली तोड़ते हैं। बुद्ध ने निर्वाण का वर्णन किया है; उस मार्ग का अनुसरण करो जो निर्वाण की ओर ले जाता है।

---

प्रवचन के अंत में उस युवा भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक सम्मानित व्यक्ति की कहानी जो पहले सुनार हुआ करता था

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के एक शिष्य, एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार, एक सुनार के सुंदर और युवा पुत्र को पूज्य सारिपुत्त ने संघ में प्रवेश दिया। पूज्य सारिपुत्त ने उस युवा भिक्षु को मृत शरीर के प्रति घृणा को ध्यान का विषय बनाया। इस विषय को ग्रहण करने के बाद वह वन में जाकर ध्यान करने लगा; परन्तु उसे बहुत कम प्रगति प्राप्त हुई। इसलिए वह आगे के निर्देशों के लिए दो बार पूज्य सारिपुत्त के पास लौटा। फिर भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ। तब पूज्य सारिपुत्त उस युवा भिक्षु को बुद्ध के पास ले गए और उसके बारे में सब कुछ बताया।

बुद्ध जानते थे कि वह युवक एक सुनार का पुत्र था, और पिछले पाँच सौ जन्मों से सुनारों के परिवार में ही जन्मा था। इसलिए बुद्ध ने युवक के ध्यान का विषय बदल दिया; घृणा के स्थान पर उन्हें सुख का ध्यान करने का निर्देश दिया गया। अपनी अलौकिक शक्ति से बुद्ध ने एक सुंदर कमल का फूल बनाया जो बैलगाड़ी के पहिये जितना बड़ा था और युवक को उसे मठ के ठीक बाहर रेत के टीले पर लगाने को कहा। युवक ने उस बड़े, सुंदर और सुगंधित कमल पर ध्यान केंद्रित करते हुए अपनी सारी बाधाओं को दूर कर लिया। वह परम सुख ( पीति ) से भर गया, और धीरे-धीरे प्रगति करते हुए वह ध्यान की चौथी अवस्था ( झान ) तक पहुँच गया ।

बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से उसे देखा और अपनी अलौकिक शक्ति से फूल को पल भर में मुरझा दिया। फूल को मुरझाते और उसका रंग बदलते देख भिक्षु ने फूल और सभी वस्तुओं एवं प्राणियों की अनित्यता को समझ लिया। इससे उसे सभी बद्ध वस्तुओं की अनित्यता, असंतोष और सारहीनता का अहसास हुआ। उसी क्षण, बुद्ध ने अपना प्रकाश प्रकट किया और साक्षात युवा भिक्षु के सामने प्रकट होकर उसे तृष्णा ( तन्हा ) से मुक्ति पाने का उपदेश दिया। प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 285)

सारदिकां कुमुदं पणिन इव अत्तानो सिनेहम उच्छिंडा

शांतिमग्गम एव ब्रुहय निब्बाणं सुगतेन देसिटं

सारदिकं [ सारदिक ]: शरद ऋतु में; कुमुदं [ कुमुद ]: एक लिली; पाणिना इव : अपने हाथ से तोड़ने जैसा; अत्तनो सिनेहम : आत्म-लगाव, उच्चिन्द : उखाड़ फेंकना; सन्तिमग्गम एव : निर्वाण का एकमात्र मार्ग; बृहय निर्वाणं [ निवाण ]: खेती करना; सुगतेन : बुद्ध द्वारा; देसितां [ देसिता ]: उपदेश दिया गया है

जैसे कोई व्यक्ति अपने हाथ से लिली का फूल तोड़ता है, वैसे ही अपने आप से मोह को उखाड़ फेंकें। बुद्ध द्वारा बताए गए निर्वाण के मार्ग पर चलें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 286)

कुमुदं : कमल का फूल। इस चित्र में कमल के फूल को हाथ से तोड़ने का चित्रण इस बात पर बल देता है कि युवा भिक्षु ने कितनी सहजता से अर्हतत्व प्राप्त किया। यहाँ चिंतन का विषय कमल था। यही वह वस्तु थी जो उन्हें ध्यान के लिए दी गई थी। ध्यान में ऐसी वस्तु ( कसीण ) का उपयोग बौद्ध मन प्रशिक्षण प्रणाली में एक व्यापक प्रथा थी।

अत्तनो : इस श्लोक के अनुसार, इसका अर्थ पाँच स्कंध हैं। ये पाँच स्कंध हैं: पदार्थ ( रूपक्खन्ध ); संवेदनाएँ ( वेदनाक्खन्ध ); बोध ( संज्ञाक्खन्ध ); मानसिक संरचनाएँ ( संस्कारक्खन्ध ) और चेतना ( विज्ञानाक्खन्ध )।

ये पाँच प्रकार के समूह हैं। जिसे हम प्राणी, व्यक्ति या 'मैं' कहते हैं, वह इन पाँच समूहों के संयोजन को दिया गया एक सुविधाजनक नाम या उपाधि मात्र है। ये सभी क्षणभंगुर हैं, सभी निरंतर परिवर्तनशील हैं। जो क्षणभंगुर है, वही दुःख है ( yad aniccaṃ tam dukkhaṃ )। बुद्ध के शब्दों का यही सच्चा अर्थ है: संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुःख हैं। वे दो क्षणों के लिए एक समान नहीं रहते।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 286

---

(धम्मपद285) <<<< पिछला || धम्मपद286 || अगला >>>> (धम्मपद287)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 286 - महाधनवनिजा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Idha vassam vasissami
इधा हेमन्तागिमहिसु
iti balo vicinteti
अंतरायम ना बुझती.

---

श्लोक 286 : "मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा; मैं यहाँ सर्दी के मौसम में और गर्मी के मौसम में रहूँगा", मूर्ख ऐसा सोचता है, मृत्यु के खतरे को न समझते हुए।

---

महाधना नामक व्यापारी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (286) का उच्चारण किया, जो बरनासी के एक व्यापारी महाधना के संदर्भ में था।

एक बार, बरनासी का एक व्यापारी सावत्थी में एक उत्सव में भाग लेने के लिए पाँच सौ गाड़ियाँ भरकर वस्त्र और अन्य सामान लेकर आया। जब वह सावत्थी के पास एक नदी के किनारे पहुँचा, तो नदी उफान पर थी; इसलिए वह नदी पार नहीं कर सका। सात दिनों तक भारी बारिश होती रही और पानी कम नहीं हुआ, इसलिए वह वहीं फंसा रहा। तब तक वह उत्सव में पहुँचने से पहले ही देर हो चुका था, और नदी पार करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

क्योंकि वह बहुत दूर से आया था, इसलिए वह अपने माल से लदे हुए घर वापस नहीं लौटना चाहता था। इसलिए उसने वर्षा ऋतु, शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु वहीं बिताने का निर्णय लिया और अपने सहायकों को यह बात बता दी। बुद्ध भिक्षा मांगने गए थे, तभी उन्हें व्यापारी के इस निर्णय का पता चला और वे मुस्कुराए। आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, क्या तुम उस व्यापारी को देख रहे हो? वह सोच रहा है कि वह यहीं रहकर पूरे साल अपना माल बेचेगा। उसे यह नहीं पता कि सात दिनों में उसकी मृत्यु यहीं हो जाएगी। जो करना चाहिए, वह आज ही कर लेना चाहिए। कौन जानता है कि कल मृत्यु हो जाएगी? मृत्यु के देवता के साथ हमारी कोई निश्चित तिथि नहीं है। जो दिन-रात सचेत रहता है, जो नैतिक विकारों से विचलित नहीं होता और ऊर्जावान है, उसके लिए एक रात का जीवन भी सार्थक है।"

तब बुद्ध ने आनंद को व्यापारी महाधन के पास भेजा। आनंद ने महाधन को समझाया कि उसका समय समाप्त हो रहा है और उसे लापरवाही के बजाय ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अपनी आसन्न मृत्यु के बारे में जानकर महाधन भयभीत हो गया। इसलिए, उसने सात दिनों तक बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। सातवें दिन, बुद्ध ने आभार व्यक्त करते हुए प्रवचन दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 286 : "मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा; मैं यहाँ सर्दी के मौसम में और गर्मी के मौसम में रहूँगा", मूर्ख ऐसा सोचता है, मृत्यु के खतरे को न समझते हुए।

---

प्रवचन के अंत में, व्यापारी महाधन ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया। वह कुछ दूर तक बुद्ध के पीछे चला और लौट आया। लौटने पर उसे तीव्र सिरदर्द हुआ और कुछ ही समय बाद उसका निधन हो गया। महाधन का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक व्यापारी महाधन की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वाराणसी के एक व्यापारी महाधन के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार वाराणसी का एक व्यापारी वस्त्रों और अन्य सामानों से लदी कई गाड़ियाँ लेकर सावत्थी में एक उत्सव में आया। जब वह सावत्थी के पास एक नदी के किनारे पहुँचा तो नदी उफान पर थी; इसलिए वह नदी पार नहीं कर सका। भारी बारिश के कारण पानी कम नहीं हुआ और वह सात दिनों तक फंसा रहा। तब तक वह उत्सव के लिए पहले ही देर हो चुका था, और नदी पार करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

क्योंकि वह बहुत दूर से आया था, इसलिए वह अपने माल से लदे हुए घर वापस नहीं लौटना चाहता था; अतः उसने वर्षा ऋतु, शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु उसी स्थान पर बिताने का निर्णय लिया और अपने सहायकों को यह बात बता दी। बुद्ध भिक्षा मांगने निकले थे, तभी उन्हें व्यापारी के इस निर्णय का पता चला और वे मुस्कुराए।

आनंद ने बुद्ध से पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, क्या तुम उस व्यापारी को देख रहे हो? वह सोच रहा है कि वह यहीं रहकर पूरे साल अपना माल बेचेगा। उसे यह नहीं पता कि सात दिन बाद उसकी मृत्यु यहीं हो जाएगी। जो करना चाहिए, वह आज ही कर लेना चाहिए। भला किसे पता कि कल मृत्यु हो जाएगी?"

मृत्यु के राजा के साथ हमारी कोई निश्चित तिथि नहीं है। जो व्यक्ति दिन-रात सचेत रहता है, जो नैतिक विकारों से विचलित नहीं होता और ऊर्जावान होता है, उसके लिए मात्र एक रात का जीवन भी सार्थक होता है।

तब बुद्ध ने आनंद को व्यापारी महाधन के पास भेजा। आनंद ने महाधन को समझाया कि उसका समय समाप्त हो रहा है और उसे लापरवाही के बजाय ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अपनी आसन्न मृत्यु के बारे में जानकर महाधन भयभीत हो गया। इसलिए, उसने सात दिनों तक बुद्ध और अन्य भिक्षुओं को भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। सातवें दिन, बुद्ध ने प्रशंसा में प्रवचन दिया ( अनुमोदना )। प्रवचन के अंत में, व्यापारी महाधन ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। वह कुछ दूर तक बुद्ध के पीछे गया और लौट आया। लौटने पर उसे तेज सिरदर्द हुआ और कुछ ही समय बाद उसका निधन हो गया। महाधन का पुनर्जन्म तुषिता देवलोक में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 286)

वस्सां इधा वस्सीसामि हेमन्तगिम्हिसु इधा

इति बालो विचिंतेति अंतरायं न बुज्जति

वस्सं [ वस्सा ]: वर्षा के चार महीनों के दौरान; इध : इस स्थान पर; वसिस्सामि : मैं निवास करूँगा; हेमंतगिम्हिसु : सर्दी और गर्मी में; इध : यहाँ (मैं निवास करता हूँ); इति : इस रास्ते; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; विसिनतेति : सोचता है; अंतरायं अपने आप को खतरे में; न बुझति : (वह) अनभिज्ञ है

एकांतवास के दौरान, चाहे सर्दी हो या गर्मी, चुने हुए स्थान पर चार महीनों में अज्ञानी लोग मृत्यु के खतरे से अनभिज्ञ होकर योजनाएँ बनाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 286)

अंतरायं न बुझति । अपने जीवन के खतरे को नहीं देखता। इस कहानी का व्यापारी मृत्यु के तथ्य से बेखबर था। इस संसार में विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे लोग हैं जो मृत्यु शब्द से ही घृणा करते हैं, चिंतन करना तो दूर की बात है। दीर्घायु, अच्छे स्वास्थ्य, यौवन और समृद्धि के मोह में डूबे हुए वे इस तथ्य को पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे मृत्यु के अधीन हैं। पांचों इंद्रियों के क्षणभंगुर सुखों में डूबे हुए वे केवल इस संसार में भौतिक उन्नति की खोज करते हैं, भविष्य के जीवन की पूरी तरह अवहेलना करते हैं और मन, शरीर और वाणी के माध्यम से बुराइयों में लिप्त रहते हैं। वे इस क्षणिक और नश्वर जीवन को स्थायी और शाश्वत मानते हैं। बुद्ध ने इन शब्दों का उपदेश ऐसे अंधे और अज्ञानी लोगों में असंतोष की भावना जगाने, माता-पिता और बच्चों जैसे सजीव वस्तुओं और धन और संपत्ति जैसे निर्जीव वस्तुओं के वियोग से उत्पन्न दुःख की पीड़ा को कम करने, सभी प्राणियों में अनित्यता के सिद्धांत को स्थापित करने, उन्हें जीवन की असंतोषजनकता के प्रति आश्वस्त करने और उन्हें शाश्वत शांति की प्राप्ति की ओर निर्देशित करने के लिए दिया था।

जो व्यक्ति बुद्ध के उपदेशों को नहीं समझ पाया है, वह दीर्घायु के प्रति आसक्त होकर स्वयं को अमर समझता है, भले ही वह अपने आसपास अनेकों मृत्यु देखता हो; वह उत्तम स्वास्थ्य के प्रति आसक्त होकर स्वयं को रोगमुक्त समझता है, भले ही वह अपने आसपास असंख्य रोगग्रस्त व्यक्तियों को देखता हो; वह यौवन के प्रति आसक्त होकर स्वयं को वृद्धावस्था से अछूता समझता है; वह धन और समृद्धि के प्रति आसक्त होकर असंख्य व्यक्तियों को धन की हानि से निर्धन होते देखता है; और वह एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचता कि वह स्वयं भी ऐसी ही स्थिति में आ सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 287

———————————————————————

(धम्मपद286) <<<< पिछला|| धम्मपद287 ||अगला >>>> (धम्मपद 288 और 289)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 287 - किसागोतामि वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

तम पुत्तपसुसम्मत्तम
ब्यासत्तमनसम नरम
suttam gamam mahoghova
maccu adaya gacchati.

———————————————————————

श्लोक 287 : जो व्यक्ति अपने बच्चों और अपने पशुओं के झुंड पर मोहित रहता है, जिसका मन इंद्रिय सुखों के लिए तरसता है और उनसे आसक्त रहता है, वह मृत्यु द्वारा उसी प्रकार ले जाया जाता है जैसे कोई सोता हुआ गाँव एक बड़ी बाढ़ में बह जाता है।

———————————————————————

किसागोतमी की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (287) का उच्चारण किया, जिसमें श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री किसागोतमी का उल्लेख था।

किसगोतमी अपने इकलौते बेटे की मृत्यु से व्याकुल होकर बुद्ध के पास आईं। बुद्ध ने उनसे कहा, "किसगोतमी, तुम सोचती हो कि केवल तुमने ही पुत्र को खोया है। मृत्यु सभी प्राणियों के लिए आती है; उनकी इच्छाएँ पूरी होने से पहले ही मृत्यु उन्हें अपने साथ ले जाती है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 287 : जो व्यक्ति अपने बच्चों और अपने पशुओं के झुंड पर मोहित रहता है, जिसका मन इंद्रिय सुखों के लिए तरसता है और उनसे आसक्त रहता है, वह मृत्यु द्वारा उसी प्रकार ले जाया जाता है जैसे कोई सोता हुआ गाँव एक बड़ी बाढ़ में बह जाता है।

---

प्रवचन के अंत में किसागोतमी ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
(1) यह कहानी आयत 114 में दी गई है

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
किसागोतमी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री किसागोतमी के संदर्भ में कहा था।
किसागोतमी अपने इकलौते बेटे की मृत्यु से व्याकुल होकर बुद्ध के पास आईं। बुद्ध ने उनसे कहा, "तुम्हें यह सोचना व्यर्थ है कि केवल तुमने ही अपना बच्चा खोया है। परन्तु यह समस्त प्राणियों के लिए शाश्वत नियम है। क्योंकि मृत्यु प्रचंड जलप्रपात के समान समस्त प्राणियों को बहा ले जाती है और विनाश के सागर में फेंक देती है; फिर भी उनकी मनोकामनाएँ अधूरी रह जाती हैं।" प्रवचन के अंत में, किसागोतमी ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 287)
पुट्टपससुसमट्टं ब्यासत्तमनसं तं नारां
सुत्तं गमं महोघो इव मक्कु अदाय गच्छति
पुत्तपससम्मत्तम् [ puttapasusammatta ]: बच्चों, पशुओं आदि के धन-दौलत से मदहोश। ब्यासत्तमनसम् [ byāsattamanasa ]: व्याकुल मन से; तम् नरम् [ nara ]: वह व्यक्ति; सुत्तम् गाम् [ gāma ]: सोया हुआ गाँव; महोगो इव : एक बड़ी बाढ़ की तरह; मच्चु : मृत्यु; आदाय गच्छति : उसे अपने साथ (बाढ़ में) ले जाता है।
पुरुष अपने बच्चों, पशुओं और अन्य प्रकार की संपत्ति पर गर्व करते हैं। वे अक्सर इस तरह से गर्व करते हैं क्योंकि उनका मन दोषों से भरा होता है। बाढ़ सोते हुए गाँव को बहा ले जाती है, अपने साथ सभी लोगों और उनकी संपत्ति को भी ले जाती है। ठीक उसी तरह, मृत्यु अचानक आती है और लोगों को अपने साथ बहा ले जाती है, चाहे वे अपनी संपत्ति पर कितना भी गर्व क्यों न करें।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 287)
किसागोतमी, कठोर वस्त्र धारण करने की क्षमता के कारण, श्रेष्ठ संघ की महिला महा अरहतों में अग्रणी थीं। उनका उल्लेख सर्वप्रथम पद्ममुत्तर बुद्ध के युग में मिलता है। उन्होंने अपने जैसी एक महिला को देखा और तुरंत उनके पदचिन्हों पर चलने का संकल्प लिया। उन्होंने दान दिया और ध्यान का अभ्यास किया। उनका जन्म देवलोक में हुआ था। उनका जन्म इसी युग में एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उनका विधिवत विवाह हुआ, लेकिन लोगों ने उन पर ध्यान नहीं दिया। वे दुबली-पतली थीं, इसलिए उन्हें किसा कहा जाता था। अतः उनका अपना नाम गौतमी, किसा से जुड़ गया और वे किसागोतमी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जब उन्हें पुत्र हुआ, तो वे लोकप्रिय हो गईं। बालक के वयस्क होते ही उसकी मृत्यु हो गई।
जिस सहारे पर वह टिकी हुई थी, वह अचानक हट गया। लगाव ने उसे अंधा कर दिया था। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मर चुका है। इसलिए, मृत बच्चे को गोद में लिए वह उसके ठीक होने की दवा की तलाश में भटकने लगी। लोग उस पर हँसे और उसका उपहास करने लगे। वह हद से ज़्यादा परेशान थी। वह लगभग पागल हो रही थी।
एक दिन, एक दयालु महिला ने जेतवनाराम का मार्ग बताया, जहाँ बुद्ध निवास कर रहे थे। जब वह वहाँ पहुँची, तो बुद्ध भिक्षुओं को प्रवचन दे रहे थे। वह हॉल के अंत में खड़ी होकर भगवान से उस औषधि के लिए प्रार्थना करने लगी, जिसे वह अब तक व्यर्थ ही खोज रही थी। बुद्ध ने उसका भविष्य देख लिया। बुद्ध ने देखा कि वह मृत्यु से अछूती थी। इसलिए बुद्ध ने उससे कुछ सरसों के बीज लाने को कहा। उसे लगा कि उसका बच्चा जल्द ही ठीक हो जाएगा और वह सरसों लाने के लिए निकलने ही वाली थी। बुद्ध ने आगे कहा, "लेकिन थोड़ा रुको, वह सरसों के बीज ऐसे घर (अर्थात कुल) से लाए जाने चाहिए जिसने मृत्यु का स्वाद न चखा हो।"
हालांकि, उसे लगा कि यह काफी सरल है। लेकिन वह खोज की यात्रा पर थी। एक बार फिर, श्रावस्ती की गलियों में बच्चे के शव को गोद में लिए एक व्याकुल माँ का दृश्य दिखाई दे रहा था। हर घर में बहुप्रतीक्षित सरसों तो आसानी से मिल रही थी, लेकिन अफसोस! वे बीज नहीं थे जो बुद्ध चाहते थे। मृत्यु से अधिक बार आने वाला कोई आगंतुक नहीं था। धीरे-धीरे उसे मृत्यु की सार्वभौमिकता का ज्ञान हुआ। मृत्यु की शक्ति ने उसे वश में कर लिया। उसने देखा कि बुद्ध उसे महान पाठ सिखाना चाहते हैं। उसने जल्दी से शव को कब्रिस्तान ले जाकर वहाँ रख दिया और कहा कि मरने वाला वह अकेला बच्चा नहीं था। अतीत में किए गए उसके ध्यान अभ्यास ने उसकी सहायता की। उसके लिए यह समझना कठिन नहीं था कि कुछ भी शाश्वत नहीं है। यह ब्रह्मलोक सहित जीवन के सभी लोकों में

ऐसा ही है। केवल एक अर्हत ही पूर्णतः देहत्याग करता है, जो न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही मरता है। उसने उस आनंद का अनुभव किया। वह एक दुखी और समझदार स्त्री बनकर लौटी। उसने अब औषधि की खोज नहीं की। वह उस अचूक इलाज की लालसा रखती थी जो उसे हमेशा के लिए ठीक कर दे।

उसने महान चिकित्सक से अपने मानसिक रोग के उपचार की विनती की। बुद्ध का निदान अद्वितीय था। बुद्ध ने उपदेश दिया। संसार के सागर में चार शक्तिशाली धाराएँ ( ओगा ) थीं जो मनुष्यों को इधर-उधर धकेलती थीं ।

चार धाराएँ इस प्रकार हैं:

शारीरिक सुख ( काम );

अस्तित्व से आसक्ति ( भाव );

विभिन्न गलत मान्यताओं से आसक्ति ( दिट्ठी );

अज्ञान ( अविज्जा )।

किसागोतमी ने उस सत्य को ग्रहण किया जिसे सामान्य मनुष्य समझ नहीं पाते। बुद्ध ने यह भी स्वीकार किया कि जो व्यक्ति एक दिन के लिए भी परम आनंद का अनुभव करता है, वह उस व्यक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जो एक शताब्दी तक अज्ञानता में अंधा रहता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 288,289

---

(धम्मपद 287) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 288 और 289 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 290)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 288 और 289 - पटाकरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Na santi putta tanaya
na pita napi bandhava
antakena' dhipannassa
naththi natisu tanata.
Etamatthavasam natva
pandito silasamvuto
nibbanagamanam maggam
khippameva visodhaye.

---

श्लोक 288 : न तो पुत्र, न माता-पिता, न ही निकट संबंधी मृत्यु से पीड़ित व्यक्ति की रक्षा कर सकते हैं; वास्तव में, न तो सगे-संबंधी और न ही रिश्तेदार सुरक्षा दे सकते हैं।

---

श्लोक 289 : यह जानकर, नैतिकता से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को शीघ्र ही दूर कर देना चाहिए।

---

पटाकारा की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (288) और (289) का उच्चारण किया, जो श्रावस्ती के एक धनी व्यक्ति की पुत्री पताकारा के संदर्भ में था।

पताकारा ने अपने पति और दो बेटों के साथ-साथ अपने माता-पिता और तीन भाइयों को लगभग एक ही समय में खो दिया था, जिससे वह लगभग पागल हो गई थी। जब वह बुद्ध के पास पहुँची, तो उन्होंने उससे कहा, "पाताकारा, बेटे-बेटियाँ तुम्हारी देखभाल नहीं कर सकते; इसलिए भले ही वे जीवित हों, वे तुम्हारे लिए अस्तित्वहीन हैं। ज्ञानी व्यक्ति नैतिकता (शील) का पालन करता है और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 288 : न तो पुत्र, न माता-पिता, न ही निकट संबंधी मृत्यु से पीड़ित व्यक्ति की रक्षा कर सकते हैं; वास्तव में, न तो सगे-संबंधी और न ही रिश्तेदार सुरक्षा दे सकते हैं।

---

श्लोक 289 : यह जानकर, नैतिकता से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग में आने वाली बाधाओं को शीघ्र ही दूर कर देना चाहिए।

---

प्रवचन के अंत में पताकारा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

(1) यह कहानी आयत 113 में दी गई है

अध्याय बीस का अंत: मार्ग

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पटाचारा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सावत्थी के एक धनी व्यक्ति की पुत्री पातचारा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

उस समय बुद्ध ने देखा कि पातचारा का दुःख शांत हो गया है, तो उन्होंने उससे कहा, “पातचारा, हे परलोक जाने वाले के लिए न पुत्र, न पिता, न रिश्तेदार कभी शरण, न आश्रय, न शरणस्थल। इसलिए, भले ही वे जीवित हों, उनका कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जो बुद्धिमान है, उसे अपने सद्गुणों को स्पष्ट करना चाहिए; उसे निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को स्पष्ट करना चाहिए।” उपदेश के समापन पर पातचारा ने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया; इसी प्रकार अनेक अन्य लोगों ने भी धर्म परिवर्तन का फल और दूसरे एवं तीसरे मार्ग के फल प्राप्त किए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 288)

अंतकेना अधिपन्नस्सा तनया पुत्ता न शांति ,

पिता ना , पि बंधवा ना , नातिसु तनता नत्थि

अंतकेना : अंतकर्ता (मृत्यु) द्वारा; अधिपन्नस : जकड़ा हुआ व्यक्ति; ताणाय : सुरक्षा के लिए; पुत्त : बच्चे; न सन्ति : वहाँ नहीं; पिता : पिता; न : (वहाँ) नहीं; पि : भी; बंधवा : रिश्तेदार; न : (वहाँ) नहीं हैं; ञातीसु : (इस तरह) रिश्तेदारों से; ताणता नत्थि : (उसे) कोई सुरक्षा नहीं है

जब कोई व्यक्ति मृत्यु के शिकंजे में आ जाता है, तो पुत्र उसकी रक्षा नहीं कर सकते। यहाँ तक कि पिता भी उसे मृत्यु के चंगुल से नहीं बचा सकते। न ही रिश्तेदार उसकी मदद के लिए आगे आ सकते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 289)

पण्डितो एतां अत्तवसं नात्वा सिलासनवुतो

निब्बानगमनं मग्गं खिप्पं एव विसोधये

paṇḍito [ paṇḍita ]: बुद्धिमान; etāṃ atthavasaṃ [ atthavasa ]: यह विषय; ñatvā : जागरूक; sīlasaṃvuto [ sīlasaṃvuta ]: संयमित और अनुशासित; nibbānagamanaṃ maggaṃ [ magga ]: अमरता का मार्ग; khippaṃ [ khippa ]: शीघ्र; eva visodhayī : निश्चित रूप से स्पष्ट होना चाहिए

यह जानते हुए कि मृत्यु से कोई भी आपको नहीं बचा सकता, संयमित और अनुशासित बुद्धिमान व्यक्ति को समय की हानि किए बिना निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 288-289)

Antakenādhipannassa natthi ñātīsu tāṇatā : जब कोई व्यक्ति मृत्यु के शिकंजे में आ जाता है, तो कोई भी, यहाँ तक कि उसके रिश्तेदार भी, उसे इससे बचा नहीं सकते।

सल्ला सूत्र (शोक का स्तंभ) में इसे और भी बलपूर्वक इस प्रकार बताया गया है:

(1) ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे जन्म लेने वाला व्यक्ति मृत्यु से बच सके।

(2) वृद्धावस्था प्राप्त कर लेने पर मृत्यु अपरिहार्य है।

(3) जैसे पके फल अवश्य गिरते हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले मनुष्यों को सदा मृत्यु का भय रहता है।

(4) जिस प्रकार कुम्हार द्वारा बनाया गया मिट्टी का बर्तन टूट जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी टूट जाता है।

(5) वयस्क और युवा, बुद्धिमान और मूर्ख—ये सभी मृत्यु के वश में आ जाते हैं।

(6) कोई पिता अपने बेटे को नहीं बचा सकता, कोई रिश्तेदार अपने रिश्तेदारों को नहीं बचा सकता, जब वे मृत्यु में चले जाते हैं।

(7) रिश्तेदार खड़े होकर विलाप करते हैं, देखो कैसे प्राणियों को मृत्यु की ओर ले जाया जाता है, जैसे मवेशियों को वधशाला में ले जाया जाता है।

(8) चूंकि प्राणी इस प्रकार मृत्यु और वृद्धावस्था से घिरे होते हैं, इसलिए इस संसार की प्रकृति को जानने वाले बुद्धिमान शोक नहीं करते।

(9) मृतकों पर विलाप करना व्यर्थ है, क्योंकि तुम नहीं जानते कि वे कहाँ से आए और कहाँ जाते हैं।

(10) यदि विलाप करने से शोक करने वाले के शोक के कष्ट दूर हो जाते हैं, तो केवल बुद्धिमान ही विलाप करें।

(11) विलाप करने से मन की शांति प्राप्त नहीं होती। इससे केवल दु:ख होता है और शरीर को कष्ट मिलता है।

(12) शोक करने से शोक करने वाला केवल कमजोर और पीला पड़ जाता है। इससे दिवंगत आत्मा को कोई सहायता नहीं मिलती। इसलिए, शोक करना व्यर्थ है।

(13) दु:ख को न त्यागकर वह और अधिक पीड़ा की ओर बढ़ता है। वह दु:ख के क्षेत्र में और भी गहराई तक जाता है।

(14) देखो कि इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेने वाले अन्य लोग भी मृत्यु के प्रभाव में कांपते हैं।

(15) लोग चीजों के बारे में चाहे जिस तरह से सोचते हैं, चीजें वैसी ही हो जाती हैं। चीजों का स्वभाव ही विपरीत है। संसार के स्वभाव को इसी प्रकार देखो।

(16) भले ही कोई व्यक्ति सौ वर्ष या उससे अधिक जीवित रहे, उसे अंततः अपना जीवन त्यागना ही होगा, वह मित्रों और रिश्तेदारों से वंचित हो जाएगा।

(17) इसलिए, अरहतों की बात सुनकर और किसी दिवंगत व्यक्ति को देखकर, अपने विलाप को नियंत्रित करो, यह सोचकर कि वह फिर कभी तुम्हारे साथ नहीं होगा।

(18) जैसे कोई जलते हुए घर की लपटों को पानी से बुझाता है, वैसे ही एक दृढ़ और बुद्धिमान व्यक्ति दु:ख को हवा की तरह जल्दी से दूर कर दे (मुट्ठी भर) रुई।

(19) जो व्यक्ति अपने कल्याण की कामना करता है, उसे अपने द्वारा बोए गए विलाप और शोक के तीरों को उखाड़ फेंकना चाहिए। इन बाणों को निकाल देने और मानसिक शांति प्राप्त कर लेने से व्यक्ति धन्य हो जाता है और शोक से मुक्त होकर सभी दुखों पर विजय प्राप्त कर लेता है। मृत्यु, संतान हानि या धन हानि की स्थिति में भी इसी प्रकार चिंतन करना चाहिए:

(1) अनाज, धन, चांदी, सोना और जो भी संपत्ति हो,

(2) दास, शिल्पकार, दिहाड़ी मजदूर और सभी आश्रित,

(3) इन सभी को छोड़ते समय त्यागना होगा।

(4) परन्तु जो कुछ भी मनुष्य कर्म, वचन या विचार से करता है, वही उसका होता है; वही वह अपने साथ ले जाता है और वही उसके पीछे अविभाज्य छाया की तरह चलता है।

सभी प्राणी मरते हैं। जीवन का अंत मृत्यु में होता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है, उन्हें अपने पुण्य और पाप कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। पाप कर्म करने वाले दुखमय लोक में जाते हैं और पुण्य कर्म करने वाले आनंदमय लोक में पहुँचते हैं। इसलिए, सदा अच्छे कर्म करते रहें, जो परलोक में जीवन के लिए भंडार का काम करते हैं। पुण्य कर्म परलोक में प्राणियों को बहुत सहारा देते हैं।

उरगा जातक (मनुष्य का नश्वर शरीर त्यागना) में एक जमींदार की कहानी है जिसके पुत्र की मृत्यु हो गई थी। यहाँ, बुद्ध उस जमींदार के घर गए और बैठने के बाद उन्होंने पूछा, "महोदय, आप शोक क्यों मना रहे हैं?" उनके उत्तर देने पर, "जी, पूज्यवर, पुत्र की मृत्यु के बाद से ही मैं शोक मना रहा हूँ," बुद्ध ने कहा, "महोदय, जो विघटन के अधीन है वह विघटन हो जाता है, और जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है, और यह केवल एक व्यक्ति या एक गाँव में ही नहीं, बल्कि असंख्य लोकों में और तीनों भावों में होता है। ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो मृत्यु के अधीन न हो, और न ही कोई ऐसी वस्तु है जो इस स्थिति में रह सकती है। सभी प्राणी मृत्यु के अधीन हैं, और

सभी यौगिक विघटन के अधीन हैं। परन्तु प्राचीन ऋषि, जब अपने पुत्र को खो देते थे, तो कहते थे, 'जो विनाश के अधीन है वह नष्ट हो जाता है... और शोक नहीं मनाते थे।" और फिर उस व्यक्ति के अनुरोध पर उसने अतीत की एक कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, जब वाराणसी में ब्रह्मदत्त का शासन था, तब बोधिसत्व का जन्म वाराणसी के द्वार के बाहर एक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ और उन्होंने अपना परिवार बसाया। वे खेतों में मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। उनके दो बच्चे थे, एक पुत्र और एक पुत्री। जब पुत्र बड़ा हुआ, तो पिता ने अपने ही परिवार के एक प्रतिष्ठित परिवार से उसके लिए एक पत्नी को घर लाया। इस प्रकार, एक दासी के साथ उनका परिवार छह सदस्यों का हो गया; बोधिसत्व और उनकी पत्नी, पुत्र और पुत्री, बहू और दासी। वे सब सुख-सुविधाओं के साथ रहते थे। बोधिसत्व ने अन्य पाँच शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा, "जैसा तुमने पाया है, दान करो, पवित्र दिनों का पालन करो, नैतिक नियमों का पालन करो, मृत्यु के विषय में चिंतन करो, अपनी नश्वर अवस्था के प्रति सचेत रहो। क्योंकि हम जैसे प्राणियों के लिए मृत्यु निश्चित है, जीवन अनिश्चित: सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर और क्षय के अधीन हैं। इसलिए, दिन-रात अपने आचरण के प्रति सजग रहो।" उन्होंने सहर्ष उनकी शिक्षा को ग्रहण किया और मृत्यु के विषय में गहन चिंतन किया।

एक दिन बोधिसत्व अपने पुत्र के साथ खेत जोतने गए, तभी युवक को एक साँप ने काट लिया और वह गिर पड़ा। उसे गिरते देख बोधिसत्व अपने बैल छोड़कर उसके पास आए और जब उन्होंने देखा कि वह मर चुका है, तो उन्होंने उसे उठाया और एक वृक्ष के नीचे लिटा दिया। उन्होंने उसे एक चादर से ढक दिया और न तो रोए और न ही विलाप किया। उन्होंने कहा, "जो कुछ भी विघटन के अधीन है, वह विघटित हो जाता है, और जो कुछ भी मृत्यु के अधीन है, वह मर जाता है। सभी मिश्रित अस्तित्व क्षणभंगुर हैं और मृत्यु के योग्य हैं।" वस्तुओं की क्षणभंगुर प्रकृति को पहचानते हुए, वे खेत जोतने लगे। पास से गुजरते हुए एक पड़ोसी को देखकर उन्होंने पूछा, "मित्र, क्या तुम घर जा रहे हो?" जब उसने उत्तर दिया, "हाँ," तो उसने कहा, "तो कृपया हमारे घर जाइए और मालकिन से कहिए, 'आज आप पहले की तरह दो लोगों के लिए भोजन न लाएँ, बल्कि केवल एक के लिए लाएँ। अब तक केवल दासी ही भोजन लाती थी, लेकिन आज आप चारों स्वच्छ वस्त्र पहनें और हाथों में इत्र और फूल लेकर आएँ'।" "ठीक है," उसने कहा और जाकर ब्राह्मण की पत्नी से यही बातें कहीं। उसने पूछा, "महोदय, यह संदेश किसने दिया?" "ब्राह्मण ने," उसने उत्तर दिया। वह समझ गई कि उसका पुत्र मर गया है। लेकिन वह जरा भी नहीं डरी।

इस प्रकार पूर्ण आत्मसंयम दिखाते हुए, श्वेत वस्त्र पहने और हाथ में इत्र और फूल लिए, उन्होंने भोजन लाने का आदेश दिया और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खेत में गईं। परन्तु उनमें से किसी ने भी न तो आँसू बहाए और न ही विलाप किया। बोधिसत्व अभी भी उस छाया में बैठे थे जहाँ युवक लेटा हुआ था, और उन्होंने अपना भोजन किया। भोजन समाप्त होने पर, सभी ने लकड़ियाँ लीं और शव को चिता पर रखकर, इत्र और फूलों की भेंट चढ़ाई और फिर उसे अग्नि दी। परन्तु किसी ने भी एक आँसू नहीं बहाया। सभी मृत्यु के विचार में लीन थे। उनके सद्गुण का प्रभाव ऐसा था कि सक्का के सिंहासन में ऊष्मा के लक्षण प्रकट हुए। सक्का ने कहा, "मुझे आश्चर्य है कि कौन मुझे मेरे सिंहासन से नीचे उतारना चाहता है?" और चिंतन करने पर, उन्होंने पाया कि ऊष्मा इन लोगों में विद्यमान सद्गुण की शक्ति के कारण थी, और अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने कहा, "मुझे उनके पास जाकर सिंह के दहाड़ की तरह उल्लासपूर्ण जयजयकार करना चाहिए, और उसके तुरंत बाद उनके निवास को सात रत्नों से भर देना चाहिए।" वहाँ जल्दी से पहुँचकर वह चिता के पास खड़ा हो गया और बोला, "तुम लोग क्या कर रहे हो?" "हम एक मनुष्य का शरीर जला रहे हैं, हे प्रभु।" उसने कहा, "तुम किसी मनुष्य को नहीं जला रहे हो, मुझे लगता है कि तुम किसी जानवर का मांस भून रहे हो जिसे तुमने मारा है।" उन्होंने कहा, "ऐसा नहीं है, हे प्रभु, हम केवल एक मनुष्य का शरीर जला रहे हैं।" तब उसने कहा, "यह कोई शत्रु रहा होगा।" बोधिसत्व ने कहा, "यह हमारा सच्चा पुत्र है, शत्रु नहीं।" "तो फिर वह तुम्हें पुत्र के समान प्रिय नहीं रहा होगा।"

"वह तो बहुत प्रिय थे, मेरे प्रभु।" "तो फिर आप क्यों नहीं रोते?"

तब बोधिसत्व ने अपने न रोने का कारण बताते हुए पहला श्लोक कहा:

जीवन में सुख समाप्त हो जाने पर मनुष्य अपने नश्वर शरीर को त्याग देता है।
जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली को उतार फेंकता है;
किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए: उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।

बोधिसत्व की बातें सुनकर सक्का ने ब्राह्मण की पत्नी से पूछा, "हे देवी, वह मृत पुरुष आपको कैसा लगता था?" पत्नी ने उत्तर दिया, "मैंने उसे दस महीने अपने गर्भ में पाला, उसे दूध पिलाया, उसके हाथों और पैरों की गतिविधियों का मार्गदर्शन किया, और वह मेरा बड़ा पुत्र था, हे मेरे स्वामी।" "हे देवी, यह सच है कि एक पिता स्वभाव से रो नहीं सकता, लेकिन एक माँ का हृदय तो कोमल होता ही है। तो फिर आप क्यों नहीं रो रही हैं?" और अपने न रोने का कारण बताते हुए उन्होंने दो श्लोक कहे:

वह बिना बुलाए यहाँ आया, बिना कहे जल्द ही चला जाएगा;
वह जैसे आया वैसे ही चला गया। इसमें दुख की क्या बात है?

किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।
ब्राह्मण की पत्नी की बातें सुनकर सक्का ने बहन से पूछा, "महोदय, वह मृत व्यक्ति आपके लिए क्या था?" "वह मेरे भाई थे, मेरे स्वामी।" "महोदय, बहनें अपने भाइयों के प्रति प्रेम रखती हैं। आप क्यों नहीं रो रही हैं?" लेकिन उसने अपने न रोने का कारण बताते हुए कुछ पंक्तियाँ दोहराईं:
अगर मैं उपवास करूं और रोऊं, तो इससे मुझे क्या लाभ होगा?
मेरे सगे-संबंधी, अफसोस! इससे भी अधिक दुखी होंगे
किसी मित्र का शोकगीत मृत आत्मा की अस्थियों को स्पर्श नहीं कर सकता:
मुझे शोक क्यों करना चाहिए? उसने वही रास्ता अपनाया जो उसे अपनाना था।
बहन की बातें सुनकर सक्का ने अपनी पत्नी से पूछा, "महोदय, वह आपके लिए क्या थे?" "वह मेरे पति थे, मेरे स्वामी।" "जब पति की मृत्यु हो जाती है, तो स्त्रियाँ विधवा के रूप में असहाय हो जाती हैं। आप क्यों नहीं रोतीं?" लेकिन उसने भी अपने न रोने का कारण बताया।

अध्याय 21. पकिन्नकवग्गा: विविध (290-305)
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 290

---

(धम्मपद 288 और 289) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 290 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 291)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 290 - अट्टनोपुब्बकम्मा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Matta sukhapariccaga
passe ce vipulam sukham
caje mattasukhirh dhiro
संपस्सम् विपुलम् सुखम्(1)

---

श्लोक 290 : यदि छोटे सुखों का त्याग करने से महान सुख प्राप्त हो सकता है, तो बुद्धिमानों को महान सुख की संभावना को देखते हुए छोटे सुखों का त्याग कर देना चाहिए।

---

1. विपुलम सुखम: टीका के अनुसार, इसका अर्थ है निर्वाण का आनंद।

---

बुद्ध के पूर्व कर्मों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (290) का उच्चारण किया, जिसमें बुद्ध की शक्ति और महिमा का उल्लेख किया गया है, जैसा कि वैशाली की उनकी यात्रा के दौरान कई लोगों ने देखा था।

एक बार वैशाली में अकाल पड़ गया। इसकी शुरुआत भीषण सूखे से हुई। सूखे के कारण लगभग सारी फसलें बर्बाद हो गईं और कई लोग भूख से मर गए। इसके बाद बीमारियों की महामारी फैल गई और शवों के अंतिम संस्कार में असमर्थ होने के कारण वातावरण में दुर्गंध फैल गई। इस दुर्गंध ने राक्षसों को आकर्षित किया। वैशाली के लोग अकाल, बीमारी और राक्षसों के प्रकोप से जूझ रहे थे। अपने दुख और शोक में वे शरण की तलाश करने लगे। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से सहायता लेने के बारे में सोचा, लेकिन अंततः उन्होंने बुद्ध को आमंत्रित करने का निर्णय लिया। इसलिए लिच्छवी राजकुमार महाली और प्रमुख ब्राह्मण के पुत्र के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल को राजा बिम्बिसार के पास भेजा गया ताकि बुद्ध से वैशाली आकर उनकी संकट की घड़ी में सहायता करने का अनुरोध किया जा सके। बुद्ध जानते थे कि यह यात्रा कई लोगों के लिए लाभकारी होगी, इसलिए उन्होंने वैशाली जाने की सहमति दी।

तदनुसार, राजा बिम्बिसार ने राजगृह और गंगा नदी के तट के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई। उन्होंने अन्य तैयारियाँ भी कीं और प्रत्येक योजन के अंतराल पर विशेष विश्राम स्थल बनवाए। जब सब कुछ तैयार हो गया, तो बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वैशाली के लिए रवाना हुए। राजा बिम्बिसार भी बुद्ध के साथ गए। पाँचवें दिन वे गंगा नदी के तट पर पहुँचे और राजा बिम्बिसार ने लिच्छवी राजकुमारों को संदेश भेजा। नदी के दूसरी ओर, लिच्छवी राजकुमारों ने नदी और वैशाली के बीच की सड़क की मरम्मत करवा दी थी और विश्राम स्थल बनवाए थे, ठीक वैसे ही जैसे राजा बिम्बिसार ने अपने तट पर करवाए थे। बुद्ध लिच्छवी राजकुमारों के साथ वैशाली गए, लेकिन राजा बिम्बिसार वहीं रुक गए।

जैसे ही बुद्ध नदी के दूसरे किनारे पर पहुँचे, मूसलाधार बारिश होने लगी, जिससे वैशाली नगर पूरी तरह से साफ हो गया। बुद्ध को नगर के मध्य में विशेष रूप से उनके लिए तैयार किए गए विश्रामगृह में ठहराया गया। देवताओं के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए और राक्षस भाग गए। उसी शाम बुद्ध ने रत्न सूत्र का उपदेश दिया और पूज्य आनंद से कहा कि वे लिच्छवी राजकुमारों के साथ नगर की तीन दीवारों के बीच परिक्रमा करके इसका पाठ करें। पूज्य आनंद ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। जब सुरक्षात्मक श्लोकों (परित्तों) का पाठ हो रहा था, तो बहुत से बीमार लोग ठीक हो गए और पूज्य आनंद के साथ बुद्ध के पास आ गए। बुद्ध ने उसी सूत्र का उपदेश दिया और सात दिनों तक उसका पाठ किया। सात दिनों के अंत में, वैशाली में सब कुछ सामान्य हो गया। लिच्छवी राजकुमार और वैशाली के लोग बहुत राहत महसूस कर रहे थे और अत्यंत प्रसन्न थे। वे बुद्ध के प्रति अत्यंत कृतज्ञ भी थे। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और भव्य और उदारतापूर्वक भेंटें अर्पित कीं। वे तीन दिनों की यात्रा के बाद गंगा तट पर पहुँचने तक बुद्ध के साथ उनकी वापसी यात्रा में भी शामिल रहे।

नदी तट पर पहुँचने पर राजा बिम्बिसार बुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे; उनके साथ-साथ देवदूत, ब्रह्मा और नागों के राजा भी अपने-अपने दल के साथ उपस्थित थे। सभी ने बुद्ध को प्रणाम किया और भेंटें अर्पित कीं। देवदूतों और ब्रह्माओं ने छतरियों, फूलों आदि से बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी स्तुति में गीत गाए। नाग सोने, चांदी और माणिक से बनी नौकाओं में बुद्ध को नागलोक में आमंत्रित करने आए थे; उन्होंने जल की सतह पर पाँच सौ प्रकार के कमल भी बिखेरे थे। यह बुद्ध के जीवन के उन तीन अवसरों में से एक था जब मनुष्य, देवदूत और ब्रह्मा सभी बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक साथ आए थे। पहला अवसर वह था जब बुद्ध ने अपनी शक्ति और महिमा को जोड़ों के चमत्कार द्वारा प्रकट किया, प्रकाश की किरणें और जल की फुहारें उत्सर्जित कीं; और दूसरी घटना अभिधम्म का उपदेश देने के बाद तावतिंसा देवलोक से उनकी वापसी पर हुई थी।

नागों का आदर करने की इच्छा से बुद्ध भिक्षुओं के साथ नागलोक गए। बुद्ध और उनके साथी नागों द्वारा लाई गई पाँच सौ नौकाओं में सवार होकर गए। नागलोक की यात्रा के बाद बुद्ध राजा बिम्बिसार के साथ राजगृह लौट आए। वे पाँचवें दिन राजगृह पहुँचे। राजगृह पहुँचने के दो दिन बाद, जब भिक्षु वैशाली की यात्रा की भव्यता और महिमा के बारे में चर्चा कर रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ आ पहुँचे। उनकी बातों का विषय जानकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, ब्रह्माओं, देवों और मनुष्यों द्वारा समान रूप से मेरा इतना आदर किया जाना और इस अवसर पर इतनी भव्य और उदारतापूर्वक भेंट अर्पित करना मेरी वर्तमान शक्ति के कारण नहीं है; बल्कि यह इसलिए है क्योंकि मैंने अपने पिछले जन्मों में कुछ छोटे पुण्य कर्म किए थे, जिनके कारण मुझे अब इतने महान लाभ प्राप्त हो रहे हैं।" फिर बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों में से एक की कहानी सुनाई, जब वे शंख नाम के एक ब्राह्मण थे।

तक्षशिला नगर में शंख नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनका एक पुत्र था जिसका नाम सुसीमा था। जब सुसीमा सोलह वर्ष के हुए, तो उनके पिता ने उन्हें ज्योतिष का अध्ययन करने के लिए एक अन्य ब्राह्मण के पास भेज दिया। उनके गुरु ने उन्हें वह सब कुछ सिखाया जो सीखना चाहिए था, लेकिन सुसीमा पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। इसलिए, उनके गुरु ने उन्हें उस समय इसिपताना में रह रहे पच्चेकबुद्धों के पास जाने का निर्देश दिया। सुसीमा इसिपताना गए, लेकिन पच्चेकबुद्धों ने उनसे कहा कि उन्हें पहले भिक्षु बनना होगा। इस प्रकार, वे भिक्षु बन गए और उन्हें भिक्षु के रूप में आचरण करने के तरीके सिखाए गए। सुसीमा ने लगन से ध्यान का अभ्यास किया और शीघ्र ही

उन्होंने चार आर्य सत्यों को समझ लिया, बोधिनान प्राप्त किया और स्वयं पच्चेकबुद्ध बन गए। लेकिन अपने पिछले कर्मों के फलस्वरूप सुसीमा दीर्घ नहीं रहे; उन्होंने शीघ्र ही परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।

सुसीमा के पिता शंख अपने पुत्र की खोज में आए, लेकिन जब वे वहाँ पहुँचे तो उन्हें केवल वही स्तूप मिला जहाँ उनके पुत्र के अवशेष रखे हुए थे। ब्राह्मण अपने पुत्र के बिछड़ने से अत्यंत व्यथित हुए। उन्होंने स्तूप परिसर की सफाई की, घास और खरपतवार साफ किए; फिर उन्होंने ज़मीन पर रेत बिछाई और उस पर पानी छिड़का। इसके बाद, वे पास के जंगल में गए और कुछ जंगली फूल लाकर गीली ज़मीन पर लगा दिए। इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र पच्चेकबुद्ध को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और उन्हें सम्मान दिया। अपने पिछले जन्म में किए गए उस पुण्य कर्म के कारण ही बुद्ध को इतने लाभ प्राप्त हुए, उन्हें इतनी प्रचुर भेंटें दी गईं, और उस विशेष अवसर पर उन्हें इतनी गहरी श्रद्धा और भक्ति दिखाई गई।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 290 : यदि छोटे सुखों का त्याग करने से महान सुख प्राप्त हो सकता है, तो बुद्धिमानों को महान सुख की संभावना को देखते हुए छोटे सुखों का त्याग कर देना चाहिए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुद्ध के पूर्व कर्मों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वैशाली की अपनी यात्रा के दौरान कई लोगों द्वारा देखी गई बुद्ध की शक्ति और महिमा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक बार वैशाली में अकाल पड़ गया। इसकी शुरुआत भीषण सूखे से हुई। सूखे के कारण लगभग सारी फसलें बर्बाद हो गईं और कई लोग भूख से मर गए। इसके बाद बीमारियों की महामारी फैल गई, और शवों के अंतिम संस्कार में असमर्थ होने के कारण वातावरण में दुर्गंध फैल गई। इस दुर्गंध ने राक्षसों को आकर्षित किया। वैशाली के लोग अकाल, बीमारी और राक्षसों के प्रकोप से विनाश के खतरे का सामना कर रहे थे। अपने दुख और शोक में वे शरण की तलाश करने लगे। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से सहायता लेने के बारे में सोचा, लेकिन अंततः उन्होंने बुद्ध को आमंत्रित करने का निर्णय लिया। इसलिए लिच्छवी राजकुमार माहाली और प्रमुख ब्राह्मण के पुत्र के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल को राजा बिम्बिसार के पास भेजा गया ताकि बुद्ध से वैशाली आकर उनकी संकट की घड़ी में सहायता करने का अनुरोध किया जा सके। बुद्ध जानते थे कि यह यात्रा कई लोगों के लिए लाभकारी होगी, इसलिए उन्होंने वैशाली जाने की सहमति दी। तदनुसार, राजा बिम्बिसार ने राजगृह और गंगा नदी के तट के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई। उन्होंने अन्य तैयारियाँ भी कीं और प्रत्येक योजन के अंतराल पर विशेष विश्राम स्थल बनवाए। जब सब कुछ तैयार हो गया, तो बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वैशाली के लिए रवाना हुए। राजा बिम्बिसार भी बुद्ध के साथ गए। पाँचवें दिन वे गंगा नदी के तट पर पहुँचे और राजा बिम्बिसार ने लिच्छवी राजकुमारों को संदेश भेजा। नदी के दूसरी ओर, लिच्छवी राजकुमारों ने नदी और वैशाली के बीच की सड़क की मरम्मत करवाई थी और विश्राम स्थल बनवाए थे, ठीक वैसे ही जैसे राजा बिम्बिसार ने अपने तट पर बनवाए थे। बुद्ध लिच्छवी राजकुमारों के साथ वैशाली गए, लेकिन राजा बिम्बिसार वहीं रुक गए। जैसे ही बुद्ध नदी के दूसरे तट पर पहुँचे, मूसलाधार बारिश हुई, जिससे वैशाली शुद्ध हो गया। बुद्ध को नगर के मध्य भाग में विशेष रूप से उनके लिए तैयार किए गए विश्राम गृह में ठहराया गया। देवों के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए और राक्षस भाग गए। उसी शाम बुद्ध ने रत्न सूत्र का उपदेश दिया और पूज्य आनंद से कहा कि वे लिच्छवी राजकुमारों के साथ नगर की तीन दीवारों के बीच घूमकर इसका पाठ करें। पूज्य आनंद ने वैसा ही किया जैसा उन्हें कहा गया था। जब सुरक्षात्मक श्लोकों ( परित्तों ) का पाठ हो रहा था, तो बहुत से बीमार लोग ठीक हो गए और पूज्य आनंद के साथ बुद्ध के पास गए। बुद्ध ने उसी सूत्र का उपदेश दिया और सात दिनों तक उसका पाठ किया। सात दिनों के अंत में, वैशाली में सब कुछ सामान्य हो गया। लिच्छवी राजकुमार और वैशाली के लोग बहुत राहत महसूस कर रहे थे और अत्यंत प्रसन्न थे। वे बुद्ध के प्रति अत्यंत कृतज्ञ भी थे। उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया और भव्य और उदारतापूर्वक भेंटें अर्पित कीं। वे तीन दिनों की यात्रा के बाद गंगा नदी के तट पर पहुँचने तक बुद्ध के साथ उनकी वापसी यात्रा में भी शामिल रहे।

नदी तट पर पहुँचने पर राजा बिम्बिसार बुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे; उनके साथ-साथ देवता, ब्रह्मा और नागों के राजा भी अपने-अपने दल के साथ उपस्थित थे। सभी ने बुद्ध को प्रणाम किया और भेंटें अर्पित कीं। देवताओं और ब्रह्माओं ने छतरियों, फूलों आदि से श्रद्धांजलि अर्पित की और बुद्ध की स्तुति में गीत गाए। नाग सोने, चांदी और माणिक से बनी नौकाओं में बुद्ध को नागलोक में आमंत्रित करने आए थे; उन्होंने जल की सतह पर पाँच सौ प्रकार के कमल भी बिखेरे थे। यह बुद्ध के जीवन के उन तीन अवसरों में से एक था जब मनुष्य, देवता और ब्रह्मा बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक साथ आए थे। पहला अवसर वह था जब बुद्ध ने जोड़ों के चमत्कार द्वारा अपनी शक्ति और महिमा प्रकट की, प्रकाश की किरणें और जल की फुहारें उत्सर्जित कीं; और दूसरी घटना तावतिंसा देवलोक से अभिधम्म का उपदेश देने के बाद उनकी वापसी पर हुई थी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 290)
मत्तासुखा परिचागा सी विपुलम सुखं पससे
विपुलं सुखं सम्पासं धीरो मत्त सुखं चजे
मत्तासुखा परिचागा : थोड़ा सा आराम छोड़कर; सीई : यदि; सुखं [ सुखा ]: एक बड़ी ख़ुशी; पासे : देखा गया है; विपुलं सुखं [ सुखा ]: (वह) महान खुशी; संपासां [ संपासा ]: अच्छी तरह से देखना; धीरो [ धीरा ]: बुद्धिमान व्यक्ति; मत्ता सुखाम् [ सुखा ]: वह हल्का सा आराम; काजे : हार मान लेता है
सांसारिक सुखों से मिलने वाले थोड़े से सुख का त्याग करके, यदि व्यक्ति को अपार सुख—यानी निर्वाण—की प्राप्ति का आश्वासन मिल सकता है, तो बुद्धिमान व्यक्ति को निश्चित रूप से उस थोड़े से सुख का त्याग कर देना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 291

---

(धम्मपद 290) <<<< पिछला || धम्मपद 291 || अगला >>>> (धम्मपद 292 और 293)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 291 - कुक्कुटंदखडिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
परदुक्खुपधानेना
athno sukhamiccati
verasamsaggasamsattho
vera so na parimuccati.

---

श्लोक 291 : जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर अपनी खुशी चाहता है, वह द्वेष के बंधन में फँसकर द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।

---

उस महिला की कहानी जिसने मुर्गी के अंडे खा लिए
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (291) का उच्चारण किया, जो एक महिला और एक मुर्गी के बीच झगड़े के संदर्भ में है।
एक समय की बात है, सावत्थी के पास एक गाँव में एक स्त्री रहती थी। उसके घर में एक मुर्गी थी; मुर्गी जब भी अंडा देती, उसे खा जाती थी। मुर्गी को बहुत दुख हुआ और वह क्रोधित हो गई। उसने स्त्री से बदला लेने की कसम खाई और कामना की कि उसका पुनर्जन्म किसी ऐसे प्राणी के रूप में हो जो स्त्री की संतानों को मार सके। मुर्गी की यह कामना पूरी हुई और उसका पुनर्जन्म बिल्ली के रूप में हुआ और स्त्री का पुनर्जन्म उसी घर में मुर्गी के रूप में हुआ। बिल्ली मुर्गी के अंडे खा जाती थी। अगले जन्म में मुर्गी तेंदुआ बनी और बिल्ली हिरण। तेंदुए ने हिरण और उसकी संतानों को खा लिया। इस प्रकार, दोनों प्राणियों के बीच पाँच सौ जन्मों तक दुश्मनी चलती रही। बुद्ध के समय में उनमें से एक स्त्री के रूप में और दूसरी राक्षसी के रूप में जन्मी थी।
एक बार एक स्त्री अपने माता-पिता के घर से सावत्थी के पास स्थित अपने घर लौट रही थी। उसके साथ उसका पति और छोटा बेटा भी थे। सड़क किनारे एक तालाब के पास विश्राम करते समय उसका पति तालाब में स्नान करने चला गया। उसी क्षण स्त्री ने राक्षसी को देखा और उसे अपनी पुरानी शत्रु के रूप में पहचान लिया। अपने बच्चे को लेकर वह राक्षसी से भागकर सीधे जेतवन मठ में गई, जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे, और अपने बच्चे को बुद्ध के चरणों में रख दिया। राक्षसी, जो स्त्री का पीछा कर रही थी, मठ के द्वार तक आ गई, लेकिन द्वारपाल की आत्मा ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। बुद्ध ने उसे देखकर पूज्य आनंद को राक्षसी को अपने समक्ष लाने के लिए भेजा। जब राक्षसी आई, तो बुद्ध ने स्त्री और राक्षसी दोनों को उनके बीच लंबे समय से चले आ रहे द्वेष के लिए फटकारा। उन्होंने आगे

कहा, "अगर तुम दोनों आज मेरे पास नहीं आते, तो तुम्हारा झगड़ा अंतहीन चलता रहता। दुश्मनी को दुश्मनी से शांत नहीं किया जा सकता; इसे केवल प्रेम और दया से ही शांत किया जा सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 291 : जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर अपनी खुशी चाहता है, वह द्वेष के बंधन में फँसकर द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।

---

प्रवचन के अंत में राक्षसी ने तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली, और स्त्री ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस महिला की कहानी जिसने मुर्गी के अंडे खा लिए
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक स्त्री और एक मुर्गी के बीच हुए झगड़े के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, सावत्थी के पास एक गाँव में एक स्त्री रहती थी। उसके घर में एक मुर्गी थी; मुर्गी जब भी अंडा देती, वह अंडा खा जाती थी। मुर्गी को बहुत दुख हुआ और वह क्रोधित हो गई। उसने स्त्री से बदला लेने की कसम खाई और कामना की कि उसका पुनर्जन्म किसी ऐसे प्राणी के रूप में हो जो स्त्री की संतान को मार सके। मुर्गी की यह इच्छा पूरी हुई और उसका पुनर्जन्म बिल्ली के रूप में हुआ और स्त्री का पुनर्जन्म उसी घर में मुर्गी के रूप में हुआ। बिल्ली मुर्गी के अंडे खा जाती थी। अगले जन्म में मुर्गी तेंदुआ बनी और बिल्ली हिरण। तेंदुए ने हिरण और उसके बच्चों को खा लिया। इस प्रकार, दोनों प्राणियों के बीच पाँच सौ जन्मों तक दुश्मनी चलती रही। बुद्ध के समय में उनमें से एक स्त्री के रूप में और दूसरी स्त्री आत्मा के रूप में जन्मी।
एक बार एक स्त्री अपने माता-पिता के घर से सावत्थी के पास स्थित अपने घर लौट रही थी। उसके साथ उसका पति और छोटा बेटा भी थे। सड़क किनारे एक तालाब के पास विश्राम करते समय उसका पति तालाब में स्नान करने चला गया। उसी क्षण स्त्री ने एक प्रेतात्मा को देखा और उसे अपनी पुरानी शत्रु के रूप में पहचान लिया। अपने बच्चे को लेकर वह प्रेतात्मा से भागकर सीधे जेतवन मठ गई, जहाँ बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे, और अपने बच्चे को बुद्ध के चरणों में रख दिया। प्रेतात्मा, जो स्त्री का पीछा कर रही थी, मठ के द्वार तक आ गई, लेकिन द्वारपाल प्रेत ने उसे अंदर नहीं जाने दिया। बुद्ध ने उसे देखकर पूज्य आनंद को प्रेतात्मा को अपने समक्ष लाने के लिए भेजा। जब प्रेतात्मा आई, तो बुद्ध ने स्त्री और प्रेतात्मा दोनों को उनके बीच लंबे समय से चले आ रहे द्वेष के लिए फटकारा। उन्होंने आगे कहा, “अगर तुम दोनों आज मेरे पास नहीं आते, तो तुम्हारा झगड़ा अंतहीन चलता रहता। दुश्मनी को दुश्मनी से शांत नहीं किया जा सकता; इसे केवल प्रेम और दया से ही शांत किया जा सकता है।”
जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अपनी खुशी की तलाश करता है, वह द्वेष के बंधन में जकड़ा हुआ होता है और कभी भी द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता।
प्रवचन के अंत में, स्त्री आत्मा ने तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली, और स्त्री ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 291)
परदुक्खुपदानेन अत्तानो सुखं इच्छति ,
वेरासंसग्गसासंथो सो वेरा न परिमुच्चति
परदुक्खुपदानेन : यदि दूसरों को पीड़ा पहुंचाकर; अट्टानो [ अट्टाना ]: कोई; सुखं [ सुखा ]: खुशी; इच्छाति : इच्छाएँ; verasaṃsaggasaṭṭho [ verasaṃsaggasaṭṭha ]: जो क्रोध के स्पर्श से दूषित है; इसलिए वह; वेरा : क्रोध से; ना परिमुक्कति : रिहाई हासिल नहीं होगी
जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर सुख प्राप्त करता है, वह क्रोध से मुक्त नहीं हो पाता क्योंकि वह अन्य लोगों के क्रोध के संपर्क में आने के कारण क्रोध के जाल में फँस जाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 291)
so verā no parimuccati : मनभावन वस्तु आसक्ति उत्पन्न करती है, जबकि अवांछनीय वस्तु घृणा उत्पन्न करती है। वेरा वह प्रचंड अग्नि है जो समस्त संसार को जला देती है। अज्ञान की सहायता से ये दोनों मिलकर संसार के समस्त दुखों का कारण बनते हैं।
खन्ती : धैर्य या सहनशीलता। खन्ती क्रोध का प्रतिकार है। खन्ती (सहनशीलता) बुद्ध बनने की इच्छा रखने वाले साधकों द्वारा अभ्यास किए जाने वाले गुणों में से एक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 292,293

---

(धम्मपद 291) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 292 और 293 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 294 और 295)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 292 और 293 - भद्दियानं भिक्खुनं वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yam hi kiccam apaviddham
akiccam pana kariyati
उन्नालानम पमत्तनम
tesam vaddhanti asava.
Yesanca susamaraddha
niccam kayagata sati
akiccam te na sevanti
kicce sataccakarino
सतनम सम्पजाननम
attham gacchanti asava.

---

श्लोक 292 : जो लोग वास्तव में किए जाने वाले काम को नहीं करते, परन्तु जो काम नहीं किए जाने चाहिए, जो अभिमानी और लापरवाह हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ बढ़ते हैं।

---

श्लोक 293 : जो लोग शरीर पर ध्यान लगाने में हमेशा अच्छा प्रयास करते हैं, जो निषिद्ध कार्य नहीं करते बल्कि सदा उचित कार्य करते हैं, जो सचेत और स्पष्ट समझ से संपन्न होते हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

---

बदिया भिक्षुओं की कहानी

बददिया नगर के पास निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (292) और (293) कहे।

एक बार बद्दिया में ठहरे कुछ भिक्षुओं ने कुछ प्रकार की सरकंडों और घासों से अलंकृत चप्पलें बनाईं। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप अरहत्त फल प्राप्त करने के उद्देश्य से बौद्ध संघ में प्रवेश कर चुके हैं। फिर भी, आप केवल चप्पलें बनाने और उन्हें सजाने में ही परिश्रम कर रहे हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 292 : जो लोग वास्तव में किए जाने वाले काम को नहीं करते, परन्तु जो काम नहीं किए जाने चाहिए, जो अभिमानी और लापरवाह हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ बढ़ते हैं।

---

श्लोक 293 : जो लोग शरीर पर ध्यान लगाने में हमेशा अच्छा प्रयास करते हैं, जो निषिद्ध कार्य नहीं करते बल्कि सदा उचित कार्य करते हैं, जो सचेत और स्पष्ट समझ से संपन्न होते हैं, उनमें नैतिक मादक पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

———————————————————————————

प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
भद्दिया के पूज्यों की कहानी
भद्दिया नगर के निकट निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार भद्दिया में ठहरे कुछ भिक्षुओं ने सरकंडों और घासों से अलंकृत चप्पलें बनाईं। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने कहा, "हे पूज्यवरों, आप अरहत्त फल प्राप्त करने के उद्देश्य से संघ में प्रवेश कर चुके हैं । फिर भी, आप केवल चप्पलें बनाने और उन्हें सजाने में ही परिश्रम कर रहे हैं।"
प्रवचन के अंत में, उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 292)
यं हि किच्चं तं अपविद्धं अकिच्चं पण कयिरति
उन्नानां पमत्तनं तेसं आसव वधंति
यम हाय : अगर कुछ; किक्कां [ किक्का ]: किया जाना चाहिए; तं : वह; अपविद्धाम् [ अपविद्धा ]: यदि उपेक्षित हो; अकिक्कां [ अकिक्का ]: जो नहीं किया जाना चाहिए; पना काइरति : वास्तव में हो गया है; उन्ननाणं [ उन्नाना ]: गर्व करने वालों में से; पमट्टणं [ पमत्तन ]: आलसी; टेसां [ टेसा ]: उनका; आसव : दोष; वन्धन्ति : वृद्धि
यदि लोग वह काम करते हैं जो नहीं करना चाहिए और वह काम करने की उपेक्षा करते हैं जो करना चाहिए, तो उन अहंकारी और आलसी लोगों के दोष बढ़ने लगते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 293)
येसं च कायगता सति निच्चं सुसमरद्धा
किच्चे सातक्काकारिनो ते अकिच्चं न सेवंती
सतानं-संपजन्नं आसव अत्थं गच्छन्ति
येसांच : यदि कोई; कायगत सति : भौतिक वास्तविकता के संबंध में ध्यान; निच्चं [ निच्च ]: हमेशा; सुसमाराद्धा : अच्छी तरह अभ्यास करें; किच्चे : जो करना है उसमें; सतच्चकारिनो [ सातच्चकारिना ]: निरंतर अभ्यास बनाए रखें; ते : वह; अकिच्चं [ अकिच्च ]: जो नहीं करना चाहिए; न सेवंति : नहीं करता; सतानं [ सताना ]: सचेत रहने वाले; संपजन्नं [ संपजन्न ]: सचेत मन वालों में से; आसवा अत्थं [ अत्थ ]: अवनति; गच्छन्ति : जाना
यदि कोई व्यक्ति भौतिक वास्तविकता के प्रति सजगता का निरंतर अभ्यास करे, और जो करना आवश्यक है उस पर स्थिर ध्यान केंद्रित रखे, तो वह उन कार्यों से दूर रहेगा जो नहीं करने चाहिए। सजग और सतर्क व्यक्तियों के दोष मिट जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 292-293)
कायगतासति भावना : इसे पटिक्कुलमनसिकार भावना कहते हैं । इस ध्यान का अर्थ है शरीर की संरचना और उसके वास्तविक स्वरूप को समझना। बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, किसी प्राणी का शरीर बत्तीस अशुद्धियों से बना होता है।
इन बत्तीस अशुद्धियों को पांच-पांच के चार समूहों और छह-छह के दो समूहों में वर्गीकृत किया गया है:
(1) केसा , लोमा , नखा , दांता , टैको [ टाका ]।
(सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा।)
(2) मंसां [ मंसा ], सहारू , आथि , अथिमिञ्जा , वक्कं [ वक्का ]।
(मांस, नसें, हड्डियाँ, अस्थि मज्जा, गुर्दे।)
(3) हदायं [ हदया ], याकिनं [ याकिना ], किलोमकं [ किलोमाका ], पिहाकमं [ पिहाका ], पप्पासां [ पप्पासा ]।
(हृदय, यकृत, मध्य भाग, प्लीहा, फेफड़े।)
(4) अंतः [ अन्ता ], अंतगुणः [ अन्तागुण ], उडारियाम् [ उडारिया ], करिसाः [ करीसा ], मत्तालुंगाः [ मत्तालुंगा ]।
(आंतों, अंतर्मन, गला, गोबर, मस्तिष्क।)
(5) पित्तं [ पित्त ], सेम्हां [ सेम्हा ], पब्बो [ पब्बा ], लोहितां [ लोहिता ], सेडो [ सेडा ], मेडो [ मेडा ]।
(पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा।)

(6) अस्सु , वासा , खेलो [ खेला ], सिघानिका , लसिका , मुत्तं [ मुत्ता ]।
(आंसू, चिकनाई, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल, पेशाब।)
इस प्रकार वर्गीकृत किए गए पाँच अशुद्धियों के पहले समूह पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक चिंतन करना चाहिए। इसके बाद, पाँच अशुद्धियों के दूसरे समूह पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक चिंतन करना चाहिए। फिर, पहले और दूसरे समूह की अशुद्धियों पर प्रारंभ से अंत तक और अंत से प्रारंभ तक एक साथ चिंतन करना चाहिए। तीसरे समूह पर भी इसी प्रकार ध्यान करने के बाद, अन्य सभी समूहों पर भी इसी प्रकार चिंतन करना चाहिए।
इस ध्यान का अभ्यास निम्नलिखित सात विधियों द्वारा किया जाना चाहिए:
vacasā
मनसा
वण्णतो [ वण्णता ]
संथानातो [ संथानात् ]
disāto [ disāta ]
okāsato [ okāsata ]
परिच्छेदतो [ परिच्छेदता ].
वाचसा का अर्थ है उपर्युक्त बत्तीस अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए उन्हें मौखिक रूप से दोहराते हुए ध्यान करना।
मनसा का अर्थ है मन में उन्हें दोहराते हुए ध्यान करना।
वण्णतो [ वण्णता ] का अर्थ है बालों आदि जैसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए, उनके रंगों का निर्धारण करते हुए ध्यान करना।
संठनातो [ संठनाता ] का अर्थ है बालों आदि जैसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए, उनके आकार का निर्धारण करते हुए ध्यान करना।
दिसातो [ दिसाता ] का अर्थ है शरीर की अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए ध्यान लगाना, साथ ही शरीर के अंगों की स्थिति को नाभि के ऊपर या नीचे, शरीर के ऊपरी या निचले हिस्से में दिशात्मक रूप से निर्धारित करना।
ओकासातो [ ओकासाता ] का अर्थ है ऐसी अशुद्धियों पर चिंतन करते हुए ध्यान लगाना और शरीर में इन अंगों द्वारा प्राप्त स्थान का निर्धारण करना।
परिच्छेदातो [ परिच्छेदाता ] का अर्थ है ऐसी अशुद्धियों पर अलग-अलग विचार करते हुए ध्यान करना।
काया-गत-सति : शरीर के प्रति सजगता। कभी-कभी इसका तात्पर्य केवल शरीर के बत्तीस अंगों के चिंतन से होता है, और कभी-कभी शरीर के चिंतन ( कायानुपस्सना ) के अंतर्गत आने वाली सभी विभिन्न ध्यान विधियों से, जो सजगता ( सतिपट्टाना ) के चार आधारों में से पहला है , जिसमें आंशिक रूप से एकाग्रता ( समाधि ) अभ्यास और आंशिक रूप से अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) अभ्यास शामिल हैं। दूसरी ओर, पहले सतिपट्टाना में वर्णित श्मशान ध्यान ( सीवथिका ) लगभग दस घृणास्पद चिंतन ( असुभ-भावना ) के समान हैं, जबकि अन्यत्र शरीर के बत्तीस अंगों के चिंतन को अशुद्धता पर चिंतन ( पटिक्कूल-संज्ञा ) कहा जाता है।
बुद्ध ने कहा, "हे भिक्षुओं, एक ही चीज़ है जिसका निरंतर अभ्यास और विकास करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह है शरीर का चिंतन।" यहाँ संदर्भ प्रथम सतिपट्टाना में वर्णित सभी अभ्यासों से है ।
विशुद्धिमग्ग में शरीर के बत्तीस अंगों पर ध्यान विकसित करने की विधि का विस्तृत वर्णन और व्याख्या दी गई है। यह अभ्यास केवल प्रथम समाधि ( झान ) ही उत्पन्न कर सकता है। सतिपट्ठान सूत्र और अन्यत्र दिए गए पाठ में —मस्तिष्क को छोड़कर—इस प्रकार लिखा है:
"और आगे, हे भिक्षुओं, भिक्षु इस शरीर का ध्यान पैर के तलवे से ऊपर की ओर और बालों के शीर्ष से नीचे की ओर, त्वचा सहित, और अनेक अशुद्धियों से भरे हुए, करता है: "इस शरीर में शरीर के बाल, सिर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, मज्जा, गुर्दा, हृदय, यकृत, डायाफ्राम, तिल्ली, फेफड़े, आंतें, पेट, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा, चिकनाई, थूक, नाक का बलगम, जोड़ों का तेल, मूत्र इत्यादि हैं।"
विशुद्धिमग्ग में कहा गया है: इस अभ्यास के शब्दों को बार-बार दोहराने से व्यक्ति शब्दों से भलीभांति परिचित हो जाएगा, मन इधर-उधर नहीं भटकेगा, शरीर के विभिन्न अंग स्पष्ट हो जाएंगे और उंगलियों की पंक्ति या बाड़ के खंभों की पंक्ति की तरह दिखाई देंगे। अब, जिस प्रकार व्यक्ति शब्दों में अभ्यास दोहराता है, उसी प्रकार मन में भी दोहराना चाहिए। मन में दोहराने से विशिष्ट लक्षणों को समझने की अवस्था प्राप्त होती है। जो व्यक्ति इस प्रकार शरीर के अंगों का रंग, आकार, क्षेत्र, स्थान और सीमाओं के अनुसार निरीक्षण करता है और उन्हें एक-एक करके, और जल्दबाजी किए बिना, घृणित समझकर ध्यान लगाता है, उसे शरीर का चिंतन करते समय ये सभी चीजें एक साथ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। लेकिन जब व्यक्ति अपना ध्यान बाहरी रूप से, जैसे कि अन्य प्राणियों के शरीरों पर, स्थिर रखता है और जब सभी अंग स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, तो सभी मनुष्य और पशु जो इधर-उधर घूम रहे हैं, जीवित प्राणियों का रूप खो देते हैं और अनेक विभिन्न वस्तुओं के ढेर की तरह दिखाई देते हैं। और ऐसा लगता है मानो उनके द्वारा ग्रहण किए गए भोजन और पेय पदार्थ

इसी ढेर में समाहित हो रहे हों। अब, जब कोई फिर से 'घृणित!' की धारणा बना रहा है—समय के साथ कई भागों को छोड़ते हुए—धीरे-धीरे एकाग्रता की प्राप्ति ( अप्पना-समाधि , अर्थात् ध्यान की एकाग्रता ) हो जाएगी। इस संदर्भ में, रूपों का प्रकट होना अर्जित छवि ( उग्घ-निमित्त ) कहलाता है, जबकि घृणा का उत्पन्न होना प्रति-छवि ( पटिभाग-निमित्त ) कहलाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 294,295

———————————————————————

(धम्मपद 292 और 293) <<<< पिछला || धम्मपद 294 और 295 || अगला >>>> (धम्मपद 296 से 301)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 294 और 295 - लकुंडका भद्दिया वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

मातरम पितरम हन्त्वा
rajano dye ca khattiye
rattham sanucaram hantva
anigho yati(1) brahmano.
मातरम पितरम हन्त्वा
rajano dve ca sotthiye
veyagghapancamam(2) hantva
anigho yati brahmano.

———————————————————————

श्लोक 294 : माता (अर्थात् तृष्णा), पिता (अर्थात् अहंकार) और दोनों राजाओं (अर्थात् शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास) का वध करके, और राज्य (अर्थात् इंद्रिय आधार और इंद्रिय विषय) को उसके राजस्व अधिकारी (अर्थात् आसक्ति) सहित नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात् अरहत) दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

श्लोक 295 : माता, पिता, दो ब्राह्मण राजाओं का वध करके और पाँचवीं (अर्थात संदेह) बाघ से भरी यात्रा के समान बाधाओं को नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात अरहत) दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

1. अनिघो यति: अक्षुण्ण हो जाता है, अर्थात्, पुनर्जन्मों के चक्र (संसार) से मुक्त हो जाता है।
2. वेयग्घपंचमम्: वेयग्घ + पंचमम्, अर्थात् बाघ की तरह + पाँचवाँ। पाँच अवरोध हैं, निवारण हैं। यहाँ पाँचवें अवरोध, अर्थात् संदेह (विचीकिच्च) का उल्लेख है।

———————————————————————

थेरा भद्दिया की कहानी, छोटी वाली

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (294) और (295) का उच्चारण थेरा भद्दिया के संदर्भ में किया, जो अपने छोटे कद के कारण लकुंदक भद्दिया के नाम से भी जाने जाते थे।

एक बार कुछ भिक्षु जेतवन मठ में बुद्ध के दर्शन और श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तभी लकुंदक भद्दिया उनसे कुछ ही दूरी पर से गुजर रहे थे। बुद्ध ने उनका ध्यान उस छोटे कद के भिक्षु की ओर आकर्षित किया और उनसे कहा, "भिक्षुओं, उस भिक्षु को देखो। उसने अपने माता-पिता दोनों को मार डाला है, और अपने माता-पिता को मारने के बाद वह बिना किसी दुःख

(पुनर्जन्म/कष्ट) के घूम रहा है।" भिक्षु बुद्ध के इस कथन को समझ नहीं पाए। इसलिए उन्होंने बुद्ध से इसे स्पष्ट करने का अनुरोध किया और बुद्ध ने उन्हें इसका अर्थ समझाया।

उपरोक्त कथन में बुद्ध एक ऐसे अरहत का उल्लेख कर रहे थे, जिन्होंने व्यथा, अहंकार, गलत धारणाओं और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों से आसक्ति को नष्ट कर दिया था। बुद्ध ने यह कथन उपमाओं के माध्यम से कहा है। इस प्रकार, 'माता' और 'पिता' शब्दों का प्रयोग क्रमशः व्यथा और अहंकार को दर्शाने के लिए किया गया है। शाश्वतता (सस्सतादित्थी) और संहार (उच्छेदादित्थी) की तुलना दो राजाओं से की गई है, आसक्ति की तुलना एक राजस्व अधिकारी से और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों (अज्जत्त और बहिद्ध आयतन) की तुलना एक राज्य से की गई है।

उन्हें अर्थ समझाने के बाद, बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 294 : माता (अर्थात् तृष्णा), पिता (अर्थात् अहंकार) और दोनों राजाओं (अर्थात् शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास) का वध करके, और राज्य (अर्थात् इंद्रिय आधार और इंद्रिय विषय) को उसके राजस्व अधिकारी (अर्थात् आसक्ति) सहित नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात् अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

---

श्लोक 295 : माता, पिता, दो ब्राह्मण राजाओं का वध करके और पाँचवीं (अर्थात संदेह) बाघ से भरी यात्रा के समान बाधाओं को नष्ट करके, ब्राह्मण (अर्थात अरहत) दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्त हो जाता है।

---

प्रवचन के अंत में, अतिथि भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय भद्दिया की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भद्दिया के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे, जिन्हें उनके छोटे कद के कारण लकुंटक भद्दिया के नाम से भी जाना जाता था।

एक बार कुछ भिक्षु जेतवन मठ में बुद्ध के दर्शन और श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तभी लकुंटक भद्दिया उनसे कुछ ही दूरी पर से गुजर रहे थे। बुद्ध ने उनका ध्यान उस छोटे भिक्षु की ओर आकर्षित किया और उनसे कहा, "हे पूज्यवरों, उस भिक्षु को देखो। उसने अपने माता-पिता दोनों को मार डाला है, और अपने माता-पिता को मारने के बाद भी वह बिना किसी दु:ख के घूम रहा है।" भिक्षु बुद्ध के इस कथन को समझ नहीं पाए। इसलिए उन्होंने बुद्ध से इसे स्पष्ट करने का अनुरोध किया और बुद्ध ने उन्हें इसका अर्थ समझाया।

उपरोक्त कथन में बुद्ध एक ऐसे अरहत का उल्लेख कर रहे थे, जिन्होंने भोग-विलास, अहंकार, गलत धारणाओं और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों से आसक्ति का नाश कर दिया था। बुद्ध ने यह कथन उपमाओं के माध्यम से कहा है। इस प्रकार, माता और पिता शब्दों का प्रयोग क्रमशः भोग-विलास और अहंकार को दर्शाने के लिए किया गया है। शाश्वतता ( सस्सतादिष्ठी ) और विनाश ( उच्छेदादिष्ठी ) की तुलना दो राजाओं से की गई है, आसक्ति की तुलना एक राजस्व अधिकारी से और इंद्रिय-आधारित एवं इंद्रिय-विषयों ( अज्जत्त और बहिद्ध आयतन ) की तुलना एक राज्य से की गई है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 294)

मातरं पितरं द्वे च खत्तिये राजनो हन्त्वा

शानुचरं रथं हन्त्वा ब्राह्मणो अनिघो यति

मातरम् [ मातर ]: माँ (लालसा); पितरं [ पिटारा ]: पिता (अहंकार); दवे च खट्टिये राजनो [ राजन ]: दो योद्धा राजा भी; हन्त्वा : हत्या करके; सनुकाराम् [ सनुकारा ]: अपने अधीनस्थों के साथ; रथः [ रथ ]: राज्य; हन्त्वा : नष्ट करके; ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: संत (जिसने दोषों से छुटकारा पा लिया है); अनिघो यति : बिना किसी घबराहट के चलता है

ब्राह्मण माता- तृष्णा का वध करता है; पिता- तृष्णा का वध करता है; दो योद्धा राजाओं का वध करता है। ये दोनों शाश्वतवाद और शून्यवाद के दो दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो बौद्ध विचारों के विपरीत हैं। अधीनस्थ नंदी राग हैं, जो जीवन से आसक्ति रखते हैं। वह उस राज्य का विनाश करता है। यह बारह आयतनों से बना राज्य है । वह अधीनस्थों, यानी नंदी रागों का विनाश करता है । ये वे दोष हैं जो जीवन से आसक्ति रखते हैं। इन सभी का विनाश करने के बाद, ब्राह्मण (अरहत) को कोई दंड नहीं मिलता।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 295)

मातरं पितरं द्वे च सोत्थ्ये राजनो हन्त्वा

वेयघपञ्चम हन्त्वा ब्राह्मणो अनिघो यति

मातारं [ मातारा ]: माता (लालसा); पितरम [ पितरा ]: पिता (अहंकार); द्वे च सोत्थिये राजानो [ राजाना ]: दो ब्राह्मण राजा (शाश्वतवाद और शून्यवाद) भी; हन्त्वा : हत्या करके; वेय्यग्घपंचमं [ वेय्यग्घपंचम ]: पाँच भयंकर बाघ (पाँच बाधाएँ); हन्त्वा : नष्ट करके; ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: संत (जो दोषों से मुक्त हो गया है); अनिघो यति : बिना किसी भय के जाता है

ब्राह्मण (अरहत) माता-पिता की लालसा का वध करता है; पिता-प्रेम और आत्मसम्मान का वध करता है; दो विद्वान राजाओं का वध करता है। ये दोनों ही शाश्वतवाद और शून्यवाद नामक दो भ्रामक विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह मार्ग में बाधा डालने वाले पाँच बाघों ( निवरण ) का वध करता है। और इन सभी वधों को करने के बाद, अरहत अविचलित होकर आगे बढ़ता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 294-295)

ये दोनों श्लोक उन विभिन्न प्रकार के गलत विचारों को दर्शाते हैं जिन्हें आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च फलों को प्राप्त करने के इच्छुक साधक को नष्ट करना होगा।

ये विचार दिठ्ठी की श्रेणी में आते हैं । इस शब्द का अर्थ है दृष्टिकोण, विश्वास, काल्पनिक राय, अंतर्दृष्टि।

यदि इसे सम्मा (सही) से योग्य नहीं बनाया गया है, तो यह ज्यादातर गलत और बुरे दृष्टिकोण या राय को संदर्भित करता है, और केवल कुछ मामलों में सही दृष्टिकोण, समझ या अंतर्दृष्टि को संदर्भित करता है (जैसे दिठ्ठी-प्पत्त , दिठ्ठी विशुद्धि , अंतर्दृष्टि का शुद्धिकरण; दिठ्ठी-संपन्न , अंतर्दृष्टि से युक्त)।

गलत या बुरे विचार ( दिट्ठी या मिच्छा-दिट्ठी ) को पूरी तरह से अस्वीकार्य घोषित किया गया है क्योंकि वे गलत और बुरी आकांक्षाओं और आचरण का स्रोत होते हैं, और कभी-कभी मनुष्य को दुराचार की सबसे गहरी खाई में ले जा सकते हैं।

बुद्ध ने कहा: हे भिक्षुओं, मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे अविकसित अशुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं और जो अशुद्धियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे भी बढ़ती और पूर्ण होती हैं। मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे अविकसित अशुद्धियाँ उत्पन्न होने से रुक जाती हैं और जो अशुद्धियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं वे भी लुप्त हो जाती हैं। मुझे बुरे विचारों के सिवा और कुछ नहीं ज्ञात, जिनसे शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के समय मनुष्य दुख के मार्ग पर, दुःख के संसार में, नरक में जाता है। बुरे विचारों से भरा मनुष्य जो भी कार्य करता है या जो भी इच्छा, आकांक्षा, लालसा और प्रवृत्ति रखता है, ये सब उसे अवांछनीय, अप्रिय और कष्टदायी स्थिति की ओर ले जाते हैं।

अभिधम्म से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब भी बुरे विचार उत्पन्न होते हैं, वे लालच से जुड़े होते हैं।

सूत्र ग्रंथों में अनेक काल्पनिक मत और सिद्धांत उद्धृत हैं, जिन्होंने हमेशा से मानव जाति को प्रभावित किया है और अभी भी प्रभावित कर रहे हैं। हालांकि, इनमें से वह गलत धारणा, जिसने हर जगह और हर समय मानव जाति को सबसे अधिक गुमराह और भ्रमित किया है, वह है व्यक्तित्व-विश्वास, अहंकार-भ्रम। यह व्यक्तित्व-विश्वास ( सक्काया-दिट्ठी ), या अहंकार-भ्रम ( अत्ता-दिट्ठी ), दो प्रकार का होता है: शाश्वतता-विश्वास और विनाश-विश्वास।

शाश्वतता में विश्वास ( सस्सता-दिट्ठी ) एक निरंतर रहने वाली अहंकार-सत्ता, आत्मा या व्यक्तित्व के अस्तित्व में विश्वास है, जो कमोबेश उन भौतिक और मानसिक प्रक्रियाओं के समान है, और इसलिए, मृत्यु के समय विघटन होने पर, वह भी नष्ट हो जाएगी।

बुद्ध न तो मृत्यु के बाद भी बने रहने वाले व्यक्तित्व की शिक्षा देते हैं, न ही मृत्यु के समय नष्ट होने वाले व्यक्तित्व की, बल्कि वे हमें यह दिखाते हैं कि व्यक्तित्व, अहंकार, व्यक्ति आदि मात्र पारंपरिक पदनाम ( वोहार-वचन ) हैं और परम अर्थ में ( पमत्थ-सच्च ) केवल भौतिक और मानसिक घटनाओं की यह स्वतः नष्ट होने वाली प्रक्रिया है जो निरंतर उत्पन्न होती है और तुरंत ही लुप्त हो जाती है।

बुद्ध किसी भी सिद्धांत से मुक्त हैं ( दिठ्ठिगता ), क्योंकि उन्होंने शरीर का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और यह भी जान लिया है कि यह कैसे उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। उन्होंने यह भी जान लिया है कि भावना, बोध, मानसिक रचनाएँ, चेतना क्या हैं और ये कैसे उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि बुद्ध ने सभी कल्पनाओं और अटकलों, और अहंकार पर आधारित सभी व्यर्थ अभिमानों के विनाश, लुप्त होने, लुप्त होने, त्याग और निष्कासन के माध्यम से पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली है।

सत्त-निपात के एक अध्याय , अट्ठक-वग्ग में अटकलबाजी वाले विचारों और सिद्धांतों का खंडन एक प्रमुख विशेषता है ।

नियति से जुड़े तथाकथित बुरे विचार ( नियात-मिच्छादित्ति ), जो दस अस्वास्थ्यकर कर्मों ( कम्मपथ ) में से अंतिम हैं, निम्नलिखित तीन हैं:

(1) अस्तित्व की अकारणता का भाग्यवादी दृष्टिकोण (अहेतुकदिट्ठी)। यह बुद्ध के समकालीन मक्खली-गोसाला द्वारा सिखाया गया था, जिन्होंने प्राणियों की भ्रष्टता और पवित्रता के लिए हर कारण से इनकार किया और दावा किया कि सब कुछ भाग्य द्वारा सूक्ष्म रूप से पूर्वनिर्धारित है।

(2) कर्म की निरर्थकता का दृष्टिकोण (अकिरिया-दिट्ठी)। यह बुद्ध के समकालीन पूरण-कस्सपा द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जिन्होंने अच्छे और बुरे कर्मों के किसी भी कर्म फल को नकार दिया था। हत्या, चोरी, डकैती आदि करने वाले को कुछ भी बुरा नहीं होगा। जहाँ तक उदारता, संयम, सत्यनिष्ठा आदि की बात है, तो उनसे किसी भी प्रकार का प्रतिफल अपेक्षित नहीं है।

(3) शून्यवाद (नत्थिका-दिट्ठी)। यह बुद्ध के तीसरे समकालीन अजित-केशकंबली द्वारा सिखाया गया था, जिन्होंने दावा किया कि अच्छे कर्म और उसके फल में कोई भी विश्वास मात्र एक भ्रम है, कि मृत्यु के बाद कोई और जीवन नहीं होगा, कि मनुष्य मृत्यु के समय तत्वों में विलीन हो जाएगा।
अक्सर दस विरोधाभासों ( antagāhikā micchādiṭṭhi ) का भी उल्लेख किया जाता है: संसार सीमित है या संसार अनंत है... शरीर और आत्मा एक समान हैं या शरीर और आत्मा भिन्न हैं।
ब्रह्मजाल सूत्र में बासठ भ्रामक विचारों को वर्गीकृत और वर्णित किया गया है, जिनमें मनुष्य और संसार के बारे में सभी संभावित गलत विचार और अटकलें शामिल हैं।
गलत विचार ( दिट्ठी ) तीन प्रकार के विकारों ( अनुसय ), आसव और उपादान में से एक हैं, जो विपल्लास नामक तीन प्रकार के विकारों में से एक हैं । लोभ में निहित अस्वस्थ चेतना ( अकुशल चित्त ) गलत विचारों के साथ या उनके बिना भी हो सकती है ( दिट्ठीगत-संपयुत्त या विपयुत्त )।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 296-301

———————————————————————————

(धम्मपद 294 और 295) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 296 से 301 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 302)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 296 से 301 - दारूसाकटिकापुत्त वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam buddhagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam dhammagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam samghagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
niccam kayagata sati.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती

सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
ahimsaya rato mano.
सुप्पबुद्धम पबुज्जंती
सदा गोतमसवका
yesam diva ca ratto ca
भवनया रातो मनो.

---

श्लोक 296 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात बुद्ध के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 297 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस हैं, जो दिन-रात धम्म के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 298 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात संघ के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 299 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात शरीर के घटकों के प्रति सचेत रहते हैं।

---

श्लोक 300 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और हमेशा चौकस रहते हैं, जिनका मन दिन-रात हमेशा करुणा (शाब्दिक रूप से, हानिरहित) होने में आनंदित रहता है।

---

श्लोक 301 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सजग और हमेशा सतर्क रहते हैं, जिनका मन दिन-रात सभी के प्रति सद्भावना के संवर्धन में आनंदित रहता है।

---

एक लकड़हारे के बेटे की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (296) से (301) तक एक लकड़हारे के बेटे के संदर्भ में कहे।

राजगाह में एक लकड़हारा अपने बेटे के साथ लकड़ियाँ काटने जंगल गया। शाम को घर लौटते समय वे भोजन करने के लिए एक कब्रिस्तान के पास रुके। उन्होंने अपने दोनों बैलों से जुआ उतार दिया ताकि वे पास में चर सकें; लेकिन दोनों बैल बिना उनकी नज़र में आए गायब हो गए। जैसे ही उन्हें पता चला कि बैल गायब हैं, लकड़हारा उन्हें ढूंढने चला गया और अपने बेटे को लकड़ियों से भरी गाड़ी के साथ वहीं छोड़ दिया। पिता अपने बैलों को ढूंढते हुए कस्बे में गया। जब वह अपने बेटे के पास लौटा तो काफी रात हो चुकी थी और कस्बे का द्वार बंद हो चुका था। इसलिए, उस छोटे लड़के को रात अकेले अपनी गाड़ी के नीचे बितानी पड़ी।

लकड़ी काटने वाले का बेटा, हालांकि छोटा था, हमेशा सचेत रहता था और बुद्ध के अद्वितीय गुणों का चिंतन करने का आदी था। उस रात दो राक्षस उसे डराने और नुकसान पहुंचाने आए। जब एक राक्षस ने लड़के का पैर खींचा, तो वह चिल्लाया, "मैं बुद्ध को प्रणाम करता हूँ (नमो बुद्धस्स)। लड़के के ये शब्द सुनकर राक्षस डर गए और उन्हें लगा कि उन्हें लड़के की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए, उनमें से एक लड़के के पास ही रुका रहा और उसे हर खतरे से बचाता रहा; दूसरा राजा के महल में गया और राजा बिम्बिसार की भोजन-थाली ले आया। फिर दोनों राक्षसों ने लड़के को अपने बेटे की तरह भोजन कराया। महल में, राक्षस ने शाही भोजन-थाली के बारे में एक लिखित संदेश छोड़ा; और यह संदेश केवल राजा को ही दिखाई दिया।

सुबह राजा के आदमियों ने देखा कि शाही भोजन की थाली गायब है और वे बहुत परेशान और भयभीत हो गए। राजा को राक्षस का संदेश मिला और उन्होंने अपने आदमियों को उसे खोजने का निर्देश दिया। राजा के आदमियों को शाही भोजन की थाली गाड़ी में लकड़ियों के ढेर के बीच मिली। उन्हें वह लड़का भी मिला जो अभी भी गाड़ी के नीचे सो रहा था। पूछने पर लड़के ने बताया कि उसके माता-पिता रात में उसे भोजन कराने आए थे और भोजन करने के बाद वह निश्चिंत होकर सो गया। लड़के को बस इतना ही पता था, इससे ज्यादा कुछ नहीं। राजा ने लड़के के माता-पिता को बुलवाया और उन्हें बुद्ध के पास ले गए। तब तक राजा को पता चल चुका था कि लड़का हमेशा बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान रखता था और यह भी कि जब राक्षस ने रात में उसका पैर खींचा था, तब उसने "नमो बुद्धस्स" का उच्चारण किया था।

राजा ने बुद्ध से पूछा, "क्या बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान ही एकमात्र धर्म है जो बुराई और खतरे से सुरक्षा प्रदान करता है, या धर्म के अद्वितीय गुणों का ध्यान भी उतना ही शक्तिशाली है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे राजा, मेरे शिष्य! छह ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान बुराई और खतरे से अच्छी तरह सुरक्षा प्रदान करता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 296 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात बुद्ध के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 297 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस हैं, जो दिन-रात धम्म के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 298 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात संघ के गुणों का ध्यान रखते हैं।

---

श्लोक 299 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और सदा चौकस रहते हैं, जो दिन-रात शरीर के घटकों के प्रति सचेत रहते हैं।

---

श्लोक 300 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सतर्क और हमेशा चौकस रहते हैं, जिनका मन दिन-रात हमेशा करुणा (शाब्दिक रूप से, हानिरहित) होने में आनंदित रहता है।

---

श्लोक 301 : गौतम बुद्ध के शिष्य पूरी तरह से सजग और हमेशा सतर्क रहते हैं, जिनका मन दिन-रात सभी के प्रति सद्भावना के संवर्धन में आनंदित रहता है।

---

प्रवचन के अंत में बालक और उसके माता-पिता ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में वे संघ में शामिल हो गए और अंततः अरहत बन गए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक लकड़हारे के बेटे की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक लकड़हारे के पुत्र के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार राजगृह में एक लकड़हारा अपने बेटे के साथ लकड़ियाँ काटने जंगल गया। शाम को घर लौटते समय वे भोजन करने के लिए एक कब्रिस्तान के पास रुके। उन्होंने अपने दोनों बैलों से जुआ उतार दिया ताकि वे पास में चर सकें; लेकिन दोनों बैल बिना उनकी नज़र में आए गायब हो गए। जैसे ही उन्हें पता चला कि बैल गायब हैं, लकड़हारा उन्हें ढूंढने निकल पड़ा और अपने बेटे को लकड़ियों से भरी गाड़ी के साथ वहीं छोड़ दिया। पिता अपने बैलों को ढूंढते हुए कस्बे में दाखिल हुआ। जब वह अपने बेटे के पास लौटा तो काफी रात हो चुकी थी और कस्बे का द्वार बंद हो चुका था। इसलिए, उस छोटे लड़के को रात अकेले अपनी गाड़ी के नीचे बितानी पड़ी।
लकड़ी काटने वाले का बेटा, हालांकि छोटा था, हमेशा सचेत रहता था और बुद्ध के अद्वितीय गुणों का चिंतन करने का आदी था। उस रात, दो दुष्ट आत्माएँ उसे डराने और नुकसान पहुँचाने आईं। जब एक दुष्ट आत्मा ने लड़के का पैर खींचा, तो वह चिल्लाया, “मैं बुद्ध को प्रणाम करता हूँ” ( नमो बुद्धस्स )। ये शब्द सुनकर दुष्ट आत्माएँ भयभीत हो गईं और उन्हें लगा कि उन्हें लड़के की रक्षा करनी चाहिए। इसलिए उनमें से एक लड़के के पास ही रही और उसे हर खतरे से बचाती रही; दूसरी राजा के महल में गई और राजा बिम्बिसार की भोजन की थाली ले आई। फिर दोनों दुष्ट आत्माओं ने लड़के को ऐसे खिलाया जैसे वह उनका अपना बेटा हो। महल में, दुष्ट आत्मा ने शाही भोजन की थाली के बारे में एक लिखित संदेश छोड़ा; और यह संदेश केवल राजा को ही दिखाई दिया।
सुबह राजा के आदमियों ने देखा कि शाही भोजन की थाली गायब है और वे बहुत परेशान और भयभीत हो गए। राजा को दुष्ट आत्मा का संदेश मिला और उन्होंने अपने आदमियों को उसे खोजने का निर्देश दिया। राजा के आदमियों को शाही भोजन की थाली गाड़ी में लकड़ियों के ढेर के बीच मिली। उन्हें वह लड़का भी मिला जो अभी भी गाड़ी के नीचे सो रहा था। पूछने पर लड़के ने बताया कि उसके माता-पिता रात में उसे भोजन कराने आए थे और भोजन करने के बाद वह निश्चिंत होकर सो गया था। लड़के को बस इतना ही पता था, इससे ज्यादा कुछ नहीं। राजा ने लड़के के माता-पिता को बुलवाया और उन्हें बुद्ध के पास ले गए। तब तक राजा को पता चल चुका था कि लड़का हमेशा बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान रखता था और यह भी कि जब दुष्ट आत्मा ने रात में उसका पैर खींचा था, तब उसने " नमो बुद्धस्स " का उच्चारण किया था।

राजा ने बुद्ध से पूछा, “क्या बुद्ध के अद्वितीय गुणों का ध्यान ही एकमात्र धर्म है जो बुराई और खतरे से सुरक्षा प्रदान करता है, या धर्म के अद्वितीय गुणों का ध्यान भी उतना ही शक्तिशाली है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “हे राजा, मेरे शिष्य! छह ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान बुराई और खतरे से अच्छी तरह सुरक्षा प्रदान करता है।”

फिर बुद्ध ने प्रवचन दिया।

प्रवचन के अंत में, बालक और उसके माता-पिता ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया। बाद में, वे संघ में शामिल हो गए और अंततः अरहत बन गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 296)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगतसति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [ हाँ ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [ रट्टा ]: और रात में; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; बुद्धगतसति : बुद्ध-चेतनता का अभ्यास करें; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात अपने गुरु के गुणों का ध्यान रखते हैं, वे पूरी तरह जागृत और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 297)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [ हाँ ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [ रट्टा ]: और रात में; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; धम्मगता सती : धम्म-चेतनता का अभ्यास करता है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात धम्म के गुणों के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 298)

येसं दिवा च रत्तो च निच्चं संघगता
सति सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [ हाँ ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [ रट्टा ]: और रात में; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; संघगत सती : संघ-चेतना का अभ्यास करती है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात संघ—भाईचारे—के गुणों के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 299)

येसं दिवा च रत्तो च निक्कं कायगता सति
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [ हाँ ]: यदि कोई; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [ रट्टा ]: और रात में; निक्कां [ निक्का ]: लगातार; कायगता सती : भौतिक वास्तविकता के संबंध में ध्यान का अभ्यास करता है; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छी तरह जागो

बुद्ध के वे शिष्य जो दिन-रात शरीर की वास्तविक प्रकृति के प्रति सचेत रहते हैं, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 300)

येसं मनो दिवा च रत्तो च अहिंसा रतो
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

येसं मनो : यदि किसी का मन; दिवा च : दिन के दौरान; सीए रट्टो [ रट्टा ]: और रात में; अहिंसा : हानिरहितता में; रटो प्रसन्न; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति : उठो, अच्छे से जागो

बुद्ध के वे शिष्य जिनका मन दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 301)

येसं मनो दिवा च रत्तो च भवनाय रतो
गोतमसावका सदा सुप्पबुद्धं पबुज्जन्ति

हाँṃ [ हाँ ]: अगर किसी का; मनो : मन; दिवा च रत्तो च : दिन और रात; भावनाय : ध्यान में; रेटो : प्रसन्नता; गौतमसावका : बुद्ध के वे शिष्य; सदा : सदैव; सुप्पबुद्धं [ सुप्पबुद्ध ]: व्यापक जागृत; पबुज्जन्ति : उठो

बुद्ध के वे शिष्य जिनका मन दिन-रात ध्यान में लीन रहता है, वे पूर्ण जागृत अवस्था में और अपनी सभी इंद्रियों पर पूर्ण नियंत्रण के साथ उठते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 296-301)

बुद्धानुस्सति भावना : ध्यान की यह विधि युवा और वृद्ध दोनों के लिए उपयुक्त है। अनुस्सति शब्द का अर्थ है चिंतन। अतः बुद्धानुस्सति भावना का अर्थ है बुद्ध के गुणों का चिंतन करते हुए किया जाने वाला ध्यान।

बुद्ध के अनंत गुण हैं। लेकिन ये नौ मुख्य गुणों में समाहित हैं। इन्हें बुद्ध के नौ गुना गुण कहा जाता है, जिनका वर्णन इस प्रकार है: इतिपिसो भगवा ... बुद्धानुस्सति भावना। इन गुणों का चिंतन करते हुए बुद्धानुस्सति भावना का अभ्यास करना चाहिए।

बुद्ध के सभी गुणों पर एक साथ चिंतन करते हुए ध्यान करना कठिन है। इसलिए, अनेक गुणों में से किसी एक गुण पर चिंतन करना अधिक सरल है। बाद में, सभी गुणों पर चिंतन करते हुए ध्यान का अभ्यास किया जा सकता है। इसकी शुरुआत पहले गुण, अर्थात् अरहत से की जा सकती है और इस प्रकार आगे बढ़ा जा सकता है:

सर्वप्रथम, व्यक्ति को अपने शरीर को शुद्ध करना चाहिए और पुष्प अर्पित करके त्रिरत्न की आराधना करनी चाहिए, फिर त्रिविध शरणासन करना चाहिए और पंच नियमों का पालन करना चाहिए। इसके बाद, बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष उचित मुद्रा में बैठकर, प्रेम और श्रद्धा से बुद्ध की छवि को अपने मन में समेटने का प्रयास करना चाहिए। फिर, आंखें बंद करके और दाहिना हाथ बाएं हाथ पर रखकर, इस प्रकार चिंतन करना चाहिए, यह जानते हुए कि बुद्ध मन में विद्यमान हैं।

(1) भगवान बुद्ध गुप्त रूप से भी कोई पाप नहीं करते। इसलिए उन्हें अरहत कहा जाता है।

(2) कुछ समय तक इसी प्रकार चिंतन करते रहना चाहिए। उसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिए: बुद्ध गुप्त रूप से भी कोई पाप नहीं करते। उन्होंने समस्त दोषों का नाश कर दिया है। वे सभी भेंटों के योग्य हैं। अतः बुद्ध को अरहत कहा जाता है।

इस प्रकार हमें बुद्ध के अन्य गुणों का भी ध्यान करते रहना चाहिए। इस प्रकार ध्यान करने से हमारा मन अन्य विषयों की ओर भटके बिना सीधे बुद्ध पर केंद्रित रहता है। इससे हमारा मन शुद्ध होता है और हमें शांति मिलती है। हम बुद्ध के गुणों को थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, प्राप्त करना शुरू कर देते हैं। इसलिए हमें इस ध्यान का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

धम्मानुपस्सना भावना : धम्मानुपस्सना का अर्थ है विचारों ( चेतसिका धम्म ), रूप , वेदना आदि तत्वों ( खंड ), नेत्र और कान जैसे इंद्रिय-आधारों ( आयतनधम्म ), सती , धम्मविचार ( बोज्झंगधम्म ) जैसे ज्ञान के कारकों और चार आर्य सत्यों ( चतुरार्य सच्च ) पर चिंतन करना। इस ध्यान को सतिपठ्ठान ध्यान श्रृंखला में सबसे कठिन माना जा सकता है ।

धम्मानुपस्सना भावना के पाँच मुख्य भाग हैं , जैसे:

विवरण परिग्हा ,

खंधा परिग्गाह ,

āyatana parriggaha ,

bojjhanga parighaha , and

sacca parigaha .

निवारण परिग्: : निर्वाण के मार्ग में पाँच बाधाएँ हैं। इन्हें निवारण कहते हैं । वे हैं:

कामच्छंद

व्यापाद ,

थिनामिद्धा ,

उद्धच्च कुक्कुच्च , और

vicikicchā .

कामच्छंद : इसका अर्थ है इंद्रिय-संबंधी इच्छा। यह वस्तुओं को संतोषप्रद मानने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। व्यक्ति को निम्नलिखित पाँच तरीकों से कामच्छंद पर चिंतन करना चाहिए:

जब किसी के मन में उसकी उपस्थिति के प्रति सजग होने की इंद्रिय-इच्छा ( कामच्छंद ) उत्पन्न होती है;

जब मन में इसकी अनुपस्थिति के प्रति सजग होने की कोई इंद्रिय-इच्छा न हो;

किसी ऐसी इंद्रिय-इच्छा के उत्पन्न होने के तरीके के प्रति सचेत रहना जो अब तक मन में उत्पन्न नहीं हुई हो;

मन में उत्पन्न हुई इंद्रिय-इच्छा के समाप्त होने के तरीके के प्रति जागरूक होना;

इस बात से अवगत होना कि मन में समाप्त हो चुकी कोई इंद्रिय-इच्छा पुनः उत्पन्न नहीं होगी।

व्यापाद : इसका अर्थ है दुर्भावना। यह मन को विकृत करता है और निर्वाण के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। व्यापाद पर निम्नलिखित पाँच तरीकों से चिंतन करना चाहिए:

जब मन में दुर्भावना (व्यापाद) उत्पन्न हो, तो उसकी उपस्थिति के प्रति सचेत रहना;

जब मन में दुर्भावना न हो, तो उसकी अनुपस्थिति के प्रति सजग रहना;

इस बात से अवगत होना कि किस प्रकार मन में अब तक उत्पन्न न हुई दुर्भावनाएं उत्पन्न हो सकती हैं;

मन में उत्पन्न दुर्भावना के समाप्त होने के तरीके के प्रति जागरूक होना;

इस बात से अवगत होना कि मन में समाप्त हो चुकी दुर्भावना दोबारा उत्पन्न नहीं होगी।

थिनामिद्धा : इसका अर्थ है मन और शरीर में आलस्य। इस पर भी, पहले वर्णित पाँच तरीकों से, कामच्छंद और व्यापाद की तरह ही चिंतन करना चाहिए ।

उद्धच्च कुक्कुच्च : इसका अर्थ है मन में उत्पन्न होने वाली बेचैनी और चिंता। यह मानसिक व्याकुलता शांति को रोकती है और निर्वाण के मार्ग में बाधा है। इस पर भी, पहले बताए गए पाँच तरीकों से, चिंतन करना चाहिए।

vicikicchā : इसका अर्थ है सिद्धांत के संबंध में निम्नलिखित 8 कारकों पर उत्पन्न होने वाला संशयपूर्ण संदेह, अर्थात्:

बुद्ध के बारे में संदेह;

धम्म के संबंध में संदेह;

संघ के संबंध में संदेह;

नियमों के संबंध में संदेह ( सिक्खा );

अपने पिछले जन्म के बारे में संदेह;

अपने अगले जन्म के बारे में संदेह;

अपने पिछले जन्म और अगले जन्म के बारे में संदेह होना;

आश्रित उत्पत्ति के सिद्धांत ( पटिक्च समुप्पाद ) के संबंध में संदेह।

इस पर भी पूर्वोक्त पाँच तरीकों से चिंतन करना चाहिए। पाँच प्रकार की बाधाओं ( निवरण ) पर अलग-अलग चिंतन को निवरण परिग्हार कहा जाता है ।

खन्ध परिग्ः : एक प्राणी पाँच आसक्ति समूहों से बना होता है। यह वह समूह है जो जीवन को धारण करता है, जो इस पर आधारित है:

पदार्थ का समूह ( रूप उपादानक्खन्ध );

संवेदनाओं या भावनाओं का समूह ( वेदना उपादानक्खन्ध );

धारणाओं का समूह ( सञ्ञा उपादानक्खन्ध );

मानसिक संरचनाओं का समूह ( संखार उपादानक्खन्ध );

चेतना का समूह (विज्ञाना उपादानक्खन्ध)।

व्यक्ति को पदार्थ ( रूप ) पर निम्नलिखित प्रकार से चिंतन करना चाहिए:

पदार्थ सांसारिक प्रकृति का है। पदार्थ इसी प्रकार अस्तित्व में आया है। पदार्थ का अस्तित्व भी इसी प्रकार समाप्त हो जाएगा। आसक्ति के अन्य समूहों पर चिंतन करते समय भी यही प्रक्रिया अपनानी चाहिए। इस ध्यान का उद्देश्य इन समूहों के प्रति आसक्ति से मुक्ति पाना और इनकी अनित्य प्रकृति को समझना है।

आयतन परिग्ः : आयतन का अर्थ है इंद्रिय-आधार। ये बारह होते हैं और इन्हें दो भागों में विभाजित किया गया है — बाह्य और आंतरिक। छह आंतरिक इंद्रिय-आधार ( अध्यात्म आयतन ) इस प्रकार हैं:

eye— chakkāyatana ,

ear— sotāyatana ,

नाक— घनायतन ,

जीभ — जिवहायतन

शरीर — कायातना , और

मन — मनायतन ।

छह बाह्य इंद्रिय-आधार ( बाहिरायतन ) इस प्रकार हैं:

रूप— rūpāyatana ,

sound— saddāyatana ,

गंध — गंधायतन

स्वाद — रसायतन

संपर्क– poṭṭhabbāyatana , और
मानसिक वस्तुएँ – धम्मायतन ।
इन सभी इंद्रिय-आधारों को ध्यान में रखते हुए, हमें निम्नलिखित पांच तरीकों से उन पर विचार करना चाहिए:
यह जानते हुए कि यह क्या है,
यह जानते हुए कि यह कैसे अस्तित्व में आया है,
यह जानते हुए कि अब तक उत्पन्न न हुई इंद्रिय-आधार कैसे अस्तित्व में आती है,
यह जानना कि अस्तित्व में आ चुकी इंद्रिय-आधार का अस्तित्व कैसे समाप्त हो जाता है, और
यह जानना कि एक बार अस्तित्वहीन हो जाने पर इंद्रिय-आधार पुनः अस्तित्व में नहीं आता।
एक बार जब इस ध्यान का अभ्यास स्वयं के संबंध में किया जाता है, तो इसे दूसरों तक भी बढ़ाया जा सकता है।
बोज्झंगा परिग्हा : बोज्झंगा , या ज्ञानोदय के कारक, से तात्पर्य उन स्थितियों से है जिनका पालन ज्ञानोदय के लिए प्रयासरत व्यक्ति को करना चाहिए।
वे संख्या में सात हैं:
sati sambojjhanga ,
धम्म विचया सम्बोज्जंग ,
viriya sambojjhanga ,
pīti sambojjhanga ,
passaddhi sambojjhanga ,
समाधि संबोज्जंग ,
upekkhā sambojjhanga .
सती से शुरू होने वाली ये सात अवस्थाएँ ज्ञान प्राप्ति के प्रयास में लगे व्यक्ति में धीरे-धीरे उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ हैं और एक दूसरे से संबंधित हैं। इसलिए, इनका अलग-अलग वर्णन करना कठिन है।
ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करने वाला व्यक्ति अपने सभी विचारों और शारीरिक क्रियाओं के प्रति सचेत रहता है। इस प्रकार की सचेतता को यहाँ सती कहा गया है। इस सचेतता से वह सही और गलत में भेद करता है और उनका विवेकपूर्ण विश्लेषण करता है। इस प्रकार के आलोचनात्मक विश्लेषण को धम्मविचार कहा गया है । ज्ञान से जुड़ा यह गुण ज्ञान प्राप्ति का प्रयास करने वाले व्यक्ति में विकसित होता है। अधार्म से मुक्त होकर धर्म का विकास करने के लिए ऐसे व्यक्ति के प्रयास को वीर्य कहा गया है । इस प्रकार प्रयास करने वाले व्यक्ति में वीर्य संबोज्जंग विकसित होता है। धर्म की स्थापना और विकास से मन में उत्पन्न होने वाले सुख को पीति संबोज्जंग कहा गया है । इंद्रिय-इच्छाओं से रहित सुख के विकास से मन और शरीर में उत्पन्न होने वाली शांति को पसद्धि कहा गया है । इस प्रक्रिया का पालन करने वाले व्यक्ति में पसद्धि संबोज्जंग विकसित होता है। इस शांति के आधार पर मन को किसी अच्छे ( कुशल ) विषय पर केंद्रित करना समाधि संबोज्झंग कहलाता है । एकाग्रता के विकास के साथ व्यक्ति को संवेदनाओं की निरर्थकता का अहसास होता है और सुख-दुख से अप्रभावित होकर समभाव ( उपेक्खा ) की भावना विकसित होती है। इसे उपेक्षा संबोज्झंग कहते हैं ।
इस ध्यान का अभ्यास करते समय, व्यक्ति को निम्नलिखित चार तरीकों से इन कारकों में से प्रत्येक पर चिंतन करना चाहिए:
स्वयं में ज्ञानोदय (बोझ्झंग) के कारक की उपस्थिति को जानना, जब वह उपस्थित हो;
ज्ञानोदय के किसी कारक (बोज्झंग) की अनुपस्थिति को जानना, जब वह अनुपस्थित हो;
यह जानना कि स्वयं में अनुपस्थित होने पर भी ज्ञानोदय के कारक को कैसे विकसित किया जा सकता है,
यह जानना कि स्वयं में उत्पन्न ज्ञानोदय के कारक को और कैसे विकसित किया जा सकता है।
इस प्रकार चिंतन करने से उन सात कारकों को विकसित करना संभव होगा जो व्यक्ति को निर्वाण प्राप्त करने में सहायता करते हैं।
sacca parighaha : इसका अर्थ है चार आर्य सत्यों से संबंधित तथ्यों की अनुभूति, अर्थात्:
दुःख
समुदाय
निरोध , और
मग्गा ।
दुःख : दुःख का सत्यः बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, संपूर्ण संसार, जो परिवर्तनशील अवस्था में है, दुःख से भरा हुआ है। बुद्ध ने दुःख को समाप्त करने का मार्ग दिखाया है। दुःख को बारह तरीकों से समझाया जा सकता है।
जन्म दुखदायी है ( जाति );
बुढ़ापा कष्टदायी होता है ( जरा );

मृत्यु कष्ट है ( मरण );
दुःख पीड़ा है ( सोका );
विलाप करना पीड़ा है ( परिदेव );
शारीरिक पीड़ा कष्ट है ( दुक्खा );
मानसिक पीड़ा कष्ट ( डोमानास्सा ) है;
परिश्रमपूर्ण परिश्रम कष्टदायी होता है ( उपायस );
अप्रिय व्यक्तियों और परिस्थितियों के साथ संगति कष्टदायी होती है ( अप्पियेहिसंपयोग );
प्रियजनों और सुखद परिस्थितियों से वियोग दुखदायी होता है ( पियेहिविप्पायोग );
मनचाही चीज न मिलना दुख का कारण है ( yampiccam nalabhati tampi dukkaṃ );
संक्षेप में, आसक्ति के पाँच समूह दुख हैं ( samkhittena pañcupādānakkhandhā dukkhā )।
दुःख की अवधारणा को सात पहलुओं से भी देखा जा सकता है, जैसे:
शारीरिक पीड़ा (दुक्खा) से उत्पन्न कष्ट
परिवर्तन से उत्पन्न पीड़ा ( विपरिनामदुक्खा ),
सशर्त अवस्थाओं के उत्पन्न होने और समाप्त होने से उत्पन्न होने वाला कष्ट ( समखतादुक्खा ),
शारीरिक और मानसिक रोगों से उत्पन्न होने वाला कष्ट, लेकिन जिसका कारण अज्ञात हो ( पटिच्चन्नदुक्खा )।
विभिन्न परीक्षाओं और कष्टों से उत्पन्न होने वाला दुख, जिसके उत्पन्न होने के कारण स्पष्ट हों ( अप्पटिच्चन्न दुःख )।
दुःख-दुःख ( परियादुःख ) के अलावा अन्य सभी प्रकार के दुःखों से उत्पन्न दुःख , और
शारीरिक और मानसिक पीड़ा को दुक्ख-दुक्खा ( निप्पारिया दुक्खा ) कहा जाता है।
अतः दुख का विभिन्न पहलुओं से चिंतन करना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए कि यह कारण और परिणाम से उत्पन्न होने वाली अवस्था है। इस प्रकार दुख के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए।
समुदय : दुख की उत्पत्ति का सत्य: इससे तात्पर्य लालसा से है, जो समस्त दुखों का मूल कारण है।
यह मुख्यतः तीन प्रकार का है:
काम (सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति),
भाव (निरंतरता और विकास के प्रति आसक्ति), और
विभाव (इस विचार से आसक्ति कि कोई निरंतरता और विकास नहीं है)।
इस लालसा को विभिन्न इंद्रिय-विषयों के संबंध में आगे वर्गीकृत किया गया है:
रूपा तन्हा (रूप की लालसा),
sadda taṇhā (ध्वनि की लालसा),
गंध तन्हा (गंध की लालसा),
रस तन्हा (स्वाद की लालसा),
poṭṭhabba taṇhā (संपर्क की लालसा), और
धम्म तन्हा (मानसिक विषयों की लालसा)।
निरोध : दुखों के निवारण का सत्य: इसका अर्थ है सभी दोषों के निवारण से प्राप्त होने वाली निर्वाण की सर्वोच्च अवस्था।
यह दो प्रकार का है, अर्थात्:
निर्वाण प्राप्त करना और जीवन जीना जारी रखना ( सोपादिसेसा निर्वाण ), और
मृत्यु के समय निर्वाण प्राप्त करना ( निरुपादिस निर्वाण )।
मार्ग : निर्वाण प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग, श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग, मार्ग कहलाता है, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं :
सही समझ ( सम्मादिट्ठी );
सही विचार ( सम्मासंकप्पा );
सही वाणी ( सम्मावाचा );
सही कर्म ( सम्माकम्मन्त );
सही आजीविका ( सम्मा अजीव );
सही प्रयास ( सम्मावायमा );
सही जागरूकता ( सम्मासति );

सही एकाग्रता ( सम्मा समाधि )।
इनमें से प्रत्येक कारक को अलग-अलग रूप से लिया जाना चाहिए और उस पर विचार किया जाना चाहिए तथा व्यक्ति को रोजमर्रा की जिंदगी में सोच-समझकर उनका अभ्यास करने का प्रयास करना चाहिए।
व्यक्ति को अपने विचारों के प्रति सचेत रहना चाहिए और बुरे विचारों से छुटकारा पाने तथा सही समझ ( सम्मादिट्ठी ) का अभ्यास करके अच्छे विचारों ( सम्मा संकल्प ) को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए । फलस्वरूप, व्यक्ति अपने शरीर, वाणी और मन को संयमित कर सकता है और सही एकाग्रता ( सम्मा समाधि ) के माध्यम से मन को निर्वाण की प्राप्ति की ओर केंद्रित कर सकता है।
अब तक वर्णित इस चार प्रकार की सतिपट्ठान ध्यान विधि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विचारों को प्रारंभ से अंत तक बिना किसी रुकावट के एकाग्र करने पर जोर दिया जाता है। इस ध्यान का लगन से अभ्यास करने से व्यक्ति निर्वाण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

विशुद्धिमग्ग और अन्य महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथों के अनुसार, इस ध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लिए किसी विद्वान और श्रेष्ठ गुरु का साथ होना अनिवार्य है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे गुरु के अभाव में इस ध्यान का अभ्यास करने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति भटक सकता है।
सतिपट्ठाना ध्यान के विभिन्न भागों का दैनिक दिनचर्या में अभ्यास करने से व्यक्ति अपने जीवन को सफलतापूर्वक नियंत्रित और समायोजित कर सकेगा और इस प्रकार शांति और संतोष से भरा गृहस्थ जीवन जी सकेगा।
अहिंसा रतो : अहिंसा में आनंद लेना, करुणा का अभ्यास करने में विशेष आनंद लेना। बुद्ध की शिक्षाओं की एक विशेष विशेषता यह है कि उनमें सभी प्राणियों के प्रति दयालु होने की आवश्यकता को केंद्रीय स्थान दिया गया है। करुणा ( मेट्टा) , जिसका अभ्यास अहिंसा को सुनिश्चित करता है, पर बुद्ध ने विस्तार से चर्चा की है।
राहुल को उपदेश देते हुए बुद्ध ने कहा: हे राहुल, प्रेम और करुणा का ध्यान करो; क्योंकि प्रेम और करुणा का अभ्यास करने से द्वेष दूर हो जाता है। हे राहुल, करुणा का ध्यान करो; क्योंकि करुणा और क्रूरता का अभ्यास करने से नुकसान और क्रूरता दूर हो जाती है।
इससे स्पष्ट है कि मैत्री और करुणा क्रमशः दुर्भावना और क्रूरता के बिल्कुल विपरीत हैं। दुर्भावना या घृणा, इंद्रिय-इच्छा (वासना) की तरह, इंद्रियों द्वारा इंद्रिय-विषयों के संपर्क में आने से उत्पन्न होती है। जब किसी व्यक्ति की आँख किसी दृश्य वस्तु के संपर्क में आती है, जो उसकी सोच के अनुसार अप्रिय और अवांछनीय है, तो यदि वह व्यवस्थित और विवेकपूर्ण ध्यान का प्रयोग नहीं करता है, तो घृणा उत्पन्न होती है। कान और ध्वनि, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, मन और मानसिक विषयों के साथ भी ऐसा ही होता है। यहाँ तक कि सुखद वस्तुएँ, चाहे सजीव हों या निर्जीव, जो मनुष्य को अत्यधिक आनंद प्रदान करती हैं, भी अरुचि और दुर्भावना का कारण बन सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति को रिझा सकता है जिससे वह प्रेम करता है और कामुक स्नेह के विचार मन में रखता है, लेकिन यदि प्रिय व्यक्ति वही स्नेह नहीं दिखाता है या अपेक्षा के बिल्कुल विपरीत व्यवहार करता है, तो संघर्ष और आक्रोश उत्पन्न होता है। यदि वह तब व्यवस्थित ध्यान का प्रयोग करने में विफल रहता है, यदि वह विवेकपूर्ण नहीं है, तो वह मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर सकता है, और उसका व्यवहार विपत्ति, यहाँ तक कि हत्या या आत्महत्या का कारण भी बन सकता है। इन भावनाओं का खतरा इतना अधिक है कि इन्हें करुणा के द्वारा वश में करना ही पड़ेगा ।
मैत्री : बौद्धों में एक प्रचलित शब्द है, फिर भी कोई भी अंग्रेजी शब्द इसके सटीक अर्थ को व्यक्त नहीं कर पाता। मित्रता, परोपकार, सद्भावना, सार्वभौमिक प्रेम, दयालुता इसके पसंदीदा अर्थ हैं। मैत्री सभी प्राणियों के कल्याण और सुख की कामना है, बिना किसी बंधन के। इसमें एक परोपकारी मित्र के गुण होते हैं। इसका प्रत्यक्ष शत्रु द्वेष (घृणा) है, जबकि अप्रत्यक्ष या छिपा हुआ शत्रु कामुक प्रेम या स्वार्थी स्नेहपूर्ण इच्छा ( पेमा , संस्कृत: पेमा ) है, जो मैत्री से बिल्कुल भिन्न है । मैत्री के वेश में कामुक प्रेम स्वयं को और दूसरों को बहुत हानि पहुँचा सकता है। इस छिपे हुए शत्रु से सावधान रहना आवश्यक है। अक्सर लोग कामुक भावनाओं के विचार मन में लाते हैं और इसे वास्तविक मैत्री समझकर सोचते हैं कि वे मैत्री का अभ्यास कर रहे हैं , और उन्हें यह पता नहीं होता कि वे गलत रास्ते पर हैं। यदि कोई निष्पक्ष होकर ऐसे विचारों का विश्लेषण करे तो उसे यह अहसास होगा कि उनमें इंद्रिय-संबंधी आसक्ति का अंश है। यदि प्रेम की भावना आसक्ति और लगाव का प्रत्यक्ष परिणाम है, तो वास्तव में वह प्रेम नहीं है ।
शारीरिक प्रेम या पेमा एक प्रकार की लालसा है जो अत्यधिक पीड़ा, शोक और विलाप उत्पन्न करने में सक्षम है। बुद्ध ने अपने प्रवचनों में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझाया है, और धम्मपद के सोलहवें अध्याय के पाँच श्लोक स्नेह पर इस प्रकार बल देते हैं:
प्रिय वस्तु से ही दु:ख उत्पन्न होता है।
प्रिय वस्तु से ही भय उत्पन्न होता है।
जो अपने प्रेम से मुक्त है
कोई दु:ख नहीं है, इसलिए कोई भय भी नहीं है।
स्नेह से ही दु:ख उत्पन्न होता है...

आसक्ति से ही दुःख उत्पन्न होता है...
कामवासना से दुःख उत्पन्न होता है...
लालसा से ही दुःख उत्पन्न होता है...
जैसा कि सर्वविदित है, किसी से प्रेम करने का अर्थ है उससे लगाव विकसित करना, और जब वह भी आपसे उतना ही प्रेम करता है तो एक बंधन बनता है। परन्तु जब आप वियोग में पड़ जाते हैं या जब प्रियजन का स्नेह क्षीण हो जाता है, तो आप दुखी हो जाते हैं और यहाँ तक कि मूर्खतापूर्ण व्यवहार भी कर सकते हैं। दुख के महान सत्य को प्रतिपादित करते हुए बुद्ध कहते हैं: अप्रिय के साथ संगति दुखदायी है, प्रिय से वियोग दुखदायी है, इच्छा की प्राप्ति न होना दुखदायी है... परन्तु मेत्ता मनुष्य की एक अत्यंत शुद्ध, उदात्त अवस्था है, पारे की तरह यह किसी से भी आसक्त नहीं हो सकती। यह गुणों में एक शांत, गैर-आक्रामक, अति-विलायक है।
किसी व्यक्ति से निःसंवेदन, बिना किसी आसक्ति, बिना स्वार्थ, बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करना कठिन है; क्योंकि मनुष्य में 'मैं' की भावना प्रबल होती है। बिना किसी भेद के, बिना किसी के बीच बंधन बनाए, सभी को भाई-बहन मानकर असीम प्रेम करना लगभग असंभव प्रतीत हो सकता है, लेकिन जो थोड़ा सा भी प्रयास करते हैं, उन्हें फल अवश्य मिलता है; यह प्रयास सार्थक है। निरंतर प्रयास और दृढ़ संकल्प से ही व्यक्ति चरणबद्ध तरीके से अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।
दयालुता का अभ्यास करने वाले व्यक्ति को स्वार्थी और निर्दयी लोगों से सावधान रहना चाहिए। अक्सर ऐसा होता है कि जब कोई व्यक्ति विनम्र और ईमानदार होता है, तो दूसरे लोग उसके अच्छे गुणों का अपने स्वार्थ के लिए फायदा उठाने की कोशिश करते हैं। इसे बढ़ावा नहीं देना चाहिए। यदि कोई स्वार्थी लोगों को अपनी दयालुता और सहनशीलता का अनुचित उपयोग करने देता है , तो इससे समाज की बुराइयाँ और दुख कम होने के बजाय और बढ़ जाते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 302

---

(धम्मपद 296 से 301) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 302 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 303)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 302 - वज्जिपुत्तकभिक्खु वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
दुप्पब्बाज्जम दुराभिरामम
दुरावसा घरा दुःख
dukkho' samanasamvaso
dukkhanupatitaddhagu
tasma na caddhagu siya
na ca dukkhanupatito siya.

---

श्लोक 302 : भिक्षु बनना कठिन है; भिक्षु साधना में सुख पाना कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना कष्टदायी है। संसार में भटकने वाला निरंतर दुःख का शिकार होता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो; बार-बार दुःख का शिकार होने वाले मत बनो।

---

वज्जियों के देश के भिक्षु की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (302) का उच्चारण किया, जो कि वज्जी देश के एक शहर वैशाली के एक भिक्षु के संदर्भ में था।

कत्तिका पूर्णिमा की रात को वैशाली नगर के लोगों ने नक्षत्रों का त्योहार (नक्खत्त) बड़े धूमधाम से मनाया। पूरा नगर रोशनी से जगमगा रहा था और लोग गीत-नाच-नाच कर खूब आनंद मना रहे थे। मठ में अकेले खड़े भिक्षु ने नगर की ओर देखा तो उन्हें अकेलापन और अपनी स्थिति से असंतुष्टि महसूस हुई। धीरे से उन्होंने मन ही मन कहा, "मेरी स्थिति से बदतर किसी की नहीं हो सकती।" उसी क्षण वन का रक्षक उनके सामने प्रकट हुआ और बोला, "निरय (नरक) में रहने वाले प्राणी देवलोक में रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य वन में अकेले रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं।" ये शब्द सुनकर भिक्षु को उनकी सत्यता का अहसास हुआ और उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने भिक्षु की स्थिति को इतना कम क्यों समझा था।

अगले दिन सुबह-सुबह भिक्षु बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। जवाब में बुद्ध ने उसे सभी प्राणियों के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 302 : भिक्षु बनना कठिन है; भिक्षु साधना में सुख पाना कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना कष्टदायी है। संसार में भटकने वाला निरंतर दुःख का शिकार होता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो; बार-बार दुःख का शिकार होने वाले मत बनो।

---

प्रवचन के अंत में भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

वज्जियों के देश के भिक्षु की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने वज्जी देश के एक शहर वैशाली के एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

कत्तिका माह की पूर्णिमा की रात को वैशाली नगर के लोगों ने नक्षत्रों का त्योहार ( नक्खत्त ) बड़े धूमधाम से मनाया। पूरा नगर रोशनी से जगमगा रहा था और लोग गीत-नाच-नाच कर खूब मौज-मस्ती कर रहे थे। मठ में अकेले खड़े भिक्षु ने नगर की ओर देखा तो उन्हें अकेलापन और अपनी स्थिति से असंतुष्टि महसूस हुई। धीरे से उन्होंने मन ही मन कहा, "मुझसे बदतर स्थिति किसी की नहीं हो सकती।" उसी क्षण वनों के रक्षक देवता उनके सामने प्रकट हुए और बोले, " निरय लोक में रहने वाले प्राणी देवलोक में रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य वनों में अकेले रहने वालों की स्थिति से ईर्ष्या करते हैं।" ये शब्द सुनकर भिक्षु को उनकी सत्यता का अहसास हुआ और उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने भिक्षु की स्थिति को इतना कम क्यों समझा था।

अगले दिन सुबह-सुबह भिक्षु बुद्ध के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। जवाब में बुद्ध ने उसे सभी प्राणियों के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताया। फिर बुद्ध ने यह श्लोक कहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 302)

दुप्पबज्जं दुरभिरामं घरा दुरवासा
दुक्खा असामानसंवासो दुक्खो अद्धगु
दुक्खानुपतितो तस्मा अद्धगु न च सिया

dukkhānupatito na ca siyā duppabbajjaṃ [ duppabbajja ]: संन्यासी जीवन कठिन है; durabhiramaṃ [ durabhirama ]: उस जीवन में आनंद लेना कठिन है; gharā : गृहस्थी; durāvāsā : उनमें रहना कठिन है; dukkhā : कष्टदायक; asamānasamvāso [ asamānasamvāsa ]: निराशावादी विचारों वाले लोगों के साथ रहना; dukkho [ dukkha ]: कष्टदायक है; addhagū : संसार के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति ; dukkhānupatito [ dukkhānupatita ]: कष्टों से ग्रस्त रहता है; tasmā : इसलिए; addhagū : संसार का यात्री; na ca siyā : ऐसा नहीं बनना चाहिए; दुःखानुपतितो [ दुःखानुपतिता ]: दुःख से ग्रस्त व्यक्ति; ना च सिया : दुःख से ग्रस्त व्यक्ति नहीं होना चाहिए

संन्यासी बनना कठिन है; संन्यासी जीवन में सुख पाना भी कठिन है। गृहस्थ जीवन कष्टदायी होता है; भिन्न स्वभाव के लोगों के साथ रहना भी कष्टदायी होता है। संसार में भटकने वाला व्यक्ति निरंतर दुःख से ग्रस्त रहता है; इसलिए संसार में भटकने वाले मत बनो ; दुःख से बार-बार ग्रस्त होने वाले मत बनो ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 302)

संसार : पुनर्जन्म का चक्र, शाब्दिक अर्थ: निरंतर भटकना। संसार वह नाम है जिससे जीवन के सागर को दर्शाया जाता है, जो निरंतर ऊपर-नीचे होता रहता है, और जन्म लेने, वृद्ध होने, दुख भोगने और मृत्यु के इस निरंतर चक्र का प्रतीक है। अधिक सटीक रूप से कहें

तो, संसार पंच-खंड संयोजनों की अटूट श्रृंखला है , जो पल-पल बदलती रहती है और अनंत काल तक एक के बाद एक चलती रहती है। इस संसार का एक जीवनकाल मात्र एक छोटा और क्षणभंगुर अंश है; इसलिए सार्वभौमिक दुख के प्रथम महान सत्य को समझने के लिए, व्यक्ति को संसार पर , पुनर्जन्मों की इस भयावह श्रृंखला पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, न कि केवल एक जीवनकाल पर, जो निश्चित रूप से कभी-कभी कम पीड़ादायक हो सकता है।
बुद्ध ने कहा: हे भिक्षुओं, यह निरंतर चक्र ( संसार ) का कोई प्रत्यक्ष अंत नहीं है, और अज्ञान ( अविज्जा ) में डूबे और प्यास (इच्छा, तन्हा ) के बंधनों में जकड़े प्राणियों के भटकने और इधर-उधर भागने का पहला आरंभ प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता...
और आगे, जीवन की निरंतरता का मुख्य कारण अज्ञान है, इस विषय पर बुद्ध ने कहा: अज्ञान ( अविज्जा ) की पहली शुरुआत को इस तरह से नहीं समझा जाना चाहिए कि यह मान लिया जाए कि एक निश्चित बिंदु के बाद कोई अज्ञान नहीं था।
इसलिए, यह कहना संभव नहीं है कि एक निश्चित बिंदु से परे जीवन का अस्तित्व ही नहीं था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 303

———————————————————————————

(धम्मपद 302) <<<< पिछला || धम्मपद 303 || अगला >>>> (धम्मपद 304)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 303 - चित्तागहापति वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Saddho silena sampanno
yaso bhogasamappito
यम यम पदेसम भजाति
tattha tattheva pujito.

———————————————————————————

श्लोक 303 : जो व्यक्ति विश्वास और सद्‌गुण से परिपूर्ण है, और प्रसिद्धि और धन से भी संपन्न है, वह जहाँ भी जाता है, आदरपूर्वक उसका सम्मान किया जाता है।

———————————————————————————

गृहस्थ चित्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने मच्चिकासंडा नगर के गृहस्थ चित्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (303) कहा।
चित्त ने पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनकर अनागामी मार्ग और फल की प्राप्ति की। एक दिन चित्त ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए पाँच सौ रथों में भोजन और अन्य भेंट लादकर तीन हजार अनुयायियों के साथ सावत्थी के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने प्रतिदिन एक योजन की यात्रा की और एक महीने के अंत में सावत्थी पहुँचे। तब चित्त अपने पाँच सौ साथियों के साथ जेतवन मठ की ओर चल पड़े। जब वे बुद्ध को प्रणाम कर रहे थे, तभी चमत्कारिक रूप से ऊपर से वर्षा की तरह फूलों की वर्षा हुई। चित्त पूरे एक महीने तक मठ में रहे, बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा भोजन देते रहे और अपने तीन हजार साथियों को भी भोजन कराते रहे। इस पूरे समय देव (देवदूत) उनके भोजन और अन्य भेंटों की आपूर्ति करते रहे।
अपनी वापसी यात्रा की पूर्व संध्या पर, चित्त ने अपने साथ लाई हुई सभी वस्तुओं को मठ के कमरों में बुद्ध को भेंट के रूप में रख दिया। तब देवताओं (देवदूतों) ने खाली रथों को विभिन्न प्रकार की अनमोल वस्तुओं से भर दिया। आदरणीय आनंद ने चित्त के धन को इस प्रकार बढ़ते हुए देखकर बुद्ध से पूछा, "आदरणीय! क्या चित्त को ये सभी धन केवल आपके पास आने पर ही प्राप्त होते हैं? क्या उन्हें कहीं और जाने पर भी इसी प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त होता है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, यह शिष्य आस्था और उदारता से परिपूर्ण

है; वह गुणी भी है और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका आदर होता है और उस पर धन की वर्षा होती है।”
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 303 : जो व्यक्ति विश्वास और सद्गुण से परिपूर्ण है, और प्रसिद्धि और धन से भी संपन्न है, वह जहाँ भी जाता है, आदरपूर्वक उसका सम्मान किया जाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गृहस्थ चित्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मच्चिकासन्द नगर के गृहस्थ चित्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
चित्त ने पूज्य सारिपुत्त द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनकर अनागामी मार्ग और फल की प्राप्ति की । एक दिन चित्त ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए पाँच सौ रथों में भोजन और अन्य भेंट लादकर तीन हजार अनुयायियों के साथ सावत्थी के लिए प्रस्थान किया। वे प्रतिदिन एक योजन (लीग) की गति से यात्रा करते हुए एक महीने के अंत में सावत्थी पहुँचे। तब चित्त अपने पाँच सौ साथियों के साथ जेतवन मठ की ओर चल पड़े। जब वे बुद्ध को प्रणाम कर रहे थे, तभी चमत्कारिक रूप से ऊपर से वर्षा की तरह फूलों की वर्षा हुई। चित्त पूरे एक महीने तक मठ में रहे, बुद्ध और भिक्षुओं को भिक्षा देते रहे और अपने तीन हजार साथियों को भी भोजन कराते रहे। इस पूरे समय देवता उनके भोजन और अन्य भेंटों की आपूर्ति करते रहे।
अपनी वापसी यात्रा की पूर्व संध्या पर, चित्त ने अपने साथ लाई हुई सभी वस्तुओं को मठ के कमरों में बुद्ध को भेंट के रूप में रख दिया। तब देवताओं ने खाली रथों को विभिन्न प्रकार की अनमोल वस्तुओं से भर दिया। पूज्य आनंद ने चित्त के धन को इस प्रकार बढ़ते हुए देखकर बुद्ध से पूछा, “पूज्यवर! क्या चित्त को ये सभी धन केवल आपके पास आने पर ही प्राप्त होते हैं? क्या उन्हें कहीं और जाने पर भी इसी प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त होता है?” बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, “आनंद, यह शिष्य आस्था और उदारता से परिपूर्ण है; वह गुणी भी है और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका आदर होता है और उस पर धन की वर्षा होती है।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 303)
साधो सिलेना संपन्नो यशोभोग समाप्पितो
यं यं पदेसं भजति तत्थ तथा एव पूजितो
साधो [ सद्ध ]: जो सर्मपित है; सिलेना : अनुशासन के साथ; संपन्नो [ संपन्ना ]: सुशोभित; यशोभोग समप्पितो [ समप्पिता ]: महिमा और धन से संपन्न; यं यं पदेसं [ पदेसा ]: जो भी स्थान हो; भजति : वह बार-बार आता है; तत्थ तत्थ एव : उन सभी स्थानों में; पूजितो [ पूजिता ]: वह पूजनीय है
जो व्यक्ति आस्था और सद्गुणों से परिपूर्ण हो, और साथ ही प्रसिद्धि और धन का भी स्वामी हो, वह जहाँ भी जाता है, आदर का पात्र बनता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 303)
श्रद्धा : विश्वास, आस्था। बौद्ध भिक्षु को आस्थावान तब कहा जाता है जब वह बुद्ध के ज्ञानोदय या तीन रत्नों ( तिरत्न ) में विश्वास रखता है और उनकी शरण लेता है । उसकी आस्था तर्कसंगत और समझ पर आधारित होनी चाहिए ; और उसे अपनी आस्था के विषय की जांच-पड़ताल करने के लिए कहा जाता है। बौद्ध की आस्था जिज्ञासा की भावना के विपरीत नहीं होती, और संदेह करने योग्य विषयों पर संदेह स्वीकार्य है तथा उनकी जांच को प्रोत्साहित किया जाता है। आस्था की क्षमता ( सद्धिन्द्रिय ) को ज्ञान की क्षमता ( पञ्ञिन्द्रिय , इंद्रिय-समत्त ) के साथ संतुलित किया जाना चाहिए। कहा जाता है: जो भिक्षु समझदार होता है , वह अपनी आस्था को उसी समझ के अनुसार स्थापित करता है। ज्ञान और समझ के माध्यम से, आस्था अपने अनुभव पर आधारित एक आंतरिक निश्चितता और दृढ़ विश्वास बन जाती है।
विश्वास को सभी स्वस्थ अवस्थाओं का बीज कहा जाता है क्योंकि, टीकात्मक व्याख्याओं के अनुसार, यह मन को आत्मविश्वास ( ओकप्पना , पसादा ) और दृढ़ संकल्प ( अधिमोक्खा ) से प्रेरित करता है, ताकि संसार के सैलाब को पार करने के लिए आगे बढ़ा जा सके ।
पवित्रता के प्रथम चरण, धारा-प्रवेश ( सोतापत्ति , अरियापुग्गला ) तक पहुँचने पर अविचल विश्वास प्राप्त होता है, जब तीन रत्नों में संशयपूर्ण संदेह ( विसीकिच्चा ) का बंधन धारा-विजेता ( सोतापन्नसस अंगानि ) के विशिष्ट गुणों में से एक होता है।
आस्था एक मानसिक तत्व है, जो सभी कर्मिक रूप से सद्गुणों और उनसे संबंधित तटस्थ चेतना में विद्यमान है। यह पुण्य के चार स्रोतों ( पुण्णाधारो ) में से एक है, पाँच आध्यात्मिक शक्तियों ( इन्द्रिय ) में से एक है, आध्यात्मिक शक्तियों ( बल ) में से एक है, प्रयास के तत्वों ( पधानियंग ) में से एक है और सात रत्नों ( धन ) में से एक है।

---

(धम्मपद 303) <<<< पिछला || धम्मपद 304 || अगला >>>> (धम्मपद 305)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 304 - कुलसुभद्दा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Dure santo pakasenti
हिमवंतोवा पब्बाटो
asantettha na dissanti
rattim khitta yatha sara.

---

श्लोक 304 : हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में चलाए गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

---

चुलसुभद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने अनाथपिंडिका की पुत्री चुलसुभद्दा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (304) कहा।

अनाथपिंडिका और उगा के धनी उगा, दोनों ने बचपन में एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की। उगा का एक पुत्र और अनाथपिंडिका की एक पुत्री थी। जब उनके बच्चे बड़े हुए, तो उगा ने अनाथपिंडिका से अपने दोनों बच्चों के विवाह के लिए सहमति मांगी। विवाह संपन्न हुआ और अनाथपिंडिका की पुत्री चुलसुभद्दी को अपने सास-ससुर के घर में रहना पड़ा। उगा और उनका परिवार गैर-बौद्ध तपस्वियों के अनुयायी थे। कभी-कभी वे उन गैर-बौद्ध तपस्वियों को अपने घर आमंत्रित करते थे। ऐसे अवसरों पर, चुलसुभद्दी के सास-ससुर उनसे उन नग्न तपस्वियों को प्रणाम करने के लिए कहते थे, लेकिन वह हमेशा ऐसा करने से इनकार कर देती थीं। इसके बजाय, वह अपनी सास को बुद्ध और उनके अद्वितीय गुणों के बारे में बताती थीं।

चुलसुभद्दा की सास, जब उनकी बहू ने उन्हें बुद्ध के बारे में बताया, तो उनके दर्शन के लिए बहुत उत्सुक थीं। उन्होंने चुलसुभद्दा को बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने की अनुमति भी दे दी। इसलिए, चुलसुभद्दा ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए भोजन तैयार किया और अन्य भेंटें एकत्र कीं। फिर वे घर के ऊपरी भाग में गईं और जेतवन मठ की ओर देखते हुए, उन्होंने फूल और अगरबत्ती अर्पित की और बुद्ध के अद्वितीय गुणों और सद्गुणों का चिंतन किया। फिर उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की, "आदरणीय गुरुदेव! कृपया आप अपने शिष्यों के साथ कल हमारे घर आएँ। मैं, आपकी समर्पित गृहस्थ शिष्या, आपको अत्यंत आदरपूर्वक आमंत्रित करती हूँ। कृपया इस संकेत और हावभाव से मेरा यह निमंत्रण आपको ज्ञात हो जाए।" फिर उन्होंने आठ मुट्ठी चमेली लीं और उन्हें आकाश में उछाल दिया। फूल हवा में तैरते हुए जेतवन मठ तक पहुँचे और उस सभा-महल की छत से लटक गए जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे।

प्रवचन के अंत में, चुलसुभद्दा के पिता अनाथपिंडिका ने बुद्ध के पास आकर उन्हें अगले दिन अपने घर में भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। लेकिन बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होंने चुलसुभद्दा का निमंत्रण अगले दिन के लिए पहले ही स्वीकार कर लिया है।

बुद्ध के उत्तर से अनाथपिंडिका व्याकुल हो गए और बोले, "परन्तु, पूज्यवर! चुलसुभद्दा यहाँ श्रावस्ती में नहीं रहतीं; वे यहाँ से एक सौ बीस योजन दूर उगा में रहती हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, यह सत्य है, परन्तु अच्छे लोग भले ही दूर रहते हों, वे प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित प्रतीत होते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 304 : हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में चलाए गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

———————————————————————————

अगले दिन बुद्ध चुलसुभद्द के ससुर उगा के घर आए। इस यात्रा में बुद्ध के साथ पाँच सौ भिक्षु भी थे; वे सभी देवों के राजा सक्का के आदेश से निर्मित अलंकृत नौकाओं में वायु के मार्ग से आए थे। बुद्ध को उनकी वैभवशाली और तेजस्वी अवस्था में देखकर चुलसुभद्द के ससुर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया। इसके बाद, अगले सात दिनों तक उगा और उनके परिवार ने बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी और अन्य भेंटें अर्पित कीं।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चूलसुभद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने अनाथपिंडिक की पुत्री चूलसुभद्दा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अनाथपिंडिका और उगा के धनी उगा, दोनों ने युवावस्था में एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की। उगा का एक पुत्र और अनाथपिंडिका की एक पुत्री हुई। जब उनके बच्चे वयस्क हुए, तो उगा ने अनाथपिंडिका से अपने दोनों बच्चों के विवाह के लिए सहमति मांगी। विवाह संपन्न हुआ और अनाथपिंडिका की पुत्री चूलसुभद्दा को अपने सास-ससुर के घर में रहना पड़ा। उगा और उनका परिवार गैर-बौद्ध तपस्वियों के अनुयायी थे। कभी-कभी वे उन गैर-बौद्ध तपस्वियों को अपने घर आमंत्रित करते थे। ऐसे अवसरों पर, चूलसुभद्दा को उन नग्न तपस्वियों को प्रणाम करने के लिए कहा जाता था, लेकिन वह हमेशा ऐसा करने से इनकार कर देती थी। इसके बजाय, वह अपनी सास को बुद्ध और उनके अद्वितीय गुणों के बारे में बताती थी।

चूलसुभद्दा की सास, जब उनकी बहू ने उन्हें बुद्ध के बारे में बताया, तो उनके दर्शन के लिए बहुत उत्सुक थीं। उन्होंने चूलसुभद्दा को बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने की अनुमति भी दे दी। चूलसुभद्दा ने बुद्ध और उनके शिष्यों के लिए भोजन तैयार किया और अन्य भेंटें एकत्र कीं। फिर वे घर के ऊपरी भाग में गईं और जेतवन मठ की ओर देखते हुए, उन्होंने फूल और अगरबत्ती अर्पित की और बुद्ध के अद्वितीय गुणों और सद्गुणों का चिंतन किया। इसके बाद उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की, "आदरणीय! कृपया कल अपने शिष्यों के साथ हमारे घर आइए। मैं, आपकी समर्पित गृहस्थ शिष्या, आपको अत्यंत आदरपूर्वक आमंत्रित करती हूँ। मेरी यह निमंत्रण इस प्रतीक और हावभाव से आपको ज्ञात हो जाए।" फिर उन्होंने चमेली के आठ मुट्ठी भर फूल लिए और उन्हें आकाश में उछाल दिया। फूल हवा में तैरते हुए जेतवन मठ तक पहुँचे और उस सभा कक्ष की छत से लटकने लगे जहाँ बुद्ध धर्म का उपदेश दे रहे थे।

प्रवचन के अंत में, चूलसुभद्दा के पिता अनाथपिंडिक, बुद्ध के पास अगले दिन अपने घर में भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करने आए। लेकिन बुद्ध ने उत्तर दिया कि उन्होंने चूलसुभद्दा का निमंत्रण अगले दिन के लिए पहले ही स्वीकार कर लिया है। बुद्ध के इस उत्तर से अनाथपिंडिक व्याकुल हो गए और बोले, "परन्तु पूज्यवर! चूलसुभद्दा यहाँ सावत्थी में नहीं रहतीं; वे यहाँ से एक सौ बीस योजन दूर उगा में रहती हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, यह सत्य है, परन्तु भले ही अच्छे लोग दूर रहते हों, वे प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित प्रतीत होते हैं।"

अगले दिन बुद्ध चूलसुभद्दा के ससुर उगा के घर आए। इस यात्रा में बुद्ध के साथ कई भिक्षु भी थे; वे सभी देवों के राजा सक्का के आदेश से निर्मित अलंकृत नौकाओं में वायु के मार्ग से आए थे। बुद्ध को उनकी वैभवशाली और तेजस्वी अवस्था में देखकर चूलसुभद्दा के ससुर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया। इसके बाद, अगले सात दिनों तक उगा और उनके परिवार ने बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी और अन्य भेंटें अर्पित कीं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 304)

संतो दुरे हिमवंतो पब्बतो वा पकासेन्ति

एत्था असन्तो रत्ती खित्ता सारा यथा न दिसंति

संतो [ santa ]: दबे हुए लोग; दूरे : दूर से भी; हिमवंतो पब्बतो इवा : बर्फीले पहाड़ की चोटी की तरह; पकासेन्ति : स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं; एत्था : इस दुनिया में; असन्तो [ asanta ]: अनुशासनहीन व्यक्ति; रत्ती खिट्टा : अंधेरे में तीर से मारे गए; सर यथा : तीरों की तरह; न दिसन्ती : दिखाई नहीं देते

हिमालय की तरह, अच्छे लोग दूर से भी दिखाई देते हैं; रात में छोड़े गए तीरों की तरह, दुष्ट लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 304)

संतो ; असंतो : शांत और अनुशासनहीन। इसके अनुसार, अच्छे संत लोग हिमालय की तरह दूर से दिखाई देते हैं। दुष्ट लोग अंधेरे में छोड़े गए तीरों की तरह अदृश्य होते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 305

---

(धम्मपद 304) <<<< पिछला || धम्मपद 305 || अगला >>>> (धम्मपद 306)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 305 - एकविहारित्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

एकासनम एकसेय्यम
eko caramatandito
एको दमायमत्तनम
vanante ramito siya.

---

श्लोक 305 : जो अकेला बैठता है, अकेला लेटता है, अकेला चलता है (1), लगन से अभ्यास करता है, और अकेले ही खुद को वश में करता है, उसे जंगल में रहने में आनंद मिलेगा।

---

1. ये सभी मुद्राएँ अंतर्दृष्टि विकास की साधना से जुड़ी हैं।

---

एकांतप्रिय चिकित्सक की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (305) का उच्चारण एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में किया जो एकांतवास में रहता था। क्योंकि वह आमतौर पर एकांतवास में रहता था, इसलिए उसे थेरा एकाविहारी के नाम से जाना जाता था।

थेरा एकविहारी अन्य भिक्षुओं के साथ ज्यादा मेलजोल नहीं रखते थे, बल्कि आमतौर पर अकेले ही रहते थे। वे अकेले ही सोते, लेटते, खड़े होते या चलते रहते थे। अन्य भिक्षुओं को एकविहारी अच्छे नहीं लगते थे और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। लेकिन बुद्ध ने उन्हें दोष नहीं दिया; बल्कि उन्होंने कहा, "जी हां, मेरे पुत्र ने अच्छा किया है; क्योंकि एक भिक्षु को एकांत और एकांत में ही रहना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 305 : जो अकेला बैठता है, अकेला लेटता है, अकेला चलता है, लगन से अभ्यास करता है और अकेले ही खुद को वश में करता है, उसे जंगल में रहने में आनंद मिलेगा।

---

अध्याय इक्कीस का अंत: विविध

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो एकांत में रहा

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक एकाकी भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। चूंकि वे आमतौर पर अकेले रहते थे, इसलिए उन्हें पूज्य एकाविहारी के नाम से जाना जाता था।

आदरणीय एकविहारी अन्य भिक्षुओं के साथ अधिक मेलजोल नहीं रखते थे, बल्कि आमतौर पर अकेले ही रहते थे। वे अकेले ही सोते, लेटते, खड़े होते या चलते रहते थे। अन्य भिक्षुओं को एकविहारी के बारे में बुरा लगता था और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। लेकिन बुद्ध ने उन्हें दोष नहीं दिया। इसके बजाय, उन्होंने कहा, "जी हाँ, मेरे 'पुत्र' ने अच्छा किया है; क्योंकि एक भिक्षु को एकांत और एकांत में ही रहना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 305)

एको अत्तनं दमयं एकासनं एकसेयं

अतंदितो एको कैरम वनंते रमितो सिया

एको : वह, बिल्कुल अकेला; अत्तानं दमयं [ दमया ]: स्वयं को अनुशासित करता है; एकासनं [ एकासन ]: बिल्कुल अकेला बैठता है; एकसेय्यां [ एकसेय्या ]: अकेले सोता है; अतंदितो [ अतंदित ]: आलस्य महसूस किए बिना; एको : बिल्कुल अकेला; चरम : घूमता है; वनन्ते : घने जंगल में; रमितो [ रमित ]: आनंद लेता है

जो व्यक्ति अकेले बैठता है, अकेले लेटता है, अकेले चलता है, लगन से अभ्यास करता है और अकेले ही स्वयं को वश में करता है, उसे जंगल में रहने का आनंद मिलेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 305)

वनन्ते रामितो : वन में आनंद लेने वाला। यह श्लोक बुद्ध ने वनवास में आनंद लेने वाले भिक्षु के गुणों की प्रशंसा करने के लिए कहा था। इस प्रकार ध्यानमग्न भिक्षु के लिए वन के विशेष गुणों का वर्णन किया गया है।

विनय ग्रंथ में दी गई व्याख्या के अनुसार , वन में गाँव और उसके परिसर के बाहर का सारा क्षेत्र समाहित होता है। अभिधम्म ग्रंथ कहता है कि गाँव की सीमा पार करने पर वन की शुरुआत होती है। परन्तु, सुत्तंत ग्रंथ की व्याख्या के अनुसार, तपस्या के संदर्भ में वनवास गाँव की सीमा से कम से कम पाँच सौ धनुष की दूरी पर स्थित होना चाहिए।

वन में रहने के निम्नलिखित लाभ हैं: वन में रहने वाला भिक्षु सहजता से ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर सकता है जो उसने अभी तक प्राप्त नहीं की है, या पहले से प्राप्त एकाग्रता को और विकसित कर सकता है। इसके अलावा, उसका गुरु उससे प्रसन्न होता है, जैसा कि बुद्ध ने कहा है: मैं नागिता भिक्षु के वनवास से प्रसन्न हूँ। वन में रहने वाले का मन अवांछित वस्तुओं से विचलित नहीं होता। नैतिक शुद्धता के आवश्यक गुण से पोषित होने के कारण, वन में रहते हुए वह उन भयों से भयभीत नहीं होता जो वचन, कर्म और विचार से अशुद्ध लोगों को होते हैं; यह भयभेरव सूत्र में कहा गया है : जीवन की सभी लालसाओं को त्यागकर, वह शांति और एकांत के आनंदमय सुख का अनुभव करता है।

विशुद्धि-मग्ग के शब्दों में :

एकांतप्रिय, उदासीन, एकांत में आनंद लेने वाला,

वनवास में रहने के कारण भिक्षु बुद्ध को अपना प्रिय बना लेता है।

जंगल में अकेले रहकर वह उस आनंद को प्राप्त करता है।

जिसका स्वाद इंद्र सहित अन्य देवता भी नहीं चखते।

केवल पंसुकूला को कवच के रूप में धारण करके और अन्य तपस्वी प्रतिज्ञाओं से सुसज्जित होकर वन युद्धक्षेत्र में प्रवेश करते हुए,

वह जल्द ही मारा और उसकी सेना पर विजय प्राप्त कर लेगा।

इसलिए बुद्धिमानों को वन जीवन का आनंद लेना चाहिए।

अध्याय 22. निरयवग्गा: नरक (306-319)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 306

————————————————————————

(धम्मपद 305) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 306 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 307)

————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 306 - सुंदरीपरिब्बिजिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Abhutavadi nirayam upeti
yo vapi katva na karomi caha
ubhopi te pecca sama bhavanti
nihinakamma manujaparattha.

---

श्लोक 306 : जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है, वह निरय (नरक) में जाता है; जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं की", वह भी निरय (नरक) में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में निरय (नरक) में एक समान कष्ट भोगते हैं।

---

घुमंतू स्त्री तपस्वी सुंदरी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (306) का उच्चारण सुंदरी नामक एक भ्रमणशील महिला तपस्वी के संदर्भ में किया।

जैसे-जैसे बुद्ध का आदर करने वालों की संख्या बढ़ती गई, गैर-बौद्ध तपस्वियों ने पाया कि उनके अनुयायियों की संख्या घटती जा रही है। इसलिए वे बुद्ध से बहुत ईर्ष्या करने लगे; उन्हें यह भी डर था कि यदि उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए कुछ नहीं किया तो स्थिति और बिगड़ जाएगी। अतः उन्होंने सुंदरी को बुलवाया और उससे कहा, "सुंदरी, तुम बहुत सुंदर और चतुर युवती हो। हम चाहते हैं कि तुम समना गौतम को शर्मिंदा करो, यह दिखाकर कि तुम्हारा उनके साथ यौन संबंध है। ऐसा करने से उनकी छवि धूमिल होगी, उनके अनुयायी कम होंगे और बहुत से लोग हमारे पास आएंगे। अपनी सुंदरता का भरपूर उपयोग करो और चतुराई से काम लो।"

सुंदरी समझ गई थी कि उससे क्या अपेक्षा की जा रही है। इसलिए, देर शाम को वह जेतवन मठ की ओर चल पड़ी। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं समना गौतम से मिलने जा रही हूँ; मैं उनके साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रहती हूँ।" यह कहकर वह गैर-बौद्ध तपस्वियों के स्थान की ओर चल पड़ी। अगले दिन सुबह तड़के वह घर लौट आई। यदि कोई उससे पूछता कि वह कहाँ से आई है, तो वह उत्तर देती, "मैं समना गौतम के साथ रात्रि बिताने के बाद सुगंधित कक्ष से आई हूँ।" वह दो दिन तक इसी तरह चलती रही। तीन दिन बीतने के बाद, उन तपस्वियों ने कुछ शराबी लोगों को सुंदरी की हत्या करने और उसके शरीर को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंकने के लिए भेजा।

अगले दिन, तपस्वियों ने परिब्बजिका सुंदरी के लापता होने की खबर फैलाई। वे राजा के पास यह मामला और अपना संदेह बताने गए। राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर, वे उसे महल ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, "हे राजा, गौतम के अनुयायियों ने इस परिब्बजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।" राजा ने उन्हें उत्तर दिया, "तो फिर, आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।" इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाते रहे, "देखो! गौतम के अनुयायियों ने क्या किया है; देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!" फिर जुलूस महल लौट आया। जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वे तपस्वी उनकी प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाने और उनकी छवि को धूमिल करने के लिए क्या कर रहे थे। लेकिन बुद्ध ने केवल इतना कहा, "मेरे पुत्रों, तुम उन्हें बस इतना ही बताओ," और फिर उन्होंने छंदों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 306 : जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है, वह निरय (नरक) में जाता है; जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं की", वह भी निरय (नरक) में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में निरय (नरक) में एक समान कष्ट भोगते हैं।

---

इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने तब गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया, और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने तब उन्हें आदेश दिया कि वे पूरे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करें। इसलिए वे पूरे शहर में घूमकर कहने लगे, "सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उन पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।" इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध की शक्ति, यश और सौभाग्य में बहुत वृद्धि हुई।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
घुमंतू महिला तपस्वी सुंदरी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक सुंदरी नामक एक भ्रमणशील महिला तपस्वी के संदर्भ में कहा था।
जैसे-जैसे बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखने वालों की संख्या बढ़ती गई, गैर-बौद्ध तपस्वियों ने देखा कि उनके अनुयायियों की संख्या घटती जा रही है। इसलिए वे बुद्ध से बहुत ईर्ष्या करने लगे; उन्हें यह भी डर था कि यदि उन्होंने बुद्ध की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए कुछ नहीं किया तो स्थिति और बिगड़ जाएगी। अतः उन्होंने सुंदरी को बुलवाया और उससे कहा, "सुंदरी, तुम बहुत सुंदर और चतुर युवती हो। हम चाहते हैं कि तुम समना गौतम को शर्मिंदा करो, यह दिखाकर कि तुम्हारा उनके साथ यौन संबंध है। ऐसा करने से उनकी छवि धूमिल होगी, उनके अनुयायी कम होंगे और बहुत से लोग हमारे पास आ जाएँगे। अपनी सुंदरता का भरपूर उपयोग करो और चतुराई से काम लो।"
सुंदरी समझ गई थी कि उससे क्या अपेक्षा की जा रही है। इसलिए, देर शाम को वह जेतवन मठ की ओर चल पड़ी। जब उससे पूछा गया कि वह कहाँ जा रही है, तो उसने उत्तर दिया, "मैं समना गौतम से मिलने जा रही हूँ; मैं उनके साथ जेतवन मठ के सुगंधित कक्ष में रहती हूँ।" यह कहकर वह गैर-बौद्ध तपस्वियों के स्थान की ओर चल पड़ी। अगले दिन सुबह तड़के वह घर लौट आई। यदि कोई उससे पूछता कि वह कहाँ से आई है, तो वह उत्तर देती, "मैं समना गौतम के साथ रात्रि बिताने के बाद सुगंधित कक्ष से आई हूँ।" वह दो और दिनों तक इसी तरह चलती रही। तीन दिन बीतने के बाद, उन तपस्वियों ने कुछ शराबी लोगों को सुंदरी की हत्या करने और उसके शरीर को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंकने के लिए भेजा।
अगले दिन, तपस्वियों ने परिब्बाजिका सुंदरी के लापता होने की खबर फैलाई। वे राजा के पास यह मामला और अपना संदेह बताने गए। राजा ने उन्हें इच्छानुसार खोज करने की अनुमति दी। जेतवन मठ के पास शव मिलने पर, वे उसे महल ले आए। फिर उन्होंने राजा से कहा, "हे राजा, गौतम के अनुयायियों ने परिब्बाजिका की हत्या कर दी है और अपने गुरु के कुकर्म को छिपाने के लिए उसके शव को जेतवन मठ के पास कूड़े के ढेर में फेंक दिया है।" राजा ने उत्तर दिया, "तो फिर आप पूरे शहर में घूमकर यह बात सबको बता दें।" इसलिए वे सुंदरी के शव को लेकर पूरे शहर में घूमते हुए चिल्लाते रहे, "देखो गौतम के अनुयायियों ने क्या किया है! देखो उन्होंने गौतम के कुकर्म को कैसे छिपाने की कोशिश की है!" फिर जुलूस महल लौट आया। जेतवन मठ में रहने वाले भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वे तपस्वी उनकी प्रतिष्ठा को धूमिल करने और उनकी छवि को धूमिल करने के लिए क्या कर रहे हैं। लेकिन बुद्ध ने केवल इतना कहा, "मेरे पुत्रों, तुम उन्हें बस इतना ही बता दो," और फिर उन्होंने छंदों में इस प्रकार कहा:
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 306)
भूतवादी निरायं उपेति पि च यो कत्वा न करोमि इति च अहा
निहिनकम्मा ते उभो मनुजा आपि पेक्का परत समा भवन्ति
अभूतवादी : जो झूठ बोलता है; अपि यो कत्वा : और जिसने पाप किए हैं; न करोमीति : कहेगा कि मैंने नहीं किया; आह : यदि वह ऐसा कहता है; निरयं उपेति : (वह) नरक में जाएगा; निहीनकम्मा : भ्रष्ट कर्मों का; ते उभो आपि मनुजा : ये दोनों प्रकार के व्यक्ति; पेच्च : इस लोक से विदा होकर; परत्थ : परलोक में; समा भवन्ति : एक समान हो जाते हैं। जो दूसरों के बारे में झूठ बोलता है वह नरक में जाता है ( निरय ); जिसने बुराई की है और कहता है "मैंने नहीं किया", वह भी नरक में जाता है। दोनों ही बुरे कर्म करने वाले हैं, इसलिए अगले जन्म में (नरक में) एक समान कष्ट भोगते हैं।
इसके बाद राजा ने अपने आदमियों को सुंदरी की हत्या की और जाँच करने का आदेश दिया। जाँच करने पर पता चला कि सुंदरी की हत्या कुछ शराबी लोगों ने की थी। इसलिए उन्हें राजा के पास लाया गया। पूछताछ करने पर शराबी लोगों ने बताया कि उन्हें तपस्वियों ने सुंदरी की हत्या करने और उसके शव को जेतवन मठ के पास रखने के लिए काम पर रखा था। राजा ने तब गैर-बौद्ध तपस्वियों को बुलवाया, और उन्होंने अंततः सुंदरी की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार कर ली। राजा ने तब उन्हें पूरे शहर में घूमकर लोगों के सामने अपना अपराध स्वीकार करने का आदेश दिया। इसलिए वे पूरे शहर में घूमकर कहने लगे, "सुंदरी की हत्या हमने की है। हमने गौतम को बदनाम करने के लिए उन पर झूठा आरोप लगाया है। गौतम के शिष्य निर्दोष हैं, केवल हम ही इस अपराध के दोषी हैं।" इस घटना के परिणामस्वरूप, बुद्ध की शक्ति, यश और सौभाग्य में बहुत वृद्धि हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 307

———————————————————————

(धम्मपद 306) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 307 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 308)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 307 - दुकारिताफलापिलिता वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
कसवकांथा बहवो
पापधम्मा असन्नता
papa papehi kammehi
nirayam te upapajjare.

---

श्लोक 307 : बहुत से पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं हैं, अपने बुरे कर्मों के कारण निरय/नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

---

उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा।
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कुछ पेटों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (307) कहा।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, थेरा लखाना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने कुछ पेटा देखे। मठ लौटने पर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में थेरा लखाना को बताया कि उन्होंने एक पेटा को देखा है जो केवल कंकाल मात्र था। फिर उन्होंने बताया कि उन्होंने पाँच भिक्षुओं को भी देखा है जिनके शरीर आग की लपटों में जल रहे थे। उन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, "कस्सपा बुद्ध के समय में, उन भिक्षुओं ने बहुत बुरे कर्म किए थे। उन बुरे कर्मों के कारण उन्हें निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा और अब वे पेटा के रूप में अपने शेष कष्टों को भोग रहे हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 307 : बहुत से पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं हैं, अपने बुरे कर्मों के कारण निरय/नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उन लोगों की कहानी जिन्होंने अपने बुरे कर्मों के कारण कष्ट भोगा।
वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कुछ प्रेतों (भूतों) के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पहाड़ी से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने कुछ भूत देखे। मठ लौटने पर पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में पूज्य लखन को बताया कि उन्होंने एक भूत देखा है जो केवल कंकाल था। उन्होंने आगे बताया कि उन्होंने पाँच भिक्षुओं को भी देखा है जिनके शरीर आग की लपटों में जल रहे थे। उन भिक्षुओं के बारे में सुनकर बुद्ध ने कहा, “कस्सपा बुद्ध के समय में उन भिक्षुओं ने बहुत बुरे कर्म किए थे। उन बुरे कर्मों के कारण उन्हें नरक में कष्ट भोगना पड़ा और अब वे भूतों के रूप में अपने शेष कष्ट भोग रहे हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 307)
कसावकंठ पापधम्म असंन्याता बहावो
ते पापा पापेहि कम्मेहि निरयं उपपज्जरे
कसावकंठ : उनके गले में भगवा वस्त्र के साथ; पापा धम्म : पापी पुरुष; असंन्याता : अनियंत्रित लोग; बहावो [ बहावा ]: अनेक हैं; ते पापा : ये पापी; पापेहि काम्मेहि : उनके पापपूर्ण कृत्यों के कारण; निरयं [ niraya ]: नरक में; उपपज्जरे : पैदा होते हैं
बहुत से ऐसे पुरुष जो गर्दन तक पीले वस्त्र धारण किए रहते हैं, जिनका स्वभाव दुष्ट होता है और जो विचार, वचन और कर्म में संयमित नहीं होते, अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में पुनर्जन्म लेते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 307)

इस कथा में पूज्य महा मोग्गलाना के एक साथी का उल्लेख है, जिनका नाम पूज्य लखन था। पूज्य महा मोग्गलाना के इस मित्र और साथी ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के युग में पुण्य कर्म किए। तब से उन्होंने बहुत पुण्य अर्जित किया और अंततः लखन नाम से ब्राह्मण के रूप में जन्म लिया। उनके अनुयायी उरुवेला काश्यप और उनके दो भाई गया और नदी थे। उनके धर्म परिवर्तन के बाद, वे भी बाद में अरहत बन गए। वे महा मोग्गलाना के मित्र और साथी थे। अपनी यात्रा के दौरान, उनका सामना गिज्जकूट पर्वत पर एक अमानवीय आत्मा से हुआ, जो विपत्ति (प्रेत लोक) की चार अवस्थाओं में से एक में थी ।

अन्य अवस्थाएँ नरक, पशु और राक्षस अवस्थाएँ थीं। उसका रूप कौवे जैसा था और वह ज्वालाएँ उगल रहा था। अपने कष्टों का कारण पूछे जाने पर उसने कहा कि एक समय वह रॉबिन पक्षी के परिवार में एक पक्षी के रूप में जन्मा था। कश्यप बुद्ध के समय, जब लोग भिक्षुओं को भिक्षा दे रहे थे, तभी यह पक्षी अचानक उस दिशा में उड़ा और तीन मुट्ठी चावल छीनकर उड़ गया। यह उसी कर्म का फल था।

एक अन्य अवसर पर, उसी स्थान पर, जब वही जोड़ा जा रहा था, महा मोग्गलाना ने केवल एक सर्प को देखा जिसकी विशाल लंबाई ज्वालाओं से घिरी हुई थी, जिसका चेहरा मनुष्य जैसा और मुंह सूअर जैसा था। पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन बुद्ध से मिलने तक उन्होंने अपनी मुस्कान का कारण नहीं बताया। पूज्य लक्खना ने अवसर की प्रतीक्षा की और फिर पूछा। पूज्य मोग्गलाना ने समझाया कि उस प्राणी के कष्टों के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी, उन्होंने राहत की सांस ली और मुस्कुराए, क्योंकि उनके लिए अब ऐसे कष्टों का सामना करना संभव नहीं था। बुद्ध ने सहमति व्यक्त की और कहा कि उन्होंने भी गया में ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसी सर्प को देखा था, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा क्योंकि संदेह करने वाले लोग थे। बुद्ध जो प्रकट करते हैं, उस पर विश्वास न करना पाप होगा। इसके अलावा, बुद्ध का वचन समय पर होता है। यह उन वैज्ञानिक विकासों पर भी लागू होता है जिनके बारे में बुद्ध मौन रहे। अतः यह आवश्यक नहीं है कि बुद्ध उन्हें नहीं जानते थे। इसके अलावा, वे उनके मिशन का हिस्सा नहीं थे। स्वयं बुद्ध द्वारा प्रमाणित यह प्रमाण है। लखन संघ के आठ महान अरहतों में से एक थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 308

---

(धम्मपद 307) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 308 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 309 और 310)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 308 - वग्गुमुदातिरिया भिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Seyyo ayogulo bhutto
tatto aggisikhupamo
yance bhunjeyya dussilo
रत्थपिंडमासन्नतो.

---

श्लोक 308 : यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन (शील) और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।

---

वाग्गुमुदा नदी के किनारे रहने वाले भिक्षुओं की कहानी

वैशाली के पास महावन वन में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (308) का उच्चारण किया, जो कि उन भिक्षुओं के संदर्भ में है जिन्होंने वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु के 3 महीने) वाग्गुमुदा नदी के किनारे बिताई थी।

उस समय वज्जी लोगों के देश में अकाल पड़ा हुआ था। इसलिए, उन्हें पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के लिए, उन भिक्षुओं ने लोगों को यह आभास कराया कि उन्होंने मग्गा और फला अवस्था प्राप्त कर ली है, जबकि वास्तव में उन्होंने ऐसा नहीं किया था। गाँव के लोगों ने उन पर विश्वास किया और उनका सम्मान करते हुए उन्हें बहुत सारा भोजन दान कर दिया, अपने लिए बहुत कम छोड़ा।
वर्षा ऋतु की समाप्ति पर, प्रथा के अनुसार, देश के सभी भागों से भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। वाग्गुमुदा नदी के किनारे से भी भिक्षु आए। वे स्वस्थ और तंदुरुस्त दिख रहे थे, जबकि अन्य भिक्षु पीले और थके हुए लग रहे थे। बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से बात की और वर्षा ऋतु के दौरान उनके हालचाल पूछे। वाग्गुमुदा नदी के किनारे से आए भिक्षुओं से बुद्ध ने विशेष रूप से पूछा कि क्या अकाल के कारण उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई हुई। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।
बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं ने भिक्षा के रूप में पर्याप्त भोजन कैसे जुटाया था। लेकिन वे उन्हें इस विषय पर कुछ सिखाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पूछा, "वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान आपने इतनी अच्छी तरह से भिक्षा कैसे जुटाई?" तब भिक्षुओं ने उन्हें बताया कि उन्होंने आपस में चर्चा की और तय किया कि वे एक-दूसरे से इस प्रकार बात करें कि गाँव वालों को लगे कि उन्होंने वास्तव में ध्यान, मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। तब बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने वास्तव में ध्यान, मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं। जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें फटकारा।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 308 : यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन (शील) और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
वग्गुमुदा नदी के किनारे रहने वाले भिक्षु
वैशाली के पास महावन वन में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उन भिक्षुओं के संदर्भ में कहा था जो वर्षा ऋतु में वग्गुमुदा नदी के किनारे समय बिताते थे।
उस समय वज्जी लोगों के देश में अकाल पड़ा हुआ था। इसलिए, लोगों को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने के लिए, उन भिक्षुओं ने लोगों को यह आभास कराया कि उन्होंने मग्गा और फला प्राप्त कर लिया है, जबकि वास्तव में उन्होंने ऐसा नहीं किया था। गाँव के लोगों ने उन पर विश्वास किया और उनका सम्मान करते हुए, उन्हें बहुत सारा भोजन दान कर दिया और अपने लिए बहुत कम छोड़ा।
वर्षा ऋतु ( वस्सा ) के अंत में, प्रथा के अनुसार, देश के सभी भागों से भिक्षु बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वग्गुमुदा नदी के किनारे से भी भिक्षु आए। वे स्वस्थ और तंदुरुस्त दिख रहे थे, जबकि अन्य भिक्षु पीले और थके हुए लग रहे थे। बुद्ध ने सभी भिक्षुओं से बात की और पूछा कि वर्षा ऋतु में उनका कैसा हाल रहा। वग्गुमुदा नदी के किनारे से आए भिक्षुओं से बुद्ध ने विशेष रूप से पूछा कि क्या अकाल के कारण उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई हुई। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें भिक्षा प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।
बुद्ध जानते थे कि उन भिक्षुओं ने भिक्षा के लिए पर्याप्त भोजन कैसे जुटाया था। लेकिन वे उन्हें इस विषय पर कुछ सिखाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने पूछा, "वर्षा ऋतु में आप इतनी अच्छी तरह से भिक्षा कैसे जुटा पाए?" तब भिक्षुओं ने उन्हें बताया कि उन्होंने आपस में चर्चा की और यह निर्णय लिया कि वे एक-दूसरे से इस प्रकार बात करें कि ग्रामीणों को लगे कि उन्होंने वास्तव में ध्यान , मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं । तब बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने वास्तव में ध्यान , मार्ग और फल प्राप्त कर लिए हैं ? जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें फटकारा और यह श्लोक सुनाया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 308)
आसननतो दुस्सिलो सी यान रथपिंडं भुञ्जेय्य ,
तत्थो अग्गीसिखुपमो , अयोगुओ भुट्टो सेय्यो
asaññato [ asaññata ]: अनुशासनहीन; dussīlo [ dussīla ]: सद्गुणों से रहित; ce : यदि; yañ : किसी कारण से; raṭṭhapiṇḍaṃ [ raṭṭhapiṇḍa ]: लोगों द्वारा दिया गया भोजन; bhuñjeyya : खाने के लिए; tattho [ tattha ]: गर्म; aggisikhūpamo [ aggisikhūpama ]: ज्वाला के समान; ayoguḷo [ ayoguḷa ]: लोहे की गेंद; bhutto [ bhutta ]: खाना; seyyo [ seyya ]: बेहतर है
यदि कोई व्यक्ति नैतिकताहीन ( सीला ) है और विचार, वचन और कर्म में अनियंत्रित है, तो उसके लिए लोगों द्वारा दिए गए भिक्षा-भोजन को खाने की बजाय आग की तरह जलते हुए लोहे के लाल-गरम टुकड़े को खाना बेहतर है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 308)
वर्षा : यह श्लोक बुद्ध ने भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में कहा था, जिन्होंने वर्षा ऋतु (वर्षा ऋतु) वाग्गुमुदा नदी के किनारे बिताई थी।

प्राचीन काल में, आज की ही तरह, भारत में तीन नियमित ऋतुएँ प्रचलित थीं, अर्थात् वर्षा , हेमंत और ग्रीष्म । वर्षा ऋतु आषाढ़ से शुरू होकर आषाढ़ तक , यानी लगभग जुलाई के मध्य से नवंबर के मध्य तक चलती है।

वर्षा ऋतु के दौरान , मूसलाधार बारिश के कारण नदियाँ और नाले अक्सर उफान पर आ जाते हैं, सड़कें जलमग्न हो जाती हैं, संचार व्यवस्था ठप हो जाती है और लोग आमतौर पर अपने घरों और गाँवों में ही सिमट जाते हैं तथा पिछली ऋतुओं में एकत्रित किए गए भोजन पर ही जीवन यापन करते हैं। इस दौरान तपस्वियों के लिए स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए उपदेश देना कठिन हो जाता है। वनस्पतियों और जीव-जंतुओं की इतनी अधिक विविधता उत्पन्न हो जाती है कि लोग अनजाने में उन्हें नष्ट किए बिना इधर-उधर नहीं जा सकते। इसलिए, बुद्ध के शिष्यों सहित सभी तपस्वी अपने भ्रमण को स्थगित कर देते थे और एकांत स्थानों में विश्राम करते थे। आमतौर पर बुद्ध और उनके शिष्यों को वर्षा ऋतु में किसी मठ या एकांत उद्यान में रहने के लिए आमंत्रित किया जाता था। कभी-कभी वे वनों में भी विश्राम करते थे। इन वर्षा ऋतुओं में लोग बुद्ध के दर्शन करने के लिए उनके पास उमड़ पड़ते थे और इस प्रकार उनकी उपस्थिति का भरपूर लाभ उठाते थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 309,310

---

(धम्मपद 308) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 309 और 310 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 311, 312 और 313)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 309 और 310 - खेमकसेट्ठिपुत्त वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Cattari thanani naro pamatto
अपज्जति परदरुपसेवी
अपुन्नलभम ना निकमसेय्यम
निंदम ततीयम् निरायम् चतुत्थम्।
Apunnalahho ca gati ca papika
भितास्सा भिताया रति च ठोकिका
raja ca dandam garukam paneti
tasma naro paradaram na seve.

---

श्लोक 309 : जो व्यक्ति उचित आचरण के प्रति असावधान रहता है और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ आती हैं: कर्मों का संचय, नींद में खलल, निंदा और निरय/नरक में कष्ट।

---

श्लोक 310 : इस प्रकार, पुण्य का संचय होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है। पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

---

एक धनी व्यक्ति के पुत्र खेमाका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (309) और (310) का उच्चारण एक धनी व्यक्ति के पुत्र खेमक के संदर्भ में किया। खेमक प्रसिद्ध अनाथपिंडिका का भतीजा भी था।

खेमाका धनवान होने के साथ-साथ बेहद सुंदर भी था और स्त्रीयाँ उसकी ओर आकर्षित होती थीं। वे उसका विरोध नहीं कर पाती थीं और स्वाभाविक रूप से उसके जाल में फँस जाती थीं। खेमाका ने निर्भीक व्यभिचार किया। राजा के आदमियों ने उसे तीन बार यौन दुराचार के आरोप में पकड़ा और राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) ने कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि खेमाका अनाथपिंडिका का भतीजा था। इसलिए अनाथपिंडिका स्वयं अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने खेमाका को यौन दुराचार की नीचता और उसके गंभीर परिणामों के बारे में समझाया।

———————————————————————

श्लोक 309 : जो व्यक्ति उचित आचरण के प्रति असावधान रहता है और दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन दुराचार करता है, उसे चार विपत्तियाँ आती हैं: कर्मों का संचय, नींद में खलल, निंदा और निरय/नरक में कष्ट।

———————————————————————

श्लोक 310 : इस प्रकार, पुण्य का संचय होता है और अपाय लोकों में पुनर्जन्म होता है। पवित्र पुरुष का पवित्र स्त्री के साथ सुख अल्पकालिक होता है और राजा भी कठोर दंड देता है। इसलिए, पुरुष को दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ दुराचार नहीं करना चाहिए।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गिल्ड लीडर खेमा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने धनी व्यक्ति के पुत्र खेमा के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे। खेमा प्रसिद्ध अनाथपिंडिक का भतीजा भी था।

खेमा धनवान होने के साथ-साथ बेहद सुंदर भी था और स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होती थीं। वे उसका विरोध नहीं कर पाती थीं और स्वाभाविक रूप से उसके वश में हो जाती थीं। खेमा ने निर्भीक होकर व्यभिचार किया। राजा के आदमियों ने उसे तीन बार यौन दुराचार के आरोप में पकड़ा और राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु कोसल के राजा पसेनादि ने कोई कार्रवाई नहीं की क्योंकि खेमा अनाथपिंडिक का भतीजा था। इसलिए अनाथपिंडिक स्वयं अपने भतीजे को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने खेमा को यौन दुराचार की नीचता और उसके गंभीर परिणामों के बारे में समझाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 309)

परदारूपसेवि पमत्तो नरो अपुनलाभं न निकमसेयम्

तत्यां निन्दं चतुत्थं निरयं चत्तारि ठानानि अपज्जति

परदारूपसेवी : वह व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी के पास जाता है; पमट्टो [ पमट्टा ]: विचारहीन; नारो : मनुष्य; अपुन्नलाभम् [ अपुन्नलाभ ]: पाप का अर्जन; न निकमसेयम् [ निकमसेय ]: आरामदायक नहीं होना, पर्याप्त नींद; ततियां [ ततिया ]: तीसरा; निंदां [ ninda ]: शर्म; कटुत्थम् [ कटुत्था ]: चौथा; निरयं [ niraya ]: नरक में जन्म लेना; कत्तारि ठानानि : इन चार रूपों को; आपज्जति : जाएगा

जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे किसी दूसरे पुरुष की पत्नी के पास जाता है, उसे चार बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं। पहला, उसे अमन की नींद नहीं आती। तीसरा, उसकी बदनामी होती है। चौथा, वह नरक में जन्म लेता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 309)

यह बात बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय कही थी, और उन्होंने यह बात अनाथपिंडिका के भतीजे और कोषाध्यक्ष के पुत्र खेमा के संदर्भ में कही थी।

उनका पूर्व कर्म क्या था? कहा जाता है कि बुद्ध कश्यप के युग में वे एक कुशल पहलवान थे, और एक दिन उन्होंने बुद्ध के स्वर्ण मंदिर पर दो रंगीन झंडे गाड़ दिए और यह हार्दिक कामना की, 'मेरे सगे-संबंधियों को छोड़कर, जो भी स्त्री मुझे देखे, वह मुझसे प्रेम करने लगे।' यही उनका पूर्व कर्म था। इसी कारण, जिन-जिन स्थानों पर उनका पुनर्जन्म हुआ, वहाँ उन्हें देखकर अन्य पुरुषों की पत्नियाँ अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पाईं।

खेमा अत्यंत सुंदर युवक बताया जाता है। उसे देखने वाली सभी स्त्रियाँ वासना से इतनी व्याकुल हो जाती थीं कि वे अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पाती थीं। खेमा अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने का आदी था। एक रात राजा के आदमियों ने उसे बंदी बना लिया और राजा के सामने पेश किया। राजा ने सोचा, "मुझे इस महान कोषाध्यक्ष पर शर्म आती है।" इसलिए बिना कुछ कहे उसे जाने दिया। परन्तु खेमा ने अपनी बुरी आदतों को नहीं छोड़ा। दूसरी और तीसरी बार राजा के आदमियों ने उसे बंदी बना लिया और राजा के सामने पेश किया, और हर बार राजा ने उसे जाने दिया। जब महान कोषाध्यक्ष को सब कुछ पता चला, तो वह अपने भतीजे के साथ बुद्ध के पास गया, उससे अपनी कहानी सुनाई और बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, इस युवक को धर्म का उपदेश दीजिए।" तब बुद्ध ने उसे उपरोक्त श्लोक सुनाकर अन्य पुरुषों की पत्नियों के पीछे भागने के दुराचार का अर्थ समझाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 310)

अपुन्नलाभो च पपीका गति च भितस्सा भिताया रति च ठोकिका

राजा च गरुकं दण्ड पनेति तस्मा नरो पारदारं न सेवे

अपुञ्ञलाभो च : पाप करना; पापीका च गति : पापियों के लिए योग्य नीच अवस्था (उसका भाग्य होगा); भीतस्स : एक भयभीत पुरुष का; भीताय : और एक भयभीत स्त्री का; रती : आलिंगन; ठोकिका : बहुत हल्का; राजा च : राजा भी; गरुकं दण्डं [ दण्ड ]: कठोर दंड; पणेति : लगाएगा; तस्मा : इसके कारण; नरो : पुरुष; परदारं [ परदार ]: दूसरे की पत्नी; न सेवे : संगति नहीं करनी चाहिए

पुण्य अर्जित होगा। पापी को नरक की नीच अवस्था ही प्राप्त होगी। क्योंकि पुरुष और स्त्री दोनों भयभीत हैं, इसलिए उनके आलिंगन से बहुत कम आनंद मिलेगा। राजा का कानून कठोर दंड देगा। इन सब कारणों से, कोई पुरुष दूसरे की पत्नी की लालसा नहीं करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 310)

ये श्लोक अनाथपिंडिका के भतीजे, एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के कुकर्म से उत्पन्न हुए हैं। यह उस सेवा का एक उदाहरण है जो बुद्ध को सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों मामलों में लोगों की सहायता और मार्गदर्शन करने के लिए करनी पड़ी थी।

बुद्ध स्वयं उन सभी सद्गुणों के साकार रूप थे जिनका उन्होंने उपदेश दिया। अपने सफल और घटनापूर्ण 45 वर्षों के उपदेश काल में उन्होंने अपने वचनों को कर्मों में उतारा। उन्होंने कभी भी मानवीय दुर्बलता या नीच वासना का प्रदर्शन नहीं किया। बुद्ध की नैतिक संहिता विश्व में अब तक की सबसे परिपूर्ण नैतिक संहिता है।

पच्चीस शताब्दियों से भी अधिक समय से लाखों लोगों ने उनके उपदेशों से प्रेरणा और शांति पाई है। उनकी महानता सूर्य के समान है जो कमतर प्रकाशों की चमक को फीका कर देती है। उनका उपदेश आज भी थके हुए तीर्थयात्री को निर्वाण की सुरक्षा और शांति की ओर आकर्षित करता है। किसी अन्य व्यक्ति ने पीड़ित मानवता के लिए इतना बलिदान नहीं दिया है।

बुद्ध मानव इतिहास के पहले धार्मिक नेता थे जिन्होंने लोगों को किसी भी जीवित प्राणी को हानि न पहुँचाने और पशु बलि न देने की सलाह दी और उनसे अपील की।

बुद्ध के लिए धर्म कोई सौदा नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग था। उन्हें अंधविश्वासी अनुयायी नहीं चाहिए थे; उन्हें ऐसे अनुयायी चाहिए थे जो बुद्धिमानी से सोच-विचार कर सकें।

बुद्ध के आगमन से हम सभी को राहत और सुकून मिला। संपूर्ण मानव जाति उनके आगमन से धन्य हुई है।

बुद्ध ने कभी किसी व्यक्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव नहीं दिखाया। यहाँ तक कि अपने विरोधियों और कट्टर शत्रुओं के प्रति भी उन्होंने कोई शत्रुता नहीं व्यक्त की। कुछ पूर्वाग्रही लोग बुद्ध के विरुद्ध हो गए और उन्हें जान से मारने की कोशिश की; फिर भी बुद्ध ने उन्हें कभी शत्रु नहीं माना। बुद्ध ने एक बार कहा था, "जैसे युद्ध के मैदान में हाथी तीर सह लेता है, वैसे ही मैं भी दूसरों के अपमान और शत्रुतापूर्ण शब्दों को सहन करूँगा।"

इतिहास में बुद्ध के समान किसी भी व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलता, जिन्होंने समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं को इतना समर्पित किया हो। ज्ञान प्राप्ति से लेकर जीवन के अंत तक, उन्होंने मानव जाति के उत्थान के लिए अथक परिश्रम किया। वे दिन में केवल दो घंटे ही सोते थे। इस महान गुरु के निधन को पच्चीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, फिर भी उनका प्रेम और ज्ञान का संदेश आज भी पूर्णतः विद्यमान है। यह संदेश आज भी मानवता के भाग्य को निर्णायक रूप से प्रभावित कर रहा है। वे परम करुणावान थे जिन्होंने इस संसार को प्रेम और करुणा से प्रकाशित किया।

निर्वाण प्राप्त करने के बाद, बुद्ध ने एक अमर संदेश छोड़ा जो आज भी हमारे बीच जीवित है। आज हम विश्व शांति के लिए एक गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। विश्व के इतिहास में उनके संदेश की आवश्यकता आज से पहले कभी इतनी नहीं रही।

बुद्ध का जन्म अज्ञान के अंधकार को दूर करने और संसार को दुख, रोग, क्षय, मृत्यु और जीवित प्राणियों की सभी चिंताओं और कष्टों से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाने के लिए हुआ था।

कुछ मान्यताओं के अनुसार, समय-समय पर कोई विशेष देवता इस संसार में प्रकट होकर दुष्टों का नाश करते हैं और भले लोगों की रक्षा करते हैं। बुद्ध इस संसार में दुष्टों का नाश करने नहीं, बल्कि उन्हें सही मार्ग दिखाने के लिए प्रकट हुए थे।

विश्व के इतिहास में बुद्ध के समय तक, क्या हमने कभी किसी ऐसे धार्मिक गुरु के बारे में सुना है जो बुद्ध की तरह व्यथित मानवता के प्रति इतनी गहरी सहानुभूति और प्रेम से परिपूर्ण रहा हो? बुद्ध के कुछ शताब्दियों बाद, हमने ग्रीस के कुछ बुद्धिमान पुरुषों के बारे में सुना: सुकरात, प्लेटो और अरस्तू। लेकिन ये लोग केवल नीरस विचारक और सत्य के खोजी थे; उनमें व्यथित जनसमूह के प्रति किसी प्रकार का प्रेरणादायक प्रेम नहीं था।

बुद्ध का मानव जाति को बचाने का तरीका उन्हें मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग सिखाना था। उन्हें कुछ गिने-चुने शारीरिक या मानसिक कष्टों को दूर करने में कोई रुचि नहीं थी। वे एक ऐसा मार्ग प्रकट करने के लिए अधिक उत्सुक थे जिसका अनुसरण सभी लोग कर सकें।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 311,312,313

---

(धम्मपद 309 और 310) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 311, 312 और 313 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 314)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 311, 312 और 313 - दुब्बाकाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Kuso yatha duggahito
hatthameva' nukantati
samannam dupparamattham
nirayayu' pakadhati.
Yam kinci sithilam kammam
samkilitthanca yam vatam
संकस्सरम ब्रह्मचर्यम
na tam hoti mahapphalam.
Kayira ce kayirathenam
dalhamenam parakkame
sithilo hi paribbajo
bhiyyo akirate rajam.

---

श्लोक 311 : जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है, वैसे ही भिक्षु का कुटिल जीवन उसे निरय/नरक में खींच ले जाता है।

---

श्लोक 312 : लापरवाही से किया गया कार्य, भ्रष्ट आचरण या भिक्षु का संदिग्ध आचरण अधिक लाभदायक नहीं होता।

---

श्लोक 313 : यदि कुछ करना हो तो उसे अच्छी तरह करो; दृढ़ता और ऊर्जा के साथ करो; क्योंकि भिक्षु का शिथिल जीवन (नैतिक दोषों की) बहुत धूल फैलाता है।

---

हठी भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (311), (312) और (313) एक हठी भिक्षु के संदर्भ में कहे।

एक बार एक भिक्षु अनजाने में घास काटने के कारण पश्चाताप कर रहा था। उसने यह बात दूसरे भिक्षु को बताई। दूसरा भिक्षु स्वभाव से लापरवाह और हठी था, और वह छोटी-मोटी गलतियों को ज्यादा महत्व नहीं देता था। इसलिए उसने पहले भिक्षु से कहा, "घास काटना तो बहुत मामूली अपराध है; अगर तुम बस दूसरे भिक्षु से अपनी गलती मान लेते हो, तो तुम अपने आप ही क्षमा हो जाओगे। चिंता की कोई बात नहीं है।" इतना कहकर उसने दोनों हाथों से घास उखाड़ दी, यह दिखाने के लिए कि वह ऐसे मामूली अपराधों को कितना तुच्छ समझता है। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने उस लापरवाह और हठी भिक्षु को फटकारा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 311 : जैसे कुश घास को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट जाता है, वैसे ही भिक्षु का कुटिल जीवन उसे निरय/नरक में खींच ले जाता है।

---

श्लोक 312 : लापरवाही से किया गया कार्य, भ्रष्ट आचरण या भिक्षु का संदिग्ध आचरण अधिक लाभदायक नहीं होता।

---

श्लोक 313 : यदि कुछ करना हो तो उसे अच्छी तरह करो; दृढ़ता और ऊर्जा के साथ करो; क्योंकि भिक्षु का शिथिल जीवन (नैतिक दोषों की) बहुत धूल फैलाता है।

---

प्रवचन के अंत में उस निर्भीक और हठी भिक्षु ने भिक्षु जीवन में संयम के महत्व को समझा और भिक्षुओं के लिए निर्धारित मूलभूत नियमों का कड़ाई से पालन किया। बाद में, अंतर्दृष्टि ध्यान के अभ्यास से उस भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
हठी भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक हठी भिक्षु के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।
एक बार एक भिक्षु अनजाने में घास काटने के कारण पश्चाताप कर रहा था। उसने यह बात दूसरे भिक्षु को बताई। दूसरा भिक्षु स्वभाव से लापरवाह और हठी था, और वह छोटी-मोटी गलतियों को ज्यादा महत्व नहीं देता था। इसलिए उसने पहले भिक्षु से कहा, "घास काटना तो बहुत छोटी सी गलती है; अगर तुम बस दूसरे भिक्षु से अपनी गलती मान लेते हो, तो तुम अपने आप ही क्षमा हो जाओगे। चिंता की कोई बात नहीं है।" इतना कहकर उसने दोनों हाथों से घास उखाड़ दी, यह दिखाने के लिए कि वह ऐसी छोटी-मोटी गलतियों को कितना तुच्छ समझता है। जब बुद्ध को इस बारे में पता चला, तो उन्होंने उस लापरवाह और हठी भिक्षु को फटकारा।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 311)
यथा कुसो दुग्गहितो हत्थं एव अनुकांतति
दुप्परामथं समाणं निरायौ पकाढति
यथा : जैसे; कुसो : कुसा घास का एक ब्लेड; दुग्गहितो [ दुग्गहितो ]: गलत तरीके से आयोजित; हत्थम एव : हाथ स्वयं ही करेगा; अनुकांतति : कट जाओ; दुप्परामाठः [ दुप्परामाठः ]: गलत तरीके से अभ्यास किया गया; समानाँ [ समाना ]: मठवासी जीवन; निरययु : नरक में; पकडधति : नीचे खींच लेगा
कुश घास की पत्ती को गलत तरीके से पकड़ने पर हाथ कट सकता है। ठीक उसी प्रकार, यदि कोई संन्यासी जीवन को गलत तरीके से अपनाए—नियमों के विरुद्ध जाए—तो वह उसे नरक की ओर खींच ले जाएगा।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 312)
सिथिलं यं किंचि कम्मं सङ्किलिट्ठं यं वातं च
संकस्सरं ब्रह्मचर्यं तं महप्फलं न होति
सिथिलां [ सिथिला ]: आकस्मिक रूप से; यां किंचि कम्मं [ कम्म ]: योग्यता का कोई कार्य; सांकिलिट्ठान् : दोषपूर्ण; वातं च : कुछ अभ्यास; संकस्सारं च : संदिग्ध; ब्रह्म-चैरियम् [ कैरिया ]: उच्च जीवन; तं : यह सब; महप्फलं न होति : उच्च परिणाम नहीं देगा
कोई पुण्य कर्म अनजाने में हो सकता है। किसी धार्मिक अनुष्ठान में दोष लग सकता है। उच्च जीवन को संदिग्ध तरीके से व्यतीत किया जा सकता है। इन सब से अच्छे परिणाम नहीं मिलेंगे।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 313)
सीई कयिरा एतं कयिरथ दधम परक्कमे
हि सिथिलो परिबाजो भय्यो राजं अकीरते
ce : यदि; kayirā : कोई पुण्य कर्म किया जा रहा हो; kayirā etaṃ : वह कर्म करो; daḷham parakkame : चिंता और प्रतिबद्धता के साथ; hi : यदि किसी कारण से; sithilo [ sithila ]: आकस्मिक; paribbājo [ paribbāja ]: तपस्या; bhiyyo [ bhiyya ]: प्रचुर मात्रा में; rājaṃ ākirate : छिड़काव करेंगे
यदि आपको कोई पुण्य कर्म करना है, तो उसे पूरी निष्ठा और लगन से करें। परन्तु यदि संन्यासी जीवन का अभ्यास लापरवाही से किया जाए, तो धूल कम होने के बजाय और अधिक धूल फैल जाएगी।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 311-313)

ये श्लोक सही और गलत कर्म की प्रकृति का अवलोकन प्रस्तुत करते हैं। बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धांत मुख्यतः बुद्ध के कर्म संबंधी उपदेशों में निहित है।

कर्म एक अवैयक्तिक, प्राकृतिक नियम है जो हमारे कर्मों के अनुसार कार्य करता है। यह स्वयं में एक नियम है और इसका कोई नियम-निर्माता नहीं है। कर्म किसी बाहरी, स्वतंत्र, शासी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना अपने क्षेत्र में कार्य करता है।

कम्मा को कई अलग-अलग 'भाषाओं' में समझाया जा सकता है।

कर्म को बच्चे की सरल भाषा में समझाया जा सकता है: अच्छा करो, तुम्हें अभी और भविष्य में भी अच्छा फल मिलेगा। बुरा करो, तुम्हें अभी और भविष्य में भी बुरा फल मिलेगा।

फसल की भाषा में, कर्म को इस प्रकार समझाया जा सकता है: यदि आप अच्छे बीज बोते हैं, तो आपको अच्छी फसल मिलेगी। यदि आप बुरे बीज बोते हैं, तो आपको बुरी फसल मिलेगी।

विज्ञान की भाषा में, कर्म को कारण और प्रभाव का नियम कहा जाता है। इसका एक अन्य नाम नैतिक कारणता का नियम है। नैतिक कारणता नैतिक क्षेत्र में उसी प्रकार कार्य करती है जैसे भौतिक क्षेत्र में क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम कार्य करता है।

धम्मपद में कर्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है: मन सभी सुखी अवस्थाओं का मूल (अग्रदूत) है। यदि आप अच्छे मन से बोलते या कार्य करते हैं, तो सुख आपका अनुसरण करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पहिया बैल के खुर का अनुसरण करता है।

कर्म का सीधा अर्थ है क्रिया। सजीव प्राणियों के भीतर एक शक्ति या बल होता है जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे सहज प्रवृत्ति, चेतना आदि। यह जन्मजात प्रवृत्ति प्रत्येक सचेत प्राणी को गतिमान करती है। वह मानसिक या शारीरिक रूप से गति करता है, उसकी गति ही क्रिया है। क्रियाओं की पुनरावृत्ति आदत है और आदत उसका चरित्र बन जाती है। बौद्ध धर्म में इस प्रक्रिया को कर्म कहते हैं।

अपने परम अर्थ में, कर्म का अर्थ अच्छा और बुरा, मानसिक क्रिया या संकल्प दोनों है। बुद्ध कहते हैं, "कर्म ही संकल्प है।" इस प्रकार कर्म कोई इकाई नहीं बल्कि एक प्रक्रिया, क्रिया, ऊर्जा और बल है। कुछ लोग इस बल को 'क्रिया-प्रभाव' के रूप में व्याख्यायित करते हैं। यह हमारे अपने कर्मों का हम पर ही प्रभाव है। मनुष्य को जो सुख-दुख प्राप्त होते हैं, वे उसके अपने कर्मों, शब्दों और विचारों के परस्पर प्रभाव का परिणाम हैं। हमारे कर्म, शब्द और विचार ही हमारी समृद्धि और असफलता, हमारे सुख और दुख का कारण बनते हैं।

कर्म एक निराकार, प्राकृतिक नियम है जो हमारे कर्मों के अनुरूप ही कार्य करता है। यह स्वयं में एक नियम है और इसका कोई निर्धारक नहीं है। कर्म किसी बाहरी, स्वतंत्र शासी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना अपने क्षेत्र में कार्य करता है। चूंकि कोई गुप्त शक्ति पुरस्कार और दंड का निर्देशन या प्रशासन नहीं करती, इसलिए बौद्ध किसी अलौकिक शक्ति को प्रभावित करने के लिए प्रार्थना पर निर्भर नहीं रहते। बुद्ध के अनुसार, कर्म न तो पूर्वनियति है और न ही किसी रहस्यमय अज्ञात शक्ति या बल द्वारा हम पर थोपा गया कोई नियतिवाद है जिसके सामने हमें असहाय रूप से आत्मसमर्पण करना पड़ता है।

बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगता है; हम अपने अतीत के परिणाम हैं और अपने वर्तमान स्वरूप के परिणाम होंगे। दूसरे शब्दों में, मनुष्य पूर्णतः वह नहीं है जो वह अतीत में था और पूर्णतः वह नहीं होगा जो वह वर्तमान में है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कर्म पूर्णतः नियतिवाद नहीं है: बुद्ध ने स्पष्ट किया कि यदि सब कुछ नियत है, तो स्वतंत्र इच्छाशक्ति का अस्तित्व ही नहीं होगा और नैतिक या आध्यात्मिक जीवन संभव नहीं होगा। हम केवल अपने अतीत के गुलाम बनकर रह जाएंगे। दूसरी ओर, यदि सब कुछ अनिश्चित है, तो नैतिक और आध्यात्मिक विकास संभव ही नहीं होगा। इसलिए बुद्ध ने न तो पूर्णतः नियतिवाद को स्वीकार किया और न ही पूर्णतः अनिश्चिततावाद को।

अंगुत्तरा निकाय में कर्म के संबंध में इन गलत व्याख्याओं या अतार्किक विचारों का वर्णन किया गया है, जिसमें सुझाव दिया गया है कि बुद्धिमान व्यक्ति निम्नलिखित बातों की जांच करके उन्हें त्याग दें: (1) कुछ लोग मानते हैं कि सब कुछ पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम है; (2) कुछ अन्य लोग मानते हैं कि सब कुछ सर्वोच्च शासक की सृष्टि का परिणाम है; (3) कुछ अन्य लोग मानते हैं कि सब कुछ बिना किसी कारण के उत्पन्न होता है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति हत्यारा, चोर, व्यभिचारी आदि बन जाता है, यदि उसके कर्म पिछले जन्मों के कर्मों के कारण हैं, या सर्वोच्च शासक की सृष्टि से हैं, या केवल संयोगवश घटित होते हैं, तो वह व्यक्ति अपने बुरे कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

कर्म के बारे में एक और गलत धारणा यह है कि यह केवल कुछ खास लोगों या कुछ खास धर्मों के लोगों पर ही लागू होता है। लेकिन किसी व्यक्ति का परलोक में भाग्य उसके द्वारा चुने गए धर्म पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं करता। उसका धर्म चाहे जो भी हो, उसका भाग्य पूरी तरह से उसके कर्मों, वाणी और विचारों पर निर्भर करता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह खुद को कौन सा धार्मिक नाम देता है, यदि वह अच्छे कर्म करता है और दूसरों को हानि पहुंचाए बिना सभ्य जीवन जीता है, तो उसे परलोक में सुखमय जीवन अवश्य मिलेगा। यदि वह बुराई करता है और अपने मन में बुरे विचार रखता है, तो उसे निश्चित रूप से दुखमय जीवन जीना पड़ेगा। इसलिए, बौद्ध यह उपदेश नहीं देते कि वे ही एकमात्र ऐसे लोग हैं जो मृत्यु के बाद स्वर्ग जा सकते हैं। उसका धर्म चाहे जो भी हो, इस जीवन और परलोक दोनों में उसकी स्थिति स्वयं ही निर्धारित होती है। कर्म की शिक्षा मृत्यु के बाद के न्याय का संकेत नहीं देती। बुद्ध, जिनका कोई

स्वार्थी उद्देश्य नहीं था, ने इस कर्म के नियम को अमीरों की रक्षा करने और गरीबों को परलोक में भ्रामक सुख का वादा करके दिलासा देने के लिए नहीं सिखाया।

बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि कर्म ही मानव जाति में व्याप्त असमानताओं का कारण है। ये असमानताएं न केवल वंशानुगत कारकों, पर्यावरण और प्रकृति के कारण होती हैं, बल्कि कर्मों के फलस्वरूप भी होती हैं।

क्योंकि कर्म एक अदृश्य शक्ति है, इसलिए हम इसे अपनी भौतिक आँखों से नहीं देख सकते। कर्म की कार्यप्रणाली को समझने के लिए, हम इसकी तुलना बीजों से कर सकते हैं: कर्म के फल अवचेतन मन में उसी प्रकार संग्रहित होते हैं जैसे किसी वृक्ष के पत्ते, फूल, फल और तना उसके बीज में संग्रहित होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में, कर्म के फल उत्पन्न होते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे नमी और प्रकाश मिलने पर किसी वृक्ष के पत्ते और तना उसके छोटे से बीज से अंकुरित होते हैं।

कर्मों की कार्यप्रणाली की तुलना बैंक खाते से की जा सकती है: जो व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन में सदाचारी, दानशील और परोपकारी है, वह अपने अच्छे कर्मों में वृद्धि कर रहा है। लेकिन उसे अपने द्वारा लिए गए कर्मों की भरपाई करनी ही होगी, अन्यथा एक दिन उसका खाता खाली हो जाएगा और वह दिवालिया हो जाएगा। तब वह अपनी दयनीय स्थिति के लिए किसे दोष देगा?

वह न तो दूसरों को दोष दे सकता है और न ही भाग्य को। वह स्वयं ही जिम्मेदार है। इसलिए एक सच्चा बौद्ध पलायनवादी नहीं हो सकता। उसे जीवन का सामना यथार्थ रूप में करना होगा, उससे भागना नहीं। निष्क्रियता से कर्म के फल को वश में नहीं किया जा सकता। स्वयं की खुशी के लिए अच्छे कार्यों में सक्रिय रहना अनिवार्य है। पलायनवाद कायरों का सहारा है; लेकिन पलायनवादी कर्म के फल से बच नहीं सकता।

कर्म के नियम को समझना यह अहसास करना है कि हम स्वयं अपने सुख और दुख के लिए जिम्मेदार हैं। हम अपने कर्मों के निर्माता हैं। बौद्ध धर्म में यह मान्यता है कि मनुष्य के पास अपने कर्मों को ढालने और इस प्रकार अपने जीवन की दिशा को प्रभावित करने की पूर्ण क्षमता है। मनुष्य अपने कर्मों का पूर्णतः बंदी नहीं है; वह अपने कर्मों का गुलाम नहीं है। न ही मनुष्य कोई ऐसी मशीन है जो स्वतः ही उन सहज शक्तियों को उत्पन्न करती है जो उसे गुलाम बनाती हैं। न ही मनुष्य प्रकृति की मात्र उपज है। मनुष्य के भीतर अपने कर्मों को नियंत्रित करने की शक्ति और क्षमता है। वह अपने कर्मों से कहीं अधिक शक्तिशाली है, इसलिए कर्म के नियम को मनुष्य के हित में ढाला जा सकता है। मनुष्य को अपने कर्मों के फल के लिए अपनी आशा, प्रयास और बुद्धि का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्व में किए गए बुरे कर्मों के फल को संतुलित करने के लिए, मनुष्य को प्रार्थना, पूजा या धार्मिक अनुष्ठान करने के बजाय पुण्य कर्म करने और अपने मन को शुद्ध करने की आवश्यकता है।

मनुष्य को अपने आदर्शों को बढ़ावा देने के लिए उन संसाधनों का उपयोग करना चाहिए जो उसे प्राप्त हैं। जीवन के खेल में पत्ते हमें दिए जाते हैं। हम उन्हें चुनते नहीं हैं। वे हमारे पिछले कर्मों से जुड़े होते हैं; लेकिन हम अपनी इच्छा अनुसार पत्ते चुन सकते हैं, जो भी पत्ता हम चाहें उससे शुरुआत कर सकते हैं और खेलते-खेलते हम लाभ और हानि दोनों प्राप्त कर सकते हैं।

अंगुलिमाला और अशोक के चरित्रों में आए आमूलचूल परिवर्तन मनुष्य की स्वयं पर नियंत्रण पाने की क्षमता को दर्शाते हैं।

अंगुलिमाला एक लुटेरा था जिसने कई लोगों की जान ली। क्या हम उसके बाहरी कर्मों के आधार पर उसका न्याय कर सकते हैं? क्योंकि अपने जीवनकाल में ही वह अरहत बन गया और इस प्रकार उसने अपने सभी पिछले कुकर्मों को मिटा दिया।

भारतीय सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने और युद्ध लड़ने के लिए हजारों लोगों को मार डाला। फिर भी युद्ध जीतने के बाद, उन्होंने स्वयं को पूरी तरह से सुधारा और अपने जीवन को इस हद तक बदल दिया कि आज, 'इतिहास के पन्नों में दर्ज हजारों सम्राटों के नामों के बीच, जिनमें महाराजा और राजसी उच्चाधिकारी आदि शामिल हैं, अशोक का नाम एक तारे की तरह लगभग अकेला ही चमकता है।'

यद्यपि बौद्ध धर्म में यह विश्वास है कि मनुष्य अंततः अपने कर्मों को नियंत्रित कर सकता है, लेकिन वे यह नहीं मानते कि सब कुछ कर्मों के कारण ही होता है। वे प्रकृति की अन्य शक्तियों की भूमिका को भी अनदेखा नहीं करते।

बौद्ध धर्म के अनुसार, भौतिक और मानसिक जगत में पाँच प्रकार के नियम या प्रक्रियाएँ ( नियम ) संचालित होते हैं:

मौसमी परिवर्तनों आदि से संबंधित भौतिक नियम ( उतु नियम )

रोगाणुओं और बीजों के क्रम से संबंधित जैविक नियम ( बीज नियम )

कर्म नियम ( कम्म नियम ) जो नैतिक कारण या कर्म और परिणाम के क्रम से संबंधित है।

विद्युत बलों, ज्वार-भाटे की गति आदि से संबंधित आध्यात्मिक घटनाएँ ( धम्म नियम ) और

मनोवैज्ञानिक नियम ( चित्त नियम ) जो चेतना की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

कर्म को इस संसार में विविधता का कारण बनने वाले पांच प्राकृतिक नियमों में से एक माना जाता है।

कर्म अक्सर बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित होता है: लाभकारी और हानिकारक शक्तियाँ इस स्वतः-संचालित नियम का विरोध करने और उसका समर्थन करने के लिए कार्य करती हैं। कर्म को सहायता या बाधा पहुँचाने वाली अन्य शक्तियाँ हैं: जन्म, समय या परिस्थितियाँ, सौंदर्य और प्रयास।

शुभ जन्म ( गति संपत्ति ) या अशुभ जन्म ( विपत्ति ) कर्मों के फल को बढ़ा या घटा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति कुलीन परिवार में या सुखी अवस्था में जन्म लेता है, तो उसका सौभाग्यशाली जन्म उसके अच्छे कर्मों को फलने-फूलने का आसान अवसर प्रदान करेगा। एक बुद्धिहीन व्यक्ति, जो किसी अच्छे कर्म के फलस्वरूप राजपरिवार में जन्म लेता है, अपने कुलीन वंश के कारण जनता द्वारा सम्मानित होगा। यदि वही व्यक्ति कम भाग्यशाली परिवार में जन्म लेता, तो उसके साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता।

सुंदरता ( उपादि संपत्ति ) और कुरूपता ( उपादि विपत्ति ) दो ऐसे कारक हैं जो कर्मों के फल को प्रभावित करते हैं या उसमें बाधा डालते हैं। यदि किसी अच्छे कर्म के कारण व्यक्ति को अच्छा जन्म मिलता है, लेकिन किसी बुरे कर्म के कारण वह कुरूप पैदा होता है, तो वह अपने अच्छे कर्मों के लाभकारी परिणामों का पूर्ण रूप से आनंद नहीं ले पाएगा। यहां तक कि सिंहासन का वैध उत्तराधिकारी भी शारीरिक या मानसिक रूप से कुरूप होने पर शायद उस उच्च पद तक न पहुंच पाए। दूसरी ओर, सुंदरता व्यक्ति के लिए एक संपत्ति होती है। गरीब माता-पिता का सुंदर पुत्र दूसरों का ध्यान आकर्षित कर सकता है और उनके प्रभाव से स्वयं को प्रतिष्ठित कर सकता है। इसके अलावा, हम ऐसे उदाहरण भी पाते हैं जहां गरीब, साधारण पारिवारिक पृष्ठभूमि के लोग फिल्म अभिनेता या अभिनेत्री या सौंदर्य रानियों के रूप में प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्राप्त करते हैं।

समय और परिस्थिति भी कर्मों के फल को प्रभावित करने वाले अन्य कारक हैं। अकाल या युद्ध के समय, सभी लोग बिना किसी अपवाद के एक ही स्थिति का सामना करने के लिए विवश होते हैं। ऐसे में प्रतिकूल परिस्थितियाँ बुरे कर्मों के फलने-फूलने की संभावनाएँ पैदा करती हैं। वहीं दूसरी ओर, अनुकूल परिस्थितियाँ बुरे कर्मों के फलने-फूलने से रोकती हैं।

कर्म के फलने-फूलने को प्रभावित करने वाले सभी कारकों में प्रयास शायद सबसे महत्वपूर्ण है। प्रयास के बिना सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति असंभव है। यदि कोई व्यक्ति किसी बीमारी से खुद को ठीक करने, अपनी कठिनाइयों से खुद को बचाने या अपनी प्रगति के लिए लगन से प्रयास नहीं करता है, तो उसके बुरे कर्मों को अपना उचित प्रभाव दिखाने का उपयुक्त अवसर मिल जाता है। वहीं, यदि वह अपनी कठिनाइयों पर विजय पाने का प्रयास करता है, तो उसके अच्छे कर्म उसकी सहायता के लिए आगे आते हैं। गहरे समुद्र में जहाज़ डूबने की स्थिति में, बोधिसत्व महा जनक ने खुद को बचाने का प्रयास किया, जबकि अन्य लोगों ने देवताओं से प्रार्थना की और अपना भाग्य उन्हीं के हाथों में छोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बोधिसत्व बच गए जबकि अन्य लोग डूब गए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 314

---

(धम्मपद 311, 312 और 313) <<<< पिछला || धम्मपद 314 || अगला >>>> (धम्मपद 315)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 314 - इस्सपकटा इत्थि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अकातम दुक्कतम सेयो
पच्चा तप्पति दुक्कटम
katanca sukatam seyyo
yam katva nanutappati.

---

श्लोक 314 : बुरा कर्म न करना बेहतर है; बुरा कर्म बाद में कष्ट देता है। अच्छा कर्म करना बेहतर है क्योंकि इसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

---

ईर्ष्यालु स्वभाव वाली एक महिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (314) का उच्चारण किया, जो स्वभाव से बहुत ईर्ष्यालु महिला के संदर्भ में था।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक अत्यंत ईर्ष्यालु स्त्री अपने पति के साथ रहती थी। उसे पता चला कि उसके पति का उसकी दासी के साथ संबंध है। इसलिए एक दिन उसने दासी को मजबूत रस्सियों से बांध दिया, उसके कान और नाक काट दिए और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। ऐसा करने के बाद, उसने अपने पति से जेतवन मठ चलने को कहा। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, दासी के कुछ रिश्तेदार उनके घर आए और उसे बंधे हुए और कमरे में बंद पाया। उन्होंने कमरा तोड़कर उसे खोला और मठ ले गए। वे मठ पहुंचे, उस समय बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे। दासी ने बुद्ध को बताया कि उसकी मालकिन ने उसके साथ क्या किया था, उसे कैसे पीटा गया था और उसके नाक और कान कैसे काट दिए गए थे। वह भीड़ के बीच खड़ी हो गई ताकि सभी देख सकें कि उसके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया गया था। इसलिए बुद्ध ने कहा, "यह सोचकर बुराई मत करो कि लोगों को इसके बारे में पता नहीं चलेगा। गुप्त रूप से किया गया बुरा कर्म, जब प्रकट होता है, तो बहुत पीड़ा और दुख लाता है; लेकिन अच्छा कर्म गुप्त रूप से किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल सुख लाता है, दुख नहीं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 314 : बुरा कर्म न करना बेहतर है; बुरा कर्म बाद में कष्ट देता है। अच्छा कर्म करना बेहतर है क्योंकि इसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

---

प्रवचन के अंत में दंपति को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ईर्ष्यालु स्वभाव वाली एक महिला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ऐसी स्त्री के संदर्भ में कहा था जो स्वभाव से बहुत ईर्ष्यालु थी।

एक समय की बात है, एक अत्यंत ईर्ष्यालु स्त्री अपने पति के साथ सावत्थी में रहती थी। उसे पता चला कि उसके पति का उसकी दासी के साथ संबंध है। इसलिए एक दिन उसने दासी को मजबूत रस्सियों से बांध दिया, उसके कान और नाक काट दिए और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। ऐसा करने के बाद, उसने अपने पति से जेतवन मठ चलने को कहा। उनके जाने के कुछ ही समय बाद, दासी के कुछ रिश्तेदार उनके घर आए और उसे बंधे हुए और कमरे में बंद पाया। उन्होंने कमरा तोड़कर उसे खोला और मठ ले गए। वे मठ पहुंचे, उस समय बुद्ध धर्मोपदेश दे रहे थे। दासी ने बुद्ध को बताया कि उसकी मालकिन ने उसके साथ क्या किया था, उसे कैसे पीटा गया था और उसके नाक और कान कैसे काट दिए गए थे। वह भीड़ के बीच खड़ी हो गई ताकि सभी देख सकें कि उसके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया गया था।

इसलिए बुद्ध ने कहा, "यह सोचकर बुराई मत करो कि लोगों को इसके बारे में पता नहीं चलेगा। गुप्त रूप से किया गया बुरा कर्म, जब प्रकट होता है, तो बहुत पीड़ा और दुख लाता है; परन्तु अच्छा कर्म गुप्त रूप से किया जा सकता है, क्योंकि यह केवल सुख लाता है, दुख नहीं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 314)

दुक्कतं अकतम सेय्यो दुक्कतं पच्च तपति

यं कत्वा न नुतप्पति सुकतं कटञ्च सेय्यो

दुक्कतं [ दुक्कत ]: एक बुरा कर्म; अकतं [ अकत ]: यदि न किया गया हो; सेय्यो [ सेय्य ]: यह बड़ा है; दुक्कतं [ दुक्कत ]: बुरा कर्म; पच्छा : बाद में; तपति : पीड़ा देता है; तं : यदि कोई कर्म; कत्वा : करने के बाद; ना नुतप्पति : पश्चाताप न करे; सुकतं [ सुकत ]: उस प्रकार का पुण्य कर्म; कतंच : यदि किया गया हो; सेय्यो [ सेय्य ]: वह बहुत अच्छा है

बुरे कर्म न करना ही बेहतर है; बुरे कर्म का फल बाद में भुगतना पड़ता है। अच्छे कर्म करना बेहतर है क्योंकि उसके लिए पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 314)

ये श्लोक बुरे कर्मों के बुरे परिणामों को दर्शाते हैं। कर्म के परिणाम को विपाक कहा जाता है । कर्म और विपाक पर संक्षिप्त टिप्पणी इस प्रकार है :

कर्म क्रिया है, और विपाक , फल या परिणाम, उसकी प्रतिक्रिया है। जैसे प्रत्येक वस्तु की छाया होती है, वैसे ही प्रत्येक इच्छाजनित क्रिया का अपना उचित परिणाम अवश्य होता है। कर्म संभावित बीज के समान है। वृक्ष से उत्पन्न होने वाला फल विपाक है , जो उसका परिणाम है। जैसे कर्म अच्छा या बुरा हो सकता है, वैसे ही विपाक भी अच्छा या बुरा हो सकता है। जैसे कर्म मानसिक है, वैसे ही विपाक

भी मानसिक है; कर्म के बीज की प्रकृति के अनुसार इसे सुख या आनंद, दुख या दुःख के रूप में अनुभव किया जाता है। आनिसंस भौतिक परिस्थितियों के लिए लाभकारी सहवर्ती तत्व हैं, जैसे समृद्धि, स्वास्थ्य और दीर्घायु।

विपाक के अन्य परिणाम हानिकारक होते हैं और इन्हें आदिनव (बुरे परिणाम) के रूप में जाना जाता है। ये गरीबी, कुरूपता, बीमारी, अल्पजीवन आदि के रूप में प्रकट होते हैं।

कर्म से तात्पर्य सांसारिक चेतना के नैतिक और अनैतिक प्रकारों ( कुसला अकुसला लोकीय चित्त ) से है, और विपाक से सांसारिक चेतना के परिणामी प्रकारों ( लोकीय विपाकचित्त ) से है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 315

---

(धम्मपद 314) <<<< पिछला || धम्मपद 315 || अगला >>>> (धम्मपद 316 और 317)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 315 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Nagaram yatha paccantam
गुट्टम संतराबहिरम
evam gopetha attanam(1)
khano vo ma upaccaga
khanatita hi socanti
nirayamhi samappita.

---

श्लोक 315 : जैसे सीमावर्ती नगर की भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। उचित समय को व्यर्थ न जाने दो, क्योंकि जो इस अवसर को चूक जाते हैं, उन्हें निरय/नरक में गिरकर दुःख सहना पड़ता है।

---

1. एवं गोपेथा अत्तनम्: अतः अपनी रक्षा करो; अर्थात् आंतरिक और बाह्य दोनों इंद्रियों की रक्षा करो। छह आंतरिक इंद्रियाँ (इंद्रिय आधार) हैं आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन; छह बाह्य इंद्रियाँ (इंद्रिय विषय) हैं दृश्य वस्तु, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचार।

---

कई भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (315) का उच्चारण किया, जिसमें भिक्षुओं के एक समूह का जिक्र है, जिन्होंने वर्षा (वर्षा ऋतु के 3 महीने) एक सीमावर्ती शहर में बिताए थे।

उस सीमावर्ती कस्बे में अपने प्रवास के पहले महीने में, भिक्षुओं को कस्बेवासियों द्वारा भरपूर भोजन और देखभाल प्रदान की गई। अगले महीने कस्बे को कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ लोगों को बंधक बना लिया गया। इसलिए कस्बेवासियों को अपने कस्बे का

पुनर्निर्माण और किलेबंदी को मजबूत करना पड़ा। इस कारण वे भिक्षुओं की जरूरतों का उतना ध्यान नहीं रख पाए जितना वे रखना चाहते थे और भिक्षुओं को स्वयं ही अपना गुजारा करना पड़ा। वर्षा ऋतु के अंत में, वे भिक्षु श्रावस्ती के जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वर्षा ऋतु के दौरान उनके द्वारा झेली गई कठिनाइयों के बारे में जानकर बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इस या किसी और बात के बारे में मत सोचो; चिंतामुक्त और सहज जीवन जीना हमेशा कठिन होता है। जिस प्रकार नगरवासी अपने नगर की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार भिक्षु को भी सतर्क रहना चाहिए और अपना ध्यान दृढ़ता से अपने शरीर पर केंद्रित रखना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 315 : जैसे सीमावर्ती नगर की भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। उचित समय को व्यर्थ न जाने दो, क्योंकि जो इस अवसर को चूक जाते हैं, उन्हें निरय/नरक में गिरकर दुःख सहना पड़ता है।

---

प्रवचन के अंत में उन भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कई भिक्षुओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उन भिक्षुओं के एक समूह के संदर्भ में कहा था, जिन्होंने वर्षा ऋतु एक सीमावर्ती शहर में बिताई थी।
उस सीमावर्ती कस्बे में अपने प्रवास के पहले महीने में, भिक्षुओं को कस्बेवासियों द्वारा अच्छी तरह से भोजन और भोजन की व्यवस्था की गई थी और उनकी अच्छी देखभाल की गई थी। अगले महीने कस्बे को कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ लोगों को बंधक बना लिया गया। इसलिए, कस्बेवासियों को अपने कस्बे का पुनर्निर्माण करना पड़ा और किलेबंदी को मजबूत करना पड़ा। इस प्रकार, वे भिक्षुओं की जरूरतों का उतना ध्यान नहीं रख पाए जितना वे रखना चाहते थे और भिक्षुओं को स्वयं ही अपना गुजारा करना पड़ा। वर्षा ऋतु के अंत में, वे भिक्षु सावत्थी के जेतवन मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित करने आए। वर्षा ऋतु के दौरान उनके द्वारा झेली गई कठिनाइयों के बारे में जानकर, बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, इस या किसी और बात के बारे में मत सोचो; चिंतामुक्त, सहज जीवन जीना हमेशा कठिन होता है। जिस प्रकार कस्बेवासी अपने कस्बे की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार एक भिक्षु को भी सतर्क रहना चाहिए और अपना ध्यान दृढ़ता से अपने शरीर पर केंद्रित रखना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 315)
पच्चन्तं संतराबहिरं गुट्टं नागरं यथा ,
एवं अत्तनं गोपेथा हि खनातिता निरायमहि
समप्पिता समप्पिता सोकांत इ खानो वे मा उपक्कागा
पच्चन्तं [ पच्चन्त ]: सीमा पर स्थित; संतराबाहिरं [ संतराबाहिर ]: भीतर और बाहर; गुट्तं [ गुत्त ]: संरक्षित; नगरं [ नगर ]: एक शहर; यथा एवं : ठीक उसी प्रकार; अत्तानं [ अत्तान ]: मन; गोपेठ : रक्षा करना; हि : यदि किसी कारणवश; खणातीता : एक क्षण बीत जाए; निरयंहि : नरक में; सम्प्पिता : जन्म लेने के बाद; सोचन्ति : पश्चाताप कर सकता है; खणो [ खण ]: (इसलिए) वह क्षण; वे : निश्चित रूप से; मा उपच्चगा : भागने न दें—न फेंकें
जैसे सीमावर्ती शहर की सुरक्षा अंदर और बाहर दोनों तरफ से की जाती है, वैसे ही अपनी सुरक्षा करो। इस अवसर को हाथ से जाने मत दो। जो इस अवसर को चूक जाएंगे, उन्हें नरक में गिरकर पछतावा होगा।
टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 315)
इस श्लोक में बुद्ध की सलाह है कि मन की रक्षा उसी प्रकार की जाए जैसे शासक सीमावर्ती नगर की रक्षा करते हैं। मन की रक्षा करना मन की एकाग्रता ( भावना ) के अंतर्गत आता है , जिसका मूल उद्देश्य मन को निरंतर सजग रखना है।
बौद्ध ध्यान सिद्धांत का उद्देश्य सही एकाग्रता ( सम्मा-समाधि ) का अभ्यास करना है , जो अष्टांगिक मार्ग की पराकाष्ठा है। इस मार्ग का सर्वप्रथम वर्णन बुद्ध के आरंभिक उपदेश ' धम्मचक्कप्पवत्तना ' में मिलता है, जिसे 'धर्मचक्र का घुमाव' भी कहा जाता है। आत्मज्ञान प्राप्ति की विधि के रूप में अष्टांगिक मार्ग, जो बौद्ध धर्म का लक्ष्य है, को मध्य मार्ग कहा जाता है । इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह संयम की ओर अग्रसर होता है और दो अतिवादों से बचता है: एक ओर इंद्रिय सुखों में लिप्त होना और दूसरी ओर आत्म-यातना का पालन करना।
अतः इस विधि का अभ्यास दो चरम सीमाओं के बीच का मध्य मार्ग है, जो किसी भी प्रकार की अति से बचता है। किसी भी दिशा में अति से बचना चाहिए क्योंकि यह खतरनाक है। इसलिए, बौद्ध ध्यान का अभ्यास सांसारिक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता, जो अपनी सांसारिक इच्छाओं को कम करने के लिए तैयार नहीं है, और न ही यह किसी ऐसे व्यक्ति के लिए संभव है जो तपस्या में कट्टर है।

संयम का पालन करने के लिए एक ओर दृढ़ता और दूसरी ओर विचारशीलता का होना आवश्यक है। अतः हम मार्ग के सूत्र में पाते हैं कि सही एकाग्रता को सही प्रयास और सही जागरूकता के दो सिद्धांतों द्वारा अच्छी तरह से समर्थन मिलता है। इनमें से, सही प्रयास इंद्रिय सुख में डूबने की प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति में उत्थान की क्षमता को बढ़ावा देता है; जबकि सही जागरूकता तपस्या की अति में गिरने से बचाव का काम करती है।

सही एकाग्रता उस नैतिक शुद्धता के बिना संभव नहीं है जो अशुद्ध कर्मों, शब्दों और विचारों से मुक्ति दिलाती है, और इसलिए यह सही वाणी, सही कर्म और सही आजीविका को अनिवार्य बनाती है। ये शील या नैतिक शुद्धता के तीन सिद्धांत हैं, जो ध्यान की अनिवार्य तैयारी हैं। इन सिद्धांतों का प्रशिक्षण बौद्ध धर्म का सबसे मूलभूत पहलू है और चिंतनशील जीवन का महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए, सबसे पहले, व्यक्ति को मध्यम मार्ग के नियमों के अनुसार नैतिक शुद्धता का प्रशिक्षण लेना चाहिए, ताकि प्रगति के बढ़ते क्रम में ध्यान के पूर्ण और तत्काल परिणाम प्राप्त हो सकें। जो शिष्य इन आदर्शों का पालन करता है, उसे आत्मविश्वास, आंतरिक शुद्धता, बाहरी भय का अभाव और इस प्रकार मानसिक शांति प्राप्त होती है, जो ध्यान में अंतिम सफलता के लिए अनिवार्य कारक हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 316,317

———————————————————————

(धम्मपद 315) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 316 और 317 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 318 और 319)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 316 और 317 - निगंठ वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Alajjitaye lajjanti
lajjitaye na lajjare
मिच्चदित्तिसमादाना
satta gacchanti duggatim.
अभये थायादास्सिनो
bhaye cabhayadassino
मिच्चदित्तिसमादाना
satta gacchanti duggatim.

———————————————————————

श्लोक 316 : वे प्राणी जो उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, जो उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे शर्मिंदा होना चाहिए, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 317 : जो प्राणी खतरनाक चीजों में खतरा देखते हैं, जो खतरनाक चीजों में खतरा नहीं देखते, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

———————————————————————

निगंथ तपस्वियों की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (316) और (317) निगंथा (जैन) तपस्वियों के संदर्भ में कहे, जिन्होंने अपने शरीर के केवल सामने के हिस्से को ढका था।

एक दिन कुछ निगंथ (जैन) भिक्षु भिक्षा मांगने निकले और उन्होंने अपने भिक्षापात्रों को कपड़े से ढक रखा था। कुछ भिक्षुओं ने उन्हें देखकर कहा, "शरीर के अगले भाग को ढकने वाले ये निगंथ तपस्वी उन अचेलक तपस्वियों से अधिक आदरणीय हैं जो नग्न अवस्था में भिक्षा मांगते हैं।" यह सुनकर उन तपस्वियों ने उत्तर दिया, "जी हाँ, हम अपने अगले भाग को (अपने भिक्षापात्रों को ढककर) ढकते हैं; लेकिन हम नग्न होने की शर्म से ऐसा नहीं करते। हम अपने भिक्षापात्रों को केवल इसलिए ढकते हैं ताकि भोजन पर धूल न पड़े, क्योंकि धूल में भी जीवन होता है।"

जब भिक्षुओं ने निगंथ तपस्वियों की बातें बताईं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जो तपस्वी अपने शरीर के केवल आगे के भाग को ढक कर घूमते हैं, वे उस बात से लज्जित नहीं होते जिससे उन्हें लज्जित होना चाहिए, बल्कि वे उस बात से लज्जित होते हैं जिससे उन्हें लज्जित नहीं होना चाहिए; अपने इस गलत दृष्टिकोण के कारण वे केवल बुरे गंतव्यों की ओर ही जाएंगे।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 316 : वे प्राणी जो उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, जो उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे शर्मिंदा होना चाहिए, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

---

श्लोक 317 : जो प्राणी खतरनाक चीजों में खतरा देखते हैं, जो खतरनाक चीजों में खतरा नहीं देखते, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में कई निगंथ तपस्वी भयभीत हो गए और बौद्ध धर्म में शामिल हो गए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बुरे तपस्वियों के एक समूह की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने निगंठ तपस्वियों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे, जो अपने शरीर के केवल सामने के हिस्से को ही ढकते थे।

एक दिन कुछ निगंठ भिक्षु भिक्षा मांगने निकले, उनके भिक्षापात्र कपड़े से ढके हुए थे। कुछ भिक्षुओं ने उन्हें देखकर कहा, "शरीर के अगले भाग को ढकने वाले ये निगंठ भिक्षु उन अचेलक भिक्षुओं से अधिक आदरणीय हैं जो नग्न अवस्था में घूमते हैं।" यह सुनकर उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "जी हाँ, हम अपने अगले भाग को (अपने भिक्षापात्रों को ढककर) ढकते हैं; लेकिन हम नग्न होने की शर्म से ऐसा नहीं करते। हम अपने भिक्षापात्रों को केवल इसलिए ढकते हैं ताकि भोजन पर धूल न पड़े, क्योंकि धूल में भी जीवन होता है।"

जब भिक्षुओं ने निगंठ तपस्वियों की बात बताई, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जो तपस्वी अपने शरीर के केवल आगे के हिस्से को ढक कर घूमते हैं, वे उस बात से शर्मिंदा नहीं होते जिससे उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए, बल्कि वे उस बात से शर्मिंदा होते हैं जिससे उन्हें शर्मिंदा नहीं होना चाहिए; अपने इस गलत दृष्टिकोण के कारण वे केवल बुरे गंतव्यों की ओर ही जाएंगे।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 316)

अलज्जितये लज्जन्ति लज्जिताये न लज्जरे मिच्चा
दिट्ठि समाधानं सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति

alajjitāye : जिसमें किसी को शर्म नहीं आनी चाहिए; lajjanti : (यदि किसी को) शर्म आनी चाहिए; lajjitāye : और जिसमें किसी को शर्म आनी चाहिए; na lajjare : कोई शर्मिंदा नहीं है; micchā diṭṭhi samādānā : झूठे विश्वासों को अपनाना; sattā : ये प्राणी; duggatiṃ [ duggati ]: दुखद अवस्थाओं (नरक) में; gacchanti : प्रस्थान करना

जो लोग उन चीजों से शर्मिंदा होते हैं जिनसे उन्हें शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, और जो लोग उन चीजों से शर्मिंदा नहीं होते जिनसे उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए, वे सभी जो झूठे विचारों को अपनाते हैं, दुखद अवस्थाओं (नरक) में जाते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (317)

अभये भयादस्सिनो , भये चाभयदस्सिनो
मिच्छादिथिसमदाना सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति

अभय : जिससे भयभीत नहीं होना चाहिए; भयदस्सिनो च : जो भय देखते हैं; भय : जिससे भयभीत होना चाहिए; अभयदस्सिनो च : भय न देखने वाले; मिच्छदिट्ठिसमादाना : झूठे विश्वासों को अपनाने वाले; सत्ता : वे प्राणी; दुग्गतिं [ दुग्गति ]: दुखद अवस्थाओं (नरक) में; गच्छन्ति : प्रस्थान करने वाले

कुछ लोग उन चीजों से डरते हैं जिनसे उन्हें डरना नहीं चाहिए। वहीं कुछ लोग उन चीजों से नहीं डरते जिनसे उन्हें वास्तव में डरना चाहिए। झूठे विश्वासों को अपनाने वाले सभी लोग दुखद अवस्थाओं की ओर अग्रसर होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 316-317)

यह घटना निगंठों (नग्न तपस्वियों) के एक समूह के व्यवहार के कारण घटी । बुद्ध के समय में जंबूद्वीप विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचालित अनेक आध्यात्मिक और धार्मिक प्रणालियों से भरा हुआ था।

बौद्ध साहित्य में बुद्ध के लगभग छह वरिष्ठ समकालीनों का बार-बार उल्लेख मिलता है, उदाहरण के लिए दीघनिकाय ( सामञ्ञफल-सूत्र और इसका संस्कृत संस्करण)। इन संदर्भों से यह प्रतीत होता है कि मगध के राजा अजातशत्रु ने इनमें से कई शिक्षकों से मुलाकात की और उनसे अलग-अलग अपने तपस्या के परिणामों को स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में बताने को कहा। ये सभी देश में अपने अनुयायियों से भरे धार्मिक संप्रदायों के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके नाम और उनके विशिष्ट सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण ग्रंथ में दिया गया है। हालांकि, यह संभव है कि दी गई जानकारी पक्षपातपूर्ण हो, क्योंकि यह उनके विरोधियों से प्राप्त हुई है; वास्तव में, उनके द्वारा किए गए गलत कथन आंशिक रूप से जानबूझकर और आंशिक रूप से अज्ञानता के कारण हैं। फिर भी, बौद्ध धर्म के संस्थापक के विचारों को सही ढंग से समझने और उनकी सराहना करने के लिए उनके विचारों का अध्ययन करना रुचिकर है।

इन छह विचारकों में से निगंठ नातपुत्त, जो जैन परंपरा के अनुसार वर्तमान विश्व चक्र के संस्थापक या अंतिम पैगंबर महावीर हैं, बुद्ध से कुछ अधिक उम्र के प्रतीत होते हैं। उन्होंने नैतिक सिद्धांतों का प्रचार किया, लेकिन उन्हें शायद यह जानकारी नहीं थी कि इसी तरह के विचार एक अतुलनीय वरिष्ठ तपस्वी पार्श्व के भी थे। पार्श्व को अब महावीर का पूर्ववर्ती माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि वे महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले जीवित थे। पार्श्व की नैतिक संहिता में चार नियम थे, जबकि महावीर की संहिता में पाँच नियम थे। इनमें से पहले तीन नियम, अर्थात् जीवित प्राणियों की हत्या न करना, बिना दान के उपयोग की वस्तुएँ न लेना और झूठ न बोलना, पार्श्व और महावीर दोनों के सिद्धांतों में समान हैं। पार्श्व की शिक्षाओं का चौथा नियम, अपरिग्रह का नियम , जिसमें पत्नी सहित किसी भी सांसारिक संपत्ति का अभाव है, को महावीर ने दो भागों में विभाजित करके पाँच नियमों की संहिता बनाई। महावीर की संहिता का चौथा नियम है पत्नी न लेना या ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना, और महावीर की संहिता का पाँचवाँ नियम है वस्त्रों के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक संपत्ति का अभाव। ये दोनों नियम मिलकर पार्श्व के चौथे नियम का निर्माण करते प्रतीत होते हैं। पार्श्व और महावीर की आचार संहिता के व्यावहारिक या बाह्य पहलुओं में मुख्य अंतर यह प्रतीत होता है कि पार्श्व और उनके अनुयायी अचेलक थे , जबकि महावीर और उनके अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते थे, तथा अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु का अभाव रखते थे। दूसरे शब्दों में, महावीर द्वारा प्रचारित जैन धर्म पार्श्व धर्म के समान ही है, परन्तु कुछ अधिक आधुनिक है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि पार्श्व की मृत्यु के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद ये दोनों संप्रदाय एक हो गए, जब पार्श्व और महावीर के शिष्य श्रावस्ती में मिले और उनका विलय हुआ। बाद में जैनों ने पार्श्व से पहले बाईस और नबी जोड़कर इस विलय की व्याख्या अलग ढंग से की, जिससे पार्श्व उनके तेईसवें और महावीर चौबीसवें नबी बन गए। हालांकि, यह मानना बिलकुल सही होगा कि पार्श्व और महावीर ने स्वतंत्र रूप से एक ऐसा दर्शन और धार्मिक प्रणाली विकसित की जिसके सिद्धांत एक समान थे।

सामञ्ञफल-सूत्र में निगंठ नातपुत्त का उल्लेख चार प्रकार के संयम के सिद्धांत का पालन करने वाले के रूप में किया गया है: ठंडे पानी के उपयोग से परहेज, क्योंकि उसमें जीवन होता है, और हत्या और यौन संबंध जैसे पापी कार्यों से परहेज। वे सभी पापों से मुक्त थे और उन्होंने स्वयं को शुद्ध कर लिया था। उदंबरिका-सीहनाद-सूत्र में उनके लिए वर्णित संयम भिन्न हैं, लेकिन पार्श्व के चार व्रतों के समान हैं। जैन धर्म के अनुसार , जैन धर्म केवल एक नैतिक प्रणाली नहीं है, बल्कि अनेकांत या स्याद्वाद के सिद्धांत पर आधारित एक दर्शन भी है । यह सिद्धांत हर चीज के दो पहलुओं, शाश्वत और गैर-शाश्वत, पर विचार करता है। आत्मा अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार शरीर-स्थानांतरण करती है। जैन धर्म हर चीज में जीव (जीवन) के अस्तित्व को मानता है, इसलिए यह ऐसे आचरण का आदेश देता है जिससे किसी भी जीव को हानि न पहुंचे । यदि आत्मा इंद्रिय विषयों के प्रभाव में आ जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और संसार में लीन हो जाती है । आत्मा को इन अशुद्धियों से शुद्ध रखने और उसकी मुक्ति सुनिश्चित करने के लिए संयम का अभ्यास करना आवश्यक है। इसके लिए सही ज्ञान, आस्था और आचरण का सहारा लेना या उन्हें प्राप्त करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, बौद्ध स्रोत, जैसे कि अंगुत्तरा और एकनिपात के चौहत्तर सूत्र , जैन धर्म की अवधारणाओं का उपहास उड़ाते हैं, विशेष रूप से पाप पर विजय पाने के उसके विचार, गतिविधियों पर उसके प्रतिबंध और कुछ प्रकार के वस्त्रों पर उसके जोर का।

बुद्ध के अगले महत्वपूर्ण समकालीन मक्खली गोसाला थे। वे अचेलक संप्रदाय से संबंधित थे , और जैसा कि उनके नाम के पहले भाग से स्पष्ट है, वे बाँस की छड़ी ( मस्कारिन ) धारण करते थे। कहा जाता है कि वे कुछ समय के लिए महावीर के शिष्य रहे, लेकिन बाद में उनसे विमुख हो गए। इसके बाद, उन्होंने संभवतः आजीविका संप्रदाय के नाम से एक स्वतंत्र संप्रदाय की स्थापना की। बाद के लेखकों

ने दो पूर्ववर्तियों, नंदा वच्छ और किसा संकिच्छ का उल्लेख किया है, इस प्रकार इस संप्रदाय के तीन पैगंबरों का उल्लेख किया है। यह संप्रदाय अब विलुप्त हो चुका है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लोकप्रियता और यहाँ तक कि राजशाही संरक्षण भी प्राप्त था। गोसाला द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को संसार-विशुद्धि कहा जाता है , जिसका अर्थ है सभी प्रकार के अस्तित्व से गुजरकर ही पवित्रता प्राप्त करना। गोसाला का मानना था कि मनुष्य के दुख या उसके उद्धार का कोई विशेष कारण नहीं है। वे मानवीय प्रयासों में विश्वास नहीं करते थे और मानते थे कि सभी प्राणी भाग्य के आगे असहाय हैं। उनका मानना था कि सभी प्राणी, चाहे बुद्धिमान हों या मूर्ख, संसार से गुजरने के लिए नियत हैं और इस चक्र के पूरा होने पर उनका दुख समाप्त हो जाएगा। किसी भी मानवीय प्रयास से यह अवधि कम या ज्यादा नहीं हो सकती। धागे के गोले की तरह, संसार की एक निश्चित अवधि होती है जिससे प्रत्येक प्राणी को गुजरना पड़ता है।
शेष चार शिक्षक, जिनका उल्लेख बुद्ध के समकालीन के रूप में किया गया है, ने भावी पीढ़ियों पर वैसी छाप नहीं छोड़ी जैसी महावीर और कुछ हद तक गोसाला ने छोड़ी थी।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 318,319

———————————————————————

(धम्मपद 316 और 317) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 318 और 319 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 320, 321 और 322)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 318 और 319 - तिट्ठियास्वक वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Avajje vajjamatino
vajje cavajjadassi no
micchaditthisamada
satta gacchanti duggatim.
Vajjanca vajjato natva
avajjanca avajjato
सम्मदित्तिसमदना
satta gacchanti suggatim.

———————————————————————

श्लोक 318 : जो प्राणी जो गलत नहीं है उसमें गलत की कल्पना करते हैं, जो गलत में गलत नहीं देखते हैं, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

———————————————————————

श्लोक 319 : जो प्राणी गलत को गलत जानते हैं, जो सही को सही जानते हैं और जो सही विचार रखते हैं, वे सुखी अस्तित्व के तल (सुग्गति) पर जाते हैं।

———————————————————————

गैर-बौद्ध तपस्वियों के शिष्यों की कहानी

निग्रोदरमा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तित्थी (गैर-बौद्ध तपस्वियों) के कुछ शिष्यों के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (318) और (319) का उच्चारण किया।

तित्थी संप्रदाय के शिष्य नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे बुद्ध के अनुयायियों के बच्चों के साथ घुलें-मिलें। वे अक्सर अपने बच्चों से कहते थे, "जेतवन मठ मत जाओ, शाक्य वंश के भिक्षुओं को प्रणाम मत करो।" एक बार, जब तित्थी संप्रदाय के लड़के जेतवन मठ के प्रवेश द्वार के पास एक बौद्ध लड़के के साथ खेल रहे थे, तो उन्हें बहुत प्यास लगी। चूंकि तित्थी संप्रदाय के शिष्यों के बच्चों को उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश न करने के लिए कहा था, इसलिए उन्होंने उस बौद्ध लड़के से मठ जाकर उनके लिए पानी लाने को कहा। पानी पीने के बाद, वह बौद्ध लड़का बुद्ध को प्रणाम करने गया और उसने बुद्ध को अपने उन दोस्तों के बारे में बताया जिन्हें उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश करने से मना किया था। तब बुद्ध ने उस लड़के से कहा कि वह गैर-बौद्ध लड़कों को मठ में आकर पानी पीने के लिए कहे। जब वे लड़के आए, तो बुद्ध ने उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें प्रवचन दिया। परिणामस्वरूप, वे लड़के तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ आस्था रखने लगे।

जब लड़के घर लौटे, तो उन्होंने जेतवन मठ की अपनी यात्रा और बुद्ध द्वारा उन्हें तीन रत्नों के उपदेश दिए जाने के बारे में बातें कीं। लड़कों के माता-पिता अज्ञानी होने के कारण रोने लगे, "हमारे बेटों ने हमारे धर्म के प्रति विश्वासघात किया है, वे बर्बाद हो गए हैं," इत्यादि। कुछ समझदार पड़ोसियों ने रोते हुए माता-पिता को सलाह दी कि वे रोना बंद करें और अपने बेटों को बुद्ध के पास भेजें। किसी तरह वे मान गए और लड़के अपने माता-पिता के साथ बुद्ध के पास गए।

बुद्ध ने उनके आने का कारण जानकर उनसे निम्नलिखित छंदों में बात की:

---

श्लोक 318 : जो प्राणी जो गलत नहीं है उसमें गलत की कल्पना करते हैं, जो गलत में गलत नहीं देखते हैं, और जो गलत विचार रखते हैं, वे अस्तित्व के निचले स्तर (दुग्गति) पर जाते हैं।

---

श्लोक 319 : जो प्राणी गलत को गलत जानते हैं, जो सही को सही जानते हैं और जो सही विचार रखते हैं, वे सुखी अस्तित्व के तल (सुग्गति) पर जाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में वे सभी लोग तीन रत्नों में दृढ़ आस्था रखने लगे, और बुद्ध के आगे के प्रवचनों को सुनने के बाद, उन्होंने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

अध्याय बाईस का अंत: निरय (नरक)

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गैर-बौद्ध शिक्षकों के शिष्यों की कहानी

निग्रोदारामा मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तित्थियों (गैर-बौद्ध तपस्वियों) के कुछ शिष्यों के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

तित्थी संप्रदाय के शिष्य नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे बुद्ध के अनुयायियों के बच्चों के साथ घुलें-मिलें। वे अक्सर अपने बच्चों से कहते थे, “जेतवन मठ मत जाओ, शाक्य वंश के भिक्षुओं को प्रणाम मत करो।” एक बार, जब तित्थी संप्रदाय के लड़के जेतवन मठ के प्रवेश द्वार के पास एक बौद्ध लड़के के साथ खेल रहे थे, तो उन्हें बहुत प्यास लगी। चूंकि तित्थी संप्रदाय के शिष्यों के बच्चों को उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश न करने के लिए कहा था, इसलिए उन्होंने उस बौद्ध लड़के से मठ जाकर उनके लिए पानी लाने को कहा। पानी पीने के बाद, वह बौद्ध लड़का बुद्ध को प्रणाम करने गया और उसने बुद्ध को अपने उन दोस्तों के बारे में बताया जिन्हें उनके माता-पिता ने बौद्ध मठ में प्रवेश करने से मना किया था। तब बुद्ध ने उस लड़के से कहा कि वह गैर-बौद्ध लड़कों को मठ में आकर पानी पीने के लिए कहे। जब वे लड़के आए, तो बुद्ध ने उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के अनुसार उन्हें प्रवचन दिया। परिणामस्वरूप, वे लड़के तीन रत्नों, अर्थात् बुद्ध, धम्म और संघ में दृढ़ आस्था रखने लगे।

जब लड़के घर लौटे, तो उन्होंने जेतवन मठ की अपनी यात्रा और बुद्ध द्वारा उन्हें तीन रत्नों के उपदेश दिए जाने के बारे में बातें कीं। लड़कों के माता-पिता अज्ञानी होने के कारण रोने लगे, “हमारे बेटों ने हमारे धर्म के प्रति विश्वासघात किया है, वे बर्बाद हो गए हैं।” कुछ समझदार पड़ोसियों ने रोते हुए माता-पिता को सलाह दी कि वे रोना बंद करें और अपने बेटों को बुद्ध के पास भेजें। किसी तरह वे मान गए और लड़के, साथ ही उनके माता-पिता, बुद्ध के पास गए।

बुद्ध यह जानते हुए कि वे किस उद्देश्य से आए थे, उन्होंने उन्हें श्लोक सुनाए।

प्रवचन के अंत में, वे सभी लोग तीन रत्नों में दृढ़ आस्था रखने लगे, और बुद्ध के आगे के प्रवचन को सुनने के बाद, उन्होंने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 318)

अवज्जे वज्जदस्सिनो वज्जे सीए वज्जदस्सिनो सीए
मिच्छादिथिसमदाना सत्ता दुग्गतिं गच्छन्ति
अवज्जे : जो गलत नहीं है; वज्जादास्सिनो [ वज्जादास्सिना ]: वे गलत मानते हैं; वज्जे सीए : जो गलत है उसमें; वज्जादासिनो [ वज्जादासिना ]: वे गलत देखते हैं; मिच्छादिथिसमादान : ऐसी झूठी मान्यताओं को अपनाना; सत्ता : वे प्राणी; डुग्गतिं [ डुग्गाति ]: दुखद स्थिति के लिए; गच्छन्ति : प्रस्थान
जो लोग सही को गलत मानते हैं, और जो लोग गलत को सही मानते हैं, ये दोनों ही अपने झूठे विश्वासों के कारण मृत्यु के समय दयनीय स्थिति में पहुँच जाते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 319)
वज्जं च वज्जतो नात्वा , अवज्जं अवज्जतो च
सम्मादिथिसमदाना सत्ता सुग्गतिं गच्छन्ति
वज्जं [ वज्ज ]: जो गलत है; वज्जतो [ वज्जत ]: गलत के रूप में; ञत्वा : जानकर; अवज्जं [ अवज्ज ]: जो गलत नहीं है; अवज्जतो [ अवज्जत ]: गलत के रूप में नहीं; सम्मादित्तिसमादाना : सही दृष्टिकोण रखने वाले; सत्ता : प्राणी; सुग्गतिं [ सुग्गति ]: स्वर्ग को; गच्छन्ति : जाना
वे त्रुटि को त्रुटि और सत्य को सत्य मानते हैं। जो लोग सत्यवादी विचारों को अपनाते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 318-319)
बुद्ध के समय का सामाजिक परिवेश विभिन्न धर्मों और आध्यात्मिक प्रणालियों का एक जटिल मिश्रण था। इनमें से कुछ प्रणालियों का नेतृत्व उन लोगों द्वारा किया जाता था जो बुद्ध के विरोधी थे। इन श्लोकों को जन्म देने वाली घटना दर्शाती है कि कैसे गैर-बौद्ध माता-पिता ने अपने बच्चों को जेतवन मठ में प्रवेश करने से रोकने का प्रयास किया। बुद्ध के समकालीन धार्मिक नेताओं पर एक और टिप्पणी।
बौद्ध साहित्य में बुद्ध के लगभग छह वरिष्ठ समकालीनों का बार-बार उल्लेख मिलता है, उदाहरण के लिए, दीघ-निकाय ( सामञ्ञफल-सूत्र और इसका संस्कृत संस्करण)। इन संदर्भों से प्रतीत होता है कि मगध के राजा अजातसत्तु ने इनमें से कई शिक्षकों से मुलाकात की और उनसे अलग-अलग अपने तपस्या के परिणामों को स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में बताने को कहा। ये सभी देश में अपने अनुयायियों से भरे धार्मिक संप्रदायों के संस्थापक के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके नाम और उनके विशिष्ट सिद्धांतों का संक्षिप्त उल्लेख ग्रंथ में मिलता है। हालांकि, यह संभव है कि दी गई जानकारी पक्षपातपूर्ण हो, क्योंकि यह उनके विरोधियों से प्राप्त हुई है; वास्तव में, उनके द्वारा की गई गलत व्याख्याएं आंशिक रूप से जानबूझकर और आंशिक रूप से अज्ञानता के कारण हैं। फिर भी, बौद्ध धर्म के संस्थापक के विचारों को सही ढंग से समझने और उनकी सराहना करने के लिए उनके विचारों का अध्ययन करना रुचिकर है।
कई ऐसे व्यक्ति थे जो सत्य की खोज में अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। इनमें छह ऐसे धार्मिक शिक्षक भी शामिल थे जो उत्तर भारत के कई राज्यों में सुप्रसिद्ध थे और जिनके काफी अनुयायी थे।
ये छह शिक्षक थे,
पूर्णा कस्सपा,
मक्खली गोसाला,
अजिता केसकंबली,
पकुधा कच्चायना,
समजय बेलाथिपुत्त और
निगण्ड नाथपुत्त।
इन छह शिक्षकों के अलावा, नंदा वच्चा और किसा समकिच्चा जैसे अन्य शिक्षक भी थे।
इन छह विचारकों में से निगंठ नाथपुत्त, जो जैन परंपरा के अनुसार वर्तमान विश्व चक्र के संस्थापक या अंतिम पैगंबर महावीर हैं, बुद्ध से कुछ अधिक उम्र के प्रतीत होते हैं। उन्होंने नैतिक सिद्धांतों का प्रचार किया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि इसी तरह के विचार एक अतुलनीय वरिष्ठ तपस्वी पार्श्व के भी थे। पार्श्व को अब महावीर का पूर्ववर्ती माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि वे महावीर से ढाई सौ वर्ष पहले जीवित थे। पार्श्व की नैतिक संहिता में चार नियम थे, जबकि महावीर की संहिता में पाँच नियम थे। इनमें से पहले तीन नियम, अर्थात् जीवित प्राणियों की हत्या न करना, बिना दान के उपयोग की वस्तुएँ न लेना और झूठ न बोलना, पार्श्व और महावीर दोनों के सिद्धांतों में समान हैं। पार्श्व की शिक्षाओं का चौथा नियम, अपरिग्रह का नियम, जिसमें पत्नी सहित किसी भी सांसारिक संपत्ति का त्याग करना शामिल है, को महावीर ने दो भागों में विभाजित करके पाँच नियमों की संहिता बनाई। महावीर की संहिता का चौथा नियम है पत्नी न लेना या ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना, और महावीर की संहिता का पाँचवाँ नियम है वस्त्रों के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक संपत्ति का त्याग करना। ये दोनों नियम मिलकर पार्श्व के चौथे नियम का निर्माण करते प्रतीत होते हैं। पार्श्व और महावीर की आचार संहिता के व्यावहारिक या बाह्य पहलुओं में मुख्य अंतर यह प्रतीत होता है कि पार्श्व और उनके

अनुयायी अचेलक या नग्न थे, जबकि महावीर और उनके अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते थे, तथा अन्य किसी भी सांसारिक वस्तु का त्याग करते थे। दूसरे शब्दों में, महावीर द्वारा प्रचारित जैन धर्म पार्श्व के धर्म के समान ही है, परन्तु कुछ अधिक आधुनिक है। इसलिए यह स्वाभाविक था कि ये दोनों संप्रदाय एक हो गए, जैसा कि वास्तव में पार्श्व की मृत्यु के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद हुआ, जब पार्श्व और महावीर के शिष्य श्रावस्ती में मिले और उनका विलय हुआ। बाद में, जैनों ने पार्श्व से पहले बाईस पैगंबरों को जोड़कर इस संप्रदाय के विलय की व्याख्या अलग ढंग से की, जिससे पार्श्व उनके तेईसवें और महावीर चौबीसवें पैगंबर बन गए। हालांकि, यह मानना बिल्कुल सही होगा कि पार्श्व और महावीर ने स्वतंत्र रूप से एक दर्शन और एक धार्मिक प्रणाली विकसित की, जिसके सिद्धांत एक समान थे।

सामञ्ञफल-सूत्र में निगंठ नाथपुत्त का उल्लेख चार प्रकार के संयम के सिद्धांत का पालन करने वाले के रूप में किया गया है: ठंडे पानी के उपयोग से परहेज, क्योंकि उसमें जीवन होता है, और हत्या और यौन संबंध जैसे पापी कार्यों से परहेज। वे सभी पापों से मुक्त थे और उन्होंने स्वयं को शुद्ध कर लिया था। उदंबरिका-सीहनाद-सूत्र में उनके लिए वर्णित संयम भिन्न हैं, लेकिन पार्श्व के चार व्रतों के समान हैं।

बुद्ध के अगले महत्वपूर्ण समकालीन मक्खली गोसाला थे। वे अचेलक संप्रदाय से संबंधित थे, और जैसा कि उनके नाम के पहले भाग से स्पष्ट है, वे बाँस की छड़ी (मस्कारिन) धारण करते थे। कहा जाता है कि वे कुछ समय के लिए महावीर के शिष्य रहे, लेकिन बाद में उनसे विमुख हो गए। इसके बाद, उन्होंने संभवतः आजीविका संप्रदाय के नाम से एक स्वतंत्र संप्रदाय की स्थापना की। बाद के लेखकों ने दो पूर्ववर्तियों, नंदा वच्छ और किसा समकिच्छ का उल्लेख किया है, इस प्रकार इस संप्रदाय के तीन पैगंबर बताए गए हैं। यह संप्रदाय अब विलुप्त हो चुका है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लोकप्रियता और यहाँ तक कि राजशाही संरक्षण भी प्राप्त था। गोसाला द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को संसार-विशुद्धि कहा जाता है, जिसका अर्थ है सभी प्रकार के अस्तित्व से गुजरकर ही पवित्रता प्राप्त करना। गोसाला का मानना था कि मनुष्य के दुख या उसके उद्धार का कोई विशेष कारण नहीं है। वे मानवीय प्रयासों में विश्वास नहीं करते थे, और मानते थे कि सभी प्राणी भाग्य के आगे असहाय हैं। उनका मानना था कि सभी प्राणी, चाहे बुद्धिमान हों या मूर्ख, संसार से गुजरने के लिए नियत हैं और इस चक्र के पूरा होने पर उनका दुख समाप्त हो जाएगा। किसी भी मानवीय प्रयास से यह अवधि कम या ज्यादा नहीं हो सकती। धागे के गोले की तरह, संसार की एक निश्चित अवधि होती है, जिससे प्रत्येक प्राणी को गुजरना पड़ता है।

मखली गोसाला का जन्म एक गौशाला में हुआ था। एक दिन वह कीचड़ भरे मैदान में अपने स्वामी के पीछे सिर पर तेल का घड़ा लेकर चल रहा था, तभी स्वामी ने उससे कहा (मा खली) 'गिरना मत', लेकिन वह फिसलकर गिर गया। डर के मारे वह भागने लगा, पर स्वामी ने उसे कपड़े से पकड़ लिया। हालांकि, स्वामी के हाथों में कपड़ा छोड़कर वह भाग गया और गांव में उसका वैसा ही स्वागत हुआ जैसा पूर्ण कस्सपा का हुआ था।

शेष चार शिक्षक, जिनका उल्लेख बुद्ध के समकालीन के रूप में किया गया है, ने भावी पीढ़ियों पर वैसी छाप नहीं छोड़ी जैसी महावीर और कुछ हद तक गोसाला ने छोड़ी थी।

पूर्णा कस्सपा का कुल नाम कस्सपा था, और उन्हें पूर्णा (पूर्ण करने वाला) कहा जाता था क्योंकि उनके जन्म से ही घर में सौ दासों की सूची पूरी हो गई थी। उस घर में उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया, इसलिए वे वहाँ से भाग निकले, लेकिन चोरों ने उनके कपड़े चुरा लिए। घास या सरकंडे जैसी किसी और चीज़ से खुद को ढकना न जानने के कारण, वे बिना कपड़ों के एक गाँव में प्रवेश कर गए। उन्हें देखकर लोगों ने सोचा कि वे एक पवित्र तपस्वी हैं, जिन्हें किसी भी चीज़ से लगाव नहीं है, और उन्हें भोजन देने और उनकी देखभाल करने लगे। हालाँकि उन्हें बाद में वस्त्र मिले, लेकिन उन्होंने उन्हें नहीं पहना, क्योंकि लोग वस्त्रों से उनके अनासक्ति के कारण उनका सम्मान करते थे। इस प्रकार उनके तप की शुरुआत हुई, और समय के साथ उनके पाँच सौ तपस्वी अनुयायी बन गए।

अजिथा केसकंबली को यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि वे मानव बालों से बना एक वस्त्र पहनते थे जो सर्दी के मौसम में ठंडा और गर्मी के मौसम में गर्म रहता था, और जिसकी गंध दुर्गंधयुक्त होती थी और शरीर के लिए असहज था।

पकुधा कच्चायना ठंडे पानी से हमेशा परहेज करते थे। जब वे किसी नदी या धारा को पार करते थे, तो वे अपने नियमों का उल्लंघन मानते थे और अपने नियमों को बहाल करने के लिए रेत का स्तूप खड़ा करते थे।

संजय बेल्लत्थिपुत्त बेल्लत्था के पुत्र थे। निगंठ नाथपुत्त नाथ के पुत्र थे, और उनका दावा था कि उन्हें किसी भी चीज से कोई लगाव नहीं है और वे कभी भी वस्त्र नहीं पहनते थे।

बुद्ध के ज्ञानोदय से बहुत पहले, ये छह शिक्षक विभिन्न राज्यों में यात्रा कर रहे थे और अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने स्वयं को मान्यता प्राप्त धार्मिक शिक्षकों के रूप में स्थापित कर लिया था और वे लोगों के बीच सुप्रसिद्ध थे।

जब वे अपनी यात्रा के दौरान सावत्थी पहुंचे, तो उनके अनुयायियों ने जाकर राजा पसेनादि को इन शिक्षकों के आगमन और उनके ज्ञान प्राप्त करने की सूचना दी। राजा ने कहा:

"आप स्वयं उन्हें आमंत्रित करके महल में ले आइए।" लोग गए और उन्हें बताया कि राजा ने उन्हें महल में भोजन के लिए आमंत्रित किया है। परन्तु उन्होंने निमंत्रण स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। जब लोगों ने उनसे बार-बार महल आने का अनुरोध किया, तो उन्होंने अपने अनुयायियों के प्रति शिष्टाचारवश सहमति दे दी और साथ में महल चले गए।

राजा ने उन्हें बैठने के लिए जगह दी, लेकिन वे महंगी सीटों पर नहीं बैठे, बल्कि बेंचों और ज़मीन पर बैठ गए। राजा उनके व्यवहार से समझ गया कि उनमें ज्ञान की कमी है, इसलिए उसने उन्हें भोजन नहीं दिया, बल्कि तुरंत पूछा कि क्या वे ज्ञानी हैं। वे जानते थे कि यदि वे ज्ञानी होने का दावा करेंगे, तो राजा उनसे उनके ज्ञान के बारे में प्रश्न करेगा, और यदि वे उसे संतुष्ट नहीं कर पाए, तो वह उन्हें शारीरिक क्षति पहुँचाएगा। इसलिए, अपने हित में, उन्होंने स्वीकार किया कि वे ज्ञानी नहीं हैं। राजा ने उन्हें महल से बाहर भेज दिया। जब वे महल से बाहर आ रहे थे, तो उनके अनुयायियों ने पूछा:

"क्या राजा ने प्रश्न पूछे और क्या उन्होंने आपके साथ अच्छा व्यवहार किया?" उन्होंने कहा: "राजा ने हमसे पूछा कि क्या हम ज्ञानी हैं, लेकिन चूंकि राजा ज्ञानी होने के नाते हमारी बात समझ नहीं पाते और हमसे नाराज़ हो जाते, इसलिए हमने उनके प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहा कि हम ज्ञानी नहीं हैं। हम तो वास्तव में ज्ञानी हैं और हमारा ज्ञान जल से भी नष्ट नहीं हो सकता।"

अध्याय 23. नागवग्गा: हाथी (320-333)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 320,321,322

---

(धम्मपद 318 और 319) <<<< पिछला || धम्मपद 320, 321 और 322 || अगला >>>> (धम्मपद 323)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 320, 321 और 322 - अत्तादंत वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अहम नागोवा संगमे
capato patitam saram
ativakyam titikkhissam
dussilo hi bahujjano.
Dantam nayanti samitim
dantam raja' bhiruhati
दान्तो सेत्थो मनुस्सेसु
yo' tivakyam titikkhati.
Varamassatara danta
ajaniya ca sindhava
kunjara ca mahanaga
अतदन्तो ततो वरम्।

---

श्लोक 320 : जैसे युद्ध के मैदान में हाथी धनुष से चलाए गए तीर को सहन कर लेता है, वैसे ही मैं भी दुर्व्यवहार सहन करूँगा। निश्चय ही, बहुत से लोग नैतिकताहीन हैं।

---

श्लोक 321 : केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) ही लोगों की सभाओं में ले जाए जाते हैं; राजा केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) पर ही सवार होता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ वे हैं जो वश में किए हुए हैं और दुर्व्यवहार सहते हैं।

---

श्लोक 322 : खच्चर, उत्तम नस्ल के घोड़े, सिंध के घोड़े और बड़े हाथी तभी श्रेष्ठ होते हैं जब उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है; परन्तु जिसने स्वयं को (मग्ग अंतर्दृष्टि के माध्यम से) वश में कर लिया है, वह कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

---

स्वयं को वश में करने की कहानी

घोषिताराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (320), (321) और (322) का उच्चारण किया, जो राजा उदेना की तीन रानियों में से एक मगंदिया के भाड़े के सैनिकों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर स्वयं द्वारा प्रकट किए गए धैर्य और सहनशीलता के संदर्भ में है।

एक बार, बुद्ध के व्यक्तित्व और रूप से अत्यंत प्रभावित होकर मगंदिया के पिता ने अपनी अत्यंत सुंदर पुत्री का विवाह गौतम बुद्ध से करने का प्रस्ताव रखा। परन्तु बुद्ध ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और कहा कि वे ऐसी वस्तु को छूना भी पसंद नहीं करते जो मैल और मल से लथपथ हो, यहाँ तक कि अपने पैरों से भी नहीं। यह सुनकर मगंदिया के माता-पिता ने सत्यता को पहचान लिया और अनागामी पुण्य प्राप्त कर लिया। परन्तु मगंदिया बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानती थी और उनसे बदला लेने पर तुली हुई थी।

बाद में, वह राजा उदेना की तीन रानियों में से एक बनीं। जब मगंदिया ने सुना कि बुद्ध कोसंबी आए हैं, तो उसने कुछ नागरिकों और उनके सेवकों को काम पर रखा ताकि जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करें तो वे उनका अपमान करें। वे भाड़े के लोग बुद्ध के पीछे-पीछे गए और उन्हें 'चोर, मूर्ख, ऊंट, गधा, निरय (नरक) जाने वाला' जैसे अपशब्दों से अपमानित किया। ये अपमानजनक शब्द सुनकर पूज्य आनंद ने बुद्ध से नगर छोड़कर किसी अन्य स्थान पर जाने की विनती की। लेकिन बुद्ध ने इनकार कर दिया और कहा, "दूसरे नगर में भी हमारा अपमान हो सकता है और हर बार अपमान होने पर नगर छोड़ना संभव नहीं है। समस्या का समाधान वहीं करना बेहतर है जहाँ वह उत्पन्न होती है। मैं युद्ध के मैदान में हाथी के समान हूँ; जिस प्रकार हाथी चारों ओर से आने वाले तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मैं भी अनैतिक लोगों के अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करूँगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 320 : जैसे युद्ध के मैदान में हाथी धनुष से चलाए गए तीर को सहन कर लेता है, वैसे ही मैं भी दुर्व्यवहार सहन करूँगा। निश्चय ही, बहुत से लोग नैतिकताहीन हैं।

---

श्लोक 321 : केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) ही लोगों की सभाओं में ले जाए जाते हैं; राजा केवल प्रशिक्षित (घोड़े और हाथी) पर ही सवार होता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ वे हैं जो वश में किए हुए हैं और दुर्व्यवहार सहते हैं।

---

श्लोक 322 : खच्चर, उत्तम नस्ल के घोड़े, सिंध के घोड़े और बड़े हाथी तभी श्रेष्ठ होते हैं जब उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है; परन्तु जिसने स्वयं को (मग्ग अंतर्दृष्टि के माध्यम से) वश में कर लिया है, वह कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

---

प्रवचन के अंत में, जिन्होंने बुद्ध का अपमान किया था, उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने उनका सम्मान करना शुरू कर दिया; उनमें से कुछ ने सोतापत्ति फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

स्वयं को वश में करने के संबंध में, घोषिताराम मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने ये श्लोक कहे थे, जो राजा उदेना की तीन रानियों में से एक, मगण्डिया के भाड़े के सैनिकों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर स्वयं द्वारा प्रदर्शित धैर्य और सहनशीलता के संदर्भ में थे।

एक बार, मागंडिया के पिता बुद्ध के व्यक्तित्व और रूप से अत्यंत प्रभावित होकर अपनी सुंदर पुत्री का विवाह गौतम बुद्ध से करने का प्रस्ताव लेकर आए। परन्तु बुद्ध ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और कहा कि वे ऐसी वस्तु को छूना भी पसंद नहीं करते जो मैल और मल से भरी हो, यहाँ तक कि अपने पैरों से भी नहीं। यह सुनकर मागंडिया के माता-पिता ने सत्यता को समझकर अनागामी पुण्य प्राप्त किया। परन्तु मागंडिया बुद्ध को अपना कट्टर शत्रु मानती थीं और उनसे बदला लेने पर तुली हुई थीं।

बाद में, वह राजा उदेना की तीन रानियों में से एक बनीं। जब मागंडिया ने सुना कि बुद्ध कोसंबी आए हैं, तो उन्होंने कुछ नागरिकों और उनके सेवकों को काम पर रखा ताकि जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश करें तो उनका अपमान किया जा सके। वे भाड़े के

लोग बुद्ध के पीछे-पीछे गए और उन्हें चोर, मूर्ख, ऊंट, गधा, निरयण की ओर जाने वाला जैसे अपशब्दों से अपमानित किया । उन अपमानजनक शब्दों को सुनकर, पूज्य आनंद ने बुद्ध से नगर छोड़कर किसी अन्य स्थान पर जाने की विनती की। लेकिन बुद्ध ने इनकार कर दिया और कहा, "दूसरे नगर में भी हमारा अपमान हो सकता है और हर बार अपमान होने पर नगर छोड़ना संभव नहीं है। समस्या का समाधान वहीं करना बेहतर है जहाँ वह उत्पन्न होती है। मैं युद्ध के मैदान में हाथी के समान हूँ; जिस प्रकार हाथी चारों ओर से आने वाले तीरों को सहन करता है, उसी प्रकार मैं भी अनैतिक लोगों के अपमान को धैर्यपूर्वक सहन करूँगा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 320)

हाय बहुज्जणो दुस्सिलो संगमे कपातो पतितम्
सारं नागो इव अहं अतिवाक्यं तितिक्खिसं

ही : जैसे; बहुज्जनो [ बहुज्जना ]: बहुमत; दुस्सीलो [ दुस्सीला ]: दुष्ट हैं; संगामे : युद्ध में; कापातो [ कापात ]: धनुष से छोड़ा गया; पतितं [ पतित ]: तीर; सरं [ सर ]: तीर की तरह; नागो इव : हाथी की तरह; अहं : मैं करूँगा; अतिवाक्यं [ अतिवाक्य ]: अपशब्द—ऐसे शब्द जो शालीनता की सीमा से परे हों; तितिक्खिस्सां [ तितिक्खिस्सा ]: सहन करना

मैं उन दुराचारी लोगों के शब्दों को सहन करूँगा जो शालीनता की सीमाओं को पार कर जाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे हाथी युद्ध में तीरों का सामना करता है। बेशक, दुराचारी लोग ही दुनिया में बहुसंख्यक हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 321)

दन्तं समितिं नयन्ति दन्तं अभिरुहति यो
अतिवाक्यं तितिक्खति दंतो मनुस्सेसु सेठो

दन्तं [ दन्त ]: अनुशासित (हाथी या घोड़ा); समितिं [ समिति ]: सभा में; नयन्ति : नेतृत्व किया जाता है; राजा : राजा; अभिरूहति : सवार होता है; यो : यदि कोई; अतिवाक्यं [ अतिवाक्य ]: कठोर शब्द; शालीनता की सीमा से परे जाने वाले कथन; तितिक्खति : सहन करता है; दन्तो [ दन्त ]: अनुशासित; सो : वह; मनुष्यसु : मनुष्यों में; सेठो [ सेठ ]: महान है

अनुशासित पशु (हाथी या घोड़ा) को ही सभा में ले जाया जाता है। राजा अनुशासित हाथी या घोड़े पर सवार होता है। मनुष्यों में अनुशासित व्यक्ति ही सबसे महान होता है। वह जनता के कठोर शब्दों को सहन कर लेता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 322)

वरं अस्सतार अजन्या च सिंधवा महानगा
कुंजरा दन्त वरं ततो अतदन्तो वरं

वरं [ वर ]: महान हैं; असत्तारा : खच्चर; अजनिया : कुलीन; सिंधवा : सिंधु घोड़े; महानागा कुंजारा : बड़े दाँत वाले हाथी; दंता : जब वश में किया गया; वरं [ वर ]: महान हैं; ततो : उन सभी से अधिक; अत्तदन्तो [ अत्तदन्त ]: वह व्यक्ति जिसने स्वयं को अनुशासित किया है

अच्छी तरह से प्रशिक्षित खच्चर उपयोगी होते हैं। सिंधु नस्ल के घोड़े श्रेष्ठ माने जाते हैं। हाथियों में कुंजारा नस्ल के हाथी सबसे महान होते हैं। लेकिन इन सबमें सर्वश्रेष्ठ वह व्यक्ति है जिसने स्वयं को वश में कर लिया है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 320-322)

बुद्ध के गुण : ये श्लोक बुद्ध के गुणों की प्रशंसा करते हैं। स्वयं बुद्ध ने कहा है कि वे अभद्र लोगों के निंदनीय शब्दों को सहन करेंगे। बुद्ध को नौ आंतरिक गुणों से युक्त बताया गया है। वे इस प्रकार हैं:

(1) अरहं : बुद्ध को पाँच रूपों में अरहत के रूप में चित्रित किया गया है, अर्थात्:

(क) उसने सभी अशुद्धियों का त्याग कर दिया है;

(ख) उसने अशुद्धियों के उन्मूलन से जुड़े सभी शत्रुओं को दबा दिया है;

(ग) उसने अस्तित्व के चक्र की तीलियों को नष्ट कर दिया है; (घ) वह भेंट चढ़ाने और सम्मान देने के योग्य है, और

(ई) उन्होंने अपने चरित्र या अपनी शिक्षाओं में कोई रहस्य नहीं छिपाया।

बुद्ध मानव इतिहास के सबसे महान व्यक्तित्व थे, परिपूर्ण, अचूक, निष्कलंक और निर्मल। बोधि वृक्ष की चरणों में उन्होंने समस्त बुराइयों पर विजय प्राप्त की और परम पवित्रता की अवस्था को प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्त करके उन्होंने समस्त दुखों का अंत किया। वे विश्व के पूजनीय थे और हर मायने में श्रद्धा के पात्र थे। उनकी शिक्षाओं में कोई रहस्य या गूढ़ता नहीं है और वे सबके लिए खुली किताब की तरह हैं, जिसे सब देख सकते हैं।

(2) सम्मा-संबुद्धो : बुद्ध को सम्मा-संबुद्धो कहा गया क्योंकि उन्होंने संसार के अस्तित्व को उसके उचित परिप्रेक्ष्य में समझा और अपने स्वयं के ज्ञान से चार आर्य सत्यों की खोज की। राजकुमार के रूप में जन्म लेकर उन्होंने संसार का त्याग किया और छह वर्षों तक ज्ञान प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। इस दौरान उन्होंने उस समय के सभी प्रसिद्ध गुरुओं से संपर्क किया और उनके द्वारा सिखाई गई सभी विधियों का प्रयास किया। अपने गुरुओं के समान ज्ञान प्राप्त करने के बावजूद भी वे ज्ञान के मायावी लक्ष्य को नहीं पा सके। अंततः,

अपने शोध, तर्कसंगत समझ और मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए, पौराणिक धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं के पारंपरिक मार्ग से विमुख होकर, उन्होंने असंतोष, संघर्ष और निराशा ( दुःख ) की सार्वभौमिक समस्याओं का अंतिम समाधान पाया। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम - कारण और प्रभाव के नियम - की खोज की, जिसे उन्होंने संसार की वास्तविकता के रूप में परखा और इस प्रकार सर्वोच्च प्रबुद्ध व्यक्ति बन गए।

(3) विज्जा - चरण संकल्प : इस शब्द विज्जा - चरण संकल्प का अर्थ है कि बुद्ध पूर्ण स्पष्ट दृष्टि और अनुकरणीय आचरण से संपन्न थे। इसके दो महत्वपूर्ण पहलू हैं, जैसा कि त्रिविध ज्ञान और अष्टविध बुद्धि में दर्शाया गया है।

तीन प्रकार का ज्ञान निम्नलिखित प्रकार से सूचीबद्ध है:

(क) सबसे पहले, बुद्ध अपने पिछले जन्म को याद कर सकते थे और अपने साथ-साथ दूसरों के पिछले जन्मों का भी पता लगा सकते थे।

(ख) दूसरे, अतीत का वर्णन करने में सक्षम होने के अलावा, उनके पास भविष्य को देखने और किसी भी क्षण में पूरे ब्रह्मांड की कल्पना करने की अद्वितीय दूरदर्शिता थी।

(ग) तीसरा, उन्हें अरहतत्व से संबंधित गहन ज्ञान था।

अष्टांगिक ज्ञान के संदर्भ में, बुद्ध को अंतर्दृष्टि का अनूठा उपहार, अलौकिक कारनामे करने की शक्ति, दिव्य श्रवण शक्ति, दूसरों के विचारों को पढ़ने की शक्ति, विभिन्न शारीरिक शक्तियां, पिछले जन्मों को याद करने की क्षमता, दिव्य दृष्टि और शांत पवित्रता के जीवन से संबंधित उत्कृष्ट ज्ञान से संपन्न बताया गया है।

चरण या अच्छे आचरण शब्द के संदर्भ में , इस पहलू को पंद्रह विभिन्न श्रेणियों या गुणों में विभाजित किया गया है जो बुद्ध में पूर्णतः समाहित थे। इन अतिरिक्त गुणों को कर्म और वचन में संयम, इंद्रिय-प्रभावों के अवशोषण में संयम, भोजन के सेवन में संयम, अत्यधिक नींद से परहेज, आस्था में निर्मल दृष्टि बनाए रखना, बुराई करने में लज्जा का अहसास, बुराई करने में भय का अहसास, ज्ञान, ऊर्जा, सजगता और समझ की प्यास के रूप में वर्गीकृत किया गया है - ये चार प्रवृत्तियाँ भौतिक जगत से संबंधित हैं। पन्ना और करुणा को ज्ञान और करुणा के रूप में दर्शाया गया है, जो बुद्ध के दो मूलभूत गुण हैं। पन्ना ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया जबकि करुणा ने उन्हें मानव जाति की सेवा करने की करुणा प्रदान की। उन्होंने अपने ज्ञान के माध्यम से सभी प्राणियों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसका अहसास किया और अपनी करुणा के माध्यम से उन्होंने अपने अनुयायियों को बुराई और दुख से दूर किया। बुद्ध के महान गुणों ने उन्हें अपने उपदेशों में भाईचारे की सर्वोच्च डिग्री और सभी प्राणियों में पाए जाने वाले उत्कृष्ट गुणों को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाया।

(4) सुगतो : बुद्ध को सुगतो भी कहा जाता था , जिसका अर्थ है कि उनका मार्ग अच्छा है, गंतव्य उत्तम है और मार्ग दिखाने के लिए प्रयुक्त शब्द और विधियाँ निर्दोष और दोषरहित हैं। आनंद प्राप्ति का बुद्ध का मार्ग सही और शुद्ध, सीधा, प्रत्यक्ष और निश्चित है।

उनके वचन उदात्त और अचूक हैं। कई प्रसिद्ध इतिहासकारों और महान वैज्ञानिकों ने टिप्पणी की है कि एकमात्र धार्मिक शिक्षा जिसे विज्ञान और स्वतंत्र विचारकों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, वह बुद्ध के वचन हैं।

(5) लोकविद् : लोकविद् शब्द बुद्ध के लिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उन्हें संसार का अत्यंत ज्ञान था। बुद्ध ने सांसारिक जीवन के सभी पहलुओं, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों, का अनुभव किया, उन्हें जाना और उनमें प्रवेश किया। वे सर्वप्रथम थे जिन्होंने यह देखा कि ब्रह्मांड में हजारों विश्व प्रणालियाँ हैं। वे सर्वप्रथम थे जिन्होंने यह घोषणा की कि संसार केवल एक अवधारणा है। उनके शब्दों में, संसार या ब्रह्मांड की उत्पत्ति और अंत पर अटकलें लगाना व्यर्थ है। उन्होंने सिखाया कि संसार की उत्पत्ति, उसका अंत और उसके अंत का मार्ग मनुष्य के देह में ही निहित है, जिसमें उसकी बोध शक्ति और चेतना शामिल है।

(6) अनुत्तरो पुरिसा-दम्म-सारथी : अनुत्तरो का अर्थ है अतुलनीय और अद्वितीय। पुरिसा - दम्म उन व्यक्तियों को संदर्भित करता है जिन्हें धम्म का वरदान दिया जाना है, जबकि सारथी का अर्थ है नेता। इन तीनों शब्दों का एक साथ अर्थ है एक अतुलनीय नेता जो पथभ्रष्ट लोगों को धर्म के मार्ग पर लाने में सक्षम हो। जिन लोगों को धम्म के मार्ग पर चलने और बुराई से दूर रहने के लिए प्रेरित किया गया, उनमें अंगुलिमाला, आलावक और नालागिरि जैसे कुख्यात दुष्ट व्यक्ति; सच्चक जैसे लुटेरे, नरभक्षी और हठी लोग शामिल थे। इन सभी को धम्म के मार्ग पर लाया गया, और कुछ ने तो अपने जीवनकाल में ही संतत्व प्राप्त कर लिया। यहां तक कि बुद्ध के कट्टर शत्रु देवदत्त को भी बुद्ध ने अपनी महान करुणा से पुनर्वासित किया।

(7) सत्था देव-मनुस्सनां : इस शब्द का अनुवाद यह है कि बुद्ध देवों और मनुष्यों के बुद्ध थे। ध्यान देने योग्य है कि इस संदर्भ में देवों से तात्पर्य उन प्राणियों से है जो अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मानव अवस्था से आगे विकसित हुए हैं, जिसे जैविक विकास की अंतिम अवस्था नहीं माना जाता है। बौद्ध संदर्भ में देवों का प्राचीन पारंपरिक धार्मिक मिथकों से कोई संबंध नहीं है। बुद्ध एक असाधारण बुद्ध थे जो लचीले थे और देवों और मनुष्यों की विभिन्न क्षमताओं और मानसिकता के अनुरूप विविध तकनीकों को विकसित करने में सक्षम थे। उन्होंने सभी को धार्मिक जीवन जीने का निर्देश दिया। बुद्ध वास्तव में एक सार्वभौमिक बुद्ध थे।

(8) बुद्धो : यह विशेष शब्द, बुद्धो , इस श्रेणी के दूसरे शब्द की पुनरावृत्ति प्रतीत होता है, यद्यपि इसका अपना अलग अर्थ है। बुद्धो का अर्थ है कि सर्वज्ञ होने के कारण बुद्धों में अपने धर्म का उत्कृष्ट उपदेश देकर दूसरों को अपनी महान खोज के प्रति आश्वस्त करने की

असाधारण शक्ति थी। उनकी तकनीकें किसी अन्य बुद्ध से अतुलनीय थीं। बुद्धो शब्द का दूसरा अर्थ जागृत होना है, क्योंकि मनुष्य की सामान्य अवस्था निरंतर सुस्ती की अवस्था में रहती है। बुद्ध पहले व्यक्ति थे जो जागृत हुए और इस सुस्ती की अवस्था से बाहर निकले। इसके बाद उन्होंने दूसरों को भी जागृत होने और सांसारिक सुस्ती या सुस्ती की अवस्था से दूर रहने के लिए प्रेरित किया।
(9) भगवा : बुद्ध का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त सभी शब्दों में, बुद्धो और भगवा शब्द , अलग-अलग या एक साथ बुद्धो भगवा के रूप में प्रयुक्त होते हैं , जिसका अर्थ है धन्य व्यक्ति, सबसे लोकप्रिय और सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं।
श्रद्धा और आदर के योग्य, उनका नाम धन्य है। इसलिए, कुछ प्रशंसाओं के अनुसार, 'भगवान' शब्द के अनेक अर्थ हैं। बुद्ध को भगवान या धन्य कहा गया क्योंकि वे सभी बुराइयों पर विजय प्राप्त करने, सर्वोच्च धम्म का प्रतिपादन करने और असाधारण बौद्धिक क्षमताओं से संपन्न होने के कारण मानवजाति में सबसे सुखी और भाग्यशाली थे।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 323

---

(धम्मपद 320, 321 और 322) <<<< पिछला || धम्मपद 323 || अगला >>>> (धम्मपद 324)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 323 - हत्थाकारियपुब्बक भिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Na hi etehi yanehi
gaccheyya agatam disam
यथा' तना सुदन्तेना
danto dantena gacchati.

---

श्लोक 323 : निःसंदेह, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो (अर्थात निर्वाण); परन्तु अपने आप को पूरी तरह वश में करके, वश में किया हुआ व्यक्ति (1) उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच सकता है।

---

1. वश में किया हुआ व्यक्ति: वह व्यक्ति जिसने पहले इंद्रियों को वश में कर लिया, और बाद में मग्गा अंतर्दृष्टि विकसित कर ली।

---

उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (323) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जो पहले हाथी प्रशिक्षक था।
एक बार कुछ भिक्षुओं ने अचिरवती नदी के किनारे एक हाथी प्रशिक्षक और उसके हाथी को देखा। प्रशिक्षक को हाथी को काबू में करने में कठिनाई हो रही थी, तभी एक पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं को बताया कि इसे आसानी से कैसे संभाला जा सकता है। प्रशिक्षक ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया और हाथी तुरंत वश में हो गया। मठ लौटकर भिक्षुओं ने यह घटना बुद्ध को सुनाई। बुद्ध ने पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा, "हे व्यर्थ भिक्षु, जो अभी तक मार्ग और फल से दूर हो! हाथियों को वश में करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। हाथियों को वश में करके कोई भी उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक नहीं पहुँच सकता जहाँ वह कभी नहीं गया हो; केवल वही व्यक्ति वहाँ पहुँच सकता है जिसने स्वयं को वश में कर लिया हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 323 : निःसंदेह, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो (अर्थात निर्वाण); परन्तु अपने आप को पूर्णतः वश में करके ही वश में किया हुआ व्यक्ति उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच सकता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो हाथियों का प्रशिक्षक था

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस श्लोक का उल्लेख एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में किया था जो पहले हाथी प्रशिक्षक रह चुका था।

एक बार कुछ भिक्षुओं ने अचिरवती नदी के किनारे एक हाथी प्रशिक्षक और उसके हाथी को देखा। प्रशिक्षक को हाथी को काबू में करने में कठिनाई हो रही थी, तभी एक पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु ने अन्य भिक्षुओं को बताया कि इसे आसानी से कैसे संभाला जा सकता है। प्रशिक्षक ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया और हाथी तुरंत वश में हो गया। मठ लौटकर भिक्षुओं ने यह घटना बुद्ध को सुनाई। बुद्ध ने पूर्व हाथी प्रशिक्षक भिक्षु को अपने पास बुलाया और कहा, "हे व्यर्थ भिक्षु, जो अभी तक मार्ग और फल से दूर हो ! हाथियों को वश में करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होता। हाथियों को वश में करके कोई भी उस स्थान (अर्थात निर्वाण) तक नहीं पहुँच सकता जहाँ वह कभी नहीं गया हो; केवल वही व्यक्ति वहाँ पहुँच सकता है जिसने स्वयं को वश में कर लिया हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 323)

दन्तो दन्तेन सुदन्तेन अत्ताना अगतं दिसं

यथा गच्छति एतेहि यानेहि नहि गच्छेया

दंतो [ दन्त ]: अनुशासित व्यक्ति; दंतेन : अनुशासन के कारण; सुदन्तेन : सुशासित; अत्तना : मन; अगतं [ अगत ]: पहले नहीं गया; दिसां [ दिसा ]: क्षेत्र; यथा: इस प्रकार; गच्छति : जाता है ; एतेहि यानेहि : ये वाहन; नहि गच्छेय्या : नहीं जा सकते

वास्तव में, किसी भी प्रकार के परिवहन (जैसे हाथी और घोड़े) से कोई उस स्थान पर नहीं जा सकता जहाँ वह पहले कभी नहीं गया हो, बल्कि स्वयं को पूरी तरह से वश में करके ही वश में किया हुआ व्यक्ति उस स्थान - निर्वाण - तक पहुँच सकता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 323)

यह श्लोक बुद्ध के अपने शिष्यों और संपूर्ण संसार के प्रति दृष्टिकोण का सार प्रस्तुत करता है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने उद्धार के लिए प्रयास करना चाहिए।

बुद्ध गुप्त सिद्धांतों का दावा करने वालों से घृणा करते थे, और कहते थे: गोपनीयता झूठे सिद्धांतों की पहचान है। अपने निजी सेवक, पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए बुद्ध ने कहा, "आनंद, मैंने धम्म का उपदेश बाह्य और आंतरिक सिद्धांतों में कोई भेद किए बिना दिया है, क्योंकि हे आनंद, सत्य के संदर्भ में बुद्ध का कोई ऐसा गुरु नहीं है जो शिष्य से कोई आवश्यक ज्ञान छुपाता हो। उन्होंने धम्म को सभी के लिए स्वतंत्र रूप से और समान रूप से घोषित किया। उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया और न ही अपने शिष्यों से अपने और अपने उपदेशों में अंधभक्ति और आज्ञाकारी विश्वास की अपेक्षा की। उन्होंने विवेकपूर्ण परीक्षण और बुद्धिमत्तापूर्ण पूछताछ पर जोर दिया। उन्होंने जिज्ञासु कलामों को संबोधित करते हुए, जिसे सही ही 'स्वतंत्र चिंतन का पहला संविधान' कहा गया है, आलोचनात्मक जांच का स्पष्ट रूप से आग्रह किया।"

किसी भी बात पर विश्वास करना बौद्ध धर्म की भावना के विरुद्ध है, इसलिए हमें बुद्ध और उनके शिष्यों के बीच यह संवाद मिलता है:

—यदि अब, यह जानते हुए और इसे संरक्षित करते हुए, क्या आप कहेंगे: 'हम अपने गुरु का सम्मान करते हैं और उनके प्रति सम्मान के माध्यम से हम उनकी शिक्षाओं का सम्मान करते हैं?'

नहीं। आदरणीय।

—हे शिष्यों, जिस बात की आप पुष्टि करते हैं, क्या वह वही नहीं है जिसे आपने स्वयं पहचाना, देखा और समझा है?

—जी हां, पूज्यवर।

और सच्ची जांच-पड़ताल के इस पूर्णतः सही दृष्टिकोण के अनुरूप, बौद्ध तर्कशास्त्र पर एक ग्रंथ में कहा गया है: 'जिस प्रकार बुद्धिमान लोग सोने को जलाकर, काटकर और (कसौटी पर) रगड़कर परखते हैं, उसी प्रकार आपको मेरे शब्दों को परखने के बाद ही स्वीकार करना चाहिए, न कि केवल मेरे प्रति सम्मान के कारण।'

बौद्ध धर्म किसी भी प्रकार के दबाव या ज़बरदस्ती से मुक्त है और अनुयायियों से अंधविश्वास की अपेक्षा नहीं करता। आरंभ में ही संशयवादी को इसके अन्वेषण के आह्वान से प्रसन्नता होगी। बौद्ध धर्म प्रारंभ से अंत तक उन सभी के लिए खुला है जिनके पास देखने की दृष्टि और समझने की बुद्धि है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 324

———————————————————————

(धम्मपद 323) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 324 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 325)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 324 - परिजिन्ना ब्राह्मणपुत्त वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Dhanapalo nama kunjaro
katukabhedano dunnivarayo
बद्धो कबालम न भुंजति
sumarati nagavanassa kunjaro.

———————————————————————

श्लोक 324 : धनपाला नामक हाथी, अत्यधिक भूख और अनियंत्रित अवस्था में, कैद में होने के कारण, एक निवाला भी नहीं खाता, अपने मूल वन के लिए तरसता है (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरसता है)।

———————————————————————

एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक वृद्ध ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (324) कहा।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक बूढ़े ब्राह्मण रहते थे जिनके पास आठ लाख रुपये नकद थे। उनके चार पुत्र थे; प्रत्येक पुत्र के विवाह पर वे उसे एक लाख रुपये देते थे। इस प्रकार उन्होंने कुल चार लाख रुपये दान कर दिए। बाद में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। उनके पुत्र उनके पास आए और उनकी बहुत अच्छी देखभाल की; वास्तव में, वे उनसे बहुत स्नेह और प्रेम करते थे। कुछ समय बाद, उन्होंने किसी तरह उन्हें मनाकर शेष चार लाख रुपये भी ले लिए। इस प्रकार वे लगभग पूरी तरह से निर्धन हो गए।

पहले वह अपने सबसे बड़े बेटे के घर रहने गया। कुछ दिनों बाद, बहू ने उससे कहा, "क्या तुमने अपने सबसे बड़े बेटे को सौ-हज़ार रुपये ज़्यादा दिए? क्या तुम्हें अपने दूसरे बेटों के घरों का रास्ता नहीं पता?" यह सुनकर बूढ़ा ब्राह्मण बहुत क्रोधित हुआ और अपने सबसे बड़े बेटे का घर छोड़कर अपने दूसरे बेटे के घर चला गया। उसके दूसरे बेटे की पत्नी ने भी यही बात कही और बूढ़ा ब्राह्मण अपने तीसरे बेटे के घर गया और अंत में अपने चौथे और सबसे छोटे बेटे के घर गया। उसके सभी बेटों के घरों में यही हाल हुआ। इस प्रकार, बूढ़ा ब्राह्मण असहाय हो गया; तब उसने एक लाठी और एक कटोरा लेकर बुद्ध से सुरक्षा और सलाह लेने के लिए प्रार्थना की।

मठ में ब्राह्मण ने बुद्ध को बताया कि उसके पुत्रों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया है और उनसे सहायता मांगी। तब बुद्ध ने उसे कुछ श्लोक याद करने को दिए और निर्देश दिया कि जहाँ भी लोगों की भीड़ हो, वहाँ इनका पाठ करे। श्लोकों का सार यह है: “मेरे चार मूर्ख पुत्र राक्षस के समान हैं। वे मुझे ‘पिता, पिता’ कहकर पुकारते हैं, परन्तु ये शब्द केवल उनके मुख से निकलते हैं, उनके हृदय से नहीं। वे कपटी और षड्यंत्रकारी हैं। अपनी पत्नियों की सलाह पर उन्होंने मुझे अपने घरों से निकाल दिया है। अतः अब मुझे भीख माँगनी पड़ रही

है। मेरे ये पुत्र मेरे इस डंडे से भी कम उपयोगी हैं।" जब वृद्ध ब्राह्मण ने इन श्लोकों का पाठ किया, तो भीड़ में मौजूद कई लोग, उन्हें सुनकर, उसके पुत्रों पर क्रोधित हो उठे और कुछ ने तो उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी।

यह देखकर पुत्र भयभीत हो गए और अपने पिता के चरणों में घुटने टेककर क्षमा मांगने लगे। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि उस दिन से वे अपने पिता की ठीक से देखभाल करेंगे और उनका आदर, प्रेम और सम्मान करेंगे। फिर वे अपने पिता को अपने-अपने घर ले गए; उन्होंने अपनी पत्नियों को भी चेतावनी दी कि वे अपने पिता की अच्छी तरह देखभाल करें अन्यथा उन्हें मार डाला जाएगा। प्रत्येक पुत्र ने एक-एक कपड़ा दिया और प्रतिदिन भोजन की थाली भेजी। ब्राह्मण पहले से अधिक स्वस्थ हो गया और शीघ्र ही उसका वजन भी बढ़ गया। उसे अहसास हुआ कि ये सभी लाभ उसे बुद्ध के कारण प्राप्त हुए हैं। इसलिए वह बुद्ध के पास गया और विनम्रतापूर्वक उनसे निवेदन किया कि वे अपने पुत्रों से प्रतिदिन प्राप्त होने वाली चार भोजन की थालियों में से दो स्वीकार कर लें। फिर उसने अपने पुत्रों को निर्देश दिया कि वे दो भोजन की थालियाँ बुद्ध को भेजें।

एक दिन, सबसे बड़े बेटे ने बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद, बुद्ध ने माता-पिता की देखभाल करने से मिलने वाले लाभों पर प्रवचन दिया। फिर उन्होंने उन्हें धनपाल नामक हाथी की कहानी सुनाई, जो अपने माता-पिता की देखभाल करता था। जब धनपाल को पकड़ लिया गया, तो वह जंगल में छूटे अपने माता-पिता के लिए तड़पने लगा।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 324 : धनपाला नामक हाथी, अत्यधिक भूख और अनियंत्रित अवस्था में, कैद में होने के कारण, एक निवाला भी नहीं खाता, अपने मूल वन के लिए तरसता है (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरसता है)।

---

प्रवचन के अंत में, वृद्ध ब्राह्मण के साथ-साथ उनके चारों पुत्रों और उनकी पत्नियों ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक बूढ़े ब्राह्मण की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक वृद्ध ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, सावत्थी में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे जिनके पास आठ लाख रुपये नकद थे। उनके चार पुत्र थे; प्रत्येक पुत्र के विवाह पर वे उसे एक लाख रुपये देते थे। इस प्रकार उन्होंने कुल चार लाख रुपये दान कर दिए। बाद में उनकी पत्नी का देहांत हो गया। उनके पुत्र उनके पास आए और उनकी बहुत अच्छी देखभाल की; वास्तव में, वे उनसे बहुत स्नेह और प्रेम करते थे। कुछ समय बाद, उन्होंने किसी तरह उन्हें बहला-फुसलाकर शेष चार लाख रुपये भी ले लिए। इस प्रकार वे लगभग निर्धन हो गए।

पहले वह अपने बड़े बेटे के घर रहने गया। कुछ दिनों बाद बहू ने उससे कहा, "क्या तुमने अपने बड़े बेटे को सौ-हजार रुपये ज़्यादा दिए? क्या तुम्हें अपने दूसरे बेटों के घरों का रास्ता नहीं पता?" यह सुनकर बूढ़ा ब्राह्मण बहुत क्रोधित हुआ और अपने बड़े बेटे का घर छोड़कर अपने दूसरे बेटे के घर चला गया। उसके सभी बेटों के घरों में भी यही हाल हुआ। इस प्रकार बूढ़ा ब्राह्मण असहाय हो गया; तब उसने एक लाठी और एक कटोरा लेकर बुद्ध से सुरक्षा और सलाह लेने के लिए प्रार्थना की।

मठ में ब्राह्मण ने बुद्ध को बताया कि उसके पुत्रों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया है और उनसे सहायता मांगी। तब बुद्ध ने उसे कुछ श्लोक याद करने को दिए और निर्देश दिया कि जहाँ भी लोगों की भीड़ हो, वहाँ इनका पाठ करे। श्लोकों का सार यह है: "मेरे चारों मूर्ख पुत्र राक्षस के समान हैं। वे मुझे 'पिता, पिता' कहकर पुकारते हैं, परन्तु ये शब्द केवल उनके मुख से निकलते हैं, उनके हृदय से नहीं। वे कपटी और षड्यंत्रकारी हैं। अपनी पत्नियों की सलाह पर उन्होंने मुझे अपने घरों से निकाल दिया है। अतः अब मुझे भीख माँगनी पड़ रही है। मेरे ये पुत्र मेरे इस डंडे से भी कम उपयोगी हैं।" जब वृद्ध ब्राह्मण ने इन श्लोकों का पाठ किया, तो भीड़ में मौजूद अनेक लोग, उन्हें सुनकर, अपने पुत्रों पर क्रोधित हो उठे और कुछ ने तो उन्हें जान से मारने की धमकी भी दी।

यह देखकर पुत्र भयभीत हो गए और अपने पिता के चरणों में घुटने टेककर क्षमा मांगने लगे। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि उस दिन से वे अपने पिता की ठीक से देखभाल करेंगे और उनका आदर, प्रेम और सम्मान करेंगे। फिर वे अपने पिता को अपने-अपने घर ले गए; उन्होंने अपनी पत्नियों को भी चेतावनी दी कि वे अपने पिता की अच्छी तरह देखभाल करें अन्यथा उन्हें मार डाला जाएगा। प्रत्येक पुत्र ने एक कपड़ा दिया और प्रतिदिन भोजन की थाली भेजी। ब्राह्मण पहले से अधिक स्वस्थ हो गया और शीघ्र ही उसका वजन भी बढ़ गया। उसे अहसास हुआ कि ये सभी लाभ उसे बुद्ध के कारण प्राप्त हुए हैं। इसलिए वह बुद्ध के पास गया और विनम्रतापूर्वक उनसे निवेदन किया कि वे अपने पुत्रों से प्रतिदिन प्राप्त होने वाली चार थालियों में से दो थालियाँ स्वीकार कर लें। फिर उसने अपने पुत्रों को निर्देश दिया कि वे दो थालियाँ बुद्ध को भेजें।

एक दिन, बड़े बेटे ने बुद्ध को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन के बाद, बुद्ध ने माता-पिता की देखभाल करने से मिलने वाले लाभों पर प्रवचन दिया। फिर उन्होंने उन्हें धनपाल नामक हाथी की कहानी सुनाई, जो अपने माता-पिता की देखभाल करता था। जब धनपाल को पकड़ लिया गया, तो वह जंगल में छूटे अपने माता-पिता के लिए तड़पने लगा।
प्रवचन के अंत में, वृद्ध ब्राह्मण के साथ-साथ उनके चारों पुत्रों और उनकी पत्नियों ने भी सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 324)
धनपालको नाम कुंजरो कटुकप्पभेदन दुनिवारयो
बद्धो कबलां न भुञ्जति कुंजरो नागवनस्सा सुमारति
धनपालको नाम : धनपाल नामित; कबलां [ कबला ]: भोजन; न भुञ्जति : नहीं खाता; कुंजरो [ कुंजारा ]: हाथी; कटुकप्पभेदन : गहराई में; दुनिवारयो [ दुनिवारया ]: रोकना कठिन; बद्दो [ बध ]: बेड़ियों में जकड़ा हुआ; नागा वनसा : हाथी-वन; सुमरति : तरसती रहती है
धनपाल नाम का हाथी, जो मदमस्त और अनियंत्रित था, कैद में होने के कारण एक निवाला भी नहीं खा रहा था क्योंकि वह अपने मूल जंगल के लिए तरस रहा था (अर्थात अपने माता-पिता की देखभाल करने के लिए तरस रहा था)।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 324)
यह श्लोक और जिस कहानी से यह उत्पन्न हुआ है, वह हमारे वर्तमान समय के लिए उल्लेखनीय रूप से प्रासंगिक है, जब वृद्धों की उपेक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा बन गई है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 325

---

(धम्मपद 324) <<<< पिछला || धम्मपद 325 || अगला >>>> (धम्मपद 326)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 325 - पसेनादिकोसल वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
मिद्धि यदा होति महघघसो च
niddayita samparivattasayi
महावराहोवा निवपपुत्थो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मंदो।

---

श्लोक 325 : मूर्ख, जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो अच्छी तरह से पाले हुए सूअर की तरह लोटता रहता है, वह बार-बार पुनर्जन्म का भागी होता है।

---

कोसला के राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (325) कहा।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) भरपेट भोजन करने के तुरंत बाद बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ गए। राजा को पके हुए चावल और मांस की करी का एक चौथाई टोकरी (आधा बुशेल) खाने की आदत थी। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर राजा को इतनी

नींद आने लगी कि वे लगातार ऊंघते रहे और मुश्किल से जाग पाते थे। तब उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! भोजन करने के बाद से मुझे बहुत बेचैनी हो रही है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हे राजा! अधिक खाने वालों को ऐसा ही कष्ट होता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 325 : मूर्ख, जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो अच्छी तरह से पाले हुए सूअर की तरह लोटता रहता है, वह बार-बार पुनर्जन्म का भागी होता है।

---

प्रवचन सुनने के बाद, राजा ने संदेश को समझ लिया और धीरे-धीरे अपने भोजन की मात्रा कम कर दी। परिणामस्वरूप, वह अधिक सक्रिय और सतर्क हो गया और इसलिए प्रसन्न भी हो गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
कोसला के राजा पसेनादी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने कोसल के राजा पसेनादि के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक दिन, कोसल के राजा पसेनादि ने भरपेट भोजन करने के तुरंत बाद बुद्ध को प्रणाम करने के लिए मठ में गए। राजा को पके हुए चावल और मांस की करी का एक चौथाई टोकरी (आधा बुशेल) खाने की आदत थी। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर राजा को इतनी नींद आने लगी कि वे लगातार ऊंघते रहे और मुश्किल से जाग पाते थे। तब उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर! भोजन करने के बाद से मुझे बहुत बेचैनी हो रही है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जी हे राजा! पेटू लोग इसी प्रकार कष्ट भोगते हैं।"
प्रवचन सुनने के बाद, राजा ने संदेश को समझ लिया और धीरे-धीरे अपने भोजन की मात्रा कम कर दी। परिणामस्वरूप, वह अधिक सक्रिय और सतर्क हो गया और इसलिए प्रसन्न भी हो गया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 325)
यदा मिद्धि होति महघ्घसो च निवापापुत्थो महावराहो इव
निददायिता संपरिवत्सयि होति मंदो पुनप्पुनं गब्बम उपेति
यदा : यदि कभी भी; मिद्धी होति : यदि मनुष्य सुस्त हो जाए; महाग्घसो च : यदि वह अधिक खाने लगे; निवापपुट्ठो [ निवापपुट्ठ ]: अनाज खाकर मोटा हो जाए; महावराहो इव : एक बड़े सूअर की तरह; निद्दायिता : यदि वह सो जाए; सम्परिवत्तसाय : करवटें बदलते हुए; मंदो [ मंदा ]: वह अज्ञानी व्यक्ति; पुनप्पुनं [ पुनप्पुना ]: बार-बार; गब्बम : गर्भ में; उपेति : बार-बार लौटता रहे
वह मूर्ख जो आलसी, पेटू और सुस्त है, जो एक भरे-पूरे सूअर की तरह लोटपोट होता रहता है, बार-बार पुनर्जन्म लेता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 325)
इस श्लोक की रचना कोसल के राजा पसेनादि द्वारा भारी भोजन के बाद बुद्ध से मिलने पर प्रदर्शित की गई नींद की स्थिति के कारण हुई थी।
सावत्थी को राजधानी बनाकर शासन करने वाले कोसल राज्य के राजा महा कोसल के पुत्र राजा पसेनादि कोसल, बुद्ध के एक अन्य शाही संरक्षक थे। वे बुद्ध के समकालीन थे और विभिन्न कलाओं में निपुणता के कारण, उन्हें अपने पिता द्वारा जीवित रहते हुए ही राजा बनाए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।
उनका धर्मांतरण संभवतः बुद्ध के उपदेशों के आरंभिक काल में हुआ होगा। संयुत्त निकाय में उल्लेख है कि एक बार उन्होंने बुद्ध के पास जाकर उनके पूर्ण ज्ञान के बारे में प्रश्न किया और उन्हें आयु और दीक्षा दोनों में युवा बताया।
बुद्ध ने उत्तर दिया — 'हे महाराज, चार वस्तुएँ ऐसी हैं जिनकी उपेक्षा या तिरस्कार नहीं किया जाना चाहिए। वे हैं क्षत्रिय (योद्धा राजकुमार), सर्प, अग्नि और भिक्षु।'
फिर उन्होंने राजा को इस विषय पर एक रोचक उपदेश दिया। उपदेश के अंत में राजा ने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की और तुरंत बुद्ध के अनुयायी बन गए। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक वे बुद्ध के प्रति अत्यंत आसक्त रहे। कहा जाता है कि एक बार राजा ने बुद्ध के समक्ष प्रणाम किया और उनके चरणों को चूमते हुए उन्हें सहलाया।
उनकी प्रमुख रानी मल्लिका, जो एक अत्यंत धर्मनिष्ठ और बुद्धिमान महिला थीं और धम्म की भली-भांति ज्ञाता थीं, उनके धार्मिक उत्साह के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थीं। एक सच्चे मित्र की तरह, उन्हें कई अवसरों पर उनके धार्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ा।
एक दिन राजा ने सोलह विचित्र सपने देखे और उनका वास्तविक अर्थ न जानते हुए वे अत्यंत व्याकुल हो गए। उनके ब्राह्मण सलाहकारों ने उनका अर्थ अशुभ संकेत बताया और उन्हें सलाह दी कि वे अशुभता से बचने के लिए एक भव्य पशु बलि दें। सलाह के अनुसार उन्होंने इस अमानवीय बलि के लिए सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ कर लीं, जिसके परिणामस्वरूप हजारों असहाय प्राणियों की जान चली

जाती। रानी मल्लिका ने इस बर्बर कृत्य के बारे में सुनकर राजा को बुद्ध से अपने सपनों का अर्थ जानने के लिए प्रेरित किया, जिनकी समझ उन सांसारिक ब्राह्मणों की समझ से कहीं अधिक थी। राजा बुद्ध के पास गए और अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। उन्होंने अपने सोलह सपने सुनाए और बुद्ध ने उन्हें उनका पूर्ण अर्थ समझाया।

राजा बिम्बिसार के विपरीत, राजा पसेनादि को बुद्ध से कई शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। संयुत्त निकाय में कोसल संयुत्त नामक एक विशेष खंड है जिसमें बुद्ध द्वारा राजा को दिए गए अधिकांश प्रवचन और बातें दर्ज हैं।

एक बार जब राजा बुद्ध के साथ बैठे थे, तो उन्होंने कुछ घने बालों वाले शरीर और लंबे नाखूनों वाले तपस्वियों को वहाँ से गुजरते देखा। वे अपनी सीट से उठकर आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हुए अपना नाम पुकारा: 'मैं राजा हूँ, आदरणीय, कोसल का पसेनादि।' उनके चले जाने पर वे बुद्ध के पास वापस आए और जानना चाहा कि क्या वे अरहत थे या अरहतत्व प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बुद्ध ने समझाया कि भौतिक सुखों में लिप्त साधारण गृहस्थों के लिए यह जानना कठिन है कि दूसरे अरहत हैं या नहीं, और उन्होंने निम्नलिखित रोचक बातें कहीं:

संगति ( संवासेना ) से ही किसी के आचरण ( सीला ) को समझा जा सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, न कि थोड़े समय में; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा। संवाद ( संवोहारेना ) से ही किसी की पवित्रता ( सोचेय्यं ) को समझा जा सकता है। संकट के समय में ही किसी के धैर्य को समझा जा सकता है। चर्चा से ही किसी की बुद्धिमत्ता को समझा जा सकता है, और वह भी लंबे समय बाद, न कि थोड़े समय में; एक सजग व्यक्ति द्वारा, न कि लापरवाह व्यक्ति द्वारा; एक बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा, न कि बुद्धिहीन व्यक्ति द्वारा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 326

---

(धम्मपद 325) <<<< पिछला || धम्मपद 326 || अगला >>>> (धम्मपद 327)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 326 - सनुसमनेरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Idam pure cittamacari carikam
येनिच्चकं यत्थकमं यथासुखम्
तदज्जहम् निग-गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पाभिन्नं विया अंकुसग्गहो।

---

श्लोक 326 : अतीत में, यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से वश में रखूँगा, जैसे महावत अपने अंकुश से मदमस्त हाथी को वश में रखता है।

---

समनेरा सानु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (326) का उच्चारण किया, जो सानु नामक एक युवा समनेरा के संदर्भ में था।

एक दिन, वरिष्ठ भिक्षुओं ने समनेरा सानु से मंच पर चढ़कर पाली ग्रंथों के कुछ अंश पढ़ने का आग्रह किया। पाठ समाप्त करने के बाद उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, "आज इन पवित्र ग्रंथों का पाठ करके मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ है, वह मेरे माता-पिता को भी प्राप्त हो।" उस

समय, देव और राक्षसी, जो पिछले जन्म में समनेरा सानु की माता थीं, उनका पाठ सुन रही थीं। उनके शब्द सुनकर राक्षसी प्रसन्न हुईं और तुरंत बोलीं, "मेरे प्रिय पुत्र, तुम्हारे पुण्य में भागीदार होकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है; तुमने अच्छा किया है, मेरे पुत्र। शाबाश! शाबाश! (साधु! साधु!)।" समनेरा सानु के कारण, माता राक्षसी का बहुत सम्मान हुआ और देवों और अन्य राक्षसों द्वारा उन्हें सभाओं में सर्वोच्च स्थान दिया जाने लगा।

जैसे-जैसे समनेरा बड़ा होता गया, वह एक आम आदमी का जीवन जीना चाहता था; वह घर गया और अपनी माँ से अपने कपड़े माँगे। उसकी माँ नहीं चाहती थी कि वह संघ छोड़े और उसने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह अपने फैसले पर अडिग था। इसलिए, उसकी माँ ने उसे भोजन के बाद कपड़े देने का वादा किया। जब उसकी माँ खाना बना रही थी, तभी उसकी पिछली जन्म की माँ, राक्षसी ने सोचा, "अगर मेरा बेटा सानू संघ छोड़ देता है, तो मैं शर्मिंदा हो जाऊँगी और दूसरे राक्षसों और देवताओं के बीच हंसी का पात्र बन जाऊँगी; मुझे उसे संघ छोड़ने से रोकना ही होगा।" इस तरह, युवा समनेरा पर उसका साया आ गया; लड़का ज़मीन पर लोटने लगा, मुँह से लार टपक रही थी और वह कुछ बुदबुदा रहा था। माँ घबरा गई; पड़ोसी आए और आत्माओं को शांत करने की कोशिश की। फिर राक्षसी ने कहा, “यह समनेरा धार्मिक संघ को छोड़कर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता है; यदि वह ऐसा करता है तो वह दुःख (पुनर्जन्म/कष्ट) से बच नहीं पाएगा।” ये शब्द कहकर राक्षसी ने लड़के का शरीर त्याग दिया और लड़का फिर से सामान्य हो गया।

अपनी माँ को रोते हुए और पड़ोसियों को अपने चारों ओर जमा देखकर उसने पूछा कि क्या हुआ था। उसकी माँ ने उसे सब कुछ बताया और समझाया कि गृहस्थ जीवन छोड़ने के बाद वापस लौटना बहुत मूर्खता होगी; वास्तव में, जीवित रहते हुए भी वह एक मृत व्यक्ति के समान होगा। तब उस भिक्षु को अपनी गलती का एहसास हुआ। अपनी माँ से तीनों वस्त्र लेकर वह वापस मठ गया और जल्द ही भिक्षु के रूप में प्रवेश पा गया।

समनेरा सानु के बारे में सुनकर, बुद्ध ने उन्हें मन पर नियंत्रण का ज्ञान देने की इच्छा से कहा, "हे मेरे पुत्र, जो मन को भटकने से नहीं रोकता, उसे सुख नहीं मिल सकता। इसलिए, अपने मन को उसी प्रकार वश में रखो जैसे एक महावत हाथी को वश में रखता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 326 : अतीत में, यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से वश में रखूँगा, जैसे महावत अपने अंकुश से मदमस्त हाथी को वश में रखता है।

---

प्रवचन के अंत में थेरा सानु ने चार आर्य सत्यों को समझा और बाद में अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सामनरा सानु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सानु नामक एक युवा सामनेर के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, वरिष्ठ भिक्षुओं ने सामनरा सानु से मंच पर चढ़कर पाली ग्रंथों के कुछ अंश पढ़ने का आग्रह किया। पाठ समाप्त करने के बाद उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, “आज इन पवित्र ग्रंथों का पाठ करके मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ है, वह मेरे माता-पिता को भी प्राप्त हो।” उस समय, देवियाँ और एक दुष्ट आत्मा, जो पिछले जन्म में युवा सामनरा की माता रह चुकी थी, उनका पाठ सुन रही थीं। उनके शब्दों को सुनकर दुष्ट आत्मा प्रसन्न हुई और तुरंत बोली, “मेरे प्रिय पुत्र, तुम्हारे पुण्य में भागीदार होकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है; तुमने अच्छा किया है, मेरे पुत्र। शाबाश! शाबाश! (साधु! साधु!)” सामनरा सानु के कारण, दुष्ट आत्मा को देवियों और अन्य दुष्ट आत्माओं द्वारा बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और उनकी सभाओं में उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया गया।

जैसे-जैसे सामनेर बड़े होते गए, वे गृहस्थ जीवन में लौटना चाहते थे; वे घर गए और अपनी माँ से अपने वस्त्र माँगे। उनकी माँ नहीं चाहती थीं कि वे संघ छोड़ें और उन्होंने उन्हें ऐसा न करने के लिए समझाने का प्रयास किया, लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग थे। इसलिए, उनकी माँ ने उन्हें भोजन के बाद वस्त्र देने का वादा किया। जब उनकी माँ भोजन पका रही थीं, तभी एक दुष्ट आत्मा, जो पिछले जन्म में उनकी माँ थीं, ने सोचा, “यदि मेरा पुत्र सानु संघ छोड़ दे, तो मैं लज्जित हो जाऊँगी और अन्य दुष्ट आत्माओं और देवताओं के बीच उपहास का पात्र बन जाऊँगी; मुझे उसे संघ छोड़ने से रोकना ही होगा।” इस प्रकार, उस युवा सामनेर पर उस आत्मा का साया हो गया; लड़का ज़मीन पर लोटने लगा, मुँह से लार टपकते हुए अस्पष्ट बड़बड़ाने लगा। उनकी माँ घबरा गईं; पड़ोसी आए और दुष्ट आत्माओं को शांत करने का प्रयास किया। तब दुष्ट आत्मा ने कहा, “यह सामनेर धार्मिक संघ को छोड़कर गृहस्थ जीवन में लौटना चाहता है; यदि वह ऐसा करेगा तो वह दुखों से बच नहीं पाएगा।” ये शब्द कहकर दुष्ट आत्मा लड़के के शरीर से निकल गई और वह फिर से सामान्य हो गया।

अपनी माँ को रोते हुए और पड़ोसियों को अपने चारों ओर जमा देखकर उसने पूछा कि क्या हुआ था। उसकी माँ ने उसे सब कुछ बताया और समझाया कि गृहस्थ जीवन छोड़ने के बाद वापस लौटना बहुत मूर्खता होगी; वास्तव में, जीवित रहते हुए भी वह एक मृत व्यक्ति के

समान होगा। तब उस सामनेर को अपनी गलती का एहसास हुआ। अपनी माँ से तीनों वस्त्र लेकर वह मठ लौट गया और जल्द ही उसे फिर से भिक्षु के रूप में प्रवेश मिल गया।

जब बुद्ध ने सामनेरा सानु के बारे में सुनाते हुए, उन्हें मन के संयम के बारे में सिखाने की इच्छा से कहा, "मेरे पुत्र, जो अपने भटकते हुए मन को नियंत्रित नहीं करता, उसे सुख नहीं मिल सकता। इसलिए, अपने मन को उसी प्रकार नियंत्रित करो जैसे एक महावत हाथी को नियंत्रित करता है।"

प्रवचन के अंत में, पूज्य सानु ने चार आर्य सत्यों को समझा और बाद में अरहतत्व प्राप्त किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 326)

शुद्ध इदं चित्तं येनिच्चकं यत्थकामं यथासुखं चारिकं अचरि
अहं अज तं पभिन्नं हत्थिं विया अंकुसाग्गहो योनिसो निग-अहेस्सामि

शुद्ध : पहले; idaṃ cittam : यह मन; yenicchakaṃ [ yenicchaka ]: जिस भी दिशा में चाहे; yatthakāmaṃ [ yatthakāma ]: जहाँ भी चाहे; yathāsukhaṃ [ yathāsukha ]: प्रसन्नता से; cārikaṃ acāri : घूमता रहा; ahaṃ : मैं; ajja : आज; taṃ : वह मन; pabhinnaṃ [ pabhinna ]: मद में; hatthiṃ viya : हाथी; aṅkusaggaho [ aṅkusaggaha ]: जैसे महावत कुल्हाड़ी पकड़े हो; yoniso [ yonisa ]: बुद्धिमानी से; nigg-ahessāmi : संयमित

अतीत में यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, अपनी मर्जी से भटकता रहा। अब मैं अपने मन को बुद्धिमानी से नियंत्रित करूँगा, जैसे एक महावत हाथी को वश में करने के लिए अंकुश का प्रयोग करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 326)

बौद्ध साहित्य में हाथी को नियंत्रित करने की छवि का प्रयोग आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति द्वारा स्वयं को नियंत्रित करने के कार्य के समानांतर किया जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 327

———————————————————————————————

(धम्मपद 326) <<<< पिछला || धम्मपद 327 || अगला >>>> (धम्मपद 328, 329 और 330)

———————————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 327 - पवेय्याकहत्थि वत्थु

———————————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अप्पमदरता होथा
सचित्तमनुरक्खथा
dugga uddharath' attanam
panke sannova kunjaro.

———————————————————————————————

श्लोक 327 : सजगता में आनंद लो, अपने मन की अच्छी तरह रक्षा करो। जैसे कीचड़ में फंसा हाथी खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही तुम भी नैतिक विकारों के कीचड़ से खुद को बाहर निकालो।

———————————————————————————————

पावेय्याका नामक हाथी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (327) का उच्चारण किया, जिसमें पावेय्याका नामक हाथी का उल्लेख किया गया है।

युवा पावेय्याका बहुत बलवान थे; समय के साथ वे बूढ़े और दुर्बल हो गए। एक दिन, जब बूढ़े पावेय्याका एक तालाब में उतरे तो वे कीचड़ में फंस गए और किनारे पर नहीं आ सके। जब कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजीत) को इसकी सूचना मिली, तो उन्होंने हाथी को कीचड़ से निकालने में मदद के लिए एक हाथी प्रशिक्षक को भेजा। हाथी प्रशिक्षक उस स्थान पर गया जहाँ हाथी फंसा हुआ था। वहाँ उसने संगीतकारों से एक युद्ध संगीत बजाने को कहा। सैन्य संगीत सुनकर हाथी को ऐसा लगा मानो वह युद्ध के मैदान में हो; उसका मनोबल बढ़ा, उसने अपनी पूरी ताकत से खुद को खींचा और जल्द ही कीचड़ से बाहर निकल आया।

जब भिक्षुओं ने बुद्ध को इस बारे में बताया तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं! जिस प्रकार उस हाथी ने स्वयं को कीचड़ से बाहर निकाला, उसी प्रकार तुम सबको भी नैतिक विकारों के कीचड़ से स्वयं को बाहर निकालना होगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 327 : सजगता में आनंद लो, अपने मन की अच्छी तरह रक्षा करो। जैसे कीचड़ में फंसा हाथी खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही तुम भी नैतिक विकारों के कीचड़ से खुद को बाहर निकालो।

---

प्रवचन के अंत में भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पावेय्याका नामक हाथी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पावेय्याका नामक हाथी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

युवावस्था में पावेय्याका बहुत बलवान थे; समय के साथ वे बूढ़े और दुर्बल हो गए। एक दिन, जब बूढ़े पावेय्याका एक तालाब में गए तो वे कीचड़ में फंस गए और किनारे पर नहीं आ सके। जब कोसल के राजा पसेनादि को इसकी सूचना मिली, तो उन्होंने हाथी को कीचड़ से निकालने में मदद के लिए एक हाथी प्रशिक्षक को भेजा। हाथी प्रशिक्षक उस स्थान पर गया जहाँ हाथी फंसा हुआ था। वहाँ उसने संगीतकारों से एक युद्ध संगीत बजाने को कहा। सैन्य संगीत सुनकर हाथी को ऐसा लगा मानो वह युद्ध के मैदान में हो; उसका मनोबल बढ़ा, उसने अपनी पूरी ताकत से खुद को खींचा और शीघ्र ही कीचड़ से बाहर निकल आया।

जब भिक्षुओं ने बुद्ध को इस बारे में बताया तो उन्होंने कहा, “भिक्षुओं! जिस प्रकार उस हाथी ने स्वयं को कीचड़ से बाहर निकाला, उसी प्रकार तुम सबको भी नैतिक विकारों के कीचड़ से स्वयं को बाहर निकालना होगा।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 327)

अप्पमादारता होथा , सचितम अनुरक्खथा ,

पंके सत्तो कुंजरो इव अत्तनं दुग्गा उद्रथ

appamādaratā hotha : परिश्रम में आनंद लेना; sacittam : मन; anurakkhatha : रक्षा करना; paṅke : कीचड़ में; satto [ satta ]: कीचड़ में फंसा हुआ; kuñjaro iva : हाथी की तरह; attānaṃ [ attāna ]: मन; duggā : दलदली सड़क जिस पर चलना कठिन हो; uddharatha : उठाना

ध्यान में आनंद लें, अपने मन की रक्षा करें। जैसे एक हाथी कीचड़ में फंसकर खुद को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही आप भी नैतिक विकारों के दलदल से खुद को बाहर निकालें।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 327)

बुद्ध द्वारा पसंद की जाने वाली शिक्षा पद्धति में समकालीन घटनाओं से नैतिक या आध्यात्मिक सत्य को चुनना शामिल था। इस श्लोक में कीचड़ में फंसे हाथी द्वारा स्वयं को कीचड़ से बाहर निकालने के सफल प्रयास को भिक्षुओं को यह सिखाने का अवसर बनाया गया है कि उन्हें स्वयं भी नैतिक विकारों के दलदल से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिए।

बुद्ध द्वारा लोगों को सत्य सिखाने के लिए किसी घटना का उपयोग करने के अन्य उदाहरण भी हैं। निम्नलिखित उनमें से एक है:

एक भिक्षु को दस्त हो रहे थे और वह उठने में असमर्थ होकर अपने मल में लेटा हुआ था। बुद्ध पूज्य आनंद के साथ उसके निवास में आए और पूछा, "हे भिक्षु, तुम्हें क्या कष्ट है?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "पूज्यवर, मुझे दस्त हो रहे हैं। क्या आपकी सेवा करने वाला कोई नहीं है?" "नहीं, पूज्यवर।" "दूसरे भिक्षु आपकी सेवा क्यों नहीं करते?" भिक्षु ने कहा, "चूंकि मैं दूसरे भिक्षुओं की सेवा नहीं करता, इसलिए वे भी मेरी सेवा नहीं करते।"

बुद्ध ने पूज्य आनंद को पानी लाने के लिए कहा। बुद्ध ने बीमार भिक्षु पर पानी डाला और पूज्य आनंद ने उन्हें धोया। बुद्ध ने उनका सिर पकड़ा और पूज्य आनंद ने उनके पैर पकड़े और उन्हें पलंग पर लिटा दिया।

बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाया और उन्हें सलाह दी कि वे बीमार भिक्षु की सेवा करें, चाहे उसने उनकी सेवा की हो या न की हो। बुद्ध ने कहा, "जो भिक्षु बीमारों की सेवा करते हैं, वे वास्तव में मेरी सेवा करते हैं।"



---

(धम्मपद 327) <<<< पिछला || धम्मपद 328, 329 और 330 || अगला >>>> (धम्मपद 331, 332 और 333)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 328, 329 और 330 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Sace labhetha nipakam sahayam
सद्धिम कैरम साधु विहारी धीरेम
अभिभूय सब्बानि परिस्यानि
careyya tena' ttamano satima.
नो सीई लभेथा निपाकम सहायम्
सद्धिम कैरम साधु विहारी धीरेम
राजवा रत्तम विजितम पहया
एको केयर मतंगा' रन्नेवा नागो।
Ekassa caritam seyyo
natthi bale sahayata
eko care na ca papani kayira
अप्पोसुक्को मातंगा' रन्नेवा नागो।

---

श्लोक 328 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र मिल जाए, जो सदाचारी और दृढ़ साथी हो, तो उसे सभी खतरों पर विजय प्राप्त करते हुए, उसके साथ आनंदपूर्वक और सचेत रूप से रहना चाहिए।

---

श्लोक 329 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र न मिले, जो गुणी और दृढ़ साथी हो, तो उसे उस राजा की तरह अकेले रहना चाहिए जिसने अपने जीते हुए देश को त्याग दिया और जंगल में अकेले भटकने वाले हाथी मतंगा की तरह।

---

श्लोक 330 : अकेले रहना बेहतर है; मूर्ख के साथ संगति नहीं करनी चाहिए। इसलिए अकेले रहना चाहिए, बुराई नहीं करनी चाहिए और जंगल में अकेले घूमने वाले हाथी मतंगा की तरह निश्चिंत रहना चाहिए।

---

कई भिक्षुओं की कहानी

पलिलेय्य वन में निवास करते हुए, जहाँ हाथी पलिलेयक उनकी सेवा करता था, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (328), (329) और (330) का उच्चारण किया।

एक बार कोसंबी के भिक्षु दो समूहों में बँट गए; एक समूह विनय के गुरु के पीछे चला और दूसरा धम्म के शिक्षक के पीछे। उन्होंने बुद्ध की बात भी नहीं मानी, जिन्होंने उन्हें शांति बनाए रखने का उपदेश दिया था। इसलिए, बुद्ध उन्हें छोड़कर वर्षा ऋतु (तीन महीने) के दौरान जंगल में अकेले रहे, जहाँ हाथी पलिलेयक उनकी सेवा में था।

वर्षा ऋतु के अंत में, पूज्य आनंद पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वन में गए। भिक्षुओं को कुछ दूरी पर छोड़कर, पूज्य आनंद अकेले बुद्ध के पास पहुँचे। तब बुद्ध ने आनंद से अन्य भिक्षुओं को बुलाने को कहा। सभी भिक्षु आए, बुद्ध को प्रणाम किया और कहा, "पूज्यवर! इस वन में अकेले वर्षा ऋतु बिताने में आपको बहुत कठिनाई हुई होगी।"

इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, ऐसा मत कहो; हाथी पलिलेयक इस पूरे समय मेरी देखभाल करता रहा। वह वास्तव में एक बहुत अच्छा मित्र था, सच्चा मित्र। यदि किसी के पास ऐसा अच्छा मित्र हो तो उसे उसी के साथ रहना चाहिए; परन्तु यदि अच्छा मित्र न मिले तो अकेले रहना ही बेहतर है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 328 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र मिल जाए, जो सदाचारी और दृढ़ साथी हो, तो उसे सभी खतरों पर विजय प्राप्त करते हुए, उसके साथ आनंदपूर्वक और सचेत रूप से रहना चाहिए।

---

श्लोक 329 : यदि किसी को कोई बुद्धिमान मित्र न मिले, जो गुणी और दृढ़ साथी हो, तो उसे उस राजा की तरह अकेले रहना चाहिए जिसने अपने जीते हुए देश को त्याग दिया और जंगल में अकेले भटकने वाले हाथी मतंगा की तरह।

---

श्लोक 330 : अकेले रहना बेहतर है; मूर्ख के साथ संगति नहीं करनी चाहिए। इसलिए अकेले रहना चाहिए, बुराई नहीं करनी चाहिए और जंगल में अकेले घूमने वाले हाथी मतंगा की तरह निश्चिंत रहना चाहिए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

पांच सौ भिक्षुओं को उपदेश

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने परिलेय्यक के निकट संरक्षित वन में निवास करते समय भिक्षुओं के एक समूह को संबोधित करते हुए दिया था। यह कथा यमका वग्ग में 'अन्य लोग नहीं समझते' शब्दों से शुरू होती है। क्योंकि वहाँ कहा गया है:

गुलाब-अरब की भूमि में यह बात सर्वप्रसिद्ध हो गई कि बुद्ध एक पवित्र वन में एक उत्कृष्ट हाथी के साथ निवास कर रहे हैं। सावत्थी नगर से अनाथपिंडिका, विशाखा (प्रख्यात महिला शिष्या) और अन्य महान व्यक्तियों ने पूज्य आनंद को यह संदेश भेजा, "हे पूज्य, हमें बुद्ध के दर्शन का सौभाग्य प्रदान कीजिए।" इसी प्रकार वर्षा ऋतु की समाप्ति पर विदेश में रहने वाले पाँच सौ भिक्षु पूज्य आनंद के पास पहुँचे और उनसे यह निवेदन किया, "हे आनंद, बुद्ध के मुख से धम्म प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। हे भाई आनंद, यदि आप कृपा करें, तो हमें बुद्ध के मुख से धम्म प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो।"

अतः पूज्य आनंद अपने साथ उन भिक्षुओं को लेकर संरक्षित वन में चले गए। वन पहुँचकर उन्होंने मन ही मन सोचा, "बुद्ध तीन माह से एकांतवास में हैं। इसलिए यह उचित नहीं कि मैं अपने साथ इतने सारे भिक्षुओं को लेकर एक साथ उनके पास जाऊँ।" अतः वे अकेले ही बुद्ध के पास गए। जब हाथी परिलय्यक ने पूज्य आनंद को देखा, तो उसने अपना दंड उठाया और उनकी ओर दौड़ पड़ा। बुद्ध ने चारों ओर देखा और हाथी से कहा, "परिलय्यक, वापस लौट आओ; इसे मत भगाओ। यह बुद्ध का सेवक है।" हाथी ने तुरंत अपना दंड फेंक दिया और पूज्य आनंद का कुंड और वस्त्र ग्रहण करने का अनुरोध किया। पूज्य आनंद ने इनकार कर दिया। हाथी ने मन ही मन सोचा, "यदि वह शिष्टाचार के नियमों से भलीभांति परिचित है, तो वह अपनी भिक्षु सामग्री उस शिला पर नहीं रखेगा जहाँ बुद्ध बैठने के लिए अभ्यस्त हैं।" पूज्य आनंद ने अपना कुंड और वस्त्र जमीन पर रख दिया। (शिष्टाचार के नियमों में पारंगत लोग अपने आध्यात्मिक गुरुओं के आसन या पलंग पर कभी भी अपनी मठवासी वस्तुएँ नहीं रखते।) बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए।

बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या आप अकेले आए हैं?" पूज्य भिक्षु ने बताया कि वे पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आए हैं। "पर वे कहाँ हैं?" बुद्ध ने पूछा। "मुझे नहीं पता था कि आपको कैसा लगेगा, इसलिए मैंने उन्हें बाहर छोड़ दिया और अकेले अंदर आ गया।" "उन्हें अंदर आने के लिए कहिए।" पूज्य भिक्षु ने वैसा ही किया। बुद्ध ने भिक्षुओं से सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "पूज्य बुद्ध, आप एक कोमल बुद्ध हैं, एक कोमल राजकुमार हैं। आपने इन तीन महीनों के दौरान अकेले खड़े और बैठे रहकर बहुत कष्ट सहा होगा। क्योंकि निश्चित रूप से आपके लिए बड़े और छोटे कर्तव्यों का पालन करने वाला कोई नहीं था, न ही आपको कुल्ला करने के लिए जल देने वाला कोई था और न ही आपके लिए कोई अन्य कर्तव्य निभाने वाला कोई था।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, हाथी

परिलय्यक ने मेरे लिए ये सभी कार्य किए। क्योंकि जिसे ऐसा साथी मिल जाए, वह अकेले भी रह सकता है; यदि कोई ऐसा साथी न पाए, तो भी एकांत जीवन बेहतर है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 328)

निपाकं सद्धिं चरणं साधुविहारिं धीरम सहायं ससे लभेथा

सब्बानि परिस्यानि अभिभूय तेन अत्तमानो सतिमा कैरेया

निपकाम् [ निपका ]: बुद्धिमान; सद्धिम् चरम् [ चरा ]: किसी के साथ रहने वाला; साधुविहारी : सद्गुणों से जीवन जीने वाला; धीरम् [ धीरा ]: दृढ़ और बुद्धिमान; सहायम् : साथी; सचे लभेत : यदि आप पा सकते हैं; सब्बानि परिस्सायनी : सभी बुराईयों से; हर खतरे से; अभिभुय्या : विजय प्राप्त करने वाला; तेन : उसके साथ; अत्तमानो [ अत्तमान ]: प्रसन्न मन से; सतीमा : सचेतनता से; करेय्य : जीवन यापन करने वाला

यदि आपको कोई बुद्धिमान, परिपक्व साथी मिले जिसके तौर-तरीके सदाचारी हों, तो आपको उससे अवश्य संगति करनी चाहिए क्योंकि तब आप सुखी और सतर्क जीवन जी सकेंगे और सभी खतरों से पार पा सकेंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 329)

निपाकं सद्धिं चरण साधुविहारी धीराम सहायं सी नो लभेथा

विजितं रथं पाहाय राजा इव अरण्ये मातंगो नागो इव एको केयर

निपका : बुद्धिमान; सद्धिं चरं : किसी के साथ रहने वाला; साधुविहारी : सद्गुणों से जीवन यापन करने वाला ; धीरं : दृढ़ और बुद्धिमान; सहायं : साथी; सचे नो लभेत : यदि न मिल सके; विजयतं : पराजित ; हारा हुआ; रट्ठं : राज्य ; पहाय : त्यागने वाला; राजा इव : राजा के समान; अरञ्ञे : वन में; मातंगो नाग इव : हाथी मातंग के समान, वन में अकेला; एको : बिल्कुल अकेला; देखभाल : घूमना-फिरना

यदि आपको कोई बुद्धिमान, परिपक्व साथी न मिले जिसके तौर-तरीके सदाचारी हों, तो आपको अपना जीवन अकेले ही गुजारना होगा, ठीक वैसे ही जैसे कोई राजा अपने जीते हुए राज्य को छोड़कर निर्वासन में रहता है, या फिर हाथी मातंगा की तरह, जो जंगल में एकांत में घूमता रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 330)

एकस्सा चरितं सेय्यो बाले सहायता नत्थि अरण्ये

मातंगो नागो इवा अप्पोसुक्को एको केयर पापनी ना कै काइरा

एकास्सा : अकेले व्यक्ति का; चरितम् [ चरिता ]: व्यवहार; सेय्यो [ सेय्य ]: महान है; बाले : अज्ञानी के साथ; नत्थि सहायता : कोई साथी नहीं; अरञ्ञे : जंगल में; मातंगो नागो इव : हाथी मातंग की तरह; अप्पोसुक्को [ अप्पोसुक्का ]: सीमित आवश्यकताओं के साथ; एको केयर : अकेले घूमना; पापानि न च कायिरा : कोई बुराई न करना

एकांत जीवन जीना अधिक प्रशंसनीय है। अज्ञानी लोगों की संगति उचित नहीं है। सीमित आवश्यकताओं के साथ, एकांत जीवन व्यतीत करें, कोई कुकर्म न करें, ठीक वैसे ही जैसे हाथी मातंगा करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 328-330)

पारिलेय्यक वन में निवास करते समय, जहाँ हाथी पारिलेय्यक उनकी सेवा करता था, बुद्ध ने कोसंबी के भिक्षुओं के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

बुद्ध अपने उपदेश के नौवें वर्ष में कोसंबी में स्थित घोषिताराम मठ में निवास कर रहे थे, जिसका निर्माण घोषिता ने करवाया था। एक भिक्षु ने अनुशासनहीनता का अपराध किया था, जिसे वह अपराध मानता था, जबकि अन्य भिक्षु इसे अपराध नहीं मानते थे। बाद में, अपराध करने वाले भिक्षु ने इसे अपराध नहीं माना, जबकि अन्य भिक्षुओं का मानना था कि वह दोषी था।

आरोप यह था कि भिक्षु ने शौचालय का उपयोग करने के बाद बर्तन में थोड़ा पानी छोड़ दिया था और उसे खाली नहीं किया था। जब अन्य भिक्षुओं ने उससे पूछताछ की तो उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इसके बाद अन्य भिक्षुओं ने मिलकर उसके निष्कासन का आदेश जारी कर दिया।

वह भिक्षु विद्वान, ज्ञानवान, प्रवचनों और अनुशासन में पारंगत और आचरण में निपुण था। वह संघ में अपने मित्रों और शुभचिंतकों के पास गया और उन्हें सारी घटना समझाई तथा अपनी निर्दोषता का विश्वास दिलाया। ये भिक्षु अपने मित्र के निष्कासन आदेश जारी करने वाले भिक्षुओं से मिलने गए और उनसे बहस करने लगे, परन्तु मामला सुखद अंत तक नहीं पहुंचा।

भिक्षु दो गुटों में बंट गए और यह बात बुद्ध के कानों तक पहुंची। बुद्ध ने देखा कि भिक्षु समुदाय में फूट पड़ गई है और वे निष्कासन आदेश देने वाले भिक्षुओं के पास गए। उन्होंने उन्हें उनके इस कार्य की मूर्खता समझाई, क्योंकि इससे भिक्षु समुदाय में फूट पड़ सकती थी। इसके बाद, बुद्ध दूसरे गुट के अनुयायियों के पास गए और उनके आचरण की निंदा की, क्योंकि इससे भी भिक्षुओं में अप्रत्याशित फूट पड़ सकती थी।

बुद्ध की चेतावनी के बाद, निष्कासन आदेश देने वाले भिक्षुओं ने मठ परिसर के भीतर ही अपने अनुशासनात्मक अनुष्ठान जारी रखे, जबकि दूसरे गुट ने मठ की सीमा से बाहर अपने अनुष्ठान करने शुरू कर दिए। जब बुद्ध का ध्यान इस स्थिति की ओर आकर्षित हुआ, तो उन्होंने इसमें कुछ भी गलत नहीं पाया।

लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हुई। कोसंबी के भिक्षु दो गुटों में बंट गए और वे गांव में, भिक्षागृह में और जहां भी मिलते, आपस में झगड़ते रहते थे। गांव के लोग भिक्षुओं के इस व्यवहार से नाराज हो गए और उन्हें फटकारने और बुरा-भला कहने लगे।

कुछ भिक्षुओं ने बुद्ध से इस मामले में हस्तक्षेप करने और भिक्षु समुदाय में व्याप्त इन विवादों और मतभेदों को समाप्त करने का अनुरोध किया। अतः बुद्ध भिक्षुओं की सभा में आए और उन्हें आपस में मतभेद न करने की चेतावनी दी। फिर बुद्ध ने उन्हें काशी के राजा ब्रह्मदत्त और कोसल के राजा दीघिति की कथा तथा राजकुमार दीघायु के आचरण का उपदेश दिया, ताकि वे झगड़ों की बुराइयों और सहनशीलता के लाभों को समझ सकें।

राजाओं के धैर्य और सौम्यता का हवाला देते हुए, बुद्ध ने भिक्षुओं से आग्रह किया कि वे अपने मतभेदों को भुलाकर धैर्य रखें, क्योंकि वे पहले से ही भिक्षु जीवन जी रहे थे। हालांकि, झगड़ालू भिक्षुओं के एक गुट के प्रवक्ता ने कहा कि बुद्ध को उनके विवादों से दूर रहना चाहिए और उन्हें अकेला छोड़ देना चाहिए।

बुद्ध सभा छोड़कर यह कहते हुए चले गए: "ये मूर्ख लोग अपना आपा खो चुके हैं। इन्हें समझाना और मनाना मुश्किल है।"

अगली सुबह बुद्ध ने कोसंबी में भिक्षा मांगने के बाद दोपहर का भोजन किया और भिक्षुओं के समुदाय के बीच शत्रुता और फूट की बुराइयों और एकांत के लाभों के बारे में बात की, जहाँ अच्छे लोगों का साथ नहीं मिल पाता।

भिक्षुओं के समुदाय से बात करने के बाद, बुद्ध कोसंबी नगर से अकेले ही निकल पड़े और बालाकलोंकारामा (नमक बनाने वाले बालाका) गाँव की ओर प्रस्थान किया, जहाँ उनका स्वागत पूज्य भगु ने किया। वहाँ से वे पचिना वंश उद्यान गए, जहाँ पूज्य अनुरुद्ध, नंदीय और किंबिला ठहरे हुए थे।

उद्यान के रक्षक ने बुद्ध को उद्यान में आने से रोकने का प्रयास किया, लेकिन तीनों भिक्षु आदरपूर्वक बुद्ध का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़े। यह सुनकर कि वे एक-दूसरे के प्रति अत्यंत एकता और आदर का भाव रखते हैं, बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और परिलय्यक वन की ओर प्रस्थान कर दिया।

बुद्ध परिलय्यक वन में पहुँचे, रक्खिता उपवन (पवित्रस्थल) में प्रवेश किया और एक ऊँचे साल वृक्ष की तलहटी में विश्राम करने लगे। अकेले में बैठे बुद्ध बहुत प्रसन्न और राहत महसूस कर रहे थे, क्योंकि वे कोसंबी के उन झगड़ालू और विवाद करने वाले भिक्षुओं से दूर थे जो अक्सर अपनी शिकायतें लेकर उनके पास आते थे।

उस जंगल में हाथियों के झुंड का सरदार, एक हाथी अपने झुंड से तंग आ चुका था और उसने एकांत जीवन के बारे में सोचा। क्योंकि उसके द्वारा लाई गई पेड़ों की डालियाँ झुंड के अन्य हाथी खा जाते थे और पानी से बाहर आते समय मादा हाथी उसके शरीर से रगड़ खाते थे। हाथी उस स्थान पर आया जहाँ बुद्ध बैठे थे और बुद्ध की सेवा करने लगा, उस स्थान की सफाई करने लगा और अपनी सूंड से उनके लिए भोजन और पेय लाने लगा। इस प्रकार, उसे भी एकांत जीवन में आनंद आने लगा। तब बुद्ध ने एकांत के लाभों पर आनंदमय प्रवचन दिए।

परिलय्यक वन में तीन माह व्यतीत करने के बाद, बुद्ध जेतवन मठ लौट आए। कोसंबी के नागरिक झगड़ालू भिक्षुओं से नाराज़ थे और उन्होंने उन्हें भिक्षा देने या अन्य कोई सम्मान देने से इनकार कर दिया। तब भिक्षुओं ने गृहस्थ भक्तों से कहा कि वे बुद्ध से मिलने जाएंगे और उनके मार्गदर्शन में अपने सभी मतभेदों का समाधान करेंगे।

पूज्य सारिपुत्त, मोग्गलाना, महा कस्सपा, रीवत, अनुराधा, उपाली, आनंद और राहुल को झगड़ालू भिक्षुओं के आने की सूचना मिली और उन्होंने बुद्ध से उनके साथ व्यवहार करने के संबंध में परामर्श मांगा। बुद्ध ने उन्हें अनुशासन के सिद्धांतों के बारे में उपदेश दिया।

इसी प्रकार, महा प्रजापति गौतमी, अनाथपिंडिका और विशाखा ने झगड़ालू भिक्षुओं के दो गुटों के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, इस बारे में बुद्ध से परामर्श मांगा। बुद्ध ने उन्हें दोनों गुटों को दान आदि देने और दोनों की बात सुनने की सलाह दी, लेकिन सही पक्ष का अनुसरण करने को कहा।

भिक्षुओं के दोनों गुटों ने अपने विवाद सुलझा लिए और बुद्ध के पास जाकर उनसे क्षमा मांगी। बुद्ध ने उन्हें अनुशासन के संबंध में और भी उपदेश और निर्देश दिए।

बुद्ध ने कहा, "हाथी परिलय्यक इतने समय से मेरी देखभाल कर रहा था। यदि किसी के पास ऐसा अच्छा मित्र हो तो उसे उसके साथ रहना चाहिए। परन्तु यदि अच्छा मित्र न मिले तो अकेले रहना ही बेहतर है।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 331,332,333

---

(धम्मपद 328, 329 और 330) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 331, 332 और 333 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 334, 335, 336 और 337)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 331, 332 और 333 - मारा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Atthamhi jatamhi sukha sahaya
tutthi sukha ya itaritarena
पुन्नं सुखं जीवितसंखयामहि
सब्बास्सा दुक्खस्सा सुखं पहानम्।
सुखा मतेय्या लोके
atho petteyyata sukha
सुखा समन्नत लोके
atho brahmannata sukha.
Sukham yava jara silam
सुख सद्धा पतित्तिता
सुखो पन्नया पतिलभो
papanam akaranam sukham.

---

श्लोक 331 : आवश्यकता पड़ने पर मित्र होना अच्छा है; जो कुछ भी उपलब्ध है उससे संतुष्ट रहना अच्छा है; जीवन के अंत के समय पुण्य होना अच्छा है; सभी दुःख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाना अच्छा है।

---

श्लोक 332 : इस संसार में माता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना अच्छा है; पिता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना भी अच्छा है। इस संसार में समनों(1) की सेवा करना अच्छा है; ब्राह्मणों(2) की सेवा करना भी अच्छा है।

---

श्लोक 333 : वृद्धावस्था तक सद्गुण बनाए रखना अच्छा है, अटूट विश्वास रखना अच्छा है, ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है, बुराई न करना अच्छा है।

---

1. समना: संन्यासी, भिक्षु आदि, जो बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करते हैं।
2. ब्राह्मण: यहाँ बुद्धों, पच्चेकबुद्धों या अरहतों आदि से तात्पर्य उन लोगों से है जिन्होंने सत्य को जान लिया है।

---

मारा की कहानी (अर्थात् शैतान/राक्षस द्वारा बुद्ध को राजा के रूप में शासन करने के लिए लुभाने की कहानी)
हिमालय के पास एक मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (331), (332) और (333) का उच्चारण किया, जो मारा के संदर्भ में थे, जिसने उन्हें राजा के रूप में शासन करने के लिए लुभाने की कोशिश की थी।

एक बार जब बुद्ध हिमालय के निकट निवास कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि कुछ दुष्ट राजा अनेक लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं। तब उनके मन में यह विचार आया कि क्या ऐसा संभव है जिससे उन लोगों को अत्याचार करने से रोका जा सके जिन पर अत्याचार नहीं किया जाना चाहिए और राजाओं को न्यायपूर्वक और बुद्धिमानी से शासन करने के लिए प्रेरित किया जा सके। मारा बुद्ध के विचारों को जानता था और उसने बुद्ध को राजा बनने के लिए लुभाने की योजना बनाई। बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे दुष्ट मारा! तुम्हारा उपदेश और मेरा उपदेश बिल्कुल भिन्न हैं। हम दोनों के बीच कोई चर्चा नहीं हो सकती। यही मेरा उपदेश है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 331 : आवश्यकता पड़ने पर मित्र होना अच्छा है; जो कुछ भी उपलब्ध है उससे संतुष्ट रहना अच्छा है; जीवन के अंत के समय पुण्य होना अच्छा है; सभी दु:ख (पीड़ा/पुनर्जन्म) से मुक्ति पाना अच्छा है।

---

श्लोक 332 : इस संसार में माता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना अच्छा है; पिता के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना भी अच्छा है। इस संसार में सामनों की सेवा करना अच्छा है; ब्राह्मणों की सेवा करना भी अच्छा है।

---

श्लोक 333 : वृद्धावस्था तक सद्‌गुण बनाए रखना अच्छा है, अटूट विश्वास रखना अच्छा है, ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है, बुराई न करना अच्छा है।

---

अध्याय तेईस का अंत: हाथी

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा की कहानी
यह सैद्धांतिक उपदेश बुद्ध ने हिमालय देश के एक वन-कुटिया में निवास करते समय मारा के संदर्भ में दिया था।
परंपरा के अनुसार, उस समय राजा अपने अधीन प्रजा पर अत्याचार करते थे। जब बुद्ध ने इन दुष्ट राजाओं के शासन में लोगों को दंडित और सताते देखा, तो वे करुणा से भर उठे। उन्होंने मन ही मन सोचा, "क्या बिना हत्या किए या हत्या करवाए, बिना विजय प्राप्त किए या विजय दिलवाए, बिना दु:ख दिए या दु:ख पहुँचाए, न्याय और धर्म के साथ शासन करना संभव नहीं है?" तभी दुष्ट मारा ने बुद्ध के मन में चल रहे विचार को भांप लिया और सोचा, "भिक्षु गौतम मन ही मन सोच रहे हैं, 'क्या शासन करना संभव नहीं है?' अवश्य ही वे अब शासन करना चाहते हैं। और यह शासन जिसे संप्रभुता कहा जाता है, वह लापरवाही का कारण है। यदि वे शासन करते हैं, तो मैं उन्हें धोखे में ले सकता हूँ। इसलिए मैं जाकर उनकी महत्वाकांक्षा को जगाऊँगा।"
तदनुसार, मारा ने बुद्ध को संप्रभुता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया; सुखी व्यक्ति को संप्रभुता का प्रयोग करना चाहिए, बिना हत्या किए या हत्या का कारण बने, बिना विजय प्राप्त किए या विजय का कारण बने, बिना शोक किए या शोक का कारण बने, न्याय और धर्म के साथ। बुद्ध ने मारा से कहा, "दुष्ट, मुझमें ऐसा क्या है जो तुम मुझसे ऐसा कह रहे हो?" मारा ने कहा, "आदरणीय, परम पूज्य बुद्ध ने जादूई शक्ति के चारों आधारों को पूर्णत: विकसित कर लिया है। क्योंकि यदि बुद्ध यह संकल्प लें, 'पर्वतों के राजा हिमालय को सोने में बदल दिया जाए,' तो वह पर्वत सोने का हो जाएगा। मैं भी इस धन से वे सभी कार्य करूँगा जो धन से किए जा सकते हैं। इस प्रकार आप न्याय और धर्म के साथ शासन करें।"
तब बुद्ध ने कहा:
सोने का पूरा पहाड़, वह भी शुद्ध सोने का।
एक के लिए भी पर्याप्त नहीं थे।
यह जानते हुए, मनुष्य को न्यायसंगत मार्ग पर चलना चाहिए।
जिस व्यक्ति ने दुख के स्रोत को देख लिया हो, वह इंद्रिय सुखों में कैसे लिप्त हो सकता है?
जिस व्यक्ति को संसार में आसक्ति कहलाने वाले अस्तित्व के मूल तत्व का ज्ञान हो गया हो, उसे केवल इसी को वश में करने का प्रशिक्षण लेना चाहिए।
इन श्लोकों के द्वारा बुद्ध ने दुष्ट मारा को प्रज्वलित और भयभीत किया। फिर उन्होंने उससे कहा, "हे दुष्ट, मैं तुझे एक बार फिर चेतावनी देता हूँ। मेरा तुझसे कोई संबंध नहीं है। इसलिए मैं तुझे चेतावनी देता हूँ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 331)
अत्थमहि जातमहि सहाय सुखा इतरितरेण य तूति सुक्खा
जीवितसंखायमहि पुन्नं सुखं सब्बस्सा दुक्खस्सा पहानं सुखं

अत्तम्ही : जब कोई कार्य उत्पन्न होता है ; जाताम्ही : मित्र और सहयोगी; इतरीतरेन : यदि किसी संपत्ति से संतुष्टि मिलती है; या तुट्ठी : सुख मिलता है; सुख : आराम मिलता है; जीवन के अंत में; पुण्य : पुण्य ; सुख : आराम मिलता है; सब्बस : सभी; दु:ख : दु:ख ; पहान : उन्मूलन ; सुख : आनंद मिलता है

संकट के समय मित्र ही सहारा होते हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत आपके पास है, उसी से संतुष्ट रहना भी सुकून देता है। जीवन के अंत में पुण्य का फल मिलना भी सुकून देता है। वास्तव में, सभी दुखों का नाश हो जाना ही परम आनंद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 332)

लोके मत्तेयता सुखा अथो पेटेयता
ब्रह्मणत समानत सुखा

लोके : इस संसार में; मत्तेय्यता : मातृत्व; सुखा : एक आशीर्वाद है; एथो : उसी प्रकार; पेटेय्यता : पितृत्व; ब्राह्मणता : अरहत की अवस्था; समन्नता : साधुत्व

इस संसार में मातृत्व एक आशीर्वाद है। उसी प्रकार, पितृत्व भी एक आशीर्वाद है। संन्यास भी एक आशीर्वाद है। और इन सबसे बढ़कर, अरहत्व एक आशीर्वाद है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 333)

यव जरा सिलं सुखं सद्ध पतिथिता सुखा
पन्याय पतिलाभो सुखो पापानां अकरणं सुखं

याव जरा : शारीरिक क्षय तक; सिलां [ सिला ]: पुण्य में; सुखं [ सुखा ]: एक आशीर्वाद है; पतितिहित : दृढ़ता से स्थापित होना; पनन्या : बुद्धि; पतिलाभो [ पतिलाभ ]: अधिग्रहण; सुखो [ सुखा ]: एक आशीर्वाद है; पापनां [ पापना ]: अस्वास्थ्यकरता; अकारणं [ अकारण ]: गैर-कमीशन

वृद्धावस्था और क्षीणता तक सद्‌गुणों का अनुसरण करना एक आशीर्वाद है। ज्ञान की प्राप्ति एक आशीर्वाद है। अस्वास्थ्यकर कार्यों से दूर रहना एक आशीर्वाद है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 331-333)

इन श्लोकों में बुद्ध सहायों (मित्रों और सहयोगियों) पर जोर देते हैं और मातृत्व, पितृत्व, भिक्षुत्व और अरहत्व को आशीर्वाद के रूप में मानने की आवश्यकता पर बल देते हैं। बुद्ध ने युवा गृहस्थ सिगाला को, जो छह दिशाओं की पूजा करने का आदी था, याद दिलाया कि छह दिशाओं का एक और समूह है जिसकी उसे पूजा करनी चाहिए। ये छह दिशाएँ परिवार के सदस्यों और सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्तियों से बनी हैं, जिनका सम्मान करना उचित है। तो कहानी इस प्रकार है।

सिगाला नाम का एक युवक अपने मरणासन्न पिता द्वारा दी गई अंतिम सलाह का पालन करते हुए आकाश की छह दिशाओं - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नादिर और शीर्ष - की पूजा करता था। बुद्ध ने उस युवक को बताया कि उनके उपदेश के 'महान अनुशासन' ( अरीयस्स विनये ) में ये छह दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके 'महान अनुशासन' के अनुसार ये छह दिशाएँ इस प्रकार थीं: पूर्व: माता-पिता; दक्षिण: शिक्षक; पश्चिम: पत्नी और बच्चे; उत्तर: मित्र, रिश्तेदार और पड़ोसी; नादिर: सेवक, श्रमिक और कर्मचारी; शीर्ष: धार्मिक पुरुष।

बुद्ध ने कहा, "मनुष्य को इन छह दिशाओं की उपासना करनी चाहिए।" यहाँ उपासना ( नमस्सेय्य ) शब्द का विशेष महत्व है, क्योंकि उपासना किसी पवित्र वस्तु की, आदर और सम्मान के योग्य वस्तु की की जाती है। बौद्ध धर्म में ऊपर वर्णित इन छह पारिवारिक और सामाजिक समूहों को पवित्र, आदर और उपासना के योग्य माना जाता है। परन्तु इनकी उपासना कैसे की जाए? बुद्ध कहते हैं कि इनकी उपासना केवल इनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करके ही की जा सकती है। इन कर्तव्यों की व्याख्या उन्होंने सिगाला को दिए अपने उपदेश में की है।

सर्वप्रथम: माता-पिता अपने बच्चों के लिए पवित्र होते हैं। बुद्ध कहते हैं: "माता-पिता को ब्रह्म कहा जाता है" ( ब्रह्माति मातापितारो )। भारतीय चिंतन में ब्रह्म शब्द सर्वोच्च और सबसे पवित्र अवधारणा को दर्शाता है, और बुद्ध इसमें माता-पिता को भी शामिल करते हैं। अतः वर्तमान समय में अच्छे बौद्ध परिवारों में बच्चे प्रतिदिन सुबह-शाम अपने माता-पिता की पूजा करते हैं। उन्हें अपने माता-पिता के प्रति कुछ कर्तव्य निभाने होते हैं: वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करना; उनकी ओर से जो भी करना हो, करना; परिवार की प्रतिष्ठा बनाए रखना और पारिवारिक परंपरा को आगे बढ़ाना; माता-पिता द्वारा अर्जित धन की रक्षा करना; और उनकी मृत्यु के बाद उनके अंतिम संस्कार करना। माता-पिता की भी अपने बच्चों के प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं: उन्हें अपने बच्चों को बुरे मार्गों से दूर रखना; उन्हें अच्छे और लाभकारी कार्यों में लगाना; उन्हें अच्छी शिक्षा देना; अच्छे परिवारों में उनका विवाह कराना; और समय आने पर संपत्ति उन्हें सौंप देना।

दूसरा: शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का संबंध ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी शिक्षक का सम्मान करे और उसकी आज्ञा का पालन करे; उसकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखे; और लगन से अध्ययन करे। शिक्षक को भी अपने विद्यार्थी को उचित प्रशिक्षण और

मार्गदर्शन देना चाहिए; उसे अच्छी तरह पढ़ाना चाहिए; उसे अपने मित्रों से मिलवाना चाहिए; और शिक्षा पूरी होने के बाद उसके लिए सुरक्षा या रोजगार दिलाने का प्रयास करना चाहिए।

तीसरा: पति-पत्नी का संबंध: पति-पत्नी के बीच प्रेम को लगभग धार्मिक या पवित्र माना जाता है। इसे सदारब्रह्मचर्य 'पवित्र पारिवारिक जीवन' कहा जाता है। यहाँ भी ब्रह्म शब्द का महत्व स्पष्ट है: इस संबंध को सर्वोच्च सम्मान दिया जाता है। पति-पत्नी को एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान, आदरणीय और समर्पित होना चाहिए, और उनके एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं: पति को हमेशा अपनी पत्नी का आदर करना चाहिए और कभी भी उसके प्रति अनादर नहीं दिखाना चाहिए; उसे उससे प्रेम करना चाहिए और उसके प्रति निष्ठावान रहना चाहिए; उसकी स्थिति और सुख-सुविधाओं को सुनिश्चित करना चाहिए; और उसे वस्त्र और आभूषण भेंट करके प्रसन्न करना चाहिए। (बुद्ध ने पति द्वारा पत्नी को दिए जाने वाले उपहारों जैसी बातों का भी उल्लेख किया है, जो दर्शाता है कि वे सामान्य मानवीय भावनाओं के प्रति कितने संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण थे।) पत्नी को भी घर के कामकाज की देखरेख करनी चाहिए; मेहमानों, आगंतुकों, मित्रों, रिश्तेदारों और कर्मचारियों का सत्कार करना चाहिए; अपने पति से प्रेम करना चाहिए और उसके प्रति निष्ठावान रहना चाहिए; उसकी आय की रक्षा करनी चाहिए; और सभी कार्यों में कुशल और ऊर्जावान होना चाहिए।

चौथा: मित्रों, रिश्तेदारों और पड़ोसियों के बीच संबंध: उन्हें एक-दूसरे के प्रति आतिथ्य सत्कार और दयालु होना चाहिए; उन्हें मधुर और सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करनी चाहिए; उन्हें एक-दूसरे के कल्याण के लिए काम करना चाहिए; उन्हें एक-दूसरे के साथ समान व्यवहार करना चाहिए; उन्हें आपस में झगड़ा नहीं करना चाहिए; उन्हें जरूरत के समय एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए; और मुश्किल समय में एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

पांचवा: स्वामी और सेवक का संबंध: स्वामी या नियोक्ता का अपने सेवक या कर्मचारी के प्रति अनेक दायित्व होते हैं: योग्यता और क्षमता के अनुसार कार्य सौंपा जाना चाहिए; पर्याप्त वेतन दिया जाना चाहिए; चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए; समय-समय पर दान या बोनस दिया जाना चाहिए। बदले में, सेवक या कर्मचारी को भी परिश्रमी होना चाहिए, आलसी नहीं; ईमानदार और आज्ञाकारी होना चाहिए और स्वामी को धोखा नहीं देना चाहिए; उसे अपने काम में लगन से काम करना चाहिए।

छठा: धार्मिक (यानी संन्यासी और ब्राह्मण) और गृहस्थों के बीच संबंध: गृहस्थों को प्रेम और सम्मान के साथ धार्मिकों की भौतिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए; धार्मिकों को प्रेमपूर्ण हृदय से गृहस्थों को ज्ञान और विद्या प्रदान करनी चाहिए और उन्हें बुराई से दूर अच्छे मार्ग पर ले जाना चाहिए।

मत्तय्याता : इसका अर्थ है माताओं के प्रति सजगता और अच्छा आचरण — नारी जाति के प्रति सजगता। विश्व के धर्मों में बुद्ध का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि वे एक ऐसे आध्यात्मिक नेता थे जो महिलाओं को विशेषाधिकार प्रदान करने के लिए अत्यंत चिंतित थे।

बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति अद्वितीय है। बुद्ध ने महिलाओं को धार्मिक जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता दी। बुद्ध पहले धार्मिक गुरु थे जिन्होंने महिलाओं को यह धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। बुद्ध से पहले, महिलाओं का कर्तव्य रसोई तक ही सीमित था; उन्हें किसी मंदिर में प्रवेश करने या धार्मिक पाठ करने की भी अनुमति नहीं थी। बुद्ध के समय में समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न थी। जब बुद्ध ने महिलाओं को यह स्वतंत्रता दी, तो तत्कालीन व्यवस्था ने उनकी कड़ी आलोचना की। महिलाओं को धार्मिक मार्ग पर चलने की अनुमति देना उस समय के लिए अत्यंत क्रांतिकारी कदम था। फिर भी, बुद्ध ने महिलाओं को स्वयं को सिद्ध करने और यह दिखाने का अवसर दिया कि उनमें भी पुरुषों के समान ही अरहंतत्व प्राप्त करके धार्मिक जीवन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने की क्षमता है। विश्व की प्रत्येक महिला को बुद्ध का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने उन्हें वास्तविक धार्मिक जीवन का मार्ग दिखाया और विश्व इतिहास में पहली बार उन्हें ऐसी स्वतंत्रता प्रदान की।

बुद्ध के समय में महिलाओं के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण का एक अच्छा उदाहरण मारा के इन शब्दों में मिलता है:

"अपनी दो उंगलियों के ज्ञान से कोई भी स्त्री उन ऊंचाइयों तक पहुंचने की आशा नहीं कर सकती जो केवल ऋषियों द्वारा ही प्राप्त की जाती हैं।"

निःसंदेह बुद्ध ने इस प्रकार के विचारों का पुरजोर खंडन किया। जिस भिक्षुणी से मारा ने ये शब्द कहे थे, उसने निम्नलिखित उत्तर दिया:

"जब किसी का मन पूरी तरह से एकाग्र होता है और ज्ञान कभी विफल नहीं होता, तो क्या स्त्री होने से कोई फर्क पड़ता है?"

राजा कोसल को जब पता चला कि उनकी रानी ने एक बच्ची को जन्म दिया है, तो उन्हें बहुत निराशा हुई। उन्हें बेटे की उम्मीद थी। दुखी राजा को सांत्वना देने के लिए बुद्ध ने कहा:

"हे मनुष्यों के स्वामी, एक कन्या संतान सिद्ध हो सकती है।"
यहां तक कि नर संतान से भी बेहतर संतान।
ताकि वह बुद्धिमान और गुणी बनकर बड़ी हो सके।
अपने पति की मां का सम्मान करने वाली, सच्ची पत्नी।
वह जिस बेटे को जन्म देगी, वह महान कर्म करेगा।
और महान राज्यों पर शासन करे, हाँ, ऐसा पुत्र।

एक कुलीन पत्नी अपने देश की मार्गदर्शक बन जाती है।
एक ऐसे ही अवसर पर उन्होंने स्वीकार किया कि केवल पुरुष ही बुद्धिमान नहीं होता; स्त्री भी बुद्धिमान होती है।
अध्याय 24. तन्हावग्ग: लालसा (334-359)


———————————————————————————

(धम्मपद 331, 332 और 333) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 334, 335, 336 और 337 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 338 से 343)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 334, 335, 336 और 337 - कपिलमच्च वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Manujassa pamattacarino
tanha vaddhati maluva viya
so plavati hura huram
फलामिच्छम्व वनस्मि वनारो।
Yam esa sahate jammi
tanha loke visattika
soka tassa pavaddhanti
abhivatthamva biranam.
Yo cetam sahate jammim
tanham loke duraccayam
soka tamha papatanti
udabindu va pokkhara.
Tam vo vadami bhaddam vo
yavante' ttha samagata
tanhaya mulam khanatha
usiratthova biranam
ma vo nalamva sotova
maro bhanji punappunam.

———————————————————————————

श्लोक 334 : जो व्यक्ति लापरवाह होता है, उसमें लालसा लता की तरह बढ़ती है। वह जन्म-जन्मांतर तक ऐसे ही भागता रहता है, जैसे कोई बंदर जंगल में फल ढूंढता है।

———————————————————————————

श्लोक 335 : इस संसार में, जो व्यक्ति इंद्रियों से चिपकी रहने वाली इस नीच लालसा से ग्रस्त होता है, उसमें दु:ख उसी प्रकार बढ़ता है जैसे अच्छी तरह से सींची गई बिरना घास बहुतायत से उगती है।

———————————————————————————

श्लोक 336 : इस संसार में, जो व्यक्ति इस घृणित लालसा पर विजय प्राप्त कर लेता है, जिससे छुटकारा पाना कठिन है, उससे दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें गिर जाती हैं।

---

श्लोक 337 : अतः मैं आप सभी उपस्थित लोगों को यह सार्थक प्रवचन दूंगा। लालसा की जड़ को उसी प्रकार उखाड़ फेंको, जैसे सुगंधित जड़ पाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति बिरना घास को उखाड़ फेंकता है। मार को बार-बार तुम्हें नष्ट न करने दो, जैसे बाढ़ सरकंडे को नष्ट कर देती है।

---

कपिला मछली की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (334), (335), (336) और (337) का उच्चारण किया, जिसमें एक सुंदर, सुनहरे रंग और बदबूदार मुंह वाली मछली का जिक्र था।

कश्यप बुद्ध के समय में कपिल नाम का एक भिक्षु था, जो पिटकों का बहुत बड़ा ज्ञाता था। अपने ज्ञान के कारण उसने बहुत प्रसिद्धि और धन अर्जित किया; वह बहुत अहंकारी हो गया और अन्य भिक्षुओं के प्रति तिरस्कार भाव रखता था। जब अन्य भिक्षु उसे उचित और अनुचित के बारे में बताते, तो वह हमेशा कहता, "तुम्हें कितना ज्ञान है?" जिसका अर्थ यह था कि वह उन भिक्षुओं से कहीं अधिक जानता है। समय बीतने के साथ, सभी अच्छे भिक्षुओं ने उसका बहिष्कार कर दिया और केवल बुरे भिक्षु ही उसके आसपास एकत्रित होने लगे। एक उपवास के दिन, जब भिक्षु भिक्षुओं के लिए मूलभूत उपदेशों (अर्थात पतिमोक्ख) का पाठ कर रहे थे, कपिल ने कहा, "सूत्र, अभिधम्म या विनय जैसी कोई चीज नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हें पतिमोक्ख सुनने का अवसर मिले या न मिले," इत्यादि, और भिक्षुओं की सभा छोड़कर चला गया। इस प्रकार, कपिला शिक्षा (शासन) के विकास और वृद्धि में बाधक था।

इस बुरे कर्म के कारण कपिल को कश्यप बुद्ध और गौतम बुद्ध के बीच निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा। बाद में उनका पुनर्जन्म अचिरवती नदी में एक मछली के रूप में हुआ। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस मछली का शरीर अत्यंत सुंदर और सुनहरा था, परन्तु उसके मुँह से अत्यंत दुर्गंध आती थी। एक दिन कुछ मछुआरों ने उस मछली को पकड़ लिया और उसकी सुंदरता के कारण उसे नाव में राजा के पास ले गए। राजा उस मछली को बुद्ध के पास ले गए। जब मछली ने अपना मुँह खोला, तो उसकी दुर्गंध चारों ओर फैल गई। तब राजा ने बुद्ध से पूछा कि इतनी सुंदर मछली से इतनी दुर्गंध क्यों आती है। राजा और उपस्थित लोगों को बुद्ध ने समझाया, "हे राजा! कश्यप बुद्ध के समय में एक बहुत विद्वान भिक्षु थे जो दूसरों को धम्म का उपदेश देते थे। उस पुण्य कर्म के फलस्वरूप, जब उनका पुनर्जन्म हुआ, तो मछली के रूप में भी, उन्हें स्वर्णमय शरीर प्राप्त हुआ। परन्तु वह भिक्षु बहुत लालची, अभिमानी और दूसरों का घोर तिरस्कार करने वाला था; उसने अनुशासनों की अवहेलना की और अन्य भिक्षुओं का अपमान किया। इन बुरे कर्मों के कारण, उनका पुनर्जन्म निरय/नरक में हुआ, और अब, वे एक सुंदर मछली बन गए हैं जिसका मुँह दुर्गंधयुक्त है।" बुद्ध ने फिर मछली की ओर मुड़कर पूछा कि क्या वह जानती है कि अगले जन्म में उसे कहाँ जाना होगा। मछली ने उत्तर दिया कि उसे फिर से निरय/नरक जाना होगा और वह घोर निराशा से भर गई। जैसा कि भविष्यवाणी की गई थी, अपनी मृत्यु के बाद मछली का पुनर्जन्म निरय/नरक में हुआ, जहाँ उसे निरंतर पीड़ा भोगनी पड़ी।

मछली के बारे में सुनकर वहां मौजूद सभी लोग घबरा गए। तब बुद्ध ने विद्या और अभ्यास को एक साथ करने के लाभों पर प्रवचन दिया।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 334 : जो व्यक्ति लापरवाह होता है, उसमें लालसा लता की तरह बढ़ती है। वह जन्म-जन्मांतर तक ऐसे ही भागता रहता है, जैसे कोई बंदर जंगल में फल ढूंढता है।

---

श्लोक 335 : इस संसार में, जो व्यक्ति इंद्रियों से चिपकी रहने वाली इस नीच लालसा से ग्रस्त होता है, उसमें दुःख उसी प्रकार बढ़ता है जैसे अच्छी तरह से सींची गई बिरना घास बहुतायत से उगती है।

---

श्लोक 336 : इस संसार में, जो व्यक्ति इस घृणित लालसा पर विजय प्राप्त कर लेता है, जिससे छुटकारा पाना कठिन है, उससे दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें गिर जाती हैं।

---

श्लोक 337 : अतः मैं आप सभी उपस्थित लोगों को यह सार्थक प्रवचन दूंगा। लालसा की जड़ को उसी प्रकार उखाड़ फेंको, जैसे सुगंधित जड़ पाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति बिरना घास को उखाड़ फेंकता है। मार को बार-बार तुम्हें नष्ट न करने दो, जैसे बाढ़ सरकंडे को नष्ट कर देती है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अतीत की कहानी: अभिमानी भिक्षु

कथा के अनुसार, बहुत समय पहले जब बुद्ध कश्यप निर्वाण प्राप्त हुए, तब एक प्रतिष्ठित परिवार के दो बंधुओं ने संसार त्याग कर अपने शिष्यों के अधीन भिक्षु बन गए। बड़े बंधुओं का नाम शोधन और छोटे बंधुओं का नाम लाल कपिला था। इसी प्रकार उनकी माता साधिनी और छोटी बहन तपना ने भी संसार त्याग कर भिक्षुणी बन गईं। भिक्षु बनने के बाद, दोनों बंधुओं ने अपने गुरुओं और उपदेशकों के प्रति नियमित और निष्ठापूर्वक अपने सभी प्रमुख और गौण कर्तव्यों का पालन किया। एक दिन उन्होंने यह प्रश्न पूछा, "आदरणीय, इस धर्म में कितने भार हैं?" और उन्हें यह उत्तर मिला, "दो भार हैं: अध्ययन का भार और ध्यान का भार।" तब बड़े बंधुओं ने कहा, "मैं ध्यान का भार पूरा करूंगा," और पाँच वर्षों तक अपने गुरु और उपदेशक के साथ रहे। अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए एक ध्यान विषय प्राप्त करके, वे वन में प्रवेश कर गए, और अथक परिश्रम और संघर्ष के बाद अर्हतत्व प्राप्त किया।

छोटे भाई ने कहा, "मैं अभी जवान हूँ; जब बूढ़ा हो जाऊँगा, तब ध्यान का भार पूरा करूँगा।" तदनुसार, उन्होंने अध्ययन का भार अपने ऊपर लिया और तीनों पिटकों को कंठस्थ कर लिया । ग्रंथों के ज्ञान से उन्होंने बहुत से अनुयायी प्राप्त किए और उनके माध्यम से उन्हें भरपूर दान मिला। ज्ञान के नशे में चूर और लाभ की लालसा से ओतप्रोत होकर, वे अपने ज्ञान के घमंड में इतने चूर हो गए कि दूसरों द्वारा कही गई बात को, चाहे वह सही हो, गलत हो, सही हो, निर्दोष हो, पापी हो, और पापी हो, निर्दोष हो, तब भी निर्दोष हो जाते थे। दयालु भिक्षु उनसे कहते, "भाई कपिल, ऐसा मत बोलो," और उन्हें उपदेश देते हुए उपदेश और अनुशासन का पाठ पढ़ाते। परन्तु कपिल उत्तर देते, "तुम्हें क्या पता, खाली हाथ?" और दूसरों को नीचा दिखाने और उनकी निंदा करने में लग जाते।

भिक्षुओं ने यह बात उनके भाई पूज्य शोधन को बताई। शोधन उनके पास गए और बोले, "भाई कपिल, आप जैसे लोगों के लिए सही आचरण ही धर्म का जीवन है; इसलिए आपको सही आचरण नहीं छोड़ना चाहिए, जो सही और उचित है उसे त्यागकर अपनी बात नहीं कहनी चाहिए।" इस प्रकार शोधन ने अपने भाई कपिल को समझाया। लेकिन कपिल ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। शोधन ने उन्हें दो-तीन बार समझाया, लेकिन जब उन्होंने देखा कि कपिल ने उनकी बात नहीं मानी, तो वे यह कहकर चले गए, "भाई, अब तो तुम अपने कर्मों के लिए बदनाम हो जाओगे।" और उस समय से बाकी दयालु भिक्षुओं ने उनसे कोई वास्ता नहीं रखा।

इस प्रकार, भिक्षु कपिल ने दुष्ट आचरण अपनाया और अपने जैसे ही दुष्ट आचरण में दृढ़ साथियों के साथ घूमने लगा। एक दिन उसने मन ही मन कहा, "मैं अनुशासन कक्ष में पातिमोक्खा का पाठ करूँगा।" अतः एक पंखा लेकर धर्म आसन पर बैठकर उसने पातिमोक्खा का पाठ किया और सामान्य प्रश्न पूछा, "भाइयों, क्या यहाँ एकत्रित भिक्षुओं में से कोई ऐसा है जिसे अपने पापों का प्रायश्चित करना हो?" भिक्षुओं ने सोचा, "इस व्यक्ति को उत्तर देने का क्या लाभ?" यह देखकर कि सभी भिक्षु मौन रहे, उसने कहा, "भाइयों, यहाँ कोई सिद्धांत या अनुशासन नहीं है; पातिमोक्खा सुनने या न सुनने से क्या फर्क पड़ता है?" इतना कहकर वह आसन से उठ गया। इस प्रकार उसने बुद्ध कश्यप के वचन के प्रचार में बाधा डाली।

पूज्य शोधन ने उसी अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया। कपिल का अपने जीवन काल की समाप्ति पर अविचि नामक महान नरक में पुनर्जन्म हुआ । कपिल की माता और बहन ने भी उनका अनुसरण किया, दयालु भिक्षुओं का अपमान किया और उसी नरक में पुनर्जन्म लिया।

उस समय पाँच सौ लोग थे जो गाँवों को लूटकर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन गाँव के लोगों ने उनका पीछा किया, तो वे भागकर जंगल में चले गए। वहाँ कोई शरण न देखकर, उन्हें एक वनवासी साधु मिला, तो उन्होंने उसे प्रणाम किया और कहा, "आदरणीय साधु, हमारी शरण कीजिए।" साधु ने उत्तर दिया, "तुम्हारे लिए नैतिकता के उपदेशों के समान कोई शरण नहीं है। तुम सब पाँच उपदेशों का पालन करो।" "ठीक है," डाकुओं ने सहमति जताई और पाँच उपदेशों का पालन किया। तब साधु ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, "अब जब तुमने उपदेशों का पालन कर लिया है, तो अपने जीवन को बचाने के लिए भी नैतिक नियमों का उल्लंघन न करो, न ही बुरे विचार रखो।" "ठीक है," डाकुओं ने वचन देते हुए कहा।

जब ग्रामीण लोग उस स्थान पर पहुँचे, तो उन्होंने हर जगह खोजबीन की और डाकुओं को पाकर उन सभी को मार डाला। इस प्रकार डाकू मर गए और देवताओं के लोक में पुनर्जन्म लिया; डाकुओं का सरदार उस समूह का प्रमुख देवता बन गया। दो बुद्धों के बीच के अंतराल के बराबर समय तक देवताओं के लोक में जन्म-मृत्यु का चक्र पूरा करने के बाद, वर्तमान बुद्ध के युग में उनका पुनर्जन्म सावत्थी नगर के द्वार के पास स्थित पाँच सौ घरों वाले मछुआरों के एक गाँव में हुआ।

देवताओं के समूह के मुखिया का नया जन्म मछुआरों के मुखिया के घर में हुआ, और बाकी देवताओं का दूसरे मछुआरों के घरों में। इस प्रकार एक ही दिन सभी का नया जन्म हुआ और वे अपनी-अपनी माताओं के गर्भ से बाहर आए। मछुआरों के मुखिया ने मन ही मन सोचा, "क्या आज इस गाँव में कुछ और लड़के पैदा नहीं हुए थे?" खोजबीन करवाने पर उन्हें पता चला कि उनके साथी भी उसी स्थान पर पुनर्जन्म ले चुके थे। उन्होंने सोचा, "ये मेरे बेटे के साथी बनेंगे," और उनके भरण-पोषण के लिए भोजन भेजा। वे सब आपस में खेलने-कूदने लगे और दोस्त बन गए, और समय के साथ-साथ जवान हो गए। मछुआरों के बेटों में सबसे बड़े ने प्रसिद्धि और यश प्राप्त किया और समूह का मुखिया बन गया।

दो बुद्धों के बीच के अंतराल में कपिल को नरक में कष्ट भोगना पड़ा, और उनके बचे हुए बुरे कर्मों के फल स्वरूप, वे अचिरावती नदी में मछली के रूप में पुनर्जन्म लेकर इस समय वहाँ पहुँचे। उनकी त्वचा सुनहरे रंग की थी, परन्तु उनके मुँह से दुर्गंध आती थी।

वर्तमान की कहानी: मछुआरे और बदबूदार सांस वाली मछली

एक दिन उन साथियों ने आपस में कहा, "चलो कुछ मछलियाँ पकड़ते हैं।" इसलिए उन्होंने जाल लेकर नदी में फेंका। संयोग से एक मछली उनके जाल में गिर गई। मछुआरों के गाँव के निवासियों ने जब मछली देखी, तो वे खुशी से झूम उठे और कहने लगे, "हमारे बेटों ने पहली बार मछली पकड़ी थी, उन्हें सुनहरी मछली मिली थी; अब राजा हमें भरपूर धन देंगे।" साथियों ने मछली को नाव में डाला और राजा के पास चले गए। राजा ने मछली को देखकर पूछा, "यह क्या है?" साथियों ने उत्तर दिया, "मछली, महाराज।" जब राजा ने देखा कि यह एक सुनहरी मछली है, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "बुद्ध को ही पता होगा कि इस मछली का रंग सुनहरा क्यों है।" इसलिए उन्होंने मछली को अपने पास लाने का आदेश दिया और बुद्ध के पास चले गए। जैसे ही मछली ने अपना मुँह खोला, पूरे जेतवन में दुर्गंध फैल गई। राजा ने बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, इस मछली का रंग सुनहरा कैसे हो गया? और इसकी साँस से दुर्गंध क्यों आ रही है?"

"महाराज, बुद्ध कश्यप के समय में यह मछली कपिला नामक भिक्षु थी। कपिला बहुत विद्वान और बहुत से अनुयायी थे। परन्तु वह धन-लोभ के लालच में इतना व्याकुल हो गया कि जो उसकी बात नहीं मानते थे, उन्हें अपशब्द कहता और गाली देता था। इस प्रकार उसने बुद्ध कश्यप के धर्म का प्रसार बाधित किया, अतः उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ, और क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए उसका पुनर्जन्म मछली के रूप में हुआ है। अब क्योंकि उसने लंबे समय तक बुद्ध के वचनों का प्रचार किया और बुद्ध की स्तुति की, इसी कारण उसे स्वर्णमय रंग प्राप्त हुआ है। परन्तु भिक्षुओं को अपशब्द कहने और गाली देने के कारण उसकी श्वास दुर्गंधयुक्त हो गई है। महाराज, मैं उसे स्वयं अपने बारे में बताने देता हूँ।" "आदरणीय, उसे स्वयं अपने बारे में बताने दीजिए।"

तब बुद्ध ने मछली से पूछा, "क्या तुम कपिल हो?" "जी, पूज्यवर, मैं कपिल हूँ।" "तुम कहाँ से आए हो?" "आदरणीय, अविचि के महान नरक से।" "तुम्हारे बड़े भाई शोधन का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका निर्वाण हुआ।" "पर तुम्हारी माता साधिनी का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका पुनर्जन्म नरक में हुआ।" "और तुम्हारी छोटी बहन तपना का क्या हुआ?" "आदरणीय, उनका पुनर्जन्म नरक में हुआ।" "अब तुम कहाँ जाओगे?" " आदरणीय, अविचि के महान नरक में ।" ऐसा कहते हुए, मछली पश्चाताप से व्याकुल होकर नाव से अपना सिर टकराया, वहीं मर गई और नरक में पुनर्जन्म लिया। वहाँ खड़े लोग अत्यंत उत्तेजित हो गए, यहाँ तक कि उनके रोंगटे खड़े हो गए।

उस समय बुद्ध ने वहां एकत्रित लोगों की मनोस्थिति को भांपते हुए, उस अवसर के अनुरूप धम्म का उपदेश दिया।

धार्मिकता का जीवन, पवित्रता का जीवन, इसे ही वे सर्वोच्च मूल्यवान रत्न कहते हैं।

इन्हीं शब्दों से प्रारंभ करते हुए, बुद्ध ने सुत्त निपाता में पाए जाने वाले कपिल सूत्र का पूर्ण पाठ किया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 334)

मनुजस्सा पमत्तकारिनो तन्हा वधति मालुवा विया सो
प्लवति हुरधुरं फलं इच्छां वनसिं◌ं वानरो इव

मनुजस्स : मनुष्य का; पमत्तचारिनो [ पमत्तचारिना ]: आलसी स्वभाव का; तन्हा : लालसा; वड्धति : बढ़ता है; मालुवा विय : वृक्षों को नष्ट करने वाली लता के समान; इसलिए : वह; प्लावति : कूदता रहता है; हुराधुरं [ हुराधुरा ]: जन्म-जन्म से; फलम इच्छां [ इच्छा ]: फल प्रेमी; वनसं◌ं [ वनसं◌ं ]: वन में; वानर इव : बंदर के समान

मनुष्य की लालसा मालुवा लता की तरह बढ़ती है । अंत में, लता ही वृक्ष को नष्ट कर देती है। जैसे बंदर वृक्ष के फल से संतुष्ट नहीं होता, वैसे ही लालसा से ग्रस्त मनुष्य एक जीवन से दूसरे जीवन में भटकता रहता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 335)

जम्मी विसात्तिका एसा तन्हा लोके यम सहति
तस्स अभिवत्थं बिराणं इव सोका

जम्मी : नीच; विसत्तिका : विषैला और आसक्ति; एस्सा तन्हा : यह लालसा; लोके : इस संसार में; यं : यदि कोई; सहती : कुचल देता है; तस्स : उस व्यक्ति को; अभिवड्ठं [ अभिवड्ठ ]: बार-बार वर्षा के संपर्क में आने वाला; बीरणं इव : बीरण घास के समान; शोका : उसके दुख; वड्ढंति : वृद्धि।

यदि कोई व्यक्ति ऐसी लालसा से ग्रस्त हो जाता है जिसे नीच और विषैला बताया गया है, तो उसके दुख उतनी ही तेजी से और प्रचुर मात्रा में बढ़ते हैं जितनी कि बार-बार बारिश के संपर्क में आने के बाद बीरण घास बढ़ती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 336)

लोके यो च जम्मिं दुराक्कयं एतं तन्हा सहति
तम्हा सोका पोक्खरा उदबिंदु इव पापान्ति

लोके : इस संसार में; यो च : यदि कोई; जम्मिं [ जम्मी ]: नीच; दुराच्चायं [ दुराच्चाय ]: जिसे पार करना कठिन हो; एतं तन्हा : यह लालसा; सहाती : वश में कर लेती है; तम्हा : उससे; सोका : दु:ख; पोक्खरा उदबिंदु इव : कमल के पत्ते से पानी की तरह; पापतन्ति : फिसल जाता है

लालसा एक नीच प्रवृत्ति है। लालसा से बचना मुश्किल है। लेकिन इस संसार में, यदि कोई लालसा पर विजय प्राप्त कर ले, तो उसके दुख कमल के पत्ते से पानी की तरह फिसल जाएंगे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 337)

यावंतो एत्थ समागता वो भद्दं तं वो वदामि
उसीरत्थो बिरणं इव तन्हाय मूलं खनाथ
नालं सोतो इव मारो वो पुनप्पुनं मा भन्जी

यावन्तो [ यावन्त ]: वे सभी; एत्थ : यहाँ; समागत : एकत्रित हुए हैं; वो : आप सभी; भद्दं [ भद्द ]: आपका भला हो; तं : इसलिए; वो : आपको; वदामि : मैं यह सलाह दूंगा; उसिरत्थो [ उसिरत्थ ]: जो सुगंधित उसिर घास की जड़ों की तलाश करते हैं; बीरणं इव : जैसे ही वे बीरण घास खोदते हैं; तन्हाय : लालसा से; मूलं [ मूल ]: जड़; खनाथा : खोदना; नलं इव : सरकंडों को उखाड़ना; सोतो : बाढ़; मारो : मृत्यु; पुनप्पुनं [ पुनप्पुन ]: बार-बार; nabhañji : आपको यातना नहीं दे सकता

आप सभी उपस्थित लोगों को शुभकामनाएँ। मैं आप सभी को आपके कल्याण के लिए सलाह देता हूँ। जो व्यक्ति सुगंधित उसीरा की जड़ें प्राप्त करना चाहता है, उसे पहले बीरण घास की जड़ें खोदनी चाहिए । उसी प्रकार, व्यथा की जड़ों को खोद डालो। ऐसा करने से, मृत्यु आपको बाढ़ की तरह बार-बार पीड़ा नहीं देगी।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 334-337)

मालुवा विया : मालुवा लता की तरह । मालुवा लता वृक्षों पर उगने वाली एक परजीवी लता है। यह लता वृक्ष को जकड़ लेती है और अंततः उसे नष्ट कर देती है। इसी प्रकार, मन में पनपने वाली लालसा उसे नष्ट कर देती है।

फल की तलाश में भटकते बंदर की तरह। बंदर एक ही पेड़ के फल से संतुष्ट नहीं होता। वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदता रहता है ।

विसत्तिका : व्यस्तिका शब्द का प्रयोग कई कारणों से किया जाता है। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह उलझाता है। यह विषैला भी होता है, इसलिए इसे यह नाम दिया गया है।

बीरण घास : यह एक प्रकार की घास है जो तेजी से बढ़ती है। बार-बार बारिश होने पर यह और भी तेजी से बढ़ती है। कई बारिशों के बाद शोक को बीरण घास के समान बताया गया है।

दुरच्चयं : लालसा एक प्रबल प्रलोभन है, इसे अनदेखा करना या नजरअंदाज करना कठिन है।

उसीरा घास : उसीरा घास की जड़ से मीठी सुगंध आती है। इसे प्राप्त करने के लिए पहले बीरण घास को हटाना पड़ता है। अतः उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए पहले व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक है।

इस उदाहरण में वर्णित श्लोक एक विचित्र मछली पकड़ने वाले कुछ लोगों से हुई मुलाकात से प्रेरित हैं। यह घटना बुद्ध के जीवन में आए विभिन्न प्रकार के लोगों को दर्शाती है। बुद्ध की एक अन्य मुलाकात एक साधारण किसान से हुई थी, जिसका उदाहरण नीचे दिया गया है:

आलवी का भूखा किसान : एक सुबह, बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ जेतवन मठ से निकले और एक गरीब किसान की मदद के लिए आलवी पहुँचे। आलवी के लोगों ने बुद्ध और भिक्षुओं के समूह को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया । भोजन के बाद, जब उपदेश देने और पुण्य भोगने का समय आया, तो बुद्ध मौन रहे।

आलवी में बुद्ध के आगमन की खबर सुनकर एक गरीब किसान को अपना खोया हुआ बैल ढूंढने में पूरी सुबह लग गई। भूख से व्याकुल होकर वह वापस लौटा। लेकिन घर जाकर भोजन किए बिना ही वह बुद्ध के दर्शन करने के इरादे से उनके स्थान पर आ गया।

जब किसान ने आकर बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ खड़ा हो गया, तो बुद्ध ने सेवकों से पूछा कि क्या कुछ भोजन बचा है। जब उन्होंने हाँ में उत्तर दिया, तो बुद्ध ने उन्हें भोजन करने के लिए कहा। भोजन समाप्त करने के बाद, बुद्ध ने प्रवचन दिया, और प्रवचन के अंत में किसान को सोतापत्ति का फल प्राप्त हुआ।

वापसी के रास्ते में भिक्षुओं ने बुद्ध के इस दयालु कार्य के बारे में चर्चा शुरू की। सड़क पर खड़े होकर बुद्ध ने समझाया कि भूख से पीड़ित व्यक्ति किसी भी उपदेश को नहीं समझ सकता। भीड़ में से कई लोगों ने सोतापत्ति जैसे लाभों को महसूस किया।
बुद्ध की विभिन्न मानवीय परिस्थितियों में लोगों से मुलाकातों का एक और उदाहरण निम्नलिखित कहानी द्वारा प्रस्तुत किया गया है:
सर्प पर हमला करते लड़के : एक दिन, जब बुद्ध सावत्थी के जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, वे दोपहर में शहर में भिक्षा मांगने निकले। मठ से कुछ ही दूरी पर एक स्थान पर, बुद्ध ने बड़ी संख्या में लड़कों को लाठियों से सर्प पर हमला करते देखा।
“तुम लोग क्या कर रहे हो?” बुद्ध ने पूछा।
“हम इस सांप पर लाठी से हमला करेंगे,” लड़कों ने जवाब दिया।
बुद्ध ने पूछा, “तुम सर्प को क्यों मारना चाहते हो?”
"इस डर से कि सांप हमें काट लेगा।"
बुद्ध ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया: जो सुख की खोज में सुख चाहने वालों पर आक्रमण करते हैं, उन्हें अंत में कुछ भी लाभ नहीं मिलता। इसी प्रकार, जो सुख की खोज में सुख चाहने वालों पर आक्रमण करने से बचते हैं, वे अंततः परमानंद की प्राप्ति करते हैं।
उपदेश के अंत में, लड़कों को सोतापत्ति का फल समझ में आया।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 338-343

———————————————————————————

(धम्मपद 334, 335, 336 और 337) <<<< पिछला || धम्मपद 338 से 343 || अगला >>>> (धम्मपद 344)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



Dhammapada Verses 338 to 343 - Sukarapotika Vatthu

———————————————————————————

00:07
41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yathapi mule anupaddave dalhe
चिन्नौपि रुक्खो पुनरेव रुहति
evampi tanhanusaye anuhate
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनम्।
Yassa chattimsati sota
manapasavana bhusa
maha vahanti duddithim
sankappa raganissita.
Savanti sabbadhi sota
lati uppajja titthati
tanca disva latam jatam
mulam pannaya chindatha.
Saritani sinehatani ca
somanassani bhavanti jantuno
te satasita sukhesino

te ve jatijarupaga nara.
Tasinaya purakkhata paja
parisappanti sasova bandhito
सम्योजनसंगसत्तक
दुक्खमुपेंती पुनप्पुनम सिरया।
Tasinaya purakkhata paja
parisappanti sasova bandhito
tasma tasinam vinodaye
akankhanta viragamattano.

---

श्लोक 338 : जिस प्रकार एक पेड़ जिसकी जड़ें अक्षुण्ण और दृढ़ हों, काटे जाने पर भी फिर से उग आता है, उसी प्रकार यदि सुप्त लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह दु:ख/पीड़ा (जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की) बार-बार उत्पन्न होती है।

---

श्लोक 339 : वह व्यक्ति जिसके विचार गलत हैं, और जिसमें सुखदायक वस्तुओं की ओर बहने वाली छत्तीस धाराएँ (इच्छा की) प्रबल हैं, वह अपने कामवासना से जुड़े अनेक विचारों से बहक जाता है।

---

श्लोक 340 : कृतज्ञता की धारा सभी इंद्रिय विषयों की ओर बहती है; कृतज्ञता की लता (छह इंद्रिय द्वारों पर) उगती है और (छह इंद्रिय विषयों पर) जड़ जमा लेती है। कृतज्ञता की उस लता को बढ़ते हुए देखकर, उसकी जड़ों को मग्ग्अंतर्दृष्टि से काट डालो।

---

श्लोक 341 : प्राणियों में ऐसी खुशी बहती है जो लालसा से मलिन होती है; जो प्राणी सुख से जुड़े होते हैं और सुख की खोज करते हैं, वे वास्तव में जन्म और वृद्धावस्था के अधीन होते हैं।

---

श्लोक 342 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत होते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार, लंबे समय तक दु:ख/पीड़ा (पुनर्जन्म का चक्र) भोगते हैं।

---

श्लोक 343 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत हो जाते हैं। इसलिए, जो व्यक्ति लालसा से मुक्त होना चाहता है, उसे लालसा का नाश करना चाहिए।

---

एक युवा सूअर की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (338) से (343) तक एक युवा सूअर के संदर्भ में कहे।
एक बार जब बुद्ध राजगृह में भिक्षा मांग रहे थे, तब उन्होंने एक युवा, गंदी सुअरनी देखी और मुस्कुराए। जब पूज्य आनंद ने उनसे पूछा, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, यह युवा सुअरनी काकुसंध बुद्ध के समय में मुर्गी थी। उस समय वह एक मठ में भोजन कक्ष के पास रहती थी और पवित्र ग्रंथों का पाठ और धम्म पर प्रवचन सुनती थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म एक राजकुमारी के रूप में हुआ। एक बार शौचालय जाते समय राजकुमारी ने कीड़े देखे और उसे शरीर की घिनौनीपन आदि का आभास हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म ब्रह्मा (प्रधान देव) लोक में पुथुज्जन ब्रह्मा (प्रधान देव) के रूप में हुआ, लेकिन बाद में किसी बुरे कर्म के कारण उसका पुनर्जन्म एक सुअरनी के रूप में हुआ। आनंद! देखो, अच्छे और बुरे कर्मों के कारण जन्म-मृत्यु का चक्र कभी समाप्त नहीं होता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 338 : जिस प्रकार एक पेड़ जिसकी जड़ें अक्षुण्ण और दृढ़ हों, काटे जाने पर भी फिर से उग आता है, उसी प्रकार यदि सुप्त लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह दु:ख/पीड़ा (जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की) बार-बार उत्पन्न होती है।

---

श्लोक 339 : वह व्यक्ति जिसके विचार गलत हैं, और जिसमें सुखदायक वस्तुओं की ओर बहने वाली छत्तीस धाराएँ (इच्छा की) प्रबल हैं, वह अपने कामवासना से जुड़े अनेक विचारों से बहक जाता है।

---

श्लोक 340 : कृतज्ञता की धारा सभी इंद्रिय विषयों की ओर बहती है; कृतज्ञता की लता (छह इंद्रिय द्वारों पर) उगती है और (छह इंद्रिय विषयों पर) जड़ जमा लेती है। कृतज्ञता की उस लता को बढ़ते हुए देखकर, उसकी जड़ों को मग्ग्‌अंतर्दृष्टि से काट डालो।

---

श्लोक 341 : प्राणियों में ऐसी खुशी बहती है जो लालसा से मलिन होती है; जो प्राणी सुख से जुड़े होते हैं और सुख की खोज करते हैं, वे वास्तव में जन्म और वृद्धावस्था के अधीन होते हैं।

---

श्लोक 342 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत होते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार, लंबे समय तक दु:ख/पीड़ा (पुनर्जन्म का चक्र) भोगते हैं।

---

श्लोक 343 : लालसा से ग्रस्त लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह भयभीत हो जाते हैं। इसलिए, जो व्यक्ति लालसा से मुक्त होना चाहता है, उसे लालसा का नाश करना चाहिए।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

युवा सूअर

कथा के अनुसार, एक दिन जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश कर रहे थे, तब उन्होंने एक युवा सुअर को देखा और मुस्कुरा उठे। पूज्य आनंद ने उनके दांतों से निकलती हुई प्रकाश की किरण को देखकर, जो उनके खुले मुंह से बाहर आ रही थी, बुद्ध से उनके मुस्कुराने का कारण पूछा, "पूज्यवर, आपके मुस्कुराने का कारण क्या है?" बुद्ध ने उनसे कहा, "आनंद, उस युवा सुअर को देखो!"

"जी, मैं उसे देख रहा हूँ।"

"परमेश्वर काकुसंध के युग में, वह एक मुर्गी थी जो एक सभा-गृह के पास रहती थी। वह एक ऐसे भिक्षु को सुनती थी जो ध्यान में मग्न रहता था और अंतर्दृष्टि की ओर ले जाने वाली ध्यान विधि को दोहराता था। केवल उन पवित्र शब्दों को सुनकर, जब वह उस अवस्था से विलीन हो गई, तो उसका पुनर्जन्म राजपरिवार में उब्बारी नामक राजकुमारी के रूप में हुआ।"

"एक दिन वह शौचालय गई और वहाँ उसे कीड़ों का ढेर दिखाई दिया। वहीं, कीड़ों को निहारते हुए, उसने कीड़ों की कल्पना की और प्रथम समाधि में प्रवेश कर गई। अपने लिए निर्धारित जीवनकाल तक उस अवस्था में रहने के बाद, वह उस अवस्था से बाहर निकल गई और ब्रह्मा लोक में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से पुनर्जन्म के चक्र से गुज़रते हुए, अब उसका पुनर्जन्म एक युवा सुअर के रूप में हुआ है। इन परिस्थितियों को जानकर ही मैं मुस्कुराया।"

आदरणीय आनंद के नेतृत्व में भिक्षुओं ने जब बुद्ध के प्रवचन सुने तो वे अत्यंत भावुक हो गए। बुद्ध ने उनकी भावनाओं को झकझोरते हुए तृप्ति की मूर्खता का बखान किया और सड़क के बीचोंबीच खड़े होकर निम्नलिखित श्लोक कहे:

338. जैसे कोई वृक्ष, यदि उसे काट दिया जाए, तो भी यदि उसकी जड़ें मजबूत और दृढ़ हों तो वह फिर से उग आता है, उसी प्रकार, यदि लालसा की प्रवृत्ति को नष्ट न किया जाए, तो यह दुख इस संसार में बार-बार उत्पन्न होता है।

339. जो व्यक्ति सुख की ओर बहने वाली छत्तीस शक्तिशाली धाराओं के खीझ में है, ऐसा व्यक्ति, गुमराह होकर, कामवासना की लहरों में बह जाता है।

340. धाराएँ सभी दिशाओं में बहती हैं; लताएँ कलियाँ और शाखाएँ निकालती हैं; जब आप लता को बढ़ते हुए देखें, तो बुद्धिमानी से उसकी जड़ काट दें।

341. प्राणी के आनंद प्रवाहमय और चिकने होते हैं; मनुष्य स्वयं को सुख में समर्पित करते हैं और सुख की खोज करते हैं; इसलिए वे जन्म और मृत्यु के चक्र से गुजरते हैं।

342. लालसा से ग्रस्त होकर मनुष्य शिकार किए गए खरगोश की तरह इधर-उधर भागते हैं; बेड़ियों और बंधनों से जकड़े हुए वे बार-बार और लंबे समय तक कष्ट भोगते हैं।

343. व्यथा से ग्रस्त होकर मनुष्य शिकार किए गए खरगोश की तरह इधर-उधर भटकते हैं। इसलिए भिक्षु को व्यथा का त्याग करना चाहिए और स्वयं कामवासना से मुक्ति की कामना करनी चाहिए।

उस जन्म के बाद, वह युवा सुअरनी सुवण्णभूमि में राजपरिवार में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह बनारस में पुनर्जन्म लेकर लौटी; फिर सुप्पारक बंदरगाह पर घोड़ों के व्यापारी के घर में, उसके बाद कावीरा बंदरगाह पर एक नाविक के घर में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह अनुराधापुरा में एक उच्च पदस्थ रईस के घर में पुनर्जन्म लेकर लौटी। उस जन्म के बाद, वह दक्षिण देश के

भोक्कंत गाँव में सुमना नामक गृहस्थ की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटी, और अपने पिता के नाम पर उसका नाम सुमना रखा गया।

जब यह गाँव अपने निवासियों द्वारा छोड़ दिया गया, तो उसके पिता दीघवापी राज्य चले गए और महामुनि गाँव में रहने लगे। किसी कार्य से यहाँ पहुँचकर राजा दुट्ठगामनी के मंत्री लकुंटक अतिंबरा ने उससे मुलाकात की, बड़े धूमधाम से उसका विवाह किया और उसे अपने साथ महापुण्ण गाँव में रहने के लिए ले गए। एक दिन पूज्य अनुला, जिनका निवास स्थान कोटिपब्बत का महा विहार था, भिक्षा माँगते हुए उसके घर के द्वार पर रुके और उसे देखकर भिक्षुओं से कहा, "पूज्यवरों, यह कितनी अद्भुत बात है कि एक युवा सुअरनी राजा के प्रधान मंत्री लकुंटक अतिंबरा की पत्नी बन गई!"

जब उसने उनके वचन सुने, तो उसे अपने पिछले जन्मों का ज्ञान प्राप्त हुआ और उसे पूर्व जन्मों को याद करने की शक्ति प्राप्त हुई। वह अत्यंत भावुक हो उठी और अपने पति की अनुमति लेकर बड़े धूमधाम से संसार त्याग कर पंचबालक भिक्षुणियों के संघ में दीक्षित हो गई। तिस्सा महा विहार में महासतिपट्टाना सूत्र का पाठ सुनने के बाद , उसे धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त हुआ। बाद में, दमिलों के नाश होने के बाद, वह भोक्कंत गाँव लौट आई, जहाँ उसके माता-पिता रहते थे, और वहीं निवास करने लगी। कल्लक महा विहार में आसीविशोपमा सूत्र सुनने के बाद , उसने अर्हतत्व प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्त करने से एक दिन पहले, भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा पूछे जाने पर, उसने भिक्षुणियों के समुदाय को यह पूरी कहानी शुरू से अंत तक सुनाई; इसी प्रकार, भिक्षुओं के एकत्रित समुदाय के बीच, उन्होंने धम्मपद के पाठकर्ता और मंडलारामा निवासी पूज्य महा तिस्सा से जुड़कर, निम्नलिखित कथा सुनाई:

"पूर्वकाल में मैं मनुष्य रूप से गिरकर मुर्गी के रूप में पुनर्जन्म लिया। इस अवस्था में मेरा सिर एक बाज़ ने काट डाला। मेरा पुनर्जन्म राजगृह में हुआ, मैंने संसार त्याग दिया और एक भिक्षुणी बन गई, और प्रथम समाधि अवस्था में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म एक कोषाध्यक्ष के घर में हुआ। थोड़े ही समय में मैं उस अवस्था से गुजरकर एक युवा सूअर के रूप में पुनर्जन्म लिया। उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म सुवण्णभूमि में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म वाराणसी में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म सुप्पारक बंदरगाह में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म कावीरा बंदरगाह में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म अनुराधापुरा में हुआ; उस अवस्था से गुजरकर, मेरा पुनर्जन्म भोक्कंत गाँव में हुआ। इस प्रकार जन्म लेकर, तेरह अवस्थाओं से गुज़रते हुए, चाहे अच्छा हो या बुरा, अपनी वर्तमान अवस्था में मैं असंतुष्ट हुई, संसार से संन्यास लिया, भिक्षुणी बनी और अर्हतत्व प्राप्त किया। तुम सब, अपनी मुक्ति के लिए लगन से प्रयास करो।" इन शब्दों से उन्होंने चारों प्रकार के शिष्यों को भावुक कर दिया; और ऐसा करने के बाद निर्वाण प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 338)

यथा अपि मूले अनुपद्दवे दाढे छिन्नो अपि रुक्खो पुन एव रुहति

एवं अपि तन्हानुसये अनुहते इदं दुक्खं पुनप्पुनं निब्बत्तति

यथा अपि : जब; मूल : जड़; अनुपद्दवे : अक्षुण्ण; दङ्हे : (और) मजबूत; चिन्नो अपि : यद्यपि काट दिया गया हो; रुक्खो [ रुक्खा ]: वृक्ष; पुना एव : एक बार फिर; रूहति : उगता है; एवम् अपि : उसी तरह; तन्हानुसये : लालसा के छिपे हुए निशान; न ऊहते : जब पूरी तरह से उखाड़ा न गया हो; इदं दुःखं [ दुक्खा ]: यह पीड़ा; पुनप्पुनं [ पुनप्पुना ]: बार-बार; निब्बत्तति : बढ़ेगी

यदि किसी पेड़ को काट दिया जाए, तो भी यदि उसकी जड़ें मजबूत और अक्षुण्ण हों तो वह पुनः उग आएगा। इसी प्रकार, जब तक लालसा के अंश शेष रहते हैं, तब तक दुख बार-बार उत्पन्न होने की संभावना रहती है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 339)

यस्सा छत्तीसति सोता मनापस्वना भूसा

दुद्दिथिं रागनिसिता संकप्पा वाहंति

यस्स : जिनमें; चत्तिंशती सोता : छत्तीस धाराएँ; मनपसवना : मन को आकर्षित करने वाली; भूसा : (लालसा) प्रबल होती हैं; दुद्दिट्ठि [ दुद्दिट्ठि ]: मूर्ख; रागनिस्सिता : कामुकता से मिश्रित; संकप्पा : विचार और भावनाएँ; वाहा : (अत्यंत) शक्तिशाली होती हैं; वहन्ति : (यह) उन्हें (नरक की ओर) ले जाता है।

यदि किसी व्यक्ति में छत्तीस धाराएँ सुखदायक विचारों की ओर प्रबल रूप से बहती हैं, तो वह भ्रष्ट विचारों वाला व्यक्ति लालसा की उन धाराओं में बह जाएगा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 340)

सोता सावंति सबधि लता उब्भिज्ज तिथति जाताम्

तं लतं च दिस्व पन्याय मूलं छिन्दथ

सोता : (लालसा की) धाराएँ; सवन्ती : बहती हैं; सब्बधी : हर जगह; लता : लता; उब्भिज्ज : उग आई है; तिट्ठति : (और) ठहरती है; जातं [ जात ]: जो उग आई है; लता : (लालसा की) लता; दिस्वा : देखकर; पञ्ञाय : बुद्धि से; मूलं [ मूल ]: जड़; चिन्दथ : काट दिया गया

लालसा की धाराएँ हर जगह वस्तुओं की ओर बहती हैं। परिणामस्वरूप, एक लता उगती है और फलती-फूलती है। बुद्धिमान व्यक्ति जब इस लता को देखे, तो उसे बुद्धिमानी से इसकी जड़ काट देनी चाहिए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 341)

सरितानि सिनेहितानि सोमनस्सनि जंतुनो भवन्ति
ते सतासिता सुखेसिनो ते नारा वे जातिजरूपगा

सरितानि : वस्तुओं की ओर बहने वाला; सिनेहितानि : लालसा से लथपथ; सोमनस्सानि : सुख; जंतुनो [ जंटुना ]: लोग; भवन्ति : रखने वाले; ते : वे; सातसिता : सुख की तलाश करने वाले; सुखेषिनो [ सुखेसिना ]: सुख की खोज करने वाले; ते नारा : ऐसे व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; जातिजरूपगा : जन्म और मृत्यु को प्राप्त होते हैं

मनुष्यों में लालसा बहती धाराओं की तरह उत्पन्न होती है। यह सुख और इंद्रिय सुख की ओर बहती है। ऐसे लोग जो सुखों में लिप्त रहते हैं, वे जन्म और मृत्यु के चक्र में बार-बार फंसते रहते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 342)

तसिनाय पुरक्खता पजा बधितो ससो एव परिस्पप्पन्ति
संनोजनसंगसत्ता सिरया पुनप्पुनं दुक्खम उपेन्ति

tasiṇāya : लालसा से; purakkhatā : घिरे हुए; pajā : जनसमूह; bādhito [ bādhita ]: फँसे हुए; saso eva : खरगोश की तरह; parisappanti : काँपना; saññojanasaṅgasattā : बेड़ियों से जकड़े हुए; cirāya : लंबे समय तक; punappunaṃ [ punappuna ]: बार-बार; dukkham : कष्ट सहना; upenti : आना

लालसा से घिरे जनसमूह जाल में फंसे खरगोश की तरह कांपते हैं। दस बेड़ियों और सात संगों से जकड़े हुए पुरुष और स्त्रियां लंबे समय तक बार-बार पीड़ा भोगते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 343)

तसिनाय पुरक्खता पजा परिस्पप्पन्ति ससो इव बधितो
तस्मा तसीनं विनोदये भिक्खु आकांखि तसीनं विनोदये

तसिनाय : लालसा से; पुरक्खता : घिरा हुआ; पजा : जनसमूह; पेरिसप्पन्ति : कांपना; सासो इवा : खरगोश की तरह; बधितो [ बधिता ]: फँसा हुआ; तस्मा : इसलिए; अत्तनो [ अत्तना ]: स्वयं के प्रति, विनोदाय : दूर रहना चाहिए; भिक्खु : तपस्वी; आकांखी : इच्छा करना; तसीनां [ तसीना ]: लालसा

व्यथा से घिरे हुए मनुष्य जाल में फंसे खरगोश की तरह कांपते हैं। इसलिए, निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले भिक्षु को व्यथा का त्याग करना चाहिए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 338-343)

anupaddave daḷhe : इसकी तुलना एक पेड़ से की जा रही है। यदि पेड़ की छंटाई भी कर दी जाए, और उसकी जड़ें अक्षुण्ण और मजबूत हों, तो वह फिर से उग जाएगा।

पुनरेव रूहति : यदि जड़ें मजबूत और अक्षुण्ण हों, तो तना कट जाने पर भी वृक्ष फिर से अंकुरित हो जाएगा।

चत्तिं सती सोता : तृष्णा की छत्तीस धाराएँ। आंतरिक और बाह्य ( आयतन ) पर निर्भर अठारह आधार: चेतना की धारा में उत्पन्न होने वाली तृष्णा, जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल से संबंधित छह विषयों के प्रति होती है, उसे ही 'तृष्णा के अठारह आधार' कहा जाता है। छत्तीस धाराएँ: अर्थात्, वे अठारह आधार जो आंतरिक आयतनों , जैसे आँखें आदि, को अपने क्षेत्र में रखते हैं, और वे अठारह आधार जो बाह्य आयतनों , जैसे रूप आदि, को अपने क्षेत्र में रखते हैं। यहां, छत्तीस प्रकार की भोग-विलास तीन आयामों में विद्यमान है, अर्थात्, कामुकता की भोग-विलास, अस्तित्व की भोग-विलास, अस्तित्व के अंत की भोग-विलास, जिसके क्षेत्र में छह आंतरिक आयतन (अर्थात, 3 x 6 = 18) हैं, जैसे कि आंखें, कान, नाक, जीभ, शरीर, मन, और छह बाहरी आयतन (अर्थात, 3 x 6 = 18) हैं, जैसे कि रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, धर्म, इसे (18 + 18) छत्तीस धाराएँ कहा जाता है।

राग निस्सिता : वे विचार जो वासना और कामुकता के विचारों से मिश्रित होते हैं।

सवंती : लालसा की धाराएँ बह रही हैं। पूरे श्लोक में इसी विचार को आगे बढ़ाया गया है।

latā ubbhijja tiṭṭhati : कृपा की धाराओं से सींची गई एक लता उगती है, जो कृपा की लता है।

mūlaṃ paññāya chindatha : बुद्धिमानी से जड़ काट दो।

सरितानी : धारा की अवधारणा जारी है। सरितानी का अर्थ है वस्तुओं की ओर बहना।

सातसिता : वे लोग जो लालसा से ग्रस्त होते हैं। वे आनंददायक और सुखदायक अनुभवों में लिप्त रहते हैं।

बाधितो : फँसा हुआ; जाल में फँसा हुआ। खरगोश आम तौर पर डरपोक प्राणी होता है। फँसने पर उसका डर कहीं अधिक बढ़ जाता है।

संज्ञाजनसंग : दस बंधन ( संयोजन ) सात बंधन ( संग ) जनता को संसार से बांधते हैं ।

दस संयोजन , या दोष, इस प्रकार हैं:
स्थाई महत्व की राय पर कायम रहना ( sakkāyadiṭṭhi ),
(संशयपूर्ण) संदेह ( vicikicchā )
उपदेशों और प्रथाओं से चिपके रहना ( सीलब्बतपरमासा ),
कामुक इच्छाओं के प्रति जुनून ( कामराग ),
दुर्भावना ( व्यापाद )
सूक्ष्म भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति ( रूपराग ),
निराकार (लोक) के प्रति आसक्ति ( अरूपराग ),
आत्म-मूल्यांकन ( मान ),
आंदोलन ( उद्धच्चं ), और
अज्ञान ( अविज्जा )।
ये दो प्रकार के होते हैं: (i) ऊपरी भाग से संबंधित और (ii) निचले भाग से संबंधित। इन्हें बंधन कहा जाता है क्योंकि ये प्राणियों को संसार में बांधे रखते हैं , इस अर्थ में कि ये बार-बार पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। पाँच प्रकार के बंधन, जिनमें से पहला है स्थायी सार तत्व का मत, आदि, निचले भाग से संबंधित कहलाते हैं, क्योंकि ये ग्यारह इंद्रिय लोकों में जन्म का कारण बनते हैं, जिन्हें निम्न (लोक) कहा जाता है। वहीं पाँच प्रकार के बंधन, जिनमें से पहला है सूक्ष्म पदार्थ के प्रति आसक्ति, आदि, ऊपरी भाग से संबंधित कहलाते हैं, क्योंकि ये सूक्ष्म पदार्थ और निराकार लोकों में जन्म का कारण बनते हैं, जिन्हें उच्च (लोक) कहा जाता है। प्राणियों को संसार से तब तक मुक्ति नहीं मिलती जब तक कि इन दो प्रकार के संसार के बंधनों को जड़ से उखाड़ न दिया जाए।
सात प्रकार के आसक्ति भाव ( संगयो ) हैं: तृष्णा, मनोभाव, आत्म-सम्मान, क्रोध, अज्ञान, दोष और दुराचार। कुछ लोग इन्हें सात अंतर्निहित स्वभाव ( अनुसय ) कहते हैं, अर्थात्, जुनून, घृणा, आत्म-सम्मान, मनोभाव, संशय, अस्तित्व के प्रति आसक्ति और अज्ञान। पाँच स्कंधों को सजीव, व्यक्ति आदि मानकर संस्कारों के प्रति आसक्ति की क्रिया या तो तृष्णा, मनोभाव आदि के गुण में होती है या जुनून, घृणा आदि के गुण में। अतः इन्हें आसक्ति कहा जाता है।
आकंखी विरागम : वह व्यक्ति जो निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने का इच्छुक हो।
पुनर्जन्म : यह कथा पुनर्जन्म की अनेक परतों से परिपूर्ण है। इनमें से कुछ पुनर्जन्म बुद्ध के समय के बाद भी हुए। कुछ मामलों में ये पुनर्जन्म श्रीलंका में घटित हुए। जीवन की उत्पत्ति और पुनर्जन्म की अवधारणाओं की विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। यहाँ एक दृष्टिकोण प्रस्तुत है:
पुनर्जन्म, जिसे बौद्ध धर्म में महज एक सिद्धांत नहीं बल्कि प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सकने वाला एक तथ्य माना जाता है, बौद्ध धर्म का एक मूलभूत सिद्धांत है, यद्यपि इसका लक्ष्य, निर्वाण, इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। बोधिसत्व आदर्श और उससे संबंधित पूर्णता प्राप्त करने की स्वतंत्रता का सिद्धांत इसी पुनर्जन्म के सिद्धांत पर आधारित है।
दस्तावेजों से पता चलता है कि पुनर्जन्म में इस विश्वास को शेली, टेनीसन और वर्ड्सवर्थ की कई महान कविताओं में और पूर्व के साथ-साथ पश्चिम के कई आम लोगों के लेखन में भी आत्मा के स्थानांतरण या पुनर्जन्म के रूप में देखा जाता है।
बौद्ध धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धांत को अन्य प्रणालियों के पुनर्जन्म और आत्मा के स्थानांतरण के सिद्धांत से अलग किया जाना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म किसी देवता द्वारा निर्मित या परमात्मा (दिव्य सार) से उत्पन्न होने वाली, शरीर के स्थानांतरण करने वाली स्थायी आत्मा के अस्तित्व को नकारता है।
कर्म ही पुनर्जन्म का आधार है। भूतकाल के कर्म वर्तमान जन्म को निर्धारित करते हैं; और वर्तमान कर्म, भूतकाल के कर्मों के साथ मिलकर, भविष्य को निर्धारित करते हैं। वर्तमान, भूतकाल की संतान है, और बदले में, भविष्य का जनक बनता है।
वर्तमान की वास्तविकता को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह स्वतः सिद्ध है। अतीत की वास्तविकता स्मृति और सूचनाओं पर आधारित होती है, जबकि भविष्य की वास्तविकता दूरदर्शिता और अनुमान पर आधारित होती है।
यदि हम अतीत, वर्तमान और भविष्य के जीवन की परिकल्पना करते हैं, तो हमारे सामने तुरंत यह समस्या आती है कि जीवन का अंतिम स्रोत क्या है?
एक मत इस समस्या को सुलझाने के प्रयास में एक प्रथम कारण की परिकल्पना करता है, चाहे वह ब्रह्मांडीय शक्ति हो या सर्वशक्तिमान सत्ता। दूसरा मत प्रथम कारण को नकारता है, क्योंकि सामान्य अनुभव में, कारण ही परिणाम बनता है और परिणाम ही कारण बनता है। कारण और परिणाम के इस चक्र में प्रथम कारण की कल्पना करना असंभव है। पहले मत के अनुसार, जीवन का आरंभ हुआ है; दूसरे मत के अनुसार, इसका कोई आरंभ नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार, प्रथम कारण की अवधारणा ऐसी है जैसे किसी त्रिभुज को गोल कहना।
कोई यह तर्क दे सकता है कि जीवन की शुरुआत अनंत अतीत में हुई होगी और वह शुरुआत ही प्रथम कारण, यानी सृष्टिकर्ता है।

ऐसे में कोई कारण नहीं है कि कुछ लोग एक परिकल्पित निर्माता के बारे में भी यही मांग न करें।

इस कथित प्रथम कारण के संबंध में लोगों के विचार बहुत भिन्न-भिन्न रहे हैं। इस प्रथम कारण की व्याख्या करने में अनेक नामों का प्रयोग किया गया है।

हिंदू धर्म में जीवन की उत्पत्ति एक रहस्यमय परमात्मा से मानी जाती है , जिससे सभी आत्माएं उत्पन्न होती हैं और एक जन्म से दूसरे जन्म में विलीन होकर अंततः परमात्मा में समाहित हो जाती हैं। यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या इन समाहित आत्माओं का आगे भी कोई जन्म-मृत्यु चक्र होता है।

जैसा कि शोपेनहाउर कहते हैं, "जो कोई भी स्वयं को शून्य से उत्पन्न मानता है, उसे यह भी सोचना चाहिए कि वह फिर से शून्य हो जाएगा; क्योंकि यह सोचना कि उसके अस्तित्व में आने से पहले एक अनंत काल बीत चुका है, और फिर एक दूसरा अनंत काल शुरू हुआ है, जिसके माध्यम से उसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होगा, एक विकृत विचार है।"

"इसके अतिरिक्त, यदि जन्म ही परम आरंभ है, तो मृत्यु ही परम अंत होनी चाहिए; और यह धारणा कि मनुष्य का निर्माण शून्य से हुआ है, अनिवार्य रूप से इस धारणा की ओर ले जाती है कि मृत्यु ही उसका परम अंत है।" स्पेंसर लुईस तर्क देते हैं, "धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार, मनुष्य का सृजन मनमाने ढंग से और उसकी इच्छा के बिना हुआ है, और सृजन के क्षण में ही वह या तो धन्य होता है या दुर्भाग्यशाली, महान होता है या पतित, अपने शारीरिक सृजन की प्रक्रिया के पहले चरण से लेकर अपनी अंतिम सांस तक, उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं, आशाओं, महत्वाकांक्षाओं, संघर्षों या समर्पित प्रार्थनाओं की परवाह किए बिना। यही धर्मशास्त्रीय भाग्यवाद है।"

अपनी वृद्धावस्था की कविता "निराशा" में, लॉर्ड टेनीसन ने आस्तिक धर्मशास्त्र का जिक्र करते हुए कहा:

मैं शांति स्थापित करता हूँ और बुराई का सृजन करता हूँ।

उस असीम प्रेम को, जिसने हमारी इतनी अच्छी सेवा की है, मैं क्या कहूँ? बल्कि असीम क्रूरता, जिसने शाश्वत नरक का निर्माण किया। उसने हमें बनाया, हमारे बारे में पहले से ही जान लिया, हमारी बर्बादी पहले से ही तय कर दी, और वह अपने लोगों के साथ जो चाहे करता है।

हमारी उस निर्दयी माँ का मर जाना ही बेहतर है जिसने कभी हमारी कराहें नहीं सुनीं।

"यह सिद्धांत कि सभी मनुष्य पापी हैं और उनमें आदम का मूल पाप निहित है, न्याय, दया, प्रेम और सर्वशक्तिमान निष्पक्षता के लिए एक चुनौती है।" हक्सले ने कहा: "यदि हम यह मान लें कि किसी ने जानबूझकर इस अद्भुत ब्रह्मांड की रचना की है, तो मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वह शब्दों के किसी भी बोधगम्य अर्थ में पूर्णतः परोपकारी और न्यायप्रिय नहीं है, बल्कि वह न तो पूरी तरह से द्वेषपूर्ण है और न ही अन्यायपूर्ण।"

आइंस्टीन के अनुसार: "यदि यह सत्ता सर्वशक्तिमान है, तो प्रत्येक घटना, जिसमें प्रत्येक मानवीय क्रिया, प्रत्येक मानवीय विचार और प्रत्येक मानवीय भावना और आकांक्षा शामिल है, उसी का कार्य है; ऐसे सर्वशक्तिमान के समक्ष मनुष्यों को उनके कर्मों और विचारों के लिए उत्तरदायी ठहराना कैसे संभव है?"

दंड और पुरस्कार देते समय, वह एक हद तक स्वयं पर ही न्याय कर रहे होते हैं। भला इसे उनके गुणों और धार्मिकता के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है?

चार्ल्स ब्रैडलॉ के अनुसार: "बुराई का अस्तित्व आस्तिक के लिए एक भयानक बाधा है। पीड़ा, दुख, अपराध, गरीबी शाश्वत अच्छाई के पैरोकार के सामने खड़ी हो जाती हैं और सर्व-कल्याणकारी, सर्व-ज्ञानी और सर्वशक्तिमान ईश्वर की उसकी घोषणा को अकाट्य शक्ति से चुनौती देती हैं।" मानव पीड़ा और सृष्टिकर्ता पर टिप्पणी करते हुए, प्रो. जेबीएस हाल्डेन लिखते हैं: "या तो मानव चरित्र को परिपूर्ण बनाने के लिए पीड़ा आवश्यक है, या ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है। पहला सिद्धांत इस तथ्य से गलत साबित होता है कि कुछ लोग जिन्होंने बहुत कम पीड़ा झेली है, लेकिन अपने वंश और शिक्षा में भाग्यशाली रहे हैं, उनका चरित्र बहुत अच्छा है। दूसरे सिद्धांत पर आपत्ति यह है कि केवल संपूर्ण ब्रह्मांड के संदर्भ में ही ईश्वर की परिकल्पना से भरे जाने योग्य कोई बौद्धिक अंतर है। और एक सृष्टिकर्ता संभवतः जो चाहे वह बना सकता है।"

प्राचीन काल के कट्टरपंथी लेखकों ने आधिकारिक रूप से यह घोषित किया था कि सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को अपने स्वरूप में बनाया है। कुछ आधुनिक विचारक इसके विपरीत कहते हैं कि मनुष्य ने अपने सृष्टिकर्ता को अपने स्वरूप में बनाया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ ईश्वर के प्रति मनुष्य की अवधारणा अधिकाधिक परिष्कृत होती जा रही है। वर्तमान में इस व्यक्तिगत सृष्टिकर्ता के स्थान पर एक निराकार ईश्वर को स्थापित करने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। वोल्टेयर कहते हैं कि सृष्टिकर्ता की अवधारणा मनुष्य की सबसे श्रेष्ठ रचना है।

हालांकि, ब्रह्मांड के भीतर या बाहर, ऐसे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्राणी की कल्पना करना असंभव है, जो हर अच्छी चीज का प्रतीक हो।

आधुनिक विज्ञान अपने सीमित व्यवस्थित ज्ञान के आधार पर इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, हम अपने माता-पिता द्वारा प्रदान किए गए शुक्राणु और अंडाणु कोशिकाओं के प्रत्यक्ष उत्पाद हैं। लेकिन विज्ञान मन के विकास के

संबंध में संतोषजनक व्याख्या नहीं दे पाता, जो मनुष्य के भौतिक शरीर की कार्यप्रणाली से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वैज्ञानिक " Omne vivum ex vivo " (जीवित से ही जीवन की उत्पत्ति) का दावा करते हुए यह मानते हैं कि मन और जीवन का विकास निर्जीव से हुआ है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो हम पूर्णतः माता-पिता से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार हमारा जीवन अनिवार्य रूप से हमारे माता-पिता के जीवन से पहले आता है, और यह सिलसिला चलता रहता है। इसी तरह एक जीवन दूसरे जीवन से पहले आता है, जब तक कि हम पहले प्रोटोप्लाज्म या कोलाइड तक नहीं पहुँच जाते। हालांकि, इस पहले प्रोटोप्लाज्म या कोलाइड की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिक अनभिज्ञता जताते हैं।

जीवन की उत्पत्ति के संबंध में बौद्ध धर्म का क्या दृष्टिकोण है? प्रारंभ में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि बुद्ध मानव जाति को व्याकुल करने वाले सभी नैतिक और दार्शनिक प्रश्नों का हल निकालने का प्रयास नहीं करते। न ही वे ऐसे अटकलों और सिद्धांतों पर विचार करते हैं जो न तो ज्ञानवर्धन करते हैं और न ही आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। न ही वे अपने अनुयायियों से अंधविश्वास की अपेक्षा करते हैं। उनका मुख्य ध्यान एक व्यावहारिक और विशिष्ट समस्या पर है - दुख और उसके विनाश की समस्या; अन्य सभी गौण मुद्दों को वे पूरी तरह से अनदेखा करते हैं।

"यह ऐसा है मानो किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर से घायल कर दिया गया हो, और उसके मित्र और रिश्तेदार किसी शल्यचिकित्सक को बुलाएँ, और फिर वह व्यक्ति कहे, 'मैं बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक वे मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, संसार सीमित है या अनंत...' वह व्यक्ति इन प्रश्नों का बुद्ध द्वारा स्पष्टीकरण किए जाने से पहले ही मर जाएगा।"

"यदि यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत है, तो क्या पवित्र जीवन का पालन किया जाएगा? उस स्थिति में—नहीं! यदि यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत नहीं है, तो क्या पवित्र जीवन का पालन किया जाएगा? उस स्थिति में भी—नहीं! परन्तु, चाहे यह विश्वास हो कि संसार शाश्वत है या नहीं, जन्म है, वृद्धावस्था है, मृत्यु है, और इन सबका अंत इसी जीवन में मैं प्रकट करता हूँ।"

"मालंक्यपुत्त, मैंने यह प्रकट नहीं किया है कि संसार शाश्वत है या नहीं, संसार सीमित है या अनंत। मैंने इन्हें क्यों प्रकट नहीं किया? क्योंकि ये लाभप्रद नहीं हैं, पवित्रता के आधारों से संबंधित नहीं हैं, विरक्ति, वासनाहीनता, निश्चिंतता, शांति, सहज ज्ञान, आत्मज्ञान या निर्वाण के लिए सहायक नहीं हैं। इसलिए मैंने इन्हें प्रकट नहीं किया है।" बौद्ध धर्म के अनुसार, हम कर्म के आधार ( कम्मयोनि ) से जन्म लेते हैं। माता-पिता केवल हमें भौतिक आवरण प्रदान करते हैं। इसलिए अस्तित्व, अस्तित्व से पहले आता है। गर्भाधान के क्षण में, कर्म ही प्रारंभिक चेतना को अभिकृत करता है जो भ्रूण को जीवन प्रदान करती है। यह अदृश्य कर्मिक ऊर्जा, जो पिछले जन्म से उत्पन्न होती है, मानसिक घटनाओं और जीवन की घटनाओं को पहले से विद्यमान भौतिक घटनाओं में उत्पन्न करती है, जिससे मनुष्य का त्रित्व पूर्ण होता है।

जीवों की उत्पत्ति के विषय में बुद्ध कहते हैं: "जहाँ तीनों का संयोजन होता है, वहाँ जीवन का बीज बोया जाता है। यदि माता-पिता का मिलन हो, लेकिन माता की प्रजनन अवधि न हो, और गर्भस्थ प्राणी (गंधब्बा ) उपस्थित न हो, तो जीवन का बीज बोया नहीं जाता। यदि माता-पिता का मिलन हो, और माता की प्रजनन अवधि हो, लेकिन गर्भस्थ प्राणी उपस्थित न हो, तो भी जीवन का बीज बोया नहीं जाता। यदि माता-पिता का मिलन हो, और माता की प्रजनन अवधि हो, और गर्भस्थ प्राणी उपस्थित हो, तो इन तीनों के संयोजन से जीवन का बीज बोया जाता है।"

यहां गंधब्बा ( =गंतब्बा ) का अर्थ 'देवों का एक वर्ग, जो गर्भाधान की प्रक्रिया का अधिष्ठाता माना जाता है' नहीं है, बल्कि यह उस विशेष गर्भ में जन्म लेने के लिए तैयार एक उपयुक्त प्राणी को संदर्भित करता है। इस शब्द का प्रयोग केवल इसी विशेष संदर्भ में किया गया है और इसे स्थायी आत्मा समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। किसी प्राणी के यहां जन्म लेने के लिए, कहीं न कहीं उसकी मृत्यु अवश्य होती है। किसी प्राणी का जन्म, जिसका सटीक अर्थ इस वर्तमान जीवन में स्कंधों ( खंडानं पातुभावो ) या मनो-शारीरिक घटनाओं का उदय है, पिछले जन्म में प्राणी की मृत्यु के अनुरूप है; ठीक वैसे ही जैसे, सामान्य शब्दों में, एक स्थान पर सूर्योदय का अर्थ दूसरे स्थान पर सूर्यास्त होता है। इस गूढ़ कथन को जीवन को एक सीधी रेखा के बजाय एक तरंग के रूप में कल्पना करके बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। जन्म और मृत्यु एक ही प्रक्रिया के दो चरण हैं। जन्म मृत्यु से पहले होता है, और मृत्यु जन्म से पहले होती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन-प्रवाह के संबंध में जन्म और मृत्यु का यह निरंतर क्रम ही तकनीकी रूप से संसार - आवर्ती भ्रमण - के रूप में जाना जाता है।

जीवन का अंतिम स्रोत क्या है? बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं: प्रत्यक्ष आरंभ के बिना यह संसार, जो अज्ञान और भोग-विलास से ग्रस्त होकर भटकने वाले प्राणियों का सर्वप्रथम बिंदु है, अनुभव नहीं किया जा सकता। यह जीवनधारा अनंत तक बहती रहती है, जब तक कि इसे अज्ञान और भोग-विलास के मैले जल से पोषित किया जाता है। जब ये दोनों पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं, तभी जीवनधारा का प्रवाह रुकता है, पुनर्जन्म समाप्त होता है, जैसा कि बुद्धों और अरहतों के मामले में होता है। इस जीवनधारा का प्रथम आरंभ निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसी कोई अवस्था नहीं देखी जा सकती जब यह जीवन शक्ति अज्ञान और भोग-विलास से मुक्त थी। यह समझना चाहिए कि बुद्ध ने यहाँ केवल जीवित प्राणियों की जीवनधारा के आरंभ का उल्लेख किया है।

पुनर्जन्म : परन्तु चारों मानसिक तत्व, अर्थात् चेतना और नाम (चेतना की इकाई) बनाने वाले तीन अन्य मानसिक कारक, पहले की तरह निरंतर उत्पन्न और लुप्त होते रहते हैं, परन्तु उसी परिवेश में नहीं, क्योंकि वह परिवेश अब विद्यमान नहीं है। उन्हें तुरंत एक नया भौतिक आधार खोजना पड़ता है, जिस पर वे कार्य कर सकें—एक नई भौतिक परत जो सभी तत्वों के सामंजस्य में कार्य करने के लिए उपयुक्त और अनुकूल हो। कर्म का नियम यही कार्य करता है, और तुरंत तत्वों का पुनर्व्यवस्थापन होता है, जिसे हम पुनर्जन्म कहते हैं। लेकिन यह समझना आवश्यक है कि बौद्ध मान्यता के अनुसार, आत्मा या किसी भी पदार्थ का एक शरीर से दूसरे शरीर में पुनर्जन्म नहीं होता। बौद्ध दर्शन के अनुसार, वास्तव में जो होता है वह यह है कि मरणासन्न व्यक्ति की अंतिम जावना या सक्रिय विचार प्रक्रिया कुछ ऐसी शक्तियों को मुक्त करती है जो उस क्रम में पाँच जावना विचार क्षणों की शुद्धता के अनुसार भिन्न होती हैं । (सामान्य सात जावना विचार क्षणों के बजाय पाँच)। इन शक्तियों को कर्म वेग या कर्मिक ऊर्जा कहा जाता है जो माता के गर्भ में माता-पिता द्वारा निर्मित भौतिक परत की ओर आकर्षित होती है। इस गर्भस्थ संरचना में मौजूद भौतिक समुच्चयों में ऐसे गुण होने चाहिए जो उस विशेष प्रकार की कर्मिक ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त हों। माता-पिता द्वारा निर्मित विभिन्न प्रकार के भौतिक समुच्चयों का इस प्रकार का आकर्षण मृत्यु की क्रिया द्वारा होता है और मरणासन्न व्यक्ति को अनुकूल पुनर्जन्म प्रदान करता है। एक अशुभ विचार प्रतिकूल पुनर्जन्म देता है।

संक्षेप में, पाँच तत्वों के संयोजन को जन्म कहते हैं। इन तत्वों के एक समूह के रूप में विद्यमान होने को जीवन कहते हैं। इनके विलीन होने को मृत्यु कहते हैं। और इन तत्वों के पुनर्संयोजन को पुनर्जन्म कहते हैं। हालांकि, एक आम इंसान के लिए यह समझना आसान नहीं है कि ये तथाकथित तत्व कैसे पुनर्संयोजित होते हैं। इस संदर्भ में तत्वों की प्रकृति, मानसिक और कर्मिक ऊर्जाओं तथा ब्रह्मांडीय ऊर्जाओं के सहयोग को समझना महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों के लिए, यह सरल और स्वाभाविक घटना - मृत्यु - पाँच तत्वों का उन्हीं पाँच तत्वों में मिल जाना है और उसके बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। कुछ के लिए, इसका अर्थ आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरण है; और दूसरों के लिए, इसका अर्थ आत्मा का अनिश्चित काल तक रुका रहना है; दूसरे शब्दों में, न्याय के दिन की प्रतीक्षा करना। बौद्धों के लिए, मृत्यु इस क्षणिक घटना का अस्थायी अंत मात्र है। यह इस तथाकथित अस्तित्व का पूर्ण विनाश नहीं है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 344

---

(धम्मपद 338 से 343) <<<< पिछला || धम्मपद 344 || अगला >>>> (धम्मपद 345 और 346)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 344 - विभ्भन्ताभिक्खु वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo nibbanatho vanadhimutto
vanamutto vanameva dhavati
tam puggalametha passatha
मुत्तो बंधनमेव धवती.

---

श्लोक 344 : वह भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में लौट आता है।

---

एक पूर्व भिक्षु की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (344) का उच्चारण किया, जो पूज्य महाकस्सपा के शिष्य भिक्षु के संदर्भ में था।

आदरणीय महाकस्सपा के शिष्य के रूप में, इस भिक्षु ने चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ (झान) प्राप्त कर ली थीं। लेकिन एक दिन, जब वे अपने मामा के घर भिक्षा मांगने गए, तो उन्होंने एक स्त्री को देखा और उसके प्रति तीव्र इच्छा जागृत हुई। तब उन्होंने भिक्षु संघ छोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में वे असफल रहे क्योंकि उन्होंने परिश्रम नहीं किया। इसलिए, उनके मामा ने उन्हें घर से निकाल दिया, और बाद में वे कुछ चोरों के साथ मिल गए। उन सभी को अधिकारियों ने पकड़ लिया और मृत्युदंड देने के लिए श्मशान ले जाया गया। आदरणीय महाकस्सपा ने अपने शिष्य को बाहर ले जाते हुए देखा और उनसे कहा, "मेरे शिष्य, अपना मन एकाग्रचित्त ध्यान के विषय पर लगाओ।" निर्देशानुसार, उन्होंने एकाग्रचित्त होकर गहरी ध्यान अवस्था में लीन हो गए। श्मशान में, जब जल्लाद उन्हें मारने की तैयारी कर रहे थे, तब पूर्व भिक्षु अत्यंत शांत थे और उनमें भय या चिंता का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। जल्लाद और तमाशबीन उस व्यक्ति के साहस और संयम को देखकर अचंभित और अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने उसके बारे में राजा और बुद्ध को सूचना दी। राजा ने उस व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दिया। बुद्ध ने यह जानकर अपनी ज्योति भेजी और मानो स्वयं उस चोर के दर्शन किए।

तब बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 344 : वह भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में लौट आता है।

---

प्रवचन के अंत में, वह चोर जो निरंतर अपने मन को सभी तत्वों के उद्भव और विनाश पर केंद्रित रखे हुए था, उसने सभी बद्ध वस्तुओं के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप को भलीभांति जान लिया और शीघ्र ही सोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया। बाद में, वह जेतवन मठ में बुद्ध के पास गया, जहाँ बुद्ध ने उसे पुनः संघ में प्रवेश दिया और उसने तुरंत अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी जिसने अपने वस्त्र त्याग दिए

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक भिक्षु के संदर्भ में कहा था, जो पूज्य महाकस्सपा का शिष्य था।

आदरणीय महाकस्सपा के शिष्य के रूप में, इस भिक्षु ने चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ ( झान ) प्राप्त कर ली थीं। लेकिन एक दिन, जब वे अपने मामा के घर भिक्षा मांगने गए, तो उन्होंने एक स्त्री को देखा और उसके प्रति तीव्र इच्छा जागृत हुई। तब उन्होंने संघ छोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में वे असफल रहे क्योंकि उन्होंने परिश्रम नहीं किया। इसलिए, उनके मामा ने उन्हें घर से निकाल दिया, और बाद में वे कुछ चोरों के साथ मिल गए। उन सभी को अधिकारियों ने पकड़ लिया और मृत्युदंड देने के लिए श्मशान ले जाया गया। आदरणीय महाकस्सपा ने अपने शिष्य को बाहर ले जाते हुए देखा और उनसे कहा, “मेरे शिष्य, अपना मन एकाग्रचित्त ध्यान के विषय पर लगाओ।” निर्देशानुसार, उन्होंने एकाग्रचित्त होकर गहरी ध्यान अवस्था में लीन हो गए। श्मशान में, जब जल्लाद उन्हें मारने की तैयारी कर रहे थे, तब पूर्व भिक्षु अत्यंत शांत थे और उनमें भय या चिंता का कोई लक्षण नहीं दिखाई दिया। जल्लाद और तमाशबीन उस व्यक्ति के साहस और संयम से चकित और अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने उसके बारे में राजा और बुद्ध को सूचना दी। राजा ने उस व्यक्ति को रिहा करने का आदेश दिया। इस मामले के बारे में सुनकर बुद्ध ने अपनी ज्योति भेजी और साक्षात चोर के सामने प्रकट हुए, जिसके बाद उन्होंने यह श्लोक सुनाया।

प्रवचन के अंत में, वह चोर जो निरंतर अपने मन को सभी तत्वों के उद्भव और विनाश पर केंद्रित रखे हुए था, उसने सभी बद्ध वस्तुओं के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप को भलीभांति जान लिया और शीघ्र ही सोतापत्ति का फल प्राप्त कर लिया। बाद में, वह जेतवन मठ में बुद्ध के पास गया, जहाँ बुद्ध ने उसे पुनः संघ में प्रवेश दिया और उसने तुरंत अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 344)

यो निब्बानथो वनधिमुत्तो वनमुत्तो वनं एव धावति

तं मुत्तो बंधनं एव धावति तं पुग्गलं एव पषथ

यो : कोई व्यक्ति; निब्बानथो [ निब्बानथा ]: व्यथाओं से मुक्त; वनाधिमुत्तो [ वनाधिमुत्त ]: वनवासी सत्य साधक के जीवन में आनंद लेने वाला; वनामुत्तो [ वनामुत्त ]: व्यथाओं के वन से मुक्त; वनम एव : उसी वन की ओर; धावती : दौड़ता है; मुत्तो [ मुत्त ]: गृहस्थ के बंधनों से मुक्त; बंधनम एव : उसी बंधन की ओर; तं पुग्गलं [ पुग्गल ]: वह व्यक्ति; पसथ : देखो

भोग-विलास के जंगल (अर्थात गृहस्थ जीवन) को छोड़कर वह साधना के जंगल (अर्थात भिक्षु जीवन) में प्रवेश करता है; परन्तु भोग-विलास के जंगल से मुक्त होते ही वह उसी जंगल में वापस लौट आता है। देखो, उस मनुष्य को जो मुक्त होकर उसी बंधन में वापस लौट आता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 344)

इस श्लोक में वन ( वन ) की छवि का प्रयोग अनेक अर्थों को व्यक्त करने के लिए किया गया है। सर्वप्रथम, व्यक्ति भोग-विलास के जंगल से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मुक्त होकर वह जंगल छोड़ देता है, जो वन आश्रम के एकांत का प्रतीक है। भोग-विलास के जंगल से मुक्त होने के बाद ऐसा व्यक्ति सांसारिक जीवन के जंगल में वापस लौट आता है। अंत में, वह एक बार फिर वन आश्रम के एकांत में लौट आता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 345,346

———————————————————————

(धम्मपद 344) <<<< पिछला || धम्मपद 345 और 346 || अगला >>>> (धम्मपद 347)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 345 और 346 - बंधननगर वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

न तं दल्हं बंधनमहु धीरा
yadayasam darujapabbajanca
सरत्तारत्ता मणिकुंडलेसु
puttesu daresu ca ya apekkha.
एतं दल्हं बंधनमहु धीरा
oharinam sithilam duppamuncam
etampi chetvana paribbajanti
अनापेक्खिनो कामसुखम पहाया।

———————————————————————

श्लोक 345 एवं 346: ज्ञानी लोग यह नहीं कहते कि लोहे, लकड़ी और भांग से बने बंधन मजबूत होते हैं; वे कहते हैं कि केवल रत्नों, आभूषणों, बच्चों और पत्नियों के प्रति आसक्ति और लगाव ही मजबूत बंधन हैं। ये बंधन व्यक्ति को निम्नतम स्तरों की ओर खींचते हैं और यद्यपि ये लचीले प्रतीत होते हैं, इन्हें तोड़ना कठिन होता है। ज्ञानी लोग इस (लालसा के) बंधन को तोड़कर और इंद्रिय सुखों का दृढ़तापूर्वक त्याग करके संसार का त्याग कर देते हैं।

———————————————————————

कारावास की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (345) और (346) का उच्चारण किया, जो कुछ चोरों के संदर्भ में था जिन्हें जंजीरों में रखा गया था।

एक दिन तीस भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी आए। भिक्षा मांगते समय उन्होंने कुछ कैदियों को हाथों और पैरों में जंजीरें बांधे बाहर लाते देखा। मठ लौटकर उन्होंने सुबह जो देखा था, वह सब बुद्ध को बताया और उनसे पूछा कि क्या इन बंधनों से भी अधिक मजबूत कोई बंधन है? बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं! ये बंधन भोजन, वस्त्र, धन और परिवार की लालसा के आगे कुछ भी नहीं हैं। लालसा इन जंजीरों, हथकड़ियों और पिंजरों से हज़ार गुना, बल्कि एक लाख गुना अधिक शक्तिशाली है। यही कारण है कि ज्ञानी भिक्षु लालसा का त्याग कर संसार को छोड़ देते हैं और भिक्षु संघ में प्रवेश करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 345 एवं 346: ज्ञानी लोग यह नहीं कहते कि लोहे, लकड़ी और भांग से बने बंधन मजबूत होते हैं; वे कहते हैं कि केवल रत्नों, आभूषणों, बच्चों और पत्नियों के प्रति आसक्ति और लगाव ही मजबूत बंधन हैं। ये बंधन व्यक्ति को निम्नतम स्तरों की ओर खींचते हैं और यद्यपि ये लचीले प्रतीत होते हैं, इन्हें तोड़ना कठिन होता है। ज्ञानी लोग इस (लालसा के) बंधन को तोड़कर और इंद्रिय सुखों का दृढ़तापूर्वक त्याग करके संसार का त्याग कर देते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कारागार

कथा के अनुसार, एक समय की बात है, कोसल के राजा के सामने अपराधी, सेंधमार, लुटेरे और हत्यारे लाए गए। राजा ने उन्हें बेड़ियों, रस्सियों और जंजीरों से बांधने का आदेश दिया। तभी तीस भिक्षु बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा से आए और बुद्ध को प्रणाम करके विदा हुए। अगले दिन, जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने गए, तो वे कारागार के पास पहुँचे और उन अपराधियों को देखा। भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय, वे संध्याकाल में बुद्ध के पास पहुँचे और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, आज जब हम भिक्षा मांगने गए थे, तो हमने कारागार में बहुत से अपराधियों को देखा। वे बेड़ियों, रस्सियों और जंजीरों से बंधे हुए थे और बहुत कष्ट भोग रहे थे। वे इन बेड़ियों को तोड़कर भाग नहीं सकते। क्या इन बंधनों से भी अधिक मजबूत कोई बंधन है?"

उनके प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, ये बंधन किस प्रकार के हैं? बुरी वासनाओं के बंधन पर विचार करो, उस बंधन पर विचार करो जिसे लालसा कहते हैं, धन, फसल, पुत्रों और पत्नियों के प्रति आसक्ति के बंधन पर विचार करो। यह बंधन उन सभी बंधनों से सौ गुना, बल्कि हज़ार गुना अधिक बलवान है जिन्हें तुमने देखा है। परन्तु इतना बलवान और तोड़ना इतना कठिन होते हुए भी, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने इसे तोड़ दिया और हिमालय देश जाकर संसार से संन्यास ले लिया।" ऐसा कहकर उन्होंने आगे कहा:

अतीत की कहानी: पति और पत्नी

बहुत समय पहले, जब ब्रह्मदत्त बनारस पर शासन कर रहे थे, तब भावी बुद्ध का पुनर्जन्म एक गरीब गृहस्थ परिवार में हुआ। युवावस्था में उनके पिता का देहांत हो गया; इसलिए उन्होंने मजदूरी करके अपनी माता का भरण-पोषण किया। उनकी माता ने उनके विरोध के बावजूद, एक प्रतिष्ठित परिवार की पुत्री से उनका विवाह करवाया। कुछ समय बाद उनकी माता का देहांत हो गया। कुछ समय बाद उनकी पत्नी गर्भवती हुईं।

पत्नी के गर्भ में होने की जानकारी न होने के कारण पति ने उससे कहा, "प्रिय पत्नी, तुम मजदूरी करके अपना जीवन यापन करो; मैं भिक्षु बनना चाहता हूँ।" इस पर पत्नी ने पति से कहा, "मेरे गर्भ में बच्चा है। मेरे जन्म का इंतज़ार करो और उसे देखो, फिर भिक्षु बन जाना।" पति ने कहा, "ठीक है," और ऐसा करने का वादा किया।

जब पत्नी ने बच्चे को जन्म दिया, तो पति ने उससे विदा लेते हुए कहा, "प्रिय पत्नी, तुमने अपने बच्चे को सुरक्षित जन्म दिया है; अब मैं भिक्षु बनूंगा।" लेकिन पत्नी ने उत्तर दिया, "बस थोड़ा इंतजार करो जब तक तुम्हारा बेटा माँ का दूध पीना छोड़ न दे।" पति के इंतजार करते-करते पत्नी दूसरे बच्चे की गर्भवती हो गई।

पति ने मन ही मन सोचा, "अगर मैं उसकी इच्छा पूरी करूँ तो कभी बच नहीं पाऊँगा; मैं भाग जाऊँगा और बिना उसे कुछ बताए साधु बन जाऊँगा।" इसलिए अपनी पत्नी को अपने इरादों के बारे में एक शब्द भी बताए बिना, वह रात में उठा और भाग गया। शहर के पहरेदारों ने उसे पकड़ लिया। लेकिन उसने उन्हें मना लिया और उनसे कहा, "गुरुजी, मुझे अपनी माँ का पालन-पोषण करना है; मुझे छोड़ दीजिए।"

कुछ समय तक एक स्थान पर रहने के बाद वे हिमालय चले गए और तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे। अलौकिक शक्तियों और उच्चतर ज्ञान को प्राप्त करके वे वहाँ समाधि में लीन होकर अपना ध्यान लगाते रहे। वहाँ रहते हुए उन्होंने मन ही मन सोचा, "मैंने इस बंधन को तोड़ दिया है, जो तोड़ना बहुत कठिन है, बुरी वासनाओं का बंधन, पुत्र और पत्नी के प्रति आसक्ति का बंधन।" ऐसा कहते हुए उन्होंने गंभीर स्वर में प्रार्थना की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 345)
अयासं दारुजं बब्बाजं यं च तं धीरा दढहं बंधनं
न अहु मणिकुंडलेसु शरत्तारत्ता पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा
āyasaṃ [ āyasa ]: लोहा; dārujaṃ [ dāruja ]: लकड़ी का; babbajañ ca : बबूल घास का; taṃ : ये सभी बंधन; dhīrā : बुद्धिमान; daḷhaṃ bandhanaṃāhu : 'कठिन' के रूप में वर्णित नहीं करते; maṇikuṇḍalesu : रत्नजड़ित कान के आभूषणों के लिए; sārattarattā : दृढ़ता से आसक्त; puttesu : पुत्रों के लिए; dāresu : पत्नियों के लिए; yā apekkhā : यदि कोई इच्छा हो
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 346)
एतं धीरा दहं बंधनं आहु ओहरिणं सिथिलं दुप्पमुञ्चं
ओहारिनं एतं पि चेत्वाना अनापेक्खिनो कामसुखं पहाय परिब्बजंति
एतं : यह बंधन; धीरा : बुद्धिमान लोग; दल्हं बंधनम् आहु : एक मजबूत बंधन की घोषणा करना; ओहरिनं [ ओहरिन ]: नीचे खींचता है; भ्रष्ट करता है; सिथिलं [ सिथिल ]: ढीला; दुप्पमुंचं [ दुप्पमुंच ]: छुटकारा पाना आसान नहीं; एतं पि : यह बंधन भी; चेत्वाना : काट कर; अनापेक्खिनो [ अनापेक्खिना ]: कामुकता की लालसा के बिना; कामसुखं [ कामसुख ]: कामुक सुख; पहाय : त्याग कर; परिब्बजंति : मठवासी जीवन अपनाना
बुद्धिमान लोग इस बात से सहमत हैं कि यह एक मजबूत बंधन है। यह भ्रष्टता की ओर ले जाता है। यद्यपि यह बंधन ढीला प्रतीत होता है, फिर भी इससे मुक्त होना कठिन है। प्रक्रिया चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हो, इंद्रिय सुखों की लालसा से मुक्त होकर बुद्धिमान लोग गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं और तपस्वी बन जाते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 345-346)
ayasaṃ ; dārujaṃ ; babbajaṃ : ये सभी सामग्रियाँ हैं जिनसे बेड़ियाँ, बंधन बनाए जाते हैं — लोहा, लकड़ी और घास (रस्सियों के लिए)।
maṇikuṇḍalesu : रत्न जड़ित कान के आभूषण: गहने।
सारत्तरत्ता : गहराई से आसक्त।
ओहारिनं : पतन की ओर ले जाने की प्रवृत्ति रखने वाला, भ्रष्टता की ओर प्रवृत्त होने वाला।
sithilù� : ढीला; शिथिल। यदि कोई टाई ढीली है, तो वह समस्या कैसे हो सकती है? ढीली होने के बावजूद, यह गति को प्रतिबंधित करती है। इसकी प्रतिबंधात्मकता का पता तभी चलता है जब कोई भोजन की ओर बढ़ने का प्रयास करता है।
दुप्पामुंचं : जिसे खोलना मुश्किल हो।
अनापेक्खिनो कामसुखं : त्याग की ओर अग्रसर होने के लिए इंद्रिय सुखों की लालसा को त्यागना आवश्यक है।
कामसुखं : इंद्रियों के सुख।
आरंभ में बुद्ध ने अपने शिष्यों को दो अतिवादी रास्तों से बचने की चेतावनी दी। उनके शब्द थे: दो अतिवादी रास्ते ( अंता ) हैं जिनका सहारा संन्यासी ( पब्बजितेन ) को नहीं लेना चाहिए। विशेष रूप से अंत या चरम सीमा (अंता) और पब्बजित ( संसार का त्याग करने वाला) शब्दों पर जोर दिया गया।
बुद्ध के स्वयं के शब्दों में, एक चरम अवस्था इंद्रिय सुखों के प्रति निरंतर आसक्ति ( कामसुखल्लिकानुयोग ) थी। बुद्ध ने इस चरम अवस्था को नीच, अश्लील, सांसारिक, घृणित और लाभहीन बताया।
इसका यह अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि बुद्ध अपने सभी अनुयायियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे भौतिक सुखों का त्याग करके इस जीवन का आनंद लिए बिना वनवास में चले जाएं। बुद्ध इतने संकीर्ण विचारक नहीं थे।
भ्रमित इंद्रियप्रिय व्यक्ति चाहे इसके बारे में कुछ भी सोचे, उदासीन विचारक के लिए इंद्रिय सुख का आनंद स्पष्ट रूप से क्षणभंगुर होता है, कभी पूर्णतः तृप्त नहीं करता और अप्रिय प्रतिक्रियाओं का परिणाम होता है। सांसारिक सुख के विषय में बुद्ध कहते हैं कि धन का संचय और संपत्ति का आनंद एक सामान्य व्यक्ति के लिए सुख का स्रोत है। परन्तु एक समझदार संन्यासी इन क्षणभंगुर सुखों की खोज में आनंद नहीं खोजेगा। सामान्य व्यक्ति को आश्चर्य होगा कि वह इनसे दूर रहेगा। जो पहले वाले के लिए सुख है, वही दूसरे वाले के लिए भय का कारण है, जिसके लिए केवल त्याग ही सुख है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 347

———————————————————————————

(धम्मपद 345 और 346) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 347 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 348)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 347 - खेमथेरी वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Ye ragaratt'nupatanti sotam
sayamkatam makkatakova jalam
etampi chetvana vajanti dhira
अनापेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाया।

---

श्लोक 347 : कामवासना में लिप्त प्राणी, मकड़ी की तरह अपने ही जाले में वापस गिर जाते हैं। ज्ञानी पुरुष कामवासना के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं।

---

थेरी खेमा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने रानी खेमा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (347) कहा।
रानी खेमा राजा बिम्बिसारा की प्रधान रानी थीं। वह बेहद खूबसूरत और घमंडी भी थीं।
राजा चाहते थे कि वह वेलुवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करे। लेकिन उसने सुना था कि बुद्ध हमेशा सुंदरता की निंदा करते थे, इसलिए उसने बुद्ध से मिलने से बचने की कोशिश की।
राजा को बुद्ध के प्रति रानी के दृष्टिकोण का ज्ञान था; उन्हें यह भी पता था कि रानी को अपनी सुंदरता पर कितना गर्व था। इसलिए राजा ने अपने संगीतकारों को वेलुवाना मठ की प्रशंसा में गीत गाने का आदेश दिया, जिसमें उसके सुखद और शांत वातावरण आदि का वर्णन था। गीत सुनकर रानी खेमा को रुचि हुई और उन्होंने वेलुवाना मठ जाने का निश्चय किया।
जब रानी खेमा मठ पहुँचीं, तो बुद्ध एक सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। अपनी अलौकिक शक्ति से, बुद्ध ने एक अत्यंत सुंदर युवती को अपने पास प्रकट किया, जो उनके निकट बैठी उन्हें पंखा कर रही थी। जब रानी खेमा सभा-गृह में आईं, तो उन्होंने ही उस सुंदर युवती को देखा। युवती की असाधारण सुंदरता की तुलना अपनी सुंदरता से करते हुए, खेमा ने महसूस किया कि उनकी सुंदरता युवती की सुंदरता से कहीं कम है। जब उन्होंने फिर से युवती को ध्यान से देखा, तो उनकी सुंदरता धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। अंत में, उन्होंने अपनी आँखों के सामने एक वृद्ध, जीर्ण-शीर्ण शरीर देखा, जो फिर से एक शव में परिवर्तित हो गया, जिसका दुर्गंधयुक्त शरीर कीड़ों से भरा हुआ था। उसी क्षण, रानी खेमा ने सुंदरता की क्षणभंगुरता और निरर्थकता को महसूस किया।
बुद्ध ने रानी खेमा की मनःस्थिति को जानते हुए कहा, "हे खेमा! इस क्षय होते शरीर को ध्यान से देखो, जो हड्डियों के ढांचे पर बना है और रोग एवं क्षय के अधीन है। उस शरीर को ध्यान से देखो जिसे मूर्ख लोग इतना महत्व देते हैं। इस युवती की सुंदरता की निरर्थकता को देखो।" यह सुनकर रानी खेमा ने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 347 : कामवासना में लिप्त प्राणी, मकड़ी की तरह अपने ही जाले में वापस गिर जाते हैं। ज्ञानी पुरुष कामवासना के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं।

---

प्रवचन के अंत में रानी खेमा ने अरहत पद प्राप्त किया और संघ में प्रवेश पाकर बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बन गईं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

थेरी खेमा की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने रानी खेमा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

रानी खेमा राजा बिम्बिसार की प्रधान रानी थीं। वह अत्यंत सुंदर और अभिमानी थीं। राजा चाहते थे कि वह वेलुवन मठ जाकर बुद्ध को प्रणाम करें। लेकिन उन्होंने सुना था कि बुद्ध सौंदर्य के बारे में हमेशा नकारात्मक बातें करते हैं, इसलिए वह बुद्ध से मिलने से बचती थीं। राजा उनकी बुद्ध के प्रति मनोवृत्ति को समझते थे; उन्हें यह भी पता था कि उन्हें अपने सौंदर्य पर कितना गर्व था। इसलिए राजा ने अपने संगीतकारों को वेलुवन मठ की प्रशंसा में गीत गाने का आदेश दिया, जिसमें उसके सुखद और शांत वातावरण आदि का वर्णन था। गीत सुनकर रानी खेमा को रुचि हुई और उन्होंने वेलुवन मठ जाने का निश्चय किया।

जब रानी खेमा मठ पहुँचीं, तो बुद्ध एक सभा को धम्म का उपदेश दे रहे थे। अपनी अलौकिक शक्ति से, बुद्ध ने एक अत्यंत सुंदर युवती को अपने पास प्रकट किया, जो उनके निकट बैठी उन्हें पंखा कर रही थी। जब रानी खेमा सभा-गृह में आईं, तो उन्होंने ही उस सुंदर युवती को देखा। युवती की असाधारण सुंदरता की तुलना अपनी सुंदरता से करते हुए, खेमा ने महसूस किया कि उनकी सुंदरता युवती की सुंदरता से कहीं कम थी। जब उन्होंने दोबारा युवती को देखा, तो उनकी सुंदरता धीरे-धीरे फीकी पड़ने लगी। अंत में, उन्होंने अपनी आँखों के सामने एक वृद्ध, जर्जर शरीर देखा, जो फिर से एक शव में परिवर्तित हो गया, जिसका दुर्गंधयुक्त शरीर कीड़ों से भरा हुआ था। उसी क्षण, रानी खेमा ने सुंदरता की क्षणभंगुरता और निरर्थकता को महसूस किया।

बुद्ध ने रानी खेमा के मन की स्थिति को जानते हुए कहा, "हे खेमा! इस क्षय होते शरीर को ध्यान से देखो, जो हड्डियों के ढांचे पर बना है और रोग एवं क्षय के अधीन है। उस शरीर को ध्यान से देखो जिसे मूर्ख लोग इतना महत्व देते हैं। इस युवती की सुंदरता की निरर्थकता को देखो।" यह सुनकर रानी खेमा ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

प्रवचन के अंत में, रानी खेमा ने अरहत पद प्राप्त किया और संघ में प्रवेश पाकर बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या बन गईं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 347)

रागरत्ता ये सयं कतं जालं मक्कटको इव सोतं पतन्ति धीरा

एतं अपि चेत्वाना अनापेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय वजन्ति

रागरत्ता : वासना की गर्मी में; ये : वे; सयं कतं [ कत ]: स्वयं द्वारा बनाया गया; जालं [ जाल ]: जाला; मक्कटक इव : मकड़ी के समान; सोतं [ सोत ]: (लालसा की) धारा में; पटन्ति : गिरना; धीरा : बुद्धिमान; एतं अपि: यहाँ तक कि; चेत्वाना : काटकर; अनापेक्खिनो [ अनापेक्खिना ]: (इंद्रिय सुखों के लिए) कोई लालसा नहीं; सब्बदुक्खं पहाय : सभी कष्टों पर विजय प्राप्त करके; वजंति : निर्वाण में प्रवेश करना

कामवासना में लिप्त प्राणी उसी लालसा की धारा में वापस गिर जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने बुने हुए जाले में गिर जाती है। ज्ञानी पुरुष लालसा के बंधन को तोड़कर दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं और सभी दुखों को पीछे छोड़ देते हैं ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 347)

makkaṭako va jālaṃ : मकड़ी के जाले की तरह, जो वह स्वयं बनाती है। मकड़ी अपने शिकार को पकड़ने के लिए जाले के विभिन्न धागों का अनुसरण करती है।

अनुपतन्ति सोतं : जो लोग वासना की गर्मी में होते हैं, वे भी अपने द्वारा निर्मित इंद्रिय सुखों की धाराओं का अनुसरण करते हैं और उन्हीं धाराओं में गिर जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 348

---

(धम्मपद 347) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 348 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 349 और 350)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 348 - उग्गसेना वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Muncapure1munca pacchato2
majjhe3munca bhavassa paragu4
सब्बत्था विमुत्तमनसो
na punam jatijaram upehisi.

---

श्लोक 348 : अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से पड़कर, समस्त (बद्धताओं) से मुक्त मन से, तुम फिर कभी जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।

---

1, 2, 3. शुद्ध, पच्छतो, मज्झे: संदर्भ भूतकाल, भविष्य और वर्तमान खंडा समुच्चय से लगाव को दर्शाता है।
4. भावस परागु: वह व्यक्ति जो दूसरे तट या अस्तित्व के अंत (अर्थात निर्वाण) तक पहुँच चुका हो; एक अरहत।

---

उगासेना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (348) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने एक धनी व्यक्ति के पुत्र उगसेना का जिक्र किया, जिसे एक नर्तकी से प्यार हो गया था।

एक बार, पाँच सौ नर्तकों और कुछ कलाबाज़ों का एक घुमंतू नाट्य दल राजगृह आया और राजा बिम्बिसार के महल के मैदान में सात दिनों तक प्रदर्शन किया। वहाँ, एक कलाबाज़ की बेटी, एक युवा नर्तकी ने एक लंबे बाँस के खंभे पर गाते और नाचते हुए नृत्य किया। एक धनी व्यक्ति का युवा पुत्र, उगासेना, उस नर्तकी के प्रेम में बुरी तरह पड़ गया और उसके माता-पिता उसे उससे विवाह करने से नहीं रोक सके। उसने उस युवा नर्तकी से विवाह किया और दल के साथ चल पड़ा। चूंकि वह न तो नर्तक था और न ही कलाबाज़, इसलिए वह दल के लिए ज़्यादा उपयोगी नहीं था। इसलिए, जब दल एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था, तो उसे बक्से उठाने, गाड़ियाँ चलाने आदि में मदद करनी पड़ती थी।

कुछ समय बाद, उगासेना और उनकी पत्नी, जो एक नर्तकी थीं, के एक पुत्र का जन्म हुआ। नर्तकी अक्सर उस बच्चे को एक गीत सुनाती थीं, जो इस प्रकार था: "हे, उस व्यक्ति के पुत्र जो गाड़ियों की रखवाली करता है; उस व्यक्ति के पुत्र जो बक्से और गट्ठे ढोता है! हे, उस अज्ञानी के पुत्र जो कुछ नहीं कर सकता!" उगासेना ने गीत सुना; वह समझ गए कि उनकी पत्नी उन्हीं के बारे में कह रही हैं और उन्हें बहुत दुख हुआ और वे बहुत उदास हो गए। इसलिए वे अपने ससुर, जो एक कलाबाज थे, के पास गए और उनसे कलाबाजी सिखाने का अनुरोध किया। एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद, उगासेना एक कुशल कलाबाज बन गए।

फिर, उगासेना राजगृह लौट आए, और यह घोषणा की गई कि उगासेना सात दिनों के भीतर सार्वजनिक रूप से अपना कौशल प्रदर्शित करेंगे। सातवें दिन, एक लंबा खंभा खड़ा किया गया और उगासेना उस पर खड़े हो गए। नीचे से संकेत मिलते ही उन्होंने खंभे पर सात बार कलाबाज़ी की। लगभग इसी समय, बुद्ध ने अपने दर्शन में उगासेना को देखा और जान लिया कि उगासेना के अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए, वे राजगृह में प्रवेश कर गए और यह इच्छा व्यक्त की कि दर्शक उगासेना के कलाबाज़ी के लिए तालियाँ बजाने के बजाय उन पर ध्यान दें। जब उगासेना ने देखा कि उनकी उपेक्षा की जा रही है, तो वे खंभे पर बैठ गए, अत्यंत असंतुष्ट और निराश महसूस करते हुए। तब बुद्ध ने उगासेना को संबोधित करते हुए कहा, "उगासेना, एक बुद्धिमान व्यक्ति को सभी खण्डों से आसक्तियों का त्याग करना चाहिए और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 348 : अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से पड़कर, समस्त (बद्धताओं) से मुक्त मन से, तुम फिर कभी जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।

---

प्रवचन के अंत में, जो अभी भी खंभे के शीर्ष पर था, उगसेना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। वह नीचे उतरा और शीघ्र ही बुद्ध द्वारा संघ में शामिल कर लिया गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उगासेना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक उगसेना के संदर्भ में कहा था, जो एक धनी व्यक्ति का पुत्र था और एक नर्तकी से प्रेम कर बैठा था।

एक बार, पाँच सौ नर्तकों और कुछ कलाबाज़ों का एक घुमंतू नाट्य दल राजगृह आया और राजा बिम्बिसार के महल के मैदान में सात दिनों तक प्रदर्शन किया। वहाँ, एक कलाबाज़ की पुत्री, एक युवा नर्तकी, एक लंबे बाँस के खंभे पर गाती और नाचती थी। एक धनी व्यक्ति का युवा पुत्र, उगासेना, उस नर्तकी के प्रेम में बुरी तरह पड़ गया और उसके माता-पिता उसे उससे विवाह करने से नहीं रोक सके। उसने उस युवा नर्तकी से विवाह किया और दल के साथ चलने लगा। चूंकि वह न तो नर्तक था और न ही कलाबाज़, इसलिए वह दल के लिए ज़्यादा उपयोगी नहीं था। इसलिए, जब दल एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था, तो उसे बक्से ढोने, गाड़ियाँ चलाने आदि का काम करना पड़ता था।

कुछ समय बाद, उगासीना और उनकी पत्नी, जो एक नर्तकी थीं, के एक पुत्र का जन्म हुआ। नर्तकी अक्सर उस बच्चे को एक गीत सुनाती थीं, जिसके बोल कुछ इस प्रकार थे: "हे उस व्यक्ति के पुत्र जो गाड़ियों की रखवाली करता है; उस व्यक्ति के पुत्र जो बक्से और गट्ठे ढोता है! हे उस अज्ञानी के पुत्र जो कुछ नहीं कर सकता!" उगासीना ने गीत सुना; वह समझ गए कि उनकी पत्नी उन्हीं के बारे में कह रही हैं और उन्हें बहुत दुख हुआ और वे बहुत उदास हो गए। इसलिए वे अपने ससुर, जो एक कलाबाज थे, के पास गए और उनसे कलाबाजी सिखाने का अनुरोध किया। एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद, उगासीना एक कुशल कलाबाज बन गए।

फिर, उगासेन राजगृह लौट गए, और यह घोषणा की गई कि सात दिनों के भीतर उगासेन सार्वजनिक रूप से अपना कौशल प्रदर्शित करेंगे। सातवें दिन, एक लंबा खंभा खड़ा किया गया और उगासेन उस पर खड़े हो गए। नीचे से मिले संकेत पर उन्होंने खंभे पर सात बार कलाबाज़ी की। लगभग इसी समय, बुद्ध ने अपने दर्शन में उगासेन को देखा और जान लिया कि उगासेन के अरहतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है। इसलिए वे राजगृह में प्रवेश कर गए और यह इच्छा व्यक्त की कि दर्शक उगासेन की कलाबाज़ी की सराहना करने के बजाय उन पर ध्यान दें। जब उगासेन ने देखा कि उनकी उपेक्षा की जा रही है, तो वे खंभे पर बैठ गए, अत्यंत असंतुष्ट और निराश होकर। तब बुद्ध ने उगासेन को संबोधित करते हुए कहा, "उग्गसेन, एक बुद्धिमान व्यक्ति को सभी खण्डों से आसक्तियों का त्याग कर पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 348)

शुद्ध मुन्चा पच्चतो मुन्चा माज्जे मुन्चा भावसा परागु

सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुना जातिजरं न उपेहिसि

शुद्ध : भूतकाल के शारीरिक रूपों की लालसा; मुंच : त्याग देना; स्वयं को मुक्त करना; पच्छतो [ पच्छता ]: भविष्य के शारीरिक रूपों की लालसा; मज्झे : वर्तमान शारीरिक रूपों की लालसा; भवस : अस्तित्व का; पारगू : आप अंत तक पहुँच गए हैं (आप दूसरे तट पर चले गए हैं); सब्त : हर जगह; हर चीज में; विमुत्तमनसो [ विमुत्तमनस ]: (आप) अनासक्त मन के हैं; पुन : फिर से; जातिजरं [ जातिजर ]: जन्म और मृत्यु के लिए; न उपेहिसि : आप नहीं आएंगे

अतीत को त्याग दो, भविष्य को त्याग दो, वर्तमान को त्याग दो। जन्म-मृत्यु के चक्र में फिर से प्रवेश करके, समस्त बंधनों से मुक्त मन के साथ, तुम पुनः जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे।

प्रवचन के अंत में, खंभे के शीर्ष पर स्थित उगसेना ने अर्हतत्व प्राप्त किया। वे नीचे उतरे और शीघ्र ही बुद्ध द्वारा संघ में शामिल कर लिए गए।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 348)

भावस पारगू : अस्तित्व के अंत तक पहुँच जाना — भाव । भाव : बनना, अस्तित्व की प्रक्रिया, तीन स्तरों से मिलकर बनी है: इंद्रिय-संबंधी अस्तित्व ( काम-भाव ), सूक्ष्म-भौतिक अस्तित्व ( रूपभाव ), अभौतिक अस्तित्व ( अरूपभाव )।

जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को दो पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है:

(1) कर्म-प्रक्रिया (कर्म-भाव), अर्थात् अस्तित्व का कर्मिक रूप से सक्रिय पक्ष, पुनर्जन्म का कारण है और इसमें शुभ और अशुभ स्वैच्छिक क्रियाएँ शामिल हैं।

(2) कर्म-जनित पुनर्जन्म या पुनर्जनन प्रक्रिया (उप्पतिभाव), यानी अस्तित्व का कर्मिक रूप से निष्क्रिय पक्ष जिसमें कर्म-जनित और इसलिए नैतिक रूप से तटस्थ मानसिक और शारीरिक अस्तित्व की घटनाओं का उदय और विकास शामिल है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 349,350

---

(धम्मपद 348) <<<< पिछला || धम्मपद 349 और 350 || अगला >>>> (धम्मपद 351 और 352)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 349 और 350 - कुलधनुग्गहा पंडिता वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Vitakkamathitassa jantuno
tibbaragassa subbhanupassino
bhiyyo tanha pavaddhati
एसा खो दल्हं करोति बंधनम्।
Vitakkupasame ca yo rato
asubham bhavayate sada sato
esa kho byanti kahiti
esa cheechati marabandhanam.

---

श्लोक 349 : जो व्यक्ति कामुक विचारों से व्याकुल रहता है, जिसकी वासनाएँ प्रबल होती हैं, और जो वस्तुओं को सुखदायक समझता रहता है, उसकी लालसा और भी बढ़ती जाती है। निःसंदेह, वह अपने बंधन को और भी मजबूत कर लेता है।

---

श्लोक 350 : जो व्यक्ति (इंद्रिय) विचारों को शांत करने में आनंद लेता है, जो सदा सचेत रहता है, और (शरीर आदि की) अशुद्धता पर ध्यान करता है, वह निश्चय ही (इच्छा से) मुक्त हो जाएगा; यह व्यक्ति मार के बंधन को काट देगा।

---

कुशल धनुर्धर कुलधनुग्गहा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (349) और (350) का उच्चारण एक युवा भिक्षु के संदर्भ में किया, जो अपने पिछले जन्मों में से एक में एक कुशल धनुर्धर था।

एक बार एक युवा भिक्षु ने नगर में भिक्षुओं के लिए विशेष रूप से निर्मित एक आश्रम में भिक्षा ग्रहण की। भोजन के बाद उसे प्यास लगी। वह एक घर में गया और पानी माँगा। एक युवती उसे पानी देने के लिए बाहर आई। युवती ने उस युवा भिक्षु को देखते ही उससे प्रेम कर बैठी। उसे लुभाने के लिए उसने उसे प्यास लगने पर अपने घर आने का निमंत्रण दिया। कुछ समय बाद उसने उसे भिक्षा ग्रहण के लिए अपने घर बुलाया। उस दिन उसने बताया कि घर में उनकी हर इच्छा पूरी होती है, लेकिन घर के कामकाज संभालने के लिए कोई पुरुष नहीं है। ये सुनकर युवा भिक्षु को बात समझ आ गई और वह उस आकर्षक युवती के प्रति आसक्त होता चला गया। वह भिक्षु जीवन से बहुत असंतुष्ट हो गया और दुबला-पतला होता जा रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उसके बारे में बुद्ध को बताया।

बुद्ध ने उस युवा भिक्षु को अपने पास बुलाया और उससे कहा, "मेरे पुत्र, मेरी बात सुनो। यह युवती तुम्हारा विनाश करेगी, ठीक वैसे ही जैसे पिछले जन्म में हुई थी। पिछले जन्मों में तुम एक कुशल धनुर्धर थे और वह तुम्हारी पत्नी थी। एक बार जब तुम दोनों यात्रा कर रहे थे, तुम्हारा सामना लुटेरों के एक गिरोह से हुआ। उसे गिरोह के सरदार से प्रेम हो गया। जब तुम और सरदार आपस में लड़ रहे थे और तुमने उससे तलवार माँगी, तो उसने तलवार लुटेरे को दे दी, जिसने तुरंत तुम्हें मार डाला। इस प्रकार, वह तुम्हारी मृत्यु का कारण बनी। अब भी, यदि तुम उसके पीछे जाओगे और उसके लिए मेरे संघ को छोड़ दोगे, तो वह तुम्हारा विनाश करेगी।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 349 : जो व्यक्ति कामुक विचारों से व्याकुल रहता है, जिसकी वासनाएँ प्रबल होती हैं, और जो वस्तुओं को सुखदायक समझता रहता है, उसकी लालसा और भी बढ़ती जाती है। निःसंदेह, वह अपने बंधन को और भी मजबूत कर लेता है।

---

श्लोक 350 : जो व्यक्ति (इंद्रिय) विचारों को शांत करने में आनंद लेता है, जो सदा सचेत रहता है, और (शरीर आदि की) अशुद्धता पर ध्यान करता है, वह निश्चय ही (इच्छा से) मुक्त हो जाएगा; यह व्यक्ति मार के बंधन को काट देगा।

---

प्रवचन के अंत में, युवा भिक्षु ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
युवा बुद्धिमान तीरंदाज
कथा के अनुसार, एक बार एक युवा भिक्षु ने अपने हिस्से में आई टिकट ली, उससे टिकट का दलिया लिया और सभा भवन गया। वहाँ पानी न पाकर वह पानी लेने के उद्देश्य से एक घर में गया। वहाँ एक युवती ने उसे देखा और देखते ही उससे प्रेम करने लगी। युवती ने कहा, "हे पूज्यवर, यदि आपको फिर कभी पानी की आवश्यकता हो, तो कृपया यहीं आइए; कहीं और मत जाइए।"
उसके बाद, जब भी उसे पीने का पानी नहीं मिलता, वह उसके घर जाता और कहीं और नहीं जाता। वह उसका कटोरा लेकर उसे पानी पिलाती। समय बीतने के साथ, वह उसे चावल का दलिया भी देने लगी। एक दिन उसने वहीं उसके लिए आसन बनाया और उसे उबले हुए चावल दिए। उसके पास बैठकर उसने बातचीत शुरू की और कहा, "आदरणीय, इस घर में बहुत सन्नाटा है; यहाँ तो कोई यात्री भी नहीं आता।" कुछ दिनों तक उसकी बातें सुनकर युवा भिक्षु असंतुष्ट हो गया।
एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उसे देखा और पूछा, "भाई, तुम इतने पीले क्यों हो गए हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं असंतुष्ट हूँ।" इसलिए वे उसे उसके गुरु और गुरु के पास ले गए। उसके गुरु और गुरु उसे बुद्ध के पास ले गए और उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने पूछा, "भिक्षु, क्या यह सच है कि तुम असंतुष्ट हो?" युवा भिक्षु ने उत्तर दिया, "हाँ, सच है।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षु, मेरे जैसे शक्तिशाली बुद्ध के धर्म में संसार से संन्यास लेने के बाद, तुम अपने बारे में यह कहलवाने के बजाय कि तुमने धर्म परिवर्तन का फल या द्वितीय मार्ग का फल प्राप्त कर लिया है, असंतुष्ट क्यों होने देते हो? तुम एक गंभीर पाप के दोषी हो।" आगे बढ़ते हुए, बुद्ध ने युवा भिक्षु से पूछा, "तुम असंतुष्ट क्यों हो?" उसने उत्तर दिया, "आदरणीय, एक स्त्री ने मुझसे यह-वह कहा।"
"भिक्षु, उसका ऐसा करना बिलकुल भी आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि पिछले जन्म में उसने भारत के सबसे बुद्धिमान पुरुष धनुग्गहा को त्याग दिया था और एक डाकू के प्रति आसक्ति में आकर अपने पति की हत्या कर दी थी।" भिक्षुओं ने बुद्ध से इस मामले को स्पष्ट करने का अनुरोध किया और उनके अनुरोध का पालन करते हुए उन्होंने निम्नलिखित बातें बताईं:
अतीत की कहानी: युवा बुद्धिमान तीरंदाज
पुराने समय में, युवा धनुर्धर (कुल्ला धनुग्घा) नामक एक ज्ञानी व्यक्ति रहते थे। उन्होंने तकासिला में एक विश्वप्रसिद्ध गुरु से कला और शिल्पकला सीखी। उनके गुरु उनकी प्रगति से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया। युवा धनुर्धर अपनी पत्नी को लेकर बनारस के लिए निकल पड़े। जंगल के प्रवेश द्वार पर उन्होंने पचास तीरों से पचास डाकुओं को मार गिराया। जब उनके सारे तीर समाप्त हो गए, तो उन्होंने डाकुओं के सरदार को पकड़कर जमीन पर पटक दिया। "पत्नी, मेरी तलवार लाओ!" वे चिल्लाए। लेकिन जैसे ही उनकी पत्नी ने उस डाकू को देखा, उन्हें उस पर प्रेम हो गया और उन्होंने तलवार की मूठ डाकू के हाथ में थमा दी। डाकू ने तुरंत युवा धनुर्धर को मार डाला। फिर वह अपनी पत्नी को लेकर अपने रास्ते चला गया।
चलते-चलते उसने मन ही मन सोचा, "अगर इस स्त्री ने किसी और पुरुष को देख लिया तो वो मुझे भी वैसे ही मार डालेगी जैसे अपने पति को मारा था। ऐसी स्त्री का मुझे क्या उपयोग है?" एक नदी देखकर उसने स्त्री को किनारे पर ही छोड़ दिया, उसके गहने ले लिए और कहा, "तुम यहीं रहो, मैं तुम्हारे गहने नदी पार करा दूं।" और फिर वहीं छोड़कर चला गया। जब स्त्री को पता चला कि डाकू उसे छोड़कर चला गया है, तो उसने कहा, "ब्राह्मण, तुमने मेरे सारे गहने ले लिए और नदी पार कर दी। जल्दी लौट आओ; अब मुझे भी नदी पार करा दो।"
डाकू ने उत्तर दिया, "हे स्त्री, तुमने अपने उस पति को, जिसे तुम लंबे समय से जानती हो, मेरे लिए त्याग दिया है, एक ऐसे पति के लिए जिसे तुम जानती भी नहीं हो; तुमने अपने परखे-परखे पति को एक ऐसे पति के लिए त्याग दिया है जिसे तुमने आजमाया नहीं है। हे स्त्री, तुम मुझे किसी और पुरुष से बदल सकती हो। इसलिए मैं यहाँ से दूर चला जाऊँगा।"
उस स्त्री को लज्जित करने के लिए, सक्का अपने सारथी और संगीतकार के साथ नदी पर जाता है। सक्का सियार का रूप धारण करता है, सारथी मछली का और संगीतकार पक्षी का। सियार अपने मुँह में मांस का एक टुकड़ा लेकर स्त्री के सामने खड़ा हो जाता है। मछली पानी से बाहर उछलती है, और सियार मछली को पकड़ने के लिए आगे बढ़ता है, जिससे मांस का टुकड़ा गिर जाता है। पक्षी मांस के

टुकड़े को पकड़ लेता है और हवा में उड़ जाता है। मछली पानी में गायब हो जाती है। इस प्रकार सियार मछली और मांस दोनों खो देता है। स्त्री जोर से हंसती है।

[सियार कहता है:]

कैसिया की झाड़ियों में इतनी जोर से कौन हंस रहा है? यहाँ न तो नाच-गाना है, न ही ताली बजाना।

हे सुडौल नितंबों वाली, रोने का समय आ गया है। भला तुम क्यों हंस रही हो, सुंदरी?

[महिला जवाब देती है:]

हे मूर्ख, बेवकूफ सियार! तुझमें जरा भी बुद्धि नहीं है, सियार।

तुमने मछली और मांस दोनों खो दिए हैं; तुम एक कंगाल की तरह विलाप कर रहे हो।

[सियार कहता है:]

दूसरों की गलतियाँ आसानी से दिख जाती हैं, लेकिन अपनी गलतियाँ देखना मुश्किल होता है।

आपने पति और प्रेमी दोनों को खो दिया है। मुझे यकीन है कि आप भी शोक मना रही होंगी।

[महिला कहती है:]

तो जैसा आपने कहा, सियार, जानवरों का राजा है।

इसलिए मैं यहाँ से जाऊंगी और पति की इच्छा के आगे झुक जाऊंगी।

[सियार कहता है:]

जो मिट्टी का बर्तन चुराएगा, वह तांबे का बर्तन भी चुराएगा।

तुमने एक बार बुराई की है, और आगे भी करोगे।

जब बुद्ध ने पंचम निपात में वर्णित चुल्ला धनुग्हार जातक का विस्तृत वर्णन किया, तो उन्होंने कहा, "उस समय तुम ज्ञानवान युवा धनुर्धर थे, वह स्त्री यह कन्या थी, और देवताओं का राजा जो सियार के रूप में आया और उसे लज्जित किया, वह मैं स्वयं था। इसी प्रकार इस स्त्री को एक डाकू से पहली ही नज़र में प्रेम हो गया और उसने भारत के सबसे ज्ञानी पुरुष का प्राण छीन लिया। हे भिक्षु, इस स्त्री के प्रति अपने भीतर उत्पन्न हुई इस इच्छा को जड़ से उखाड़ फेंको और नष्ट कर दो।" इस प्रकार भिक्षु को उपदेश देने के बाद, उन्होंने श्लोकों का पाठ करते हुए धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 349)

vitakkapamathitassa tibbarāgassa subhānupassino jantuno

भय्यो तन्हा पवधति , एसा खो बंधनं दढं करोति

विटक्कपामथित्स्सा : संदेह और आशंकाओं से प्रभावित लोग; तिब्बारागास्सा : तीव्र जुनून के साथ; सुभानुपासिनो [ सुभानुपासिना ]: कामुक सुखों को अच्छा मानना; जंतुनो [ जंतुना ]: उनमें; भिय्यो [ भिय्या ]: बहुत; पवदहति : बढ़ती है; ऐसा खो : यह; बंधनम् [ बंधन ]: बंधन की पकड़; दःहं करोति : मजबूत बनाता है

जिनके मन में व्याकुलता और संदेह व्याप्त होते हैं, जिनकी वासनाएँ और इंद्रियाँ तीव्र हो जाती हैं, उनमें लालसा और भी बढ़ती जाती है। इससे बंधन और भी मजबूत हो जाते हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 350)

यो वितक्कुपासमे रतो च सदा सातो अशुभं भावयति

एसा खो व्यन्तिकाहिती एसा मरबन्धनं चेच्चति

यदि कोई व्यक्ति संशय और संदेह के निवारण में लगा रहता है , तो वह हमेशा सद्दश रहता है । वह व्यक्ति व्यन्तिकाहिति तृप्ति का निवारण करेगा और मारबंधन के बंधनों को काट डालेगा ।

जो व्यक्ति मन में उठने वाले संदेहों और शंकाओं को निरंतर दूर करने में लगा रहता है, जो गंभीर और हमेशा सतर्क रहता है, वह वास्तविकता के संसार को सुखद नहीं मानता। वह लालसा का नाश करेगा और मृत्यु के बंधनों को तोड़ देगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 351,352

---

(धम्मपद 349 और 350) <<<< पिछला || धम्मपद 351 और 352 || अगला >>>> (धम्मपद 353)

---

अंतर्वस्तु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
धम्मपद छंद 351 और 352 - मारा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
नित्थांगतो असंतसी
vitatanho anangano
अच्चिंदी भावासल्लानी
antimoyam samussayo.
Vitatanho anadano
niruttipadakovido(1)
अक्खरनम सन्निपातम
जन्ना पब्बापरानी सीए
sa ve "antimasariro
महपन्नो महापुरिसो" ती वुकाति।

---

श्लोक 351 : जो अरहतत्व प्राप्त कर लेता है, वह भय से मुक्त, लालसा से मुक्त और नैतिक दोषों से मुक्त हो जाता है। उसने जीवन के कांटों (जैसे कामवासना) को काट डाला है। यही उसका अंतिम जन्म है।(2)

---

श्लोक 352 : जो लालसा और आसक्ति से मुक्त है, जो शब्दों के अर्थ के ज्ञान में निपुण है, जो अक्षरों के समूह और उनके क्रम को जानता है, वही वास्तव में "अपना अंतिम जीवन जी चुका व्यक्ति, महान ज्ञान का धनी व्यक्ति, महान व्यक्ति" कहलाता है।

---

1. निरुत्तीपादकोविदो: निरुत्तीपतिसंभिदा में कुशल अर्थात शब्दों के ज्ञान में कुशल।
2. शाब्दिक अर्थ, शरीर या पुनर्जन्म।

---

मारा (अर्थात शैतान/राक्षस) की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (351) और (352) का उच्चारण किया, जो मारा के संदर्भ में था, जो गौतम बुद्ध के पुत्र समनेरा राहुल को डराने आया था।
एक बार जेतवन मठ में बड़ी संख्या में भिक्षु आए। अतिथि भिक्षुओं के ठहरने के लिए समनेरा राहुल को बुद्ध के कक्ष के ठीक बाहर, द्वार के पास जाकर सोना पड़ा। मारा, अपने पुत्र के माध्यम से बुद्ध को परेशान करने के इरादे से, हाथी का रूप धारण करके समनेरा के सिर को अपनी सूंड से घेरकर एक भयानक शोर मचाने लगा, ताकि उन्हें डरा सके। लेकिन राहुल टस से मस नहीं हुए। बुद्ध अपने कक्ष से सब कुछ जानते हुए बोले, "हे दुष्ट मारा! तुम्हारे जैसे हज़ार भी मेरे पुत्र को नहीं डरा सकते। मेरा पुत्र निर्भय है, वह व्यथा से मुक्त है, वह सजग है, वह बुद्धिमान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 351 : जिसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है, वह भय, लालसा और नैतिक दोषों से मुक्त है। उसने जीवन के कांटों (जैसे कामवासना) को काट डाला है। यही उसका अंतिम जन्म है।

---

श्लोक 352 : जो लालसा और आसक्ति से मुक्त है, जो शब्दों के अर्थ के ज्ञान में निपुण है, जो अक्षरों के समूह और उनके क्रम को जानता है, वही वास्तव में "अपना अंतिम जीवन जी चुका व्यक्ति, महान ज्ञान का धनी व्यक्ति, महान व्यक्ति" कहलाता है।

---

उपरोक्त शब्द सुनकर, मारा को एहसास हुआ कि बुद्ध उसकी चालों से वाकिफ हैं और वह तुरंत गायब हो गया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

मारा का राहुल को डराने का प्रयास व्यर्थ जाता है।

एक दिन अनेक पूज्य साधु असमय जेतवन मठ में प्रवेश कर गए और पूज्य राहुल के कक्ष में जाकर उन्हें जगा दिया। राहुल को सोने के लिए कोई और स्थान न देखकर वे बुद्ध के सुगंधित कक्ष के सामने लेट गए। यद्यपि वे मात्र आठ वर्ष के थे, फिर भी वे अर्हतत्व प्राप्त कर चुके थे। जब मारा वासवत्ती ने अपने स्वाभाविक रूप में उन्हें सुगंधित कक्ष के सामने लेटे हुए देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "भिक्षु गौतम का पुत्र सुगंधित कक्ष के बाहर लेटा है, मानो उसकी उंगली में दर्द हो रहा हो; स्वयं भिक्षु सुगंधित कक्ष के भीतर लेटे हैं, और यदि उनके पुत्र की उंगली को चुटकी लग जाए, तो उन्हें स्वयं भी चुभन महसूस होगी।" अतः मारा ने एक विशाल हाथी-राजा का रूप धारण किया और राहुल के पास आकर अपनी सूंड से उनके सिर को घेर लिया तथा ऊँची आवाज में बगुले की वाणी निकाली।

सुगंधित कक्ष में विश्राम करते हुए भी बुद्ध ने यह जान लिया कि यह मारा हैं, और कहा, "मारा, तुम्हारे जैसे एक लाख लोगों के होते हुए भी मेरे पुत्र को डराना असंभव है। मेरा पुत्र निर्भीक है, व्यथा रहित है, अपार शक्ति से परिपूर्ण है और महान ज्ञान से भरपूर है।"

351. जो पूर्णता प्राप्त कर चुका है, जो निर्भय है, जो व्यथा से मुक्त है, जो कामवासना से रहित है, जिसने अस्तित्व के तीरों को काट डाला है, ऐसा व्यक्ति अपने अस्तित्व की अंतिम अवस्था को प्राप्त कर चुका है। 352. जो व्यथा से मुक्त है, जो आसक्ति रहित है, जो प्राचीन बोली के शब्दों का अर्थ समझने में निपुण है, जो अक्षरों के क्रम को पहले से आखिरी तक जानता है, ऐसा व्यक्ति अपना अंतिम शरीर प्राप्त कर चुका है, ऐसा व्यक्ति महान ऋषि है, महान पुरुष है।

पाठ के समापन पर कई लोगों ने धर्म परिवर्तन का फल और द्वितीय एवं तृतीय मार्ग के फल प्राप्त किए। दुष्ट मारा ने मन ही मन कहा, "भिक्षु गौतम मुझे जानते हैं," और वहीं पर वह लुप्त हो गया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 351)

निथंगतो असन्तसि वितानहो ओनंगानो

भवसल्लानि अच्चिन्दि अयं अन्तिमो समुस्सायो

निट्ठंगतो [ निट्ठंगत ]: जिसने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है; असंतसि : भय से मुक्त; वितत्तण्हो [ वितत्तणह ]: भोग से रहित; अनंगनो [ अनंगन ]: आसक्ति के दोषों से मुक्त; भवसल्लानि : अस्तित्व के कांटों से मुक्त; अच्चिंदि : टूट गया; अयं : यह; अंतिमोससयो [ समुस्सया ]: उसका अंतिम स्वरूप है

उन्होंने संन्यास का अंत कर लिया है। वे अपने संन्यासी जीवन के लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं। वे भय, लालसा और दोषरहित हैं। उन्होंने जीवन के काँटों को तोड़ दिया है। यही उनका अंतिम रूप है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 352)

वितातंहो अनादानो निरुत्तिपदाकोविदो अक्खरनं

सन्निपातं पुब्बापराणि च जनाना अन्तिमसारिरो

सा वे महापन्नो महा पुरिसो इति वुकाति

वीततङ्हो [ वीततङ्हा ]: लालसा का अंत; अनादानो [ अनादान ]: बिना किसी लोभ के; निरुत्तिपदाकोविदो [ निरुत्तिपदाकोविदा ]: व्युत्पत्ति और प्रयोगों में पारंगत; अक्खरानं [ अक्खरान ]: अक्षरों से अवगत; सन्निपातं [ सन्निपता ]: और उनके संयोजनों में प्रयोग; पुबबपराणि च : उनका क्रम—पहले क्या आता है और बाद में क्या; अंतिमसारीरो [ अंतिमसारीरा ]: जो अपने अंतिम जन्म में है; यो : वह व्यक्ति; महापञ्ञो [ महापञ्ञा ]: महान ज्ञानी; इति वच्चति : कहलाता है

वह लालसा से मुक्त है और लोभ से रहित है। वह शब्द-व्युत्पत्ति और भाषा-रचनाओं का भली-भांति ज्ञाता है। वह अक्षरों और उनके संयोजनों से भली-भांति परिचित है। वह अक्षरों के क्रम को जानता है। वह प्राचीन बोली को जानता है। यह उसका अंतिम शरीर है। वह व्यक्ति एक महान ज्ञानी पुरुष है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 351-352)

राहुल : इसी युग में राजकुमार सिद्धार्थ के पुत्र राहुल का जन्म हुआ। जब गौतम बुद्ध महा अरहतों के उत्तम समूह के साथ पहली बार कपिलवस्तु आए, तो उनकी माता यशोदरा, जो उस समय केवल सात वर्ष के थे, ने बुद्ध की ओर इशारा करते हुए नौ श्लोकों ( नरसीह गाथा ) का पाठ किया। इन श्लोकों का नाम नरसीह गाथा इसलिए पड़ा क्योंकि इनमें पुरुषों के राजा का सिर से पैर तक पूर्ण वर्णन था,

जबकि अंतिम श्लोक में बुद्ध को उनके शिष्यों के बीच तारों से भरे आकाश में चमकते चंद्रमा के समान चित्रित किया गया था। प्रत्येक बौद्ध बच्चे को इन श्लोकों को याद करना अनिवार्य था।

यशोदरा को उनके गुलाबी रंग के कारण बिम्बा देवी के नाम से भी जाना जाता था। दीक्षा के बाद, वे भद्दा कच्चाना के नाम से प्रसिद्ध हुईं। माता ने बालक से अपने पिता से अपनी विरासत मांगने का अनुरोध किया। जैसे ही उनकी मुलाकात हुई, युवा राहुल बुद्ध की ओर आकर्षित होकर बोले, "हे भगवान, आपकी छाया कितनी मधुर है!" अपनी विरासत के लिए व्याकुल राहुल बुद्ध के पीछे-पीछे मंदिर तक गए, जबकि बुद्ध मौन रहे। पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए, बुद्ध ने उनसे राहुल को दीक्षा देने का अनुरोध किया, क्योंकि सांसारिक धन केवल उनके सांसारिक अस्तित्व को ही बढ़ाएगा। इसके बजाय, दीक्षा के बाद उन्हें सात प्रकार के आर्य गुण प्राप्त होंगे। इनमें शामिल हैं: (i) श्रद्धा ; (ii) शील ; (iii) अपवित्रता के प्रति लज्जा; ( हिरी ), (iv) अस्वस्थता के प्रति डर ( ओट्टप्पा ), (v) प्रवचन सुनकर सीखना ( सुट्टा ), (vi) उदारता ( कागो ), और (vii) अंतर्दृष्टि ( पन्ना )।

इसके बाद एक रोचक घटनाक्रम सामने आया। राजा सुद्धोदन को यह जानकर गहरा दुःख हुआ कि उनके पोते को दीक्षा दी गई है। वे तुरंत बुद्ध के पास गए और अपना सारा दुख उनके सामने प्रकट किया।

उनके विलाप में गहरा दुख था। "तुम्हें ढूँढ़ना मेरे लिए कितना कठिन था, पहले नंदा और अब राहुल, एक के बाद एक घर छोड़कर चले गए। इस दुःख ने मेरी हड्डियों तक को झकझोर दिया है। कृपया मुझे यह वरदान दीजिए कि अब से माता-पिता की सहमति के बिना किसी भी कम उम्र के बच्चे को दीक्षा न दी जाए।" बुद्ध ने सहर्ष यह वरदान दे दिया।

आम सहमति से, राहुल उपदेशों का कड़ाई से पालन करते थे। वे एक प्रशंसनीय शिष्य भी थे। प्रतिदिन सुबह उनकी यह प्रथा थी कि वे मुट्ठी भर रेत उछालते और कामना करते कि उन्हें उन रेत के कणों के समान पर्याप्त उपदेश प्राप्त हो। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया कि उन्हें मजाक में भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। इस उपदेश को अंबलत्थिका राहुलवाद सूत्र कहा जाता है । बुद्ध ने झूठे व्यक्ति की तुलना खाली पात्र से की। एक बार भिक्षा मांगने के दौरान, अठारह वर्ष के राहुल बुद्ध के साथ थे और जल्द ही स्वयं की तुलना बुद्ध से करने लगे और उनकी समानता से मोहित हो गए। भगवान बुद्ध ने तुरंत महा राहुलवाद सूत्र का उपदेश देकर उन्हें रोका । यहाँ 'वाद' का अर्थ है सलाह। एक मार्मिक कहानी है कि राहुल ने बुद्ध के शौचालय में जगह की कमी के कारण पूरी रात बिताई। ऐसा भगवान बुद्ध द्वारा एक नियम घोषित किए जाने के कारण हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि आम लोगों को धार्मिक प्रवचन सुनने के लिए मंदिर में कई दिनों तक रुकने की आदत थी। इसके अलावा, कुछ लोग दूर-दूर से आते थे। इनमें से अधिकांश लोग सोते समय अनेक घृणित हरकतें करते थे। भिक्षुओं का उनके बीच सोना उचित नहीं था। यह दिलचस्प है कि बुद्ध द्वारा शौचालय के द्वार पर दस्तक देने पर, राहुल ने केवल अर्थहीन "मैं हूँ" कहने के बजाय "मैं राहुल हूँ" कहा।

बुद्ध ने तुरंत सारिपुत्त के नेतृत्व में भिक्षुओं को बुलाया और उनसे घटना का वर्णन करने को कहा।

तब बुद्ध ने नियम में ढील दी और इसे तीसरे दिन के बाद ही लागू किया। यही भिक्षुओं के बीच चर्चा का मुख्य विषय बन गया। बुद्ध के पुत्र पूज्य राहुल अत्यंत विनम्र और सरल स्वभाव के थे, जबकि वे इससे कहीं अधिक सरल स्वभाव के हो सकते थे। यह सुनकर बुद्ध ने अतीत की एक छोटी सी कहानी, तिपालत्थमिगा जातक, सुनाई, जिससे यह पता चलता है कि राहुल का स्वभाव सुदूर अतीत में भी ऐसा ही था।

"एक समय की बात है, वाराणसी में मगध राज करता था और बोधिसत्व हिरणों के झुंड का सरदार था। सरदार का एक छोटा भतीजा था और उसकी माता के अनुरोध पर उसने उसे शत्रुओं को मात देने की कला सिखाने का बीड़ा उठाया। एक दिन, वह छोटा हिरण फंस गया। उसने बेहोश होने का नाटक किया और मरने का ढोंग किया। उसका पेट फूल गया और उसने अपनी सांसों को इस कदर नियंत्रित किया कि कौवे और मक्खियाँ भी उसके शरीर के चारों ओर मंडराने लगीं। शिकारी ने हिरण को मरा हुआ समझकर वहीं पर खाने के लिए छोड़ दिया। आग जलाई गई। वह छोटा हिरण तुरंत उठा और भाग गया।"

थेरागाथा में राहुल द्वारा कहे गए चार श्लोक हैं। बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि उनके महान अरहतों में, पूज्य राहुल धर्म के नियमों का पालन करने में सर्वोपरि थे।

राहुल धर्म के पालन में सर्वोपरि एक महान अर्हत थे। उनके जीवन का विवरण लगभग महा अर्हत रट्ठपाल के जीवन से मिलता-जुलता है। धनी परिवारों में जन्मे और यद्यपि उनके पिछले जन्मों के बारे में बहुत कम जानकारी है, फिर भी सुमेध की तरह वयस्क होने पर उन्होंने अपना धन त्याग दिया। दोनों ने ही धन संचय को मूर्खता समझा। उन्होंने गरीबों में धन बाँटकर संन्यासी जीवन व्यतीत किया। इसी समय दो ऋषि, जिनमें आध्यात्मिक शक्ति थी, आए। एक नाग राज्य से, जिसके राजा का नाम पथविन्दर था, और दूसरा तावतिंस (तैंतीस देवताओं के स्वर्गलोक ) से आया। दोनों ऋषियों के एक-एक शिष्य थे। इन ऋषियों ने न केवल अपना आशीर्वाद दिया, बल्कि अपने-अपने निवास स्थानों के गुणों का भी बखान किया। मृत्यु के बाद, प्रत्येक ऋषि का जन्म उसी क्षेत्र में हुआ जहाँ से वे आए थे। अत: एक का जन्म पथविन्दरा में नागों के राजा के रूप में हुआ और दूसरे का जन्म स्वर्गलोक में सक्का के रूप में हुआ।

पथविन्दरा और साक्का ने पृथ्वी पर एक साथ जन्म लेने का निर्णय लिया, क्योंकि पृथ्वी पर एक बुद्ध प्रकट हो रहे थे, और वे दोनों राहुल और रट्ठपाल थे।

---

(धम्मपद 351 और 352) <<<< पिछला || धम्मपद 353 || अगला >>>> (धम्मपद 354)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 353 - उपकजीवक वत्थु

---

### डॉ म्या टिन संस्करण

सब्बभिभु सब्बविदुहमस्मी
sabbesu dhammesu anupalitto
सब्बंजहो तंहक्खये विमुत्तो
सयं अभिनयाय कमुद्दीसेयम्।

---

श्लोक 353 : मैंने सब पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब जानता हूँ, मैं सब से विरक्त हूँ, मैंने सब त्याग दिया है; मैं नैतिक दोषों से मुक्त हो गया हूँ, मैंने व्यथा का नाश कर लिया है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

---

### उपका की कहानी

बुद्ध ने इस पुस्तक का श्लोक (353) उपक नामक एक गैर-बौद्ध तपस्वी के प्रश्न के उत्तर में कहा, जब बुद्ध मिगदया उद्यान (मिगदया) जा रहे थे, जहाँ पंच भिक्षुओं का समूह (पंच वग्गी) ठहरे हुए थे। बुद्ध वहाँ पंच वग्गियों, अपने पुराने साथियों, कोंडन्ना, भद्दिया, वप्पा, असजी और महानामा को धम्म चक्कप्पवत्तना सूत्र का उपदेश देने जा रहे थे। जब उपक ने गौतम बुद्ध को देखा, तो वे बुद्ध के तेजस्वी मुखमंडल से अत्यंत प्रभावित हुए और उनसे कहा, "मित्र, आप इतने शांत और पवित्र प्रतीत होते हैं; क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके गुरु कौन हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि उनका कोई गुरु नहीं है।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 353 : मैंने सब पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब जानता हूँ, मैं सब से विरक्त हूँ, मैंने सब त्याग दिया है; मैं नैतिक दोषों से मुक्त हो गया हूँ, मैंने व्यथा का नाश कर लिया है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

---

प्रवचन के अंत में उपका ने न तो सहमति व्यक्त की और न ही असहमति, बल्कि केवल कुछ बार सिर हिलाया और अपने रास्ते चले गए।

---

### वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उपका की कहानी

बुद्ध ने यह श्लोक उपक नामक एक गैर-बौद्ध तपस्वी के प्रश्न के उत्तर में कहा था, जब वे मिगदया (हिरण उद्यान) जा रहे थे, जहाँ पाँच भिक्षु ( पंच वग्गी ) ठहरे हुए थे। बुद्ध वहाँ अपने पुराने साथियों, कोंडन्ना, भद्दिया, वप्पा, असजी और महानामा को धम्मचक्कप्पवत्तना सूत्र का उपदेश देने जा रहे थे। उपक ने जब बुद्ध को देखा, तो वे उनके तेजस्वी चेहरे से बहुत प्रभावित हुए और उनसे कहा, "मित्र, आप कितने शांत और पवित्र दिखते हैं; क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके गुरु कौन हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया कि उनका कोई गुरु नहीं है। प्रवचन के अंत में, उपका ने न तो सहमति व्यक्त की और न ही असहमति, बल्कि बस कुछ बार सिर हिलाया और अपने रास्ते चले गए।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 353)

अहं सब्बाभिभू अस्मि सब्बविदु सब्बेसु धम्मेसु अनुपालितो

सब्बन जहो तनहक्खये विमुत्तो सयांं अभिनयाय काम उदिसेयं

अहं : मैं हूं; सब्बाभिभू : जिसने (अस्तित्व के) तीनों स्तरों के सभी धम्मों पर विजय पा ली है; अस्मि : मैं हूं; सब्बविदु : सर्वज्ञ; सब्बेसु धम्मेसु : सभी मामलों में; ना उपालिट्टो [ उपालिट्टा ]: संलग्न नहीं; सब्बान जाहो [ सब्बान जाहा ]: सब कुछ छोड़ दिया; तनहक्खये : तृष्णाहीनता की स्थिति में (निर्वाण); विमुत्तो [ विमुत्त ]: मैंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है; सयं [ सया ]: अपने आप से; अभिनयाय : बिल्कुल अच्छी तरह से जानना; कम : किसको; uddiseyyaṃ [ uddiseyya ]: क्या मैं अपने शिक्षक को बुला सकता हूँ

मैंने सब कुछ जीत लिया है, मैं सब कुछ जानता हूँ, मैं सब कुछ से विरक्त हूँ, मैंने सब कुछ त्याग दिया है; मैंने व्यथा को मिटाकर नैतिक दोषों से मुक्ति पा ली है (अर्थात, मैंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है)। मैंने स्वयं ही चारों आर्य सत्यों को समझ लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 353)

सब्बाभिभू : बुद्ध ने स्वयं को सब्बाभिभू बताया । इस अभिव्यक्ति का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने तीनों लोकों के सभी धम्मों पर विजय प्राप्त कर ली हो।

सब्बा-विदु : चेतना के चार स्तरों के सभी धम्मों को समझ लिया गया है। चार स्तर हैं: काम लोक (कामुकता का क्षेत्र), रूप लोक (ललित सामग्री क्षेत्र), अरूप लोक (निराकार क्षेत्र) और लोकुत्तारा (विश्व-पारगमन क्षेत्र)।

सब्बेसु धम्मेसु अनुपालित्टो : तीनों लोकों के समस्त धर्मों के संबंध में लालसाओं और गलत विचारों से अछूता।

सब्बांजहो : तीनों लोकों के सभी धर्मों का त्याग करके।

taṇhakkhaye vimutto : सभी इच्छाओं से परे जाकर मुक्त होना।

sayaṃ abhiññāya : मैंने स्वयं ही उच्च ज्ञान को प्राप्त कर लिया है।

इन सब बातों को कहने के बाद, बुद्ध पूछते हैं, "यदि मैंने ये सब कुछ पूरी तरह से स्वयं के प्रयासों से प्राप्त किया है, तो मैं किसे अपना गुरु ( काम उद्दिसेय्यं ) कहूँ?" इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई नहीं है जिसे उनका गुरु कहा जा सके।

चूंकि बुद्ध का कोई गुरु नहीं था, बल्कि उन्होंने स्वयं ही ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिए उन्हें शुरू में इस बात पर संदेह था कि क्या अन्य लोग उनके ज्ञान को समझ पाएंगे। यह बात निम्नलिखित में निहित है:

यह वह चीज है जिसे मैंने अनेक परिश्रमों के बाद प्राप्त किया है।
बस, मुझे इसे क्यों बताना चाहिए?
वासना और घृणा से ग्रस्त लोगों द्वारा,
इस सच्चाई को समझा नहीं जा सकेगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 354

———————————————————————

(धम्मपद 353) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 354 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 355)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 354 - सक्कपन्हा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
सब्बदानम धम्मदानम जिनति
sabbarasam dhammaraso jinati
sabbaratim dhammarati jinati
तंहक्खायो सब्बादुक्खं जिनाति।

---

श्लोक 354 : धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों (संसार दुःख) पर विजय प्राप्त कराता है।

---

सक्का (शक्र या इंद्र, देवदूतों के राजा) द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (354) का उच्चारण किया, जो कि देवों के राजा सक्का द्वारा उठाए गए चार प्रश्नों के संदर्भ में था।
एक बार तावतिंसा लोक में देवों (देवदूतों) की एक सभा में चार प्रश्न उठे, लेकिन देव (देवदूत) उनके सही उत्तर नहीं दे पाए। अंततः, सक्का इन देव (देवदूतों) को जेतवन मठ में बुद्ध के पास ले गए। उनकी कठिनाई समझाने के बाद, सक्का ने निम्नलिखित चार प्रश्न प्रस्तुत किए:

(क) उपहारों में से सर्वश्रेष्ठ उपहार कौन सा है?
(ख) स्वादों में से सबसे अच्छा कौन सा है?
(ग) आनंदों में से सर्वश्रेष्ठ कौन सा है?
(घ) लालसा का उन्मूलन सबसे उत्तम क्यों कहा जाता है?

इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे सक्का, धम्म सभी उपहारों में श्रेष्ठ है, सभी स्वादों में सर्वश्रेष्ठ है और सभी आनंदों में सर्वश्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण ही अर्हतत्व की प्राप्ति की ओर ले जाता है और अतः यह सभी विजयों में सबसे महान है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 354 : धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों (संसार दुःख) पर विजय प्राप्त कराता है।

---

प्रवचन के अंत में, सक्का ने बुद्ध से कहा, “हे पूज्यवर, यदि धर्म का दान सभी दानों से श्रेष्ठ है, तो धर्म के दान करते समय हमें पुण्य का हिस्सा क्यों नहीं दिया जाता? हे पूज्यवर! मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब से हमें अच्छे कर्मों के पुण्य में हिस्सा दिया जाए।” तब बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एकत्रित होने के लिए कहा और उन्हें अपने सभी अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँटने का उपदेश दिया।
तब से यह एक प्रथा बन गई है कि जब भी कोई अच्छा कर्म किया जाता है, तो इकत्तीस लोकों (भूमियों) के सभी प्राणियों को आमंत्रित किया जाता है ताकि वे पुण्य साझा कर सकें।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सक्का द्वारा उठाए गए प्रश्नों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने देवों के राजा सक्का द्वारा पूछे गए चार प्रश्नों के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार तावतिंस लोक में देवताओं की एक सभा में चार प्रश्न उठाए गए, लेकिन देवता उनके सही उत्तर नहीं दे पाए। अंततः, सक्का इन देवताओं को जेतवन मठ में बुद्ध के पास ले गए।
अपनी समस्या समझाने के बाद, सक्का ने निम्नलिखित चार प्रश्न प्रस्तुत किए:
उपहारों में से सबसे अच्छा कौन सा है?

स्वादों में सबसे अच्छा कौन सा है?
इन सब आनंदों में से सर्वश्रेष्ठ कौन सा है?
लालसा का उन्मूलन सबसे उत्तम क्यों कहा जाता है?
इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे सक्का, धम्म सभी उपहारों में श्रेष्ठ है, सभी स्वादों में सर्वश्रेष्ठ है और सभी आनंदों में सर्वश्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण अर्हतत्व की प्राप्ति की ओर ले जाता है और इसलिए यह सभी विजयों में सबसे महान है।"
प्रवचन के अंत में, सक्का ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यदि धर्म का दान सभी दानों से श्रेष्ठ है, तो धर्म के दान करते समय हमें पुण्य का हिस्सा क्यों नहीं दिया जाता? मैं प्रार्थना करता हूँ कि अब से हमें अच्छे कर्मों के पुण्य में हिस्सा दिया जाए।" तब बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एकत्रित होने के लिए कहा और उन्हें अपने सभी अच्छे कर्मों का पुण्य सभी प्राणियों के साथ बाँटने का आग्रह किया।
तब से यह एक प्रथा बन गई है कि जब भी कोई अच्छा कर्म किया जाता है, तो इकत्तीस लोकों ( भूमियों ) के सभी प्राणियों को आमंत्रित किया जाता है ताकि वे पुण्य साझा कर सकें।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 354)
धम्मदानं सब्बदानं जिनाति सब्बं रसं जिनाति धम्मरति
सब्बं रतिं जिनाति धम्मरसो तनहक्खयो सब्बादुक्खं जिनाति
धम्मदानं [ धम्मदान ]: धम्म का उपहार; सब्बादानं [ सब्बादान ]: सभी उपहार; जिनाति : जीतता है; धम्मरति : धम्म का स्वाद; सब्बं रसं [ रस ]: सभी स्वादों पर विजय प्राप्त होती है; जिनाति : जीतता है; धम्मरति : धम्म का प्रेम; सब्बं रतिं [ रति ]: सभी प्रेम जीत जाते हैं; तंहक्खायो [ तंहकखाय ]: जिसने तृष्णा से छुटकारा पा लिया है; सब्बादुक्खाँ [ सब्बादुक्खा ]: सभी कष्ट; जिनाति : जीतता है.
धम्म का वरदान सभी वरदानों से श्रेष्ठ है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों से श्रेष्ठ है; धम्म में आनंद सभी आनंदों से श्रेष्ठ है। भोग-विलास का निवारण (अर्थात् अर्हतत्व की प्राप्ति) सभी दुखों ( संसार दुःख ) पर विजय प्राप्त कराता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 354)
सब्बादानं धम्मदानं : धम्म का दान सभी दानों पर विजय प्राप्त करता है। बुद्ध ने इस कथन की व्याख्या करते हुए आगे कहा कि बुद्ध, धम्म और संघ को दिए गए सभी महान और प्रभावशाली भौतिक दान धम्म के दान के कारण ही संभव हो पाए। धम्म के दान ने दानदाताओं को अन्य भौतिक दान देने के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि महान संतों ने भी अपनी उच्च आध्यात्मिक विजय पूरी तरह से धम्म के दान के कारण ही प्राप्त की।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 355

---

(धम्मपद 354) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 355 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 356, 357, 358 और 359)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 355 - अपुत्तकसेट्ठि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
हनंती भोग दुम्मेधम
no ca paragavesino
भोगतनहया दुम्मेधो
hanti anneva attanam.

---

श्लोक 355 : धन मूर्खों का नाश करता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।

---

एक निःसंतान धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (355) का उच्चारण एक निःसंतान धनी व्यक्ति के संदर्भ में किया।

एक बार कोसल के राजा पसेनादि (प्रसेनजित) बुद्ध को प्रणाम करने आए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्हें देर हो गई है क्योंकि उसी दिन सुबह सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, इसलिए उन्हें उस व्यक्ति की सारी संपत्ति जब्त करनी पड़ी। फिर उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में बताया, जो बहुत धनी होते हुए भी अत्यंत कंजूस था। अपने जीवनकाल में उसने दान में कुछ भी नहीं दिया। वह अपने ऊपर भी पैसा खर्च करने से कतराता था, इसलिए वह बहुत कम खाता था और केवल सस्ते, मोटे कपड़े पहनता था। यह सुनकर बुद्ध ने राजा और उपस्थित लोगों को उस व्यक्ति के पिछले जन्म के बारे में बताया। उस जन्म में भी वह धनी था।

एक दिन जब एक पच्चेकबुद्ध उनके घर भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को कुछ दान देने को कहा। उनकी पत्नी सोचती थी कि उनके पति उन्हें किसी को कुछ भी दान देने की अनुमति बहुत कम ही देते हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षापात्र में उत्तम भोजन भर दिया। धनी व्यक्ति को घर लौटते समय फिर से पच्चेकबुद्ध मिले और उन्होंने भिक्षापात्र पर नजर डाली। अपनी पत्नी द्वारा पर्याप्त मात्रा में उत्तम भोजन दान करते देख उन्होंने सोचा, "अरे, इस भिक्षु को तो अच्छे भोजन के बाद ही अच्छी नींद आएगी। अगर मेरे नौकरों को भी इतना अच्छा भोजन मिलता तो बेहतर होता; कम से कम वे मेरी बेहतर सेवा तो करते।" दूसरे शब्दों में, उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को भोजन दान करने को क्यों कहा। इसी व्यक्ति का एक भाई भी था जो धनी था। उनके भाई का एक ही पुत्र था। अपने भाई की संपत्ति के लालच में उन्होंने अपने युवा भतीजे की हत्या कर दी थी और इस प्रकार अपने भाई की मृत्यु के बाद उनकी संपत्ति पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया था।

क्योंकि उस व्यक्ति ने पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी थी, इसलिए वह इस जन्म में धनी हो गया; पच्चेकबुद्ध को भिक्षा देने के पश्चाताप के कारण वह अपने ऊपर भी कुछ खर्च नहीं करना चाहता था। अपने भाई के धन के लिए अपने भतीजे की हत्या करने के कारण उसे सात जन्मों तक निरयण/नरक में कष्ट भोगना पड़ा। उसके बुरे कर्मों का फल भोगने के बाद वह मनुष्यलोक में जन्मा, परन्तु यहाँ भी उसे कोई पुण्य प्राप्त नहीं हुआ। तब राजा ने कहा, “हे पूज्यवर! यद्यपि वह स्वयं बुद्ध के जीवनकाल में यहाँ रहा, फिर भी उसने बुद्ध या उनके शिष्यों को कुछ भी दान नहीं दिया। वास्तव में, उसने एक बहुत अच्छा अवसर खो दिया; वह बहुत मूर्ख था।”

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 355 : धन मूर्खों का नाश करता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक निःसंतान धनी व्यक्ति की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक निःसंतान धनी व्यक्ति के संदर्भ में यह श्लोक कहा था। एक बार कोसल के राजा पसेनादि बुद्ध को प्रणाम करने आए। उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्हें देर हो गई है क्योंकि उसी दिन सुबह सावत्थी में एक धनी व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी और उनकी कोई संतान नहीं थी, इसलिए उन्हें उस व्यक्ति की सारी संपत्ति जब्त करनी पड़ी। फिर उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में बताया जो बहुत धनी होते हुए भी अत्यंत कंजूस था। अपने जीवनकाल में उन्होंने दान में कुछ भी नहीं दिया। वे अपने ऊपर भी पैसा खर्च करने से कतराते थे और इसलिए बहुत कम खाते थे और केवल सस्ते, मोटे कपड़े पहनते थे। यह सुनकर बुद्ध ने राजा और उपस्थित लोगों को उस व्यक्ति के पिछले जन्म के बारे में बताया। उस जन्म में भी वह धनी थे।

एक दिन जब एक पच्चेकबुद्ध (सन्यासी बुद्ध) उनके घर भिक्षा मांगने आए, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को कुछ दान देने को कहा । उनकी पत्नी सोचती थी कि उनके पति उन्हें किसी को कुछ भी दान देने की अनुमति बहुत कम ही देते हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षापात्र में उत्तम भोजन भर दिया। धनी व्यक्ति को घर लौटते समय फिर से पच्चेकबुद्ध मिले और उन्होंने भिक्षापात्र पर नजर डाली। अपनी पत्नी द्वारा पर्याप्त मात्रा में उत्तम भोजन दान करते देख उन्होंने सोचा, “अरे, इस भिक्षु को तो अच्छे भोजन के बाद ही अच्छी नींद आती होगी। अगर मेरे नौकरों को भी ऐसा ही अच्छा भोजन मिलता तो बेहतर होता; कम से कम वे मेरी बेहतर सेवा तो करते।” दूसरे शब्दों में, उन्हें इस बात का पछतावा हुआ कि उन्होंने अपनी पत्नी से पच्चेकबुद्ध को भोजन दान करने को क्यों कहा । इसी व्यक्ति का

एक भाई भी था जो धनी था। उसके भाई का एक ही पुत्र था। अपने भाई की संपत्ति के लालच में उसने अपने युवा भतीजे की हत्या कर दी थी और इस प्रकार अपने भाई की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर गलत तरीके से कब्जा कर लिया था।
क्योंकि उस व्यक्ति ने पच्चेकबुद्ध को भिक्षा दी थी , इसलिए वह इस जन्म में धनी हो गया; क्योंकि उसे पच्चेकबुद्ध को भिक्षा देने का पछतावा हुआ , इसलिए वह अपने ऊपर भी कुछ खर्च नहीं करना चाहता था। क्योंकि उसने अपने भाई के धन के लिए अपने भतीजे की हत्या कर दी थी, इसलिए उसे सात जन्मों तक नरक भोगना पड़ा। उसके बुरे कर्मों का फल भोगने के बाद वह मनुष्यलोक में जन्मा, परन्तु यहाँ भी उसे कोई पुण्य प्राप्त नहीं हुआ। तब राजा ने कहा, "आदरणीय! यद्यपि वह स्वयं बुद्ध के जीवनकाल में यहाँ रहा, फिर भी उसने बुद्ध या उनके शिष्यों को कुछ भी दान नहीं दिया। वास्तव में, उसने एक बहुत अच्छा अवसर खो दिया; वह बहुत मूर्ख था।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 355)
भोगा दुमेधं हनन्ति परागवेसिनो नो वे
दुम्मेधो भोगतन्हाय अन्ने इव अत्तनं हन्ति
भोग : धन; दममेधं [ दुमेध ]: अज्ञानी; हनन्ति : नष्ट कर देता है; परागवेसिनो [ परागवेसिना ]: जो लोग आगे के किनारे की तलाश करते हैं (सच्चाई की तलाश करने वाले निब्बान की खोज करते हैं); नो वी : नष्ट मत करो; दुमेधो [ दुमेधा ]: अज्ञानी; भोगतानहाय : धन के लालच के कारण; अन्ने इव : मानो (नष्ट कर रहा हो) दूसरों को; अत्ताणं [ अत्ताना ]: स्वयं का स्वंय; हन्ति : नष्ट कर देता है
धन मूर्खों का नाश कर देता है; परन्तु जो निर्वाण की प्राप्ति चाहते हैं, उनका नाश नहीं कर सकता। धन की लालसा से मूर्ख स्वयं का नाश करता है, जैसे वह दूसरों का नाश करता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 355)
पच्चेकबुद्ध : स्वतंत्र रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति, या पृथक रूप से ( पच्चेक ) प्रबुद्ध व्यक्ति (मौन या निजी बुद्ध के रूप में अनुवाद बहुत उपयुक्त नहीं हैं)। इस श्लोक की उत्पत्ति की कथा पच्चेकबुद्धों से संबंधित है । पच्चेकबुद्ध उस अरहत के लिए एक शब्द है जिसने दूसरों से बुद्ध के उपदेश सुने बिना निर्वाण प्राप्त किया है। वह किसी भी गुरु से स्वतंत्र होकर, अपने स्वयं के प्रयास से चार आर्य सत्यों को व्यक्तिगत रूप से ( पच्चेक ) समझता है। हालांकि, उनमें दूसरों को प्रभावी ढंग से उपदेश देने की क्षमता नहीं होती है, और इसलिए वे पूर्ण या सार्वभौमिक बुद्ध ( सम्मा-संबुद्ध ) की तरह देवताओं और मनुष्यों के गुरु नहीं बनते हैं। परंपरा के अनुसार, वे पूर्ण बुद्ध के युग में उत्पन्न नहीं होते हैं; बल्कि कई युगों के प्रयास के बाद पूर्णता प्राप्त करने के लिए, उन्हें पूर्ण बुद्ध के समक्ष यह आकांक्षा व्यक्त करनी पड़ती है।
प्रामाणिक संदर्भ कम हैं: उन्हें स्तूप ( दागोबा ) के योग्य कहा जाता है; खजाना-पत्थर सूत्र ( निदिखंड सूत्र ) में पच्चेक-बोधि का उल्लेख है ।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 356-359

---

(धम्मपद 355) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 356, 357, 358 और 359 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 360 और 361)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद छंद 356, 357, 358 और 359 - अंकुरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Tinadosani khettani
ragadosa ayam paja
tasma hi vitaragesu

दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
dosadosa ayam paja
तस्मा हि विताडोसेसु
दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
मोहदोसा अयम पजा
tasma hi vitamohesu
दिन्नम होती महाप्पलम.
Tinadosani khettani
icchadosa ayam paja
tasma hi vigaticchesu
दिन्नम होती महाप्पलम.

---

श्लोक 356 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; कामवासना सभी प्राणियों को बिगाड़ देती है। इसलिए, कामवासना से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

---

श्लोक 357 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; द्वेष सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, द्वेष से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

---

श्लोक 358 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; अज्ञान सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, अज्ञान से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

---

श्लोक 359 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; लोभ सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, लोभ से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

---

देव (देवदूत) अंकुरा की कहानी

तावतिंसा देव (देवदूत) लोक की यात्रा के दौरान, बुद्ध ने अंकुरा नामक देव (देवदूत) के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (356) से (359) तक कहे।

बुद्ध ने अपनी माता संतूसीता को अभिधम्म का उपदेश देने के लिए तावतिंसा देवलोक का दौरा किया। उस समय तावतिंसा में इंदका नामक एक देवलोक निवास कर रहे थे। अपने अंतिम जन्म में इंदका ने थेरा अनुराद्ध को थोड़ा सा भिक्षादान किया था। बुद्ध के उपदेश काल में थेरा को यह दान देने के कारण उन्हें भरपूर प्रतिफल मिला। इस प्रकार, अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म तावतिंसा लोक में हुआ और उन्हें देवलोक की सभी सुख-सुविधाओं का भरपूर वरदान प्राप्त हुआ। उस समय तावतिंसा में अंकुरा नामक एक अन्य देवलोक भी निवास कर रहे थे, जिन्होंने बहुत दान दिया था; वास्तव में, इंदका से कई गुना अधिक। लेकिन उनका दान किसी भी बुद्ध के उपदेश काल के बाहर हुआ था। अत:, अपने उदार और भव्य दान के बावजूद, अंकुर को देव (देवदूत) के जीवन के लाभ इंदका की तुलना में बहुत कम मिल रहे थे, जिसने बहुत कम दान दिया था। उस समय बुद्ध तावतिंसा में थे, अंकुर ने उनसे लाभों में इस असमानता का कारण पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे देव! दान देते समय आपको यह चुनना चाहिए कि आप किसे दान दे रहे हैं, क्योंकि दान बीज के समान है। उपजाऊ मिट्टी में बोए गए बीज मजबूत, स्वस्थ पौधे या वृक्ष बनते हैं और खूब फल देते हैं; परन्तु आपने अपना बीज बंजर मिट्टी में बोया है, इसलिए आपको कम फल मिलेगा।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 356 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; कामवासना सभी प्राणियों को बिगाड़ देती है। इसलिए, कामवासना से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

---

श्लोक 357 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; द्वेष सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, द्वेष से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

श्लोक 358 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; अज्ञान सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, अज्ञान से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

श्लोक 359 : खरपतवार खेतों को नुकसान पहुंचाते हैं; लोभ सभी प्राणियों को बिगाड़ देता है। इसलिए, लोभ से मुक्त लोगों को दान देना बहुत लाभदायी होता है।

———————————————————————

अध्याय चौबीस का अंत: लालसा

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

बड़ा और छोटा उपहार

कहा जाता है कि एक बार जब पूज्य अनुराद्ध भिक्षा मांगने के लिए गांव में आए, तो इंदका नामक एक देवता ने उन्हें अपने भोजन का एक चम्मच दिया। यह उनके पिछले जन्म का पुण्य कर्म था। यद्यपि अंकुर ने दस हजार वर्षों तक बारह मील लंबी अग्नि-स्तंभों की एक पंक्ति स्थापित की थी और प्रचुर मात्रा में भिक्षा दी थी, फिर भी इंदका को उससे कहीं अधिक प्रतिफल प्राप्त हुआ; इसलिए इंदका ने ऐसा कहा। जब अंकुर ने ऐसा कहा, तो बुद्ध ने कहा, "अंकुरा, भिक्षा देते समय विवेक का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे में भिक्षा देना, अच्छी मिट्टी में बोए गए बीज के समान, भरपूर फल देता है। परन्तु तुमने ऐसा नहीं किया; इसलिए तुम्हारी भिक्षा से कोई बड़ा फल नहीं मिला।"

और इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "भिक्षा हमेशा विवेक से देनी चाहिए। इस प्रकार दी गई भिक्षा भरपूर फल देती है।"

विवेकपूर्ण दान देना सुखी व्यक्ति द्वारा प्रशंसनीय माना जाता है। संसार में दान के योग्य प्राणियों को दिया गया दान, अच्छी भूमि में बोए गए बीजों के समान भरपूर फल देता है।

इस प्रकार कहने के बाद, उन्होंने धम्म की व्याख्या की।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 356)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा रागदोसा

तस्मा वीतरागेसु दिनं महप्फलं होति

खेताणि : खेतों के लिए; तिणदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए; रागदोसा : वासना अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; वीतरगेसु : वासनाहीन लोगों के लिए; दिन्नां [ दिन्ना ]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : महान परिणाम देगा

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए वासना अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उन लोगों को दी जाने वाली शक्ति से ही संभव है जो वासना रहित हैं।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 357)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा दोसादोसानि

तस्मा वितादोसा हि दिनं महप्फलं होति

खेतानि : खेतों के लिए; तिनदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए; दोसादोसानि : दुर्भावना अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; वीतदोसा : जिनके मन में दुर्भावना नहीं है; दिन्नां [ दिन्ना ]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : उससे महान परिणाम प्राप्त होंगे

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए दुर्भावना अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उन्हीं लोगों को दी जाने वाली सहायता से संभव है जो दुर्भावना से मुक्त हों।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 358)

खेतानि तिनादोसानि अयं पजा मोहदोसा

तस्मा हि वितामोहेसु दिनं महप्फलं होति

खेतानि : खेतों के लिए; तिनदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों; मोहदोसा : का अभिशाप माया है; तस्मा : इसलिए; वीतमोहेषु : मायाहीन लोगों के लिए; दिन्नां [ दिन्ना ]: जो दिया गया है; महाप्पलं होति : महान परिणाम देगा

खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए भ्रम अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त होती है जो भ्रम से मुक्त हो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 359)

खेतानि तिनदोसानि अयं पजा इच्छादोसा
तस्माहि विगत्चेसु दिन्नं महप्फलं होति
खेताणि : खेतों के लिए; तिणदोसानि : घास अभिशाप है; अयं पजा : इन जनसमूहों के लिए ; इच्छादोसा : लोभ अभिशाप है; तस्मा : इसलिए; विगत्चेसु : लोभ रहित लोगों के लिए; दिन्नां [ दिन्ना ]: जो दिया जाता है; महाप्पलं होति : उससे महान परिणाम प्राप्त होंगे
खेतों के लिए खरपतवार अभिशाप हैं। आम जनता के लिए लालच अभिशाप है। इसलिए, उच्च उपज केवल उसी व्यक्ति को दी जाती है जो लालच से मुक्त हो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 356-359)

इन आयतों में कहा गया है कि पुण्य के संदर्भ में उच्च उपज केवल उन्हीं लोगों को दी जाने वाली चीजों के माध्यम से संभव है जो वासना रहित हैं, जो द्वेष रहित हैं, जो भ्रम रहित हैं और जो लोभ से मुक्त हैं।

ये सभी विशेषताएँ सिद्ध पुरुषों — अरहतों और इस सिद्धि की ओर अग्रसर पुरुषों — की पहचान हैं। इस स्तर के संतों को आर्य-पुग्गला (महान व्यक्ति) भी कहा जाता है। संस्कृत में अरहत का अर्थ है परिपूर्ण, योग्य। यह शब्द अरहत , जो विशेष रूप से बुद्ध और उनके सिद्ध शिष्यों के लिए प्रयोग किया जाता था, सर्वप्रथम स्वयं बुद्ध के लिए प्रयोग किया गया था।

अरहत वह है जिसके सभी दोष ( आसव ) नष्ट हो चुके हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जो करना था वह कर लिया है, बोझ उतार दिया है, चरणबद्ध तरीके से अरहतत्व प्राप्त किया है, जो बनने के बंधन को पूर्णतः नष्ट कर चुका है, जो सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त है। क्योंकि उसकी इंद्रियाँ नष्ट नहीं हुई हैं, वह सुखद और अप्रिय, सुख और दुख दोनों का अनुभव करता है। पाँचों तत्व बने रहते हैं। काम, घृणा और मोह का उसका नाश होना ही निर्वाण तत्व कहलाता है, जिसमें आधार शेष रहता है ( सौपादिसेष निर्वाणधातु )।

बुद्ध ने कहा:

“और हे भिक्षुओं, वह निर्वाण तत्व कौन सा है जिसका कोई आधार शेष नहीं रहता ( अनुपादिसेष निर्वाणधातु )?” “यहाँ, भिक्षु वह है जिसके सारे दोष नष्ट हो गए हैं, जिसने जीवन जी लिया है, जो करना था वह कर लिया है, बोझ उतार दिया है, चरणबद्ध तरीके से अर्हतत्व प्राप्त किया है, बनने के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, जो सही ज्ञान से मुक्त है। उसकी सभी भावनाएँ अनुत्तेजित और प्रसन्न न होने के कारण ( अनभिनन्दितानि ) यहीं और अभी शांत हो जाएँगी: हे भिक्षुओं, यही वह निर्वाण तत्व कहलाता है जिसका कोई आधार शेष नहीं रहता।”

“हे भिक्षुओं, ये दो निर्वाण तत्व हैं।” बुद्ध ने इस तथ्य की घोषणा की:

अतः यह कहा जाता है:

निर्वाण के इन दो तत्वों की व्याख्या की गई है।
उस प्रत्यक्षदर्शी, स्थिर और अनासक्त ईश्वर की कसम:
जब एक तत्व जिसका आधार इस जीवन से संबंधित है
जो चीज विकास की ओर ले जाती है, वह नष्ट हो जाती है;
जब कोई व्यक्ति उस आधार के बिना प्रकट होता है
परलोक में सभी प्रक्रियाएं समाप्त हो जाती हैं।
जो लोग इस अनुकूलित अवस्था को जानते हैं, उनके मन
जो कुछ भी बनने की ओर ले जाता है, उसे नष्ट करके ही ये चीजें प्राप्त होती हैं:
वे धम्म के सार को समझते हैं और शांति में रहते हैं।
आनंदित होकर, वे दृढ़ता से सभी प्रकार के आडंबरों का त्याग कर देते हैं।

किसी भी प्राणी में पाँच तत्व होते हैं, अर्थात् मन और पदार्थ। ये निरंतर बदलते रहते हैं और इसलिए क्षणभंगुर होते हैं। इनका जन्म होता है और ये नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि जो कुछ भी उत्पन्न होने की प्रकृति का है, वही सब कुछ नष्ट होने की प्रकृति का है।

मनुष्य में वासना, घृणा और भ्रम के कारण बार-बार जन्म लेने की नौबत आती है, क्योंकि कहा जाता है: वासना, घृणा और भ्रम का त्याग किए बिना मनुष्य जन्म-मृत्यु से मुक्त नहीं हो सकता...

काम, घृणा और मोह को जड़ से उखाड़ फेंकने से व्यक्ति जीवित रहते हुए ही अरहतत्व, अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसे शेष आधार के साथ निर्वाण तत्व ( सौपादिसेष निर्वाणधातु ) कहा जाता है। अरहत के पाँच स्कंध या शेष आधार उसके अनंत अतीत के काम, घृणा और मोह से ग्रस्त होते हैं। चूंकि वह अभी भी जीवित है, इसलिए उसके स्कंध कार्य करते हैं, और इसलिए वह इंद्रिय विषयों के संपर्क से उत्पन्न होने वाले सुखद और दुखद दोनों प्रकार के भावों का अनुभव करता है। लेकिन, चूंकि वह आसक्ति, भेद और आत्मबोध से मुक्त है, इसलिए वह इन भावों से विचलित नहीं होता।

अब, जब कोई अरहत देहांतवास करता है, तो उसके समुच्चय, उसके शेष आधार, कार्य करना बंद कर देते हैं; वे मृत्यु के समय विघटित हो जाते हैं; उसकी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, और कामवासना, घृणा और भ्रम के उन्मूलन के कारण, उसका पुनर्जन्म नहीं

होता है, और स्वाभाविक रूप से, फिर भावनाओं का कोई अस्तित्व नहीं रहता है; और इसलिए कहा जाता है: उसकी भावनाएँ शीतल हो जाएँगी ( सीतिभाविसन्ति )।

उदाना में इस विचार को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

शरीर टूट गया, चेतना समाप्त हो गई।

सभी भावनाएँ शांत हो गईं, सभी संरचनाएँ स्थिर हो गईं।

चेतना लुप्त हो गई।

इसे आधारहीन निर्वाण तत्व ( अनुपादिसेसा निर्वाणधातु ) के रूप में जाना जाता है।

जब कोई व्यक्ति काम, घृणा और मोह, इन तीनों गुणों को पूरी तरह से नष्ट कर देता है, जो जन्म का कारण बनते हैं, तो वह संसार के बंधनों से , बार-बार जन्म लेने के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह शब्द के पूर्ण अर्थ में स्वतंत्र हो जाता है। उसमें ऐसा कोई गुण नहीं रह जाता जो उसे पुनर्जन्म लेने के लिए प्रेरित करे, क्योंकि उसने निर्वाण, यानी निरंतर जन्म और जन्म की प्रक्रिया के पूर्ण अंत ( भव-निरोध ) को प्राप्त कर लिया है; वह सांसारिक गतिविधियों से ऊपर उठकर संसार में रहते हुए भी एक उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। उसके कर्म निरर्थक होते हैं, कर्मिक रूप से अप्रभावी होते हैं, क्योंकि वे इन तीनों गुणों, मानसिक विकारों ( किलेसा ) से प्रेरित नहीं होते। वह सभी बुराइयों, हृदय के सभी विकारों से मुक्त हो जाता है। उसमें कोई भी अंतर्निहित प्रवृत्ति ( अनुसय ) नहीं होती; वह अच्छे और बुरे से परे होता है, उसने अच्छे और बुरे दोनों का त्याग कर दिया होता है; वह अतीत, भविष्य और वर्तमान से भी चिंतित नहीं होता। वह संसार में किसी भी चीज से आसक्त नहीं है, इसलिए वह विचलित नहीं होता। जीवन के उतार-चढ़ाव से वह विचलित नहीं होता। सांसारिक परिस्थितियों से उसका मन अविचलित रहता है; वह दुःख रहित, निष्कलंक और निश्चिंत ( अशोकं , विरजं , खेमन ) है।

इस प्रकार, निर्वाण एक ऐसी अवस्था है जिसे इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है ( दित्तधम्मनिब्बान )। विचारक, जिज्ञासु मन को इस अवस्था को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी, क्योंकि यह केवल अरहत के लिए ही परिकल्पित की जा सकती है, किसी अन्य प्राणी के लिए नहीं, न तो इस संसार में और न ही स्वर्गिक भोगों के लोकों में।

यद्यपि सजीव प्राणी जीवन की असंतोषजनक प्रकृति का अनुभव करता है, और प्रत्यक्ष रूप से जानता है कि दुख क्या है, दोष क्या हैं और लालसा क्या है, फिर भी वह दोषों के पूर्ण निवारण को नहीं जानता, क्योंकि उसने कभी इसका अनुभव नहीं किया है। यदि वह ऐसा कर ले, तो आत्म-साक्षात्कार के माध्यम से वह जान जाएगा कि दोषों से मुक्त होना क्या है, निर्वाण या वास्तविकता क्या है, और सच्चा सुख क्या है। अरहत निर्वाण का वर्णन अपने अनुभव से करते हैं, न कि सुनी-सुनाई बातों से, परन्तु अरहत अपने स्वयं के अनुभव से दूसरों को निर्वाण समझा नहीं सकते। जिसने अपनी प्यास बुझा ली है, वह अपने द्वारा प्राप्त मुक्ति को जानता है, परन्तु वह इस मुक्ति को दूसरों को समझा नहीं सकता। चाहे वह इसके बारे में कितना भी बोले, दूसरे इसका अनुभव नहीं कर पाएंगे; क्योंकि यह स्वयं का अनुभव है, स्वयं का ज्ञान है। यह ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत होता है। प्रत्येक को स्वयं खाना-पीना और सोना चाहिए, और अपने रोगों का उपचार स्वयं करना चाहिए; ये तो केवल दैनिक आवश्यकताएं हैं, लेकिन जब बात मनुष्य के आंतरिक विकास और मन की मुक्ति की हो तो इनकी आवश्यकता कितनी अधिक बढ़ जाती है।

जिस बात को समझना कठिन है, वह है निर्वाण तत्व का बिना किसी आधार के शेष रहना ( अनुपादिसेसा-निर्वाण ), दूसरे शब्दों में, अरहत का परिनिर्वाण या अंतिम निधन।

उदाना का एक अक्सर उद्धृत अंश कहता है: भिक्षुओं, अजन्मा, अनादि, अनिर्मित और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान है। यदि अजन्मा, अनादि, अनादि और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान न होती, तो जन्मा, निर्मित, सृजित और सप्रतिबंधित सत्ता के लिए कोई मुक्ति मार्ग न होता। क्योंकि अजन्मा, अनादि, अनादि और अप्रतिबंधित सत्ता विद्यमान है, इसलिए जन्मा, निर्मित, सृजित और सप्रतिबंधित सत्ता के लिए मुक्ति मार्ग है।

यहां न तो ठोसपन (विस्तार), न तरलता (संलग्नता), न ऊष्मा और न गति का तत्व है, न अनंत अंतरिक्ष का क्षेत्र, न अनंत चेतना का क्षेत्र, न शून्यता का क्षेत्र, न बोध का क्षेत्र और न अबोध का क्षेत्र, न यह संसार और न दूसरा संसार, न सूर्य और न चंद्रमा। यहां न कोई आना है, न कोई जाना है, न कोई अस्तित्व है, न मृत्यु और न जन्म। बिना सहारे के, बिना अस्तित्व के, बिना इंद्रिय बोध के, यही है दुख का अंत ।

अरहतों को आर्य पुग्गला या आर्य (कुलीन, कुलीन व्यक्ति) के रूप में भी वर्णित किया जाता है ।

आठ आर्य पुग्गला वे हैं जिन्होंने पवित्रता के आठ चरणों में से एक को प्राप्त कर लिया है, अर्थात् चार अलौकिक मार्ग ( मग्गा ) और इन मार्गों के चार अलौकिक फल ( फल )।

चार जोड़े हैं:

वह व्यक्ति जो धारा-जीतने का मार्ग जान लेता है ( सोटापत्ति-मग्ग );

वह व्यक्ति जो धारा-जीतने की सफलता को प्राप्त करता है ( सोटापत्ति फल );

जो एक बार वापसी के मार्ग को जान लेता है ( सकदागामी-मग्ग );
जो एक बार वापसी ( सकदागामी-फल ) के फल को प्राप्त कर लेता है;
अनागामी मार्ग को जानने वाला ( अनगामी-मग्ग );
जो अनागमी-फल (गैर-वापसी ) के फल को प्राप्त कर लेता है;
जो पवित्रता के मार्ग ( अरहत्त-मग्गा ) को जान लेता है और
जो पवित्रता के फल को प्राप्त कर लेता है ( अरहत्त-फला )।
संक्षेप में, चार महान व्यक्ति हैं ( अरीय-पुग्गला ); धारा-विजेता ( सोतापन्न ); एक बार लौटने वाला ( सकदागामी ); न लौटने वाला ( अनागामी ); पवित्र ( अरहत )।
अभिधम्म के अनुसार, अलौकिक मार्ग, या केवल मार्ग ( मग्ग ), पवित्रता के चार चरणों में से एक में प्रवेश करने के क्षण का पदनाम है - निर्वाण इसका लक्ष्य है - जो अस्तित्व की अनित्यता, दुख और निराकारता में अंतर्ज्ञानात्मक अंतर्दृष्टि ( विपस्सना ) द्वारा उत्पन्न होता है, जो चमकता है और व्यक्ति के जीवन और स्वभाव को हमेशा के लिए बदल देता है।
फल प्राप्ति ( फला ) से तात्पर्य चेतना के उन क्षणों से है, जो मार्ग के परिणाम स्वरूप तुरंत बाद आते हैं, और जो कुछ परिस्थितियों में, जीवनकाल के दौरान अनगिनत बार दोहराए जा सकते हैं।
(1) धारा-प्राप्ति ( सोतापत्ति-मग्ग ) के मार्ग से व्यक्ति उन तीन बंधनों ( संयोजन ) से मुक्त हो जाता है (जबकि फल प्राप्ति में व्यक्ति मुक्त हो जाता है) जो प्राणियों को इंद्रिय जगत में अस्तित्व से बांधते हैं, अर्थात्: (i) व्यक्तित्व-विश्वास ( सक्काया-दिट्ठी ), (ii) संशयपूर्ण संदेह ( विसीकिच्चा ), (iii) केवल नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति ( सिलब्बतपरमासा )।
(2) एक बार लौटने के मार्ग ( सकदागामी-मग्ग ) से व्यक्ति लगभग चौथे और पाँचवें बंधनों से मुक्त हो जाता है, अर्थात्: (iv) कामुक लालसा ( काम-च्छन्द = काम-राग ), (v) द्वेष ( व्यापाद = दोष )।
(3) अनागामी-मग्ग के मार्ग से व्यक्ति ऊपर बताए गए पाँच निम्न बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।
(4) पवित्रता के मार्ग ( अरहत्त-मग्ग ) के माध्यम से व्यक्ति पाँच उच्च बंधनों से मुक्त हो जाता है, अर्थात्: (vi) भौतिक अस्तित्व ( रूप-राग ) की लालसा, (vii) अमूर्त अस्तित्व ( अरूप-राग ) की लालसा, (viii) अहंकार ( मान ), (ix) बेचैनी ( उद्धच्च ), (x) अज्ञान ( अविज्जा )।
सामान्य सूत्र पाठ इस प्रकार है:
(1) तीनों बंधनों के विलीन होने के बाद, भिक्षु ने (निर्वाण की ओर) धारा जीत ली है और अब वह निम्न लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं है, दृढ़ता से स्थापित है, पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत है;
(2) तीनों बंधनों के लुप्त होने और लोभ, घृणा और भ्रम के कम होने के बाद, वह केवल एक बार फिर लौटेगा; और इस संसार में एक बार फिर लौटकर वह दुखों का अंत करेगा;
(3) पाँच बंधनों के लुप्त होने के बाद वह एक उच्चतर लोक में प्रकट होता है, और वहाँ वह उस लोक (इंद्रिय लोक) से कभी वापस लौटे बिना निर्वाण प्राप्त करता है।
(4) सभी दोषों (आसव-क्खया) के निवारण के माध्यम से वह इसी जीवन में मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति, जो दोषों से मुक्त है, और जिसे उसने स्वयं समझा और अनुभव किया है, प्राप्त कर लेता है।
श्रेष्ठ शिष्यों का सात प्रकार का वर्गीकरण इस प्रकार है:
आस्थावान भक्त ( सद्धानुसारी )
आस्था से मुक्त व्यक्ति ( सद्धा-विमुत्त ),
शरीर-साक्ष्य ( काया=सक्खी ),
दोनों दिशाओं से मुक्त व्यक्ति ( उभतो-भाग-विमुत्त ),
धम्म भक्त ( धम्मनुसारि )
दृष्टि प्राप्त करने वाला ( दिट्ठी-पत्ता ),
ज्ञान से मुक्त व्यक्ति ( पञ्ञा-विमुत्त )।
ये चार श्लोक दान , यानी उदारता के गुणों की प्रशंसा करते हैं ।
दान प्रथम पारमी है । यह दानकर्ता को स्वार्थ के अनैतिक विचारों को रोकने और निस्वार्थता के शुद्ध विचारों को विकसित करने का दोहरा आशीर्वाद प्रदान करता है: यह देने वाले और लेने वाले दोनों को आशीर्वाद देता है।
एक बोधिसत्व को इस बात की चिंता नहीं होती कि दान पाने वाला वास्तव में जरूरतमंद है या नहीं, क्योंकि उनके द्वारा किए जाने वाले दान का एकमात्र उद्देश्य अपने भीतर सुप्त लालसा को समाप्त करना है। सेवा का आनंद, उससे प्राप्त सुख और दुखों का निवारण दान के अन्य आशीर्वाद हैं।

असाधारण उदारता से प्रेम का प्रसार करते हुए, वे किसी भी प्राणी में भेद नहीं करते, बल्कि इस उदारता में विवेकपूर्ण निर्णय लेते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई शराबी उनकी सहायता मांगे, और यदि उन्हें विश्वास हो जाए कि शराबी उनके दान का दुरुपयोग करेगा, तो बोधिसत्व बिना किसी संकोच के उसे अस्वीकार कर देंगे, क्योंकि ऐसी अनुचित उदारता पारमी नहीं कहलाएगी ।

यदि कोई व्यक्ति किसी नेक उद्देश्य से उसकी सहायता मांगे, तो वह दिखावटी गरिमा का ढोंग करने या झूठे दावे करने के बजाय, दिए गए अवसर के लिए अपना गहरा आभार व्यक्त करेगा और सहर्ष और विनम्रतापूर्वक हर संभव सहायता प्रदान करेगा। फिर भी, वह इसे कभी भी किसी दूसरे पर किया गया उपकार नहीं मानेगा, न ही उस व्यक्ति को अपनी सेवा का ऋणी समझेगा। उसकी रुचि केवल अच्छे कार्य में है, उससे उत्पन्न होने वाले किसी अन्य लाभ में नहीं। वह बदले में किसी पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करता, न ही इससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की लालसा रखता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 360,361

———————————————————————

(धम्मपद 356, 357, 358 और 359) <<<< पिछला || धम्मपद 360 और 361 || अगला >>>> (धम्मपद 362)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 360 और 361 - पंचभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

चक्खुना समवरो साधु
sadhu sotena samvaro
घनेना समवरो साधु
sadhu jivhaya sarmvaro.
Kayena samvaro sadhu
sadhu vacaya samvaro
manasa samvaro sadhu
sadhu sabbattha samvaro
sabattha sambuto bhikkhu
sabbadukkha pamuccati.

———————————————————————

श्लोक 360 : आँखों को संयम में रखना अच्छा है, कानों को संयम में रखना अच्छा है; नाक को संयम में रखना अच्छा है, जीभ को संयम में रखना अच्छा है।

———————————————————————

श्लोक 361 : शरीर में संयम अच्छा है, वाणी में संयम अच्छा है; मन में संयम अच्छा है, सभी इंद्रियों में संयम अच्छा है। सभी इंद्रियों में संयम रखने वाला भिक्षु सभी दुखों (संसार दुःख) से मुक्त हो जाता है।

———————————————————————

पांच भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (360) और (361) का उच्चारण किया।

एक समय श्रावस्ती में पाँच भिक्षु थे। उनमें से प्रत्येक पाँचों इंद्रियों में से केवल एक को ही वश में करने का अभ्यास करता था और प्रत्येक का दावा था कि वह जिस अभ्यास को कर रहा है वह सबसे कठिन है। इस पर उनके बीच तीखी बहस हुई और वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। अंततः, वे बुद्ध के पास उनका निर्णय जानने के लिए गए। बुद्ध ने उनसे कहा, "प्रत्येक इंद्रिय को वश में करना उतना ही कठिन है जितना कि दूसरी को; लेकिन सभी भिक्षुओं को केवल एक ही नहीं बल्कि सभी पाँचों इंद्रियों को वश में करना चाहिए। केवल वे ही जो सभी इंद्रियों को वश में कर लेते हैं, पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 360 : आँखों को संयम में रखना अच्छा है, कानों को संयम में रखना अच्छा है; नाक को संयम में रखना अच्छा है, जीभ को संयम में रखना अच्छा है।

---

श्लोक 361 : शरीर में संयम अच्छा है, वाणी में संयम अच्छा है; मन में संयम अच्छा है, सभी इंद्रियों में संयम अच्छा है। सभी इंद्रियों में संयम रखने वाला भिक्षु सभी दुखों (संसार दुःख) से मुक्त हो जाता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सावत्थी में पाँच भिक्षुओं की कहानी

एक समय की बात है, सावत्थी में पाँच भिक्षु थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पाँचों भिक्षुओं में से प्रत्येक इंद्रियों के पाँच द्वारों में से एक द्वार की रक्षा करता था। एक दिन वे मिले और आपस में बहस करने लगे, "मैं ही उस द्वार की रक्षा करता हूँ जिसकी रक्षा करना कठिन है! मैं ही उस द्वार की रक्षा करता हूँ जिसकी रक्षा करना कठिन है!" अंत में उन्होंने कहा, "हम बुद्ध से प्रश्न पूछकर इस विषय का सत्य जान सकते हैं।" अतः वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा, "आदरणीय, हममें से प्रत्येक इंद्रियों के पाँच द्वारों में से एक द्वार की रक्षा करता है, और हममें से प्रत्येक यह मानता है कि वह जिस द्वार की रक्षा कर रहा है, वह सभी द्वारों में सबसे कठिन है। अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि हममें से कौन उस द्वार की रक्षा कर रहा है जिसकी रक्षा करना सबसे कठिन है।"

बुद्ध ने किसी भी भिक्षु को उसके साथियों से हीन स्थिति में रखने से सावधानीपूर्वक परहेज किया और उत्तर में कहा, "भिक्षुओं, इन सभी द्वारों की रक्षा करना कठिन है। लेकिन यह पहली बार नहीं है जब आप इन पाँचों बातों में संयम बरतने में असफल रहे हैं। पिछले जन्म में भी आप अपनी इंद्रियों पर संयम नहीं रख पाए थे, और इसी कारण, और बुद्धिमानों की सलाह न मानने के कारण, आपका विनाश हुआ।" "वह कब हुआ था, पूज्यवर?" पाँचों भिक्षुओं ने पूछा।

अतीत की कहानी: तक्कशिला जातक

उनकी विनती का पालन करते हुए, बुद्ध ने तक्कासिला जातक का विस्तृत वर्णन किया, जिसमें उन्होंने बताया कि कैसे सुदूर अतीत में, एक राजा के घर को दुष्ट आत्माओं द्वारा नष्ट कर दिए जाने के बाद, बुद्ध ने राजा द्वारा औपचारिक रूप से जल छिड़काव प्राप्त किया, सफेद छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठे हुए, अपनी महिमा और वैभव का अवलोकन करते हुए, मन ही मन सोचा, "मनुष्यों को अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करना चाहिए," और निम्नलिखित गंभीर वचन कहे:

क्योंकि मैंने दृढ़ साहस के साथ भले लोगों की सलाह का पालन किया, क्योंकि मैंने भय या डर नहीं दिखाया, इसलिए मैं दुष्ट आत्माओं के वश में नहीं आया। मैं बड़े खतरे से दृढ़तापूर्वक बच निकला।

इस श्लोक का पाठ करने के बाद, बुद्ध ने जातक का सारांश इस प्रकार दिया: "उस समय तुम पाँच पुरुष थे, जब महान पुरुष तकशिला राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिए निकले, तो तुम अपने हाथों में हथियार लिए उनके चारों ओर मार्ग की रक्षा कर रहे थे। परन्तु जब तुम मार्ग पर यात्रा कर रहे थे, तो स्त्री दुष्ट आत्माओं ने तुम्हें दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद और स्पर्श जैसी इंद्रियों को प्रसन्न करने वाली वस्तुओं से लुभाया, तब तुमने सभी संयम त्याग दिए, तब तुमने ज्ञानी पुरुष की चेतावनियों की अवहेलना की, तब तुम स्त्री दुष्ट आत्माओं के प्रलोभनों के वश में आ गए; और उन्होंने तुम्हें भस्म कर दिया, और तुम पूर्णतः नष्ट हो गए। वह ज्ञानी पुरुष जिसने स्वयं को संयमित रखा और उनके प्रलोभनों के वश में नहीं आया, जिसने अपने पीछे आने वाली दिव्य सौंदर्य की राक्षसी पर ध्यान नहीं दिया, और जो सुरक्षित रूप से तकशिला पहुँचकर राजा बना, वह मैं स्वयं था।"

जातक कथा का सार प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने कहा, "एक भिक्षु को सभी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि केवल इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करके ही वह सभी दुखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 360)

चक्खुना संवरो साधु सोतेन संवरो

साधु घनेन संवरो साधु जिव्हाय संवरो
चक्खुना संवरो [ संवर ]: नेत्र अनुशासन; साधु : अच्छा है; सोतेन संवरो [ संवर ]: कान अनुशासन; साधु : अच्छा है; घानेन संवरो [ संवर ]: नाक अनुशासन; साधु : अच्छा है; जिव्हाया संवरो [ संवर ]: जीभ अनुशासन
आँखों पर नियंत्रण रखना अच्छा है। कानों पर नियंत्रण रखना अच्छा है। नाक पर नियंत्रण रखना अच्छा है। जीभ पर नियंत्रण रखना अच्छा है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 361)
कायेन संवरो साधु वचनाय संवरो साधु मनसा
संवरो साधु मनसा सब्बत्थ संवरो साधु
सब्बत्थ सवुतो भिक्खु सब्बादुक्खा पमुक्कति
कायेन संवरो [ संवर ]: शारीरिक अनुशासन; साधु : अच्छा है; वाचाय संवरो [ संवर ]: शब्दों के प्रयोग में अनुशासन; साधु : अच्छा है; मनसा संवरो [ संवर ]: मन का अनुशासन; साधु : अच्छा है; सब्त : हर जगह; संवरो [ संवर ]: अनुशासन; साधु : अच्छा है; सब्त संवुतो [ संवुता ]: हर चीज में और हर तरह से अनुशासित; साधु : अच्छा है; भिक्षु : भिक्षु; सब्बा : सभी का; दुःख : पीड़ा; पामुच्चति : मुक्त हो जाता है
शरीर को अनुशासित रखना अच्छा है। शब्दों को अनुशासित रखना अच्छा है। मन को अनुशासित रखना अच्छा है। इन सभी क्षेत्रों में अनुशासित भिक्षु को समस्त दुखों से मुक्ति प्राप्त होगी।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 360-361)
इन श्लोकों में बुद्ध भिक्षुओं को सभी 'बोध द्वारों' की रक्षा करके अनुशासित रहने की सलाह देते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ध्यान ( भावना ) है।
मन के विकास के माध्यम से किया जाने वाला ध्यान भावना कहलाता है । अन्य तकनीकी शब्दों के विपरीत, भावना का प्रयोग केवल मानसिक प्रशिक्षण की व्यावहारिक विधियों को दर्शाने के लिए किया जाता है। इसके व्यापक अर्थ में संपूर्ण प्रणाली, साथ ही उससे विकसित अभ्यास भी शामिल हैं। जब शास्त्रों में भावना शब्द आता है, तो यह सामान्यतः ध्यान के अभ्यास या साधना को इंगित करता है और भावेति क्रिया का प्रयोग 'अभ्यास करना' या 'साधना करना' के लिए किया जाता है।
मेत्तं, राहुला, भवनं, भवेहि ।
राहुल, मित्रता पर ध्यान का अभ्यास करो।
Asubhāya cittaṃ bhāvehi .
अशुद्धियों पर ध्यान लगाकर मन को विकसित करें।
झायति (जिसका प्रयोग केवल किसी मानसिक विषय पर चिंतन करने या किसी बाहरी वस्तु से ली गई मानसिक छवि को धारण करने के लिए किया जाता है) के विपरीत , भावेति का प्रयोग किसी भी प्रकार के मानसिक विकास के लिए किया जाता है: कुसलं चित्तं भावेति , वह नैतिक चेतना का विकास या वृद्धि करता है; " झानं भावेति , संआधिं भावेति , विपस्सनां भावेति , मग्गं भावेति ," "वह झान , समाधि, विपस्सना या मार्ग का अभ्यास करता है।"
विभिन्न प्रकार के ध्यान को अलग करने के लिए, 'भावना' शब्द का प्रयोग ध्यान के विषयों को दर्शाने वाले शब्दों जैसे कि ' झान-भावना' , 'समाधि-भावना' , 'मेत्त-भावना' आदि के साथ किया जाता है।
बुद्धघोष थेरा ने भावेति क्रिया को भू मूल से व्युत्पन्न बताया है, जिसका अर्थ है होना या बनना, और इसकी तुलना जनेति (जन्म देना), उप्पादेति (उत्पन्न करना या उत्पन्न करना), वड्डेति (बढ़ाना या विकसित करना) से की है। उन्होंने शास्त्रों के उद्धरणों से यह दर्शाया है कि भावेति का प्रयोग उत्पन्न करने ( उप्पादन ) और बढ़ाने ( वद्धन ) के अर्थ में किया जाता है ।
भावना शब्द का अर्थ अंग्रेजी शब्द 'ध्यान' से कहीं अधिक व्यापक और सक्रिय है। इस शब्द के कई अर्थ हैं, जैसे उत्पन्न करना, प्राप्त करना, निपुणता प्राप्त करना, विकसित करना, साधना करना, चिंतन और ध्यान। यहाँ हम इस शब्द का प्रयोग अभ्यास और साधना के अर्थ में करेंगे, क्योंकि ये अनुवाद 'ध्यान' शब्द की तुलना में इसके मूल 'होना' या 'बनना' से संबंध को अधिक स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।
यह सत्य है कि भावना में एक निश्चित चिंतन प्रक्रिया होती है, जो मानसिक प्रार्थना के समान होती है, और विभिन्न अभ्यासों में कुछ विशेष शब्दों या वाक्यांशों का दोहराव भी होता है, जैसे कि मैत्रीपूर्ण साधना में 'खुश रहो, खुश रहो'; या काशिन साधना में 'पृथ्वी, पृथ्वी ', जैसा कि मौखिक प्रार्थना में होता है। लेकिन भावना इससे कहीं अधिक है। यह एक विशेष प्रकार का चिंतन है, जो स्वयं में किसी ऐसी चीज का विकास करता है जो हमेशा अच्छी होती है। इसलिए, भावना का सार इसका उत्पादक कारक है, जो चिंतन के विषय में निहित सार गुण या सत्य को व्यक्ति के चरित्र में उत्पन्न या प्रकट करता है। उदाहरण के लिए, जब कोई मैत्रीपूर्ण भावना का अभ्यास करता है , तो वह न केवल मित्रता का चिंतन करता है, बल्कि उसे अपने मन में उत्पन्न और मजबूत भी करता है, ताकि शत्रुता, द्वेष, घृणा आदि के विचारों का नाश हो सके; और अंत में, साधक सभी जीवित प्राणियों के प्रति मित्रवत हो जाता है। इस अर्थ में, यह विकसित हो रहा है।

अंत में, यह कहना उचित होगा कि भावना शब्द का अर्थ है अपने भीतर सभी अच्छे गुणों का संचय करना, ताकि निर्वाण की प्राप्ति के लिए व्यक्ति योग्य और उपयुक्त बन सके। इसके अलावा, भावना थेरवाद संप्रदाय में धार्मिक जीवन के एक भाग के रूप में ध्यान के लिए प्रचलित और लोकप्रिय अभिव्यक्ति है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 362

———————————————————————————

(धम्मपद 360 और 361) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 362 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 363)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 362 - हंसघातकभिक्खु वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

हत्थसम्यतो पदसम्यतो
vacasamyato samyatuttamo
ajjhattarato samahito
एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुम।

———————————————————————————

श्लोक 362 : जो अपने हाथ, पैर, वाणी को नियंत्रित करता है और अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है; उसे भिक्षु कहते हैं।

———————————————————————————

एक भिक्षु की कहानी जिसने हंस (हंस) को मार डाला

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (362) का उच्चारण किया, जो एक भिक्षु के संदर्भ में था जिसने एक हंस को मार डाला था।

एक समय की बात है, एक भिक्षु पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था; वह तेज गति से चलने वाली वस्तुओं को भी अचूक भेद सकता था। एक दिन, अचिरवती नदी में स्नान करने के बाद, वह एक अन्य भिक्षु के साथ बैठा था, तभी उसने कुछ दूरी पर दो हंसों को उड़ते देखा। उसने अपने मित्र से कहा कि वह एक हंस पर पत्थर फेंककर उसे मार गिराएगा। उसी क्षण, हंस ने कुछ आवाजें सुनकर अपनी गर्दन घुमाई और भिक्षु ने पक्षी पर एक छोटा पत्थर फेंका। पत्थर पक्षी की एक आंख से होकर दूसरी आंख से निकल गया। पक्षी दर्द से कराह उठा और उस युवा भिक्षु के चरणों में गिरकर मर गया।

अन्य भिक्षुओं ने यह घटना देखकर उस युवक को बुद्ध के पास ले गए। बुद्ध ने उसे फटकारा और कहा, "मेरे पुत्र, तुमने इस पक्षी को क्यों मारा? विशेष रूप से तुमने ही क्यों, जो मेरे संघ का सदस्य हो और जिसे सभी प्राणियों के प्रति प्रेम और करुणा का अभ्यास करना चाहिए तथा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति के लिए निरंतर प्रयास करना चाहिए? शिक्षा के दौर से बाहर भी, ज्ञानी लोग नैतिकता का पालन करते थे और नियमों का अनुपालन करते थे। एक भिक्षु को अपने हाथों, पैरों और जीभ पर नियंत्रण रखना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 362 : जो अपने हाथ, पैर, वाणी को नियंत्रित करता है और अपने आप पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है; उसे भिक्षु कहते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक भिक्षु की कहानी जिसने हंस का वध किया (हंसा)

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक भिक्षु के संदर्भ में यह श्लोक कहा था जिसने एक हंस को मार डाला था।

कहा जाता है कि सावत्थी के दो निवासी संसार त्यागकर संघ के पूर्ण सदस्य बन गए और घनिष्ठ मित्र बन गए, और अक्सर साथ-साथ घूमने जाते थे। एक दिन वे अचिरावती नदी पर गए और स्नान करने के बाद किनारे पर धूप सेंकते हुए सुखद बातें करने लगे। तभी दो हंस हवा में उड़ते हुए आए। तब एक युवा भिक्षु ने एक छोटा पत्थर उठाकर कहा, "मैं इनमें से एक हंस की आंख में मारूंगा।" दूसरे ने कहा, "तुम ऐसा नहीं कर सकते।"

“तुम बस इंतज़ार करो,” पहले भिक्षु ने कहा; “मैं पहले इसकी इस तरफ की आँख पर प्रहार करूँगा, फिर दूसरी तरफ की आँख पर।” “तुम ऐसा भी नहीं कर सकते,” दूसरे ने कहा। “तो फिर, खुद ही देख लो,” पहले ने कहा और दूसरा कंकड़ उठाकर हंस की तरफ फेंक दिया। हंस ने पत्थर की सरसराहट सुनकर अपना सिर घुमाया और पीछे देखा। फिर दूसरे भिक्षु ने एक गोल पत्थर उठाया और उसे इस तरह फेंका कि वह दूर वाली आँख पर लगा और पास वाली आँख से निकल गया। हंस दर्द से चीख उठा और हवा में लुढ़कते हुए दोनों भिक्षुओं के चरणों में गिर पड़ा।

पास खड़े कुछ भिक्षुओं ने यह घटना देखी और हंस को मारने वाले भिक्षु से कहा, “भाई, बुद्ध के धर्म में संन्यास लेकर आपने किसी जीवित प्राणी का प्राण छीनकर अत्यंत अशोभनीय कार्य किया है।” और उन दोनों भिक्षुओं को अपने साथ लेकर वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुए। बुद्ध ने हंस को मारने वाले भिक्षु से पूछा, “क्या यह आरोप सत्य है कि आपने किसी जीवित प्राणी का प्राण छीना है?” भिक्षु ने उत्तर दिया, “जी, पूज्यवर, यह सत्य है।”

बुद्ध ने पूछा, “हे भिक्षु, मेरे जैसे मोक्षदायी धर्म में दीक्षित होकर संसार से संन्यास लेने के बाद भी तुमने ऐसा क्यों किया? बुद्ध के संसार में प्रकट होने से पहले, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुष गृहस्थ जीवन की चिंताओं में रहते हुए भी तुच्छतम बातों पर भी संशय करते थे। परन्तु तुम, बुद्ध के धर्म में दीक्षित होकर संसार से संन्यास लेने के बावजूद, बिलकुल भी संशय नहीं करते?”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 362)

हत्था सन्नतो पदा सन्नतो वाचाया सन्नतो सन्नतुत्तमो

अज्झत्थरतो समाहितो एको संतुसितो तं भिक्खुं आहु

हत्था सन्नातो [ सन्नाटा ]: यदि किसी के हाथ में रोक है; पद सन्नातो [ सन्नता ]: यदि किसी के पैर में रोक है; वाक्या सन्नातो [ सन्नाटा ]: शब्दों में संयमित; सन्नतुत्तमो [ सन्नतुत्तम ]: शरीर में संयमित; अज्झत्थरतो [ अज्झत्थरता ]: यदि वह अपने ध्यान के उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करता है; समाहितो [ समाहित ]: यदि उसका मन शांत है; एको : यदि वह एकांत में है; सैंटुसिटो [ सैंटुसिटा ]: यदि वह संतुष्ट है; तं : उसे; भिक्खुँ [ भिक्खु ]: साधु; आहु : कहा जाता है

जो अपने हाथ, पैर और वाणी पर नियंत्रण रखता है और स्वयं पर पूर्ण नियंत्रण रखता है; जो अंतर्दृष्टि विकास के अभ्यास में आनंद पाता है और शांत रहता है; जो एकांत में रहता है और संतुष्ट रहता है, उसे भिक्षु कहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 362)

समाहितो : एक शांत मन: एक ऐसा मन जिसने पूर्ण एकाग्रता के माध्यम से समाधि - शांति प्राप्त कर ली हो।

समाधि शब्द का सबसे सटीक अर्थ एकाग्रता है। यह स्वयं बुद्ध द्वारा प्रयुक्त मूल शब्दों में से एक है, क्योंकि यह उनके प्रथम उपदेश में मिलता है। इसका प्रयोग सम्मा-समाधि , यानी सही एकाग्रता के अर्थ में किया जाता है। समाधि शब्द ' सनाधा' मूल से आया है , जिसका अर्थ है एक साथ रखना या एकाग्र होना, और यह मन की एक विशेष अवस्था को दर्शाता है। तकनीकी रूप से, यह मन की अवस्था और उस अवस्था को उत्पन्न करने की विधि दोनों को दर्शाता है।

धम्मदिन्ना और भक्त विशाखा के संवाद में समाधि पर मन की एक अवस्था और मानसिक प्रशिक्षण की विधि दोनों के रूप में चर्चा की गई है। विशाखा ने पूछा, “ समाधि क्या है ?” बहन ने उत्तर दिया, “ समाधि चित्तस एकग्गता है ।” “इसे कौन प्रेरित करता है?” “ सतिपट्टाना के चार अनुप्रयोग इसे प्रेरित करते हैं।” “इसके लिए क्या आवश्यक है?” “ सम्पधान के चार सर्वोच्च प्रयास इसके लिए आवश्यक हैं।” “इसकी भावना क्या है ?” “उन्हीं सिद्धांतों — भावना और सर्वोच्च प्रयास — का अभ्यास और संवर्धन ही इसकी भावना है।”

इस चर्चा में समाधि को एक मानसिक अवस्था के रूप में चित्तस्स एकग्गता के रूप में परिभाषित किया गया है , और ऐसा प्रतीत होता है कि सूत्रों में इसकी यही पहली परिभाषा है। अभिधम्म में इस परिभाषा को दोहराया गया है और कई ऐसे शब्दों के साथ विस्तृत किया गया है जो बहुत मिलते-जुलते हैं, वास्तव में लगभग समानार्थी हैं।

---

(धम्मपद 362) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 363 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 364)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 363 - कोकालिका वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo mukhasamyato bhikkhu
mantabhani anuddhato
attham dhammanca dipeti
madhuram tassa bhasitam.

---

श्लोक 363 : वह भिक्षु जो अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के अर्थ और पाठ की व्याख्या करता है, उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

---

भिक्षु कोकालिका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (363) कहा।

भिक्षु कोकालिका ने दो प्रमुख शिष्यों, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महा मोग्गलाना का अपमान किया था। इस पाप कर्म के कारण कोकालिका पृथ्वी में समा गया और उसे पद्म निरय (नरक) में कष्ट भोगना पड़ा। कोकालिका के इस अंजाम को जानकर भिक्षुओं ने कहा कि उसे इतना कष्ट इसलिए सहना पड़ा क्योंकि उसने अपनी वाणी पर नियंत्रण नहीं रखा था। उन भिक्षुओं से बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! एक भिक्षु को अपनी वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए; उसका आचरण अच्छा होना चाहिए; उसका मन शांत, संयमित और अपनी इच्छा से भटकने वाला नहीं होना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 363 : वह भिक्षु जो अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के अर्थ और पाठ की व्याख्या करता है, उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु कोकालिका की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय कोकालिका के संदर्भ में कहा था।

कोकालिका के कमल नरक में पुनर्जन्म लेने के बाद, सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने इस घटना पर चर्चा शुरू की और कहा, “हाय, भिक्षु कोकालिका का नाश हुआ क्योंकि उसने अपनी ज़ुबान पर लगाम नहीं रखी! क्योंकि जब उसने दो प्रमुख शिष्यों का अपमान किया, तो

धरती फट गई और उसे निगल लिया।" उसी क्षण बुद्ध वहाँ आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने बताया, तो बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि कोकालिका का नाश हुआ है; उसके साथ पिछले जन्म में भी ऐसा ही हुआ था।" भिक्षुओं ने तुरंत इस मामले के बारे में सब कुछ जानने की इच्छा व्यक्त की। उनकी विनती को मानते हुए, मामले को स्पष्ट करने के लिए, बुद्ध ने निम्नलिखित बातें बताईं।

बहुत समय पहले हिमालय देश की एक झील में एक कछुआ रहता था। एक दिन भोजन की तलाश में भटकते हुए दो युवा हंसों की उससे मुलाकात हुई और देखते ही देखते वे पक्के दोस्त बन गए। एक दिन हंसों ने कछुए से कहा, "मित्र कछुए, हम हिमालय देश में चित्तकूट पर्वत पर एक सुनहरी गुफा में रहते हैं, और वह रहने के लिए बहुत ही रमणीय स्थान है। क्या तुम हमारे साथ वहाँ चलना चाहोगे?" कछुए ने उत्तर दिया, "स्वामी, मैं वहाँ कैसे पहुँचूँगा?" हंसों ने कहा, "यदि तुम चुप रहोगे, तो हम तुम्हें ले जाएँगे।" कछुए ने उत्तर दिया, "मैं चुप रहूँगा, मित्रों। मुझे अपने साथ ले चलो, और हम चलें।" हंसों ने कहा, "ठीक है।" तो हंसों ने कछुए को अपने दांतों से एक छड़ी के बीचोंबीच पकड़ने पर मजबूर कर दिया, और फिर छड़ी के दोनों सिरों को अपनी चोंच में पकड़कर हवा में उड़ गए।

कुछ गाँव के लड़कों ने एक कछुए को हंसों द्वारा इस प्रकार ले जाते हुए देखा और तुरंत चिल्ला उठे, "देखो, वे दो हंस एक कछुए को डंडे पर ले जा रहे हैं!" कछुए ने सोचा, "अरे आवारा, मेरे दोस्त मुझे अपने साथ ले जा रहे हैं तो तुम्हें इससे क्या लेना-देना?" और उसने अपने मन की बात कहने के लिए अपना मुँह खोला। तभी हंस बहुत तेज़ी से उड़ने लगे और वे वाराणसी शहर के राजमहल के ठीक ऊपर पहुँच गए। इसलिए जब कछुए ने डंडा छोड़ा, तो वह राजमहल के प्रांगण के ठीक बीचोंबीच ज़मीन पर गिर पड़ा और ज़मीन पर गिरते ही दो टुकड़ों में बिखर गया।

द्वितीय ग्रंथ में पाए जाने वाले इस बहुभाणी जातक का वर्णन करते हुए बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, एक भिक्षु को अपनी जीभ पर नियंत्रण रखना चाहिए, शांत जीवन जीना चाहिए, अपने आप को अहंकारी नहीं होने देना चाहिए और अपने हृदय को बुरी भावनाओं से मुक्त करना चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 363)

मुखसन्नतो मंतभानि अनुद्धतो यो भिक्खु
अत्थं धम्मञ्च दिपेति तस्स भासीतं मधुरं

मुखसन्नतो [ मुखसन्नता ]: मुँह में अनुशासित; मंतभानि : संयम से बोलना; अनुद्धतो [ अनुद्धता ]: अभिमान नहीं; यो भिक्खु : एक साधु; अत्थं [ अत्थ ]: महत्व; धम्म : शिक्षण; दीपेति : यह प्रदर्शित करता है; तस्सा : उसका; भासीताम् [ भासीता ]: उच्चारण; मधुरं [ मधुरा ]: मधुर

जो भिक्षु अपने मुख (वाणी) पर नियंत्रण रखता है, जो शांत मन से बुद्धिमानी से बोलता है, जो धम्म के पाठ का अर्थ समझाता है — उस भिक्षु के वचन मधुर होते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 363)

इस श्लोक में उचित वाणी के गुणों (जो कि श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का एक भाग है) का समर्थन किया गया है। बुद्ध ने अनियंत्रित और अनुशासनहीन वाणी के पाँच दोषों और खतरों की ओर इशारा किया है। जो व्यक्ति वाणी में अनुशासित नहीं होता, वह (i) झूठ बोलने का आदी होता है; (ii) निंदा करने की प्रवृत्ति रखता है; (iii) कठोर और आलसी वाणी का आदी होता है; और (iv) मृत्यु के बाद बुरे कर्मों में जन्म लेता है।

सही वाणी के चार गुण हैं। वे इस प्रकार हैं:

(1) झूठ बोलने से परहेज करता है। ऐसा व्यक्ति ईमानदार, सच्चा और भरोसेमंद होता है;

(2) जो व्यक्ति सही वाणी का अभ्यास करता है, वह निंदा या चुगली नहीं करता। जो व्यक्ति इन प्रकार की बुरी बातों से बचता है, वह सामाजिक सद्भाव में योगदान देता है;

(3) जो लोग सही वाणी का अभ्यास करते हैं, वे कठोर शब्दों का प्रयोग करने से बचते हैं। इस प्रकार, वे लोगों को खुशी देते हैं और कठोर शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाली मानसिक पीड़ा की संभावना से बचते हैं।

(4) यह अभ्यासकर्ता को व्यर्थ और निरर्थक शब्दों से बचने में सक्षम बनाता है। बुद्ध ने चेतावनी दी कि व्यर्थ की बातों और गपशप में लिप्त होने से चुप रहना कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 364

---

(धम्मपद 363) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 364 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 365 और 366)

---

अंतर्वस्तु


धम्मपद श्लोक 364 - धम्मरामत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

धम्मरमो धम्मरतो
धम्मम अनुविचिन्तयम
धम्मम अनुस्सरम भिक्खु
saddhamma(1) na parihayati.

---

श्लोक 364 : जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित रहता है, जो धम्म का ध्यान करता है और सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह धर्मात्माओं के धम्म से विचलित नहीं होता।(1)

---

1. सद्धम्म: गुणी लोगों का धम्म; अर्थात्, ज्ञानोदय के सैंतीस कारक (बोधिपक्खीय धम्म) और नौ पारलौकिक (लोकुत्तरा धम्म)।

---

थेरा धम्मराम की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा धम्मराम के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (364) कहा।

जब शिष्यों को यह पता चला कि बुद्ध चार महीने में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे, तो अधिकांश पुथुज्जन भिक्षु (अर्थात, वे भिक्षु जिन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त नहीं किया था) अत्यंत निराश और व्याकुल हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वे बुद्ध के निकट ही रहे, शायद ही कभी उनकी उपस्थिति से दूर गए। हालांकि, धम्मराम नाम का एक भिक्षु था जो एकांत में ही रहा और बुद्ध के पास नहीं गया। उसका इरादा बुद्ध के देहांत से पहले अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करना था। इसलिए उसने अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में गहन परिश्रम किया। अन्य भिक्षुओं ने उसके इस दृष्टिकोण और उसकी महान महत्वाकांक्षा को न समझते हुए उसके व्यवहार को गलत समझा।

उन भिक्षुओं ने धम्मराम को बुद्ध के पास ले जाकर उनसे कहा, “हे पूज्यवर! ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु को आपके प्रति कोई स्नेह, आदर या श्रद्धा नहीं है; यह एकांत में ही रहता है जबकि अन्य भिक्षु हर समय आपकी उपस्थिति में उपस्थित रहते हैं।” जब अन्य भिक्षुओं ने अपनी बात कह दी, तो धम्मराम ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि वे उनसे मिलने क्यों नहीं आए थे और यह भी बताया कि वे अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में पूर्ण परिश्रम कर रहे थे।

बुद्ध धम्मराम के स्पष्टीकरण और आचरण से संतुष्ट और अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र धम्मराम, तुमने बहुत अच्छा किया है। जो भिक्षु मुझसे प्रेम और आदर करता है, उसे तुम्हारे समान व्यवहार करना चाहिए। जो लोग मुझे फूल, सुगंध और अगरबत्ती अर्पित करते हैं, वे वास्तव में मुझे प्रणाम नहीं करते। केवल वे ही जो धम्म का अभ्यास करते हैं, वे ही वास्तव में मुझे प्रणाम करते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 364 : जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित होता है, जो धम्म का ध्यान करता है और सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह सद्गुणी धम्म से विचलित नहीं होता।

---

प्रवचन के अंत में थेरा धम्मराम ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय धम्मराम की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य धम्मराम के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

जब शिष्यों को यह पता चला कि बुद्ध चार महीनों में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेंगे , तो अधिकांश पुथुज्जन भिक्षु (अर्थात, वे भिक्षु जिन्होंने किसी भी मार्ग को प्राप्त नहीं किया था ) अत्यंत निराश और व्याकुल हो गए और उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। वे बुद्ध के निकट ही रहे, शायद ही कभी उनकी उपस्थिति से दूर गए। हालांकि, धम्मराम नाम का एक भिक्षु था जो एकांत में रहता था और बुद्ध के पास नहीं जाता था। उसका इरादा बुद्ध के देहांत से पहले अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए पूरी लगन से प्रयास करना था। इसलिए उसने अंतर्दृष्टि ध्यान का गहन अभ्यास किया। अन्य भिक्षुओं ने उसके दृष्टिकोण और उसकी महान महत्वाकांक्षा को न समझते हुए उसके व्यवहार को गलत समझा।

वे भिक्षु धम्मराम को बुद्ध के पास ले गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर! ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु को आपके प्रति कोई स्नेह, आदर या श्रद्धा नहीं है; यह एकांत में ही रहता है जबकि अन्य भिक्षु हर समय आपके निकट रहते हैं।" जब अन्य भिक्षुओं ने अपनी बात कह दी, तो धम्मराम ने आदरपूर्वक बुद्ध को समझाया कि वे बुद्ध से मिलने क्यों नहीं आए थे और यह भी बताया कि वे अंतर्दृष्टि ध्यान साधना में पूर्ण परिश्रम कर रहे थे।

बुद्ध धम्मराम के स्पष्टीकरण और आचरण से संतुष्ट और अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "मेरे पुत्र धम्मराम, तुमने बहुत अच्छा किया है। जो भिक्षु मुझसे प्रेम और आदर करता है, उसे तुम्हारे समान व्यवहार करना चाहिए। जो लोग मुझे फूल, सुगंध और अगरबत्ती अर्पित करते हैं, वे वास्तव में मुझे प्रणाम नहीं करते। केवल वे ही जो धम्म का अभ्यास करते हैं, सच्चे अर्थों में मुझे प्रणाम करते हैं।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 364)

धम्मरामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिंतयम्

धम्मं अनुसारं भिक्खु सद्धम्म न परिहायति

धम्मरामो [ धम्मराम ]: उसका निवास स्थान शिक्षण है; धम्मरतो [ धम्मरता ]: धम्म से जुड़ा हुआ; धम्मं अनुविचिंतयं [ अनुविचिंतय ]: वह धम्म पर बार-बार चिंतन करता है; धम्मं अनुसारं [ अनुस्सर ]: धम्म को याद रखना और याद रखना; भिक्खु : साधु; सधम्म : महान शिक्षण से; न परिहायति : भटकता नहीं

जो भिक्षु धम्म में स्थिर रहता है, जो धम्म में आनंदित रहता है, जो धम्म का ध्यान करता है और जो सदा धम्म के प्रति सचेत रहता है, वह सदाचारी धम्म से विचलित नहीं होता।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 364)

धम्म के गुण : यह श्लोक बुद्ध ने एक ऐसे भिक्षु की प्रशंसा में कहा था जो धम्म के गुणों पर पूर्ण एकाग्रता के साथ रहता था।

धम्म के छह उत्कृष्ट गुणों का वर्णन इस प्रकार है:

(1) स्वक्खातो भगवता धम्मो: बुद्ध ने धम्म की अच्छी तरह व्याख्या की है। यह आरंभ में उत्तम है, मध्य में उत्तम है और अंत में उत्तम है। धम्म में हमेशा केवल एक ही स्वाद होता है - निर्वाण का;

(2) संदित्तिको: इसका तात्पर्य यह है कि धम्म के लाभकारी परिणाम यहीं और अभी प्रकट होंगे;

(3) अकालिको: धम्म कालातीत है। क्योंकि धम्म वास्तविकता है, इसलिए यह समय के साथ कभी नष्ट नहीं होता;

(4) एहिपस्सिको: धम्म किसी के भी आने और देखने के लिए खुला है - एहिपस्सिको का शाब्दिक अर्थ है आओ और देखो;

(5) ओपनायिको: इसका अर्थ है कि जो लोग धम्म का पालन करते हैं वे शाश्वत शांति और सुख की ओर ले जाने वाले मार्ग पर चलेंगे;

(6) वेदिताब्बो विञ्ञुहि: इसका तात्पर्य यह है कि धम्म को प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को स्वयं समझना होगा।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 365,366

---

(धम्मपद 364) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 365 और 366 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 367)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 365 और 366 - विपक्खासेवक भिक्खु वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
सलाभम नटिमनेय्या
na' nnesam pihayam care
annesam pihayam bhikkhu
समाधिं नाधिगच्छति.
Appalabhopi ce bhikkhu
salabham nati mannati
tam ve deva pasamasanti
suddhajivim atanditam.

---

श्लोक 365 : जो कुछ उचित साधनों से प्राप्त हुआ हो, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के लाभों से ईर्ष्या करनी चाहिए। जो भिक्षु दूसरों से ईर्ष्या करता है, वह समाधि प्राप्त नहीं कर सकता।

---

श्लोक 366 : यद्यपि उसे थोड़ा ही प्राप्त होता है, यदि कोई भिक्षु उचित साधनों से प्राप्त हुई वस्तु का तिरस्कार नहीं करता, तो देव (देवदूत) निश्चित रूप से उसकी प्रशंसा करेंगे जो शुद्ध जीवन व्यतीत करता है और आलसी नहीं है।

---

देवदत्त के अनुयायी के साथ संबंध रखने वाले एक भिक्षु की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (365) और (366) का उच्चारण किया, जो देवदत्त के अनुयायी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखने वाले एक भिक्षु के संदर्भ में था।
एक बार, बुद्ध के एक भिक्षु शिष्य, देवदत्त के एक अनुयायी के साथ घनिष्ठ मित्रता के कारण, देवदत्त के मठ में गए और कुछ दिनों तक वहाँ रहे। अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि वह देवदत्त के अनुयायियों के साथ मेलजोल रख रहे थे और यहाँ तक कि देवदत्त के मठ में भी गए थे, जहाँ उन्होंने कुछ दिन भोजन, विश्राम और वहाँ के उत्तम भोजन और सुख-सुविधाओं का आनंद लिया। बुद्ध ने उस भिक्षु को बुलवाया और उनसे पूछा कि क्या उनके व्यवहार के बारे में सुनी गई बातें सच हैं। भिक्षु ने स्वीकार किया कि वह कुछ दिनों के लिए देवदत्त के मठ में गए थे, लेकिन उन्होंने बुद्ध को बताया कि उन्होंने देवदत्त की शिक्षाओं को नहीं अपनाया था।
तब बुद्ध ने उन्हें फटकारा और बताया कि उनका व्यवहार देवदत्त के अनुयायी जैसा प्रतीत होता है। बुद्ध ने उनसे कहा, "हे मेरे पुत्र, यद्यपि तुमने देवदत्त के सिद्धांतों को नहीं अपनाया है, फिर भी तुम उनके अनुयायियों की तरह व्यवहार कर रहे हो। एक भिक्षु को जो कुछ प्राप्त होता है, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए और दूसरों के लाभों का लालच नहीं करना चाहिए। जो भिक्षु दूसरों के सौभाग्य से ईर्ष्या करता है, वह न तो समाधि, न अंतर्दृष्टि और न ही निर्वाण के मार्ग को प्राप्त कर सकता है। केवल वही भिक्षु जो अपने प्राप्त हुए सभी लाभों से संतुष्ट रहता है, एकाग्रता, अंतर्दृष्टि और मार्ग को प्राप्त कर सकता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 365 : जो कुछ उचित साधनों से प्राप्त हुआ हो, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के लाभों से ईर्ष्या करनी चाहिए। जो भिक्षु दूसरों से ईर्ष्या करता है, वह समाधि प्राप्त नहीं कर सकता।

---

श्लोक 366 : यद्यपि उसे थोड़ा ही प्राप्त होता है, यदि कोई भिक्षु उचित साधनों से प्राप्त हुई वस्तु का तिरस्कार नहीं करता, तो देव (देवदूत) निश्चित रूप से उसकी प्रशंसा करेंगे जो शुद्ध जीवन व्यतीत करता है और आलसी नहीं है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
गद्दार भिक्षु की कहानी
एक बार, बुद्ध के एक भिक्षु का देवदत्त के नेतृत्व वाले गुट के एक भिक्षु से घनिष्ठ मित्रता थी। देवदत्त बुद्ध का विरोधी था। एक दिन जब वह अपने साथी भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने के बाद नाश्ता करके लौट रहा था, तो उस गुट-विरोधी भिक्षु ने उससे मुलाकात की और

पूछा, "आप कहाँ गए थे?" भिक्षु ने कहा, "अमुक स्थान पर भिक्षा मांगने गया था।" "क्या आपको कुछ खाने को मिला?" भिक्षु ने कहा, "हाँ, मिला।" भिक्षु ने कहा, "यहाँ हमें भरपूर दान और भेंट मिलती है; कुछ दिन हमारे साथ यहीं ठहरिए।" भिक्षु ने अपने मित्र की बात मानी, देवदत्त के भिक्षुओं के साथ कई दिन बिताए और फिर अपने समुदाय में लौट आया।

भिक्षुओं ने बुद्ध को उसके अपराध की सूचना देते हुए कहा, "हे पूज्यवर, यह भिक्षु देवदत्त को दिए गए उपहारों और भेंटों का आनंद ले रहा है; यह देवदत्त का पक्षधर है।" बुद्ध ने भिक्षु को अपने समक्ष बुलाया और उससे पूछा, "क्या यह बात सच है कि तुमने ऐसा किया है?" "जी हे पूज्यवर, मैं अपने एक मित्र युवक भिक्षु के कारण कुछ दिनों के लिए देवदत्त के भिक्षुओं के साथ रहा, परन्तु मैं देवदत्त के विचारों का समर्थक नहीं हूँ।" बुद्ध ने कहा, "यह ठीक है कि तुम्हारे विचार गलत नहीं हैं; फिर भी तुम ऐसे घूमते हो मानो तुम हर किसी के विचार को मानते हो। परन्तु यह पहली बार नहीं है जब तुमने ऐसा किया है; तुमने पिछले जन्म में भी ऐसा ही किया था।"

भिक्षुओं ने कहा, "हे पूज्यवर, हमने अभी-अभी जो कुछ उन्होंने किया, वह अपनी आँखों से देखा है; लेकिन पिछले जन्म में उनके क्या विचार थे? कृपया हमें इसके बारे में सब कुछ बताइए।" तो उनके अनुरोध के उत्तर में, बुद्ध ने निम्नलिखित कथा सुनाई:

अतीत की कहानी: महिलामुख जातक (एलिफेंट डैम्सेल-फेस)

चोरों और हत्यारों की बातें सुनकर एक शांत स्वभाव का हाथी उग्र हो गया और उसने अपने रखवालों को मार डाला। लेकिन ऋषियों और ब्राह्मणों की बातें सुनकर वह फिर से शांत हो गया। वह हाथी, जिसका चेहरा अपनत्वमय था, असल में गद्दार भिक्षु था।

पुराने समय के चोरों की बातें सुनकर, सुंदर चेहरे वाला हाथी इधर-उधर भटकता रहा, मारता-पीटता रहा। लेकिन संयमी पुरुषों की बातें सुनकर, इस श्रेष्ठ हाथी ने अपने सभी अच्छे गुण पुनः प्राप्त कर लिए।

जब बुद्ध ने इस महिलामुख जातक का वर्णन किया, तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, जो भी भिक्षु है, उसे केवल अपने द्वारा प्राप्त वस्तुओं से ही संतुष्ट रहना चाहिए और दूसरों की वस्तुओं का लालच नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि वह दूसरों की वस्तुओं का लालच करेगा, तो उसे न तो समाधि की अवस्था प्राप्त होगी, न आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि, न मार्ग, न फल — इनमें से कुछ भी नहीं। परन्तु यदि वह केवल अपने द्वारा प्राप्त वस्तुओं से ही संतुष्ट रहेगा, तो ये सब वस्तुएँ उसे प्राप्त हो जाएँगी।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 365)

सलभं नातिमान्येया अन्यानेसं पिहायं न केयर
अन्नेसां पिहायं भिक्खु समाधिं न अधिगच्छति

salābhaṃ [ salābha ]: जो किसी ने दिया है; nātimaññeyya : कम मत समझो; āññesaṃ [ āññesa ]: दूसरों का लाभ; pihayaṃ [ pihaya ]: अपेक्षा रखना; na care : इधर-उधर मत भटकना; aññesaṃ pihayaṃ bhikkhu : वह भिक्षु जो दूसरों के लाभ की अपेक्षा रखता है; samādhiṃ [ samādhi ]: मन की शांति; nādhigacchati : नहीं पहुँचेगा

आपको जो मिला है, उसे कम मत समझिए। और फिर, दूसरों को जो मिला है, उसकी अपेक्षा मत कीजिए। यदि कोई साधु दूसरों को जो मिला है, उसकी लालसा करता है, तो उसे कभी मन की शांति प्राप्त नहीं होगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 366)

भिक्खु अप्पलाभो अपि सीई सलभं नातिमन्नति
शुद्धाजीवम् अतंदितं तं देवा वे पसंशन्ति

भिक्खु : भिक्षु; अप्पलाभो अपि : बहुत कम प्राप्त करने पर भी; चे : यदि; सलाभम् [ सलाभ ]: जो किसी ने प्राप्त किया हो; नातिमञ्ञति : उपेक्षा नहीं करता; शुद्धजीवी [ शुद्धजीवी ]: शुद्ध जीवन धारण करने वाला; अतंदितम् [ अतंदित ]: सुस्त नहीं; तम् : वह भिक्षु; देवा अपि: देवता भी; पसंसन्ति : प्रशंसा

भिक्षु को भले ही थोड़ा ही प्राप्त हुआ हो, लेकिन वह उसे कम नहीं आंकता। वह जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, उससे संतुष्ट है। ऐसा भिक्षु, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, देवताओं द्वारा सराहा जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 365-366)

इस श्लोक में बुद्ध भिक्षुओं को जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहने की सलाह देते हैं। उन्हें दूसरों को क्या प्राप्त होता है, इस बारे में न सोचने की सलाह दी जाती है। जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहना अप्पिच्छता और पच्चय संतोष कहलाता है । अप्पिच्छता — कम इच्छाओं का होना (संतोष) — भिक्षु के अनिवार्य गुणों में से एक है। भिक्षु के चार श्रेष्ठ नियम हैं: किसी भी वस्त्र से संतुष्ट रहना, किसी भी भिक्षा भोजन से संतुष्ट रहना, किसी भी निवास से संतुष्ट रहना और ध्यान और वैराग्य में आनंद लेना। "अब, भिक्षु किसी भी वस्त्र से, किसी भी भिक्षा भोजन से, किसी भी निवास से संतुष्ट रहता है, मानसिक साधना और वैराग्य में आनंद और प्रसन्नता पाता है। परन्तु वह इस कारण अहंकारी नहीं होता, न ही दूसरों को नीचा देखता है। अब, जो भिक्षु इसमें योग्य और अथक है, जो स्पष्ट रूप से सचेत और जागरूक रहता है, ऐसे भिक्षु के बारे में कहा जाता है कि वह प्राचीन, श्रेष्ठ नियमों में दृढ़ता से स्थापित है, जिन्हें सर्वोच्च नियम माना जाता है।"

भिक्षु संघ : भिक्षु संघ (बुद्धत्व) की शुरुआत उन पांच प्रकार के भिक्षुओं से हुई जिन्हें बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था। उस समय से, यासा के संघ में शामिल होने के बाद संघ का विस्तार हुआ।

वाराणसी में यासा नाम का एक करोड़पति का पुत्र था, जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था। सांसारिक जीवन की निरर्थकता को जानकर, वह घर से चुपके से निकल गया और कहने लगा, "मैं व्यथित हूँ, मैं पीड़ित हूँ," और इसिपताना की ओर चल पड़ा, जहाँ बुद्ध पाँच भिक्षुओं को अरहंत पद प्राप्त कराने के बाद अस्थायी रूप से निवास कर रहे थे।

तब बुद्ध ने कहा, “हे यस! यहाँ कोई कष्ट नहीं है! हे यस! यहाँ कोई उत्पीड़न नहीं है! हे यस! इधर आओ! बैठो। मैं तुम्हें धम्म का उपदेश दूंगा।”

दुखी यासा बुद्ध के उत्साहवर्धक शब्दों को सुनकर प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी स्वर्ण की चप्पलें उतारकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था ( सोतापत्ति ) प्राप्त की।

प्रारंभ में बुद्ध ने उनसे दान, नैतिकता, दिव्य अवस्थाओं, कामदीनव के दुष्परिणामों और त्याग के लाभों के बारे में बात की । जब उन्होंने पाया कि उनका मन ग्रहणशील है और गहन शिक्षाओं को समझने के लिए तैयार है, तो उन्होंने उन्हें चार आर्य सत्यों की शिक्षा दी।

यासा की माता ने सबसे पहले अपने पुत्र के लापता होने का पता लगाया और अपने पति को इसकी सूचना दी। करोड़पति ने तुरंत चारों दिशाओं में घुड़सवार भेजे और स्वयं सोने की चप्पलों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए इसिपताना की ओर चल पड़ा। बुद्ध ने उसे दूर से आते हुए देखा और अपनी मानसिक शक्तियों से यह निश्चय किया कि वह अपने पुत्र को न देख पाए। करोड़पति बुद्ध के पास पहुँचा और आदरपूर्वक पूछा कि क्या उन्होंने उसके पुत्र यासा को देखा है।

“अच्छा, तो महाराज, कृपया नीचे आइए। आप अपने पुत्र को देख सकेंगे,” बुद्ध ने कहा। यह खुशखबरी सुनकर वे प्रसन्न हुए और बैठ गए। बुद्ध ने उन्हें प्रवचन दिया, और वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने खुशी से जयजयकार कर दी।

“अद्भुत! यह ऐसा है मानो कोई व्यक्ति उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, या भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जला दे ताकि देखने वाले देख सकें! बुद्ध ने भी इसी प्रकार विभिन्न तरीकों से इस सिद्धांत की व्याख्या की है।”

“मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेता हूँ। बुद्ध मुझे आज से जीवन के अंत तक अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें!” वे त्रिविध सूत्र के साथ शरण लेने वाले पहले गृहस्थ अनुयायी थे।

अपने पिता को दिए गए प्रवचन को सुनकर यासा ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद बुद्ध ने अपनी इच्छाशक्ति वापस ले ली ताकि यासा के पिता अपने पुत्र को देख सकें। करोड़पति ने अपने पुत्र को देखा और अगले दिन बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने मौन रहकर निमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

धनी व्यक्ति के चले जाने के बाद, यासा ने बुद्ध से निम्न और उच्च दीक्षा प्रदान करने की विनती की। “आओ, हे भिक्षुओं! मैंने जो सिखाया है वही सिद्धांत है। दुखों का पूर्ण अंत करने के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करो।” इन शब्दों के साथ बुद्ध ने उन्हें उच्च दीक्षा प्रदान की। पूज्य यासा के साथ अरहंतों की संख्या बढ़कर छह हो गई।

निमंत्रण पर, बुद्ध अपने छह शिष्यों के साथ उस धनी व्यक्ति के घर गए। पूज्य यासा की माता और उनकी पूर्व पत्नी ने बुद्ध द्वारा प्रतिपादित उपदेश सुने और संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त करके, उनकी पहली दो गृहस्थ महिला अनुयायी बनीं।

आदरणीय यासा के चार विशिष्ट मित्र थे, जिनके नाम विमला, सुबाहु, पुन्नाजी और गवम्पति थे। जब उन्हें पता चला कि उनके परम पूज्य मित्र ने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, संन्यासी जीवन व्यतीत कर लिया है, तो वे आदरणीय यासा के पास आए और उनके उदाहरण का अनुसरण करने की इच्छा व्यक्त की। आदरणीय यासा ने उन्हें बुद्ध से परिचित कराया, और धम्म को सुनकर उन्होंने भी अर्हत्व प्राप्त कर लिया।

पूज्य यासा के पचास और योग्य मित्र, जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख परिवारों से थे, बुद्ध से शिक्षा प्राप्त करके अरहंत बन गए और पवित्र संघ में प्रवेश कर गए। उनके ज्ञानोदय के लगभग दो महीने ही बीते थे कि अरहंतों की संख्या धीरे-धीरे बढ़कर साठ हो गई। वे सभी प्रतिष्ठित परिवारों से थे और योग्य पिताओं के योग्य पुत्र थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 367

---

(धम्मपद 365 और 366) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 367 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 368 से 376)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 367 - पंचगगदायक ब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Sabbaso namarupasmim
yassa natthi mamayitam
asata ca na socati
sa ve "bhikkhu" ti vuccati.

---

श्लोक 367 : जो मन और शरीर के समूह (नाम-रूप) को "मैं और मेरा" नहीं मानता, और जो (मन और शरीर के) विघटन पर शोक नहीं करता, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

---

अपने श्रम के प्रथम फल देने वाले की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (367) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जो पाँच बार प्रथम फल दान करने की आदत रखता था। यहाँ प्रथम फल से तात्पर्य खेत की प्रथम उपज से है। खेत की प्रथम उपज कटाई के समय, अनाज निकालने के समय, भंडारण के समय, खाना पकाने के समय और भोजन परोसने के समय दान की जाती है।

एक दिन बुद्ध ने ब्राह्मण और उनकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि दंपति के अनागामी पुण्य प्राप्ति का समय आ गया है। तदनुसार, बुद्ध उनके घर की ओर चल पड़े और भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़े हो गए। ब्राह्मण उस समय भोजन कर रहे थे और घर के भीतरी भाग की ओर मुख किए हुए थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को नहीं देखा। उनकी पत्नी, जो उनके पास ही थीं, ने बुद्ध को देखा, लेकिन उन्हें डर था कि यदि उनके पति ने बुद्ध को भिक्षा मांगने के लिए द्वार पर खड़ा देख लिया, तो वे अपनी थाली के सारे चावल भिक्षा में दे देंगे और फिर उन्हें दोबारा खाना बनाना पड़ेगा। यह सोचकर वे अपने पति के पीछे खड़ी हो गईं ताकि वे बुद्ध को न देख सकें; फिर वे चुपचाप पीछे हटती गईं और धीरे-धीरे बुद्ध के पास आकर उनसे फुसफुसाकर बोलीं, "आदरणीय महोदय! आज हमारे पास आपके लिए भिक्षा नहीं है।" लेकिन बुद्ध ने घर से न जाने का निश्चय कर लिया था; उन्होंने बस अपना सिर हिलाया। यह देखकर ब्राह्मण की पत्नी अपनी हंसी नहीं रोक पाईं और जोर से हंस पड़ीं।

उसी क्षण ब्राह्मण ने मुड़कर देखा और बुद्ध को देखा। वह तुरंत समझ गया कि उसकी पत्नी ने क्या किया है, और वह चिल्लाया, "हे मेरी अभागी पत्नी! तूने मुझे बर्बाद कर दिया।" फिर, चावल की थाली उठाकर वह बुद्ध के पास गया और क्षमा याचना करते हुए बोला, "आदरणीय महोदय! कृपया मेरे इस चावल को स्वीकार कर लें, जो मैंने आधा खा लिया है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! मेरे लिए कोई भी चावल स्वीकार्य है, चाहे वह अभी तक खाया न गया हो, आधा खाया गया हो, या यहाँ तक कि आखिरी चम्मच ही बचा हो।" बुद्ध के उत्तर से ब्राह्मण बहुत आश्चर्यचकित हुआ; साथ ही, उसे प्रसन्नता भी हुई क्योंकि बुद्ध ने उसके चावल का अर्पण स्वीकार कर लिया था। ब्राह्मण ने बुद्ध से पूछा कि भिक्षु का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाता है और भिक्षु की परिभाषा क्या है। बुद्ध जानते थे कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने मन और शरीर (नाम-रूप) के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था; तब उन्होंने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता, उसे भिक्षु कहते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 367 : जो मन और शरीर के समूह (नाम-रूप) को "मैं और मेरा" नहीं मानता, और जो (मन और शरीर के) विघटन पर शोक नहीं करता, वही वास्तव में भिक्षु कहलाता है।

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने अनागामी पुण्य प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस ब्राह्मण की कहानी जिसने बुद्ध को भिक्षा दी

एक समय की बात है, सावत्थी में एक ब्राह्मण रहता था, जो बहुत उदार था और हमेशा बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भिक्षा में भोजन देता था।

एक दिन बुद्ध ने ब्राह्मण और उनकी पत्नी को दर्शन दिए और जान लिया कि वे दोनों अनागामी (पापस्थित) हो सकते हैं। तदनुसार, बुद्ध उनके घर की ओर चल पड़े और द्वार पर खड़े हो गए। ब्राह्मण उस समय भोजन कर रहे थे, इसलिए उन्होंने बुद्ध को नहीं देखा। उनकी पत्नी ने उन्हें देखा, लेकिन उन्हें डर था कि बुद्ध को देखकर उनके पति अपना सारा भोजन उन्हें अर्पित कर देंगे, और फिर उन्हें दोबारा खाना बनाना पड़ेगा। इसी विचार के साथ, वह अपने पति के सामने खड़ी हो गईं ताकि वे बुद्ध को न देख सकें। फिर वह चुपचाप पीछे हट गईं और धीरे-धीरे बुद्ध के पास आकर फुसफुसाते हुए बोलीं, "आदरणीय! आज हमारे पास आपके लिए भिक्षा का भोजन नहीं है।" बुद्ध ने केवल अपना सिर हिलाया। उनका यह हावभाव देखकर ब्राह्मण की पत्नी अपनी हंसी नहीं रोक पाईं और जोर से हंस पड़ीं।

उसी क्षण ब्राह्मण ने मुड़कर देखा और बुद्ध को देखा। वह तुरंत समझ गया कि उसकी पत्नी ने क्या किया है और रोते हुए बोला, "पत्नी, मैं बर्बाद हो गया। जब हमारे पूज्य गुरु द्वार पर खड़े थे, तब तुम्हें मुझे सूचित करना चाहिए था। ऐसा न करके तुमने मुझे बहुत शर्मिंदा किया है।" फिर, चावल की थाली उठाकर वह बुद्ध के पास गया और क्षमा याचना करते हुए बोला, "पूज्यवर! कृपया मेरे इस चावल को स्वीकार करें, जिसे मैंने आधा खा लिया है। मुझे बहुत खेद है कि मुझे आपको आधा खाया हुआ भोजन अर्पित करना पड़ रहा है।" बुद्ध ने उसे उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! भिक्षा में प्राप्त कोई भी भोजन मेरे लिए उपयुक्त है, चाहे वह खाया गया हो या नहीं।" ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि बुद्ध ने उसका भोजन ग्रहण कर लिया था। उसने पूछा कि भिक्षु का मूल्यांकन किस आधार पर किया जाता है और भिक्षु की परिभाषा क्या है। बुद्ध जानते थे कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों को मन और शरीर ( नाम-रूप ) का ज्ञान था, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! जो मन और शरीर से आसक्त नहीं होता, वही भिक्षु कहलाता है।" प्रवचन के अंत में, ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने संतत्व की तीसरी अवस्था प्राप्त कर ली।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 367)

यस्सा नामरूपस्मि सब्बसो ममयितं नत्थि

असता च न सोकाति सो वे भिक्खु इति वुकाति

यस्सा : किसी के लिए; नामरूपस्मिः [ नामरूपस्मि ]: नाम और रूप में; सब्बासो [ सब्बासा ]: सभी रूपों में; ममयितं नत्थि : कोई स्वार्थ नहीं है; असता च : जब वे क्षय हो जाते हैं तब भी; ना सोकाती : कोई रोना नहीं है; तो : वह व्यक्ति; सीई : निश्चित रूप से; भिक्खु इति : एक साधु; वुकाति : कहा जाता है

वह अपने नाम और स्वरूप के बोध से परे जा चुका है। उसके लिए 'मैं', 'मेरा' या 'मेरी' का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि उसका नाम और स्वरूप नष्ट हो जाए, तो भी वह शोक नहीं करेगा। ऐसे व्यक्ति को भिक्षु कहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 367)

नाम-रूपस्मिं : मन और शरीर; मानसिकता और देह। यह प्रतीत्यसमुत्पाद ( पटिच्चसमुत्पाद ) में चौथा सूत्र है, जहाँ यह चेतना से बद्ध है, और स्वयं छह प्रकार की इंद्रिय-आधार की शर्त है। प्रतीत्यसमुत्पाद के विभिन्न रूपों वाले दो ग्रंथों में, चेतना और मन-शरीर की परस्पर बद्धता का वर्णन किया गया है, और बाद वाले को इंद्रिय-प्रभाव ( फस्सा ) की शर्त कहा गया है।

सात शुद्धिकरणों ( विशुद्धि ) में से तीसरा , दृष्टियों का शुद्धिकरण, मन और शरीर के सही अवलोकन के रूप में परिभाषित किया गया है और इसमें अंतर्दृष्टि ध्यान ( विपस्सना ) के माध्यम से मन और शरीर के विवेक के विभिन्न तरीके दिए गए हैं। इस संदर्भ में, मन ( नाम ) में चेतना सहित सभी चार मानसिक समूह शामिल हैं।

पंच-भाव में मन और शरीर अविभाज्य और परस्पर निर्भर होते हैं; इसे दो गट्ठों के गट्ठों से तुलना करके समझाया गया है जो एक दूसरे के सहारे रखे गए हैं: एक के गिरने पर दूसरा भी गिर जाएगा; और एक मजबूत टांगों वाले अंधे व्यक्ति द्वारा अपने कंधों पर तेज दृष्टि वाले कमजोर टांगों वाले व्यक्ति को ले जाने के उदाहरण से भी समझाया गया है: वे केवल एक दूसरे की सहायता से ही कुशलतापूर्वक चल-फिर सकते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 368,376

---

(धम्मपद 367) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 368 से 376 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 377)

---

धम्मपद श्लोक 368 से 376 - सम्बहुलाभिक्खु वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Mettavihari yo bhikkhu
pasanno buddhasasane
adhigacche padam santam
sankharupasamam sukham.
Sinca bhikkhu imam navam
sitta te lahumessati
chetva raganca dosanca
tato nibbanamehisi.
Panca(1) chinde panca(2) jahe
panca(3) cuttari bhavaye
pancasangatigo(4) bhikkhu
"oghatinno" ti vuccati.
Jhaya bhikkhu ma pamado
ma te kamagune ramessu cittam
ma lohagulam gili pamatto
मा कंडी "दुक्खमिदन" ती दयहमनो।
नत्थी झनम अपन्नस्स
पन्ना नत्थी अजहयातो
yamhi jhananca panna ca
sa ve nibbanasantike.
सुननगरम पवित्तस्सा
संतचित्तस्सा भिक्खुनो
amanusi rati hoti
सम्मा धम्मम विपस्सतो.
यतो यतो सम्मासति
खन्धनाम उदयब्बायम
लभाति पिटिपमोज्जम
amatam tam vijanatam.
तात्रयामादि भवति
idha pannassa bhikkhuno
indriyagutti santutthi
patimokkhe ca samvaro.
Mitte bhajassu kalyane

suddhajive atandite
पतिसंथारवुत्यास्सा
acarakusalo siya
tato pamojjabahulo(5)
dukkhassantam karissati.

---

श्लोक 368 : जो भिक्षु प्रेम और करुणा का अभ्यास करते हुए जीवन व्यतीत करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित रहता है, वह निर्वाण (शांति, बिना शर्त, आनंदमयी अवस्था) को प्राप्त करेगा।

---

श्लोक 369 : हे भिक्षु, इस नाव (अपने शरीर) से (गलत विचारों का) पानी निकाल दो; खाली होने पर यह तेजी से चलेगी; कामवासना और द्वेष को त्यागकर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

---

श्लोक 370 : पाँचों (निचले पाँच बंधनों) को काट डालो, पाँचों (ऊपरी पाँच बंधनों) का त्याग कर दो; और पाँचों (नियंत्रण शक्तियों) को विकसित करो। जो भिक्षु पाँचों बंधनों (वासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) से मुक्त हो जाता है, उसे "संसार के जलप्रपात को पार करने वाला" कहा जाता है।

---

श्लोक 371 : हे भिक्षु, ध्यान करो और असावधान मत रहो; अपने मन को इंद्रिय सुखों में लिप्त मत होने दो। असावधान होकर लोहे का (गर्म) टुकड़ा मत निगलो; जब तुम (निरय/नरक में) जल रहे हो, तो यह मत कहो, "यह तो वास्तव में कष्ट है।"

---

श्लोक 372 : बुद्धि के अभाव में एकाग्रता संभव नहीं; एकाग्रता के अभाव में बुद्धि संभव नहीं। जो एकाग्रता और बुद्धि दोनों रखता है, वही वास्तव में निर्वाण के निकट है।

---

श्लोक 373 : वह भिक्षु जो एकांतवास में जाता है (ध्यान करने के लिए), जिसका मन शांत है, जो धम्म को स्पष्ट रूप से समझता है, वह उस आनंद का अनुभव करता है जो (साधारण) मनुष्यों के आनंद से परे है।

---

श्लोक 374 : जब भी वह खन्धों के उद्भव और विनाश को स्पष्ट रूप से समझ लेता है, तो उसे आनंद और परमानंद प्राप्त होता है। बुद्धिमानों के लिए यही निर्वाण (अमरता) का मार्ग है।

---

श्लोक 375 : इस शिक्षा में एक बुद्धिमान भिक्षु के लिए, यह (निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का) आरंभ है: इंद्रियों पर नियंत्रण, संतोष और मूलभूत उपदेशों के अनुसार संयम।

---

श्लोक 376 : अच्छे मित्रों की संगति करो, जो ऊर्जावान हों और जिनकी आजीविका शुद्ध हो; उसे मिलनसार और आचरण में सही होना चाहिए। तब वह (अक्सर) अत्यधिक आनंद का अनुभव करते हुए (पुनर्जन्म के चक्र के) दुःख/कष्ट से मुक्ति पाएगा।

---

1. निम्न पाँच बंधन (ओरंभागीय संयोजन) हैं: अहंकार (सक्कयादित्ति); संशय (विच्चिच्च); नैतिकता और व्यवहार के गलत विचार (सिलब्बतपरमस); कामुक इच्छा (कामराग) और द्वेष (ब्यापाद)। प्रथम, द्वितीय और तृतीय मार्गों के द्वारा इनसे मुक्ति पाई जा सकती है।
2. उच्चतर पाँच बंधन (उद्धंभागीय संयोजन) हैं: भौतिक सुखों की लालसा (रूप राग); अभौतिक सुखों की लालसा (अरूप राग); अहंकार (मान); बेचैनी (उद्धच्च) और अज्ञान (अविज्जा)। इन पाँचों बंधनों से अरहतत्व द्वारा मुक्ति पाई जा सकती है।
3. पाँच नियंत्रण क्षमताएँ (पंचिन्द्रिय) हैं: विश्वास (सद्ध); परिश्रम (विरिया); सचेतनता (सती); एकाग्रता (समाधि) और ज्ञान (पन्ना)।
4. पाँच संग हैं: कामवासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत विचार।
5. पामोज्जाबाहुलो: शाब्दिक अर्थ, बहुत आनंद; टीका के अनुसार, इस संदर्भ में, अक्सर आनंद महसूस करना।

---

बहुत से भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने नौ सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (368) से (376) तक कहे।
सावत्थी से लगभग एक सौ बीस योजन दूर कुराराघरा नगर में एक बहुत धनी महिला रहती थी। उनका एक पुत्र था जो भिक्षु बन गया था; उसका नाम सोना था। एक बार भिक्षु सोना अपने गृह नगर से गुजर रहे थे। जेतवन मठ से लौटने पर उनकी माताजी उनसे मिलीं और उनके सम्मान में एक भव्य दान-पुण्य का आयोजन किया। यह सुनकर कि भिक्षु सोना धम्म का बहुत अच्छा उपदेश दे सकते हैं, उनकी माताजी ने उनसे अपने और गृह नगर के अन्य लोगों को भी धम्म का उपदेश देने का अनुरोध किया। भिक्षु सोना ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस प्रकार एक मंडप बनवाया गया और भिक्षु सोना के प्रवचन के लिए एक सभा का आयोजन किया गया। मंडप में बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे; भिक्षु की माताजी भी अपने पुत्र द्वारा दिए गए धम्म के उपदेश सुनने के लिए गईं। वह अपने घर के सभी सदस्यों को साथ ले गईं, केवल एक दासी को घर की देखभाल के लिए छोड़ दिया।
जब मालकिन घर से बाहर गई हुई थी, तब कुछ चोर घर में घुस गए। उनका सरदार उस मंडप में गया जहाँ घर की मालकिन थी, उसके पास बैठ गया और उस पर नज़र रखने लगा। उसका इरादा था कि अगर मालकिन को चोरी के बारे में पता चले और वह जल्दी घर लौट आए, तो उसे मार डाले। नौकरानी ने चोरों को घर में घुसते देख मालकिन को बताने गई, लेकिन मालकिन ने बस इतना कहा, "चोर मेरा सारा पैसा ले जाएं, मुझे कोई फ़र्क नहीं पड़ता; लेकिन जब मैं धर्म-पाठ कर रही हूँ, तब आकर मुझे परेशान मत करो। बेहतर होगा कि तुम वापस चली जाओ।" तो नौकरानी घर चली गई।
वहाँ लड़की ने चोरों को उस कमरे में सेंध लगाते देखा जहाँ उसकी मालकिन अपने सारे चाँदी के बर्तन रखती थी। वह फिर से उस मंडप में गई जहाँ उसकी मालकिन थी और उसे बताया कि चोर उसके चाँदी के बर्तन ले जा रहे हैं, लेकिन उसे पहले जैसा ही जवाब मिला। इसलिए उसे वापस घर लौटना पड़ा। वहाँ उसने चोरों को उस कमरे में सेंध लगाते देखा जहाँ उसकी मालकिन अपना सोना रखती थी और उसने यह बात अपनी मालकिन को बताई। इस बार उसकी मालकिन उस पर चिल्लाई, "अरे प्यारी! चोरों को जो चाहिए ले जाने दो; जब मैं धर्म पर प्रवचन सुन रही हूँ तो तुम फिर से आकर मुझे क्यों परेशान कर रही हो? जब मैंने तुम्हें जाने के लिए कहा था तो तुम वापस क्यों नहीं गई? फिर कभी मेरे पास आने की हिम्मत मत करना और चोरी या चोरों के बारे में कुछ मत कहना।"
पास ही खड़े चोरों के गिरोह के सरदार ने महिला की सारी बातें सुन लीं और वह बेहद हैरान रह गया। उसके शब्दों ने उसे यह सोचने पर मजबूर कर दिया, "अगर हम इस बुद्धिमान और नेक शख्सियत की संपत्ति चुरा लेंगे, तो हमें ज़रूर सज़ा मिलेगी; हो सकता है हम पर बिजली गिर जाए और हमारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएं।" सरदार इस आशंका से घबरा गया और जल्दी से महिला के घर वापस गया और अपने साथियों से चुराई हुई सारी चीज़ें लौटाने को कहा। फिर वह अपने सभी साथियों को घर की मालकिन के पास ले गया; वह अभी भी मंडप में बैठी ध्यान से धर्म की बातें सुन रही थी।
थेरा सोना ने भोर होते ही धर्म पर अपना प्रवचन समाप्त किया और उस मंच से नीचे उतरे जहाँ से उन्होंने धर्म का प्रवचन दिया था। चोरों का सरदार उस धनी, कुलीन महिला के पास पहुँचा, उन्हें प्रणाम किया और अपनी पहचान बताई। उसने उन्हें बताया कि कैसे उन्होंने उनके घर को लूटा था और यह भी कि जब उन्होंने अपनी दासी को बताया कि रात में चोरी हुई थी, तो उन्होंने उनकी सारी संपत्ति लौटा दी थी। फिर सरदार और सभी चोरों ने महिला से अपने किए पर क्षमा मांगी। इसके बाद उन्होंने थेरा सोना से उन्हें भिक्षु संघ में शामिल करने का अनुरोध किया। संघ में शामिल होने के बाद, नौ सौ भिक्षुओं में से प्रत्येक ने थेरा सोना से ध्यान का एक विषय लिया और एकांत में ध्यान का अभ्यास करने के लिए पास के जंगल में चले गए।
एक सौ बीस योजन की दूरी से बुद्ध ने उन भिक्षुओं को देखा और उन पर अपना प्रकाश भेजा, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे उनके बीच में बैठे हों।
फिर उनके व्यक्तिगत स्वभाव को देखकर बुद्ध ने छंदों में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 368 : जो भिक्षु प्रेम और करुणा का अभ्यास करते हुए जीवन व्यतीत करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित रहता है, वह निर्वाण (शांति, बिना शर्त, आनंदमयी अवस्था) को प्राप्त करेगा।

---

श्लोक 369 : हे भिक्षु, इस नाव (अपने शरीर) से (गलत विचारों का) पानी निकाल दो; खाली होने पर यह तेजी से चलेगी; कामवासना और द्वेष को त्यागकर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

---

श्लोक 370 : पाँचों (निचले पाँच बंधनों) को काट डालो, पाँचों (ऊपरी पाँच बंधनों) का त्याग कर दो; और पाँचों (नियंत्रण शक्तियों) को विकसित करो। जो भिक्षु पाँचों बंधनों (वासना, द्वेष, अज्ञान, अहंकार और गलत दृष्टिकोण) से मुक्त हो जाता है, उसे "संसार के जलप्रपात को पार करने वाला" कहा जाता है।

---

श्लोक 371 : हे भिक्षु, ध्यान करो और असावधान मत रहो; अपने मन को इंद्रिय सुखों में लिप्त मत होने दो। असावधान होकर लोहे का (गर्म) टुकड़ा मत निगलो; जब तुम (निरय/नरक में) जल रहे हो, तो यह मत कहो, "यह तो वास्तव में कष्ट है।"

---

श्लोक 372 : बुद्धि के अभाव में एकाग्रता संभव नहीं; एकाग्रता के अभाव में बुद्धि संभव नहीं। जो एकाग्रता और बुद्धि दोनों रखता है, वही वास्तव में निर्वाण के निकट है।

---

श्लोक 373 : वह भिक्षु जो एकांतवास में जाता है (ध्यान करने के लिए), जिसका मन शांत है, जो धम्म को स्पष्ट रूप से समझता है, वह उस आनंद का अनुभव करता है जो (साधारण) मनुष्यों के आनंद से परे है।

---

श्लोक 374 : जब भी वह खन्धों के उद्भव और विनाश को स्पष्ट रूप से समझ लेता है, तो उसे आनंद और परमानंद प्राप्त होता है। बुद्धिमानों के लिए यही निर्वाण (अमरता) का मार्ग है।

---

श्लोक 375 : इस शिक्षा में एक बुद्धिमान भिक्षु के लिए, यह (निर्वाण की ओर ले जाने वाले अभ्यास का) आरंभ है: इंद्रियों पर नियंत्रण, संतोष और मूलभूत उपदेशों के अनुसार संयम।

---

श्लोक 376 : अच्छे मित्रों की संगति करो, जो ऊर्जावान हों और जिनकी आजीविका शुद्ध हो; उसे मिलनसार और आचरण में सही होना चाहिए। तब वह (अक्सर) अत्यधिक आनंद का अनुभव करते हुए (पुनर्जन्म के चक्र के) दु:ख/कष्ट से मुक्ति पाएगा।

---

प्रत्येक श्लोक के अंत में, नौ सौ भिक्षुओं में से सौ भिक्षुओं ने अरहतत्व प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक धर्मनिष्ठ महिला और चोरों की कहानी

एक समय की बात है, जब पूज्य महा कच्चाना अवंती देश में कुररघारा नगर के निकट एक पर्वत पर निवास कर रहे थे, तब सोन कूटिकण्ण नामक एक गृहस्थ शिष्य, भिक्षु के उपदेशों से धम्म की सत्यता से आश्वस्त होकर, संसार त्याग कर उनके अधीन भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त की। पूज्य महा कच्चाना बार-बार कहते रहे, "सोन, अकेले भोजन करना, अकेले रहना और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना कठिन है," और उन्होंने दो बार उन्हें अस्वीकार कर दिया।

लेकिन सोन भिक्षु बनने के लिए दृढ़ निश्चयी थे, और पूज्य गुरु से तीसरी बार अनुरोध करने पर संघ में प्रवेश पाने में सफल रहे। दक्षिण में भिक्षुओं की कमी के कारण, उन्होंने उस देश में तीन वर्ष व्यतीत किए, और फिर संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण दीक्षा ली। बुद्ध के दर्शन करने की इच्छा से उन्होंने अपने गुरु से अनुमति ली, और उनसे संदेश लेकर जेतवन मठ के लिए प्रस्थान किया। जेतवन पहुँचकर उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, जिन्होंने उनका सौहार्दपूर्ण ढंग से स्वागत किया और उन्हें अपने साथ एकांत में सुगंधित कक्ष में ठहरने की अनुमति दी।

सोन ने रात का अधिकांश समय खुले में बिताया, और फिर सुगंधित कक्ष में प्रवेश करके शेष रात अपने लिए निर्धारित पलंग पर व्यतीत की। भोर होते ही उन्होंने बुद्ध के आदेशानुसार सोलह अष्टक मंत्रों का पाठ किया। पाठ पूरा होने पर बुद्ध ने उन्हें धन्यवाद दिया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, "शाबाश, शाबाश, भिक्षु!" बुद्ध द्वारा दी गई प्रशंसा सुनकर पृथ्वी, नाग और सुपन्न देवताओं से लेकर ब्रह्मा लोक तक सभी देवताओं ने एक साथ जयजयकार की।

उसी क्षण जेतवन से एक सौ बीस मील की दूरी पर स्थित कुररघारा नगर में पूज्य सोन की माता, जो एक प्रख्यात महिला शिष्या थीं, के घर में विराजमान देवता ने ज़ोरदार जयजयकार की। शिष्या ने देवता से पूछा, "यह कौन है जो जयजयकार कर रहा है?" देवता ने उत्तर दिया, "मैं हूँ, बहन।" "आप कौन हैं?" "मैं आपके घर में रहने वाला देवता हूँ।" "आपने पहले कभी मेरी जयजयकार नहीं की; आज क्यों कर रहे हैं?" "मैं आपकी जयजयकार नहीं कर रहा हूँ।" "तो फिर आप किसकी जयजयकार कर रहे हैं?" "अपने पुत्र पूज्य कूटिकण्न सोन की।" "मेरे पुत्र ने क्या किया है?"

"आज, आपके पुत्र ने सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहते हुए बुद्ध को धम्म का पाठ किया। बुद्ध आपके पुत्र के धम्म पाठ से प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा की; इसलिए मैंने भी उसकी प्रशंसा की। क्योंकि जब देवताओं ने बुद्ध द्वारा आपके पुत्र की प्रशंसा सुनी, तो पृथ्वी के देवताओं से लेकर ब्रह्मा लोक तक सभी ने एक साथ जयजयकार की।" "गुरुजी, क्या आपका सचमुच यही मतलब है कि मेरे पुत्र ने बुद्ध को धम्म का पाठ किया? क्या बुद्ध ने मेरे पुत्र को धम्म का पाठ नहीं किया?" "आपके पुत्र ने ही बुद्ध को धम्म का पाठ किया।"

जब देवता ने ऐसा कहा, तो शिष्या के भीतर पाँचों प्रकार के आनंद का संचार हुआ और वह आनंद उसके पूरे शरीर में व्याप्त हो गया। तब उसके मन में यह विचार आया, "यदि मेरा पुत्र सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहकर उन्हें धर्म का पाठ कर सकता है, तो वह मुझे भी धर्म का पाठ कर सकेगा। जब मेरा पुत्र लौटेगा, तो मैं धर्म के पाठ की व्यवस्था करूँगी और उसके धर्म उपदेश को सुनूँगी।"

जब बुद्ध ने पूज्य सोन की प्रशंसा की, तो सोन ने मन ही मन सोचा, "अब समय आ गया है कि मैं अपने गुरु का संदेश सुनाऊँ।" तदनुसार, पूज्य सोन ने बुद्ध से पाँच वरदान माँगे, जिनमें से पहला वरदान सीमावर्ती क्षेत्र में स्थित पाँच भिक्षुओं के संघ में पूर्ण प्रवेश था, जिनमें से एक विनय विद्या में पारंगत भिक्षु थे। कुछ दिनों तक वे बुद्ध के साथ रहे, और फिर मन ही मन सोचते हुए, "अब मैं अपने गुरु से मिलने जाऊँगा," बुद्ध से विदा लेकर जेतवन मठ से प्रस्थान किया और उचित समय पर अपने गुरु के निवास पर पहुँचे।

अगले दिन पूज्य कच्चाना पूज्य सोन को अपने साथ लेकर भिक्षा मांगने निकले और सोन की माता, जो उनकी गृहस्थ शिष्या थीं, के घर गए। सोन की माता ने अपने पुत्र को देखकर आनंद से भर उठीं। उन्होंने सोन का विशेष ध्यान रखा और उनसे पूछा, "प्रिय पुत्र, क्या यह सच है कि तुम सुगंधित कक्ष में बुद्ध के साथ एकांत में रहे और बुद्ध को धर्म का पाठ सुनाया?" सोन ने पूछा, "शिष्य, यह बात आपको किसने बताई?" "प्रिय पुत्र, इस घर में निवास करने वाले देवता ने स्तुतिगान किया और जब मैंने पूछा, 'यह कौन है जो स्तुतिगान कर रहा है?' तो देवता ने उत्तर दिया, 'मैं ही हूँ,' और ऐसा कहा।"

"उसकी बातें सुनने के बाद मेरे मन में यह विचार आया, 'यदि मेरे पुत्र ने बुद्ध को धम्म सुनाया है, तो वह मुझे भी सुना सकेगा।' प्रिय पुत्र, क्योंकि तुमने बुद्ध को धम्म सुनाया है, इसलिए तुम मुझे भी सुना सकोगे। अतः फलाँ दिन मैं धम्म प्रवचन की व्यवस्था करूँगी और तुम्हारा धम्म प्रवचन सुनूँगी।" उसने सहमति दे दी। उस गृहस्थ शिष्या ने भिक्षुओं के समूह को दान दिया और उनका आदर किया। फिर उसने मन ही मन कहा, 'मैं अपने पुत्र का धम्म प्रवचन सुनूँगी।' और घर की रखवाली के लिए केवल एक दासी को छोड़कर, वह अपनी सभी सेविकाओं को साथ लेकर धम्म प्रवचन सुनने चली गई। नगर में, धम्म प्रवचन के लिए निर्मित एक मंडप में, उसका पुत्र धम्म के भव्य आसन पर विराजमान हुआ और धम्म प्रवचन देने लगा।

उस समय नौ सौ चोर इधर-उधर मंडरा रहे थे और इस महिला साध्वी के घर में घुसने का कोई रास्ता तलाश रहे थे। चोरों से बचाव के लिए, उनके घर के चारों ओर सात दीवारें बनी हुई थीं, सात बुर्जदार द्वार थे, और दीवारों के चारों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खूंखार कुत्ते बंधे हुए थे। इसके अलावा, घर के अंदर, जहाँ छत से पानी टपकता था, वहाँ एक खाई खोदी गई थी और उसमें सीसा भरा गया था। दिन के समय यह सीसा सूर्य की किरणों में पिघलकर गाढ़ा हो जाता था, और रात के समय इसकी सतह सख्त और कठोर हो जाती थी। खाई के पास ही लोहे के बड़े-बड़े खंभे लगातार जमीन में गाड़े गए थे। ये थे इस महिला साध्वी द्वारा चोरों से बचाव के लिए किए गए एहतियाती उपाय।

घर के बाहर की सुरक्षा व्यवस्था और अंदर शिष्या की उपस्थिति के कारण चोर अंदर घुसने का कोई रास्ता नहीं खोज पाए थे। लेकिन उस दिन, जब उन्होंने देखा कि वह घर से बाहर गई हुई है, तो उन्होंने सीसे की खाई और लोहे की चौखटों के नीचे एक सुरंग खोदी और इस तरह घर में घुसने में सफल हो गए। घर में प्रवेश करने के बाद, उन्होंने सरगना को घर की मालकिन पर नज़र रखने के लिए भेजा और उससे कहा, "यदि उसे पता चले कि हम घर में घुस गए हैं, और वह मुड़कर घर की ओर आने लगे, तो उसे अपनी तलवार से मार डालना।"

गिरोह की सरगना उसके पास जाकर खड़ी हो गई। चोरों ने घर में घुसते ही दीपक जलाया और उस कमरे का दरवाजा खोल दिया जहाँ तांबे के सिक्के रखे थे। दासी ने चोरों को देखा और अपनी स्वामिनी शिष्या के पास जाकर कहा, "स्वामी जी, बहुत से चोर आपके घर में घुस आए हैं और उस कमरे का दरवाजा खोल दिया है जहाँ तांबे के सिक्के रखे हैं।" शिष्या ने उत्तर दिया, "चोर जितने भी तांबे के सिक्के देखें, ले लें। मैं अपने पुत्र का धर्मोपदेश सुन रही हूँ। मेरे लिए धर्म को भंग मत कीजिए। घर जाइए।" इतना कहकर उसने उसे वापस भेज दिया।

जब चोरों ने तांबे के सिक्कों वाले कमरे को खाली कर दिया, तो उन्होंने चांदी के सिक्कों वाले कमरे का दरवाजा खोल दिया। दासी एक बार फिर अपनी मालकिन के पास गई और उन्हें सारी बात बताई। दासी ने उत्तर दिया, "चोर जो चाहें ले जाएं; मेरे लिए धर्म को अपवित्र न करें," और उसे वापस भेज दिया। जब चोरों ने चांदी के सिक्कों वाले कमरे को खाली कर दिया, तो उन्होंने सोने के सिक्कों वाले कमरे का दरवाजा खोल दिया। दासी एक बार फिर अपनी मालकिन के पास गई और उन्हें सारी बात बताई। तब दासी ने उससे कहा, "हे स्त्री! तुम दो बार मेरे पास आ चुकी हो, और मैंने तुमसे कहा है, 'चोर जो चाहें ले जाएं; मैं अपने पुत्र का धर्मोपदेश सुन रही हूँ; मुझे परेशान मत करो।' लेकिन मेरे कहने के बावजूद तुमने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया; बल्कि तुम बार-बार वैसे ही यहाँ आती हो। अगर तुम एक बार फिर यहाँ आई, तो मैं तुम्हारे कर्मों का फल तुम्हें दूंगी। वापस घर जाओ।" इतना कहकर उसने उसे वापस भेज दिया।

जब चोरों के सरदार ने उस महिला शिष्या की ये बातें सुनीं, तो उसने मन ही मन कहा, "यदि हम ऐसी स्त्री का सामान चुराएँगे, तो इंद्र का वज्र गिरेगा और हमारे सिर चकनाचूर हो जाएँगे।" इसलिए वह चोरों के पास गया और बोला, "जल्दी करो और उस महिला शिष्या का धन वापस उसी स्थान पर रख दो जहाँ वह पहले था।" तब चोरों ने तांबे के सिक्कों वाले कमरे को तांबे के सिक्कों से और सोने-चाँदी

वाले कमरों को सोने-चाँदी के सिक्कों से भर दिया। हमें बताया जाता है कि जो कोई धर्म के मार्ग पर चलता है, धर्म उसे सुरक्षित रखता है।

इसलिए बुद्ध ने कहा,

जो व्यक्ति धार्मिकता के मार्ग पर चलता है, धर्म ही उसकी रक्षा करता है।

धार्मिक जीवन जीने से सुख मिलता है।

धार्मिक जीवन जीने का यही लाभ है:

जो व्यक्ति धार्मिकता के मार्ग पर चलता है, वह कभी भी कष्ट की अवस्था में नहीं जाएगा।

चोर मंडप में गए और धम्म का पाठ सुनने लगे। जैसे-जैसे रात ढलती गई, पूज्य गुरु ने अपना धम्म पाठ समाप्त किया और धम्म आसन से नीचे उतरे। उसी क्षण चोरों के सरदार ने महिला शिष्या के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा, "मुझे क्षमा कीजिए, मेरी स्वामिनी।" "मित्र, आपका क्या तात्पर्य है? मुझे आपसे घृणा हो गई थी और मैं आपको जान से मारने के इरादे से आपके पास खड़ी थी।" "ठीक है, मित्र, मैं आपको क्षमा करती हूँ।" बाकी चोरों ने भी ऐसा ही किया। "मित्रों, मैं आपको क्षमा करती हूँ," महिला शिष्या ने कहा। तब चोरों ने महिला शिष्या से कहा, "मेरी स्वामिनी, यदि आप हमें क्षमा कर दें, तो हमें अपने पुत्र के अधीन संघ में प्रवेश करने का सौभाग्य प्रदान कीजिए।"

उस महिला शिष्या ने अपने पुत्र को प्रणाम किया और कहा, "प्रिय पुत्र, ये चोर मेरे अच्छे गुणों और तुम्हारे धम्म पाठ से इतने प्रसन्न हुए हैं कि वे संघ में प्रवेश लेना चाहते हैं; इन्हें संघ में प्रवेश दे दीजिए।" "अच्छी बात है," पूज्य भिक्षु ने उत्तर दिया। अतः उन्होंने उनके अंतर्वस्त्रों के पल्लू कटवा दिए, उनके वस्त्रों को लाल मिट्टी से रंगवाया, उन्हें संघ में प्रवेश दिया और उन्हें धर्मोपदेशों में स्थापित किया। जब उन्होंने संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली, तो उन्होंने उनमें से प्रत्येक को ध्यान का एक अलग विषय दिया। तब उन नौ सौ भिक्षुओं ने अपने-अपने प्राप्त नौ सौ ध्यान विषयों को लेकर एक पर्वत पर चढ़ाई की और प्रत्येक ने अलग-अलग वृक्षों की छाया में बैठकर ध्यान किया।

बुद्ध, एक सौ बीस मील दूर स्थित जेतवन के महान मठ में बैठे हुए भी, उन भिक्षुओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करते थे, उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप शिक्षा का एक रूप चुनते थे, अपनी एक तेजस्वी छवि प्रकट करते थे, और मानो उनके सामने बैठकर उनसे बात कर रहे हों, श्लोक सुनाते थे।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 368)

यो भिक्खु मेत्ताविहारी बुद्धसासने पसन्नो

संखारूपसमं सुखं संतं पदं अधिगच्छे

यदि कोई भिक्षु प्रेम से परिपूर्ण हो, तो वह बुद्ध के उपदेशों में आनंदित होता है । वह अपने जीवन की बेचैनी को शांत करते हुए परमानंद की अवस्था में पहुँचता है ।

जो भिक्षु सभी के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है, बुद्ध की शिक्षाओं में आनंद लेता है, वह परमानंद की अवस्था, निर्वाण की खुशी प्राप्त करेगा, जो अस्तित्व की बेचैनी को शांत करने का प्रतीक है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 369)

भिक्खु इमाम नावं सिन्का ते सित्ता लाहुम एस्सति

रागं च दोसं च चेत्वा ततो निब्बाणं एहिसि

भिक्खु : हे भिक्षु; इमं नावं [ नाव ]: यह नाव; मानव जीवन; सिंघ : खाली; ते : आपके द्वारा; सिट्टा : खाली (यह नाव); लहुम : हल्का और तेज होकर; एस्साति : निर्वाण पहुँचेगा; रागांच : जुनून; दोसांच : दुर्भावना; चेत्वा : काट दिया, ततो : तब; निब्बानम एहिसी : निर्वाण पहुँचेगा।

हे भिक्षु, अपनी नाव से पानी निकाल दें, क्योंकि यदि उसमें पानी जमा हो गया तो वह डूब जाएगी। पानी निकल जाने और नाव खाली हो जाने पर, कामवासना और घृणा दोनों दूर हो जाने पर, वह शीघ्र ही अपने गंतव्य — निर्वाण — तक पहुँच जाएगी।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 370)

पञ्च छिन्दे जहे पञ्च च उत्तरि भावये

पञ्च संगतिगो भिक्खु ओघटिनो इति वुक्काति

पंच : पाँच (निचले बंधन); चिंदे : तोड़ना; पंच : पाँच (ऊपरी बंधन); जहे : छुटकारा पाना; पंच : पाँच (अच्छी इंद्रियाँ); उत्तरी : विशेष रूप से; भावये : विकसित करना; पंच संगातिगो [ संगतिगा ]: पाँच संग बंधनों से परे जाना; ओघतिण्णो इति : धारा पार कर जाना; वच्चति : कहलाता है

मनुष्य को पाँच निम्न बंधनों से मुक्त होना चाहिए। उसे पाँच उच्च बंधनों से छुटकारा पाना चाहिए। उसे पाँचों इंद्रियों का विकास करना चाहिए। उसे पाँचों आसक्तियों से परे जाना चाहिए। इन सबको प्राप्त करने वाले भिक्षु को जलप्रपात पार करने वाला कहा जाता है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 371)
भिक्खु झाया मा च पमादो ते चित्तं कामगुणे मा भमास्सु
पमत्तो लोहगुलं मा गिलि दयहमणो इदं दुक्खम कांडी
भिक्खु : हे साधु; झाया : ध्यान करें; मा च पमादो [ पमादा ]: आलसी मत बनो; ते चित्तं [ चित्त ]: आपका मन; कामगुणे : पांच गुना कामुक आकर्षण में; मा भमास्सु : घूमने की अनुमति न दें; पमट्टो [ पमट्टा ]: अकर्मण्य होना; लोहागुलं [ लोहागुला ]: लोहे की गेंदें; मा गिली : निगलो मत; ḍayhamāno [ ḍayhamāna ]: जलना; इदं दुक्खम : ओह, यह दुख है; माँ कंडी : शोक मत करो
हे भिक्षु, ध्यान करो और आलसी मत बनो। अपने मन को इंद्रिय सुखों में भटकने मत दो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो नरक में तुम्हारे गले में लोहे के गोले ठूंस दिए जाएँगे। तुम अपने भाग्य पर विलाप करते हुए कहोगे, "यही तो दुख है।" ऐसा होने मत दो।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 372)
अपान्नस्स झानं नत्थि अझायतो पणना नत्थि
यमहि झाणञ्च पन्ना च सो वे निब्बानसान्तिके
अपाञ्ञस्स : नासमझों के लिए; झानम् नत्थि : (उसमें) ध्यान नहीं है; अझायतो [ अझायत ]: ध्यानहीन व्यक्ति के लिए; पन्ना नत्थि : (उसमें) ज्ञान नहीं है; यंहि : किसी व्यक्ति में; झानंच : ध्यान और; पन्ना च : ज्ञान (मौजूद हैं); इसलिए : वह व्यक्ति; वे : निश्चित रूप से; निब्बानसन्तिके : निर्वाण के निकट है
जिसमें ध्यान का अभाव होता है, उसमें ज्ञान का अभाव होता है। ध्यान और ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं और एक के बिना दूसरा प्राप्त नहीं हो सकता। यदि किसी व्यक्ति में ध्यान और ज्ञान दोनों विद्यमान हों, तो वह निर्वाण के निकट होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 373)
सुननगरं पवित्रस्स संतचित्तस्स धम्मं
सम्मा विपश्यतो भिक्खुनो अमानुषि रति होति
सुञ्ञागारं [ सुञ्ञागार ]: एक खाली घर; पविट्ठस्स : प्रवेश करने वाले के लिए; शांतचित्तस्स : शांत मन वाले व्यक्ति के लिए; धम्मं [ धम्म ]: चीजों की वास्तविकता; सम्मा : अच्छा; विपस्सतो [ विपस्सता ]: अंतर्दृष्टि रखने वाला; भिक्खुनो [ भिक्खुना ]: भिक्षु; अमानुसी : आम मनुष्यों द्वारा ज्ञात नहीं; रति : परमानंद; होति : घटित होना
एक भिक्षु जो किसी खाली घर में प्रवेश करता है, जिसका मन शांत होता है, और जो चीजों की वास्तविकता को देखने में सक्षम होता है, उसे एक ऐसे परमानंद का अनुभव होता है जो सामान्य मनुष्यों को ज्ञात नहीं होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 374)
यतो यतो खंडानं उदयबबयं सम्मासति
पित पमोज्जं लभति तं विजानतं अमातं
यतो यतो : कब तक; खंडाणं [ खंडाणां ]: समुच्चय; उदयबबयं [ उदयबबया ]: उठता है और नष्ट हो जाता है; सम्मासति : बुद्धिमानी से चिंतन करें; पिटि पमोज्जां [ पमोज्जा ]: खुशी और परमानंद; लभाति : अर्जित होगा; तं : यह; विजानताम् [ विजानता ]: उन लोगों के लिए जो जानते हैं; अमाताम् [ अमाता ]: मृत्युहीन है
जब ध्यान करने वाला व्यक्ति शरीर के तत्वों के उदय और क्षय पर चिंतन करता है, तो उसे एक आनंद और परमानंद का अनुभव होता है, जो निर्वाण ( अमत ) का पूर्वाभास होता है, उन लोगों के लिए जो इसे जानते हैं।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 375)
इधा पन्नस्सा भिक्खुनो तत्र अयं आदि भवति
इंद्रियगुट्टी संतुथि पतिमोक्खे च सांवरो
च शुद्धजिवे अतंदिते कल्याणे मित्ते भजस्सु
इधा : इस शिक्षा में; पन्नास्स : बुद्धिमान ध्यानियों के लिए; तत्र : उत्थान और पतन के इस चिंतन में; अयं : इस प्रकार; आदि भवति : पहला कदम है; इंद्रियगुत्ति : इंद्रियों की रक्षा; संतुत्थी : तीन प्रकार की संतुष्टि; पातिमोक्खे : अनुशासन संहिता में; संवरो च : संयम; शुद्धाजीवे : जीवन की शुद्धता वाले; अतंदित : आराम न करने वाले; कल्याणे मित्ते : लाभकारी मित्र; भजस्सु : सहयोगी
समुच्चयों के उत्थान और पतन की जागरूकता के माध्यम से प्राप्त होने वाला आनंद, निर्वाण के पूर्वाभास के रूप में, ज्ञानी ध्यानी के लिए पहला कदम है। इंद्रियों पर नियंत्रण, समभाव और अनुशासन नैतिकता के प्रमुख सिद्धांत हैं, और साथ ही ऐसे अच्छे मित्रों का साथ भी महत्वपूर्ण है जो निरंतर प्रयास करते हैं और जिनका व्यवहार शुद्ध होता है।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 376)
पतिसंथारावुटियास्सा अकारकुसलो सिया
ततो पमोज्जबाहुलो दुक्खस्सन्तम्

paṭisanthāravuti : विनम्र और सुखद व्यवहार; assa : ऐसा होना चाहिए; ācārakusalo [ ācārakusala ]: धर्म के अभ्यास में कुशल; tato : इसके कारण; pāmojjabahulo [ pāmojjabahula ]: परमानंद की स्थिति में होना; dukkhassa antaṃ karissati : आपके दुख समाप्त हो जाएंगे

व्यक्ति को शिष्ट और सुखद व्यवहार वाला होना चाहिए। उसे उचित रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों का कुशलतापूर्वक पालन करना चाहिए। इनसे व्यक्ति को अपार आनंद प्राप्त होता है, जो उसे दुखों के अंत की ओर ले जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 368-376)

मेट्टाविहारी : बौद्ध धर्म में प्रेम और करुणा के साथ जीवन जीने पर काफी जोर दिया जाता है, जिसे मेट्टाविहारी कहते हैं ।

मैत्री , असीम परोपकार या मित्रता, स्वयं साधक के आत्म-बलिदान और समर्पित सेवा के सकारात्मक स्वरूप पर बल देती है, जो किसी एक भाग या अस्तित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है और इसमें सभी प्राणी शामिल हैं, उच्चतम से निम्नतम तक, और जीवन के सबसे बड़े से सबसे छोटे रूप तक। जैसा कि बुद्ध और उनके अनुयायियों में उदाहरण के रूप में देखा गया है और शास्त्रों में वर्णित है, मैत्री क्षणिक भावना का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि सेवा, सद्भावना और मित्रता का एक निरंतर और अभ्यस्त मानसिक दृष्टिकोण है, जो कर्म, वचन और विचार में व्यक्त होता है। बुद्ध की शिक्षाओं में इस दिव्य अवस्था को दिए गए महत्व की पुष्टि करने वाले अनेक अंशों का संकलन किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो, मैत्री भाव का अभ्यास एक नैतिक गुण है, जो ध्यान की बजाय सद्भावना की भावना को विकसित करने में सहायक होता है। शिष्य को अन्य प्रकार के ध्यान के साथ-साथ मैत्री भाव का अभ्यास करना चाहिए ; क्योंकि क्रोध और द्वेष से मन को शुद्ध करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा, शिष्य को यह भी पता चलेगा कि यह ध्यान के अभ्यास में एक महत्वपूर्ण सहारा है, जो तत्काल सफलता दिलाता है और उन बाहरी बाधाओं से सुरक्षा प्रदान करता है जिनका उसे सामना करना पड़ सकता है।

महा राहुलवाद सूत्र में हम पढ़ते हैं कि बुद्ध ने अपने पुत्र, पूज्य राहुल को मैत्री का अभ्यास करने की सलाह दी, क्योंकि मैत्री का अभ्यास करने से क्रोध दूर हो जाता है। मेघिया सूत्र में पूज्य मेघिया को भी यही सलाह दी गई है, जो शुरू में लगातार उठने वाले बुरे विचारों के कारण ध्यान में सफलता प्राप्त नहीं कर पाए थे। बाद में उन्होंने विकसित मैत्री की सहायता से बुरे विचारों को दूर करके अर्हतत्व प्राप्त किया।

स्वतंत्र ध्यान विधि के रूप में मेट्टा का अभ्यास करने की कई विधियाँ विभिन्न संदर्भों में ग्रंथों में वर्णित हैं। इस विषय पर चर्चा करते समय हमें सुत्त पिटक में वर्णित चार विधियों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

इन चारों में से, ब्रह्मविहार अभ्यास का वह सूत्र जो निकायों में सबसे अधिक बार आता है और जो तेविज्ज सूत्र में पाया जा सकता है, मुख्य रूप से 'दिसाफरन' विधि से संबंधित है। इसमें संपूर्ण जगत को सभी दिशाओं में विस्तारित मैत्रीपूर्ण विचार से व्याप्त करना शामिल है और यह ध्यान की अवस्थाओं से जुड़ा है।

हम यहां इस सूत्र को, इसके पाली संस्करण के साथ, उद्धृत कर रहे हैं ताकि इसकी विशिष्ट प्रकृति को दर्शाया जा सके:

तो मेत्तसहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहारति। तथा दुतियाम्, तथा चतुत्थम् ,
इति उद्धं अधो, तिरियं, सब्बाधि, सब्बत्तताय, सब्बवंतं लोकं मेत्तसहागतेन चेतसा ,
विपुलेन, महग्गतेन, अप्पमानेन, अवेरेना, अब्यपज्जेन फरित्वा विहारति ।

शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार है:

वह अपने मित्रतापूर्ण मन से एक चौथाई भाग को भावपूर्ण बनाकर रहता है।
इसी प्रकार, दूसरा, तीसरा और चौथा; यानी ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर जगह।
वह अपने आप में ही संपूर्ण संसार में मित्रता से परिपूर्ण भाव से व्याप्त रहता है।
प्रचुर, महान, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।

इस सूत्र की चर्चा बुद्धघोष थेरा ने अपने विशुद्धिमग्ग में की है , जहाँ वे इसे विकुब्बना के रूप में परिभाषित करते हैं । यह शब्द इद्धिविध के संदर्भ में विकुब्बना-इद्धि के रूप में भी प्रयोग होता है , जिसका अर्थ है विभिन्न प्रकार की मानसिक शक्तियों का प्रयोग करना। इसका तात्पर्य परोपकारी विचारों के एक विशाल क्षेत्र की स्थापना से है, जो अप्पणा या झान अवस्था तक विस्तारित होता है। अतः, यह सूत्र मैत्री के अभ्यास द्वारा झान अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अभ्यस्त मानसिक दृष्टिकोण को इंगित करता है और हम इसे करुणा , मुदिता और उपेक्षा जैसी अन्य परोपकारी भावनाओं के साथ बारी-बारी से दोहराते हुए पाते हैं ।

धार्मिक साधक द्वारा अपनाई जाने वाली विशेष जीवन शैली का वर्णन करते हुए, यह सूत्र बाह्य जगत के प्रति, विशेषकर ध्यान अवस्था में, उसके मानसिक दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त, यह उस व्यक्ति के दृष्टिकोण का वर्णन करता है जो न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को चोट पहुँचाता है, बल्कि संतुष्ट, शांत और स्थिर जीवन जीता है, शांति के सुख का आनंद लेता है, स्वयं एक ब्रह्म ( ब्रह्म भूतेन अत्तना ) है। इस सूत्र का विशेष संदर्भ उपाली सूत्र से मेल खाता है , जहाँ कहा गया है कि

जिन लोगों ने ध्यान और मानसिक शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं, परन्तु अभी तक मैत्री का विकास नहीं किया है , वे क्रोध के कारण अपने मन को विचलित करके ही दूसरों को नष्ट कर सकते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में दंडक, कालिंग, मेझ और मातंग नामक वन कुछ प्राचीन ऋषियों के क्रोध के कारण वन बन गए थे ( पुब्बका इसयो )। लेकिन, जैसा कि सूत्र कहता है, बुद्ध का शिष्य अपने असीम प्रेम और करुणा से पूरे ब्रह्मांड को व्याप्त करते हुए , क्रोध और द्वेष से मुक्त रहता है।

सुप्रसिद्ध मेट्टा सूत्र , या करणीय मेट्टा सूत्र , आत्मरक्षा और कर्मठता दोनों के रूप में मेट्टा के अभ्यास का तरीका बताता है । इसमें सुख और शांति की तलाश करने वाले इस धार्मिक प्रशिक्षण प्रणाली का पालन करने वाले शिष्य के लिए मेट्टा को एक आवश्यक कर्तव्य के रूप में बल दिया गया है। यह सूत्र धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान पाठ और परित्त समारोह में जप के लिए चुने गए सबसे महत्वपूर्ण प्रवचनों में से एक है , जो आमतौर पर शुभ अवसरों पर, या किसी विपत्ति, महामारी या व्यक्तिगत बीमारी की स्थिति में आयोजित किया जाता है। ध्यान के शिष्य के लिए इसका विशेष महत्व है।

योगावचार के नियमावली में हम पढ़ते हैं कि सभी ध्यान अभ्यासों से पहले की जाने वाली प्रार्थना के भाग के रूप में, मैत्री सूत्र का पाठ पाली रूप में किया जाना चाहिए। इस सूत्र का पाठ इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि शब्दों में एक विशेष ध्वनि उत्पन्न होती है, जिसका विशेष महत्व है, और इसका पाठ हमेशा एक विशेष स्वर में किया जाता है। लेकिन सूत्र का मुख्य उद्देश्य मैत्री के अभ्यास की व्याख्या करना और ध्यान अभ्यास की एक निश्चित प्रणाली तैयार करना है। इसके अलावा, यह मैत्री को व्याप्त करने की विधि का एक विशेष विस्तार है और तेविज्ज सूत्र के सूत्र में दर्शाई गई विधि के अनुरूप है । इतना ही नहीं, इसी मैत्री सूत्र में मैत्री की तुलना मातृ प्रेम से की गई है और इसे विशेष रूप से ब्रह्म-विहार कहा गया है । केवल इस ध्यान के अभ्यास से ही पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है, जैसा कि इस कथन में बल दिया गया है, 'इसलिए, वह कभी पुनर्जन्म में वापस नहीं आएगा।'

मैत्री का एक अन्य विशेष प्रयोग खंड परित्त में मिलता है , जहाँ इसे साँपों से होने वाले नुकसान से बचाव के रूप में बताया गया है। इसमें कहा गया है कि सावत्थी के एक भिक्षु की मृत्यु साँप के काटने से हुई। कई भिक्षुओं ने यह समाचार बुद्ध को दिया, जिन्होंने कथित तौर पर कहा, “भिक्षु ने साँपों के चार कुलों के प्रति मैत्री का अभ्यास नहीं किया था। साँपों के चार कुल ( कुल ) हैं, अर्थात् विरुपाक्ख , एरापथ , छब्यापुत्त और काण्हागोतमक । यदि उन्होंने इन चारों प्रकार के साँपों के प्रति मैत्री का अभ्यास किया होता, तो उनकी मृत्यु साँप के काटने से नहीं होती। मैं आप भिक्षुओं को सलाह देता हूँ कि आप अपनी सुरक्षा के लिए इन साँपों के प्रति मैत्रीपूर्ण विचार रखें (यानी मन में मैत्रीपूर्ण विचार रखें )।”

यहां मंत्रों में संवहन की वास्तविक विधि दी गई है, और इसे चार नाग परिवारों से शुरू करते हुए धीरे-धीरे विस्तारित किया जाना है, इस प्रकार:

क्या मुझे विरुपाक्खों के साथ मित्रता का संबंध रखने की अनुमति है?<br>
क्या मुझे चब्यपुत्तों के साथ मित्रता का अवसर मिल सकता है?<br>
एरापथों के साथ मेरी मित्रता बनी रहे,<br>
मुझे कण्हागोतमकों के साथ मित्रता प्राप्त हो।

इसके बाद यह विस्तार धीरे-धीरे कई चरणों में आगे बढ़ता है और इसमें विभिन्न प्रकार के जीव शामिल होते हैं; जैसे कि बिना पैरों वाले, दो पैरों वाले, चौपाए और अनेक पैरों वाले। इसके बाद शिष्य की आकांक्षा इस प्रकार होती है:

पैरविहीन मुझे हानि न पहुंचाएं।<br>
और न ही वे जिनके दो पैर होते हैं;<br>
चौपाये मुझे नुकसान न पहुंचाएं।<br>
और न ही वे जिनके कई पैर हों।

फिर वह असीम प्रसार को विकसित करते हुए आगे बढ़ता है:

Sabbe sattā sabbe pāṇā<br>
Sabbe bhūtā ca kevalā —<br>
Sabbe bhadrāni passantu ;<br>
Mā kañci pāpamāgamā .

सभी प्राणी, सभी जीवित प्राणी,<br>
जन्म लेने वाले सभी लोग, और हर कोई,<br>
सभी को सुख मिले।<br>
और किसी को कोई हानि न हो।

इस श्लोक में कुछ वास्तविक शब्द (जैसे सब्बे सत्ता , सब्बे पाना , सब्बे भूता इत्यादि) शामिल हैं जो बाद के ग्रंथों में दिए गए ध्यान के सूत्र में आते हैं। इसके बाद आह्वान आता है:

बुद्ध, धम्म और संघ का सद्गुण अनंत है;
परिमित जीवों में रेंगने वाले जीव शामिल हैं, जैसे सांप, बिच्छू, कनखजूरा।
मकड़ियां, घरेलू छिपकलियां, चूहे और गिलहरी।
मैंने अपनी सुरक्षा और बचाव कर लिया है।
सभी प्राणी शांतिपूर्वक मुंह फेर लें।
बुद्ध के प्रति श्रद्धा, सात पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा।

इस सूत्र की परंपरा बहुत पुरानी और सुस्थापित है। यह खंड-वत्त जातक में मिलता है , जहाँ बोधिसत्व ने अपने अनुयायियों को सर्पों से बचाव के लिए इसी परित्त (जो इसी रूप में दिया गया है) का पालन करने की सलाह दी थी; क्योंकि वे हिमालय घाटी के एक ऐसे स्थान पर रह रहे थे जहाँ ऐसे विषैले जीव बहुतायत में पाए जाते थे। इस सलाह का पालन करते हुए, ऐसा कहा जाता है कि तपस्वी लंबे समय तक निर्हान्य रहे, उस दौरान जब स्वयं बोधिसत्व, जो ब्रह्म-विहार का अभ्यास कर रहे थे, ब्रह्मलोक में बंधे हुए थे। अपने अतीत के इस वृत्तांत को सुनाते हुए बुद्ध ने भिक्षुओं को इसी परित्त का पालन करने की सलाह दी ।

यह ध्यान अभ्यास चुल्लवग्ग के खुद्दक-वट्ट-खंडक में अनुशासन और कर्तव्य के नियम के रूप में दिया गया है, और विशेष नाम खंड परित्त संभवतः इसी संबंध से लिया गया है।

इन दो परित्तों में से, मेट्टा सूत्र में वर्णित विधि झान अवस्था में अपनाई जाने वाली विधि के अनुरूप है , जैसा कि तेविज्ज सूत्र में पाया जाने वाला सूत्र भी है ; जबकि दूसरी विधि आरोहण का अधिक आदिम रूप प्रतीत होती है। यद्यपि, दोनों में आरोहण के असीमित और सीमित रूप समाहित हैं , जिनका वर्णन पातिसंभिदा -मग्ग में किया गया है , जैसा कि आगे देखा जाएगा। असीमित और सीमित दोनों विधियाँ, दिशाफरण विधि के साथ मिलकर , चार प्रकार के अभ्यास के सूत्र में दी गई सभी दिशाओं या क्षेत्रों में आरोहण करती हैं। शब्दों में भिन्न हो सकती हैं, लेकिन भावार्थ सर्वत्र एक ही है।

इन सूत्रों के अनुरूप, मैत्री भाव का अधिक व्यापक प्रसार पतिसंभिदामग्ग की मैत्रीकथा में वर्णित है , जहाँ हमें कई विधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो संख्यात्मक क्रम में व्यवस्थित हैं; इन्हें पाँच इंद्रियों , पाँच बल , सात बोध्झंग और अष्टांगिक मार्ग के बोधिपक्खीय सिद्धांतों के साथ अलग-अलग रूप से संयोजित किया गया है। सबसे पहले, अंगुत्तरा निकाय में मिलने वाले मैत्रीसंभाव का उल्लेख किया गया है , जो मैत्री भाव के ग्यारह लाभों को प्रस्तुत करता है ।

इसके बाद मैत्रीपूर्ण प्रेम को फैलाने की निम्नलिखित विधियाँ बताई गई हैं: तीन विधियाँ हैं, अर्थात्:
अनोधिसो फराना — बिना किसी सीमा के व्याप्त;
odhiso Pharanā — एक सीमा से परिपूर्ण, और
दिसा फराना — दिशाओं या दिशाओं में व्याप्त।

(1) अनोधिसो विधि को पाँच भागों में उपविभाजित किया गया है, जिनमें से प्रत्येक भाग एक अलग ध्यान सूत्र बनाता है। वे इस प्रकार हैं:
सब्बे सत्ता — सभी प्राणी;
सब्बे पाना — सभी जीवित प्राणी;
सब्बे भूता — सभी प्राणी;
सब्बे पुग्गला — सभी व्यक्ति और
सब्बे अत्तभाव परियापन्ना — वे सभी जो व्यक्तिगत अस्तित्व में आए हैं।
इन पांचों में से प्रत्येक आकांक्षा के चार संयोजकों से जुड़ा हुआ है:
averā hontu —उन्हें शत्रुता से मुक्त होने दो;
abyāpajjā hontu —उन्हें द्वेष से मुक्त होने दो;
anighā hontu —उन्हें बीमारी से छुटकारा मिले और
सुखी अत्तानं परिहरन्तु — उन्हें स्वयं को सुखी रखना चाहिए।

उपरोक्त के संदर्भ में, पूर्ण सूत्र को इस प्रकार दोहराया जाना चाहिए: सभी प्राणी शत्रुता से मुक्त हों; दुर्भावना से मुक्त हों; बीमारी या पीड़ा से मुक्त हों; और वे स्वयं को सुखी रखें।

इसी प्रकार: सभी जीवित प्राणी, सभी जीव, सभी व्यक्ति और जो कुछ भी विद्यमान है (क्रमशः), वे शत्रुता, घृणा और द्वेष से मुक्त रहें और अपने आप को सुखी रखें।

इस विधि का अनुसरण करते हुए साधक सभी प्राणियों को अपने प्रेममय विचारों में समाहित करता है और उन्हें असीम प्रेम से परिपूर्ण करता है—जैसा कि व्याख्या में कहा गया है, वह सभी को बिना किसी सीमा के स्पर्श करता है। अतः, यह अनौधिसो फरना है , यानी बिना किसी सीमा या बंधन के परिपूर्ण करना।

(2) ओधिसो फराना , या सीमित विधि के सात रूप हैं :

sabbe itthiyo — सभी महिलाएं;

सब्बे पुरिसा — सभी पुरुष;

सब्बे अरिया — सभी योग्य व्यक्ति, या वे जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है;

सब्बे अनारिया — सभी अयोग्य लोग, या वे जो अपूर्ण हैं;

सब्बे देवा — सभी देवता;

सब्बे मनुस्सा — सभी मनुष्य;

sabbe vinipātikā — वे सभी जो दुखी अवस्था में हैं।

इनमें से प्रत्येक को चार आकांक्षाओं से जोड़ा जाना चाहिए और ध्यान की अवधि के दौरान अलग-अलग या सामूहिक रूप से दोहराया जाना चाहिए।

इस विधि का प्रयोग करते हुए साधक में मैत्री भाव व्याप्त होता है , साथ ही वह प्राणियों को उनकी प्रकृति और स्थिति के अनुसार समूहों में विभाजित करता है। अतः इस ध्यान को ओधिसो फराना या किसी सीमा या भाग के भीतर मैत्री भाव व्याप्त करना कहा जाता है।

(3) पूर्व दिशा से शुरू करते हुए, दिशाओं और मध्यवर्ती दिशाओं में मैत्री फैलाने के दस तरीके हैं । इनमें दिशाओं के आठ बिंदु शामिल हैं: चार मुख्य बिंदु, चार मध्यवर्ती बिंदु, और ऊपर और नीचे।

सूत्र इस प्रकार हैं:

पूर्व दिशा के सभी प्राणी द्वेष, घृणा और दुर्भावना से मुक्त रहें और सुखी रहें।

समान तरीके में:

पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और उत्तर-पूर्व में रहने वाले सभी प्राणी...

दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पूर्व,

ऊपर और नीचे, शत्रुता से मुक्त रहो, इत्यादि।

मैत्री को प्रसारित करने की इन तीन विधियों में बाईस (पाँच, सात और दस) सूत्र हैं; और प्रत्येक, टीका के अनुसार, उस मैत्री को संदर्भित करता है जो अप्पणा या ज्ञान अवस्था की ओर ले जाती है। पाँच अनोधिसो फरनाओं में से ,

'सभी प्राणी द्वेष से मुक्त हों' यही एक अप्पणा है;

'द्वेष से मुक्त रहो' एक और कहावत है;

'बुराई से छुटकारा पाना' एक और उदाहरण है;

'उन्हें खुद को खुश रखने दो' चौथा कथन है।

इस प्रकार, असीमित प्रसार की विधि में बीस अप्पणाएँ होती हैं , अर्थात् पाँचों सूत्रों में से प्रत्येक में चार। इसी प्रकार, सीमित प्रसार की विधि में सात सूत्रों में से प्रत्येक में चार अप्पणाएँ होती हैं, जिससे कुल अट्ठाईस अप्पणाएँ प्राप्त होती हैं।

ओधिसो विधि के पाँच (i से v) सूत्रों को दस दिशाओं के साथ मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:

पूर्व दिशा के सभी प्राणी शत्रुता से मुक्त हों... इत्यादि। इस प्रकार, दो सौ अप्पणाएँ हैं , प्रत्येक दिशा में बीस-बीस।

इसी प्रकार, सात (1 से 7) सूत्रों को दस निर्देशों के साथ मिलाकर इस प्रकार दिया जा सकता है:

पूर्व की सभी महिलाएं... और इसी तरह कुल मिलाकर दो सौ अस्सी अप्पनाएं दें , अर्थात् प्रत्येक चौथाई भाग में अट्ठाईस।

इस प्रकार, चार सौ अस्सी अप्पणाएँ हैं। कुल मिलाकर, पतिसंभिदा-मग्ग में पाँच सौ अट्ठाईस अप्पणाओं (बीस, अट्ठाईस, दो सौ और दो सौ अस्सी) का उल्लेख है ।

टीका में कहा गया है कि अन्य तीन विहार , करुणा , मुदिता और उपेक्षा , भी उसी प्रकार से व्याप्त करने की विधि से प्रयोग किए जाते हैं; और जो शिष्य इनमें से किसी भी अप्पणा अवस्था के माध्यम से इनका अभ्यास करता है, वह निम्नलिखित मेट्टानिसंसा सूत्र के अंश में वर्णित ग्यारह आशीर्वादों का आनंद लेता है :

भिक्षु, मित्रता के माध्यम से मन को मुक्त करने के अभ्यास से, ग्यारह आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। यदि वे इस अभ्यास को बढ़ाते हैं, इसमें वृद्धि करते हैं, इसे अपना आधार बनाते हैं, इस पर दृढ़ता से अमल करते हैं, इसे भली-भांति परिचित कराते हैं और इसे सुव्यवस्थित करते हैं, तो उन्हें ग्यारह आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। वे ग्यारह आशीर्वाद क्या हैं? वह सुखी नींद सोता है; सुखी जागता है; उसे बुरे सपने नहीं आते; वह मनुष्यों का प्रिय होता है; अमानवों का प्रिय होता है; देवता उसकी रक्षा करते हैं; आग, विष या तलवार उसके पास नहीं आते;

उसका मन शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है; उसका रंग निखरा हो जाता है; वह मन की उलझन से मुक्त होकर प्राण त्यागता है; यदि उसे कोई और प्राप्ति न हो, तो वह ब्रह्मलोक में जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 377

———————————————————————

(धम्मपद 368 से 376) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 377 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 378)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 377 - पञ्चसताभिक्खु वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Vassika viya pupphani
maddavani pamuncati
evam raganca dosanca
vippamuncetha bhikkhavo.

———————————————————————

श्लोक 377 : हे भिक्षुओं! जैसे चमेली (वस्सिका) का पौधा अपने मुरझाए हुए फूलों को गिरा देता है, वैसे ही तुम्हें भी कामवासना और द्वेष का त्याग करना चाहिए।

———————————————————————

पांच सौ भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पाँच सौ भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (377) कहा।

श्रावस्ती के पाँच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करके वन में ध्यान करने के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि सुबह खिलने वाले चमेली के फूल शाम को पौधों से गिरकर जमीन पर आ जाते हैं। तब भिक्षुओं ने निश्चय किया कि वे फूलों के गिरने से पहले ही अपने आप को सभी नैतिक दोषों से मुक्त करने का भरसक प्रयास करेंगे। बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति से उन्हें अपने सुगंधित कक्ष से देखा। अतः उन्होंने अपना प्रकाश उन पर भेजा और उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जिस प्रकार मुरझाया हुआ फूल पौधे से गिर जाता है, उसी प्रकार भिक्षु को भी जन्म-जन्म के चक्र से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 377 : हे भिक्षुओं! जैसे चमेली (वस्सिका) का पौधा अपने मुरझाए हुए फूलों को गिरा देता है, वैसे ही तुम्हें भी वासना और द्वेष का त्याग करना चाहिए।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में पांच सौ भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चमेली के फूलों पर ध्यान लगाने की कहानी

सावत्थी के भिक्षुओं का एक समूह, बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर, ध्यान करने के लिए वन की ओर चल पड़ा। ध्यान करते समय उन्होंने देखा कि उसी सुबह खिले हुए चमेली के फूल शाम को डंठल से गिर रहे थे। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, “हम कामवासना, घृणा और मोह से मुक्ति पा लेंगे, इससे पहले कि तुम अपने डंठल से मुक्त हो जाओ,” और नए जोश के साथ ध्यान में जुट गए। बुद्ध ने उन भिक्षुओं को देखकर कहा, “हे भिक्षुओं, जैसे फूल अपने डंठल से अलग हो जाता है, वैसे ही भिक्षु को जन्म-जन्म के कष्ट से मुक्ति पाने का प्रयास करना चाहिए।” और सुगंधित कक्ष में बैठे हुए उन्होंने प्रकाश भेजा और निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया,

“भिक्षुओं! जैसे मुरझाया हुआ फूल पौधे से झड़ जाता है, वैसे ही भिक्षु को भी सांसारिक कष्टों से स्वयं को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए।”

पाठ के समापन पर, उन सभी भिक्षुओं को अरहत पद की उपाधि प्राप्त हुई।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 377)

वस्सिका विया पुप्फानि मदवनि पमुञ्चति

एवं रागान्च दोसांच विप्पमुन्चेथा भिक्खवो

वस्सिका : चमेली की लता; पुप्पानि : फूल; मद्दवानी : मुरझाए हुए; पामुंचति विय : जैसे (यह) त्याग देता है; एवं रागंच : वासना; द्वेष : दुर्भावना ; विप्पमुंचेत : मन से त्याग देना; भिक्खवो [ भिक्खव ]: हे भिक्षुओं

चमेली की लता अपने मुरझाए फूलों को गिरा देती है, ठीक उसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अपने जुनून और द्वेष का त्याग करो।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 377)

यह श्लोक भिक्षुओं के एक समूह से संबंधित है जो चमेली के फूलों के जमीन पर गिरने और बेल से उनके डंठल अलग होने पर ध्यान लगा रहे थे। कई उदाहरणों में, ध्यान करने वालों ने किसी वस्तु पर एकाग्रता से उच्च ज्ञान प्राप्त किया। बुद्ध की मन-प्रशिक्षण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य मन को सभी दोषों और विकृतियों से शुद्ध करना है, ताकि इसकी आंतरिक लचीलेपन को विकसित किया जा सके और पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सके, जो दुःख और शोक की अवस्थाओं से ऊपर उठने का साधन है।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध धर्म में निर्दिष्ट मानसिक प्रशिक्षण उच्च विचारों, उदात्त आदर्शों और नैतिक एवं सद्गुणी सिद्धांतों पर मन की एकाग्रता का प्रशिक्षण है। मन जो पूर्णतः किसी लाभकारी अनुभूति में लीन हो जाता है, वह अपनी मूल अवस्था में शुद्ध रूप से प्रकाशमान और प्रबुद्ध हो जाता है ( पभस्सरमिदं )।

अत: आरंभ में, मन में शुद्ध चित्र बनाने के लिए, ध्यान को पूरी तरह से मनोभावों से मुक्त किसी वस्तु ( आरम्मण ) पर केंद्रित करना आवश्यक है। ध्यान करने वाला इस चित्र को अपने आदर्श के रूप में धारण करता है और अपने मन को इस पर एकाग्र करने का अभ्यास कराता है। मन अपने स्वभाव से नहीं, बल्कि शुद्ध और अशुद्ध विचारों के उत्पन्न होने से शुद्ध या अशुद्ध होता है। अत:, प्रारंभिक ध्यान केंद्रित करने के लिए चुनी गई वस्तु पवित्रता, सद्गुण और सत्य से संबंधित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, ध्यान के लिए चुनी गई वस्तु या आदर्श ऐसा होना चाहिए जो ध्यान करने वाले की विशेष प्रवृत्ति के अनुकूल मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करे।

शास्त्रों में दर्ज है कि बुद्ध ने उन लोगों की विविध मानसिक प्रवृत्तियों और जन्मजात स्वभावों को समझा, जो उनसे मुक्ति की उम्मीद करते थे, और उन्हें विभिन्न विधियाँ सुझाईं; और इन विधियों को समय के साथ-साथ विकसित किया गया क्योंकि इस प्रणाली में प्रशिक्षण के अवसर को विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रवृत्तियों तक विस्तारित करना आवश्यक हो गया था।

बाद में इन विधियों को संशोधित, विस्तारित और विभिन्न तरीकों से समूहीकृत किया गया, जिससे ध्यान की विभिन्न योजनाएँ बनीं। यह संशोधन उनके मनोवैज्ञानिक प्रभाव और चेतना की उच्च अवस्थाओं को प्रेरित करने में उनके महत्व के साथ-साथ विभिन्न व्यक्तिगत स्वभावों के लिए उनकी उपयुक्तता को ध्यान में रखते हुए किया गया। ये विधियाँ निकायों , अभिधम्म और टीकाओं के साथ-साथ ध्यान से संबंधित अन्य ग्रंथों में भी उसी रूप में पाई जाती हैं जिस रूप में इनका अभ्यास और पालन थेरवाद संप्रदाय में किया जाता रहा है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 378

---

(धम्मपद 377) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 378 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 379 और 380)

---

अंतर्वस्तु

1.2.1चित्रण
धम्मपद श्लोक 378 - संतकयत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
Santakayo santavaco
santava susamahito
vantalokamiso bhikkhu
"Upasanto" ti vuccati.

———————————————————————

श्लोक 378 : वह भिक्षु जो शरीर से शांत, वाणी से शांत और मन से शांत है, जो सुसंतुलित है और जिसने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, त्याग दिया है), उसे "शांत" कहा जाता है।

———————————————————————

थेरा संतकाया की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा संतकाय के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (378) कहा।
एक समय संतकाया नाम के एक थेर थे, जो अपने पिछले जन्म में शेर थे। कहा जाता है कि शेर आमतौर पर एक दिन भोजन की तलाश में निकलते हैं और फिर अगले सात दिनों तक बिना हिले-डुले गुफा में विश्राम करते हैं। संतकाया, अपने पिछले जन्म में शेर होने के कारण, शेर की तरह ही व्यवहार करते थे। वे बहुत कम चलते थे; उनकी चाल धीमी और स्थिर होती थी; और वे आमतौर पर शांत और संयमित रहते थे। अन्य भिक्षुओं को उनका व्यवहार बहुत विचित्र लगा और उन्होंने बुद्ध को उनके बारे में बताया। भिक्षुओं द्वारा बताई गई बात सुनकर, बुद्ध ने उन सभी से कहा, "भिक्षुओं! एक भिक्षु को शांत और संयमित होना चाहिए; उसे संतकाया की तरह व्यवहार करना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 378 : वह भिक्षु जो शरीर से शांत, वाणी से शांत और मन से शांत है, जो सुसंतुलित है और जिसने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया है (शाब्दिक रूप से, त्याग दिया है), उसे "शांत" कहा जाता है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में थेरा संतकाया ने अरहत पद प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय संतकाया की कहानी
संतकाय नाम के एक भिक्षु थे, जो अपने पिछले जन्म में शेर थे। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने कभी भी हाथ-पैर की अनुचित हरकत नहीं की। वे कभी जम्हाई नहीं लेते थे और न ही अपने हाथ-पैर फैलाते थे, बल्कि हमेशा शांत और गरिमापूर्ण रहते थे। कथा के अनुसार, यह पूज्य भिक्षु एक शेरनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। शेरनियों के बारे में कहा जाता है कि यदि किसी दिन उन्हें शिकार मिल जाता है, तो वे चांदी, सोने, रत्नों और मूंगे की गुफाओं में से किसी एक में प्रवेश करती हैं और लाल आर्सेनिक और पीले ऑर्पिमेंट के चूर्ण से बने पलंगों पर सात दिनों तक लेटती हैं। सातवें दिन वे उठती हैं और अपने पलंगों का निरीक्षण करती हैं, और यदि वे देखती हैं कि उनकी पूंछ, कान, अगले या पिछले पैरों की हरकत से लाल आर्सेनिक और पीले ऑर्पिमेंट का चूर्ण बिखर गया है, तो वे मन ही मन कहती हैं, "यह तुम्हारे जन्म या वंश को शोभा नहीं देता," और फिर से लेट जाती हैं और सात दिनों तक उपवास करती हैं। फिर, यदि चूर्ण बिखरा न हो, तो वे मन ही मन कहते हैं, "यही तुम्हारा जन्म और वंश है," अपनी मांद से बाहर आते हैं, जम्हाई लेते हैं और अंगड़ाई लेते हैं, चारों दिशाओं का अवलोकन करते हैं, तीन बार सिंह की गर्जना करते हैं और शिकार की तलाश में निकल पड़ते हैं। इसी प्रकार की सिंहनी के गर्भ से इस भिक्षु का जन्म हुआ।

इस भिक्षु की शांति और गरिमा ने अन्य भिक्षुओं का ध्यान आकर्षित किया और उन्होंने बुद्ध से कहा, “हे पूज्य, हमने पूज्य संतकाय जैसा भिक्षु कभी नहीं देखा। जब वे बैठते हैं, तो न तो अपने हाथ हिलाते हैं, न अपने पैर हिलाते हैं, न जम्हाई लेते हैं और न ही अपने हाथ-पैर फैलाते हैं।” यह सुनकर बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जो भिक्षु बनना चाहता है, उसे पूज्य संतकाय की तरह कर्म, वाणी और विचार में शांत रहना चाहिए।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 378)

संतकायो संतवाको संतवा सुसामहितो
वंता लोकामिसो भिक्खु उपसंतो इति वुकाति

संतकाय [ santakāya ]: शरीर से संयमित; संतवाको [ santavāca ]: वाणी से संयमित; संतवा : मन से संयमित; सुसमाहितो [ susamāhita ]: जो पूर्णतः अनुशासित है; वन्त लोकामिसो [ lokāmisa ]: जिसने भौतिक वस्तुओं का त्याग कर दिया है; उपसन्तो इति वुच्चति : जिसे पूर्णतः शांत बताया गया है

किसी भिक्षु को पूर्णतः शांत होने के लिए शरीर और वाणी पर संयम रखना आवश्यक है। यह अनुशासन मन के संयम से उत्पन्न होता है। जब ये तीनों प्रकार के संयम प्राप्त हो जाते हैं, तो भिक्षु स्वतः ही पूर्णतः शांत हो जाता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 378)

यह श्लोक संतकाय नामक एक भिक्षु के अनुकरणीय संयमपूर्ण व्यवहार से संबंधित है, जिसका नाम उसके शांत स्वभाव (शरीर से संयमित) को दर्शाता है। इस श्लोक की उत्पत्ति की कथा में, पूज्य भिक्षु को 'शेरनी के गर्भ से उत्पन्न' बताया गया है। यह कथा शेरनी के उत्तम गुणों का वर्णन करती है। बुद्ध ने एक संदर्भ में स्वयं को भी शेर कहा है, क्योंकि वे शेरों के उत्तम गुणों से प्रभावित प्रतीत होते थे।

बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, पशुओं का राजा सिंह संध्याकाल में अपनी मांद से निकलता है। वह अंगड़ाई लेता है। ऐसा करने के बाद, वह चारों दिशाओं में देखता है। ऐसा करने के बाद, वह तीन बार सिंह की गर्जना करता है। तीन बार सिंह की गर्जना करने के बाद, वह शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।”

हे भिक्षुओं, जो भी जानवर पशुओं के राजा सिंह की दहाड़ सुनते हैं, उनमें से अधिकांश भयभीत हो जाते हैं; वे कांपने लगते हैं। बिलों में रहने वाले जीव उन्हें ढूंढने लगते हैं; जल में रहने वाले जल की ओर भागते हैं; वन में रहने वाले वन में प्रवेश करते हैं; पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं। फिर गांव, शहर या महल में शासक के जो भी हाथी मजबूत चमड़े की रस्सियों से बंधे होते हैं, वे उन रस्सियों को तोड़कर भाग निकलते हैं; मल त्याग करते हैं और घबराकर इधर-उधर भागने लगते हैं। हे भिक्षुओं, पशुओं के राजा सिंह की शक्ति ऐसी ही है। वह अत्यंत शक्तिशाली और महिमामय है। ठीक इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई बुद्ध संसार में प्रकट होते हैं, जो अरहत, पूर्णतः प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, प्रशिक्षित होने योग्य लोगों के अद्वितीय प्रशिक्षक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, एक बुद्ध, एक उच्च कोटि के व्यक्ति होते हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं। यही आत्मा है; यही वह मार्ग है जो स्वयं के अंत की ओर ले जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 379,380

———————————————————————

(धम्मपद378) <<<< पिछला|| धम्मपद 379 और 380 ||अगला >>>> (धम्मपद381)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 379 और 380 - नंगलकुलाथेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

अट्टाना चोदयत्तनम
पतिममसेथा अत्तना
so attagutto satima
sukham bhikkhu vihahisi.
अत्ता ही अत्तानो नाथो
(ko hi natho paro siya)(1)
अत्ता ही अत्तानो गति
तस्मा सम्यममत्तनम
assam bhadramva vanijo.

---

श्लोक 379 : हे भिक्षु, स्वयं को उपदेश दो और अपना आत्मनिरीक्षण करो; इस प्रकार अपनी रक्षा करते हुए और सचेत रहते हुए तुम शांति से रहोगे।

---

श्लोक 380 : वास्तव में, स्वयं ही अपना आश्रय है, (अन्य भला कोई कैसे अपना आश्रय हो सकता है?)1 वास्तव में, स्वयं ही अपना स्वर्ग है; इसलिए, अपना ध्यान उसी प्रकार रखो जैसे एक घोड़ा व्यापारी एक उत्तम नस्ल के घोड़े का ध्यान रखता है।

---

1. कुछ विदेशी संस्करणों में नहीं पाया जाता है।

---

थेरा नंगलाकुला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा नांगला के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (379) और (380) का उच्चारण किया।
नांगला एक किसान के यहाँ काम करने वाला एक गरीब मजदूर था। एक दिन, एक भिक्षु ने उसे पुराने कपड़ों में खेत जोतते हुए देखा और उससे पूछा कि क्या वह भिक्षु बनना चाहेगा। जब उसने हाँ में जवाब दिया, तो भिक्षु उसे अपने साथ मठ ले गया और उसे भिक्षु बना दिया। संघ में प्रवेश के बाद, अपने गुरु के निर्देशानुसार, उसने अपना हल और पुराने कपड़े मठ से कुछ ही दूरी पर एक पेड़ पर छोड़ दिए। क्योंकि उस गरीब ने संघ में शामिल होने के लिए अपना हल छोड़ दिया था, इसलिए उसे थेरा नांगला (नांगला = हल) के नाम से जाना जाने लगा। मठ में बेहतर जीवन यापन के कारण, थेरा नांगला स्वस्थ हो गया और जल्द ही उसका वजन भी बढ़ गया। हालाँकि, कुछ समय बाद, वह भिक्षु जीवन से ऊब गया और अक्सर घर लौटने की इच्छा करने लगा। जब भी उसे ऐसा महसूस होता, वह मठ के पास उस पेड़ के पास जाता, जहाँ उसने अपना हल और पुराने कपड़े छोड़े थे। वहाँ वह स्वयं को कोसते हुए कहता, "अरे निर्लज्ज! क्या तू अब भी ये पुराने चिथड़े पहनकर मज़दूर का कठोर और नीच जीवन जीना चाहता है?" इसके बाद भिक्षु जीवन से उसकी असंतुष्टि दूर हो जाती और वह मठ लौट जाता। इस प्रकार, वह हर तीन-चार दिन के अंतराल पर उस वृक्ष के पास जाता, ताकि उसे अपने पुराने दयनीय जीवन की याद दिला सके।
जब दूसरे भिक्षुओं ने उनसे वृक्ष के पास बार-बार जाने का कारण पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे अपने गुरु के पास जाना पड़ता है।" समय बीतने के साथ, उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया और वृक्ष के पास जाना बंद कर दिया। यह देखकर दूसरे भिक्षुओं ने उनसे चिढ़ाते हुए पूछा, "अब तुम अपने गुरु के पास क्यों नहीं जाते?" उन्होंने उन भिक्षुओं को उत्तर दिया, "मैं अपने गुरु के पास इसलिए जाता था क्योंकि मुझे उनकी आवश्यकता थी; लेकिन अब मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है।" भिक्षु उनकी बात समझ गए और वे बुद्ध के पास जाकर बोले, "हे पूज्यवर! थेरा नांगला अर्हतत्व प्राप्त करने का दावा करते हैं। यह सच नहीं हो सकता; वह अवश्य ही घमंड कर रहे होंगे, अवश्य ही झूठ बोल रहे होंगे।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! ऐसा मत कहो; क्योंकि नांगला झूठ नहीं बोल रहे हैं। मेरे पुत्र नांगला ने स्वयं को फटकारकर और सुधार कर वास्तव में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 379 : हे भिक्षु, स्वयं को उपदेश दो और अपना आत्मनिरीक्षण करो; इस प्रकार अपनी रक्षा करते हुए और सचेत रहते हुए तुम शांति से रहोगे।

---

श्लोक 380 : वास्तव में, स्वयं ही अपना आश्रय है, (अन्य भला कोई कैसे अपना आश्रय हो सकता है?) वास्तव में, स्वयं ही अपना स्वर्ग है; इसलिए, अपना ध्यान उसी प्रकार रखो जैसे एक घोड़ा व्यापारी अपने उत्तम नस्ल के घोड़े का ध्यान रखता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय नांगला कुल की कहानी (पुराने कपड़ों से लगाव)

कथा के अनुसार, एक गरीब आदमी था जो दूसरों के लिए काम करके अपना जीवन यापन करता था। एक दिन एक भिक्षु ने उसे फटी हुई धोती पहने, कंधे पर हल उठाए हुए जाते देखा। भिक्षु ने किसान से कहा, "यदि यही तुम्हारा जीवन यापन का तरीका है, तो तुम भिक्षु क्यों नहीं बन जाते?" "आदरणीय, मेरे जैसे व्यक्ति को कौन भिक्षु बनाएगा?" "यदि तुम भिक्षु बनना चाहो, तो मैं तुम्हें भिक्षु बना दूंगा।" "ठीक है, आदरणीय; यदि आप मुझे भिक्षु बनाएंगे, तो मैं भिक्षु बन जाऊंगा।" तब आदरणीय भिक्षु उसे जेतवन ले गए, अपने हाथों से उसे स्नान कराया और उसे परिसर के भीतर खड़ा करके भिक्षु बना दिया। ऐसा करने के बाद, आदरणीय भिक्षु ने उसे अपनी धोती और हल लेकर परिसर की सीमा पर उगे एक पेड़ की शाखा पर टांगने को कहा। संघ के सदस्य के रूप में अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा लेने पर, उन्हें नांगलकुला थेरा, आदरणीय हलवान, नाम प्राप्त हुआ।

बुद्धों को दिए जाने वाले बहुमूल्य उपहारों और भेंटों से कुछ समय तक जीवन यापन करने के बाद, पूज्य हलवान असंतुष्ट हो गए। असंतोष दूर न होने पर उन्होंने मन ही मन कहा, "मैं अब भक्तों द्वारा दिए गए पीले वस्त्र पहनकर नहीं घूमूंगा।" अतः वे वृक्ष की तलहटी में गए और एकांत में स्वयं को इस प्रकार उपदेश दिया, "हे निर्लज्ज, निर्लज्ज व्यक्ति! तो तुमने सचमुच ये चिथड़े-चिट्ठे पहनकर संसार में लौटने और मजदूरी करने का निश्चय कर लिया है!" कुछ समय तक इस प्रकार स्वयं को उपदेश देने के बाद उनका संकल्प कमजोर पड़ गया और वे फिर से मठ लौट आए। कुछ दिनों बाद वे फिर असंतुष्ट हो गए। अतः उन्होंने पहले की तरह ही स्वयं को उपदेश दिया और अपना विचार फिर से बदल लिया। और इसी प्रकार, जब भी वे असंतुष्ट होते, वे वृक्ष की तलहटी में जाकर स्वयं को उपदेश देते।

भिक्षुओं ने देखा कि वह बार-बार वृक्ष की तलहटी में जाते थे। इसलिए उन्होंने उनसे पूछा, "भाई नांगलकुला, आप वहाँ क्यों जाते हैं?" उन्होंने कहा, "आदरणीय, मैं अपने गुरु से मिलने जाता हूँ।" कुछ दिनों बाद उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। तब भिक्षुओं ने उनका उपहास करते हुए कहा, "भाई नांगलकुला, ऐसा लगता है कि अब आप उस मार्ग का उपयोग नहीं करते जिससे आप पहले आते-जाते थे। निस्संदेह आप अब अपने गुरु से मिलने नहीं जाते।" उन्होंने कहा, "बिल्कुल सही, आदरणीय; जब मैं संसार में था, तब मैं आता-जाता था; लेकिन अब जब मैंने संसार से संबंध तोड़ लिया है, तो मैं ऐसा नहीं करता।" यह सुनकर भिक्षुओं ने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "यह भिक्षु असत्य बात कहता है, झूठ बोलता है।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, वह जो कहता है वह बिल्कुल सत्य है। मेरे पुत्र ने स्वयं को उपदेश दिया है, और इस प्रकार धार्मिक जीवन की पूर्णता प्राप्त की है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 379)

अत्तना अत्तनं कोडय अत्तना अत्तं पतिमासे

भिक्खु सो अत्तागुत्तो सतिमा सुक्खं विहाहिसी

अत्तना : स्वयं; अत्तनं चोदया : प्रेरित करना चाहिए; अत्तना : स्वयं द्वारा, अत्तं पतिमासे : परीक्षा ली जानी चाहिए; भिक्षु : हे भिक्षु; इसलिए : अतः तुम; अत्तगुत्तो [ अत्तगुत्त ]: आत्म-संरक्षित; सतिमा : सतर्क और सचेत; सुखं [ सुक्खा ]: सुखपूर्वक; विहाहिसी : जीना

स्वयं को स्वयं ही प्रेरित करना चाहिए। हे भिक्षु, स्वयं का आकलन और परीक्षण करो; इस प्रकार स्वयं की रक्षा करो। सदा सचेत रहो। इस प्रकार आनंदमय जीवन व्यतीत करो।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 380)

हाय अत्ता अत्तनो नाथो हाय अत्ता अत्तनो गति तस्मा

भद्रं अस्सं वानिजो इव अत्तनं सन्नमय

ही : यथार्थ; अत्ता : स्वयं; अत्तनो [ अत्तना ]: स्वयं को, नाथो [ नाथ ]: शरण; अत्ताहि : वास्तव में स्वयं; अत्तनो गति : स्वयं का मार्गदर्शक; तस्मा : इसलिए; भद्रं अस्सं इव : एक सम्मानित घोड़े के समान; वानीजो [ वानीज ]: एक व्यापारी; अत्तनं [ अत्तना ]: स्वयं; सन्नमय : अनुशासन

आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपकी शरणस्थली है। आप स्वयं ही अपने मार्गदर्शक हैं। इसलिए, अपने ऊपर उसी प्रकार अनुशासन बनाए रखें जैसे एक व्यापारी अपने उत्तम घोड़े का सत्कार करता है और उसे प्रशिक्षित करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 379-380)

अत्तना अत्तनं चोदया : व्यक्ति को स्वयं आध्यात्मिक कर्म में अग्रसर होना चाहिए। यह बुद्ध का एक प्रमुख सिद्धांत है। यह जानते हुए कि कोई भी बाह्य स्रोत, आस्था या अनुष्ठान उसे मुक्ति नहीं दिला सकते, बौद्ध अपने स्वयं के प्रयासों पर निर्भर रहने के लिए विवश महसूस करता है। वह आत्मनिर्भरता के माध्यम से आत्मविश्वास प्राप्त करता है। लेकिन उसे यह समझना चाहिए कि उसके वर्तमान जीवन के साथ-साथ भविष्य के जीवन की संपूर्ण जिम्मेदारी पूरी तरह से उस पर ही निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपनी मुक्ति प्राप्त करनी होगी। मुक्ति प्राप्त करना किसी बीमारी के इलाज के समान है: यदि कोई बीमार है, तो उसे डॉक्टर के पास जाना चाहिए। डॉक्टर बीमारी का निदान करता है और उचित दवाइयाँ देता है। केवल डॉक्टर की प्रशंसा करने और उसकी प्रशंसा करने से वह कभी ठीक नहीं

होगा। न ही डॉक्टर के सम्मान में उत्सव आयोजित करने से, या दूसरों को यह समझाने की कोशिश करने से कि वही एकमात्र डॉक्टर है जिससे उन्हें परामर्श लेना चाहिए, वह ठीक होगा।
इनमें से कोई भी उपाय उसकी बीमारी ठीक नहीं करेगा। न ही यह काफी है कि वह अपनी लिखित पर्ची स्वीकार करे, उसे एक डिब्बे में रखे, हाथी की पीठ पर रखे और संगीत और नृत्य के साथ जुलूस निकाले। इससे भी रोगी ठीक नहीं होगा। न ही यह काफी है कि वह दवा की दुकान से दवा ले, उसे एक शेल्फ पर रखे और उसके सामने फूलों का गुलदस्ता रखे, अगरबत्ती जलाए और मोमबत्तियां जलाकर यह घोषणा करे, “डॉक्टर द्वारा दी गई यह पर्ची कितनी अद्‌भुत है। इस पर्ची से मेरी बीमारी ठीक हो जाए!”
यह काफी नहीं है। और न ही उनकी चिंतित पत्नी का यह कहना काफी है, “वे बूढ़े, कमजोर और दुर्बल हैं। और दवा उन्हें बहुत कष्ट देती है। मैं उनके लिए यह कड़वी दवा पी लूँगी।” इससे भी उनका इलाज नहीं होगा।
ठीक होने के लिए, व्यक्ति को स्वयं अपने आहार और आचरण के संबंध में दिए गए निर्देशों का पालन करना होगा। तभी वह ठीक होगा और अंततः स्वस्थ होने का अहसास करेगा। इसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति को अपने लोभ, घृणा और अज्ञान का निवारण करके, बुद्ध द्वारा दी गई आवश्यक सावधानियों का पालन करके और बुद्ध की सलाह पर अमल करके ही मोक्ष प्राप्त करना होगा। तभी वह मोक्ष प्राप्त कर सकेगा। केवल बुद्ध की स्तुति करने, उन्हें कुछ अर्पित करने या पर्व मनाने से कोई मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 381

---

(धम्मपद 379 और 380) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 381 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 382)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 381 - वक्कलिथेरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Pamojjabahulo bhikkhu
pasanno buddhasasane
adhigacche padam santam
sankharupasamam sukham.

---

श्लोक 381 : जो भिक्षु बार-बार आनंद का अनुभव करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित है, वह निर्वाण प्राप्त करेगा—शांत, बिना शर्त, आनंदमय।

---

थेरा वक्कली की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा वक्कली के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (381) कहा।
वक्कली श्रावस्ती में रहने वाला एक ब्राह्मण था। एक दिन जब उसने बुद्ध को नगर में भिक्षा मांगते देखा, तो वह बुद्ध के उदात्त रूप से अत्यंत प्रभावित हुआ। उसी समय, उसके मन में बुद्ध के प्रति गहरा स्नेह और श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसने उनके निकट रहने के लिए संघ में शामिल होने की अनुमति मांगी। एक भिक्षु के रूप में, वक्कली हमेशा बुद्ध के निकट रहता था; वह भिक्षु के अन्य कर्तव्यों की परवाह नहीं करता था और एकाग्रता ध्यान का अभ्यास बिल्कुल नहीं करता था। तब बुद्ध ने उससे कहा, "वक्कली, मेरे निकट रहकर और मेरे

मुख को निहारते रहने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हें एकाग्रता ध्यान का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि वास्तव में, जो धम्म को देखता है, वही मुझे देखता है। जो धम्म को नहीं देखता, वह मुझे नहीं देखता। इसलिए, तुम्हें मेरी उपस्थिति से दूर जाना चाहिए।" ये शब्द सुनकर वक्कली बहुत उदास हो गया। उसने आदेशानुसार बुद्ध को छोड़ दिया और चोटी से कूदकर आत्महत्या करने के इरादे से गिज्जकूट पर्वत पर चढ़ गया।

वक्कली के गहरे दुःख और निराशा को भलीभांति जानते हुए, बुद्ध ने सोचा कि कहीं इस दुःख और निराशा के कारण वक्कली मगों को प्राप्त करने का अवसर न चूक जाए। इसलिए, उन्होंने अपना प्रकाश वक्कली पर भेजा, उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और स्वयं उनके समक्ष प्रकट हुए। बुद्ध के निकट आने से वक्कली शीघ्र ही अपना सारा दुःख भूल गए; वे प्रसन्न और अत्यंत उत्साहित हो गए।

बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 381 : जो भिक्षु बार-बार आनंद का अनुभव करता है और बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति समर्पित है, वह निर्वाण प्राप्त करेगा—शांत, बिना शर्त, आनंदमय।

---

प्रवचन के अंत में वक्कली ने अरहत पद प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु वक्काली की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवाना में निवास करते समय पूज्य वक्कली के संदर्भ में दिया था।

हमें बताया जाता है कि पूज्य वक्कली का पुनर्जन्म सावत्थी में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। एक दिन, युवावस्था में पहुँचने पर, उन्होंने बुद्ध को भिक्षा माँगते हुए नगर में प्रवेश करते देखा। बुद्ध के सुंदर रूप को देखकर वे संतुष्ट नहीं हुए और मन ही मन बोले, "मैं सदा बुद्ध के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा।" अतः उन्होंने संसार त्याग दिया और बुद्ध के शिष्य बन गए। वे हमेशा ऐसे स्थान पर खड़े रहते जहाँ से वे दस शक्तियों के स्वामी वक्कली के दर्शन कर सकें, और शास्त्र का पाठ और ध्यान का अभ्यास छोड़कर, वे अपना सारा समय बुद्ध के दर्शन में व्यतीत करते थे। बुद्ध ने उनके ज्ञान के परिपक्व होने की प्रतीक्षा की और एक शब्द भी नहीं कहा। एक दिन बुद्ध ने अपने भीतर यह आभास किया, "अब उनका ज्ञान परिपक्व हो गया है;" अतः उन्होंने उनसे कहा, "वक्कली, मेरे इस नश्वर शरीर को देखने से तुम्हें क्या लाभ होगा? हे वक्कली, जो कोई भी धम्म का दर्शन करता है, वह मुझे ही देखता है।" इस प्रकार बुद्ध ने पूज्य वक्कली को उपदेश दिया।

लेकिन बुद्ध की चेतावनी के बावजूद, वक्काली बुद्ध को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहता था और न ही उन्हें अपने पास से जाने देना चाहता था। अंततः बुद्ध ने सोचा, "जब तक इस भिक्षु को कोई आघात नहीं लगेगा, तब तक यह कभी नहीं समझेगा।" अब वर्षा ऋतु निकट थी, और बुद्ध निवास करना चाहते थे। इसलिए निवास करने के नियत दिन, बुद्ध राजगृह गए और वक्काली को यह कहकर विदा कर दिया, "वापस जाओ, वक्काली।" इस प्रकार तीन महीने तक वक्काली बुद्ध के साथ नहीं रह सका और मन ही मन कहता रहा, "बुद्ध मुझसे बात नहीं करते।" अंततः उसने मन ही मन कहा, "अब मेरे जीने का क्या लाभ? मैं किसी पर्वत की चोटी से कूद जाऊँगा।" और यही सोचकर वह गिद्ध शिखर पर चढ़ गया।

बुद्ध ने देखा कि भिक्षु उदास और संसार से विरक्त है, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "यदि इस भिक्षु को मुझसे कोई सांत्वना या दिलासा नहीं मिलेगा, तो वह मोक्ष के मार्ग और उसके फल प्राप्त करने की अपनी प्रवृत्ति को नष्ट कर देगा।" तदनुसार, उन्होंने अपना एक तेजस्वी स्वरूप प्रकट किया और भिक्षु के समक्ष दर्शन दिए। जैसे ही भिक्षु ने बुद्ध को देखा, उसके ऊपर से दुःख का बोझ हट गया। फिर बुद्ध ने मानो किसी सूखी झील को जल की धारा से भर दिया हो, भिक्षु के भीतर तीव्र आनंद और संतोष का संचार कर दिया।

आदरणीय वक्काली ने सोचा, "मैंने दस शक्तियों के स्वामी को देखा है, और वे मुझसे कह रहे हैं, 'आओ!'" तत्काल ही उन्हें गहन आनंद का अनुभव हुआ। उन्होंने सोचा, "मैं कैसे जाऊँ?" और पर्वत की चोटी पर खड़े होकर, यद्यपि उन्हें कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था, श्लोक के पहले शब्द सुनते ही वे दस शक्तियों के स्वामी के सामने वायु में उछल पड़े। और वायु में उड़ते हुए, बुद्ध द्वारा दिए गए श्लोकों का चिंतन करते हुए, उन्होंने आनंद की भावना को पूरी तरह से दबा दिया और अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हत्व प्राप्त कर लिया। बुद्ध की स्तुति करते हुए, वे नीचे उतरे और बुद्ध की उपस्थिति में खड़े हो गए। एक अवसर पर बुद्ध ने उन्हें आस्थावान लोगों में सर्वोपरि स्थान दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 381)

पमोज्जाबहुलो बुद्धसासने पसन्नो भिक्खु

संखारूपसमं सुखं संतं पदं अधिगच्छे

पमोज्जबहुलो [ पमोज्जबहुला ]: प्रचुर परमानंद का; बुद्धासन : बुद्ध की शिक्षा में; पसन्नो [ पसन्ना ]: आनंद लेना; भिक्खु : साधु; संखारूपसमाम् [ संखारूपसमा ]: सभी कंडीशनिंग की समाप्ति; सुखं [ सुखा ]: आनंदमय; संतं पदं [ पद ]: शांति की स्थिति (निब्बान); अधिगच्छे : पहुँच जायेंगे

उनका परमानंद असीम है। वे बुद्ध की शिक्षाओं में आनंदित होते हैं। ऐसा भिक्षु सभी बंधनों के सुखद अंत के माध्यम से पूर्ण शांति की अवस्था - निर्वाण - को प्राप्त करेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 381)

संखारूपसमं : सभी बंधनों का निवारण। संखार पाँच स्कंदों (अस्तित्व के पाँच समूह या आसक्ति के समूह) में से एक है। संखार को मानसिक संरचना के रूप में वर्णित किया गया है। इन स्कंदों को खंड भी कहा जाता है । ये संखार पचास मानसिक घटनाओं से मिलकर बने हैं, जिनमें से ग्यारह सामान्य मनोवैज्ञानिक तत्व हैं, पच्चीस उच्च ( शोभन ) गुण और चौदह कर्मिक रूप से अस्वास्थ्यकर गुण हैं। संखार प्रतीत्यसमुत्पाद ( पटिच्च समुत्पाद ) के सूत्र की दूसरी कड़ी है। संखार का प्रयोग किसी भी निर्मित, बद्ध या सृजित वस्तु के अर्थ में भी किया जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 382

---

(धम्मपद 381) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 382 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 383)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 382 - सुमनसमनेरा वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण

यो हैव दहारो भिक्खु
yunjati buddhasasane
so' mam locam pabhaseti
abbha muttova candima.

---

श्लोक 382 : एक भिक्षु जो युवा होते हुए भी बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, वह संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादल से मुक्त चंद्रमा करता है।

---

समनेरा सुमना की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा सुमना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (382) कहा।

समनेरा सुमना थेरा अनुराधा के शिष्य थे। मात्र सात वर्ष की आयु में ही वे अरहत थे, यानी असाधारण शक्तियों से संपन्न थे। एक बार जब उनके गुरु अनुराधा हिमालय के वन में स्थित एक मठ में बीमार थे, तब उन्होंने अनोटत्ता झील से जल प्राप्त किया, जो मठ से पाँच सौ योजन दूर थी। यह यात्रा उन्होंने भूमि मार्ग से नहीं, बल्कि अपनी असाधारण शक्ति के बल पर वायु मार्ग से की। बाद में, थेरा अनुराधा समनेरा सुमना को बुद्ध के पास ले गए, जो उस समय विशाखा द्वारा दान किए गए पुब्बाराम मठ में निवास कर रहे थे।

वहाँ, अन्य युवा भिक्षु और समनेरा उनके सिर पर थपथपाकर, उनके कान, नाक और बांहें खींचकर उन्हें चिढ़ा रहे थे और मज़ाक में पूछ रहे थे कि क्या उन्हें ऊब नहीं लग रही है। बुद्ध ने उन्हें देखा और सोचा कि वे उन युवा भिक्षुओं को युवा समनेरा सुमन के दुर्लभ गुणों से

अवगत कराएँगे। इसलिए बुद्ध ने यह घोषणा की कि उन्हें किसी समनेरा से अनोतत्ता झील से पानी का एक घड़ा लाने की आवश्यकता है। पूज्य आनंद ने पुब्बाराम मठ के भिक्षुओं और समनेराओं में खोज की, लेकिन कोई भी यह काम करने में सक्षम नहीं था। अंत में, पूज्य आनंद ने समनेरा सुमन से पूछा, जो अनोतत्ता झील से पानी लाने के लिए तुरंत सहमत हो गए। उन्होंने मठ से एक बड़ा सोने का घड़ा लिया और शीघ्र ही बुद्ध के लिए अनोतत्ता झील से पानी ले आए। पहले की तरह, वे अनोतत्ता झील गए और अपनी अलौकिक शक्ति से हवा में उड़कर वापस आ गए।

संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में भिक्षुओं ने बुद्ध को समनेरा सुमना की अद्भुत यात्रा के बारे में बताया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, जो व्यक्ति सतर्कता और लगन से धम्म का अभ्यास करता है, वह युवावस्था में भी अलौकिक शक्तियां प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 382 : एक भिक्षु जो युवा होते हुए भी बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति स्वयं को समर्पित करता है, वह संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादल से मुक्त चंद्रमा करता है।

---

अध्याय पच्चीस का अंत: भिक्षु

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नवदीक्षित भिक्षु सुमना की कहानी, जिसने एक चमत्कार किया।

समनेरा सुमन पूज्य अनुरुद्ध के शिष्य थे। कम उम्र में ही, अपने अच्छे कर्मों के कारण वे अलौकिक शक्तियों से संपन्न अरहत बन गए। एक बार जब उनके गुरु अनुरुद्ध बीमार थे, तो उन्होंने अनोटत्ता झील से पानी लाया, जो मठ से बहुत दूर और दुर्गम थी। लेकिन अपनी अलौकिक शक्ति के कारण वे वायु में यात्रा करने में सक्षम रहे। कुछ समय बाद, अनुरुद्ध सुमन को पुब्बाराम मठ में बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित कराने ले गए।

मठ में, कई सामनरों ने सुमना को चिढ़ाया और उसका मज़ाक उड़ाया क्योंकि वह बहुत छोटा था। बुद्ध उन सामनरों को सुमना के असाधारण गुणों से परिचित कराना चाहते थे। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि वे कुछ सामनरों को अनोतत्ता झील से पानी का एक घड़ा लाने के लिए कहेंगे। लेकिन उनमें से कोई भी यह काम करने में सक्षम नहीं था। अंततः, पूज्य आनंद के अनुरोध पर, सुमना बुद्ध के लिए पानी का घड़ा लेने गया। पहले की तरह, वह अनोतत्ता झील गया और अपनी अलौकिक शक्ति से हवा में उड़कर वापस आ गया।

संध्याकाल में भिक्षुओं की सभा में, भिक्षुओं ने बुद्ध को सुमना की अद्भुत यात्रा के बारे में बताया। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जो व्यक्ति उत्साहपूर्वक धम्म का अभ्यास करता है, वह युवावस्था में भी अलौकिक शक्तियां प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 382)

दाहरो यो भिक्खु बुद्धासने युञ्जति सो अब्भा
मुत्तो कैंडिमा इव इमं लोकं हवे पभसेति

दहारो [ दहारा ]: युवा; यो भिक्खु : कोई साधु; बुद्धासन : बुद्ध की शिक्षा में; युञ्जति : परिश्रम करता है; तो : वह साधु; अब्भा मुत्तो [ मुत्ता ]: बादल से मुक्त; कैंडिमा इव :
चंद्रमा की तरह; इमं लोकं [ लोक ]: यह दुनिया; हा वे : निश्चित रूप से; पभासेति : चमकीला रूप से प्रकाशित करेगी

यह सत्य है। यदि कोई युवा भिक्षु बुद्ध की शिक्षाओं में पूरी लगन से परिश्रम करे, तो वह निश्चित रूप से संसार को उसी प्रकार प्रकाशित करेगा जैसे कोई चंद्रमा कुछ समय के लिए छिपे हुए काले बादल के पीछे से निकलकर प्रकट होता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 382)

यह श्लोक एक बहुत ही युवा भिक्षु से संबंधित है जो चमत्कार करने में सक्षम था। ये चमत्कार एकाग्र ध्यान का परिणाम थे।

आत्म-विकास के साधन के रूप में ध्यान एक सकारात्मक, गतिशील शक्ति है जो आत्म-ज्ञान की ओर ले जाती है, न कि जीवन की अनिश्चितताओं से मात्र एक नकारात्मक पलायन। वास्तव में, यह मनुष्य की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जागृत करने का सर्वोत्तम साधन है, जिससे उसे दो लाभ प्राप्त होते हैं: बुरी प्रवृत्तियों से पूर्ण मुक्ति और आध्यात्मिक ज्ञान की असाधारण शक्ति।

समाधि ध्यान के दौरान एकाग्रता में निरंतर वृद्धि के साथ मन निम्न आवेगों और इंद्रिय-संबंधी भावनाओं से मुक्त हो जाता है, और इस प्रकार बाधाओं को दूर करके नकारात्मक अच्छाई प्राप्त करता है। नकारात्मक अच्छाई की आत्मसंतुष्टि अनिवार्य रूप से उच्च विकास की एक जीवंत शक्ति द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है, जो अंततः सकारात्मक अच्छाई को जन्म देती है। जब मन इस सकारात्मक अच्छाई में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तो यह एक अत्यंत प्रशंसनीय साधन बन जाता है जो अलौकिक कार्यों और दिव्य दर्शनों के लिए उपयुक्त और योग्य होता है, जो सामान्य मन के लिए चमत्कार के समान प्रतीत होते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि ध्यान का अभ्यास करने वाला शिष्य अलौकिक गुणों ( उत्तरी-मनुष्य-धम्म ) में निपुण हो जाता है, जो उसके अभ्यास के असाधारण लाभ हैं। ज्ञान विधि से ध्यान का अभ्यास करने वाले शिष्यों को अपने जीवनकाल में समापत्ति का सुख प्राप्त होता है , जो मानसिक शांति की परमानंदमय अवस्था है। इसके अतिरिक्त, कसिण विधि से ध्यान का अभ्यास करने वालों को असाधारण लाभ के रूप में अभिज्ञा की शक्तियाँ , यानी उच्चतर या विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। विशुद्धिमग्ग शास्त्रों में वर्णित इन लाभों का विस्तृत वर्णन करता है।

अध्याय 26. ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण (383-423)
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 383

———————————————————————

(धम्मपद 382) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 383 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 384)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 383 - पसादबहुलब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
चिंदा सोतम परक्कम्मा
कामे पानुदा ब्राह्मण
sankharanam khayam natva
akatannusi brahmana.

———————————————————————

श्लोक 383 : हे ब्राह्मण, परिश्रम से भोग की धारा को काट डालो और इंद्रिय इच्छाओं का त्याग कर दो। हे ब्राह्मण, बद्धता के अंत को देखकर, निर्वाण, अबद्धता को प्राप्त करने वाले अर्हत बनो।

———————————————————————

एक ऐसे ब्राह्मण की कहानी जिसका अटूट विश्वास था
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (383) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसने कुछ भिक्षुओं के प्रति अत्यधिक भक्ति दिखाई।
एक बार, श्रावस्ती में एक ब्राह्मण रहता था, जो बुद्ध के प्रवचन सुनने के बाद उनके प्रति अत्यंत समर्पित हो गया था। वह प्रतिदिन भिक्षुओं को अपने घर भिक्षा भोजन के लिए आमंत्रित करता था। जब भिक्षु उसके घर आते, तो वह उन्हें "अरहत" कहकर संबोधित करता और आदरपूर्वक उन्हें अपने घर में प्रवेश करने का निवेदन करता। इस प्रकार संबोधित किए जाने पर पुथुज्जन भिक्षु और अरहत दोनों ही लज्जित हुए और उन्होंने अगले दिन ब्राह्मण के घर न जाने का निर्णय लिया।
जब ब्राह्मण को पता चला कि भिक्षु उसके घर दोबारा नहीं आए तो वह दुखी हुआ। वह बुद्ध के पास गया और उन्हें भिक्षुओं के न आने की बात बताई। बुद्ध ने उन भिक्षुओं को बुलवाया और उनसे स्पष्टीकरण मांगा। भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि ब्राह्मण उन सभी को अरहत कहकर संबोधित करता था। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या इस प्रकार संबोधित किए जाने पर उन्हें कोई झूठा अभिमान या अनुचित प्रसन्नता महसूस होती है? भिक्षुओं ने नकारात्मक उत्तर दिया। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, यदि अरहत कहकर संबोधित किए जाने पर आपको कोई झूठा अभिमान या अनुचित प्रसन्नता महसूस नहीं होती, तो आप भिक्षुओं के अनुशासन के किसी भी नियम का उल्लंघन

करने के दोषी नहीं हैं। वास्तव में, ब्राह्मण ने आपको ऐसा इसलिए कहा क्योंकि वह अरहतों के प्रति अत्यंत समर्पित था। इसलिए, मेरे पुत्रों, आपको व्यथा से मुक्ति पाने और अरहतत्व प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 383 : हे ब्राह्मण, परिश्रम से भोग की धारा को काट डालो और इंद्रिय इच्छाओं का त्याग कर दो। हे ब्राह्मण, बद्धता के अंत को देखकर, निर्वाण, अबद्धता को प्राप्त करने वाले अर्हत बनो।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

महान आस्था रखने वाले ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने यह श्लोक एक ब्राह्मण के संदर्भ में कहा था, जिसने कुछ भिक्षुओं के प्रति अत्यधिक भक्ति दिखाई थी।

कहा जाता है कि एक बार एक ब्राह्मण ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और इतना प्रसन्न हुआ कि उसके बाद वह नियमित रूप से अपने घर पर सोलह भिक्षुओं को भोजन कराने लगा। जब भिक्षु आते, तो वह उनके कटोरे लेकर कहता, "आदरणीय अरहतों, कृपया पास आएं! आदरणीय अरहतों, कृपया बैठें!" वह जिसे भी संबोधित करता, सभी भिक्षुओं को अरहत कहकर संबोधित करता। अब जिन भिक्षुओं ने अभी तक धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त नहीं किया था, वे मन ही मन सोचने लगे, "यह गृहस्थ यह नहीं जानता कि हमने अरहत पद प्राप्त नहीं किया है।" इसका परिणाम यह हुआ कि सभी भिक्षु शर्मिंदा हो गए और उसके घर जाना बंद कर दिया।

इससे वह आम आदमी बहुत दुखी और उदास हो गया। उसने सोचा, "अरे, मेरे घर तो कोई पूज्य भिक्षु नहीं आते?" इसलिए वह मठ गया, बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें सारी बात बताई। तब बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा, "भिक्षुओं, इसका क्या अर्थ है?" भिक्षुओं ने उन्हें सारी बात बताई। बुद्ध ने कहा, "लेकिन, भिक्षुओं, क्या आपको यह अच्छा नहीं लगता कि वह आपको अरहत कहकर अभिवादन करें?" "नहीं, पूज्यवर, हमें यह अच्छा नहीं लगता।" "फिर भी, भिक्षुओं, यह तो मनुष्य के आनंद की अभिव्यक्ति मात्र है; और आनंद की अभिव्यक्ति में कोई दोष नहीं हो सकता। ब्राह्मणों का अरहतों के प्रति प्रेम असीम है। इसलिए, यह उचित है कि आप भी तृष्णा की धारा को त्याग दें और अरहतत्व की प्राप्ति से कम किसी भी चीज़ से संतुष्ट न हों।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 383)

ब्राह्मण परक्कम्मा सोतं छिन्दा कामे पनुदा

ब्राह्मण संखारणं खयं नात्वा अकतन्नि असि

ब्राह्मण : हे ब्राह्मण; परक्कम्मा : कड़ी मेहनत करें; सभी आवश्यक प्रयास करें; चिन्दा : काट दिया; सोतां [ सोता ]: धारा; कामे : कामुक इच्छाएँ; पनुडा : छुटकारा पाना; संखारणम् [ संखारण ]: वातानुकूलित चीजों का; खायं [ खाया ]: क्षरण; णत्वा : जान कर; अकातान्नुसि : अनिर्मित के ज्ञाता बनें

अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करो और जीवन के प्रवाह को काट डालो। वासना से मुक्त हो जाओ। सांसारिक चीजों के क्षय को जान लो। और फिर, तुम निर्वाण के ज्ञाता बन जाओगे।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 383)

sotaṃ chinda : धारा को काट दो। यहाँ धारा लालसा है। जो धारा को काट देता है, वह धारा-विजेता ( sotāpanna ) बन जाता है । धारा-विजेता सांसारिक ( puthujjana ) नहीं रहता, बल्कि आर्य (महान) बन जाता है।

संतत्व की इस प्रथम अवस्था को प्राप्त करने पर, वह अस्तित्व से बंधे हुए निम्नलिखित तीन बंधनों ( संयोजन ) को नष्ट कर देता है, अर्थात्:

(1) सक्काया-दिट्ठी — शाब्दिक अर्थ है, वह दृष्टिकोण जब कोई समूह या यौगिक विद्यमान हो। यहाँ काया से तात्पर्य पदार्थ के पाँच समुच्चयों - भावना, बोध, मानसिक अवस्थाएँ और चेतना - से है। यह दृष्टिकोण कि जब मनो-शारीरिक समुच्चयों का एक जटिल यौगिक मौजूद हो, तब एक अपरिवर्तनीय सत्ता, एक स्थायी आत्मा विद्यमान होती है, सक्काया-दिट्ठी कहलाता है। धम्मसंगनी ने ऐसे बीस प्रकार के आत्मा-सिद्धांतों की गणना की है। सक्काया-दिट्ठी को सामान्यतः आत्म-भ्रम, व्यक्तित्व का सिद्धांत या व्यक्तिवाद का भ्रम के रूप में अनुवादित किया जाता है;

(2) विचिकिच्चा —संदेह। ये संदेह हैं (i) बुद्ध के बारे में, (ii) धम्म के बारे में, (iii) संघ के बारे में, (iv) अनुशासनात्मक नियमों (सिक्खा) के बारे में, (v) भूतकाल के बारे में, (vi) भविष्य के बारे में, (vii) भूतकाल और भविष्यकाल दोनों के बारे में, और (viii) आश्रित उत्पत्ति (पटिच्च-समुप्पाद) के बारे में;

(3) सिलब्बतपरमासा — (गलत) रीति-रिवाजों और समारोहों का पालन।

धम्मसंगानी इसे इस प्रकार समझाता है: इस सिद्धांत से बाहर के तपस्वियों और ब्राह्मणों का यह सिद्धांत है कि नैतिक आचरण और अनुष्ठानों के नियमों द्वारा शुद्धि प्राप्त की जाती है ।



---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 384 - संबहुलाभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yada dvayesu dhammesu
paragu hoti brahmano
athassa sabbe samyoga
attham gacchanti janato.

---

श्लोक 384 : जब ब्राह्मण दो धर्मों (अर्थात् शांति/समता और अंतर्दृष्टि/विपश्यना ध्यान) में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तब उस ज्ञानी में सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।

---

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (384) कहा।

एक बार तीस भिक्षु बुद्ध को प्रणाम करने आए। पूज्य सारिपुत्त ने देखा कि उन भिक्षुओं के लिए अर्हतत्व प्राप्त करने का समय आ गया है, इसलिए वे बुद्ध के पास गए और केवल उन्हीं भिक्षुओं के लाभ के लिए एक प्रश्न पूछा। प्रश्न यह था: "दो धर्म क्या हैं?" इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया, "सारिपुत्त! शांति (समता) और अंतर्दृष्टि (विपश्यना) ध्यान ही दो धर्म हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 384 : जब ब्राह्मण दो धर्मों (अर्थात् शांति/समता और अंतर्दृष्टि/विपश्यना ध्यान) में अच्छी तरह से स्थापित हो जाता है, तब उस ज्ञानी में सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।

---

प्रवचन के अंत में सभी तीस भिक्षुओं ने अरहत पद प्राप्त कर लिया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

तीस भिक्षुओं की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने तीस भिक्षुओं के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक दिन, विदेशों में रहने वाले तीस भिक्षु आए और बुद्ध को प्रणाम करके बैठ गए। पूज्य सारिपुत्त यह जानते हुए कि उनमें अर्हतत्व प्राप्ति के लिए आवश्यक गुण मौजूद हैं, बुद्ध के पास गए और बिना बैठे ही उनसे यह प्रश्न पूछा, “पूज्यवर, दो अवस्थाओं का अक्सर उल्लेख होता है; वे दो अवस्थाएँ क्या हैं?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “सारिपुत्त, उन दो अवस्थाओं से मेरा तात्पर्य शांति और अंतर्दृष्टि है।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 384)

ब्राह्मणो यदा द्वयेसु धम्मेसु परागु होति

अथ जानतो अस्स सब्बे संयोग अत्थं गच्छन्ति

यदा : जब; द्वयसु धम्मेसु : 'दो अवस्थाओं' में; पारगू होति : सिद्ध हो जाता है; अथ : तब; जानतो [ जानता ] : (उसमें) जो जानता है; अस : उसके; सब्बे संयोग : सभी बंधन; अत्थं गच्छन्ति : लुप्त हो जाते हैं

जब ब्राह्मण—सत्य के साधक—एकाग्रता और अंतर्दृष्टि की दो अवस्थाओं को पूरी तरह से समझ लेता है, तो उस व्यक्ति में, जो इन्हें जानता है, सभी बंधन क्षीण हो जाते हैं, कम हो जाते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 384)

द्वयसु धम्मेसु : दो अवस्थाओं में। ये दो अवस्थाएँ हैं एकाग्रता ( समथा ) और अंतर्दृष्टि ( विपस्सना )। सत्य की खोज करने वाले को अगली अवस्था तक ले जाने के लिए मन के अनुशासन की ये दो प्रणालियाँ आवश्यक हैं। इन दो अवस्थाओं में से पहली है समथा — एकाग्रता, शांति, निर्मलता। चित्तेकग्गता (मन की एकाग्रता) और अविक्खेप (विचलित न होना)। यह स्वस्थ चेतना के मानसिक कारकों में से एक है।

अगला है विपश्यना — अंतर्दृष्टि। अंतर्दृष्टि वह सहज ज्ञान है जो प्रकट होकर अस्तित्व की अनित्यता, दुख और समस्त भौतिक एवं मानसिक घटनाओं के निराकार और सारहीन स्वरूप के सत्य को उजागर करता है। बौद्ध धर्म में अंतर्दृष्टि-ज्ञान ही निर्णायक मुक्तिदायक कारक है, यद्यपि इसे नैतिकता और एकाग्रता के दो अन्य प्रशिक्षणों के साथ विकसित करना आवश्यक है। अंतर्दृष्टि-अभ्यास की पराकाष्ठा सीधे पवित्रता की अवस्था की ओर ले जाती है।

समाधि या समाथा : एकाग्रता। शाब्दिक अर्थ: दृढ़ता से स्थिर रहने की (मानसिक) अवस्था—मन का किसी एक वस्तु पर स्थिर होना। मन की एकाग्रता ( चित्तस्स एकग्गता ) को एकाग्रता कहते हैं। एकाग्रता, यद्यपि अक्सर बहुत कमजोर होती है, सात मानसिक गुणों में से एक है जो सभी चेतना से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई है। सही एकाग्रता ( सम्मा - समाधि ), अष्टांग मार्ग ( मग्ग ) की अंतिम कड़ी के रूप में , चार ध्यानात्मक समाधि ( झान ) के रूप में परिभाषित की गई है। व्यापक अर्थ में, एकाग्रता की बहुत कमजोर अवस्थाओं को भी समाहित करते हुए, यह सभी कर्मिक रूप से लाभकारी ( कुशल ) चेतना से जुड़ी है। गलत एकाग्रता ( मिच्छा - समाधि ) सभी कर्मिक रूप से हानिकारक ( अकुशल ) चेतना से जुड़ी एकाग्रता है । ग्रंथों में जहां भी इस शब्द को सही या गलत में विभाजित नहीं किया गया है, वहां सही एकाग्रता का अर्थ है।

एकाग्रता में तीव्रता के तीन स्तर होते हैं:

(1) मानसिक अभ्यास के आरंभ में विद्यमान प्रारंभिक एकाग्रता (परिकम्मा-समाधि);

(2) आस-पास की एकाग्रता (उपचार-समाधि), जैसे एकाग्रता जो प्रथम तल्लीनता (झान) के निकट पहुँचती है लेकिन अभी तक उसे प्राप्त नहीं करती है, जो कुछ मानसिक अभ्यासों में तथाकथित प्रति-छवि (पटिभाग-निमित्त) के प्रकट होने से चिह्नित होती है, और

(3) प्राप्ति एकाग्रता (अप्पणा-समाधि), जैसे कि वह एकाग्रता जो समाधि के दौरान मौजूद होती है।

चार श्रेष्ठ मार्ग-क्षणों ( मग्ग ) और फल-क्षणों ( फल ) से संबंधित एकाग्रता को लोकउत्तरा कहा जाता है , जिसका लक्ष्य निर्वाण होता है। अन्य सभी प्रकार की एकाग्रता, यहाँ तक कि उदात्त समाधि की एकाग्रता भी, केवल लोकीय होती है । एकाग्रता के विकास ( समाधि - भावना ) से चार प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त हो सकते हैं: (i) चार समाधि के माध्यम से वर्तमान सुख; (ii) बोध के माध्यम से ज्ञान और दृष्टि ( ज्ञान - दस्सना ) — यहाँ संभवतः दैवीय आँख ( अभिज्ञा ) के समान — की प्राप्ति।

विपश्यना : अंतर्दृष्टि। अंतर्दृष्टि वह सहज ज्ञान है जो प्रकट होकर अस्तित्व की अनित्यता, दुख और समस्त भौतिक एवं मानसिक घटनाओं के निराकार और सारहीन स्वरूप के सत्य को उजागर करती है। बौद्ध धर्म में अंतर्दृष्टि-ज्ञान ( विपश्यना - पञ्ञा ) ही निर्णायक मुक्तिदायक कारक है, यद्यपि इसे नैतिकता और एकाग्रता के दो अन्य प्रशिक्षणों के साथ विकसित करना आवश्यक है। अंतर्दृष्टि अभ्यास की पराकाष्ठा सीधे पवित्रता की अवस्थाओं की ओर ले जाती है।

अंतर्दृष्टि महज बौद्धिक समझ का परिणाम नहीं है, बल्कि अपने शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष ध्यानपूर्ण अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होती है। टीकाओं में अंतर्दृष्टि-ध्यान विकसित करने का क्रम इस प्रकार दिया गया है:

शारीरिक ( रूप ) का विवेक;

मानसिक ( नामा ) विवेक;

दोनों का चिंतन ( नामरूप ) जैसे कि वास्तविक घटनाओं में उनका युग्म-वार घटित होना और उनकी परस्पर निर्भरता;

दोनों को सशर्त माना जाता है (आश्रित उत्पत्ति का अनुप्रयोग, ( पटिकसमुप्पाद );

मन और शरीर की स्थितियों पर तीनों विशेषताओं (अस्थिरता आदि) का अनुप्रयोग।

धीरे-धीरे बढ़ती अंतर्दृष्टि के चरणों का वर्णन नौ अंतर्दृष्टि-ज्ञान ( विपस्सना - ज्ञान ) में किया गया है, जो शुद्धि की छठी अवस्थाओं का गठन करते हैं: उत्थान और पतन के ज्ञान से शुरू होकर सत्य के अनुकूलन के साथ समाप्त होते हैं।

अठारह प्रमुख प्रकार के अंतर्दृष्टि-ज्ञान (या मुख्य अंतर्दृष्टि; ( महा - विपस्सना )) सूचीबद्ध और वर्णित किए गए हैं:

अनित्यता का चिंतन ( aniccānupassanā ),

दुःखों का चिंतन ( दुक्खानुपस्सना ),
अनात्म का चिंतन ( anattānupassanā ),
घृणा का चिंतन ( निब्बिदानुपस्सना ),
वैराग्य का चिंतन ( विरागानुपस्सना ),
मृत्यु के चिंतन ( निरोधानुपस्सना )
त्यागने का चिंतन ( paṭinissaggānupassanā ),
घटते हुए प्रकाश का चिंतन ( खयानुप ),
लुप्त होने का चिंतन ( वयानुप ),
परिवर्तन का चिंतन ( विपरीणमानुप ),
बिना शर्त (या चिह्नहीन) का चिंतन ( animittānup ),
इच्छाहीनता का चिंतन ( अप्पणिहितानुप ),
शून्यता का चिंतन ( सुञ्ञतानुप ),
घटनाओं की अंतर्दृष्टि का चिंतन जो उच्चतर ज्ञान है ( अधिपञ्ञा - धम्म - विपस्सना )।
वास्तविकता के अनुसार ज्ञान और दृष्टि ( यथा - भूत - ज्ञानदस्सना ),
दुःख (या खतरे) का चिंतन ( आदिनवानुपस्सना ),
चिंतन करना ( पटीसंखानुप ),
मुँह मोड़ने का चिंतन ( विवट्टानुपस्सना )।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 385

---

(धम्मपद 384) <<<< पिछला || धम्मपद 385 || अगला >>>> (धम्मपद 386)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 385 - मरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Yassa param aparam va
paraparam na vijjati
विट्टाडारम विसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 385 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसके लिए न तो यह किनारा (अर्थात इंद्रिय-आधार) है और न ही दूसरा किनारा (अर्थात इंद्रिय विषय), और जो दुखी नहीं है और नैतिक दोषों से मुक्त है(1)।

---

1. 'यह किनारा' और 'दूसरा किनारा' का प्रयोग आंतरिक और बाह्य आयतनों के संदर्भ में किया जाता है। आंतरिक आयतन इंद्रिय आधार हैं, जैसे आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन; बाह्य आयतन इंद्रिय विषय हैं, जैसे दृश्य वस्तु, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और मन का विषय।
एक सच्चे ब्राह्मण (अर्थात्, अरहत) के लिए न तो 'यह किनारा' है और न ही 'दूसरा किनारा', जिसका अर्थ है कि अरहत की इंद्रियां शांत हो जाती हैं और उसकी वासनाएं समाप्त हो जाती हैं।

———————————————————————————

मारा की कहानी (अर्थात शैतान/राक्षस द्वारा बुद्ध से 'परम' का अर्थ पूछना)
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने मारा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (385) कहा।
एक बार मारा मनुष्य का वेश धारण करके बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "आदरणीय महोदय, आप अक्सर 'परम' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस शब्द का क्या अर्थ है?" बुद्ध यह जानकर कि यह प्रश्न मारा पूछ रहा है, उसे फटकारा, "हे दुष्ट मारा! 'परम' और 'अपरम' शब्दों का तुमसे कोई संबंध नहीं है। 'परम' जिसका अर्थ है 'दूसरा किनारा', वहाँ केवल वे अरहत ही पहुँच सकते हैं जो नैतिक दोषों से मुक्त हों।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 385 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसके लिए न तो यह किनारा (अर्थात इंद्रिय-आधार) है और न ही दूसरा किनारा (अर्थात इंद्रिय विषय), और जो दुखी नहीं है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
मारा की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने मारा के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक बार मारा मनुष्य का वेश धारण करके बुद्ध के पास आया और उनसे पूछा, "आदरणीय! आप अक्सर 'पारं' शब्द का प्रयोग करते हैं; इस शब्द का क्या अर्थ है?" बुद्ध यह जानकर कि यह प्रश्न मारा पूछ रहा है, उसे फटकारा, "हे दुष्ट मारा! ' पारं' और 'अपारं' शब्दों का तुमसे कोई संबंध नहीं है। पारं , जिसका अर्थ है दूसरा किनारा, केवल उन अरहतों द्वारा ही पहुँचा जा सकता है जो नैतिक दोषों से मुक्त हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 385)
यस्सा पारं अपरं वा पारंपारं न विज्जति
वीतद्दरं विसंयुत्तं तं अहं ब्रूमि ब्राह्मणम्
यस्सा : किसके लिए; पारं [ पारा ]: दूर का किनारा; अपरं [ अपरा ]: निकट तट; परापाराम् [ परापारा ]: इधर-उधर किनारे; न विज्जति : अस्तित्व में नहीं; वीतद्दरं [ वीतद्दर ]: निष्कलंक; विसंयुत्तं [ विसंयुत्त ]: सभी अशुद्धियों से मुक्त; तं : वह संत; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणम् [ ब्राह्मण ]: ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें
उसके लिए कोई दूर का किनारा नहीं है, न ही कोई पास का किनारा है। उसके लिए ये दोनों किनारे अस्तित्वहीन हैं। वह चिंता मुक्त है और बंधनों से मुक्त है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 385)
पारं : इंद्रिय क्षेत्र। बारह इंद्रिय क्षेत्र होते हैं, जिनमें से छह व्यक्तिगत इंद्रिय क्षेत्र हैं, और अन्य छह बाह्य इंद्रिय क्षेत्र हैं। इन्हें आयतन कहा जाता है , जो चार अमूर्त अवशोषणों का नाम है। बारह आधार या स्रोत जिन पर मानसिक प्रक्रियाएं निर्भर करती हैं, उनमें पाँच भौतिक इंद्रियां और चेतना शामिल हैं, जो छह व्यक्तिगत ( अज्जत्तिक ) आधार हैं; और छह वस्तुएं, जिन्हें बाह्य ( बाहिरा ) आधार कहा जाता है ।
आँख, या दृष्टि अंग; दृश्य वस्तु,
कान, या श्रवण अंग; ध्वनि, या श्रव्य वस्तु,
नाक, या सूंघने वाला अंग; गंध, या सूंघने वाली वस्तु,
जीभ, या स्वाद लेने वाला अंग; स्वाद, या स्वाद का स्रोत
शरीर, या स्पर्श अंग; शरीर की छाप, या स्पर्श वस्तु,
मन का आधार, या चेतना; मन का विषय ( मनायतन ) ( धम्मायतन )

दृश्य अंग ( चक्खायतन ) से तात्पर्य आँख के संवेदी भाग ( चक्खु - पसाद ) से है, जो चार तत्वों से निर्मित है और इंद्रिय-उत्तेजनाओं (सपत्तिघ) के प्रति प्रतिक्रिया करता है । इसी प्रकार शेष चार शारीरिक इंद्रियों का भी वर्णन किया गया है ।

मन-आधार ( मानायतन ) सभी प्रकार की चेतना के लिए एक सामूहिक शब्द है, और इसलिए इसे मन-तत्व ( मनो - धातु ) के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जो केवल इंद्रिय-विषय पर ध्यान देने ( वज्जन ) और इंद्रिय-विषय को ग्रहण करने ( संपटिच्छन ) का कार्य करता है । मन ( विञ्ञाना - किच्च ) के कार्यों पर :

दृश्य वस्तु ( रूपायतन ) को उस घटना के रूप में वर्णित किया गया है जो चार भौतिक तत्वों से निर्मित होती है और रंगों के रूप में प्रकट होती है। दृष्टि से, यानी चक्खु-विज्ञान द्वारा जो देखा जाता है , वह रंग और प्रकाश के अंतर होते हैं, न कि त्रि-आयामी भौतिक वस्तुएँ।

मन-विषय-आधार ( धम्मायतन ) मन-विषय-तत्व ( धम्म - धातु और धम्मरम्मण ) के समान है। यह भौतिक या मानसिक, भूतकाल, वर्तमान काल या भविष्यकाल का, वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है।

पांचों शारीरिक इंद्रियों को इंद्रिय शक्तियाँ भी कहा जाता है , और इन शक्तियों के बारे में कहा जाता है: प्रत्येक पांचों शक्ति का अपना अलग क्षेत्र होता है, और कोई भी शक्ति दूसरी शक्ति के क्षेत्र में भागीदार नहीं होती...; उनका आधार मन होता है... वे प्राण शक्ति से नियंत्रित होती हैं... लेकिन प्राण शक्ति फिर से ऊष्मा से नियंत्रित होती है... ऊष्मा फिर से प्राण शक्ति से नियंत्रित होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे जलते हुए दीपक का प्रकाश और लौ परस्पर नियंत्रित होते हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 386

---

(धम्मपद 385) <<<< पिछला || धम्मपद 386 || अगला >>>> (धम्मपद 387)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 386 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Jhayim viraja' masinam
katakicca' manasavam
उत्तमत्था' मनुप्पट्टम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 386 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो एकांत में शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है और नैतिक दोषों से मुक्त है; जिसने अपने कर्तव्यों का पालन किया है, नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) से मुक्त है और उच्चतम लक्ष्य (अरहतत्व) को प्राप्त कर लिया है।

---

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (386) कहा।

एक दिन एक ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "गौतम बुद्ध अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। मैं भी जाति से ब्राह्मण हूँ। क्या मुझे भी ब्राह्मण नहीं कहा जाना चाहिए?" यह सोचकर वह बुद्ध के पास गया और उनसे यह प्रश्न पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं किसी को केवल उसकी जाति के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया हो।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 386 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो एकांत में शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है और नैतिक दोषों से मुक्त है; जिसने अपने कर्तव्यों का पालन किया है, नैतिक मादक पदार्थों (आसवों) से मुक्त है और सर्वोच्च लक्ष्य (अरहतत्व/निर्वाण/ज्ञानोदय) को प्राप्त कर लिया है।

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक ब्राह्मण की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, एक दिन उस ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "बुद्ध अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं, मैं तो जन्म और वंश से ब्राह्मण हूँ; इसलिए उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।" अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय में पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं किसी व्यक्ति को केवल जन्म और वंश के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं इस उपाधि से केवल उसी व्यक्ति को पुकारता हूँ जिसने परम लक्ष्य, अर्हतत्व को प्राप्त कर लिया हो।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 386)
झायिम विरजम असीनं कतकिच्चं अनासवं
उत्तममथं अनुप्पट्टं तं अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि
झायिम : ध्यान करना; विरजम : दोषों से मुक्त; असीनां [ असीना ]: एकांत में बैठा हुआ; काटाकिक्कां [ काटाकिक्का ]: जिसने अपने कार्य पूरे कर लिए हैं; अनासवम् [ अनासव ]: दागों से मुक्त; उत्तममत्थम् [ उत्तममत्था ]: उच्चतम अवस्था (निब्बान); अनुप्पट्टं [ अनुप्पट्टा ]: पहुंच गया; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणम् [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें
वह एकाग्रचित्त है। वह हर तरह के दोषों से मुक्त है—वह धूल जो किसी प्राणी को अशुद्ध करती है। वह एकांत में बैठा है। उसके सभी आध्यात्मिक कार्य और कर्तव्य पूर्ण हैं। वह सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 386)
उत्तमत्तं अनुप्पत्तं : जिसने सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्थाएँ प्राप्त कर ली हैं – अरहंतत्व: संतत्व, श्रेष्ठ व्यक्ति, श्रेष्ठ पुरुष।
चार महान व्यक्ति हैं ( आरिया - पुग्गला ):
धारा-विजेता ( सोटापन्ना );
एक बार लौटने वाला ( सकादागामी );
अनागामी (वापसी न करने वाला ); और
पवित्र व्यक्ति ( अरहत )।
(1) धारा-जीतने के मार्ग (सोतापत्ति-मग्ग) के माध्यम से व्यक्ति उन तीन बंधनों (संयोजन) से मुक्त हो जाता है जो प्राणियों को इंद्रिय जगत में अस्तित्व से बांधते हैं, (i) सक्कायादिट्ठी-व्यक्तित्व-विश्वास; (ii) विचिकिच्चा-संदेहपूर्ण शंका; (iii) सीलाब्बत-परमासा-केवल नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति।
(2) एक बार लौटने के मार्ग (सकदागामी-मग्ग) से व्यक्ति लगभग चौथे और पाँचवें बंधनों से मुक्त हो जाता है, (iv) कामच्छंद-इंद्रिय-वासना; (v) व्यापाद-द्वेष।
(3) अनागामी-मग्ग के मार्ग से व्यक्ति ऊपर बताए गए पाँच निम्न बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।
(4) पवित्रता के मार्ग (अरहत्त-मग्ग) के माध्यम से व्यक्ति पाँच उच्च बंधनों से मुक्त हो जाता है, (vi) रूपराग – भौतिक अस्तित्व की लालसा; (vii) अरूपराग – अमूर्त अस्तित्व की लालसा; (viii) मान – अहंकार; (ix) उद्दच्च – बेचैनी; (x) अविज्जा – अज्ञान।
(1) सोतापञ्ञा – तीन बंधनों के लुप्त होने के बाद, वह भिक्षु जिसने (निर्वाण की ओर) धारा जीत ली है और अब निचले लोकों में पुनर्जन्म के अधीन नहीं है, दृढ़ता से स्थापित है, पूर्ण ज्ञानोदय के लिए नियत है।
(2) सकादागामी – तीनों बंधनों के लुप्त होने और लोभ, घृणा और भ्रम के कम होने के बाद, वह केवल एक बार फिर लौटेगा; और एक बार फिर इस दुनिया में लौटकर वह दुखों का अंत करेगा।

(3) अनागामी — पाँच बंधनों के लुप्त होने के बाद वह एक उच्चतर लोक में प्रकट होता है, और वहाँ वह संसार (इंद्रिय लोक) से कभी वापस लौटे बिना निर्वाण प्राप्त करता है।
(4) अरहन्त — सभी दोषों (आसवक्खय) के निवारण के द्वारा वह इसी जीवन में मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति, जो दोषों से मुक्त है, और जिसे उसने स्वयं समझा और अनुभव किया है, प्राप्त कर लेता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 387

---

(धम्मपद 386) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 387 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 388)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 387 - आनंदत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Diva tapati adicco
रत्ती मभाती चंडीमा
sannaddho khattiyo tapati
jhayi tapati brahmano
atha sabbamahorattim
buddho tapati tejasa.

---

श्लोक 387 : दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा चमकता है; राजसी वस्त्रों में राजा चमकता है; ध्यान में अरहत चमकता है; परन्तु बुद्ध अपनी महिमा में दिन और रात, हर समय चमकते हैं।

---

थेरा आनंद की कहानी
पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य आनंद के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (387) कहा।
कोसल के राजा पसेनदी (प्रसेनजित) सातवें माह की पूर्णिमा के दिन बुद्ध से मिलने आए थे। राजा अपने शाही वस्त्रों में परिपूर्ण थे। उसी समय थेरा कलुदयी भी उसी कक्ष में सभा के किनारे बैठे थे। वे गहन ध्यान में लीन थे, उनका शरीर प्रकाशमान और स्वर्णिम था। आदरणीय आनंद ने आकाश में देखा कि सूर्य अस्त हो रहा था और चंद्रमा अभी-अभी निकल रहा था, सूर्य और चंद्रमा दोनों से प्रकाश की किरणें निकल रही थीं।
आदरणीय आनंद ने राजा, थेरा और सूर्य एवं चंद्रमा के प्रकाश को देखा। अंत में, आदरणीय आनंद ने बुद्ध की ओर देखा और उन्हें अचानक यह अहसास हुआ कि बुद्ध से निकलने वाला प्रकाश अन्य सभी से निकलने वाले प्रकाश से कहीं अधिक था। बुद्ध को उनकी महिमा और वैभव में देखकर, आदरणीय आनंद तुरंत बुद्ध के पास गए और बोले, "हे आदरणीय! आपके दिव्य शरीर से निकलने वाला प्रकाश राजा, थेरा, सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश से कहीं अधिक है।"
बुद्ध ने उनसे पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 387 : दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा चमकता है; राजसी वस्त्रों में राजा चमकता है; ध्यान में अरहत चमकता है; परन्तु बुद्ध अपनी महिमा में दिन और रात, हर समय चमकते हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
आदरणीय आनंद की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य आनंद के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
कथा के अनुसार, महाप्रसव के दिन, पसेनादि कोसला सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर, हाथों में इत्र, मालाएँ आदि लिए हुए मठ में गए। उस समय पूज्य कालुदाई सभा के बाहरी घेरे में समाधि अवस्था में विराजमान थे। उनका शरीर स्वर्णिम होने के कारण दर्शन में अत्यंत सुंदर था। ठीक उसी समय चंद्रमा उदय हुआ और सूर्य अस्त हुआ। पूज्य आनंद ने सूर्यास्त के समय सूर्य की चमक और उदय के समय चंद्रमा की चमक को देखा; फिर उन्होंने राजा के शरीर की चमक, पूज्य बुद्ध के शरीर की चमक और तथागत बुद्ध के शरीर की चमक को देखा। बुद्ध की चमक अन्य सभी बुद्धों की चमक से कहीं अधिक थी।
आदरणीय आनंद ने बुद्ध को प्रणाम करते हुए कहा, "आदरणीय, आज मैंने इन सभी शरीरों की चमक देखी, लेकिन केवल आपके शरीर की चमक ने ही मुझे तृप्त किया; क्योंकि आपका शरीर इन सभी अन्य शरीरों की चमक से कहीं अधिक तेजस्वी था।" बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में, राजा जब सज-धज कर होता है, और अरहत जब मानवीय सान्निध्य त्यागकर समाधि में लीन हो जाता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात चमकते हैं, और वे पंचांग ज्योति से प्रकाशित होते हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 387)
आदिको दिवा तपती कैंडिमा रत्तिं ओभाति खट्टियो
सन्नद्धो तपति ब्राह्मणो झायि तपति
अथ सब्बं अहोरत्तीं बुद्धो तेजसा तपति
एडिक्को [ एडिकका ]: सूर्य; दिवा : दिन के दौरान; तपती : चमकता है; कैंडिमा : चंद्रमा; रत्तीं [ रत्ती ]: रात में; ओभाति : चमकता है; खट्टियो [ खट्टिया ]: योद्धा; सन्नद्धो [ सन्नद्ध ]: अपना कवच पहने हुए; तपती : चमकती है; ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: ब्राह्मण; झायी : ध्यान में; तपती : चमकता है; अथा : परंतु; सब्बाṃ [ सब्बा ]: भर में; अहोरात्तीं [ अहोरात्ती ]: दिन और रात; बुद्धो [ बुद्ध ]: बुद्ध; तेजसा : उसकी महिमा में; तपती : चमकती है
सूर्य दिन में चमकता है। चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। योद्धा कवच पहने होने पर ही चमकता है। ब्राह्मण ध्यानमग्न होने पर ही चमकता है। इन सभी लोगों के चमकने के अलग-अलग समय होते हैं। लेकिन बुद्ध अपने ज्ञानोदय के दौरान दिन-रात चमकते रहते हैं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 387)
झायी : ध्यान करना; ध्यान की अवस्था; एकाग्रता का अभ्यास करना । झान में लीन होना एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो पांचों इंद्रियों की पहुंच से परे है। यह अवस्था केवल एकांत में और निरंतर एकाग्रता के अभ्यास से ही प्राप्त की जा सकती है।
इंद्रियजन्य वस्तुओं से विरक्त होकर, बुरी चीजों से विरक्त होकर, शिष्य प्रथम समाधि में प्रवेश करता है, जो विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन के साथ होती है, वैराग्य से उत्पन्न होती है, और परमानंद और खुशी से भरी होती है।
यह सूक्ष्म भौतिक जगत से संबंधित प्रथम समाधि ( रूपावचराज्झान ) है। यह तब प्राप्त होती है जब एकाग्रता की शक्ति से पांचों इंद्रिय क्रियाएं अस्थायी रूप से निलंबित हो जाती हैं और पांचों अवरोध भी दूर हो जाते हैं।
प्रथम समाधि पाँच चीजों से मुक्त होती है, और पाँच चीजें उसमें मौजूद होती हैं। जब शिष्य प्रथम समाधि में प्रवेश करता है, तो पाँच बाधाएँ - कामवासना, द्वेष, सुस्ती और आलस्य, बेचैनी और मानसिक चिंता, संदेह - दूर हो जाती हैं; और वहाँ - विचार-अवधारणा ( वितक्का ), विवेचनात्मक चिंतन ( विचार ), परमानंद ( पीति ), सुख ( सुख ), और एकाग्रता ( चित्त एकग्गता - समाधि ) मौजूद होती हैं ।
प्रथम समाधि में उपस्थित ये पाँच मानसिक कारक समाधि के कारक (या घटक) कहलाते हैं ( झानंग )। वितक्का (अमूर्त विचार का प्रारंभिक निर्माण) और विचार (विवेचनात्मक चिंतन, मनन) मन के क्रियात्मक कार्य ( वाच - संस्कार ) कहलाते हैं; अतः ये चेतना की तुलना में गौण हैं। विशुद्धि - मग्ग में , वितक्का की तुलना घड़े को पकड़ने से और विचार की तुलना उसे पोंछने से की जाती है। प्रथम समाधि में ये दोनों ही कारक दुर्बल अवस्था में उपस्थित होते हैं और बाद की समाधि में पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं।
और इसके अलावा, विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन के शांत होने के बाद, और आंतरिक शांति और मन की एकता प्राप्त करने से, वह विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन से मुक्त अवस्था में प्रवेश करता है, दूसरी समाधि, जो एकाग्रता ( समाधि ) से उत्पन्न होती है और परमानंद ( पीति ) और सुख ( सुख ) से भरी होती है।
दूसरी समाधि अवस्था में, समाधि के तीन कारक होते हैं: खुशी और एकाग्रता।

और आगे, जब परमानंद की अवस्था समाप्त हो जाती है, तो वह समभाव, सजगता और स्पष्ट जागरूकता में लीन हो जाता है; और वह स्वयं उस अनुभूति का अनुभव करता है जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं: सुखी है वह जो समभाव और सजग है — इस प्रकार वह तीसरे समाधि में प्रवेश करता है।
तीसरे समाधि में समाधि के दो कारक हैं: समभाव सुख ( उपेक्खा - सुख ) और एकाग्रता ( चित्त'एकगत्ता ) ।
और इसके अलावा, सुख और दुख का त्याग करने के बाद, और पूर्व के सुख और दुःख के लुप्त हो जाने के बाद, वह सुख और दुख से परे की अवस्था में प्रवेश करता है, चौथी समाधि में, जो समभाव और जागरूकता से शुद्ध होती है।
चौथे अवशोषण में अवशोषण के दो कारक हैं: एकाग्रता और समभाव ( उपेक्खा )।
विशुद्धि - मग्ग में ध्यान के चालीस विषयों ( कम्मट्टाना ) का विस्तृत वर्णन और विवेचना की गई है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 388

———————————————————————

(धम्मपद 387) <<<< पिछला || धम्मपद 388 || अगला >>>> (धम्मपद 389 और 390)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 388 - अन्नतरब्राह्मण पब्बजिता वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण
बहितापापोती ब्राह्मणो
समाकारिया(1) "समानो" ती वुक्काती
pabbajayamattano malam
तस्मा "पब्बाजिटो"(2) ती वुकाति।

———————————————————————

श्लोक 388 : क्योंकि उसने बुराई का त्याग कर दिया है, इसलिए उसे 'ब्राह्मण' कहा जाता है; क्योंकि वह शांत जीवन जीता है, इसलिए उसे 'समना' कहा जाता है; और क्योंकि वह अपनी अशुद्धियों से छुटकारा पा लेता है, इसलिए उसे 'पब्बजित' कहा जाता है।

———————————————————————

1. समाचरिया: शाब्दिक अर्थ, शांत जीवन जीना, अर्थात् नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए अभ्यास करना।
2. पब्बजिता: वह व्यक्ति जो गृहस्थ जीवन छोड़कर एकांतवासी का बेघर जीवन अपनाता है; बौद्ध धर्म में इसका अर्थ है वह व्यक्ति जिसने गृहस्थ जीवन की अशुद्धियों का त्याग करके भिक्षु बन जाता है।

———————————————————————

एक ब्राह्मण संन्यासी की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (388) कहा।
एक समय श्रावस्ती में एक ब्राह्मण तपस्वी रहते थे। एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि बुद्ध अपने शिष्यों को पब्बजिता भिक्षु कहते हैं और चूंकि वे भी एक संन्यासी थे, इसलिए उन्हें भी पब्बजिता कहा जाना चाहिए। अतः वे बुद्ध के पास गए और उनसे यह प्रश्न पूछा कि उन्हें पब्बजिता क्यों नहीं कहा जाना चाहिए। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया: "केवल संन्यासी होने से कोई स्वतः पब्बजिता नहीं बन जाता; पब्बजिता बनने के लिए अन्य योग्यताएँ भी आवश्यक हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 388 : क्योंकि उसने बुराई का त्याग कर दिया है, इसलिए उसे 'ब्राह्मण' कहा जाता है; क्योंकि वह शांत जीवन जीता है, इसलिए उसे 'समना' कहा जाता है; और क्योंकि वह अपनी अशुद्धियों से छुटकारा पा लेता है, इसलिए उसे 'पब्बजित' कहा जाता है।

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक ब्राह्मण संन्यासी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक ब्राह्मण की कहानी प्रचलित है कि उसने बुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु के मार्गदर्शन में संसार त्याग दिया और ऐसा करने के बाद मन ही मन सोचा, "बुद्ध अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं; मैं भी एक भिक्षु हूँ, और उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।"

अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय में पूछा। बुद्ध ने कहा, ‘‘मैं किसी व्यक्ति को भिक्षु केवल उस कारण से नहीं कहता जो तुमने बताया है। बल्कि इसलिए कहता हूँ कि उसके भीतर से बुरी भावनाएँ और अशुद्धियाँ निकल गई हैं, इसलिए उसे भिक्षु कहा जाता है।’’

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 388)

बहितपापो इति ब्राह्मणो वुक्कति समाचर्या समानो इति

वुकाति अत्तानो मलं पब्बजयति तस्मा पब्बाजितो इति वुकाति

बहितपापो इति : क्योंकि उसने बुराई से छुटकारा पा लिया है; ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: ब्राह्मण; वुकाति : कहा जाता है; समाचर्या : इंद्रियों की शांति के साथ रहता है; समानो इति वुकाति : समाना उसे कहा जाता है; अत्तनो मलं पब्बजयति : वह अपने दोषों से छुटकारा पाता है; तस्मा : उसके कारण; पब्बाजितो इति वुकाति : उसे ए कहा जाता है; पब्बाजिता

जिसने पाप कर्मों से मुक्ति पा ली हो, उसे ब्राह्मण कहते हैं । जिसकी इंद्रियां शांत हों, उसे समण कहते हैं। जिसने अपने सभी दोषों का त्याग कर दिया हो, उसे पब्बजित कहते हैं ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 388)

ब्राह्मणो , समणो पब्बजितो : ब्राह्मण, भिक्षु, घुमंतू तपस्वी। ये सभी बुद्ध के समय के धार्मिक परिवेश में पुरोहितों की श्रेणियां थीं। वे मोक्ष के अनेक मार्गों का अनुसरण करते थे । यहां बुद्ध बताते हैं कि सच्चा पुरोहित, भिक्षु या ब्राह्मण कौन होता है। उनके समय में धार्मिक प्रणालियां अनेक और विविध थीं। समकालीन धार्मिक संप्रदायों में से सबसे रोचक निघन्तनाथपुत्त द्वारा स्थापित प्रणाली थी।

निघ्ङ्तृनाथपुत्त का जीवन-वृत्तांत बुद्ध के जीवन-वृत्तांत से बहुत मिलता-जुलता है। यद्यपि ये दोनों महान गुरु समकालीन थे और एक ही क्षेत्र में विचरण और उपदेश देते थे, फिर भी कहीं भी यह दर्ज नहीं है कि वे एक-दूसरे से मिले हों। निघ्ङ्तृनाथपुत्त ने अर्ध मगधी भाषा में उपदेश दिया , जबकि बुद्ध ने शुद्ध मगधी में उपदेश दिया । बाद के समय में जैन धर्म में दो संप्रदायों का विभाजन हुआ: (1) श्वेतांबर जैन (श्वेत वस्त्रधारी संप्रदाय) और (2) दीघांबर जैन (नग्न वस्त्रधारी संप्रदाय)।

निघ्ङ ...

त्रिदण्ड को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है:

कायदण्ड (शरीर पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन);

वाग्दण्ड (भाषण पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन); और

मनोदण्ड (विचारों पर कठोर नियंत्रण और अनुशासन)।

इस प्रणाली के अनुसार, निघन्तनाथपुत्त के अनुयायियों को अपने धर्म के पालन में निरंतर आत्म-यातना के मार्ग का अनुसरण करना होता है। बौद्ध धर्म में चेतना (इच्छा या संकल्प) की अवधारणा की तरह, जैन धर्म कर्म और उसके परिणामों में विश्वास रखता था। लोगों ने इस शिक्षा को काफी हद तक स्वीकार किया। जैन धर्म के प्रभाव के कारण बुद्ध को शिखापद ( विनय नियम) की रचना करनी पड़ी। विशेष रूप से, वर्षा ऋतु से संबंधित विनय नियम बुद्ध द्वारा जैन धर्म के प्रभाव में निर्धारित किए गए थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय जैन धर्म का सामाजिक रूप से बहुत सम्मान था। जैन शिक्षा के अनुसार, पौधों में भी आत्मा होती है। जो लोग धागा भी पहनते हैं, वे सांसारिक सुख-सुविधाओं से आसक्ति दर्शाते हैं। सभी सजीव और निर्जीव वस्तुओं में आत्मा होती है। इसलिए, इसी मान्यता के कारण जैन यात्रा पर जाते समय भी अपने मुंह को कपड़े से ढकते हैं।

जैन धर्म के अनुसार, आत्मा तीन प्रकार की होती है:

नित्यसिद्धात्मय (यह हिंदुओं के परमात्मा के समान है );

मुक्तात्मय (यह बौद्धों के आसव के समान है );

बद्धात्मा (यह बौद्धों के कर्म के समान है )।
ऐसा कहा जाता है कि जब तक आत्मा कर्म में लीन रहती है, यह बद्धात्मय व्यक्ति के शरीर की कोशिकाओं में व्याप्त रहता है। संसार से मुक्ति पाना असंभव है। केवल आत्म-यातना के द्वारा ही कर्म से छुटकारा पाया जा सकता है। यह शिक्षा बौद्ध धर्म से बिल्कुल भिन्न है, जो कर्म की व्याख्या एक अलग तरीके से करता है। जैन धर्म की शिक्षाओं के अनुसार, कर्म के एक सौ अट्ठावन विभिन्न प्रकार होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 389,390

———————————————————————————

(धम्मपद 388) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 389 और 390 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 391)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 389 और 390 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na brahmanssa pahareyya
nassa muncetha brahmano
dhi brahmanassa hantaram
tato dhi yassa muncati.
न ब्राह्मणस्से' तदाकिन्सि सेय्यो
yada nisedho manaso piyehi
yato yato himsamano nivattati
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खम्।

———————————————————————————

श्लोक 389 : ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए; ब्राह्मण को अपने हमलावर पर क्रोधित नहीं होना चाहिए; ब्राह्मण पर प्रहार करना शर्मनाक है; अपने हमलावर पर क्रोधित होना उससे भी अधिक शर्मनाक है।

———————————————————————————

श्लोक 390 : ब्राह्मण को क्रोध से बचने में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि क्रोध उसके मन में उत्पन्न होता है। हानि करने के इरादे से विमुख होने पर दुःख/पीड़ा उसी अनुपात में कम हो जाती है।

———————————————————————————

थेरा सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (389) और (390) का उच्चारण किया।
पूज्य सारिपुत्त की धैर्य और सहनशीलता की अनेकों द्वारा प्रशंसा की जाती थी। उनके शिष्य उनके बारे में अक्सर कहते थे: "हमारे गुरु अत्यंत धैर्यवान और सहनशील हैं। यदि कोई उनका अपमान करे या उन्हें पीटे भी, तो भी वे क्रोधित नहीं होते, बल्कि शांत और संयमित रहते हैं।" पूज्य सारिपुत्त के बारे में यह बात अक्सर कही जाती थी, तभी एक ब्राह्मण ने, जिसके विचार गलत थे, सारिपुत्त के प्रशंसकों से कहा कि वह उन्हें क्रोधित करेगा। उसी क्षण, भिक्षाटन कर रहे पूज्य सारिपुत्त वहाँ प्रकट हुए; ब्राह्मण उनके पीछे गया और उनकी पीठ पर

ज़ोर से प्रहार किया। गुरु ने मुड़कर यह भी नहीं देखा कि उन पर हमला किसने किया है, बल्कि वे ऐसे आगे बढ़ गए मानो कुछ हुआ ही न हो। गुरु की महानता और धैर्य को देखकर ब्राह्मण अत्यंत भयभीत हो गया। वह पूज्य सारिपुत्त के चरणों में घुटने टेककर, अपने द्वारा थेरा को गलत तरीके से मारने की बात स्वीकार करते हुए क्षमा मांगने लगा। ब्राह्मण ने आगे कहा, "पूज्यवर, यदि आप मुझे क्षमा कर दें, तो कृपया मेरे घर भिक्षा ग्रहण करने आइए।"

शाम को, अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि पूज्य सारिपुत्त एक ब्राह्मण के घर भिक्षा मांगने गए थे, जिसने उन्हें पीटा था। उन्होंने यह भी देखा कि वह ब्राह्मण और भी निर्भीक हो जाएगा और जल्द ही अन्य भिक्षुओं पर भी हमला करेगा। उन भिक्षुओं को बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, एक सच्चा ब्राह्मण दूसरे सच्चे ब्राह्मण को नहीं पीटता; केवल एक साधारण मनुष्य या साधारण ब्राह्मण ही क्रोध और द्वेष में किसी अरहत को पीटता है। इस द्वेष को अनागामी मार्ग द्वारा दूर किया जाना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 389 : ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए; ब्राह्मण को अपने हमलावर पर क्रोधित नहीं होना चाहिए; ब्राह्मण पर प्रहार करना शर्मनाक है; अपने हमलावर पर क्रोधित होना उससे भी अधिक शर्मनाक है।

---

श्लोक 390 : ब्राह्मण को क्रोध से बचने में कोई लाभ नहीं है, क्योंकि क्रोध उसके मन में उत्पन्न होता है। हानि करने के इरादे से विमुख होने पर दुःख/पीड़ा उसी अनुपात में कम हो जाती है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में ये श्लोक कहे थे।

कथा के अनुसार, एक बार कई लोग एक स्थान पर एकत्रित हुए और पूज्य गुरु के गुणों का गुणगान करते हुए बोले, "हे हमारे परम पूज्य गुरु, वे इतने धैर्यवान हैं कि जब लोग उनका अपमान करते हैं और उन्हें मारते हैं, तब भी वे जरा क्रोधित नहीं होते!" इस पर एक ब्राह्मण, जिसके विचार भ्रामक थे, ने पूछा, "ये कौन हैं जो कभी क्रोधित नहीं होते?" "हमारे पूज्य गुरु।" "ऐसा अवश्य ही होगा कि किसी ने उन्हें क्रोधित नहीं किया होगा।" "ऐसा नहीं है, ब्राह्मण।" "तो फिर मैं उन्हें क्रोधित करूँगा।" "यदि कर सकते हो तो कर दिखाओ!" "मुझ पर विश्वास करो!" ब्राह्मण ने कहा; "मुझे पता है कि उनके साथ क्या करना है।"

तभी पूज्यवर भिक्षा मांगने नगर में प्रवेश कर रहे थे। ब्राह्मण ने उन्हें देखते ही उनके पीछे जाकर उनकी पीठ पर मुक्के से जोरदार प्रहार किया। पूज्यवर ने कहा, "यह क्या था?" और बिना पीछे मुड़े ही अपने रास्ते पर चल दिए। ब्राह्मण के शरीर के हर अंग में पश्चाताप की ज्वाला भड़क उठी। ब्राह्मण ने कहा, "हे पूज्यवर कितने महान गुणों से संपन्न हैं!" और पूज्यवर के चरणों में गिरकर उसने कहा, "मुझे क्षमा कीजिए, पूज्यवर।" पूज्यवर ने पूछा, "क्या कहना है?" ब्राह्मण ने कहा, "मैं आपकी सहनशीलता की परीक्षा लेना चाहता था, इसलिए मैंने आपको मारा।" "ठीक है, मैं आपको क्षमा करता हूँ।" ब्राह्मण ने कहा, "यदि आप मुझे क्षमा करने को तैयार हैं, तो अब से केवल मेरे घर में ही भोजन करें।" ऐसा कहकर ब्राह्मण ने पूज्यवर का कटोरा ले लिया, पूज्यवर ने सहर्ष उसे सौंप दिया और उसे अपने घर ले जाकर भोजन कराया।

वहाँ खड़े लोग क्रोधित हो गए। उन्होंने कहा, "इस व्यक्ति ने हमारे पूज्य गुरुदेव पर लाठी से प्रहार किया है, जो किसी भी अपराध से मुक्त हैं; इसे भागने नहीं दिया जाना चाहिए; हम इसे यहीं मार डालेंगे।" और मिट्टी के ढेले, डंडे और पत्थर लेकर वे ब्राह्मण के घर के द्वार पर प्रतीक्षा करने लगे। जब पूज्य गुरुदेव अपनी सीट से उठकर जाने लगे, तो उन्होंने अपना कुंड ब्राह्मण के हाथ में रख दिया। जब वहाँ खड़े लोगों ने ब्राह्मण को पूज्य गुरुदेव के साथ बाहर जाते देखा, तो उन्होंने कहा, "पूज्य गुरुदेव, इस ब्राह्मण को, जिसने आपका कुंड लिया है, वापस लौटने का आदेश दीजिए।" "आपका क्या मतलब है, शिष्यों?" "उस ब्राह्मण ने आप पर प्रहार किया है और हम उसके कर्मों का फल उसे देंगे।" "आपका क्या मतलब है? क्या उसने आप पर प्रहार किया या मुझ पर?" "आप पर, पूज्य गुरुदेव।" "यदि उसने मुझ पर प्रहार किया है, तो उसने क्षमा मांग ली है; आप जाइए।" ऐसा कहकर उन्होंने वहां खड़े लोगों को विदा किया और ब्राह्मण को वापस मुड़ने की अनुमति देकर पूज्य गुरुजी वापस मठ में चले गए।

भिक्षु बहुत नाराज हुए। वे बोले, "यह कैसी बात है! एक ब्राह्मण ने पूज्य सारिपुत्त को मारा, और पूज्य सारिपुत्त तुरंत उसी ब्राह्मण के घर वापस गए जिसने उन्हें मारा था और उसके हाथों से भोजन ग्रहण किया! जिस क्षण से उन्होंने सारिपुत्त को मारा है, उस क्षण से वे किसका आदर करेंगे? वे हर किसी को इधर-उधर पीटते फिरेंगे।" उसी क्षण बुद्ध पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" "यही वह विषय है जिस पर हम चर्चा कर रहे थे।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, कोई ब्राह्मण कभी

दूसरे ब्राह्मण को नहीं मारता; यह एक गृहस्थ ब्राह्मण ही हो सकता है जिसने एक भिक्षु-ब्राह्मण को मारा हो; क्योंकि जब मनुष्य तृतीय मार्ग का फल प्राप्त कर लेता है, तो उसमें सारा क्रोध पूर्णतः नष्ट हो जाता है।''

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 389)

ब्राह्मणस्स न पहारेया ब्राह्मणो अस्स न मुन्चेथा
ब्राह्मणस्स हन्तारं धी यस्सा मुञ्चति ततो धी

ब्राह्मण पर आक्रमण न करो; आक्रमण करने वाले पर क्रोध मत करो; घृणा मत रखो ; ब्राह्मण पर आक्रमण करने वाले की निंदा करो; क्रोधित होने वाले की निंदा करो ।

किसी को भी ब्राह्मण—पवित्र संत—पर प्रहार नहीं करना चाहिए। पीड़ित ब्राह्मण को प्रतिशोध में आक्रमणकारी पर प्रहार नहीं करना चाहिए, अन्यथा क्रोध प्रकट करना चाहिए। ब्राह्मण पर आक्रमण करने वाले पर कलंक है; और प्रतिशोध में क्रोध प्रकट करने वाले पर तो और भी अधिक कलंक है।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 390)

एतं ब्राह्मणस्स न किञ्चि सेय्यो यदा मनसो पियेहि ( यो ) निसेधो
यतो हिंसामानो निवत्तति ततो ततो दुक्खं सम्मतमेव

ब्राह्मणसः ब्राह्मण का; अकिन्सि सेय्यो ना : बिल्कुल भी छोटी संपत्ति नहीं; यदा : यदि, एताम् : यह (गैर-प्रतिशोध); मनसो [ मनसा ]: उसके मन में जो नफरत करता है; पियेहि : सुखद; निसेधो [ निसेधा ]: दुर्भावना से मुक्त विचार उत्पन्न होता है; यतो यतो : किसी कारण से; हिंसामानो [ हिंसामान ]: हिंसक मन; निवत्तति : समाप्त हो जाता है; ततो ततो : इन उदाहरणों में; दुक्खं [ दुक्खा ]: दर्द; सम्मतमेव : निश्चित रूप से शांत हो जाता है ब्राह्मण के लिए, नफरत का जवाब न देने का कार्य कोई छोटी संपत्ति नहीं है - यह वास्तव में एक बड़ी संपत्ति है। यदि किसी ऐसे मन में सकारात्मक परिवर्तन आता है जो आमतौर पर घृणास्पद कृत्यों में आनंद लेता है, तो यह कोई छोटी जीत नहीं है। हर बार जब हिंसक मन शांत होता है, तो पीड़ा भी कम हो जाती है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 389-390)

hiṃsamāno nivattati : हानि करने का इरादा समाप्त हो जाता है। ये श्लोक मुख्य रूप से करुणा की आवश्यकता पर बल देते हैं, यहाँ तक कि उन लोगों के प्रति भी जो आक्रामक रवैया अपनाते हैं। बौद्ध धर्म में आक्रामक व्यवहार का मुकाबला करने के लिए चार श्रेष्ठ गुणों का समर्थन किया जाता है। इन चार गुणों को ब्रह्म विहार कहा जाता है । इसका अर्थ उदात्त मनोभाव भी हो सकता है। ये चार मनोभाव हैं प्रेम , करुणा , मुदिता और समभाव । ये चारों गुण आक्रामक, शत्रुतापूर्ण व्यवहार को रोकते हैं और सकारात्मक रूप से अहिंसा, स्नेह, दया, करुणा और सहानुभूति को बढ़ावा देते हैं। इन चारों में से प्रेम और करुणा सर्वोपरि है।

मनुष्य को उदात्त बनाने वाला दूसरा सद्गुण करुणा है । इसे उस गुण के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दूसरों के कष्टों को देखकर अच्छे लोगों के हृदय को व्याकुल कर देता है, या जो दूसरों के कष्टों को दूर करता है। इसका प्रमुख लक्षण दूसरों के दुखों को दूर करने की इच्छा है।

करुणावान व्यक्तियों का हृदय फूलों से भी अधिक कोमल होता है। वे दूसरों के कष्टों को दूर किए बिना संतुष्ट नहीं हो सकते। कई बार तो वे दूसरों के कष्टों को कम करने के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने तक चले जाते हैं। व्याघ्री जातक की कथा , जिसमें बोधिसत्व ने एक भूखी बाघिन और उसके शावकों को बचाने के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया, इसका एक उदाहरण है।

करुणा ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करने के लिए प्रेरित करती है। सच्चा करुणामय व्यक्ति अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए जीता है। वह दूसरों की सेवा करने के अवसर तलाशता है, प्रतिफल की अपेक्षा किए बिना, यहाँ तक कि कृतज्ञता की भी नहीं।

हमारे बीच बहुत से लोग करुणा के पात्र हैं। गरीब और जरूरतमंद, बीमार और असहाय, अकेले और निर्धन, अज्ञानी और दुष्ट, अपवित्र और अनुशासनहीन - ये सभी ऐसे लोग हैं जो दयालु और नेक दिल पुरुषों और महिलाओं की करुणा के पात्र हैं, चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हों।

कुछ देश भौतिक रूप से समृद्ध हैं लेकिन आध्यात्मिक रूप से गरीब हैं, जबकि कुछ अन्य आध्यात्मिक रूप से समृद्ध हैं लेकिन भौतिक रूप से गरीब हैं। भौतिक रूप से समृद्ध और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध दोनों देशों को इन दयनीय स्थितियों पर विचार करना होगा।

धनवानों का यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वे गरीबों की सहायता करें, जिन्हें दुर्भाग्यवश जीवन की अधिकांश आवश्यक वस्तुओं का अभाव है।

जिनके पास प्रचुर मात्रा में धन है, वे निःसंदेह स्वयं को असुविधा पहुंचाए बिना अपनी अतिरिक्त संपत्ति गरीबों और जरूरतमंदों को दे सकते हैं।

एक बार एक युवा छात्र ने अपने घर के दरवाजे का पर्दा उतारकर एक गरीब व्यक्ति को दे दिया और उसकी दयालु माँ से कहा कि दरवाजे को तो ठंड नहीं लगती, लेकिन गरीबों को जरूर लगती है। युवा लड़के-लड़कियों का ऐसा दयालु भाव अत्यंत सराहनीय है।

यह देखकर खुशी होती है कि कुछ धनी देशों ने अल्पविकसित देशों, विशेष रूप से जंबुदीपा में, हर संभव तरीके से मदद करने के लिए विभिन्न परोपकारी संस्थाओं का गठन किया है।

सभी देशों में पुरुषों, महिलाओं और छात्रों द्वारा गरीबों और जरूरतमंदों को हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए धर्मार्थ संगठन स्थापित किए गए हैं। धार्मिक संस्थाएं भी इस संबंध में अपने-अपने तरीके से अपनी-अपनी जिम्मेदारियां निभाती हैं। अल्पविकसित देशों में वृद्धाश्रम, अनाथालय और इसी प्रकार के अन्य धर्मार्थ संस्थानों की आवश्यकता है।

जिस प्रकार भौतिक रूप से संपन्न लोगों को भौतिक रूप से निर्धन लोगों के प्रति दया भाव रखना चाहिए और उनका उत्थान करने का प्रयास करना चाहिए, उसी प्रकार आध्यात्मिक रूप से संपन्न लोगों का भी यह कर्तव्य है कि वे आध्यात्मिक रूप से निर्धन लोगों के प्रति दया भाव रखें और उनका उत्थान करें, भले ही वे भौतिक रूप से संपन्न हों। केवल धन से ही सच्ची खुशी नहीं मिल सकती।

मन की शांति भौतिक संपदा से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक संपदा से प्राप्त की जा सकती है। इस संसार में बहुत से लोग पर्याप्त आध्यात्मिक पोषण की सख्त जरूरत में हैं, जो आसानी से प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आध्यात्मिक रूप से गरीब लोगों की संख्या भौतिक रूप से गरीब लोगों से कहीं अधिक है, क्योंकि वे अमीर और गरीब दोनों में पाए जाते हैं।

इन दोनों प्रकार के रोगों के कारण होते हैं। करुणावान पुरुषों और महिलाओं को प्रभावी उपचार के लिए इन कारणों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। विभिन्न देशों ने न केवल मनुष्यों बल्कि पशुओं के रोगों की रोकथाम और उपचार के लिए प्रभावी उपाय अपनाए हैं।

बुद्ध ने स्वयं बीमारों की सेवा करके और अपने शिष्यों को इन यादगार शब्दों से प्रेरित करके एक महान उदाहरण प्रस्तुत किया:

"जो बीमारों की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।"

कुछ निस्वार्थ चिकित्सक पीड़ा कम करने के लिए नि:शुल्क सेवाएं प्रदान करते हैं। कुछ चिकित्सक अपना पूरा समय और ऊर्जा गरीब मरीजों की सेवा में लगा देते हैं, यहां तक कि अपनी जान जोखिम में डालकर भी। अस्पताल और नि:शुल्क औषधालय मानवता के लिए वरदान साबित हुए हैं, लेकिन इनकी और अधिक आवश्यकता है ताकि गरीबों को इनका लाभ मिल सके। अविकसित देशों में गरीब चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में पीड़ित रहते हैं। बीमारों को इलाज के लिए मीलों दूर तक बड़ी असुविधा के साथ निकटतम अस्पताल या औषधालय तक ले जाना पड़ता है। कभी-कभी रास्ते में ही उनकी मृत्यु हो जाती है। गर्भवती माताओं को सबसे अधिक कष्ट सहना पड़ता है। पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पताल, औषधालय, प्रसूति गृह आदि आवश्यक हैं। निम्न वर्ग और जरूरतमंदों को धनी पुरुषों और महिलाओं की करुणा की आवश्यकता है। कभी-कभी नौकरों और श्रमिकों को उचित वेतन, भोजन या वस्त्र नहीं मिलते और अक्सर उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें न्याय नहीं मिलता। उनकी उपेक्षा की जाती है और वे शक्तिहीन होते हैं क्योंकि उनके लिए आवाज उठाने वाला कोई नहीं होता। अमानवीय क्रूरता के कुछ गंभीर मामले ही कुछ अपवादों में सार्वजनिक होते हैं। ऐसे कई मामले अज्ञात रह जाते हैं। इन दुर्भाग्यशाली लोगों के पास पृथ्वी की मौन पीड़ा सहने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। बुद्ध द्वारा करुणा का उपदेश हमारे समय में अत्यंत प्रासंगिक है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 391

---

(धम्मपद 389 और 390) <<<< पिछला || धम्मपद 391 || अगला >>>> (धम्मपद 392)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 391 - महापजापतिगोतामि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa kayena vacaya

manasa natthi dukkatam
samvutam tihi thanehi
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 391 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्म, वचन या विचार से कोई बुराई नहीं करता, जो इन तीनों मामलों में संयमित है।

---

थेरी महापजापति गौतमी (बुद्ध की चाची और सौतेली माँ) की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी महाप्रजापति गौतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (391) कहा।

महाप्रजापति गौतमी गौतम बुद्ध की सौतेली माँ थीं। राजकुमार सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद रानी की मृत्यु हो जाने पर महाप्रजापति गौतमी राजा सुद्धोदन की मुख्य रानी बन गईं। उस समय उनका अपना पुत्र नंदा केवल पाँच दिन का था। उन्होंने अपने पुत्र को एक धाय से दूध पिलाया और स्वयं भावी बुद्ध, राजकुमार सिद्धार्थ का पालन-पोषण किया। इस प्रकार, महाप्रजापति गौतमी राजकुमार सिद्धार्थ की महान उपकारिका थीं।

जब राजकुमार सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु लौटे, तो महाप्रजापति गौतमी बुद्ध से मिलने गईं और उनसे निवेदन किया कि महिलाओं को भी भिक्षुणी के रूप में बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए; लेकिन बुद्ध ने अनुमति देने से इनकार कर दिया। बाद में, राजा सुद्धोदन ने अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद प्राण त्याग दिए। तब, जब बुद्ध वैशाली के निकट महावन वन में निवास कर रहे थे, महाप्रजापति पाँच सौ महिलाओं के साथ कपिलवस्तु से पैदल वैशाली आईं। उन्होंने अपने सिर मुंडवा लिए थे और रंगे हुए वस्त्र पहन लिए थे। वहाँ, महाप्रजापति ने दूसरी बार बुद्ध से बौद्ध संघ में महिलाओं को स्वीकार करने का निवेदन किया। पूज्य आनंद ने भी उनकी ओर से मध्यस्थता की। इसलिए, बुद्ध ने इस शर्त के साथ उनकी बात मान ली कि महाप्रजापति आठ विशेष नियमों (गरुधम्मों) का पालन करें। महाप्रजापति ने गरुधम्मों का पालन करने का वचन दिया, और बुद्ध ने उन्हें संघ में प्रवेश दे दिया। इस प्रकार, महाप्रजापति भिक्षुणी संघ में प्रवेश पाने वाली पहली महिला थीं। उनके बाद अन्य महिलाओं को बुद्ध के निर्देशानुसार भिक्षुओं द्वारा संघ में प्रवेश दिया गया।

समय बीतने के साथ, कुछ भिक्षुणियों के मन में यह विचार आया कि महाप्रजापति गौतमी को विधिवत भिक्षुणी के रूप में प्रवेश नहीं दिया गया था क्योंकि उनका कोई गुरु नहीं था; अतः महाप्रजापति गौतमी सच्ची भिक्षुणी नहीं थीं। इस विचार के कारण उन्होंने उनके साथ उपवास (उपोसथा) और वर्षा (पावरना) के अनुष्ठान करना बंद कर दिया। वे बुद्ध के पास गईं और महाप्रजापति गौतमी के गुरु न होने के कारण भिक्षुणी संघ में विधिवत प्रवेश न दिए जाने की समस्या उनके समक्ष रखी। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "तुम ऐसा क्यों कहती हो? मैंने स्वयं महाप्रजापति को आठ गरुड़म दिए थे और उन्होंने मेरी अपेक्षा के अनुसार गरुड़मों का अध्ययन और अभ्यास किया था। मैं स्वयं उनका गुरु हूँ और तुम्हारा यह कहना कतई गलत है कि उनका कोई गुरु नहीं है। तुम्हें किसी अर्हत के बारे में कोई संदेह नहीं रखना चाहिए।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 391 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो कर्म, वचन या विचार से कोई बुराई नहीं करता, जो इन तीनों मामलों में संयमित है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय भिक्षुणी महापजापति गौतमी की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य भिक्षुणी महाप्रजापति गौतमी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

अष्टम उपदेशों के सार्वजनिक प्रचार से पहले, बुद्ध ने उन्हें निजी तौर पर सुनाया था, और महाप्रजापति गौतमी ने उन्हें सिर झुकाकर स्वीकार किया था, ठीक वैसे ही जैसे आभूषणों की अभ्यस्त कोई व्यक्ति सुगंधित फूलों की माला को सिर झुकाकर स्वीकार करता है। ठीक इसी प्रकार, उनके सभी अनुयायियों ने भी ऐसा ही किया। बुद्ध के अलावा उनका कोई गुरु या शिक्षक नहीं था। इस प्रकार उन्हें संघ की पूर्ण सदस्यता प्राप्त हुई।

एक बार उनके अनुयायियों ने इस भिक्षुणी को संघ में पूर्ण सदस्यता दिए जाने के तरीके पर टिप्पणी करते हुए कहा, "महाप्रजापति गौतमी का कोई गुरु या साध्वी नहीं है; उन्होंने स्वयं अपने हाथों से पीले वस्त्र धारण किए हैं।" यह सुनकर अन्य भिक्षुणियाँ असंतुष्ट हो गईं और उसके बाद उन्होंने उनके साथ व्रत रखने या अंतिम पर्व मनाने से इनकार कर दिया। बुद्ध के पास जाकर उन्होंने उन्हें यह बात बताई। बुद्ध ने उनकी बातें सुनीं और उत्तर दिया, "मैंने स्वयं महाप्रजापति गौतमी को आठ प्रमुख उपदेश दिए हैं। मैं ही उनका गुरु हूँ; मैं ही उनका साध्वी हूँ। जिन्होंने कर्म, वाणी और विचार के पापों का त्याग कर दिया है, जिन्होंने बुरी भावनाओं से मुक्ति पा ली है, उन्हें कभी भी असंतुष्टि नहीं रखनी चाहिए।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 391)
यस्सा कायेन वचन मनसा दुक्कतं नत्थि तिहि
ठाणेहि संवुतं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यस्स : जिसने; कायेन : शरीर द्वारा; वाचाय : वाणी द्वारा; मनसा : मन द्वारा; दुक्कतं नत्थि : कोई पाप नहीं किया; संवुतं [ संवुत ]: सावधान; तिहि ठानेहि : इन तीनों क्षेत्रों में; तमहं [ तमह ]: वह व्यक्ति; ब्राह्मणं ब्रूमि : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।
यदि कोई व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से अच्छी तरह से सुरक्षित है, और इन तीनों क्षेत्रों में कोई अपराध नहीं किया है, जो अच्छी तरह से संयमित है, तो मैं उस प्रकार के व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण - महान संत कहता हूं।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 391)
महाप्रजापति गौतमी : यह श्लोक नन महाप्रजापति गौतमी के विषय पर हुई चर्चा के कारण लिखा गया है। महाप्रजापति गौतमी राजा सुप्पबुद्ध की सबसे छोटी बहन थीं। उनकी बड़ी बहन महारानी महा माया थीं। दोनों का विवाह राजा सुद्धोदन से हुआ था। उनकी एक पुत्री नंदा और एक पुत्र नंदा थे। बाद में दोनों संघ में शामिल हो गए। महा माया के निधन के बाद उन्होंने अपनी बहन के पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ को गोद ले लिया और अपने पुत्र नंदा को दाइयों की देखरेख में सौंप दिया। उनका पारिवारिक नाम गौतमी था और उन्हें महाप्रजापति नाम दिया गया क्योंकि ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक विशाल अनुयायी समूह की मुखिया बनेंगी। जब बुद्ध ने महल का दौरा किया और अपने पिता को धम्मपाल जातक का उपदेश दिया , तब उन्होंने संतत्व की प्रथम अवस्था प्राप्त की। सुद्धोदन राजा की मृत्यु के बाद, जब राजकुमार सिद्धार्थ और नंदा दोनों ने संसार त्याग दिया, तो उन्होंने भी संघ में प्रवेश करने और पवित्र जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। जब बुद्ध शाक्यों और कोलियों के बीच रोहिणी नदी की सिंचाई को लेकर हुए विवाद को सुलझाने के लिए कपिलवस्तु आए और निग्रोध उद्यान में निवास कर रहे थे, तब महाप्रजापति गौतमी बुद्ध के पास आईं और उनसे संघ में महिलाओं के प्रवेश की अनुमति देने का अनुरोध करते हुए कहा, “हे प्रभु, यदि महिलाओं को अपने गृहस्थी त्यागकर बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षा और अनुशासन के अंतर्गत गृहस्थी जीवन व्यतीत करने की अनुमति दी जाए तो यह उचित होगा।” बुद्ध ने कारण बताए बिना ही स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया और कहा, “हे गौतमी, बस करो, तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए।” दूसरी और तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने अपना अनुरोध दोहराया, और बुद्ध ने वही उत्तर दिया। बाद में, बुद्ध ने कपिलवस्तु में अपनी इच्छानुसार कुछ समय व्यतीत करने के बाद वैशाली की यात्रा की और उचित समय पर वहाँ पहुँचकर कूटागार हॉल में स्थित महावन में निवास किया।
दृढ़ निश्चयी प्रजापति गौतमी ने अपनी निराशा से विचलित हुए बिना अपने बाल कटवा लिए, पीले वस्त्र धारण किए और कई शाक्य स्त्रियों से घिरी हुई कपिलवस्तु से वैशाली तक लगभग 150 मील की दूरी पैदल तय की, जिसमें उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ वे वैशाली पहुँचीं और शिखरनुमा हॉल के बरामदे के बाहर खड़ी हो गईं। पूज्य आनंद ने उन्हें रोते हुए पाया और उनके दुःख का कारण जानकर बुद्ध के पास जाकर कहा, “हे प्रभु, देखिए, महाप्रजापति गौतमी सूजे हुए पैरों और धूल से सने शरीर के साथ बरामदे के बाहर खड़ी हैं और दुखी हैं। कृपया स्त्रियों को बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अनुसार गृहस्थी त्याग कर निर्जन जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दें। हे प्रभु, यदि स्त्रियों को गृहस्थी त्याग कर निर्जन जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए तो यह सर्वथा उचित होगा।” “बस करो, आनंद, तुम्हें यह अच्छा नहीं लगेगा कि महिलाओं को ऐसा करने की अनुमति दी जाए!” बुद्ध ने उत्तर दिया। दूसरी और तीसरी बार भी उन्होंने उनके पक्ष में विनती की, लेकिन बुद्ध नहीं माने।
अतः पूज्य आनंद ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाते हुए आदरपूर्वक बुद्ध से प्रश्न किया: “हे प्रभु, क्या स्त्रियाँ, बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षा और अनुशासन के अंतर्गत गृहस्थी से विमुख होकर निकलने पर, सोतापन्न, सकदागामी और अनागामी तथा अरहत की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम हैं?” बुद्ध ने उत्तर दिया कि वे संतत्व को प्राप्त करने में सक्षम हैं। इस अनुकूल उत्तर से उत्साहित होकर, पूज्य आनंद ने पुनः निवेदन करते हुए कहा, “हे पूज्य, यदि वे संतत्व प्राप्त करने योग्य हैं, क्योंकि महाप्रजापति गौतमी ने बुद्ध की बड़ी सेवा की थी, जब उन्होंने मौसी और दाई के रूप में उनका पालन-पोषण किया और उन्हें दूध पिलाया, और उनकी माता के निधन पर उन्हें अपने स्तन से दूध पिलाया, तो हे प्रभु, यह उचित होगा कि स्त्रियों को भी संसार त्यागने और बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत और अनुशासन के अंतर्गत वतन में प्रवेश करने की अनुमति दी जाए।” “हे आनंद, यदि महाप्रजापति गौतमी आठ प्रमुख नियमों को स्वीकार करती हैं, तो इसे ही उनके दीक्षा संस्कार के रूप में गिना जाए,” बुद्ध ने अंततः पूज्य आनंद के निवेदन को स्वीकार करते हुए कहा।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 392

---

(धम्मपद 391) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 392 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 393)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 392 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
यम्हा धम्मं विजयनेय्या
सम्मासम्बुद्धदेसीतम
sakkaccam tam namasseyya
aggihuttamva brahmano.

---

श्लोक 392 : यदि कोई व्यक्ति किसी से बुद्ध की शिक्षा सीखता है, तो उसे उस गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, जैसे ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (392) कहा।
पूज्य सारिपुत्त का जन्म उपतिस्सा ग्राम के ब्राह्मण माता-पिता के घर हुआ था; इसीलिए उनका नाम उपतिस्सा रखा गया। उनकी माता का नाम सरी था। उनके घनिष्ठ मित्र कोलिता थे, जो मोग्गली के पुत्र और एक अन्य ब्राह्मण युवक थे। दोनों युवक जन्म-जन्म के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले सही धर्म की खोज में लगे थे और दोनों ही धर्म में प्रवेश करने की प्रबल इच्छा रखते थे। सर्वप्रथम वे संचय के पास गए, परन्तु उनकी शिक्षा से संतुष्ट नहीं हुए। फिर वे जंबूद्वीप में ऐसे गुरु की खोज में भटकते रहे जो उन्हें अमरता का मार्ग दिखा सके, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ रही। कुछ समय बाद वे इस समझौते के साथ विदा हुए कि जो पहले सच्चे धर्म को पा लेगा, वही दूसरे को सूचित करेगा।
लगभग उसी समय, बुद्ध अपने साथ भिक्षुओं के एक समूह को लेकर राजगृह पहुँचे, जिनमें पंचवग्गी (पहले पाँच भिक्षुओं) में से एक थेरा अस्सजी भी शामिल थे। थेरा अस्सजी जब भिक्षा माँग रहे थे, तब उपतिस्सा ने उन्हें देखा और उनके उदात्त चेहरे से अत्यंत प्रभावित हुए। इसलिए उपतिस्सा ने आदरपूर्वक थेरा के पास जाकर पूछा कि उनके गुरु कौन हैं, वे कौन से सिद्धांत सिखाते हैं, और क्या सिद्धांत सिखाते हैं, और क्या वे संक्षेप में उन्हें समझा सकते हैं। तब थेरा अस्सजी ने उपतिस्सा को बुद्ध के उद्भव और राजगृह के वेलुवन मठ में उनके प्रवास के बारे में बताया। थेरा ने चार आर्य सत्यों से संबंधित एक छोटा श्लोक भी सुनाया।
श्लोक इस प्रकार है:
Ye dhamma hetuppa bhava
tesam hetum tathagato aha
tesanca yo nirodho
evam vadi maha samano.
इसका मतलब है:
तथागत ने सभी घटनाओं के कारण और उनके निवारण का वर्णन किया है। यही सिद्धांत महान समना द्वारा माना जाता है।
श्लोक के आधे भाग तक ही पहुंचने पर उपतिस्सा ने सोतापत्ति की प्राप्ति कर ली।
अपने वादे के मुताबिक, उपतिस्सा अपने मित्र कोलिता के पास यह सूचना देने गए कि उन्हें सच्चा धर्म मिल गया है। तब वे दोनों मित्र, ढाई सौ अनुयायियों के साथ, राजगृह में स्थित बुद्ध के पास गए। वेलुवन मठ पहुँचकर उन्होंने बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति माँगी और उपतिस्सा एवं कोलिता, अपने ढाई सौ अनुयायियों सहित, भिक्षु बन गए। सरी के पुत्र उपतिस्सा और मोग्गली के पुत्र कोलिता,

सारिपुत्त और मोग्गलाना के नाम से जाने जाने लगे। संघ में प्रवेश के तुरंत बाद, बुद्ध ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया और ढाई सौ भिक्षु अर्हतत्व प्राप्त कर लिया; परन्तु मोग्गलाना और सारिपुत्त को क्रमशः सात और पंद्रह दिन बाद अर्हतत्व प्राप्त हुआ। अर्हतत्व प्राप्त करने में देरी का कारण यह था कि उन्होंने प्रधान शिष्य बनने की इच्छा की थी, जिसके लिए पूर्णता प्राप्त करने हेतु अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है।

पूज्य सारिपुत्त को हमेशा याद रहता था कि पूज्य असाजी के माध्यम से ही वे बुद्ध से मिल पाए थे और अमरत्व प्राप्त कर पाए थे। इसलिए वे हमेशा अपने गुरु की दिशा में प्रणाम करते थे और सोते समय भी अपना सिर उसी दिशा में रखते थे। जेतवन मठ में उनके साथ रह रहे अन्य भिक्षुओं ने उनके इस कार्य को गलत समझा और बुद्ध से कहा, "पूज्यवर! पूज्य सारिपुत्त आज भी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नादिर और शिखर दिशाओं की पूजा करते हैं, जैसा कि वे ब्राह्मण युवक के रूप में करते थे; ऐसा लगता है मानो उन्होंने अपने पुराने विश्वासों को नहीं छोड़ा है।" बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त को बुलवाया और सारिपुत्त ने बुद्ध को समझाया कि वे केवल अपने गुरु, पूज्य असाजी को प्रणाम कर रहे थे, न कि विभिन्न दिशाओं की पूजा कर रहे थे। बुद्ध पूज्य सारिपुत्त द्वारा दी गई व्याख्या से संतुष्ट हुए और अन्य भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! पूज्य सारिपुत्त विभिन्न दिशाओं की पूजा नहीं कर रहे थे; वे केवल अपने गुरु और उपकारक को प्रणाम कर रहे थे, जिनके माध्यम से उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया था। ऐसे गुरु को प्रणाम करना उनके लिए बिलकुल उचित और सही है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 392 : यदि कोई व्यक्ति किसी से बुद्ध की शिक्षा सीखता है, तो उसे उस गुरु को आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, जैसे ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय सारिपुत्त की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

हमें बताया जाता है कि इस पूज्य भिक्षु ने सर्वप्रथम पूज्य अस्सजी के मुख से धम्म सुना; और जिस दिन से उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया, जिस भी दिशा में उन्हें पूज्य अस्सजी के निवास का पता चलता, वे उसी दिशा में आदरपूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करते, और सोते समय अपना सिर उसी दिशा में घुमाते। भिक्षुओं ने आपस में कहा, "पूज्य सारिपुत्त के विचार भ्रामक हैं; आज ही के दिन वे चारों दिशाओं को प्रणाम कर रहे हैं," और उन्होंने यह बात बुद्ध को बताई।

बुद्ध ने उस वरिष्ठ भिक्षु को अपने समक्ष बुलाया और उनसे पूछा, "सारिपुत्त, क्या यह बात सच है कि आप चारों दिशाओं को प्रणाम करते हैं?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "हे पूज्यवर, आप मुझे जानते हैं, और आप स्वयं जानते हैं कि मैं चारों दिशाओं को प्रणाम करता हूँ या नहीं।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त चारों दिशाओं को प्रणाम नहीं करते। वास्तव में, उन्होंने सर्वप्रथम धम्म को पूज्य अस्सजी के मुख से सुना, और जिस दिन से उन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त किया, तब से वे अपने गुरु का आदर करते हैं। क्योंकि एक भिक्षु को उस गुरु का आदर उसी श्रद्धा से करना चाहिए जिससे उसने धम्म सीखा है, जिस श्रद्धा से एक ब्राह्मण पवित्र अग्नि का आदर करता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 392)

यम्हा सम्मासंबुद्ध देसिटं धम्मं विजानेया

aggihuttaṃ brāhmaṇo iva taṃ sakkaccaṃ namasseyya

याम्हा : किसी से; सम्मासंबुद्ध देसिटं धम्मम् [ धम्म ]: प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा उपदेशित धम्म; विजयेण्य : सीखा हुआ है; अग्गिहुत्तं ब्राह्मणो इव : ब्राह्मण यज्ञ अग्नि के समान; सक्कक्काm [ सक्कक्का ]: सावधानीपूर्वक; विधिवत; नमस्सेय : (उसे) सलाम

यदि सत्य की खोज करने वाला कोई व्यक्ति किसी गुरु से प्रबुद्ध व्यक्ति के वचन सीखता है, तो उस शिष्य को गुरु का उचित सम्मान करना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे एक ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि के प्रति श्रद्धापूर्वक और निष्ठापूर्वक श्रद्धा अर्पित करता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 392)

आदरणीय अस्सजी : यह श्लोक आदरणीय सारिपुत्त द्वारा आदरणीय अस्सजी की आराधना के कारण रचा गया था, जो कि पांच भिक्षुओं में से अंतिम थे, लेकिन किसी भी तरह से कमतर नहीं थे, जिन्होंने महान संघ के अग्रदूतों का गठन किया था।

उनका जीवन अन्य चार भिक्षुओं के जीवन के समान ही था। ये पाँचों भिक्षु आदर्श के प्रति उतने ही समर्पित थे, जितने कि उनके पाँच समकक्षों ने पद्ममुत्तरा बुद्ध के युग में मार्ग दिखाया था। इतिहास या यूँ कहें कि इतिहास स्वयं को दोहरा रहा था। उन्हें यह विशिष्ट गौरव प्राप्त था कि वे पहले अरहत थे जिन्होंने ब्राह्मण उपतिस्सा को मार्ग दिखाया, जो बाद में पूज्य सारिपुत्त के रूप में उनके प्रमुख शिष्य बने। उन्होंने वह श्लोक सुनाया जो बौद्ध जगत में विश्व प्रसिद्ध हुआ। बाद में यह श्लोक अस्सजी श्लोक के नाम से जाना गया। आरंभ में अस्सजी ने उपतिस्सा को यह कहकर टालने का प्रयास किया कि वे नौसिखिया हैं। परन्तु उपतिस्सा ने धम्म का सार सुनने पर अड़े रहे,

चाहे वह संक्षिप्त हो या संक्षिप्त। जैसा कि भारत में हजारों बौद्ध तीर्थस्थलों पर अंकित है, उन्होंने कहा, "बुद्ध ने उन सभी चीजों के बारे में बताया है जो किसी कारण से उत्पन्न होती हैं — और यह भी कि वे कैसे समाप्त होती हैं, बुद्ध ने इसका भी वर्णन किया है।" दूसरे शब्दों में कहें तो, बुद्ध के प्रथम उपदेश में द्वितीय और तृतीय सत्य प्रकट हुए। इसका सीधा अर्थ यह है कि बुद्ध ने न केवल यह दिखाया कि किसी प्राणी का जन्म कैसे होता है, बल्कि यह भी बताया कि उसका अस्तित्व शाश्वत रूप से कैसे समाप्त हो सकता है। यदि कोई लालसा है, तो उसका अंत अवश्य होगा। उपतिस्सा के लिए यह किसी परिचित कमरे का द्वार खोलने जैसा था। दूसरी पंक्ति उद्धृत होने से पहले ही सत्य उनकी दृष्टि में कौंध गया और वे संतत्व के मार्ग पर चल पड़े। शीघ्र ही, उपतिस्सा प्रमुख शिष्य बन गए। उनकी बुद्धि असाधारण थी, जो केवल बुद्ध की बुद्धि के समान ही थी।

ऐसा कहा जाता है कि कृतज्ञता के महान गुण से प्रेरित होकर, मुख्य शिष्य हमेशा जहाँ भी संभव होता, अपना सिर उस दिशा की ओर करके सोता था जहाँ उसके गुरु, पूज्य अस्सजी, निवास करते थे। भोजन की तलाश में चक्कर लगाते समय अस्सजी का व्यवहार इतना प्रभावशाली था कि उपतिस्सा जैसे महान व्यक्ति भी उनसे निकट जाने के लिए प्रेरित हुए।

वह आखिरी पांच लोगों में से एक था।
लेकिन सबसे पहले रास्ता दिखाना।
भगवान के प्रमुख उपतिस्सा को,
धम्म के सेनापति

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 393

———————————————————————

(धम्मपद 392) <<<< पिछला || धम्मपद 393 || अगला >>>> (धम्मपद 394)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 393 - जटिलब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na jatahi na gottena
na jacca hoti brahmano
यमही सक्कंका(1) धम्मो(2) सीए
so suci so ca brahmano.

———————————————————————

श्लोक 393 : जटाधारी बालों को धारण करने से, न वंश से, न जाति से कोई ब्राह्मण बनता है; केवल वही शुद्ध होता है जो सत्य और धम्म को जान लेता है; वही ब्राह्मण होता है।

———————————————————————

1. सक्का: चार आर्य सत्य।
2. धम्म: नौ पारलौकिक तत्व, अर्थात् चार मार्ग, चार फल और निर्वाण।

———————————————————————

जटिला ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (393) का उच्चारण किया, जिसमें जटाधारी ब्राह्मण तपस्वी जटिला का उल्लेख था।

एक बार एक ब्राह्मण तपस्वी ने मन ही मन सोचा कि बुद्ध ने अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहा था और जन्म से ब्राह्मण होने के कारण उसे भी 'ब्राह्मण' कहा जाना चाहिए। ऐसा सोचकर वह बुद्ध के पास गया और अपना विचार उनके सामने रखा। लेकिन बुद्ध ने उसके विचार

को अस्वीकार करते हुए कहा, "हे ब्राह्मण, मैं किसी को उसके जटाओं को संवारने या केवल जन्म के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; मैं किसी को ब्राह्मण तभी कहता हूँ जब वह चारों आर्य सत्यों को पूर्णतः समझ लेता है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 393 : जटाधारी बालों को धारण करने से, न वंश से, न जाति से कोई ब्राह्मण बनता है; केवल वही शुद्ध होता है जो सत्य और धम्म को जान लेता है; वही ब्राह्मण होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
ब्राह्मण जटिला की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने जटिला नामक एक ब्राह्मण तपस्वी के संदर्भ में यह श्लोक कहा था, जो जटाधारी थे।
कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने एक दिन मन ही मन कहा, "मैं माता और पिता दोनों की ओर से उत्तम कुल का हूँ, क्योंकि मेरा पुनर्जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। अब गौतम भिक्षु अपने शिष्यों को ब्राह्मण कहते हैं। उन्हें मुझे भी यही उपाधि देनी चाहिए।" तब ब्राह्मण बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा। बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, मैं किसी व्यक्ति को केवल उसकी जटाओं के कारण, या उसके जन्म और वंश के कारण ब्राह्मण नहीं कहता। परन्तु जो सत्य को प्राप्त कर लेता है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 393)
जाताहि ब्राह्मणो न होति गोतेन ब्राह्मणो न होति जच्चा ब्राह्मणो
न होति यमहि सच्चा धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणो
जटाहि : जटाधारी बालों के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; गोत्र : वंश के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; जच्चा : जन्म के कारण; ब्राह्मणो न होति : कोई ब्राह्मण नहीं बनता; यम्ही: किसी व्यक्ति में; सच्चं [ सच्च ]: सत्य की जागरूकता; धम्मो च : और आध्यात्मिक वास्तविकता (अस्तित्व में); सो सुची : यदि वह शुद्ध है; सो च ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: वह सच्चा ब्राह्मण है
जटाधारी कन्याओं से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता। न ही कुल से कोई ब्राह्मण बनता है। जन्म से भी कोई ब्राह्मण नहीं बनता। सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला, शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला और शुद्ध स्वभाव का व्यक्ति ही ब्राह्मण कहलाता है।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 393)
na jaccā hoti Brāhmāno : जन्म मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता। यह कथन बुद्ध के क्रांतिकारी दर्शन को दर्शाता है, जिसने भारतीय समाज के ब्राह्मण-प्रधान उच्च वर्ग को झकझोर दिया। उस समय के ब्राह्मण स्वयं को ब्रह्मा का चुना हुआ मानते थे और उनका मानना था कि जन्म से ही वे सभी के आदर के पात्र हैं। बुद्ध ने इस गहरी जड़ें जमा चुकी धारणा पर प्रहार किया।
उस समय समाज वर्णों नामक चार वर्गों में विभाजित था । यह स्पष्ट है कि इस महान गुरु के उपदेशों ने इस वर्ण व्यवस्था का खंडन किया। उस समय के भारतीय समाज को बुद्ध के उपदेशों से विशेष लाभ हुआ क्योंकि यह पहली बार था जब जातिवाद की कठोर व्यवस्था का खंडन किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञानता में डूबे भारत के लोगों को बुद्ध के इस नए उपदेश से अपार सांत्वना मिली। इसी महत्वपूर्ण तथ्य के कारण बुद्ध का महान आध्यात्मिक उपदेश पूरे भारत में फैलने लगा।
ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, जब बुद्ध का जन्म हुआ और कई दर्शनों का प्रतिपादन हुआ, तब जंबूद्वीप के जटिल समाज के बारे में त्रिपिटक नामक बौद्ध साहित्य में विविध जानकारियों का विशाल भंडार मौजूद है। विभिन्न धर्मों और दर्शनों के संस्थापकों ने मनुष्यों के लिए मोक्ष के विविध मार्ग बताए। बुद्धिजीवी वर्ग ने यह जानने के लिए खोजबीन की कि इनमें से कौन सा मार्ग सत्य है।
बौद्ध विचारधारा नैतिक यथार्थवाद का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जिसमें पारंपरिक सामाजिक संरचना की प्रकृति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है। बुद्ध से पहले उच्च आध्यात्मिक साधनाएँ केवल विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के लिए ही सुलभ थीं। लेकिन बुद्ध ने आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने की क्षमता रखने वाले सभी लोगों के लिए ज्ञानोदय का मार्ग खोल दिया।
चूंकि यह स्थापित व्यवस्था पर हमला था, इसलिए कई ब्राह्मण बुद्ध से इस बात पर बहस करने के लिए प्रेरित हुए कि सच्चा ब्राह्मण कौन है। यह श्लोक ऐसी ही एक बहस से उत्पन्न हुआ है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 394

---

(धम्मपद 393) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 394 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 395)

---

धम्मपद श्लोक 394 - कुहकब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Kim te jatahi dummedha
kim te ajinasatiya
abbhantaram te gahanam
बहिराम परिमज्जासी.

---

श्लोक 394 : हे मूर्ख! उलझे हुए बालों को पहनने का क्या लाभ? हिरण की खाल से बने वस्त्र पहनने का क्या लाभ? तुझमें (नैतिक दोषों का) जंगल है; तू केवल बाहरी रूप से ही अपने आप को शुद्ध करता है।

---

एक कपटी ब्राह्मण की कहानी

वैशाली में कुटागारा मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक कपटी ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (394) कहा।

एक बार वैशाली नगर के द्वार के पास एक कपटी ब्राह्मण एक वृक्ष पर चढ़ गया और चमगादड़ की तरह उसकी एक शाखा से उल्टा लटक गया। इस विचित्र स्थिति में वह लगातार बुदबुदा रहा था, "हे लोगों! मेरे लिए सौ पशु, बहुत से चाँदी के सिक्के और कई दास लाओ। यदि तुम ये सब नहीं लाओगे और मैं इस वृक्ष से गिरकर मर जाऊँगा, तो तुम्हारा यह नगर निश्चित रूप से नष्ट हो जाएगा।" नगरवासियों को डर था कि ब्राह्मण के गिरकर मरने से उनका नगर नष्ट हो जाएगा, इसलिए उन्होंने वैशाली की माँगी हुई सभी वस्तुएँ लाकर उसे नीचे उतरने की विनती की।

इस घटना के बारे में सुनकर भिक्षुओं ने बुद्ध को सूचना दी और बुद्ध ने उत्तर दिया कि कपटी व्यक्ति केवल अज्ञानी लोगों को ही धोखा दे सकता है, बुद्धिमान लोगों को नहीं।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 394 : हे मूर्ख! उलझे हुए बालों को पहनने का क्या लाभ? हिरण की खाल से बने वस्त्र पहनने का क्या लाभ? तुझमें (नैतिक दोषों का) जंगल है; तू केवल बाहरी रूप से ही अपने आप को शुद्ध करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण की कहानी

तुम्हारी उलझी हुई जटाओं का क्या फायदा? यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने पगोडा हॉल में निवास करते समय एक ऐसे ब्राह्मण के संदर्भ में दिया था जो चमगादड़ की नकल करता था।

कहा जाता है कि वह ब्राह्मण वैशाली नगर के द्वार के पास उगने वाले एक ककुढ वृक्ष पर चढ़ता, अपने दोनों पैरों से एक शाखा को पकड़ता और सिर नीचे की ओर करके उससे झूलता था। इस प्रकार लटकते हुए वह पुकारता था, "मुझे सौ कपिला दो! मुझे पैसे दो! मुझे एक दासी दो! यदि तुम मुझे मेरी माँगी हुई वस्तुएँ नहीं दोगे, तो मैं इस वृक्ष से कूदकर आत्महत्या कर लूँगा और इस नगर को ऐसा बना दूँगा मानो यह कभी नगर था ही नहीं!"

जब बुद्ध भिक्षुओं के साथ नगर में प्रवेश कर रहे थे, तब भिक्षुओं ने उस ब्राह्मण को वृक्ष से लटका हुआ देखा। नगर से निकलते समय भी वह वहीं लटका हुआ था, ठीक वैसे ही जैसे प्रवेश करते समय लटका था। नगरवासियों ने मन ही मन सोचा, "यह व्यक्ति सुबह से इसी वृक्ष से लटका हुआ है; यदि वह गिर गया, तो यह नगर मानो कभी नगर ही न रहा हो।" अपने नगर के विनाश के भय से उन्होंने उसकी सभी माँगें मान लीं और उसे सब कुछ दे दिया। उन्होंने कहा, "हमने आपको वह सब कुछ दे दिया है जो आपने माँगा था।" तब वह वृक्ष से उतरा और लूट का माल लेकर चला गया।

भिक्षुओं ने उस छल करने वाले ब्राह्मण को मठ के आसपास गाय की तरह रंभाते हुए घूमते देखा और उसे तुरंत पहचान लिया। उन्होंने पूछा, "ब्राह्मण, क्या तुम्हें तुम्हारी मनचाही चीज़ मिल गई?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हाँ, मुझे मेरी मनचाही चीज़ मिल गई।" भिक्षुओं ने मठ में बुद्ध को घटना की सूचना दी। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह ब्राह्मण पहली बार छल और चोरी नहीं कर रहा है; वह अपने पिछले जन्म में भी छल और चोरी करता था। परन्तु अपने वर्तमान जन्म में तो वह भोले-भाले लोगों को धोखा देता है, जबकि अपने पिछले जन्म में वह बुद्धिमानों को भ्रमित करने में असफल रहा।" भिक्षुओं के अनुरोध पर, बुद्ध ने उस झूठे तपस्वी और छिपकलियों के राजा के बारे में अतीत की यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, एक तपस्वी किसानों के एक गाँव के पास रहता था, और वह तपस्वी पाखंडी था। एक परिवार था जो उसकी देखभाल करता था: दिन में, वे अपने बच्चों की तरह ही, चाहे भोजन हो या कठोर, तपस्वी को भी एक हिस्सा देते थे; और शाम को वे अपने भोजन के लिए तैयार किए गए भोजन का एक हिस्सा अलग रख देते थे, जिसे वे अगले दिन तपस्वी को देते थे।

अब, उसकी पत्तों की कुटिया से कुछ ही दूरी पर, एक चींटी के टीले में छिपकलियों का राजा रहता था, और छिपकलियों के राजा की यह प्रथा थी कि वह समय-समय पर तपस्वी से मिलने आता और उसे प्रणाम करता। लेकिन उस विशेष दिन तपस्वी ने मन ही मन कहा, "मैं उस छिपकली को मार डालूँगा," और अपने वस्त्रों की तह में एक छड़ी छिपाकर, वह उस चींटी के टीले के बिल्कुल पास लेट गया और सोने का नाटक करने लगा। जब छिपकलियों का राजा अपने चींटी के टीले से बाहर आया और तपस्वी के पास पहुँचा, तो उसने तपस्वी की अजीब मुद्रा देखकर मन ही मन कहा, "आज मेरे गुरु का यह व्यवहार मुझे पसंद नहीं आया," और मुड़कर दूसरी दिशा में रेंगने लगा। तपस्वी ने देखा कि छिपकली मुड़ गई है, तो उसने उसे मारने के इरादे से छड़ी उस पर फेंकी, लेकिन छड़ी निशाने से चूक गई। छिपकलियों का राजा चींटियों के टीले में रेंगता हुआ आया और अपना सिर बाहर निकालकर चारों ओर देखते हुए तपस्वी से बोला, "इतने समय से मैं व्यर्थ ही तुम्हें तपस्वी समझता रहा, परन्तु अभी जिस क्षण तुमने मुझे जान से मारने की इच्छा से मुझ पर अपनी छड़ी फेंकी, उसी क्षण तुम तपस्वी नहीं रहे। तुम्हारे जैसे बुद्धिहीन व्यक्ति के लिए उलझे बालों का क्या लाभ? तुम्हारे नाखूनों से भरी त्वचा का क्या लाभ? क्योंकि तुम्हारे भीतर तो एक जंगल है; तुम तो केवल बाहरी आवरण को ही चमकाते और साफ करते हो।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 394)

दुम्मेधा ते जातहि किं ते अजिनासतिया किं ते
अभ्भन्तरं ते गहनं बहिरं परिमाज्जसि

दुम्मेधा : हे मूर्ख मनुष्य; ते : तुम्हारा; जटाहि : उलझे हुए बाल; किं : किस काम का; ते : तुम्हारा; अजिनसातिया : तेंदुए की खाल; किं : किस काम का; ते अब्भंतरं [ अब्भंतर ]: तुम्हारा भीतर; आत्मा; गहनं [ गहन ]: दोषों से भरी है; बाहिरं [ बाहिर ]: जो बाहर है; प र इमज्जसि : जिसे तुम सजाते हो।

आपकी तपस्या के बाहरी दिखावे का क्या फायदा: आपके उलझे हुए बाल; आपके तेंदुए की खाल के वस्त्र? आप बाहर से तो साफ-सुथरे और चमकदार रहते हैं, जबकि भीतर से आप अशुद्धियों से भरे हुए हैं।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 395

---

(धम्मपद394) <<<< पिछला ‖ धम्मपद395 ‖ अगला >>>> (धम्मपद396)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 395 - किसागोतामि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Pamsukuladharam jantum
kisam dhamanisanthatam
एकम वनस्मिम झयन्तम
tamaham brumi brahamanam.

---

श्लोक 395 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है (कचरे के ढेर से उठाए गए), जो दुबला-पतला है, जिसकी नसें उभरी हुई हैं, जो जंगल में अकेले ध्यान करता है।

---

किसागोतमी की कहानी
गिज्झकुटा पहाड़ी पर निवास करते हुए, बुद्ध ने किसागोतमी के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (395) कहा।
एक बार, देवों के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए। उसी समय, थेरी किसागोतमी अपनी अलौकिक शक्ति से आकाश से प्रकट होकर बुद्ध को प्रणाम करने आईं। परन्तु जब उन्होंने सक्का और उनके अनुयायियों को बुद्ध को प्रणाम करते देखा, तो वे पीछे हट गईं। सक्का ने उन्हें देखकर बुद्ध से पूछा कि वे कौन हैं, और बुद्ध ने उत्तर दिया, "हे सक्का! वे मेरी पुत्री किसागोतमी हैं। एक बार वे अपने पुत्र की मृत्यु के दु:ख और व्यथा में मेरे पास आईं और मैंने उन्हें समस्त सत्वों के अनित्य, असंतोषजनक और अनात्म स्वरूप का दर्शन कराया। फलस्वरूप उन्होंने सोतापत्ति पुण्य प्राप्त किया, संघ में शामिल हुईं और अरहत बन गईं। वे मेरी प्रख्यात महिला शिष्यों में से एक हैं और कूड़े के ढेर से एकत्रित चिथड़ों से बने वस्त्र धारण करने की तपस्या में अद्वितीय हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 395 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है (कचरे के ढेर से उठाए गए), जो दुबला-पतला है, जिसकी नसें उभरी हुई हैं, जो जंगल में अकेले ध्यान करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
किसा गौतमी की कहानी, जो चिथड़े-चिथड़े पहनती थी
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास करते समय किसा गौतमी के संदर्भ में दिया था।
उस समय, पहले पहर के अंत में, कई देवताओं से घिरे सक्का बुद्ध के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए और उनके द्वारा दिए जा रहे धर्म उपदेशों को उनके सामान्य मधुर ढंग से सुनने लगे। उसी क्षण किसा गौतमी ने मन ही मन कहा, "मैं बुद्ध के दर्शन करने जाऊंगी," और वायु के माध्यम से वहाँ चली गईं। लेकिन जब उन्होंने सक्का को देखा, तो वे वापस लौट गईं। सक्का ने उन्हें बुद्ध को प्रणाम करते और वापस लौटते देखा, और तुरंत बुद्ध से पूछा, "हे पूज्यवर, यह कौन हैं जो आपके पास आती हैं और फिर आपको देखकर वापस लौट जाती हैं?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, यह मेरी पुत्री किसा गौतमी हैं, जो चिथड़े-चिथड़े पहनने वाली भिक्षुणियों में श्रेष्ठ हैं।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 395)
पंसुकुलधरं किसानं धमनिसंततं वनस्मिं
एकं झायंतं तं जंतुं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
paṃsukūladharaṃ [ paṃsukūladhara ]: पुराने कपड़ों से बने वस्त्र पहनने वाला; kisaṃ [ kisa ]: दुबला-पतला; dhamanisanthataṃ [ dhamanisanthata ]: उभरी हुई नसों वाला; vanasmiṃ [ vanasmi ]: वन में रहने वाला; ekaṃ : एकांतवासी; jhāyantaṃ [ jhāyanta ]: ध्यान करने वाला; taṃ jantuṃ [ jantu ]: वह व्यक्ति; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi : ब्राह्मण
वह पुराने चिथड़ों से बने वस्त्र पहनता है। वह इतना संयमी और दुबला-पतला है कि उसकी नसें उभरी हुई हैं। वह जंगल में एकांत में ध्यान करता है। सत्य के ऐसे साधक को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 395)
पंचकूलाधरं : पुराने और बेकार कपड़ों से बने वस्त्र पहनना। केवल पुराने कपड़ों से बने वस्त्र पहनने का व्रत ( पंचकूलिकंग ) तपस्या के शुद्धिकरण नियमों में से एक है। इन नियमों को धुतंग कहा जाता है । धुतंग का अर्थ है (अशुद्धियों को) दूर करना, शुद्धिकरण का साधन, तपस्वी या कठोर साधना। ये वे कठोर अनुष्ठान हैं जो बुद्ध ने भिक्षुओं को संतोष, वैराग्य, ऊर्जा आदि गुणों को विकसित करने में सहायता के लिए सुझाए हैं। इनमें से एक या अधिक अनुष्ठानों का पालन कम या अधिक समय के लिए किया जा सकता है।
नैतिकता में स्वयं को प्रशिक्षित करने वाले भिक्षु को शुद्धि के साधनों को अपनाना चाहिए, ताकि वह उन गुणों को प्राप्त कर सके जिनके माध्यम से नैतिकता की शुद्धता पूर्ण हो जाएगी, अर्थात्: आवश्यकताओं की कमी, संतोष, तपस्या, वैराग्य, ऊर्जा, संयम आदि।
तेरह धुतंगों में निम्नलिखित व्रत शामिल हैं:
फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए;

केवल तीन वस्त्र पहने हुए;
भिक्षा मांगने जाना;
भिक्षा मांगने जाते समय किसी भी घर को न छोड़ना;
एक ही बार में भोजन करना;
केवल भिक्षापात्र से ही भोजन करना;
आगे का सारा भोजन लेने से इनकार करना;
जंगल में रहना;
पेड़ के नीचे रहना;
खुले वातावरण में रहना;
कब्रिस्तान में रहना;
किसी भी आवास में संतुष्ट रहना;
बैठकर सोना चाहिए (कभी भी लेटकर नहीं)।

पहली प्रतिज्ञा इन शब्दों में ली जाती है: मैं गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्रों को अस्वीकार करता हूँ, या: मैं केवल चिथड़ों से बने वस्त्र पहनने की प्रतिज्ञा लेता हूँ। इनमें से कुछ अभ्यास गृहस्थ अनुयायी भी कर सकते हैं।

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि संघ में प्रवेश करने के तुरंत बाद प्रत्येक नवदीक्षित भिक्षु को सलाह दी जाती है कि वह जो भी वस्त्र, भिक्षा, भोजन, आवास और दवा प्राप्त करे, उसी से संतुष्ट रहे: "भिक्षुओं का जीवन एकत्रित भिक्षा पर भोजन के रूप में निर्भर करता है... वृक्ष की जड़ पर आवास के रूप में... और चिथड़ों को जोड़कर बनाए गए वस्त्रों पर।"

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 396

———————————————————————————

(धम्मपद 395) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 396 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 397)

———————————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 396 - एक ब्राह्मण वत्थु

———————————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Na caham brahmanam brumi
योनिजं मत्तिसंभवम्,
भोवादी(1) नामा सो होती
sace hoti sakincano
akincanam anadanam
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————————

श्लोक 396 : मैं उसे ब्राह्मण मात्र इसलिए नहीं कहता कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। नैतिक दोषों से मुक्त न होने पर वह केवल भोवदी ब्राह्मण है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त हो।

———————————————————————————

1. भोवादी: 'भो' एक परिचित संबोधन है जिसका प्रयोग निम्न और समतुल्य दोनों के लिए किया जाता है। अतः 'भोवादी' उपाधि अहंकार का प्रतीक है। ब्राह्मण आमतौर पर बुद्ध को 'भो गौतम!' कहकर संबोधित करते थे। बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों के लिए 'भोवादी' शब्द का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण ढंग से किया जाता है।

———————————————————————————

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक ब्राह्मण के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (396) कहा।

एक बार, श्रावस्ती के एक ब्राह्मण ने सोचा कि चूंकि बुद्ध ने अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहा है, इसलिए उन्हें भी ब्राह्मण कहलाना चाहिए क्योंकि वे ब्राह्मण माता-पिता की संतान हैं। जब उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई, तो बुद्ध ने उनसे कहा, "हे ब्राह्मण! मैं उसे केवल ब्राह्मण माता-पिता की संतान होने के कारण ब्राह्मण नहीं कहता। मैं उसे ब्राह्मण तभी कहता हूँ जब वह नैतिक दोषों से मुक्त हो और जीवन के सभी मोह से मुक्त हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 396 : मैं उसे ब्राह्मण मात्र इसलिए नहीं कहता कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। नैतिक दोषों से मुक्त न होने पर वह केवल भोवदी ब्राह्मण है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त हो।

प्रवचन के अंत में उस ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

ब्राह्मण कौन होता है?

कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण ने एक दिन मन ही मन कहा, “गौतम भिक्षु अपने शिष्यों को ‘ब्राह्मण’ कहते हैं। मेरा पुनर्जन्म एक ब्राह्मण माता के गर्भ से हुआ है, इसलिए उन्हें मुझे भी यह उपाधि देनी चाहिए।” अतः वह बुद्ध के पास गए और उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा। बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, “मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण नहीं कहता कि उसने ब्राह्मण माता के गर्भ से पुनर्जन्म लिया है। बल्कि जो सांसारिक वस्तुओं से रहित है, जो इस संसार की वस्तुओं के प्रति आसक्त नहीं है, वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 396)

योनिजं मतिसंभवं ब्राह्मणं अहं न च
ब्रूमि सा सी साकिंकानो होति सो भोवादी नामा होति
अकिंचनं आनंदं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

योनिजं मत्तिसंभवं [ मत्तिसंभव ]: ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण; अहं न च ब्रूमि : मैं नहीं पुकारूँगा; स चे सकिंचानो [ सकिंचाना ]: यदि उसमें दोष हों; सो भोवादी नाम होति : उसे ऐसा व्यक्ति कहा जा सकता है जो लोगों को 'महोदय' कहकर संबोधित करता हो; अकिंचाना [ अकिंचाना ]: यदि वह दोषों से मुक्त हो; अनादानं [ अनादान ]: भोग की पकड़ से मुक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण नहीं कहूँगा कि वह ब्राह्मण माता के गर्भ से जन्मा है। न ही मैं किसी व्यक्ति को केवल इसलिए ब्राह्मण कहूँगा कि वह लोगों को भो (सिर) कहकर संबोधित करता है। ये सभी लोग दोषों से भरे हुए हैं। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो दोषरहित है और व्यथाओं से मुक्त है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 396)

ब्राह्मण : इस श्लोक के अनुसार, बुद्ध से मिलने वाले अनाम ब्राह्मण ने ब्राह्मण उपाधि का दावा किया क्योंकि वह योनिजं मत्तिसंभवं था , अर्थात् ब्राह्मण माता की कोख से जन्मा था। परन्तु बुद्ध ने कहा कि वे ब्राह्मण केवल उसी व्यक्ति को कहेंगे जो कामवासना जैसे दोषों से मुक्त हो और लोभ से रहित हो।

भोवादी : बुद्ध के समय के ब्राह्मणों की यह प्रथा थी कि वे सभी बाहरी रीति-रिवाजों में निपुण होते थे। वे विनम्र और शिष्ट थे और लोगों को भो (श्री) कहकर संबोधित करते थे। बुद्ध ने कहा कि ऐसा विनम्र और शिष्ट व्यवहार पर्याप्त नहीं था। ब्राह्मण की उपाधि प्राप्त करने के लिए उन्हें आंतरिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से शुद्ध होना आवश्यक था। अन्यथा, वे केवल भो कहने वाले ही रह जाते थे।

ब्राह्मण दोण : बौद्ध साहित्य में प्रमुखता से वर्णित ब्राह्मणों में से एक दोण हैं ।

बुद्ध के अवशेषों पर निम्नलिखित में से प्रत्येक ने दावा किया, अर्थात् मगध के राजा अजातसतु, वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्लाकप्पा के बूली, रामागम के कोलिय, पावा के मल्ल और वेठद्वीप के एक ब्राह्मण ने। परन्तु कुसिनारा के मल्लों का कहना था कि बुद्ध का निधन उनके राज्य में हुआ था, और वे अवशेषों का कोई भी भाग किसी को नहीं देंगे। ब्राह्मण दोण ने यह कहकर विवाद सुलझाया कि ऐसे पवित्र व्यक्तित्व के अवशेषों पर झगड़ा करना उचित नहीं है, जिन्होंने संसार को सहनशीलता का उपदेश दिया। उन्होंने अवशेषों को आठ भागों में बाँटा और प्रत्येक दावेदार को एक-एक भाग दिया। उन्होंने खाली भाग वापस माँगकर उस पर एक स्तूप बनवाया। पिप्पलीवना के मोरिया शासकों ने भी अवशेषों के एक हिस्से पर दावा किया, लेकिन चूंकि उनके लिए कुछ भी नहीं बचा था,

इसलिए वे अंगारों को ले गए और उनके ऊपर एक टीला बना दिया, जबकि अन्य जिन्होंने अवशेष प्राप्त किए, उन्होंने अपने-अपने राज्यों में बुद्ध के पवित्र अवशेषों को समाहित करते हुए स्तूपों का निर्माण किया।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 397

---

(धम्मपद396) <<<< पिछला ‖ धम्मपद397 ‖ अगला >>>> (धम्मपद398)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 397 - उग्गसेनसेट्ठिपुत्त वत्थु

---

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
Sabbasamyojanam chetva
yo ve na paritassati
संगतिगम विसाम्यत्तम
tamaham brumi brahamanam.

---

श्लोक 397 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने सभी बंधनों को काट दिया है और जो निर्भय है, जो आसक्ति से परे है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

---

एक धनी व्यक्ति के पुत्र उगासेना की कहानी(1)
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (397) का उच्चारण एक धनी व्यक्ति के पुत्र उग्गेसेना के संदर्भ में किया। एक नाट्य मंडली की नर्तकी से विवाह करने के बाद, उगासेना को उनके ससुर, जो एक कलाबाज थे, द्वारा प्रशिक्षित किया गया और वे कलाबाजी में अत्यंत कुशल हो गए। एक दिन जब वे अपना कौशल दिखा रहे थे, तभी बुद्ध वहाँ प्रकट हुए। बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर, उगासेना ने एक लंबे बांस के खंभे पर अपने करतब दिखाते हुए ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद, वे खंभे से नीचे उतरे और बुद्ध से उन्हें भिक्षु के रूप में स्वीकार करने की विनती की, और तदनुसार उन्हें संघ में प्रवेश मिल गया।
एक दिन जब दूसरे भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि इतनी ऊँचाई (लगभग नब्बे फीट) से उतरते समय क्या उन्हें ज़रा भी डर नहीं लगा, तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। भिक्षुओं ने इसका अर्थ यह निकाला कि उगसेना अभी भी अर्हत होने का दावा कर रहे हैं। इसलिए वे बुद्ध के पास गए और बोले, "हे पूज्यवर! उगसेना स्वयं को अर्हत बताते हैं; वे झूठ बोल रहे होंगे।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र उगसेना की तरह, जिसने सभी बंधनों को तोड़ दिया है, उसे कोई भय नहीं होता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 397 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने सभी बंधनों को काट दिया है और जो निर्भय है, जो आसक्ति से परे है और नैतिक दोषों से मुक्त है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

कलाबाज उगासेना की कहानी

इस कहानी का विस्तृत वर्णन उस श्लोक की व्याख्या में किया गया है जो इन शब्दों से शुरू होता है, "अतीत की बातों को त्याग दो, भविष्य की बातों को त्याग दो।"

क्योंकि उस समय जब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, उगसेना कहते हैं, 'मुझे कोई भय नहीं है;' निःसंदेह वह असत्य बात कहते हैं, झूठ बोलते हैं," तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जो मेरे पुत्र की तरह आसक्तियों से मुक्त हैं, उन्हें कोई भय नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 397)

ये सब्बासंन्नोजनां चेत्वा वे न परितासससति

संगतिगं विसंयुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

ये : कोई; सब्बासंञ्ञाजनम् [ सब्बासंञ्ञाजन ]: सभी दस बंधनों से मुक्त; चेत्वा : छुटकारा पा लिया; वे : निश्चित रूप से; न परितस्सति : भय से मुक्त; निर्भीक; संगातिगम् [ संगातिगा ]: सभी प्रकार के आसक्ति से परे हो गया; विसंयुत्तम् [ विसंयुत्त ]: दोषों से मुक्त; तम् : उसे; अहम् : मैं; ब्राह्मणम् [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : पुकारना

उसने सभी बंधनों से मुक्ति पा ली है। फलस्वरूप, वह भयमुक्त और निर्भीक है। उसने सभी बंधनों से परे यात्रा की है। बंधनों से मुक्त होकर वह संसार से बंधा नहीं है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 397)

sabba saññojanaṃ chetvā : दस बंधनों से मुक्त होकर, जो इस प्रकार हैं:

व्यक्तित्व-विश्वास ( sakkāya - diṭṭhi );

संशयपूर्ण संदेह ( vicikkichā );

मात्र नियमों और अनुष्ठानों से चिपके रहना ( सिलब्बता - परमासा );

कामुक लालसा ( काम - राग );

दुर्भावना ( व्यापाद );

भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति लालसा ( रूप - राग );

अमूर्त अस्तित्व की लालसा ( अरूपा - राग );

अहंकार ( मान ); (9) बेचैनी ( उद्धच्च );

अज्ञान ( अविज्जा )।

इनमें से पहले पाँच को 'निम्न बंधन' ( ओरम्भागीय - संयोजन ) कहा जाता है, क्योंकि ये इंद्रिय जगत से जुड़े होते हैं। बाद के पाँच को 'उच्च बंधन' ( उद्धम्भागीय - संयोजन ) कहा जाता है, क्योंकि ये उच्चतर जगतों से जुड़े होते हैं, अर्थात् सूक्ष्म भौतिक और अभौतिक जगत से।

संगतिगम् : आसक्ति के चार रूप, अर्थात् कामवासना, गलत दृष्टिकोण, नियमों और अनुष्ठानों से चिपके रहना और सारगर्भित प्रथम स्थान धारण करना ( अत्तवाद )।

जो विचलित नहीं होता , वह कांपता नहीं; वह विचलित नहीं होता। जो सांसारिक सुखों में फंसे रहते हैं, वे विचलित हो जाते हैं। जो सांसारिक सुखों से परे जा चुके हैं, वे भयभीत नहीं होते; वे निर्भीक होते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 398

---

(धम्मपद397) <<<< पिछला ॥ धम्मपद398 ॥ अगला >>>> (धम्मपद399)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 398 - द्वे ब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Chetva naddhim varattanca
संदानम सहानुक्कमम
ukkhittapalidham buddham
tamaham brumi brahamanam.

---

श्लोक 398 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दुर्भावना का पट्टा, लालसा का पट्टा और छिपे हुए दोषों सहित गलत विचारों की डोरी काट दी है, जिसने अज्ञान के द्वार को बंद करने वाली बाधा को हटा दिया है, और जो सत्य को जानता है।

---

दो ब्राह्मणों की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने दो ब्राह्मणों के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (398) कहा।
एक समय श्रावस्ती में दो ब्राह्मण रहते थे, जिनमें से प्रत्येक के पास एक-एक बैल था। दोनों का दावा था कि उनका बैल बेहतर और अधिक बलवान है। अंत में, उन्होंने अपने पशुओं की परीक्षा लेने का निर्णय लिया। इसलिए वे अचिरवती नदी के किनारे गए और वहाँ उन्होंने एक गाड़ी में रेत भर दी। एक-एक करके बैलों ने गाड़ी को खींचा, लेकिन उनका प्रयास व्यर्थ रहा, क्योंकि गाड़ी हिली नहीं और केवल रस्सियाँ टूट गईं। भिक्षुओं ने यह देखकर बुद्ध को सूचना दी और बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जिन पट्टियों को आप अपनी आँखों से देख सकते हैं, उन्हें तोड़ना आसान है; कोई भी उन्हें तोड़ या काट सकता है। परन्तु मेरे पुत्रों, एक भिक्षु को द्वेष की पट्टी और भोग की डोरी को काटना चाहिए जो आपके भीतर हैं और जो आपको बांधती हैं।"

---

श्लोक 398 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने दुर्भावना का पट्टा, लालसा का पट्टा और छिपे हुए दोषों सहित गलत विचारों की डोरी काट दी है, जिसने अज्ञान के द्वार को बंद करने वाली बाधा को हटा दिया है, और जो सत्य को जानता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
रस्साकशी की कहानी
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय दो ब्राह्मणों के संदर्भ में दिया था।
कथा के अनुसार, इन दो ब्राह्मणों में से एक के पास 'छोटा लाल' (चुल्ला रोहित) नाम का एक बैल था और दूसरे के पास 'बड़ा लाल' (महा रोहित) नाम का एक बैल था। एक दिन वे अपने-अपने बैलों की ताकत को लेकर बहस करने लगे, "मेरा बैल ही ताकतवर है! मेरा बैल ही ताकतवर है!" बहस से थककर उन्होंने कहा, "इस पर बहस करने का क्या फायदा? हम दोनों बैलों को चलाकर देख सकते हैं।" तदनुसार, वे अचिरवती नदी के किनारे गए, अपनी गाड़ी में रेत भरी और बैलों को जोत दिया। उसी समय कुछ भिक्षु स्नान करने के लिए नदी के किनारे आए। ब्राह्मणों ने अपने बैलों को चाबुक मारा, लेकिन गाड़ी टस से मस नहीं हुई। अचानक उसके पट्टे और रस्सियाँ टूट गईं। भिक्षुओं ने यह सब देखा और जब वे मठ लौटे, तो उन्होंने बुद्ध को सब कुछ बताया। बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, ये तो बाहरी बंधन और डोरियाँ हैं, जिन्हें कोई भी काट सकता है। परन्तु भिक्षु को क्रोध के आंतरिक बंधन और लालसा की डोरी को काटना चाहिए।" ऐसा कहकर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 398)
नन्दिं वरतं सहनुक्कमं संदामं चेत्वा
उक्खित्तपघं बुद्धं तम अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि
नन्दिः [ नन्दि ]: घृणा का पट्टा; वराट्टं [ वराट्ट ]: लालसा की पेटी; सहनुक्कमं संदामं [ संदामा ]: इसकी कड़ियों सहित प्रमुख बंधन; चेत्वा : अनेक होना; उक्खित्तपधिघं [ उक्खित्तप‌घ ]: क्रॉस-बार उठा लिया; बुद्धम् [ बुद्ध ]: वास्तविकता से अवगत हो जाओ; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णित

उसने द्वेष की बेड़ी से छुटकारा पा लिया है। उसने लालसा के बंधन से खुद को मुक्त कर लिया है। उसने उस विशाल बेड़ी से मुक्ति पा ली है जिसके सभी बंधन टूट गए हैं। ये वे झूठे विचार हैं जो लोगों को बांधे रखते हैं। उसने अज्ञान की बेड़ी को हटा दिया है। उसे चार आर्य सत्यों का ज्ञान हो गया है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 398)

इस श्लोक में सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति की तुलना बैलगाड़ी चलाने वाले व्यक्ति से की गई है।

नंदिं : गाड़ी में पट्टा बांधने की उपमा। आध्यात्मिक मुक्ति की खोज में यही वह चीज है जो व्यक्ति को बांधती और जकड़ती है।

वरत्तं : बैलगाड़ी और बैल के उपमा में थोंग। यह आध्यात्मिक खोज में तृप्ति है क्योंकि यह फँसा देती है।

संदामं सहनुक्कमं : बैलगाड़ी और बैल के उपमा में, ये अभिव्यक्तियाँ लगाम के साथ-साथ रस्सी को संदर्भित करती हैं। आध्यात्मिक खोज में, ये बासठ गलत धारणाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।

बुद्ध का सुनी हुई बातों के प्रति दृष्टिकोण : यह श्लोक और कई अन्य श्लोक उन घटनाओं के संदर्भ में कहे गए थे जिनकी जानकारी बुद्ध को प्राप्त हुई थी। बुद्ध अपने संवाद के तरीके में किसी भी ऐसी घटना या प्रसंग का उपयोग करते हैं जिससे श्रोताओं को लाभ होने की संभावना हो।

एक दिन जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश कर रहे थे, तो उन्होंने जेतवन मठ से कुछ ही दूरी पर स्थित एक सूखे जलाशय में कुछ बच्चों को मछली पकड़ते और मारते देखा। बुद्ध बच्चों के पास गए और उनसे पूछा, "बच्चों, क्या तुम दुख से डरते हो और क्या तुम्हें दुख नापसंद है?" बच्चों ने कहा, "जी, पूज्यवर, हम दुख से डरते हैं और हमें दुख नापसंद है।" बुद्ध ने कहा, "यदि तुम दुख से डरते हो और उसे नापसंद करते हो, तो कोई भी बुरा काम न करो, चाहे खुलेआम हो या छिपकर। यदि तुम अभी या भविष्य में कोई बुरा काम करोगे, तो तुम्हें दुख से छुटकारा नहीं मिलेगा, चाहे तुम उससे भागने की कितनी भी कोशिश करो।"

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 399

---

(धम्मपद 398) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 399 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 400)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 399 - अक्कोसाकाभारद्वाज वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Akkosam vadhabandhanca
aduttho yo titikkhati
खंतिबलम बलानिकम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 399 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो क्रोध रहित होकर अपमान, मार-पीट और बंधन सहन करता है, और जिसके लिए धैर्य की शक्ति सेना की शक्ति के समान है।

---

दुर्व्यवहार करने वाले ब्राह्मण भाइयों की कहानी

वेलुवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (399) का उच्चारण किया, जिसमें उन्होंने अपमानजनक भारद्वाज बंधुओं का उल्लेख किया।

एक समय की बात है, एक ब्राह्मण की पत्नी को छींक आने पर या किसी के अनजाने में छूने पर अचानक कुछ शब्द बोलने की आदत थी। एक दिन ब्राह्मण ने अपने कुछ मित्रों को भोजन पर आमंत्रित किया और अचानक उसकी पत्नी ने कुछ शब्द बोल दिए। क्योंकि वह सोतापन्न थी, इसलिए उसके मुख से स्वतः ही "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्संबुद्धस्स" निकल आए। बुद्ध के प्रति श्रद्धा के ये शब्द

उसके पति, ब्राह्मण को अत्यंत अप्रिय लगे। इसलिए क्रोधित होकर वह बुद्ध के पास गया, यह सोचकर कि वह उनसे कुछ चुनौतीपूर्ण प्रश्न पूछेगा। उसका पहला प्रश्न था, "सुखद और शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए हमें क्या त्यागना होगा?" और दूसरा प्रश्न था, "आप किस धर्म का त्याग करने को उचित मानते हैं?" इन प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, सुखी और शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए द्वेष (दोष) का नाश करना होगा। द्वेष का नाश करना बुद्धों और अरहतों को प्रिय और प्रशंसनीय है।" बुद्ध की वाणी सुनकर ब्राह्मण इतना प्रभावित और संतुष्ट हुआ कि उसने संघ में प्रवेश करने की अनुमति मांगी। तदनुसार, उसने संघ में प्रवेश किया और बाद में अरहत बन गया।

इस ब्राह्मण का एक भाई था जो अपने अपशब्दों के लिए कुख्यात था और अक्कोसाका भारद्वाज के नाम से जाना जाता था। जब अक्कोसाका भारद्वाज को पता चला कि उसका भाई भिक्षु संघ में शामिल हो गया है, तो वह क्रोधित हो गया। वह तुरंत मठ गया और बुद्ध को अपशब्द कहे। बुद्ध ने बदले में पूछा, "हे ब्राह्मण, मान लो कि तुमने कुछ मेहमानों को भोजन दिया और वे बिना भोजन लिए घर से चले गए। चूंकि मेहमानों ने तुम्हारा भोजन स्वीकार नहीं किया, तो वह भोजन किसका होगा?" इस प्रश्न के उत्तर में ब्राह्मण ने कहा कि वह भोजन उसका ही होगा। यह उत्तर सुनकर बुद्ध ने कहा, "इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, चूंकि मैं तुम्हारा अपशब्द स्वीकार नहीं करता, इसलिए वह अपशब्द तुम पर ही वापस जाएगा।" अक्कोसाका भारद्वाज को तुरंत उन शब्दों की बुद्धिमत्ता का एहसास हुआ और उनके मन में बुद्ध के प्रति गहरा आदर उत्पन्न हुआ। उन्होंने भी संघ में प्रवेश किया और समय आने पर अर्हत बन गए।

अक्कोसाका भारद्वाज के संघ में प्रवेश करने के बाद, उनके दो छोटे भाई भी बुद्ध का अपमान करने के उसी इरादे से उनसे मिलने आए। बुद्ध ने उन्हें भी सही राह दिखाई और वे भी संघ में प्रवेश कर गए। अंततः, वे दोनों अरहत बन गए।

एक शाम भिक्षुओं की सभा में, भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे बुद्ध के गुण कितने अद्‌भुत और महान हैं! चार ब्राह्मण भाई बुद्ध का अपमान करने यहाँ आए थे; उनसे बहस करने के बजाय, उन्होंने उन्हें सही राह दिखाई, और परिणामस्वरूप, बुद्ध उनके लिए शरणस्थली बन गए हैं।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! क्योंकि मैं धैर्यवान और सहनशील हूँ, और जो मेरा अपमान करते हैं, उनके साथ मैं कोई अन्याय नहीं करता, इसलिए मैं बहुतों के लिए शरणस्थली बन गया हूँ।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 399 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो क्रोध रहित होकर अपमान, मार-पीट और बंधन सहन करता है, और जिसके लिए धैर्य की शक्ति सेना की शक्ति के समान है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धैर्यवान व्यक्ति द्वारा अभिमानी को वश में करने की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय अक्कोसा भारद्वाज के संदर्भ में दिया था।

अक्कोसा भारद्वाज का एक भाई भारद्वाज था और उनकी पत्नी धनंजनी थीं, जिन्होंने धर्म परिवर्तन का फल प्राप्त कर लिया था। जब भी उन्हें छींक आती, खांसी होती या वे लड़खड़ा जातीं, तो वे गंभीर स्वर में कहतीं, "सर्वोच्च, सर्वगुण संपन्न, परम प्रबुद्ध परमेश्वर की स्तुति हो!" एक दिन, ब्राह्मणों को भोजन वितरण के दौरान, वे लड़खड़ा गईं और तुरंत ही हमेशा की तरह ऊँची आवाज़ में वही गंभीर स्वर दोहराया।

ब्राह्मण को बहुत क्रोध आया और उसने मन ही मन कहा, "यह नीच स्त्री जहाँ भी ठोकर खाती है, इस मुंडे हुए भिक्षु की इसी प्रकार प्रशंसा करने लगती है।" उसने उससे कहा, "अब, हे नीच स्त्री, मैं जाकर तेरे उस गुरु को वाद-विवाद में हरा दूँगा।" उसकी पत्नी ने उत्तर दिया, "ज़रूर जाइए, ब्राह्मण; मैंने आज तक किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जो बुद्ध को वाद-विवाद में हरा सके। फिर भी, जाइए और बुद्ध से एक प्रश्न पूछिए।"

ब्राह्मण बुद्ध के पास गया और उन्हें प्रणाम किए बिना ही एक तरफ खड़ा हो गया और उनसे निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए एक प्रश्न पूछा:

सुखमय जीवन जीने के लिए क्या नष्ट करना आवश्यक है? दुःख से बचने के लिए क्या नष्ट न करना आवश्यक है? गौतम, आप किस एक शर्त पर विनाश की अनुशंसा करते हैं?

इसके उत्तर में बुद्ध ने निम्नलिखित श्लोक कहा:

यदि मनुष्य क्रोध का नाश कर ले, तो वह शांति से जीवन व्यतीत करेगा; यदि वह क्रोध का नाश कर ले, तो उसे फिर कभी दुःख नहीं होगा।

क्रोध की जड़ विषैली होती है, और उसका शिखर मधुर होता है, ब्राह्मण।

इसलिए, कुलीन लोग क्रोध के नाश की सराहना करते हैं।

क्योंकि जब यह नष्ट हो जाता है, तो कोई दुःख नहीं रह जाता।

उस ब्राह्मण ने बुद्ध में विश्वास किया, संसार से संन्यास लिया और अरहतत्व प्राप्त किया।

अब उनके छोटे भाई, जिनका नाम अक्कोसा भारद्वाज था, ने यह खबर सुनी कि "तुम्हारा भाई संसार से संन्यास ले चुका है," और इससे बहुत क्रोधित होकर, जाकर बुद्ध को अपशब्द कहे। परन्तु बुद्ध ने अजनबियों को दिए जाने वाले कठोर भोजन का उदाहरण देकर उन्हें भी वश में कर लिया, और उन्होंने भी बुद्ध पर विश्वास किया, संसार से संन्यास लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसी प्रकार अक्कोसा भारद्वाज के दो छोटे भाई, सुंदरी भारद्वाज और बिलांगिक भारद्वाज ने भी बुद्ध को अपशब्द कहे, परन्तु बुद्ध ने उन्हें वश में कर लिया, और उन्होंने भी संसार से संन्यास लिया और अर्हतत्व प्राप्त किया।

एक दिन सत्य के हॉल में भिक्षुओं ने यह चर्चा शुरू की: "बुद्धों के गुण कितने अद्‌भुत हैं! यद्यपि इन चार भाइयों ने बुद्ध का अपमान किया, फिर भी बुद्ध ने बिना कुछ कहे ही उनकी शरण ली।" उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "अमुक विषय पर।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, क्योंकि मुझमें धैर्य की शक्ति है, क्योंकि मैं पापियों के बीच भी पापरहित हूँ, इसलिए मैं वास्तव में भीड़ का शरणस्थल हूँ।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 399)

यो अक्कोसं वधबंधं च अदुत्थो तितिक्खति
खांतिबलं बालनिकं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यो : यदि कोई व्यक्ति; अक्कोसां [ अक्कोसा ]: गाली देता है; वधबन्धं च : यातना, कारावास; अदुत्थो तितिक्खति : बिना क्रोध खोए सहन करता है; खन्तीबलं [ खन्तीबल ]: (जिसके पास) धैर्य ही शक्ति है; बलाणीकं [ बलाणीक ]: और उसकी सेना; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण; ब्रूमी : पुकारता है

उनका अपमान और दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें यातनाएं दी जाती हैं, कैद किया जाता है और बांध दिया जाता है। लेकिन वे इन सब को बिना उत्तेजित हुए या अपना आपा खोए सहन करते हैं। ऐसा व्यक्ति, जिसके लिए धैर्य ही उसकी शक्ति और सामर्थ्य है, मैं उसे सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 400

---

(धम्मपद 399) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 400 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 401)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 400 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

अक्कोधनम वातवंतम
सिलवंतम अनुसदम
दंतम अंतिमासरिरम(1)
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 400 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध से मुक्त है, जो तपस्या का अभ्यास करता है, जो गुणी और लालसा से मुक्त है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है और जिसके लिए यह शरीर (अर्थात अस्तित्व) अंतिम है।

---

1. अंतिमासरिरम: शाब्दिक अर्थ, वह व्यक्ति जिसका अंतिम शरीर है। यह उसका अंतिम शरीर है क्योंकि उसका पुनर्जन्म नहीं होगा; वह एक अरहत है।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने पूज्य सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (400) कहा।

जब बुद्ध वेलुवन मठ में निवास कर रहे थे, तब पूज्य सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नलका गाँव में प्रवेश कर अपनी माता के घर के द्वार पर भिक्षा मांगने के लिए खड़े हुए। उनकी माता ने उन्हें घर में आमंत्रित किया। लेकिन अपने पुत्र को भोजन देते हुए उन्होंने कहा, "हे जूठे भोजन खाने वाले, अस्सी करोड़ का त्याग करके भिक्षु बनने वाले, तुमने हमें बर्बाद कर दिया है।" फिर उन्होंने अन्य भिक्षुओं को भिक्षा दी और उनसे कठोर शब्दों में कहा, "तुम सबने मेरे पुत्र को अपना सेवक बनाया; अब अपना भोजन करो।" पूज्य सारिपुत्त ने कोई उत्तर नहीं दिया, वे नम्रतापूर्वक अपना कटोरा लेकर मठ लौट आए। मठ में लौटकर भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि कैसे पूज्य सारिपुत्त ने धैर्यपूर्वक अपनी माता के डांट-फटकार और अपशब्द सहन किए। बुद्ध ने उनसे कहा कि अरहत कभी क्रोधित नहीं होते, वे कभी अपना आपा नहीं खोते।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 400 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध से मुक्त है, जो तपस्या का अभ्यास करता है, जो गुणी और लालसा से मुक्त है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है और जिसके लिए यह शरीर (अर्थात अस्तित्व) अंतिम है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

धैर्यवान व्यक्ति द्वारा अभिमानी को वश में करने की कहानी

उस समय, जैसा कि कथा में कहा गया है, पूज्य सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ नालक गाँव में भिक्षा माँगते हुए अपनी माता के घर पहुँचे। उनकी माता ने उन्हें बैठने के लिए जगह दी और भोजन परोसते हुए उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई, “अरे, जूठा खाने वाले! खट्टी चावल की दलिया न मिलने पर तू घर-घर अजनबियों के बीच घूमता है और चम्मच के पिछले हिस्से पर चिपकी खट्टी चावल की दलिया चाटता है! और इसी के लिए तूने अस्सी अरब धन त्याग कर भिक्षु बन गया! तूने मुझे बर्बाद कर दिया! अब खा ले!” इसी प्रकार भिक्षुओं को भोजन देते हुए उन्होंने कहा, “तो तुम ही हो जिन्होंने मेरे पुत्र को अपना सेवक बना लिया है! अब खा ले!” पूज्य सारिपुत्त ने भोजन ग्रहण किया और मठ लौट गए।

आदरणीय राहुल ने बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध ने पूछा, “राहुल, तुम कहाँ गए थे?” “आदरणीय, मैं अपनी दादी के गाँव गया था।” “और तुम्हारी दादी ने तुम्हारे गुरु से क्या कहा?” “आदरणीय, मेरी दादी ने मेरे गुरु को खूब खरी-खोटी सुनाई।” “उन्होंने क्या कहा?” “यह और वह, आदरणीय।” “और तुम्हारे गुरु ने क्या उत्तर दिया?” “उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, आदरणीय।”

यह सुनकर भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस विषय पर चर्चा शुरू कर दी। उन्होंने कहा, “भाइयों, पूज्य सारिपुत्त के गुण कितने अद्भुत हैं! जब उनकी माता ने उनका इस प्रकार अपमान किया, तब भी वे जरा भी क्रोधित नहीं हुए।” बुद्ध उनके पास आए और भिक्षुओं से पूछा, “भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?” भिक्षुओं ने कहा, “अमुक विषय पर।” तब बुद्ध ने कहा, “भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, वे क्रोध से मुक्त हैं।”

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 400)

अक्कोधनं वातवन्तं शीलवन्तं अनुसुतम्

दन्तं अन्तिमशरीरं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

अक्कोडनं [ अक्कोडन ]: क्रोध से मुक्त; वतवंतं [ वतवंत ]: अपने कर्तव्यों और अनुष्ठानों के प्रति सचेत; सीलावंतं [ सीलावंत ]: सद्गुणों के प्रति अनुशासित; अनुस्सुतं [ लालच से रहित]; दन्तं [ दन्त ]: संयमित; अंतिमसारीरं [ अन्तिमसारीर ]: अंतिम शरीर में निवास करने वाला; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : पुकार

वह क्रोध से मुक्त है। वह अपने धार्मिक कर्तव्यों का सावधानीपूर्वक पालन करता है और नियमों का ध्यान रखता है। वह सद्गुणों के मामले में अनुशासित है। वह संयमित है। जन्म-जन्म का चक्र समाप्त होने के बाद, यही उसका अंतिम शरीर होगा। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 400)

सारिपुत्त की कथा : बौद्ध जगत में अनेकों को प्रेरित करने वाला नाम सारिपुत्त है। सारिपुत्त भगवान बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों में से अग्रणी थे। यदि बुद्ध के निरंतर सेवक आनंद को उनकी सुस्मृति के कारण धम्म का कोषाध्यक्ष कहा जाता है, तो सारिपुत्त को धम्म का सेनापति कहा जाता है। शिक्षा और ज्ञान में वे बुद्ध के बाद दूसरे स्थान पर थे।

जब भी भगवान बुद्ध को विश्राम की आवश्यकता होती, वे अक्सर उपदेश देने के लिए तैयार हो जाते थे। एक बार एक ब्राह्मण ने उनकी सहनशीलता की परीक्षा लेने के लिए उन्हें ज़ोर से मारा। वे अविचलित रहे। तब ब्राह्मण ने क्षमा मांगी, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद ब्राह्मण ने उन्हें दोपहर के भोजन में शामिल होने का निमंत्रण दिया, जिसे उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया। क्या ऐसा

आचरण केवल स्वयं भगवान बुद्ध के समान ही हो सकता है? सात वर्षीय सामनेर के प्रति उनका व्यवहार अत्यंत मार्मिक है। यह उनकी विनम्रता का प्रमाण है। एक बार वह विनय नियमों के विरुद्ध अपने अंतर्वस्त्र का एक कोना घसीटते हुए घूम रहे थे। सामनेर ने इस ओर उनका ध्यान दिलाया। उन्होंने तुरंत प्रणाम करते हुए धन्यवाद दिया और गलती सुधार ली। वे राहुल और उनकी माता राहुलमाता का विशेष आदर करते थे। जब राहुलमाता को पेट फूलने की समस्या थी, तो उन्होंने उनके लिए एक विशेष आम का रस मंगवाया, जो औषधि का काम करता था। जब वह पेट की किसी बीमारी से पीड़ित थी, तो उसने राजा पसेनादी से घी में मिला हुआ और लाल मछली से सुगंधित चावल प्राप्त किया, ताकि उसका इलाज किया जा सके।

जब कोषाध्यक्ष अनाथपिंडिका मरणासन्न अवस्था में थे, तब उन्होंने आनंद के साथ उनसे मुलाकात की और उन्हें अनाथपिंडिकोवादा सूत्र नामक उपदेश दिया ।

उनका नाम उनकी माता, ब्राह्मण महिला सारी के नाम पर रखा गया था। यह लिखा गया था कि दो प्रमुख शिष्यों का निधन बुद्ध से पहले होना चाहिए। परंपरा के अनुसार, सारिपुत्त ने बुद्ध को प्रणाम करने के बाद अपनी माता के निवास स्थान नालगामक (नालंदा) में गए। इसी अवसर पर उन्होंने कहा कि उनकी नश्वर आंखें अब कभी भी अपने गुरु के दिव्य चरणों को नहीं देख पाएंगी। सांसारिक जीवन समाप्त हो गया था। रोगग्रस्त अवस्था में, उनके भाई चुंडा समनुद्देसा ने उनकी सेवा की।

यह उनकी आखिरी यात्रा के दौरान ही हुआ था कि उनकी कट्टर हिंदू माता का धर्म परिवर्तन हुआ, जब देवलोक के चार संरक्षक देवता, सक्का और महा ब्रह्मा, बारी-बारी से उस स्थान को प्रकाश की बढ़ती हुई चमक से भरते हुए, उनकी बीमार शय्या पर उनसे मिलने आए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 401

———————————————————————

(धम्मपद400) <<<< पिछला || धम्मपद401 || अगला >>>> (धम्मपद402)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 401 - उप्पलवन्ना थेरी वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Vari pokkharapatteva
araggeriva sasapo
yo na limpati kamesu
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 401 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होता, जैसे जल कमल के पत्ते से नहीं चिपकता, या राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।

———————————————————————

थेरी उप्पलवन्ना की कहानी(1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी उप्पलावन्ना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (401) कहा।

एक बार कुछ भिक्षु अरहत थेरी उप्पलावन्ना के बारे में बात कर रहे थे, जिनका युवा नंदा द्वारा यौन उत्पीड़न किया गया था और बाद में नंदा पृथ्वी में समा गए थे। इस संबंध में उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या अरहत इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते, क्योंकि उनका शरीर भी अन्य मनुष्यों के समान ही होता है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अरहत इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं लेते; वे इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे इंद्रियों और इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्त नहीं होते, ठीक वैसे ही जैसे जल कमल के पत्ते से या सरसों का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 401 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होता, जैसे जल कमल के पत्ते से नहीं चिपकता, या राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता।

---

(1) यह कहानी श्लोक 69 में दी गई कहानी का सिलसिला है: थेरी उप्पलावन्ना की कहानी

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

नन उप्पलवन्ना की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय भिक्षुणी उप्पलावण्णा के संदर्भ में दिया था। यह कथा श्लोक की टीका में विस्तार से वर्णित है, जिसकी शुरुआत इन शब्दों से होती है, 'मूर्ख को बुरा कर्म शहद के समान मीठा लगता है।' क्योंकि वहाँ कहा गया है:

कुछ समय बाद, सत्य के हॉल में एकत्रित भीड़ ने निम्नलिखित चर्चा शुरू की: "निःसंदेह, जिन्होंने अपने आप को बुराइयों से मुक्त कर लिया है, वे अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। वे ऐसा क्यों न करें? क्योंकि वे कोलापा वृक्ष या चींटियों के टीले नहीं हैं, बल्कि नम मांस से बने सजीव प्राणी हैं। इसलिए वे भी प्रेम के सुखों को पसंद करते हैं।" उसी क्षण बुद्ध पास आए। उन्होंने पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय।" बुद्ध ने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को विकारों से मुक्त कर लिया है, वे प्रेम के सुखों को पसंद नहीं करते और न ही अपनी वासनाओं को तृप्त करते हैं। क्योंकि जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी जल की बूँद उस पर टिकती नहीं, बल्कि लुढ़क कर गिर जाती है; जिस प्रकार सरसों का दाना सुई की नोक पर चिपकता नहीं, बल्कि लुढ़क कर गिर जाता है, ठीक उसी प्रकार दोहरे प्रेम का भाव विकारों से मुक्त व्यक्ति के हृदय में नहीं टिकता और न ही वहाँ बना रहता है।" और इस संबंध को जोड़ते हुए, उन्होंने एक श्लोक के साथ धम्म का उपदेश दिया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 401)

पोक्खरापत्ते वारि इव अरग्गे ससापो इव सो

कामेसु न लिम्पति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

pokkharapatte : कमल के पत्ते पर; vāri iva : पानी की तरह; āragge : सुई की नोक पर; sāsapo iva : सरसों के दाने की तरह; so : यदि कोई; kāmesu : इंद्रिय सुखों में; na limpati : आसक्त नहीं है; taṃ : उसे; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi एक ब्राह्मण को पुकारता हूँ

कमल के पत्ते की सतह पर जल नहीं चिपकता। राई का दाना सुई की नोक से नहीं चिपकता। उसी प्रकार, ज्ञानी व्यक्ति का मन इंद्रिय सुखों से नहीं जुड़ता। ऐसे अनासक्त व्यक्ति को ही सच्चा ब्राह्मण कहते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 401)

नन उप्पलावण्णा की कहानी : उप्पलावण्णा का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था और उनका नाम कमल के फूल के नाम पर रखा गया था - उप्पला-वण्णा।

जब वह बालिग हुई, तो चारों ओर से विवाह के प्रस्ताव आने लगे और व्यथित पिता किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकार करके उसे नाराज नहीं करना चाहते थे। पिता को लगा कि प्रतिष्ठित संघ में दीक्षा लेना ही एकमात्र उपाय है।

अपनी नियति के अनुरूप, पुत्री ने सहमति दे दी। दीक्षा ग्रहण करने पर उसे उस सभा कक्ष का प्रभार सौंपा गया जहाँ ननें अपने पापों की स्वीकारोक्ति के लिए एकत्रित होती थीं। उसे दीपों की देखभाल करनी पड़ती थी। उसने देखा कि प्रकाश बाती और तेल से ही जलता रहता है।

कभी-कभी, प्रकाश या तो ऊर्जा की कमी से या हवा के झोंके से बुझ जाता था। इसलिए जीवन कर्मिक शक्ति के कारण था। यह बात उसे अरहत बनने तक सोचती रही। उसे अपने पिछले जन्म याद आते रहे।

जब वह जंगल में अकेली रह रही थी, तभी नंदा नाम का एक युवक, जो उसका रिश्तेदार था, उस पर मोहित हो गया और भिक्षा मांगने के बाद लौटते ही उसने उसके साथ यौन अपराध किया। दोपहर की तेज धूप से अंधेरी गुफा में आने पर, जहाँ वह रहती थी, उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए विरोध करने के बावजूद वह अचानक इस घटना से ग्रसित हो गई। उसने यह घिनौना काम किया और धरती के फटने और उस मूर्ख युवक को निगलने के साथ ही वह तुरंत नरक ( निरय ) में जन्म ले लिया। हालांकि, धरती के फटने से पहले ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

इस घटना के बाद ही भगवान बुद्ध ने श्रेष्ठ संघ की महिला शिष्यों को जंगल में एकांतवास करने से मना किया था।

इसके कुछ ही समय बाद, बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए घोषणा की कि उप्पला वण्णा महा थेरी मानसिक शक्ति में सर्वोपरि थे, जैसे पूज्य महा मोग्गलाना महा अरहतों में से एक थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 402

———————————————————————

(धम्मपद401) <<<< पिछला ॥ धम्मपद402 ॥ अगला >>>> (धम्मपद403)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 402 - अन्नतरब्राह्मण वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo dukkhassa pajanati
idheva khayamattano
पन्नाभरम विसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 402 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में भी दुःख/पीड़ा/पुनर्जन्म (अर्थात निर्वाण) के अंत को जान लेता है, जिसने (खन्धों का) बोझ उतार दिया है और जो नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————

एक ब्राह्मण की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (402) का उच्चारण एक ब्राह्मण के संदर्भ में किया, जिसका दास अरहत बन गया।

एक समय की बात है, एक ब्राह्मण का एक युवक दास था। एक दिन, अपने स्वामी के घर से भागकर वह भिक्षु संघ में शामिल हो गया और समय आने पर अर्हत बन गया। एक बार जब वह बुद्ध के साथ भिक्षा मांगने गया, तो उसके पूर्व स्वामी, ब्राह्मण ने उसे देख लिया और उसका वस्त्र कसकर पकड़ लिया। जब बुद्ध ने पूछा कि क्या बात है, तो ब्राह्मण ने बताया कि वह युवक भिक्षु कभी उसका दास था। बुद्ध ने उससे कहा, "इस भिक्षु ने (खंडों का) बोझ उतार दिया है।" ब्राह्मण ने इसका अर्थ यह निकाला कि उसका दास अर्हत बन गया है। इसलिए यह सुनिश्चित करने के लिए, उसने बुद्ध से पूछा कि क्या यह सचमुच है कि युवक भिक्षु अर्हत बन गया है, और बुद्ध ने अपने कथन की पुष्टि की।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 402 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो इस जीवन में भी दुःख/पीड़ा (अर्थात निर्वाण) के अंत को जान लेता है, जिसने (खन्धों का) बोझ उतार दिया है और जो नैतिक दोषों से मुक्त है।

———————————————————————

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण ने सोतापत्ति का फल प्राप्त किया।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक गुलाम की कहानी जिसने अपना बोझ उतार दिया

कथा के अनुसार, संघ में भगोड़े दासों के प्रवेश पर रोक लगाने वाले नियम के लागू होने से पहले, इस ब्राह्मण का एक दास भाग गया, संघ में प्रवेश पाकर अर्हत बन गया। ब्राह्मण ने उसे हर जगह खोजा, पर वह नहीं मिला। एक दिन, जब वह दास बुद्ध के साथ नगर में प्रवेश कर रहा था, ब्राह्मण ने उसे द्वार पर देखा और उसका वस्त्र कसकर पकड़ लिया। बुद्ध ने मुड़कर पूछा, "इसका क्या अर्थ है,

ब्राह्मण?" "यह मेरा दास है, श्री गौतम।" "इसका बोझ उतर गया है, ब्राह्मण।" बुद्ध के यह कहने पर कि "इसका बोझ उतर गया है," ब्राह्मण तुरंत समझ गया कि उनका अर्थ है, "यह अर्हत है।" इसलिए, उसने फिर बुद्ध से पूछा, "क्या ऐसा है, श्री गौतम?" "जी, ब्राह्मण," बुद्ध ने उत्तर दिया, "इसका बोझ उतर गया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 402)

यो इधा एव अत्तनो दुक्खस्सा खयं पजानाति

पन्नभरं विषुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यदि कोई व्यक्ति; इधा एव : इसी जीवन में; अत्तनो [ अत्तना ]: अपने; दुःखस्स खयम : दुखों के अंत को; पजानति : पूर्णतः जानता है; पन्नाभारं [ पन्नाभार ]: बोझ से मुक्त; विसंयुत्तं [ विसंयुत्त ]: (और) दोषों से मुक्त है; तं : वह व्यक्ति; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक सच्चा ब्राह्मण ब्रूमि : घोषणा करता हूँ

उन्होंने इसी संसार में दुखों के अंत का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वे बोझ से मुक्त हो गए हैं: उन्होंने अपना बोझ उतार दिया है। वे उन बंधनों से मुक्त हो गए हैं जिन्होंने उन्हें जकड़ रखा था। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 402)

यह श्लोक बुद्ध द्वारा एक भगोड़े दास की सहायता करने की घटना का वर्णन करता है, जो बाद में अरहत बना। बुद्ध ने कई दासों (पुरुष और महिला) को सहारा दिया था, जिन्होंने उनके ज्ञानवर्धक मार्गदर्शन से निर्वाण प्राप्त किया। उनमें से एक पुन्णा थीं। पुन्णा राजगृह के एक करोड़पति के घर में काम करने वाली एक सेविका थीं। एक रात धान कूटने के बाद, वह आंगन में निकलीं और उन्होंने कई भिक्षुओं को रात में बाहर देखा। अगली सुबह, उन्होंने चावल का एक तवा बनाया, उसे पकाया और कुएँ पर जाते समय खाने के लिए अपने साथ ले गईं।

उस दिन बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए उसी रास्ते पर आए और उन्होंने पुण्णा को हाथ में घड़ा लिए देखा। उन्होंने बुद्ध को अपनी चावल की रोटी भेंट की, जिसे बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पुण्णा सोच रही थीं कि कहीं बुद्ध इसे फेंककर किसी महल या करोड़पति के घर में भोजन न कर लें। लेकिन बुद्ध वहीं सड़क किनारे पूज्य आनंद द्वारा बिछाई गई चटाई पर बैठ गए और नाश्ते में चावल की रोटी खाई।

बुद्ध ने उन्हें समझाया कि भिक्षु रात में अपने धार्मिक कर्तव्यों के लिए जागते रहते हैं, और उन्होंने उन्हें उपदेश दिया। उपदेश के अंत में, पुन्ण ने सोतापत्ति के फल को अनुभव किया।

बुद्ध के मार्गदर्शन से अर्हत बनने वाली एक अन्य सेविका रज्जुमाला थीं, जो गया गाँव के एक घर में काम करती थीं, जहाँ उनकी मालकिन उन्हें लगातार प्रताड़ित और अपमानित करती थीं। मालकिन उनके बाल खींचती और पीटती थीं। इस मार से बचने के लिए उन्होंने अपने बाल मुंडवा लिए, लेकिन मालकिन ने उनके सिर में रस्सी बाँधकर उन्हें घसीटा। उनके सिर में रस्सी बंधे रहने के कारण उन्हें रज्जुमाला (जिसके सिर पर रस्सी की माला हो) कहा जाने लगा।

अपनी मालकिन के अधीन जीवन से तंग आकर, राज्जुमाला पानी लाने के बहाने घर से निकली, लेकिन जंगल में जाकर उसने फांसी लगाने की कोशिश की। तभी बुद्ध, जिन्होंने उसमें सोतापत्ति के फल को प्राप्त करने की क्षमता देखी, वहाँ पहुँचे और उसे उपदेश दिया। उसने सोतापत्ति के फल को प्राप्त किया और घर लौटकर बुद्ध से अपनी मुलाकात की कहानी सुनाई।

मालकिन अपने ससुर के साथ बुद्ध से मिलने आई और उन्हें अपने घर ले जाकर दान दिया। बुद्ध ने उन्हें उपदेश दिया और बताया कि कैसे राज्जुमाला ने पिछले जन्म में अपनी वर्तमान मालकिन के साथ दुर्व्यवहार किया था। राज्जुमाला को मुक्त कर दिया गया और मालकिन के ससुर ने उसे गोद ले लिया। उसकी मृत्यु के बाद, उसका जन्म तावतिंसा स्वर्ग में हुआ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 403

---

(धम्मपद402) <<<< पिछला || धम्मपद403 || अगला >>>> (धम्मपद404)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 403 - खेमभिक्खुनि वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

गम्भीरपन्नम मेधाविम
maggamaggassa kovidam(1)
उत्तमत्था मनुप्पट्टम
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 403 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बुद्धिमान और गहन ज्ञान वाला हो, जो सही मार्ग और गलत मार्ग को जानता हो, और जिसने सर्वोच्च लक्ष्य (अर्थात अर्हतत्व) प्राप्त कर लिया हो।

———————————————————————

1. maggamaggassa kovidam: सही मार्ग और गलत मार्ग में भेद करने में कुशल, अर्थात्, निर्वाण की प्राप्ति की ओर ले जाने वाले और न ले जाने वाले मार्ग का ज्ञान।

———————————————————————

थेरी खेमा की कहानी(2)
गिज्झकुटा पहाड़ी पर निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरी खेमा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (403) कहा।
एक रात, देवताओं के राजा सक्का अपने अनुयायियों के साथ बुद्ध को प्रणाम करने आए। जब वे बुद्ध के साथ थे, तब थेरी खेमा ने अपनी अलौकिक शक्ति से आकाश से उतरकर बुद्ध को प्रणाम किया। लेकिन चूंकि सक्का और उनके साथी बुद्ध के साथ थे, इसलिए उन्होंने केवल बुद्ध को प्रणाम किया और शीघ्र ही चली गईं। सक्का ने बुद्ध से पूछा कि वह भिक्षुणी कौन हैं, तो बुद्ध ने उत्तर दिया, "वह मेरी विशिष्ट शिष्याओं में से एक हैं; उन्हें थेरी खेमा के नाम से जाना जाता है। वह भिक्षुणियों में अद्वितीय हैं और सही-गलत का भेद जानती हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 403 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बुद्धिमान और गहन ज्ञान वाला हो, जो सही मार्ग और गलत मार्ग को जानता हो, और जिसने सर्वोच्च लक्ष्य (अर्थात अर्हतत्व) प्राप्त कर लिया हो।

———————————————————————

(2) श्लोक 347 भी देखें: थेरी खेमा की कहानी

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
बुद्धिमान खेमा
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास करते समय भिक्षुणी खेमा को दिया था।
एक दिन, पहले पहर के तुरंत बाद, देवताओं के राजा सक्का अपने देवमंडल के साथ आए, बैठ गए और बुद्ध के धर्मोपदेश को उनके हमेशा की तरह मधुर और आनंददायक ढंग से सुनने लगे। उसी क्षण भिक्षुणी खेमा ने मन ही मन कहा, “मैं बुद्ध से मिलने जाऊंगी,” और बुद्ध के पास पहुंची। लेकिन जब उन्होंने सक्का को देखा, तो हवा में स्थिर रहते हुए उन्होंने बुद्ध को प्रणाम किया, मुड़ गईं और चली गईं। सक्का ने उन्हें देखकर बुद्ध से पूछा, “हे पूज्यवर, वह कौन थीं जो आपके पास आईं और फिर हवा में स्थिर रहते हुए आपको प्रणाम करके मुड़ गईं और चली गईं?” बुद्ध ने उत्तर दिया, “हे महाराज, वह मेरी पुत्री खेमा थीं, जो महान ज्ञान से परिपूर्ण हैं और मार्ग और अपराध का भली-भांति ज्ञान रखती हैं।”
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 403)
गंभीरापन्नं मेधाविं मग्गमग्गं कोविदं
उत्तममथं अनुप्पट्टं तं अहम् ब्राह्मणं ब्रूमि
गंभीरपञ्ञं [ गम्भीरपञ्ञ ]: गहन ज्ञान वाला; मेधाविं [ मेधावी ]: अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण; मग्गामग्गं [ मग्गामग्ग ]: सही और गलत रास्तों में अंतर करने वाला; कोविदं [ कोविद ]: सक्षम; उत्तमत्तं [ उत्तमत्त ]: उच्चतम अवस्था; अनुप्पत्तं (जो) पहुँच गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण; ब्रूमि : घोषित करना
वह गहन ज्ञान से परिपूर्ण है। वह अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण है। वह सही मार्ग और गलत मार्ग में अंतर करने में सक्षम है। उसने सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 403)

खेमा की कहानी : खेमा का जन्म सागल में एक राजपरिवार में हुआ था। उनका नाम खेमा ही था। उनका रंग स्वर्णिम था। वे अत्यंत सुंदर थीं। उनका विवाह कोसल के राजा बिम्बिसार से हुआ। हालांकि, वे बुद्ध से मिलने जाने से हिचकिचाती थीं, क्योंकि उन्हें डर था कि भगवान बुद्ध क्षणभंगुर सौंदर्य पर उपदेश देंगे।

जब भी वह मंदिर जाती, बुद्ध से बचती रहती। एक दिन राजा ने अपने आदमियों को उसे जबरदस्ती बुद्ध के पास ले जाने का आदेश दिया। उसके आने पर, बुद्ध ने अपने सेवक के रूप में एक अत्यंत सुंदर प्रेत का सृजन किया। खेमा उसकी सुंदरता से मोहित हो गई। जब वह उसे देख रही थी, तब उसे लगा कि सुंदरता केवल धोखा दे सकती है। बुद्ध ने उस आकृति को युवावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था और उसके बाद परम वृद्धावस्था तक ले गए, जहाँ उसका कोई भी गुण नहीं था। इस प्रकार सुंदरता कुरूपता में परिवर्तित हो गई। यह एक सजीव चित्रण था। खेमा अर्थ समझ गई और उसे आभास हो गया कि उसके साथ क्या होने वाला है। अनित्यता , दुःख और अनात्म : दूसरे शब्दों में, क्षणभंगुरता और दुःख — बिना किसी स्थायी आत्मा के।

इस प्रकार तैयार मन को बुद्ध ने उपदेश दिया। बीज अच्छे बीज के रूप में गिरे। वह संतत्व की धारा में प्रवेश कर गईं ( सोतापन्न )। बुद्ध ने मकड़ी और जाले की कहानी सुनाकर अपने उपदेश को समझाया। जैसे ही कोई मक्खी जाले से टकराती है, मकड़ी उस गति से उसे संकेत समझकर उस पर हमला करती है और उसे खा जाती है। यह सिलसिला चलता रहता है। मकड़ी जाले से बंध जाती है। इसी प्रकार मनुष्य भी वासना और कामवासना से बंध जाते हैं। उनके मन ने सब कुछ देख लिया। वह अरहत बन गईं। उन्होंने राजा से दीक्षा के लिए अनुमति मांगी। राजा, जो स्वयं एक उभरते हुए संत थे, ने तुरंत सहमति दे दी। एक दिन देवता मारा ने एक युवक का रूप धारण करके खेमा को प्रलोभित किया। उस युवक को करारा झटका लगा। उसकी पराजय पूर्ण हुई। वह भाग गया। एक रात खेमा ने बुद्ध से मिलने का विचार किया। लेकिन बुद्ध देवताओं के राजा सक्का के साथ थे। बुद्ध को विचलित करने के बजाय, खेमा हवा में चक्कर लगाकर गायब हो गईं।

सक्का ने जब यह दर्शन देखा, तो बुद्ध ने उन्हें शीघ्र ही इस विषय पर ज्ञान प्रदान किया। बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि महिला शिष्यों में खेमा ज्ञान में सर्वोपरि थीं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 404

---

(धम्मपद403) <<<< पिछला || धम्मपद404 || अगला >>>> (धम्मपद405)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 404 - पब्बरावसिटिससत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Asamsattham gahatthehi
अनागरेही कुभयम
anokasari mappiccham
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 404 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो गृहस्थ या बेघर या दोनों के साथ संगति नहीं करता, जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है और जिसकी कम इच्छाएँ हैं।

---

थेरा टिस्सा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा तिस्सा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (404) कहा।

थेरा तिस्सा ने बुद्ध से ध्यान का विषय ग्रहण करने के बाद एक पर्वत की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्हें एक गुफा मिली जो उनके लिए उपयुक्त थी और उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने उसी गुफा में बिताने का निश्चय किया। वे गुफा में ही रहने लगे और प्रतिदिन सुबह

भिक्षा मांगने गाँव जाते थे। गाँव में एक वृद्ध महिला रहती थीं जो उन्हें नियमित रूप से भिक्षा देती थीं। गुफा में गुफा का संरक्षक देवता भी निवास करता था। थेरा तिस्सा का नैतिक आचरण शुद्ध था, इसलिए गुफा के देवता को थेरा के साथ एक ही गुफा में रहने की हिम्मत नहीं हुई; साथ ही, उनमें थेरा को गुफा छोड़ने के लिए कहने का साहस भी नहीं था। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई जिससे वे थेरा में कोई दोष निकाल सकें और उन्हें गुफा छोड़ने के लिए विवश कर सकें।

गुफा की आत्मा ने उस बुजुर्ग महिला के बेटे को अपने वश में कर लिया, जिसके घर में थेरा अक्सर भिक्षा मांगने जाते थे। आत्मा ने लड़के के व्यवहार को बहुत विचित्र बना दिया, वह अपना सिर पीछे की ओर घुमाने लगा और अपनी आँखें चौड़ी करके घुमाने लगा। उसकी माँ घबरा गई और रोने लगी। गुफा की आत्मा ने, जिसने लड़के को अपने वश में कर लिया था, कहा, "अपने गुरु, थेरा से कहो कि वे अपने पैर पानी से धोएँ और वह पानी अपने बेटे के सिर पर डालें।" अगले दिन जब थेरा भिक्षा मांगने उसके घर आए, तो उसने गुफा की आत्मा की सलाह मानी और लड़का शांत हो गया। गुफा की आत्मा गुफा में वापस चली गई और थेरा के लौटने का इंतजार करने लगी। जब थेरा भिक्षा मांगने के बाद लौटे, तो आत्मा ने अपना असली रूप प्रकट किया और कहा, "मैं इस गुफा की रक्षा करने वाली आत्मा हूँ। हे वैद्य, इस गुफा में प्रवेश मत करो।" थेरा जानते थे कि उन्होंने थेरा बनने के दिन से ही पवित्र जीवन व्यतीत किया है, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें चिकित्सा करने की कोई याद नहीं है। तब गुफा की आत्मा ने उस पर आरोप लगाया कि उसी सुबह उसने एक वृद्ध महिला के घर में एक राक्षस से ग्रसित लड़के का इलाज किया था। लेकिन थेरा ने सोचा कि यह वास्तव में चिकित्सा करना नहीं था और उसे एहसास हुआ कि गुफा की आत्मा को भी उसमें कोई और दोष नहीं मिला। इससे उसे परमानंद (पीति) प्राप्त हुई और उसने पीति को त्यागकर और अंतर्दृष्टि ध्यान पर गहन एकाग्रता से गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़े-खड़े ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

थेरा अब अरहत बन चुके थे, इसलिए उन्होंने गुफा के प्रेत को गुफा छोड़ने की सलाह दी। थेरा वर्षा ऋतु के अंत तक वहीं रहे और फिर बुद्ध के पास लौट आए। जब उन्होंने अन्य भिक्षुओं को गुफा के प्रेत से हुई अपनी मुलाकात के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या गुफा में प्रवेश करने से मना किए जाने पर उन्हें प्रेत पर गुस्सा नहीं आया था? थेरा ने नकारात्मक उत्तर दिया, लेकिन उन्होंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। इसलिए वे बुद्ध के पास गए और कहा, "थेरा तिस्सा स्वयं को अरहत कहते हैं; वे सच नहीं बोल रहे हैं।"

बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र तिस्सा ने जब कहा कि उन्हें गुस्सा नहीं आया, तो वे सच बोल रहे थे। वे वास्तव में अरहत बन चुके हैं; वे अब किसी से आसक्त नहीं हैं; उन्हें किसी पर क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है और न ही दूसरों के साथ संगति करने की कोई आवश्यकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 404 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो गृहस्थ या बेघर या दोनों के साथ संगति नहीं करता, जो कामुक इच्छाओं से मुक्त है और जिसकी कम इच्छाएँ हैं।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु और देवी की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय, पर्वतीय गुफा में रहने वाले पूज्य तिस्सा (पम्भारवासी तिस्सा थेरा) के संदर्भ में कहा था। भिक्षु तिस्सा ध्यान करने के बाद एक पर्वत पर चले गए। वहाँ उन्हें एक गुफा मिली जो उन्हें भा गई और उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने उसी गुफा में बिताए। वे प्रतिदिन सुबह भिक्षा मांगने गाँव जाते थे। गाँव में एक वृद्ध महिला रहती थी जो उन्हें नियमित रूप से भिक्षा देती थी। गुफा में एक संरक्षक आत्मा भी निवास करती थी। चूंकि तिस्सा का नैतिक आचरण शुद्ध था, इसलिए एक उच्च भिक्षु होने के कारण उस महिला को उसी गुफा में रहना कठिन लगता था। साथ ही, उनमें तिस्सा को गुफा छोड़ने के लिए कहने का साहस भी नहीं था। इसलिए उन्होंने एक योजना बनाई जिससे वे भिक्षु में कोई दोष निकाल सकें और उन्हें गुफा छोड़ने के लिए विवश कर सकें।

उस आत्मा ने उस स्त्री के सबसे छोटे बेटे को अपने वश में करने का निश्चय किया, जिसके घर तिस्सा अक्सर भिक्षा लेने जाता था। आत्मा ने लड़के के व्यवहार में अजीबोगरीब बदलाव ला दिए, जैसे उसका सिर पीछे की ओर मुड़ जाना और उसकी आँखें चौड़ी खुल जाना। जब स्त्री ने यह सब देखा, तो वह चीख पड़ी और आत्मा ने कहा, "मैंने तुम्हारे बेटे को अपने वश में कर लिया है। अपने भिक्षु से कहो कि वह उसके पैर पानी से धोए और उस पानी को तुम्हारे बेटे के सिर पर छिड़क दे। तभी मैं तुम्हारे बेटे को मुक्त करूँगी।" अगले दिन, जब भिक्षु भिक्षा लेने उसके घर आया, तो उसने आत्मा की बात मान ली और लड़का शांति से रह गया। आत्मा गुफा में वापस चली गई और भिक्षु का इंतज़ार करने लगी। जब तिस्सा लौटा, तो उसने अपना असली रूप प्रकट किया और कहा, "मैं इस गुफा की रखवाली करने वाली आत्मा हूँ, हे तांत्रिक, इस गुफा में प्रवेश मत करो।" भिक्षु जानता था कि उसने भिक्षु बनने के दिन से ही सदाचारी जीवन व्यतीत किया है, इसलिए उसने उत्तर दिया कि उसने भूत-प्रेत या जादू-टोना न करने के नियम का उल्लंघन नहीं किया है। फिर उसने तिस्सा पर आरोप लगाया कि उसने वृद्ध महिला के घर में भूत-प्रेत से ग्रसित लड़के का इलाज किया था। लेकिन भिक्षु ने सोचा कि

उसने भूत-प्रेत भगाने का अभ्यास नहीं किया था और उसे एहसास हुआ कि भूत भी उसमें कोई दोष नहीं निकाल सकता। इससे उसे असीम संतोष और खुशी मिली; गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़े-खड़े ही उसने अरहतत्व प्राप्त कर लिया।

तिस्सा अब अरहत बन चुके थे, इसलिए उन्होंने उस आत्मा से कहा कि उसने उन जैसे शुद्ध और निर्मल भिक्षु पर गलत आरोप लगाया है, और उसे आगे कोई उपद्रव न करने की सलाह भी दी। तिस्सा वर्षाकाल के अंत तक गुफा में ही रहे , और फिर जेतवन मठ लौट आए। जब उन्होंने अन्य भिक्षुओं को उस आत्मा से हुई अपनी मुलाकात के बारे में बताया, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या गुफा में प्रवेश करने से मना किए जाने पर वे उस आत्मा से क्रोधित हुए थे। उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा, "आदरणीय तिस्सा कहते हैं कि अब उन्हें क्रोध नहीं है। क्या यह सच है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, तिस्सा सत्य कह रहे हैं। वे वास्तव में अरहत बन चुके हैं; वे अब किसी से आसक्त नहीं हैं; उन्हें किसी से क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 404)

गहथेहि अनागारेहि च उभयं असंसठहं
अणोकसारिं अप्पिच्चं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

gahaṭṭhehi : आम लोगों के साथ; anāgārehi : संसार का त्याग करने वालों के साथ; ca ūbhayaṃ [ ūbhaya ]: इन दोनों समूहों के लोगों के साथ; asaṃsaṭṭhaṃ [ asaṃsaṭṭha ]: कोई संपर्क स्थापित न करना; ānokasāriṃ [ ānokasāri ]: लालसा के मार्गों में न लिप्त; appicchaṃ [ appiccha ]: थोड़े में संतुष्ट; taṃ : उसे; ahaṃ : मैं; brāhmanaṃ brūmi : ब्राह्मण कहो।

वह न तो आम लोगों से और न ही बेघरों से व्यापक संपर्क रखता है। वह गृहस्थ जीवन शैली से आसक्त नहीं है। वह न्यूनतम आवश्यकताओं से ही संतुष्ट रहता है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 404)

बौद्ध साहित्य में बौद्ध भिक्षुओं और वन एवं वनभूमि की आत्माओं के बीच मुठभेड़ों के अनेक संदर्भ मिलते हैं। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान के मार्ग पर चलने वाले भिक्षु वनों और पर्वतों की खोज करते थे। इनमें से कुछ मुठभेड़ों में आत्माओं का व्यवहार काफी शत्रुतापूर्ण बताया गया है। करणीय मेट्टा सूत्र नामक प्रवचन में प्रेम-करुणा के मंत्र का वर्णन है, जिसे बुद्ध ने मनुष्य और आत्माओं के बीच सामंजस्य और सद्भाव स्थापित करने के साधन के रूप में रचा था।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 405

---

(धम्मपद404) <<<< पिछला || धम्मपद405 || अगला >>>> (धम्मपद406)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 405 - अन्नतारभिक्खु वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Nidhaya dandati bhutesu(1)
tasesu thavaresu(2) ca
yo na hanti na ghateti
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 405 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सभी प्राणियों के प्रति बल का प्रयोग त्याग दिया है, चाहे वे विचलित हों या अविचलित (अर्थात अरहत), और जो न तो हत्या करता है और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करता है।

---

1. निधया दंडति भूतेषु: ने सभी प्राणियों के प्रति लाठी का प्रयोग त्याग दिया है।

2. तसेसु थवारेसु: विचलित और अविचलित। विचलित वे हैं जिनमें अभी भी लालसा है और इसलिए वे आसानी से विचलित हो जाते हैं। अविचलित वे हैं जिन्होंने लालसा का त्याग कर दिया है और इसलिए वे दृढ़ और शांत हैं; वे अरहत हैं।

---

एक भिक्षु की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (405) का उच्चारण एक भिक्षु के संदर्भ में किया।

एक बार, एक भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय लेकर ध्यान करने के लिए एक वन में चले गए। अर्हतत्व प्राप्त करने के बाद वे बुद्ध के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वापस लौटे। रास्ते में वे एक गाँव से गुज़रे। गाँव से गुज़रते समय, एक स्त्री अपने पति से झगड़ा करके घर से निकली और भिक्षु के पीछे-पीछे चलने लगी। पत्नी के पीछे आ रहे पति ने भिक्षु को देखकर सोचा कि भिक्षु उसकी पत्नी को अपने साथ ले जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने भिक्षु पर चिल्लाया और उन्हें पीटने की धमकी दी। पत्नी ने उनसे भिक्षु को न पीटने की विनती की, लेकिन इससे वे और क्रोधित हो गए। परिणामस्वरूप, पति ने भिक्षु को बुरी तरह पीटा। भिक्षु को जी भर कर पीटने के बाद, वह अपनी पत्नी को अपने साथ ले गया और भिक्षु अपने रास्ते पर आगे बढ़ गए।

जेतवन मठ पहुँचने पर, अन्य भिक्षुओं ने भिक्षु के पूरे शरीर पर चोट के निशान देखे और उनकी मालिश की। जब उन्होंने उससे पूछा कि क्या उसे उस व्यक्ति पर गुस्सा नहीं आया जिसने उसे इतनी बुरी तरह पीटा था, तो उसने नकारात्मक उत्तर दिया। तब अन्य भिक्षु बुद्ध के पास गए और बताया कि भिक्षु ने अरहत पद प्राप्त करने का झूठा दावा किया है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अरहतों ने लाठी और तलवार त्याग दी है। वे पीटे जाने पर भी क्रोधित नहीं होते।" इस प्रकार, बुद्ध ने पुष्टि की कि भिक्षु वास्तव में अरहत बन गया था।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 405 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सभी प्राणियों के प्रति बल का प्रयोग त्याग दिया है, चाहे वे विचलित हों या अविचलित (अर्थात अरहत), और जो न तो हत्या करता है और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

भिक्षु और स्त्री की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय एक विशेष भिक्षु के संदर्भ में कहा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस भिक्षु ने बुद्ध से ध्यान का विषय प्राप्त करने के बाद वन में जाकर लगन से ध्यान का अभ्यास किया और अर्हतत्व प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने मन ही मन कहा, “मैं बुद्ध को इस महान आशीर्वाद के बारे में सूचित करूंगा,” और वन से निकल पड़े। जिस गाँव से वे गुजर रहे थे, वहाँ की एक महिला का अपने पति से झगड़ा हुआ था। पति के घर से निकलते ही उसने मन ही मन कहा, “मैं अपने परिवार के घर लौट जाऊंगी।” ऐसा कहकर वह रास्ते पर चल पड़ी। रास्ते में चलते हुए उसने उस पूज्य भिक्षु को देखा। उसने मन ही मन सोचा, “मैं इस पूज्य भिक्षु से ज्यादा दूर नहीं रहूंगी,” और उनके पीछे-पीछे चलने लगी। पूज्य भिक्षु ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

जब उसका पति घर लौटा और अपनी पत्नी को घर में कहीं नहीं देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “वह अपने परिवार के गाँव गई होगी,” और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। जब उसने उसे देखा, तो मन ही मन सोचने लगा, “यह स्त्री अकेले इस जंगल में कैसे जा सकती है; किसके साथ जा रही है?” तभी उसने पूज्य भिक्षु को देखा। उसने सोचा, “यह भिक्षु उसे अपने साथ ले गया होगा,” और भिक्षु के पास जाकर उसे धमकाया। स्त्री ने कहा, “इस भले भिक्षु ने मेरी ओर देखा तक नहीं और न ही मुझसे बात की; आप उससे कुछ मत कहिए।” उसके पति ने उत्तर दिया, “क्या तुम मुझे यह बताना चाहती हो कि तुम इस तरह चली गई? मैं उसके साथ वैसा ही व्यवहार करूँगा जैसा तुम्हारे साथ होना चाहिए।” और क्रोधित होकर, स्त्री के प्रति घृणा से, उसने पूज्य भिक्षु को बुरी तरह पीटा, और ऐसा करने के बाद, स्त्री को अपने साथ लेकर घर लौट गया।

पूज्य भिक्षु का पूरा शरीर घावों से भरा हुआ था। मठ लौटने पर, उनके शरीर की मालिश करने वाले भिक्षुओं ने उन घावों को देखा और उनसे पूछा, "इसका क्या अर्थ है?" उन्होंने उन्हें पूरी कहानी बताई। तब भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "भाई, जब इस भिक्षु ने आपको इस प्रकार मारा, तो आपने क्या कहा? क्या आपको गुस्सा आया?" उन्होंने कहा, "नहीं, भाइयों, मुझे गुस्सा नहीं आया।" तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें यह बात बताई, "पूज्य भिक्षु, जब हमने इस भिक्षु से पूछा, 'क्या आपको गुस्सा आया?' तो उसने उत्तर दिया, 'नहीं, भाइयों, मुझे गुस्सा नहीं आया।' वह सच नहीं बोलता, वह झूठ बोलता है।" बुद्ध ने उनकी बात सुनी और फिर उत्तर दिया, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, उन्होंने दंड त्याग दिया है; यहां तक कि जो उन्हें मारते हैं, उनके प्रति भी वे क्रोध नहीं रखते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 405)

यो तसेसु थावरेसु च भूतेसु दण्डं निधाय
न हन्ति न घटेति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यो : यदि कोई; तसेसु : जो भयभीत हो जाते हैं; थावरेसु : जो हठी और निडर होते हैं; च : या; भूतेसु : प्राणी; दण्डं [ दण्ड ]: दंड; निधाय : अलग रखकर; न हन्ती : चोट नहीं पहुँचाता; न घाटेति : या किसी और को चोट पहुँचाने या मारने के लिए प्रेरित नहीं करता; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं [ ब्राह्मण ]: एक सच्चा ब्राह्मण; ब्रूमि : मैं पुकारता हूँ
उन्होंने दंड-छड़ी त्याग दी है और शस्त्र त्याग दिए हैं। वे न तो भयभीत और डरपोक प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं, न ही हठी और निर्भीक प्राणियों को। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 405)
तासेसु : वे लोग जो भय से कांपते हैं और वे लोग जो लालसा के कारण उत्पन्न भय से व्याकुल हैं।
थावरेसु : जो दृढ़, स्थिर और अविचलित हैं, क्योंकि उन्होंने लालसा का त्याग कर दिया है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 406

———————————————————————

(धम्मपद405) <<<< पिछला ‖ धम्मपद406 ‖ अगला >>>> (धम्मपद407)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 406 - समानेरणं वत्थु

———————————————————————

41:20

डॉ म्या टिन संस्करण
अविरुद्धम विरुद्धेसु
अट्टदंडेसु निब्बुतम
सदानेसु आनंदनम्
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 406 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो शत्रुओं से शत्रुता नहीं रखता, जो शस्त्रधारियों के प्रति शांतिपूर्ण (अर्थात बल का प्रयोग त्याग दिया है) है, और जो आसक्ति की वस्तुओं से आसक्त है।

———————————————————————

चार समनेराओं की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (406) का उच्चारण किया, जिसमें चार समनेरों का उल्लेख था जो अरहत थे।
एक बार एक ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति को जेतवन मठ में भेजा ताकि वे चार भिक्षुओं को अपने घर पर भिक्षा भोज के लिए आमंत्रित करें। उन्होंने उनसे विशेष रूप से ऐसे वरिष्ठ भिक्षुओं को आमंत्रित करने का अनुरोध किया जो सच्चे ब्राह्मण भी हों। लेकिन उनके साथ सात वर्ष के चार अर्हत समनेर, अर्थात् समकिच्चा, पंडित, शोपाका और रेवता को भेज दिया गया। जब उनकी पत्नी ने उन युवा समनेरों को देखा तो वे बहुत असंतुष्ट हुईं और ब्राह्मण को अपने पोते से भी छोटे समनेरों को लाने के लिए दोषी ठहराया। वास्तव में, वे अपने पति से बहुत क्रोधित थीं और इसलिए उन्होंने उन्हें बड़े भिक्षुओं को लाने के लिए वापस मठ भेज दिया। इस बीच उन्होंने युवा

समनेरों को भिक्षुओं के लिए आरक्षित उच्च स्थान देने से इनकार कर दिया; उन्हें निचले स्थान दिए गए और उन्होंने उन्हें भिक्षा भोज नहीं दिया।

जब ब्राह्मण मठ पहुंचे, तो उनकी मुलाकात पूज्य सारिपुत्त से हुई और उन्होंने उन्हें अपने घर आमंत्रित किया। पूज्य सारिपुत्त जब ब्राह्मण के घर पहुंचे, तो उन्होंने चार युवा अर्हत समनेरों को देखा और उनसे पूछा कि क्या उन्हें भिक्षा दी गई है। यह जानकर कि अर्हत समनेरों को अभी तक भिक्षा नहीं दी गई है और भोजन केवल चार व्यक्तियों के लिए ही तैयार किया गया है, पूज्य सारिपुत्त ब्राह्मण के घर से भिक्षा ग्रहण किए बिना ही मठ लौट गए। इसलिए उनकी पत्नी ने ब्राह्मण को एक और वरिष्ठ भिक्षु को लाने के लिए वापस मठ भेजा। इस बार पूज्य महा मोग्गलाना ब्राह्मण के साथ आए, लेकिन जब उन्हें पता चला कि युवा समनेरों को भिक्षा नहीं दी गई है और भोजन केवल चार व्यक्तियों के लिए ही तैयार किया गया है, तो वे भी भिक्षा ग्रहण किए बिना ही मठ लौट गए।

इस समय तक समनेरों को भूख लगने लगी थी। देवताओं के राजा सक्का ने स्थिति देखकर एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनके घर आए। ब्राह्मण और उनकी पत्नी ने वृद्ध ब्राह्मण का आदर किया और उन्हें सम्मानपूर्वक बैठने के लिए आसन दिया, लेकिन सक्का जमीन पर ही बैठ गए और चारों समनेरों का आदर किया। फिर उन्होंने अपने असली स्वरूप का खुलासा किया। यह देखकर कि सक्का स्वयं युवा समनेरों का आदर कर रहे हैं, ब्राह्मण दंपति ने सभी पांचों को भिक्षा दी। भोजन के बाद, सक्का और समनेरों ने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन करते हुए छत के रास्ते आकाश में उड़ान भरी। सक्का अपने स्वर्गलोक लौट गए और समनेर मठ में वापस चले गए।

जब अन्य भिक्षुओं ने समनेरों से पूछा कि क्या ब्राह्मण दंपति द्वारा भिक्षा देने से इनकार करने पर उन्हें क्रोध नहीं आया, तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। भिक्षुओं ने उनकी बात पर विश्वास न करते हुए बुद्ध को बताया कि चारों युवा समनेर झूठे दावे कर रहे हैं कि वे अरहत हैं। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, अरहत अपने शत्रुओं के प्रति द्वेष नहीं रखते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 406 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो शत्रुओं से शत्रुता नहीं रखता, जो शस्त्रधारियों के प्रति शांतिपूर्ण (अर्थात बल का प्रयोग त्याग दिया है) है, और जो आसक्ति की वस्तुओं से आसक्त है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चार नौसिखियों की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय चार नौसिखियों के संदर्भ में कहा था।

कहा जाता है कि एक ब्राह्मण की पत्नी ने चार विशेष भिक्षुओं के लिए भोजन तैयार किया और अपने पति से कहा, "मठ जाइए, चार वृद्ध ब्राह्मणों को चुनकर यहाँ ले आइए।" ब्राह्मण मठ गया और सात वर्ष के चार भिक्षुओं को ले आया, जिन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया था: संकिच्च, पंडित, शोपाक और रेवत। ब्राह्मण की पत्नी ने महंगे आसन तैयार करवाए और प्रतीक्षा करने लगी। भिक्षुओं को देखते ही वह क्रोधित हो उठी और जैसे किसी अंगीठी पर नमक गिर जाए वैसे ही बड़बड़ाते हुए अपने पति से बोली, "तुम मठ गए और अपने साथ चार ऐसे बच्चों को ले आए हो जो तुम्हारे पोते भी नहीं हैं।" उसने उन्हें अपने द्वारा तैयार किए गए आसनों पर बैठने नहीं दिया, बल्कि उनके लिए कुछ नीची कुर्सियाँ बिछाकर बोली, "यहाँ बैठिए!" तब उसने अपने पति से कहा, "ब्राह्मण, जाओ कुछ वृद्ध ब्राह्मणों को ढूँढ़ो और उन्हें यहाँ ले आओ।" ब्राह्मण मठ गया और पूज्य सारिपुत्त को देखकर उन्हें अपने साथ घर ले आया। जब पूज्य घर पहुँचे और नौसिखियों को देखा, तो उन्होंने पूछा, "क्या इन ब्राह्मणों ने भोजन किया है?" "नहीं, उन्होंने भोजन नहीं किया है।" यह जानकर कि भोजन केवल चार लोगों के लिए तैयार किया गया था, उन्होंने कहा, "मेरा कटोरा लाओ," और अपना कटोरा लेकर चले गए। ब्राह्मण की पत्नी ने कहा, "शायद उन्हें भोजन करने की इच्छा नहीं थी; जल्दी जाओ, किसी दूसरे ब्राह्मण को ढूँढ़ो और उसे यहाँ ले आओ।" ब्राह्मण मठ वापस गया और पूज्य महा मोग्गलाना को अपने साथ घर ले आया।

जब पूज्य मोग्गलाना महान ने नौसिखियों को देखा, तो उन्होंने भी वही बात कही जो पूज्य सारिपुत्त ने कही थी, और अपना कुंड लेकर चले गए। तब ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति से कहा, "ये पूज्य भोजन नहीं करना चाहते; ब्राह्मण के आश्रम में जाओ और अपने साथ एक वृद्ध ब्राह्मण को ले आओ।" सक्का ने वृद्धावस्था से कमजोर एक ब्राह्मण का वेश धारण करके ब्राह्मण के आश्रम में जाकर ब्राह्मणों के सबसे प्रमुख आसन पर बैठ गए। जब ब्राह्मण ने उन्हें देखा, तो उन्होंने मन ही मन सोचा, "अब मेरी पत्नी प्रसन्न होगी," और यह कहते हुए, "चलो घर चलते हैं," वे उन्हें लेकर घर वापस चले गए। जब ब्राह्मण की पत्नी ने उन्हें देखा, तो उनका हृदय प्रसन्नता से भर गया। उसने दो सीटों पर बिछी हुई चटाई और कालीन उठाकर एक सीट पर बिछा दी और उससे कहा, "महाराज, यहाँ बैठिए।" जब सक्का घर में दाखिल हुआ, तो उसने पाँच आसनों से चारों नौसिखियों को प्रणाम किया और नौसिखियों के बैठने की जगह के किनारे पर अपने लिए जगह पाकर पालथी मारकर ज़मीन पर बैठ गया। ब्राह्मण की पत्नी ने उसे देखकर ब्राह्मण से कहा, "तुम एक ब्राह्मण को लाए हो, लेकिन

तुम अपने पिता की उम्र के एक बूढ़े व्यक्ति को वापस लाए हो। यह तो अपने पोतों की उम्र के नौसिखियों को प्रणाम कर रहा है। हमें इससे क्या लेना-देना? इसे बाहर निकाल दो!"

ब्राह्मण ने पहले उसे कंधे से, फिर बांह से, और अंत में कमर से पकड़ा और उसे घसीटकर बाहर निकालने की पूरी कोशिश की, लेकिन वह अपनी जगह से हिलने को तैयार नहीं था। तब ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पति से कहा, "आओ, ब्राह्मण, तुम एक बांह पकड़ो और मैं दूसरी पकड़ लेती हूँ।" तब ब्राह्मण और उसकी पत्नी दोनों ने उसकी दोनों बांहें पकड़ लीं, उसकी पीठ थपथपाई और उसे दरवाजे से घसीटकर घर से बाहर ले गए। फिर भी, सक्का उसी जगह बैठा रहा जहाँ वह पहले बैठा था, और अपने हाथों को आगे-पीछे हिलाता रहा। जब ब्राह्मण और उसकी पत्नी वापस लौटे और उसे उसी जगह बैठे देखा जहाँ वह पहले बैठा था, तो वे डर के मारे चीखने लगे और उसे छोड़ दिया।

उसी क्षण सक्का ने अपनी पहचान प्रकट की। तब ब्राह्मण और उनकी पत्नी ने अपने मेहमानों को भोजन कराया। जब उन पाँचों ने भोजन ग्रहण कर लिया, तो वे चले गए। एक नौसिखिए ने घर के गोलाकार शिखर को तोड़ दिया, दूसरे ने छत के सामने वाले हिस्से को तोड़ा, तीसरे ने छत के पीछे वाले हिस्से को तोड़ा, चौथा धरती में समा गया, जबकि सक्का दूसरे रास्ते से घर से निकल गया। इस प्रकार वे पाँचों व्यक्ति पाँच अलग-अलग रास्तों से घर से निकले। तब से, ऐसा कहा जाता है, उस घर को पाँच द्वारों वाला घर कहा जाने लगा।

जब नौसिखिए मठ लौटे, तो भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "यह कैसा था?" नौसिखियों ने उत्तर दिया, "कृपा करके हमसे न पूछें। लेकिन क्या आप उनके इस कृत्य से क्रोधित नहीं थे?" "नहीं, हम क्रोधित नहीं थे।" जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, जब ये भिक्षु कहते हैं, 'हम क्रोधित नहीं थे,' तो वे झूठ बोलते हैं, वे असत्य बोलते हैं।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, जिन्होंने अपने आप को बुरी भावनाओं से मुक्त कर लिया है, वे उनका विरोध नहीं करते जिनके द्वारा उनका विरोध किया जाता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 406)
विरुद्धेसु अविरुद्धं अत्तादंडेसु निब्बुतं
सदानेसु अनादानं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
शत्रुता रखने वालों में से; शत्रुता रहित ; शस्त्र धारण करने वालों में से; शांतिपूर्ण ; स्वार्थी लोगों में से ; निदान रहित ; उसे ; मैं ; ब्राह्मण को पुकारना

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 407

---

(धम्मपद406) <<<< पिछला ॥ धम्मपद407 ॥ अगला >>>> (धम्मपद408)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 407 - महापंथकत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa rago ca doso ca
mano makkho ca patito
sasaporiva aragga
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 407 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिससे वासना, द्वेष, अहंकार और निंदा एक सूई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाती है।

———————————————————————

थेरा महापंथक की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने चुलपंथक (1) के बड़े भाई थेरा महापंथक के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (407) कहा।

थेरा महापंथक पहले से ही अरहत थे जब उनके छोटे भाई चुलपंथक ने संघ में प्रवेश किया। चुलपंथक जन्म से ही मंदबुद्धि थे क्योंकि उन्होंने अपने पिछले जन्मों में से एक में एक बहुत ही मंदबुद्धि भिक्षु का उपहास किया था। चुलपंथक चार महीनों में एक श्लोक भी याद नहीं कर पाए थे। महापंथक अपने छोटे भाई से निराश थे और उन्होंने उनसे मठ छोड़ने के लिए कहा क्योंकि वे संघ के योग्य नहीं थे।

इसी संदर्भ में एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि महापंथक, जो कि अर्हत थे, ने अपने छोटे भाई चुलपंथक को मठ से क्यों निकाल दिया? उन्होंने यह भी पूछा, "क्या अर्हत अब भी क्रोधित होते हैं? क्या उनमें अब भी द्वेष जैसे नैतिक दोष होते हैं?" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! अर्हतों में वासना और द्वेष जैसे नैतिक दोष नहीं होते। मेरे पुत्र महापंथक ने अपने भाई के हित में ऐसा किया, न कि द्वेषवश।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————

श्लोक 407 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिससे वासना, द्वेष, अहंकार और निंदा एक सूई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाती है।

———————————————————————

(1) श्लोक 25 भी देखें: चुलपंथक की कहानी।

———————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महा पंथक की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन मठ में निवास करते समय पूज्य महा पंथक के संदर्भ में कहा था।

जब कुल्ला पंथक तीन महीने में एक श्लोक भी याद नहीं कर पाए, तो महा पंथक ने उन्हें मठ से निकाल दिया और दरवाजा बंद करते हुए उनसे कहा, "तुममें धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता नहीं है, और तुम गृहस्थ जीवन के सुखों से भी विमुख हो गए हो। तुम्हें यहाँ और क्यों रहना चाहिए? यहाँ से चले जाओ।" भिक्षुओं ने इस घटना पर चर्चा शुरू कर दी और कहा, "आदरणीय महा पंथक ने ये सब किया। निःसंदेह, जो लोग पापों से मुक्त हो चुके हैं, उनके भीतर भी कभी-कभी क्रोध उत्पन्न हो जाता है।" उसी क्षण बुद्ध उनके पास आए और उनसे पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" जब भिक्षुओं ने उन्हें अपनी चर्चा का विषय बताया, तो उन्होंने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, जो लोग पापों से मुक्त हो चुके हैं, उनमें वासना, घृणा और भ्रम जैसी अशुद्धियाँ नहीं होतीं। मेरे पुत्र ने जो किया, वह इसलिए किया क्योंकि उसने धर्म और धर्म की भावना को सर्वोपरि रखा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 407)

यस्सा रागो च दोसो च मनो मक्खो च अरग्गा

सासपोर ' इव पतितो तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्सा : किसी के द्वारा; रागो च : वासना; दोसो सीए : दुर्भावना; मनो [ मन ]: अभिमान; मक्खो सीए : (और) कृतघ्नता; अरग्गा : सुई की नोक से; सासापो इव : सरसों के बीज के समान; पतितो [ पतिता ]: फिसल गया; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें

उनका मन कामवासना, द्वेष, अहंकार और कृतघ्नता जैसी बुराइयों को स्वीकार ही नहीं करता। इस मामले में उनका मन उस सुई की नोक के समान है जो राई के दाने को भी नहीं पकड़ पाती। ऐसे मन वाले व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 407)

दो भिक्षु भाइयों की कहानी : महा पंथक (बड़ा मार्ग) और चुल्ला पंथक (छोटा मार्ग)। चुल्ला पंथक अपने बड़े भाई महा पंथक से जुड़े थे। दोनों का जन्म मार्ग पर हुआ था, इसलिए उन्हें पंथक कहा जाता था। चुल्ला पंथक अपनी मानसिक शक्ति से किसी भी संख्या में भौतिक आकृतियाँ बनाने की क्षमता और भौतिक जगत में रहस्यमय ध्यान साधना करने की क्षमता के कारण सभी महा अरहतों से विशिष्ट थे।

ये संतानें एक कोषाध्यक्ष की पुत्री की थीं, जिसने अपने पिता के घर के एक नौकर से गुप्त विवाह कर लिया था। इससे पहले बच्चे के जन्म की व्याख्या होती है, जब गर्भवती माँ अपने प्रेमी के साथ अपने माता-पिता से मिलने जा रही थी। बच्चे का जन्म रास्ते में ही हो गया,

इसलिए वे दोनों घर लौट आए। दूसरे बच्चे के मामले में भी यही हुआ। बड़े बेटे की इच्छा संघ में प्रवेश करने की थी। उसने छोटे भाई को भी अपने साथ चलने के लिए प्रेरित किया। लेकिन छोटा भाई पाठ करने में कोई रुचि नहीं रखता था। आदरणीय भाई, हालांकि एक महा अरहत थे, अपने छोटे भाई को शिक्षक की भूमिका निभाने के कारण लगभग विकट स्थिति में पहुँच गए। चुल्ला पंथका को चार पंक्तियों का एक श्लोक याद करने के लिए कहा गया, लेकिन वे चार महीने तक ऐसा करने में असमर्थ रहे, जिसके परिणामस्वरूप बड़े भाई को लगा कि वे संघ के लिए किसी काम के नहीं हैं। चुल्ला पंथका को संघ छोड़ने के लिए कहा गया।

अत्यंत निराश कुल्ला पंथक मंदिर के एक कोने में सिसक रहा था। उसका दुःख तब और बढ़ गया जब उसके बड़े भाई ने अगले दिन (स्वयं) बुद्ध की अध्यक्षता में कई भिक्षुओं को दान देने के लिए चिकित्सक जीवक द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में भाग लेने की तैयारी की।

बुद्ध ने उसकी सहायता की। उन्होंने उसे एक बेदाग सफेद लिनेन का टुकड़ा दिया और सूर्य की ओर मुख करके उसे सहलाने को कहा, "कोई भी वस्तु इतनी पवित्र नहीं है जो अपवित्र न हो जाए।" ये शब्द थे राजोहरणम्।

कुछ समय बाद, उनके हाथ की हथेली से निकले पसीने से कपड़ा अत्यंत गंदा हो गया। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत, परिवर्तन की सार्वभौमिकता ( अनिच्चा ), का उन्हें अहसास हुआ। इस प्रकार चुल्ला पंथक अरहत बन गए।

उसी समय, उनकी छिपी हुई शक्ति प्रकट हुई। उन्हें किसी भी संख्या में भौतिक आकृतियाँ बनाने की मानसिक शक्ति प्राप्त हुई, जिसका जल्द ही व्यावहारिक परीक्षण किया गया। भिक्षादान का कार्यक्रम संपन्न हुआ। जब भोजन अर्पित किया गया, तो बुद्ध ने तुरंत कटोरे पर अपना हाथ रख दिया। इसका कारण यह था कि चुल्ला पंथक, जो छूट गए थे, उन्हें भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। इसलिए एक सेवक को पास के मंदिर में उन्हें लाने के लिए भेजा गया। मंदिर में एक हजार से अधिक भिक्षुओं को एक समान देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। इसकी सूचना जीवक को दी गई, जिन्होंने उसे यह कहने के लिए कहा कि चुल्ला पंथक की प्रतीक्षा की जा रही है। दूसरी बार जाने पर आश्चर्य और भी बढ़ गया। जैसे ही चुल्ला पंथक का नाम लिया गया, सभी भिक्षु कहने लगे, "मैं चुल्ला पंथक हूँ।" इस बीच, तेजी से बिगड़ती स्थिति के कारण भिक्षादान रुक गया। इसलिए जीवक ने बुद्ध के निर्देशानुसार सेवक को फिर से जाने के लिए कहा और इस बार उसे अपने निकटतम पहले भिक्षु का वस्त्र पकड़कर यह कहने के लिए कहा कि बुद्ध चुल्ला पंथक को बुला रहे हैं। जब यह सब हो गया, तो मंदिर में उस भिक्षु के अलावा कोई नहीं था जिसका वस्त्र वह पकड़े हुए था। इसलिए छोटे भाई ने दान-पुण्य में अपना स्थान ग्रहण किया। भगवान बुद्ध ने उसी को एक संक्षिप्त उपदेश देकर पुण्य कर्मों की ओर प्रेरित किया, जिसे पाली भाषा में 'पुण्यानुमोदना' कहते हैं । इसके बाद भिक्षुओं के बीच बुद्ध के इस चमत्कार पर चर्चा हुई।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 408 ---
(धम्मपद407) <<<< पिछला || धम्मपद408 || अगला >>>> (धम्मपद409)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 408 - पिलिंडावचत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Akakksam vinnapanim
giram sacca' mudiraye
yaya nahhisaje kanci
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 408 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो सौम्य, शिक्षाप्रद और सत्य वचन बोलता है, और जो वाणी से किसी को ठेस नहीं पहुँचाता।

---

थेरा पिलिंडावच्छा की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (408) का उच्चारण थेरा वच्चा के संदर्भ में किया, जो अपने आक्रामक व्यवहार के कारण थेरा पिलिन्दवच्चा के नाम से भी जाने जाते थे।

थेरा पिलिन्दवचेहा लोगों को संबोधित करने का एक अत्यंत अपमानजनक तरीका अपनाते थे: वे अक्सर कहते थे, "इधर आओ, हे नीच", या "वहाँ जाओ, हे नीच" और इसी तरह की अन्य बातें। अन्य भिक्षुओं ने उनके बारे में बुद्ध को बताया। बुद्ध ने उन्हें बुलवाया और इस विषय पर उनसे बात की। तब, विचार करने पर बुद्ध ने पाया कि पिछले पाँच सौ जन्मों से थेरा केवल ब्राह्मण परिवारों में ही जन्म ले रहे थे, जो स्वयं को अन्य लोगों से श्रेष्ठ मानते थे। इसलिए बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं! थेरा वच्चा पाँच सौ जन्मों के ब्राह्मण जीवन में अर्जित आदत के कारण ही दूसरों को 'नीच' कहकर संबोधित करते हैं, द्वेष से नहीं। उनका दूसरों को हानि पहुँचाने का कोई इरादा नहीं है, क्योंकि एक अरहत दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 408 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो सौम्य, शिक्षाप्रद और सत्य वचन बोलता है, और जो वाणी से किसी को ठेस नहीं पहुँचाता।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय पिलिण्डवच्छ की कथा

यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय पूज्य पिलिण्डवच्छ के संदर्भ में पढ़ा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह वृद्ध भिक्षु आम लोगों और भिक्षुओं दोनों को ही उस विशेषण से संबोधित करने का आदी था जो आमतौर पर केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता था। "आओ, नीच! जाओ, नीच," वह हर किसी से कहता था जिससे वह मिलता था। एक दिन कई भिक्षुओं ने बुद्ध से उसके इस व्यवहार की शिकायत करते हुए कहा, "आदरणीय पिलिंढवच्छ भिक्षुओं को उस विशेषण से संबोधित करते हैं जो केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।" बुद्ध ने उसे अपने समक्ष बुलाया। बुद्ध ने कहा, "क्या यह आरोप सत्य है, वाच्छ, कि तुम भिक्षुओं को उस विशेषण से संबोधित करते हो जो केवल समाज से बहिष्कृत लोगों के लिए ही प्रयोग किया जाता है?" पिलिंढवच्छ ने उत्तर दिया, "जी हाँ, आदरणीय, यह आरोप सत्य है।"

बुद्ध ने उस वरिष्ठ भिक्षु के पूर्व निवासों को याद किया और कहा, "भिक्षुओं, पूज्य वच्छा से नाराज़ न हों। भिक्षुओं, पूज्य वच्छा अपने साथी भिक्षुओं को ऐसे अपशब्दों से संबोधित नहीं करते, जो केवल बहिष्कृतों के लिए ही उपयुक्त हैं। वास्तव में, पूज्य वच्छा ने पाँच सौ जन्मों को भोगा है और इन सभी जन्मों में उनका पुनर्जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। इस अपशब्द का प्रयोग करना उनकी इतनी पुरानी आदत बन चुकी है कि अब वे इसे हर किसी को आदत के कारण ही कहते हैं। जो व्यक्ति बुरी भावनाओं से मुक्त हो चुका है, वह कभी कठोर और निर्मम शब्दों का प्रयोग नहीं करता, कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता जो सुनने वाले को आहत करें। मेरा पुत्र केवल आदत के कारण ही ऐसा बोलता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 408)

याया किंची एन ' अभिसजे अक्ककसं विनापाणि सक्कम

गिरां उदिरये तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

याया : यदि एक शब्द के माध्यम से भी; किंची : कोई भी; न अभिसजे : उत्तेजित नहीं करता; अक्ककसां [ अक्ककसा ]: कठोर नहीं; विनापाणिम् [ विनापाणि ]: अच्छे अर्थ वाला; सैकम गिरां [ गिरा ]: सच्चे शब्द; उदिराय : यदि कोई बोले; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

उनकी वाणी सत्य है। उनके शब्द नेक, रचनात्मक और कठोर नहीं हैं। उनके शब्दों से किसी को ठेस नहीं पहुंचेगी। न ही उनके शब्द लोगों को भड़काएंगे। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 408)

पिलिंढवच्छ की कथा : पिलिंढवच्छ का जन्म श्रावस्ती में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बुद्ध के उपदेश को सुनकर वे तुरंत परिवर्तित हो गए। उन्होंने दीक्षा लेने का निश्चय किया।

उन्हें संघ और गृहस्थों दोनों में सभी को ' वसला' कहकर संबोधित करने की आदत थी , जिसका अर्थ नीची जाति का व्यक्ति होता है। उन्होंने यह आदत पाँच सौ जन्मों में अपनाई थी, जब वे ब्राह्मण के रूप में पैदा हुए थे, क्योंकि ब्राह्मण सभी को अपने से नीचा समझते थे। पिलिण्डवच्छ इस आदत को त्याग नहीं सके। कहते हैं कि आदत स्वभाव बन जाती है। जिस व्यक्ति ने सभी दोषों से मुक्ति पा ली हो, उसमें भी लंबे समय से चली आ रही आदत बनी रहती है। बुद्ध एकमात्र अपवाद थे। इसलिए जब यह आदत असहनीय हो गई, तो भिक्षुओं ने बुद्ध से शिकायत की।

बुद्धों ने श्रोताओं को घटना का विवरण दिया। पूज्य पिलिंढवच्छ ने जब उस शब्द का प्रयोग किया तो उनके मन में घृणा या दुर्भावना का कोई अंश नहीं था। यह केवल एक आदत थी। उनमें कोई द्वेष नहीं था। बुद्ध ने आगे कहा कि पूज्य महा अरहत सभी दोषों से मुक्त थे। ऐसे व्यक्ति को बुद्ध ब्राह्मण कहते हैं।

एक दिन तिप्पली या लंबी काली मिर्च बेचने वाला एक विक्रेता गंभीर मुसीबत में पड़ गया। पूज्य पिलिण्डवच्छ कौन थे, यह जाने बिना वह तिप्पली से भरी एक गाड़ी बेचने के लिए ले जा रहा था, जिसमें एक टोकरी में तिप्पली का एक नमूना था। एक सुबह जब उसकी मुलाकात जेतवनारमा के द्वार पर महा अरहत से हुई, जो यात्रा पर जा रहे थे, तो हमेशा की तरह महा अरहत ने विक्रेता को ' वसला' कहकर संबोधित किया और पूछा कि टोकरी में क्या है। विक्रेता अवाक रह गया। उसने जवाब दिया, "चूहों का मल।" महा अरहत ने कहा, "ऐसा ही हो," और अपने रास्ते चले गए। लंबी काली मिर्च और चूहों के मल में आश्चर्यजनक समानता थी और विक्रेता को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि न केवल वह नमूना और फिर पूरी गाड़ी, अब लंबी काली मिर्च से भरी नहीं थी, बल्कि चूहों के मल से भरी थी।

देवताओं ने यह सुनिश्चित किया कि व्यापारी को भारी कष्ट सहना पड़े, फिर भी उसका माल चूहों की विष्ठा में परिवर्तित हो जाए। व्यापारी का सारा माल नष्ट हो गया। बेचारे का दुख असीम था। हताशा में उसने थेरा से अपने क्रोध को प्रकट करने का निश्चय किया, क्योंकि उसे विश्वास था कि वह स्वयं ही इस सब का कारण है। उसकी मुलाकात एक नेक व्यक्ति से हुई जिसने उससे प्रश्न किए। पूरी कहानी सुनकर उसने व्यापारी को समझाया कि पूज्य पिलिंढवच्छ महा अरहत हैं और समस्या का समाधान उन्हीं के हाथों में है। उन्हें महा थेरा से उसी प्रकार पुनः मिलने के लिए कहा गया, जैसे उस दुर्भाग्यपूर्ण सुबह मिले थे, और जब उनसे सामान्य रूप से पूछा जाए, तो सावधानीपूर्वक केवल इतना उत्तर देने के लिए कहा गया कि वे तिप्पिली हैं। तब पूज्य पिलिंढवच्छ कहेंगे, "ऐसा ही हो।" तब तुम्हें अपने माल की वास्तविक प्रकृति का पता चल जाएगा। व्यापारी ने ऐसा ही किया और अपनी किस्मत पाकर प्रसन्न हुआ, क्योंकि तुरंत ही उसी प्रक्रिया से व्यापारी का माल अपने मूल स्वरूप में लौट आया।

इसके बाद, बुद्ध ने संघ और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि उनके महा अरहतों में पिलिंढवच्छ देवताओं को सबसे अधिक प्रिय थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 409

———————————————————————

(धम्मपद408) <<<< पिछला || धम्मपद409 || अगला >>>> (धम्मपद410)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 409 - अन्नतारत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha digham va rassam va
anum thulam subhasubham
Joke adinnam nadiyati
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 409 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो इस संसार में कुछ भी ऐसा नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो, चाहे वह लंबा हो या छोटा, बड़ा हो या छोटा, अच्छा हो या बुरा।

———————————————————————

एक थेरेपिस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने एक निश्चित थेरा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (409) का उच्चारण किया।

एक दिन, सावत्थी के एक ब्राह्मण ने अपना ऊपरी वस्त्र हवा लगने के लिए घर के बाहर रख दिया। एक थेरे ने मठ लौटते समय वह वस्त्र देखा। यह सोचकर कि यह किसी का फेंका हुआ कपड़ा है और इसलिए इसका कोई मालिक नहीं है, थेरे ने उसे उठा लिया। ब्राह्मण ने खिड़की से बाहर देखा और थेरे को वस्त्र उठाते हुए देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ा, उसे अपशब्द कहने लगा और उस पर आरोप लगाने लगा। "हे गंजे! तू मेरा वस्त्र चुरा रहा है!" उसने कहा; थेरे ने तुरंत वह वस्त्र ब्राह्मण को लौटा दिया।

मठ में लौटकर, थेरा ने उपरोक्त घटना अन्य भिक्षुओं को सुनाई, और उन्होंने उसका उपहास किया और मज़ाक में उससे पूछा कि वस्त्र लंबा है या छोटा, मोटा है या महीन। इस प्रश्न के उत्तर में थेरा ने कहा, "वस्त्र लंबा हो या छोटा, मोटा हो या महीन, इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता; मुझे इससे कोई लगाव नहीं है।" तब अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया कि थेरा झूठा दावा कर रहा है कि वह अर्हत है। बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! थेरा सत्य कह रहा है; अर्हत वह कुछ भी नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 409 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो इस संसार में कुछ भी ऐसा नहीं लेता जो उसे दिया न गया हो, चाहे वह लंबा हो या छोटा, बड़ा हो या छोटा, अच्छा हो या बुरा।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

चोरी के आरोप में फंसे भिक्षु की कहानी

कथा के अनुसार, सावत्थी में रहने वाले एक कुटिल ब्राह्मण ने अपने शरीर की दुर्गंध से बचने के लिए, अपने वस्त्र उतारकर एक तरफ रख दिए और अपने घर की ओर मुख करके बैठ गया। तभी एक अर्हत भिक्षु नाश्ते के बाद मठ जाते समय उस वस्त्र को देखकर चारों ओर देखने पर पाया कि कोई नहीं है, इसलिए उसने सोचा कि उसका कोई मालिक नहीं है और उसे अपना कूड़ा समझकर अपने साथ ले गया। ब्राह्मण ने जब उसे देखा, तो वह उसके पास गया और उसे अपशब्द कहते हुए बोला, "हे भिक्षु, तू मेरा वस्त्र ले जा रहा है।" "क्या यह तेरा वस्त्र है, ब्राह्मण?" "जी, भिक्षु।" "मैंने किसी को नहीं देखा, और यह सोचकर कि यह कूड़ा है, इसे अपने साथ ले आया; यह रहा।" ऐसा कहकर पूज्य भिक्षु ने उसे उसका वस्त्र वापस कर दिया। फिर वह मठ गया और भिक्षुओं को पूरी घटना विस्तार से सुनाई। जब भिक्षुओं ने उसकी कहानी सुनी, तो उन्होंने उसका उपहास करते हुए कहा, "भाई, तुमने जो कपड़ा लिया है, वह लंबा है या छोटा, मोटा है या महीन?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "भाइयों, कपड़ा लंबा हो या छोटा, मोटा हो या महीन, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; मुझे इससे कोई लगाव नहीं है। मैंने इसे कूड़ा समझकर उठा लिया था।" जब भिक्षुओं ने उसका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ बोल रहा है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "नहीं, भिक्षुओं, इस भिक्षु की बात बिलकुल सत्य है; जो लोग बुरी वासनाओं से मुक्त हो चुके हैं, वे दूसरों की वस्तुएँ नहीं लेते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 409)

इधा लोके यो दीघं वा रसं वा अनुं थूलं वा सुभासुभं

आदिन्नं न आदियति तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा लोके : इस संसार में; यो : यदि कोई; दीघं वा : या तो लंबा; रसं वा : या छोटा; अनुं : या सूक्ष्म; थूलं वा : या बड़ा; सुभासुभं [ सुभासुभ ]: अच्छा या बुरा; अदिन्नं [ अदिन्न ]: कुछ ऐसा जो दिया नहीं गया; ना आदियति : नहीं लेता; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक सच्चे ब्राह्मण का वर्णन करें

इस संसार में यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो बिना दी हुई कोई भी वस्तु नहीं लेता, चाहे वह लंबी हो या छोटी, सूक्ष्म हो या बड़ी, अच्छी हो या बुरी, तो मैं उसे सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 409)

ब्राह्मण : बुद्ध और उनके शिष्यों का विभिन्न प्रकार के ब्राह्मणों के साथ व्यापक संवाद हुआ। वर्तमान श्लोक जिस कथा पर आधारित है, वह ऐसा ही एक संवाद है। लेकिन बुद्ध और ब्राह्मणों के बीच इससे भी अधिक गहन दार्शनिक संवाद हुए।

एक उदाहरण यहाँ दिया गया है: ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता बिना किसी प्रश्न के अपनी परंपरा और अधिकार को एकमात्र सत्य मानकर उस पर अडिग रहती थी। एक बार विद्वान और प्रसिद्ध ब्राह्मणों का एक समूह बुद्ध से मिलने गया और उनसे लंबी चर्चा की। समूह में से एक सोलह वर्षीय ब्राह्मण युवक, कापथिका, जिसे सभी असाधारण रूप से प्रतिभाशाली मानते थे, ने बुद्ध से प्रश्न किया: "आदरणीय गौतम, ब्राह्मणों के प्राचीन पवित्र ग्रंथ हैं जो मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। उनके विषय में ब्राह्मण इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं: 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'। अब, इस विषय में बुद्ध क्या कहते हैं?" बुद्ध ने पूछा: "क्या ब्राह्मणों में कोई एक भी ऐसा ब्राह्मण है जो यह दावा करता हो कि वह स्वयं जानता और देखता है कि 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'?"

उस युवक ने स्पष्टवादिता से कहा, "नहीं।"

“तो क्या कोई एक शिक्षक है, या ब्राह्मणों के सातवीं पीढ़ी तक के शिक्षकों का कोई गुरु है, या उन शास्त्रों के मूल लेखकों में से कोई भी ऐसा है, जो यह दावा करता हो कि वह जानता और देखता है: 'यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है'?” “नहीं।”
“तो फिर, यह अंधों की एक पंक्ति के समान है, जिनमें से प्रत्येक पिछले वाले को पकड़े हुए है; पहला नहीं देख पाता, मध्य वाला भी नहीं देख पाता, अंतिम वाला भी नहीं देख पाता। इस प्रकार, मुझे लगता है कि ब्राह्मणों की स्थिति अंधों की एक पंक्ति के समान है।”
तब बुद्ध ने ब्राह्मणों के समूह को अत्यंत महत्वपूर्ण सलाह दी: “सत्य का पालन-पोषण करने वाले (शाब्दिक रूप से रक्षा करने वाले) बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि 'केवल यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।'”
युवा ब्राह्मण द्वारा सत्य को बनाए रखने या उसकी रक्षा करने के विचार को समझाने के लिए कहे जाने पर, बुद्ध ने कहा: “मनुष्य का एक विश्वास होता है। यदि वह कहता है 'यह मेरा विश्वास है', तो वह सत्य को बनाए रखता है। लेकिन इससे वह इस परम निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता कि 'केवल यही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।' दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपनी पसंद के अनुसार विश्वास कर सकता है, और वह कह सकता है 'मैं इस पर विश्वास करता हूँ'। इस हद तक वह सत्य का सम्मान करता है। लेकिन अपने विश्वास के कारण उसे यह नहीं कहना चाहिए कि केवल वही सत्य है, और बाकी सब असत्य है।”
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 410

---

(धम्मपद409) <<<< पिछला || धम्मपद410 || अगला >>>> (धम्मपद411)

---

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 410 - सारिपुत्तत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
Asa yassa na vijjanti
asmim loke paramhi ca
nirasasam visamyuttam
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 410 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसे न तो इस संसार की इच्छा है और न ही परलोक की, जो व्याकुलता और नैतिक विकारों से मुक्त है।

---

थेरा सारिपुत्त की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सारिपुत्त के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (410) कहा।
एक बार थेरा सारिपुत्त पाँच सौ भिक्षुओं के साथ वर्षा ऋतु बिताने के लिए एक छोटे से गाँव के पास स्थित एक मठ में गए। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर, थेरा सारिपुत्त को युवा भिक्षुओं और समनेरों के लिए वस्त्रों की आवश्यकता हुई। इसलिए उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "यदि कोई वस्त्र भेंट करने आए, तो उन्हें मेरे पास भेज दें या मुझे सूचित करें"; और फिर वे बुद्ध को प्रणाम करने के लिए जेतवन मठ के लिए प्रस्थान कर गए। अन्य भिक्षुओं ने थेरा सारिपुत्त के निर्देशों को गलत समझा और बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय! थेरा सारिपुत्त अभी भी वस्त्रों और भिक्षु की अन्य आवश्यक वस्तुओं जैसी भौतिक चीजों से आसक्त हैं।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! मेरे पुत्र सारिपुत्त में अब कोई लालसा नहीं है। उसने तुम्हें वस्त्र लाने को कहा है, ताकि गृहस्थ शिष्यों के लिए पुण्य कर्म करने के अवसर कम न हों और युवा भिक्षुओं और समनेरों के लिए जो कुछ भी उन्हें उचित रूप से प्राप्त हो, उसे ग्रहण करने के अवसर कम न हों।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 410 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसे न तो इस संसार की इच्छा है और न ही परलोक की, जो व्याकुलता और नैतिक विकारों से मुक्त है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

सारिपुत्त के गलत समझे जाने की कहानी

कथा के अनुसार, एक समय पूज्य सारिपुत्त अपने पांच सौ भिक्षुओं के दल के साथ एक मठ में गए और वर्षा ऋतु के लिए वहाँ निवास करने लगे। जब लोगों ने सारिपुत्त को देखा, तो उन्होंने उन्हें निवास के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने का वादा किया। लेकिन जब सारिपुत्त ने अंतिम पर्व मनाया, तब भी सभी आवश्यक वस्तुएँ नहीं पहुँची थीं। इसलिए जब वे बुद्ध के पास जाने के लिए निकले, तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "जब लोग युवा भिक्षुओं और नौसिखियों के लिए आवश्यक वस्तुएँ लाएँ, तो कृपया उन्हें ले जाकर भेज दें; यदि वे न लाएँ, तो कृपया मुझे सूचना भेज दें।" ऐसा कहकर वे बुद्ध के पास चले गए।

भिक्षु तुरंत इस विषय पर चर्चा करने लगे और कहने लगे, "आज पूज्य सारिपुत्त ने जो कहा, उससे तो यही लगता है कि उनके मन में अभी भी लालसा बनी हुई है। क्योंकि जब वे वापस गए, तो उन्होंने अपने साथी भिक्षुओं को दिए गए निवास संबंधी आवश्यकताओं के संदर्भ में भिक्षुओं से कहा, 'कृपया उन्हें भेज दीजिए; अन्यथा मुझे सूचना दे दीजिए।'" तभी बुद्ध पास आए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय।" बुद्ध ने कहा, "नहीं, भिक्षुओं, मेरे पुत्र को कोई लालसा नहीं है। परन्तु उनके मन में यह विचार था, 'जनता का पुण्य न ललके और न ही युवा भिक्षुओं और नौसिखियों का पुण्य ललक हो।' इसी कारण उन्होंने ऐसा कहा।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 410)

यस्सा अस्मिं लोके पराहि च आस न विज्जन्ति

निरासयां विसंयुत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

yassa : यदि कोई; asmiṃ loke : इस लोक में; paraṃhica : या परलोक में; āsā : भोगों से रहित; na vijjanti : वह व्यक्ति; nirāsayaṃ [ nirāsaya ]: भोग रहित; visaṃ yuttaṃ [ yutta ]: दोषों से मुक्त; taṃ : व्यक्ति; ahaṃ : मैं; brāhmaṇaṃ brūmi : किसी ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

उसे न तो इस लोक की कोई लालसा है और न ही परलोक की। वह लालसा और लोभ से मुक्त है। वह दोषों से विरक्त है। ऐसे व्यक्ति को मैं उत्तम ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 410)

आसा : यह प्यास (लालसा, तन्हा ) ही है जो पुनर्जन्म और पुनरुद्भव ( पोनोभविका ) उत्पन्न करती है, और जो भावुक लोभ ( नंदीरागसहगत ) से बंधी होती है , और जो यहाँ-वहाँ नए आनंद की तलाश करती है ( तत्रतत्राभिनंदिनी ), जैसे (i) इंद्रिय-सुखों की प्यास ( काम-तन्हा ), (ii) अस्तित्व और बनने की प्यास ( भवतन्हा ) और (iii) अस्तित्वहीनता की प्यास (स्वयं-विनाश, विभवतन्हा )।

यह प्यास, इच्छा, लोभ, लालसा, जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, सभी प्रकार के दुखों और प्राणियों की निरंतरता को जन्म देती है। लेकिन इसे प्रथम कारण नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि बौद्ध धर्म के अनुसार, कोई प्रथम कारण संभव नहीं है, क्योंकि सब कुछ सापेक्ष और परस्पर निर्भर है। यहां तक कि यह प्यास, तन्हा , जिसे दुख का कारण या उत्पत्ति माना जाता है , भी किसी अन्य चीज, यानी संवेदना (वेदना) पर निर्भर करती है , और संवेदना स्पर्श (फस्सा) पर निर्भर करती है , और इसी प्रकार यह चक्र चलता रहता है जिसे परिस्थितिजन्य उत्पत्ति (पटिच्च-समुप्पाद) के रूप में जाना जाता है , जिसकी चर्चा हम बाद में करेंगे।

अतः तन्हा , यानी प्यास, दुःख उत्पन्न होने का पहला या एकमात्र कारण नहीं है । परन्तु यह सबसे प्रत्यक्ष और तात्कालिक कारण है, सर्वव्यापी और प्रमुख तत्व है। अतः मूल पाली ग्रंथों के कुछ स्थानों पर दुख के उद्गम या समुदय की परिभाषा में तन्हा , यानी प्यास के अतिरिक्त अन्य दोष और अशुद्धियाँ ( किलेसा , ससवा धम्मा ) भी शामिल हैं, जिन्हें सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। हमारी चर्चा की सीमित सीमा में यह याद रखना पर्याप्त होगा कि इस प्यास का केंद्र अज्ञान से उत्पन्न होने वाला अहंकार का झूठा विचार है।

यहां प्यास शब्द में केवल इंद्रिय सुख, धन और शक्ति की इच्छा और आसक्ति ही नहीं, बल्कि विचारों, आदर्शों, मतों, सिद्धांतों, अवधारणाओं और विश्वासों ( धम्म-तन्हा ) की इच्छा और आसक्ति भी शामिल है। बुद्ध के विश्लेषण के अनुसार, संसार में होने वाली सभी परेशानियां और कलह, परिवारों में होने वाले छोटे-मोटे व्यक्तिगत झगड़ों से लेकर देशों और राष्ट्रों के बीच होने वाले बड़े युद्धों तक, इसी स्वार्थी प्यास से उत्पन्न होती हैं। इस दृष्टिकोण से, सभी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याएं इसी स्वार्थी प्यास में निहित हैं। महान राजनेता जो अंतरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने का प्रयास करते हैं और युद्ध और शांति की चर्चा केवल आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों में करते हैं, वे सतही बातों को ही छूते हैं और समस्या की वास्तविक जड़ तक कभी नहीं पहुंचते। जैसा कि बुद्ध ने रट्ठपाल से कहा: संसार में अभाव और लालसा है, और वह प्यास ( तन्हादासो ) का गुलाम है।

---

(धम्मपद410) <<<< पिछला ॥ धम्मपद411 ॥ अगला >>>> (धम्मपद412)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 411 - महामोग्गलनत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassalaya na vijjanti
अन्नाया अकाथमकाथी
amatogadha' manuppattam
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 411 : मैंने उसे ब्राह्मण कहा है, जो लालसा रहित है, जो चार आर्य सत्यों के ज्ञान से संशय से मुक्त है, और जिसने निर्वाण (अमर) को प्राप्त कर लिया है।

---

थेरा महा मोग्गलाना की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा महा मोग्गलाना के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (411) कहा।

एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध को थेरा महा मोग्गलाना के बारे में वही बात बताई जो उन्होंने थेरा सारिपुत्त के बारे में कही थी कि उन्हें अभी भी सांसारिक वस्तुओं से लगाव है। बुद्ध ने उनसे कहा कि थेरा महा मोग्गलाना ने सभी प्रकार की व्यथाओं का त्याग कर दिया है।

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 411 : मैंने उसे ब्राह्मण कहा है, जो लालसा रहित है, जो चार आर्य सत्यों के ज्ञान से संशय से मुक्त है, और जिसने निर्वाण (अमर) को प्राप्त कर लिया है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय महा मोग्गलाना की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय पूज्य महा मोग्गलाना के संदर्भ में दिया था।

यह कथा पिछली कथा के समान ही है, सिवाय इसके कि इस अवसर पर बुद्ध ने यह जानकर कि पूज्य महा मोग्गलाना भोग-विलास से मुक्त थे, यह श्लोक कहा।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 411)

यस्सा अलया न विज्जन्ति अनन्याय अकथाकथि
अमतोगधं अनुप्पत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्स : यदि किसी में; आलय : आसक्तियाँ; न विज्जन्ति : दिखाई न दें; अञ्ञाय : सही जागरूकता के कारण; अकथंकथी : यदि उसे कोई संदेह न हो; अमरोगध : अमर-निर्वाण की बाढ़; अनुप्पत्त : जो पहुँच गया हो; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण का वर्णन करें उनमें कोई आसक्ति नहीं है—उनमें किसी प्रकार की आसक्ति पाई ही नहीं जा सकती। सही जागरूकता के कारण उन्हें कोई आध्यात्मिक संदेह नहीं है। वे अमरता—निर्वाण—में प्रवेश कर चुके हैं। मैं उन्हें सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 411)
आदरणीय महा मोग्गलाना की कथा : यदि सारिपुत्त को बुद्ध का दाएँ प्रमुख शिष्य माना जाए, तो मोग्गलाना उनके बाएँ प्रमुख शिष्य थे। दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ था और अनेक पूर्व जन्मों में वे एक दूसरे से जुड़े रहे; और अंतिम जन्म में भी वे एक दूसरे के साथ ही रहे।
आदरणीय महा मोग्गलाना मानसिक चमत्कारों के प्रदर्शन के लिए महान संघ में अग्रणी थे।
एक बार नंदोपानंद नामक एक नागों का राजा, जो अपनी मानसिक क्षमताओं के लिए भी प्रसिद्ध था, हिमालय के उन सभी प्राणियों को धमकी दे रहा था जो उस रास्ते से गुजरेंगे।
नागराज को वश में करने के लिए संघ के कई सदस्यों ने बुद्ध को प्रस्ताव दिए। अंततः पूज्य महा मोग्गलाना की बारी आई और बुद्ध ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे जानते थे कि भिक्षु इस कार्य को बखूबी निभा सकते हैं। परिणाम स्वरूप हिमालय में नागराज से युद्ध हुआ, जिसमें नागराज युद्ध में पराजित होकर शांति की विनती करने लगा। बुद्ध पूरी घटना के दौरान उपस्थित रहे और उन्होंने मोग्गलाना को चेतावनी दी। इस ऐतिहासिक विजय का संक्षिप्त वर्णन जयमंगल गाथा के सातवें श्लोक में मिलता है , जिसका पाठ लगभग हर बौद्ध अवसर पर किया जाता है।
चाहे स्वर्ग के शासक सक्का के संगमरमर के महल को अपने अंगूठे से हिलाना हो या नरक का भ्रमण करना हो, वे हर काम में सहज थे। इन यात्राओं से उन्हें हर प्रकार की जानकारी प्राप्त होती थी। वे पृथ्वीवासियों को उनके पुराने मित्रों या रिश्तेदारों के भाग्य का सजीव वर्णन कर सकते थे; कैसे बुरे कर्मों के कारण कुछ लोग नरक में अपमानजनक पुनर्जन्म पाते हैं और अच्छे कर्मों के कारण अन्य लोग छह स्वर्गों में से किसी एक में शुभ पुनर्जन्म पाते हैं। इन कार्यों से संप्रदाय को बहुत प्रसिद्धि मिली, जिससे अन्य संप्रदायों को बहुत आपत्ति हुई। उनका जीवन एक उदाहरण और एक गंभीर चेतावनी है। यहाँ तक कि एक प्रमुख शिष्य, जो इतने वीरतापूर्ण कार्य करने में सक्षम था, भी बुरे कर्मों के अवशेष से अछूता नहीं रहा, भले ही वे कर्म बहुत पुराने समय में किए गए हों।
मोग्गलाना के अंतिम जीवन में, वे कर्मों के निर्दयी प्रभाव से बच नहीं सके। क्योंकि अरहत के परिनिर्वाण से कर्मों के अच्छे-बुरे सभी फल समाप्त हो जाते हैं। वे दो बार लुटेरों के जाल में फँसे, लेकिन हर बार बच निकले। परन्तु तीसरी बार, उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि बच निकलना व्यर्थ है। उन्हें इतनी बेरहमी से पीटा गया कि उनके शरीर को बोरी में भी डाला जा सकता था। परन्तु मृत्यु को ही उनका भाग्य था। लिखा है कि एक प्रमुख शिष्य को न केवल बुद्ध से पहले मरना चाहिए, बल्कि उनकी मृत्यु से पहले बुद्ध के पास जाकर चमत्कारिक कार्य करने चाहिए और विदाई के श्लोक बोलने चाहिए, और बुद्ध को बदले में उनके गुणों का वर्णन करना चाहिए। वे भी अपवाद नहीं थे।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 412

---

(धम्मपद411) <<<< पिछला ॥ धम्मपद412 ॥ अगला >>>> (धम्मपद413)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 412 - रेवत्तथेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha punnanca pipanca
ubho sanga'mupaccaga
asokam virajam suddham

tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 412 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों बंधनों को पार कर लिया है; जो शोक रहित है और नैतिक दोषों से मुक्त होकर शुद्ध है।

---

समनेरा रेवता की कहानी

पुब्बाराम मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने समनेरा रेवता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (412) कहा।

एक दिन भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "रेवत को लोगों से बहुत से दान मिल रहे हैं, वे प्रसिद्धि और धन कमा रहे हैं। यद्यपि वे वन में अकेले रहते हैं, फिर भी उन्होंने अपनी असाधारण शक्ति से पाँच सौ भिक्षुओं के लिए पाँच सौ शिखर वाले मठ बनवा लिए हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र रेवत ने सभी इच्छाओं का त्याग कर दिया है; उन्होंने अच्छे और बुरे दोनों को पार कर लिया है।"

---

श्लोक 412 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में अच्छे और बुरे दोनों बंधनों को पार कर लिया है; जो शोक रहित है और नैतिक दोषों से मुक्त होकर शुद्ध है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

अच्छे और बुरे दोनों का त्याग करो।

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने पुब्बाराम में निवास करते समय पूज्य रेवता के संदर्भ में दिया था।

एक दिन भिक्षु आपस में चर्चा करने लगे, "अरे, उस नवोदित भिक्षु का कितना बड़ा लाभ हुआ! अरे, उस नवोदित भिक्षु का कितना बड़ा पुण्य हुआ! यह सोचकर आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति ने अनेक भिक्षुओं के लिए अनेक निवास स्थान बनवाए!" तभी बुद्ध वहाँ आ गए। उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर ध्यान दे रहे हैं?" उत्तर मिला, "अमुक विषय पर।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र में न कोई पुण्य है और न कोई पाप: उसने दोनों का त्याग कर दिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 412)

इधा यो पुन्नं पापं च उभो संगं उपचगा

अशोकं विराजं शुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा : इस संसार में; यो : यदि कोई; पुण्यम् [ पुण्य ]: गुण; पापम् च : और बुराई; उभो : दोनों; संगम् [ संग ]: आसक्ति; उपच्चगा : पार हो गया है; अशोकम् [ अशोक ]: जो दुःख रहित है; विरजम् [ विरज ]: दोषरहित; शुद्धम् [ शुद्ध ]: शुद्ध; तम् : उसे; अहम् : मैं; ब्राह्मणो ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करता हूँ

इस संसार में यदि कोई व्यक्ति अच्छे और बुरे, तथा आसक्तियों से परे यात्रा कर चुका हो, और वह दुःख रहित हो, दोषों से मुक्त हो, और शुद्ध हो, तो मैं उसे ही सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 412)

आदरणीय रेवता की कहानी : उन्हें यह नाम इसलिए दिया गया था क्योंकि वे किसी भी बात को हल्के में नहीं लेते थे। वे हर चीज़ को संदेह की दृष्टि से देखते थे। उन्हें हर जगह संदेह का कारण नज़र आता था। वे बार-बार ध्यान ( झान ) में जाने और मुक्ति ( निरोधसमापत्ति ) के आनंद का अनुभव करने के शौकीन थे । यह एक ऐसा वरदान था जिसके द्वारा कुछ अरहंतों को लगातार सात दिनों तक सांसारिक दुनिया से परे जाने की शक्ति प्राप्त होती थी। उन्हें इस विशेष विशेषाधिकार की तीव्र इच्छा थी। वे इसमें निपुण हो गए।

अरहंत बनने से पहले, उनका मन इस बात को लेकर बहुत व्याकुल था कि क्या करना उचित है और क्या नहीं। वे सबसे प्रतिष्ठित शिष्यों में गिने जाते थे। उनमें से कुछ के साथ चर्चा में उन्होंने एकांतवास में रहने और ध्यान के आनंद की प्रशंसा की थी।

उनका जन्म श्रावस्ती में इसी युग के एक धनी परिवार में हुआ था। इसके कुछ ही समय बाद बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि संघ में कंख रेवता सबसे पहले समाधि ( झान ) में प्रवेश करने वाले व्यक्ति थे।

उनके लिए कारण और परिणाम ही सब कुछ हैं।

उसका खाना। सभी विषयों पर सवालिया निशान लगाता है।

वह इससे पहले एकांत की तलाश करता है

ध्यान के माध्यम से परमानंद की खोज करना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 413

---

(धम्मपद412) <<<< पिछला ॥ धम्मपद413 ॥ अगला >>>> (धम्मपद414)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 413 - चंदभट्ठेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

चंदमवा विमलम शुद्धम
विप्पसन्नामनविलम
नंदीभवपरिक्खिनाम(1)
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 413 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो (बादलों रहित आकाश में) चंद्रमा के समान शुद्ध, निर्मल और शांत है, और जिसमें अस्तित्व की लालसा समाप्त हो गई है।

---

1. नंदीभवपरिक्खिनाम्: वह व्यक्ति जिसमें वर्तमान इंद्रियजन्य अस्तित्व में या रूप (सूक्ष्म भौतिक) या अरूप (अमूर्त) ब्रह्म (प्रधान देवदूत) लोकों में अस्तित्व के बेहतर और उच्चतर तल में लंबे समय तक निरंतर अस्तित्व की लालसा समाप्त हो जाती है।

---

थेरा चंदभा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा चंदभा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (413) कहा।

चंदभा ने अपने पिछले जन्म में कश्यप बुद्ध के अवशेषों वाले स्तूप में चंदन का अर्पण किया था। इस पुण्य कर्म के फलस्वरूप उनका पुनर्जन्म श्रावस्ती के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। वे एक विशिष्ट चिह्न के साथ पैदा हुए थे, अर्थात् उनकी नाभि के चारों ओर से प्रकाश का एक वृत्त निकलता था। यह प्रकाश वृत्त चंद्रमा के समान दिखता था, इसलिए उन्हें चंदभा के नाम से जाना जाने लगा। कुछ ब्राह्मणों ने इस अनोखे चिह्न का लाभ उठाते हुए उन्हें एक रथ पर बिठाकर पूरे शहर में घुमाया और केवल उन्हीं लोगों को उन्हें छूने की अनुमति दी गई जिन्होंने सौ या हज़ार रुपये दिए। एक बार वे शहर और जेतवन मठ के बीच एक स्थान पर रुके। जेतवन मठ जा रहे आर्यों से उन्होंने कहा, 'बुद्ध के पास जाकर उनके प्रवचन सुनने का क्या लाभ? चंदभा के समान शक्तिशाली कोई नहीं है। जो उन्हें स्पर्श करेगा वह धनवान हो जाएगा; तुम आकर क्यों नहीं देखते?" तब आर्यों ने उनसे कहा, "केवल हमारे गुरु ही शक्तिशाली हैं; उनका कोई सानी नहीं है और वे अद्वितीय हैं।"

तब ब्राह्मण चंदभा को बुद्ध से प्रतिस्पर्धा कराने के लिए जेतवन मठ ले गए। परन्तु जब चंदभा बुद्ध के समक्ष था, प्रकाश का घेरा स्वतः ही बुझ गया। जब चंदभा को बुद्ध की दृष्टि से ओझल किया गया, तो प्रकाश का घेरा स्वतः ही फिर प्रकट हो गया; और बुद्ध के समक्ष वापस लाए जाने पर वह फिर गायब हो गया। तब चंदभा ने बुद्ध से वह मंत्र (मंत्र) माँग लिया जिससे उसकी नाभि के चारों ओर का प्रकाश का घेरा गायब हो जाए। बुद्ध ने उसे बताया कि वह मंत्र केवल उनके संघ के सदस्य को ही दिया जा सकता है। चंदभा ने ब्राह्मणों से कहा कि वह बुद्ध से एक मंत्र प्राप्त कर रहा है और उस मंत्र में महारत हासिल करने के बाद वह जंबूद्वीप का सर्वोपरि व्यक्ति बन जाएगा। अतः ब्राह्मण मठ के बाहर प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीच चंदभा भिक्षु बन गए। उन्हें शरीर का ध्यान करने का निर्देश दिया गया, अर्थात् शरीर के बत्तीस घटकों की घृणा और अशुद्धता पर चिंतन करने का। कुछ ही दिनों में चंदभा ने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब मठ के बाहर प्रतीक्षा कर रहे ब्राह्मण यह पूछने आए कि क्या उन्होंने मंत्र प्राप्त कर लिया है, तो चंदभा ने उत्तर दिया, "आप लोग अभी वापस चले जाएं; मैं अब आपके साथ जाने की स्थिति में नहीं हूं।" अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर बुद्ध के पास जाकर कहा, "चंदभा झूठ बोल रहा है कि वह अर्हत बन गया है।" बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "चंदभा सत्य कह रहा है; उसने सभी नैतिक व्यसनों का नाश कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 413 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जो (बादलों रहित आकाश में) चंद्रमा के समान शुद्ध, निर्मल और शांत है, और जिसमें अस्तित्व की लालसा समाप्त हो गई है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

आदरणीय चांदनी की कहानी

यह श्लोक बुद्ध ने पूज्य चंदाभा के संदर्भ में कहा था। राजगृह में एक धनी गृहस्थ के घर में पुत्र का जन्म हुआ।

उनकी नाभि के घेरे से चंद्रमा की डिस्क के समान प्रकाश निकलता था, और इसलिए उन्होंने उन्हें चांदनी, चंदाभ नाम दिया।

ब्राह्मणों ने मन ही मन सोचा, "यदि हम इसे अपने साथ ले जाएं, तो हम पूरे संसार को अपने वश में कर लेंगे।" तदनुसार, उन्होंने उसे एक रथ में बिठाया और अपने साथ लेकर चलने लगे। रास्ते में वे जिससे भी मिलते, उससे कहते, "जो कोई भी इस ब्राह्मण के शरीर को अपने हाथ से स्पर्श करेगा, उसे अमुक शक्ति और यश प्राप्त होगा।" लोग सौ या हजार सिक्के देकर ब्राह्मण के शरीर को स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त करते थे। इस प्रकार स्थान-स्थान घूमते हुए वे अंत में सावत्थी पहुंचे और शहर और मठ के बीच में ठहरने लगे।

अब सावत्थी में पाँच अरब श्रेष्ठ शिष्यों ने नाश्ते से पहले दान दिया; और नाश्ते के बाद, अपने हाथों में इत्र, मालाएँ, वस्त्र और औषधियाँ लेकर धम्म सुनने के लिए चले गए। जब ब्राह्मणों ने उन्हें देखा, तो उन्होंने उनसे पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?" "बुद्ध के पास धम्म सुनने।" "अरे! वहाँ जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? हमारे ब्राह्मण चंद्रमुखी के समान कोई अलौकिक शक्ति नहीं है: जो उनके शरीर को स्पर्श करता है, उसे अष्टम शक्ति और यश प्राप्त होता है; आओ, उन्हें देखो।" "तुम्हारे ब्राह्मण की अलौकिक शक्ति क्या है? केवल हमारे गुरु ही महान अलौकिक शक्ति के स्वामी हैं।" और वे तुरंत बहस करने लगे, परन्तु दोनों पक्ष एक-दूसरे को समझाने में असफल रहे। अंत में, ब्राह्मणों ने कहा, "चलो मठ चलते हैं और पता लगाते हैं कि हमारे चंद्रमुखी या तुम्हारे गुरु में से किसके पास अधिक अलौकिक शक्ति है।" और उसे अपने साथ लेकर वे मठ की ओर चल पड़े।

जैसे ही चंद्रप्रकाश बुद्ध के पास पहुँचा, बुद्ध ने उसकी विशेष चमक को गायब कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब चंद्रप्रकाश बुद्ध के समक्ष खड़ा हुआ, तो वह मानो कोयले की टोकरी में बैठे कौवे जैसा लग रहा था। ब्राह्मण उसे एक तरफ ले गए, और तुरंत ही चमक फिर से प्रकट हो गई, पहले जैसी ही तेज। फिर वे उसे बुद्ध के समक्ष लाए, और तुरंत ही चमक गायब हो गई, ठीक वैसे ही जैसे पहली बार हुई थी। जब चंद्रप्रकाश तीसरी बार बुद्ध के समक्ष गया और उसने देखा कि चमक गायब हो गई है, तो उसने मन ही मन सोचा, "निस्संदेह इस व्यक्ति को कोई ऐसा मंत्र पता है जिससे वह इस चमक को गायब कर सकता है।" इसलिए उसने बुद्ध से पूछा, "क्या यह सच नहीं है कि आपको कोई ऐसा मंत्र पता है जिससे आप मेरी इस चमक को गायब कर सकते हैं?" "हाँ, मुझे ऐसा मंत्र पता है।" "तो फिर मुझे बताइए।" "यह मंत्र उस व्यक्ति को नहीं बताया जा सकता जिसने संसार से संन्यास नहीं लिया है।"

तब चंद्राभ ने अपने साथी ब्राह्मणों से कहा, "जैसे ही मैं यह मंत्र सीख लूँगा, मैं गुलाब-जगत में सर्वोपरि हो जाऊँगा। आप यहीं रहिए और मैं संसार त्यागकर कुछ ही दिनों में यह मंत्र सीख लूँगा।" इस प्रकार उसने बुद्ध से संघ में प्रवेश का अनुरोध किया, संसार त्याग दिया और बाद में संघ का पूर्ण सदस्य बन गया। बुद्ध ने उसे ध्यान का एक सूत्र सिखाया जिसमें शरीर के बत्तीस घटक भाग शामिल हैं। "यह क्या है?" चंदाभ ने पूछा। "यह वह विधि है जिसे आपको इस मंत्र को प्राप्त करने से पहले दोहराना होगा," बुद्ध ने उत्तर दिया।

समय-समय पर ब्राह्मण उनके पास आकर पूछते, "क्या आपने मंत्र सीख लिया है?" "अभी नहीं, लेकिन सीख रहा हूँ।" कुछ ही दिनों में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब ब्राह्मण फिर से आकर उनसे पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "जाओ! अब मैं उस अवस्था में पहुँच गया हूँ जहाँ से लौटना असंभव है।" भिक्षुओं ने बुद्ध को यह बात बताई और कहा, "हे पूज्यवर, यह ब्राह्मण असत्य बोलता है, झूठ बोलता है।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र का सांसारिक सुख समाप्त हो गया है; वह सत्य बोलता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 413)

कैंडं इव विमलं शुद्धं विप्पसन्नं अनाविलं

नन्दीभवपरिक्खिनं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

कैंडं इव : चंद्रमा की तरह; विमलं [ विमला ]: दोषों से मुक्त; शुद्धम् [ सुधा ]: शुद्ध; विप्पसन्नं [ विप्पसन्ना ]: असाधारण रूप से शांत; अनाविलम् [ अनाविला ]: अविचलित; नंदीभावपरिक्खिनं [ नंदीभवपरिक्खिन ]: जिसने उस लालसा को त्याग दिया है जो अस्तित्व के चक्र में आनंद लेती है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण के रूप में वर्णन करें

वह पूर्णिमा के चंद्रमा के समान हैं—बिल्कुल निर्मल और बेदाग। वह शुद्ध, शांत, गंभीर और अत्यंत स्थिर हैं। वह विचलित नहीं हैं। उन्होंने जीवन चक्र में आनंद लेने वाली लालसा को त्याग दिया है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 414

---

(धम्मपद413) <<<< पिछला || धम्मपद414 || अगला >>>> (धम्मपद415)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 414 - शिवलिथेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'mam palipatham duggam
संसारम मोहमाक्कागा
tinno parangato jhayi
अनेजो अकाथमकथी
anupadaya nibbuto
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 414 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस खतरनाक दलदल (वासनाओं के दलदल), इस कठिन मार्ग (नैतिक विकारों के मार्ग), जीवन के सागर (संसार) और अज्ञान के अंधकार (मोह) को पार कर लिया है, और चारों प्रकार की बाढ़ को पार करके दूसरे तट (निर्वाण) पर पहुँच गया है; जो शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है, जो व्याकुलता और संशय से मुक्त है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है और पूर्ण शांति में रहता है।

---

थेरा सिवली की कहानी

कुंडाकोलिया शहर के पास कुंडाधना जंगल में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सिवली के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (414) कहा।

कुंडाकोलिया की राजकुमारी सुप्पवासा सात वर्षों तक गर्भवती रहीं और फिर सात दिनों तक प्रसव पीड़ा से गुज़रीं। वे बुद्ध, धम्म और संघ के अद्वितीय गुणों का चिंतन करती रहीं और अंत में उन्होंने अपने पति को बुद्ध के पास अपनी ओर से प्रणाम करने और अपनी स्थिति के बारे में सूचित करने के लिए भेजा। राजकुमारी की स्थिति जानने पर बुद्ध ने कहा, "सुप्पवासा संकट और दुःख से मुक्त हों; वे स्वस्थ और श्रेष्ठ पुत्र को सुरक्षित जन्म दें।" ये शब्द कहे जाने के ठीक बाद, सुप्पवासा ने अपने घर में पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन, बच्चे के जन्म के तुरंत बाद, बुद्ध और कुछ भिक्षुओं को उनके घर आमंत्रित किया गया। वहाँ भिक्षा दी गई और नवजात शिशु ने बुद्ध और भिक्षुओं को पानी पिलाया। बच्चे के जन्म का उत्सव मनाने के लिए, माता-पिता ने बुद्ध और भिक्षुओं को सात दिनों तक भोजन कराने के लिए अपने घर आमंत्रित किया।

जब बालक बड़ा हुआ तो उसे संघ में प्रवेश दिया गया और भिक्षु के रूप में वह सिवली के नाम से जाना जाने लगा। सिर मुंडवाते ही उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। बाद में, वह सबसे अधिक दान ग्रहण करने वाले भिक्षु के रूप में प्रसिद्ध हुआ। दान ग्रहण करने में उसका कोई सानी नहीं था।

एक बार भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि अरहत बनने के सभी गुणों से युक्त सिवली को सात वर्ष तक अपनी माता के गर्भ में क्यों रखा गया था? बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, "भिक्षुओं! पिछले जन्म में सिवली एक ऐसे राजा का पुत्र था जिसने अपना राज्य दूसरे राजा से हार दिया था। अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के प्रयास में उसने अपनी माता की सलाह पर नगर को घेर लिया था। परिणामस्वरूप, नगर के लोग सात दिनों तक भोजन और जल से वंचित रहे। इसी पाप के कारण सिवली को सात वर्ष तक अपनी माता के गर्भ में कैद रहना पड़ा। परन्तु अब सिवली के सभी दुःख समाप्त हो चुके हैं; उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 414 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस खतरनाक दलदल (वासनाओं के दलदल), इस कठिन मार्ग (नैतिक विकारों के मार्ग), जीवन के सागर (संसार) और अज्ञान के अंधकार (मोह) को पार कर लिया है, और चारों प्रकार की बाढ़ को पार करके दूसरे तट

(निर्वाण) पर पहुँच गया है; जो शांति और अंतर्दृष्टि ध्यान का अभ्यास करता है, जो व्याकुलता और संशय से मुक्त है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है और पूर्ण शांति में रहता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

गर्भ में सात साल

एक समय की बात है, कोलिया कुल की पुत्री सुप्पावासा सात वर्ष तक गर्भ में पलती रही। सात दिनों तक, जब तक बच्चा अविकसित अवस्था में था, वह असहनीय, तीव्र और पीड़ा से ग्रस्त रही। उसने मन ही मन कहा, "सचमुच, वह बुद्ध परम प्रबुद्ध हैं जो इस प्रकार के कष्टों को दूर करने वाले धर्म का उपदेश देते हैं। सचमुच, उस बुद्ध के शिष्यों का मार्ग धर्म के मार्ग पर चलना है, जो इस प्रकार के कष्टों को दूर करने के लिए धर्म का अनुसरण करते हैं। सचमुच, निर्वाण धन्य है, जहाँ इस प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता।" इन्हीं तीन विचारों के साथ उसने वह पीड़ा सहन की। फिर उसने अपने पति को बुद्ध के पास अपनी ओर से प्रणाम करने के लिए भेजा। जब उसके पति ने बुद्ध को प्रणाम किया और उसका संदेश दिया, तो बुद्ध ने कहा, "कोलिया कुल की युवती सुप्पावासा स्वस्थ रहे; वह स्वस्थ और सुखी पुत्र को जन्म दे।"

जैसे ही बुद्ध ने ये शब्द कहे, सुप्पावासा ने एक स्वस्थ और सुखी पुत्र को जन्म दिया। उन्होंने तुरंत बुद्ध की अध्यक्षता वाले संघ के भिक्षुओं को अपने अतिथि के रूप में आमंत्रित किया और सात दिनों तक उदारतापूर्वक दान दिया। जन्म के दिन से ही उनके पुत्र ने छलनी सहित एक जलपात्र लेकर भिक्षुओं की सभा के लिए जल छानना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद उन्होंने संसार त्याग दिया, भिक्षु बन गए और अर्हतत्व प्राप्त किया। एक दिन भिक्षु सत्य के कक्ष में चर्चा करने लगे: "हे भाइयों, जरा सोचो! अर्हतत्व प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी गुणों से युक्त यह महान भिक्षु अपनी माता के गर्भ में इतने समय तक कष्ट सहता रहा! इस भिक्षु ने कितना बड़ा कष्ट सहा होगा!" बुद्ध पास आए और पूछा, "भिक्षुओं, आप सब यहाँ एकत्रित होकर किस विषय पर चर्चा कर रहे हैं?" जब उन्होंने उसे बताया, तो उसने कहा, "भिक्षुओं, बात बिल्कुल सही है। मेरे पुत्र को इन सभी कष्टों से मुक्ति मिल गई है, और अब निर्वाण प्राप्त करके वह उसके आनंद में लीन है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 414)

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहं अक्कागा<br>
तिनो परागतो झायी अनेजो अकथाकथी<br>
अनुपादाय निब्बुतो तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यो : यदि कोई; इम : यह; पलिपथं [ पलिपथ ]: दलदल का मार्ग; दुग्गं [ दुग्ग ]: कठिन पारगमन; संसारं [ संसार ]: अस्तित्व का चक्र; मोहम् : अज्ञान; अच्चगा : पार कर गया है; तिन्नो [ तिन्न ]: दूसरे किनारे पर पहुँच गया है; पारगतो [ पारगता ]: पूरी तरह से दूसरी ओर चला गया है; झायी : ध्यान करता है; अनेजो [ अनेज ]: लालसा से रहित है; अकथंकथी : संदेह दूर कर लिया है; अनुपादाय : लोभ से रहित है; निब्बुतो [ निब्बुत ]: शांत है; स्थिर है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें

वह वासना के दलदल को पार कर चुका है। वह दोषों के कठिन मार्ग से परे जाकर जीवन चक्र को पार कर चुका है। वह पूर्णतः दूसरे तट पर पहुँच चुका है। वह ध्यानमग्न है और व्यथा से मुक्त है। उसके सभी आध्यात्मिक संदेह दूर हो चुके हैं। वह अब लोभ में लिप्त नहीं है। वह शांत हो चुका है। ऐसे व्यक्ति को मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 414)

अरहत सीवाली की कथा : इस महा अरहत ने अतीत में सबसे अधिक दान दिया। उन्होंने दान देने की कला का पूर्णतः अभ्यास किया। समय के साथ वे दान प्राप्त करने वालों के राजकुमार बन गए। उनके जीवन में एक उल्लेखनीय घटना तब घटी जब उनका जन्म विपस्सी बुद्ध के युग में हुआ था। उस समय राजा और उनकी प्रजा दान देने की कला में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। बुद्ध और संघ को दान देने का एक उत्सव चल रहा था। यह एक स्वस्थ और सुखद प्रतिस्पर्धा का विषय था। जब प्रजा की बारी आई, तो उनके पास दूध और शहद की कमी हो गई। यह भोजन दान देने में सफलता का मार्ग प्रशस्त करता था। उन्होंने पर्याप्त धन के साथ एक व्यक्ति को नगर द्वार पर निगरानी के लिए तैनात किया। उसकी मुलाकात एक युवक से हुई जो उनकी आवश्यकता की वस्तुएँ लेकर आ रहा था। खरीदार खरीदने के लिए उत्सुक था, लेकिन विक्रेता उतना उत्साहित नहीं था। परिणामस्वरूप, सौदेबाजी बहुत ज़ोर-शोर से हुई। पूर्व में सौदेबाजी की तुलना नदी में नाव चलाने से की जाती है। बोली एक सोने के सिक्के से शुरू हुई। भिक्षादान के बारे में जानकर विक्रेता पुण्य का भागी बनना चाहता था। यह जानकर कि कोई बाधा नहीं है, उसने पूछा कि क्या उनमें से कोई एक हजार सोने के सिक्के दे सकता है। यह जानकर कि कोई नहीं है, उसने कहा कि दही और शहद का बर्तन दो हजार सिक्कों के बराबर है और यदि अनुमति हो तो वह इसे मुफ्त में देने को तैयार है। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। हमें बताया जाता है कि बुद्ध की शक्ति से दही और शहद पर्याप्त पाए गए। उस अवसर पर उसकी यह इच्छा थी कि एक दिन वह दान प्राप्त करने वालों का मुखिया बने। इसके बाद, उसका गर्भ कोलिया के

राजा की पुत्री सुप्पावासा के गर्भ में आया। परिवार को अनेक वरदान प्राप्त हुए। भूमि उपजाऊ हो गई और खेतों में रिकॉर्ड तोड़ फसल हुई। जो कुछ भी दिया गया, प्राप्तकर्ता पूरी तरह संतुष्ट था। लेकिन माता और पुत्र दोनों ही अतीत के अकुशल कर्मों से अछूते नहीं थे । यदि संतान कमतर होती तो परिणाम दुखद होता। श्रद्धा ने चमत्कार कर दिखाया। बुद्ध में लोगों को एक निश्चित मार्गदर्शक मिला और कल्याण मित्रतासुप्पावास को स्वाभाविक रूप से लगा कि वह मृत्यु के करीब हैं। क्योंकि सातवें वर्ष के अंत में उन्हें असहनीय पीड़ा हुई। तब उन्होंने अपने पति से विनती की कि वे बुद्ध और संघ के सभी सदस्यों को भिक्षा देने के लिए आमंत्रित करें। आमंत्रण मिलने पर भगवान बुद्ध ने देखा कि माता और पुत्र दोनों का उद्धार होगा। उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया और उसी क्षण बालक का जन्म हुआ। अत्यंत हर्षोल्लास हुआ। पति, जो अपना उदास घर छोड़कर गए थे, उल्लास और आनंद के बीच लौटे। इसलिए पुत्र का नाम सिवली रखा गया। इसके बाद सात दिनों तक बुद्ध और संघ के सभी सदस्यों को भिक्षा दी गई। सिवली अत्यंत प्रतिभावान बालक थे। सात दिनों के बाद - जब वे लगभग सात वर्ष के थे - बालों की पहली लट मुंडते ही उन्होंने संतत्व की पहली धारा में प्रवेश किया और अंतिम लट मुंडते ही वे पूर्णतः अर्हत बन गए। संघ में यह सर्वविदित था कि पूज्य सिवली दान प्राप्त करने वालों में सर्वोपरि थे।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 415

---

(धम्मपद 414) <<<< पिछला || धम्मपद 415 || अगला >>>> (धम्मपद 416-I)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 415 - सुन्दरसमुद्दत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha kime pahantvana
anagaro paribbaje
कामभवपरिक्खिनाम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 415 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में इंद्रिय सुखों का त्याग कर गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने इंद्रिय इच्छाओं का नाश कर लिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

---

थेरा सुंदरसमुद्दा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा सुंदरसमुद्दा के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (415) कहा।

सुंदरसमुद्दा सावत्थी के एक धनी व्यक्ति के पुत्र थे। दीक्षा लेने के बाद वे ध्यान साधना करने के लिए सावत्थी से पैंतालीस योजन दूर स्थित राजगृह चले गए। एक दिन, जब सावत्थी में कुछ उत्सव चल रहे थे, सुंदरसमुद्दा के माता-पिता को उनकी बहुत याद आई; उन्हें अपने पुत्र के लिए भी बहुत दुख हुआ जो इन सभी सुख-सुविधाओं से वंचित था और वे रोने लगे। जब वे रो रहे थे, तभी एक वेश्या उनके पास आई और पूछा कि क्या बात है। उनके पुत्र के बारे में सुनकर वेश्या ने कहा, "यदि मैं आपके पुत्र को दीक्षा छोड़कर गृहस्थ जीवन में वापस ला सकूँ, तो आप मुझे क्या इनाम देंगे?" माता-पिता ने उत्तर दिया कि वे उसे धनवान बना देंगे। तब वेश्या ने बड़ी रकम माँगी और अपने कुछ अनुयायियों के साथ राजगृह चली गई।

राजगृह में, उसने एक सात मंजिला मीनारों वाला मकान किराए पर लिया, जो उस रास्ते पर था जहाँ थेरा सुंदरसमुद्दा भिक्षा मांगने आते थे। उसने अच्छा भोजन तैयार किया और उनका इंतज़ार करने लगी। पहले कुछ दिनों तक, उसने अपने घर के द्वार पर थेरा को भिक्षा दी। बाद में, उसने उन्हें अंदर आने का निमंत्रण दिया। इसी बीच, उसने कुछ बच्चों को पैसे देकर घर के ठीक बाहर खेलने के लिए भेज दिया, लगभग उसी समय जब थेरा भिक्षा मांगने आते थे। इससे उसे यह बहाना मिल गया कि निचली मंजिल पर बहुत धूल और शोर है; इसी बहाने उसने थेरा को ऊपरी मंजिल पर भिक्षा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। थेरा मान गए और ऊपर चले गए, और जैसे ही वे कमरे में दाखिल हुए, वेश्या ने दरवाजा बंद कर दिया। फिर उसने थेरा को रिझाने का प्रयास शुरू कर दिया। उसने थेरा से कहा, "आदरणीय महोदय! कृपया मेरे युवा और ऊर्जावान पति बनें, और मैं आपकी प्रिय पत्नी बनूँगी। हमारे लंबे और सुखी वैवाहिक जीवन के बाद हम दोनों संन्यास ग्रहण करके निर्वाण प्राप्त करने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेंगे।" ये शब्द सुनकर थेरा को अचानक अपनी गलती का एहसास हुआ और वे घबरा गए। फिर उन्होंने मन ही मन कहा, "वास्तव में, लापरवाही और असावधानी के कारण मैंने बहुत बड़ी गलती कर दी है।"

उसी क्षण, बुद्ध ने अपने सुगंधित कक्ष से राजगृह में थेरा सुंदरसमुद्दा के साथ घटित हो रही घटना को देखा। उन्होंने पूज्य आनंद को बुलाया और उनसे कहा, "आनंद! राजगृह में एक शिखर भवन की ऊपरी मंजिल पर सुंदरसमुद्दा और एक वेश्या के बीच संघर्ष चल रहा है; परन्तु अंत में थेरा की ही विजय होगी।" आनंद से यह कहने के बाद, बुद्ध ने अपना प्रकाश थेरा पर भेजा, उन्हें अपनी उपस्थिति का अहसास कराया और कहा, "हे मेरे पुत्र! दृढ़ निश्चय करो और धन और इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का त्याग करो।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 415 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में इंद्रिय सुखों का त्याग कर गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने इंद्रिय इच्छाओं का नाश कर लिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

---

प्रवचन के अंत में थेरा ने अरहतत्व प्राप्त किया और अलौकिक शक्ति से छत को पार करके आकाश में चले गए और बुद्ध के पास पहुंचे।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

एक वेश्या एक भिक्षु को लुभाती है (सुंदरा समुद्दा)

यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन मठ में निवास करते समय, पूज्य सौंदर्य सागर, सुंदरसमुद्दा के संदर्भ में सुनाया था। कहा जाता है कि सावत्थी में, चालीस अरब खजाने वाले एक विशाल परिवार में, सौंदर्य सागर, सुंदरसमुद्दा कुमार नामक एक प्रतिष्ठित युवक का पुनर्जन्म हुआ। एक दिन नाश्ते के बाद, उन्होंने देखा कि बहुत से लोग अपने हाथों में इत्र और मालाएँ लिए जेतवन जा रहे हैं, धम्म का प्रवचन सुनने के लिए। उन्होंने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "बुद्ध का धम्म प्रवचन सुनने।" उन्होंने कहा, "मैं भी चलूँगा," और उनके साथ सभा के बाहरी घेरे में बैठ गए। बुद्ध के प्रवचन ने उन्हें संसार से संन्यास लेने के लिए प्रेरित किया। इसलिए, जब सभा विदा हुई, तो उन्होंने बुद्ध से संघ में शामिल होने का अनुरोध किया। बुद्ध ने कहा, "बुद्ध किसी को भी संघ में तब तक शामिल नहीं करते जब तक कि उसने पहले अपने माता-पिता से अनुमति न ले ली हो।" उनकी अनुमति प्राप्त करने के बाद, उन्होंने संसार त्याग दिया और बुद्ध द्वारा संघ में प्रवेश प्राप्त किया। इसके बाद, उन्होंने संघ के सदस्य के रूप में पूर्ण प्रतिज्ञा ली। तब उन्होंने मन में विचार किया, "यहाँ रहने का क्या लाभ?" अतः जेतवन छोड़कर वे राजगृह गए और वहाँ भिक्षा मांगने में अपना समय व्यतीत किया।

एक दिन सावत्थी में एक उत्सव था, और उस दिन सौंदर्य के सागर के माता-पिता ने अपने पुत्र के मित्रों को बड़े वैभव और वैभव के बीच आनंद लेते देखा। यह देखकर वे रोने और विलाप करने लगे, और कहने लगे, "अब तो हमारे पुत्र के बस की बात नहीं रही।" उसी क्षण एक वेश्या घर आई और उसकी माता को रोते हुए देखकर उससे पूछा, "माँ, आप क्यों रो रही हैं?" "मैं अपने पुत्र के बारे में सोचती रहती हूँ; इसीलिए रो रही हूँ।" "लेकिन, माँ, वह कहाँ है?" "संतों के बीच, संसार से विमुख होकर।" "क्या उसे संसार में वापस लाना उचित नहीं होगा?" "हाँ, बिल्कुल; लेकिन वह ऐसा नहीं चाहता। वह सावत्थी छोड़कर राजगृह चला गया है।" "मान लीजिए कि मैं उसे संसार में वापस लाने में सफल हो जाऊँ, तो आप मेरे लिए क्या करेंगे?" "हम आपको इस घर की सारी संपत्ति की स्वामिनी बना देंगे।" "ठीक है, मुझे मेरे खर्च दे दो।"

अपने खर्चों की राशि लेकर वह अपने साथ एक बड़ा दल लेकर राजगृह गई। पूज्यवर जिस गली में भिक्षा मांगने जाया करते थे, उसे ध्यान में रखते हुए उसने उसी गली में एक मकान लिया और उसमें रहने लगी। सुबह सवेरे वह उत्तम भोजन तैयार करती और जब पूज्यवर भिक्षा मांगने गली में आते, तो वह उन्हें भिक्षा देती। कुछ दिन बीतने के बाद उसने उनसे कहा, "पूज्यवर, यहीं बैठिए और भोजन कीजिए।" ऐसा कहते हुए उसने उनका भिक्षापात्र लेने की पेशकश की और पूज्यवर ने सहर्ष अपना भिक्षापात्र दे दिया। फिर उसने उन्हें

उत्तम भोजन परोसा और ऐसा करने के बाद उनसे कहा, "पूज्यवर, भिक्षा मांगने के लिए यह सबसे रमणीय स्थान है।" कुछ दिनों तक उसने उन्हें बरामदे में बैठने के लिए प्रेरित किया और वहाँ उन्हें उत्तम भोजन परोसा। उस स्त्री ने स्त्री के सभी गुणों और शालीनता का प्रयोग किया।

भिक्षु ने सोचा, "हाय, मैंने कितना बड़ा पाप कर दिया! मैंने अपने कर्मों पर ध्यान नहीं दिया।" और वह अत्यंत विचलित हुआ। उसी क्षण बुद्ध, यद्यपि पैंतालीस मील दूर जेतवन में विराजमान थे, उन्होंने यह सब देखा और मुस्कुराए। पूज्य आनंद ने उनसे पूछा, "पूज्यवर, आपके मुस्कुराने का कारण क्या है?" "आनंद, राजगृह नगर में, सात मंजिला महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर, सौंदर्य के सागर भिक्षु और एक वेश्या के बीच युद्ध चल रहा है।" "पूज्यवर, कौन जीतेगा और कौन हारेगा?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "आनंद, सौंदर्य के सागर भिक्षु जीतेंगे और वेश्या हारेगी।" इस प्रकार भिक्षु की विजय की घोषणा करते हुए, बुद्ध अपने स्थान पर बैठे रहे और उन्होंने अपनी एक प्रकाशमान छवि प्रकट की और कहा, "भिक्षु, दोनों कामवासनाओं का त्याग करो और इच्छाओं से मुक्त हो जाओ।" पाठ के अंत में भिक्षु ने अर्हतत्व प्राप्त किया, जादुई शक्ति से वायु में विलीन हो गए, मंदिर के गोलाकार शिखर से गुज़रते हुए, और एक बार फिर सावत्थी लौटकर बुद्ध के शरीर की स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। भिक्षुओं ने सत्य के हॉल में इस घटना पर चर्चा करते हुए कहा, "भाइयों, जीभ से बोध होने वाले स्वादों के कारण पूज्य सौंदर्य-सागर लगभग खो गए थे, परन्तु बुद्ध उनके उद्धारक बने।" बुद्ध ने उनकी बातें सुनकर कहा, "भिक्षुओं, यह पहली बार नहीं है कि मैं स्वाद की लालसा के बंधन में बंधे इस भिक्षु का उद्धारक बना हूँ; ऐसा ही एक पूर्व जन्म में भी हुआ था।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 415)

इधा यो कामे पहत्वाना अनागारो परिब्बाजे

कामभव परिक्खिनं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा : इस संसार में: यो : यदि कोई व्यक्ति; कामे : इंद्रिय सुखों का त्याग कर चुका है; अनागारो [ अनागारा ]: (अपना जीवन) निर्जन बन जाता है; परिब्बजे : तपस्वी जीवन; (भटकते तपस्वी का जीवन); कामभव परिक्खीण [ परिक्खीण ]: जीवन चक्र को जारी रखने की इच्छा से मुक्त हो गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मणो [ ब्राह्मण ]: ब्राह्मण घोषित करता हूँ

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 416-I

(धम्मपद 415) <<<< पिछला || धम्मपद 416-I || अगला >>>> (धम्मपद 416-II)

धम्मपद श्लोक 416-I - जतिलत्थेरा वत्थु

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha tanham pahantvana

anagaro paribbaje

तन्हभवपरिक्खिनाम

tamaham brumi brahmanam.

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

थेरा जटिला की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा जटिला के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक 416-1 (1) का उच्चारण किया।

कश्यप बुद्ध के परनिर्वाण के तुरंत बाद, एक अर्हत थेरा, कश्यप बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करने के लिए एक स्वर्ण स्तूप के निर्माण हेतु दान इकट्ठा करने के लिए निकले। थेरा एक सुनार के घर गए, जहाँ सुनार और उसकी पत्नी के बीच तीखी बहस चल रही थी। सुनार ने थेरा पर चिल्लाते हुए कहा, "बेहतर होगा कि तुम अपना स्तूप पानी में फेंक दो और चले जाओ।" तब सुनार की पत्नी ने सुनार से कहा, "यदि तुम मुझसे नाराज़ हो, तो केवल मुझे ही अपशब्द कहो; चाहो तो मुझे पीट भी सकते हो; लेकिन बुद्ध और थेरा को अपशब्द कहने की क्या आवश्यकता है? तुमने तो घोर पाप किया है!" उसकी बात सुनकर सुनार को अपने किए की गंभीरता का एहसास हुआ और उसने प्रायश्चित करने का निश्चय किया। अतः उसने कुछ स्वर्ण पुष्प बनाए, उन्हें तीन स्वर्ण कलशों में रखा और कश्यप बुद्ध के स्तूप के अवशेष कक्ष में स्थापित करने के लिए अर्पित कर दिए।

अपने वर्तमान जीवन में, उनका जन्म एक धनी व्यक्ति की पुत्री के गर्भ में हुआ था, जिसका किसी अन्य व्यक्ति से अवैध प्रेम संबंध था। जब बच्चा पैदा हुआ, तो उसने उसे एक घड़े में रखकर नदी में बहा दिया। नदी में स्नान कर रही एक युवती ने घड़े में बच्चे को देखा और उसे अपने साथ ले आई। उसने उसे गोद लिया और उसका नाम जटिला रखा। बाद में, एक थेरा की सलाह पर, उस युवती ने जटिला को तक्षशिला भेज दिया, जहाँ उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। तक्षशिला में रहते हुए, थेरा ने उनके लिए अपने एक शिष्य व्यापारी के घर में रहने की व्यवस्था की। कुछ समय बाद, जटिला ने व्यापारी की पुत्री से विवाह कर लिया। विवाह के तुरंत बाद, दंपति के लिए नवनिर्मित घर के पिछवाड़े में सोने का एक बड़ा ढेर प्रकट हुआ। इस विवाह से तीन पुत्रों का जन्म हुआ। इसके बाद, जटिला संघ में शामिल हो गए और कुछ ही दिनों में अर्हत बन गए।

एक बार जब बुद्ध जटिला समेत पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भिक्षा मांगने निकले, तो वे जटिला के पुत्रों के घर पहुँचे। जटिला के पुत्रों ने पंद्रह दिनों तक बुद्ध और उनके शिष्यों को भिक्षा दी। कुछ समय बाद, भिक्षुओं ने जटिला से पूछा कि क्या वह अब भी अपने सोने के ढेर और अपने पुत्रों से आसक्त हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब उन्हें उनसे कोई आसक्ति नहीं है। तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा कि जटिला अरहतत्व प्राप्त करने का झूठा दावा कर रहा है। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! जटिला ने भोग-विलास और अहंकार से मुक्ति पा ली है; उसने वास्तव में अरहतत्व प्राप्त कर लिया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

(1) श्लोक 416 में दो कहानियां हैं। आगे थेरा ज्योतिका की कहानी पढ़ें।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 416-2

---

(धम्मपद 416-I) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 416-II ‖ अगला >>>> (धम्मपद 417)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 416-2 - ज्योतिकत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Yo'dha tanham pahantvana

anagaro paribbaje
तन्हभवपरिक्खिनाम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

---

थेरा ज्योतिका की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा ज्योतिका के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक 416-II (1) का उच्चारण किया।
जोतिका राजगृह के एक प्रसिद्ध धनी व्यक्ति थे। वे सात मंजिला शिखरों वाले एक भव्य महल में रहते थे। उनके महल के चारों ओर सात दीवारें थीं, जिनमें से प्रत्येक के प्रवेश द्वार पर देवदूत पहरा देते थे। उनकी संपत्ति की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी और कई लोग उनके महल को देखने आते थे। एक बार राजा बिम्बिसार जोतिका से मिलने आए; वे अपने पुत्र अजातसत्तु को भी साथ लाए थे। अजातसत्तु ने जोतिका के महल की भव्यता देखकर प्रतिज्ञा की कि जब वे राजा बनेंगे तो जोतिका को ऐसे भव्य महल में रहने नहीं देंगे। राजा के विदा होने पर जोतिका ने उन्हें एक बड़ा अनमोल माणिक भेंट किया। जोतिका की यह प्रथा थी कि वे अपने सभी आगंतुकों को उपहार देते थे।
अपने पिता की हत्या करके जब अजातसत्तु सिंहासन पर बैठा, तो वह अपने सैनिकों के साथ ज्योतिका के महल पर जबरदस्ती कब्जा करने आया। लेकिन चूंकि सभी द्वारों पर दिव्य राक्षसों का पहरा था, इसलिए अजातसत्तु और उसके सैनिकों को पीछे हटना पड़ा। अजातसत्तु वेलुवन मठ में भाग गया और वहाँ उसने ज्योतिका को बुद्ध का प्रवचन सुनते हुए पाया। ज्योतिका को बुद्ध के चरणों में देखकर अजातसत्तु ने कहा, "अपने रक्षकों को मुझसे लड़वाने के बाद, अब तुम प्रवचन सुनने का नाटक कर रहे हो!" ज्योतिका समझ गया कि राजा जबरदस्ती उसका स्थान लेने आया था और उसे पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा था।
पिछले जन्म में ज्योतिका ने यह गंभीर मनोकामना की थी कि उनकी संपत्ति उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे न छीनी जाए, और यह मनोकामना पूरी हुई थी। इसलिए ज्योतिका ने राजा अजातसत्तु से कहा, "हे राजा! मेरी संपत्ति मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं छीनी जा सकती।" यह कहते हुए उन्होंने अपनी दस उंगलियां फैलाईं और राजा से अपनी उंगलियों में पहनी हुई बीस अंगूठियां उतारने को कहा। राजा ने उन्हें उतारने का बहुत प्रयास किया, लेकिन सफल नहीं हुए। तब ज्योतिका ने राजा से एक कपड़ा बिछाने को कहा और जैसे ही ज्योतिका ने अपनी उंगलियां कपड़े पर रखीं, उनकी सभी अंगूठियां आसानी से उतर गईं। राजा अजातसत्तु को अपनी सभी अंगूठियां देने के बाद, ज्योतिका ने बुद्ध से संघ में प्रवेश करने की अनुमति मांगी। संघ में प्रवेश करने के शीघ्र ही ज्योतिका ने अर्हत पद प्राप्त कर लिया।
एक दिन जब अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा कि क्या उनके मन में अपने महल, धन और पत्नी के लिए कोई लालसा शेष है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि अब उनके मन में इन सब के लिए कोई लालसा नहीं है। तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और बोले, "हे पूज्यवर! थेरा ज्योतिका दावा करते हैं कि उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है; वे झूठ बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! ज्योतिका सत्य कहते हैं; उनके मन में अब कोई लालसा नहीं है। वे अब अर्हत हैं।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 416 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने इस संसार में भोग-विलास त्याग दिया है, गृहस्थ जीवन छोड़कर भिक्षु बन गया है; जिसने भोग-विलास का नाश कर दिया है और अस्तित्व के अंत तक पहुँच गया है।

---

(1) श्लोक 416 में दो कहानियां हैं। थेरा जटिला की कहानी पढ़ें।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
अजातसत्तु ने ज्योतिका के महल पर हमला किया
यह श्लोक बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय पूज्य ज्योतिका के संदर्भ में पढ़ा था।
अजातसत्तु कुमार ने देवदत्त के साथ मिलकर अपने पिता बिम्बिसार की हत्या कर दी और राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। तब उसने मन ही मन कहा, "मैं अब कोषाध्यक्ष के महान महल ज्योतिका पर कब्जा करूँगा।" और युद्ध के लिए तैयार होकर वह निकल

पड़ा। परन्तु रत्नजड़ित दीवारों में अपनी और अपने दल की परछाई देखकर उसने यह निष्कर्ष निकाला, "गृहस्थ युद्ध के लिए तैयार होकर अपनी सेना के साथ आ गया है।" अतः उसने महल के पास जाने का साहस नहीं किया।

उस दिन कोषाध्यक्ष ने व्रत का दायित्व ग्रहण किया था और सुबह नाश्ते के तुरंत बाद मठ में जाकर बुद्ध के धर्मोपदेश सुनने बैठ गया था। जब प्रथम द्वार पर पहरा दे रहे यक्ष यमकोली ने अजातसत्तु कुमार को देखा, तो उसने पुकार कर पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?" और तुरंत ही अजातसत्तु कुमार और उसके साथियों को खदेड़कर उनका चारों ओर पीछा किया। राजा ने उसी मठ में शरण ली जहाँ कोषाध्यक्ष गया था। जब कोषाध्यक्ष ने राजा को देखा, तो वह अपनी कुर्सी से उठा और बोला, "महाराज, क्या बात है?" राजा ने कहा, "हे गृहस्थ, अपने आदमियों को मुझसे लड़ने का आदेश देने के बाद तुम यहाँ बैठकर धर्मोपदेश सुनने का नाटक क्यों कर रहे हो?"

कोषाध्यक्ष ने कहा, "महाराज, क्या आप मेरा घर छीनने के इरादे से निकले थे?" "जी हाँ, मैं इसी उद्देश्य से निकला था।" "महाराज, हज़ार राजा भी मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा घर नहीं छीन सकते।" इस पर अजातसत्तु क्रोधित हो गया और बोला, "लेकिन क्या तुम राजा बनना चाहते हो?" "नहीं," कोषाध्यक्ष ने उत्तर दिया, "मैं राजा नहीं बनना चाहता। लेकिन न तो राजा और न ही लुटेरे मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझसे एक छोटा सा धागा भी छीन सकते हैं।" "तो क्या मैं आपकी अनुमति से घर ले सकता हूँ?" "महाराज, मेरी दस उंगलियों में बीस अंगूठियाँ हैं। मैं उन्हें तुम्हें नहीं दूँगा। अगर तुम ले सकते हो तो ले लो।"

राजा जमीन पर बैठ गया और हवा में उछला, अठारह हाथ की ऊँचाई तक; फिर खड़ा होकर दोबारा हवा में उछला, अस्सी हाथ की ऊँचाई तक। लेकिन अपनी अपार शक्ति के बावजूद, चाहे वह इधर-उधर कितना भी मुड़ जाए, वह कोषाध्यक्ष की उंगलियों से एक भी अंगूठी नहीं निकाल सका। तब कोषाध्यक्ष ने राजा से कहा, "महाराज, अपना लबादा फैलाइए।" जैसे ही राजा ने अपना लबादा फैलाया, कोषाध्यक्ष ने अपनी उंगलियाँ सीधी कीं, और तुरंत ही सारी बीस अंगूठियाँ निकल गईं।

तब कोषाध्यक्ष ने उनसे कहा, "महाराज, मेरी इच्छा के विरुद्ध आप मेरी संपत्ति नहीं ले सकते।" राजा के इस कार्य से व्यथित होकर उन्होंने कहा, "महाराज, मुझे संसार त्याग कर भिक्षु बनने की अनुमति दीजिए।" राजा ने मन ही मन सोचा, "यदि यह कोषाध्यक्ष संसार त्याग कर भिक्षु बन जाए, तो मेरे लिए उसके महल पर अधिकार करना आसान हो जाएगा।" अतः उन्होंने एक शब्द में कहा, "भिक्षु बन जाओ।" इसके बाद कोषाध्यक्ष ज्योतिका ने संसार त्याग कर बुद्ध के शिष्य बन गए और कुछ ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे पूज्य ज्योतिका के नाम से जाने गए। अर्हतत्व प्राप्त करते ही उनका सारा धन और सांसारिक वैभव लुप्त हो गया और देवता उनकी पत्नी सतुलकाय को एक बार फिर उत्तरकुरु ले गए।

एक दिन भिक्षुओं ने ज्योतिका से कहा, "भाई ज्योतिका, क्या तुम्हें अपने महल या अपनी पत्नी की कोई लालसा है?" ज्योतिका ने उत्तर दिया, "नहीं, भाइयों।" तब भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ का दोषी है।" बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, यह बिल्कुल सत्य है कि मेरे पुत्र को इनमें से किसी भी चीज की लालसा नहीं है।" और धम्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने यह श्लोक सुनाया।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 416)

इधा यो तन्हां पहत्वाना अनागारो परिब्बाजे

तन्हाभाव परिक्खिनं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

इधा : इस संसार में; यो : यदि कोई; तन्हं [ तन्ह ]: लालसा; पहत्वाना : त्याग दिया है; अनागारो [ अनागार ]: (घर ले जाया गया) बेघर; परिब्बजे : एक भटकते तपस्वी का जीवन; तन्हाभव परिक्खीण [ परिक्खीण ]: जीवन चक्र को जारी रखने की लालसा से मुक्त हो गया है; तं : उसे; अहं : मैं; ब्रूमि ब्राह्मण [ ब्राह्मण ]: एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

इस संसार में उन्होंने घुमंतू तपस्वी का जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया है। उन्होंने जीवन चक्र को जारी रखने की लालसा का त्याग कर दिया है। मैं ऐसे व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 417

———————————————————————

(धम्मपद 416-II) <<<< पिछला ॥ धम्मपद 417 ॥ अगला >>>> (धम्मपद 418)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 417 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण
हित्वा मनुसकम योगम
dibbam yogam upaccaga
सब्बयोगविसाम्युत्तम
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 417 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने मनुष्य जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) का त्याग कर दिया है, देव (देवदूत) जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) से परे जाकर सभी आसक्ति से पूर्णतः मुक्त हो गया है।

---

थेरा नटपुत्तका की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (417) का उच्चारण किया, जो एक नर्तकी के पुत्र थे, थेरा नटपुत्तक के संदर्भ में।

एक बार एक नर्तक का पुत्र गलियों में गाते-नाचते घूम रहा था, तभी उसे बुद्ध का प्रवचन सुनने का अवसर मिला। प्रवचन सुनने के बाद उसने संघ में प्रवेश किया और शीघ्र ही अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। एक दिन जब बुद्ध और नटपुत्तक सहित अन्य भिक्षु भिक्षा मांगने जा रहे थे, तो उन्हें गली में एक अन्य नर्तक का पुत्र नाचता हुआ मिला। उस युवक को नाचते देख अन्य भिक्षुओं ने नटपुत्तक से पूछा कि क्या उसे अभी भी नृत्य करना पसंद है। नटपुत्तक ने उत्तर दिया, "नहीं, मुझे नहीं।" तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें बताया कि थेरा नटपुत्तक झूठा दावा कर रहा है कि उसने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया है। इस पर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं! नटपुत्तक सभी आसक्ति के बंधनों से मुक्त हो गया है; वह अर्हत बन गया है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 417 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने मनुष्य जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) का त्याग कर दिया है, देव (देवदूत) जीवन के आसक्ति (इंद्रिय सुखों) से परे जाकर सभी आसक्ति से पूर्णतः मुक्त हो गया है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

उस भिक्षु की कहानी जो कभी मूक कलाकार हुआ करता था

कहा जाता है कि एक मूक अभिनय करने वाला (अभिनेता), जो जगह-जगह प्रदर्शन करता था, ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना, जिसके बाद उसने संसार त्याग दिया, भिक्षु बन गया और अर्हतत्व प्राप्त किया। एक दिन, जब वह बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह के साथ भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश कर रहा था, तो भिक्षुओं ने एक मूक अभिनय करने वाले को प्रदर्शन करते देखा। तब उन्होंने उस भिक्षु से, जो कभी मूक अभिनय करता था, पूछा, "भाई, वह मूक अभिनय करने वाला ठीक वैसा ही प्रदर्शन कर रहा है जैसा आप किया करते थे; क्या आपको इस प्रकार के जीवन की कोई लालसा नहीं है?" "नहीं, भाई," भिक्षु ने उत्तर दिया। भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "आदरणीय, यह भिक्षु असत्य बोलता है, यह झूठ का दोषी है।" जब बुद्ध ने उनकी यह बात सुनी, तो उन्होंने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र ने सभी बंधनों को पार कर लिया है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 417)

मानुसकं योगं हित्वा दिब्बं योगं उपचगा
सभ योग विसं युत्तं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

मानुसकं योगं [ योग ]: मानवीय बंधन; हित्वा : त्याग दिया; दिब्बं योगं [ योग ]: दिव्य; स्वर्गीय बंधन; उपच्चगा : पार कर लिया; सब्बा योग विसं युत्तं [ युत्त ]: सभी बंधनों से मुक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ

उन्होंने मानवता से जुड़े बंधनों का त्याग कर दिया है। वे स्वर्ग में जीवन के आसक्ति बंधनों से भी परे जा चुके हैं। इस प्रकार वे सभी बंधनों से मुक्त हो गए हैं। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 417)

यह श्लोक एक मूक अभिनयकर्ता की कहानी से प्रेरित है। इस व्यक्ति ने अथक परिश्रम से आध्यात्मिक साधना के सर्वोच्च फल प्राप्त किए। इस आध्यात्मिक प्रयास को 'पधान ' कहा गया है। अष्टांग मार्ग ( सम्मा-वायाम ) के छठे चरण में चार उचित प्रयास ( सम्मा-पधान ) इस प्रकार हैं: (1) बचने का प्रयास ( संवर-पधान ), (2) विजय प्राप्त करने का प्रयास ( पहाना ), (3) विकास करने का प्रयास (

भावना ), (4) बनाए रखने का प्रयास ( अनुरक्खण ): (i) अकुशल अवस्थाओं, जैसे बुरे विचारों आदि से बचने का प्रयास , (ii) अकुशल अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयास, (iii) लाभकारी अवस्थाओं , जैसे ज्ञान के सात तत्वों ( बोज्झंग ) का विकास करने का प्रयास , (iv) लाभकारी अवस्थाओं को बनाए रखने का प्रयास।

भिक्षु अपनी इच्छाशक्ति को जागृत करता है ताकि असंपूर्ण और अवांछित तत्वों को उत्पन्न होने से रोका जा सके ... उन पर विजय प्राप्त की जा सके ... उन अवांछित तत्वों को विकसित किया जा सके... उन्हें बनाए रखा जा सके , उन्हें लुप्त न होने दिया जाए, बल्कि उन्हें विकास, परिपक्वता और पूर्णता की ओर ले जाया जा सके। वह प्रयास करता है, अपनी ऊर्जा को समेटता है, अपने मन को लगाता है और मेहनत करता है।

(1) हे भिक्षुओं, अब प्रयास क्या है? किसी रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, शारीरिक या मानसिक अनुभूति को ग्रहण करते हुए, भिक्षु न तो संपूर्ण पर ध्यान देता है और न ही उसके अंशों पर। वह उन चीजों से बचने का प्रयास करता है जिनसे लोभ और दुःख जैसी बुरी और अस्वस्थ चीजें उत्पन्न हो सकती हैं, यदि वह इंद्रियों को अनियंत्रित छोड़ दे; और वह अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, उन्हें वश में करता है। इसे ही प्रयास कहा जाता है।

(2) अब किस बात पर विजय प्राप्त करने का प्रयास है? भिक्षु कामुक वासना या किसी अन्य बुरी, अस्वास्थ्यकर अवस्था का कोई विचार अपने मन में नहीं रखता; वह उन्हें त्याग देता है, उनका निवारण करता है, उन्हें लुप्त कर देता है। इसी को विजय प्राप्त करने का प्रयास कहते हैं।

(3) अब किस चीज़ को विकसित करने का प्रयास है? भिक्षु एकांत, वैराग्य, निर्गमन और मुक्ति की ओर उन्मुख होकर ज्ञानोदय के कारकों को विकसित करता है, अर्थात्, सती ( सती ), धम्मविचय ( धम्मविचय ), समाधि ( समाधि ), प्रयास ( वीर्य ), पीति ( आनंद ), विश्राम ( पस्साद्धि ), समभाव ( उपेक्खा )। इसे ही विकास का प्रयास कहा जाता है।

(4) अब किस बात को बनाए रखने का प्रयास है? भिक्षु अपने मन में एकाग्रता के लिए किसी अनुकूल वस्तु को दृढ़ता से धारण करता है, जैसे कि कंकाल की मानसिक छवि, कृमिग्रस्त शव, नीले-काले रंग का शव, सड़ता हुआ शव, घावों से भरा शव, सूजा हुआ शव। इसे ही बनाए रखने का प्रयास कहा जाता है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 418

---

(धम्मपद 417) <<<< पिछला || धम्मपद 418 || अगला >>>> (धम्मपद 419 और 420)

---

अंतर्वस्तु



## धम्मपद श्लोक 418 - नटपुत्तकत्थेरा वत्थु

---

### डॉ म्या टिन संस्करण

Hitva ratim ca aratim ca
sitabultam nirupadhim(1)
sabbalokabhihhum(2) viram
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 418 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने (इंद्रिय सुखों में) आनंद लेना त्याग दिया है और (एकांत में) आनंद नहीं लेता; जिसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है और नैतिक विकारों से मुक्त है; जिसने सभी पाँच खंधों (शाब्दिक रूप से, संसार) पर विजय प्राप्त कर ली है और परिश्रमी है।

---

1. निरुपधिम: टीका के अनुसार, "निरुपधिम ति निरुपक्किलसम", अर्थात, आधार से मुक्त या नैतिक दोषों से मुक्त (किलेसा)।

2. सब्बलोकभिह्हुम: शाब्दिक अर्थ, जिसने समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर ली हो, अर्थात् जिसने पुनर्जन्मों का अंत कर दिया हो, या खन्धों के उद्भव को समाप्त कर दिया हो।

———————————————————————————

थेरा नटपुत्तका की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (418) का उच्चारण किया, जो एक अन्य नर्तकी के पुत्र, एक अन्य थेरा नटपुत्तक के संदर्भ में था।
पिछली कहानी की तरह ही, एक नर्तक के पुत्र ने संघ में प्रवेश किया और अर्हतत्व प्राप्त किया। अन्य भिक्षु बुद्ध के पास गए और उन्हें थेरा नटपुत्तक के बारे में बताया, जिसने अर्हतत्व प्राप्त करने का दावा किया था। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! नटपुत्तक ने सभी चीजों में आनंद लेना त्याग दिया है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

———————————————————————————

श्लोक 418 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने (इंद्रिय सुखों में) आनंद लेना त्याग दिया है और (एकांत में) आनंद नहीं लेता; जिसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है और नैतिक विकारों से मुक्त है; जिसने सभी पाँच खंधों (शाब्दिक रूप से, संसार) पर विजय प्राप्त कर ली है और परिश्रमी है।

———————————————————————————

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उस भिक्षु की कहानी जो कभी मूक कलाकार हुआ करता था
यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने वेलुवन में निवास करते समय एक ऐसे भिक्षु के संदर्भ में दिया था जो कभी मूक अभिनय करता था।
यह कहानी पहले वाली कहानी के समान ही है, सिवाय इसके कि इस अवसर पर बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र ने सुख और दुख दोनों को त्याग दिया है।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 418)
रतिं च अरतिं च हित्वा सतीभूतं निरूपधिं
सब्बलोकाभिभूं वीरं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
रतं च : कामवासना और निर्वाहिता दोनों; हित्वा : त्याग दिया; सीतिभूतं [ सीतिभूत ]: वह शांत, स्थिर और शीतल हो गया है; निरूपधिं [ निरूपधि ]: पूर्णतः दोषों से मुक्त; सब्बलोकभिभु [ सब्बलोकभिभु ]: जिसने समस्त विश्व पर विजय प्राप्त कर ली है; वीरं [ वीर ] : परिश्रम से परिपूर्ण; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।
उसने कामवासना का त्याग कर दिया है। उसने ध्यान साधना के प्रति अपनी अरुचि का भी त्याग कर दिया है। इस प्रकार, वह कामवासना से रहित भी है और कामवासना से मुक्त भी। उसने पूर्ण शांति प्राप्त कर ली है। वह हाथ को दूषित करने वाले दोषों से मुक्त है। उसने समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर ली है और वह परिश्रम से परिपूर्ण है। मैं ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 418)
निरूपधि : उपाधि से मुक्त । उपाधि का अर्थ है: अस्तित्व का आधार। टीकाओं में इसके चार प्रकार बताए गए हैं: पाँच समूह ( खन्ध ), काम , मानसिक दोष ( किलेष ), और कर्म। सूत्र में यह अक्सर आता है और निर्वाण के संदर्भ में "सभी आधारों का त्याग" ( सब्ब ' उपाधिपतिनिसग्गो ) वाक्यांश में मिलता है। उपाधि से विरक्ति , अस्तित्व का अवक्रम, विवेकवा की ओर ले जाता है , जिसका अर्थ है वैराग्य, एकांत। निद्देश के अनुसार, विवेकवा तीन प्रकार का होता है: (1) शारीरिक वैराग्य ( काया-विवेक ), अर्थात् आकर्षक इंद्रिय-संबंधी वस्तुओं से मुक्त एकांत में रहना; (2) मानसिक वैराग्य ( चित्त-विवेक ), जैसे इंद्रिय-संबंधी चीजों से आंतरिक वैराग्य; (3) अस्तित्व के आधार से वैराग्य ( उपधि-विवेक )।
वीरं : वीर। यहाँ इस शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक अर्थ में ऐसे व्यक्ति के लिए किया गया है जो आध्यात्मिक पौरुष से परिपूर्ण हो। इस पौरुष को वीरय कहा जाता है : ऊर्जा, शाब्दिक अर्थ है पौरुष, पुरुषत्व या वीरता ( वीर से व्युत्पन्न, पुरुष, वीर)। वीरय पाँच आध्यात्मिक शक्तियों में से एक है , ज्ञानोदय के सात कारकों में से एक है और अष्टांगिक मार्ग के सही प्रयास के समान है। वीरय भी बल का एक रूप है। बल का अर्थ है शक्ति। विभिन्न शक्ति समूहों में से, ग्रंथों में निम्नलिखित पाँच सबसे अधिक बार पाए जाते हैं: (1) श्रद्धा ( सद्धा ), (2) ऊर्जा ( वीरय ), (3) सती ( सति ), (4) समाधि ( सम्मोहन ), (5) ज्ञान ( पञ्ञा )।
इन इंद्रियों की विशिष्ट विशेषता, जो इन्हें अन्य पाँच इंद्रिय शक्तियों से अलग करती है , यह है कि ये अपने विपरीत गुणों से अविचलित रहती हैं: (1) विश्वास की शक्ति अविश्वास से अविचलित रहती है, (2) ऊर्जा आलस्य से, (3) सजगता विस्मरण से, (4) एकाग्रता विचलितता से, (5) ज्ञान अज्ञान से। अतः ये इंद्रिय शक्तियों की दृढ़ता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शक्ति (1) धारा-विजेता के चार गुणों ( सोतापन्नस्स अंगानि ) में, (2) चार सही प्रयासों ( पधान ) में, (3) ध्यान के चार आधारों ( सतिपट्ठाना ) में, (4) चार समाधि ( झान ) में, और (5) चार आर्य सत्यों ( सच्च ) की पूर्ण समझ में प्रकट होती है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 419,420

———————————————————————

(धम्मपद 418) <<<< पिछला ‖ धम्मपद 419 और 420 ‖ अगला >>>> (धम्मपद 421)

———————————————————————

अंतर्वस्तु



धम्मपद छंद 419 और 420 - वंगीसत्थेरा वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Cutim yo vedi sattanam
upapattinca sabbaso
asattam sugatam buddham
tamaham brumi brahmanam.
Yassa gatim na jananti
देव गंधब्बामनुसा
खिनासवम् अरहन्तम्
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 419 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियों के जन्म और मृत्यु को विस्तार से जानता है, जो विरक्त है, जो अच्छे आचरण का पालन करता है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

———————————————————————

श्लोक 420 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसका गंतव्य देव (देवदूत) या गंधब या मनुष्य नहीं जानते, जिसने नैतिक मादक पदार्थों का उन्मूलन कर दिया है और जो एक अरहत है।

———————————————————————

थेरा वांगिसा की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा वंगीसा के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (419) और (420) का उच्चारण किया।
एक समय राजगृह में वांगिसा नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो किसी मृत व्यक्ति की खोपड़ी पर हल्के से स्पर्श करके बता देता था कि वह व्यक्ति देवताओं के लोक में, मनुष्यों के लोक में या चार निम्न लोकों (अपय) में से किसी एक में पुनर्जन्म लेगा। ब्राह्मण वांगिसा को कई गांवों में ले जाते थे और लोग उसके पास आते थे और अपने मृत रिश्तेदारों के पुनर्जन्म के स्थान का पता लगाने के लिए उसे दस, बीस या सौ रुपये देते थे।
एक बार वांगिसा और उनके साथी जेतवन मठ से कुछ ही दूरी पर एक स्थान पर पहुँचे। बुद्ध के पास जा रहे उन लोगों को देखकर ब्राह्मणों ने उन्हें वांगिसा के पास आने का निमंत्रण दिया, क्योंकि वांगिसा बता सकते थे कि उनके रिश्तेदारों का पुनर्जन्म कहाँ हुआ था। लेकिन बुद्ध के शिष्यों ने उनसे कहा, "हमारे गुरु अद्वितीय हैं, वे ही एकमात्र प्रबुद्ध हैं।" ब्राह्मणों ने इस कथन को एक चुनौती के रूप में लिया और बुद्ध से प्रतिस्पर्धा करने के लिए वांगिसा को अपने साथ जेतवन मठ ले गए। बुद्ध ने उनके इरादे को जानते हुए भिक्षुओं को निरयण/नरक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, पशुलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति, देवलोक में पुनर्जन्म लेने वाले व्यक्ति और एक अरहत की खोपड़ियाँ लाने का निर्देश दिया। फिर उन पाँचों खोपड़ियों को एक पंक्ति में रखा गया। जब वांगिसा को वे खोपड़ियाँ दिखाई गईं, तो वे पहली चार खोपड़ियों के मालिकों के पुनर्जन्म के स्थान बता सके, लेकिन जब वे अरहत की खोपड़ी पर पहुँचे, तो वे असमंजस में पड़ गए। तब बुद्ध ने कहा, "वांगिसा, क्या तुम नहीं जानते? मुझे पता है कि उस खोपड़ी का

स्वामी कहाँ है।" तब वांगिसा ने बुद्ध से वह मंत्र (जादुई मंत्र) माँगी जिससे वह यह जान सके; परन्तु बुद्ध ने कहा कि वह मंत्र केवल भिक्षु को ही दिया जा सकता है। तब वांगिसा ने ब्राह्मणों से कहा कि जब तक उसे मंत्र सिखाया जा रहा है, वे मठ के बाहर प्रतीक्षा करें। इस प्रकार, वांगिसा भिक्षु बन गया और भिक्षु के रूप में, बुद्ध ने उसे शरीर के बत्तीस तत्वों का ध्यान करने का निर्देश दिया। वांगिसा ने बुद्ध के निर्देशानुसार लगन से ध्यान का अभ्यास किया और थोड़े ही समय में अर्हतत्व प्राप्त कर लिया।

जब मठ के बाहर प्रतीक्षा कर रहे ब्राह्मण वांगिसा से यह पूछने आए कि क्या उन्होंने मंत्र प्राप्त कर लिया है, तो वांगिसा ने कहा, "आप सभी को अब चले जाना चाहिए; मैं अब आपके साथ नहीं चलूँगा।" अन्य भिक्षुओं ने यह सुनकर सोचा कि वह झूठ बोल रहे हैं, इसलिए वे बुद्ध के पास गए और कहा, "आदरणीय गुरुदेव! वांगिसा अरहतत्व प्राप्त करने का झूठा दावा कर रहे हैं।" बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! वांगिसा वास्तव में प्राणियों के जन्म और मृत्यु को जानते हैं।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 419 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियों के जन्म और मृत्यु को विस्तार से जानता है, जो विरक्त है, जो अच्छे आचरण का पालन करता है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

---

श्लोक 420 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, जिसका गंतव्य देव (देवदूत) या गंधब या मनुष्य नहीं जानते, जिसने नैतिक मादक पदार्थों का उन्मूलन कर दिया है और जो एक अरहत है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

खोपड़ी तराशने वाले की कहानी

ऐसा प्रतीत होता है कि राजगृह में वंगीसा नामक एक ब्राह्मण रहते थे, जो यह बता सकते थे कि मृत्यु के बाद मनुष्य किस अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं। वे मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर कहते थे, "यह खोपड़ी उस व्यक्ति की है जिसने नरक में पुनर्जन्म लिया है; यह व्यक्ति पशु के रूप में पुनर्जन्म लिया है; यह व्यक्ति प्रेत के रूप में पुनर्जन्म लिया है; यह खोपड़ी उस व्यक्ति की है जिसने मनुष्यलोक में पुनर्जन्म लिया है।"

ब्राह्मणों ने मन ही मन सोचा, "हम इस व्यक्ति का उपयोग दुनिया को लूटने के लिए कर सकते हैं।" इसलिए उन्होंने उसे दो लाल वस्त्र पहनाए और उसे अपने साथ देश-देश में ले गए। वे हर किसी से कहते, "यह ब्राह्मण वंगीसा मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर बता सकता है कि उनका पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है; उससे पूछो कि तुम्हारे अपने सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है।" लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे दस, बीस या सौ सिक्के देते और उससे पूछते कि उनके सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है। स्थान-स्थान यात्रा करने के बाद, वे अंततः सावत्थी पहुँचे और जेतवन के पास अपना निवास स्थान बनाया। नाश्ते के बाद उन्होंने देखा कि बड़ी संख्या में लोग अपने हाथों में इत्र, मालाएँ आदि लिए धम्म सुनने जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?" उत्तर मिला, "धम्म सुनने के लिए मठ जा रहे हैं।" ब्राह्मणों ने पूछा, "वहाँ जाकर आपको क्या लाभ होगा? हमारे साथी ब्राह्मण वंगीसा के समान कोई नहीं है। वे मृतकों की खोपड़ियों पर दस्तक देकर बता सकते हैं कि उनका पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है। उनसे पूछिए कि आपके अपने सगे-संबंधियों का पुनर्जन्म किस जन्म में हुआ है।" शिष्यों ने उत्तर दिया, "वंगीसा को क्या पता है? हमारे गुरु, जो बुद्ध हैं, उनके समान कोई नहीं है।" लेकिन ब्राह्मणों ने जवाब दिया, "वांगीसा जैसा कोई नहीं है," और विवाद और बढ़ गया। अंत में शिष्यों ने कहा, "चलो, अब हम पता लगाते हैं कि हम दोनों में से कौन अधिक ज्ञानी है, तुम्हारा वांगीसा या हमारा गुरु।" अतः वे ब्राह्मणों को अपने साथ लेकर मठ की ओर चल पड़े।

बुद्ध को जब पता चला कि वे आ रहे हैं, तो उन्होंने पाँच खोपड़ियाँ मंगवाईं और उन्हें एक पंक्ति में रख दिया। इनमें से एक खोपड़ी उन पुरुषों की थी जिनका पुनर्जन्म चार लोकों में हुआ था: नरक, पशुलोक, मनुष्यलोक और देवतालोक; और एक खोपड़ी उस पुरुष की थी जिसने अर्हतत्व प्राप्त किया था। जब वे पहुँचे, तो उन्होंने वंगीसा से पूछा, "क्या तुम वही पुरुष हो जिनके बारे में कहा जाता है कि मरे हुए पुरुषों की खोपड़ियों पर थपथपाकर तुम बता सकते हो कि उनका पुनर्जन्म किस लोक में हुआ है?" "हाँ," वंगीसा ने कहा। "तो यह खोपड़ी किसकी है?" वंगीसा ने खोपड़ी पर थपथपाकर कहा, "यह उस पुरुष की खोपड़ी है जिसका पुनर्जन्म नरक में हुआ है।" "बहुत खूब!" बुद्ध ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा। फिर बुद्ध ने उनसे अगली तीन खोपड़ियों के बारे में पूछा, और वंगीसा ने बिना कोई गलती किए उत्तर दिया। बुद्ध ने उनके प्रत्येक उत्तर पर उनकी प्रशंसा की और अंत में उन्हें पाँचवीं खोपड़ी दिखाई। "यह खोपड़ी किसकी है?" उन्होंने पूछा। वंगीसा ने पांचवीं खोपड़ी पर भी उसी तरह दस्तक दी जैसे उसने बाकी खोपड़ियों पर दी थी, लेकिन उसने स्वीकार किया कि वह नहीं जानता कि वह व्यक्ति अस्तित्व की किस अवस्था में पुनर्जन्म लिया था।

तब बुद्ध ने कहा, "वंगीसा, क्या तुम नहीं जानते?" "नहीं," वंगीसा ने उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता।" "मैं जानता हूँ," बुद्ध ने कहा। तब वंगीसा ने उनसे पूछा, "मुझे यह मंत्र सिखाइए।" "मैं इसे किसी गैर-भिक्षु को नहीं सिखा सकता।" ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "काश मैं यह मंत्र जानता, तो मैं जंबुद्वीप में सर्वोत्कृष्ट होता।" तदनुसार, उन्होंने अपने साथी ब्राह्मणों को यह कहकर विदा किया, "कुछ दिनों के लिए यहीं ठहरिए; मैं भिक्षु बनने जा रहा हूँ।" और वे बुद्ध के नाम पर भिक्षु बन गए, संघ के पूर्ण सदस्य के रूप में शामिल हुए, और उसके बाद पूज्य वंगीसा के नाम से जाने गए।

उन्होंने उन्हें शरीर के बत्तीस अंगों पर ध्यान लगाने के लिए कहा और उनसे कहा, "सूत्र के प्रारंभिक शब्दों का जाप करें।" उन्होंने उनके निर्देशों का पालन किया और सूत्र के प्रारंभिक शब्दों का जाप किया। समय-समय पर ब्राह्मण उनसे पूछते, "क्या आपने सूत्र सीख लिया है?" और पूज्यवर उत्तर देते, "थोड़ा इंतजार कीजिए! मैं सीख रहा हूँ।" कुछ ही दिनों में उन्होंने अर्हतत्व प्राप्त कर लिया। जब ब्राह्मणों ने उनसे फिर पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, "भाइयों, अब मैं इसे सीखने में असमर्थ हूँ।" जब भिक्षुओं ने उनका उत्तर सुना, तो उन्होंने बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, यह भिक्षु असत्य बात कह रहा है और झूठ बोल रहा है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, ऐसा मत कहो। भिक्षुओं, मेरा पुत्र अब प्राणियों के जन्म और मृत्यु के बारे में सब कुछ जानता है।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 419)

यो सत्तनं कुतिं च उपपत्तिं च सब्बासो वेदि

असत्तं सुगतं बुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यो : यदि कोई; सत्तनां [ सत्तना ]: प्राणियों में से; कुतिं [ कुति ]: क्षय; उपपत्तिं च : जन्म भी; सब्बसो [ सब्बसा ]: हर तरह से; वेदि : जानता है; असत्तं [ असत्त ]: जन्म या मृत्यु के किसी भी रूप से अनासक्त; सुगतं [ सुगत ]: अनुशासित मार्ग वाला; बुद्धं [ बुद्ध ]: ज्ञान से युक्त; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : सच्चे ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।

वह प्राणियों के जन्म और मृत्यु को हर प्रकार से जानता है। वह न तो जन्म से आसक्त है और न ही मृत्यु से। वह अपने उचित गंतव्य तक पहुँच चुका है। उसे सार का ज्ञान है। इस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 420)

यस्सा गतिं देवा गंधब्बा मानुषा न जानन्ति

खिन्नसवं अरहंतां तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यस्स : किसी का; गति : पुनर्जन्म की अवस्था; मार्ग; देवा : न देवता; गंधब्बा मानुसा : न आत्माएँ न मनुष्य; न जानन्ति : नहीं जानते; खीणासव : पूर्णतः दोषरहित; अरहन्त : उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर चुके हैं; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ

उनके मार्ग को न तो देवता, न आत्माएं, न मनुष्य समझ सकते हैं। उनके सारे दोष पूरी तरह से मिट गए हैं। उन्होंने उच्चतर आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त कर ली है। मैं इस व्यक्ति को ब्राह्मण घोषित करता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 419-420)

यह कथा कुतुपापात-ज्ञान से संबंधित है, जो प्राणियों के लुप्त होने और पुन: प्रकट होने का ज्ञान है। यह ज्ञान दिव्य दृष्टि — अभिज्ञा के समान है । अभिज्ञा शब्द का प्रयोग छह उच्चतर शक्तियों, या अलौकिक ज्ञान के लिए किया जाता है, जिनमें पाँच सांसारिक ( लोकीय ) शक्तियाँ शामिल हैं जो पूर्णतम मानसिक एकाग्रता ( समाधि ) के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं, और एक अलौकिक ( लोकउत्तरा ) शक्ति जो विपस्सना ( विपस्सना ) के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है, जैसे कि सभी दोषों का नाश होना , दूसरे शब्दों में, अरहतत्व की प्राप्ति। वे हैं: (1) जादुई शक्तियाँ ( इद्धि-विधा ), (2) दिव्य कान ( दिब्ब-सोता ), (3) दूसरों के मन में प्रवेश ( चेतो-परिया-ज्ञान ), (4) दिव्य दृष्टि ( दिब्ब-चक्खु ), (5) पूर्व जन्मों का स्मरण ( पुब्बे-निवासानुस्सति ), और (6) दोषों का निवारण ( आसवक्खय )।

हे भिक्षुओं, भिक्षु अनेक जादुई शक्तियों ( इद्धिविधा ) का आनंद लेता है, जैसे एक होकर अनेक रूपों में प्रकट होना और अनेक रूपों में प्रकट होकर फिर एक हो जाना। वह बिना किसी अवरोध के दीवारों और पहाड़ों को ऐसे पार कर जाता है मानो हवा में। वह धरती में गोता लगाता है और फिर ऊपर उठता है, मानो पानी में। वह पानी पर बिना डूबे चलता है, मानो धरती पर। वह पालथी मारकर हवा में ऐसे तैरता है जैसे कोई पक्षी। वह अपने हाथ से सूर्य और चंद्रमा को स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। यहाँ तक कि ब्रह्म जगत तक भी उसका अपने शरीर पर अधिकार है।

दिव्य कान ( दिब्बा-सोटा ) से वह दूर और पास की, स्वर्गीय और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनता है।

वह अन्य प्राणियों के मन को ( परस्स चेतो-परिया-ज्ञान ) अपने मन से भेदकर जान लेता है। वह लोभी मन को लोभी और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; घृणा करने वाले मन को घृणा करने वाला और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; भ्रमित मन को भ्रमित और निर्लोभी मन को निर्लोभी जानता है; संकुचित मन को विचलित, विकसित मन को अविकसित, श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ, एकाग्र मन को असंलग्न, मुक्त मन को मुक्त और अपरिभाषित जानता है।

दिव्य दृष्टि ( दिब्ब-चक्कु-यथा-कम्मूपग-ज्ञान या कुतुपपात-ज्ञान ) से, पवित्र प्राणी, प्राणियों के लुप्त होने और पुन: प्रकट होने को देखता है, नीच और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, वह देखता है कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे पुन: प्रकट होते हैं (संस्कृत काम): 'कुछ प्राणियों ने शारीरिक क्रियाओं, शब्दों और विचारों में बुरे मार्ग अपनाए, ऋषियों का अपमान किया, बुरे विचार रखे और अपने बुरे विचारों के अनुसार कर्म किए। मृत्यु के बाद, जब उनका शरीर नष्ट हो गया, तो वे निम्न लोकों में, कष्टदायी अवस्थाओं में, दुख के लोक में, नरक में प्रकट हुए। परन्तु वे दूसरे प्राणी, जो अच्छे कर्मों से संपन्न हैं... सुखी अवस्था में, स्वर्ग लोक में प्रकट हुए हैं...'
वह अनेक पूर्व जन्मों ( पब्बे-निवासानुसति ) को याद करता है, जैसे एक जन्म या एक लाख जन्म; संसारों के अनेक निर्माण और विनाश को याद करता है। 'मैं वहाँ था, मेरा यह नाम था... और वहाँ से लुप्त होकर मैं कहीं और अस्तित्व में आया... और वहाँ से लुप्त होकर मैं फिर यहाँ प्रकट हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को, उनके चिह्नों और विशिष्टताओं सहित, हमेशा याद रखता है।
सभी दोषों ( आसवक्खय ) के नाश के द्वारा, इसी जीवन में, वह स्वयं इसे समझकर और अनुभव करके, मन की मुक्ति, ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 421

———————————————————————

(धम्मपद 419 और 420) <<<< पिछला || धम्मपद 421 || अगला >>>> (धम्मपद 422)

———————————————————————

अंतर्वस्तु

धम्मपद श्लोक 421 - धम्मदिन्ना थेरी वत्थु

———————————————————————

डॉ म्या टिन संस्करण

Yassa pure ca paccha ca
majjhe ca nathti kincanam
akincanam anadnam
tamaham brumi brahmanam.

———————————————————————

श्लोक 421 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान कालखंडों से आसक्त नहीं होता तथा जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त होता है।

———————————————————————

थेरी धम्मादिन्ना की कहानी

वेलुवाना मठ में रहते हुए, बुद्ध ने थेरी धम्मदिन्ना के संदर्भ में, इस पुस्तक के श्लोक (421) का उच्चारण किया।
एक समय की बात है, राजगृह में बुद्ध के एक गृहस्थ शिष्य विशाखा रहते थे। बुद्ध के प्रवचनों को बार-बार सुनने से विशाखा को अनागामी पुण्य प्राप्त हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "कृपया मेरी सारी संपत्ति स्वीकार कर लीजिए; आज से मैं घर के किसी भी काम में हाथ नहीं बँटाऊँगा।" उनकी पत्नी धम्मदिन्ना ने कहा, "तुम्हारी थूक कौन निगलेगा?" तब उन्होंने विशाखा से संघ में प्रवेश करने की अनुमति माँगी और भिक्षुणी बन गईं। भिक्षुणी बनने के बाद वे अन्य भिक्षुणियों के साथ ध्यान साधना करने के लिए एक छोटे से गाँव के मठ में गईं। थोड़े ही समय में उन्हें अर्हतत्व प्राप्त हुआ और वे राजगृह लौट आईं।
धम्मदिन्ना के लौटने की खबर सुनकर विशाखा उनसे मिलने गए और उनसे कुछ प्रश्न पूछे। जब उन्होंने उनसे प्रथम तीन मार्ग के बारे में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिए; परन्तु जब उन्होंने उनसे अरहत मार्ग और फल मार्ग के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा, “हे गृहस्थ शिष्य! यह विषय तुम्हारे बोध से परे है; यदि तुम चाहो तो बुद्ध से पूछ सकते हो।” जब विशाखा ने बुद्ध से पूछा तो बुद्ध ने कहा, “धम्मदिन्ना ने तुम्हारे

प्रश्न का उत्तर दे दिया है। यदि तुम मुझसे पूछोगे तो मुझे भी वही उत्तर देना होगा।" यह कहकर बुद्ध ने इस तथ्य की पुष्टि की कि धम्मदिन्ना ने अरहतत्व प्राप्त कर लिया था।
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 421 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान कालखंडों से आसक्त नहीं होता तथा जो नैतिक दोषों और आसक्ति से मुक्त होता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
एक पति और पत्नी की कहानी
एक दिन, जब वह संसार में रह रही थीं, उनके पति विशाखा, जो एक गृहस्थ शिष्य थे, ने बुद्ध को धम्म का उपदेश देते हुए सुना और तीसरे मार्ग का फल प्राप्त किया। तब उन्होंने मन ही मन सोचा, "मुझे अपनी सारी संपत्ति धम्मदिन्ना को सौंप देनी चाहिए।" पहले उनकी यह प्रथा थी कि घर लौटने पर, यदि वे धम्मदिन्ना को खिड़की से बाहर देखते हुए पाते, तो उन्हें देखकर मुस्कुराते। लेकिन उस दिन, यद्यपि वह खिड़की पर खड़ी थीं, वे बिना उनकी ओर देखे ही आगे बढ़ गए। "इसका क्या अर्थ है?" उन्होंने सोचा। "कोई बात नहीं, भोजन के समय पता चल जाएगा।" इसलिए भोजन का समय आने पर, उन्होंने उन्हें उबले हुए चावल का अपना नियमित भाग दिया। पहले उनकी यह प्रथा थी कि वे कहते, "आओ, हम साथ भोजन करें।" लेकिन उस दिन वे चुपचाप, एक शब्द भी बोले बिना भोजन करते रहे। "वह किसी बात पर नाराज़ होंगे," धम्मदिन्ना ने सोचा। भोजन के बाद विशाखा आराम से बैठ गए और धम्मदिन्ना को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, "धम्मदिन्ना, इस घर का सारा धन तुम्हारा है। इसे ले लो!" धम्मदिन्ना ने सोचा, "क्रोधित लोग अपनी संपत्ति भेंट करके यह नहीं कहते, 'ले लो!' इसका क्या अर्थ है?" कुछ समय बाद उन्होंने अपने पति से कहा, "लेकिन पतिदेव, आपका क्या?" "आज से मैं सांसारिक कार्यों में संलग्न नहीं रहूँगा।" "जिस थूक को तुमने त्याग दिया है, उसे कौन ग्रहण करेगा? यदि ऐसा है, तो मुझे भी भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दो।" "बहुत अच्छा, प्रिय पत्नी," विशाखा ने उत्तर दिया और उन्हें वांछित अनुमति दे दी। उन्होंने उन्हें बहुमूल्य भेंट देकर ननों के मठ तक पहुँचाया और संघ में उनका प्रवेश कराया। पूर्ण दीक्षा लेने के बाद वे धम्मदिन्ना नन के नाम से जानी गईं। धम्मदिन्ना एकांत जीवन की कामना करती थीं, इसलिए वे ननों के साथ गाँव चली गईं। वहाँ रहते हुए, उन्होंने अल्पकाल में ही अरहतत्व और अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं। तब उन्होंने मन में सोचा, "अब मेरे कारण मेरे सगे-संबंधी पुण्य कर्म करेंगे।" तदनुसार वे एक बार फिर राजगृह लौट आईं। जब गृहस्थ शिष्य विशाखा ने उनके लौटने का समाचार सुना, तो उन्होंने मन में सोचा, "उनके लौटने का क्या कारण हो सकता है?" और ननों के मठ जाकर अपनी पूर्व पत्नी नन को देखकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। उन्होंने सोचा, "मेरे लिए उनसे यह कहना अत्यंत अनुचित होगा, 'हे आदरणीय बहन, क्या आप असंतुष्ट हैं?' इसलिए मैं उनसे यह प्रश्न पूछूंगा।" अतः उन्होंने उनसे धर्म परिवर्तन के मार्ग के बारे में प्रश्न पूछा, और उन्होंने तुरंत सही उत्तर दिया। इसी क्रम में प्रश्न पूछते हुए शिष्य ने शेष मार्गों के बारे में भी पूछा। वे यहीं नहीं रुके, बल्कि अपने प्रश्न जारी रखते हुए उन्होंने उनसे अर्हतत्व के बारे में पूछा। "अद्भुत, भाई विशाखा!" धम्मदिन्ना ने कहा। "परन्तु यदि आप अर्हतत्व के बारे में जानना चाहते हैं, तो आपको बुद्ध के पास जाकर उनसे यह प्रश्न पूछना चाहिए।" विशाखा ने अपनी पूर्व पत्नी भिक्षुणी को प्रणाम किया, और अपने आसन से उठकर बुद्ध के पास जाकर उन्हें अपनी बातचीत के बारे में बताया।बुद्ध ने कहा, "मेरी पुत्री धम्मदिन्ना ने जो कहा वह बहुत अच्छा था। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुझे भी इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।" फिर उन्होंने श्लोक सुनाया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 421)
यस्सा शुद्ध च पच्च च मज्झे च किंचनं नत्थि
अकिंचनं आनंदं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यस्स : जिसके लिए; शुद्ध च : अतीत का; पच्चाच : भविष्य का; मज्जेच : वर्तमान का; किंचनं नत्थि : कोई दोष नहीं; अकिंचनं [ अकिंचन ]: सभी दोषों से मुक्त; अनादानं : किसी भी प्रकार की लालसा से रहित; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण की घोषणा करता हूँ।
उसके लिए अतीत, वर्तमान या भविष्य का कोई भी कलंक शेष नहीं रहता। वह निर्मल है। उसमें कोई आसक्ति या मोह नहीं है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।
टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 421)
धम्मदिन्ना की कथा : इस युग में, वे राजगृह के कोषाध्यक्ष विशाखा की पत्नी के रूप में जानी जाती थीं। विशाखा, बुद्ध के भक्त राजा बिम्बिसार के मित्र थे। एक दिन विशाखा, राजा बिम्बिसार के साथ बुद्ध के दर्शन करने गए। उन्होंने एक प्रवचन सुना और एक नवोदित संत ( सोतापन्न ) बन गए। लौटने पर, वे बिल्कुल बदल चुके थे। वे अपनी पत्नी को विचित्र प्रतीत हुए। उन्होंने इसका कारण पूछा। तब उन्होंने स्वीकार किया कि उनका मन "समृद्ध और विचित्र" रूप से परिवर्तित हो गया था। धम्मदिन्ना ने तुरंत बुद्ध के पास जाने की

अनुमति मांगी। विशाखा को अनुमति देने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। उन्हें एक स्वर्णिम पालकी में भेजा गया। उन्हें भिक्षुणी के रूप में दीक्षा दी गई। उन्हें लगा कि यदि वे भिक्षुणी जीवन में सफल नहीं हुईं, तो संघ में शामिल होने का उनका उद्देश्य व्यर्थ हो जाएगा। वह एकांत स्थान पर गईं और अरहतत्व प्राप्त करने के लिए जी-जान से प्रयास करने लगीं। उनके अच्छे कर्मों से किए गए संकल्प का फल मिला। वह अरहत बन गईं। अरहत बनने के बाद वह अपने गृह नगर राजगृह गईं ताकि अपने परिचित साथी प्राणियों की सेवा कर सकें। उनके पूर्व पति को यह बात समझ नहीं आई। उन्हें लगा कि उनका मिशन असफल रहा और वह खाली हाथ लौट रही हैं। पति ने उनसे कई प्रश्न पूछे और उन्होंने कुशलतापूर्वक उत्तर दिए। अंत में उन्होंने उनसे निर्वाण के बारे में पूछा। यहाँ उन्हें कुछ समझ नहीं आया। वह इतने उन्नत नहीं थे। उनके उत्तर उन्हें समझ नहीं आए। इसलिए उन्होंने उन्हें बुद्ध के पास भेजा, जिन्होंने न केवल उनकी बात से सहमति जताई बल्कि मज्झिमा निकाय में लघु वेदल्ल सूत्र के अध्ययन के लिए धम्मदिन्ना की प्रशंसा भी की। इसके कुछ समय बाद ही बुद्ध ने भिक्षुओं और गृहस्थों को संबोधित करते हुए घोषणा की कि पूज्य धम्मदिन्ना निस्संदेह श्रेष्ठ संघ की महिला शिष्यों में धम्म की व्याख्या करने में सबसे अग्रणी थीं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 422

---

(धम्मपद421) <<<< पिछला || धम्मपद422 || अगला >>>> (धम्मपद423)

---

अंतर्वस्तु



धम्मपद श्लोक 422 - अंगुलिमत्थेरा वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

उसभम पवारम विराम
महेसिम विजितविनम
anejam nhatakam(1) buddham
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 422 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बैल के समान निर्भीक है, जो नेक और परिश्रमी है, जो उच्च नैतिक गुणों का साधक और (तीन मारों का) विजेता है, जो लालसा से मुक्त है, जो नैतिक दोषों से शुद्ध हो चुका है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

---

1. न्हातकम: (नैतिक दोषों से) शुद्ध किया गया; यह ब्राह्मण द्वारा अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद किए जाने वाले औपचारिक स्नान का संकेत है।

---

अंगुलिमाला की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने थेरा अंगुलिमाला के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (422) कहा।

एक बार राजा पसेनादि (प्रसेनजीत) और रानी मल्लिका ने बुद्ध और उनके पाँच सौ भिक्षुओं को इतना बड़ा दान दिया, जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। उस समारोह में, प्रत्येक भिक्षु के सिर पर धूप से बचाव के लिए एक हाथी द्वारा सफेद छतरी रखी जानी थी। हालांकि, उन्हें केवल चार सौ निन्यानवे प्रशिक्षित हाथी ही मिल सके, इसलिए उन्हें एक अप्रशिक्षित हाथी का इस्तेमाल करना पड़ा और उसे थेरा अंगुलिमाला के ऊपर छतरी रखने का काम सौंपा गया। सभी को डर था कि अप्रशिक्षित हाथी कोई परेशानी खड़ी कर सकता है, लेकिन जब उसे थेरा अंगुलिमाला के पास लाया गया तो वह बिल्कुल शांत था।

इसी घटना के संदर्भ में भिक्षुओं ने बाद में अंगुलिमाला से पूछा कि क्या उन्हें भय नहीं आया? इस प्रश्न के उत्तर में अंगुलिमाला ने कहा कि उन्हें भय नहीं आया। तब भिक्षु बुद्ध के पास गए और कहा कि थेरा अंगुलिमाला ने अरहतत्व प्राप्त करने का दावा किया है। बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओं! यह बिल्कुल सत्य है कि अंगुलिमाला भयभीत नहीं हुए; उनके समान लोग भी भयभीत नहीं होते।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 422 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो बैल के समान निर्भीक है, जो नेक और परिश्रमी है, जो उच्च नैतिक गुणों का साधक और (तीन मारों का) विजेता है, जो लालसा से मुक्त है, जो नैतिक दोषों से शुद्ध हो चुका है और चार आर्य सत्यों को जानता है।

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

निडर अंगुलिमाला की कहानी

यह धार्मिक उपदेश बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय पूज्य अंगुलिमाला के संदर्भ में दिया था। यह कथा "कंजूस देवता लोक में नहीं जाते" से शुरू होने वाले श्लोक की व्याख्या में वर्णित है। वहाँ लिखा है: भिक्षुओं ने अंगुलिमाला से पूछा, "भाई अंगुलिमाला, क्या आप भयभीत नहीं हुए जब आपने अपने सामने छत्र लिए हुए दुष्ट हाथी को खड़ा देखा?" "नहीं, भाइयों, मैं भयभीत नहीं हुआ।" भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, अंगुलिमाला झूठ बोल रहे हैं।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "भिक्षुओं, मेरे पुत्र अंगुलिमाला को कोई भय नहीं है। क्योंकि मेरे पुत्र के समान भिक्षु सभी दोषों से मुक्त होकर श्रेष्ठ हैं और भयभीत नहीं होते।"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 422)

प्रयोगं पवरं वीरं महेसिं विजितविनं

अनेजां नाहतकं बुद्धं तम अहं ब्राह्मणं ब्रूमि

यूएसएभाः [ यूएसएबीएच ]: एक बैल-एक नेता; पावरां [ पावरा ]: कुलीन; वीरं [ वीरा ]: प्रयास से भरा हुआ; महेसिः [ महेसि ]: एक महान ऋषि; विजिताविनम् [ विजिताविना ]: जिसने पूरी तरह से जीत लिया है; अनेजां [ अनेजा ]: लालसा से रहित; नाहतकम् [ नाहतका ]: जिसने बुराई को धो दिया है; बुद्धम् [ बुद्ध ]: आवश्यक चीज़ों को जानना; तं : उसे; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : ब्राह्मण घोषित करें

वह अपनी असीम शक्ति से आगे बढ़ने वाले बैल के समान हैं। वे एक महान ऋषि हैं क्योंकि उन्होंने मूलभूत तत्वों को जान लिया है। उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। वे सभी दोषों से रहित हैं। उन्होंने सभी बुराइयों को धो डाला है। उन्होंने मूलभूत तत्वों को जान लिया है। ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 422)

अंगुलिमाला की कहानी : यह एक विलक्षण व्यक्तित्व था। उसका इतिहास अद्वितीय है। एक डाकू जिसने कामयाबी हासिल की। उसका जीवन विरोधाभासों से भरा है। उसका जन्म कोसल के राजा के सलाहकार भगगवा के घर हुआ था। परंपरा के अनुसार, बच्चे को तक्षशिला विश्वविद्यालय भेजा गया जहाँ उसने शानदार जीवन व्यतीत किया। उसका नाम अहिंसक (किसी को हानि न पहुँचाने वाला) रखा गया, आंशिक रूप से इसलिए क्योंकि वह एक ऐसे परिवार से था जिसका नाम अपराध से बेदाग था, और आंशिक रूप से बच्चे के चरित्र के कारण। उसने पढ़ाई और खेल दोनों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। जल्द ही, उसके साथियों में ईर्ष्या और शत्रुता पैदा हो गई, जिन्होंने उसके खिलाफ साजिशें रचीं। लेकिन पिछले जन्म में पच्चेक बुद्ध की सेवा करने के कारण वह बहुत शक्तिशाली था। उसके शत्रु उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। वह विश्वविद्यालय के कुलपति का प्रिय था। जल्द ही, उसके शत्रुओं की कानाफूसी के कारण उसकी शत्रुता बढ़ गई। उन्होंने उसकी पत्नी के साथ उसके नाजायज प्रेम की बात फैलाई। लेकिन अहिंसक भी, एक चतुर और विद्वान व्यक्ति होने के नाते, अपनी मृत्यु के लिए उचित समय का इंतजार कर रहे थे। विदाई के समय, उन्होंने एक शिष्य द्वारा गुरु को दी जाने वाली सामान्य भेंट के रूप में एक असाधारण अनुरोध किया। उन्होंने एक हजार मनुष्यों के दाहिने अंगूठे मांगे। अहिंसक स्तब्ध रह गए और उन्होंने तुरंत इस रक्तरंजित अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। लेकिन उनका अंत अटल था। इनकार करने पर उन पर श्राप लग जाता। उन्होंने बार-बार व्यर्थ ही भेंट की गुहार लगाई। कठोर प्राचीन प्रथा से बचने का कोई रास्ता नहीं था, क्योंकि भेंट पिछले शिक्षण शुल्क के बदले में थी। अत अहिंसक ने संकोच किया — ज्ञान को बचाने के लिए उसने सहमति दे दी, क्योंकि इनकार करना ज्ञान के लिए कलंक के समान होता। हथियारबंद होकर वह कोसल राज्य के जलिता नामक वन में चला गया। उसने अपने क्षेत्र में आने वाले हर व्यक्ति को मार डाला। लेकिन उसके अंगूठे सुरक्षित नहीं रह सके। या तो जंगली जानवरों ने उन्हें खा लिया, या वे सड़ गए। इसलिए उसने एक माला बनवाई और उसे धारण कर लिया। इसीलिए उसे 'अंगुली माला' कहा जाने लगा। उसके 999 अंगूठे थे और वह इस खूनी अध्याय को समाप्त करने के लिए एक और अंगूठा प्राप्त करने के लिए बेचैन था। उसके गुरु को लगा कि अंगुली माला इस अभियान में जीवित नहीं बचेगा। वह निश्चित रूप से इस प्रक्रिया में मारा जाएगा, या राजा द्वारा बंदी बना लिया जाएगा। वह एक मनहूस सुबह थी। जनता से शिकायतें मिलने पर राजा उस डाकू को जिंदा या मुर्दा पकड़ने के लिए निकल पड़ा। उसकी माता मंतानी अपने पुत्र के भाग्य को लेकर चिंतित थी। उसने अपने पति से विनती की कि वह पुत्र को आने वाले खतरे के बारे में चेतावनी दे। लेकिन उसने उसकी बात नहीं मानी।

इसलिए माँ के प्रेम ने उसे जंगल में अकेले जाने के लिए प्रेरित किया, और वह रोते हुए कहने लगी कि बेटे को परिवार की परंपरा का पालन करते हुए हत्या करना छोड़ देना चाहिए, और राजा की सेना उसे पकड़ने के लिए आ रही है। यह बहुत संभव था कि डाकू अपनी

माँ को भी न बख्शे, क्योंकि वह हताश था। सर्व-दयालु बुद्ध ने उसकी आसन्न मृत्यु को देख लिया। वे जानते थे कि इसी जीवन में उनका अर्हत बनना तय है। उन्होंने मुक्ति की संभावना देखी। इसलिए राहगीरों की चेतावनियों के बावजूद, उन्होंने स्वयं को डाकू और उसकी माँ के बीच खड़ा कर दिया। यहाँ डाकू ने देखा कि बुद्ध का पवित्र अंगूठा खून से सने अंगूठों की श्रृंखला का एक उपयुक्त अंत होगा।
अंगुली माला अपनी आदत के अनुसार तलवार उठाए बुद्ध की ओर तेज़ी से बढ़ा। बुद्ध एक निश्चित गति से चल रहे थे, लेकिन अपनी पूरी गति के बावजूद अंगुली माला उन्हें पकड़ नहीं पाया। यह बुद्ध की इच्छा थी। यह बुद्ध का एक चमत्कार था। इतनी तेज़ी से और इतनी देर तक दौड़ने से अंगुली माला की सहनशक्ति खत्म हो गई थी। घोर हताशा में, पसीने की बूँदों के साथ, उसने बुद्ध से रुकने का आह्वान किया — तिट्ठ समना । लेकिन बुद्ध ने कहा कि वे रुक चुके हैं। उन्हें भी रुकना होगा। 'रुकना' शब्द ने उसे झकझोर दिया। एक भावी अरहत के लिए इस शब्द का गहरा अर्थ होता है। यह संसार से जुड़ा हुआ है — जन्म और मृत्यु का यह निरंतर चक्र। उसने उस शब्द का अर्थ पूछा जो कुछ समय के लिए उसकी दृष्टि से ओझल हो गया था। अंगुली माला ने सोचा कि जब वह दौड़ रहा था तो बुद्ध अवश्य ही हिले होंगे। क्या ऐसा हो सकता है कि बुद्ध स्वयं झूठ के दोषी थे?
अत अंगुली माला ने बुद्ध से विश्राम का अर्थ समझाने का अनुरोध किया। यही वह अवसर था जिसकी बुद्ध को तलाश थी और उन्होंने पूर्णतया और अचूक कौशल से उपदेश दिया। अंगुली माला ने माला और हथियार एक तरफ फेंक दिए। उन्होंने दीक्षा की विनती की। उपदेश के अंत में, बुद्ध के ' एहि भिक्खु ' सूत्र के प्रयोग से वे अरहत बन गए। अंगुली माला को अरहत बनाकर बुद्ध मंदिर लौट गए। राजा की यह प्रथा थी कि वे किसी भी खतरनाक अभियान की पूर्व संध्या पर बुद्ध से मिलने जाते थे। बुद्ध ने उनसे सशस्त्र अभियान का कारण पूछा। राजा ने स्पष्टीकरण दिया। बुद्ध ने राजा को बताया कि अंगुली माला मंदिर में हैं। नाम सुनते ही राजा कांप उठे। अंगुली माला की खबर इतनी भयावह थी। बुद्ध ने शीघ्र ही समझाया कि मंदिर में अंगुली माला उस खूनी डाकू से बिलकुल भिन्न थे; अंगुली माला अब एक चींटी को भी नुकसान नहीं पहुंचाएंगे। अरहत होने के बावजूद, यह नाम उन पर अड़ा रहा। एक दिन अपने भ्रमण के दौरान, पूज्य अंगुली माला ने एक गर्भवती महिला की प्रसव पीड़ा सुनी। अन्य महा अरहतों ने भी उसकी चीखें सुनी होंगी, लेकिन उनमें से कोई भी पूज्य अंगुली माला जितना विचलित नहीं हुआ। उन्होंने बुद्ध के पास जाकर इस पीड़ा पर अपनी चिंता व्यक्त की और उनसे इस कष्ट को दूर करने की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनसे सत्य की शक्ति पर ध्यान करने को कहा - क्योंकि अंगुली माला जन्म से ही निर्दय थे, इसलिए उस सत्य के बल पर उनका कष्ट दूर हो सकता है। उन्हें यही आशीर्वाद देने के लिए कहा गया था।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » श्लोक 423

---

(धम्मपद422) <<<< पिछला|| धम्मपद423[समाप्त] ||

---


धम्मपद श्लोक 423 - देवहितब्राह्मण वत्थु

---

डॉ म्या टिन संस्करण

Pubbenivasam yo vedi
saggapayanca passati
atho jatikkhayam patto
abhinnavosito muni
sabbavositavosanam
tamaham brumi brahmanam.

---

श्लोक 423 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो पिछले जन्मों को जानता है, जो स्वर्गीय और साथ ही पाताल लोकों को देखता है, जो पुनर्जन्मों के अंत तक पहुँच चुका है, जो मार्ग अंतर्दृष्टि से अर्हत बन गया है और नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए जो कुछ भी किया जाना चाहिए, वह सब कर चुका है।

---

ब्राह्मण देवहिता की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने ब्राह्मण देवहिता के संदर्भ में इस पुस्तक का श्लोक (423) कहा।
एक बार बुद्ध को पेट की बीमारी हो गई और उन्होंने थेरा उपवन को ब्राह्मण देवहित से गर्म पानी लाने के लिए भेजा। बुद्ध को भेंट करने का यह दुर्लभ अवसर पाकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। इसलिए, गर्म पानी के साथ-साथ उसने बुद्ध के लिए गुड़ भी दिया। मठ में थेरा उपवन ने बुद्ध को गर्म पानी से स्नान कराया; स्नान के बाद उन्होंने बुद्ध को गुड़ और गर्म पानी का मिश्रण दिया। मिश्रण पीने के बाद बुद्ध को तुरंत आराम मिल गया। तब ब्राह्मण ने आकर बुद्ध से पूछा, "आदरणीय महोदय! किसे भेंट करने से सबसे अधिक लाभ होता है?"
बुद्ध ने उसे कहा, "ब्राह्मण! जिसने सभी बुराइयों का त्याग कर दिया है, उसे भेंट करना सबसे अधिक लाभकारी है।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

---

श्लोक 423 : मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो पिछले जन्मों को जानता है, जो स्वर्गीय और साथ ही पाताल लोकों को देखता है, जो पुनर्जन्मों के अंत तक पहुँच चुका है, जो मार्ग अंतर्दृष्टि से अर्हत बन गया है और नैतिक विकारों के उन्मूलन के लिए जो कुछ भी किया जाना चाहिए, वह सब कर चुका है।

---

प्रवचन के अंत में ब्राह्मण तीन रत्नों (बुद्ध, धम्म और संघ) में दृढ़ विश्वास के साथ दृढ़ हो गया और बुद्ध का गृहस्थ शिष्य बन गया।
अध्याय छब्बीस का अंत: ब्राह्मण
-धम्मपद का समापन: श्लोक और कथाएँ-

---

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
उपहार देने वाला ही उपहार को सार्थक बनाता है।
यह श्लोक बुद्ध ने जेतवन में निवास करते समय ब्राह्मण देवहित द्वारा पूछे गए एक प्रश्न के संदर्भ में कहा था।
एक समय की बात है, बुद्ध को रस विकार हो गया था और उन्होंने पूज्य उपवन को ब्राह्मण देवांगिक के पास गर्म पानी लाने के लिए भेजा। पूज्य उपवन ब्राह्मण के पास गए, उन्हें बताया कि बुद्ध को रस विकार है और उनसे गर्म पानी मांगा। जब ब्राह्मण ने बुद्ध का अनुरोध सुना, तो उनका हृदय आनंद से भर गया। उन्होंने कहा, "मेरे लिए कितना सौभाग्य की बात है कि बुद्ध ने मुझे गर्म पानी के लिए भेजा!" ब्राह्मण ने पूज्य उपवन को गर्म पानी और गुड़ का एक घड़ा दिया और अपने एक सेवक को पिंगो पर गर्म पानी लाने का आदेश दिया। पूज्य उपवन ने बुद्ध को गर्म पानी से स्नान कराया और फिर गुड़ को गर्म पानी में मिलाकर उन्हें पीने के लिए दिया। बुद्ध का रोग तुरंत ठीक हो गया।
ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा, "महान प्रतिफल प्राप्त करने के लिए किसे दान देना चाहिए? मैं बुद्ध से पूछूंगा।" अतः वह बुद्ध के पास गया और उनसे इस विषय पर यह श्लोक कहते हुए पूछा:
किसे दान देना चाहिए?
किसे दान देने से महान प्रतिफल प्राप्त होता है? दान देने वाले को वह प्रतिफल महान कैसे प्राप्त होता है?
बुद्ध ने ब्राह्मण से कहा, "इस प्रकार के ब्राह्मण के दान से भरपूर फल प्राप्त होता है।" और सच्चे ब्राह्मण के अपने विचार को प्रकट करते हुए उन्होंने यह श्लोक दिया।
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 423)
यो पुब्बेनिवासं वेदि सग्गापायं च पस्सति,
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिन्न वोसितो मुनि
सब्बवोसितवोसानं तं अहं ब्राह्मणं ब्रूमि
यो मुनी : यदि कोई ऋषि; पुब्बेनिवासं [ पुब्बेनिवास ]: पूर्व जन्मों; वेदि : जानता है; सग्गापायं च : स्वर्ग और नरक; पसति : अनुभव करता है; अथो : इसके अतिरिक्त; जातिक्खयं [ जातिक्खय ]: अस्तित्व के अंत तक; पट्टो [ पट्टा ]: पहुँच गया है; अभिञ्ञा : सर्वोच्च ज्ञान से देखकर; वोसित [ वोसित ]: सब सिद्ध कर चुका है; मुनी : एक ऋषि; सब्बवोसितवोसानं [ सब्बवोसितवोसान ]: जिसने सर्वोच्च प्राप्ति करके सत्य साधक का जीवन पूर्ण कर लिया है; तम : वह पूर्ण पुरुष; अहं : मैं; ब्राह्मणं ब्रूमि : एक ब्राह्मण घोषित करता हूँ।
वह अपने पूर्व जन्मों को जानता है। उसमें स्वर्ग और नरक, परमानंद और दुःख की अवस्थाओं को देखने की क्षमता है। उसने जन्मों का चक्र समाप्त कर दिया है। उसमें उच्चतर चेतना है। वह ऋषि की अवस्था तक पहुँच चुका है। उसने परम पूर्णता प्राप्त कर ली है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 423)

पूज्य उपवान की कथा : इस श्लोक की उत्पत्ति का स्रोत मानी जाने वाली कथा के अनुसार, बुद्ध ने पूज्य उपवान को ब्राह्मण देवांगिक के पास भेजा था। यह पूज्य उपवान की कथा है:

उनके पूर्वज जीवन की कथा पद्ममुत्तरा बुद्ध के देहांत के बाद घटी। यह अवसर अवशेषों के स्थापना का था। मनुष्य और देवियों द्वारा एक विशाल स्तूप का निर्माण किया जा रहा था। वे एक गरीब व्यक्ति थे जिनके वस्त्रों में एक शॉल शामिल थी। उन्होंने उस शॉल को अच्छी तरह से साफ करवाया और स्तूप के किनारे एक लंबे बांस पर ध्वज की तरह लगाकर अवशेषों का सम्मान किया।

अभिसंमथक नामक एक दुष्ट आत्माओं के सरदार ने चुपके से शॉल को दागोबा के शिखर पर रखवा दिया था। जब उसने देखा कि क्या हुआ है, तो उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। इसी पुण्य के कारण, वह जहाँ भी जन्म लेता, उसके अनुयायी हमेशा बने रहते थे। वह हमेशा एक नेता रहा। उसने कई बार देवताओं के राजा सक्का या एक शक्तिशाली राजा ( चक्रवर्तीराज ) के रूप में जन्म लिया। इसके बाद, इस युग में उसका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। उसका नाम उपवान रखा गया।

वे भी वैदिक ज्ञान में पारंगत हो गए। पूज्य आनंद के कार्यभार संभालने से पहले वे बुद्ध के सेवक थे। बुद्ध के बीमार पड़ने पर उपवान एक गृहस्थ दाता के पास गए और बुद्ध के गुणों का गुणगान किया। उन्होंने उनसे गर्म जल और उपयुक्त औषधि प्राप्त की और बुद्ध को स्वस्थ करने के लिए चिकित्सा सहायता प्रदान की। इसके बाद, उन्होंने भिक्षु जीवन में इतनी लगन से भाग लिया कि कुछ ही समय में वे अर्हत बन गए।

भगवान बुद्ध के देहांत के संबंध में एक उल्लेखनीय घटना घटी। जब वे पलंग के पास खड़े होकर पंखा कर रहे थे, तब बुद्ध ने उनसे वहाँ से चले जाने का अनुरोध किया। वहाँ उपस्थित सभी लोग इस बात से स्तब्ध रह गए। हमेशा की तरह, वरिष्ठ आनंद ने, जो मुख्य वक्ता थे, इसका कारण पूछा। बुद्ध ने आनंद को बताया कि अदृश्य जगत के सैकड़ों-हजारों शक्तिशाली देवता और दुष्ट आत्माएँ बुद्ध के अंतिम दर्शन के लिए हर इंच, और अक्सर सूक्ष्म बिंदुओं तक, जगह की तलाश में थे। यह कोई रहस्य नहीं है कि सांसारिक प्राणियों के विपरीत, जो देवताओं और सभी की दृष्टि से अदृश्य थे, अरहत अदृश्य नहीं थे। इसलिए, पूज्य उपवान को उन्हें दर्शन करने का मार्ग देना पड़ा।

वह परम संघ के अस्सी अरहतों में से एक थे।

धम्मपद ग्रंथ (संक्षिप्त संस्करण)

नागवग्गा : हाथी (320-333)
तन्हावग्गा : लालसा (334-359)
भिक्खुवग्गा : भिक्षु (360-382)
ब्राह्मणवग्गा : ब्राह्मण (383-423)

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V1:यमकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

logo

यमकावग्गा: जोड़े

1. मन सभी मानसिक अवस्थाओं से पहले आता है। मन ही इन सबका मूल है; ये सभी मन द्वारा उत्पन्न होती हैं। यदि कोई व्यक्ति अशुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो उसे उसी प्रकार कष्ट भोगना पड़ता है जैसे बैल के पैर के पीछे पहिया लगा रहता है।

2. मन सभी मानसिक अवस्थाओं से पहले आता है। मन ही इन सबका मूल है; ये सभी मन द्वारा ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध मन से बोलता या कार्य करता है, तो सुख उसके साथ उसकी कभी न विदा होने वाली परछाई की तरह रहता है।

3. "उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे पीटा, उसने मुझ पर हावी होकर मुझे लूटा।" ऐसे विचार रखने वाले लोग अपनी घृणा को शांत नहीं कर पाते।

4. "उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे पीटा, उसने मुझ पर हावी होकर मुझे लूटा।" जो लोग ऐसे विचार नहीं रखते, वे अभी भी अपनी घृणा को दबाए रखते हैं।

5. इस संसार में घृणा से घृणा शांत नहीं होती। घृणा का निवारण केवल अरुचि से ही होता है। यह एक शाश्वत नियम है।

6. कुछ लोग यह नहीं समझते कि एक दिन हम सबको मरना है। लेकिन जो लोग यह समझते हैं, वे अपने झगड़े सुलझा लेते हैं।

7. जिस प्रकार आंधी एक कमजोर पेड़ को गिरा देती है, उसी प्रकार मारा उस व्यक्ति पर हावी हो जाती है जो सुख-सुविधाओं की खोज में लीन रहता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रखता, अत्यधिक भोजन करता है, आलसी और व्यभिचारी होता है।

8. जिस प्रकार तूफान किसी चट्टानी पहाड़ पर विजय नहीं पा सकता, उसी प्रकार मारा कभी भी उस व्यक्ति पर विजय नहीं पा सकता जो अशुद्धियों पर ध्यान लगाकर जीवन व्यतीत करता है, जो अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखता है, संयमित भोजन करता है और आस्था एवं गंभीर प्रयास से परिपूर्ण होता है। 2

9. जो कोई भी पतित, आत्मसंयम और सत्यनिष्ठा से रहित होकर भिक्षु का पीला वस्त्र धारण करे, वह निश्चय ही उस वस्त्र के योग्य नहीं है।

10. परन्तु जो कोई भी दुराचार से शुद्ध हो, सद्‌गुणों में सुस्थापित हो और आत्मसंयम तथा सत्यनिष्ठा से परिपूर्ण हो, वही निःसंदेह पीले वस्त्र के योग्य है।

11. जो लोग अनावश्यक को आवश्यक और आवश्यक को अनावश्यक समझकर गलत विचारों में डूबे रहते हैं, वे कभी भी आवश्यक तक नहीं पहुँच पाते।

12. जो लोग आवश्यक को आवश्यक और अनावश्यक को अनावश्यक जानते हैं, सही विचारों में लीन रहते हुए, वे आवश्यक तक पहुँच जाते हैं।

13. जैसे बारिश खराब छप्पर वाले घर को भेद देती है, वैसे ही जुनून एक अविकसित दिमाग में प्रवेश कर जाता है।

14. जिस प्रकार बारिश अच्छी तरह से छप्पर वाले घर को भेद नहीं पाती, उसी प्रकार वासना कभी भी सुविकसित मन में प्रवेश नहीं कर पाती।

15. दुष्ट व्यक्ति इस लोक में और परलोक में भी दु:ख भोगता है; वह दोनों लोकों में दु:ख करता है। वह अपने अपवित्र कर्मों को याद करके विलाप करता है और व्यथित होता है।

16. नेक कर्म करने वाला इस लोक में और परलोक में प्रसन्न होता है; वह दोनों लोकों में आनंदित होता है। वह अपने शुद्ध कर्मों को याद करके प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है।

17. बुराई करने वाला इस लोक में और परलोक में भी कष्ट भोगता है; वह दोनों लोकों में कष्ट सहता है। "मैंने बुराई की है" का विचार उसे सताता है, और दुख के लोकों में जाकर वह और भी अधिक कष्ट भोगता है।

18. अच्छे कर्म करने वाला इस लोक और परलोक दोनों में आनंदित होता है; वह दोनों लोकों में प्रसन्न होता है। "मैंने अच्छा कर्म किया है" यह विचार उसे प्रसन्न करता है, और आनंद के लोकों में पहुँचने पर वह और भी अधिक प्रसन्न होता है।

19. भले ही वह पवित्र ग्रंथों का बहुत पाठ करे, परन्तु उसके अनुसार कार्य न करे, वह लापरवाह मनुष्य उस ग्वाले के समान है जो केवल दूसरों की गायों को गिनता है—वह पवित्र जीवन के आशीर्वादों का भागीदार नहीं होता।

20. यद्यपि वह पवित्र ग्रंथों का पाठ कम ही करता है, परन्तु शिक्षा को व्यवहार में लाता है, कामवासना, घृणा और भ्रम का त्याग करता है, सच्ची बुद्धि और मुक्त मन से, इस संसार या किसी अन्य संसार की किसी भी वस्तु से आसक्ति नहीं रखता — वह वास्तव में पवित्र जीवन के आशीर्वादों का भागीदार होता है।



तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V2:अप्पामदवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अप्पमदावग्गा: सतर्कता
21. सजगता: अमरता का मार्ग। आलस्य: मृत्यु का मार्ग। सजग लोग मरते नहीं। आलस्य करने वाले मानो पहले से ही मरे हुए होते हैं।

22. इस भेद को सही ढंग से जानते हुए, सजग और बुद्धिमान लोग सावधानी में आनंदित होते हैं, और श्रेष्ठ लोगों की श्रेणी का आनंद लेते हैं।

23. ज्ञानी, निरंतर ध्यान में लीन, दृढ़, अपने प्रयास में स्थिर: वे बंधन से मुक्ति, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा को प्राप्त करते हैं।

24. पहल करने वाले, सचेत रहने वाले, कर्म में स्वच्छ रहने वाले, उचित विचारपूर्वक कार्य करने वाले, सावधान रहने वाले, संयमित रहने वाले और धम्म का पालन करने वाले लोगों की महिमा बढ़ती है।

25. पहल, सतर्कता, संयम और आत्म-नियंत्रण के माध्यम से, बुद्धिमान लोग एक ऐसा द्वीप बनाएंगे जिसे कोई बाढ़ डुबो नहीं सकती।

26. वे आलस्य के आदी हैं - मंदबुद्धि, मूर्ख - जबकि बुद्धिमान व्यक्ति सतर्कता को अपना सर्वोच्च धन मानता है।

27. आलस्य या कामुक सुखों के साथ घनिष्ठता में लिप्त न हो—क्योंकि ध्यान में लीन, सजग व्यक्ति को भरपूर आराम प्राप्त होता है।

28. जब ज्ञानी व्यक्ति सतर्कता से आलस्य को दूर भगाता है, विवेक के ऊँचे शिखर पर पहुँचकर, दु:खमुक्त होकर, वह दु:खित भीड़ को देखता है—जैसे कोई प्रबुद्ध व्यक्ति शिखर पर पहुँचकर नीचे जमीन पर मूर्खों को देखता है।

29. आलसी लोगों में सावधान, सोए हुए लोगों में जागृत, जैसे तेज घोड़ा कमजोरों को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ता है: वैसे ही बुद्धिमान होते हैं।

30. सतर्कता के बल पर इंद्र ने देवताओं पर आधिपत्य प्राप्त किया। सतर्कता की प्रशंसा की जाती है, आलस्य की निंदा की जाती है।

31. सतर्कता में आनंदित भिक्षु, आलस्य में खतरा देखकर, आग की तरह आगे बढ़ता है, बड़ी और छोटी बेड़ियों को जला देता है।

32. सतर्कता में आनंद लेने वाला भिक्षु, आलस्य में खतरा देखकर - पीछे हटने में असमर्थ - मुक्ति के कगार पर खड़ा है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V3:चित्तवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

चित्तवग्गा: मन
33. कांपता हुआ, डगमगाता हुआ, काबू में रखना मुश्किल: मन। ऋषि इसे सीधा करते हैं - जैसे तीर बनाने वाला तीर के डंडे को सीधा करता है। 34. जैसे पानी में अपने घर से खींची गई मछली को ज़मीन पर फेंक दिया जाता है: यह मन मारा के प्रभाव से बचने के लिए छटपटाता और फड़फड़ाता है।

35. मन को काबू में रखना कठिन है, यह फुर्तीला है, जहाँ चाहे वहाँ उतर जाता है। इसे वश में रखना अच्छा है। अच्छी तरह से वश में किया हुआ मन शांति लाता है।

36. देखना बहुत कठिन है, बहुत ही सूक्ष्म है, जहाँ चाहे वहाँ आ जाता है: मन। बुद्धिमानों को इसकी रक्षा करनी चाहिए। सुरक्षित मन से शांति मिलती है।

37. दूर-दूर तक भटकना, अकेले जाना, देहहीन होना, गुफा में लेटना: मन। जो इसे रोकते हैं: वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

38. अस्थिर मन वाले व्यक्ति के लिए, सच्चे धम्म का ज्ञान न होने पर, शांति विलीन हो जाती है: विवेक पूर्ण नहीं होता।

39. निर्मल मन, निर्मल चेतना, पुण्य एवं पाप का त्याग करने वाले, सजग व्यक्ति के लिए कोई खतरा नहीं, कोई भय नहीं।

40. यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान है, इस मन को किले के समान सुरक्षित रखते हुए, विवेक के भाले से मारा पर आक्रमण करो, फिर जो जीता है उसकी रक्षा करो, वहाँ बसने के बजाय, दावा करने के बजाय।

41. बहुत जल्द ही, यह शरीर जमीन पर पड़ा रहेगा, चेतना से रहित, लकड़ी के एक बेकार टुकड़े की तरह।

42. शत्रु जो कुछ भी शत्रु के साथ करे, या शत्रु शत्रु के साथ करे, कुप्रवृत्त मन आपके साथ उससे भी कहीं अधिक बुरा कर सकता है।

43. माता-पिता या अन्य रिश्तेदार आपके लिए जो कुछ भी करें, एक सुगठित मन आपके लिए उससे भी बेहतर कर सकता है।तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V3:चित्तवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

चित्तवग्गा: मन
33. कांपता हुआ, डगमगाता हुआ, काबू में रखना मुश्किल: मन। ऋषि इसे सीधा करते हैं - जैसे तीर बनाने वाला तीर के डंडे को सीधा करता है। 34. जैसे पानी में अपने घर से खींची गई मछली को ज़मीन पर फेंक दिया जाता है: यह मन मारा के प्रभाव से बचने के लिए छटपटाता और फड़फड़ाता है।

35. मन को काबू में रखना कठिन है, यह फुर्तीला है, जहाँ चाहे वहाँ उतर जाता है। इसे वश में रखना अच्छा है। अच्छी तरह से वश में किया हुआ मन शांति लाता है।

36. देखना बहुत कठिन है, बहुत ही सूक्ष्म है, जहाँ चाहे वहाँ आ जाता है: मन। बुद्धिमानों को इसकी रक्षा करनी चाहिए। सुरक्षित मन से शांति मिलती है।

37. दूर-दूर तक भटकना, अकेले जाना, देहहीन होना, गुफा में लेटना: मन। जो इसे रोकते हैं: वे मारा के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

38. अस्थिर मन वाले व्यक्ति के लिए, सच्चे धम्म का ज्ञान न होने पर, शांति विलीन हो जाती है: विवेक पूर्ण नहीं होता।

39. निर्मल मन, निर्मल चेतना, पुण्य एवं पाप का त्याग करने वाले, सजग व्यक्ति के लिए कोई खतरा नहीं, कोई भय नहीं।

40. यह जानते हुए कि यह शरीर मिट्टी के घड़े के समान है, इस मन को किले के समान सुरक्षित रखते हुए, विवेक के भाले से मारा पर आक्रमण करो, फिर जो जीता है उसकी रक्षा करो, वहाँ बसने के बजाय, दावा करने के बजाय।

41. बहुत जल्द ही, यह शरीर जमीन पर पड़ा रहेगा, चेतना से रहित, लकड़ी के एक बेकार टुकड़े की तरह।

42. शत्रु जो कुछ भी शत्रु के साथ करे, या शत्रु शत्रु के साथ करे, कुप्रवृत्त मन आपके साथ उससे भी कहीं अधिक बुरा कर सकता है।

43. माता-पिता या अन्य रिश्तेदार आपके लिए जो कुछ भी करें, एक सुगठित मन आपके लिए उससे भी बेहतर कर सकता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V4: पुप्फवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पुप्पावग्गा: फूल
44. इस पृथ्वी और इसके समस्त देवताओं सहित मृत्युलोक में कौन प्रवेश करेगा? कुशल पुष्प-सजावटकर्ता जिस प्रकार फूल को खोज निकालता है, उसी प्रकार कौन सुशिक्षित धम्म-कथन को खोज निकालेगा?

45. मार्ग पर चलने वाला विद्यार्थी इस पृथ्वी और मृत्युलोक में, इसके सभी देवताओं सहित, प्रवेश करेगा। मार्ग पर चलने वाला विद्यार्थी सुशिक्षित धम्म-कथन को उसी प्रकार खोज निकालेगा, जैसे कुशल पुष्प-सजाने वाला फूल को खोज निकालता है।

46. यह जानते हुए कि यह शरीर झाग के समान है, इसकी प्रकृति को समझते हुए - एक मृगतृष्णा - मारा के फूलों को काटकर, तुम वहाँ जाते हो जहाँ मृत्यु का राजा नहीं देख सकता।

47. फूल इकट्ठा करने में लीन वह व्यक्ति, जिसका हृदय विचलित था: मृत्यु उसे बहा ले गई - एक महान बाढ़ की तरह, एक सोए हुए गाँव की तरह।

48. फूल इकट्ठा करने में लीन वह व्यक्ति, जिसका हृदय विचलित है, इंद्रिय सुखों में अतृप्त है: अंत-निर्माता उसे अपने वश में रखता है।

49. जैसे एक मधुमक्खी फूल को नुकसान पहुंचाए बिना, उसके रंग, उसकी सुगंध को प्रभावित किए बिना, उसका रस लेकर उड़ जाती है: वैसे ही ऋषि को एक गाँव से होकर गुजरना चाहिए।

50. दूसरों के असभ्य व्यवहार पर ध्यान न दें, न ही उन्होंने क्या किया है या क्या नहीं किया है, बल्कि इस बात पर ध्यान दें कि आपने खुद क्या किया है और क्या नहीं किया है।

51. जैसे कोई फूल चमकीले रंग का होता है लेकिन उसमें कोई सुगंध नहीं होती: वैसे ही अच्छी तरह से कही गई बात भी व्यर्थ होती है जब तक उस पर अमल न किया जाए।

52. जैसे कोई फूल चमकीले रंगों से भरा और सुगंध से भरपूर होता है: वैसे ही अच्छी तरह से बोला गया शब्द तभी फलदायी होता है जब उस पर अच्छी तरह से अमल किया जाए।

53. जैसे फूलों के ढेर से कई मालाएँ बनाई जा सकती हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले और नश्वर प्राणी को भी अपने जन्म लेने वाले और नश्वर स्वभाव से कई कुशल कार्य करने चाहिए।

54. किसी भी फूल की सुगंध हवा के विपरीत नहीं जाती—न चंदन की, न चमेली की, न तगरा की। लेकिन अच्छे व्यक्ति की सुगंध हवा के विपरीत जाती है। सत्यनिष्ठ व्यक्ति की सुगंध हर दिशा में फैलती है।

55. चंदन, तगारा, कमल और चमेली: इन सुगंधों में, सद्गुण की सुगंध अतुलनीय है।

56. चंदन, तगारा की यह सुगंध लगभग नगण्य है, जबकि गुणी की सुगंध सर्वोच्च देवताओं तक पहुँचती है।

57. जो लोग सद्‌गुणों में परिपूर्ण हैं, सजगता में निवास करते हैं, सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो जाते हैं: मारा उनके पदचिह्नों का अनुसरण नहीं कर सकती।

58. जैसे राजमार्ग के किनारे फेंके गए कूड़े के ढेर में कमल उग सकता है, जो मन को प्रसन्न करने वाली स्वच्छ और सुगंधित सुगंध से भरपूर हो।

59. अतः कूड़े-कचरे जैसे, साधारण और अंधे लोगों के बीच, सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति का शिष्य विवेक से चकाचौंध कर देता है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V5: बलवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

बलावग्गा: मूर्ख
60. जागृत लोगों के लिए रात लंबी लगती है। थके हुए लोगों के लिए मीलों का फासला होता है। सच्चे धम्म से अनभिज्ञ मूर्खों के लिए संसार लंबा होता है।

61. यदि अपने मार्ग में आपको अपने बराबर का, अपने से बेहतर कोई न मिले, तो दृढ़ता से अकेले ही अपना मार्ग जारी रखें। मूर्खों का कोई साथ नहीं होता।

62. 'मेरे बेटे हैं, मेरे पास धन है' - मूर्ख स्वयं को पीड़ा देता है। जब वह स्वयं का ही मालिक नहीं है, तो फिर बेटे कैसे? धन कैसे?

63. अपनी मूर्खता का बोध रखने वाला मूर्ख कम से कम उस हद तक तो बुद्धिमान होता है। परन्तु जो मूर्ख अपने आप को बुद्धिमान समझता है, वह वास्तव में मूर्ख कहलाने का पात्र है।

64. यदि मूर्ख जीवन भर बुद्धिमानों के साथ भी रहे, तो भी वह धम्म के बारे में कुछ नहीं जानता—जैसे चम्मच सूप का स्वाद नहीं जानता।

65. यदि कोई समझदार व्यक्ति क्षण भर के लिए भी बुद्धिमान के साथ रहता है, तो वह तुरंत धम्म को जान लेता है - जैसे जीभ सूप का स्वाद जान लेती है।

66. मूर्ख, जिनकी बुद्धि कमजोर होती है, जीवन में आगे बढ़ते हुए अपने ही शत्रु बन जाते हैं, और बुराई करते हैं जिसका फल कड़वा होता है।

67. ऐसा कर्म करना अच्छा नहीं है, जिसे करने के बाद आपको पछतावा हो, जिसका परिणाम आपको रोते हुए, आँसुओं से भीगे चेहरे के साथ भुगतना पड़े।

68. अच्छा है वह काम करना, जिसे करने के बाद आपको पछतावा न हो, जिसका परिणाम आपको संतुष्टि और प्रसन्नता से मिले।

69. जब तक बुराई पक नहीं जाती, मूर्ख उसे शहद समझता है। परन्तु जब वह बुराई पक जाती है, तो मूर्ख पीड़ा में पड़ जाता है।

70. महीने दर महीने मूर्ख व्यक्ति भले ही घास के एक सिरे के बराबर ही भोजन करे, परन्तु वह धम्म को समझने वालों के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा।

71. एक बुरा कर्म, जब किया जाता है, तो वह तैयार दूध की तरह तुरंत बाहर नहीं आता। यह मूर्ख का पीछा करता है, राख में छिपी आग की तरह सुलगता रहता है।

72. मूर्ख को प्रसिद्धि केवल उसके विनाश के लिए मिलती है। यह उसके उज्ज्वल भाग्य को नष्ट कर देती है और उसके दिमाग को चीर देती है।

73. वह अनुचित दर्जा, भिक्षुओं के बीच श्रेष्ठता, मठों के बीच अधिकार और आम परिवारों से सम्मान चाहता होगा।

74. 'गृहस्थ और बाहर गए हुए दोनों को लगे कि यह सब मैंने ही किया है। मैं ही तय करूँ कि क्या कर्तव्य है और क्या नहीं': मूर्ख का बढ़ता हुआ संकल्प - उसकी इच्छा और अहंकार।

75. भौतिक लाभ का मार्ग एक ही दिशा में जाता है, मुक्ति का मार्ग दूसरा। यह जानकर, ज्ञानी पुरुष के शिष्य भिक्षु को भेंटों में रुचि नहीं रखनी चाहिए, बल्कि एकांतवास का अभ्यास करना चाहिए।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V6:पंडितवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पंडितवग्ग: बुद्धिमान
76. उसे खजाना बताने वाला, तुम्हारी गलतियों को देखकर तुम्हें सुधारने वाला बुद्धिमान समझो। ऐसे संत के साथ रहो। क्योंकि ऐसे संत के साथ रहने वाले का जीवन बेहतर होता है, बदतर नहीं। 77. उसे तुम्हें उपदेश देने, सिखाने और बुरे व्यवहार से दूर रखने दो। अच्छे लोगों को वह प्रिय लगता है; बुरे लोगों को नहीं।

78. बुरे दोस्तों से संगति मत रखो। नीच लोगों से संगति मत रखो। प्रशंसनीय दोस्तों से संगति रखो। सर्वश्रेष्ठ लोगों से संगति रखो।

79. धम्म का पान करके, धम्म से तरोताज़ा होकर, व्यक्ति निश्चिंत होकर, शांत मन से सोता है। श्रेष्ठ जनों द्वारा प्रकट किए गए धम्म में ज्ञानी व्यक्ति को सदा आनंद मिलता है।

80. सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं। तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। बुद्धिमान लोग स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।

81. जैसे हवा में चट्टान का एक टुकड़ा टस से मस नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान लोग प्रशंसा या निंदा से विचलित नहीं होते।

82. जैसे गहरी झील निर्मल, शांत और स्थिर होती है, वैसे ही ज्ञानी लोग धम्म के वचन सुनकर निर्मल और शांत हो जाते हैं।

83. सत्यतः, हर जगह सत्यनिष्ठावान ही अलग दिखते हैं। वे, अच्छे लोग, कृपा या लाभ की आशा में व्यर्थ की बातें नहीं करते। सुख-दुख में भी बुद्धिमान लोग ऊँच-नीच का भाव नहीं दिखाते।

84. जो व्यक्ति अपने लिए या किसी और के लिए भी अधर्मी साधनों से धन, पुत्र, राज्य, अपनी पूर्ति की लालसा नहीं करेगा, वह धर्मी, सद्‌गुणों से समृद्ध और विवेकशील होगा।

85. दूर तट तक पहुँचने वाले लोग बहुत कम हैं। बाकी लोग बस इसी तट पर सरपट दौड़ते रहते हैं।

86. परन्तु जो लोग सुशिक्षित धम्म के अनुरूप धम्म का अभ्यास करते हैं, वे मृत्यु के उस क्षेत्र को पार कर जाएँगे जिसे पार करना इतना कठिन है।

87. अंधकारमय प्रथाओं का त्याग करके, बुद्धिमान व्यक्ति को उज्ज्वल प्रथाओं का विकास करना चाहिए, क्योंकि वह घर से बेघर होकर एकांत में चला गया है, जिसका आनंद लेना बहुत कठिन है।

88. वहाँ उसे आनंद की कामना करनी चाहिए, कामुकता का त्याग करना चाहिए—वह जिसके पास कुछ भी नहीं है। उसे बुद्धिमानी से अपने मन को दूषित करने वाली चीजों से शुद्ध करना चाहिए।

89. जिनके मन आत्म-जागरूकता के कारकों में सुविकसित हैं, जो आसक्ति रहित होकर, मोह त्याग कर प्रसन्न होते हैं — वे तेजस्वी होते हैं, उनके प्रवाह समाप्त हो जाते हैं: वे संसार में बंधनरहित होते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V7: अरहंतावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अरहंतवग्ग: अरहंत
90. जो व्यक्ति पूर्ण मार्ग तय कर चुका है, जो दुःख से मुक्त है, जो हर तरह से पूर्णतः मुक्त है, जिसने सभी बंधनों को त्याग दिया है, उसमें कोई बुखार नहीं पाया जाता।

91. सचेत व्यक्ति सक्रिय रहते हैं, आराम करने में आनंद नहीं लेते। वे हर घर का त्याग कर देते हैं, हर घर का, जैसे हंस झील से उड़ान भरते हैं।

92. जमाखोरी न करना, भोजन को समझ लेना, उनका चारागाह - शून्यता और बिना किसी संकेत के स्वतंत्रता: उनका निशान, अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह, पता नहीं लगाया जा सकता है।

93. अपशिष्ट समाप्त हो गए, पोषण से स्वतंत्र, उनका चारागाह - शून्यता और बिना किसी संकेत के स्वतंत्रता: उनका निशान, अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह, पता नहीं लगाया जा सकता है।

94. जिसकी इंद्रियाँ सारथी द्वारा प्रशिक्षित घोड़ों की तरह स्थिर हों, जिसका अहंकार त्यागा हुआ हो, जो दोषमुक्त हो, ऐसे व्यक्ति की तो देवता भी पूजा करते हैं।

95. पृथ्वी की तरह, वह प्रतिक्रिया नहीं करता—संस्कारी, इंद्र के स्तंभ की तरह, कीचड़ रहित झील की तरह। उसके लिए—ऐसा—आगे कोई यात्रा नहीं है।

96. उसका मन शांत है, उसकी वाणी और कर्म शांत हैं: जो सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, शांत हो गया है, ऐसा।

97. वह व्यक्ति जो अविश्वासी है / कृतघ्न है / जो अनगढ़ चोर को जानता है / जिसने संबंध तोड़ दिए हैं / जिसने अपने अवसरों को नष्ट कर दिया है / जो उल्टी खाता है: / जिसने उम्मीदों को त्याग दिया है: वह अंतिम व्यक्ति है।

98. गाँव हो या जंगल, घाटी हो या पठार: वह स्थान रमणीय है जहाँ अरहंत निवास करते हैं।

99. रमणीय वन्य क्षेत्र जहाँ भीड़भाड़ आनंद नहीं देती, वहाँ वासना से मुक्त लोग आनंदित होते हैं, क्योंकि वे इंद्रिय सुखों की खोज नहीं कर रहे होते।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V8: सहस्सवग्ग

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

सहस्सवग्ग: हजारों
100. हजारों अर्थहीन शब्दों से बेहतर एक अर्थपूर्ण शब्द है जिसे सुनकर शांति मिलती है।

101. हजारों अर्थहीन छंदों की तुलना में एक अर्थपूर्ण छंद बेहतर है जिसे सुनकर शांति मिलती है।

102. और सैकड़ों अर्थहीन श्लोकों का जाप करने से बेहतर है एक धम्म-कथन जिसे सुनने से शांति मिलती है।

103. हजारों-हजारों लोगों को जीतने वाले से भी बड़ा युद्ध में वह है जो केवल एक को जीत ले - स्वयं को। 104. दूसरों को जीतने से बेहतर है स्वयं को जीतना।

105. जब आप निरंतर आत्म-संयम में रहते हुए स्वयं को प्रशिक्षित कर लेते हैं, तो न तो कोई देव, न ही गंधर्व, और न ही ब्रह्माओं से बंधी कोई मार उस विजय को पराजय में बदल सकती है।

106. आप महीने दर महीने, हजारों की लागत से, सौ बार यज्ञ कर सकते हैं, या स्वयं को संजोकर एक व्यक्ति को एक क्षण के लिए श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं।

107. सौ वर्षों के बलिदानों से भी श्रेष्ठ वह श्रद्धा अर्पित करने का कार्य होगा। आप सौ वर्षों तक जंगल में आग जलाकर रह सकते हैं, या एक क्षण के लिए स्वयं को समर्पित श्रद्धा अर्पित कर सकते हैं।

108. सौ वर्षों के बलिदानों से भी श्रेष्ठ वह श्रद्धा अर्पित करना होगा। पुण्य की चाह में एक व्यक्ति द्वारा पूरे वर्ष संसार में अर्पित या बलिदान किया गया कुछ भी उसके एक चौथाई के बराबर नहीं होता। जो लोग सीधे मार्ग पर चल चुके हैं, उन्हें सम्मान देना ही बेहतर है।

109. यदि आप आदतन सम्मानजनक हैं, और लगातार योग्य लोगों का आदर करते हैं, तो चार चीजें बढ़ती हैं: लंबी आयु, सुंदरता, खुशी, शक्ति।

110. सद्‌गुण रहित, असावधान जीवन जीने से बेहतर है एक दिन जो सद्‌गुणी व्यक्ति ध्यान में लीन होकर जीता है।

111. और सौ वर्षों तक अविवेकी, असावधानीपूर्वक जीने से बेहतर है एक दिन जो एक विवेकशील व्यक्ति द्वारा ध्यान में लीन होकर जिया जाता है।

112. और सौ साल उदासीनता और ऊर्जाहीनता में जीने से बेहतर है एक दिन ऊर्जावान और दृढ़ होकर जीना।

113. और सौ वर्षों तक बिना उदय और अस्त होते देखे जीने से बेहतर है एक दिन उदय और अस्त होते हुए देखना।

114. और सौ वर्षों तक अमरता की अवस्था को देखे बिना जीने से बेहतर है एक दिन अमरता की अवस्था को देखकर जीना।

115. और परम धम्म को देखे बिना सौ वर्ष जीने से बेहतर है, एक दिन परम धम्म को देखकर जीना।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V9:पापवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पापावग्गा: बुराई

116. प्रशंसनीय कार्यों को करने में तत्पर रहो। अपने मन को बुराई से दूर रखो। पुण्य कर्म करने में सुस्ती बरतने से बुराई मन को प्रसन्न करती है।

117. यदि कोई व्यक्ति बुराई करता है, तो उसे बार-बार ऐसा नहीं करना चाहिए, उसे बुराई की आदत नहीं डालनी चाहिए। बुराई का संचय पीड़ा लाता है।

118. यदि कोई व्यक्ति पुण्य कर्म करता है, तो उसे बार-बार पुण्य कर्म करना चाहिए, उसे पुण्य कर्म करने की आदत विकसित करनी चाहिए। पुण्य संचय करने से आराम मिलता है।

119. दुष्टों को भी तब तक सौभाग्य प्राप्त होता है जब तक उनकी बुराई परिपक्व नहीं हो जाती। परन्तु जब वह परिपक्व हो जाती है, तभी उन्हें बुराई का सामना करना पड़ता है।

120. अच्छे लोगों को भी तब तक दुर्भाग्य का सामना करना पड़ता है जब तक उनका अच्छाई का गुण परिपक्व नहीं हो जाता। लेकिन जब वह गुण परिपक्व हो जाता है, तभी उन्हें सौभाग्य प्राप्त होता है।

121. बुराई के प्रति उदासीन मत रहो ('यह मुझ तक नहीं पहुँचेगी')। बूंद-बूंद पानी गिरने से भी घड़ा भर जाता है। उसी प्रकार, मूर्ख व्यक्ति बुराई से - चाहे वह थोड़ा-थोड़ा करके ही क्यों न हो, आदतन भर लेता है।

122. पुण्य के प्रति उदासीन मत रहो ('यह मुझे प्राप्त नहीं होगा')। एक घड़ा बूंद-बूंद करके गिरने वाले पानी से भी भर जाता है। पुण्य से—चाहे थोड़ा-थोड़ा करके ही सही, नियमित रूप से—ज्ञान प्राप्त व्यक्ति स्वयं को परिपूर्ण कर लेता है।

123. एक छोटे लेकिन अच्छी तरह से लदे कारवां वाले व्यापारी की तरह - एक खतरनाक सड़क, जीवन से प्यार करने वाले व्यक्ति की तरह - एक जहर, जिससे बचना चाहिए - बुरे कर्म।

124. यदि हाथ पर कोई घाव न हो, तो वह हाथ विष धारण कर सकता है। विष वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता जहाँ घाव न हो। जो लोग बुराई नहीं करते, उनके लिए कोई बुराई नहीं है।

125. जो कोई निर्दोष व्यक्ति को, पवित्र व्यक्ति को, बेदाग व्यक्ति को सताता है, तो बुराई मूर्ख पर उसी प्रकार लौट आती है जैसे हवा में फेंकी गई बारीक धूल।

126. कुछ मनुष्य के गर्भ में जन्म लेते हैं, कुछ दुष्ट नरक में जाते हैं, अच्छे मार्ग पर चलने वाले स्वर्ग में जाते हैं, जबकि जो पाप रहित होते हैं वे पूरी तरह से मुक्त होते हैं।

127. न तो हवा में, न ही समुद्र के बीच में, न ही पहाड़ों की दरार में - पृथ्वी पर कहीं भी - ऐसी कोई जगह नहीं मिलेगी जहाँ आप रह सकें और अपने बुरे कर्म से बच सकें।

128. न तो हवा में, न ही समुद्र के बीच में, न ही पहाड़ों की दरार में - पृथ्वी पर कहीं भी - ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ आप रह सकें और मृत्यु के आगे न झुकें।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V10:दण्डवग्गा

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

दंडवग्गा: हिंसा
129. सभी लोग दंड से कांपते हैं।

सभी को मृत्यु का भय है। अपने आप से तुलना करते हुए, न तो किसी की हत्या करो और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए प्रेरित करो।

130. सभी लोग दंड से कांपते हैं,

सभी को अपना जीवन प्रिय होता है। अपने आप से तुलना करते हुए, न तो किसी की हत्या करो और न ही दूसरों को हत्या करने के लिए उकसाओ।

131. जो कोई स्वयं आराम की तलाश में आराम चाहने वाले जीवों को दंड देता है, उसे मृत्यु के बाद आराम नहीं मिलेगा।

132. जो कोई स्वयं आराम की तलाश में आराम चाहने वाले प्राणियों को दंड नहीं देता, उसे मृत्यु के बाद आराम मिलेगा।

133. किसी से कठोर भाषा का प्रयोग न करें, अन्यथा शब्द आप पर ही वापस आ पड़ेंगे। विवादपूर्ण बातचीत कष्टदायी होती है, क्योंकि बदले में आपको लाठियों से मार पड़ती है।

134. यदि तुम चपटे धातु के बर्तन की तरह गूंजते नहीं हो, तो तुमने बंधनमुक्ति प्राप्त कर ली है; तुममें कोई विवाद नहीं पाया गया है।

135. जैसे चरवाहा छड़ी से गायों को खेत में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु जीवित प्राणियों के जीवन को चलाती है।

136. जब मूर्ख बुरे कर्म करता है, तो वह बेखबर रहता है। मंदबुद्धि व्यक्ति अपने कर्मों से इस प्रकार पीड़ित होता है मानो आग से जल रहा हो।

137-139. जो कोई भी छड़ी से किसी निर्दोष, निहत्थे व्यक्ति को सताता है, वह शीघ्र ही दस चीजों में से किसी एक में पड़ जाता है: कठोर पीड़ा, विनाश, टूटा हुआ शरीर, गंभीर बीमारी, मानसिक विक्षिप्तता, सरकार के साथ परेशानी, हिंसक निंदा, रिश्तेदारों का खो जाना, संपत्ति का विघटन, घरों का जल जाना।

140. शरीर के विखंडन पर यह विवेकहीन प्राणी नरक में पुनः प्रकट होता है।

141. न तो नग्नता, न उलझे हुए बाल, न कीचड़, न भोजन से इनकार, न नंगी ज़मीन पर सोना, न धूल और गंदगी, न ही कठोर तपस्या उस नश्वर को शुद्ध करती है जो संदेह से परे नहीं गया है।

142. यदि कोई व्यक्ति सजे-धजे रहते हुए भी, शांत, संयमित और आश्वस्त होकर, सभी प्राणियों के प्रति दंड का भाव त्याग कर, पवित्र जीवन के अनुरूप जीवन व्यतीत करता है, तो वह चिंतनशील ब्राह्मण है, भिक्षु है।

143. इस दुनिया में ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो अंतरात्मा से विवश है, जो निंदा के प्रति उसी प्रकार जागृत होता है जैसे एक उत्तम घोड़ा चाबुक के प्रति?

144. कोड़े से पीटे गए एक उत्तम घोड़े की तरह, उत्साही और संयमित रहो। दृढ़ विश्वास, सद्गुण, दृढ़ता, एकाग्रता, विवेक, ज्ञान और आचरण में निपुणता और सचेतनता के माध्यम से, तुम इस महत्वपूर्ण पीड़ा से मुक्ति पाओगे।

145. सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं। तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। अच्छे आचरण वाले स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » वि11: जरावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

जारवग्गा: वृद्धावस्था
146. जब निरंतर प्रज्वलित हो, तो हंसी कैसी, आनंद क्यों? अंधकार में घिरे हो, क्या तुम दीपक नहीं खोजते?

147. उस सुंदर छवि को देखो, सड़ते हुए घावों का ढेर, सहारा दिया गया: बीमार, लेकिन कई संकल्पों का विषय, जहाँ कुछ भी स्थायी या निश्चित नहीं है।

148. यह शरीर क्षीण हो चुका है, रोगों का घोंसला है, विघटित हो रहा है। यह सड़ा हुआ समूह टूटकर बिखर जाएगा, क्योंकि जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है।

149. पतझड़ में लौकी की तरह फेंकी गई इन हड्डियों को देखकर, कबूतर के भूरे रंग की: क्या आनंद है?

150. हड्डियों से बना एक शहर, जिस पर मांस और खून का लेप लगा है, जिसके छिपे हुए खजाने हैं: अभिमान और तिरस्कार, बुढ़ापा और मृत्यु।

151. यहाँ तक कि भव्य रूप से अलंकृत शाही रथ भी जर्जर हो जाते हैं, और शरीर भी वृद्धावस्था के आगे नतमस्तक हो जाता है। परन्तु सद्‌गुणों का धर्म वृद्धावस्था के आगे नतमस्तक नहीं होता: सद्‌गुण सभ्य लोगों को इसका ज्ञान कराते हैं।

152. यह अनसुना आदमी बैल की तरह परिपक्व होता है। उसकी मांसपेशियां तो विकसित होती हैं, लेकिन उसकी विवेकशक्ति नहीं।

153. अनेक जन्मों के चक्र में मैं बिना प्रतिफल, बिना विश्राम के, घर बनाने वाले की खोज में भटकता रहा। बार-बार जन्म लेना कष्टदायक है।

154. हे घर बनाने वाले, तुम दिख गए! अब तुम फिर कभी घर नहीं बनाओगे। तुम्हारी सारी कड़ियाँ टूट गईं, छत का मुख्य स्तंभ नष्ट हो गया, और तुम्हारा मन व्याकुलता के अंत तक पहुँच गया।

155. न तो पवित्र जीवन जीने से और न ही जवानी में धन कमाने से, वे सूखे हुए, मछलियों से रहित झील में बूढ़े बगुले की तरह मुरझा जाते हैं।

156. न तो पवित्र जीवन जीते हैं और न ही अपनी जवानी में धन कमाते हैं, वे इधर-उधर पड़े रहते हैं, धनुष से चूक गए, पुराने दिनों पर आहें भरते हैं।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V12:अट्टवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

अट्टावग्ग: स्वयं

157. यदि आप स्वयं को प्रिय मानते हैं, तो अपनी रक्षा करें, अपनी अच्छी तरह से रक्षा करें। बुद्धिमान व्यक्ति रात के तीनों पहरों में, जीवन के तीनों चरणों में, जागते हुए स्वयं की देखभाल करता है।

158. पहले वह स्वयं सही मार्ग पर दृढ़ हो जाएगा, फिर दूसरों को सिखाएगा। वह अपना नाम कलंकित नहीं करेगा: वह बुद्धिमान है।

159. यदि आप स्वयं को उसी प्रकार ढालते हैं जिस प्रकार आप दूसरों को सिखाते हैं, तो अच्छी तरह से प्रशिक्षित होकर आगे बढ़ें और वश में करें - क्योंकि, जैसा कि वे कहते हैं, जिसे वश में करना कठिन है वह आप स्वयं हैं।

160. आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका आधार है, क्योंकि आपका आधार और कौन हो सकता है? जब आप स्वयं को अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर लेते हैं, तो आप वह आधार प्राप्त कर लेते हैं जिसे प्राप्त करना कठिन होता है।

161. उसने स्वयं जो बुराई की है—स्वयं उत्पन्न, स्वयं निर्मित—वह मंदबुद्धि को हीरे, एक कीमती पत्थर की तरह पीस देती है।

162. जब आप अत्यधिक बुराई से घिरे होते हैं - जैसे बेल से घिरा हुआ साल का पेड़ - तो आप अपने साथ वही करते हैं जो एक शत्रु चाहेगा।

163. जो काम आपके लिए न तो अच्छे हैं और न ही उपयोगी, उन्हें करना आसान है। लेकिन जो काम वास्तव में उपयोगी और अच्छा है, उसे करना बेहद कठिन है।

164. धम्म का पालन करने वालों, योग्य व्यक्तियों, श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षा: जो कोई भी इसकी निंदा करता है - एक मूर्ख, बुरे विचारों से प्रेरित - वह अपने ही विनाश का फल भोगता है, जैसे बांस का फल लगना।

165. स्वयं द्वारा किया गया बुराई स्वयं ही अपवित्र हो जाता है। स्वयं द्वारा न किया गया बुराई स्वयं ही शुद्ध हो जाता है। पवित्रता और अपवित्रता स्वयं के कर्मों का परिणाम है। कोई किसी को पवित्र नहीं कर सकता। कोई दूसरा व्यक्ति किसी को पवित्र नहीं कर सकता।

166. चाहे दूसरे का भला कितना भी महान क्यों न हो, अपने स्वयं के भले को उसके हित से न जोड़ें। अपने सच्चे भले को जानते हुए, केवल उसी पर ध्यान केंद्रित करें।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V13:लोकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

लोकावग्गा: दुनिया
167. नीच गुणों से संगति न करो। लापरवाही से मेलजोल न रखो। गलत विचारों से संगति न रखो। संसार के चक्कर में न पड़ो।

168. उठो! लापरवाह मत बनो। धम्म का पालन करो। धम्म का पालन करने वाला इस लोक और परलोक में चैन से सोता है।

169. धम्म का सही ढंग से पालन करो। गलत ढंग से पालन मत करो। जो धम्म का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक में चैन से सोता है।

170. इसे एक बुलबुला समझो, इसे एक मृगतृष्णा समझो: जो दुनिया को इस तरह देखता है, उसे मृत्यु का राजा नहीं देखता।

171. आओ, इस दुनिया को देखो जो शाही रथ की तरह सजी हुई है, जहाँ मूर्ख कूद पड़ते हैं, जबकि जो जानते हैं वे चिपके नहीं रहते।

172. जो कभी लापरवाह था, लेकिन बाद में नहीं रहा, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

173. उसके बुरे कर्म की जगह कुशलता ने ले ली है: वह दुनिया को बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह रोशन करता है।

174. यह संसार अंधा है - यहाँ कितने कम लोग स्पष्ट रूप से देख पाते हैं! जैसे जाल से बच निकलने वाले पक्षी कम होते हैं, वैसे ही स्वर्ग तक पहुँचने वाले लोग भी कम होते हैं।

175. हंस सूर्य के पथ पर उड़ते हैं; शक्तिवान लोग अंतरिक्ष में उड़ते हैं; प्रबुद्ध लोग मारा की सेनाओं को पराजित करके संसार से भाग जाते हैं।

176. जो व्यक्ति झूठ बोलता है, जो इस एक बात में उल्लंघन करता है, दुनिया के प्रति चिंता से परे जाकर: ऐसा कोई बुरा काम नहीं है जो वह न कर सके।

177. कंजूस लोग देवलोक में नहीं जाते। दान की प्रशंसा न करने वाले मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग दान के प्रति अपनी स्वीकृति व्यक्त करते हैं और इस प्रकार परलोक में शांति पाते हैं।

178. पृथ्वी पर एकमात्र प्रभुत्व, स्वर्ग जाना, सभी लोकों पर आधिपत्य: धारा-प्रवेश का फल उनसे श्रेष्ठ है।
टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V14:बुद्धवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

बुद्धवग्ग: बुद्ध
179. जिसकी विजय को पलटा नहीं जा सकता, जिसकी विजय तक दुनिया में कोई नहीं पहुँच सकता; जागृत, उसका चरागाह अनंत, पथहीन: तुम उसे किस मार्ग से गुमराह करोगे?

180. जिसमें कोई लालसा नहीं है - चिपचिपा जाल बिछाने वाला - उसे कहीं भी ले जाने के लिए; जागृत, उसका चारागाह अंतहीन, पथहीन: तुम उसे किस मार्ग से गुमराह करोगे?

181. वे प्रबुद्ध, ध्यान में लीन, शांति और त्याग में आनंदित, आत्मजागृत और सचेत: देवता भी उन्हें ईर्ष्या से देखते हैं।

182. मनुष्य जन्म पाना कठिन है। नश्वर प्राणियों का जीवन कठिन है। सच्चे धम्म को सुनने का अवसर पाना कठिन है। ज्ञानी जनों का उदय होना कठिन है।

183. किसी भी बुराई का न करना, कुशलता का प्रदर्शन करना, अपने मन को शुद्ध करना: यही जागृत व्यक्ति की शिक्षा है।

184. धैर्यपूर्वक सहनशीलता: सर्वोपरि तपस्या। बंधनमुक्ति: सर्वोपरि, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। जो दूसरे को चोट पहुँचाता है, वह ध्यानमग्न नहीं है। जो दूसरे के साथ दुर्व्यवहार करता है, वह भिक्षु नहीं है।

185. निंदा न करना, चोट न पहुँचाना, पतिमोक्खा के अनुरूप संयम, भोजन में संयम, एकांतवास, उन्नत मन के प्रति प्रतिबद्धता: यही जागृत व्यक्ति की शिक्षा है।

186. सोने के सिक्कों की वर्षा होने पर भी हमें इंद्रिय सुखों की पूर्ति नहीं होगी। 'तनावपूर्ण, वे कम आनंद देते हैं' - यह जानते हुए, बुद्धिमान व्यक्ति को दिव्य इंद्रिय सुखों में भी आनंद नहीं मिलता।

187. वह वह है जो व्यथा के अंत में आनंदित होता है, सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति का शिष्य है।

188. वे कई शरणस्थलों, पहाड़ों और जंगलों, पार्कों और वृक्षों के मंदिरों में जाते हैं: खतरे से घिरे लोग।

189. वह सुरक्षित शरणस्थल नहीं है, सर्वोच्च शरणस्थल नहीं है, वह शरणस्थल नहीं है, जहाँ जाकर आपको सभी दुख और तनाव से मुक्ति मिलती है।

190. परन्तु जब तुम बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेकर उचित विवेक से चारों आर्य सत्यों को देख लो—

191. तनाव, तनाव का कारण, तनाव से मुक्ति, और तनाव को शांत करने का अष्टमार्ग:

192. वह सुरक्षित शरणस्थल है, वह सर्वोच्च शरणस्थल है, वह शरणस्थल है, जहाँ जाकर आपको सभी दुख और तनाव से मुक्ति मिलती है।

193. एक उत्तम दर्जे का पुरुष मिलना दुर्लभ है। यह कहना बिलकुल गलत है कि वह हर जगह पैदा होता है। वह जहाँ कहीं भी पैदा हो, एक प्रबुद्ध व्यक्ति के परिवार में समृद्धि और सुख होता है।

194. एक आशीर्वाद: जागृतों का उदय। एक आशीर्वाद: सच्चे धम्म का उपदेश। एक आशीर्वाद: संघ की एकता। संघ में रहने वालों की तपस्या एक आशीर्वाद है।

195. यदि तुम पूजा के योग्य लोगों की पूजा करते हो, — जागृत जनों या उनके शिष्यों की — जिन्होंने जटिलताओं, विलाप और शोक को पार कर लिया है, जो संकटमुक्त, निर्भीक और बंधनमुक्त हैं:

196. आपकी योग्यता को 'इतना' आंकने का कोई पैमाना नहीं है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V15: सुखवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

सुखवग्ग: खुशी
197. हम कितने सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, शत्रुता से मुक्त होकर, शत्रुतापूर्ण लोगों के बीच। शत्रुतापूर्ण लोगों के बीच, हम शत्रुता से मुक्त होकर निवास करते हैं।

198. हम कितने सुख से रहते हैं, दुखों से मुक्त होकर, दुखियों के बीच। दुखियों के बीच, हम दुखों से मुक्त होकर निवास करते हैं।

199. हम कितने सुख से रहते हैं, व्यस्त लोगों के बीच व्यस्तता से मुक्त। व्यस्त लोगों के बीच, हम व्यस्तता से मुक्त रहते हैं।

200. हम कितने सुखी हैं, हम जिनके पास कुछ भी नहीं है। हम तेजस्वी देवताओं की तरह परमानंद से तृप्त होंगे।

201. जीत से शत्रुता उत्पन्न होती है। हार से व्यक्ति पीड़ा में लेट जाता है। शांत मन वाले लोग जीत और हार को भुलाकर आराम से लेट जाते हैं।

202. जुनून जैसी कोई आग नहीं, क्रोध जैसा कोई नुकसान नहीं, स्कंधों जैसा कोई दर्द नहीं, शांति के सिवा कोई आराम नहीं।

203. भूख: सबसे बड़ी बीमारी। मनगढ़ंत बातें: सबसे बड़ा दर्द। इस सत्य को उसके वास्तविक स्वरूप में जानने वाले के लिए, बंधनों से मुक्ति ही सबसे बड़ी राहत है।

204. रोग से मुक्ति: सबसे बड़ा सौभाग्य। संतोष: सबसे बड़ा धन। विश्वास: सबसे बड़ा रिश्ता। बंधन मुक्त होना: सबसे बड़ी सहजता।

205. एकांत और शांति के पोषण, उसके स्वाद का पान करने से, व्यक्ति बुराई से मुक्त हो जाता है, कष्टों से रहित हो जाता है, और धम्म में परमानंद के पोषण से तरोताज़ा हो जाता है।

206. नेक लोगों को देखना अच्छा लगता है। उनकी संगति में रहना हमेशा सुखद होता है। मूर्खों को लगातार न देखने से व्यक्ति हमेशा प्रसन्न रहता है।

207. क्योंकि मूर्ख के साथ रहने से लंबे समय तक दुःख बना रहता है। मूर्खों के साथ संगति शत्रु के समान कष्टदायी होती है—हमेशा। प्रबुद्धों के साथ संगति सत्कार सुखद होता है, जैसे सगे-संबंधियों के समूह के साथ।

208. अतः: प्रबुद्ध व्यक्ति — विवेकशील, विद्वान, सहनशील, कर्तव्यनिष्ठ, महान, बुद्धिमान, सत्यनिष्ठ व्यक्ति: उसका अनुसरण करो — इस प्रकार के व्यक्ति का — जैसे चंद्रमा, राशि चक्र के तारों का मार्ग।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V16:पियावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पियावग्गा: स्नेह
209. उसने अपना काम दूसरों के कामों में लगा दिया, और अपने कामों में नहीं लगा, अपने प्रिय लक्ष्य को पाने के लिए उसने अपने लक्ष्य की उपेक्षा की, अब वह उन लोगों से ईर्ष्या करता है जो अपने काम में लगे रहे, अपने कार्यों को पूरा करते रहे।

210. कभी भी, चाहे कुछ भी हो जाए, प्रिय हो या अप्राप्य, उससे मत जुड़ो। प्रिय या अप्राप्य को न देख पाना कष्टदायी होता है।

211. इसलिए किसी भी चीज़ को प्रिय न बनाओ, क्योंकि प्रिय से दूर रहना भयानक होता है। जिनके लिए न तो कुछ प्रिय है और न ही कुछ अप्रिय, उनके लिए कोई बंधन नहीं होता।

212. प्रिय से दुःख उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं रहता— तो भय कैसे? 213. प्रेम से दुःख उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है। प्रिय से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं रहता— तो भय कैसे?

214. आनंद से दुःख उत्पन्न होता है, आनंद से भय उत्पन्न होता है। आनंद से मुक्त व्यक्ति के लिए दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

215. कामुकता से दुःख उत्पन्न होता है, कामुकता से भय उत्पन्न होता है। कामुकता से मुक्त व्यक्ति के लिए दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

216. लालसा से दुःख उत्पन्न होता है, लालसा से भय उत्पन्न होता है। लालसा से मुक्त व्यक्ति को दुःख नहीं होता—तो भय कैसे?

217. सद्‌गुण और दूरदृष्टि में परिपूर्ण, विवेकशील, सत्य बोलने वाला, अपना काम करने वाला: दुनिया उसे प्रिय मानती है।

218. यदि आपने ऐसी इच्छा को जन्म दिया है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, आपका हृदय भावुक है, आपका मन कामुक भावनाओं में उलझा हुआ नहीं है: तो आपको ऊपर की ओर बहने वाली धारा में कहा जाता है।

219. एक व्यक्ति जो लंबे समय से अनुपस्थित था, दूर से सुरक्षित घर लौट आया। उसके रिश्तेदार, उसके दोस्त, उसके साथी, उसकी वापसी से प्रसन्न हुए।

220. ठीक इसी तरह, जब आप अच्छा काम करके इस दुनिया से परलोक में चले जाते हैं, तो आपके अच्छे कर्म आपका स्वागत करते हैं - जैसे कोई रिश्तेदार, कोई प्रिय व्यक्ति घर लौट आया हो।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V17:कोडवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

कोधावग्गा: क्रोध
221. क्रोध का त्याग करो, अहंकार से मुक्त हो जाओ, हर बंधन से परे हो जाओ। जब नाम और रूप से तुम्हारा कोई लगाव न हो— कुछ भी न हो— कोई दुख नहीं, कोई तनाव नहीं, तब प्रवेश करो।

222. जब क्रोध उत्पन्न होता है, तो जो कोई भी दौड़ते हुए रथ की तरह उस पर दृढ़ नियंत्रण रखता है, उसे मैं कुशल सारथी कहता हूँ। बाकी सब तो केवल लगाम थामे रहने वाले हैं—बस इतना ही।

223. क्रोध को क्रोधहीनता से जीतो; बुराई को अच्छाई से; कंजूसी को दान से; झूठे को सत्य से।

224. सच बोलकर; क्रोधित न होकर; मांगे जाने पर चाहे कितना भी कम हो, देकर: इन तीन बातों से तुम देवताओं की उपस्थिति में प्रवेश करते हो।

225. सौम्य ऋषि, शरीर को निरंतर संयमित रखते हुए, उस अविचल अवस्था में जाते हैं जहाँ पहुँचने पर कोई दु:ख नहीं होता।

226. जो लोग हमेशा जागते रहते हैं, दिन-रात अभ्यास करते हैं, मुक्ति के लिए उत्सुक रहते हैं: उनके अपशिष्ट समाप्त हो जाते हैं।

227. हे अतुल, यह बात प्राचीन काल से चली आ रही है, न कि केवल आज से: वे चुप बैठने वाले की आलोचना करते हैं, वे बहुत बोलने वाले की आलोचना करते हैं, वे अपने शब्दों को नापने वाले की आलोचना करते हैं।

228. दुनिया में कोई भी दोषरहित नहीं है। न कभी कोई ऐसा व्यक्ति था, न होगा, और न ही वर्तमान में कोई ऐसा व्यक्ति है जो पूरी तरह से दोषरहित हो या पूरी तरह से प्रशंसनीय हो।

229. यदि ज्ञानी लोग प्रतिदिन उसे आचरण में निर्दोष, बुद्धिमान, विवेकशील और सद्गुणी देखकर उसकी प्रशंसा करें:

230. सोने की ईंट के समान—उनमें दोष निकालने का अधिकार किसे है? देवता भी उनकी प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मा भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

231. शरीर में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; शरीर को संयमित रखें। शारीरिक दुराचार का त्याग करके, शरीर में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 232. वाणी में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; वाणी को संयमित रखें। वाणी के दुराचार का त्याग करके, वाणी में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 233. मन में क्रोध के प्रकोप से सावधान रहें; मन को संयमित रखें। मानसिक

दुराचार का त्याग करके, मन में सुचारु आचरण करते हुए जीवन व्यतीत करें। 234. शरीर से संयमित - प्रबुद्ध - वाणी और मन से संयमित - प्रबुद्ध - वे ही हैं जिनका संयम सुरक्षित है।

टिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V18: मालवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

मालवग्गा: अशुद्धि
235. अब तुम पीले पत्ते के समान हो। यमराज के सेवक पहले से ही पास खड़े हैं। तुम प्रस्थान के द्वार पर खड़े हो, परन्तु यात्रा की व्यवस्था अभी तक नहीं कर पाए हो।

236. अपने लिए एक द्वीप बनाओ! जल्दी काम करो! बुद्धिमान बनो! सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाएँगी, तुम निर्मल होकर श्रेष्ठों के दिव्य लोक में पहुँच जाओगे।

237. अब आप अपने समय के बिल्कुल अंत में हैं। आप यमराज की ओर जा रहे हैं, रास्ते में आराम करने की कोई जगह नहीं है, लेकिन आपने अभी तक यात्रा के लिए व्यवस्था नहीं की है।

238. अपने लिए एक द्वीप बनाओ! जल्दी काम करो! बुद्धिमान बनो! सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाने पर, बेदाग होकर, तुम फिर कभी जन्म और बुढ़ापे के चक्र से नहीं गुजरोगे।

239. जैसे एक चांदी का कारीगर धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा करके, पल-पल पिघली हुई चांदी की अशुद्धियों को दूर करता है - वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अशुद्धियों को दूर करता है।

240. जिस प्रकार जंग—लोहे की अशुद्धि—उस लोहे को ही खा जाती है जिससे वह उत्पन्न होती है, उसी प्रकार लापरवाह जीवन जीने वाले व्यक्ति के कर्म उसे बुरे अंजाम की ओर ले जाते हैं।

241. कोई पाठ नहीं: मंत्रों की विनाशकारी अशुद्धता। कोई पहल नहीं: घर की। आलस्य: सुंदरता का। लापरवाही: रक्षक की।

242. स्त्री में दुराचार अशुद्धि है। दानदाता में कंजूसी। इस लोक और परलोक में बुरे कर्म ही वास्तविक अशुद्धि हैं।

243. इन अशुद्धियों से भी अधिक अशुद्ध है परम अशुद्धि: अज्ञान। हे भिक्षुओं, इस अशुद्धि का त्याग करके तुम अशुद्धि मुक्त हो जाते हो।

244. बेईमान, कौवे की तरह धूर्त, भ्रष्ट, चुगलखोर, आगे बढ़कर काम करने वाले और उद्दंड व्यक्ति के लिए जीवन जीना आसान होता है;

245. लेकिन जो व्यक्ति निरंतर सतर्क, सावधान, चौकस, ईमानदार, अपनी आजीविका में शुद्ध और अपने कार्यों में स्वच्छ रहता है, उसके लिए यह कठिन है।

246. जो कोई हत्या करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, किसी दूसरे की पत्नी के पास जाता है, और नशीले पदार्थों का आदी है, वह इसी दुनिया में जड़ से खुद को उखाड़ फेंकता है।

247. इसलिए, हे मेरे भले मनुष्य, जान लो कि बुरे कर्म लापरवाही भरे होते हैं। लोभ और अधर्म को तुम्हें दीर्घकालीन पीड़ा से पीड़ित न करने दो।

249. लोग अपने विश्वास और दृढ़ विश्वास के अनुसार दान करते हैं। जो कोई दूसरों को दिए गए भोजन और पेय से विचलित हो जाता है, उसे दिन-रात एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

250. परन्तु जिसमें यह जड़ से उखाड़कर मिटा दिया जाता है, वह दिन हो या रात, एकाग्रता प्राप्त कर लेता है।

251. जुनून जैसी कोई आग नहीं, क्रोध जैसा कोई आवेग नहीं, भ्रम जैसा कोई जाल नहीं, लालसा जैसी कोई नदी नहीं।

252. दूसरों की गलतियाँ देखना आसान है, लेकिन अपनी गलतियाँ देखना मुश्किल। तुम दूसरों की गलतियों को भूसे की तरह छान लेते हो, लेकिन अपनी गलतियों को छुपा लेते हो—जैसे कोई धोखेबाज, कोई बदकिस्मती भरा दांव।

253. यदि आप दूसरों की गलतियों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, लगातार दोष निकालते रहते हैं, तो आपके दुष्परिणाम बढ़ते ही जाएंगे। आप उनके अंत से बहुत दूर हैं।

254. अंतरिक्ष में कोई मार्ग नहीं है, कोई बाहरी चिंतनशील नहीं है। लोग जटिलताओं से मोहित हैं, लेकिन तथागत जटिलताओं से रहित हैं।

255. अंतरिक्ष में कोई निशान नहीं है, कोई बाहरी चिंतनशील नहीं है, कोई शाश्वत रचना नहीं है, जागृत में कोई डगमगाहट नहीं है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V19:धम्मत्थवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

धम्मत्थावग्गा: न्यायाधीश
256. जल्दबाजी में फैसला सुनाने का मतलब यह नहीं है कि आप न्यायाधीश हैं।

257. बुद्धिमान व्यक्ति, सही और गलत दोनों निर्णयों का आकलन करते हुए, दूसरों का निष्पक्ष रूप से न्याय करता है - बिना जल्दबाजी के, धम्म के अनुरूप, धम्म की रक्षा करते हुए, धम्म द्वारा संरक्षित, बुद्धिमान: उसे न्यायाधीश कहा जाता है।

258. केवल बहुत बोलने से ही कोई बुद्धिमान नहीं हो जाता। जो भी सुरक्षित हो—जिसमें शत्रुता या भय न हो—उसे बुद्धिमान कहा जाता है।

259. केवल बहुत बोलने से धम्म का पालन नहीं होता। जो कोई भी — भले ही उसने कुछ न सुना हो — अपने शरीर के माध्यम से धम्म को देखता है, वह धम्म से बेखबर नहीं है: वही धम्म का पालन करने वाला है।

260. सिर पर सफ़ेद बाल होना बुज़ुर्ग होने की निशानी नहीं है। उम्रदराज़ होने पर तो बूढ़ा मूर्ख कहा जाता है।

261. परन्तु जिसमें सत्य, संयम, ईमानदारी, नम्रता, आत्मसंयम होता है, उसे वृद्ध कहा जाता है, उसके दोष दूर हो जाते हैं, वह प्रबुद्ध हो जाता है।

262. न तो मीठी बातों से और न ही कमल जैसे रंग से कोई ईर्ष्यालु, कंजूस और धोखेबाज अनुकरणीय व्यक्ति बन जाता है।

263. लेकिन जिसमें यह जड़ से उखाड़ दिया गया हो, मिटा दिया गया हो - उसे अनुकरणीय कहा जाता है, उसकी घृणा को त्याग दिया जाता है, बुद्धिमान कहा जाता है।

264. मुंडा सिर होने से चिंतनशील व्यक्ति नहीं बन जाता। झूठा व्यक्ति जो कर्तव्यों का पालन नहीं करता, लोभ और वासना से भरा हुआ है: वह किस प्रकार का चिंतनशील है?

265. परन्तु जो कोई अपने बुरे गुणों की विसंगति को — चाहे वह बड़ी हो या छोटी — हर तरह से बुराई को सामंजस्य में लाकर दूर कर देता है, उसे चिंतनशील कहा जाता है।

266. दूसरों से भीख मांगने से कोई साधु नहीं बन जाता। जब तक कोई गृहस्थ जीवन शैली का पालन करता है, तब तक वह बिल्कुल भी साधु नहीं होता।

267. परन्तु जो कोई पुण्य और पाप दोनों को त्यागकर, पवित्र जीवन जीते हुए, संसार में विवेकपूर्वक चलता है, वह भिक्षु कहलाता है।

268. मौन रहने से भ्रमित और अज्ञानी व्यक्ति ऋषि नहीं बन जाता।

269. परन्तु जो कोई बुद्धिमान होकर, मानो तराजू को थामे, उत्तम को तौलते हुए, बुरे कर्मों का त्याग करता है, वही ऋषि कहलाता है। जो संसार के दोनों पक्षों को तौल सकता है, वही ऋषि कहलाता है।

270. जीवन को हानि पहुँचाने से कोई महान नहीं बनता। सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु होने से ही महान कहलाते हैं।

271. हे भिक्षु, अपने उपदेशों एवं अभ्यासों, महान विद्वत्ता, एकाग्रता की उपलब्धियों, एकांतवास, या इस विचार के कारण कि 'मैं उस वैरागी सुख को प्राप्त करता हूँ जिसे आम लोग नहीं जानते':

272. क्या आपने कभी अपशिष्टों के अंत के अभी तक न होने पर आत्मसंतुष्ट होने दिया है?

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V20:मग्गवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

प्रतीक चिन्ह

मग्गावग्गा: पथ
273. मार्गों में अष्टांग मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। सत्यों में चार कथन सर्वश्रेष्ठ हैं। गुणों में वैराग्य सर्वश्रेष्ठ है। दो पैरों वाले प्राणियों में देखने की क्षमता रखने वाला मार्ग सर्वश्रेष्ठ है।

274. दृष्टि को शुद्ध करने का यही एकमात्र मार्ग है—कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसका अनुसरण करो, और मारा का विस्मरण दूर हो जाएगा। इसका अनुसरण करके तुम दुख और तनाव का अंत करोगे।

275. मैंने तुम्हें यह मार्ग सिखाया है, क्योंकि मैं जानता हूँ - तुम्हारे जानने के लिए - तीरों को निकालना।

276. आपको पूरी लगन से प्रयास करना होगा। तथागत केवल मार्ग दिखाते हैं। जो ध्यान में लीन होकर अभ्यास करते हैं, वे मार के बंधनों से मुक्त हो जाएंगे।

277. जब आप विवेक से यह समझ लेते हैं कि 'सभी रचनाएँ अस्थिर हैं', तो आप तनाव से मुक्त हो जाते हैं। यही पवित्रता का मार्ग है।

278. जब आप विवेक से यह समझ लेते हैं कि 'सभी बनावटी बातें तनावपूर्ण होती हैं', तो आप तनाव से विरक्त हो जाते हैं। यही पवित्रता का मार्ग है।

279. जब आप विवेक से यह देखते हैं कि 'सभी घटनाएँ अनात्म हैं', तो आप तनाव से विरक्त हो जाते हैं। यही शुद्धता का मार्ग है।

280. पहल करने का समय आने पर वह कोई पहल नहीं करता। युवा, बलवान, परन्तु सुस्त, हृदय के संकल्प क्षीण, आलसी, सुस्त व्यक्ति विवेक का मार्ग खो देता है।

281. वाणी में संशय और मन में संयम बरतते हुए, शरीर से अकुशल कार्य न करो। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करो। ऋषियों द्वारा घोषित मार्ग को साकार करो।

282. प्रयास से ज्ञान प्राप्त होता है; प्रयास न करने से ज्ञान का अंत हो जाता है। विकास और पतन के इन दो मार्गों को जानते हुए, ऐसा आचरण करो जिससे ज्ञान का विकास हो।

283. भोग-विलास के जंगल को काट डालो, वृक्षों के जंगल को नहीं। भोग-विलास के जंगल से ही खतरा और भय उत्पन्न होते हैं। इस जंगल और इसकी झाड़ियों को काटकर, हे भिक्षुओं, वनों से मुक्त हो जाओ।

284. जब तक किसी पुरुष के मन में महिलाओं के लिए थोड़ी सी भी अनबन नहीं रह जाती, तब तक दिल एक दूध पीते बछड़े की तरह अपनी माँ पर टिका रहता है।

285. अपने आत्म-आकर्षण को हाथ में शरद ऋतु के लिली फूल की तरह कुचल दो। केवल शांति के मार्ग का पोषण करो - बंधनमुक्ति - जैसा कि उस परम पूज्य ने सिखाया है जो अब इस दुनिया में नहीं है।

286. 'मैं यहाँ बरसात के मौसम में रहूँगा। यहाँ, गर्मी और सर्दी के मौसम में।' मूर्ख ऐसा ही सोचता है, बाधाओं से अनभिज्ञ।

287. वह अपने बेटों और मवेशियों के नशे में चूर आदमी, जो पूरी तरह से दिमागी उलझन में है: मौत उसे बहा ले जाती है - एक बड़ी बाढ़ की तरह, एक सोए हुए गाँव की तरह।

288. एंडर द्वारा बंदी बनाए गए व्यक्ति को आश्रय देने के लिए कोई पुत्र नहीं, कोई पिता नहीं, कोई परिवार नहीं, रिश्तेदारों के बीच कोई आश्रय नहीं।

289. इस बाध्यकारी कारण से अवगत होकर, सद्गुण से संयमित बुद्धिमान व्यक्ति को तुरंत ही उस मार्ग को शुद्ध बनाना चाहिए जो मुक्ति की ओर जाता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » वी21:पाकिन्नकवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

पकिन्नाकवग्गा: विविध
290. यदि सीमित सुख-सुविधाओं का त्याग करके वह प्रचुर सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना चाहे, तो प्रबुद्ध व्यक्ति प्रचुर सुख-सुविधाओं के लिए सीमित सुख-सुविधाओं का त्याग कर देगा।

291. वह दूसरों को कष्ट देकर स्वयं को सुख भोगना चाहता है। शत्रुता की परस्पर क्रिया में उलझा हुआ, वह शत्रुता से मुक्त नहीं हो पाता।

292. जो लोग उचित कार्य को अस्वीकार करते हैं और अनुचित कार्य करते हैं— लापरवाह, उद्दंड— उनमें अपशकुन पनपता है।

293. लेकिन जो लोग शरीर में लीन होकर निरंतर सचेतनता का अभ्यास करते हैं; वे उन चीजों में लिप्त नहीं होते जो नहीं करनी चाहिए और उन चीजों में लगे रहते हैं जो सचेत और सतर्क रहकर करनी चाहिए — उनके लिए अपशिष्ट पदार्थ समाप्त हो जाते हैं।

294. माता-पिता, दो योद्धा राजाओं, राज्य और उसके अधीनता को मारकर ब्राह्मण, निश्चिंत होकर आगे बढ़ता है।

295. माता-पिता, दो विद्वान राजाओं और पाँचवें, एक बाघ को मारकर ब्राह्मण, निडर होकर आगे बढ़ता है।

296. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात बुद्ध में लीन रहती है। 297. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात धम्म में लीन रहती है। 298. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात संघ में लीन रहती है। 299. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनकी चेतना दिन-रात शरीर में लीन रहती है। 300. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनका हृदय दिन-रात अहिंसा में आनंदित रहता है। 301. वे जागृत रहते हैं, सदा जागृत: गौतम के वे शिष्य जिनका हृदय दिन-रात मन के विकास में आनंदित रहता है।

302. बाहर का जीवन कठिन है, उसमें आनंद पाना मुश्किल है। दुखी गृहस्थ का जीवन कठिन है। असंगत लोगों के साथ रहना कष्टदायी है, मार्ग पर चलना कष्टदायी है। इसलिए न तो यात्री बनो और न ही दुखी।

303. दृढ़ निश्चयी, सद्‌गुण, यश और धन से संपन्न पुरुष: वह जहाँ भी जाता है, उसका सम्मान होता है।

304. अच्छे लोग दूर से बर्फीले हिमालय की तरह चमकते हैं। बुरे लोग पास होने पर भी दिखाई नहीं देते, मानो रात में तीर चलाए गए हों।

305. अकेले बैठे, अकेले आराम करते, अकेले चलते, बिना थके। खुद को वश में करते हुए, वह अकेले ही आनंद लेता—जंगल में अकेले।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V22:निरायवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

निरयावग्ग: नरक
306. जो व्यक्ति यह दावा करता है कि जो हुआ ही नहीं, वह नरक में जाता है, और जो व्यक्ति यह कहकर चुप रहता है कि 'मैंने नहीं किया', वह भी नरक में जाता है। दोनों ही - नीच कर्म करने वाले लोग - वहाँ बराबर हो जाते हैं: मृत्यु के बाद, परलोक में।

307. उनके गले में गेरुए रंग का वस्त्र बंधा हुआ, अनेक दुष्ट गुणों वाले — बेलगाम, दुष्ट — अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में उठते हैं। 308. धधकती हुई लोहे की गेंद खाना बेहतर है, बजाय इसके कि तुम सिद्धांतहीन और बेलगाम होकर देश की भीख खाओ।

309. जो व्यक्ति दूसरे की पत्नी के साथ संबंध बनाता है, उसे चार बातें भुगतनी पड़ती हैं: एक तो बहुत सारे बुरे कर्म; एक बार अच्छी नींद न आना; तीसरी बात, निंदा; चौथी बात, नरक।

310. घोर पाप, बुरा भाग्य, और एक डरपोक पुरुष का एक डरपोक स्त्री के साथ क्षणिक सुख, और राजा कठोर दंड देता है। इसलिए किसी भी पुरुष को दूसरे की पत्नी के साथ संबंध नहीं बनाना चाहिए।

311. जैसे नुकीली घास, अगर गलत तरीके से पकड़ी जाए, तो पकड़ने वाले हाथ को ही घायल कर देती है — चिंतनशील जीवन, अगर गलत तरीके से पकड़ा जाए, तो आपको नरक में खींच ले जाता है।

312. कोई भी शिथिल कार्य, या अपवित्र पालन, या कपटपूर्ण पवित्रता का जीवन कोई बड़ा फल नहीं देता।

313. यदि कुछ करना है, तो दृढ़ता से काम करो, क्योंकि ढिलाई से काम करने से और भी अधिक धूल उड़ती है।

314. किसी बुरे काम को न करना ही बेहतर है। बुरा काम करने के बाद पछतावा होता है। इससे बेहतर है कि कोई अच्छा काम किया जाए, जिसे करने के बाद पछतावा न हो।

315. एक सीमावर्ती किले की तरह, जिसकी भीतरी और बाहरी सुरक्षा की जाती है, अपनी रक्षा करो। इस पल को यूं ही बीतने मत दो। जिनके लिए यह पल बीत चुका है, वे शोक मनाते हैं और नरक में चले जाते हैं।

316. जो शर्मनाक नहीं है, उससे शर्मिंदा, जो शर्मनाक है, उससे शर्मिंदा नहीं, गलत विचार अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

317. जहाँ खतरा नहीं है वहाँ खतरा देखना, और जहाँ खतरा है वहाँ खतरा न देखना, गलत दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

318. जहाँ कोई त्रुटि नहीं है वहाँ त्रुटि की कल्पना करना, और जहाँ त्रुटि है वहाँ त्रुटि न देखना, गलत दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी बुरे गंतव्य की ओर जाते हैं।

319. परन्तु त्रुटि को त्रुटि और त्रुटिहीनता को त्रुटि न मानकर, सही दृष्टिकोण अपनाने वाले प्राणी अच्छे गंतव्य की ओर जाते हैं।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V23:नागवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

नागवग्ग: हाथी
320. मैं युद्ध में हाथी की तरह, धनुष से चलाए गए तीर को सहते हुए, झूठे आरोप को सह लूँगा, क्योंकि आम जनता के पास कोई सिद्धांत नहीं है।

321. जो पालतू है, उसे सभाओं में ले जाया जाता है। जो पालतू है, उसी पर राजा सवार होता है। जो पालतू है, वह झूठे आरोप को सह लेता है, मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

322. सिंध के पालतू खच्चर, पालतू नस्ल के घोड़े और पालतू घोड़े उत्कृष्ट हैं। पालतू हाथी और विशाल हाथी भी उत्कृष्ट हैं। लेकिन स्वयं को पालतू बनाने वाले तो और भी उत्कृष्ट हैं।

323. क्योंकि इन वाहनों के द्वारा तुम उस दुर्गम भूमि पर नहीं जा सकते, जैसे कोई पालतू जानवर अपने आप को अच्छी तरह से पालतू बनाकर जाता है।

324. मदमस्त हाथी धनपालका को वश में करना कठिन है। बंधा हुआ वह एक निवाला भी नहीं खाएगा: हाथी को हाथी की लकड़ी की याद आ रही है।

325. जब सुस्त और ज़रूरत से ज़्यादा खाया हुआ, नींद में डूबा हुआ, मोटे सूअर की तरह इधर-उधर लुढ़कता रहता है, चारे पर मोटा हुआ: एक मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में प्रवेश करता है।

326. पहले यह मन अपनी इच्छा से, जहाँ चाहे, जिस तरह चाहे भटकता था। आज मैं इसे उचित रूप से नियंत्रण में रखूँगा—जैसे कोई अंकुश से, मदमस्त हाथी को नियंत्रित करता है।

327. सजगता में आनंद लो। अपने मन पर नज़र रखो। कीचड़ में धंसे हुए हाथी की तरह कठिन मार्ग से खुद को ऊपर उठाओ।

328. यदि आपको कोई परिपक्व साथी मिले— कोई सहयात्री, सही जीवन जीने वाला, प्रबुद्ध— तो सभी खतरों को पार करते हुए, संतुष्ट और सचेत होकर उसके साथ चलें।

329. यदि आपको कोई परिपक्व साथी न मिले — कोई सहयात्री, सही जीवन जीने वाला, प्रबुद्ध — तो अकेले जाओ जैसे कोई राजा अपने राज्य का त्याग करता है, जैसे मतंगा के जंगलों में हाथी अपने झुंड का त्याग करता है।

330. अकेले जाना बेहतर है, मूर्ख का कोई साथ नहीं होता। अकेले जाओ, कोई बुराई न करो, शांति से रहो, जैसे मतंगा के जंगलों में हाथी रहता है।

331. एक आशीर्वाद: जरूरत पड़ने पर मित्र। एक आशीर्वाद: जो कुछ भी है, उससे संतुष्ट रहना। जीवन के अंत में पुण्य एक आशीर्वाद है। एक आशीर्वाद: सभी दुखों और तनावों से मुक्ति।

332. संसार में एक आशीर्वाद: माता का आदर। एक आशीर्वाद: पिता का आदर। संसार में एक आशीर्वाद: ध्यानमग्न व्यक्ति का आदर। एक आशीर्वाद: ब्राह्मण का आदर।

333. वृद्धावस्था में आशीर्वाद मिलना सद्गुण है। आशीर्वाद: दृढ़ विश्वास। आशीर्वाद: प्राप्त विवेक। बुरे कार्यों से दूर रहना आशीर्वाद है।
तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V24: तन्हावग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

तन्हावग्गा: लालसा
334. जब कोई व्यक्ति लापरवाही से जीवन जीता है, तो उसकी लालसा लता की तरह बढ़ती जाती है। वह कभी इधर तो कभी उधर भागता है, मानो जंगल में फल की तलाश में भटक रहा बंदर हो।

335. यदि संसार में यह चिपचिपी, असभ्य लालसा तुम पर हावी हो जाए, तो तुम्हारे दुःख वर्षा के बाद जंगली घास की तरह बढ़ जाते हैं। 336. यदि संसार में तुम इस असभ्य लालसा पर विजय प्राप्त कर लो, जिससे बचना कठिन है, तो दुःख तुम पर से कमल से पानी की बूंदों की तरह बह जाते हैं।

337. आप सभी उपस्थित लोगों से मैं कहता हूँ: शुभकामनाएँ। लालसा को जड़ से उखाड़ फेंकें—जैसे औषधीय जड़ों या जंगली घास की खोज करते समय करते हैं। मारा को आपको बार-बार नष्ट न करने दें—जैसे उग्र नदी या सरकंडा।

338. यदि किसी वृक्ष की जड़ अक्षुण्ण और मजबूत बनी रहे, तो उसे काट देने पर भी वह पुनः उग आएगा। ठीक उसी प्रकार, यदि अंतर्मुखी लालसा को जड़ से उखाड़ा न जाए, तो यह पीड़ा बार-बार लौटकर आती है।

339. जिसकी 36 धाराएँ आकर्षक चीज़ों की ओर बहती हैं, वे प्रबल होती हैं: धाराएँ— जुनून पर आधारित संकल्प—उसे नीच विचारों से दूर ले जाते हैं।

340. धाराएँ तो हर दिशा में बहती हैं, परन्तु अंकुरित लता अपनी जगह पर स्थिर रहती है। अब, जब लता उग आई है, तो विवेक से उसकी जड़ काट दो।

341. व्यक्ति के सुख ढीले और चिकने हो जाते हैं। प्रलोभन से बंधे लोग, आराम की तलाश में: जन्म और बुढ़ापे की ओर बढ़ते हैं।

342. लालसा से घिरे लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह गोल-गोल घूमते रहते हैं। बेड़ियों और बंधनों में जकड़े वे लंबे समय तक बार-बार पीड़ा भोगते रहते हैं।

343. व्यथा से घिरे हुए लोग फंदे में फंसे खरगोश की तरह इधर-उधर उछलते रहते हैं। अतः एक भिक्षु को व्यथा का निवारण करना चाहिए, स्वयं वैराग्य की आकांक्षा रखनी चाहिए।

344. झाड़ियों से मुक्त होकर भी जंगल के प्रति आसक्त, जंगल से आज़ाद होकर भी वह वापस जंगल की ओर दौड़ता है। देखो, उस आज़ाद इंसान को जो उन्हीं पुरानी बेड़ियों में वापस लौटता है! ज्ञानी कहते हैं कि यह कोई मज़बूत बंधन नहीं है—चाहे वह लोहे का हो, लकड़ी का हो या घास का।

345. गहनों और आभूषणों से मोहित होना, बच्चों और पत्नियों की लालसा करना: यही मजबूत बंधन है, - ऐसा प्रबुद्ध लोग कहते हैं - एक ऐसा बंधन जो बाध्यकारी, लचीला और खोलना मुश्किल है।

346. परन्तु इसे काटकर वे — प्रबुद्ध — लालसा से मुक्त होकर, इंद्रिय सुख का त्याग करके आगे बढ़ते हैं। 347. कामवासना से ग्रस्त लोग मकड़ी की तरह अपने ही जाल में फँसकर वापस उसी धारा में गिर जाते हैं। परन्तु इसे काटकर प्रबुद्ध लोग लालसा से मुक्त होकर, समस्त दुख और तनाव का त्याग करके आगे बढ़ते हैं।

348. अस्तित्व की सीमा से परे जाकर, आप आगे, पीछे, बीच में सब कुछ छोड़ देते हैं। हर जगह हृदय से त्याग के साथ, आप जन्म और वृद्धावस्था में पुनः नहीं आते।

349. अपने विचारों से विवश, अपने जुनून में उग्र, सौंदर्य पर केंद्रित व्यक्ति के लिए, लालसा और भी बढ़ जाती है। वही बंधन को मजबूत करता है।

350. लेकिन जो चिंतन को शांत करने में आनंद लेता है, जो हमेशा बुराई पर ध्यान केंद्रित करने के लिए सचेत रहता है: वही अंत करेगा, वही मारा के बंधन को तोड़ेगा।

351. निडर, निर्मल, लालसा से मुक्त होकर, वह अंतिम पड़ाव पर पहुँच गया है, उसने अस्तित्व के तीरों को काट डाला है। यह भौतिक ढेर उसका अंतिम है।

352. लालसा से मुक्त, अनासक्त, अभिव्यक्ति में निपुण, ध्वनियों के संयोजन को जानने वाला—कि कौन सी ध्वनि पहले आती है और कौन सी बाद में। उसे अंतिम शरीर वाला अत्यंत विवेकशील महान पुरुष कहा जाता है।

353. मैं सर्वविजयी, सर्वज्ञ हूँ, सभी चीजों के संबंध में अनासक्त। सभी इच्छाओं का त्याग करके, लालसा के अंत में मुक्त होकर: मैंने स्वयं ही सब कुछ जान लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु मानूँ?

354. धम्म का उपहार सभी उपहारों पर विजय प्राप्त करता है; धम्म का स्वाद सभी स्वादों पर विजय प्राप्त करता है; धम्म में आनंद सभी आनंदों पर विजय प्राप्त करता है; व्याकुलता का अंत सभी दुख और तनावों का अंत करता है।

355. धन-दौलत विवेकहीन व्यक्ति को बर्बाद कर देती है, परन्तु जो लोग परलोक की खोज करते हैं, उन्हें नहीं। धन-दौलत की लालसा में विवेकहीन व्यक्ति स्वयं को ही नहीं, बल्कि दूसरों को भी बर्बाद कर देता है।

356. खेत खरपतवारों से खराब होते हैं; लोग वासना से। इसलिए जो वासना से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

357. खेत खरपतवारों से खराब होते हैं; लोग घृणा से। इसलिए जो घृणा से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

358. खेत खरपतवारों से खराब हो जाते हैं; लोग भ्रम से। इसलिए भ्रम से मुक्त लोगों को जो कुछ दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

359. खेत खरपतवारों से खराब हो जाते हैं; लोग लालसा से। इसलिए जो लालसा से मुक्त हैं, उन्हें जो दिया जाता है, वह बहुत फलदायी होता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V25: भिक्खुवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

भिक्खुवग्ग: भिक्षु
360. आँखों पर संयम रखना अच्छा है, कानों पर संयम रखना अच्छा है। नाक पर संयम रखना अच्छा है, जीभ पर संयम रखना अच्छा है। शरीर पर संयम रखना अच्छा है, वाणी पर संयम रखना अच्छा है।

361. हृदय से संयम अच्छा है, हर जगह संयम अच्छा है। हर जगह संयमी भिक्षु सभी दुखों और तनावों से मुक्त हो जाता है।

362. हाथ बंधे हुए, पैर बंधे हुए, वाणी संयमित, परम संयमित - जो भीतरी है उसमें आनंदित, संतुष्ट, केंद्रित, अकेला: उसे भिक्षु कहते हैं।

363. एक भिक्षु जो अपने बोलने में संयमित है, शांत भाव से सलाह देता है, संदेश और अर्थ स्पष्ट करता है: उसकी वाणी मधुर है।

364. धम्म उसका निवास है, धम्म उसका आनंद है, धम्म पर चिंतन करने वाला, धम्म का स्मरण करने वाला भिक्षु सच्चे धम्म से विमुख नहीं होता।

365. लाभ: अपने आप को तुच्छ मत समझो, दूसरों के धन का लोभ मत करो। जो भिक्षु दूसरों के धन का लोभ करता है, उसे एकाग्रता प्राप्त नहीं होती।

366. भले ही उसे कुछ न मिले, वह अपने लाभों को तुच्छ नहीं समझता। शुद्ध और अथक जीवन जीते हुए, वही है जिसकी देवता प्रशंसा करते हैं।

367. जिसके लिए नाम और रूप में, हर तरह से, मेरा कोई बोध नहीं है, और जो उस चीज़ के लिए शोक नहीं करता जो नहीं है: उसे ही उचित रूप से भिक्षु कहा जाता है।

368. दयालुता में निवास करते हुए, प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में विश्वास रखने वाला भिक्षु अच्छी अवस्था, शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त करेगा: कल्पनाओं का शांत होना।

369. भिक्षु, इस नाव से पानी निकाल दो। पानी निकलने पर यह तुम्हें आसानी से ले जाएगी। जुनून और घृणा को पार करके, तुम वहाँ से मुक्ति की ओर बढ़ोगे।

370. पाँचों को काट डालो, पाँचों को त्याग दो, और पाँचों को सर्वोपरि बनाओ। पाँचों आसक्तियों से पार पा चुके भिक्षु को जलप्रलय पार करने वाला कहा जाता है।

371. हे भिक्षु, ध्यान का अभ्यास करो और लापरवाह मत बनो। अपने मन को कामुक विचारों में भटकने मत दो। लापरवाही से जलते हुए लोहे के गोले को मत निगल लो। जलकर शिकायत मत करो: 'यह पीड़ा है।'

372. विवेकहीन व्यक्ति के लिए ध्यान नहीं होता, और ध्यानहीन व्यक्ति के लिए विवेक नहीं होता। परन्तु जिसके पास ध्यान और विवेक दोनों हों, वह मुक्ति के कगार पर होता है।

373. मन से शांत भिक्षु, एक खाली निवास में जाकर, धम्म को सही ढंग से स्पष्ट रूप से देखते हुए: उसका आनंद मानवीय आनंद से कहीं अधिक है।

374. चाहे जो भी हो, वह समुच्चयों के उदय और अस्त होने को स्पर्श करता है: वह परमानंद और आनंद प्राप्त करता है: जो इसे जानते हैं, उनके लिए यह अमर है, अमरता।

375. यहाँ एक विवेकशील भिक्षु के लिए पहली चीजें हैं इंद्रियों की रक्षा करना, संतोष, पतिमोक्खा के अनुरूप संयम।

376. उसे प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करनी चाहिए, शुद्ध जीवन जीना चाहिए, अथक, आतिथ्य सत्कारपूर्ण और आचरण में कुशल होना चाहिए। अनेक प्रकार के आनंद प्राप्त करके वह दुख और तनाव का अंत करेगा।

377. हे भिक्षुओं, वासना और घृणा को त्याग दो—जैसे चमेली अपने मुरझाए हुए फूलों को त्याग देती है।

378. शरीर से शांत, वाणी से शांत, संतुलित और शांत, संसार के प्रलोभनों को त्यागकर, भिक्षु को पूर्णतः शांत कहा जाता है।

379. तुम्हें स्वयं को फटकारना चाहिए, स्वयं की जाँच करनी चाहिए। एक आत्म-संरक्षित भिक्षु की तरह, सचेत होकर, तुम सहजता से रहते हो।

380. आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका आधार है। आपका स्वयं का अस्तित्व ही आपका मार्गदर्शक है। इसलिए आपको स्वयं की देखभाल करनी चाहिए - जैसे एक व्यापारी, एक उत्तम घोड़े की।

381. अनेक प्रकार के आनंद से परिपूर्ण, प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में आस्था रखने वाला भिक्षु अच्छी अवस्था, शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त करेगा: कल्पनाओं का शांत होना।

382. एक युवा भिक्षु जो प्रबुद्ध व्यक्ति की शिक्षा में प्रयास करता है, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

तिपिटक » सुत्त पिटक » खुद्दक निकाय » धम्मपद » V26:ब्राह्मणवग्गा
पाली संस्करण : पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

स्रोत : थानिसारो भिक्खु द्वारा किए गए मूल अनुवाद से रूपांतरित।

ब्राह्मणवग्ग: ब्राह्मण
383. हे ब्राह्मण, परिश्रम करके धारा को काट डालो। कामुक भावनाओं को त्याग दो। हे ब्राह्मण, रचनाओं के अंत को जानकर तुम अजन्मे को जानते हो।

384. जब ब्राह्मण दो चीजों से परे चला जाता है, तब उसके सभी बंधन समाप्त हो जाते हैं - जो जानता है।

385. वह व्यक्ति जिसका परे या परे या परे-और-परे नहीं पाया जा सकता; बंधनमुक्त, बेफिक्र: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

386. चुपचाप बैठे, धूल रहित, ध्यान में लीन, उसका कार्य पूरा हो गया, अपशिष्ट दूर हो गए, अंतिम लक्ष्य प्राप्त हो गया: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

387. दिन में सूर्य चमकता है; रात में चंद्रमा; कवचधारी योद्धा; ध्यानमग्न ब्राह्मण। परन्तु दिन-रात, हर दिन और हर रात, प्रबुद्ध व्यक्ति वैभव में चमकता है।

388. उसे ब्राह्मण कहा जाता है क्योंकि उसने अपनी बुराई को त्याग दिया है, उसे चिंतनशील कहा जाता है क्योंकि वह सामंजस्य में रहता है, उसे आगे बढ़ा हुआ कहा जाता है क्योंकि उसने अपनी अशुद्धियों को त्याग दिया है।

389. ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए, न ही ब्राह्मण को अपना क्रोध प्रकट करना चाहिए। ब्राह्मण के हत्यारे पर कलंक है, और उससे भी अधिक कलंक उस ब्राह्मण पर है जिसका क्रोध प्रकट होता है।

390. ब्राह्मण के लिए इससे बेहतर कुछ नहीं कि उसका मन सुखद और अप्रिय बातों से विमुख रहे। जैसे-जैसे उसकी हानिकारक प्रवृत्ति दूर होती जाती है, वैसे-वैसे तनाव भी शांत होता जाता है।

391. जो शरीर, वाणी और हृदय से कोई दोष नहीं करता, वह इन तीनों प्रकार से संयमित रहता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

392. जिस व्यक्ति से तुम सही मायने में आत्म-जागृत व्यक्ति द्वारा सिखाए गए धम्म को सीखोगे: तुम्हें उसका आदर करना चाहिए - एक ब्राह्मण के समान, यज्ञ की ज्वाला के समान।

393-394. जटाधारी बालों, कुल या जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। सत्य और ईमानदारी रखने वाला ही शुद्ध ब्राह्मण है।

अरे मूर्ख, तुम्हारे उलझे बालों का क्या फायदा? तुम्हारी हिरण की खाल के लबादे का क्या फायदा? उलझन तो तुम्हारे अंदर है। तुम उसे बाहर से कंघी करो।

395. फटे-पुराने कपड़े पहने हुए - दुबला-पतला शरीर और नसों से भरा हुआ - जंगल में अकेला, ध्यान में लीन: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

396. मैं किसी को माँ से जन्म लेने या गर्भ से उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहता। जो कुछ भी धारण करता है, उसे 'भो-साहसी' कहा जाता है। परन्तु जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो किसी भी चीज से आसक्त नहीं है, वही मेरे लिए ब्राह्मण है।

397. हर बंधन तोड़कर वह विचलित नहीं होता। आसक्ति से परे, बेड़ियों से मुक्त: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

398. पट्टा और डोरी, रस्सी और लगाम काटकर, बार को फेंककर, जागृत होकर: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

399. वह बिना क्रोधित हुए अपमान, हमले और कारावास सहता है। उसकी सेना ही शक्ति है; उसकी शक्ति ही सहनशीलता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

400. क्रोध से मुक्त, कर्तव्यों का पालन करने वाला, सिद्धांतवादी, अत्यधिक अभिमान रहित, प्रशिक्षित, 'अंतिम शरीर': मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

401. कमल के पत्ते पर पानी की तरह, सुई की नोक पर सरसों के दाने की तरह, वह कामुक सुखों से चिपके नहीं रहते: मैं उन्हें ब्राह्मण कहता हूँ।

402. वह यहीं, अपने लिए, अपने दम पर, अपने तनाव का अंत स्वयं ही समझ लेता है। बंधनमुक्त, उसका बोझ उतर गया: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

403. बुद्धिमान, विवेक में गहन, मार्ग और अनकहे मार्ग के बारे में चतुर; अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर चुका: वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

404. गृहस्थों और बेघरों से समान रूप से अछूता; बिना घर के, लगभग बिना किसी आवश्यकता के रहना: वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

405. भयभीत या दृढ़ प्राणियों के विरुद्ध हिंसा को त्यागकर, वह न तो स्वयं हत्या करता है और न ही दूसरों से हत्या करवाता है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

406. विपक्ष में भी अप्रतिरोध्य, सशस्त्रों में भी स्वतंत्र, आसक्ति रखने वालों में भी अनासक्त: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

407. उसका जुनून, घृणा, अहंकार और तिरस्कार ऐसे गिर गया है जैसे सूई की नोक से सरसों का दाना: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

408. वह ऐसी बातें कहता है जो अप्रिय नहीं होतीं, शिक्षाप्रद होती हैं, सत्य होती हैं - किसी का अपमान नहीं करता: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

409. यहाँ दुनिया में वह कुछ भी अनचाहा नहीं लेता - लंबा, छोटा, बड़ा, छोटा, आकर्षक, नहीं: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

410. इस लोक और परलोक के लिए उसकी तड़प नहीं पाई जा सकती; तड़प से मुक्त, बंधनमुक्त: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

411. उसके आसक्ति, उसके घर, नहीं मिल सकते। ज्ञान के माध्यम से वह विचलित नहीं है, उसने अमरता प्राप्त कर ली है: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

412. वह यहाँ पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे हो गया है - दुःख रहित, निष्कलंक और शुद्ध: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

413. बेदाग, शुद्ध, चाँद की तरह - निर्मल और शांत - उसके आनंद, उसके रूप, पूरी तरह से गायब: वह वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

414. वह इस कठिन मार्ग— संसार, भ्रम—से पार हो चुका है, उससे परे चला गया है, अभाव से मुक्त है, उलझन से मुक्त है, ध्यान में लीन है, अनासक्ति से मुक्त है: वह वह है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

415-416. जो कोई भी यहाँ इंद्रिय सुखों का त्याग करके घर से निकल जाए—जिसके इंद्रिय सुख, उसकी अभिलाषाएँ, सब कुछ पूरी तरह से समाप्त हो जाएँ: वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो कोई भी यहाँ लालसाओं का त्याग करके घर से बाहर निकलेगा—जिसकी लालसाएँ, उसके स्वभाव, सब कुछ पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा: वही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

417. मानवीय बंधन को त्यागकर, दिव्य मार्ग को पार करके, सभी बंधनों से मुक्त होकर: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

418. सुख और दुःख को त्यागकर, शांत होकर, बिना किसी प्राप्ति के - एक ऐसा नायक जिसने समस्त संसार, हर लोक को जीत लिया है: वही है जिसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

419. वह प्राणियों के मृत्यु और उनके पुनरागमन को हर तरह से जानता है; अनासक्त, जागृत, अच्छी तरह से विदा हुआ: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

420. जिसका मार्ग वे नहीं जानते - देव, गंधर्व और मनुष्य - जिसके उत्सर्जन समाप्त हो गए, एक अरहंत: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

421. जिसके पास कुछ भी नहीं है - आगे, पीछे, बीच में - जिसके पास कुछ भी नहीं है और जो किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं है: उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

422. एक शानदार बैल, विजेता, नायक, महान द्रष्टा - अभाव से मुक्त, जागृत, शुद्ध: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

423. वह अपने पूर्व जन्मों को जानता है। वह स्वर्ग और दुख की अवस्थाओं को देखता है, जन्म-जन्म के अंत को प्राप्त कर चुका है, वह एक ऐसा ऋषि है जिसने पूर्ण ज्ञान में महारत हासिल कर ली है, उसकी महारत पूरी तरह से सिद्ध हो चुकी है: मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।